RIG-VEDA-SAMHITÂ

THE

SAÇRED HYMNS OF THE BRÂHMANS

TOGETHER WITH THE

COMMENTARY OF SÂYANÂKÂRYA

EDITED BY

F. MAX MÜLLER

055

SECOND EDITION

VOLUME III

MANDALAS VII-IX

PUBLISHED UNDER THE PATRONAGE OF

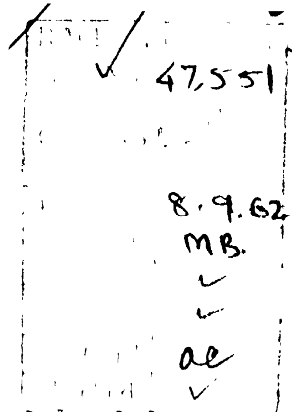
HIS HIGHNESS THE MAHÂRÂJAH OF VIJAYANAGARA

LONDON

HENRY FROWDE

OXFORD UNIVERSITY PRESS WAREHOUSE, AMEN CORNER

1892



Oxford
PRINTED AT THE CLARENDON PRESS
BY HORACE HART, PRINTER TO THE UNIVERSITY



TO

HER MOST EXCELLENT MAJESTY

Victoria

Queen of Great Britain and Ireland

Empress of India

THIS EARLIEST RECORD

OF THE RELIGIOUS INSTITUTIONS OF THE NATIVES OF INDIA

IS BY GRACIOUS PERMISSION

Dedicated

BY

HER MAJESTY'S

FAITHFUL SUBJECTS AND DEVOTED SERVANTS

Pasupati Ananda Gajapati Raz and Frederick Max Müller

VARIETAS LECTIONIS.

ABBREVIATIONS.

A = A 2, Colebrooke's MS., India Office Library, Nos. 2133–2136.

Af, Fragments of Sâyaṇa's Commentary, containing portions of the 9th and 10th Maṇḍalas, belonging to me.

B, MSS. of the B class.

B 1, Stevenson's MS., India Office Library.

B 4, Dr. Taylor's MS., India Office Library, 1861–1864, from the beginning of the 7th Ashṭaka belonging to the A class.

Bf, A fragment, containing hymns IX, 44 to IX, 67, 32, related to B 4, belonging to me.

C, MSS. of the C class.

C 2, Mill's MS., Bodleian Library, Mill 24–26g.

C 4, Wilson's MS., Bodleian Library, Wilson 78–86. Closely related to C 2.

Ca, My own MS., the original of the C MSS.

CB, Dr. Bhao Daji's MS., belonging to the B class.

D, A fragment, containing Ashṭaka V, Adhyâyas 3 to 5, belonging to me.

M 1, Editio princeps.

P 1, Pada MS., Bodleian Library, Mill 155–158.

P 2, Dr. Taylor's Pada MS., India Office Library, No. 2032.

P 3, Colebrooke's Pada MS., India Office Library, Nos. 20–27.

P 4, Pada MS., Bodleian Library, Wilson 439–442.

P 5, Pada MS. of the 5th Ashṭaka only, Bodleian Library, Mill 159.

Ś, Saṃhitâ MS. from Calcutta, in Śârada characters. See p. 26.

S 1, Saṃhitâ MS., Bodleian Library, Mill 147–150.

S 2, Saṃhitâ MS., Bodleian Library, Mill 151–154.

S 3, Colebrooke's Saṃhitâ MS., India Office Library, Nos. 129–132.

S 4, My own Saṃhitâ MS.

Bṛih., Śaunaka's Bṛihaddevatâ, MS. belonging to me. Sv., Sâma-veda.

For other Abbreviations, see vol. i, Varietas Lectionis, p. 1.

P. 158. l. 14. (75.) अष्टावु° A. B1. Ca. अष्टा उ° D. Anukr. M.—l. 18. हिरण्यानि A. Ca. B1. D. हिरण्यादि Rvdh.—गा अश्वान् Rvdh. गावोऽश्वान् A. Ca. B1. D.—धान्यं Rvdh. धन्यान् A. Ca. D. धान्यान् B1.—l. 26. (75, 1.) It would be better to read इति तिल्लोपः.—P. 159. l. 3. (75, 2.) मर्त्तेषु Ca. मर्त्येषु A. B1. D. M1.—l. 12. (75, 3.) सरंति A. B. प्रसरंति Ca. D.—l. 17. (75, 4.) °मांश्चतुरो वर्णान् ॥ °माश्चतुरो वर्णाः A. Ca. B1. °माश्चत्वारो वर्णाः तान् B4. D.—l. 18. परि जिगाति परिगच्छति D.—l. 25. (75, 5.) अत्रैको योग° ॥ अत्रैयो योग° A. अत्रैको याग° Ca. D. अत्र योग° B1.—l. 26. °रश्म्याख्य° ॥ °रश्माख्य° A. Ca. B1. D. रश्माख्य° without विचित्र° B4.

P. 160. l. 31. (76, 1.) यागानुष्ठानार्थमि° A. B1. यागानुष्ठानमि° Ca. D.—P. 161. l. 18. (76, 3.) Sâyaṇa took जार for the locative.—l. 19. अत्यज्येव ॥ अत्यजैव A. ऋत्यश्चीव B1; the whole passage is left out in B4. Ca. D.—l. 20. यती पतिं परित्यज्ये° etc. ॥ यती पतिपरित्यजेत ततः संचरंतीत्यभिचारिणीव etc. A. यती पतिं परित्यजेत् ततः सचरंतीत्यभिचरणीव (°चारिणीव D) etc. Ca. D. यथा व्यभिचारिणी पतिं न त्यजति तद्वत् सूर्यं अपरित्यजंती त्वं B4. यती पति परित्यजेत नः संचरंति व्यभिचरीणीव सूर्यमपरित्यजती त्वं B1.—P. 162. l. 11. (76, 6.) स्तोमैः B1. स्तोमेभिः A. Ca. D. M1.

P. 162. l. 29. (77, 1.) वा after बाधमानं A. Ca. B1. D.—P. 163. l. 23. (77, 4.) व्युच्छ A. B1. Ca. D.—l. 24. वसूनि to आहर from B4.—P. 164. l. 2. (77, 5.) रथवद्रयैरुपेतं from B4. D.

P. 164. l. 16. (78, 1.) अस्मभ्यं repeated after धनं in A. Ca. B1. D.

P. 166. l. 9. (79, 3.) Ca. D, and probably A pr. m. have प्रयांसि for श्रवांसि.—l. 11. रात्र्यवसानस्य ॥ रात्रिवसानस्य A. Ca. D. रात्रिवसनास्य B1.—l. 27. (79, 5.) धनलाभाय A. B1; deest in Ca. D.

P. 167. l. 12. (80, 2.) A. Ca. D read अदृश्यमाना.

C2 begins again from the sixth Adhyâya, but as it does not differ from Ca, it is only occasionally mentioned.

P. 168. l. 7. (81, 1.) व्युच्छंती A. B1. Ca. The same in verse 4.—P. 169. l. 18. (81, 6.) शिष्टः etc. In all cases, where the masculine is used, पादः has to be supplied. Cf. Rv. Bh. VII. 60, 12. 82, 2. 85, 1.—l. 19. A omits all from प्रिय° to the end.

P. 170. l. 8. (82, 2.) वां युवां A. B. Ca. It should be युवाभ्यां, as immediately afterwards.—l. 9. शरीरदार्ढ्याय etc. A. Ca. B1. ओजः शरीरदार्ढ्यहेतुभूतं संदधुः B.—ओजः साष्टमी दृशेति B1. ओजो नाष्टमी दृशेति A. ओजो नाष्टमी ॥ दृशेति Ca.—P. 171. l. 2. (82, 5.) जातिमंति ॥ जतिमंति A. जनिमंति B1. संति Ca.

P. 172. l. 15. (83.) ऐंद्रावरुणं ॥ मैत्रावरुणं A. B1. Ca.—l. 24. (83, 1.) Read अर्च्छेति। तै° ब्रा° ३. २. २. ९। इति ॥ आर्च्छति Ca. अर्च्छति A. अर्च्छेति B1.—P. 173. l. 1. (83, 2.) वीराश्च B. वोताश्च A. Ca. M1.—l. 16. and p. 174. l. 3. (83, 4 and 6.) अरक्षतं ॥ रक्षतं A. B1. Ca.—P. 175. l. 3. (83, 10.) धनं from B1. 4.

P. 176. l. 24. (85, 1.) चोदितस्य B1 and margin of B4. वोदास्य A. Ca.—P. 177. l. 12. (85, 3.) असांकर्येण A (cf. Wilson, s.v. सांकर्य). असांकार्येण Ca. आसांकार्येण B. असाकर्येण B1.

P. 179. l. 8. (86, 5.) च after विशेषस्य A. Ca. B; not in C.—l. 9. घासादिभिः Ca. B1.

वासादिभिः A. **यवसादिभिः** B 4.—l. 15. (86, 6.) **स्वभूतं तद्बलं** A. B 1. **स्वरूपवद्बलं** Ca; not in B 4.—l. 16. **प्रमाद॰** B. **प्रमोद॰** A. Ca.—l. 20. **ह्येव** A. B 1. Ca. **उ एव** Kaush.

P. 183. l. 10. (88, 3.) **अभूव** A. Ca. **भवाव** B 4. **अभूतां** B 1. **बभूविव** M 1.—l. 12. **दोलायां** A. **डोलायां** B 1. Ca, and probably A pr. m. Cf. Rv. Bh. X. 143, 5.—l. 20. (88, 4.) Sâya*n*a read **स्वपामवोभिः** instead of **स्वपा महोभिः**.—l. 29. (88, 5.) **सख्यं** B 1. **सत्यं** A. Ca.—P. 184. l. 4. (88, 6.) **सखा** Ca, **ससखा** A, after **सखा**.

P. 184. l. 32. (89, 3.) **प्रतिकूलमननुष्ठानं** Ca. **प्रतिकूजितं अनुष्ठानं** A. **अननुष्ठानं** B 4. **प्रतिकूलं अनुष्टानं** B 1.

P. 186. l. 4. (90, 2.) Sâya*n*a seems to take **वाज्यस्य** as one word.—P. 187. l. 1. (90, 5.) **स्वकीयत्वे विहितेन** A. **स्वकीयस्व विदितेन** Ca. **स्वकीयेन विदितेन** B 4. **स्वकीयेनैव** B 1.—l. 19. (90, 7.) Sâya*n*a explains **सुऽअवसे** instead of **सु । अवसे ।**.

P. 190. l. 3. (92, 1.) **उप समीपे** from B 4.—l. 28. (92, 3.) A. B 1. Ca have **रायो** for **राधो**. Cf. Rv. Bh. I. 48, 2.—P. 191. l. 3. (92, 4.) **सूरयः स्तोतारः** A. B. Ca.

P. 192. l. 2. (93, 2.) **युवं युवां** A. B 1. Ca.—l. 4. **संयोजयतं** B 1. **स्वयोजयतं** A. Ca. **योजयतं** B.—l. 12. (93, 3.) **॰भूमिं व्याप्नुवंति** B 4. **॰भूम्यां वाप्नुवंति** A. **॰भूम्यां चाप्नुवंति** Ca. B 1.—l. 20. (93, 4.) From **बुद्धिभि॰** to **भिर्वाजैः** in verse 6 left out here in Ca, but inserted afterwards at the beginning of Sûkta 94 with the remark after it **पूर्वार्धं लिख्यते**.—l. 28. (93, 5.) A. C. Ca omit all from **तनूरुचा** to **हतं**. B 4 has **स्पर्धां कुर्वत्यौ शूरमाता शूरसार्ता रणे यतंते यत्नं कुर्वत्यौ वैरिसेने तनूरुचा आत्मीयेन तेजसा सं यत् ये सत्रा हतं सततं हिंस्तं तथा सोमसुता सोममभिपुण्वता जनेन यतमानसंघेन देवयुभिः देवान् कामयमानैः सह विदथे यज्ञे अदेवयुं असोमसुतं जनं सं हिंस्तं ॥** B 1 has **तनूरुचा ॥ औक्तिक हतं**.—P. 193. l. 5. (93, 6.) **उपा ॥ उप** A. B 1. Ca. M 1.—l. 21. (93, 8.) **मा** before **परि ख्यन्** by conjecture.

P. 194. l. 6. (94, 3.) **पापत्वाय पापवत्त्वाय** Ca.—P. 195. l. 4. (94, 8.) **यच्छतं** Ca. **प्रयच्छतं** A. B 1. M 1.

P. 197. l. 14. (95, 5.) **पवित्रेष्यां** B 1. **परिवेष्यां** A. C. Ca.—l. 20. **त्वद्विष॰** B 4. **तृपद्द्विष॰** A. Ca. B 1.—l. 28. (95, 6.) **यंतुः ॥ यंतु** A. Ca; deest in B 1. 4.

P. 197. l. 31. (96.) **द्वितीया सतोबृहती** left out in A. Ca. B 1. **द्वितीया प्रस्तारपंक्तिः तृतीया सतोबृहती** B 4.—l. 32. **सरस्वद्देवताकः ॥ सरस्वान्देवताकः** A. Ca. B.—P. 198. l. 8. (96, 1.) **असुराघ्न॰ ॥ असुरघ्न॰** A. B 1. Ca.—P. 199. l. 7. (96, 6.) **सरस्वतो** A. B 1. Ca. **सारस्वत॰** M 1.

P. 200. ll. 28 and 30. (97, 6.) **नीलवत्** S 1. S 2. S 3 sec. m. S 4. P 1. P 3. P 5. **नीळवत्** S 3 pr. m. P 4. M 1. Cf. Rv. VIII. 19, 31. The MSS. of Sâya*n*a read **नीलवत्** and **नीलं**.

P. 202. l. 28. (98, 3.) **पप्राथ** P 3. P 4. P 5. **पप्रथ** P 1.—P. 203. l. 1. **अदित्यिंद्रमहत्त्वस्यो॰ ॥ अदित्य इंद्रमादित्यस्यो॰** A. Ca. B 4. **आदित्य इंद्रमादित्यस्योक्तवान्** B 1.—**पप्राथ ॥ पपाथ** B 1. **पप्रथ** A. Ca. M 1.—l. 9. (98, 4.) **अभियुध्येश्व ॥ अभियुध्यस्व** A. B. Ca.—l. 16. (98, 5.) **यदेवदैव ॥ यदेतत् यदेव** A. **यदेतत् तदेव** B 1. **यदेतत् सदेव** Ca.—l. 23. (98, 6.) Sâya*n*a seems to have read **तवेदिदं**.

P. 204. l. 15. (99, 1.) **नान्यत्** B 1. 4. Ca sec. m. **मान्यत्** A. Ca pr. m.—P. 205. l. 7. (99, 3.) **व्यामधोमुखत्वेन** from Ca marg.—l. 8. **पर्वतैः** B 4. Ca marg. **कीलसदृशैः पर्वतैः** marg.

l. 15. (18, 11.) युवाध्वर्युरिव etc.॥ युवाध्वर्युरिव सद्मन् यज्ञगृहे बर्हिर्यस्मिन्युद्धे शूर etc. A. Ca. B 1. अध्वर्युरिव स यथा सद्मन् यज्ञगृहे बर्हिः यस्मिन्युद्धे शूरः etc. B. यथाध्वार्युरिवा सद्मनि यज्ञगृहे बर्हिः यस्मिन्युद्धे सपत्नान् नि शिशाति नितरां लुनाति तस्मिन्युद्धे शूर etc. C 2. C 4.—l. 30. (18, 13.) प्राकारांश्च B 1. प्रकारांश्च A. नगरांश्च Ca.—P. 40. l. 15. (18, 15.) बाध्यंते B 1. बाधंते A. B 4. C. Ca.—l. 17. विश्वानि॥ विश्वा विश्वानि A. B 1. Ca. M 1.—P. 41. l. 1. (18, 17.) अश्रीन्॥ अस्तीन् B. अस्तान् A. C. Ca. B 1.—l. 2. वेश्मादेः छत्यसूच्यै चाकरो° A. वेश्मादेः छत्यसूच्येवाकरो° Ca. वेश्मादेः छत्यसूच्यै दे वाकरो° C 2. वेश्मादेः छत्यं सूच्यैव करो° B 1; deest in B 4. पश्चादेः छत्यं ?—l. 3. धनानि deest in A. B 1.—l. 11. (18, 18.) विंद् लभस्व यो भेदः॥ विंद् लभ सुवतः etc. B. वद् उभयोरभेदः A. Ca. वा उभयोरभेद C. विद् उभयोरभेदाः B 1.—l. 23. (18, 19.) उप अभुः A. B 1. Ca.—P. 42. l. 10. (18, 21.) उपगच्छंति॥ अपगच्छंति A. C. Ca. अवग° B 1.—l. 16. (18, 22.) इंद्रं॥ इंद्रः A. B. Ca. इंद्र C.—l. 17. अतद्देवता°॥ अतदेवता° C. B 1. अतस्त-द्देवता° A. Ca.—l. 21. (18, 23.) Read निरेके.—l. 23. प्रशस्तातिसर्जना श्रद्धादिदानांगयुक्ताः Ca. A. प्रशस्तातिसर्वजनश्रद्धादिदानांगयुक्ताः C 2. प्रशस्तातिसर्जनश्रधादिकनामांगयुक्ताः B 1.

P. 44. l. 28. (19, 6.) त्वया दत्तानि A. B 1.—P. 45. l. 29. (19, 10.) शिवः कल्याणः शूरः B 4.—P. 46. l. 5. (19, 11.) ऊत्या रक्षणेन from B 4.

P. 47. l. 29. (20, 5.) साधकः B 1 for सादकः.—P. 48. l. 4. (20, 6.) रेषत नैव चीयेत A. रेषत (रेषते B 1) नैव चीयते B 1. Ca. D.—l. 12. (20, 7.) प्रीणाति MSS. पृणाति Ngh. III. 20.—l. 14. दूरं B. दूरः A. C. Ca. D.—पर्यासीत A. पर्यासीत् B 1. Ca. D.—चित्रं A. B 1. Ca. D for चित्र्यं; but both A and D, which give also the full text of the Mantras, read चित्र्यं in the text.—l. 19. (20, 8.) यः before ते by conjecture.—P. 49. l. 5. (20, 10.) Sâyaṇa considers वस्वी षु as one word. In the second explanation Ca in the margin adds after प्रशस्ता, सु स्तुतिषु, and D reads प्रशस्तासु स्तुतिषु.

P. 49. l. 8. (21.) सूचितं च is wanting in A. B. C. Ca. D.—l. 25. (21, 2.) गृहमध्यमयावा A. C. Ca. गृहः मध्यमध्यमयावस्तस्मात् B 4; deest in B 1. गृहमध्यमश्रावा D. गृहमध्यमश्मा वा ?—P. 50. l. 16. (21, 5.) उत्सहेत॥ उत्सहे च A. C. Ca. B 4. D. उत्सहेश्च B 1.—l. 17. दीव्यंति॥ दीव्यंत इति C. Ca. D. दीश्रंत इति B 1. दीप्यंत इति A. दिव्यंत इति B 4.—क्रीडंत A. B 1. Ca. D. क्रीडंति C.—l. 18. अपिगमन् A. अपिगमयत् B 1. अतिगमन् B. C. Ca. D.

P. 52. l. 9. (22, 2.) ऽनुगुणः॥ गुणः A. B. C. Ca. D.—P. 53. l. 7. (22, 6.) सवना A. B. सोमस्तोत्रं सादेवना C. Ca. सोमस्तोत्रं सवना D; deest in B 1.—l. 8. ह्वयति। स्तौति॥ स्तौति ह्वयति A. स्तौव ह्वयति Ca. स्तौता ह्वयति आह्वयति B 4. स्तौति आह्वयति D. स्तौतिं ह्वयति B 1.

P. 54. l. 9. (23, 1.) ततान व्याप्तवान् D.—l. 16. (23, 2.) नहि चिकिते न ज्ञायते॥ नहि चिकिते ज्ञायते B 1. चिकिते ज्ञायते A. Ca. D.—l. 23. (23, 3.) उपास्थुः॥ उपस्थुः A. B 1. Ca. D. M 1.—l. 24. द्वंद्वानि Ca. A. D. द्वंद्विनो B 1.—P. 55. l. 8. (23, 5.) दयसे हि। दयां करोषि B 4.—l. 14. (23, 6.) वज्रकल्पबाहुं॥ वज्रकल्पनाहं A. C. Ca. D; not explained in B.

P. 55. l. 26. (24, 1.) मादयस्व॥ मादय A. B 1. B 4. C. मादाय D.—P. 56. l. 8. (24, 3.) इमं यज्ञं॥ इदं यज्ञं A. B 4. C. D. इंद्रं यज्ञं B 1.

P. 57. l. 8. (25, 1.) युद्धार्थं before संगच्छंते Ca. D.

P. 59. l. 3. (26, 2.) ह्वयंते॥ वहंते A. B 1. Ca. ह्वयंते वहंते D.—l. 10. (26, 3.) अप्यन्या-न्यानि॥ अन्याप्यन्यानि C. Ca. D. अन्याप्यन्या अन्यानि A. अन्या अन्यानि B. अत्यान्यान्यानि M 1.—l. 11. एकोऽसहायः from B 4.—l. 16. (26, 4.) बाधमानाः A. B 1. बाधनाः B 4. C. Ca. D.

P. 60. l. 2. (27, 1.) नेमधिता to संयामे from B 4. D has प्रयुज्यंते नेमधिता ; then, in the margin, नेमधितौ संयामे नरः कर्मणां नेतारः इंद्रं हवंते आह्वयंतीत्यर्थः. Afterwards the commentary runs on : यमिंद्र हवंते ह्वयंति स etc.—l. 3. गोमति गावः संत्यस्मिन्निति गोमत् तस्मिन् Ca sec. m. D. गोमति गोयुक्ते B. In B 1 and Ca pr. m. a lacuna is marked after सन्.—l. 30. (27, 5.) मंहनीयायै ॥ मंहनीयाय MSS. It might be मंहनीयाय दानाय स्तुत्या ववृत्याम ॥

P. 61. l. 2. (28.) पंचमस्तेन MSS. for चतुर्थस्तेन.—l. 23. (28, 3.) प्रतिष्ठापयसि B 4. °पयति A. C. Ca. D. B 1.—P. 62. l. 2. (28, 4.) त्वत्प्रसादात् B 4. तत्प्रसादात् A. C. Ca. D. B 1.—l. 9. (28, 5.) प्रायच्छत् ॥ प्रयच्छत् B 1. प्रयच्छेत् A. Ca. D.

P. 62. l. 19. (29, 1.) सवनीयो C. सेवनीयो A. तत्सेवनीयो B 4. तत सेवनीयो D. सवनायो B 1. Ca has ग्सवनीयो, which may be सेव°. Cf. Rv. Bh. I. 173, 11; III, 58, 6.—l. 20. The MSS. vary between नु and णु both here and in the next line, and again in VII. 31, 4.—P. 63. l. 10. (29, 4.) उतापि च A. B 1. Ca. D.

P. 63. l. 27. (30, 1.) महि A sec. m. B. Ca. महे A. D. M 1.—P. 64. l. 5. (30, 2.) सुहंतुनाम्ना C 2. °नाम A. B. Ca. D. Possibly it might be सुहंतुना.—l. 11. (30, 3.) यद्यदा च A. B 1. यद्यथा च B 4. C. Ca. D.—l. 12. तदा ॥ तया A. तथा B 1. 4. C. Ca. D.

P. 64. l. 26. (31.) गायत्रं ॥ त्रैष्टुभं A. B 1. Ca. D.—l. 31. तदर्थाः ॥ तदर्था A. C. Ca. D. तदर्थं B 1.—P. 65. l. 21. (31, 5.) वशं B. वश A. C. Ca. D.—P. 67. l. 1. (31, 12.) सर्वजगत A sec. m. सर्वत जगत A pr. m. (?) Ca. D. सर्वतः जगत्त B 1. सर्वतो जगतः M 1.—l. 2. स्तोत्राणि ॥ स्तोत्रीणां C. Ca. D. स्तोत्राणां A. B 1.

P. 67. l. 10. (32.) प्रगाथमु° to प्रगाथं D. Ait. Âr.; deest in A. B 1. Ca. M 1.—l. 12. उपसमस्येद्विपदां Âsv. उपदस्ये द्विपदां A. स्ये द्विपदां Ca. उपसमस्येद्विपदां D. सद्विपदां B 1.—l. 13. प्राक्ततात् D. प्रक्ततात् A. B 1. Ca. M 1.—प्रगाथादनंतरं ॥ प्रगाथानंतरं A. B 1. Ca. D.—l. 14. मरुत्वतीया ऊर्ध्वं Âsv. मरुत्वतीयादूर्ध्वा A. मरुत्वतीयादूर्ध्वं B 1. मरुत्वती ऊर्ध्वा Ca. त्वती ऊर्ध्वा C. D has मरुत्वतीयोरूर्ध्वं नित्यार्द्विनि with त्वया शुभेति च मरुत्वतीये पुरस्तात्सूक्तस्य शंसेत् in the margin.—l. 17. छावा after मैत्रावरुणशस्त्रे A. B. C. Ca. D.—l. 20. आरंभणीयाः Âsv. B 1. आरंभणीयां A. C. Ca. D.—l. 23. The MSS. add इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ after सिषासति, apparently a repetition from the preceding line.—l. 25. प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ Âsv. रथंतरस्य स्तो° B 1. स्तोत्रियानुरूपौ A. D; wanting in Ca.—l. 36. (32, 1.) It would be better to read त्वां instead of त्वया.—अपि B 4. अथिनो A. C. Ca. D. B 1.—मो B 4. मा Ca. D; deest in A. B 1; B 1 omits न also.—P. 68. l. 15. (32, 4.) सुता बभूवुः ॥ सुबभू A. Ca; wanting in C. अभिषुतवंतः B 4. D marg. सुषुवः B 1. सुबभूः D pr. m.—P. 69. l. 31. (32, 10.) आत्मार्थं Ca. C. D. आत्मानं A. B.—P. 70. l. 12. (32, 12.) सोमपानमस्ति B 1. समानमस्ति B 4. D. सोमानमस्ति A. Ca. सोमोषि C.—l. 19. (32, 13.) सुविहितं C. Ca. D. सुष्ठु निहितं B 4; deest in A. B 1.—P. 72. l. 25. (32, 22.) सर्वदृशं deest in C. Ca. D.—P. 73. l. 10. (32, 24.) हविष्यः A. C. Ca. B 1. ह्वातव्यः B 4. आह्वातव्यः हविष्यः D.—l. 29. (32, 27.) दुराध्यः दुष्टचित्ताः B 4.—अशिवासः अशिवाः दुराचाराः मा चक्रमुः B 4 after मावचक्रमुः.

P. 73. l. 31. (33.) सपुत्रस्येंद्रेण Anukr. सपुत्रैस्येंद्रेण C. Ca pr. m. सपुत्रैणेंद्रेण A. Ca sec. m. D. सपुत्र सेंद्रेण B 1.—P. 74. l. 2. स्वपुत्रैः B 1. सपुत्रैः A. Ca. D. M 1.—l. 3. न्यायात्

A. B 1. नायात् Ca. परिभाषात् C. परिभाषायात् D.—l. 9. (33, 1.) कपर्दाः चूडा° B. कपर्दा चूडा° A. B 1. C. Ca. D.—l. 12. पुत्राः सुदासराजानः Ca pr. m. D.—नार्हति B 4. अर्हति A. B 1. Ca. D.—l. 19. (33, 2.) पल्वलं A. D. पललं B 1. Ca.—l. 29. (33, 3.) सवाख्ये B 4. संसवाख्ये B 1. राख्ये D. संवाख्ये A. Ca.—P. 76. l. 9. (33, 8.) The text is printed from Ca, including all corrections and marginal additions, excepting तव महिमा, which is inserted between अन्येन and अन्वेतवे. The same text is found in D. A has हे वसिष्ठा एषां वो युष्माकं स्तोमोऽपि वातस्येव प्रजवो etc. So has B 1, where, however, the words from the beginning to वा are put twice. B 4 agrees with A, but has at the end किचं युष्माकं वक्षथः तेजः सूर्यस्येव सूर्यज्योतिरिव । तथा युष्माकं महिमा समुद्रस्येव गभीरः गंभीरः इव ॥ C has the same as Ca, only ऽपि वा after the first स्तोमो. MS. E. I. H. 2612 marks a lacuna after हे वसिष्ठा वो युष्माकं स्तोमोऽपि वा ---- to हे वसिष्ठाः एषां वो युष्माकं स्तोमोऽपि वा.—l. 18. (33, 9.) कारणात्मना B. D. कारणानात्मना A. C. Ca: cf. verse 12.—P. 77. ll. 3 seq. (33, 11.) मनसो and afterwards अधि from B 4.—l. 5. अहंभुवा A. B. Ca. D. अहभुवा MS. E. I. H. 2612. स्वयंभुवा?—l. 7. तत्कुंभे ॥ तकुंभे Ca. तकुंभे A. D. तंकुंभे B 1. तः कुंभे Bṛih. MS.—न्यतपत् Ca. D for न्यपतत्.—l. 9. संभूत A. B 1 and Bṛih. MS. सभूत C. Ca. D. संबभूव Bṛih. as quoted in Böhtlingk and Roth's Dict. under अगस्त्य.—अगस्त्यः संभूतो A. Ca. D. अगस्त्यसंभूतौ B 1. अगस्त्यसंभूतो Bṛih. MS.—l. 10. The Sloka beginning with यद्वा कुंभात् exists only in A. D. B 1. हि मीयते A. B. D. Bṛih. MS. महीयते Bṛih. l. c. No MS. has वासतीवरे, as Roth reads.—l. 11. च परिमाणस्य लक्ष्यते A. B 1. परिमाणं च लक्ष्यते D. तु परिमाणं सुलक्षणं Bṛih. MS.

P. 78. l. 27. (34, 4.) पूर्वस्यामिंद्रस्य ॥ पूर्वस्यामि A. C. Ca. D. पूर्वस्यापि B 1.—P. 79. l. 29. (34, 12.) अस्मान् ॥ नोऽस्मान् A. B 1. Ca. D. M 1.—P. 80. l. 16. (34, 16.) सीदंतं B 1. 4. सीदंत A. C. Ca. D.—l. 22. (34, 17.) न क्षीयेत Ca sec. m. न दोयेत A. Ca pr. m. न क्षीयते B 1. न हीयेत C. न क्षीयेत् D.—P. 81. l. 30. (34, 24.) जिहीतां ॥ जिहातां A. B 1. Ca. D. जिहातु B 4.—P. 82. l. 2. भरणीयं B. भरणीयां A. C. Ca. D.

P. 82. l. 13. (35.) The lacuna at the end of the Viniyoga is marked in A. C. Ca. and supplied in Ca by a later hand, एव(मेता)सु. D marks no lacuna, but has एवमेतासु. B 1 has एव तमुक्तासु ।.—P. 83. l. 3. (35, 3.) धर्ता B 1. विधर्ता A. Ca. D. M 1.—l. 11. (35, 4.) मित्रावरुणा मित्रावरुणावपि A. B 1. Ca. D.—l. 19. (35, 5.) After पूर्वहूतौ a lacuna is marked in A. Ca. पू° प्रथमाह्वाने B 4. पू° पूर्वं प्रार्थितौ C. पू° प्रथममाहूतौ Ca sec. m. D. B 1 has पूर्वहूतौ भवतां.—l. 27. (35, 6.) जलाषः. No explanation is given in A. B 1. C. Ca mark a lacuna after जलाषः, which is supplied by सुखरूपः in Ca sec. m. D, and by गंगाधरः in B 4.

P. 86. l. 25. (36, 1.) नान्यस्य चित् MSS. नान्यस्य कस्यचित्?—P. 87. l. 15. (36, 3.) अचिक्रदत् शब्दयत् B 4.—l. 21. (36, 4.) युंज्यात् ॥ युंजान् A. B 1. युंजन् B 4. युजान् Ca. D. युजान C.

P. 89. l. 12. (37, 1.) तेन रथेन A. C. Ca. B 1. 4.—l. 21. (37, 2.) धनहेतुभिः मननीयैः स्तोत्रैः D.—P. 90. l. 12. (37, 5.) विवेषः ॥ विवेष A. B 1. Ca. D.—l. 23. (37, 6.) निवहेत् ॥ न्यवहेत् A. B 1. 4. C. Ca. D.—P. 91. l. 8. (37, 8.) प्रतिपादिता B 4. प्रतिपादका A. C. Ca. D. B 1.

P. 93. l. 17. (39.) प्रउगं Âsv. B 1. प्रउग A. C. Ca. D.—l. 24. (39, 1.) सेवेते A. सेवते B 1. Ca. D. सेवाते M 1.—l. 31. (39, 2.) आसावत इ° A. B 1. आसावमि° Ca. D.—P. 94. l. 8. (39, 3.) पृथिव्यां भवाः ॥ पृथिव्यासा A. C. Ca. पृथिव्याः B 4. पृथिव्याः मं B 1. पृथिव्याः सा D. See Nir. XII. 43.—l. 24. (39, 5.) गरणीयान् ॥ गरीयान् A. B. गिरीयान् Ca. M 1. गिरीया D; deest in C.—P. 95. l. 4. (39, 6.) सचीमहि संगमेमहि B.—l. 11. (39, 7.) The words चंद्रा to ददतु have been restored with the help of Rv. Bh. VII. 40, 7. चंद्रा आल्हादका सर्वे यूयं etc. A. B 1. °रभिष्टुता आसन् सूक्ते प्रतिपादिता etc. Ca. C. D. अभिष्टुताः आसन् नः अस्मभ्यं अर्कं अर्चनीयं उपमं सर्वोत्कृष्टं अन्नं यच्छंतु ददंतु चंद्राः आल्हादकाः सर्वे यूयं etc. B. This shows that the omission after आल्हादकाः existed also in the B copies.

P. 95. l. 20. (40, 1.) युष्मान् ॥ युष्मदीयान् A. C. Ca. D. B 1.

P. 97. l. 24. (41, 2.) Instead of प्रातःऽजितं। Sâya*n*a explains प्रातः। जितं।—l. 25. स्तोता यं ॥ स्तोता B 1. Ca. D. स्तो A.—P. 98. l. 17. (41, 5.) वा before वयं by conjecture.—l. 24. (41, 6.) उषोदेवताः B 4. उषोदेवाः A. C. Ca. D. उषसो देवाः B 1: cf. the next verse.

P. 99. l. 20. (42, 2.) तांश्च त्वं Ca. D. तां अश्व त्वं A. तां अश्वा B 1. तामश्वान् D marg.—सु before युत्स्व from B. Sâya*n*a took सुते for सु ते, and immediately afterwards जनिमानि सत्तः for जनिमा निसत्तः.—l. 26. (42, 3.) नमस्कारैर्यु° Ca. D. नमस्कारियु° B 1. नमस्कारयु° A. M 1.—P. 100. l. 3. (42, 4.) वीरकस्य only in A. B 1.

P. 101. l. 9. (43, 2.) साधकं ॥ साधुकं A. B. C. Ca. D.—वेद्यां B 4. वेद्यं B 1. मेद्या A. C. Ca. षेद्या D: cf. the next verse.—l. 15. (43, 3.) जननीं ॥ जननीयं A. B 1. C. Ca. D; not in B 4.—अस्माकं ॥ अस्मानं C. Ca. अस्मान् A. B. D.—l. 17. जुह्वः A. B 1. जह्वः Ca. D.—l. 27. (43, 4.) यति स्थ, as well as the explanation of it, is left out in A. B. C. Ca. It could easily be supplied in this way: यति स्थ यावंतः स्थ तावंतः etc.

P. 102. ll. 23 and 25. (44, 3.) मँश्चतोः P 3. मंश्चतोः P 1 sec. m. P 4. P 5. मांश्च° P 1 pr. m. मंश्च° S 4 sec. m. मांश्च° S 1. S 2. S 3. S 4 pr. m. See Prât. 301.—l. 27. मंश्चतोः A. B 1. D. मश्चतोः Ca.

P. 103. l. 14. (45.) The introduction to this hymn is left out in A and B.—l. 16. यात्वित्येषा वपानुवाक्या etc. Ca. D. The lacuna may be supplied in this way: यातु प्र यावेति। आ° ८. ८.। इति ॥ सावित्रे पशावा देवो यात्वित्येषा वपानुवाक्या। etc.

P. 104. l. 30. (46, 1.) देवाय ॥ रुद्राय A. C. Ca. D. B 1. B 4 has रुद्राय देवाय भरत etc.—P. 105. l. 5. (46, 2.) रम्यः is probably left out after भवः.—l. 7. अस्मदीयानि गृहाणि from C. Ca. D.—l. 13. (46, 3.) अंतरिक्षसकाशात् B 4. अंतरिक्षात्सकाशात् A. B 1. C. Ca. D.—l. 14. क्षित्या B 1. हित्या A. The whole passage is left out in C. Ca. D.—स्वपिवात जितप्राण B 4.

P. 105. l. 31. (47, 1.) From सोमाख्यं to तमूर्मिं taken from C. Ca. D.—समस्कुर्वत अद्यो° ॥ सम्यस्कुर्वत अद्यो° Ca. सम्यक्कुर्वत अद्यो° D.

P. 106. l. 29. (48.) वैश्वदेवशस्त्र आ° B 1. °शस्त्रमा° A. Ca. D.—P. 107. l. 6. (48, 1.) मनुष्यहितं ॥ मनुष्य A. B 1. C. Ca. D. नराहं B 4.—l. 7. आगमयंतु from Ca. D.—l. 12. (48, 2.) उरु भवंतीत्वृभवः ॥ उरु भवंत्वृभवः B 1. C. Ca. D. पुरु भवंत्वृभवः A. उरु भवन् ऋभव

B 4. The original reading might have been something like उरु भवंतीत्यृभवः। व्यत्ययेनैकवचनं। ऋभवः संतः.—l. 24. (48, 3.) मेथते॥ मित्याते: B. मिथ्नाते: A. मिम्नाते: Ca. D.

P. 108. l. 18. (49, 2.) समुद्रार्था: from B.—l. 22. (49, 3.) सत्यामृते इति Pada MSS. See Prât. 209.—P. 109. l. 1. (49, 4.) साकः A. C and Ca pr. m., सकः Ca sec. m. and D, before सोमः.

P. 109. l. 4. (50.) वैश्वदेवी॥ वैश्वानरी A. B 1. Ca. D.—l. 14. (50, 1.) त्सरुश्छद्मगामी B 1. त्सरुः छ आगामी A. C. Ca. D. त्सरुः सर्पः B 4: cf. त्सर छद्मगती Dhp. 15, 46.—l. 21. (50, 2.) कुल्फौ गुल्फौ B 4. गुल्फौ गुप्तौ A. C. Ca. D. गुल्फौ गु B 1.—P. 110. l. 4. (50, 4.) या निवतो to उन्नतदेशे गच्छंत्यः D. या निवतो नीचैर्गच्छंत्यः। या उद्वतो या ऊर्ध्वं गच्छंत्यः B 4; left out in A. B 1. Ca.—l. 7. शिमिर्वधकर्मा। अहिंसाप्रदा॥ शिमिर्वधनकर्मा अहिंसा° A. शिमिर्बंधकर्मा अहिंसा° B 1. शमिर्वर्द्धनकर्मा असाम्रा Ca. D.

P. 110. l. 11. (51.) यच्चदादित्यान् Âsv. यच्चदादित्यानां A. B 1. Ca. D.—l. 19. (51, 1.) चादितित्वेऽदीनत्वे च B 4. वा अदितित्वेऽदीनत्वेन A. C. Ca. D. अदित्वेति अदीनत्वे B 1.

P. 113. l. 29. (55.) आद्या गायत्री etc. ॥ आद्या गायत्री द्वितीयाद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः पंचम्याद्यास्तिस्र उप°। A. C. Ca. D and B 4 pr. m. आद्या गायत्री द्वितीयाद्यास्तिस्र उपरिष्टाद्बृहत्यः पंचम्याद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः B 4 sec. m. B 1.—l. 30. तल्लक्षणयोगात्॥ श्वल° A. स्वल° Ca. स्वल° B 1. च ल° D.—l. 32. स्वप्नमाचरन् A. Ca. स्वप्रामाचरन् B 1. स्वप्नमाचरेत् D. स्वप्न आचरत् Brih. MS.—l. 33. सांत्वयित्वा ह्यसूषुपत्॥ सांतयित्वा ह्यसूषपत् A. सांतयित्वा प्रसूषयत् B 1. सांतयित्वा ह्यसुषयत् Ca. D. सांत्वयित्वा व्यसुष्वपत् Brih. MS.—P. 114. l. 1. एवं (एव Ca) प्रस्थापयामास A. B 1. Ca. D. स तं प्रस्थापयामास Brih. MS.—वारुणं A. Ca. D. Brih. MS. वृरुणं B 1.—l. 2. प्रस्वापिनित्वं A. B 1. Ca. D. °नीत्वं Anukr. M. p. 133.—l. 3. कोष्ठागारे A. D. कोष्टागोरे Ca. कोष्ठागारे B 1. कोष्ठागार° Anukr. M. p. 133.—l. 8. (55, 1.) कामयंते॥ कामयते A. B 1. Ca. D. Nir.—तत्तद्देवा विशंति C. D. तत्तद्देवा विशति A. Ca. तत्तद्देवो विशति C. Colebr. तद्दवता भवति B 1. तत्तद्देवता भवति Nir.—P. 115. l. 19. (55, 7.) सूर्यः from C. Ca. D.—l. 25. (55, 8.) प्रांकणे A. प्राकणे Ca. D. प्राक् प्रवणे C. प्रांगणे B 1. 4.

P. 117. l. 4. (56, 8.) कंपयितुर्वेगः A. Ca. D. कंपायितुां वेगः (sic) B 1 pr. m. कंपायितुं वेगः B 1 sec. m. कंपयितुः or कंपयिता?—ll. 8 seqq. (56, 9 and 10.) The commentary to this and to the next verse is omitted in A. B 1. C. Ca and C. Colebr. All the C MSS. have सनेम्यस्मदिति - - - ऋगन्वयस्त्यक्तः। The explanation printed in brackets is written by a later hand on the margin of C. Colebr. B 4 has the following spurious commentary: Verse 9. सनेमि पुराणं परंपरागतं दिवुं दीप्यमानं वर्धमानमित्यर्थः वः युष्मत्सख्यं अस्मत् अस्मत्तः मा युयोत मा पृथक् कुरुत। किंच इह युष्मत्सख्ये नः अस्मान् दुर्मतिः मा प्रणक् न प्राप्नोतु॥ Verse 10. हृ मरुतः तुराणां यजमानार्थं त्वरया आगच्छतां वः युष्माकं नाम आहुवे आह्वयामि यत येन आह्वानेन प्रियाः स्नेहयुक्ताः वावशानाः अस्माकं आह्वानं ह्रुतमिति शब्दायमानाश्च संतः तृपन् संतुष्टाः भविष्यथ तत् आह्वानमिति शेषः॥ D has the following commentary on verse 9: हे मरुतः सनेमि सनातनं दिवुं दीप्यमानं ऋष्याख्यं युष्मदीयमायुधं अस्मतः सकाशात् युयोत पृथक् कुरुत। तथा युष्मदीया दुर्मतिः निग्रहबुद्धिः नो अस्मान् इह अस्मिन् लोके मा प्रणक् मा प्राप्नोत्॥ The comm. of verse 10 in D is identical with that of B 4: only it reads तृपत् संतुष्टा भविष्यमतत् आ°.—P. 118. l. 1. (56, 13.) Sâyana reads वक्षः सुरुक्माः instead of वक्षःसु रुक्माः.—P. 119. l. 17. (56, 18.) त्वदीयं A. B. C. Ca. D.

P. 121. l. 24. (57, 2.) ये मरुत: MSS.—P. 122. l. 1. (57, 3.) रोचमानैराभरणैरायुधै: ॥ रोचमानैरायुधैराभरणै: A. B. C. Ca. D.—l. 10. (57, 4.) हि प्रमाद: ॥ चिप्रमद: A. C. Ca. D. चिप्रयाग: B 1.—l. 26. (57, 6.) प्रत्यचस्तुत: A. B 1. Ca. D. प्रत्यचछत: M 1. Cf. परोचस्तुति: Rv. Bh. VII. 21, 7; प्रत्यचस्तुति: 24, 5 etc.

P. 124. l. 14. (58, 5.) नमंतां ॥ नवंतां A. Ca. नवतां B 1. D.

P. 125. l. 23. (59, 4.) न सहते A. B. C. Ca. D.—P. 126. l. 16. (59, 7.) निषीदतु ॥ निषेदतु A. B 4. C. Ca. D. तु B 1.—l. 24. (59, 8.) स जनो A. B. C. Ca. D.—P. 127. ll. 19 seqq. (59, 12.) No commentary is given in A. B 1. Ca. Ca Colebr., which mark the omission. C explains the verse: वयं त्र्यंबकं त्रिलोचनं यजामहे। किंलचणं। सुगंधिं शोभनगंधोपेतं पुष्टिवर्धनं पुष्टे: पोषकं। हे रुद्र मा मां मृतात् मरणात् मुचीय। मां मोचय। कस्मात्किमिव बंधनात् नात् वत् उर्वारुकमिंद्रवारुकमिव बंधनं प्रत्यचस्तुति: ॥ B has the following: त्र्यंबकं त्रिलोकस्य मातृभूतं। पालकमित्यर्थ:। सुगंधिं सुष्ठु व्यापकं पुष्टिवर्धनं यजमानस्य बलं वर्धयितारं एतादृशं रुद्रं यजामहे। वयं यजमानऋत्विजो हविर्भि: पूजयामहे। किमर्थं। मृत्यो: सकाशात् मुचीय। मुंचेय। मामृतात्। अमृतात् मोचात् नैव मुचीय इत्येतदर्थं। दृष्टांत:। बंधनात् वृंतात् उर्वारुकमिव उर्वारुकफल-मिव। तद्यथा ईषत्प्रयत्नेन मुंचत इति तद्वत् ॥ The explanation given in brackets is taken literally from D. MS. E. I. H. 2612: त्र्यंबकं त्रिनेत्रं महादेवं यजामहे पूजयाम:। कीदृशं। सुगंधिं दिव्यगंधोपेतं। marg. पुष्टिवर्धनं पुत्रपश्वादिपुष्टिहेतुं। अहं तत्प्रसादान्मृत्योर्मुचीय मुक्त: स्यां। मोचने दृष्टांत:। उर्वारुकमिव। बंधनात् यथा चीर्भटं पक्कं स्वयमेव वृंतान्मुक्तं भवति तद्वत् अमृतात् मुक्तावस्थातो वा मा मुक्त: स्यां ॥

P. 128. l. 12. (60, 1.) वयं repeated after अदीनदेव in A. B. C. Ca. D.—l. 21. (60, 2.) नृचचा नृणां मनुष्याणां द्रष्टा from B.—l. 23. स्थितानि B 1. स्विन्नानि A. Ca. स्विन्नानि D.—P. 129. l. 2. (60, 3.) तदवांतरगोव्यक्तिं ॥ तदवांतरेणाव्यक्तिं A. B. तदवांतरगोव्यक्तं C. Ca. D.—l. 24. (60, 6.) सामर्थ्यैश्चितयंति from B.—क्रतुं कर्तारं ॥ छतं कर्तारं C. कर्तारं A. B 1. Ca. D, which insert क्रतुं before सुचेतसं.—P. 130. l. 2. (60, 7.) विप्पितस्य व्याप्तितस्य A. B 1. Ca. D. विप्पित: विप्राप्त: Nir. VI. 20.—Instead of पर्षन्, A. B 1 pr. m. Ca. D read परिषत्.—P. 131. l. 3. (60, 11.) तासां after स्तोता A. B. C. Ca. D.—l. 4. Sâyana explains उरु ऽचयाय instead of उरु। चयाय।.—l. 5. (60, 12.) For देव here and VII. 61, 7, as for वरुण VII. 61, 1, see Prât. 312.—l. 10. दु:खेन ॥ दु:खानि A. B. C. Ca. D.—l. 11. शिष्टो गत: A. B. C. Ca. D. See note to VII. 81, 6.

P. 131. l. 28. (61, 2.) यत्कर्म A. B. Ca. D. यत्कर्मणा? B 4 has क्रत्वा समर्थेन कर्मणा after शोभनकर्माणौ.—P. 132. l. 7. (61, 3.) ऋधग्यत ऋधक्सत्येन यतो विवेकात् ॥ ऋधक् यत् ऋधक् सत्यान् यत: विवेकान् Ca. ऋधक् यत् ऋधक् सत्यानयत: विवेकात् A. D. ऋधक् यत् ऋधक् सत्यानयत: विवेकान C. ऋधक् यत: ऋधक् सत्योनयत: विवेकात् B 1. The emendation given is simpler than it would be to read सत्यान्यतो ('different from truth').—l. 25. (61, 5.) वां from B (not B 1).—युवाभ्यां ॥ युवां A. B. C. Ca. D.—l. 26. नाभूवन्। न भवंति ॥ भूवन् भवंति A. B 1. C. Ca. D. अभूवन् भवंति B.

P. 133. l. 16. (62, 1.) B 4 gives a marginal explanation of प्रतिनियत:। नियमेन देवसादृश्यत्वेनोपादानात्।.—l. 17. क्रत्वा ॥ कर्त्वा Ca. कर्त्ता A. D. क्रत्वा B 1.—l. 23. (62, 2.) उग्रा: ॥ उदगा: A. D. उदगात् B 1. उग्रा: उदगा: Ca.—l. 24. कृष्णशवास्सु° A. कृष्णशातास्सु° Ca. कृष्णशतास्सु° C. D. कृशवाग्न्युत्तरतो B 1.

P. 137. l. 20. (64, 4.) तं seems to have been dropped before जनं.—l. 28. (64, 5.) रथतं from D.

P. 138. l. 11. (65, 2.) पुत्रादिरूपाः ॥ °रूपा A. B 1. Ca. D. M 1.—l. 29. (65, 4.) वां युवां प्रति repeated after लोके in A. B 1. C. Ca. D; not in B 4.

P. 139. l. 9. (66.) आवंर्त्या ॥ आवंर्ती A. B. C. Ca. D.—l. 26. (66, 3.) गृहाः ॥ ग्रहाः A. B. C. Ca. D: cf. Rv. Bh. VII. 19, 11; X. 69, 4.—P. 140. l. 9. (66, 6.) रचक added in A. C. Ca. D after अहिंसितस्य.—l. 11. ये Ca. ते A. B 1. D. M 1.—l. 22. (66, 8.) हे विप्राः प्राज्ञाः MSS.—P. 141. l. 29. (66, 13.) प्रजापतेः B 4. D. प्रजातेः A. C. प्रजातेः व Ca. प्रजातेः प B 1.—P. 142. l. 15. (66, 15.) सूर्यं वहंति ॥ अयं वहंति A. B 1. Ca. D. अयं वहति C. अश्वो वहति B 4.—l. 17. सुविताय कल्याणाय B 4. सुविताय प्रकाशाय B 1 marg.; deest in A. B 1. C. Ca. D.—l. 23. (66, 16.) हविःस्वीकारस्यैतदधीनत्वात् B 1 pr. m. °स्य तदीयाधीनत्वात् B 1 sec. m. °स्यैतदीयाधीनत्वात् D. हविःस्वीकारास्येतदीर्याधीनत्वात् Ca. हविस्वीकारस्यैतदीयाधीनत्वात् A; quite corrupt in C; not in B 4.—P. 143. l. 4. (66, 18.) द्युलोकसं° C. Ca. D. द्युसं° A. B.

P. 143. l. 20. (67, 1.) केन साधनेनेति Ca Colebr. sec. m. and D. केनेति B 1. B 4. All the other MSS. mark a lacuna after शेषः. ---केनेति A. ---वनेति Ca.—P. 144. l. 10. (67, 4.) युवाभ्यां MSS. युवयोः ?—l. 12. अतो वां ॥ अतीवा A. अतीवाव C. Ca. अति वा B 1. D; not in B 4.—l. 29. (67, 6.) लब्धे A sec. m. B. D. लब्धे C. Ca; illegible in A pr. m.; perhaps लभ्ये.—P. 145. l. 6. (67, 7.) सख्ये ॥ सख्येव A. B 1. Ca. D.—l. 15. (67, 8.) गंगायाः B 1. 4. गंगायाकाः A. C. Ca. D: cf. Pâ*n*. VII. 4, 15.—तद्रथानुकूलाः ॥ वृद्रथाकुलाः B 4. तद्रथान् कुला A. Ca. D; left out in C. तद्रथाश्वाः B 1. M 1.

P. 146. l. 10. (68, 1.) उपचपयितारौ Ca. D. चपयितारौ A. B 1. M 1.—l. 21. (68, 2.) तच्छ्रुतं ॥ तं श्रुतं A. B 1. Ca. D.—P. 147. l. 9. (68, 5.) ऋबीसं ॥ ऋवीस A. D. ऋ - स Ca. ऋप्वा वासं B 1. ऋषि (आ वा) सं B 4.—l. 11. धारयति B 1. धारयत A. C. Ca. D. धारयेत् B 4.—l. 17. (68, 6.) तस्य रूपस्य प्रत्याप्यै ॥ नतस्य रूपस्य प्रत्याप्य A. Ca. D. तस्य रूपस्य प्रत्याप्ण C. नतस्य रूपस्य प्रत्यास्ये B 4 pr. m. तस्य रूपस्य प्रत्ययं B 4 sec. m. तस्य रूपस्य प्रत्यायं B 1. Perhaps नवस्य रूपस्य प्रत्याप्यं. Cf. Rv. Bh. IV. 5, 14.—P. 148. l. 1. (68, 8.) धनादात्रे ॥ धनदात्रे A. B 1. 4. C. Ca. D.—l. 4. नदीं तां ॥ नदीनां A. B 1. 4. D. नदीतां C. Ca.

P. 149. l. 13. (69, 4.) श्रयत A. श्रियत B 1. Ca. D.—l. 14. पर्यवृणीत ॥ परिवृणीत A. B 1. Ca. D.—l. 29. (69, 6.) C 2 has a lacuna from this verse to the beginning of the sixth Adhyâya.—l. 31. हवंते ॥ जरंते A. Ca. D. जयंते B 1.—मा नियच्छंतु ॥ मा नियंतु A. Ca. मा नियतु B 4. नानयंतु B 1. मातियंतु D.—P. 150. l. 5. (69, 7.) विचित्रं A. B 1. 4. Ca. D. निचित्रं ?

P. 150. l. 21. (70, 1.) यवं यागमा ॥ यवागमा A. Ca. D. M 1. यवदा आ B 1.—l. 23. अश्वो ऽस्यात् B 1. अत्यो न अश्वोऽस्यात् Ca. अल्पो न अश्वोऽस्यात् A. अश्वो न अश्वः अस्यात् B 4. D.—l. 24. तत्स्थानमश्व ॥ °नमत्य A. Ca. D. °नमत्यथ B 1.—l. 25. योनिं स्थानमिव A. Ca. B 4. D. योनि स्थानमिव B 1.—l. 30. (70, 2.) वा वां ॥ वा Ca. D. युवा A. ववां B 1.—l. 31. प्रवर्गश्च A. Ca. D. प्रकार्यश्च B 1. Cf. Rv. Bh. I. 164, 26; VII. 103, 8; VIII. 9, 4.—यद्घ्राँ etc. TÂ. यद्घर्म इत्यतपत् etc. A. Ca. यद्घर्म इत्यतपत्तद्घर्मस्यमितिः D. यद्घ्रां इत्यतपतद्वर्णस्यमिति श्रुतिः B 1. Cf. Rv. Bh. I. 164, 26; V. 43, 7.—P. 151. l. 9. (70, 3.) नि seems to have

been dropped before सदंता.—l. 15. (70, 4.) देवा देवौ MSS.—चनिष्टं etc. Sâya*n*a explains चनिष्टं either as a verbal form or as a superlative.—l. 25. (70, 5.) जनाय from B 4, which has not जनस्य.—l. 26. भवतु B 4. भवति A. B 1. Ca. D.

P. 152. l. 10. (71.) एकोनविंशति ॥ एकविंशति A. B 1. Ca. D.—P. 153. l. 9. (71, 4.) यो by conjecture.—l. 11. यद्रथो Ca. D. तद्रथो A. B 1. यद्यस्य रथो etc. B 4.—l. 12. अथवाह B 1. अथ आह A. B 4. Ca. D. It may be अन्य आह; cf. Rv. Bh. VI. 42, 2.—वां ॥ वा A. B. Ca. D.—l. 18. (71, 5.) निरूहथु: A. B. Ca. D.—l. 19. अंहस: पापात् D.—l. 20. निष्पर्तं A. Ca. D. निष्पर्थं B 1.—न्यपारयतं ॥ निपारयंतं A. निपारयतं B. Ca. D.

P. 154. l. 3. (72, 1.) गोप्रदेन ॥ गोप्रदेशेन । A. B. Ca. D. गोप्रदेशनेन ?—l. 12. (72, 2.) बंधुत्वातिशयं ॥ बंधुत्वातिशायं B 1. बंध्वीतिशयं A. Ca. बंध्वातिशयं D; not in B 4—l. 15. कश्यपाद° B 1. कश्यपाव° A. Ca. D. —The passage from the B*r*ihaddevatâ is quoted by Kuhn in the Zeitschrift für vergl. Sprachforschung I. 442 from a Berlin MS. of the same. Various readings from A 2 are published by Prof. Roth amongst the errata of the same volume. The readings marked M. M. are from a MS. lately (1862) received from India. It generally agrees with the Berlin MS., and the readings of these two MSS. are mostly preferable to those of the MSS. of Sâya*n*a. According to the principles, however, which I have tried to follow throughout this edition of Sâya*n*a, I was not at liberty to receive them in the text, because the MSS. clearly show that Sâya*n*a was either not acquainted or not satisfied with these readings, and that he gave his extracts from the B*r*ihaddevatâ either from other MSS. or from memory.—l. 16. सरण्यूं Kuhn, M. M. सरण्युं A. Ca. B. D.—l. 17. सरण्य्वां B 1. सरण्यां A. Ca. D. Roth found सरण्य्वा. सरण्योर्जं° M. M.—जाते ते A. B 1. जातते Ca. D. जज्ञाते Kuhn, M. M.—यम्या च वै यम: Ca. D. यम्या च तै यम: A. रस्या व तै B 1. The B*r*ihad. has तौ चाप्युभौ यमावेव ज्यायांस्ताभ्यां तु वै यम: ॥ M. M.—l. 18. सरण्यू: Kuhn, M. M. सरण्यु: A. B. शरण्यु Ca. D.—प्रचक्रमे A. B. Ca. D. ऽपचक्रमे Kuhn. त्वोपचक्रमे M. M.—अविज्ञानात् Kuhn, M. M. अविज्ञातात् A. अविज्ञाता B 1. अविजातात् Ca. D.—l. 19. राजर्षिरभवत्सोऽपि M. M.—अपक्रांतां A. B. Ca. D. त्वपक्रांतां Kuhn, M. M.—सरण्यूं A. B. B*r*ih. °ण्युं Ca. D.—आत्मरूपिणीं A. B. Ca. D. अश्वरूपिणीं Kuhn, M. M.—l. 20. सरण्यूस्तु A. °ण्यूस्तु B 1. °ण्युस्तु Ca. D. सरण्यूस्तं Kuhn. सरण्यूश्च M. M.—विज्ञाय Ca. D. जिज्ञाय A. B. विदित्वा M. M.—हयरूपिणं M. M. भयरूपिणं A. B. भसरूपिणं Ca. D. हररूपिणं Kuhn.—l. 21. तच्छुक्रं Kuhn, M. M. तं शुक्रं A. Ca. B. D.—गर्भकाम्यया Kuhn, M. M. गतकाम्यया A. Ca. B. D.—आघ्रातमात्राच्छुक्रात्तु Kuhn, M. M. (only शुक्र° throughout).—l. 22. अश्विनाविति Kuhn, M. M.— l. 24. (72, 3.) धिष्ण्येमे all Sa*m*hitâ MSS., Prât. 174.—l. 28. Sâya*n*a read अश्विना for अश्विनो:. The Pada MS. P 1 had indeed अश्विना pr. m.—l. 29. परिवृढानि ॥ कर्मपरिवृढानि A. Ca. B 1. D; left out in B 4.—P. 155. l. 13. (72, 5.) दक्षिणत B. दक्षिण A. Ca. D.

P. 155. l. 30. (73, 2.) मनुष: सकाशात् D. मनुषसकाशात् A. Ca; deest in B.—P. 156. l. 19. (73, 4.) सोमा: ॥ सोमा A. Ca. सोमान् D.—समगच्छंत ॥ समगच्छतं A. गच्छतं च Ca. संगच्छंतं च D. गच्छतं B 4. From तस्यार्थ: to °तं आगच्छतं left out in B 1.

P. 157. l. 11. (74, 2.) A. Ca. D have दधतु: for ददथु:.

P. 158. l. 14. (75.) **अष्टावु॰** A. B1. Ca. **अष्टा उ॰** D. Anukr. M.—l. 18. **हिरण्यानि** A. Ca. B1. D. **हिरण्यादि** Rvdh.—**गा अश्वान्** Rvdh. **गावोऽश्वान्** A. Ca. B1. D.—**धान्यं** Rvdh. **धन्याम्** A. Ca. D. **धान्यान्** B1.—l. 26. (75, 1.) It would be better to read **इति तिलोपः**.—P. 159. l. 3. (75, 2.) **मर्त्तेषु** Ca. **मर्त्येषु** A. B1. D. M1.—l. 12. (75, 3.) **सरंति** A. B. **प्रसरंति** Ca. D.—l. 17. (75, 4.) **॰मांश्चतुरो वर्णान्** ॥ **॰माश्चतुरो वर्णाः** A. Ca. B1. **॰माश्चत्वारो वर्णाः ताम्** B4. D.—l. 18. **परि जिगाति परिगच्छति** D.—l. 25. (75, 5.) **अत्रैको योग॰** ॥ **अत्रैयो योग॰** A. **अत्रैको याग॰** Ca. D. **अत्र योग॰** B1.—l. 26. **॰रम्याख्य॰** ॥ **॰रमाख्य॰** A. Ca. B1. D. **रमाख्य॰** without **विचित्र॰** B4.

P. 160. l. 31. (76, 1.) **यागानुष्ठानार्थमि॰** A. B1. **यागानुष्ठानमि॰** Ca. D.—P. 161. l. 18. (76, 3.) Sâyana took **जार** for the locative.—l. 19. **अत्यज्यैव** ॥ **अत्यजैव** A. **च्यत्यज्यैव** B1; the whole passage is left out in B4. Ca. D.—l. 20. **यती पतिं परित्यज्य॰** etc. ॥ **यती पतिपरित्यजेत ततः संचरंतीत्यभिचारिणीव** etc. A. **यती पतिं परित्यजेत् ततः सचरंतीत्यभिचरणीव** (**॰चारिणीव** D) etc. Ca. D. **यथा व्यभिचारिणी पतिं न त्यजति तद्वत् सूर्यं अपरित्यजंती त्वं** B4. **यती पति परित्यजेत नः संचरंति व्यभिचरीणीव सूर्यमपरित्यजती त्वं** B1.—P. 162. l. 11. (76, 6.) **स्तोमैः** B1. **स्तोमेभिः** A. Ca. D. M1.

P. 162. l. 29. (77, 1.) **वा** after **बाधमानं** A. Ca. B1. D.—P. 163. l. 23. (77, 4.) **व्युच्छ** A. B1. Ca. D.—l. 24. **वसूनि** to **आहर** from B4.—P. 164. l. 2. (77, 5.) **रथवद्रश्मियुक्तं** from B4. D.

P. 164. l. 16. (78, 1.) **अस्मभ्यं** repeated after **धनं** in A. Ca. B1. D.

P. 166. l. 9. (79, 3.) Ca. D, and probably A pr. m. have **प्रयांसि** for **श्रवांसि**.—l. 11. **रात्र्यवसानस्य** ॥ **रात्रिवसानस्य** A. Ca. D. **रात्रिवसनास्य** B1.—l. 27. (79, 5.) **धनलाभाय** A. B1; deest in Ca. D.

P. 167. l. 12. (80, 2.) A. Ca. D read **अदृश्यमाना**.

C2 begins again from the sixth Adhyâya, but as it does not differ from Ca, it is only occasionally mentioned.

P. 168. l. 7. (81, 1.) **व्युच्छंती** A. B1. Ca. The same in verse 4.—P. 169. l. 18. (81, 6.) **शिष्टः** etc. In all cases, where the masculine is used, **पादः** has to be supplied. Cf. Rv. Bh. VII. 60, 12. 82, 2. 85, 1.—l. 19. A omits all from **प्रिय॰** to the end.

P. 170. l. 8. (82, 2.) **वां युवां** A. B. Ca. It should be **युवाभ्यां**, as immediately afterwards.—l. 9. **शरीरदार्ढ्याय** etc. A. Ca. B1. **ओजः शरीरदार्ढ्यहेतुभूतं संदधुः** B.—**ओजः साष्टमी दृशेति** B1. **ओजो नाष्टमी दृशेति** A. **ओजो नाष्टमी ॥ दृशेति** Ca.—P. 171. l. 2. (82, 5.) **जातिमंति** ॥ **जतिमंति** A. **जनिमंति** B1. **संति** Ca.

P. 172. l. 15. (83.) **ऐंद्रावरुणं** ॥ **मैत्रावरुणं** A. B1. Ca.—l. 24. (83, 1.) Read **अर्च्छंति । तै॰ ब्रा॰ ३.२.२.१. । इति** ॥ **आर्च्छंति** Ca. **अर्च्छंति** A. **अर्छंति** B1.—P. 173. l. 1. (83, 2.) **वीराश्च** B. **वीताश्च** A. Ca. M1.—l. 16. and p. 174. l. 3. (83, 4 and 6.) **अरचतं** ॥ **रचतं** A. B1. Ca.—P. 175. l. 3. (83, 10.) **धनं** from B1. 4.

P. 176. l. 24. (85, 1.) **चोदितश्च** B1 and margin of B4. **वोदस्य** A. Ca.—P. 177. l. 12. (85, 3.) **असांकर्येण** A (cf. Wilson, s.v. **सांकर्य**). **असांकार्येण** Ca. **आसांकार्येण** B. **असाकर्येण** B1.

P. 179. l. 8. (86, 5.) **च** after **विशेषय** A. Ca. B; not in C.—l. 9. **घासादिभिः** Ca. B1.

वासादिभिः A. यवसादिभिः B4.—l. 15. (86, 6.) स्वभूतं तद्रूपं A. B1. स्वरूपवद्रूपं Ca; not in B4.—l. 16. प्रमाद° B. प्रमोद° A. Ca.—l. 20. ह्येव A. B1. Ca. उ एव Kaush.

P. 183. l. 10. (88, 3.) अभूव A. Ca. भवाव B4. अभूतां B1. बभूविव M1.—l. 12. दोलायां A. डोलायां B1. Ca, and probably A pr. m. Cf. Rv. Bh. X. 143, 5.—l. 20. (88, 4.) Sâyaṇa read स्वपामघोभिः instead of स्वपा महोभिः.—l. 29. (88, 5.) सख्यं B1. सत्यं A. Ca.—P. 184. l. 4. (88, 6.) सखा Ca, ससखा A, after सखा.

P. 184. l. 32. (89, 3.) प्रतिकूलमननुष्ठानं Ca. प्रतिकूजितं अनुष्ठानं A. अननुष्ठानं B4. प्रतिकूलं अनुष्ठानं B1.

P. 186. l. 4. (90, 2.) Sâyaṇa seems to take वाज्यस्य as one word.—P. 187. l. 1. (90, 5.) स्वकीयत्वे विहितेन A. स्वकीयस्य विदितेन Ca. स्वकीयेन विदितेन B4. स्वकीयेनैव B1.—l. 19. (90, 7.) Sâyaṇa explains सुऽअर्वसे instead of सु । अर्वसे ।.

P. 190. l. 3. (92, 1.) उप समीपे from B4.—l. 28. (92, 3.) A. B1. Ca have रायो for राधो. Cf. Rv. Bh. I. 48, 2.—P. 191. l. 3. (92, 4.) सूरयः स्तोतारः A. B. Ca.

P. 192. l. 2. (93, 2.) युवं युवां A. B1. Ca.—l. 4. संयोजयतं B1. स्वयोजयतं A. Ca. योजयतं B.—l. 12. (93, 3.) °भूमिं व्याप्नुवंति B4. °भूम्यां वाप्नुवंति A. °भूम्यां चाप्नुवंति Ca. B1.—l. 20. (93, 4.) From वृद्धिमि° to भिर्वाजैः in verse 6 left out here in Ca, but inserted afterwards at the beginning of Sûkta 94 with the remark after it पूर्वार्धं लिख्यते.—l. 28. (93, 5.) A. C. Ca omit all from तनूरुचा to हतं. B4 has स्पर्धी कुर्वत्यौ शूरसाता शूरसातौ रणे यतेते यत्नं कुर्वत्यौ वैरिसेने तनूरुचा आत्मीयेन तेजसा सं यत् ये सचा हतं सततं हिंस्तं तथा सोमसुता सोमममभिषुण्वता जनेन यतमानसंघेन देवयुभिः देवान् कामयमानैः सह विदथे यज्ञे अदेवयुं असोमसुतं जनं सं हिंस्तं ॥ B1 has तनूरुचा ॥ श्रौत्विक हतं.—P. 193. l. 5. (93, 6.) उपा ॥ उप A. B1. Ca. M1.—l. 21. (93, 8.) मा before परि ख्यन् by conjecture.

P. 194. l. 6. (94, 3.) पापत्वाय पापवत्त्वाय Ca.—P. 195. l. 4. (94, 8.) यच्छतं Ca. प्रयच्छतं A. B1. M1.

P. 197. l. 14. (95, 5.) पविवेष्यां B1. परिवेष्यां A. C. Ca.—l. 20. त्वद्विष° B4. तृपद्द्विष° A. Ca. B1.—l. 28. (95, 6.) यंतुः ॥ यंतु A. Ca; deest in B1. 4.

P. 197. l. 31. (96.) द्वितीया सतोबृहती left out in A. Ca. B1. द्वितीया प्रस्तारपंक्तिः तृतीया सतोबृहती B4.—l. 32. सरस्वद्देवताकः ॥ सरस्वान्देवताकः A. Ca. B.—P. 198. l. 8. (96, 1.) असुराश° ॥ असुरश° A. B1. Ca.—P. 199. l. 7. (96, 6.) सरस्वतो A. B1. Ca. सारस्वत° M1.

P. 200. ll. 28 and 30. (97, 6.) नीलवत् S1. S2. S3 sec. m. S4. P1. P3. P5. नीळवत् S3 pr. m. P4. M1. Cf. Rv. VIII. 19, 31. The MSS. of Sâyaṇa read नोलवत् and नीलं.

P. 202. l. 28. (98, 3.) पप्राथ P3. P4. P5. पप्रथ P1.—P. 203. l. 1. अदित्यिंद्रमहत्त्वस्यो° ॥ अदित्य इंद्रमादित्यस्यो° A. Ca. B4. आदित्य इंद्रमादित्यस्योक्तवान् B1.—पप्राथ ॥ पपाथ B1. पप्रथ A. Ca. M1.—l. 9. (98, 4.) अभियुध्येय ॥ अभियुध्यस्व A. B. Ca.—l. 16. (98, 5.) यदेवदेव ॥ यदेतत् यदेव A. यदेतत् तदेव B1. यदेतत् सदेव Ca.—l. 23. (98, 6.) Sâyaṇa seems to have read तवेदिदं.

P. 204. l. 15. (99, 1.) नान्यत् B1. 4. Ca sec. m. मान्यत् A. Ca pr. m.—P. 205. l. 7. (99, 3.) वामधोमुखत्वेन from Ca marg.—l. 8. पर्वतैः B4. Ca marg. कीलसदृशैः पर्वतैः marg.

of C Colebrooke; deest in Ca. B1. A.—l. 25. (99, 5.) **सद्य एव** B1. **संपद्य स एव** A. **संद्यस एव** (perhaps for **संघश्च एव**) Ca.—P. 206. l. 3. (99, 6.) **वृजनेषु ग्रा युत्सु** B4.

P. 208. l. 7. (100, 6.) **विष्णो प्रख्यातं** A. B1. **विष्णोः प्र॰** Ca. **विष्णोऽप्र॰** M1. Nir. Roth and SS.—l. 14. **यद्वा** seems to have been dropped before **तन्नाम**.—l. 16. **यस्मादन्यरूपो ॥ यस्मात्तु अन्यत्** A. Ca. **यस्मात् अन्यतु** B1.—l. 20. **गूढरूपोऽपि ॥ गूढरूपाणि** A. **गूढरूपायि** Ca. **गूढरूपोऽसि** B1.

P. 209. l. 6. (101.) **तिस्रआदिभ्यामुपतिष्ठित भास्करं** A. **तिस्रमुपतिष्ठेत भास्कर एताभ्यां** Ca. **तिस्र दीदित्यमुपतिष्ठेत भास्करं** B1. **तिस्र एताभ्यामुपतिष्ठेद्दिवाकरं** Rvdh.—l. 17. (101, 1.) **प्रवदेतेति** Ca. **प्रवदतेति** A. B1. M1.—l. 30. (101, 2.) **वसंता** B1. TS. **वसंते** A. Ca. M1.

P. 211. l. 19. (103.) **पर्जन्यस्तुतिः सं॰** A. Ca. **पर्जन्यः स्तुतिसं॰** B1. **पर्जन्यस्तुतिसं॰** Anukr. M.—P. 213. l. 16. **सर्वतो वदंतो ॥ सर्वतः थावदंतः** A. **सर्वतः यावदंतः** B1. Ca.—**तद्दिनं ॥ पदिनं** Ca. **पहूतं** A. **यहूतं** B1.—l. 17. (103, 7.) **सर्वतो ॥ तो** A. Ca; deest in B1.—l. 24. (103, 8.) **प्रवर्गेण** A. B1. Ca.

P. 214. l. 19. (104.) **पंचैंद्रो** B1. Anukr. **पंचैंद्रो वा** A. **चतस्र ऐंद्रो वा** Ca.—l. 20. **॰देवत** A. B1. Ca. **॰दैवत** Anukr.—l. 21. **रचोघ्नं** A. B1. Ca. **राचोघ्नं** Bṛih. MS.—P. 215. l. 31. (104, 5.) **अश्मसारभूतस्य** B1. **अश्मसाभूतस्य** A. Ca. **अश्मसाद्भूतस्य**?—P. 216. l. 9. (104, 6.) **कच्चबंधनी** A. **कचं बंधनी** Ca. M1. **कच्यबंधनी** B1.—l. 11. **यथा** before **धनैः** by conjecture. **नृपतीव** is not explained in A. Ca. B. The omission took place probably after **स्तोत्राणि**, and Sâyaṇa's explanation might have been **स्तोत्राणि नृपतीव राजानाविव तौ यथा धनैः पूरयतः तथा** etc. B4 has at the end **दृष्टांतः नृपतीव राजानौ इव तौ यथा पूरयतः तद्वत् ॥**—l. 17. (104, 7.) **द्रोग्धून्** B1. B4. Ca and A pr. m. **द्वेष्टून्** A sec. m.—P. 217. l. 2. (104, 9.) **परिवदंति** B1. B4. Ca. **परिभवंति** A.—l. 25. (104, 12.) **इदमादिभिः** B1. **इदमाभिः** A. Ca.—l. 26. **वासिष्ठं ॥ वसिष्ठं** A. B1. Ca.—l. 27. **दृष्टा वसिष्ठेनेति नः श्रुतं ॥ दृष्टा वसिष्ठो नेति श्रुतं** Ca. **दृष्ट्वा वसिष्ठो नेति न श्रुतं** A. B1.—l. 29. **सत्यभाषणं ॥ असत्यभाषिणं** A. B1. Ca.—P. 218. l. 3. (104, 13.) **इति न मुंचति** B1. B4. Ca. **इति - - - ते** A.—l. 14. (104, 14.) **जायतां** B1. **जायतु** A. Ca. M1.—P. 219. l. 20. (104, 19.) **तीक्ष्णीभूतं** A. B1. Ca. **तीक्ष्णीकृतं** M1.—l. 27. (104, 20.) **परिकरभूतैः** A. **परिगभूतैः** B1. **परिगता भूतैः** Ca. See verse 22.—P. 220. l. 18. (104, 22.) **शुशुलूकः** by conjecture.—l. 27. (104, 23.) **स्त्रीपुंरू॰ ॥ स्त्रीपुंसरू॰** A. B1. B4. **स्त्रीपुंसोरू॰** Ca.—l. 28. **विनाशयतु** A. B1. **विवासयतु** Ca.—P. 221. l. 6. (104, 25.) **स्वो अरणः ॥ स्वोऽग्निं नरः** A. B1. Ca. M1.

MAṆḌALA VIII.

P. 222. l. 4. (1.) **प्रायोगिश्च** A. **लायो॰** B1. **प्रायो॰** Ca.—l. 8. **प्रयोग॰** B1. **प्रयोग॰** A. **प्रायोगि॰** Ca.—l. 12. **ऋषिका** A. **ऋषीका** Ca. M1. **ऋषीःका** B1.—l. 14. **एकोनत्रिंशत् ॥ एकोनत्रिंशो** Ca. B1. **एकोनविंशो** A.—l. 33. (1, 2.) **वृषमिव** A. B1. **वृषभमिव** Ca. M1.—P. 223. l. 23. (1, 5.) **त्वां ॥ त्वा त्वां** A. B1. Ca. M1.—P. 225. l. 19. (1, 12.) **इष्कर्ता** Pada MSS. and Sâyaṇa. Cf. Rv. VIII. 20, 26, and Prât. 465, 65.—l. 20. **अभिश्लेषणात्** B1. B4 sec. m. **अभिश्लेषणाः** B4 pr. m. **अभिश्लेषणा** A. Ca.—**॰द्रव्यात्** B1. **॰द्रव्यान्** A. B4. Ca.—P. 226. l. 29. (1, 17.) **अदाभ्यग्रहे हिमादासुत ॥ अदाभ्यहे हिमांदासुत** A. **अदाभ्यये हिमांदासुत** Ca. **अदाक्यग्रहे हिमांदासुत** B1. See Kâty. Sraut. XII. 5, 13 seqq.; Rv. Bh.

VIII. 2, 2; IX. 72, 8; 107, 5.—P. 227. l. 23. (1, 20.) आस्रावणेन B 4. आश्रावणेन A. Ca. आश्रवणेन B 1.—P. 228. l. 3. (1, 21.) ददाति हि ष्म from Ca.—l. 27. (1, 24.) °भूतयोऽन्ये ॥ °भूतयोने A. Ca. °भूतयो नो B 1; cf. the following verse.—P. 229. l. 15. (1, 26.) स इंद्रं° ॥ स ह्येंद्र° A. Ca; deest in B.—l. 27. (1, 27.) न वियुक्तो ॥ वियुक्तो A. B 1. विनियुक्तो Ca.—P. 230. l. 16. (1, 29.) प्राप्ते ॥ प्रपिते A. Ca; deest in B.—l. 22. (1, 30.) मेध्यातिथये ॥ मेधातिथये A. B. Ca.—l. 26. लच्यते ॥ वच्यते A. B 1. चच्यते Ca. चच्यते M 1.—P. 231. l. 2. (1, 31.) आरोहयं B 4. आरोहयंत A. Ca; deest in B 1.

P. 232. l. 3. (2.) च after आंगिरसस्य by conjecture.—l. 4. विभिंदो ॥ विभिंद् A. B 1. Ca. M 1.—l. 21. (2, 2.) भवतीति ॥ भवतीषु A. Ca. भवतिषु B 1. Some omission has taken place, which can be supplied from Sâya*n*a's commentary on the same verse in Sv. II. 1, 2, 8, 2: परिपूतः शोधितः दशापवित्रस्य नाभिपूततया ऊर्णास्तुकया हि सोमः परिपूयते। तदुक्तं भगवता आपस्तंबेन शुक्लामूर्णास्तुकां यजमानाय प्रयच्छति तां शकटे दशापवित्रस्य नाभिं कुरुते शुक्लं वत्सच्याः पवित्रममोतं भवतीति नदीषु etc. Cf. Rv. Bh. IX. 107, 5.—P. 233. l. 11. (2, 5.) नत्रा च ॥ नत्रा व A. Ca. नज्ञा च B 1.—l. 23. (2, 6.) इंद्रं ॥ यमिंद्रं A. B. Ca.—P. 234. l. 1. (2, 8.) सोमैः ॥ सोमाः A. B 1. Ca.—l. 24. (2, 12.) अपि च यमाः छंदांसि A. Ca. अपि च छंदांसि B 1. अपि च नयाः। छंदांसि M 1.—l. 32. (2, 13.) तव B. अत एव A. Ca. B 1.—P. 235. l. 1. दृढयति A sec. m. दढयति B 1. द्रढयति Ca and perhaps A pr. m.—l. 3. निहीयते ॥ निहीते A. B 1. नहीते Ca.—P. 236. l. 15. (2, 20.) दुःसहहननं A. दुःसहनं B 1. M 1. दुःसहहनं Ca. Cf. Rv. Bh. VIII. 18, 14.—P. 237. l. 9. (2, 25.) अहीनांतर्गते A. आ° B 1. अहानां अंतर्गते Ca.—l. 10. छंदोगप्रत्ययं स्तोमस्तो° B 1. छंदोगं प्रत्ययं स्तोमस्तो° Ca. छंदोगत्ययं स्तोमे स्तो° A.—l. 24. (2, 27.) The commentary to this verse is left out in A. C. Ca. B 1 says अस्यार्थः त्रुटितः. B 4 has the following: ब्रह्मयुजा अन्नवंतौ शग्मा सुखप्रदौ हरी एतादृशौ अश्वौ युवां इह अस्मयज्ञे इंद्रं आ वहतः आवहतं कीदृशं इंद्रं अस्मत्सखायं गीर्भिः अस्मत्कृतैः स्तोत्रैः श्रुतं प्रख्यातं गिर्वणसं गिरां संभक्तारं ॥ The commentary given in brackets is taken from Sâya*n*a's commentary to the same verse in Sv. II. 8, 2, 1, 2.—P. 239. l. 15. (2, 36.) सत्यः साधुः A. B 1. सत्सु साधुः Ca. Cf. Rv. Bh. VIII. 16, 8.—l. 20. (2, 37.) अनुकूलो ॥ अनुकूलवेद्यो Ca. A. B 1 reads प्रियाः अनुकूला मेधा यज्ञा येषां.—प्रियमेधा A. B. Ca instead of प्रियमेधो?—P. 240. l. 10. (2, 40.) काण्वायनिं B 1. काण्वायनि A. कण्वायनि Ca. काण्वायनं Sha*d*vi*m*sa-brâhma*n*a.—भूत्वाजहार ibid. and B 1 sec. m. भूत्वोदजहार B 1 pr. m. A. Ca. भूत्वोदाजहार M 1. See Rv. Bh. I. 51, 1.

P. 241. l. 5. (3, 1.) संहितैः ॥ सहितैः A. B 1. Ca.—P. 242. l. 13. (3, 6.) अप्रथयत् deest in A. B 1.—P. 244. l. 2. (3, 11.) विकल्पनात् ॥ विकर्तनात् A. Ca. विकर्त्तनात् B 1.—l. 28. (3, 13.) इंद्रस्य लिंगं deest in B 1.—l. 30. नुट् ॥ नट् A. B 1. Ca. M 1.—P. 247. l. 21. (3, 22.) तस्याः by conjecture. तां B 4; deest in A. B 1. Ca.—P. 248. l. 6. (3, 24.) बलस्य दातारं A. B 1. Ca.

P. 249. l. 10. (4, 3.) संपूर्णं ॥ संपूर्णत्वं A. Ca and B 4 pr. m. संपूर्णं च B 4 sec. m. B 1.—l. 12. एकयत्नेन ॥ एकयत्तेन A. Ca. एकत्र B 4. एकयत्नेनैव B 1.—l. 18. (4, 4.) क्लेदनाः from Ca. B. A has a lacuna.—P. 250. l. 5. (4, 6.) परस्मैपदं is supplied from C 2. The interpretation of यवीयुधा is left out in A. Ca. B 1. यवीयुधा वज्रायुधेन युद्ध्यमानेन B 4.—l. 26. (4, 8.) °प्रवचनीयत्वं ॥ °प्रवचनीयं A. Ca. B.—l. 34. अधवी धेट् पा पान धेट

इक्षीत्योगोदिको गुप्रत्ययः तत्संनियोगेन इकारांतादेशस्य पानव्याः सोमा इत्यर्थः Ca after इत्यर्थः.—P. 252. l. 13. (4, 13.) बझ्लमिति सप्तम्या अलुक् ॥ बझ लुक् A. बझर्लुक् Ca. मिति अलुक् B 1.—l. 24. (4, 14.) गर्तो वा ॥ गंतोर्वा A. Ca. गंतो वा B 1.—l. 27. अध्वरं सेवमानाः B 1. A. अध्वरे सचमानाः Ca. अध्वरे शोभमानाः B 4.- P. 253. l. 14. (4, 16.) तत् कस्य हेतोः B 1. 4. तत्कस्य हेतो A. Ca.—P. 254. l. 15. (4, 20.) शुद्वानां ॥ शुद्वां भो A. शुद्वां वां भो Ca. शुद्वां B 1. 4.—l. 17. तत्प्रतिगृहीतं A. तैः प्रतिगृहीतं B 1. Ca. प्रतिगृहीतानि ?

P. 255. l. 20. (5, 2.) नृवतीं B 1. नेतृमतीं A. Ca.—P. 256. l. 23. (5, 6.) अपायः ॥ अपायां A. Ca. B 1. Some words seem to have been left out.—l. 29. (5, 7.) कीदृशैः ॥ ईदृशैः A. B 1. 4. Ca.—P. 257. l. 16. (5, 10.) वा after इति by conjecture.—P. 259. l. 26. (5, 22.) यद्यदा deest in A. B. Ca.—l. 30. (5, 23.) साधू ॥ साधु A. B 1. Ca. M 1.—P. 260. l. 1. बभूवतुरिति B 1. Nir.; deest in A. Ca. M 1.—P. 261. l. 29. (5, 33.) जनं deest in A. B. Ca.—P. 262. l. 2. (5, 34.) अस्मिन् B. यस्मिन् A. Ca.—l. 9. (5, 35.) प्रथमांतमेव नामंत्रितं ॥ प्रथमांतरमेव सामंत्रितं Ca. प्रथमांतरमेवमामंत्रितं A. B 1. 4.

P. 263. l. 16. (6.) पारशव्यस्य A. पारमव्यस्य B 1. पारशव्य° Ca. See Anukr. M. p. 28.—l. 21. अतिरिक्तोक्थ्य ॥ °क्तोक्थ MSS. both here and Rv. Bh. VIII. 8, 1 and VIII. 9, 1. But see Âsv. IX. 11, 13; Rv. Bh. IV. 57, 1–3; V. 76 etc.—l. 22. अश्विना Âsv. अश्विनोः A. B 1. Ca. M 1. See Rv. Bh. VIII. 9.—P. 266. l. 24. (6, 19.) एनां ॥ एनं A. Ca; lacuna in B 1.—P. 267. l. 19. (6, 23.) उत प्रजां सुवीर्यं is not explained in A. B. Ca. उतापि च प्रजां सुवीर्यं सुपुत्रवीरं चाद्रियस्व B 4. -P. 269. l. 6. (6, 32.) सेवस्व from B 1.—l. 12. (6, 33.) वज्री हस्तः । तद्वान् ॥ वज्रहस्तः तद्वत् A. Ca. वज्रहस्त तद्वानी B 1: cf. Rv. Bh. I. 121, 14.—P. 270. l. 20. (6, 40.) वज्रहस्तेन A. B. Ca. वज्रहतेन ?—P. 271. l. 3. (6, 43.) अत्यग्निष्टोमादिषु ॥ अत्यष्टोमादिषु A. Ca; lacuna in B 1, only यागक्रिष्टोमादिषु being left. See Âsv. VI. 7, 7. 11, 1.—l. 24. (6, 47.) दशगु° ॥ शतगु° A. B. Ca.

P. 272. l. 28. (7, 5.) यद्यदा by conjecture. नि यत् B 4.—P. 273. l. 15. (7, 8.) अशेरश च A. B 1. Ca. Cf. Un. IV. 56; II. 75; Rv. Bh. III. 7, 9.—P. 275. l. 3. (7, 17.) A. Ca have immediately after पृश्निमातरः, येनात्मीयेन etc. of the next verse. B 1 has पृश्निमारुतः ॥ अथाष्टादशी ॥ etc., B 4 पृश्निमातरः मरुतः तथा स्तोमैः स्तोत्रैः उदीरते.—l. 23. (7, 21.) प्रवृक्तयज्ञका ॥ प्रवृत्त° A. B. Ca.—P. 276. l. 5. (7, 22.) गोतम (twice) A. B. Ca. गौतम Brih. Up., and A pr. m. the first time. -सर्वाणि च Brih. Up. सर्वाणि A. B. Ca.—संदृब्धानि Brih. Up. संदब्धानि Ca. संदग्धानि A. संवध्वानि B 1. Cf. Rv. Bh. I. 164, 1.—l. 16. (7, 24.) आप्यस्य ॥ आप्तस्य A. B. Ca.—ll. 26 seq. (7, 26.) उशना Pada MSS. उशनाः Sâyana.—P. 277. l. 10. (7, 28.) समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा ॥ समानवाक्येषु युष्मदादेशा A. Ca; deest in B: cf. Rv. Bh. I. 31, 3. 32, 12. 34, 11. 48, 3; III. 30, 1.—l. 15. (7, 29.) ऋजीका नाम B. ऋजीका नामा B 1. ऋजीकानां A. Ca.—तत्संबंधिनि ॥ तत्संबंधि A. B. Ca.—l. 17. रथकव्यया ॥ °कव्रया A. Ca. °कचया B 1.—P. 278. l. 12. (7, 33.) आवर्तयामि B 4. आवर्तयानि A. B 1. Ca.

P. 279. l. 1. (8.) °ष्टुभं त्विति Anukr. °ष्टुभंभिति B 1. °ष्टुभमिति A. Ca. M 1.—l. 16. (8, 2.) स्तोतृभिः A. B 1. Ca. One expects स्तोतृभ्यः.—P. 280. l. 2. (8, 4.) ऋषेः ॥ ऋषिः A. B 1. Ca. M 1; see verse 8.—l. 12. (8, 5.) पचे ॥ यज्ञे A. B 1. Ca.—P. 281. l. 18. (8, 10.)

व्रियमाणा ॥ चीयमाणा A. Ca. व्रियाणा B 1.—P. 282. l. 4. (8, 12.) अभिप्राप्तावश्रौष्टां ॥ अभिप्राप्ता श्रौष्टां A. Ca. °प्तो श्रेष्ठां B 1.—P. 284. l. 19. (8, 23.) त्रिसंख्या° B 4. संख्या° A. B 1. Ca.

P. 285. l. 29. (9, 5.) इत्यादिना ॥ इत्यादि A. B 1. Ca.—P. 287. l. 13. (9, 10.) यद्यथा after युवां from B 1.—P. 289. l. 4. (9, 17.) वा after होत: by conjecture.

P. 290. l. 15. (10, 1.) अतस्त्रितयादपि स्थानात् B 4. अतस्त्रितया परिस्थाणादपिनात् B 1. अतस्त्रितयादपि नात् A. Ca.—P. 291. l. 4. (10, 4.) यज्ञस्य शिरो ॥ यज्ञशिरसो A. Ca. स्य यज्ञशिरसो B 1.—तावितद्यज्ञशिर: A sec. m. Ca. तावेतेद्य° A pr. m. तावितद्यज्ञशिरा: B 1.—l. 6. A omits all after प्रत्यवायरहितस्य to the end of the fifth Ash*t*aka.

P. 291. l. 24. (11.) षड्कसप्तकाष्टकैव वर्धमाना Ca. षड्कसप्तकष्टकैवर्धमाना B 1. Cf. Rv. Bh. VI. 16; Anukr. Paribh. IV. 7; Weber, Indische Studien VIII. 239 seq.

Sixth Ash*t*aka.—Here begins another hand in A 2, and the text is omitted. C 2, C 4, and Ca are very corrupt. B 1 and B 4 give both only an extract, but B 4 contains marginal additions and corrections.—P. 295. l. 17. (12, 1.) सोमपानज° B. सोमपानाय ज° A. Ca.—l. 22. ई A. Ca. ईड् Dhp. 26, 34.—ईयामहे A pr. m. Ca. ईमहे A sec. m.—l. 28. (12, 2.) अपनयनेन B 4. अपनयने A. Ca. B 1. अपन्येन C.—P. 297. l. 2. (12, 8.) लुङि सिपि मंत्रे ॥ लुङि सि - - मंत्रे C. लुङि सिमंधेत्रे A. Ca.—P. 298. l. 6. (12, 12.) प्रांचंती ॥ प्रांचती MSS.—l. 7. सुत्यगुण° ॥ सुत्यागुण° A. B. C. Ca.—l. 13. (12, 13.) व्यत्ययेन परस्म° A sec. m. व्यत्ययेन् परस्म° A. Ca: cf. MK. and Kâs. on Pâ*n*. VI. 1, 8, 2.—l. 14. हवि: is evidently left out after गृह्णं.—P. 299. l. 27. (12, 20.) वा after प्रापयितारं by conjecture.—P. 300. l. 2. (12, 21.) कीर्त्तय: पूर्वी: B. कीर्त्त (A marg. adds नीया:) विश्वा विश्वानि सर्वाणि वसूनि के पूर्वी: A. C. Ca.—P. 301. l. 29. (12, 31.) प्रेरयति A. B 1. Ca. प्रेयर्ति प्रेरयति ?—P. 302. l. 5. (12, 32.) अयाळिंद्रस्य ॥ अथालिंद्रस्य A. Ca. See TBr. III. 5, 7, 6; VS. XXI. 47; Rv. Bh. IX. 69, 6.

P. 303. l. 7. (13, 3.) तमे to the end of the verse from Ca. तथा वृधे वर्धनार्थं सखा भव B.—l. 14. (13, 4.) बर्हिषो यज्ञस्य वि राजसि ॥ बर्हिषो यज्ञ वि वा रा° A. Ca. बर्हिष: वेद्या स्तीर्णे बर्हिषि वि रा° B.—l. 20. (13, 5.) ईमहे याचामहे B.—l. 21. वेदितारं ॥ विदि° A. Ca.—आहर B. आहर इति A. Ca.—l. 26. (13, 6.) Either अकरोत् is left out after °समर्था: or गृधु प्रसहने should stand immediately after अकरोत्.—P. 305. l. 30. (13, 17.) वृक्षस्य शाखा इव from B. Ca.—P. 306. l. 19. (13, 20.) शायते वर्तते ॥ आनन्वर्तते B 4. तानन् वर्तते B 1. जावर्तते A. जान्वर्तते Ca.—बलवि° B. बलिवि° A. Ca.—P. 307. l. 19. (13, 25.) ऋषिभिस्त्पादितामि: by conjecture. ऋषिस्त्यतिताभि: A. Ca. ऋपि - - त्यतिताभि: C.—l. 25. (13, 26.) हेतो: B. होतु: A. Ca.—P. 308. l. 1. (13, 27.) प्राप्तवसु C 2. प्रतवसु A. Ca. प्रथितवसू or प्रत्तवसू ?—l. 12. (13, 29.) स्य: after हिंसित्र्य: A. Ca. Perhaps सत्य:.—l. 15. दषावरं A sec. m. दाचावरं Ca and A pr. m.

P. 309. l. 12. (14.) काण्वायनौ A. Ca. काण्व्यायनौ Anukr.—P. 310. l. 9. (14, 6.) After वर्धमानस्य, at the end of the page, several leaves are wanting in Ca, which are supplied by a modern hand. The lacuna extends as far as 17, 6. The supplementary leaves agree with C.—l. 28. (14, 9.) वृळीळतानि ॥ वृळीळता A. वृ - ळता C.—

P. 311. ll. 21 to 24. (14, 13 and 14.) The last word of the 13th verse (something like पराजिग्ये) and the beginning of the 14th are wanting in A. C. B has the following, but put in a wrong place: हे इंद्र मायाभिः उत्सिस्रप्सतः सर्वत्र प्रसरतः द्यां आरुरुक्षतः द्युलोकं आरोहतः दस्यून्.

P. 312. l. 19. (15, 3.) शत्रुजातानि ॥ शत्रुहनन्नादिजातानि C. शत्रुहननादि° A. शत्रून् B: cf. verse 11.—l. 29. (15, 4.) येषां after उशब्दः A. C.—P. 313. l. 3. (15, 5.) यद्वा to विशेषेण from C.—ll. 30 seq. (15, 10.) After दातृतमो जज्ञिषे C adds स्तोतृतमो जज्ञिषे, and after दधिषे A. C add स्तोतृतमो जज्ञिषे प्रादुर्भवसि अत एव विश्वा सर्वा (सर्वाभ्यो A). In M 1 यद्वा was inserted before स्तोतृतमो by conjecture, and सर्वा corrected to सर्वाणि. But the whole seems to be a gloss, patched up with repetitions.—P. 314. l. 16. (15, 13.) Read शचीॶऽपतिं.

P. 315. l. 15. (16, 5.) शत्रुषु deest in B.—प्राप्तेषु ॥ प्रत्येषु A. प्रयेषु Ca; deest in B.—पक्षपातवचनाय only in A.—P. 316. l. 12. (16, 11.) अतिपालयतु A after अतिपारयतु.—l. 16. (16, 12.) न च्छं° ॥ छं° A. Ca. M 1.

P. 316. l. 22. (17.) आद्यस्तृचो ॥ आद्या चा A. आद्या C: cf. Rv. Bh. I. 6, 4; I. 7.—P. 317. l. 3. (17, 3.) Ca wanting.—l. 13. (17, 5.) °दक्षिणभेदेन ॥ °दक्षिणोपदेन A. °दक्षिण-पदेन C 2.—l. 14. स चासिक्तः wanting in B, placed in A. C after चेति.—l. 19. (17, 6.) Ca begins again.—P. 318. l. 21. (17, 12.) शाचिपूजन ॥ शाचिषा A. Ca. Three verses (11–13) left out in B.—l. 22. यतः by conjecture.—l. 28. (17, 13.) स्वयमेव ॥ स्वयं ते तव A. Ca.—P. 319. l. 7. (17, 14.) °संपादिनां B. °संपादितानां A. Ca.

P. 319. l. 22. (18.) द्वाविंशत्यृचं ॥ द्वाविंशर्चं MSS. ut saepe.—l. 27. (18, 1.) देवानां ॥ देवादीनां A. Ca; deest in B.—P. 321. l. 12. (18, 9.) च वातु अनुवर्ततां B. चानुवर्ततां A. Ca.—l. 19. (18, 10.) शिष्यते ॥ शिष्टांते A. शिष्टाते Ca.—P. 322. l. 11. (18, 14.) अयमर्थः ॥ अयमर्त्यः Ca. अमर्त्यः A; deest in B.—l. 31. (18, 17.) विश्वानि सर्वाणि दुरिता B. विश्वा सर्वाणि दुरितानि A. Ca. M 1.—P. 323. l. 14. (18, 20.) स्वामिनां A. Ca; deest in B.

P. 323. l. 27. (19.) सोभरेरार्षं ॥ सौभरेरार्षं A. Ca. सोभरिः ऋषिः B. Again Rv. Bh. VIII. 20, VIII. 21, and VIII. 22, A. Ca read सौभरि, B सोभरि, but VIII. 21, 9, A. B. Ca read सोभरिरहं. VIII. 22, 1, A sec. m. B have सोभरिरहं, A pr. m. Ca सौ°.—l. 29. After रा (of राजान) two leaves are wanting in Ca, which are supplied from another MS. of about the same date.—P. 324. l. 1. सोभरिः Anukr. सौभरं A. Ca.—पितुर्न द्वि° Anukr. पितुद्वि° A. Ca. पितुर्द्वि° M 1.—l. 10. (19, 1.) लिटि after वहेः C.—ll. 15 seq. (19, 2.) ऋषिः to विभूतरातिं from B.—ईमिमम° ॥ इंद्रमम° B.—l. 17. नियंतारं from B.—P. 325. l. 5. (19, 5.) यश्च वेदेन to परिचरति from B.—l. 28. (19, 8.) साधकाः समीचीनाः क्षेमासो धारणान्यपि ॥ साधकसमीचिनाः । (°ना । A sec. m.) क्षेसमाधीरणान्यपि A. Ca. समीचीनाः क्षमासः क्षेमाः रक्षणान्यपि B.—P. 326. l. 1. (19, 9.) मर्तो B. मर्त्यो A. Ca.—l. 10. (19, 10.) जयादिकं, and then स तादृशो जनो to the end, from B.—P. 327. l. 4. (19, 14.) निशान° ॥ निध्यान° A. Ca.—l. 20. (19, 16.) परिचरेमहि from B.—P. 329. l. 2. (19, 22.) प्रयच्छेत्यर्थः A. Ca. प्रयच्छ इत्यर्थः B 1. प्रयच्छत इत्यर्थः B, which may be right.—वाग्भिः from B.—l. 27. (19, 25.) ये यथायथा etc. A. Ca, which, however, omit ते after °सते. C 2 has यथापासते तदेव भवतीति ।—l. 28. भवेयमिति ॥ भवति A. Ca.—P. 330. l. 4. (19, 26.)

पापया after अत एव A. B. Ca.—P. 331. l. 3. (19, 31.) शकटनीडेऽवस्थानात् B. °नीलेऽवस्थान् A. Ca.—l. 13. (19, 32.) स्तोतव्यत्वेन ॥ स्तोतव्येन A. B. Ca. M 1.—l. 20. (19, 33.) लभेये° ॥ लभेयमि° A. B. Ca. M 1.—l. 30. (19, 35.) यजमानेषु from Ca.—P. 332. l. 11. (19, 37.) No commentary is given in A. C. Ca. B has उताप्येतत् यदुक्तं मे मह्यं प्रयियोः अश्वादिषः श्यामवर्णानां प्रणीता प्रकर्षेण नेता मह्यमदात् क्व पुनरसावदात् सुवास्त्वाः सुष्ठु निवासायाः नद्याः अधि तुग्वनि तीर्थेऽधि एतददात् मह्यं सुवास्तु नाम नदी तुग्व तीर्थं भवतीति निरुक्तं अग्रतो गामी भवद्वसुः भावयता बहूनां पूजितलक्षणः दियानां दानार्हाणां गवां पतिः तास्च गाः एतत्संख्यायुक्ताः ॥ Cf. Nir. IV. 15.

P. 332. l. 17. (20, 1.) हे प्रस्थावानः to मा from B. मरुतः by conjecture.—l. 24. (20, 2.) महांतः ॥ तद्वातः A. Ca. In B the second explanation is given alone. ऋभुषाः is one of the महन्नामानि in Ngh. III. 3.—l. 26. कामयमाना by conjecture; the rest from B.—P. 333. l. 2. (20, 3.) मरुतां to the end from B.—l. 9. (20, 4.) दुःखेन युज्यते B. दुःखे ज्यते A. Ca.—l. 11. सर्वोक्तं after पूर्वोक्तं A. Ca.—l. 24. (20, 6.) आंतरिक्षं ॥ अंत° A. B. Ca.—P. 334. l. 8. (20, 8.) बलनाय Ca. वल° A. Cf. Rv. Bh. I. 75, 1, etc.—l. 12. (20, 9.) विशेष्यते ॥ विशेषांतो A. विशेषांतो Ca.—l. 25. (20, 11.) शक्त्यादीन्या° ॥ शक्त्यान्या° A. Ca.—P. 335. l. 16. (20, 14.) हीनः ॥ नहिनः A. Ca; deest in B.—P. 336. l. 22. (20, 19.) शक्तान् ॥ शत्रून् C. सत्कृतन A. Ca. सेक्तृन् B.—P. 337. l. 11. (20, 22.) रुक्मं after आभरणं A. B. Ca.—l. 14. धारयितव्ये स्तोत्रे यज्ञे वा ॥ धारयितव्य स्तोत यज्ञे वा A. Ca. धारयितव्ये B.—l. 25. (20, 24.) स्तोत्रीभिः A. Ca after कल्याणीभिः.

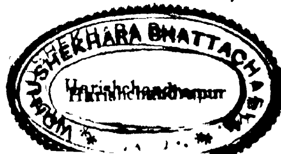
P. 338. l. 21. (21.) तदानुरूपतृचस्य वयमु त्वेत्यनुरूपतृचस्य A. Ca.—P. 339. l. 26. (21, 5.) गोविकारे to उच्येते ॥ गोविकारो दधिपयस्या (°स्य A pr. m. °स्थ Ca) गोशब्देनोच्यते A. Ca.—P. 340. l. 13. (21, 7.) सुव्व्य° ॥ सुव्य° A. Ca.—ते त्वां etc. ॥ त त्वं महांतामिति जानंतो (जानंता, Ca) वनंता वयं भवता रक्षंत इति A. Ca.—l. 20. (21, 8.) हे वज्रिन् वज्रिवन् इंद्र B.—P. 341. l. 5. (21, 10.) हरितवर्णाश्वोपेतं from B.—l. 7. य before एवं सति A. Ca.—P. 342. l. 1. (21, 13.) यस्य A. Ca. यच B.—l. 9. (21, 14.) The end of the commentary which is wanting in A. Ca is supplied by B: यदा मानवस्य नदनुं दानादिराहित्यं समूहसि निराकरोषि यष्ट्टत्वं कृणोषि करोषि आदित् अनंतरमेव पितेव सन् तेन हूयसे ॥—l. 26. (21, 16.) धनादिभिः ॥ नादिभिः A. Ca. आ B.—l. 27. कैश्चित् ॥ कश्चित् A. B. Ca.—P. 343. l. 10. (21, 18.) वर्तते । तान् ॥ त्रतं ततान् A. Ca. तान् B.—धनैस्तनोति ॥ धनो सनोति A. Ca. सनोति B.

P. 343. l. 14. (22.) After अनुष्टुप् something like एकादशी ककुब्द्वादशी मध्येज्योतिः is lost. B 1 has अनुष्टुप् नवमी दशमी द्वे ज्योतिषां एकादशी त्रयोदशीर्यषेदशीसप्तदश्यः काकुभः द्वादशीचतुर्दशीषोडशीअष्टादश्यः सतोबृहत्यः. See Prât. 1024.—l. 15. आश्विनं Anukr. अश्विनं Ca. अश्विनौ A. M 1.—l. 22. (22, 1.) उपक्षपयितारं ॥ उपजनायतारं A. Ca: cf. Rv. Bh. VIII. 24, 25, and दसु उपक्षये Dhp. 26, 104.—ll. 26 and 28. (22, 2.) पूर्वापुषं S 2. S 3 pr. m. (?) S 4. P 3. P 1. P 4 sec. m. पूर्वायुषं S 3 (sec. m. ?) S 1. P 4 pr. m.—l. 31. युद्धेषु ॥ युक्तेषु A. यक्तेषु Ca.—P. 344. l. 5. (22, 3.) द्योतन° ॥ द्यौतन° A. Ca. M 1; deest in B.—l. 13. (22, 4.) मंत्रांतरं ॥ मंत्रांतरं सति A. Ca.—l. 30. (22, 6.) वृकेण वृको लांगलं etc. ॥ वृकेण लांगलेखनं कुरुथः । शुभस्पती उदकस्य पालयिता भवति । विकर्त्तनादिति यास्कः । तेन लांगलेन यवनामकं धनं वां कर्षथः । पुनस्च तस्मै विलेखनं कुरुथः । शुभस्पती etc. A. Ca. वृकेण लांगलेन यवनामकं धनं वां कर्षथः C. वृकेण लांगलेन यवं यवनामकं धान्यं कर्षथः । पुनस्च तस्मै etc. B. The confusion in A. Ca arises from the copyist having originally skipped a line after लेखनं कुरुथः.—

P. 345. l. 2. यद्मदिने B. पचदिने A. Ca.—l. 8. (22, 7.) अस्मान् ॥ अस्माकं A. B. Ca.—आगच्छतं B. गच्छतौ A. Ca.—l. 28. (22, 10.) अवध: to राजानं from B.—l. 30. यद्यत् ॥ यत् यच्छत् A. Ca. यत् B 1.—P. 346. l. 4. (22, 11.) अधृतगमना: ॥ अधृतधना: A. B. Ca.—l. 15. (22, 12.) वंदनो मायाभि: ॥ वंदनमालाभि: A. Ca.—l. 29. (22, 14.) स्तूयमानमार्गौ ॥ स्तूयमार्गौ A. Ca.—l. 31. रुद्रौ उग्रौ B.—P. 347. l. 4. (22, 15.) सेवनीयशीलौ in the sense of 'whose character is to be honoured'? सेचनीय° A. B. Ca. सचनी° C 2. सचनीयौ or सेवनीयौ would be good emendations, if it were likely that शीलौ crept into the text from a marginal gloss. See Dhp. 6, 2; Rv. Bh. II. 31, 4; IX. 78, 3.—l. 5. सोभरी सोभरिरहं B. सौभरिरहं A. Ca. See note to VIII. 19.—l. 13. (22, 16.) ऊतिभी रक्षाभि: from B.—l. 26. (22, 18.) प्रयच्छति ॥ प्रच्छति A. Ca; deest in B.—l. 28. त्वक्तो B. C. त्वभो A. Ca.

P. 348. l. 26. (23, 4.) उदस्थात् A. Ca. उद्यस्थात् (meant for उद्य°) B 1.—P. 349. l. 10. (23, 7.) हे देवा: B before चर्षणीनां.—यष्टृत्वेन ॥ यष्टव्येन B. यष्टृ यष्टव्येन A. Ca.—l. 16. (23, 8.) यज्ञवति ॥ धनयज्ञं प्रति A. Ca. यज्ञं प्रति B. धनयज्ञं C 2.—P. 350. l. 24. (23, 15.) माययापि तस्य ॥ मायापि तस्य A. Ca. मापितस्य B.—P. 351. l. 4. (23, 17.) गृह ॥ सह A. B. Ca.—P. 352. l. 16. (23, 24.) °परिहारेण ॥ °परिपूरेण A. Ca.—l. 21. (23, 25.) वनस्पतिरूपाभिररणीभि: ॥ °भिर्वारणीभि: A. Ca. M 1. चरणीभि: B.—l. 28. (23, 26.) मानुषाणां after मानुषा A. Ca.—P. 353. l. 16. (23, 29.) प्रदातासि from B.

P. 353. l. 26. (24.) विश्वमना ॥ वियश्वनाम A. Ca sec. m. विश्वयनाम Ca pr. m. वैयश्वनाम B 1. वैय्यश्वो नाम M 1.—P. 354. l. 5. (24, 1.) इत्त्व° ॥ इति° A. Ca.—l. 17. (24, 3.) नानाविधान्नोपेतं ॥ नानाविधानोपेतं A. Ca. B.—l. 18. आ before संपादय, meant for आहर, A. Ca. आ सपा C 2.—l. 24. (24, 4.) निरेकं a second time by conjecture.—l. 26. स्तवमान: ॥ स्तवान: A. Ca. M 1. स्तवागम: B 1.—P. 355. l. 10. (24, 6.) तथा मनो by conjecture. Instead of धनादिप्रदा° A. Ca have धनादिभि: प्रदा° and in A the words प्राप्नोमीत्यर्थ to धनादिभि: stand in the margin. B 1 is quite corrupt: जरितु: स्तौतुर्ममन: कामं धनादिविषयं आपृण आपूरय.—l. 24. (24, 8.) ते B 1. तव A. Ca. M 1.—l. 30. (24, 9.) नर्तयि° ॥ वर्तयि° A. B. Ca.—P. 356. l. 19. (24, 12.) यशसे deest in B.—l. 31. (24, 14) दत्तं ॥ रत्नं B 1. Ca. रत्नकं A. M 1.—P. 357. l. 10. (24, 15.) स्तुतिकर्मा C. कर्मा A. Ca.—l. 16. (24, 16.) The explanation of सदावृध: from B.—l. 22. (24, 17.) उपलक्षणं ॥ पलक्षणं A. Ca. उपलक्षणमेतत् would be a more usual phrase.—l. 24. सुम् ॥ वोम A. Ca. आगम: M 1.—सर्वै: ॥ वैं A. Ca.—l. 30. (24, 18.) A. Ca have a lacuna after आहूया-, which extends to verse 23. This lacuna is supplied in Ca by another hand, apparently copying from C 2, which here agrees in all material points with B.—P. 358. l. 12. (24, 20.) ऋत्विग्भि: ॥ ऋत्विक्त: Ca. ऋत्विग्भ्य: M 1.—l. 23. (24, 21.) Ca (in the supplementary leaf) adds at the end, यद्वा येन दत्तं धनं सर्वं शत्रुजनमभिभवति येन दत्तं धनमादायसत: शत्रूनभिभवतीत्यर्थ: ॥—P. 359. l. 2. (24, 23.) दशधा A. Ca. दशमो?—l. 8. (24, 24.) संबोध्याह ॥ संबोध्य A. Ca.—l. 10. भवंतीति ॥ भवंति A. Ca.—यजमानानामिव ॥ यजमानामांरा A. Ca.—l. 11. परिपदां समानाधिकरण: ॥ परिपदी समानक A. Ca.—l. 26. (24, 26.) संन्यसे ॥ संन्यासे A. सन्यासे Ca. सन्यसे B.—l. 32. (24, 27.) ऋतम् etc. ॥ ऋतम् मनुष्यान् ऋणोति° A. Ca. गृन् मनुष्यान् वृणोति B.—l. 33. किं पुनस्तं ॥ किं पुना A. Ca. किं पुन: B.—P. 360. l. 15.



पापया after अत एव A. B. Ca.—P. 331. l. 3. (19, 31.) शकटमीडे ऽवस्थानात् B. ॰मीळे ऽवस्थान् A. Ca.—l. 13. (19, 32.) स्तोतव्यत्वेन ॥ स्तोतव्येन A. B. Ca. M 1.—l. 20. (19, 33.) लभेये॰ ॥ लभेयमि॰ A. B. Ca. M 1.—l. 30. (19, 35.) यजमानेषु from Ca.—P. 332. l. 11. (19, 37.) No commentary is given in A. C. Ca. B has उताथैतत् यदुक्तं मे मह्यं प्रयियोः अश्वादिषः श्यामवर्णानां प्रणीता प्रकर्षेण नेता मह्यमदात् क्व पुनरसावदात् सुवास्त्वाः सुष्ठु निवासायाः नद्याः अधि तुग्वनि तीर्थेऽधि एतद्दात् मह्यं सुवास्तु नाम नदी तुग्व तीर्थं भवतीति निरुक्तं अयतो गामी भवद्वसुः भावयता बहूनां पूजितलक्षणः दियानां दानार्हाणां गवां पतिः ताश्च गाः एतत्संख्यायुक्ताः ॥ Cf. Nir. IV. 15.

P. 332. l. 17. (20, 1.) हे प्रस्थावानः to मा from B. मरुतः by conjecture.—l. 24. (20, 2.) महांतः ॥ तद्वातः A. Ca. In B the second explanation is given alone. ऋभुक्षाः is one of the महन्नामानि in Ngh. III. 3.—l. 26. कामयमाना by conjecture; the rest from B.—P. 333. l. 2. (20, 3.) मरुतां to the end from B.—l. 9. (20, 4.) दुःखेन युज्यते B. दुःखे ज्यते A. Ca.—l. 11. सर्वोक्तं after पूर्वोक्तं A. Ca.—l. 24. (20, 6.) आंतरिचं ॥ अंत॰ A. B. Ca.—P. 334. l. 8. (20, 8.) बलनाय Ca. बल॰ A. Cf. Rv. Bh. I. 75, 1, etc.—l. 12. (20, 9.) विशेष्यते ॥ विशेषांतो A. विशेषांतो Ca.—l. 25. (20, 11.) शत्र्यादीन्या॰ ॥ शत्र्यान्या॰ A. Ca.—P. 335. l. 16. (20, 14.) हीनः ॥ नहिनः A. Ca; deest in B.—P. 336. l. 22. (20, 19.) शत्रून्॥ शत्रून् C. सत्कृतम A. Ca. सेक्तून् B.—P. 337. l. 11. (20, 22.) रुक्मं after आभरणं A. B. Ca.—l. 14. धारयितव्ये स्तोत्रे यज्ञे वा ॥ धारयितव्य स्तोत यज्ञे वा A. Ca. धारयितव्ये B.—l. 25. (20, 24.) स्तोत्रीभिः A. Ca after कल्याणीभिः.

P. 338. l. 21. (21.) तद्दानुरूपतृचस्य वयमु त्वेत्यनुरूपतृचस्य A. Ca.—P. 339. l. 26. (21, 5.) गोविकारे to उच्येते ॥ गोविकारो दधिपयस्या (॰स्य A pr. m. ॰स्य Ca) गोशब्देनोच्यते A. Ca.—P. 340. l. 13. (21, 7.) मुख्य॰ ॥ मुख्य॰ A. Ca.—ते त्वां etc. ॥ त त्वं महांतामिति जानंतो (जानंता, Ca) वनंता वयं भवता रचंत इति A. Ca.—l. 20. (21, 8.) हे वज्रिन् वज्रिवन् इंद्र B.—P. 341. l. 5. (21, 10.) हरितवर्णाश्वोपेतं from B.—l. 7. य before एवं सति A. Ca.—P. 342. l. 1. (21, 13.) यस्य A. Ca. यच B.—l. 9. (21, 14.) The end of the commentary which is wanting in A. Ca is supplied by B: यदा मानवस्य मदनुं दानादिराहित्यं समूहसि निराकरोषि यष्टृत्वं कृणोषि करोषि आदित् अनंतरमेव पितेव सन् तेन ह्वयसे ॥—l. 26. (21, 16.) धनादिभिः ॥ नादिभिः A. Ca. आ B.—l. 27. कैश्चित् ॥ कश्चित् A. B. Ca.—P. 343. l. 10. (21, 18.) वर्तते। तान् ॥ चतं ततान् A. Ca. तान् B.—धनैस्तनोति ॥ धनौ सनोति A. Ca. सनोति B.

P. 343. l. 14. (22.) After अनुष्टुप् something like एकादशी ककुब्द्वादशी मध्येज्योतिः is lost. B1 has अनुष्टुप् नवमी दशमी द्वे ज्योतिषां एकादशी त्रयोदशीर्येषेद्शीसप्तदशः काकुभः द्वादशीचतुर्दशीषोडशीअष्टादश्यः सतोबृहत्यः. See Prât. 1024.—l. 15. आश्विनं Anukr. अश्विनं Ca. अश्विनौ A. M 1.—l. 22. (22, 1.) उपचयपयितारं ॥ उपजनायतारं A. Ca: cf. Rv. Bh. VIII. 24, 25, and दसु उपक्षये Dhp. 26, 104.—ll. 26 and 28. (22, 2.) पूर्वापुषं S 2. S 3 pr. m. (?) S 4. P 3. P 1. P 4 sec. m. पूर्वायुषं S 3 (sec. m. ?) S 1. P 4 pr. m.—l. 31. युद्धेषु ॥ युक्तेषु A. यक्तेषु Ca.—P. 344. l. 5. (22, 3.) द्योतन॰ ॥ द्यौतन॰ A. Ca. M 1; deest in B.—l. 13. (22, 4.) मंत्रांतरं ॥ मंत्रांतरं सति A. Ca.—l. 30. (22, 6.) वृकेण वृको लांगलं etc. ॥ वृकेण लांगलेखनं कुरुथः। शुभस्पती उदकस्य पालयिता भवति। विकर्त्तनादिति यास्कः। तेन लांगलेन यवनामकं धनं वां कर्षथः। पुनश्च तस्मै विलेखनं कुरुथः। शुभस्पती etc. A. Ca. वृकेण लांगलेन यवनामकं धनं वां कर्षथः C. वृकेण लांगलेन यवं यवनामकं धान्यं कर्षथः। पुनश्च तस्मै etc. B. The confusion in A. Ca arises from the copyist having originally skipped a line after लेखनं कुरुथः.—

l. 10. (27, 12.) वा before व्यत्ययेन A. Ca.—l. 26. (27, 14.) ऽपरं by conjecture. B 1 has दिने तु सर्वे व दिवसेषु अपर किंचनः धनदातारो etc.—P. 376. l. 1. (27, 15.) °माणत्वादस्मत्सं° ॥ °माणास्मत्सं° A. Ca.—l. 30. (27, 18.) ऋजुगमने प्रस्थे by conjecture. ऋजुगमनप्रेरन् A. Ca. अभ्र is explained as पर्वत or मेघ. Cf. Rv. Bh. IV. 1, 17; V. 54, 4. Probably, however, some omission has taken place, and रन् formed part of a grammatical explanation.—P. 377. l. 7. (27, 19.) म्रुचिर्ग° ॥ निम्रुचिर्ग° A. Ca. M 1. Cf. Dhp. 7, 13.—l. 8. धनं मनवे ॥ धने मध्ये A. Ca.—P. 378. l. 3. (27, 22.) प्राप्नुमः A. Ca is a mistake for प्राप्नुयाम.

P. 379. l. 17. (29, 1.) °देवतं ॥ °देवताः A. Ca.—सौम्यं TS. सोम्यं A. Ca.—l. 18. शबल° ॥ सबल° A. Ca; deest in B.—l. 19. किरणैस्तावदुन्नते चंद्रमसि दुःखोपशमनानि ॥ किरणैः तावपुदते (तावुपुदते Ca) चंद्रमसि सर्वस्वदुःखापशमनेन A. Ca. सर्वस्व is only an erroneous repetition of सर्वस्य.—l. 20. रात्र्यश्चंद्रनेतृकाः ॥ रास्त्रयः चंद्रनेतृकः A. Ca.—P. 380. l. 16. (29, 6.) यथा before चोरः repeated by conjecture.—l. 17. स्वसहायेभ्यो suggested in M 1 and adopted by Windisch, Zwölf Hymnen, p. 69. स्यसहायेभ्यो C. तस्य सहायेभ्यो A. Ca; deest in B.—P. 381. l. 3. (29, 9.) From द्वा द्वौ to तेनोक्तेन, in the next verse, left out in A.—l. 7. (29, 10.) From एकोऽत्रयो to एतादृशा अत्रयः left out in Ca. The words are taken from B.—एतादृशा ॥ एतादृशा अतादृशा B.

P. 381. l. 14. (30, 1.) शिग्मुर्नास्ति खलु B. शिनास्ति कल्पनया नास्तीत्यर्थः A. Ca.—l. 23. (30, 2.) लेटि—लुग° ॥ लोटि—मुग° A. Ca.—l. 30. (30, 3.) धनादिमंतस्य ॥ धनादि मंत्रस्य A. Ca.—l. 31. मानवात्। मनुः etc. ॥ मानवान मनुः सर्वेषां मनुः पिता मत आगत् (आगतात् Ca) परावतेः पिता मुङ्करं मार्गं चक्रे तस्मात्पथो etc. A. Ca. मानवात् पित्र्यात् सर्वेषां मनुः पिता ततः आगतात् परावतः दूरात् पथः etc. B. मानवात्पित्र्यात्। सर्वेषां मनुः पिता तत आगतात्परावतः। पिता मनुर्दूरं मार्गं चक्रे तस्मात् पथो etc. M 1.—l. 33. अस्मानपनयत ॥ मास्मामपनयत A. Ca. तस्मात् मार्गात् स्तोमोन् अपनयत। B.—P. 382. l. 6. (30, 4.) विश्वानरोऽग्निः ॥ वैश्वा° A. Ca.—l. 8. शृणाति ॥ शृणोति A. Ca. M 1.

P. 382. l. 20. (31, 1.) लेट्यडागमाः ॥ °डागमौ A. Ca.—Sâyaṇa reads ब्रह्म for ब्रह्मा.—l. 31. (31, 3.) दीप्तिमान् रथो रंहणशीलः etc. ॥ दीप्तिमान् रथः असत् B. दीप्तिमान् शीलो स्यंदनः देवानां हविःप्रदानरूपेण पु-यज्ञेन असत् Ca. A agrees with Ca, but has only न् instead of दीप्तिमान्.—P. 383. l. 1. येन मे रथो ॥ यो हैं म रथै A. Ca. हैमरथै C 2. Very doubtful.—l. 5. (31, 4.) After °शीलं A. Ca have यतीत्यर्थः, C 2 तीत्यर्थः.—l. 6. धेनुः before धिनोति A. Ca.—दिवेदिवे etc. ॥ दिवे दिवैर्दुह्यते A. Ca. दिवेदिवे दुहे देवैः दुह्यते B.—l. 15. (31, 5.) अन्नादीन् A. Ca. °दीनि B. Immediately afterwards all MSS. have again अन्नादीन्, though it is grammatically wrong.—l. 20. (31, 6.) प्राशितव्यान् ॥ प्राशव्यान् A. Ca.—l. 22 A. Ca have सुष्यत इत्यर्थः after न गच्छतः.—l. 25. (31, 7.) नापि ॥ अपि A. B. Ca.—P. 384. l. 1. (31, 8.) तत्रापि A. B. Ca.—l. 15. (31, 10.) फलपुष्प° B. स्वर्गपुष्पफल° A. स्वर्गफलपुष्प° Ca. स्वर्ग seems a later addition.—युक्तानां from B.—l. 18. भवतो ॥ भवथ A. Ca; B has only सचाभुवो देवैः सहितस्य.—l. 19. वर्तामहे ॥ वर्ताम A. B. Ca. M 1.—P. 385. l. 6. (31, 14.) येत्रो A. B. Ca.—l. 15. (31, 15.) तद्वत्। यो देवानां from B.—l. 23. (31, 16.) देवानां मन इयक्षति ॥ देवानां न इयक्षति Ca. न इयक्षति A. B reads हे यजमान यः हविर्भिः देवानां मनः इयक्षति.—P. 386. l. 8. (31, 18.) आशुगमनाश्व° ॥ गमनाश्व° A. B. Ca.

P. 386. ll. 19 to 22. (32.) A. Ca have between माद्नं and प्र क्षतानि the passage which is inserted after °स्थाने, प्रति to तृचौ। आ° ८.१२.। इति ॥—l. 21. अच्छावाकवादे etc. ॥ अच्छावाकः पत्नीयजमानस्थान A sec. m. आच्छादको पत्नीयजमानस्थान A pr. m. Ca. Instead of पत्नीयजमानस्थान we expect प्रत्यस्या इत्यस्य तृचस्य स्थाने. Cf. Rv. Bh. VIII. 71, 10.—P. 387. l. 29. (32, 9.) अश्विनोऽश्वयुक्तान् क्षधि from B.—l. 30. धनवतश्च C. मेघवतश्च A. Ca. धनिनश्च B.—P. 388. l. 9. (32, 11.) इदं to एव from B.—l. 19. (32, 13.) शोभनपारणश्च ॥ शोभनवरणश्च A. Ca. शोभनाचरणश्च B. शोभनवर्णश्च C 2. Cf. Rv. Bh. III. 39, 8. 50, 3.—P. 389. l. 4. (32, 16.) यज्वा ब्रह्मचारिवासी TS. यद्वा ब्रह्मचारिवासी A sec. m. यद्वा ब्रह्मसू। चारिवासी A pr. m. Ca.—l. 8. (32, 17.) Ca omits all from the first स्तुत्य एवेंद्र to ब्रह्माणि।; the lacuna is supplied in A in the margin. B has an independent explanation: स्तुत्य एवेंद्रः तस्मिन् सामानि उप गायत हे होतारः पन्ये तस्मिन् इंद्रे उकथानि स्तोत्राणि शंसत हे अध्वर्यवः पन्ये इत् तस्मिन्नेव इंद्रे ब्रह्म अन्नानि क्षणोत कुरुत जुहुत ॥—l. 21. (32, 20.) बुसं तुग्र्यमित्यु° ॥ बुसं तुग्र्यं उ° A sec. m. नुसंः ॱ संतुग्धं त्यु° Ca. A pr. m. बुसं तुग्र्या Ngh. I. 12.—P. 390. l. 3. (32, 22.) पंच before जनान् from B.—P. 391. ll. 4 to 7. (32, 29.) From सोमरूप° to सोमपे° in the 30th verse taken from B. A. Ca mark a lacuna.

P. 391. l. 14. (33.) सूचितं च to अनुरूपः from Ca and C 2. There is still some mistake, as the third Viniyoga refers to the first.—l. 29. (33, 2.) आगमत् A. Ca; B has निर्गमने नतारः नीयगमनः वृषभः इव शब्दं कुर्वन् कदा ओकः स्थानं आ गमः आगच्छेदिति. Sâyana seems to read इंद्रः for इंद्र.—P. 392. l. 4. (33, 3.) देहि from B.—l. 25. (33, 6.) अपरिवृतः ॥ अवृतः A. Ca. आवृतः B. अपवृतः A marg. See verse 10.—श्रवः ॥ श्रवं A. Ca; deest in C 2.—P. 393. l. 5. (33, 7.) पुरः शत्रुपुराणि B.—l. 24. (33, 10.) वृषभिश्च ॥ वृषाश्च A pr. m. Ca. वृषश्च A sec. m. वृषैश्च B.—P. 394. l. 1. (33, 11.) अश्वरशनाः A. B. Ca.—l. 28. (33, 15.) महन् ॥ महान् A. Ca. M 1. महां B.—P. 395. l. 4. (33, 16.) तव ॥ ते तव A. B. Ca. M 1.—l. 9. (33, 17.) प्रायोगिः ॥ प्रायोगिः A. B. Ca.—l. 10. प्रायोगिः A. प्रायोगिः Ca.—l. 11. अपि च स्त्रियाः B 1. अपि स्त्रिया A. Ca. M 1.—l. 22. (33, 19.) प्रायोगिं and प्रायोगे A sec. m. प्रावयोगिं and प्रावयोगे A pr. m. Ca. प्रायोगिं and प्रयोगे B 1.

P. 395. l. 30. (34.) वसुरोचिषो B. वसुमत्तोचिनो A. Ca.—P. 396. l. 7. (34, 1.) स्वर्गं A sec. m. B. कुर्वस्वर्गं A pr. m. Ca. C.—P. 397. l. 7. (34, 6.) The commentary to this verse is taken from B; left out in A. Ca.—P. 398. l. 3. (34, 10.) अर्येश्वर A. B. Ca.—l. 9. (34, 11.) उपश्रुत्युपश्रुतौ ॥ उपश्रुति उपश्रुतेः A sec. m. उपश्रुते A pr. m. Ca. उपश्रुति B.—l. 26. (34, 14.) धनानि is probably omitted after वा.—P. 399. l. 3. (34, 15.) वसूनि A. Ca. वसूनि B.—l. 15. (34, 18.) वनस्पतयो before वनस्य A. Ca.—तिष्ठमिति ॥ तिष्ठति A. Ca. तिष्ठं B.

P. 399. l. 17. (35.) औपरिष्टाज्योतिषं A. Ca. उपरिष्टाज्ज्योतिषं M 1. See Anukr. M. p. 29.—l. 20. अश्विनोर्यामे A. Ca. अग्नोर्यामे ?—P. 400. l. 7. (35, 3.) The commentary on this verse, the following, and the 6th verse is supplied from B.—P. 401. l. 16. (35, 9.) गगणं ॥ गगनं B. वा गमनं A. Ca.—P. 403. l. 22. (35, 20.) सर्गानिव B. सर्गाणि A. Ca. वस्त्राणि in the margin of A, marked to be inserted after सर्गाणि.—l. 28. (35, 21.) यज्ञान् A marg. after अध्वरान्.—P. 404. l. 13. (35, 23.) यज्ञ एव यत् Sat. Br. यज्ञ A. Ca.

P. 405. l. 2. (36, 1.) अन्यासु TS. अन्या A. Ca.—l. 11. (36, 2.) रक्ष ॥ रक्षसि A. B. Ca.—P. 406. l. 14. (36, 7.) प्राविथ ॥ प्रत्नस्यमाविथ A. Ca. पुरुकुत्सपुत्रं प्राविथ रक्षिथ B.

P. 406. l. 16. (37.) There is something wrong in the Viniyoga, we should expect पृष्ठ्यस्य पंचमेऽहनि निष्केवल्यशस्त्र इदं सूक्तं. Cf. Rv. Bh. I. 81.—l. 22. (37, 1.) ऊतिभिः from B.—l. 23. प्ररक्ष A sec. m. प्ररक्षः B. रक्षः A pr. m. Ca. प्रारक्षः?—P. 407. l. 21. (37, 6.) भवसि अव॰ A. Ca. B. अवसि अव॰ C 2.—l. 27. (37, 7.) क्षत्राणि बलानि कामैर्वर्धयन् from B.

P. 408. l. 4. (38.) ॰स्तोत्रियसंज्ञकस्तृचः ॥ ॰स्तोत्रियसंज्ञक A. Ca: cf. Rv. Bh. VI. 60, 7.—l. 5. ॰नीयस्य ॥ ॰नीय॰ A. Ca.—P. 409. l. 16. (38, 10.) साम ऋच्यते B. साम उच्यते A. Ca. M 1.

P. 410. l. 2. (39, 2.) रराठणां P 1 sec. m. P 2. P 3. P 4. अराठणां P 1 pr. m. and A. B. Ca in the commentary; lacuna in B 1.—P. 411. l. 14. (39, 7.) अपि ॥ अप्या A. Ca; lacuna in B.—l. 22. (39, 8.) After सप्तमानुषः B adds सप्तहोता.

P. 412. l. 12. (40.) ऊरुभाग ॥ उरुभीग A. Ca. उन्ननीयं C 2.—l. 14. होत्रकाः स्वशस्त्रे C 2. होत्रकस्वोशस्त्रे A. Ca.—आरंभणीयाभ्य ॥ आरंभणीयारभ्य A. Ca. C 2.—l. 23. (40, 1.) दत्तं from B.—P. 413. l. 16. (40, 4.) हे नाभाक नभाकवत् ॥ हे नभाकवत् B. हे नाभाक नभाकवंतो A. Ca. हे नाभाक नाभाकवंतो C 2.—P. 414. l. 1. (40, 6.) वल्ल्या ॥ वल्याः B. तमाया A. Ca.—l. 11. (40, 7.) वनुयाम च स्तुमः B.—l. 24. (40, 9.) वस्वो वा A. Ca.—l. 25. पूर्वीः। या etc. ॥ पूर्वीर्वयः प्रशां साधंतासाधयन् A. Ca. पूर्वीः बह्व्यः प्रशाः नः याः धियः अस्मद्बुद्धयः नु क्षिप्रं साधंत साधयंतु ॥ B.

P. 415. l. 28. (41, 1.) मरुज्ञस्य ॥ मरुज्ञिस्य A. Ca. M 1. मरुज्ञः उ मरुज्ञिस्य B 1.—l. 29. After रक्षति B adds यथा गोपालो गा रक्षति तद्वत्.—P. 416. l. 5. (41, 2.) Read समीपे य उदये ॥ समीप उदये A. B. Ca. Sâyaṇa takes उदये for a verbal form, and, if so, the relative pronoun must be inserted.—l. 17. (41, 3.) त्रिषु A. B. Ca. One expects त्रिषु - - - कालेषु.—l. 24. (41, 4.) After निर्माता B begins a new sentence with तस्य वरुणस्य.—स्वक्षतं B. स्वतुतं A. स्वगुतं Ca.—l. 25. स हि B. स इत् A. Ca. M 1.—रक्षिता ॥ ररक्षिति Ca. ररक्षति A. रक्षति B.—P. 417. l. 9. (41, 6.) त्रितं भूर्भुव स्वः त्रिस्थानं B.—l. 17. (41, 7.) A. Ca mark a lacuna. यः वरुणः आसु दिक्षु अत्क व्याप्तः सन् आश्रये जाग्रतो वर्तते यः वरुणः एषां शत्रूणां विश्वा सर्वाणि परि जातानि परितो भूतानि धामानि पुराणि मर्मृशत् विनाशयत् अस्य वरुणस्य पुरो गये रथस्य पुरस्तात् विश्वे सर्वे etc. B.—P. 418. l. 4. (41, 9.) अंतरिक्षेऽधि वसतः ॥ अंतरिक्षाधिवश्रुतः A. Ca. अंतरिक्षेऽधि विश्रुतानि B.—तिस्रो etc. ॥ तिस्रो भूमीरधिस्थिता A. Ca. तिस्रो भूमिः द्यौरंतरिक्षं भूमीः त्रिरुत्तराणि तिसृणां अधिस्थितानि B.—l. 13. (41, 10.) Sâyaṇa explains अधिं। निःऽनिर्जः।.

P. 418. l. 20. (42.) इत्थैकादशिना: Âsv. ॰नः A. Ca.—l. 24. देवेति Âsv.; deest in A. Ca.—l. 32. (42, 1.) B has विश्वेत् बहूनि संति ॥

P. 420. l. 7. (43.) आज्यभागौ A. Ca; not in Âsv.—l. 28. (43, 3.) बप्सति। भक्षयंति ॥ बप्संति भक्षयंति A. Ca. M 1. बप्सति भक्षयति B.—l. 32. (43, 4.) पृथगिति etc. ॥ पृथगित्यनेन सममव्यंगिति पृथगितीव वाज॰ Ca and A pr. m. पृथगित्यनेन सममव्ययं गिति। पृथगित्येव वाज॰ A by correction. The VS., in Weber's edition, has वृथक्.—P. 421. l. 16. (43, 8.) मस्मस्नाभवन् A sec. m. and Ngh. I. 17. मस्मनाभवन् Ca and A pr. m., the latter perhaps भस्म॰.—l. 29. (43, 11.) सोमघृत॰ ॥ सौमधृते A. Ca. सोमधृत॰ B.—P. 423. l. 13. (43, 21.) प्रभु प्रभुः A sec. m. Ca. प्रभुः प्रभुः A pr. m. प्रभुः प्रभु प्रभुः B. The MSS. of the text

have here and Rv. VIII. 11, 8, where the same verse occurs, प्रभुः.—अनु by conjecture.—P. 424. l. 25. (43, 30.) गाह॰ ॥ याहयितव्यानि A. B. Ca. Cf. Rv. Bh. IV. 18, 2; V. 4, 9.

P. 425. l. 31. (44, 3.) सादयत् A. B. Ca.—P. 426. l. 24. (44, 9.) ज्वलद्दीप्ति A. B. Ca. ज्वलद्दीप्ति? See verse 14.—P. 427. l. 19. (44, 15.) तनेति ॥ तना इति A. Ca. M 1.—P. 428. l. 6. (44, 19.) वर्धयंतु ॥ वर्धयंति A. B. Ca. The same occurs again in verse 22.—P. 429. l. 12. (44, 28.) तं सुखय वा ॥ तसुयवा A. Ca; deest in B.

P. 429. l. 27. (45.) इति स्तोत्रं A. Ca; not in Âsv.—P. 431. l. 25. (45, 13.) भंक्तारं ॥ भोक्तारं A. B. Ca.—l. 29. (45, 14.) पणमानं A. Ca. पणिनामानं B.—P. 433. l. 8. (45, 23.) मनुष्या A sec. m. मनुष्याणां A pr. m. B. Ca.—l. 17. (45, 25.) प्रेरितवान् ॥ प्रेरयितवान् A. B. Ca.—P. 434. l. 5. (45, 29.) बुर्बुरमिति ॥ बुर्बुरेति A. M 1. बुबुरेति Ca. See Rv. Bh. I. 33, 15.—l. 15. (45, 31.) किं नाकार्षीः ॥ किं माकार्षीः A. B. Ca.—P. 435. l. 19. (45, 38.) The end of the commentary is left out in A. Ca. It is supplied in B in the following way: असिन्वन् अबध्नन् श्वघ्नीव कितव इव स सोमः त्वामेव प्राप्तः आवयः वृश्चमानाः सर्वे देवाः निवता अधोमुखाः संतः आचरन् निर्गताः.—l. 29. (45, 40.) हिंधि। अतस्तासां ॥ हिंस्र तस्तासां A. हिंस्र त। स्तासां Ca. हिंस्र तासां B. हिंस च। तासां M 1.—P. 436. l. 4. (45, 41.) विमर्शनक्षमे ॥ विमर्शके न क्षमे A. Ca. विमर्षके न क्षमे B. See Benfey, Glossary to Sâma-veda, s. v. parsâna. The intended interpretation seems to have been 'able to withstand friction or a blow;' vim*ris* being used in the sense of âm*ris*.

P. 436. l. 19. (46.) अष्टावरा ॥ अष्टावरवती A. B. Ca.—l. 20. ॰चतुर्थयोर्द्वा॰ ॥ ॰तृतीयतयोर्द्वा॰ A. B. Ca.—l. 25. नवकाश्वैकादश्यष्टिनो A sec. m. नवकाश्वैकादश्यष्टिना B. नवकाश्विका-, दश्यष्टिनाश्वि A pr. m. Ca. See Anukr. M. p. 4.—l. 33. ॰द्दोत्तरे A. Ca. ॰द्दोत्तरा M 1. See Anukr. M. p. 30.—P. 437. l. 28. (46, 6.) रायो from B 1.—P. 438. l. 18. (46, 9.) श्रवाय्यः श्रवणीयः द्रयः B after तारकः. The substantive omitted is मदः.—l. 23. (46, 10.) निपातानिपातद्वय॰ A sec. m. निपातानिपाततद्वय॰ A pr. m. Ca. अनिपात, if the reading be right, must be taken in the sense of पद.—P. 439. l. 27. (46, 15.) मह्यं, instead of मम, A. B. Ca.—l. 28. Sâya*n*a seems to have read अद्य instead of अथ. A has अद्येदानीं by correction.—l. 29. लिङ्गभावात् A. Ca. One expects लिङ्गाभावात्.—P. 440. l. 5. (46, 16.) अद्यापि इदानीमपि A. Ca. अथापि इदानीमपि A by correction. अथ अति चित् अनंतरमपि B. Here also Sâya*n*a seems to have read अथाद्य or अथाद्य instead of अत्यथ.—l. 12. (46, 17.) यजनसाधनैः A sec. m. यजमानसा॰ A pr. m. B. Ca. M 1.—वा after एव by conjecture.—P. 441. l. 3. (46, 20.) सुसंभितः सुष्ठु संभक्तः B after संभक्तः.—l. 4. वा ॥ त्वा A. Ca.—l. 10. (46, 21.) वशायाश्व्याय ॥ वशायाख्याय A. Ca and B*ri*h. MS.—कानीतस्तु B*ri*h. MS. कानीतस्य A. Ca.—l. 14. कानीते कनीतपुत्रे कन्यायाः पुत्रे ॥ कानीते पुत्रे कन्यायाः A pr. m. Ca. कानीते कनीतपुत्रे कन्यायाः A sec. m. कानीते कानीतपुत्रे कन्यायाः पुत्रे B.—l. 26. (46, 23.) आशवः A. B. Ca.—P. 442. l. 21. (46, 26.) सा before संख्या from B.—॰नां चिः to सोमसुद्भिः सो॰ from the margin of A. B 4 makes the same addition in the margin from चिः to पृथु॰.—l. 30. (46, 27.) अन्वशात् ॥ अन्वप्सान् Ca. अतप्सान् A.—P. 443. l. 12. (46, 29.) अद्वेयं A. B. Ca.—P. 444. l. 7. (46, 33.) योज्यं ॥ योज्य A. Ca.

P. 444. l. 10. (47.) लैंगिकः by conjecture.—l. 27. (47, 2.) यथा from B.—P. 445.

l. 4. (47, 3.) पश्चा वयो न is not explained again in A. Ca. तत् वयो न पश्चा पक्षिणः शिशुकानां पक्षोपरि यथा तथा वि यंतन etc. B.—l. 20. (47, 5.) अवटधि° ॥ अवद्दधि° A. Ca. अव इति धि° C 2.—l. 29. (47, 6.) Sâyaṇa explains आस्रवः instead of आस्र वः.—यं after यूयं by conjecture.—P. 446. l. 7. (47, 7.) प्रवृद्धमपरिहाराह ॥ अप्रवृद्धं अपरिहारार्थं A. Ca. प्रवृद्धं अपरिहारार्थः C. अभिप्रवृद्धं अपरिहारार्थं B.—l. 24. (47, 9.) कस्य ॥ यस्य A. B. Ca.—P. 447. l. 29. (47, 14.) °ग्रैषिण ॥ °ग्रैषे A. Ca.—उपतिष्ठित् A. Ca. °ष्ठेत Âsv. Gṛihy.—P. 448. l. 22. (47, 16.) यद्देव ॥ तद्देव A. B. Ca.—l. 23. भोक्तृ इत्यर्थः ॥ भोक्तुरित्यर्थः A. B. Ca.—यद्देवापः ॥ तद्देवापः B. देवापः A. Ca.—l. 25. द्वित्ताय च A. Ca. द्वित्ताय च पूरणः B.—l. 26. °त्कूपवत् C. °त्कूतवत् Ca. °सूतवत् A.—P. 449. l. 1. (47, 17.) संदाय ॥ सदाय A. Ca; deest in B.

P. 449. l. 26. (48, 2.) अगाः P 1. 2. 3. 4. अगाः Aufrecht.—l. 28. अदीनः from B.—P. 450. l. 7. (48, 3.) ततोऽमृता ॥ त्वतो मूभा अमृता A. Ca. त्वतः अमृता B.—l. 15. (48, 4.) अस्माभिः पीतस्त्वं from B.—l. 23. (48, 5.) वध्रो ॥ वध्वः A. Ca. बध्वः B 1. वध्रौ Prof. Aufrecht in Zeitschrift der Deutschen Morgenl. Gesellschaft, vol. xxv. p. 236, note.—l. 24. ता B. ते A. Ca.—P. 451. l. 1. (48, 6.) संधुचणेन A sec. m. B. संचणेन A pr. m. Ca. Cf. Gitagov. III. 12, where न संधुच्यते is explained by दीप्यते सुखं न भवति ।.—l. 26. (48, 9.) श्रेष्ठान् A. Ca. श्रेष्ठः B.—P. 452. l. 4. (48, 10.) B reads चिरकालावस्थानं एमि इंद्रमपि याचे ।, which is no improvement.—l. 9. (48, 11.) पीडा from B.—A. Ca read तविषीचीः.—बलवतः पीडाः B.—l. 10. अभेपुः त्यजंतु B.—अपगमे C. अपरामे A pr. m. Ca. अपराधे A sec. m. B.—यस्मात् ॥ तस्मात् A. B. Ca.—l. 17. (48, 12.) मर्त्यान् B. मर्त्तान् A. Ca. M 1.—l. 30. (48, 14.) निऽद्रा Pada MSS. निऽद्राः Sâyaṇa.—P. 453. l. 11. (48, 15.) विश्वतो B. विश्वाभिः A. Ca.—l. 12. हे इंद्रो त्वं ऊतीभिः [सजोषाः marg.] सह प्रीयमाणः सन् ऊतिभिः सह अथवोतयो etc. A. हे इंद्रो त्वं ऊतिभिः सह प्रीयमाणः सन् ऊतिभिः सह अथवोतयो etc. Ca. हे इंद्रो त्वं ऊतिभिः सह प्रीयमाणः सन् सजोषाः गंतारो मरुतः तैः सहितः etc. B 1.

A MS. of the Rig-veda was discovered by Dr. Bühler in Kashmir. It was written on birch-bark and in the *S*ârada alphabet. As it seemed to be of some importance Dr. Bühler kindly had it forwarded to me. A collation made by Dr. Wenzel showed, however, that the MS. contained no independent readings, and that it had by no means been carefully copied. The various readings in the Vâlakhilya hymns are given as a specimen to show the character of the MS.

P. 453. l. 21. (49, 2.) गिरिरिव प्ररसा *S*.—l. 25. (49, 3.) न S 1. 2. 3. 4. P 3. P 4. Aufrecht. नु P 1. M 1.—P. 454. l. 4. (49, 4.) प्रचुद्रिव *S*.—l. 16. (49, 7.) उग्र ऋश्वेभिरा *S*.—l. 24. (49. 9.) यथा प्राव *S*.

P. 455. l. 11. (50, 2.) शिनिर्न (?) *S*.—l. 23. (50, 5.) स्वधावन् स्वधयंति *S*.—P. 456. l. 6. (50, 7.) उग्र for ऋष्व *S*.—l. 14. (50, 9.) यथा प्रावो *S*.—l. 18. (50, 10.) असिंशासो *S*.

P. 456. l. 22. (51, 1.) सांब्रणं *S*.—P. 457. l. 1. (51, 2.) पार्षद्वनः and जिभ्रिमुधृतं *S*.—l. 5. (51, 3.) धिन्वते for विंधते *S*.—ll. 6 and 8. अरिष्यंतं S 3 by correction. S 4. P 3. P 4 sec. m. अविष्यंतं *S*. S 1. P 4 pr. m. अरिष्यंतं S 2. अविष्यंतं P 1. Cf. Aufrecht, vol. ii. p. v.—P. 458. l. 5. (51, 9.) दंशम् *S* for दासः.—ll. 6 and 8. पवीरवि S 1. 2. 3. 4. P 1. 3. 4. परीरवि Aufrecht.—l. 9. (51, 10.) मधुमंतो घृतश्चुतो *S*.

P. 458. l. 18. (52, 2.) मिथ्यं *S*.—l. 19. ऋजीनसि *S*.—l. 22. (52, 3.) धृषता पिब *S*.—P. 459. l. 2. (52, 4.) अर्वसुच *S*.—l. 6. (52, 5.) दाति *S*.—l. 14. (52, 7.) सर्वनं *S* for हवनं.—P. 460. l. 1. (52, 10.) बृहतीरंनूषत *S*.

P. 460. l. 11. (53, 2.) वाजायंतीं (?) *S*.—l. 19. (53, 4.) शीर्ष्ट्रेष *S* for शीर्ष्टेषु.—P. 461. l. 6. (53, 7.) वीतिहोत्राभिवृत देववृतिभिः ससवांसो विशृण्विरे *S*. Cf. Rv. VIII. 54, 6.—l. 10. (53, 8.) अर्ये मतीनां *S*.

P. 461. l. 15. (54, 1.) पवासो *S* for पौरासो.—l. 19. (54, 2.) सांवर्ते *S*.—P. 462. ll. 9 seq. (54, 6.) भवि सुकृतो । वयं होत्राभिवृत देववृतिभि ससवांसो मनामहे *S*. See Rv. VIII. 53, 7.—l. 13. (54, 7.) इंद्रमायुर्ज° *S*.—l. 14. °नुपावसो *S*.

P. 462. l. 22. (55, 1.) व्यख्यामभ्यार्जति *S*.—P. 463. l. 2. (55, 3.) वल्वजास्तुका *S*.—l. 7. (55, 5.) चर्किरन्नानूनं च महि *S*.—l. 9. आ । अनू° P 1 pr. m.? न । अनू° P 1 sec. m. P 3. P 4. Aufrecht, vol. ii. p. v, says, 'Die Handschriften lesen carkiran | â | anûnasya.' P 1 has न by correction in the margin, but there is also a correction in the text, so it is possible that न was corrected to आ, and afterwards again to न.

P. 463. l. 12. (56, 1.) वीर्नः प्रथिना *S*.—l. 14. (56, 2.) पुतक्रतुस् *S* for पौतक्रतः.—l. 16. (56, 3.) अधि स्रजः *S*.—l. 18. (56, 4.) पूतक्रतायीव्यक्ता *S*.—यूथ्यं *S*.—l. 20. (56, 5.) °श्चिकितिर्ह्° *S*.

P. 464. l. 6. (57, 2.) दधिरे *S* for ददृशे.—l. 11. (57, 3.) उप यातं *S*.—l. 15. (57, 4.) मधुमंतमश्विना प्र दाश्वांसमवथतं *S*.

P. 464. l. 20. (58, 1.) यो अनुचाना ब्रह्मणो युक्त आसे का *S*.—l. 23. (58, 2.) समिन्ध and प्रभूतं *S*.—l. 24. °वोषस्सर्वं° and वि भाह्येकैवाविदं *S*.—P. 465. l. 3. (58, 3.) भूरिमायं *S*.

P. 466. l. 21. (60, 1.) भवयतु after अनक्तु A marg.—P. 468. l. 15. (60, 8.) मर्ताय मरणधर्माय from B.—l. 22. (60, 9.) ऋचा गिरा A. Ca. गिरा B 1. गिरा ऋचा would be better.—P. 469. l. 5. (60, 11.) शंसनीयं from B.—l. 6. माति नो ॥ मातिर्नो B. मानितिर्नो A. Ca.—l. 13. (60, 12.) तद्वनं ॥ तं धनं A. B. Ca. त धनं C 2.—P. 470. l. 20. (60, 17.) B begins हे देवाः.—हे यजमानाः ॥ गेहे यजमानाः A. Ca. गेहे यजमानाः वयं B. गृहे यजमानाः C 2.—l. 21. अधृतगमनं B. अधृतकर्माणं A. Ca. अधृतगमनकर्माणं A marg. Cf. Rv. Bh. VIII. 12, 2. 22, 10. 11. 70, 1. 93, 11; V. 73, 2; VI. 45, 20.—l. 24. प्राणुपकारसिद्धं B. प्राणुपकारं सिद्धं A. Ca.—P. 471. l. 14. (60, 20.) यातना ॥ यानां A. Ca.—l. 16. अनिरा A sec. m. आतरा Ca. अंतरा B 1.—l. 17. बाह्यानि A. B. Ca.—च न ॥ च A. Ca. न B.

P. 472. l. 3. (61, 2.) °दुपकारकाया ॥ °दुपकारकस्य A. Ca. °दुपकारस्य क C 2.—l. 18. (61, 4.) भवति MSS. भवतु?—P. 473. l. 1. (61, 6.) पौरः पूरयिता ॥ पुरयि पूरयिता A. Ca. पूरयिता A sec. m. पुरुहत् पूरयिता B 1, which afterwards has गवां पौर पुरुहत् हे देव etc.—l. 6. (61, 7.) बृहतः स्तो° Ait. Âr. बृहतस्तो° A sec. m. बृहत्स्तो A. Ca. M 1.—P. 474. l. 15. (61, 11.) सचा सहिताः B. सचा सहासहिताः Ca. सचा सहायसहिताः A by correction.—l. 24. (61, 12.) वेद ॥ देवः A. Ca. देवः वेद B 1.—सनिता धनं संभजता B 1.—P. 475. l. 22. (61, 16.) पश्चात् before पश्चाद्भा° by conjecture.—°द्भागात् etc. ॥ पश्चाद्भागो पुरः पूर्वो भागो ऽधरादधोभाग A. B. Ca.—l. 24. तथा from the margin of A.—आसुराणि ॥ आसुरीः A. B. Ca.—l. 31. (61, 17.) रक्षसि ॥ चक्षास्त्वसि A. Ca.

P. 476. l. 10. (62.) सप्तम्यावाश्च तिस्रो A. B. Ca. च deest in Anukr.—P. 477. l. 1. (62, 3.) चिदर्वता ॥ चार्वता A. B. Ca.—l. 9. (62, 4.) अवस्यते B. अवस्यते A. Ca. अवस्यवे M 1.—l. 21. (62, 6.) दृष्ट्वा by conjecture. गत्य A. B. Ca. गात्य C 2. आगत्य would not be appropriate.—l. 23. अवेचितं ॥ अवेचितुं Ca. अवेचितुं A.—l. 29. (62, 7.) दद्रुः from B.—P. 478. l. 1. हे पुरुष्टुत etc. A. Ca. °तेंद्र भद्रा साति समन्वयः। C 2. हे पुरुष्टुत इंद्र त्वं विश्वस्य पतिः भवसीति समन्वयः। B.

P. 479. l. 9. (63.) गायत्रे A. Ca; not in C. M 1. Cf. Anukr. M. pp. 31, 223.—l. 26. (63, 3.) विद्वानुपायश्चः ॥ विद्वानुषाय चास्मै चः A. Ca. विद्वानुषाय चास्मै C 2. विद्वान् B.—अपवारितवान् ॥ उवारितवान् A. Ca. उपवारितवान् A by correction. उत्सारितवान् B.—P. 481. l. 2. (63, 9.) लब्धे लब्धवे ॥ लब्धेवे A. Ca.—l. 12. (63, 11.) अतिशयेन सुमः from B.

P. 482. l. 2. (64, 2.) तव ॥ सतव A. Ca; deest in B. प्रतिनिधि and सदृश are construed with the genitive, according to Pâ*n*. II. 3, 72.—B adds at the end अतस्त्वं महानसि ॥—l. 10. (64, 4.) प्रगच्छ C. प्रागच्छ A. B. Ca.—दिवि द्युलोकात् किं चयो निवासं A. B. दिवि द्युलोकात। कि चयो निवासं Ca. दिवि द्युलोकांत - चयो निवासं C 2.—l. 24. (64, 7.) विस्तीर्णकंधरः from the margin of A.—l. 25. ब्रह्मा स्तोता त्वा त्वां A. Ca. ब्रह्म स्तोतारं वा B 1. Sâya*n*a explains कस्त्वां instead of कस्त्वं.—P. 483. l. 14. (64, 11.) Sâya*n*a seems to have read अधि श्रितः for अधि प्रियः. B reads अधि आश्रितः and afterwards यः सोमः प्रियः स एवायं etc.

P. 485. l. 8. (65, 10.) पृषतीनामश्वानां B.—l. 17. (65, 12.) इंद्रे प्रीत ॥ इंद्रः प्रीत A. Ca. इंद्रः प्रीतः B.

P. 485. l. 21. (66.) ऽयं by conjecture.—l. 30. (66, 1.) तमिंद्रं B. त्वदर्थं A. Ca.—P. 486. l. 6. (66, 2.) अन्नस्य सोमस्य from B. A. Ca mark a lacuna.—यः after आवृत्य by conjecture. B puts it before दाता.—l. 15. (66, 3.) किमस्य कथं जात इति व and then a lacuna in A. Ca. The व is perhaps वचनात्. Or supply इति च व्युत्पत्तिः।—l. 16. बहुलस्य from B. After अपवरणीयं some other word like व्रजं seems to be necessary.—l. 21. (66, 4.) Sâya*n*a explains पुरु। संऽभृतं।—P. 487. l. 5. (66, 6.) युच युमन् B. युचमन् A. Ca.—l. 15. (66, 7.) हरत ॥ हर वा A. Ca. हर B.—l. 22. (66, 8.) मार्गेषु प्रस्थानेषु वा Ca. मार्गेषु B. वा A.—l. 23. वृकोऽपि ॥ वृपि A. Ca.—P. 488. l. 4. (66, 9.) वृत्रहत्यं ॥ वृत्रहत्ये A. Ca.—l. 11. (66, 10.) न कदाचिदित्य and then a lacuna marked in A. Ca.—वयं हं अभवदि° C 2. C 4. व्यहंत्र्यभवदि° A. Ca. The lacuna can be supplied in the following manner: न कदाचिदित्यभिप्रायः। सर्वे हंतव्यं हतमभवदित्यर्थः।—l. 14. A. Ca mark a lacuna after दातव्य. The context may have been दातव्यावित्येवमभिमतेन etc. Cf. Devarâ*g*a on Ngh. IV. 3 in Nir. SS. vol. i. p. 452. Durga on Nir. VI. 26 gives no particular explanation.—l. 15. तानहर्दृशः B. ते वाहर्दृशः A. Ca.—l. 17. पश्यंति ॥ पश्यति A. B. Ca.—अहानि पश्यंति ॥ अहानि पश्यति A. Ca.—l. 18. A. Ca mark a lacuna after अतो. B omits अतो and has ईदृशान् पणीन् etc.—l. 20. आपणिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ॥ आपणिकास्तथा कारुशीलकान् A. Ca. वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् Manu ed. Jolly. वाणिजि° ed. Mandlik.—l. 28. (66, 11.) °तात्पर्याम्रुति° ॥ °तात्पर्याद्रुति° A. Ca. तात्पर्यात् B.—P. 489. l. 15. (66, 14.) अमतैर्दारिद्र्यात्मिकायाः B. अ - मतैर्दारिद्र्यात्मिका A. Ca.

P. 489. l. 26. (67.) संमदा° ॥ समदा° A. B. Ca. M 1.—l. 27. आदित्यान् ॥ आदित्यं A. B. Ca.—l. 28. आदित्या ॥ आदित्यो A. B. Ca.—P. 491. l. 6. (67, 9.) मर्चयता ॥ मर्चयंता A. Ca.—l. 7. माम्रा etc. ॥ माम्रां बाधामा मोऽस्माकं etc. A. Ca.—l. 18. (67, 11.) गंभीरं गहनं A. Ca. गहनं गभीरं Ngh. I. 12.—l. 25. (67, 12.) दूरमियमदितिर्भूमिरूपा ॥ दूरंयमदंतिर्भूरिरूपा A. Ca.—l. 26. After उरूचि something seems left out, unless we change उरुत्वं into उर्वि त्वं.—l. 27. जीवेनापृत्यान्नषितुं A. Ca unintelligible.—l. 30. (67, 13.) उच्छ्रयंतः ॥ उच्छ्रियंता A. Ca.—P. 492. l. 3. (67, 14.) A. Ca have क्राणान् before वृकाणां, B क्राणांन्. This is either a repetition of वृकाणां (B 1 reads क्रारणान् वृकारणां) or one has to read नोऽस्माकं प्राणान्.—l. 13. (67, 16.) भुंजमहे ॥ भुजमहे A. Ca.—l. 17. (67, 17.) छगुथ B 1. छगुन A. Ca. छगुत M 1.—l. 24. (67, 18.) A. Ca, not B, have after मुंचतु again सुत्वं भवत्वित्यर्थः।. B adds दृष्टांतः बंधात् बद्धमिव बद्धं पुरुषं बंधात् यथा विमुंचति तद्वत् ॥—l. 30. (67, 19.) मृळत सुखयत B.—P. 493. l. 3. (67, 20.) पुत्रे पितृशब्दः ॥ पुत्रे पि त्व शब्दः A. Ca; not in B.—l. 10. (67, 21.) रिप्रमिति Nir. रिप्र इति A. Ca. M 1. See Rv. Bh. I. 157, 4.

P. 493. l. 18. (68.) अंततः ॥ अथ ततः A. Ca.—P. 494. l. 2. (68, 2.) मते ॥ सते B 1; deest in A. Ca. M 1.—l. 7. (68, 3.) तवेत्यर्थः C. भ इत्यर्थः A. Ca.—l. 29. (68, 6.) °योगत्वादिच्छा° ॥ °योगात्वदिच्छा° A. Ca; very doubtful.—P. 495. l. 10. (68, 8.) बलवन्निंद्र यस्य B. बल - - - नि यस्य A. Ca.—l. 14. (68, 9.) कर्तुं after स्नानादिव्यवहारं by conjecture. कुर्वन् A. B. Ca.—l. 18. (68, 10.) The Viniyoya has been corrected in accordance with Âsv. and Rv. Bh. VIII. 2. °रिति तृचो मरुत्वतीयप्रतिपत्नुचभाविति A. Ca.—l. 24. ररथिथ ॥ रथय A. B. Ca.—l. 29. (68, 11.) तनमीयः ॥ तंतमीयः A. B. Ca: cf. Rv. Bh. VI. 18, 6; VIII. 6, 22.—P. 496. l. 1. (68, 12.) तथा तने by conjecture.—l. 10. (68, 14.) Brih. VI. 900 has आर्क्षाश्वमेधयोरत्र पंच दानस्तुतिःपराः ॥—l. 13. पितृपुत्र° ॥ पितृपितृ° A. B. Ca.—l. 17. (68, 15.) आतिथिग्वे ॥ अतिथिग्वे A. Ca: cf. verses 16 and 17.—l. 18. इंद्रोत ॥ इंद्र A. Ca.—l. 23. एवमृक्षाश्व° ॥ एवं त्यपृक्षाश्व° A. Ca.—l. 32. (68, 17.) इंद्रोतदानस्य ॥ इंद्रतद्दानस्य A. Ca.—P. 497. l. 8. (68, 19.) निनित्सुश्चन to युष्मासु from C. युष्मे युष्मासु मर्त्यः मनुष्यः अवद्यं निनित्सुः नेतुमिच्छुः नादीधरत् च नैवोपपद्यते खलु अतो etc. B. Left out in A. Ca.

P. 497. l. 20. (69, 1.) उमन्तीति ॥ ऊंदिति A. ऊंदितीति Ca.—l. 28. (69, 2.) °दिंद्र सुम्येति by conjecture. °दिंद्रयुग्म्य इति A. Ca. °दिद्रं यु इति C 2. C 4.—हि द्वा° to सर्वत्र from C. Cf. Sâyana's commentary on Sv. II. 7, 1, 9, 1.—P. 498. l. 6. (69, 3.) द्विवीत्यर्थः ॥ द्विवीत्यषः A. Ca. त्येषः C 2.—l. 7. आदित्यस्य C. आदित्य A. Ca.—आरोचमाने ॥ आरोचने A. Ca.—l. 9. (69, 4.) A. C. Ca mark a lacuna after ऽनुरूपः, extending to the beginning of the verse. This has been supplied in accordance with Rv. Bh. VIII. 45.—l. 15. तत्रानुरक्तत्वात् ॥ तत्रागुक्तत्वात् Ca. तथानुक्तत्वात् A. °क्तत्वात् C 2.—ll. 24 to 29. (69, 7.) मित्रेषा to यद्यदा from C. बभ्रस्य विष्टपं सूर्यस्य from B.—P. 499. l. 2. द्वादश मासाः etc. Cf. Sat. Br. I. 3, 5, 11.—l. 10. (69, 8.) तन्नोचा C. तञ्चेचा A. B. Ca.—l. 26. (69, 10.) आ पतंति etc. ॥ सापतितं वृष्टिरत्याय यदा etc. A. Ca.—P. 500. l. 8. (69, 12.) सूर्म्यं सुषिरामिव is not explained in A. C. Ca. यथा सूर्यं प्रति रश्मिजालं तद्वत् B. The verse occurs Nir. V. 27, and is explained in Rig-veda, vol. i. p. 20.—P. 501. l. 7. (69, 16.) गृहो रथः A. Ca. It is strange that Sâyana should use here गृह as a masculine, though he explains अवंतं गृहं, in VIII. 73, 7, by व्यत्ययेन पुँल्लिंगता.—l. 8. °नंतरं to °नंतरं

from Ca.—l. 9. पुनः कीदृशं from B. तर्किं A. Ca.—कीदृशं after रथं A. Ca.—l. 17. (69, 17.) स्वराजं twice, A. Ca, not C.

P. 501. l. 31. (70.) त्रयोदश्युष्णिक् चतुर्दश्यनुष्टुप् पंचदशी पुरउष्णिगाद्य° ॥ त्रयोदश्युष्णिक् आद्य° A. Ca. त्रयोदशी पुरष्णीक् आद्य° B 1.—l. 33. यो राजा etc. supplied from the Ait. Âr. A. C. Ca mark a lacuna.—P. 502. l. 6. (70, 1.) सेनानां C 2. सर्वेषां संग्रामाणां B; deest in A. Ca.—l. 23. (70, 3.) After अनुकूलं some word like करोति is wanted.—P. 503. l. 10. (70, 5.) मूर्तिप्रतिबिंबाय ॥ गूर्तृषतिबिबाय A. Ca. गूर्तिप्रतिबिंबाय C. विबाय B.—l. 11. किंचन ॥ किंचमनु A. Ca.—l. 18. (70, 6.) B begins हे शविष्ठ बलवन् मघवन् धनवन् वृषन् etc.—वृषा before आ पप्राथ A. Ca.—l. 27. (70, 7.) मनुष्यः from C.—l. 28. यो मर्त्यो etc. ॥ स मर्त्यो यस्येंद्रस्य ए° A. Ca. स मर्त्यः अस्येंद्रस्य ए° B. B begins with यः अदेवः etc.—l. 29. योजयति B. योजयंति A. Ca.—After गंतुं there seems to have been a lacuna, which in C 2 is left unsupplied. The commentary given in A. B and Ca is clearly spurious.—P. 504. l. 10. (70, 9.) उत्थापय ॥ उत्थापयत A. B. Ca.—l. 18. (70, 10.) प्रभूतधन B. प्रभूतमिवा A. Ca.—l. 19. नि शिश्नथः B 1. वि शिश्रयः A. वि शिश्रथः Ca.—l. 20. नि शिश्नथो ॥ वि शिश्नयो A. वि शिश्नथो Ca.—l. 26. (70, 11.) सखा B. सखायः A. Ca.—P. 505. l. 23. (70, 15.) हितं शांरदेवं ॥ हितः शांरदेव A. B. Ca.—l. 24. Sâya*n*a read न instead of नः.

P. 506. l. 1. (71, 1.) कस्य महोभिः A. B. Ca after रच.—l. 3. अथवा to संबंधनीयं A. Ca; not in C 2 nor in B.—l. 7. (71, 2.) अस्मदादिभी ॥ अस्मादिभी A. Ca.—l. 12. (71, 3.) The commentator must have read in the text, स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपात् etc.: cf. verse 9. त्वं नोऽस्मभ्यं विश्वेभिर्देवेभिर्धनं प्रयच्छसि। हे ऊर्जो etc. B. Could विश्वेभिर्देवेभिः have been inserted in order to remove the punarukti pointed out and explained away by Sâya*n*a?—l. 18. (71, 4.) यं ॥ यदा A. Ca. यदा यं B.—P. 507. l. 9. (71, 9.) °नपात्त्वं ॥ नपादित्वं A. Ca, which stands perhaps for नपादादित्वं.—l. 10. स सुत्यत्वेनैव प्र° ॥ सः सुत्यत्वेन वा प्र° A. Ca. M 1. सः प्र° B.—l. 19. (71, 10.) वाग्निं after °ज्वालं A. Ca. Cf. verse 14.—P. 508. l. 6. (71, 12.) धीषु सुबुद्धिषु B before प्रथमं.—l. 13. (71, 13.) वा ॥ अतिवा A. Ca. अथवा M 1.—l. 28. (71, 15.) भयानाममिश्रणं ॥ भयानंममश्रवणं A. Ca.

P. 509. l. 19. (72, 3.) अंतः आयतनमध्ये before इच्छंति B.—स्वपंतं ॥ स्यपनं A. स्कंयनं C. स्ययनं B.—l. 20. स्वप्नमेतन्मध्यमं A. Ca and Nir. var. lect. स्वपनमेतन्माध्यमिकं Nir. Roth and SS.—ll. 26 seq. (72, 4.) अरुहत् आरोहति and अवधीत् A. Ca. अरुहत् अरोहति and आवधीत् B 1.—l. 32. (72, 5.) ऽयं रुशंश्वरंश्वे° ॥ यं चरंश्वे° Ca. हंश्चरंश्वे° A.—P. 510. l. 3. (72, 6.) स्थूलं ॥ स्थलं A. B. Ca.—l. 4. रथेऽश्वान् etc. ॥ रथेऽश्वान्यारुजर्नियोजयतेति सेत्यर्थः। A. Ca.—l. 9. (72, 7.) प्रतिप्रस्थातारौ C. प्रस्था° A. Ca; deest in B.—l. 27. (72, 10.) परिणत्याभं B. परिणिव्याभं A. Ca. परिगंतारं?—नीचीनद्वारं ॥ नीचीनवारं ग्मूतवारं (i. e. न्यग्भूतद्वारं) B. नीचीनवारं A. Ca. नीचीनद्वीरं C.—l. 32. (72, 11.) वपुष्करे, cf. Nir. V. 14.—P. 511. l. 2. आसंध्यं A. Ca. आसद्यां B.—l. 6. (72, 12.) आरिप्सोः Ca. अरिप्सोः A. C.—l. 7. गवाजयोः ॥ गवाश्वयोः C. गवा - योः A. Ca.—l. 26. (72, 15.) धारकमाजं ॥ धारकर्मायं A. Ca. धारकं B. धारकमिं C 2.—P. 512. l. 3. (72, 16.) मधुधुत्कं ॥ मधुक्क A. Ca.—l. 7. (72, 17.) तच हेतुमाह ॥ तन्न हेतुं A. Ca. तच हेतुं B. C.—l. 12. (72, 18.) पवमाने ॥ एवमाने A. Ca. एवं माने B.—l. 13. नु शीघ्रं B at the end of the commentary.

P. 512. l. 19. (73, 1.) हवमाह्वानं यज्ञं वा A. Ca. हवमाह्वानं B.—P. 513. l. 10. (73, 6.)

The commentary on this verse is omitted in A. Ca. It is printed from C 2. B has हे अग्निनाऽग्नौ यामहृतमा यज्ञे मुखतमौ नेदिष्ठमंतिकतममाद्यं प्राप्तव्यं यामि । प्राप्नोमि । अंति°. It seems an old lacuna, supplied independently by C 2 and B.—P. 514. l. 1. (73, 11.) अर्थमागमनाय ॥ अर्थागमनाय A. B. Ca.—l. 7. (73, 12.) सजात्यं ॥ संजात्यं B (also the first time). साजात्यं A. Ca.—बंधकः सुवः ॥ बंधकसुवः Ca. बंधकसुचः A. बंधुकः सुतः B. Cf. Kuhn's Zeitschrift, I. p. 442.—अथवर्षिरहं ॥ अद्य वा यु हं A. अद्य वायुरहं Ca. आद्या वा युरहं C 2. (जरायु?); deest in B.—l. 18. (73, 15.) अश्वसमूहैः ॥ अश्व A. B. Ca.—l. 23. (73, 16.) करोत्यंति A. Ca. करोति B.—l. 27. (73, 17.) निशारयति ॥ निवारयति B. निश्रयति A. Ca.—P. 515. l. 4. (73, 18.) आकर्षया or कर्षया A. B. Ca instead of आकर्षकया.

P. 515. l. 7. (74.) पंचमं ॥ चतुर्थं A. B. Ca. The mistake in the number of the Sûktas continues to the end of the Anuvâka.—l. 8. आर्क्षस्य A pr. m. Ca. Anukr. आर्च्यस्य A sec. m. M 1.—l. 10. व्योम° ॥ त्वाव्योम° A. Ca.—l. 17. (74. 1.) नु deest in B.—P. 516. l. 3. (74, 5.) जाततेजआयु° ॥ जाततेजोयु° A. Ca. जातधनं B.—l. 23. (74, 9.) संबंधीति ॥ संबंधिनमिति A. B. Ca.—l. 30. (74, 10.) तूर्वय प्राप्नुय तथा etc. B.—l. 31. हिंस्य deest in B.—P. 517. l. 16. (74, 13.) Sâyana seems to have read वृचा for मृचा. B has मृचा मृचाणि केशवंति.—वृश्च्यंत ॥ व्रश्च्यंते C. व्रश्चत A. Ca.

P. 518. l. 18. (75, 3.) सर्वतो ऽतहृत वा ॥ सर्वतो ह्रुत आह्रुतो वा Ca. M 1. सर्वत ह्रुत आह्रुतो वा A. सर्वतो ह्रुत B.—P. 520. l. 5. (75, 13.) अन्यमस्तोतारं ॥ अन्यस्तोतारं A. Ca. अन्यं स्तोतारं B.

P. 521. l. 4. (76, 3.) अपसृजन् A. B. Ca.—l. 28. (76, 8.) हृदा मनसा भक्त्या from B.—P. 522. l. 1. (76, 9.) अह्राम° ॥ अहाम° A. Ca.—l. 2. शत्रून् from B. Ca.—l. 17. (76, 12.) साष्टापदी ॥ साष्टयदीं A. Ca. प्राप्ता B.—l. 18. स्तुतिमहं B. स्तुतिमयां A. Ca. स्तुतिं मया M 1.

P. 522. l. 20. (77.) कुरुसुतिः ॥ पुरु° A. B. Ca.—P. 523. l. 5. (77, 3.) रज्ज्वेव । तया ॥ त्वेवलया A. वलया B. रज्ज्वेवलया C 2.—P. 524. l. 5. (77, 9.) नतानि ॥ निता A. Ca. नीतानि B.—l. 6. च्यौत्नानि अत्युत्कृष्टानि तव बलानि भूमेः किल etc. B.—भूमेः कीलवद्धारणाय ॥ भूमे किल बद्धाधारणया A. Ca. भूमेः किल बद्धधारणाय B. भूमेः किल बद्धाधारणानि M 1. Cf. Notes to VII. 99, 3.—l. 18. (77, 10.) किंचेंद्रो ॥ - - नवानपींद्रो A. Ca. किंच इंद्रः B.—l. 32. चरमपादेनोच्यते ॥ चारमपादिनोच्यते Ca. वा° A.—P. 525. l. 3. (77, 11.) यास्केन व्याख्याता तदेव लिख्यते ॥ व्याख्यातत्वात्तदेव लिख्यते । यास्कः । A. Ca.—l. 4. हिरण्मयः A. Ca and Nir. var. lect. हिरण्ययः Nir.—रणौ deest in A. Ca, as in several Nir. MSS.—सांयाम्यां वर्द्रूपे Nir. Roth. सांयाध्रूपे A. सांयाष्ट(or वृ, or मृ?)द्रूपे Ca. See Nir. SS. vol. iii. p. 276.—l. 5. गमनपातिनौ शब्दपातिनौ दूरपातिनौ and afterwards गमनवेधिनौ शब्दवेधिनौ दूरवेधिनौ Nir. Roth. B begins हे इंद्र ते तव धनुसुविचं महाक्षेपं सुष्ठतं etc. It explains सुसंस्कृता by सुष्ठु अलंकृतौ.

P. 525. l. 11. (78, 1.) B explains अंधसः by सोमं.—P. 526. l. 6. (78, 6.) यदा तं भिंदितुमिच्छति ।. The MSS. have यदा त्वं भिंदितुमिच्छसि, a construction which, though intelligible, is unusual in Sanskrit, particularly as the next sentence is carried on in the third person.—l. 17. (78, 8.) यद्वा इंद्रः सोमं पीत्वा सोम इत्यभिहितः ॥ यद्वाचिंद्रः पीतं सोमोभिहितः A. Ca.—l. 21. (78, 9.) आप्रेच्छं ॥ आप्रिकुं A. Ca.—l. 28. (78, 10.) निष्कृतस्य ॥ निष्कस्य A. Ca.

P. 527. l. 12. (79, 2.) पंगुरपि from B. A. Ca mark a lacuna after श्रोणोऽपि.—

l. 17. (79, 3.) कृत्येभ्य इत्यर्थः। . Kṛitya is here used in the sense of 'traitor, enemy.' See Wilson, s. v., and BR. s. v. 1) b).—P. 528. l. 2. (79, 6.) A. Ca have no commentary to the third pâda. तदा ईं अतीर्णं एनं यष्टारंभिणं आयुः जीवनं प्र तारीत् प्रकर्षेण वर्धयेत् ॥ B.—l. 5. (79, 7.) हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माकं हृत् हृदये पीताय हृदय संभव । अपरो नः पुराणः A. Ca. हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माकं हृत् हृदये वर्तमानः सुशेव अपरो नः पुराणः C 2. हे सोम पीतः त्वं नः अस्माकं हृदे हृदये पीताय शं सुखं भव किंच नः अस्माकं सुशेवः सुसुखः मृळयाकुः सुखकर्ता अदृप्तक्रतुः आसमाप्तकर्मा पुनःपुनः यागप्रवर्तकः अवातः निश्चलश्च भवेति अन्वयः । B.—l. 14. (79, 9.) त्वं वेवसे ॥ त्वं चा ईवसे C 2. त्वं च ईवसे B. त्वं - ईवसे A. Ca.

P. 528. l. 16. (80.) एकादशं ॥ द्वादशं A. B. Ca.—l. 24. (80, 1.) A. Ca mark a lacuna after वट्. बला बङ्कहत्य B.—l. 28. (80, 2.) The commentary to this verse is given from B. A. Ca mark a lacuna.—P. 529. l. 9. (80, 4.) ग्राव B. ग्रावः A. Ca. M 1.—ll. 11 seqq. (80, 5.) वाजयु S 1. 2. 3. 4. P 1. P 4. वाजऽयुं P 3 pr. m. वाजऽयुः P 3 sec. m. P 2. In the commentary B reads वाजयुः and इच्छन् instead of इच्छत्. This seems preferable, as far as the sense is concerned.—l. 23. (80, 7.) पुरयसि A. Ca; deest in B. It may be meant for पुरायसि, as a denominative verb derived from पुरं.—l. 30. (80, 8.) स्थिता A. Ca. स्थितो Nir.—P. 530. l. 5. (80, 9.) सोमग्नि before सोमयाजी A. B pr. m. Ca, not C; struck out in B.

P. 530. l. 21. (81, 1.) त्वं तु from B.—अस्मभ्यं ॥ नोऽस्मभ्यं A. B. Ca. But नोऽस्मदर्थं is only in A. Ca.—l. 30. (81, 3.) वृष्णं A. Ca before वृषभं.—P. 531. l. 5. (81, 4.) स्वर्गं राजमानं from C.—l. 9. (81, 5.) उपगानं ॥ उपमानं A. Ca. B.—l. 10. स्वीकुर्विति A. Ca after अभिगृणातु.—P. 532. l. 1. (81, 9.) तव वाजा ॥ तव वाजाः अश्वाः B. तव अ A. Ca.

P. 532. l. 24. (82, 2.) ऊर्चिषे A. Ca. ओर्चिषे B and Pada text.—P. 533. l. 14. (82, 5.) सोऽस्माभिः ॥ सह अस्माभिः A. B. Ca.—परावत एव deest in B.—P. 534. l. 8. (82, 9.) त्वं पिब ॥ ता पिब A. Ca.

P. 534. l. 23. (83, 2.) अहःसु after सर्वेषु by conjecture.—l. 28. (83, 3.) A lacuna marked after संबंधि in A. C. Ca.—त्वात्कर्ताचिष्यते C. त्वा कर्ताचष्यते A. त्वा क्रतीचष्यते Ca. —l. 29. A. C. Ca mark a lacuna after विप्यिता, which has been supplied by विप्यितानि. Nothing else seems omitted. Cf. Nir. VI. 20, and Rv. Bh. VII. 60, 7.—l. 30. नोऽस्मानति पर्षय from B.—P. 535. l. 31. (83, 9.) ब्रुवे by conjecture. B puts it behind अपि च.

P. 536. l. 7. (84, 1.) रथी रथेन B. रथेधक A. Ca.—l. 8. काव्य ॥ क A. Ca. कः B.—l. 17. (84, 3.) °तमापे ॥ °तमेंद्र A. B. Ca; also the commentary to Sv. II. 5, 1, 18, 3.—l. 18. नृन्प इति ॥ तत्पति A. Ca; deest in B. Cf. Rv. Bh. I. 121, 1.—l. 21. रच त्वदन्यं ॥ रजनदन्यं A. C. Ca. रच त्वदन्यं comm. to Sv. II. 5, 1, 18, 3.—P. 537. l. 3. (84, 5.) तुभ्यं B. वसुभ्यं A. Ca.—l. 4. Instead of वच्यादेशस्य, the comm. to Sv. II. 7, 2, 7, 2, reads ब्रूञादेशस्य.—l. 9. (84, 6.) सुतीः to कल्याण° from Ca. सुतिरे पुत्रपौ° etc. A. सुतीः एवं कुरु या सु सुचितीः पुत्रपौ° etc. B.—l. 28. (84, 9.) साधयद्भिः ॥ साधायोभिः A. Ca.

P. 539. l. 4. (85, 7.) दृढांगोपेते B. दृढआवांगोपेते A. Ca.—l. 14. (85, 9.) सोमस्य by conjecture.

P. 539. l. 24. (86, 1.) भीतिमपनयतः ॥ भीतिं समनयतः A. Ca.—l. 26. असाविषायां ॥

अस्ताविघाद्या A. Ca. अस्ताविया C 2. अस्ताविया: B.—l. 28. निमित्तं ॥ सनिमित्तं A. Ca; lacuna in B.—l. 29. मा to स्थित्वा from Ca.—P. 540. l. 6. (86, 2.) धनं । तस्याभि° ॥ धनवतमभि° A. Ca. धनमभि° B.—l. 14. (86, 3.) °वह्नोस्व° A. Ca. °वह्योस्व° U*n*. Cf. Rv. Bh. X. 17, 1.

P. 541. l. 9. (87.) यत्स्थ इति Âsv. यत्स्थो A. Ca. M 1. See Rv. Bh. VIII. 10.—l. 14. (87, 1.) °नौ अयमनुपचीणस्तोत्रो etc. ॥ °नौ अयमनुचीणस्तोत्रो द्युम्नीक एतन्नामक ऋषिः । वां युवयोः स्तोमस्ता भवसि युष्मत्स्तुतौ A. C. Ca. °नौ वां युवयोः स्तोमः द्युम्नी अन्नवान् युष्मत्स्तुतौ B.—l. 18. देवते before ऽस्मिन् A. Ca.—l. 20. From तत्र to शीघ्र° left out in A. Ca.—l. 26. (87, 2.) A. Ca omit the commentary of verses 2, 3, and 4. This omission has been supplied from C.

P. 543. l. 17. (88, 1.) वसोः पात्रे निवसतः ॥ वसे प्रात्रः प्रतिनिवसतः A. Ca.—l. 33. (88, 2.) याचामह इति ॥ यवोमद्वति A. Ca.

P. 545. l. 18. (89, 1.) A. C. Ca mark a lacuna after देवनशीलं.—P. 546. l. 14. (89, 4.) गच्छंतु ॥ गच्छंति B. गच्छति A. Ca.—P. 547. l. 7. (89, 7.) स्तुत्वा etc. A. Ca. The construction is faulty. स्तुत्वा might be changed into स्तुतवंतः, but the mistake was evidently committed by the author himself, and not by the copyists.

P. 547. l. 13. (90.) समसंख्याकाः सतोबृहत्यः from C.—l. 22. (90, 1.) वा before अलंकृतानि by conjecture.—l. 33. (90, 2.) तत्पुत्रस्य ॥ न पुत्रस्य A. Ca.—P. 548. l. 7. (90, 3.) सम्यग्यो° Ca. सस्य यो° A. सप्तस्य यो° B.—l. 14. (90, 4.) तानि प्रह्वीभावयसि ॥ नानि प्रह्वीभवसि A. Ca.—l. 23. (90, 5.) ऋजीषी । ऋजीष etc. ॥ ऋजीषोपार्जितोभिषुतसोमः तद्वान् A. Ca. ऋजोषी उपार्जितः अभिषुतः सोमः तद्वान् B.

P. 549. l. 8. (91.) As the text and commentary of this hymn have been published by Professor Aufrecht in the Indische Studien, vol. iv. p. 1 seqq., I find it necessary to justify the readings adopted in my edition, and to state more fully the reasons for which I either agree with or differ from him.—l. 14. दंतघर्षण° C 2. C 4. दंतघर्ष° A. Ca, and Prof. Aufrecht.—l. 15. अत्र कन्या. This is the reading of all the MSS., and I see no necessity for adopting the conjecture of Prof. Aufrecht, अत्रिकन्या, in the sense of अत्रिसुता.—l. 19. After करिष्यामि it is absolutely necessary to insert इति, though A and Ca omit it. In C 2 the whole passage is omitted.—l. 23. The singular °युक्तं after the plural एतानि is certainly wrong. A. Ca. C 2, and C 4, however, agree in °युक्तं, and as the mistake may be an error of Sâya*n*a's, I abstained from changing it into °युक्तानि.—l. 24. खलतिं. Though खलति is given in the Dictionaries as an adjective only, there is very little, if any, doubt that Sâya*n*a used it here as a substantive. It would be easy to change खलतिं into खलतित्वं, a reading adopted by Prof. Aufrecht. But the MSS. are against this alteration, not only here, but again p. 551, l. 7. In our passage Ca. C 2, and C 4 have खलतिं; A has a lacuna. In the commentary to verse 5, however, A. Ca. C 2, and the B MSS. also, all agree in the reading खलतिं; तच्चापगमय, which follows, must be referred to शिरः. That खलति should be used by Sâya*n*a as an adjective also, is no valid objection, particularly as the passage where it is so used, is not

his own composition, but an extract from a Brâhma*n*a.—l. 25. तस्याः पुर्वापहता या त्वक् ॥ तस्याः पुर्वाभिहतायाः त्वक् A. Ca. C 2. The reading of the MSS. might be explained in the sense of 'the former skin of her who was thus being struck,' but the construction would not be in harmony with the general style of Sâya*n*a. Prof. Aufrecht proposed तस्याः पुर्वाभिहता या त्वक्, but the right reading is supplied by the B*ri*haddevatâ (VI. 914) from which this passage is borrowed, and not unfrequently *totidem verbis*. B*ri*h. MS. B has,

तस्यास्त्वगपहता या पुर्वा सा शल्यकोऽभवत्। उत्तरा त्वभवद्गोधा कृकलासस्त्वगुत्तमा ॥

MS. H has,

तस्यां त्वचि व्यपेताया सर्वस्यां शल्लकोऽभवत्। उत्तरा त्वभवद्गोया कृकलासस्त्वगुत्तमा ॥

The readings thus supplied by the B*ri*haddevatâ are of interest, because they show that according to the legend the cure of Apâlâ was effected by three skins being torn off her body. This is a new feature which to a certain extent weakens the similarity between this legend and some others of German origin, pointed out by Prof. Kuhn (Indische Studien, vol. i. p. 118).—The MSS. (A. Ca. C 2) have कृकलास्यो instead of कृकलासो, which is supported by the B*ri*haddevatâ.—l. 32. (91, 1.) सुता सुतौ Prof. Aufrecht. सुता स्कृति A. सुता सुती Ca. सुता सुतौ C 2. C 4. सुतौ B1. B4.—l. 33. After विद्लु लाभे A. Ca have अविरूपं।, C 2 अविरूपं, without a line at the end. Prof. Aufrecht has printed अटि रूपं, which would be appropriate if Sâya*n*a, during the whole of his commentary, ever used this expression, 'this is the form after the augment.' I have printed लङि रूपं, according to Sâya*n*a's usual style of interpretation, but I am by no means certain that this is the right reading. It may not be at all intended as a grammatical explanation, but as an adjective to सोमं. अविरूपं तं सोमं might be intended for Soma that has not been prepared for sacrifice, Soma in its original form, such as Apâlâ found on the road and took home with her. Or there may be some other technical term hidden in अविरूपं, such as अविपूतं, 'strained in sieves made of sheep-wool.' Cf. Rv. IX. 107, 2. नूनं पुनानः अविऽभिः परि स्रव. Rv. IX. 91, 2. मर्मृजानः अविऽभिः गोभिः अतऽभिः, etc. The reading remains doubtful.—l. 35. दंतध्वनिं B. दंते वाज A. दंते वाजं धनं Ca. C 2. Prof. Aufrecht has conjectured दंतराजिध्वनिं as the original reading which led to the corruptions in A. Ca, and C 2. This conjecture is extremely plausible, and I should prefer it, unless the simpler reading which I adopted were supported by the B MSS.—l. 36. The quotations from the Sâ*t*yâyani-Brâhma*n*a can hardly ever be completely restored from the MSS. of Sâya*n*a. There is no MS. of this Brâhma*n*a in any of the libraries of Europe, and though it is a Brâhma*n*a belonging to the Sâma-veda, it differs so considerably from the text of those of the Sâma-veda Brâhma*n*as which are known to us from MSS., that nothing can be gained by their collation. The story of Apâlâ is not to be found in any of the Sâma-veda Brâhma*n*as, though I examined them all most carefully. Now the language of the Brâhma*n*as is so peculiar and so

different from the common style of Sâyaṇa, that wherever we find an opportunity of comparing the original texts with the extracts given by him, we discover a more than usual number of blunders and omissions in all our MSS., and we see that, without the help of the originals, it would have been impossible to set them right. With regard to all such extracts from Brâhmaṇas in my edition of Sâyaṇa, I must crave considerable indulgence. They are given as well as they could be given with the means at my disposal; but they cannot be completely restored to correctness until we are able to procure the exact sâkhâs of each Brâhmaṇa from which they were copied or quoted by Sâyaṇa. -सोमांशुमविंदत् Prof. Aufrecht. सोमं सुमविंदत् A. Ca. C 2. The B MSS. never give these Brâhmaṇa passages.—l. 37. सा तमभिव्याजहार ॥ A. Ca have साभिव्याजहार, as printed by Prof. Aufrecht. An accusative is wanted with अभिव्याजहार, and its former presence is indicated by the readings of C 2. C 4, सा मभिव्याजहार.—अस्यै त इदं Prof. Aufrecht. अस्यै ता इदं A. Ca. अस्यै ता इंदं C 2. C 4. The emendation is by no means certain, इदं might be intended for इह.—P. 550. l. 15. (91, 3.) इच्छाम एव ।. All the MSS., A. Ca. C 2, and the two B's, have एव after इच्छाम, and at the end of the sentence, nor does there seem to be any necessity for changing, as Prof. Aufrecht does, एव into एवं, and making it the first word of a new sentence. एव answers to चन, which is here used in a restrictive or determinative sense. In the next sentence a conjectural emendation seemed necessary, A. B. Ca exhibiting a lacuna, and C being corrupt: इच्छाम एव मम गृहमागच्छतं त्वामिंद्र इति जानीम एव इह मार्गे एवागतं त्व त्वां नाधीमसि नाधिगम अत्रापि चामत्यवधारणे इह त्वामिंद्र इति न जानीम इत्यपालतमिंद्रमुक्त्वा C 2. C 4. इच्छाम एव मम गृहमागच्छतं त्वामिंद्र इति जानीम एव इत्यपालयतमिंद्रमुक्त्वा A. Ca. इच्छाम एव अपि चन त्वनिमसि मम गृहमागतं त्वां इंद्र इति जानीम एव इति अपाला तमिंद्रमुक्त्वा B 1. The omission in A. B. Ca had probably been supplied in the margin of the original of the C MSS., and was afterwards inserted in the wrong place in the C MSS. In any case, it seems necessary, though without the sanction of any of the MSS., to insert the negative particle न before जानीम एव.—l. 18. कुत्सितं ॥ कुत्सितः A. Ca. C 2, and Aufrecht. It is intended, however, as an adverb qualifying शनैः, and ought to be in the neuter.—l. 20. °मुखादेवाधासीत् ॥ A. Ca have °मुखादेवावधासीत् ।, C 2 and C 4 °मुखादेवावध्यसीत्. Prof. Aufrecht has अघासीत्, which most likely is a misprint, considering the rule of Pâṇ. II. 4, 37.—l. 29. (91, 4.) The commentary to कुविन्नो वस्यसस्करत् is preserved in C 2 and C 4. The omission in A and Ca arose from the scribe mistaking the two करोतु at the end of each sentence. B has किंच वस्यसः प्रशस्ताः करत् करोतु.—l. 30. It would be better to leave out बहु after कुवित्, because बहुवारं follows; but A. Ca. C 2, and B have it.—l. 31. अत एव यतीः ॥ अत यतीः A. Ca. C 2. अथ यतीः B. Prof. Aufrecht conjectures, in the spirit of Sâyaṇa, अत एव यतीः, which I have adopted, although it is difficult to understand how the mistake arose in A and in B. With reference to the first verse one might conjecture अवयतीः, but this would not be in the usual style of Sâyaṇa.—P. 551.

l. 11. (91, 5.) नासुत्तान्यु ह ॥ वस्तुस्थान्यु ह A. Ca. C 2. The emendation here proposed by Prof. Aufrecht seems to me to admit of no doubt.—l. 16. (91, 6.) There was no necessity for changing, as Prof. Aufrecht does, the reading of the MSS. यासा उर्वरा into या सोर्वरा, यासा reproducing the words of the text, namely, या and असौ. B has असौ च या. In line 17 too the reading of the MSS. अथो अथापि च is unobjectionable, and ought not to have been changed. B has अथो अपि च.—l. 25. (91, 7.) निष्कर्षणेन पूत्वी Prof. Aufrecht. निष्कर्षणे वा A. Ca. C 2. B leaves out निष्कर्षणेन, and reads पूत्वा शोधयित्वा etc.—l. 27. The last extract from the *Sâtyâyanaka* is very corrupt, and the text as printed by me differs materially from that of Prof. Aufrecht. I shall first give the readings of the MSS.:

तां खे रथस्याघ्यबृहत्सा मोर्द्वाभवत्तां खे नसेनसो त्यवृहत्त्सा संश्लिष्टकाभवत् A.
तां खे रथस्या व्यवृहत्सा मोर्द्वाभवत्तां खे नसेनमो त्यवृहत्सा संश्लिष्टकाभवत् Ca.
तां खे रथस्याव्यवृहत्सा मोर्द्वाभवर्ता खे नसो त्यवृहत्सा संश्लिष्टकाभवत् C 2.

Prof. Aufrecht has introduced the following conjectures:

तां खे रथस्यासाद्य बृहत्सामोर्ध्वाभवत्तं खेऽनस आसाद्य बृहत्साम संश्लिष्टकाभवत्[1].

I do not think that I understand the meaning of the passage as here given by Prof. Aufrecht, nor do I see how the *Bri*hatsâma comes suddenly in, though nothing is said of it in Sâya*n*a's comment. I believe that in °बृहत् we must recognise the verb b*ri*h, 'to drag,' 'to pull,' and with अति this would be synonymous with अतितृष्, as used immediately afterwards. Thus the construction would be, 'he dragged her through the hole of the chariot, she became this; he dragged her through the hole of the cart, she became that.' But what did she become? What is मोर्द्वा, and what संश्लिष्टका? As the first skin that came off was शल्यकः, i.e. a hedgehog, and the second a गोधा, i.e. an iguana, it might be said that when she had been dragged through the first hole, she, having thrown off the hedgehog skin, had become a गोधा, an iguana, and this गोधा might stand for मोर्द्वा. But if this be so, then it would follow that after the second pulling through, she, having lost the iguana skin, became a कृकलास, i.e. a chameleon, and of this no trace is to be discovered in संश्लिष्टका. Here then we must wait till new MSS. of Sâya*n*a can be procured, or till the original of the *Sâtyâyanaka* can be discovered.—l. 30. सूक्तं ॥ युक्तं A. यूक्तं Ca. सूक्तं C 2. The sense requires सूक्तं, and युक्तं in Prof. Aufrecht's text is probably a misprint.

These few notes on one short hymn may serve as a specimen of the difficulties, some of them insurmountable, with which an editor of Sâya*n*a has to grapple. Before I could make up my mind to give up the extracts from the Brâhma*n*as as hopeless, I looked not only through the whole of the Tâ*nd*ya-Brâhma*n*a, but I searched wherever there was a chance of finding the story of Apâlâ. Unfortunately the MS. of the Nitima*ñg*arî, which is very useful for

[1] Prof. Aufrecht informed me that सामसंश्लिष्टका in one word was a misprint.

verifying legends mentioned by Sâyana, is very deficient in the sixth Ashtaka, and does not contain the story of Apâlâ. The Rvdh. II. 34 gives one verse, of no interest whatever, viz. कन्या वारिति सूक्तं तु सततं नियतो जपेत्। त्वग्दोषिणीं तथालोम्नीं क्षिप्रं तस्मात्प्रमोचयेत्॥ Again, the Brihaddevatâ VI. 907 seqq. offers but little help. I copy the text from two MSS. in my possession:

अपालात्रिसुता त्वासीत्कन्या त्वग्दोषिणी पुरा[1]। तमिंद्रस्य कमे दृष्ट्वा विजने[2] पितुराश्रमे॥
तपसा बुबुधे सा तु सर्वमिंद्रचिकीर्षितम्। कन्या वारिति चैतस्यामेषोऽर्थः कथितस्ततः॥
सा सुषाव मुखे[3] सोमं सुत्विंद्रमाजुहाव तं। असौ य एषीत्वनया पपाविंद्रस्य तन्मुखात्॥[4]
अपूपांश्चैव सक्तूंश्च भक्षयित्वा स तद्गृहात्[5]। उदकुंभं समादाय अपामर्थे जगाम सा॥[6]
ऋग्भिस्तुष्टाव सा चैनं जगादैनं तृचेन तु।[7] सुलोमामनवद्यांगीं कुरु मां शक्र[8] सुत्वचं॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतस्तेन पुरंदरः। रथच्छिद्रेण तामिंद्रः शकटस्य युगस्य च॥
प्रक्षिप्य निश्चकर्ष त्रिः सुत्वक् सा तु ततोऽभवत्।[9] तस्यास्त्वगपहृता या पूर्वा सा शल्यकोऽभवत्॥[10]
उत्तरा त्वभवद्गोधा कृकलासस्त्वगुत्तमा। इतिहासमिदं[11] सूक्तं त्वाहतुर्यास्कभागुरी॥[12]
कन्येति शौनकस्त्विंद्रं पांतमित्युत्तरे च ये।[13]

The last work to be consulted was Shadgurusishya's commentary on the Sarvânukramanî, but here too we find but little that is really valuable. (See also Anukr. M. p. 142 seq.)

कन्या वाः सप्तात्रेय्यपालेतिहास ऐंद्र आनुष्टुभं द्विपंक्त्यादि। अवायती[14]। अपाला नाम ऋषिकात्रिपुत्रिका। इंद्रमधिकृत्यापाला नाम[15] तपश्चचार सोमा नाम समामनंति[16]। ऐंद्र इतिहासः। अत्रोच्यत इति शेषः। इतिहासस्त्वयं।[17]

अपालात्रिसुता त्वासीत्कन्या त्वग्दोषिणी पुरा। अत एव दुर्भगेति भर्त्रा त्यक्ता सती पथि॥१॥
सौम्याद्रसादिंद्रतृप्तिरिति यज्ञस्य वाक् श्रुतेः।[18] अन्विच्छंती सोमलतां जलायावतरत्तदा॥२॥[19]
सोममप्यविदत्कन्या अथागात्पितुराश्रमं।[20] तामिंद्रश्चकमे दृष्ट्वा[21] विजने पितुराश्रमे॥३॥
तपसा बुबुधे सा तु सर्वमिंद्रचिकीर्षितं। सुषाव स्वमुखे सोमं स्विंदंतैर्ग्रावभिस्त्विति॥४॥[22]
तस्या भक्त्यतिरेकेण पपाविंद्रस्य तन्मुखात्।[23] निरगात्स क्वचित्पूर्वं भक्षयित्वा गृहात्पुनः॥५॥[24]

[1] परा B. [2] वो° H. [3] मुखात् H.
[4] सा सुषाव मुखे सोमं पपाविंद्रस्य तन्मुखात्॥ B.
[5] शतक्रतुः H. [6] Deest in H.
[7] ऋग्भिस्तुष्टाव चैवैनं सोममिंद्रं तृचेन सा। H.
[8] शुक्र B. [9] ततः सा सुत्वचाभवत्। H. K.
[10] तस्यां त्वचि व्यपेतायां सर्वस्यां शल्लुकोऽभवत् H.
[11] °मिमं H. [12] °रिः B. यास्कमातरौ H.
[13] शौनकः सूक्ते पांतमिंद्रे ततः परे। H.
[14] The commentator always gives the word immediately following the pratika.
[15] This passage is very corrupt. The MS. of the E. I. H. (A) reads अपाला नाम ऋषिका अपुत्रिका यां मधिहृत्य अपाला नाम, (B) अपाला नाम ऋषिका कन्या अत्रिपुत्रिका। यामधिकृत्यापाला माम. One might conjecture कायमधिकृत्य, 'for the sake of her body;' but, with reference to p. 549. l. 12, I prefer इंद्रमधिकृत्य.

[16] This is equally corrupt. I have given the text of A; B has मामा समामनंति।. It may be the beginning of the story in the Sâtyâyana-Brâhmana, followed by इत्यामनंति।.
[17] B has ऐंद्र इतिहासः। इंद्रसंबंधीतिहासः। अत्रावगंतव्य इति शेषः। इतिहासश्चायं।. A has अवोच्यत and इतिहासत्वाय।.
[18] This is printed after B; A differs considerably, without being more intelligible, तृप्तिरिंद्र इति यज्ञस्तुत्युपायो भूत्।.
[19] This is again printed from B; A has अनिछंती सोमयालं कृतांजलयावत्तरत्तदा।.
[20] A has कन्यायोगात्यत्पितुराश्रमं।.
[21] दृष्ट्वा A, and B sec. man., instead of दृष्ट्या?
[22] A has साश्रुपात मुखे सोमं स्विंदंतै° etc.
[23] ययामिंद्रश्चतुर्मुखात् A.
[24] निरगात्क्वचित्पूर्वं तु भक्षयित्वा यहन्पुनः। A.

उदकुंभं समादाय तेन सार्धं तु साप्यगात् ।[1] ऋग्भिः स्तुत्वा जगादेंद्रं कुरु मां सुत्वचं त्विति ॥६॥
रथच्छिद्रे गतामिंद्रः शकटस्य युगस्य च । प्रक्षिप्य निश्चकर्ष त्रिः सुत्वक् सा तु ततोऽभवत्[2] ॥७॥
तस्याः पूर्वहृता या त्वग्जातिः[3] सा शल्यकोऽभवत्[4] । उत्तरा त्वभवद्गोधा कृकलासस्तथोत्तमेति[5] ॥८॥

P. 552. l. 14. (92, 2.) गाथायोग्यं ॥ गातयोग्यं A. Ca.—l. 15. लोटि ॥ लिटि A. Ca. C 2. It might be लिङि; see, however, Rv. Bh. I. 84, 5. Instead of ध्वमस्त° the MSS. have ध्वस्त°.—l. 22. (92, 3.) यत्वा ॥ दत्वा MSS.—l. 28. (92, 4.) Instead of इंद्रो: and चरत् A. Ca. C 2 have इंद्रः and चरंतं.—P. 553. l. 20. (92, 7.) स्नुह् ॥ स्नुह् A. Ca. Cf. Rv. Bh. I. 34, 8. Dhp. 22, 59 61.—P. 554. l. 10. (92, 11.) तवादातॄन् ॥ तव दातॄन् A. Ca. तव शत्रून् B.—l. 17. (92, 12.) श्रीत्वा° ॥ The MSS. have श्रीत्वा°. This term can only refer to Pâ*n*. VI. 1, 93. One should expect आत्वा°, but श्रीत्वा° may be intended for आ + श्रीत्वा°.—l. 23. (92, 13.) स्पष्टाके after वज्रवन्निंद्र in A. Ca, स्पष्टके in C 2.—P. 555. l. 9. (92, 16.) प्रदीयमानेन सोमेन ॥ प्रदीयमानसोमेन A. Ca. M 1. प्रदीयमानः सोमः B 1. See next verse.—P. 556. l. 5. (92, 21.) Cf. Rv. VIII. 13, 18.—l. 23. (92, 24.) कुचये ॥ तुनक्त A. Ca. C 2.—l. 32. (92, 25.) स्तौति ॥ नौत A. Ca.—P. 557. l. 9. (92, 27.) समीपात्त्वां ॥ मृगपात्वां A. Ca. C 2.—l. 29. (92, 30.) तंद्रयुक्त इत्युक्तं ॥ तंत्रयुक्तमित्युक्तं A. Ca. C 2.—l. 30. कर्मान्वितो ॥ कर्मवतो A. B. Ca.

P. 558. l. 30. (93, 1.) एतादृशानुभावं ॥ एतादृशं अनुभवि A. Ca.—P. 559. l. 17. (93, 4.) तदा A. Ca. C 2; there is no यदा to which this तदा answers.—l. 30. (93, 6.) ये सोमा ऋत्विग्भिः ॥ ते सोमाः सुनोतेः कर्मणि लिटि व्यत्ययेन श्रुः । शक्तः - - ऋत्विग्भिः A. Ca. This grammatical explanation which was intended to account for the absence of reduplication in सुन्विरे was probably a marginal note and afterwards inserted in the text.—P. 560. l. 4. (93, 7.) After स्तुतः सन् A. Ca. C 2 insert वृत्रं हेतवे वाजयामसि वाजवंतं करोतीत्यर्थे तत्करोतीत्यर्थे तत्करोतीति णिच् । णाविष्टवदिति णेरिष्टवद्भावात् टिरिति टिलोपः विन्मतोर्लुक् । विक (वि omitted in Ca. C 2) - - - र्थमिति वचनान्मतुपो लुक्. This is evidently a marginal note which was inserted in the text. Cf. Rv. Bh. I. 4, 9.—l. 14. (93, 9.) वज्र आयुधं ॥ वज्रायुधं A. Ca.—l. 26. (93, 11.) सर्वत्रानयतीति ॥ सर्वत्र मनयंति A. Ca. सर्वत्रानयेति M 1.—P. 561. l. 4. (93, 12.) °शिरस्त्राणिंद्र A. Ca. It ought to be °शिरस्त्राण वेंद्रः.—l. 10. (93, 13.) A. Ca omit पक्ष्णीषु altogether, B 1 inserts it after रोहितवर्णासु, but without explanation.—l. 15. (93, 14.) परिगमिता ॥ वनिगमिता A. Ca. C 2.—l. 31. (93, 16.) Sâya*n*a read आशुषे (or आशूषे?) instead of आ । शुषे.—P. 562. l. 30. (93, 20.) °गच्छतु ॥ °गच्छति A. Ca.—P. 563. l. 3. (93, 21.) भवानीति ॥ नवामीति A. Ca. भवामिति C 2. ददामि इति B.—l. 17. (93, 23.) उक्तं ॥ उक्त A. Ca. The lacuna is the same in A. Ca; in C 2 the letters र - वि have disappeared.—l. 19. विसृजंति ॥ विसृजन A. Ca. विसृजन् B. C 2.—l. 22. (93, 24.) हविर्भिः ॥ हविः A. Ca. C 2.—l. 24. - - वादिषु Ca. C 2. वादिषु A. B has only the second explanation: हितकरं.—P. 564. l. 9. (93, 27.) The commentary to verse 27 is left out in A. Ca. C 2; it is supplied from B.—P. 565. l. 2. (93, 31.) श्रुतेऽत्रापि ॥ श्रुते तत्रापि A. Ca. श्रुतेन तत्रापि C 2. l. 14. (93, 34.) From धत्तम to धत्तम supplied by conjecture, in accordance with Rv. Bh. I. 20, 7.

[1] पानार्थं ययमप्यगात् । A. [2] सुत्वक् सद्यः स वै भवत् A. [3] °तायास्त्व° A.
[4] शल्लको B. शल्यका A. [5] तथो त्तमे A.

P. 565. l. 22. (94.) विंदु॰ ॥ विदु॰ A. Ca. B has विदुः पूतदक्षो वा ऋषिः. In the Anukr. quotation A. Ca read विंदुः.—P. 566. l. 20. (94, 5.) तना । ततमूर्णास्तुकेनेति ॥ तना तत पूर्णास्तुको नति A. Ca. सनातन पूर्णा स्तुकेनेति C 2. The reading which I have adopted is conjectural and very doubtful. ऊर्णास्तुका and स्तुका are always used as feminines in the sense of 'a braid of hair.' Cf. BR. s.v., and Dr. Haas, Indische Studien, vol. v. p. 237; Sat. Br. III. 2, 1, 13; III. 5, 2, 18, etc. In the Ait. Br. I. 28, Sâya*n*a explains ऊर्णास्तुकाः by अविसंबंधिरोमविशेषाः ।. स्तुपः, however, which is likewise used in the sense of 'a braid' (Dr. Haas, l. c.), is certainly a masculine, and it is possible therefore that स्तुक was likewise used in that gender. It hardly admits of a doubt that Sâya*n*a wrote स्तुकेनेति, for the reading of A. Ca was likewise intended for स्तुकेनेति. The copyists were evidently ignorant of the word ऊर्णास्तुक, and changed it into पूर्णास्तुकेनेति. Sâya*n*a does not give the same or a similar explanation of तन् in other passages where तना पूत occurs, but see Rv. Bh. IX. 66, 28.—l. 28. (94, 6.) सेवां ॥ सवां A. Ca. C 2.

P. 568. l. 14. (95, 2.) After पिब C 2 adds यद्वा क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यमिति संप्रदाने चतुर्थ्यर्थे बहुलं छ्टी तदिदं सोमरूपमन्नं शीघ्रं पिब ।.—l. 22. (95, 3.) मरुद्गणानां ॥ मरुत्सोमानां A. Ca. मरुत्समानानां B. मरुत्संघानां ?—P. 569. l. 8. (95, 5.) प्रत्नां पुरातनं etc. The variation in the gender is kept up throughout, though the carelessness of the copyists sometimes disturbs the accurate construction of the commentator. B has प्रत्नां पुरातनं ऋतस्य सत्यस्य संबंधि पिशुषीं प्रवृद्धं चिकित्विन्मनसं ज्ञानिनं अतींद्रियार्थदर्शनेन ज्ञातानि सर्वेषां हृदयानि यया तां तादृशं धियं त्वदीयं रक्षणाख्यं तस्मै कुरु ॥—P. 570. l. 14. (95, 9.) धनादीनि B. धनकवधनादीनि A. Ca. कनकवधनादीनि C 2.

P. 570. l. 20. (96.) इष्यामि वो etc. ॥ इष्यामि वो मरुद्देवत्यः अव द्रप्स A. इष्यामि वो मरुत इति पादो मरुद्देवत्यः । अव द्रप्स Ca. पिष्यामि वो मरुतामिति पादो मरुद्देवत्यः ॥ B. See commentary on verse 14. l. 30. (96, 1.) वेदाध्ययनादीनि B. वेदाध्ययनानि शास्त्रश्रवणः चिंतयादीनि Ca. A.—P. 571. l. 8. (96, 2.) दर्भपिंजूलमुद्धृत्य Ca. दर्भक्षतमुद्धृत्य A. दर्भपुंजीलमुद्धृत्य TS.—l. 32. (96, 4.) After सत्वनां A. Ca add सत्वानां. The derivation varies; it is either from षण or षद्.—P. 573. l. 4. (96, 8.) नवसु ॥ ववंसु A. वसु Ca. सुर C 2.—सप्त सप्त निपादिताः ॥ सप्त सप्ततिपादिताः A. Ca. सप्त तिपादिताः C 2.—l. 5. तत्रादितः ॥ तत्र अहितेः A. Ca. तत्रादि M 1.—l. 6. षष्ठो गणः ॥ षष्ठे गर्भाः A. षष्ठो गर्भाः Ca. C 2. See VS. XVII. 86; XXXIX. 7; and Weber, Vâ*g*asaneyi-Sa*m*hitâ, p. xxxiii.—l. 19. (96, 9.) ऋजीषं ॥ ऋजीषी A. M 1. ॰षा or ॰षी Ca. ॰षि B.—ll. 25 to 27. (96, 10.) C 2 reads कल्याणतमेंद्राय सुवृक्तिं शोभनां स्तुतिं प्रेरय वोदय कुरु किमर्थ पशुः पशोः विपाशतुष्याश्च पशोर्मम अस्मदीयाय गवे वा यद्वा पशोरितींद्रियार्थं द्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं गवे सुखादिकं प्रदातुमिंद्राय स्तुतिं प्रेरया एतदेवाह etc. A. Ca read कल्याणतमायेंद्रायाय गवे वा यद्वा पशोरतींद्रियार्थं द्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं गवे सुखादिकं प्रदातुमिंद्राय पूर्वीः etc. B reads कल्याणतमायिंद्राय सुवृक्तिं प्रेरय किंच य अश्वः अतींद्रियार्थद्रष्टुमम धनादिकं दातुं पूर्वीः etc. All the other MSS. being incomplete, the passage has been supplied from C 2, though it is very doubtful whether Sâya*n*a wrote it.—P. 574. l. 30. (96, 13.) कुरून्प्रति A. Ca. गुरून्प्रति B*r*ih. MSS. (B and A).—l. 31. योत्स्यमानं सुसंहृष्टः B*r*ih. MSS. (A. B. II). योत्स्यमानं सु सं॰ A. Ca. योत्स्यमानसु सं॰ C 2. —

तानायतः Bṛih. MSS. (A. H. B). तानायुतान् A. Ca. C 2.—l. 32. After देवान्पुनर्विभो the MSS. of the Bṛih. add श्रुत्वा देवगुरोर्वाक्यमनर्थं वृत्रशंकया ।—l. 33. शक्र श्रोजसैव बलाद्वली Bṛih. MSS. (A and B). शक्र खड्ग एव लो: C 2. शक्रः खड्ग एव बलान्बलि: A. Ca. शक्र नं र्ज सैव बलाद्वली Bṛih. MS. (H).—देवानादाय तं पपुर्विधिवत्सुराः Bṛih. MSS. (A. B). देवायनायाय तं पुनर्विधिवत्पुरा । A. देवानायाय तं पुनर्विधिवत्पुरा । Ca. C 2. देवानातं पयुर्विधिवत्सुराः । Bṛih. MS. (H).—जघुः पीत्वा C 2. Bṛih. MSS. (H. A. B). जघुः पत्वा A. Ca.—l. 34. एतद्नार्षत्वे नाद्रणीयं A. Ca. C 2. The whole passage from the Bṛihaddevatâ seems to have been here inserted by a later hand. It is not given in B, but it could hardly be called anârsha, being taken from the Bṛihaddevatâ.—P. 575. l. 2. उद्स्य A. Ca. C 2. B.—P. 576. l. 1. (96, 16.) °न्नेवाशत्रुभ्यः ॥ °न्नेव शत्रुभ्यः A. Ca. C 2.—l. 4. ते प्रकाश्यानु° ॥ ते प्रकाश्यः । अनु° A. Ca. प्रकाश्यः अनु° B.—l. 23. (96, 18.) छंदोविषयत्वान्निपातनं ॥ छंदोविषयत्वानिपातन A. Ca. C 2. See Amara-kosha III. 4, 18, 113.

P. 581. l. 20. (97, 13.) सर्वदिक्स्थं ॥ सर्वदिक्कं A. Ca. C 2.

P. 582. l. 16. (98.) नृमेधस्य A sec. m. नृमेधाषस्य A pr. m. Ca. नृमेधाख्यस्य C 2.—l. 18. आद्यश्चेत्पुरउष्णिक् ॥ °श्चेत्ककुप् A. Ca. M 1.—P. 583. l. 8. (98, 3.) प्राप्नोः ॥ अप्राप्नोः A. B. Ca. M 1.—l. 23. (98, 6.) After दस्योः A. Ca. C 2 insert वृथाकालस्य.—l. 30. (98, 7.) सस्वज्महे ॥ सज्महे A. B. Ca. M 1.—P. 584. l. 10. (98, 9.) उरूयुगे A. B. Ca. All the Saṁhitâ MSS. (S 1. 2. 3. 4) read उरुयुगे.

P. 585. l. 25. (99, 3.) करोति भागं ॥ A. B. Ca insert अतो before भागं.—l. 26. रश्मयः ॥ अयः A. Ca. C 2.—P. 586. ll. 15, 17, and 20. (99, 6.) अथयंत ॥ The Saṁhitâ and Pada MSS. have distinctly श्र; S 3 had श्र, which was corrected in red ink. The commentary, however, has श्र; A. B. C 2 distinctly; Ca less distinctly.—l. 26. (99, 7.) जेतारं etc. ॥ A leaves out all between जे- and वर्धयितारं ।. The lacuna is supplied from Ca and C 2, which agree with each other except that Ca has गंगारं for गंतारं. B has an independent interpretation, as often, आशुं शीघ्रमागंतारं शत्रूणां जेतारं हेतारं देवानामाह्वातारं रथीतमं रथिनां मध्ये श्रेष्ठमतूर्तं स्वाश्रितानामहिंसकं etc.

P. 587. l. 9. (100.) In A and Ca all between अनुष्टुभः, in the quotation from the Anukr., and त्वे पश्चौ यद्वाग्वदंतीति, in the first Viniyoga, is left out. In C 2 the lacuna extends from आत्मानमस्तौदिति to वाग्देवत्वे ।. As these introductory passages are always wanting in B, the passage had to be supplied by conjecture.- l. 12. इति । प्रयाणसमये वयसाममनोज्ञा वाचः ॥ प्रणवो याच्या । सनये वयं साम ये वयं साममनोज्ञा वचः A. Ca. याणसमये वयसाममनोज्ञा वचः C 2.—P. 588. l. 29. (100, 6.) भवति C 2. वेति A. Ca. B.—P. 590. l. 14. (100, 12.) अभिवृत्य A. Ca. अभितप्य Bṛih. MSS.—l. 15. उद्यतस्य तु A. Ca. °स्येव Bṛih. MSS.—l. 16. तदेतदखिलं etc. तदेतदखिलं प्रो सखे विष्णो इति वृचेति A. Ca. तदेतदखिलं सर्वमृषिणोक्तं सखेत्यृचि Bṛih. MSS. (A and B). तदेतदखिलं प्रोक्तं सखे विष्णुविति त्वृचि Bṛih. MS. (H).

P. 590. l. 21. (101.) तृतीया गायत्री ॥ तृतीया हि गायत्री A. Ca. B. तृतीयात्री C 2. In the quotation from the Anukr. all the MSS. have तृतीयादि.—P. 591. l. 9. (101, 2.) वर्षिष्ठयत्वा A. Ca. °ष्ठेनौ B.—l. 21. (101, 4.) पुनःपुनर्ह° ॥ पुनर्पुनह° A. पुनपुनर्ह° Ca. पुनः ह° B.—P. 594. l. 5. (101, 14.) तथा चैतरेयब्राह्मणं ॥ तथा चैतस्मे ब्राह्मणं A. Ca. A. Ca leave

out all from इमाः प्रजाः to इमाः प्रजाः. It has been supplied from C 2. C 4.—l. 9. स तपोऽतप्यत स प्रजा असृजत ता॥ स तपनीतप्यत स स्रजे ता A. Ca.—l. 11. From अभितो to अभितो left out in A.—इमाः पराभूताः ॥ इमाः मपाराभूताः A. Ca. The whole passage is very different from Sat. Br., but it would not have been safe to correct it either after the text of the Mâdhyandina or after that of the Kâ*n*vasâkhâ.

P. 594. l. 32. (102.) °यविष्ठयोर्वा Anukr. °यविष्ठयोर्वा A. Ca. Cf. Anukr. M. p. 33.—l. 33. बृहद्वय इत्य° Âsv. बृहद्वय अ° A. Ca. M 1.—P. 596. l. 20. (102, 11.) वाश्निनमिति Nir. °नामिति A. Ca. M 1.—l. 25. (102, 12.) हतशत्रुजनं C 2. ह शत्रुजननं A. Ca. शत्रुहननं B.—P. 597. l. 14. (102, 16.) धीतिमिर्निधानैः C 2. दीधितिभि निधानः। A. Ca. धीतिभिः दीप्तिभिः निधानः B. धीतिभिरिधानः?—l. 28. (102, 19.) वनन्वति काष्ठानि हंति ॥ वनन्वती काष्ठानि हंति A. Ca. वनन्वति काष्ठानि संति C 2.—P. 598. l. 6. (102, 20.) यानि कानि चेति TS. यानि चेवि A. Ca.—l. 7. सर्वमस्मै स्वदते TS. सर्वस्मैत्स्वदते A. Ca.—l. 10. (102, 21.) A. Ca. B leave out all from काष्ठादिकं to काष्ठादिकं.

P. 598. l. 19. (103.) पंचम्याद्ययुजः A. Ca. पंचमी विराड्रूपा सप्तम्याद्ययुजः M 1.—ककुब्गायत्री C 2. ककुब्गयेत्रीं A. Ca. ककुब्भसीयसी M 1. See Anukr. M. p. 33; Prât. 1000.—l. 23. There is an evident omission in the second Viniyoga. The T*rik*a which is optional for the Maitrâvaru*n*a priest at the Âbhiplavika Ukthyas, if it is taken from our hymn, can only have consisted of verses 8, 9, 10; no other verses, as far as I am aware, being enjoined by Âsv. for such a purpose. We ought therefore to insert प्र मंहिष्ठायेति after मैत्रावरुणस्य, and अभि प्रयांसि वाहसा प्र मंहिष्ठाय गायत । आ° ७. ८. । इति । after सूचितं च. From the Sûtra quoted by Sâya*n*a it is clear that he referred likewise to a third Viniyoga, namely, the Adhyâyopâkara*n*a, in which the first and last verses of each Ma*n*d*ala are enjoined. The text might be restored as follows: उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलाद्यंतहोम आग्ने याहीत्येषा । सूचितं च । आग्ने याहि मरुत्सखा यत्ते राजन्कृतं हविः । आ° गृ° ३. ५. ७. । इति ॥ It is impossible, of course, to restore by conjecture the very words which Sâya*n*a used, and I have therefore not inserted them in the text. The MSS. give no help. A. Ca read मा त्विदाग्ने, C 2 मा चिदाग्ने; अग्ने इति at the end is found in all, instead of अग्न इति.—P. 599. l. 12. (103, 3.) B adds इव पूरणः at the end of the verse.—l. 25. (103, 5.) यथा स B. यथा A. Ca.—P. 600. l. 21. (103, 9.) From यज्ञो to यज्ञो left out in A. Ca.—l. 22. अस्याग्नेः ॥ तस्यासाग्नेः A. Ca. आस्याग्नेः B.—l. 23. बज्रवारं B. बज्र A. Ca. C 2.—P. 601. l. 16. (103, 13.) One expects a verb, like स्तुवंति, after अभिगमनैरपि.

MANDALA IX.

P. 602. l. 6. (1.) यथार्थमा वा ग्रहग्रहणात् Âsv. MS. E. I. H. 2075 and commentary. यथार्थमावापग्रहणात् A. Ca. Cf. Windisch, Zwölf Hymnen, p. 71.—l. 24. (1, 4.) °सा धानावन्नेन ॥ °सात्मकेनान्नेन A. Ca; both in marg. धानाया. °सा रसात्मकेनान्नेन C 2. °सात्मकेनान्नेन B 4. °सा धात्मकेनान्नेन B 1.—P. 603. l. 6. (1, 6.) अद्धा वै etc. Cf. Sat. Br. XII. 7, 3, 11.—l. 13. (1, 8.) प्रेरयित्वा A. B. Ca.—l. 14. °सदृशांशुमेनं सोमं A. Ca. °सदृशांशुमेमनं सोमं C 2. °सदृशमंशुं सोमं B 4. °सदृशं मधु सोमं B 1.

P. 604. l. 4. (2, 2.) **प्सरः पानीयमंध ॥ प्सरः पानीयमंध अन्नं** B 1. **पारः पानीयमंध** A. Ca. B 4. **प्सरः पप्सानीयमंध** C 2.—l. 17. (2, 5.) **ममृजे । मृज्यते ॥ ममृजे ममृज्यते** A. Ca. B 1. 4. **मर्मृज्यते** C 2. **मर्मृज्यते** (Pân. VII. 4, 91, vârt.) would hardly suit Sâyana's style, unless verse 7 was in his mind while he was writing.—P. 605. l. 3. (2, 9.) **०स्यामृतस्य** C 2. **०स्यामत्तस्य** A. Ca. **०स्य सोमस्य** B 1. 4.

P. 605. l. 18. (3, 2.) **अथर्यो विप ॥ अध्वर्यव** A. Ca.

P. 606. l. 24. (4.) **सन** Ca. Anukr. **सना** A. M 1.

P. 608. l. 8. (5.) **काश्यपस्य पा०** C 2. **शौनकस्य पा०** A. **शौनकस्य पा०** Ca. **शौनकस्याप्रास्तक्तं** in B 1 after the words **पंचमं सूक्तं**; the same in B 4, but altered into **शौनकस्याप्रीसूक्तं**.—l. 16. (5, 2.) **अद्भ्योऽंशवो जा० ॥ अभ्यः सवो जा०** A. **अभ्यः संवो जा०** Ca. **अभ्यः संबो जा०** C 2. B omits the quotation.—P. 609. ll. 25, 27, and 30. (5, 10.) **अङ्घ्रि** S 3. S 4. P 3. A. B. Ca. **अंग्धि** S 1. P 4. M 1, and Aufrecht. **अंङ्घ्रि** P 1. **अग्धि** S 2. See Rv. X. 156, 3.

P. 610. l. 7. (6.) The quotation from the Anukramanikâ left out in all the MSS.

P. 611. l. 21. (7, 1.) **अस्त्रग्रं । सृज्यंते ॥** A has between these words **हविर्द्धाना**, and in marg. **युजो युक्तान्**; Ca **हविर्द्धाना**, and in marg. **युजो युक्ता वान्**; C 2 **हविर्द्धाना**, and nothing in marg.; B 1 **अस्त्रग्रं युक्तान् ज्यते**; B 4 **अस्त्रग्रं -- सृज्यंते**, in marg. **हविर्धानं**. As A. Ca. C 2 in verse 3 leave out the words **युजो युक्ता वाचः**, there can be no doubt that these words, written on the margin, were transferred by mistake from the third to the first verse. The two little strokes placed over the word **हविर्द्धाना**, in order to show that this word should be left out altogether, induced the copyist to insert **युजो युक्ता** after **अस्त्रग्रं**.—l. 23. (7, 2.) **धारा** Pada MSS. **धाराः** Sâyana.—P. 612. l. 25. (7, 9.) **संजयतं ॥ संजयितं** MSS.

P. 613. l. 9. (8, 3.) **अभिलषितः ॥ अभिपितः** A. Ca. **अभिलिषितः** C 2. **अभिषुतः** B 4; left out in B 1, which has **अभिषूयस्त्वमिंद्रस्य** etc.—l. 18. (8, 5.) **लोमानि कमुदकं चात्यभि सृजानं ॥ लोमानि ---- दत्यभिमृजानं** Ca. **लोमानि --- द् अभिमृजानं** A. **लोमानि --- द् अति-सृजानं** C 2. **लोमानि कं उदकं चांति अभि सृजानं** B 1. 4.

P. 616. l. 13. (10, 6.) **हरस आहरस आहर्तारश्च ॥ हरसः हा आहार्त्तारश्च आहर्त्तारश्च** A. Ca. **हरस आहर्तारश्च** C 2. **हरसे हरसः आहरमः आहतारश्च** B 1. **हरसः आहत्तारश्च** B 4, the preceding words being struck out.—l. 25. (10, 9.) **दीप्तस्यात्मनः** C 2. **दीप्तस्यामुनः** A. Ca. **दीप्तस्य स्वर्गस्य** B 1. 4.

P. 618. l. 10. (12, 1.) **गृहे** only in B 1. 4.

P. 619. l. 21. (13.) **सुमतिना संगमेन ।** Ca. C 2. **समतीना संगमेन** A; deest in B. At first sight the reading of A **सुमतीना संगमेन** would suggest the very simple correction **सुमतीनां संगमेन**, by the assembly of the friends, or of the right-minded Pandits. Such an expression, however, was never used before by Sâyana when speaking of the authorship of his commentary, nor is it clear why so simple a phrase should have been misunderstood and changed into **सुमतिना संगमेन**. I have left the reading as we find it in the MSS., but I am by no means certain that it is correct. If it is, we must suppose that the passage was taken over from the

original commentary of Mâdhava, who was the prime minister of Sangama, the predecessor of Bukka; and that Mâdhava ascribed to him the merit of having preserved and shown to his people the right meaning of the Veda by means of the patronage which he bestowed on Mâdhava and his literary school. See Lassen, Indische Alterthumskunde, IV. 161; Weber, Katalog der Berl. Handschriften, p. 222.—l. 23. अनुक्तेऽपि लाघवाया दृळ्हच्युतात् ॥ अनुक्तेपि लाथवाया दृल्हच्युतात् C 2. अनुलोकेघवाया वृल्हच्युतात। A. Ca. See Anukr. Rv. IX. 25.—P. 620. l. 21. (13, 5.) द्योतनादिगुणयुक्ताः B 1. 4. °गुणकाराः C 2. द्योतनादिगुणकाः Ca. द्योतमानादिगुणकाः A.—l. 26. (13, 6.) A and Ca mark a lacuna after व्यतिसृज्यंते; C 2 goes on from °ते to अथ सप्तमी; B 1. 4 have अन्नलाभाय व्यंसृयं व्यतिसृज्यंते किं प्रति अव्यं अविभवं वारं वालं दशापवित्रं प्रतीत्यर्थः.

P. 621. l. 12. (14, 1.) सोमः and तरंगे to °रसे only in B. B 1 has तरंगे वसतीवर्युदकरसं, B 4 तरंगं वसतीवर्युदकरसे.—l. 16. (14, 2.) मनुष्या यजमानाः and गिरा स्तुत्या only in B 1. 4.—यद्यदा ईमेनं A. Ca. यदि यदा ई एनं B 1. Sâya*n*a evidently took यदी in the Sa*m*hitâ text for यदीं.—l. 24. (14, 4.) A. Ca. C 2 mark a lacuna before यदा.—P. 622. l. 7. (14, 6.) B 1. 4 add विदे जानते यजमानाय after प्रेरयति, and insert यं before वसुं.

P. 622. l. 25. (15, 2.) धीशब्दाद्यकारो° etc. See Rv. Bh. I. 8, 6.—P. 623. l. 10. (15, 5.) अध्वर्यादिभिः MSS. for अध्वर्य्वा°.—वेजनवान् Ca. विज° A. वज° C 2. वेगवान् B 1. 4.—l. 11. य ईयत इति A. Ca. C 2. यं ईयत इति B 1. 4. स ईयत इति M 1.—l. 20. (15, 8.) सोमे after मृज्यमाने from C 2.

P. 624. l. 6. (16, 2.) गोषां गवां सोतारं A. Ca. C 2. गोषां गवां चीरादिना इत्यर्थः B 4. गोषां गवा चांरादिना इत्यर्थः B 1.—l. 10. (16, 3.) तत्रोच्यते C 2. तवोच्यते A. Ca. B 1. 4. Probably किमर्थं was left out.—l. 14. (16, 4.) अर्षति। गच्छति। Ca. A. अर्षति प्रगच्छति C 2. प्र अर्षति। गच्छति B 1. 4.—l. 27. (16, 7.) पिप्युष्याप्याययंती ॥ पिप्युषी अप्यायती B 4. पिप्युषी अथापती B 1; deest in A. Ca. C 2.—P. 625. l. 1. (16, 8.) After विपश्चितं, स्तोतॄनामैतत्, and after आयुषु, इतरेषु C 2.—अथवा तृतीयार्थे ॥ अथा तृ° A. Ca. अथ तृ° C 2; deest in B.—l. 2. प्रीणयितुं C 2. प्राणयितुं A. Ca; deest in B.

P. 626. l. 15. (18, 1.) सर्वधा असि। सर्वस्य धाता etc. C 2. सर्वधाता दाता वा भवति A. Ca. सर्वधाः (सर्वधाता B 4 marg.) सर्वदाता वासि भवसि B 1. 4.—l. 25. (18, 4.) धनानि from B 1. 4.—l. 26. अथवा only C 2.—P. 627. l. 10. (18, 7.) आ before अचिक्रदत् B only.—l. 11. उत्तरपादो नेयः C 2. उत्तरपादोनयेः Ca. A. उत्तरपाद उन्नेयः would have been the more usual form. Left out in B 1. 4, where कलशेषु is added.

P. 627. l. 25. (19, 3.) वृषा कामानां वर्षकः सोमः from B 1. 4.—P. 628. l. 2. (19, 4.) प्रवृद्धिकामा A. Ca. प्रवर्द्धिका C 2. B 1. 4 vary considerably: धीतयः (धीसयः B 4 pr. m. B 1) धीयमानाः सोमाख्येन वत्सेन पीयमानाः मातरः निर्मात्र्यः वसतीवर्यः अधि रेतसि स्वकीये सारे वृषभस्य वर्षकस्य सूनोः अभिषूयमाणस्य (अभीषू° B 1. अभीषू° B 4) वत्सस्य सोमस्य सोमं अवावशंत मीलितवंतः।.—l. 12. (19, 6.) शत्रूणां रयिं B 1. 4. शत्रुणं रयिं C 2. शत्रुरयिं A. Ca.

P. 628. l. 26. (20, 2.) वाजमन्नं आ B. वाजमन्नं वा आ A. Ca. M 1. Perhaps वाजं बलमन्नं वा आ.—P. 629. l. 3. (20, 4.) हविष्मन्तो only C 2.

P. 630. l. 4. (21, 4.) रथमभिमतं देशं प्राप्नुवंति। A. Ca. C 2. B 4. °मतदेशं प्रा° B 1. One expects प्रापयंति; as it is, Sâya*n*a must have taken रथं in the sense of अर्थं, and then explained it by अभिमतं देशं.—l. 8. (21, 5.) A. Ca. C 2 have a lacuna after अरावा; B 1. 4 अरावा अदातृ(आदातृ B 4)शब्दरहितः संपन्नः सन् प्रयच्छति तथा अयच्छत॥ Sâya*n*a probably explained अरावा by अदाता न किंचित्प्रयच्छति प्राप्तकामः स एव etc.—l. 13. (21, 6.) आदिशे स्वामिनि B 4. आदिशे स्वामीनि B 1. आदिशे सं स्वामिनि A. Ca. C 2.—l. 20. (21, 7.) प्रैरयन्॥ प्रेरयन् MSS.

P. 630. l. 25. (22, 1.) दृष्टांतद्वयं। आजौ सृष्टाः शीघ्राः रथा इव तथा उत्क्षलक्षणसर्गाः वाजिन इव सृष्टाः अश्वा इव B 1. 4.—l. 28. (22, 2.) वाता इव वायव इव B 1. 4. वाता वायव A. Ca. वा इव वायव C 2.— P. 631. l. 8. (22, 4.) शाम्यंति A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 632. l. 1. (23, 2.) आयवः B 1. 4. आशवः A. Ca. C 2.—रूपकव्याहारेण॥ रूपकव्यहारेण A. Ca. रूपकंव्याहारेण C 2. Rûpakavyâhâra means a metaphor or a play on words, Soma being both the juice and the moon. B 1. 4 read अनुक्रमंते। एतैः सोमैः रुचे दीप्तौ सूर्यं जनंत कुर्वंतीत्यर्थः॥—l. 2. कुर्वंति। दीप्तं only C 2.—l. 5. (23, 3.) अदाशुषो ऽप्रयच्छतो B 1. 4. अदाशुषः प्रयच्छतः A. Ca. C 2.—l. 6. इषश्च A. Ca. इषः अन्नानि B 1. 4.—l. 10. (23, 4.) तत्रामिश्रितो॥ तथा मिश्रितो A. Ca. तथा - श्रितो C 2. मिश्रितो B 1. 4.—तमभि पवंत इति शेषः॥ तं अभिपंचंत इति शेषः A. Ca. तं अभिषंवंत इति शेषः C 2. त अभिपचंत इति शेषः किमर्थं मदे मद मदाय हर्षाय B 1. 4.—l. 22. (23, 7.) अस्य B 1. 4. अपि C 2; deest in A. Ca.

P. 633. l. 2. (24, 2.) आङ्गतिप्र° to व्याप्नुवन् only in A. Ca.—l. 7. (24, 3.) The MSS. have विनीतो वि नीयसे, we should expect वि नीयसे विनीतो.—l. 16. (24, 5.) उदराय॥ उदाराय Ca. A. C 2; deest in B 1. 4.—l. 19. (24, 6.) हंतरिंद्र A. Ca. C 2. B 1. 4. It should be इंदो, but the mistake is so constant that it would not be safe to correct it against the authority of all the MSS. In Sâya*n*a's commentary on Sv. II. 3, 2, 3, 6 we find हे सोम.—l. 23. (24, 7.) वल्ल्यात्मकः सोमो॥ वल्ल्यात्मक सोमो A. C 2. Ca. वल्ल्यात्मकः सोमो B 1. 4.

P. 634. l. 3. (25, 2.) अंगुल्या only C 2.—l. 7. (25, 3.) वृषा कामानां वर्षकः कविः क्रांतप्रज्ञः only B 1. 4.—l. 16. (25, 5.) आयुषक् B 4. अयुषक् B 1. आनुषक् A. Ca. C 2.

P. 635. l. 13. (26, 5.) जामयोऽंगुलयः only B 1. 4.—l. 18. (26, 6.) इंदुं दीप्तं सरूपं वा A. Ca. C 2; probably दीप्तस्वरूपं, some other explanation being dropt. B 1. 4 read इंदो, and explain it at the beginning of the verse, हे पवमान पूयमान इंदो दीप्त सोम.

P. 636. l. 12. (27, 5.) सोमस्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वाच्यं सूर्यरश्मिभिरेव सोमस्याप्यायनात्॥ समत्स्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वात्यंतं सूर्यरश्मिभिरेव सोमस्याप्यायनात् A. Ca. समश्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वार्च्यं तं etc. C 2. B 1. 4 have the simpler explanation, मदः सोमः। अध्वर्युणा पात्रे परित्यज्यते। सूर्येण कथमिति चेत् सूर्यरश्मिभिः एव सोमस्याप्यायनात्सूर्येणेति उक्तं॥ Instead of सोमस्रावणे one might conjecture रसोत्स्रावणे, as coming nearer to the letters of the MSS.—l. 17. (27, 6.) इंदुर्दीप्तश्चैवेंद्रमा॥ इंदुदीप्तश्च इवेंद्रमो - - A. Ca. °दीप्तश्च एवेंद्रमा C 2. इंदुः दीप्तिश्च इंद्रं आ B 1. 4.

P. 637. l. 22. (29, 2.) जज्ञानं जायमानं C 2. जज्ञानं जातं यमानं A. Ca. जज्ञानं जातं B 1. 4.—l. 27. (29, 3.) शोभनाभिभावुकानि from Sâya*n*a's commentary on Sv. II. 9, 1,

1, 3; our MSS. have शोभनानि भावुकानि; B 1. 4 शोभनानि only.—P. 638. l. 6. (29, 5.) कंचनामुंचन्नित्यर्थः ॥ कंचन अमुचंतिनित्यर्थः A. कंचन अमुचंतित्यर्थः Ca. कंचन अमुंचंनित्यर्थः C 2. B 1. 4 have कस्य चित् कस्यापि यच मुमुच्महे etc.; they insert निद्: before निंदाकृपात्.

P. 638. l. 22. (30, 2.) इंद्रियमपि - करं A. Ca. इंद्रियमपि करे C 2; deest in B 1. 4. It may have been इंद्रियमपि वा बलकरं. Cf. Rv. Bh. I. 103, 1; II. 16, 3; IV. 24, 5.—P. 639. l. 8. (30, 6.) ब्रूते यजमानः स्तीयान् ॥ ब्रूयंते जमास्तीयान् A. ब्रूयंते जमास्तीयान् Ca. ब्रूते य - मानस्तीयान् C 2; deest in B 1. 4.

P. 639. l. 19. (31, 2.) भवास्मभ्यमि° ॥ भवास्मदिमि° C 2. भवास्मदिवि° A. Ca. B 1. 4 read the last part यद्युम्नमस्ति तस्य अधि भव वर्धयिता भव ॥

P. 641. l. 6. (32, 6.) अस्मे from B 1. 4.—l. 7. मह्यमस्मभ्यमित्यर्थः ॥ मह्यमभ्यमि° Ca. A. मभ्यमि° C 2; deest in B.—l. 8. From किंच सनिं to the end of the verse from C 2; left out in A. Ca. B has a different commentary: द्युमत् दीप्तिमत् यशः कीर्त्तिं सनिं संभजनं मेधा ज्ञानं च उत अपि च श्रवः अन्नं धेहि देहि कीदृशेभ्यः etc. to मह्यं स्तुतिकर्त्रे च ॥

P. 641. l. 13. (33, 1.) प्र यंति C 2. प्रणयंति A. B 1. 4. Ca.—किमिव ॥ किव A. Ca. किंच C 2. B 1. 4.—अपामूर्मयो न C 2. अपामूर्मयः तं A. Ca. अपामूर्मयः B 1. 4.—l. 14. दृष्टांतो दर्शितो ॥ दृष्टांतदर्पतो A. Ca. दृष्टांतःदर्षितो C 2; deest in B 1. 4.—l. 19. (33, 2.) °दितरेऽपि पात्रा द्रोणा इ° ॥ °दितारीति पात्रा द्रोण इ° A. °दितारीपि पात्रा द्रोणा इ° Ca. The passage is corrupt.—l. 20. ऋतस्यामृतस्य from B 1. 4.—l. 21. अथर्वेकं ॥ अथैकं A. Ca. C 2; deest in B 1. 4. The same MSS. insert before अथ, अस्माकं, a marginal gloss, originally intended as explanatory of वाजं.—P. 642. l. 8. (33, 6.) °मुद्रितभू° ॥ °भूतभूद्रितभू° A. Ca. °मुतद्रितभू° C 2; deest in B 1. 4. °मुद्रसहितभू° comm. on Sv. II. 2, 2, 14, 3. समुद्रः is derived by some native authorities from मुद्रा in the sense of limit, so as to signify 'bounded by continents.' See Wilson, s. v.

P. 642. l. 19. (34, 3.) सुन्वंति from B 1. 4.—l. 23. (34, 4.) °द्रष्टृऋषेः सोऽयं म° ॥ °द्रष्टृ ऋषये म° A. °द्रष्टृ ऋषये यं म° Ca. °द्रष्टृर्षयं म° C 2. ऋषेः यो यं म° B 1. 4.—मुह्नो from B 1. 4.—l. 29. (34, 5.) सोमं A. Ca. C 2 after °साधनं.—चारु मनोहरं from B 1. 4.

P. 643. l. 21. (35, 4.) यजमानेभ्यः B 1. 4. ऋचमानेभ्यः A. Ca. C 2 leaves out the first part of the verse.

P. 644. l. 7. (36, 1.) कार्ष्मं युद्धमितरेतरकर्षणात् ॥ काष्म यध्वं इतरेतरघर्षणात् A. Ca. कार्ष्मं यध्वं इतारतरधर्षणत् C 2. In B 1. 4 this passage is left out.—l. 16. (36, 3.) बलप्रदाय यागाय A. Ca. बलप्रदानाय C 2; left out in B 1. 4.

P. 645. l. 4. (37, 1.) विघ्नन् B 1. तिघ्नन् A. Ca. निघ्नन् M 1.—l. 11. (37, 3.) स्वर्गस्य from B 1. 4.—l. 15. (37, 4.) महर्षेरधि ॥ महर्षयद्यधि A. Ca. C 2. महर्षेः यत् अधि B 1. 4.

P. 645. ll. 28 and 30. (38, 1.) सः and उ पुरणः from B 1. 4.—P. 646. l. 12. (38, 4.) पुनः क इव only C 2.

P. 647. l. 1. (39, 2.) अनिष्कृतमसंस्कृतं comm. on Sv. II. 3, 1, 4, 2. अनिष्कृतं संस्कृतं A. Ca. B 1. 4. अनिष्कृतः संस्कृतः C 2.

P. 648. l. 22. (41, 1.) एवं वोपमीयंते ॥ एव चो° A. Ca. एवं चो° C 2.—गावः in यथा गावः स्वगोष्ठं only C 2.—l. 24. क्षिप्राः C 2. भरणशीलाः B 1. 4. A and Ca do not explain the word भूर्णयः.—अप घ्नंतः only B 1. 4.—l. 25. स्तुतेति शेषः C 2. स्तुवतेति शेषः A. Ca.

B 1. 4.—l. 27. (41, 2.) दुःऽआव्यं P 1. P 3. P 4. दुःऽआध्यं P 2, and perhaps Sâyana. दुराव्यं S 1. 2. 3. 4.—l. 28. बंधनं दुराव्यं दुष्टमतिं च ॥ A and Ca leave out the words बंधनं दुराव्यं. B 1. 4 read सेतुं राक्षसबंधनं (राक्षससंबं° B 1) दुराव्यं रक्षसां हननबुद्धिं. C 2 बंधनं दुराध्यंतद्वयंष्टमति च.—l. 29. अव्रतमकर्माणां ॥ अव्रतकर्मणां A. Ca. अव्रतं कर्मणां B 1. 4. अव्रतकर्माणां C 2.—P. 649. l. 15. (41, 5.) तदुपलक्षितमहरुच्यते ॥ तदुपल - - तमज्यते A. Ca. तदुपलक्ष - - तमज्यते C 2; deest in B 1. 4.

P. 650. l. 7. (42, 4.) दुहानो दधानः ॥ A. Ca. C 2 दधानः only. B 1. 4 दुहानः only.

P. 651. l. 9. (43, 5.) अयमिंदुर्वा° ॥ यमिद्वा° A. यमिंद्वा° Ca. C 2. यः इंदुः वा° B 1. 4.—l. 10. इडभावि च ॥ इडभावश्च A. Ca. C 2; deest in B 1. 4.

Ashtaka VII.—From the beginning of the seventh Ashtaka B 4, as a rule, agrees with A.

P. 653. l. 17. (44, 3.) सुतोऽभिषुतः B 1. सुतेभिषुत A. Ca. C 2. B 4. सुतेभिषुते Bf. The Pada MSS. read सुतः.—P. 654. l. 5. (44, 6.) गातुवित्तमः पु° ॥ गातुवित्पु° A. Ca. B 1. Bf. M 1.

P. 654. l. 14. (45, 2.) अभिगच्छ ॥ °गच्छति A. Ca. C 2. B 4. Bf. °गच्छतु B 1.—पीयसे A. Ca. B 1. 4. Bf. पीड्यसे? cf. Rv. Bh. IX. 27, 1.—l. 19. (45, 3.) वासयामः संस्कुर्मः A. Ca. C 2. B 4. Bf. अंजयामः B 1.—l. 29. (45, 5.) अतिक्रांतं दशा° A. Ca. C 2. अतिक्रांतदनग° B 1. अतिक्रांतदशा° B 4. Bf.—l. 30. °षत । अस्तुवन् ॥ °षतस्तुवन् A. Ca. C 2. °षतास्तावन् B 1. °षतास्तुवन् B 4. Bf.

P. 655. ll. 5 to 9. (46 and 46, 1.) असृग्रन् only in B 1 and in marg. of Ca. The other MSS. read असृग्रं, both at the beginning and in the Anukr. quotation, and in the Pratika, and again in verse 1.—ll. 6 and 7. असृग्रंदेव° S 1. 2. 3. 4. असृग्रन् P 1. P 3. In P 4 असृग्रन् was first corrected to असृग्रं, and this again (in marg.) to असृग्रन्. Cf. Rv. IX. 87, 5.—l. 29. (46, 6.) विशः ॥ The MSS. विशः with exception of B 1, which has अश्विय: क्षिप इति. Cf. Ngh. II. 5; Rv. Bh. IX. 8, 4.

P. 656. ll. 10 seq. (47, 2.) The commentary is defective in all MSS. क्षतानि, in the beginning, is only in the marg. of CB. There are no various readings to help in restoring the first half except conjecturally. Instead of अस्माभिरेव A. Ca. Af. Bf have अस्माभिरेष. In the second part of the commentary चयते is explained by वातयति in A. Ca. C 2. Af. Bf, चापति in B 1. (CB has the marginal correction चापयति.) See Rv. Bh. I. 167, 8; IX. 47, 2; Nir. IV. 25. All the Samhitâ MSS. read चयते with short ă, a fact which it is necessary to state as the authors of the Petersburg lexicon state the contrary, and found some conclusions on the supposed length of the vowel.—l. 19. (47, 4.) सोमो only B 1; the other MSS. सो. In Bf a space is left blank after सो.

P. 657. l. 9. (48, 3.) हे पवमान सोम ॥ हे सोम B 1. हे सुक्रतो शोभनकर्मन्पवमान सोम A. Ca. Af. Bf. M 1. Since all the MSS. read सुक्रतुः सुप्रज्ञः, this seems to have been Sâyana's reading, while सुक्रतो शोभनकर्मन् probably was inserted by a copyist.—त्वामतो दिवो B 1. Ca sec. m. Af. Bf. °तोपि दिवो Ca pr. m. Bf sec. m. A. त्वामहतो दिवो

C 2.—C 2 has a lacuna from सुक्रतुः to the beginning of hymn 50, उक्तो विनियोगः.—l. 14. (48, 4.) स्वर्दृशे सर्वदृशे ॥ सर्वदृशे A. Ca. स्वर्वदृशे Ca sec. m. Af. स्वदृशे B 1. स्वर्दृशे Bf. Sâyana seems to have read स्वःऽदृशे in the Pada text.—साधारणमित्समानमेव ॥ This is the reading of the comm. on Sv. II. 2, 2, 3, 5. All our MSS. have साधारणमिक्समान°, except B 1, which reads साधारणमित्यामान°.—l. 18. (48, 5.) अधाय B 1. अधात A. Ca. Af. अधातः Bf.

P. 658. l. 22. (50, 2.) गच्छसि B 1. Bf. गच्छति A. Ca. C 2. Af.—l. 25. (50, 3.) B 1 has a lacuna from हरित° to हिन्वंति.—l. 30. (50, 4.) See Rv. IX. 25, 6.

P. 659. l. 20. (51, 3.) व्यश्नुते ॥ व्यश्नुते all MSS.—व्याप्नुवते deest in C 2 and B 1.—l. 23. (51, 4.) देवान्प्र° B 1. Bf. देवानप्र° A. Ca. C 2.—l. 27. (51, 5.) गच्छ ॥ All MSS. have गच्छसि.

P. 659. l. 29. (52.) वृषा इत्यनु° ॥ वृषेत्यनु° A. B 1. Ca. M 1; deest in Bf.—P. 660. l. 9. (52, 2.) अवेः only C 2.—l. 13. (52, 3.) पूर्णोदनो Bf. पूर्णोदिने । B 1. पूर्णोदनो A. Ca. M 1.

P. 660. l. 28. (53, 1.) याः मृधः etc. MSS.—P. 661. l. 1. (53, 2.) प्रहतेन B 1 for हतेन.—l. 2. निमित्ते ॥ निमित्त A. Ca. C 2. निमित B 1. निमित्तं B 4. Bf.—l. 6. (53, 3.) त्वां यो दुर्बुद्धिः ॥ त्वां धु यो दु° A. Ca. C 2. त्वांधुयो दु° Bf. त्वां यो दुर्षघि B 1.

P. 661. l. 14. (54, 1.) °परिमितस्य दातारं ऋषीमतीद्रियस्य कर्मफलस्य द्रष्टारं पयः etc. B 1.

P. 664. l. 10. (58, 3.) उत्तममस्त्विति A. B 4. Ca. Af. Bf. उत्तमस्त्विति B 1. It ought to be अनात्तमस्त्विति, but the MSS. clearly point to उत्तममस्त्विति.—ll. 12 seqq. The extract added at the end of Sâyana's commentary is taken from the Sâtyâyana-Brâhmana. The only passage I can find where the story of Taranta and Purumîlha is given, is in the Tândya-Brâhmana, XIII. 7, 12 seq. Here we read ध्वस्रे वै पुरुषंती तरंतपुरुमीढाभ्यां वैददश्विभ्याँ सहस्राण्यदित्सतां (this in MS. Wils. 373 corrected in the margin into अदिक्षतां) तावैचेतां कथं नाविदमात्तमप्रतिगृहीतँ स्यादिति तौ प्रत्यैतां ध्वस्रयोः पुरुषंत्योरा सहस्राणि दद्महे तरत्स मंदी धावतीति ततो वैतत्तयोरात्तमप्रतिगृहीतमभवदात्तमस्याप्रतिगृहीतं भवति य एवं वेद ॥ This Sâyana explains: ध्वस्रे शत्रूणां स्पर्धयित्र्यौ (sic) पुरुषंती एतत्संज्ञे । लिंगव्यत्ययः । एतत्संज्ञौ राजानौ वैददश्विभ्यां विददश्वगोत्राभ्यां तरंतपुरुमीढाभ्यामृषिभ्यां सहस्राणि सहस्रसंख्याकानि अदिक्षतः (for अदित्सतां) दातुमैच्छतां । ततस्तावृषी ऐचेतां च ईक्षणं पर्यालोचनमकुरुतां । नावावयोरिदं धनमात्तं स्वीकृतं कथं केन प्रकारेणाप्रतिगृहीतं स्यात् । प्रतिग्रहदोषवियुक्तं भवेदिति । ततस्तौ प्रत्यैतां । अज्ञानीतां । ध्वस्रयोः पुरुषंत्योरिति मंत्रमपश्यतामित्यर्थः । ततोऽनंतरं मंत्रप्रभावात्तत्स्वीकृतं तयोस्तद्धनमप्रतिगृहीतं प्रतिग्रहदोषविमुक्तमभवत् । अथैतद्वेदनं प्रशंसति । आत्तमस्याप्रतिगृहीतं भवति य एवं वेदेति ॥ This throws sufficient light on the passage from the Sâtyâyanaka, as quoted by Sâyana. The passage is, as usual, very incorrectly copied by the writers of the different MSS.; especially B 1 is full of blunders. The A MSS. and Ca share in a common lacuna, leaving out all between तरंतपुरुमीळ्हौ and तरंतपुरुमीळ्हौ. This omission must therefore have taken place before the A class branched off from the Ca MS., while the B class, which stands by itself, unaffected by this early blunder, must have branched off before this accident happened.—l. 13. सातं Ca. Af. Bf. सुतं A. सतं B 1.—प्रतिममृशाति ॥ प्रतिमृशाति

A. B 1. Ca Af. Bf.—l. 14. तावितन्न° Prof. Aufrecht. तायेतन्न° B 1. भावे तन्न° A. Ca. Af. Bf.—l. 18. (58, 4.) त्रिंशतं त्रीणि शतानि ॥ त्रिंशतं शतानि A. B 4. C 2. Ca. त्रिंशतं त्रिंशतानि B 1. Sâyana mistook त्रिंशतं, thirty, for त्रिशतं, three hundred; the various readings clearly point to त्रीणि शतानि.

P. 664. l. 25. (59, 1.) रमणीयं धनं B 4. रमणी धनं A. Ca. मणीयं धनं B 1. रमणीयधनं Bf.—l. 28. (59, 2.) अदाभ्यो. This was probably inserted from the margin, but in a wrong place. In Af अदाभ्यो is left out, and the commentary reads वसतीवरीभ्योऽंशुभ्यश्च.— P. 665. l. 7. (59, 4.) Before विश्वानिव the words of the text, विश्वानित्, are omitted.

P. 665. l. 8. (60.) पुरउष्णिगाद्यद्वादशका द्व्यष्टका ॥ °गाद्यो द्वादशको द्व्यष्टकौ (द्व्यष्टकाः B 1. द्व्यष्टको Af) A. Ca. B 1. B 4. Af. Cf. Rv. Bh. VIII. 70.—l. 13. (60, 1.) °नामधेयेन A. Ca. Bf. °नामधयेन B 4. °नामकेन B 1. °नामेयेन Af.

P. 667. l. 9. (61, 10.) On the loss of the Visarga in भूम्या ददे see Prât. 259, 4.—l. 16. (61, 11.) विश्वा विश्वानि MSS.— आर्यो B 1. अर्यो A. Ca. Af. Bf.—l. 29. (61, 14.) Sâyana separated सं from शिश्वरीःऽइव. I preferred बद्धपयस्काः to अबद्धपयस्काः, taking it in the sense of 'full of milk, wishing to be relieved of their milk.' अबद्धपयस्काः, however, might be interpreted as 'with unrestrained milk.'—P. 668. l. 29. (61, 21.) The following extract may serve as a fair specimen of the state of the B MSS.: हे सोम त्वं मूमस्थभिः शोभनोपस्थाभिः धेनुभिर्गोविकारैः पयोभिरित्यर्थः । संमिश्रिताः शोभन यथा श्वेनः शीघ्रमागो स्थानमासीदति तवद्योनि स्वकीयं स्थानं ॥ आसीदन् ॥ न इदानीमरुषः आत्ते चमानो भव ॥ B 1. One can hardly believe that this was written *bona fide*, and it is easy to imagine what would become of a second or third copy carelessly taken from such an original.—P. 669. l. 5. (61, 22.) निरुंधानं B 4. Bf. निधानं A. Ca. निरुधं B 1. निरुंधान Af.—l. 10. (61, 23.) The words from हे मीढ्वः to पूयमानस्त्वं are in all the MSS. placed before सुवीरासः.—l. 15. (61, 24.) प्रवुद्धो ॥ प्रवृद्धो A. Ca. B 4. प्रवृधो B 1.—P. 670. l. 10. (61, 30.) धुर्वणि B 1. 4. Bf. तूर्वणि A. Ca. Af.

P. 672. l. 21. (62, 17.) All between यातवे and the beginning of the next verse is omitted in A.—P. 673. l. 9. (62, 21.) मधुमंतं B 1. मधुभूतं A. B 4. Bf. Ca.—B 1 has देवार्थं instead of इंद्रायर्थं, and प्रचिपति (sic) instead of साधयत.—l. 11. (62, 22.) It is curious that the A MSS. (A. C 2. B 4. Bf) and Ca have the common mistake अथ द्वादशी for अथ द्वाविंशी at the beginning of the verse. In Ca the passage was omitted, but added on the margin.—l. 17. (62, 23.) नृम्णा from B 1.—l. 22. (62, 24.) श्रोतव्यानि A. Ca. B 4. Bf. स्रोतव्यानि B 1. The reading of B 1 seems preferable, but that of the other MSS. is admissible.— P. 674. l. 3. (62, 27.) तुभ्यं MSS.

P. 675. l. 3. (63, 4.) Sâyana seems to have read अभि instead of अति.—l. 15. (63, 7.) प्राकाशयः Bf. प्रकाशयः A. Ca. अप्रकाशयः B 1.—l. 20. (63, 8.) एतग्वा एतश्च A. Ca. B 4. Bf. एतग्व एतश B 1. See Ngh. I. 14.—P. 676. l. 23. (63, 16.) ते before तव MSS.—l. 26. (63, 17.) The Pada writes ईमिति, and does so always where the final Anusvâra is to be dropt. Otherwise it is ईं. The cases in which Anusvâra is dropt, are enumerated in Prât. 302.—P. 677. l. 26. (63, 24.) चरसि B 1. मितरां

पीडयसि रचसि A. Ca. B 4. नितरां रचसि Bf. Cf. Rv. Bh. IX. 66, 19.—राचसवर्गं B 1. 4. राचसवर्णं गं A. Ca. Bf had the same, but the र्णं is cancelled.—l. 30. (63, 25.) ऋत्विग्भिः B 4. ऋषिभिः। त्विग्भिः A. Ca. Bf again has the same, but षिभिः is cancelled; deest in B 1.

P. 679. l. 1. (64, 2.) तव भजनमपि Bf marg. तव भजनपि B 1. तव जननमपि A. B 4. Bf pr. m. तव मं भं जनमपि Ca.—P. 680. l. 10. (64, 11.) देवावीर्देव A. Ca. B 1. 4. Bf. One expects देवकाम.—P. 682. l. 16. (64, 26.) आ भर। आहर ॥ आहराभर MSS.—l. 19. (64, 27.) आङ्गत A. B 1. आहृत Ca.—l. 28. (64, 29.) बलवान् A. Ca. B 4. Bf. वेजनवान् B 1.—P. 683. l. 3. (64, 30.) अनुप्रवचनं MSS. प्रवचनं Nir.

P. 684. l. 3. (65, 4.) The commentary is given according to A. B 4. Bf, with which Ca agrees, though in it the whole commentary was left out and was supplied in the margin. The B MSS. have supplied a fuller commentary. They begin with हे सोम त्वं वृषाभिमतफलानां वर्षितासि हि। भवसि खलु। तस्मात् हे पवमान पूयमान पुनान वा etc. After सुकर्माणः they add सुष्ठु ध्यानवंतो वा. Instead of रश्मिना they have तेजसा, which is the more usual explanation. They then continue दीप्तिमंतं। अतिशयेन तेजस्विनमित्यर्थः। स्तुतिमंतं वा त्वा त्वां हवामहे। यज्ञेषु आह्वामहे॥—l. 8. (65, 5.) धनुरा॰ B 1. B 4 sec. m. दनुरा॰ A. Ca. B 4 pr. m. Bf.—l. 14. (65, 6.) बभसति ॥ All the MSS. read गभसंति. Cf. Devarâ*g*a on Ngh. I. 5, 7 in Nir. SS. vol. i. p. 35.—l. 16. पारिप्लवेन Ca sec. m. Bf. pr. m. पारिप्लवेन Bf sec. m. पारिलवेन A. परिप्लवेन B 4. मा Ca pr. m. Af; deest in B 1.—P. 686. l. 19. (65, 18.) अभिषुतो भव त्वं। B 1. अभिषुनो वाचं Ca. A. B 4. Bf.—P. 687. l. 8. (65, 21.) दिद्युत्वस्म॰ ॥ दिक्रमस्म॰ A. Ca. दिक्रमस्म॰ B 4 sec. m. दिक्रामस्म॰ Bf. दिद्युमस्म॰ B 1. दिशः अस्म॰ C 2.—चा B 1. वा A. Ca. Bf. M 1.—l. 17. (65, 23.) ऋजीकानामदूरभवाः आर्जीका देशाः A. Ca. Bf. ऋजीकाना दूरभावाः आर्जीका देशाः B 1. ऋजीका नाम दूरभवा आर्जीका देशाः M 1. See Rv. Bh. IX. 113, 2; VIII. 7, 29.—P. 688. l. 16. (65, 28.) बलमद्या॰ B 1. This is an important passage as it might be used to show the dependence of A. B 4 on Ca. Ca has a blot which has destroyed the lower part of बल so as to make it look like तव, and this तव occurs in A and B 4 (but not in C 2). Bf has ललमद्या॰. The same blot has nearly obliterated धन in the next line, and there is a lacuna in A and B 4 (not in C 2). Bf has वह्निमनादीनां. The B MSS. are not affected by this, but stand, as usual, independent of A and Ca. But although in the ninth Man*d*ala the MSS. Ca. A. B 4 and C 2 form one family, it would be difficult to admit in other passages that A. B 4 are dependent on Ca.—संभजामहे from B 1.—l. 28. (65, 30.) उगन्प्र॰ B 1. Ca sec. m. ऊमन्प्र॰ Ca pr. m. Bf. जनत्प्र॰ Af. ऊगप्र॰ A. M 1. The ऊ in Ca pr. m. is not quite clear in consequence of a blot.

P. 689. l. 17. (66, 3.) After त्वदीयानि धामानि B 1 reads त्वदधीना अहोरात्ररूपाः कालविशेषाः परि भवंति सर्वत्र व्याप्तास्तिष्ठंति। यद्वा त्वदीयधामानि त्वदधीना अहो तेजसां परि वर्तंते॥ अत एव etc.—P. 691. l. 14. (66, 13.) तदार्षति प्रगच्छंति यद्यदा ॥ तदार्थति (॰र्थते Bf) प्रगच्छंति तद्यदा A. Ca. Bf. ति प्रगच्छंति तद्यदा Af. तदार्षति प्रगच्छंति B 1, leaving out the end of the verse.—l. 19. (66, 14.) स्तोतयः B 1. The other MSS. Ca. A. B 4. C 2. Af. Bf

have क्षैतेयः, evidently originally a wrong reading for त्वातयः, the old spelling of त्वोतयः, but liable to be read क्षैतेयः.—P. 692. l. 14. (66, 18.) °साह्वाय्याय ॥ °सह्वाय्याय B 1. °साह्वाय्याय Ca. °सह्वोज्याय A. Af. °मह्वोज्याय Bf. °मज्योज्योय(?) Bf sec. m.—l. 24. (66, 19.) रक्षसि deest in B 1.—l. 25. दुकुनां B 1. दुकुना A. दुत्सुना Ca. Af. Bf.—l. 29. (66, 20.) देवमनुष्या गंधर्वाप्सरसः सर्पाः पितर इति Ca. A. B 4 (sec. man. देवाः). देवमनुष्यगंधर्वाप्सरसः पितरो इति B 1. See Ait. Br. III. 31.—l. 32. अपि गोर्भिर्गा° B 4 sec. m. अपि भिर्गा° Ca. A. B 4 pr. m. Bf. अपि दैवाभिर्गा° B 1. अपि भिर्गं° Af.—P. 693. l. 9. (66, 22.) हिंसकान् B 1. C 2. पिदिसकान् Ca. Af. पिदिसकात् A. Bf. यिदिसतान् B 4.—l. 27. (66, 25.) पविचान्निर्गच्छंतीत्यर्थः ॥ पविचा निर्गच्छंतीत्यर्थः A. Ca. B 4. C 2. Af. Bf. पवित्र ता गार्गच्छंतीत्यर्थः B 1.—l. 30. (66, 26.) ईंद्रथिन C 2. इंद्रथित A. Ca. Af. ईंद्रधिन B 1. इद्रधित Bf. इद्रथेतर B 4 sec. m. Differently explained by Sâyana, Rv. Bh. I. 22, 2; 11, 1: cf. Prât. 544, 3; Rv. Bh. I. 84, 6.—P. 694. l. 10. (66, 28.) कलशं प्रतिकर्षेण चरति B 1. कलशे प्रतिकर्षेण रचति A. Ca. कलशेण रचति C 2. In B 4 प्राचाः is changed into प्रोचण; then follows कलशे प्रतिकर्षेण रचति. If pratikarsha is the right reading, it would here mean 'attraction,' a meaning not mentioned by BR.—l. 13. After हल्ङ्यादिना तिलोपः all the MSS. add another explanation, which is meant to explain the omission of the Âgama *it*. This, however, was already explained as *kh*ândasa, and from the unfinished state of the sentence, the explanation seems to be a later addition that came into the text from the margin. Thus A. Ca. B 4. Af. Bf read अनित्यमागमशासनमिति सिच इ आ। B 1 has the same, but ends with सिच इ. C 2 has सिच ३ आ न सिच ३ आ।

P. 694. l. 27. (67.) All the MSS. except B 1 omit the statement that the thirtieth verse is a Pura-ushnih, and the twenty-seventh, thirty-first and thirty-second Anushtubh. B 1 adds after गायत्र्यः, अन्त्यात्र्यस्त्रिंशी पुरउष्णिक् आद्या द्वादशकाय ष्टकवती (आद्यद्वादशकद्व्यष्टकवती?) सप्तविंशिकत्रिंशीद्वात्रिंशस्त्रिस्रोऽनुष्टुभः शिष्टा गायत्र्यः। अविता नो etc.—P. 695. l. 21. (67, 4.) प्रभूतं, all MSS. except C 2, which leaves out something, and reads अवीनां स्वभूतानि गच्छतीत्यर्थः।—l. 22. त्वया सहाहमिंद्रमाह्वयामीत्यर्थः B 4 sec. m.; A. Af. Ca have त्वया सहेंद्रमहमाह्वयामीति वाजयाह्वयामीत्यर्थः ॥ C 2 has °ह्वयामीति वाजं मह्वायामीत्यर्थः ॥ Bf has त्वया सहेंद्रमहंमाह्वयामीति वाजायामाह्वयामीत्यर्थः ॥ In B 1 all from सोऽयं हरि° to the end of the verse is left out.—P. 696. l. 24. (67, 10.) भजः ॥ पज A. Ca. Bf. In B 1 the first explanation, together with the commentary of verses 7 to 9, is lost. After तद्वंतं गोमंतं प्रशस्तगोभिरुपेतं ॥ (verse 6), it begins at once ॥ अजाश्वः अजवाहनः etc.—P. 697. l. 13. (67, 14.) गाहत इति द्वे इति ॥ गाहत इति A. Ca. Bf. B 1.—l. 25. (67, 15.) सिपि वा ॥ सिपिना A. Ca. Af. Bf. सिपि कचा B 1.—P. 698. l. 19. (67, 21.) पूयमान B 1. पूज्यमान A. Ca. C 2. B 4. Af. Bf.—l. 24. (67, 22.) यः पोता is omitted in all the MSS.—P. 699. l. 25. (67, 28.) अस्मान् प्रकर्षेण वर्धय यद्वा A. Ca. C 2. B 4. आत्मानं प्रकर्षेण वद्दा B 1.—P. 700. l. 25. (67, 32.) यागादिपरं वेदशास्त्रविदं ॥ यागादिपरवेदशाखविदं A. Ca. B 4. Af. Bf. यागादिपरं वेदशाखाविदं C 2. योगादिपरं वेदशास्त्रं B 1. Different emendations might be proposed; the one I have adopted is in accordance with Sâyana's style. वेदशाखाविदं is unusual with Sâyana, and in this place without

पीडयसि रचसि A. Ca. B 4. नितरां रचसि Bf. Cf. Rv. Bh. IX. 66, 19.—राचसवर्गं B 1. 4. राचसवर्ण गं A. Ca. Bf had the same, but the र्ण is cancelled.—l. 30. (63, 25.) ऋत्विग्भिः B 4. ऋषिभिः। त्विग्भिः A. Ca. Bf again has the same, but षिभिः is cancelled; deest in B 1.

P. 679. l. 1. (64, 2.) तव भजनमपि Bf marg. तव भजनपि B 1. तव जनमपि A. B 4. Bf pr. m. तव मं भं जनमपि Ca.—P. 680. l. 10. (64, 11.) देवावीर्देव A. Ca. B 1. 4. Bf. One expects देवकाम.—P. 682. l. 16. (64, 26.) आ भर। आहर॥ आहराभर MSS.—l. 19. (64, 27.) आङ्गत A. B 1. आह्नत Ca.—l. 28. (64, 29.) बलवान् A. Ca. B 4. Bf. वेजनवान् B 1.—P. 683. l. 3. (64, 30.) अनुप्रवचनं MSS. प्रवचनं Nir.

P. 684. l. 3. (65, 4.) The commentary is given according to A. B 4. Bf, with which Ca agrees, though in it the whole commentary was left out and was supplied in the margin. The B MSS. have supplied a fuller commentary. They begin with हे सोम त्वं वृषाभिमतफलानां वर्षितासि हि। भवसि खलु। तस्मात् हे पवमान पूयमान पुनान वा etc. After सुकर्माणः they add सुष्ठु ध्यानवंतो वा. Instead of रश्मिना they have तेजसा, which is the more usual explanation. They then continue दीप्तिमंतं। अतिशयेन तेजस्विनमित्यर्थः। स्तुतिमंतं वा त्वा त्वां हवामहे। यज्ञेषु आह्वामहे॥—l. 8. (65, 5.) धनुरा° B 1. B 4 sec. m. दनुरा° A. Ca. B 4 pr. m. Bf.—l. 14. (65, 6.) बभसति॥ All the MSS. read गभसंति. Cf. Devarâ*g*a on Ngh. I. 5, 7 in Nir. SS. vol. i. p. 35.—l. 16. पारिप्लवेन Ca sec. m. Bf. pr. m. पारिप्लवेन Bf sec. m. पारिलवेन A. परिप्लवेन B 4. मा Ca pr. m. Af; deest in B 1.—P. 686. l. 19. (65, 18.) अभिषुतो भव त्वं। B 1. अभिषुनो वाचं Ca. A. B 4. Bf.—P. 687. l. 8. (65, 21.) दिद्व्यस्म°॥ दिक्कमस्म° A. Ca. दिक्कामस्म° B 4 sec. m. दिक्कामस्म° Bf. दियुमस्म° B 1. दिशः अस्म° C 2.—चा B 1. वा A. Ca. Bf. M 1.—l. 17. (65, 23.) ऋजीकानामदूरभवाः आर्जीका देशाः A. Ca. Bf. ऋजीकाना दूरभावाः आर्जीका देशः B 1. ऋजीका नाम दूरभवा आर्जीका देशाः M 1. See Rv. Bh. IX. 113, 2; VIII. 7, 29.—P. 688. l. 16. (65, 28.) बलमद्या° B 1. This is an important passage as it might be used to show the dependence of A. B 4 on Ca. Ca has a blot which has destroyed the lower part of बल so as to make it look like तव, and this तव occurs in A and B 4 (but not in C 2). Bf has ललमद्या°. The same blot has nearly obliterated धन in the next line, and there is a lacuna in A and B 4 (not in C 2). Bf has वह्निमनादीनां. The B MSS. are not affected by this, but stand, as usual, independent of A and Ca. But although in the ninth Ma*nd*ala the MSS. Ca. A. B 4 and C 2 form one family, it would be difficult to admit in other passages that A. B 4 are dependent on Ca.—संभजामहे from B 1.—l. 28. (65, 30.) उगन्प्र° B 1. Ca sec. m. ऊगन्प्र° Ca pr. m. Bf. अगत्प्र° Af. ऊगप्र° A. M 1. The ऊ in Ca pr. m. is not quite clear in consequence of a blot.

P. 689. l. 17. (66, 3.) After त्वदीयानि धामानि B 1 reads त्वदधीना अहोरात्ररूपाः कालविशेषाः परि भवंति सर्वत्र व्याप्तास्तिष्ठंति। यद्वा त्वदीयधामानि त्वदधीना अहो तेजसां परि वर्तंते॥ अत एव etc.—P. 691. l. 14. (66, 13.) तदार्षंति प्रगच्छंति यद्यदा॥ तदार्षंति (°र्षंते Bf) प्रगच्छंति तद्यदा A. Ca. Bf. ति प्रगच्छंति तद्यदा Af. तदार्षंति प्रगच्छंति B 1, leaving out the end of the verse.—l. 19. (66, 14.) स्तोतयः B 1. The other MSS. Ca. A. B 4. C 2. Af. Bf

all the other MSS.: हनु अधिषण इत्याम्नाणानास्वनुस्थानेधिषवणफलके etc.—l. 25. After समस्वरन् संगच्छंते all the MSS., except B 1, which has a lacuna, read तदस्य शब्द्यनवा, which I have altered by conjecture into तदास्न्यशब्द्यन्वा.—l. 27. प्रीणनात् A. Ca. B 1. 4.—P. 717. l. 5. (73, 2.) धाम च B 4 sec. m. धाममिव A. Ca. B 1. C 2.—P. 718. l. 11. (73, 6.) अभिमन्यमाना: B 1. Ca. अतिम॰ A. M 1. In Ca अभि॰ is so written that it could easily be misread for अति॰.—l. 13. नरस्यापाहासत ॥ नरस्य त्वमहासत A. Ca. नरस्य जपहास B 1.—l. 22. (73, 7.) गोपया A. B 4. Ca. C 2. गोपाया B 1. See Ait. Br. I. 27.—l. 24. मध्यमवाचः पुत्रा मरुतः स्पशो वाचा वशिनो भवंति ॥ This is merely a conjectural reading. The MSS. give the following readings: मध्यमवाचा प्र प्र मरुते शसः वाचा वशिनो भवंति A. Ca. C 2; मध्यमवाचा प्र प्र सह ते शसः वाचा वशिनो भवंति B 4; मध्यमवाचा प्र प्रे मरुतो शः वाचा वशिनो भवति B 1.—P. 719. l. 15. (73, 9.) लेव्या॰ ॥ लेव्य॰ MSS.

P. 719. l. 27. (74, 1.) पृथुतरं A. Ca. C 2. B 4. पृथुतमं B 1.—P. 720. l. 4. (74, 2.) गतेर्निघातः ॥ गच्छते निघातः A. गच्छते निंघातः Ca. C 2. Af. गच्छतेर्निघातः B 4. गते विघातः B 1.—l. 13. (74, 3.) इंद्रः शतसहस्रसंख्याकहरिभिः सह गंतु मार्गो विस्तीर्णो भवेदित्यर्थः B 1. इंद्रः शतसहस्रसंख्याके हरिभिः सह गंतुं मार्गो विस्तीर्णोभवदित्यर्थः A. Ca. C 2. Af; also B 4, except मार्गे.—l. 27. (74, 4.) मापोरित्वे रुन्निति ॥ मायोरिवे रुन्निति A. Ca. C 2. B 4. Af. मागोरिष्वे रुन्निति B 1. This is evidently a quotation of an U*n*âdi-sûtra, which, however, does not occur in our editions. In U*n*. IV. 101, perú is derived by मिपीभ्यां रुः. In I. 38, U*gg*valadatta quotes an âk*ri*tiga*n*a in which peru occurs. But in our passage peru and meru are evidently derived from the roots mâ and pâ, and the vowel is changed to i before run. I can find no trace of this Sûtra, and I therefore can give the reading इत्वे only as conjectural.—P. 721. l. 12. (74, 6.) नाभस्तपसो बाधिकाः ॥ नाभा तपसो बाधिकाः A. Ca. Af. नाभः तपसो बाधिकाः C 2. नभो तपसो बा॰ B 4. नामः नमसो बाधिकाः B 1. नाभो नभसो वा M 1. See Ngh. II. 19.—ll. 17, 19, and 25. (74, 7.) कवंधं S 1. S 2. S 3. S 4. P 1. P 4. कबंधं S 3 sec. m. (?) P 3. A. Ca. B 1. Af (twice). See Rv. V. 54, 8. 85, 3; VIII. 7, 10.

P. 722. l. 20. (75, 1.) चायंतेरसुनि चन इति A. B 4. Ca. C 2. Af. वायंतेरसुनि च इति B 1.—P. 723. l. 1. (75, 2.) नचच॰ A. Ca. Af. नाचच॰ B 1.—l. 31. (75, 5.) वचनवंतः. This is the reading of all the MSS. of Sâya*n*a, also of the Nirukta MSS. which I could consult. Nir. Roth and SS. read वंचनवंतः. See Nir. SS. vol. ii. p. 418. The commentary has वंचनवंतः संमोहयितारः, ibidem p. 423.

P. 726. l. 1. (77, 1.) सोमः वज्रे इंद्रस्य साधने A. Ca. Af. सोमे वज्र इंद्रस्य साधने B 1.—l. 11. (77, 2.) किं। रजः ॥ किंच रजः A. Ca. C 2. B 1. 4. Af.—l. 19. (77, 3.) उपरता अचेतुपराः ॥ उपरता च अचेत्युपरा A. Ca. Af. उपरता च अचेत्युपचारः B 1.—P. 727. l. 5. (77, 5.) वृजिनेष्वरिष्टेषु।. All the MSS. (A. Ca. C 2. Af. B 1. 4) have वृजिनेषु instead of वृजनेषु, which is the reading of the MSS. of the texts, with the accent on the second syllable. As Sâya*n*a seems to have read वृजिनेषु I have left this reading, though it is clearly wrong.

P. 728. l. 1. (78, 3.) सेचनशीलं A. Ca. C 2. B 1. सेचनं शीलं B 4. सेवनशीलं Af.

P. 729. l. 13. (79, 3.) समरीत ॥ As all MSS. except B 1, where the word is left

out, read समरीत्, Sâyana may, by mistake, have read समरीत् instead of समरीत. In B 1 we have सा यथा त प्राप्नोति etc.

P. 730. l. 13. (80, 1.) वि दियुति B 1. दिवि युलोके A. Ca. C 2. B 4.

P. 732. l. 1. (81, 2.) सोमसजुषां ॥ सोमसजोषां A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 735. l. 13. (83, 4.) पशुसमूहस्वामी A. B 1. Ca. पाश॰? See Nir. IV. 2.—l. 22. (83, 5.) निर्वोढुं B 1. निवोढुं A. Ca. M 1.

P. 736. l. 28. (84, 4.) वायुभिरेव ॥ वायुरेव A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 737. l. 24. (85, 2.) संग्रामात् A. Ca. B 1. 4; deest in C 2. संग्रामान्?—P. 739. l. 27. (85, 11.) उपाक्रपंत। Sâyana seems to have read उपं। पप्निऽवांसं।.

P. 740. l. 10. (86.) आक्रष्टा इति A. Ca. B 1. 4. आतुष्टा C 2.—l. 11. गौवावरी इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 12. पृश्नय इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 13. आक्रष्टा माषा A. Ca. B 4. अक्रष्टा माषा B 1. आचष्टा माषा C 2.—l. 15. आक्रष्टा A. Ca. B 1. 4. आचष्टा C 2. अक्रष्टा Anukr.—l. 16. पृश्नयो ॥ प्रश्नयो A. Ca. B 4. C 2. पृश्नये B 1.—It is clear that Sâyana took तृतीये चयः for त्रयः, the three companies of Rishis mentioned before. Shadgurusishya takes it for अत्रयः. He writes चतुर्थे दशर्चे अत्रय इतिनामानः. See Aufrecht, Rig-veda, vol. ii. p. 495, note; Anukr. M. pp. 34 and 146.—l. 21. (86, 1.) From मदा to वडवा left out in A. Ca.—P. 743. l. 8. (86, 11.) अभिक्रंदन् and अभ्यर्षति MSS.—P. 744. l. 29. (86, 17.) अभ्यग्निग्रयुः B 1. अभिग्निग्रयुः A. Ca. M 1.—P. 745. l. 23. (86, 20.) After इंद्रस्य A. Ca. C 2 and B 4 add यजमानस्य.—l. 32. (86, 21.) एकविंशतिं गा ऋत्विङ्मुखेन B 1. एकविंशति वारान् लङ्मुखेन A. Ca. एकविंशति चारान् त्वन्मुखेन B 4. एकविंशति वारात् त्व-खेन C 2. The readings in all the MSS. except B 1 are intended for एकविंशतिवारं.—P. 747. l. 12. (86, 26.) सुवर्त्मानि MSS.—l. 14. After कुर्वाण इत्यर्थः B 1 adds यद्वा गास्तद्विकारीणि चीराणि॰ कुर्वाण इत्यर्थः।—l. 23. (86, 27.) After गोभिः we expect पयोभिः or चीरेण; पृष्ठे, too, is left unexplained by Sâyana.—P. 748. l. 5. (86, 29.) समुद्रो वर्षसाधनोऽपां B 4 sec. m. ॰द्रो वर्णसाधनां पां A. Ca. ॰द्रो वर्णसाधनो पां C 2. समुद्रवर्णसाधनो नि B 1.—l. 20. (86, 31.) अव चक्रदद्वक्रंदन् ॥ अवचक्रदत् अवक्रंदत् B 1. अवचक्रदन् अवचक्रदत् A. अवचक्रदन् अवक्रंदत् Ca. अवचुक्रदन् अवदं क्रंदत् C 2. अवचक्रदत् अवक्रंदन्(॰क्रदन् sec. m.) B 4. Sâyana takes अवचक्रदत् as a participle, in spite of the accent.—P. 749. l. 6. (86, 33.) Sâyana leaves out पवते, and seems to have read नृभिः instead of हरिः.—P. 750. l. 5. (86, 37.) वीयसे गच्छसि वी गत्यादिषु A. Ca. वियसे गच्छसि वी गत्यादिषु B 1.—P. 753. l. 3. (86, 48.) One expects यतः क्रतुवित् अतः स्तुत्य इत्यभिप्रायः।.

P. 753. l. 15. (87, 1.) After पूयमानो B 1 reads ऽभ्यर्ष वाजं संग्रामं वाजिनं बलवंतं etc.—P. 754. ll. 9 and 11. (87, 5.) असृयंक्र॰ S 3. असृयंक्र॰ S 1. असृयम्क्र॰ S 2. S 4. A text. असृग्रन् Pada MSS. Cf. Rv. IX. 46, 1.—P. 755. l. 5. (87, 8.) पात्रं स्वयंप्राप्तव्यं ॥ प्राप्तं स्वयंप्राप्तव्यं C 2. पात्रं स्वया प्राप्तव्यं। B 1. प्राप्तं स्वया प्राप्तव्यं A. Ca. B 4. पात्रं तया प्रा॰ M 1.

P. 756. l. 4. (88, 2.) ॰विरोधात् ॥ ॰विरोधाधीनि A. Ca. C 2. ॰विरोधारत् B 1. ॰विराधादीन B 4 sec. m.—l. 11. (88, 3.) इवमाङ्गानमाकर्ण A. Ca. C 2. B 1. 4. इव आङ्गानमाकर्ण?

P. 757. l. 28. (89, 1.) अषाः। व्याप्नोषि। A. Ca. C 2. B 1. 4.—l. 29. न्यसदत्। निषीदति ॥ A great deal of the commentary is lost in all the MSS., there being no explanation of the last pâda. This has produced a confusion in the remaining commentary. A. Ca.

all the other MSS.: इनु अधिषण इत्याम्नानानास्त्वनुस्थानेधिषवणफलके etc.—l. 25. After समस्वरन् संगच्छंते all the MSS., except B 1, which has a lacuna, read तदस्य शब्द्यनवा, which I have altered by conjecture into तदास्यशब्दयन्वा.—l. 27. प्रीणनात् A. Ca. B 1. 4.—P. 717. l. 5. (73, 2.) धाम च B 4 sec. m. धाममिव A. Ca. B 1. C 2.—P. 718. l. 11. (73, 6.) अभिमन्यमाना: B 1. Ca. अतिम° A. M 1. In Ca अभि° is so written that it could easily be misread for अति°.—l. 13. नरश्चापाहासत ॥ नरश्च त्वमहासत A. Ca. नरश्च जपहास B 1.—l. 22. (73, 7.) गोपया A. B 4. Ca. C 2. गोपाया B 1. See Ait. Br. I. 27.—l. 24. मध्यमवाचः पुत्रा मरुतः स्पशो वाचा वशिनो भवंति ॥ This is merely a conjectural reading. The MSS. give the following readings: मध्यमवाचा प्र प्र मरुते शसः वाचा वशिनो भवंति A. Ca. C 2; मध्यमवाचा प्र प्र सह ते शसः वाचा वशिनो भवंति B 4; मध्यमवाचा प्र प्रे मरुतो शः वाचा वशिनो भवति B 1.—P. 719. l. 15. (73, 9.) लेव्या° ॥ लेव्य° MSS.

P. 719. l. 27. (74, 1.) पृथुतरं A. Ca. C 2. B 4. पृथुतमं B 1.—P. 720. l. 4. (74, 2.) गतेर्निघातः ॥ गच्छते निघातः A. गच्छते निंघातः Ca. C 2. Af. गच्छतेर्निघातः B 4. गते विघातः B 1.—l. 13. (74, 3.) इंद्रः शतसहस्रसंख्याकहरिभिः सह गंतु मार्गो विस्तीर्णो भवेदित्यर्थः B 1. इंद्रः शतसहस्रसंख्याके हरिभिः सह गंतुं मार्गो विस्तीर्णोभवदित्यर्थः A. Ca. C 2. Af; also B 4, except मार्गे.—l. 27. (74, 4.) मापोरित्वे रुन्निति ॥ मायोरिवे रुन्निति A. Ca. C 2. B 4. Af. मागोरिष्वे रुन्निति B 1. This is evidently a quotation of an U*n*âdi-sûtra, which, however, does not occur in our editions. In U*n*. IV. 101, perú is derived by मिपीभ्यां रुः. In I. 38, U*gg*valadatta quotes an âk*ri*tiga*n*a in which peru occurs. But in our passage peru and meru are evidently derived from the roots mâ and pâ, and the vowel is changed to i before run. I can find no trace of this Sûtra, and I therefore can give the reading इत्वे only as conjectural.—P. 721. l. 12. (74, 6.) नाभस्तपसो बाधिकाः ॥ नाभा तपसो बाधिकाः A. Ca. Af. नाभः तपसो बाधिकाः C 2. नभो तपसो बा° B 4. नामः नमसो बाधिकाः B 1. नाभो नभसो वा M 1. See Ngh. II. 19.—ll. 17, 19, and 25. (74, 7.) कवंधं S 1. S 2. S 3. S 4. P 1. P 4. कबंधं S 3 sec. m. (?) P 3. A. Ca. B 1. Af (twice). See Rv. V. 54, 8. 85, 3; VIII. 7, 10.

P. 722. l. 20. (75, 1.) चायतेरसुनि चन इति A. B 4. Ca. C 2. Af. वायंतेरसुनि च इति B 1.—P. 723. l. 1. (75, 2.) नचन° A. Ca. Af. माचन° B 1.—l. 31. (75, 5.) वचनवंतः. This is the reading of all the MSS. of Sâya*n*a, also of the Nirukta MSS. which I could consult. Nir. Roth and SS. read वंचनवंतः. See Nir. SS. vol. ii. p. 418. The commentary has वंचनवंतः संमोहयितारः, ibidem p. 423.

P. 726. l. 1. (77, 1.) सोमः वज्रे इंद्रस्य साधने A. Ca. Af. सोमे वज्र इंद्रस्य साधने B 1.—l. 11. (77, 2.) किं । रजः ॥ किंच रजः A. Ca. C 2. B 1. 4. Af.—l. 19. (77, 3.) उपरता अचेतुपराः ॥ उपरता च अचेतुपरा A. Ca. Af. उपरता च अचेतुपचारः B 1.—P. 727. l. 5. (77, 5.) वृजिनेष्वरिष्टेषु ।. All the MSS. (A. Ca. C 2. Af. B 1. 4) have वृजिनेषु instead of वृजनेषु, which is the reading of the MSS. of the texts, with the accent on the second syllable. As Sâya*n*a seems to have read वृजिनेषु I have left this reading, though it is clearly wrong.

P. 728. l. 1. (78, 3.) सेचनशीलं A. Ca. C 2. B 1. सेचनं शीलं B 4. सेवनशीलं Af.

P. 729. l. 13. (79, 3.) समरीत ॥ As all MSS. except B 1, where the word is left

out, read समरीत्, Sâyana may, by mistake, have read समरीत् instead of समरीत. In B 1 we have सा यथा न प्राप्नोति etc.

P. 730. l. 13. (80, 1.) वि दिद्युति B 1. दिवि द्युलोके A. Ca. C 2. B 4.

P. 732. l. 1. (81, 2.) सोमसजुषां ॥ सोमसजोषां A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 735. l. 13. (83, 4.) पशुसमूहस्वामी A. B 1. Ca. पाश°? See Nir. IV. 2.—l. 22. (83, 5.) निर्वोढुं B 1. निवोढुं A. Ca. M 1.

P. 736. l. 28. (84, 4.) वायुभिरेव ॥ वायुरेव A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 737. l. 24. (85, 2.) संग्रामात् A. Ca. B 1. 4; deest in C 2. संग्रामान्?—P. 739. l. 27. (85, 11.) उपाक्रपंत। Sâyana seems to have read उपं। पप्तिऽवांसं।

P. 740. l. 10. (86.) आक्रष्टा इति A. Ca. B 1. 4. आतुष्टा C 2.—l. 11. गीवावरी इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 12. पृश्नय इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 13. आक्रष्टा माषा A. Ca. B 4. अक्रष्टा माषा B 1. आचष्टा माषा C 2.—l. 15. आक्रष्टा A. Ca. B 1. 4. आचष्टा C 2. अक्रष्टा Anukr.—l. 16. पृश्नयो ॥ प्रश्नयो A. Ca. B 4. C 2. पृश्नये B 1.—It is clear that Sâyana took तृतीये त्रयः for त्रयः, the three companies of Rishis mentioned before. Shadgurusishya takes it for अत्रयः. He writes चतुर्थे दशर्चे अत्रय इतिनामानः. See Aufrecht, Rig-veda, vol. ii. p. 495, note; Anukr. M. pp. 34 and 146.—l. 21. (86, 1.) From मदा to वडवा left out in A. Ca.—P. 743. l. 8. (86, 11.) अभिक्रंदन् and अभ्यर्षति MSS.—P. 744. l. 29. (86, 17.) अभ्यग्निश्रयुः B 1. अभिग्निश्रयुः A. Ca. M 1.—P. 745. l. 23. (86, 20.) After इंद्रस्य A. Ca. C 2 and B 4 add यजमानस्य.—l. 32. (86, 21.) एकविंशतिं गा ऋत्विङ्मुखेन B 1. एकविंशति वारान् त्वङ्मुखेन A. Ca. एकविंशति चारान् त्वन्मुखेन B 4. एकविंशति वारात् त्व - खेन C 2. The readings in all the MSS. except B 1 are intended for एकविंशतिवारं.—P. 747. l. 12. (86, 26.) सुवर्त्मानि MSS.—l. 14. After कुर्वाण इत्यर्थः B 1 adds यद्वा गात्तद्विकारीणि चीराणि° कुर्वाण इत्यर्थः।—l. 23. (86, 27.) After गोभिः we expect पयोभिः or चीरेण; पृष्ठे, too, is left unexplained by Sâyana.—P. 748. l. 5. (86, 29.) समुद्रो वर्षसाधनोऽपां B 4 sec. m. °द्रो वर्णसाधनां पां A. Ca. °द्रो वर्णसाधनो पां C 2. समुद्रवर्णसाधनो नि B 1.—l. 20. (86, 31.) अव चक्रदद्वक्रंदन्॥ अवचक्रदत् अवक्रंदत् B 1. अवचक्रदन् अवचक्रदत् A. अवचक्रदन् अवक्रंदत् Ca. अवचुक्रदन् अवदं क्रंदत् C 2. अवचक्रदत् अवक्रंदन्(°क्रदन् sec. m.) B 4. Sâyana takes अवचक्रदत् as a participle, in spite of the accent.—P. 749. l. 6. (86, 33.) Sâyana leaves out पवते, and seems to have read नृभिः instead of हरिः.—P. 750. l. 5. (86, 37.) वीयसे गच्छसि वी गत्यादिषु A. Ca. वियसे गच्छसि वी गत्यादिषु B 1.—P. 753. l. 3. (86, 48.) One expects यतः क्रतुवित् अतः स्तुत्य इत्यभिप्रायः।

P. 753. l. 15. (87, 1.) After पूयमानो B 1 reads ऽभ्यर्ष वाजं संग्रामं वाजिनं बलवंतं etc.—P. 754. ll. 9 and 11. (87, 5.) अस्वयंक्रु° S 3. अस्वयंक्रु° S 1. अस्वयम्क्रु° S 2. S 4. A text. अस्वयन् Pada MSS. Cf. Rv. IX. 46, 1.—P. 755. l. 5. (87, 8.) पात्रं स्वयंप्राप्तव्यं ॥ प्राप्तं स्वयंप्राप्तव्यं C 2. पात्रं स्वया प्राप्तव्यं। B 1. प्राप्तं स्वया प्राप्तव्यं A. Ca. B 4. पात्रं तया प्रा° M 1.

P. 756. l. 4. (88, 2.) °विरोधात्॥ °विरोधाधीनि A. Ca. C 2. °विरोधारत् B 1. °विराधादीन B 4 sec. m.—l. 11. (88, 3.) हवमाह्वानमाकर्ण्य A. Ca. C 2. B 1. 4. हव आह्वानमाकर्ण्य?

P. 757. l. 28. (89, 1.) अषाः। व्याप्नोषि। A. Ca. C 2. B 1. 4.—l. 29. न्यसदत्। निषीदति॥ A great deal of the commentary is lost in all the MSS., there being no explanation of the last pâda. This has produced a confusion in the remaining commentary. A. Ca.

P. 796. l. 4. (99, 6.) आदधत् before आदधाति B 1. M 1.

P. 798. l. 5. (100, 8.) परि यासि परिगच्छसि A. B 1. Ca.—l. 12. (100, 9.) अति B 1. अभि A. Ca. M 1.

P. 799. l. 1. (101, 1.) पुरःस्थितजयस्य ॥ पुरःस्थितस्य जयस्य A. Ca. B 1. 4. पुरस्थितस्य C 2.—P. 801. l. 23. (101, 13.) मारकः कर्मविघ्नकारी श्वा A. Ca. C 2. B 4. मारककर्मा विघ्नकारी B 1.—l. 24. संसाधक॰ A. Ca. B 4. साधक॰ B 1; deest in C 2. राधक॰ M 1. Cf. Dhp. 27, 16: राध संसिद्धौ.—l. 25. अपराद्धं मखं ॥ अयगद्धमखं A. अयराद्धमखं Ca. अपराद्धमृखं C 2. अयरोद्धमख B 4. अपराधं मखं CB. Lacuna in B 1.

P. 803. l. 6. (102, 3.) धारया आत्मीयया विधारय। किंच A. Ca. C 2. B 4. B 1. I have left the reading of the MSS., though I believe that the original reading was धारयात्मीयया धारया पृष्ठेषु. The insertion of विधारय, without any excuse for it, is not in Sâyana's style. In the commentary to Sv. II. 3, 2, 18, 3, Sâyana, as far as my MS. allows me to see, has no such insertion. The edition, however, has धारया आत्मीयया वि धारया किंच (Bibl. Ind. vol. iii. p. 651). The Sâma-veda has ऐरयत्, and the commentator says ऐरयदेरयेति पाठौ.

P. 804. l. 14. (103, 1.) जुजोषते प्रीयमाणाय यद्वा मतिभिः from B 1.—l. 25. (103, 3.) च्यावयितारं A. Ca. चारयितारं B 1.

P. 805. l. 19. (104.) काश्यप्यौ ॥ काश्यपौ A. B 1. Ca. M 1.—P. 806. l. 20. (104, 5.) अस्मदादीनां B 4 sec. m. अस्मदीनां A. Ca. C 2. B 4. अस्मदीयानां B 1.

P. 808. l. 23. (106, 2.) लोकैर्ग्रा॰ B 1. लोकेर्ग्रा॰ A. Ca. लोके ग्रा॰ M 1.—l. 27. (106, 3.) धनुः गृ॰ B 1. धनुगृ॰ A. Ca. धनं गृ॰ M 1.—P. 809. l. 29. (106, 9.) वृष्टिमभि द्यौर्यैः B 1. वृष्टिभिर्द्यौः चैः A. Ca.

P. 812. l. 8. (107, 5.) सह तिष्ठंत्यत्रेति सधस्थं B 1. मह तिष्ठंतं A. Ca.—l. 23. (107, 7.) सोमः ॥ सोमो भवन् A. Ca. सोमो भवान् B 1.—l. 24. अत्यंतं देवकामो ॥ अत्यंतंकामो A. Ca. M 1. B 1 has गातुवित्तमः अत्यतं ॥ कामोभवः etc., the words between being lost. See Rv. Bh. IX. 49, 3.—P. 813. l. 24. (107, 11.) A. Ca. M 1, but not B 1, insert व्यवधायकानि कुर्वाणः सन् आ पवस इति शेषः। हरिर्हरितवर्णः after तिरस्कुर्वन्, a repetition from the preceding verse.—P. 814. l. 16. (107, 14.) रसमभि पवंते B 1. रसं ग्रामेषु प्रेरयंति अति पवंते A. Ca.—l. 24. (107, 15.) The first बृहद्दृतं is explained in A. Ca. C 2 as सत्यभूतः; in B 1 as सत्यभूतं; B 4 has ॰तं, and changed it to ॰तः.—P. 815. l. 20. (107, 19.) रारण रणेर्लिटि उ॰ B 1. रारण रमे रणेर्लिट उ॰ A. Ca.—P. 817. l. 13. (107, 26.) आत्मनो B 1. आत्मानं A. Ca.

P. 818. l. 1. (108, 2.) स्वर्दृशः सर्वस्य दर्शकस्य ॥ ईदृशः सर्वस्य दर्शकस्य A. Ca. C 2. स्वर्विदः स्वर्गलंभकस्य B 1.—l. 7. (108, 3.) घुषिर् विशब्दने ॥ घुषिद्दविशब्दमे B 1. घुषिरविशते A. Ca. Cf. Rv. Bh. III. 31, 10. 33, 8; Dhp. 17, 1. 33, 53.—l. 13. (108, 4.) एतन्नामकोऽंगिरा ॥ त एतन्नामको गि द्वा मे A. एतन्नामकोऽंगि द्वा Ca. एतन्नामकोंऽगि C 2. एतन्नामकाऽद्वा B 4. एवन्नामको गिरा B 1.—l. 16. आभुवन् ॥ आनख्योभुवन् A. Ca. अनाभिरे व्याभुवन् B 1.—P. 819. l. 6. (108, 7.) स्तोतव्यं ॥ तव्यं A. Ca. स्तोष्यं B 1.—वनच्चचं उदकानां अर्षकं A. Ca. वनचचं उदकानां र्षकं C 2. वनक्रचं उदकानां वर्षकं B 1. The MSS. of the text read वनक्रचं. Sâyana derives च्चच from च्चषो गतौ, cf. Rv. Bh. I. 22, 15. 41, 4; but क्रच from क्षप विलेखने, cf. Rv. Bh. VIII. 1, 2. 76, 11.

out, read समरीत्, Sâyana may, by mistake, have read समरीत् instead of समरीत. In B 1 we have सा यथा त प्राप्नोति etc.

P. 730. l. 13. (80, 1.) वि दिद्युति B 1. दिवि द्युलोके A. Ca. C 2. B 4.

P. 732. l. 1. (81, 2.) सोमसजुषां ॥ सोमसजोषां A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 735. l. 13. (83, 4.) पशुसमूहस्वामी A. B 1. Ca. पाश° ? See Nir. IV. 2.—l. 22. (83, 5.) निर्वोढुं B 1. निवोढुं A. Ca. M 1.

P. 736. l. 28. (84, 4.) वायुभिरेव ॥ वायुरेव A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 737. l. 24. (85, 2.) संग्रामात् A. Ca. B 1. 4; deest in C 2. संग्रामान्?—P. 739. l. 27. (85, 11.) उपाक्रपंत। Sâyana seems to have read उपं। पप्तिऽवांसं।

P. 740. l. 10. (86.) आक्रष्टा इति A. Ca. B 1. 4. आतुष्टा C 2.—l. 11. गीवावरी इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 12. पृश्नय इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 13. आक्रष्टा माषा A. Ca. B 4. अक्रष्टा माषा B 1. आचष्टा माषा C 2.—l. 15. आक्रष्टा A. Ca. B 1. 4. आचष्टा C 2. अक्रष्टा Anukr.—l. 16. पृश्नयो ॥ प्रश्नयो A. Ca. B 4. C 2. पृश्नये B 1.—It is clear that Sâyana took तृतीये त्रयः for त्रयः, the three companies of Rishis mentioned before. Shadgurusishya takes it for अत्रयः. He writes चतुर्थे दशर्चे अत्रय इतिनामानः. See Aufrecht, Rig-veda, vol. ii. p. 495, note; Anukr. M. pp. 34 and 146.—l. 21. (86, 1.) From मदा to वडवा left out in A. Ca.—P. 743. l. 8. (86, 11.) अभिक्रंदन् and अभ्यर्षति MSS.—P. 744. l. 29. (86, 17.) अभ्यग्निग्रयुः B 1. अभिग्निग्रयुः A. Ca. M 1.—P. 745. l. 23. (86, 20.) After इंद्रस्य A. Ca. C 2 and B 4 add यजमानस्य.—l. 32. (86, 21.) एकविंशतिं गा च्चलिङ्मुखेन B 1. एकविंशति वारान् लङ्मुखेन A. Ca. एकविंशति चारान् लन्मुखेन B 4. एकविंशति वारात् ल - खेन C 2. The readings in all the MSS. except B 1 are intended for एकविंशतिवारं.—P. 747. l. 12. (86, 26.) सुवर्त्मानि MSS.—l. 14. After कुर्वाण इत्यर्थः B 1 adds यद्वा गास्तद्विकारीणि चीराणि° कुर्वाण इत्यर्थः।—l. 23. (86, 27.) After गोभिः we expect पयोभिः or चीरेण; पृष्ठे, too, is left unexplained by Sâyana.—P. 748. l. 5. (86, 29.) समुद्रो वर्षसाधनोऽपां B 4 sec. m. °द्रो वर्णसाधनां पां A. Ca. °द्रो वर्णसाधनो पां C 2. समुद्रवर्णसाधनो नि B 1.—l. 20. (86, 31.) अव चक्रदद्वक्रंदन्॥ अवचक्रदत् अवक्रंदत् B 1. अवचक्रदन् अवचक्रदत् A. अवचक्रदन् अवक्रंदत् Ca. अवयुक्रदन् अवदं क्रंदत् C 2. अवचक्रदत् अवक्रंदन्(°क्रदन् sec. m.) B 4. Sâyana takes अवचक्रदत् as a participle, in spite of the accent.—P. 749. l. 6. (86, 33.) Sâyana leaves out पवते, and seems to have read नृभिः instead of हरिः.—P. 750. l. 5. (86, 37.) वीयसे गच्छसि वी गत्यादिषु A. Ca. वियसे गच्छसि वी गत्यादिषु B 1.—P. 753. l. 3. (86, 48.) One expects यतः क्रतुवित् अतः स्तुत्य इत्यभिप्रायः।

P. 753. l. 15. (87, 1.) After पूयमानो B 1 reads ऽभ्यर्ष वाजं संग्रामं वाजिनं बलवंतं etc.—P. 754. ll. 9 and 11. (87, 5.) अस्त्रयंक्रू° S 3. अस्त्रयंक्रू° S 1. अस्त्रयम्क्रू° S 2. S 4. A text. अस्त्रयन् Pada MSS. Cf. Rv. IX. 46, 1.—P. 755. l. 5. (87, 8.) पात्रं स्वयंप्राप्तव्यं ॥ प्राप्तं स्वयंप्राप्तव्यं C 2. पात्रं स्वया प्राप्तव्यं। B 1. प्राप्तं स्वया प्राप्तव्यं A. Ca. B 4. पात्रं तया प्रा° M 1.

P. 756. l. 4. (88, 2.) °विरोधात्॥ °विरोधाधीनि A. Ca. C 2. °विरोधारत् B 1. °विराधादीन B 4 sec. m.—l. 11. (88, 3.) इवमाङ्गानमाकर्ण A. Ca. C 2. B 1. 4. इव आङ्गानमाकर्ण?

P. 757. l. 28. (89, 1.) अषाः। व्याप्नोषि। A. Ca. C 2. B 1. 4.—l. 29. न्यसदत्। निषीदति॥ A great deal of the commentary is lost in all the MSS., there being no explanation of the last pâda. This has produced a confusion in the remaining commentary. A. Ca.

out, read समरीत्, Sâyana may, by mistake, have read समरीत् instead of समरीत. In B 1 we have सा यथा त प्राप्नोति etc.

P. 730. l. 13. (80, 1.) वि दियुति B 1. दिवि द्युलोके A. Ca. C 2. B 4.

P. 732. l. 1. (81, 2.) सोमसजुषां ॥ सोमसजोषां A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 735. l. 13. (83, 4.) पशुसमूहस्वामी A. B 1. Ca. पाश॰? See Nir. IV. 2.—l. 22. (83, 5.) निर्वोढुं B 1. निवोढुं A. Ca. M 1.

P. 736. l. 28. (84, 4.) वायुभिरेव ॥ वायुरेव A. Ca. C 2. B 1. 4.

P. 737. l. 24. (85, 2.) संग्रामात् A. Ca. B 1. 4; deest in C 2. संग्रामान्?—P. 739. l. 27. (85, 11.) उपाक्षपंत। Sâyana seems to have read उपं। पप्तिऽवांसं।

P. 740. l. 10. (86.) आक्षष्टा इति A. Ca. B 1. 4. आतुष्टा C 2.—l. 11. गीवावरी इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 12. पृश्नय इति A. Ca. B 1. 4. C 2.—l. 13. आक्षष्टा माषा A. Ca. B 4. अक्षष्टा माषा B 1. आचष्टा माषा C 2.—l. 15. आक्षष्टा A. Ca. B 1. 4. आचष्टा C 2. अक्षष्टा Anukr.—l. 16. पृश्नयो ॥ प्रश्नयो A. Ca. B 4. C 2. पृश्नये B 1.—It is clear that Sâyana took तृतीये चयः for त्रयः, the three companies of Rishis mentioned before. Shadgurusishya takes it for अत्रयः. He writes चतुर्थे दशर्चे अत्रय इतिनामानः. See Aufrecht, Rig-veda, vol. ii. p. 495, note; Anukr. M. pp. 34 and 146.—l. 21. (86, 1.) From मदा to वडवा left out in A. Ca.—P. 743. l. 8. (86, 11.) अभिक्रंदन् and अभ्यर्षति MSS.—P. 744. l. 29. (86, 17.) अभ्यग्निश्रयुः B 1. अभिग्निश्रयुः A. Ca. M 1.—P. 745. l. 23. (86, 20.) After इंद्रस्य A. Ca. C 2 and B 4 add यजमानस्य.—l. 32. (86, 21.) एकविंशतिं गा स्वलिङ्मुखेन B 1. एकविंशति वारान् लङ्मुखेन A. Ca. एकविंशति चारान् त्वन्मुखेन B 4. एकविंशति वारात् त्व - खेन C 2. The readings in all the MSS. except B 1 are intended for एकविंशतिवारं.—P. 747. l. 12. (86, 26.) सुवर्त्मानि MSS.—l. 14. After कुर्वाण इत्यर्थः B 1 adds यद्वा गास्तद्विकारीणि चीराणि॰ कुर्वाण इत्यर्थः।—l. 23. (86, 27.) After गोभिः we expect पयोभिः or चीरेण; पृष्ठे, too, is left unexplained by Sâyana.—P. 748. l. 5. (86, 29.) समुद्रो वर्षसाधनोऽपां B 4 sec. m. ॰द्रो वर्णसाधनां पां A. Ca. ॰द्रो वर्णसाधनो पां C 2. समुद्रवर्णसाधनो नि B 1.—l. 20. (86, 31.) अव चक्रदद्वक्रंदन्॥ अवचक्रदत् अवक्रंदत् B 1. अवचक्रदन् अवचक्रदत् A. अवचक्रदन् अवक्रंदत् Ca. अवचुक्रदन् अवदं क्रंदत् C 2. अवचक्रदत् अवक्रंदन्(॰क्रदन् sec. m.) B 4. Sâyana takes अवचक्रदत् as a participle, in spite of the accent.—P. 749. l. 6. (86, 33.) Sâyana leaves out पवते, and seems to have read नृभिः instead of हरिः.—P. 750. l. 5. (86, 37.) वीयसे गच्छसि वी गत्यादिषु A. Ca. वियसे गच्छसि वी गत्यादिषु B 1.—P. 753. l. 3. (86, 48.) One expects यतः क्रतुवित् अतः स्तुत्य इत्यभिप्रायः।

P. 753. l. 15. (87, 1.) After पूयमानो B 1 reads ऽभ्यर्ष वाजं संग्रामं वाजिनं बलवंतं etc.—P. 754. ll. 9 and 11. (87, 5.) असृग्रंक्र॰ S 3. असृग्रंक्र॰ S 1. असृग्रम्क्र॰ S 2. S 4. A text. असृग्रन् Pada MSS. Cf. Rv. IX. 46, 1.—P. 755. l. 5. (87, 8.) पात्रं स्वयंप्राप्तव्यं ॥ प्राप्तं स्वयंप्राप्तव्यं C 2. पात्रं स्वया प्राप्तव्यं। B 1. प्राप्तं स्वया प्राप्तव्यं A. Ca. B 4. पात्रं तया प्रा॰ M 1.

P. 756. l. 4. (88, 2.) ॰विरोधात्॥ ॰विरोधाधीनि A. Ca. C 2. ॰विरोधारत् B 1. ॰विराधादीन B 4 sec. m.—l. 11. (88, 3.) इवमाह्वानमाकर्ण्य A. Ca. C 2. B 1. 4. इव आह्वानमाकर्ण्य?

P. 757. l. 28. (89, 1.) अषाः। व्याप्नोषि। A. Ca. C 2. B 1. 4.—l. 29. न्यसदत्। निषीदति॥ A great deal of the commentary is lost in all the MSS., there being no explanation of the last pâda. This has produced a confusion in the remaining commentary. A. Ca.

॥ अथ सप्तमं मंडलं ॥

अथ सप्तमं मंडलमारभ्यते। तस्मिन्मंडले षडनुवाकाः। प्रथमेऽनुवाके सप्तदश सूक्तानि। तत्राग्निं नर इति पंचविंशत्यृचं प्रथमं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। अग्निं पंचाधिका विराजोऽष्टादशाद्या इति। सप्तमं मंडलं वसिष्ठोऽपश्यदित्युक्तत्वान्मंडलद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः। आदितोऽष्टादश विराजस्त्र्येकादशकाः शिष्टा अनादेशपरिभाषया त्रिष्टुभः। मंडलादिपरिभाषयाग्निर्देवता॥ विश्वजितीदं सूक्तमाज्यशस्त्रं। सूत्रितं च। विश्वजितोऽग्निं नर इत्याज्यं। आ° ८. ७.। इति॥ अत्रेश्चतुर्वीराख्ये चतूरात्रे चतुर्थेऽहनीदमेव सूक्तमाज्यशस्त्रं। सूत्र्यते हि। अग्निं नर इति चतुर्थे। आ° १०. २.। इति॥ व्यूळ्हे दशरात्रे चतुर्थेऽहनीदं सूक्तं जातवेदस्यनिविज्ञानं। सूत्रितं च। अग्निं नर इत्याग्निमारुतं। आ° ८. ८.। इति॥ महाव्रतेऽपीदमाज्यशस्त्रं। तथैव पंचमारण्यके सूत्र्यते। आज्यप्रउगे विश्वजितः। ऐ° आ° ५. १. १.। इति॥ अविवाक्येऽहनि प्रातरनुवाके त्वमग्ने वसूनित्यादीनामनुष्टुभां स्थान आद्यस्तृचः प्रक्षेपणीयः। सूत्र्यते हि। दशमेऽहन्यनुष्टुभां स्थानेऽग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति तृचमाग्नेये क्रतौ। आ° ८. १२.। इति॥ आद्याः षडृचस्तस्मिन्नेवाहन्याग्निमारुते शस्त्रे स्तोत्रियानुरूपार्थाः। सूत्रितं च। अग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति स्तोत्रियानुरूपौ। आ° ८. १२.। इति॥ मंडलादिहोमेऽप्येषा॥ आधाने तृतीयायामिष्टौ प्रेद्ध इति स्विष्टकृतोऽनुवाक्या। सूत्रितं च। प्रेद्धो अग्न इमो अग्न इति संयाज्ये। आ° २. १.। इति॥ एवमन्यत्रापि दीक्षणीयादिषु स्विष्टकृतोऽनुवाक्या॥ प्रायणीयेष्टौ सेदग्निरग्नीनित्यादिके द्वे स्विष्टकृतो याज्यानुवाक्ये। सूत्रितं च। सेदग्निरग्नीरत्यस्त्वन्यानिति द्वे संयाज्ये। आ° ४. ३.। इति॥ आधाने तृतीयायामिष्टाविमो अग्न इति स्विष्टकृतो याज्या। सूत्रितं च। इमो अग्न इति संयाज्ये। आ° २. १.। इति॥ एवमन्यत्रापि दीक्षणीयादिष्वेषा सौविष्टकृती याज्या॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ त्रैष्टुभे छंदस्याश्विनशस्त्रे च त्वमग्ने सुहव इत्याद्याः पंचर्चः। सूत्रितं च। त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्। आ° ४. १३.। इति॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयंत प्रशस्तं। दूरेदृशं गृहपतिमथर्युं॥१॥
अग्निं। नरः। दीधितिऽभिः। अरण्योः। हस्तऽच्युती। जनयंत। प्रऽशस्तं। दूरेऽदृशं।
गृहऽपतिं। अथर्युं॥१॥

नरो नेतार ऋत्विजः प्रशस्तं प्रकर्षेण स्तुतं दूरेदृशं दूरे दृश्यमानं दूरे पश्यंतं वा गृहपतिं गृहाणां पालकमथर्युमागम्यमतनवंतं वाग्निमरण्योर्विद्यमानं हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्या हस्तगत्या दीधितिभिरंगुलिभिर्जनयंत। दीधितयोऽंगुलयो भवंति धीयंते कर्मसु। अरणी प्रत्यृत एने अग्निः समरणाज्जायत इति वा। हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्याजनयंत प्रशस्तं दूरेदर्शनं गृहपतिमतनवंतं। नि° ५. १०.। इति॥

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः॥२॥
तं। अग्निं। अस्ते। वसवः। नि। ऋण्वन्। सुऽप्रतिचक्षं। अवसे। कुतः। चित्।
दक्षाय्यः। यः। दमे। आस। नित्यः॥२॥

योऽग्निर्दमे गृहे दचाय्यः पूजनीयो हविर्भिः समर्धनीयो वा नित्योऽजस्र आस बभूव तं सुप्रतिचक्षं सुप्रतिदर्शनमग्निं कुतश्चित् सर्वस्मादपि भयहेतोरवसे रक्षणाय वसवो वासका ये वसिष्ठा अस्मे गृहे न्यृण्वन्। न्यदधुः ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वंत उप यंति वाजाः ॥३॥
प्रऽइद्धः । अग्ने । दीदिहि । पुरः । नः । अजस्रया । सूर्म्या । यविष्ठ ।
त्वां । शश्वंतः । उप । यंति । वाजाः ॥३॥

यविष्ठ युवतम हे अग्ने प्रेद्धः प्रकर्षेण समिद्धस्त्वमजस्रयाशरणशीलया सूर्म्या ज्वालया नोऽस्मदर्थं पुरः पुरस्तादाहवनीयायतने दीदिहि। दीप्यस्व। त्वां शश्वंतो बहवो वाजा अन्नानि हवींष्युप यंति। उपगच्छंति ॥

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचंत द्युमंतः ।
यत्रा नरः समासंते सुजाताः ॥४॥
प्र । ते । अग्नयः । अग्निऽभ्यः । वरं । निः । सुऽवीरासः । शोशुचंत । द्युऽमंतः ।
यत्र । नरः । संऽआसंते । सुऽजाताः ॥४॥

अग्निभ्यो लौकिकेभ्योऽग्निभ्यो वरमत्यंतं द्युमंतो दीप्तिमंतः सुवीरासः कल्याणपुत्रपौत्रप्रदास्तेऽग्नयो प्र निः शोशुचंत। प्रकर्षेण नितरां दीप्यंते। यत्र येष्वग्निषु सुजाताः सुजन्मानो नरः कर्मणां नेतारो यजमाना ऋत्विजो वा समासते सहासते ॥

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तं ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५॥
दाः । नः । अग्ने । धिया । रयिं । सुऽवीरं । सुऽअपत्यं । सहस्य । प्रऽशस्तं ।
न । यं । यावा । तरति । यातुऽमावान् ॥५॥

सहस्याभिभवकुशल हे अग्ने सुवीरं शोभनपुत्रपौत्रोपेतं स्वपत्यं शोभनपौत्रोपेतं प्रशस्तं श्रेष्ठं रयिं धनं धिया स्तोत्रेण नोऽस्मभ्यं दाः। देहि। यं रयिं यावाभिगंता शत्रुर्यातुमावान् हिंसाया निर्गतः ॥ नलोपाभावश्छांदसः ॥ यद्वा। हिंसायुक्तः ॥ परो वतिर्मत्वर्थीयः पूरकः ॥ न तरति न बाधते ॥ ॥२३॥

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६॥
उप । यं । एति । युवतिः । सुऽदक्षं । दोषा । वस्तोः । हविष्मती । घृताची ।
उप । स्वा । एनं । अरमतिः । वसुऽयुः ॥६॥

सुदक्षं सुबलं यमग्निं हविष्मती हविषा युक्ता घृताची। घृतमंचतीति घृताची जुहूः। युवतिरग्निना मिश्रयुक्ता दोषा वस्तो रात्रावहनि चोपैति उपगच्छति तमेनं स्वा स्वकीयारमतिर्दीप्तिर्वसूयुः स्तोतॄणां धनमिच्छंत्युपैति ॥

॥ अथ सप्तमं मंडलं ॥

अथ सप्तमं मंडलमारभ्यते। तस्मिन्मंडले षडनुवाकाः। प्रथमेऽनुवाके सप्तदश सूक्तानि। तत्राग्निं नर इति पंचविंशत्यृचं प्रथमं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। अग्निं पंचाधिका विराजोऽष्टादशाद्या इति। सप्तमं मंडलं वसिष्ठोऽपश्यदित्युक्तत्वान्मंडलद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः। आदितोऽष्टादश विराजस्त्वेकादशकाः शिष्टा अनादेशपरिभाषया त्रिष्टुभः। मंडलादिपरिभाषयाग्निर्देवता ॥ विश्वजितीदं सूक्तमाज्यशस्त्रं। सूत्रितं च। विश्वजितोऽग्निं नर इत्याज्यं। आ० ८. ७.। इति ॥ अत्रेश्चतुर्वीराख्ये चतूरात्रे चतुर्थेऽहनीदमेव सूक्तमाज्यशस्त्रं। सूत्र्यते हि। अग्निं नर इति चतुर्थे। आ० १०. २.। इति ॥ व्यूळ्हे दशरात्रे चतुर्थेऽहनीदं सूक्तं जातवेदस्यनिविज्ञानं। सूत्रितं च। अग्निं नर इत्याग्निमारुतं। आ० ८. ८.। इति ॥ महाव्रतेऽपीदमाज्यशस्त्रं। तथैव पंचमारण्यके सूत्र्यते। आज्यप्रउगे विश्वजितः। ऐ० आ० ५. १. १.। इति ॥ अविवाक्येऽहनि प्रातरनुवाके त्वमग्ने वसूनित्यादीनामनुष्टुभां स्थान आद्यस्तृचः प्रक्षेपणीयः। सूत्र्यते हि। दशमेऽहन्यनुष्टुभां स्थानेऽग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति तृचमाग्नेये क्रतौ। आ० ८. १२.। इति ॥ आद्याः षडृचस्तस्मिन्नेवाहन्याग्निमारुते शस्त्रे स्तोत्रियानुरूपार्थाः। सूत्रितं च। अग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति स्तोत्रियानुरूपौ। आ० ८. १२.। इति ॥ मंडलादिहोमेऽप्येषा ॥ आधाने तृतीयायामिष्टौ प्रेद्ध इति स्विष्टकृतोऽनुवाक्या। सूत्रितं च। प्रेद्धो अग्न इमो अग्न इति संयाज्ये। आ० २. १.। इति ॥ एवमन्यत्रापि दीक्षणीयादिषु स्विष्टकृतोऽनुवाक्या ॥ प्रायणीयेष्टौ सेदग्निरग्नीनित्यादिके द्वे स्विष्टकृतो याज्यानुवाक्ये। सूत्रितं च। सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यानिति द्वे संयाज्ये। आ० ४. ३.। इति ॥ आधाने तृतीयायामिष्टाविमो अग्न इति स्विष्टकृतो याज्या। सूत्रितं च। इमो अग्न इति संयाज्ये। आ० २. १.। इति ॥ एवमन्यत्रापि दीक्षणीयादिष्वेषा सौविष्टकृती याज्या ॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ त्रैष्टुभे छंदस्याश्विनशस्त्रे च त्वमग्ने सुहव इत्याद्याः पंचर्चः। सूत्रितं च। त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्। आ० ४. १३.। इति ॥

अ॒ग्निं नरो॒ दीधि॑तिभिर॒रण्यो॒र्हस्त॑च्युती जनयंत प्रश॒स्तं। दू॒रे॒दृशं॑ गृ॒हप॑तिमथ॒र्युं ॥१॥
अ॒ग्निं। नरः॑। दीधि॑तिऽभिः। अ॒रण्योः॑। हस्त॑ऽच्युती। ज॒न॒यं॒त॒। प्र॒ऽश॒स्तं। दू॒रे॒ऽदृशं॑। गृ॒हऽप॑तिं। अ॒थ॒र्युं ॥१॥

नरो नेतार ऋत्विजः प्रशस्तं प्रकर्षेण स्तुतं दूरेदृशं दूरे दृश्यमानं दूरे पश्यंतं वा गृहपतिं गृहाणां पालकमथर्युमागम्यमतनवंतं वाग्निमरण्योर्विद्यमानं हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्या हस्तगत्या दीधितिभिरंगुलिभिर्जनयंत। दीधितयोऽंगुलयो भवंति धीयंते कर्मसु। अरणी प्रत्यृत एने अग्निः समरणाज्जायत इति वा। हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्याजनयंत प्रशस्तं दूरेदर्शनं गृहपतिमतनवंतं। नि० ५. १०.। इति ॥

तम॒ग्निमस्ते॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन्त्सुप्रति॒चक्ष॒मव॑से॒ कुत॑श्चित्।
द॒क्षाय्यो॒ यो दम॒ आस॒ नित्यः॑ ॥२॥
तं। अ॒ग्निं। अस्ते॑। वस॑वः। नि। ऋ॒ण्व॒न्। सु॒ऽप्र॒ति॒चक्षं॑। अव॑से। कुतः॑। चि॒त्।
द॒क्षाय्यः॑। यः। दमे॑। आस॑। नित्यः॑ ॥२॥

हे अग्ने शुने शून्ये पुत्रादिरहिते गृहे मा नि षदाम। न निवसाम। नृणामन्येषां च गृहे मा नि षदाम। दुर्य गृहेभ्यो हित हे अग्ने अशेषसोऽपुत्राः। तोकम् शेष इति पुत्रनामसु पाठात्। अवीरतावीरतया युक्ताश्च संतस्त्वा त्वां परि चरंतः प्रजावतीष्विव दुर्यासु गृहेषु निवसाम ॥

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावंतं स्वपत्यं क्षयं नः।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानं ॥१२॥
यं। अश्वी। नित्यं। उपऽयाति। यज्ञं। प्रजाऽवंतं। सुऽअपत्यं। क्षयं। नः।
स्वऽजन्मना। शेषसा। ववृधानं ॥१२॥

यं यज्ञं यज्ञाश्रयमश्व्यश्ववानग्निर्नित्यमुपयाति तं प्रजावंतं भृत्यादिसहितं स्वपत्यं शोभनसंतानोपेतं स्वजन्मनौरसेन शेषसा पुत्रेण ववृधानं वर्धमानं क्षयं गृहं नोऽस्मभ्यं हे अग्ने देहीति शेषः ॥

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्यां ॥१३॥
पाहि। नः। अग्ने। रक्षसः। अजुष्टात्। पाहि। धूर्तेः। अररुषः। अघऽयोः।
त्वा। युजा। पृतनाऽयून्। अभि। स्यां ॥१३॥

हे अग्ने नोऽस्मानजुष्टादप्रीतिविषयाद्रक्षसो राक्षसात्पाहि। रक्ष। किंचाररुषोऽदातुरघायोः पापमिच्छतो धूर्तेर्हिंसकात्पाहि। अपि च त्वा त्वया युजा सहायभूतेन पृतनायून् पृतनाकामानभि ष्यां। अहमभिभवेयं ॥

सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥१४॥
सः। इत्। अग्निः। अग्नीन्। अति। अस्तु। अन्यान्। यत्र। वाजी। तनयः। वीळुऽपाणिः।
सहस्रऽपाथाः। अक्षरा। संऽएति ॥१४॥

स इत् स एवाग्निराहवनीयादिरस्मदीयोऽन्यानितरानन्यदीयानग्नीनत्यस्तु। अतिभवतु। यत्र यस्मिन्नग्नौ वाज्यन्नवान् बलवान्वा वीळुपाणिर्दृढहस्तः। वीळु च्यौत्नमिति बलनामसु पाठात्। सहस्रपाथा बहन्नो बहुस्थानो वा बहूदको वा तनयोऽस्मत्पुत्रोऽक्षराक्षरेण क्षयरहितेन स्तोत्रेण समेति सम्यक् परिचरन्नेति। समर्थपुत्रवत एवाग्निरन्यदीयानग्नीनभिभवतीति भावः ॥

सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात्।
सुजातासः परि चरंति वीराः ॥१५॥
सः। इत्। अग्निः। यः। वनुष्यतः। निऽपाति। संऽएद्धारं। अंहसः। उरुष्यात्।
सुऽजातासः। परि। चरंति। वीराः ॥१५॥

यः समेद्धारं प्रबोधकं वनुष्यतो हिंसकात्। वनुष्यतिर्हंतिकर्मेति यास्कः। उरुष्यात् अधिकादंहसः पापाच्च निपाति अत्यंतं रक्षति। यं च सुजातासः सुजन्मान एव वीराः स्तोतारः सुता वा परि चरंति स इत स एवाग्निः ॥ ॥२५॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिंधे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६॥
अयं । सः । अग्निः । आऽहुतः । पुरुऽत्रा । यं । ईशानः । सं । इत् । इंधे । हविष्मान् ।
परि । यं । एति । अध्वरेषु । होता ॥१६॥

यमग्निमीशानः समृद्ध ऐश्वर्यमिच्छन् वा हविष्मान् यजमानः समिंधे सम्यक् दीपयति । यं चाध्वरेषु हिंसारहितेषु यज्ञेषु होता देवानामाह्वाता पर्येति परिगच्छति सोऽयमग्निः पुरुत्रा बहुषु देशेषु बहुषु यज्ञेषु वाहुत आहुतिभिरभिहुतः ॥

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वंतो वहतू मियेधे ॥१७॥
त्वे इति । अग्ने । आऽहवनानि । भूरि । ईशानासः । आ । जुहुयाम । नित्या ।
उभा । कृण्वंतः । वहतू इति । मियेधे ॥१७॥

हे अग्ने त्वे त्वयीशानासो धनानामीश्वराः संतो नित्या नित्यान्यग्निहोत्रादीन्युभोभौ वहतू वहनहेतू स्तोत्रं शस्त्रं च कृण्वंतः कुर्वंतो मियेधे यज्ञे भूरि बहून्याहवनानि हवींष्या जुहुयाम । आजुहवाम ॥

इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यंतु ॥१८॥
इमो इति । अग्ने । वीतऽतमानि । हव्या । अजस्रः । वक्षि । देवऽतातिं । अच्छ ।
प्रति । नः । ईं । सुरभीणि । व्यंतु ॥१८॥

हे अग्ने त्वमजस्रोऽनवरतः सन् इमो इमानि वीततमान्यतिशयेन कांतानि हव्या हव्यानि देवतातिं देवानां समूहमभि वक्षि । वह । अच्छ गच्छ च । नोऽस्मदीयानि सुरभीणि शोभनानीमेतानि हव्यानि देवाः प्रति व्यंतु । प्रत्येकं कामयंतां ॥

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥१९॥
मा । नः । अग्ने । अवीरते । परा । दाः । दुःऽवाससे । अमतये । मा । नः । अस्यै ।
मा । नः । क्षुधे । मा । रक्षसे । ऋतऽवः । मा । नः । दमे । मा । वने । आ । जुहूर्थाः ॥१९॥

हे अग्ने नोऽस्मानवीरतेऽपुत्रतायै मा परा दाः । मा देहि । दुर्वाससे दुष्टवस्त्राय च नो मा परा दाः । अस्या अमतयेऽभिहान्यै नोऽस्मान्मा परा दाः । क्षुधेऽशनायायै नोऽस्मान्मा च परा दाः । रक्षसे बलिने चास्मान्मा परा दाः । हे ऋतावः सत्यवन्नग्ने नोऽस्मान् दमे गृहे मा जुहूर्थाः । मा हिंसीः ॥ हृर्छा कौटिल्य इति धातुः ॥ वने चास्मान्मा जुहूर्थाः ॥

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२०॥

नु। मे। ब्रह्माणि। अग्ने। उत्। शशाधि। त्वं। देव। मघवत्ऽभ्यः। सुसूदः।
रातौ। स्याम। उभयासः। आ। ते। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥२०॥

हे अग्ने मे मम मदर्थं ब्रह्माण्यन्नानि नु क्षिप्रमुच्छशाधि। उत्कर्षेण शोधितानि कुरु। किंच हे देव द्योतमानाग्ने मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्योऽस्मभ्यं सुषूदः। अन्नानि प्रेरय। ते त्वदीयायां रातौ दाने उभयासः स्तोत्रिणः शस्त्रिणश्च अथवा स्तुवंतो यजमानाश्च वयमा स्याम। अत्यर्थं भवेम। नोऽस्मान्यूयं त्वत्परिवाराश्च सर्वे स्वस्तिभिरविनाशिभिर्मंगलैः। तथा च यास्कः। स्वस्तीत्यविनाशनामास्तिरभिपूजितः स्वस्तीति। नि० ३. २१.। सदा पात। रक्षत॥ ॥२६॥

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥२१॥
त्वं। अग्ने। सुऽहवः। रण्वऽसंदृक्। सुऽदीती। सूनो इति। सहसः। दिदीहि।
मा। त्वे इति। सचा। तनये। नित्ये। आ। धक्। मा। वीरः। अस्मत्। नर्यः। वि।
दासीत् ॥२१॥

सहसः सूनो सहसः सुत हे अग्ने सुहवः स्वाह्वानो रण्वसंदृक् रमणीयसंदर्शनस्त्वं सुदीती शोभनया दीप्त्या दिदीहि। दीप्यस्व। किंच तनये नित्य औरसे पुत्रे त्वे त्वं सचा सहायभूतो मा आ धक्। माभिधाक्षीः। अपि चास्मत् पृथग्भूतोऽस्माकं वा॥ षष्ठ्यर्थे पंचमी॥ वीरः पुत्रो नर्यो नरहितो मा वि दासीत्। नोपक्षीयेत॥

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशंत ॥२२॥
मा। नः। अग्ने। दुःऽभृतये। सचा। एषु। देवऽइद्धेषु। अग्निषु। प्र। वोचः।
मा। ते। अस्मान्। दुःऽमतयः। भृमात्। चित्। देवस्य। सूनो इति। सहसः। नशंत ॥२२॥

हे अग्ने सचा सहायभूतस्त्वं देवेद्धेष्वृत्विग्भिः समिद्धेष्वेष्वग्निषु दुर्भृतये कृच्छ्रभरणाय नोऽस्मान्मा प्र वोचः। न ब्रूहि। त्वत्सहायभूता अग्नयो यथा मामकृच्छ्रेण बिभृयुस्तथा ब्रूहीत्यर्थः। किंच सहसः सूनो हे बलस्य पुत्राग्ने देवस्य द्योतमानस्य ते तव दुर्मतयो निग्रहबुद्धयो भृमाच्चित् भ्रमादपि॥ अत्र संप्रसारणं छांदसं॥ प्रमादादपीत्यर्थः। अस्मान्मा नशंत। मा व्याप्नुवंतु। नशदिति व्याप्तिकर्मसु पाठात्॥

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यं।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥२३॥
सः। मर्तः। अग्ने। सुऽअनीक। रेवान्। अमर्त्ये। यः। आऽजुहोति। हव्यं।
सः। देवता। वसुऽवनिं। दधाति। यं। सूरिः। अर्थी। पृच्छमानः। एति ॥२३॥

स्वनीक सुतेजस्क हे अग्ने अमर्त्येऽमनुष्ये देवतात्मनि त्वयि हव्यं हविर्य आजुहोति स मर्तो मनुष्यो रेवान् धनवान्भवति। यं मर्त्यं सूरिः प्राज्ञोऽर्थी धनादिकामः पृच्छमानोऽसावुदारः क्वास्त इति पृच्छन्नेति अभिगच्छति स एव मनुष्यो देवता देवताभ्यो वसुवनिं धनपोषं ददाति। यद्वा। स देवताग्निर्वसुवनिं यजमानं दधाति धारयति यमग्निं सूरिः स्तोतार्थी प्रयोजनवान् पृच्छमानः कोऽसावग्निरिति पृच्छमान एति॥

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहंतं ।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥२४॥
महः । नः । अग्ने । सुवितस्य । विद्वान् । रयिं । सूरिऽभ्यः । आ । वह । बृहंतं ।
येन । वयं । सहसाऽवन् । मदेम । अविऽक्षितासः । आयुषा । सुऽवीराः ॥२४॥

हे अग्ने नोऽस्मदीयस्य महो महतः सुवितस्य कल्याणस्य कर्मणो विद्वान्। अस्मदीयं कल्याणं कर्म जानन्नित्यर्थः। त्वं सूरिभ्यः स्तोतृभ्योऽस्मभ्यं बृहंतं महांतं रयिं धनमा वह। रयिमेव विशिनष्टि। हे सहसावन् बलवन्नग्ने येन धनेन वयं स्तोतारोऽविक्षितासोऽविक्षीणा आयुषा पूर्णायुषः सुवीराः कल्याणपुत्रपौत्राश्च संतो मदेम हृष्येम ॥

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥
नु । मे । ब्रह्माणि । अग्ने । उत् । शशाधि । त्वं । देव । मघवत्ऽभ्यः । सुसूदः ।
रातौ । स्याम । उभयासः । आ । ते । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥२५॥

इयमृक् प्रागेव व्याख्याता ॥ ॥२७॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

जुषस्व न इत्येकादशर्चं द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं। आप्रशब्दोक्तत्वादिदं तनूनपाद्रहितं। समिद्धाद्या अग्निविशेषाः प्रत्यृचं देवता उक्ताः। तथा चानुक्रम्यते। जुषस्वैकादशाप्रमिति ॥ पशाविष्टाविदमाप्रीसूक्तं। सूचितं च। जुषस्व नः समिधमिति वसिष्ठानां। आ० ३. २.। इति ॥ पत्नीसंयाजे त्वाष्ट्रयागस्य याज्या त्वाष्ट्रे पशावपि पुरोडाशस्यानुवाक्येयमिति पूर्वमुक्तं ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥१॥
जुषस्व । नः । संऽइधं । अग्ने । अद्य । शोच । बृहत् । यजतं । धूमं । ऋण्वन् ।
उप । स्पृश । दिव्यं । सानु । स्तूपैः । सं । रश्मिऽभिः । ततनः । सूर्यस्य ॥१॥

हे अग्ने नोऽस्माकं समिधमद्य जुषस्व। सेवस्व। यजतं यजनीयं प्रशस्तं धूममृण्वन् प्रेरयन् बृहदत्यंतं शोच। दीप्यस्व च। किंच दिव्यमंतरिक्षभवं सानु समुच्छ्रितं स्तूपैस्त्वदीयै रश्मिभिरुप स्पृश। अपि च सूर्यस्य रश्मिभिस्तेजोभिः सं ततनः। संगच्छस्व ॥

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदंति देवा उभयानि हव्या ॥२॥
नराशंसस्य । महिमानं । एषां । उप । स्तोषाम । यजतस्य । यज्ञैः ।
ये । सुऽक्रतवः । शुचयः । धियंऽधाः । स्वदंति । देवाः । उभयानि । हव्या ॥२॥

ये देवाः सुक्रतवः सुप्रज्ञाः सुकर्माणो वा शुचयो दीप्तिमंतो धियंधाः कर्मणां धारयितार उभयानि सौमिकानि च हविःसंस्थादीनि च हव्या हव्यानि स्वदंति स्वदयंति भक्षयंति तेषामेषां मध्ये यज्ञैर्हविर्भिः स्तोत्रैर्वा यजतस्य यजनीयस्य नराशंसस्य नरैः प्रशंसनीयस्याग्निविशेषस्य महिमानं महत्त्वमुप स्तोषाम । वयमुपस्तुमः । तथा च यास्कः । नरा अस्मिन्नासीनाः शंसंति । अग्निरिति शाकपूणिर्नरैः प्रशस्यो भवति । तस्यैषा भवति । नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैर्ये सुकर्माणः शुचयो धियं धारयितारः स्वदयंतु देवा उभयानि हवींषि सोमं चेतराणि च । नि० ८. ६. । इति ॥

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमंतर्दूतं रोदसी सत्यवाचं ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥३॥
ईळेन्यं । वः । असुरं । सुऽदक्षं । अंतः । दूतं । रोदसी इति । सत्यऽवाचं ।
मनुष्वत् । अग्निं । मनुना । संऽइद्धं । सं । अध्वराय । सदं । इत् । महेम ॥३॥

हे अध्वर्यवो वो यूयमीळेन्यं स्तुत्यमसुरं बलवंतं सुदक्षं सुप्रज्ञं रोदसी रोदस्योरंतर्मध्ये दूतं देवानां हविर्वहनार्थं चरंतं सत्यवाचं मनुष्वन्मनुष्यवन्मनुना समिद्धं यथेदानीं मनुष्याः समिंधते तथा पूर्वं मनुना प्रजापतिना समिद्धमग्निमध्वराय यज्ञाय सदमित्सदैव सं महेम । संपूजयत ॥ मध्यमपुरुषस्य व्यत्ययेनोत्तमपुरुषत्वं ॥

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृंजते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वं ॥४॥
सपर्यवः । भरमाणाः । अभिऽज्ञु । प्र । वृंजते । नमसा । बर्हिः । अग्नौ ।
आऽजुह्वानाः । घृतऽपृष्ठं । पृषत्ऽवत् । अध्वर्यवः । हविषा । मर्जयध्वं ॥४॥

सपर्यवः परिचरणमिच्छंतोऽभिज्ञु अभिगतजानुकं भरमाणाः पादैर्भरंतो बर्हिर्नमसा हविषा सहाग्नौ प्र वृंजते । प्रभरंति । तदेव विशदयति । हे अध्वर्यवो घृतपृष्ठं घृतसंसिक्तपृष्ठं पृषद्वत् स्थूलविंदुभिर्युक्तं बर्हिर्हविषा सहाजुह्वाना मर्जयध्वं । अग्निं परिचरत ॥

स्वाध्यो३ वि दुरो देवयंतोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वंजन् ॥५॥
सुऽआध्यः । वि । दुरः । देवऽयंतः । अशिश्रयुः । रथऽयुः । देवऽताता ।
पूर्वी इति । शिशुं । न । मातरा । रिहाणे इति । सं । अग्रुवः । न । समनेषु । अंजन् ॥५॥

स्वाध्यः सुकर्माणो देवयंतो देवकामा यजमाना रथयू रथकामाश्च ॥ जसि पूर्वसवर्णो ह्रस्वश्च ॥ देवताता देवतातौ यज्ञे दुरो यज्ञगृहद्वाराणि व्यशिश्रयुः । आश्रितवंतः । किंच समनेषु यज्ञेषु पूर्वी प्राचीने प्रागग्रे जुह्वपभृतौ शिशुं न वत्समिव मातरौ गावौ रिहाणे अग्निं लिहाने अग्रुवो न यथा नद्यः क्षेत्राण्युदकेन तद्वत्समंजन् । अध्वर्यव आज्येन समंजंति ॥ ॥१॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेतां ॥ ६ ॥
उत । योषणे इति । दिव्ये इति । मही इति । नः । उषसानक्ता । सुदुघाऽइव । धेनुः ।
बर्हिऽसदा । पुरुहूते इति पुरुऽहूते । मघोनी इति । आ । यज्ञिये इति । सुविताय ।
श्रयेतां ॥ ६ ॥

उतापि च योषणे युवत्यौ स्त्रीरूपे वा दिव्ये दिवि भवे मही महत्यौ बर्हिषदा बर्हिषि सीदंत्यौ पुरुहूते बहुभिः स्तुते मघोनी धनवत्यौ यज्ञिये यज्ञार्हे उषासानक्ताहोरात्रे सुदुघेव धेनुः कामधुग्धेनुरिव नोऽस्मान् सुविताय कल्याणाया श्रयेतां ॥

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥
विप्रा । यज्ञेषु । मानुषेषु । कारू इति । मन्ये । वां । जातऽवेदसा । यजध्यै ।
ऊर्ध्वं । नः । अध्वरं । कृतं । हवेषु । ता । देवेषु । वनथः । वार्याणि ॥ ७ ॥

हे दैव्या होतारौ विप्रा मेधाविनौ जातवेदसा जातधनौ मानुषेषु मनुष्यैः क्रियमाणेषु यज्ञेषु कारू कर्मणां कर्तारौ वां युवां यजध्यै यष्टुं मन्ये । स्तौमि । किंच हवेषु हवनेषु स्तोत्रेषु सत्सु नोऽस्माकमध्वरमकुटिलं यज्ञमूर्ध्वं देवाभिमुखं कृतं । कुरुतं च । अपि च ता तौ युवां देवेषु विद्यमानानि वार्याणि धनानि वनथः । संभजथः । तान्यस्मभ्यं संप्रयच्छथ इत्यर्थः ॥

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदंतु ॥ ८ ॥
आ । भारती । भारतीभिः । सऽजोषाः । इळा । देवैः । मनुष्येभिः । अग्निः ।
सरस्वती । सारस्वतेभिः । अर्वाक् । तिस्रः । देवीः । बर्हिः । आ । इदं । सदंतु ॥ ८ ॥

एतदाद्यृक्चतुष्टयं द्वितीयाष्टकस्याष्टमाध्याये । ऋग्वे॰ ३. ४. ८–११. । यद्यपि व्याख्यातं तथापि व्यवधानात्संक्षेपतोऽत्रापि व्याख्यायते । भारती भरतस्यादित्यस्य पत्नी भारतीभिः सजोषाः सहितेळा मनुष्येभिर्मनुष्यलोकभवैर्देवैः सार्धमग्निरागच्छतु । सरस्वती सारस्वतेभिः सारस्वतैर्मध्यमस्थानैर्देवैः सार्धमर्वागस्मदभिमुखमागच्छतु । आगत्य तिस्रो देवीर्देव्यः ॥ प्रथमार्थे द्वितीया ॥ बर्हिरिदमा सदंतु ॥

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
तत् । नः । तुरीपं । अध । पोषयित्नु । देव । त्वष्टः । वि । रराणः । स्यस्वेति स्यस्व ।
यतः । वीरः । कर्मण्यः । सुऽदक्षः । युक्तऽग्रावा । जायते । देवऽकामः ॥ ९ ॥

देव द्योतमान हे त्वष्टा रराणो रममाणस्त्वं नोऽस्माकं तुरीपं त्वरितमाप्नुवत् पोषयित्नु पोषकं तद्रेतो वि स्यस्व । विशेषेणावसानं प्रापय । विमोचयेत्यर्थः । यतो रेतसः कर्मण्यः कर्मसु साधुः सुदक्षः सुबलो युक्तग्रावा सोमसुत् देवकामो वीरः पुत्रो जायते ॥

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥
वनस्पते । अव । सृज । उप । देवान् । अग्निः । हविः । शमिता । सूदयाति ।
सः । इत् । ऊं इति । होता । सत्यऽतरः । यजाति । यथा । देवानां । जनिमानि । वेद ॥१०॥

हे वनस्पते देवानुपाव सृज । अथ परोक्षस्तुतिः । अग्निर्वनस्पतिः शमिता शामित्ररूपः सन् हविः सूदयाति । प्रेरयतु । सेत्स एव वनस्पतिर्होता देवानामाह्वाता सत्यतरोऽपि सन् यजाति । यजतु । देवानां जनिमानि जननानि यथा स्वयं वेद तथा ॥

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिंद्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयंतां ॥११॥
आ । याहि । अग्ने । संऽइधानः । अर्वाङ् । इंद्रेण । देवैः । सऽरथं । तुरेभिः ।
बर्हिः । नः । आस्तां । अदितिः । सुऽपुत्रा । स्वाहा । देवाः । अमृताः । मादयंतां ॥११॥

हे अग्ने समिधान अर्वागस्मदभिमुखस्त्वमिंद्रेण तुरेभिस्त्वरितैर्देवैश्च सरथं समानरथं यथा भवति तथा आ याहि । आगच्छ । नोऽस्माकं बर्हिरध्यास्तामदितिश्च सुपुत्रा कल्याणपुत्रा । स्वाहा देवाश्च सर्वेऽमृताः संतो मादयंतामिति ॥ ॥२॥

अग्निं वो देवमिति दशर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं। अत्रेयमनुक्रमणिका । अग्निं वो दशेति ॥ अग्निं वो देवमित्येतदादीनि दश सूक्तानि तृतीयचतुर्थवर्जितानि प्रातरनुवाके आग्नेये क्रतौ त्रैष्टुभे छंदस्याश्विनशस्त्रे च विनियुक्तानि । सूचितं च। अग्निं वो देवमिति दशानां तृतीयचतुर्थे उद्धरेत् । आ० ४.१३.। इति ॥ व्यूळ्हे दशरात्रेऽष्टमेऽहनीदं सूक्तमाज्यशस्त्रं। सूत्र्यते हि। द्वितीयस्याग्निं वो देवमित्याज्यं। आ० ८.१०.। इति ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वं ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥
अग्निं । वः । देवं । अग्निऽभिः । सऽजोषाः । यजिष्ठं । दूतं । अध्वरे । कृणुध्वं ।
यः । मर्त्येषु । निऽध्रुविः । ऋतऽवा । तपुःऽमूर्धा । घृतऽअन्नः । पावकः ॥१॥

हे देवा वो यूयं देवं द्योतमानमग्निमग्निभिरन्यैरग्निभिः सजोषाः सजोषसं सहितं ॥ द्वितीयार्थे प्रथमा ॥ यजिष्ठं यष्टृतममग्निमध्वरे कौटिल्यरहिते यज्ञे दूतं कृणुध्वं । कुरुत । योऽग्निर्देवोऽपि सन् मर्त्येषु निध्रुविर्नितरां ध्रुवस्तिष्ठति ऋतावा यज्ञवान् सत्यवान्वा तपुर्मूर्धा तापकतेजा घृतान्नः पावकः शोधकश्च भवति ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥
प्रोथत् । अश्वः । न । यवसे । अविष्यन् । यदा । महः । संऽवरणात् । वि । अस्थात् ।
आत् । अस्य । वातः । अनु । वाति । शोचिः । अध । स्म । ते । व्रजनं । कृष्णं । अस्ति ॥२॥

यवसे घासेऽविष्यन् भक्षयन् प्रोथत् शब्दं कुर्वन् संचरन्वाश्वो न अश्व इव महो महतः संवरणान्निरोधात्

दावरूपोऽग्निर्यदा व्यस्थात् सततेषु वृक्षेषु वितिष्ठते आत्तदास्त्वाग्नेः शोचिरर्चिरनु वातो वाति। अथ प्रत्यक्षस्तुतिः। अधानंतरं हे अग्ने ते तव व्रजनं वर्त्म कृष्णमस्ति। भवति। स्मेति पूरणः॥

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरंत्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥
उत्। यस्य। ते। नवऽजातस्य। वृष्णः। अग्ने। चरंति। अजराः। इधानाः।
अच्छ। द्यां। अरुषः। धूमः। एति। सं। दूतः। अग्ने। ईयसे। हि। देवान् ॥३॥

हे अग्ने नवजातस्य नवप्रादुर्भावस्य वृष्णो वर्षितुर्यस्य ते तवाजरा जरारहिता ज्वाला इधाना उच्चरंति उन्नच्छंति अस्यारुष आरोचमानो धूमो द्यामच्छ दिवमभ्येति। गच्छति। हे अग्ने त्वं दूतः सन् देवान् समीयसे हि। संप्राप्नोषि च॥

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जंभैः।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥४॥
वि। यस्य। ते। पृथिव्यां। पाजः। अश्रेत्। तृषु। यत्। अन्ना। संऽअवृक्त। जंभैः।
सेनाऽइव। सृष्टा। प्रऽसितिः। ते। एति। यवं। न। दस्म। जुह्वा। विवेक्षि ॥४॥

हे अग्ने यस्य दावरूपस्य ते तव पाजस्तेजः पृथिव्यां भूम्यां तृषु क्षिप्रं व्यश्रेत् विश्रयति यद्यदान्नानि काष्ठादीनि जंभैर्दंतैः। ज्वालाभिरित्यर्थः। समवृक्त वृंक्ते खादति। तथा सेनेव सृष्टोद्युक्ता ते तव प्रसितिर्ज्वालैति। गच्छति। दस्म हे दर्शनीयाग्ने त्वं यवं न यवमिव जुह्वा ज्वालया विवेक्षि। काष्ठादीनि भक्षयसि व्याप्नोषि वा॥

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयंत नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥५॥
तं। इत्। दोषा। तं। उषसि। यविष्ठं। अग्निं। अत्यं। न। मर्जयंत। नरः।
निऽशिशानाः। अतिथिं। अस्य। योनौ। दीदाय। शोचिः। आऽहुतस्य। वृष्णः ॥५॥

यविष्ठं युवतममतिथिमतिथिवत्पूज्यं तमित्तमेवाग्निं दोषा दोषायां रात्रावुषसि वासरेऽपि तमेवास्याग्नेर्योनौ स्थान आहवनीयायतने धिष्ण्ये वा निशिशाना दीपयंतो नरो मनुष्या अत्यं न सततगमनयुक्तं वोढारमश्वमिव मर्जयंत। परिचरंति। आहुतस्य च वृष्णः कामानां वर्षितुरग्नेस्तस्य शोचिर्ज्वाला दीदाय। दीप्यते॥ ॥३॥

सुसंदृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुं ॥६॥
सुऽसंदृक्। ते। सुऽअनीक। प्रतीकं। वि। यत्। रुक्मः। न। रोचसे। उपाके।
दिवः। न। ते। तन्यतुः। एति। शुष्मः। चित्रः। न। सूरः। प्रति। चक्षि। भानुं ॥६॥

स्वनीक हे सुतेजस्काग्ने त्वं यद्यदा रुक्मो न सूर्य इव। सुवर्णमिव वा। उपाकेऽंतिके वि रोचसे विशेषेण दीप्यसे तदा ते तव प्रतीकं रूपमंगं वा सुसंदृक् सुसंदर्शनं भवति। किंच ते तव शुष्मो दिवोऽंतरिक्षात्तन्यतुर्गाशनिरिवैति। निर्गच्छति। चित्रो दर्शनीयः सूरो न सूर्य इव भानुं स्वां दीप्तिं प्रति चक्षि। प्रदर्शयसि॥

यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥७॥
यथा । वः । स्वाहा । अग्नये । दाशेम । परि । इळाभिः । घृतवत्ऽभिः । च । हव्यैः ।
तेभिः । नः । अग्ने । अमितैः । महःऽभिः । शतं । पूःऽभिः । आयसीभिः । नि । पाहि ॥७॥

हे अग्ने अग्नयेऽग्नस्य नेत्रे वस्तुभ्यं स्वाहा स्वाकृतं हविः । किंच यथा वयमिळाभिर्गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिर्घृतवद्भिर्घृतसहितैर्हव्यैः पुरोडाशादिभिश्च दाशेम परिचरेम तथा त्वमपि तेभिः प्रसिद्धैरमितैरपरिमितैर्महोभिस्तेजोभिः शतमपरिमिताभिरायसीभिर्हिरण्मयीभिः । रुक्ममय इति हिरण्यनामसु पाठात् । पूर्भिर्नगरीभिरिव नोऽस्मान् नि पाहि । नितरां रक्ष ॥

या वा ते संति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥८॥
याः । वा । ते । संति । दाशुषे । अधृष्टाः । गिरः । वा । याभिः । नृऽवतीः । उरुष्याः ।
ताभिः । नः । सूनो इति । सहसः । नि । पाहि । स्मत् । सूरीन् । जरितॄन् । जातऽवेदः ॥८॥

सहसः सूनो हे बलस्य पुत्र जातवेदोऽग्ने दाशुषे दाशुषस्ते तव या वा याश्च ज्वालाः संति । अधृष्टा रक्षोभिरप्रधृषिता गिरो वा गिरश्च संति । याभिर्गीर्भिर्नृवतीः पुत्रवतीः प्रजा उरुष्या रक्षेः ताभिरुभयीभिर्नोऽस्मान् । स्मदिति प्रशस्तवचनः । प्रशस्तान् सूरीन् हविषां प्रेरकान् जरितॄन् स्तोतॄंश्च नि पाहि । नितरां रक्ष ॥

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥९॥
निः । यत् । पूताऽइव । स्वऽधितिः । शुचिः । गात् । स्वया । कृपा । तन्वा । रोचमानः ।
आ । यः । मात्रोः । उशेन्यः । जनिष्ट । देवऽयज्याय । सुऽक्रतुः । पावकः ॥९॥

यद्यदा शुचिरग्निः स्वया स्वकीयया तन्वा ततया कृपा कृपया दीप्त्या रोचमानः पूतेव स्वधितिस्तीक्ष्णीकृता स्वधितिरिव निर्गात् काष्ठान्निर्गच्छति तदानीं देवयज्याय भवति । तदेव विशदयति । योऽग्निरुशेन्यः कमनीयः सुक्रतुः सुकर्मा पावकः शोधकश्च मात्रोररण्योरा जनिष्ट आजायत स देवयज्याय भवतीति ॥

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥
एता । नः । अग्ने । सौभगा । दिदीहि । अपि । क्रतुं । सुऽचेतसं । वतेम ।
विश्वा । स्तोतृऽभ्यः । गृणते । च । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥१०॥

हे अग्ने एतैतानि परिदृश्यमानानि सौभगा सौभगानि शोभनानि धनानि नोऽस्मभ्यं दिदीहि । दीपय देहि वा । अप्यपि च क्रतुं कर्म यज्ञानां कर्तारं वा सुचेतसं शोभनप्रज्ञानयुक्तं सुप्रज्ञानं पुत्रं वा वतेम । संभजेमहि ॥ वनतेः संभजनार्थस्य वर्णातरागमे सति रूपं ॥ विश्वा विश्वानि धनानि स्तोतृभ्य उद्गातृभ्यो गृणते शंसते च संतु । यूयं त्वत्परिवाराश्च सर्वे यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः क्षेमैः सदा सर्वदा पात । रक्षत ॥ ॥४॥

प्र वः शुक्रायेति दशर्चं चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । प्र व इत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्र

योर्दशसूक्तमध्ये द्वितीयत्वेनोक्तः सूक्तविनियोगः ॥ एकादशिन आग्नेये पशौ प्र वः शुक्रायेत्येषा वपाया याज्या। सूचितं च। प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिः। आ° ३.७.। इति ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतं।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यंतर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥१॥
प्र। वः। शुक्राय। भानवे। भरध्वं। हव्यं। मतिं। च। अग्नये। सुऽपूतं।
यः। दैव्यानि। मानुषा। जनूंषि। अंतः। विश्वानि। विद्मना। जिगाति ॥१॥

हे हविषां वोढारो वो यूयं शुक्राय शुभ्राय भानवे दीप्तायाग्नये सुपूतं सुशुद्धं हव्यं मतिं स्तुतिं च प्र भरध्वं। योऽग्निर्दैव्यानि मानुषा मानुषाणि च विश्वानि जनूंषि जातान्यंतरंतरा विद्मना प्रज्ञानेन मार्गेण वा जिगाति गच्छति। देवान्मनुष्यांश्चांतरा हवींषि नेतुं वर्तत इत्यर्थः ॥

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥२॥
सः। गृत्सः। अग्निः। तरुणः। चित्। अस्तु। यतः। यविष्ठः। अजनिष्ट। मातुः।
सं। यः। वना। युवते। शुचिऽदन्। भूरि। चित्। अन्ना। सं। इत्। अत्ति। सद्यः ॥२॥

स चित्स एव गृत्सो मेधावी। तथा च यास्कः। गृत्स इति मेधाविनाम। नि° ९.५.। अग्निस्तरुणस्तारको भवति। तदा यतो यदा मातुररण्या यविष्ठो युवतमः सन् अजनिष्ट। योऽग्निः शुचिदन् दीप्तदंतो वना वनानि सं युवते आत्मना संयोजयति। किंच भूरि चित् भूरीण्यप्यन्ना स्वीयान्यन्नानि सद्य इत्सद्य एव समत्ति सम्यग्भक्षयति ॥

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥३॥
अस्य। देवस्य। संऽसदि। अनीके। यं। मर्तासः। श्येतं। जगृभ्रे।
नि। यः। गृभं। पौरुषेयीं। उवोच। दुःऽओकं। अग्निः। आयवे। शुशोच ॥३॥

अस्य देवस्याग्नेरनीके मुख्ये संसदि स्थाने श्वितं श्वेतं शुभ्रं यमग्निं मर्तासो मनुष्या जगृभ्रे परिगृह्णंति। यश्चाग्निः पौरुषेयीं पुरुषैः क्रियमाणां गृभं गृभीतं न्युवोच ॥ अच वचिः सेवार्थे वर्तते ॥ निषेवत इत्यर्थः। सोऽग्निरायवे मनुष्यार्थं। द्रुह्यव आयव इति मनुष्यनामसु पाठात्। दुरोकं सपत्नैर्दुःसेवं यथा भवति तथा शुशोच। दीप्यते ॥

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥४॥
अयं। कविः। अकविषु। प्रऽचेताः। मर्तेषु। अग्निः। अमृतः। नि। धायि।
सः। मा। नः। अत्र। जुहुरः। सहस्वः। सदा। त्वे इति। सुऽमनसः। स्याम ॥४॥

कविः क्रांतदृक् प्रचेताः प्रकाशकोऽमृतो मरणधर्मरहितोऽयमग्निरकविष्वक्रांतदृक्षु मर्तेषु मरणधर्मकेषु

नि धायि । निहितः । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । सहस्वो बलवन्नग्ने त्वे यस्मिन् त्वयि सदा वयं सुमनसः सुमतयः स्याम स त्वमचास्मिँल्लोके नोऽस्मान्मा जुहुरः । मा हिंसीः ॥

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥ ५ ॥
आ । यः । योनिं । देवऽकृतं । ससाद । क्रत्वा । हि । अग्निः । अमृतान् । अतारीत् ।
तं । ओषधीः । च । वनिनः । च । गर्भं । भूमिः । च । विश्वऽधायसं । बिभर्ति ॥ ५ ॥

योऽग्निर्देवकृतं देवैः कल्पितं योनिं स्थानमा ससाद अध्यास्ते । किमर्थं देवाः स्थानं कल्पयंत्यग्नेरित्यत आह । हि यस्मात्कारणादग्निः क्रत्वा प्रज्ञयामृतान्देवानतारीत् । विश्वधायसं विश्वस्य धारकमोषधीरोषधयो वनिनश्च वृक्षाश्च गर्भं गर्भे संतं तं बिभ्रति । भूमिश्च बिभर्ति ॥ श्रुतमेव बिभर्तीति पदं बहुवचनांततया विपरिणतं सदोषधीभिर्वनिभिश्च संबध्यते ॥ ॥ ५ ॥

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥
ईशे । हि । अग्निः । अमृतस्य । भूरेः । ईशे । रायः । सुऽवीर्यस्य । दातोः ।
मा । त्वा । वयं । सहसाऽवन् । अवीराः । मा । अप्सवः । परि । सदाम । मा । अदुवः ॥ ६ ॥

अमृतस्यान्नमुदकं वा ॥ द्वितीयार्थे षष्ठी ॥ भूरेरधिकं दातोर्दातुमग्निरीशे । ईष्टे हि । सुवीर्यस्य शोभनवीर्ययुक्तं रायो धनं दातुमीशे । ईष्टे । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । सहसावन् हे बलवन्नग्ने वयं वसिष्ठा अवीराः पुत्रादिरहिताः संतो मा परि षदाम । मा पर्युपविशाम । अप्सवो रूपरहिताश्च संतो मा परि षदाम । तथा च यास्कः । अप्स इति रूपनाम । नि॰ ५. १३. । इति । अदुवः परिचरणहीनाश्च मा परि षदाम ॥

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥
परिऽसद्यं । हि । अरणस्य । रेक्णः । नित्यस्य । रायः । पतयः । स्याम ।
न । शेषः । अग्ने । अन्यऽजातं । अस्ति । अचेतानस्य । मा । पथः । वि । दुक्षः ॥ ७ ॥

अरणस्यानृणस्य रेक्णो धनं परिषद्यं पर्याप्तं भवति हि । अतो नित्यस्यापुनर्देयस्य रायो धनस्य पतयः स्याम । यद्वा । अरणस्य रेक्णो धनं परिषद्यं परिहर्तव्यं भवति । अतो नित्यस्यौरसस्य रायः पुत्राख्यस्य धनस्य पतयः स्याम । हे अग्ने अन्यजातमनौरसं शेषोऽपत्यं नास्ति । न भवति । अचेतानस्याविदुषः पथो मार्गान् पुत्रोत्पादनप्रमुखान्मार्गान् मा वि दुषः । मा विदुदुषः ॥ दुष वैकृत्ये इति धातुः ॥ तथा च यास्कः । परिहर्तव्यं हि नोपसर्तव्यमरणस्य रेक्णोऽरणोऽपार्णो भवति रेक्ण इति धननाम रिच्यते प्रयतः । नित्यस्य रायः पतयः स्याम । न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति । शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते प्रयतोऽचेतयमानस्य तत्प्रमत्तस्य भवति मा नः पथो विदूदुषः । नि॰ ३. २. । इति ॥

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मंतवा उं ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥

नहि । ग्रभाय । अरणः । सुऽशेवः । अन्यऽउदर्यः । मनसा । मंतवै । ऊं इति ।
अध । चित् । ओकः । पुनः । इत् । स । एति । आ । नः । वाजी । अभीषाट् । एतु । नव्यः ॥८॥

पूर्वस्यामृच्युक्त एवार्थोऽत्र प्रपंच्यते । अरणोऽरममाणोऽन्योदर्यः सुशेवः सुखतमः सन् ग्रभाय पुत्रत्वेन ग्रहणाय मनसा मंतवा उ मनसापि मंतव्यो न भवति हि । अध चिदपि च सोऽन्योदर्य ओक इत् संस्थानमेव पुनरेति । प्राप्नोति । अतो वाज्यन्नवानभीषाट् शत्रूणामभिभविता नव्यो नवजातः पुत्रो नोऽस्मानैतु । आगच्छतु ॥ •

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ ९ ॥
त्वं । अग्ने । वनुष्यतः । नि । पाहि । त्वं । ऊं इति । नः । सहसाऽवन् । अवद्यात् ।
सं । त्वा । ध्वस्मन्ऽवत् । अभि । एतु । पाथः । सं । रयिः । स्पृहयाय्यः । सहस्री ॥ ९ ॥

हे अग्ने त्वं वनुष्यतो हिंसकान्नोऽस्मान्नि पाहि । त्वमु त्वमेवावद्यात्पापात् नोऽस्मान्नि पाहि । त्वा त्वां ध्वस्मन्वत् ध्वस्तदोषं पाथोऽन्नं हविः समभ्येतु । सम्यक् प्राप्नोतु । अपि चास्मान् स्पृहयाय्यः स्पृहणीयः सहस्री सहस्रसंख्याको रयिरभ्येतु ॥

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥
एता । नः । अग्ने । सौभगा । दिदीहि । अपि । क्रतुं । सुऽचेतसं । वतेम ।
विश्वा । स्तोतृऽभ्यः । गृणते । च । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ १० ॥

एषा ऋग्व्याख्याता ॥ ॥ ६ ॥

प्राग्नये तवस इति नवर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वानराग्निदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्राग्नये नव वैश्वानरीयं त्विति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥ १ ॥
प्र । अग्नये । तवसे । भरध्वं । गिरं । दिवः । अरतये । पृथिव्याः ।
यः । विश्वेषां । अमृतानां । उपऽस्थे । वैश्वानरः । ववृधे । जागृवत्ऽभिः ॥ १ ॥

हे स्तोतारस्तवसे प्रवृद्धाय दिवोऽंतरिक्षस्य पृथिव्याश्चारतये गंत्रेऽग्नये वैश्वानरसंज्ञकायाग्नये गिरं स्तुतिं प्र भरध्वं । यो वैश्वानरो विश्वनरहितोऽग्निर्विश्वेषां सर्वेषाममृतानां देवानामुपस्थ उपस्थाने यज्ञे जागृवद्भिः प्रबुद्धैर्देवैः सहितः सन् ववृधे स्तुतिभिर्हविर्भिश्च वर्धते ॥

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिंधूनां वृषभः स्तियानां ।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥ २ ॥
पृष्टः । दिवि । धायि । अग्निः । पृथिव्यां । नेता । सिंधूनां । वृषभः । स्तियानां ।
सः । मानुषीः । अभि । विशः । वि । भाति । वैश्वानरः । ववृधानः । वरेण ॥ २ ॥

सिंधूनां नदीनां नेता स्त्रियानामपां। स्त्रिया आपो भवंति स्त्यायनादिति यास्कवचनात्। नि० ६.१७.। वृषभो वर्षिता पृष्टोऽर्चितस्तेजसा संपृक्तो वा योऽग्निर्दिव्यंतरिक्षे पृथिव्यां च धायि न्यधायि स वैश्वानरो विश्वनरहितोऽग्निर्वरेण श्रेष्ठेन हविषा तेजसा वा वावृधानो वर्धमानः सन् मानुषीर्विशोऽभि मानुषीः प्रजाः प्रति वि भाति॥

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः॥३॥

त्वत्। भिया। विशः। आयन्। असिक्नीः। असमनाः। जहतीः। भोजनानि।
वैश्वानर। पूरवे। शोशुचानः। पुरः। यत्। अग्ने। दरयन्। अदीदेः॥३॥

हे वैश्वानर विश्वनरहिताग्ने त्वत्त्वत्तो भिया भीत्यासिक्नीरसितवर्णा राजस्यः॥ प्रथमार्थे द्वितीया॥ विशः प्रजा असमनाः परस्परमसमेता भोजनानि धनानि जहतीस्त्यजंत्य आयन्। आगच्छन्। कदेत्यत आह। यद्यदा पूरवे राज्ञे शोशुचानो दीप्यमानः पुरस्तस्य शत्रूणां पुरो दरयन् दारयन्नदीदेः अज्वलः। तथा च निगमः। अंहो राजन्वरिवः पूरवे कः। ऋग्वे० १.६३.७.। इति॥

तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचंत।
त्वं भासा रोदसी आ ततंथाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः॥४॥

तव। त्रिऽधातु। पृथिवी। उत। द्यौः। वैश्वानर। व्रतं। अग्ने। सचंत।
त्वं। भासा। रोदसी इति। आ। ततंथ। अजस्रेण। शोचिषा। शोशुचानः॥४॥

हे वैश्वानर विश्वेषां नराणां नेतरग्ने। तथा च यास्कः। वैश्वानरः कस्माद्विश्वान्नरान्नयति विश्व एनं नरा नयंतीति वा। नि० ७.२१.। इति। तव व्रतं त्वत्प्रीतिकरं कर्म त्रिधात्वंतरिक्षं पृथिवी च उतापि च द्यौरिति त्रयो लोकाः सचंत। सेवंते। त्रैलोक्यवर्तिन्यः प्रजास्त्वदर्थं कर्म कुर्वंतीत्यर्थः। अपि च त्वमजस्रेण शोचिषा प्रकाशेन शोशुचानो दीप्यमानो भासा दीप्त्या रोदसी द्यावापृथिव्यौ चा ततंथ। विस्तारयसि॥

त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचंते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नां॥५॥

त्वां। अग्ने। हरितः। वावशानाः। गिरः। सचंते। धुनयः। घृताचीः।
पतिं। कृष्टीनां। रथ्यं। रयीणां। वैश्वानरं। उषसां। केतुं। अह्नां॥५॥

हे अग्ने कृष्टीनां प्रजानां। चितयः कृष्टय इति मनुष्यनामसु पाठात्। पतिं स्वामिनं रयीणां धनानां रथ्यं नेतारमुषसामह्नां केतुं प्रज्ञापकं वैश्वानरं विश्वनरहितं त्वां हरितोऽश्वा वावशानाः कामयमानाः सचंते। सेवंते। तथा गिरो नृणां स्तुतिरूपा वाचो धुनयः पापं धुन्वाना घृताचीर्घृतमंचंत्यः। हविषा सहिता इत्यर्थः। सचंते॥ ॥७॥

त्वे असुर्यं१ वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषंत।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय॥६॥

त्वे इति। असुर्यं। वसवः। नि। ऋण्वन्। क्रतुं। हि। ते। मित्रऽमहः। जुषंत।
त्वं। दस्यून्। ओकसः। अग्ने। आजः। उरु। ज्योतिः। जनयन्। आर्याय॥६॥

नहि । ग्रभाय । अरणः । सुऽशेवः । अन्यऽउदर्यः । मनसा । मंतवै । ऊं इति ।
अध । चित् । ओकः । पुनः । इत् । सः । एति । आ । नः । वाजी । अभीषाट् । एतु । नव्यः ॥८॥

पूर्वस्यामृच्युक्त एवार्थोऽत्र प्रपंच्यते । अरणोऽरममाणोऽन्योदर्यः सुशेवः सुखतमः सन् ग्रभाय पुत्रत्वेन ग्रहणाय मनसा मंतवा उ मनसापि मंतव्यो न भवति हि । अध चिदपि च सोऽन्योदर्य ओक इत् संस्थानमेव पुनरेति । प्राप्नोति । अतो वाज्यन्नवानभीषाट् शत्रूणामभिभविता नव्यो नवजातः पुत्रो नोऽस्मानेतु । आगच्छतु ॥

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९॥
त्वं । अग्ने । वनुष्यतः । नि । पाहि । त्वं । ऊं इति । नः । सहसाऽवन् । अवद्यात् ।
सं । त्वा । ध्वस्मन्ऽवत् । अभि । एतु । पाथः । सं । रयिः । स्पृहयाय्यः । सहस्री ॥९॥

हे अग्ने त्वं वनुष्यतो हिंसकान्नोऽस्मान्नि पाहि । त्वमु त्वमेवावद्यात्पापात् नोऽस्मान्नि पाहि । त्वा त्वां ध्वस्मन्वत् ध्वस्तदोषं पाथोऽन्नं हविः समभ्येतु । सम्यक् प्राप्नोतु । अपि चास्मान् स्पृहयाय्यः स्पृहणीयः सहस्री सहस्रसंख्याको रयिरभ्येतु ॥

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥
एता । नः । अग्ने । सौभगा । दिदीहि । अपि । क्रतुं । सुऽचेतसं । वतेम ।
विश्वा । स्तोतृऽभ्यः । गृणते । च । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥१०॥

एषा व्याख्याता ॥ ॥६॥

प्राग्नये तवस इति नवर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वानराग्निदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्राग्नये नव वैश्वानरीयं त्विति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥१॥
प्र । अग्नये । तवसे । भरध्वं । गिरं । दिवः । अरतये । पृथिव्याः ।
यः । विश्वेषां । अमृतानां । उपऽस्थे । वैश्वानरः । ववृधे । जागृवत्ऽभिः ॥१॥

हे स्तोतारस्तवसे प्रवृद्धाय दिवोऽतरिक्षस्य पृथिव्याश्चारतये गंत्रेऽग्नये वैश्वानरसंज्ञकायाग्नये गिरं स्तुतिं प्र भरध्वं । यो वैश्वानरो विश्वनरहितोऽग्निर्विश्वेषां सर्वेषाममृतानां देवानामुपस्थ उपस्थाने यज्ञे जागृवद्भिः प्रबुद्धैर्देवैः सहितः सन् ववृधे स्तुतिभिर्हविर्भिश्च वर्धते ॥

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिंधूनां वृषभः स्तियानां ।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥२॥
पृष्टः । दिवि । धायि । अग्निः । पृथिव्यां । नेता । सिंधूनां । वृषभः । स्तियानां ।
सः । मानुषीः । अभि । विशः । वि । भाति । वैश्वानरः । ववृधानः । वरेण ॥२॥

प्र । सम्ऽराजः । असुरस्य । प्रऽशस्तिं । पुंसः । कृष्टीनां । अनुऽमाद्यस्य ।
इंद्रस्यऽइव । प्र । तवसः । कृतानि । वंदे । दारुं । वंदमानः । विवक्मि ॥१॥

दारुं पुरां भेत्तारं वंदे । वंदमानः सन् सम्राजः सर्वस्य भुवनस्येश्वरस्यासुरस्य बलवतः पुंसो वीरस्य । पौंस्यमिति वीर्यमुच्यते । तथा च यास्कः । पुमान् पुंसमना भवति पुंसतेर्वा ।नि० ९.१५.। इति । कृष्टीनां जनानामनुमाद्यस्य स्तुत्यस्य तवसो बलवत इंद्रस्येव तस्य वैश्वानरस्य प्रशस्तिं स्तुतिं कृतानि कर्माणि च प्र विवक्मि । प्रब्रवीमि ॥

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वंति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥२॥
कविं । केतुं । धासिं । भानुं । अद्रेः । हिन्वंति । शं । राज्यं । रोदस्योः ।
पुरम्ऽदरस्य । गीःऽभिः । आ । विवासे । अग्नेः । व्रतानि । पूर्व्या । महानि ॥२॥

कविं प्राज्ञं केतुं विश्वस्य प्रज्ञापकं धासिमद्रेर्धर्तारमादर्तुः स्तोतुर्वा भानुं भासकं शं सुखकरं रोदस्योर्द्यावापृथिव्यो राज्यं राजानं वैश्वानरमग्निं हिन्वंति । मदीयाः प्रीणयंति प्रेरयंति वा देवाः । अहं च पुरंदरस्य पुरां दारयितुरग्नेः पूर्व्या पूर्व्याणि पुरातनानि महानि महांति व्रतानि कर्माणि गीर्भिरा विवासे । परिचरामि ॥

न्यक्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥३॥
नि । अक्रतून् । ग्रथिनः । मृध्रऽवाचः । पणीन् । अश्रद्धान् । अवृधान् । अयज्ञान् ।
प्रऽप्र । तान् । दस्यून् । अग्निः । विवाय । पूर्वः । चकार । अपरान् । अयज्यून् ॥३॥

अक्रतूनयज्ञान् ग्रथिनो जल्पकान्मृध्रवाचो हिंसितवचस्कान् पणीन् पणिनामकान्वार्धुषिकानश्रद्धान्यज्ञादिषु श्रद्धारहितानवृधान् स्तुतिभिरग्निमवर्धयतोऽयज्ञान्यज्ञहीनान् तान्दस्यून् वृथा कालस्य नेतॄनग्निः प्रप्र अत्यंतं नि विवाय । नितरां गमयेत् । तदेवाह । अग्निः पूर्वो मुख्यः सन् अयज्यूनयजमानानपरान् जघन्यान् चकार ॥

यो अपाचीने तमसि मदंतीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयंतं पृतन्यून् ॥४॥
यः । अपाचीने । तमसि । मदंतीः । प्राचीः । चकार । नृऽतमः । शचीभिः ।
तं । ईशानं । वस्वः । अग्निं । गृणीषे । अनानतं । दमयंतं । पृतन्यून् ॥४॥

नृतमो नेतृतमो योऽग्निरपाचीनेऽप्रकाशमाने तमसि निमग्नाः प्रजा मदंतीः स्तुवंतीः शचीभिस्ताभ्यो दत्ताभिः प्रज्ञाभिः प्राचीर्ऋजुगामिनीश्चकार । यद्वा । नेतृतमो योऽग्निरपाचीने तमसि निशायां मदंतीर्माद्यंतीरुषसः शचीभिः प्रज्ञाभिः प्राचीश्चकारेत्यर्थः । तं वस्वो धनस्येशानमनानतमप्रह्वं पृतन्यून् युद्धकामांश्च दमयंतमग्निं गृणीषे । स्तौमि ॥

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

यः । देह्यः । अनमयत् । वधऽस्नैः । यः । अर्यऽपत्नीः । उषसः । चकार ।
सः । निऽरुध्य । नहुषः । यह्वः । अग्निः । विशः । चक्रे । बलिऽहृतः । सहःऽभिः ॥५॥

योऽग्निर्देह्यो देहीरुपचिता आसुरीर्विद्या वधस्नैर्वधैरायुधैर्वानमयत् हीना अकरोत् । यश्चार्यपत्नीः । अर्यः सूर्यः पतिर्यासां ता अर्यपत्न्यः । ता उषसश्चकार अकरोत् स यह्वो महानग्निर्विशः प्रजाः सहोभिर्बलैर्निरुध्य नहुषो राज्ञो बलिहृतः करप्रदाश्चक्रे ॥

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थं ॥६॥
यस्य । शर्मन् । उप । विश्वे । जनासः । एवैः । तस्थुः । सुऽमतिं । भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरः । वरं । आ । रोदस्योः । आ । अग्निः । ससाद । पित्रोः । उपऽस्थं ॥६॥

विश्वे सर्वे जनासो जनाः शर्मन् शर्मणि सुखनिमित्तं यस्य वैश्वानरस्य सुमतिं भिक्षमाणाः प्रार्थमाना एवैः कर्मभिर्हविर्भिर्वोप तस्थुः यमेवोपतिष्ठंते स वैश्वानरो विश्वनरहितोऽग्निः सूर्यः सन् पित्रोर्मातापित्रो रोदस्योर्द्यावापृथिव्योर्वरमुत्कृष्टमुपस्थं मध्यमंतरिक्षमा ससाद । आगच्छत् ॥

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥
आ । देवः । ददे । बुध्न्या । वसूनि । वैश्वानरः । उत्ऽइता । सूर्यस्य ।
आ । समुद्रात् । अवरात् । आ । परस्मात् । आ । अग्निः । ददे । दिवः । आ । पृथिव्याः ॥७॥

वैश्वानरो विश्वनरहितोऽग्निर्देवो द्योतमानो बुध्न्या बुध्न्यान्यांतरिक्षाणि । बुध्नमंतरिक्षं । तथा च यास्कः । बुध्नमंतरिक्षं बद्धा अस्मिन्धृता आप इति वा । नि॰ १०. ४४. । इति । वसून्याच्छादकानि तमांसि ॥ वस आच्छादन इति धातुः ॥ सूर्यस्योदितोदितावुदये सत्या ददे । समुद्रादंतरिक्षात् । सगरं समुद्र इत्यंतरिक्षनामसु पाठात् । अवरात्पृथिव्यास्तमांस्या ददे । समुद्रात्परस्माद्दिवोऽपि तमांस्या ददे । तदेव दर्शयति । अग्निर्दिवस्तमांस्या ददे पृथिव्याश्च तमांस्या ददे ॥ ॥९॥

प्र वो देवमिति सप्तर्चं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । प्र वो देवमित्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोर्दशसूक्त उक्तो विनियोगः ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१॥
प्र । वः । देवं । चित् । सहसानं । अग्निं । अश्वं । न । वाजिनं । हिषे । नमःऽभिः ।
भव । नः । दूतः । अध्वरस्य । विद्वान् । त्मना । देवेषु । विविदे । मितऽद्रुः ॥१॥

हे अग्ने वस्त्वां देवं द्योतमानादिगुणयुक्तं सहसानं राक्षसानभिभवंतं बलमाचरंतं वाग्निमग्रस्य नेतारमश्वं न अश्वमिव वाजिनं वेगवंतं बलवंतं वा नमोभिः स्तुतिभिर्हविर्भिर्वा प्र हिषे । हे अग्ने त्वां चित्प्रहिणोम्येव । किंच हे अग्ने त्वं विद्वान् जानन् नोऽस्माकमध्वरस्य यज्ञस्य दूतो भव । अथ परोक्षस्तुतिः । त्मनात्मना स्वयमेव देवेषु मितद्रुर्दग्धद्रुमोऽग्निरिव विविदे । प्रज्ञायते ॥

आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मंद्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जंभेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥२॥
आ । याहि । अग्ने । पथ्याः । अनु । स्वाः । मंद्रः । देवानां । सख्यं । जुषाणः ।
आ । सानु । शुष्मैः । नदयन् । पृथिव्याः । जंभेभिः । विश्वं । उशधक् । वनानि ॥२॥

हे अग्ने त्वं मंद्रो मदयिता स्तुत्यो वा देवानां सख्यं । देवैः सह सख्यमित्यर्थः । जुषाणः सेवमानः पृथिव्याः सानु समुच्छ्रितं तृणगुल्मादिकं शुष्मैः शोषकैर्दाहकैस्तेजोभिर्नदयन् शब्दायमानः । दह्यमानं हि शब्दायते । जंभेभिर्दंष्ट्राभिः । ज्वालाभिरित्यर्थः । विश्वं विश्वानि वनान्युशधक् कामयमानो दहन् स्वाः पथ्या अनु । स्वैर्मार्गैरित्यर्थः । आ आ याहि । आकारस्य पुनर्वचनमादरार्थं ॥

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥३॥
प्राचीनः । यज्ञः । सुऽधितं । हि । बर्हिः । प्रीणीते । अग्निः । ईळितः । न । होता ।
आ । मातरा । विश्ववारे इति विश्वऽवारे । हुवानः । यतः । यविष्ठ । जज्ञिषे ।
सुऽशेवः ॥३॥

अयं यज्ञः प्राचीनः । सम्यगनुष्ठीयत इत्यर्थः । यद्वा । यज्ञो यष्टा होता प्राचीनः । यद्वा । यज्ञो हविः प्राचीनः प्राचीनं प्राङ्मुखमासन्नं । बर्हिर्हि बर्हिश्च सुधितं सुनिहितं । ईळितः स्तुतोऽग्निः प्रीणीते । तृप्तश्च भवति । होता न होता च । नेति चार्थे । विश्ववारे विश्वैर्वरणीये मातरा द्यावापृथिव्याविडायामा हुवानो भवति । कदेत्यत आह । यतो यदा यविष्ठ हे युवतमाग्ने त्वं सुशेवः सुसुखो जज्ञिषे जायसे ॥

सद्यो अध्वरे रथिरं जनंत मानुषासो विचेतसो य एषां ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ग्निर्मंद्रो मधुवचा ऋतावा ॥४॥
सद्यः । अध्वरे । रथिरं । जनंत । मानुषासः । विऽचेतसः । यः । एषां ।
विशां । अधायि । विश्पतिः । दुरोणे । अग्निः । मंद्रः । मधुऽवचाः । ऋतऽवा ॥४॥

विचेतसो विविक्तप्रज्ञा मानुषासो मनुष्या अध्वरे यज्ञे रथिरं रथिनं नेतारमग्निं सद्यो जनंत । जनयंति । य एषां हविर्वहति सोऽयमग्निर्विश्पतिर्विशां पतिर्विश्वस्य पतिर्वा मंद्रो मदयिता मधुवचा मादयितृवचस्क ऋतावा यज्ञवान् विशां मनुष्याणां दुरोणे गृहेऽधायि । आहितः ॥

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारं ॥५॥
असादि । वृतः । वह्निः । आऽजगन्वान् । अग्निः । ब्रह्मा । नृऽसदने । विऽधर्ता ।
द्यौः । च । यं । पृथिवी । ववृधाते इति । आ । यं । होता । यजति । विश्वऽवारं ॥५॥

वृतो होतृत्वेन वह्निर्हविषां वोढा ब्रह्मा परिवृढो विधर्ता विश्वस्य धारकोऽग्निराजगन्वान् द्युलोकादागत आगमनशीलो वा नृषदने होतुः स्थानेऽसादि । उपविष्टः । यमग्निं द्यौश्च पृथिवी चोभे ववृधाते वर्धयतः । यं च विश्ववारं विश्वैर्वरणीयं होता मानुष आ यजति ॥

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरंत मंत्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरंत श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥ ६ ॥
एते । द्युम्नेभिः । विश्वं । आ । अतिरंत । मंत्रं । ये । वा । अरं । नर्याः । अतक्षन् ।
प्र । ये । विशः । तिरंत । श्रोषमाणाः । आ । ये । मे । अस्य । दीधयन् । ऋतस्य ॥ ६ ॥

एते मदीयाः पुरुषा द्युम्नेभिरन्नैर्विश्वं पोष्यवर्गमातिरंत । वर्धयंति । अथवा द्युम्नेभिर्यशोभिर्विश्वं जगदातिरंत । अभ्यगच्छन्नित्यर्थः । क इत्यत आह । ये नर्या मनुष्या मंत्रं स्तोत्रं स्तुत्यं वारं पर्याप्तमतक्षन् समस्कुर्वन् । वेति समुच्चये । ये च विशो जनाः श्रोषमाणाः ॥ शृणोतेः सन्यङोरिति द्वित्वं इको झलिति सनः कित्त्वं च सर्वे विधयश्छंदसि विकल्प्यंत इति न भवतः । ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन इत्यात्मनेपदं ॥ प्र तिरंत वर्धयंति । मे मदीया ये वा ऋतस्यास्य सत्यमिममग्निं ॥ कर्मणि षष्ठी । मानुषाणामश्नीयादितिवत् ॥ आ दीधयन् आदीपयन् ॥

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनां ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
नु । त्वां । अग्ने । ईमहे । वसिष्ठाः । ईशानं । सूनो इति । सहसः । वसूनां ।
इषं । स्तोतृऽभ्यः । मघवत्ऽभ्यः । आनट् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

सहसः सूनो बलस्य पुत्राग्ने वसिष्ठा वयं वसूनामीशानं त्वामस्मदीयेभ्यः स्तोतृभ्यो मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्यश्चेषमन्नं नु क्षिप्रमद्य वानट् । प्रापयेः ॥ नशेर्व्याप्तिकर्मणोऽंतर्णीतण्यर्थाल्लुङि छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः ॥ यूयं त्वत्परिवाराश्च सर्वे यूयं नोऽस्मान् सदा स्वस्तिभिः पातेत्येवमीमहे । याचामहे ॥ ॥ १० ॥

इंधे राजेति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । इंधे राजेत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोर्विनियोगः ॥ आतिथ्यायां प्रप्रायमग्निरिति स्विष्टकृतो याज्या । सूचितं च । प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्व इति संयाज्ये । आ॰ ४.५. । इति ॥

इंधे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥
इंधे । राजा । सं । अर्यः । नमःऽभिः । यस्य । प्रतीकं । आऽहुतं । घृतेन ।
नरः । हव्येभिः । ईळते । सऽबाधः । आ । अग्निः । अग्रे । उषसां । अशोचि ॥ १ ॥

राजा दीप्तोऽर्यः स्वामी हविषां प्रेरको वाग्निर्नमोभिः स्तुतिभिः सह समिंधे । समिध्यते । यस्याग्नेः प्रतीकं रूपं घृतेनाक्तं भवति । यं च नरोऽस्मदीयाः सबाधः संश्लिष्टाः संजातबाधा वा हव्येभिर्हव्यैः सार्धमीळते स्तुवंति सोऽग्निरुषसामग्र आशोचि । आदीप्यते ॥

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मंद्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥
अयं । ऊं इति । स्यः । सुऽमहान् । अवेदि । होता । मंद्रः । मनुषः । यह्वः । अग्निः ।
वि । भाः । अकरित्यकः । ससृजानः । पृथिव्यां । कृष्णऽपविः । ओषधीभिः । ववक्षे ॥ २ ॥

स्य सोऽयं होता देवानामाह्वाता मंद्रो मदयिता यह्वो महानग्निर्मनुषो मनुष्यस्य सुमहानवेदि । सुम-

हृत्त्वेन प्रख्यायते। अपि च सोऽयं भा दीप्तीर्व्यक्तः। विकरोत्यंतरिक्षे। किंच सोऽयं कृष्णपविः कृष्णमार्गोऽग्निः पृथिव्यां सस्रजानः सृज्यमानः सन्नोषधीभिर्ववक्षे। वर्धते ॥

कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वंतारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥
कया। नः। अग्ने। वि। वसः। सुऽवृक्तिं। कां। ऊं इति। स्वधां। ऋणवः। शस्यमानः।
कदा। भवेम। पतयः। सुऽदत्र। रायः। वंतारः। दुस्तरस्य। साधोः ॥३॥

हे अग्ने त्वं कया स्वधया हविषा नोऽस्माकं सुवृक्तिं स्तुतिं वि वसः। व्याप्नुषे आच्छादयसि वा। कामु कां च स्वधां शस्यमानः स्तूयमानस्त्वमृणवः। प्राप्नुयाः। हे सुदत्र शोभनदानाग्ने। तथा च यास्कः। सुदत्रः कल्याणदानः। नि० ६. १४.। इति। वयं कदा दुष्टरस्य शत्रुभिर्दुर्हिंसकस्य साधोः समीचीनस्य रायो धनस्य पतयः स्वामिनो भवेम। वंतारः संभक्तारश्च कदा भवेम ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥
प्रऽप्र। अयं। अग्निः। भरतस्य। शृण्वे। वि। यत्। सूर्यः। न। रोचते। बृहत्। भाः।
अभि। यः। पूरुं। पृतनासु। तस्थौ। द्युतानः। दैव्यः। अतिथिः। शुशोच ॥४॥

अयं प्रसिद्धोऽग्निर्भरतस्य यजमानस्य मम प्रप्रात्यंतं शृण्वे। प्रथितो भवति। कदेत्यत्राह। यद्यदा सूर्यो न सूर्य इव बृहद्भा बृहद्भासमानो वि रोचते प्रकाशते। किंच योऽग्निः पृतनासु संग्रामेषु पूरुं पूरुनामकमसुरमभि तस्थौ अभिबभूव सोऽयं द्युतानो दीप्यमानो दैव्योऽतिथिर्देवानामतिथिवत्पूज्यः सन् शुशोच। जज्वाल ॥

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५॥
असन्। इत्। त्वे इति। आऽहवनानि। भूरि। भुवः। विश्वेभिः। सुऽमनाः। अनीकैः।
स्तुतः। चित्। अग्ने। शृण्विषे। गृणानः। स्वयं। वर्धस्व। तन्वं। सुऽजात ॥५॥

हे अग्ने त्वे त्वय्याहवनानि हवींष्याकृतयो वा भूरि बह्वन्यसन्नित्। भवंत्येव। त्वं च विश्वेभिर्विश्वैरनीकैस्तेजोभिस्त्वद्विभूतिभिरग्निभिर्वा सह सुमना भुवः। भव। हे अग्ने स्तुतः स्तोतुः। स्तौतीति स्तुत्। स्तोत्रं शृण्विषे। शृणु। हे सुजात कल्याणप्रादुर्भावाग्ने गृणानः स्तूयमानस्त्वं स्वयं स्वयमेव तन्वं स्वां तनुं मम तनुं वा वर्धस्व। वर्धयस्व ॥

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥६॥
इदं। वचः। शतऽसाः। संऽसहस्रं। उत्। अग्नये। जनिषीष्ट। द्विऽबर्हाः।
शं। यत्। स्तोतृऽभ्यः। आपये। भवाति। द्युऽमत्। अमीवऽचातनं। रक्षःऽहा ॥६॥

शतसा गवां शतस्य संभक्ता संसहस्रं गवां सहस्रेण च संयुतो द्विबर्हा द्वाभ्यां विद्याकर्मभ्यां बृहन् वसिष्ठो

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरंत मंत्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरंत श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥६॥
एते । द्युम्नेभिः । विश्वं । आ । अतिरंत । मंत्रं । ये । वा । अरं । नर्याः । अतक्षन् ।
प्र । ये । विशः । तिरंत । श्रोषमाणाः । आ । ये । मे । अस्य । दीधयन् । ऋतस्य ॥६॥

एते मदीयाः पुरुषा द्युम्नेभिरन्नैर्विश्वं पोष्यवर्गमातिरंत । वर्धयंति । अथवा द्युम्नेभिर्यशोभिर्विश्वं जगदातिरंत । अभ्यगच्छन्नित्यर्थः । क इत्यत आह । ये नर्या मनुष्या मंत्रं स्तोत्रं स्तुत्यं वारं पर्याप्तमतक्षन् समस्कुर्वन् । वेति समुच्चये । ये च विशो जनाः श्रोषमाणाः ॥ शृणोतेः सन्यङोरिति द्वित्वं इको झलिति सनः कित्त्वं च सर्वं विधयश्छंदसि विकल्प्यंत इति न भवतः । ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन इत्यात्मनेपदं ॥ प्र तिरंत वर्धयंति । मे मदीया ये वा ऋतस्यास्य सत्यमिममग्निं ॥ कर्मणि षष्ठी । मानुषाणामश्नीयादितिवत् ॥ आ दीधयन् आदीपयन् ॥

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनां ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
नु । त्वां । अग्ने । ईमहे । वसिष्ठाः । ईशानं । सूनो इति । सहसः । वसूनां ।
इषं । स्तोतृऽभ्यः । मघवत्ऽभ्यः । आनट् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

सहसः सूनो बलस्य पुत्राग्ने वसिष्ठा वयं वसूनामीशानं त्वामस्मदीयेभ्यः स्तोतृभ्यो मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्य इषमन्नं नु क्षिप्रमद्य वानट् । प्रापयेः ॥ नशेर्व्याप्तिकर्मणोऽंतर्णीतण्यर्थाल्लुङि छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः ॥ यूयं त्वत्परिवाराश्च सर्वे यूयं नोऽस्मान् सदा स्वस्तिभिः पातेत्येवमीमहे । याचामहे ॥ ॥१०॥

इंधे राजेति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । इंधे राजेत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोर्विनियोगः ॥ आतिथ्यायां प्रप्रायमग्निरिति स्विष्टकृतो याज्या । सूचितं च । प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्व इति संयाज्ये । आ॰ ४. ५. । इति ॥

इंधे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥१॥
इंधे । राजा । सं । अर्यः । नमःऽभिः । यस्य । प्रतीकं । आऽहुतं । घृतेन ।
नरः । हव्येभिः । ईळते । सऽबाधः । आ । अग्निः । अग्रे । उषसां । अशोचि ॥१॥

राजा दीप्तोऽर्यः स्वामी हविषां प्रेरको वाग्निर्नमोभिः स्तुतिभिः सह समिंधे । समिध्यते । यस्याग्नेः प्रतीकं रूपं घृतेनाहुतं भवति । यं च नरोऽस्मदीयाः सबाधः संश्लिष्टाः संजातबाधा वा हव्येभिर्हव्यैः सार्धमीळते स्तुवंति सोऽग्निरुषसामग्र आशोचि । आदीप्यते ॥

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मंद्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२॥
अयं । ऊं इति । स्यः । सुऽमहान् । अवेदि । होता । मंद्रः । मनुषः । यह्वः । अग्निः ।
वि । भाः । अकरित्यकः । ससृजानः । पृथिव्यां । कृष्णऽपविः । ओषधीभिः । ववक्षे ॥२॥

स्य सोऽयं होता देवानामाह्वाता मंद्रो मदयिता यह्वो महानग्निर्मनुषो मनुष्यस्य सुमहानवेदि । सुम-

योऽग्निरमूरोऽमूढः कविः प्राज्ञोऽदितिरदीनो विवस्वान्दीप्तिमान् सुसंसत् शोभनसदनः शोभनसंवेदनो वा मित्रः प्रमीतेस्त्राता सर्वेषामतिथिरतिथिवत्पूज्यः शिवः शिवकरो जगतश्चित्रभानुश्चित्रदीप्तिरुषसामग्रे मुखे भाति सोऽयमपां गर्भः सन् प्रस्वो जायमाना ओषधीरा विवेश ॥

ई॒ळेन्यो॑ वो॒ मनु॑षो यु॒गेषु॑ समन॒गा अ॑शुचज्जा॒तवे॑दाः ।
सु॒सं॒दृशा॑ भा॒नुना॒ यो वि॒भाति॑ प्रति॒ गावः॑ समिधा॒नं बु॑धंत ॥४॥
ई॒ळेन्यः॑ । वः॒ । मनु॑षः । यु॒गेषु॑ । स॒म॒न॒ऽगाः । अ॒शु॒च॒त् । जा॒त॒ऽवे॑दाः ।
सु॒ऽसं॒दृशा॑ । भा॒नुना॑ । यः । वि॒ऽभाति॑ । प्रति॑ । गावः॑ । सं॒ऽइ॒धा॒नं । बु॒धं॒त॒ ॥४॥

हे अग्ने वस्त्वं ॥ अत्र विभक्तिवचनव्यत्ययः ॥ मनुषो मनुष्यस्य युगेषु यागकालेषु सर्वेष्वपि दिवसेषु वेळेन्यः स्तुत्यः । अतः परं परोक्षस्तुतिः । योऽग्निर्जातवेदा जातधनः समनगा युद्धेषु संगंता सन् अशुचत् दीप्यते । सुसंदृशा सुसंदर्शनेन भानुना तेजसा विभाति च । तमग्निं समिधानं समिध्यमानं गावः स्तुतयः प्रति बुधंत । प्रतिबोधयंति ॥

वैश्वदेवे पशावग्ने याहीति हविषो याज्या । सूत्रितं च । अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्य इंद्रं नरो नेमधिता हवंत इति तिस्रः । आ० ३.७. । इति ॥

अग्ने॑ या॒हि दू॒त्यं१॒॑ मा रि॑षण्यो दे॒वाँ अच्छा॑ ब्रह्म॒कृता॑ ग॒णेन॑ ।
सर॑स्वतीं म॒रुतो॑ अ॒श्विना॒पो यक्षि॑ दे॒वान्र॑त्न॒धेया॑य॒ विश्वा॑न् ॥५॥
अग्ने॑ । या॒हि॒ । दू॒त्यं॑ । मा । रि॒ष॒ण्यः॒ । दे॒वान् । अच्छ॑ । ब्र॒ह्म॒ऽकृता॑ । ग॒णेन॑ ।
सर॑स्वतीं । म॒रुतः॑ । अ॒श्विना॑ । अ॒पः । यक्षि॑ । दे॒वान् । र॒त्न॒ऽधेया॑य । विश्वा॑न् ॥५॥

हे अग्ने दूत्यं दूतस्य कर्म हविर्वहनादि याहि देवानच्छाभिगच्छ । गणेन संघेन सह ब्रह्मकृता ब्रह्मकृतोऽस्मानस्मदीयांश्च तव स्तोतॄन्मा रिषण्यः । मा हिंसीः । सरस्वतीं मरुतोऽश्विनाश्विनावपश्च एतान् देवान् रत्नधेयायास्मभ्यं रत्नदानाय यक्षि च ॥

त्वाम॑ग्ने समिधा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न्यक्षि॑ रा॒ये पुरं॑धिं ।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥
त्वां । अ॒ग्ने॒ । सं॒ऽइ॒धा॒नः । वसि॑ष्ठः । जरू॑थं । ह॒न् । यक्षि॑ । रा॒ये । पुरं॑ऽधिं ।
पु॒रु॒ऽनी॒था । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ । ज॒र॒स्व॒ । यू॒यं । पा॒त॒ । स्व॒स्तिऽभिः॑ । सदा॑ । नः॒ ॥६॥

हे अग्ने त्वां वसिष्ठ ऋषिः समिधानो भवति । त्वं च जरूथं परुषभाषिणं जरणीयं वा रक्षोगणं हन् । जहि । राये धनवते यजमानाय पुरंधिं बहुधियं देवगणं । तथा च यास्कः । पुरंधिर्बहुधीरिति । यक्षि । यज । किंच हे जातवेदोऽग्ने पुरुणीथा पुरुनीथेन बहुना स्तोत्रेण जरस्व । देवान् स्तुहि । यद्वा । पुरुणीथानेकमार्गाणि रक्षांसि जरयेत्यर्थः ॥ ॥१२॥

उषो न जार इति पंचर्चं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । तथा चानुक्रांतं । उषो न पंचेति ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः ॥

उ॒षो न जा॒रः पृ॒थु पाजो॑ अश्रे॒द्दवि॑द्युत॒द्दीद्य॒च्छोशु॑चानः ।
वृषा॒ हरिः॒ शुचि॒रा भा॑ति भा॒सा धियो॑ हिन्वा॒न उ॑श॒तीर॑जीगः ॥१॥

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरंत मंत्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरंत श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥६॥

एते । द्युम्नेभिः । विश्वं । आ । अतिरंत । मंत्रं । ये । वा । अरं । नर्याः । अतक्षन् ।
प्र । ये । विशः । तिरंत । श्रोषमाणाः । आ । ये । मे । अस्य । दीधयन् । ऋतस्य ॥६॥

एते मदीयाः पुरुषा द्युम्नेभिरन्नैर्विश्वं पोष्यवर्गमातिरंत । वर्धयंति । अथवा द्युम्नेभिर्यशोभिर्विश्वं जगदातिरंत । अभ्यगच्छन्नित्यर्थः । क इत्यत आह । ये नर्या मनुष्या मंत्रं स्तोत्रं स्तुत्यं वारं पर्याप्तमतक्षन् समस्कुर्वन् । वेति समुच्चये । ये च विशो जनाः श्रोषमाणाः ॥ शृणोतेः सन्यङोरिति द्वित्वं इको झलिति सनः कित्त्वं च सर्वे विधयश्छंदसि विकल्प्यंत इति न भवतः । ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन इत्यात्मनेपदं ॥ प्र तिरंत वर्धयंति । मे मदीया ये वा ऋतस्यास्य सत्यमिममग्निं ॥ कर्मणि षष्ठी । मानुषाणामश्नीयादितिवत् ॥ आ दीधयन् आदीपयन् ॥

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनां ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

नु । त्वां । अग्ने । ईमहे । वसिष्ठाः । ईशानं । सूनो इति । सहसः । वसूनां ।
इषं । स्तोतृऽभ्यः । मघवत्ऽभ्यः । आनट् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

सहसः सूनो बलस्य पुत्राग्ने वसिष्ठा वयं वसूनामीशानं त्वामस्मदीयेभ्यः स्तोतृभ्यो मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्यश्चेषमन्नं नु क्षिप्रमद्य वानट् । प्रापयेः ॥ नशेर्व्याप्तिकर्मणोऽंतर्णीतण्यर्थाल्लुङि च्छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः ॥ यूयं त्वत्परिवाराश्च सर्वे यूयं नोऽस्मान् सदा स्वस्तिभिः पातेत्येवमीमहे । याचामहे ॥ ॥१०॥

इंधे राजेति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । इंधे राजेत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोर्विनियोगः ॥ आतिथ्यायां प्रप्रायमग्निरिति स्विष्टकृतो याज्या । सूचितं च । प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्व इति संयाज्ये । आ॰ ४.५. । इति ॥

इंधे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥१॥

इंधे । राजा । सं । अर्यः । नमःऽभिः । यस्य । प्रतीकं । आऽहुतं । घृतेन ।
नरः । हव्येभिः । ईळते । सऽबाधः । आ । अग्निः । अग्रे । उषसां । अशोचि ॥१॥

राजा दीप्तोऽर्यः स्वामी हविषां प्रेरको वाग्निर्नमोभिः स्तुतिभिः सह समिंधे । समिध्यते । यस्याग्नेः प्रतीकं रूपं घृतेनाहुतं भवति । यं च नरोऽस्मदीयाः सबाधः संश्लिष्टाः संजातबाधा वा हव्येभिर्हव्यैः सार्धमीळते स्तुवंति सोऽग्निरुषसामग्र आशोचि । आदीप्यते ॥

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मंद्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२॥

अयं । ऊं इति । स्यः । सुऽमहान् । अवेदि । होता । मंद्रः । मनुषः । यह्वः । अग्निः ।
वि । भाः । अकरित्यकः । ससृजानः । पृथिव्यां । कृष्णऽपविः । ओषधीभिः । ववक्षे ॥२॥

स्य सोऽयं होता देवानामाह्वाता मंद्रो मदयिता यह्वो महानग्निर्मनुषो मनुष्यस्य सुमहानवेदि । सुम-

योऽग्निरमूरोऽमूढः कविः प्राज्ञोऽदितिरदीनो विवस्वान्दीप्तिमान् सुसंसत् शोभनसदनः शोभनसंवेदनो वा मित्रः प्रमीतेस्त्राता सर्वेषामतिथिरतिथिवत्पूज्यः शिवः शिवकरो जगतश्चित्रभानुश्चित्रदीप्तिरुषसामग्रे मुखे भाति सोऽयमपां गर्भः सन् प्रस्वो जायमाना ओषधीरा विवेश ॥

ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधंत ॥४॥
ईळेन्यः । वः । मनुषः । युगेषु । समनऽगाः । अशुचत् । जातऽवेदाः ।
सुऽसंदृशा । भानुना । यः । विऽभाति । प्रति । गावः । संऽइधानं । बुधंत ॥४॥

हे अग्ने वस्त्वं ॥ अत्र विभक्तिवचनव्यत्ययः ॥ मनुषो मनुष्यस्य युगेषु यागकालेषु सर्वेष्वपि दिवसेषु वेळेन्यः स्तुत्यः । अतः परं परोक्षस्तुतिः । योऽग्निर्जातवेदा जातधनः समनगा युद्धेषु संगंता सन् अशुचत् दीप्यते । सुसंदृशा सुसंदर्शनेन भानुना तेजसा विभाति च । तमग्निं समिधानं समिध्यमानं गावः स्तुतयः प्रति बुधंत । प्रतिबोधयंति ॥

वैश्वदेवे पशावग्ने याहीति हविषो याज्या । सूत्रितं च । अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्य इंद्रं नरो नेमधिता हवंत इति तिस्रः । आ० ३.७. । इति ॥

अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५॥
अग्ने । याहि । दूत्यं । मा । रिषण्यः । देवान् । अच्छ । ब्रह्मऽकृता । गणेन ।
सरस्वतीं । मरुतः । अश्विना । अपः । यक्षि । देवान् । रत्नऽधेयाय । विश्वान् ॥५॥

हे अग्ने दूत्यं दूतस्य कर्म हविर्वहनादि याहि देवानच्छाभिगच्छ । गणेन संघेन सह ब्रह्मकृता ब्रह्मकृतोऽस्मानस्मदीयांश्च तव स्तोतॄन्मा रिषण्यः । मा हिंसीः । सरस्वतीं मरुतोऽश्विनाश्विनावपश्च एतान् देवान् रत्नधेयायास्मभ्यं रत्नदानाय यक्षि च ॥

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरंधिं ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
त्वां । अग्ने । संऽइधानः । वसिष्ठः । जरूथं । हन् । यक्षि । राये । पुरंऽधिं ।
पुरुऽनीथा । जातऽवेदः । जरस्व । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

हे अग्ने त्वां वसिष्ठ ऋषिः समिधानो भवति । त्वं च जरूथं परुषभाषिणं जरणीयं वा रक्षोगणं हन् । जहि । राये धनवते यजमानाय पुरंधिं बहुधियं देवगणं । तथा च यास्कः । पुरंधिर्बहुधीरिति । यक्षि । यज । किंच हे जातवेदोऽग्ने पुरुणीथा पुरुनीथेन बहुना स्तोत्रेण जरस्व । देवान् स्तुहि । यद्वा । पुरुणीथानेकमार्गाणि रक्षांसि जरयेत्यर्थः ॥ ॥१२॥

उषो न जार इति पंचर्चं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । तथा चानुक्रांतं । उषो न पंचेति ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरंत मंत्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरंत श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥ ६ ॥
एते । द्युम्नेभिः । विश्वं । आ । अतिरंत । मंत्रं । ये । वा । अरं । नर्याः । अतक्षन् ।
प्र । ये । विशः । तिरंत । श्रोषमाणाः । आ । ये । मे । अस्य । दीधयन् । ऋतस्य ॥ ६ ॥

एते मदीयाः पुरुषा द्युम्नेभिरन्नैर्विश्वं पोष्यवर्गमातिरंत । वर्धयंति । अथवा द्युम्नेभिर्यशोभिर्विश्वं जगदातिरंत । अभ्यगच्छन्नित्यर्थः । क इत्यत आह । ये नर्या मनुष्या मंत्रं स्तोत्रं स्तुत्यं वारं पर्याप्तमतक्षन् समस्कुर्वन् । वेति समुच्चये । ये च विशो जनाः श्रोषमाणाः ॥ शृणोतेः सन्यङोरिति द्वित्वं इको झलिति सनः कित्त्वं च सर्वे विधयश्छंदसि विकल्प्यंत इति न भवतः । ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन इत्यात्मनेपदं ॥ प्र तिरंत वर्धयंति । मे मदीया ये वा ऋतस्यास्य सत्यमिममग्निं ॥ कर्मणि षष्ठी । मानुषाणामश्नीयादितिवत् ॥ आ दीधयन् आदीपयन् ॥

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनां ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
नु । त्वां । अग्ने । ईमहे । वसिष्ठाः । ईशानं । सूनो इति । सहसः । वसूनां ।
इषं । स्तोतृऽभ्यः । मघवत्ऽभ्यः । आनट् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

सहसः सूनो बलस्य पुत्राग्ने वसिष्ठा वयं वसूनामीशानं त्वामस्मदीयेभ्यः स्तोतृभ्यो मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्यश्चेषमन्नं नु क्षिप्रमद्य वानट् । प्रापयेः ॥ नशेर्व्याप्तिकर्मणोऽतर्णीतण्यर्थाल्लुङि छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः ॥ यूयं त्वत्परिवाराश्च सर्वे यूयं नोऽस्मान् सदा स्वस्तिभिः पातेत्येवमीमहे । याचामहे ॥ ॥ १० ॥

इंधे राजेति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं । इंधे राजेत्यनुक्रांतं ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोर्विनियोगः ॥ आतिथ्यायां प्रप्रायमग्निरिति स्विष्टकृतो याज्या । सूचितं च । प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्व इति संयाज्ये । आ० ४.५. । इति ॥

इंधे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥
इंधे । राजा । सं । अर्यः । नमःऽभिः । यस्य । प्रतीकं । आऽहुतं । घृतेन ।
नरः । हव्येभिः । ईळते । सऽबाधः । आ । अग्निः । अग्रे । उषसां । अशोचि ॥ १ ॥

राजा दीप्तोऽर्यः स्वामी हविषां प्रेरको वाग्निर्नमोभिः स्तुतिभिः सह समिंधे । समिध्यते । यस्याग्नेः प्रतीकं रूपं घृतेनाहुतं भवति । यं च नरोऽस्मदीयाः सबाधः संश्लिष्टाः संजातबाधा वा हव्येभिर्हव्यैः सार्धमीळते स्तुवंति सोऽग्निरुषसामग्र आशोचि । आदीप्यते ॥

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मंद्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥
अयं । ऊं इति । स्यः । सुऽमहान् । अवेदि । होता । मंद्रः । मनुषः । यह्वः । अग्निः ।
वि । भाः । अकरित्यकः । ससृजानः । पृथिव्यां । कृष्णऽपविः । ओषधीभिः । ववक्षे ॥ २ ॥

स्य सोऽयं होता देवानामाह्वाता मंद्रो मदयिता यह्वो महानग्निर्मनुषो मनुष्यस्य सुमहानवेदि । सुम-

योऽग्निर्मह्ना महत्त्वेन विश्वा विश्वानि दुरितानि सद्वानमभिभवन् जातवेदा जातधनो जातप्रज्ञो वा दमे यज्ञगृहे स्तवे अस्माभिः सूयते सोऽग्निरस्मान्दुरितात्पापादवद्यात् निंदिताच्च कर्मणो रचिषत्। रक्षतु। अस्मान् गृणतः स्तुवतोऽपि रचिषत्। उतापि च सोऽग्निर्नो मघोनो हविष्मतो रचिषत्॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धंति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
त्वं। वरुणः। उत। मित्रः। अग्ने। त्वां। वर्धंति। मतिऽभिः। वसिष्ठाः।
त्वे इति। वसु। सुऽसननानि। संतु। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥३॥

हे अग्ने त्वं वरुणोऽसि। उतापि च त्वं मित्रोऽसि जगतः प्रमीतेस्त्रातासि। त्वां वसिष्ठा मतिभिः स्तुतिभिर्वर्धंति। वर्धयंति। त्वे त्वयि विद्यमानानि वसु वसूनि सुसननानि सुसंभजनानि संत्विति। स्पष्टमन्यत्॥ ॥१५॥

प्राग्नय इति तृचं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वानराग्निदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। प्राग्नये वैश्वानरीयमिति॥ विनियोगो लैंगिकः॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनां ॥१॥
प्र। अग्नये। विश्वऽशुचे। धियंऽधे। असुरऽघ्ने। मन्म। धीतिं। भरध्वं।
भरे। हविः। न। बर्हिषि। प्रीणानः। वैश्वानराय। यतये। मतीनां ॥१॥

हे सखायो विश्वशुचे विश्वं यो दीपयति तस्मै धियंधे धियां कर्मणां यो धाता तस्मा असुरघ्नेऽसुराणां यो हंता तस्मा अग्नये मन्म मननीयं स्तोत्रं धीतिं कर्म च प्र भरध्वं। मतीनामभिमतानां कामानां यतये दात्रे वैश्वानराय विश्वनरहितायाग्निविशेषाय बर्हिषि यज्ञे हविर्न हविरिव स्तुतिं प्रीणानः प्रीयमाणोऽहं भरे। भरामि। यद्वा। हविः प्रीणानः प्रीणयन्नहं बर्हिषि हविर्भरे। संभरामि। नेति संप्रत्यर्थे॥

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुंचो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२॥
त्वं। अग्ने। शोचिषा। शोशुचानः। आ। रोदसी इति। अपृणाः। जायमानः।
त्वं। देवान्। अभिऽशस्तेः। अमुंचः। वैश्वानर। जातऽवेदः। महिऽत्वा ॥२॥

हे अग्ने त्वं शोचिषा दीप्त्या शोशुचानो दीप्यमानो जायमानो जायमान एव रोदसी द्यावापृथिव्यावापृणाः। आपूरयः। अपि च जातवेदो जातप्रज्ञ जातधन वा वैश्वानर विश्वनरहित हे अग्ने त्वं देवान्महित्वा महत्त्वेनाभिशस्तेरभिशंसकाच्चोरमुंचः। अमोचयः॥

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विंद गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
जातः। यत्। अग्ने। भुवना। वि। अख्यः। पशून्। न। गोपाः। इर्यः। परिऽज्मा।
वैश्वानर। ब्रह्मणे। विंद। गातुं। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥३॥

हे अग्ने जातः सूर्यात्मना जातस्त्वमिर्यः स्वामी प्रेरयन्वा परिज्मा परितो गंता सन् पशून्न गोपाः। यथा गवां पालकः पशून्पश्यति तद्वत्। यद्यदा भुवना भूतानि व्यख्यः रक्षार्थं पश्यसि तदा ब्रह्मणे। ब्रह्म स्तोत्रं। तदर्थं गातुं गतिं फलप्राप्तिं विंद। यद्वा। ब्रह्मणे ब्राह्मणार्थं गातुं विंद। येन ब्रह्मणोपद्रवान्निर्गच्छंति तं गातुं विंदेत्यर्थः। स्पष्टमन्यत्॥ ॥१६॥

समिधा जातवेदस इति तृचं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमाग्नेयं। आद्या बृहती द्वितीयातृतीये त्रिष्टुभौ। तथा चानुक्रम्यते। समिधा बृहत्यादीति॥ विनियोगो लैंगिकः॥

स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः।
ह॒विर्भिः॑ शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑ ॥१॥
स॒म्ऽइधा॑। जा॒तऽवे॑दसे। दे॒वाय॑। दे॒वहू॑तिऽभिः।
ह॒विःऽभिः॑। शु॒क्रऽशो॑चिषे। न॒म॒स्विनः॑। व॒यं। दा॒शे॒म॒। अ॒ग्नये॑ ॥१॥

जातवेदसे जातवेदसं जातप्रज्ञमग्नयेऽग्निं समिधा वयं वसिष्ठा दाशेम। परिचरेम। देवाय देवं स्तुत्यमग्निं देवहूतिभिर्देवस्तुतिभिर्दाशेम। शुक्रशोचिषे शुक्रशोचिषं शुभ्रदीप्तिं नमस्विनो हविष्मंतो वयं हविर्भिर्दाशेम॥ अत्र दाशतियोगात्कर्मणि चतुर्थी। प्रायेण सर्वत्र दाशतियोगे कर्मणि चतुर्थी दृश्यते॥

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ॥२॥
व॒यं। ते॒। अ॒ग्ने॒। स॒म्ऽइधा॑। वि॒धे॒म॒। व॒यं। दा॒शे॒म॒। सु॒ऽस्तु॒ती। य॒ज॒त्र॒।
व॒यं। घृ॒तेन॑। अ॒ध्व॒रस्य॒। हो॒त॒रिति॑। व॒यं। दे॒व॒। ह॒विषा॑। भ॒द्र॒ऽशो॒चे॒ ॥२॥

हे अग्ने ते त्वां वयं वसिष्ठाः समिधा विधेम। परिचरेम। हे यजत्र यष्टव्याग्ने वयं सुष्टुती शोभनया स्तुत्या दाशेम। त्वां परिचरेम। अध्वरस्य यज्ञस्य होतरग्ने वयं घृतेनाज्येन त्वां दाशेम। हे भद्रशोचे कल्याणज्वाल देव द्योतमानाग्ने त्वां वयं हविषा दाशेम॥

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३॥
आ। न॒ः। दे॒वेभिः॑। उप॑। दे॒वऽहू॑तिं। अग्ने॑। या॒हि। वष॑ट्ऽकृतिं। जु॒षा॒णः।
तुभ्यं॑। दे॒वाय॑। दाश॑तः। स्या॒म॒। यू॒यं। पा॒त॒। स्व॒स्तिऽभिः॑। सदा॑। न॒ः ॥३॥

हे अग्ने नोऽस्माकं देवहूतिं स्तोत्रं यज्ञं वा देवेभिर्देवैः सार्धं वषट्कृतिं हविर्जुषाणः सेवमानस्त्वमुपा याहि। देवाय द्योतमानाय तुभ्यं वयं दाशतः परिचरंतः स्याम। भवेम। सिद्धमन्यत्॥ ॥१७॥

उपसद्यायेति पंचदशर्चं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं गायत्रमाग्नेयं। तथा चानुक्रांतं। उपसद्याय पंचोना गायत्रमिति॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। सूचितं च। उपसद्याय त्वमग्ने यज्ञानामिति तिस्र उत्तमा उद्धरेत्। आ॰ ४. १३.। इति॥ उपसदि पौर्वाह्णिक्यामुपसद्यायेत्याद्यास्तिस्र ऋचः सामिधेन्यः। सूत्र्यते च। उपसद्याय मीळ्हुष इति तिस्र एकैकां त्रिरनवानं। आ॰ ४. ८.। इति॥ पवित्रेष्ट्यामग्नी रक्षांसीत्येषा प्रथमाज्यभागानुवाक्या। सूचितं च। पावकवंतावाज्यभागावग्नी रक्षांसि सेधति। आ॰ २. १२.। इति॥ अन्वारंभणीयायामग्निर्भगिनो याज्या। सूचितं च। आ सवं सवितुर्यथा स नो राधांस्या भर

योऽग्निर्मह्ना महत्त्वेन विश्वा विश्वानि दुरितानि सह्वानभिभवन् जातवेदा जातधनो जातप्रज्ञो वा दमे यज्ञगृहे स्तवे अस्माभिः स्तूयते सोऽग्निरस्मान्दुरितात्पापादवद्यात् निंदितान्न कर्मणो रक्षिषत्। रक्षतु। अस्मान् गृणतः स्तुवतोऽपि रक्षिषत्। उतापि च सोऽग्निर्नो मघोनो हविष्मतो रक्षिषत्॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धंति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
त्वं। वरुणः। उत। मित्रः। अग्ने। त्वां। वर्धंति। मतिऽभिः। वसिष्ठाः।
त्वे इति। वसु। सुऽसननानि। संतु। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥३॥

हे अग्ने त्वं वरुणोऽसि। उतापि च त्वं मित्रोऽसि जगतः प्रमीतेस्त्रातासि। त्वां वसिष्ठा मतिभिः स्तुतिभिर्वर्धंति। वर्धयंति। त्वे त्वयि विद्यमानानि वसु वसूनि सुसननानि सुसंभजनानि संत्विति। स्पष्टमन्यत्॥ ॥१५॥

प्राग्नय इति तृचं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वानराग्निदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। प्राग्नये वैश्वानरीयमिति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनां ॥१॥
प्र। अग्नये। विश्वऽशुचे। धियंऽधे। असुरऽघ्ने। मन्म। धीतिं। भरध्वं।
भरे। हविः। न। बर्हिषि। प्रीणानः। वैश्वानराय। यतये। मतीनां ॥१॥

हे सखायो विश्वशुचे विश्वं यो दीपयति तस्मै धियंधे धियां कर्मणां यो धाता तस्मा असुरघ्नेऽसुराणां यो हंता तस्मा अग्नये मन्म मननीयं स्तोत्रं धीतिं कर्म च प्र भरध्वं। मतीनामभिमतानां कामानां यतये दात्रे वैश्वानराय विश्वनरहितायाग्निविशेषाय बर्हिषि यज्ञे हविर्न हविरिव स्तुतिं प्रीणानः प्रीयमाणोऽहं भरे। भरामि। यद्वा। हविः प्रीणानः प्रीणयन्नहं बर्हिषि हविर्भरे। संभरामि। नेति संप्रत्यर्थे॥

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुंचो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२॥
त्वं। अग्ने। शोचिषा। शोशुचानः। आ। रोदसी इति। अपृणाः। जायमानः।
त्वं। देवान्। अभिऽशस्तेः। अमुंचः। वैश्वानर। जातऽवेदः। महिऽत्वा ॥२॥

हे अग्ने त्वं शोचिषा दीप्त्या शोशुचानो दीप्यमानो जायमानो जायमान एव रोदसी द्यावापृथिव्यावापृणाः। आपूरयः। अपि च जातवेदो जातप्रज्ञ जातधन वा वैश्वानर विश्वनरहित हे अग्ने त्वं देवान्महित्वा महत्त्वेनाभिशस्तेरभिशंसकाच्चोरमुंचः। अमोचयः॥

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विंद गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
जातः। यत्। अग्ने। भुवना। वि। अख्यः। पशून्। न। गोपाः। इर्यः। परिऽज्मा।
वैश्वानर। ब्रह्मणे। विंद। गातुं। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥३॥

गन्त्योपगंतव्य । नचतिर्व्याप्तिकर्मा । विश्पते विशां पते देव द्योतमानाकृत सर्वैर्यजमानैरभिकृत हे अग्ने द्युमंतं दीप्तिमंतं सुवीरं कल्याणस्तोतृकं त्वा त्वां वयं नि धीमहि । निहितवंतः ॥

क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयं । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥८॥

क्षपः । उस्रः । च । दीदिहि । सुऽअग्नयः । त्वया । वयं । सुऽवीरः । त्वं । अस्मऽयुः ॥८॥

हे अग्ने त्वं क्षपो रात्रीरुस्रोऽहानि च । सर्वदेति यावत् । दीदिहि । दीप्यस्व । दीप्यमानेन त्वया वयं वसिष्ठाः स्वग्नयः शोभमानाग्नयो भवाम । अस्मयुरस्मान् कामयमानः सुप आत्मनः क्यजिति क्यचि कृते क्याच्छंदसीत्युप्रत्ययः । दकारलोपश्छांदसः ॥ तथा च यास्कः । अस्मयुरस्मान् कामयमानः । नि° ६. २१. । इति ॥ त्वं सुवीरः सुस्तोतृको भव ॥

उप त्वा सातये नरो विप्रासो यंति धीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ॥९॥

उप । त्वा । सातये । नरः । विप्रासः । यंति । धीतिऽभिः । उप । अक्षरा । सहस्रिणी ॥९॥

हे अग्ने त्वा त्वां नरो नेतारो यजमाना विप्रासो विप्रा मेधाविनो धीतिभिः कर्मभिः सातये धनाय कामानां लाभाय वोप यंति । उपगच्छंति । सहस्रिणी सहस्रसंख्याकाक्षरा क्षयरहिता स्तुतिरूपास्मदीया वाक् त्वामुप याति च ॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥१०॥

अग्निः । रक्षांसि । सेधति । शुक्रऽशोचिः । अमर्त्यः । शुचिः । पावकः । ईड्यः ॥१०॥

शुक्रशोचिः शुभ्रज्वालोऽमर्त्यो मरणरहितो देवतात्मा शुचिः स्वयं शुद्धः पावकोऽन्येषामपि शोधक ईड्यः स्तुत्योऽग्नी रक्षांसि राक्षसान् सेधति । बाधतां ॥ ॥१९॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यं ॥११॥

सः । नः । राधांसि । आ । भर । ईशानः । सहसः । यहो इति । भगः । च । दातु । वार्यं ॥११॥

हे सहसो यहो बलस्य पुत्राग्ने स प्रसिद्धस्त्वमीशानः सर्वस्य जगत ईश्वरः सन् नोऽस्मभ्यं राधांसि धनानि । रायो राध इति धननामसु पाठात् । आ भर । आहर । भगश्च भगो देवोऽपि वार्यं धनं दातु । अस्मभ्यं ददातु ॥ अभ्यासलोपश्छांदसः ॥ भगोऽत्र सूक्ते निपातभागिनी देवता ॥

त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यं ॥१२॥

त्वं । अग्ने । वीरऽवत् । यशः । देवः । च । सविता । भगः । दितिः । च । दाति । वार्यं ॥१२॥

हे अग्ने त्वं वीरवत्पुत्रपौत्रोपेतं यशोऽन्नं देहीति शेषः । देवश्च सविता सविता देवोऽपि वार्यं वरणीयं धनं दाति । ददातु । भगश्च देवोऽपि ददातु । दितिश्च दितिरपि देवी ददातु । सवित्रादिः सूक्ते निपातभा-गिनी देवता ॥

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥१३॥

अग्ने । रक्ष । नः । अंहसः । प्रति । स्म । देव । रिषतः । तपिष्ठैः । अजरः । दह ॥१३॥

हे अग्ने त्वं नोऽस्मानंहसः पापाद्रक्ष । पाहि ॥ संहितायां दीर्घश्छांदसः ॥ अपि च हे देव द्योतमानाग्ने अजरो जरारहितस्त्वं रिषतो हिंसतः शत्रून् तपिष्ठैरतिशयेन तापकैस्तेजोभिर्दह । भस्मीकुरु ॥

योऽग्निर्मह्ना महत्त्वेन विश्वा विश्वानि दुरितानि सद्मानमभिभवन् जातवेदा जातधनो जातप्रज्ञो वा दमे यज्ञगृहे स्तवे अस्माभिः स्तूयते सोऽग्निरस्मान्दुरितात्पापादवद्यात् निंदिताच्च कर्मणो रक्षिषत् । रक्षतु । अस्मान् गृणतः स्तुवतोऽपि रक्षिषत् । उतापि च सोऽग्निर्नो मघोनो हविष्मतो रक्षिषत् ॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धंति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
त्वं । वरुणः । उत । मित्रः । अग्ने । त्वां । वर्धंति । मतिऽभिः । वसिष्ठाः ।
त्वे इति । वसु । सुऽसननानि । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥३॥

हे अग्ने त्वं वरुणोऽसि । उतापि च त्वं मित्रोऽसि जगतः प्रमीतेस्त्रातासि । त्वां वसिष्ठा मतिभिः स्तुतिभिर्वर्धंति । वर्धयंति । त्वे त्वयि विद्यमानानि वसु वसूनि सुसननानि सुसंभजनानि संत्विति । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥१५॥

प्राग्नय इति तृचं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वानराग्निदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्राग्नये वैश्वानरीयमिति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनां ॥१॥
प्र । अग्नये । विश्वऽशुचे । धियंऽधे । असुरऽघ्ने । मन्म । धीतिं । भरध्वं ।
भरे । हविः । न । बर्हिषि । प्रीणानः । वैश्वानराय । यतये । मतीनां ॥१॥

हे सखायो विश्वशुचे विश्वं यो दीपयति तस्मै धियंधे धियां कर्मणां यो धाता तस्मा असुरघ्नेऽसुराणां यो हंता तस्मा अग्नये मन्म मननीयं स्तोत्रं धीतिं कर्म च प्र भरध्वं । मतीनामभिमतानां कामानां यतये दात्रे वैश्वानराय विश्वनरहितायाग्निविशेषाय बर्हिषि यज्ञे हविर्न हविरिव स्तुतिं प्रीणानः प्रीयमाणोऽहं भरे । भरामि । यद्वा । हविः प्रीणानः प्रीणयन्नहं बर्हिषि हविर्भरे । संभरामि । नेति संप्रत्यर्थे ॥

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुंचो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२॥
त्वं । अग्ने । शोचिषा । शोशुचानः । आ । रोदसी इति । अपृणाः । जायमानः ।
त्वं । देवान् । अभिऽशस्तेः । अमुंचः । वैश्वानर । जातऽवेदः । महिऽत्वा ॥२॥

हे अग्ने त्वं शोचिषा दीप्त्या शोशुचानो दीप्यमानो जायमानो जायमान एव रोदसी द्यावापृथिव्यावापृणाः । आपूरयः । अपि च जातवेदो जातप्रज्ञ जातधन वा वैश्वानर विश्वनरहित हे अग्ने त्वं देवान्महित्वा महत्त्वेनाभिशस्तेरभिशंसकाच्चोरमुंचः । अमोचयः ॥

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विंद गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
जातः । यत् । अग्ने । भुवना । वि । अख्यः । पशून् । न । गोपाः । इर्यः । परिऽज्मा ।
वैश्वानर । ब्रह्मणे । विंद । गातुं । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥३॥

उत् । अस्य । शोचिः । अस्थात् । आऽजुह्वानस्य । मीळ्हुषः ।
उत् । धूमासः । अरुषासः । दिविऽस्पृशः । सं । अग्निं । इंधते । नरः ॥३॥

मीळ्हुषः कामानां वर्षितुराजुह्वानस्याभिह्वयमानस्याग्नेः शोचिस्तेज उदस्थात् । उत्तिष्ठति । अरुषास आरोचमाना दिविस्पृशोऽंतरिक्षस्पृशो धूमासो धूमाश्चोदस्थुः । अस्थादित्येकवचनांतं बहुवचनांततया विपरिणतं सदत्रान्वेति । तमिममग्निं नरः कर्मणां नेतार ऋत्विजः समिंधते । सम्यक् दीपयंति ॥

तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्त्वेमहे ॥४॥
तं । त्वा । दूतं । कृण्महे । यशःऽतमं । देवान् । आ । वीतये । वह ।
विश्वा । सूनो इति । सहसः । मर्तऽभोजना । रास्व । तत् । यत् । त्वा । ईमहे ॥४॥

हे सहसः सूनो बलस्य पुत्राग्ने यशस्तममतिशयेन यशस्विनं तं प्रसिद्धं यं त्वा त्वां दूतं कृण्महे कुर्मः स त्वं देवान्वीतये हविषां भक्षणाया वह । किंच यद्यदा त्वा त्वामीमहे याचामहे तदैव विश्वा विश्वानि मर्तभोजनानि मनुष्याणां भोग्यानि कल्याणानि धनानि रास्व । अस्मभ्यं देहि ॥

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यं ॥५॥
त्वं । अग्ने । गृहऽपतिः । त्वं । होता । नः । अध्वरे ।
त्वं । पोता । विश्वऽवार । प्रऽचेताः । यक्षि । वेषि । च । वार्यं ॥५॥

हे विश्ववार विश्वैर्वरणीयाग्ने त्वं नोऽस्माकमध्वरे यागे गृहपतिरसि । यजमानोऽसि । त्वं होता देवानामाह्वाता । त्वं त्वमेव पोतासि । अतः प्रचेताः प्रकृष्टमतिस्त्वं वार्यं वरणीयं हविर्यक्षि । यज । वेषि च । कामयस्व । भक्षय वा ॥

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥
कृधि । रत्नं । यजमानाय । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । त्वं । हि । रत्नऽधाः । असि ।
आ । नः । ऋते । शिशीहि । विश्वं । ऋत्विजं । सुऽशंसः । यः । च । दक्षते ॥६॥

हे सुक्रतो शोभनकर्मन्नग्ने यजमानाय मह्यं रत्नं धनं । श्वात्रं रत्नमिति धननामसु पाठात् । कृधि । कुरु । देहीत्यर्थः । हि यस्मात्त्वं रत्नधा रत्नस्य दातासि । नोऽस्माकमृते यज्ञे विश्वं सर्वमृत्विजमा शिशीहि । तीक्ष्णीकुरु । किंच यः सुशंसः सुस्तुतिरस्मत्पुत्रो दक्षते वर्धते तं वर्धय । यद्वा । यः सुशंसो होता वर्धते तं वर्धयेत्यर्थः । होतुः पृथगुपादानमादरार्थं ॥ ॥२१॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः संतु सूरयः ।
यंतारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयंत गोनां ॥७॥
त्वे इति । अग्ने । सुऽआहुत । प्रियासः । संतु । सूरयः ।
यंतारः । ये । मघऽवानः । जनानां । ऊर्वान् । दयंत । गोनां ॥७॥

हे अग्ने स्वाहुत यजमानैः सुष्ठ्वाहुत त्वे तव सूरयः प्रेरकाः स्तोतारो वा प्रियासः प्रियाः संतु । भवंतु । किंच ये मघवानो धनवंतो यंतारः प्रदातारो जनानामस्मदीयानामूर्वान् समूहान् गोनां गवां चोर्वान्दयंत प्रयच्छंति ते च तव प्रियासः संत्विति पूर्वेणान्वयः ॥

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
तांस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥८॥
येषां । इळा । घृतऽहस्ता । दुरोणे । आ । अपि । प्राता । निऽसीदति ।
तान् । त्रायस्व । सहस्य । द्रुहः । निदः । यच्छ । नः । शर्म । दीर्घऽश्रुत् ॥८॥

येषां दुरोणे गृहे घृतहस्ता । घृतयुक्तो हस्तो यस्या असौ घृतहस्ता । घृतेनाभिघारितेत्यर्थः । इळान्नरूपा हविर्लक्षणा देवी । इरेळेत्यन्ननामसु पाठात् । प्राता पूर्णा आ निषीदति आसीदति । अपीति पूरणः । तान्हविष्मतो यजमानान् हे सहस्य सहसे बलाय हितामे द्रुहो द्रोग्धुर्निदो निंदकाच्च शत्रोस्त्रायस्व । नोऽस्मभ्यं दीर्घश्रुत् दीर्घकालं श्रोतव्यं शर्म सुखं गृहं वा यच्छ च । देहि ॥

स मंद्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥९॥
सः । मंद्रया । च । जिह्वया । वह्निः । आसा । विदुःऽतरः ।
अग्ने । रयिं । मघवत्ऽभ्यः । नः । आ । वह । हव्यऽदातिं । च । सूदय ॥९॥

हे अग्ने मंद्रया च मोदयित्र्या देवानामासास्यस्थानीयया जिह्वया ज्वालया वह्निर्हविषां वोढा विदुष्टरो विद्वत्तरः स प्रसिद्धस्त्वं मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्यो नोऽस्मभ्यं रयिं धनमा वह च । हव्यदातिं । हव्यानि ददातीति हव्यदातिर्यजमानः । तं । तथा च वाजसनेयिन आमनंति । यजमानो वै हव्यदातिः । शत० ब्रा० १. ४. १. २४. । इति । सूदय च । कर्मसु प्रेरय च ॥

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥१०॥
ये । राधांसि । ददति । अश्व्या । मघा । कामेन । श्रवसः । महः ।
तान् । अंहसः । पिपृहि । पर्तृऽभिः । त्वं । शतं । पूःऽभिः । यविष्ठ्य ॥१०॥

हे यविष्ठ्य युवतमाग्ने त्वं ये यजमाना महो महतः श्रवसो यशसः कामेनेच्छया । यशस्कामाः संत इत्यर्थः । राधांसि साधकान्यश्व्याश्वात्मकानि मघा मघानि ददति तान्दातॄनंहसः पापात् शत्रोर्वा पर्तृभी रक्षासाधनभूतैः शतमपरिमिताभिः पूर्भिर्नगरीभिश्च पिपृहि । पालय ॥

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचं ।
उद्वा सिंचध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥११॥
देवः । वः । द्रविणःऽदाः । पूर्णां । विवष्टि । आऽसिचं ।
उत् । वा । सिंचध्वं । उप । वा । पृणध्वं । आत् । इत् । वः । देवः । ओहते ॥११॥

द्रविणोदा धनानां दाता देवोऽग्निर्वो युष्मदीयां पूर्णां हविषासिचमासिक्तां स्रुचं विवष्टि। कामयते। अत उत्सिंचध्वं वा सोमेन पात्रं। उप पृणध्वं वा सोमं॥ वाशब्दौ समुच्चयार्थौ॥ ध्रुवग्रहेण होतृचमसं पूरयत चाग्नये सोमं यच्छत चेत्यर्थः। आदिदनंतरमेव देवोऽग्निर्वो युष्मानोहते। वहति॥

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे॥१२॥
तं। होतारं। अध्वरस्य। प्रऽचेतसं। वह्निं। देवाः। अकृण्वत।
दधाति। रत्नं। विधते। सुऽवीर्यं। अग्निः। जनाय। दाशुषे॥१२॥

देवाः प्रचेतसं प्रकृष्टमतिमग्निमध्वरस्य यज्ञस्य वह्निं वोढारं होतारं चाकृण्वत। अकुर्वन्। किमर्थमित्यत आह। स चाग्निर्विधते परिचरते दाशुषे हविषां प्रदात्रे जनाय सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं रत्नं रमणीयं धनं दधाति। ददात्वित्यर्थः॥ ॥२२॥

अग्ने भव सुषमिधेति सप्तर्चं सप्तदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमग्निदेवताकं। सप्तापि द्विपदास्त्रिष्टुभः। तथैवानुक्रम्यते। अग्ने भव सप्त द्वैपदं त्रैष्टुभमिति॥ अतिरात्रे षष्ठेऽहनि तृतीयसवने मैत्रावरुणशस्त्रेऽग्ने भवेति तृचोऽनुरूपः। सूत्र्यते हि। अग्ने त्वं नोऽतमोऽग्ने भव सुषमिधा समिद्ध इति स्तोत्रियानुरूपौ। आ॰ ८. २.। इति॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीतां॥१॥
अग्ने। भव। सुऽसमिधा। संऽइद्धः। उत। बर्हिः। उर्विया। वि। स्तृणीतां॥१॥

हे अग्ने सुषमिधा शोभनया समिधा समिद्धो भव। सम्यक् दीप्तो भव। उतापि च बर्हिरुर्विया विस्तीर्णमुपस्तृणीतामध्वर्युः॥

उत द्वार उशतीर्वि श्रयंतामुत देवाँ उशत आ वहेह॥२॥
उत। द्वारः। उशतीः। वि। श्रयंतां। उत। देवान्। उशतः। आ। वह। इह॥२॥

उतापि चोशतीर्देवान् कामयमाना द्वारो यज्ञगृहस्य देव्यो वा। तथा च यास्कः। द्वारो जवतेर्वा द्रवतेर्वा वारयतेर्वा। नि॰ ८. ९.। इति। वि श्रयंतां। उतापि चोशतो यज्ञं कामयमानान्देवानिह यज्ञ आ वह॥

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः॥३॥
अग्ने। वीहि। हविषा। यक्षि। देवान्। सुऽअध्वरा। कृणुहि। जातऽवेदः॥३॥

हे जातवेदो जातधनाग्ने वीहि। देवानभिगच्छ। हविषा देवान्यक्षि। यज च। स्वध्वरा स्वध्वरान् शोभनयज्ञांश्च कृणुहि। कुरु॥

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च॥४॥
सुऽअध्वरा। करति। जातऽवेदाः। यक्षत्। देवान्। अमृतान्। पिप्रयत्। च॥४॥

जातवेदा जातधनोऽग्निरमृतान्मरणरहितान्देवान् स्वध्वरा स्वध्वरान् शोभनयज्ञान् करति। करोतु। यक्षत्। हविषा यजतु च। पिप्रयत्। स्तोत्रैः प्रीणयतु च॥

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवंत्वाशिषो नो अद्य ॥५॥

वंस्व। विश्वा। वार्याणि। प्रचेत इति प्रऽचेतः। सत्याः। भवंतु। आऽशिषः। नः। अद्य ॥५॥

हे प्रचेतः प्रकृष्टमतिमन्नग्ने विश्वा विश्वानि वार्याणि वरणीयानि धनानि वंस्व। अस्मभ्यं देहि। नोऽस्माकमाशिषोऽद्य सत्या यथार्था भवंतु ॥

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातं ॥६॥

त्वां। ऊं इति। ते। दधिरे। हव्यऽवाहं। देवासः। अग्ने। ऊर्जः। आ। नपातं ॥६॥

हे अग्ने ऊर्जो बलस्य नपातं पुत्रं। सूनुर्नपादित्यपत्यनामसु पाठात्। त्वामु त्वामेव ते प्रसिद्धा देवासो देवा हव्यवाहं हविषो वोढारमा दधिरे। अकुर्वन्नित्यर्थः ॥

ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥७॥

ते। ते। देवाय। दाशतः। स्याम। महः। नः। रत्ना। वि। दधः। इयानः ॥७॥

हे अग्ने देवाय द्योतमानाय ते तुभ्यं ते प्रसिद्धा वसिष्ठा वयं दाशतो हवींषि ददतः स्याम। भवेम। अतो महो महांस्त्वमियान उपगम्यमानो याच्यमानो वा नोऽस्मभ्यं रत्ना रत्नानि रमणीयानि धनानि वि दधः। विधत्स्व ॥ ॥२३॥ ॥१॥

द्वितीयेऽनुवाके षोडश सूक्तानि। तत्र त्वे ह यत्पितर इति पंचविंशत्यृचं प्रथमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमिंद्रदेवताकं। द्वाविंशादिभिश्चतसृभिः सुदासनाम्नो राज्ञो दानं स्तूयते। अतस्तास्तद्देवताकाः। अनुक्रम्यते हि। त्वे ह यत्पंचाधिकेंद्रं सुदासः पैजवनस्य चतस्रोंऽत्या दानस्तुतिरिति ॥ महाव्रत आदितः पंचदशर्चः शंसनीयाः। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं। त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इंद्रेति पंचदश। ऐ० आ० ५. २. २.। इति ॥

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इंद्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥१॥

त्वे इति। ह। यत्। पितरः। चित्। नः। इंद्र। विश्वा। वामा। जरितारः। असन्वन्।
त्वे इति। गावः। सुऽदुघाः। त्वे इति। हि। अश्वाः। त्वं। वसु। देवऽयते। वनिष्ठः ॥१॥

हे इंद्र त्वे ह त्वय्येव नोऽस्माकं पितरश्चित् पितरोऽपि जरितारः स्तोतारः संतो यद्यस्मात्कारणाद्विश्वा विश्वानि वामा वामानि वननीयानि धनानि। तथा च यास्कः। वामं वननीयं भवति। नि० ६. ३१.। इति। असन्वन् अलभंत तस्माद्वयमपि धनकामास्त्वां स्तुमः। तदुक्तं। हि यस्मात्कारणात्त्वे त्वयि गावः सुदुघा दोग्धुं सुशकाः संति त्वे त्वय्यश्वाः संति त्वं वसु धनं देवयते देवं त्वामिच्छते यजमानाय वनिष्ठो दातृतमो भवसि ॥

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन्।
पिशा गिरो मघवन्गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥२॥

राजाऽइव। हि। जनिऽभिः। क्षेषि। एव। अव। द्युऽभिः। अभि। विदुः। कविः। सन्।
पिशा। गिरः। मघऽवन्। गोभिः। अश्वैः। त्वाऽयतः। शिशीहि। राये। अस्मान् ॥२॥

हे इंद्र त्वं जनिभिर्जायाभी राजेव द्युभिर्दीप्तिभिः सह क्षेष्येव। निवसस्येव। हीति पूरणः। किंच हे

मघवन् धनवन्निंद्र विदुर्विद्वान् कविः क्रांतकर्मा क्रांतप्रज्ञो वा सन् गिरः स्तोतॄनस्मान् पिशा रूपेण हिरण्यादिना वा गोभिरश्वैश्चाभि अभितो रच । त्वायतस्त्वत्कामानस्मान् राये शिशीहि । धनार्थं च संस्कुरु ॥

इमा उं त्वा पस्पृधानासो अत्र मंद्रा गिरो देवयंतीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविंद्र शर्मन् ॥३॥
इमाः । ऊं इति । त्वा । पस्पृधानासः । अत्र । मंद्राः । गिरः । देवऽयंतीः । उप । स्थुः ।
अर्वाची । ते । पथ्या । रायः । एतु । स्याम । ते । सुऽमतौ । इंद्र । शर्मन् ॥३॥

हे इंद्र त्वा त्वामत्र यज्ञे स्तोतरि वा प्रवर्तमानाः पस्पृधानासः स्पर्धमाना मंद्रा मोदमाना इमा गिरः स्तुतय उप स्थुः । उपतिष्ठंति । अतस्ते तव रायो धनस्य पथ्या स्रुतिरर्वाच्यस्मदभिमुख्येतु । गच्छतु । हे इंद्र वयं च ते सुमतौ सुष्टुतौ वर्तमानाः शर्मन् शर्मणि सुखे स्याम । भूयास्म ॥

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इंद्रः सुमतिं गंत्वच्छ ॥४॥
धेनुं । न । त्वा । सुऽयवसे । दुधुक्षन् । उप । ब्रह्माणि । ससृजे । वसिष्ठः ।
त्वां । इत् । मे । गोऽपतिं । विश्वः । आह । आ । नः । इंद्रः । सुऽमतिं । गंतु । अच्छ ॥४॥

हे इंद्र सुयवसे सुतृणे गोष्ठे वर्तमानां धेनुं न धेनुमिव सुहविष्के यज्ञगृहे । दृष्टांतसामर्थ्याद्दार्ष्टांतिकलाभः । वर्तमानं त्वां दुधुक्षन् ॥ संहितायां व्यत्ययेन दकारः ॥ कामान् दोग्धुमिच्छन्वसिष्ठो ब्रह्माणि वत्सस्थानीयानि स्तोत्राण्युप ससृजे । उपसृजति । मे मम विश्वः सर्वो जनस्त्वामित्त्वामेव गोपतिं गवां स्वामिनमाह । ब्रवीति । अथ परोक्षस्तुतिः । नोऽस्माकं सुमतिं सुष्टुतिमच्छाभि इंद्र आ गंतु । आगच्छतु ॥

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इंद्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धंतं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिंधूनामकृणोदशस्तीः ॥५॥
अर्णांसि । चित् । पप्रथाना । सुऽदासे । इंद्रः । गाधानि । अकृणोत् । सुऽपारा ।
शर्धंतं । शिम्युं । उचथस्य । नव्यः । शापं । सिंधूनां । अकृणोत् । अशस्तीः ॥५॥

नव्यः स्तुत्य इंद्रोऽर्णांसि शत्रुभिर्विदारितायाः परुष्ण्या उदकानि पप्रथाना चित् प्रथमानान्यपि सुदासे राज्ञे गाधानि सुपारा सुपाराणि पारयितुं तर्तुं योग्यानि चाकृणोत् । अकरोत् । अपि च शर्धंतमुत्साहमानं शिम्युं बोधमानं शापं विश्वरूपोऽन्नवमात्मनोऽभिशापमशस्तीरभिशस्तीश्चोचथस्य स्तोतुः सिंधूनां नदीनामकृणोत् । अकरोत् ॥ ॥२४॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥६॥
पुरोळाः । इत् । तुर्वशः । यक्षुः । आसीत् । राये । मत्स्यासः । निऽशिताः । अपिऽइव ।
श्रुष्टिं । चक्रुः । भृगवः । द्रुह्यवः । च । सखा । सखायं । अतरत् । विषूचोः ॥६॥

यक्षुर्यज्ञकुशलः ॥ यजेः सन्प्रत्ययो न तु सनंतः । अतो न द्विर्भावः ॥ पुरोळाः पुरोगामी पुरोदाता वा । इदिति पूरणः । तुर्वशो नाम राजासीत् । स तुर्वशो राये धनप्राप्तय इंद्रस्य सखायं सुदासं जगाम । मत्स्यास

इव जले निहिता मत्स्या इव निशिता नियंत्रिता अपि भृगवो द्रुह्यवश्च योधाश्च सुदासस्तुर्वशस्य च श्रुष्टिमाशुप्राप्तिं चक्रुः। विषूचोर्विष्वगंचतोरुभयोर्मध्ये सखा सुदासस्येंद्रः सखायं सुदासमतरत्। अतारयत्। तुर्वशं चावधीदित्यर्थः। यद्वा। यजुर्यज्ञशीलः पुरोळाः पुरोदाता तुर्वशो नाम राजासीत्। तेन मत्स्यासो मत्स्यजनपदा निशिता बाधिता आसन्। अपि च भृगवो द्रुह्यवश्च श्रुष्टिं सुखं तुर्वशस्य चक्रुः। विषूचोर्विष्वगंचतोरुभयोर्मध्ये सखा तुर्वशस्य सखेंद्रः सखायं राजानमतरत्। अतारयत्॥

आ पक्थासो भलानसो भनंतालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥७॥
आ। पक्थासः। भलानसः। भनंत। आ। अलिनासः। विषाणिनः। शिवासः।
आ। यः। अनयत्। सधऽमाः। आर्यस्य। गव्या। तृत्सुऽभ्यः। अजगन्। युधा। नॄन् ॥७॥

पक्थासः पक्था हविषां पाचका भलानसो भद्रमुखाः। भलेति भद्रवाची। अलिनासोऽलिनाः। तपोभिरप्रवृद्धा इत्यर्थः। विषाणिनः कंडूयनार्थं कृष्णविषाणहस्ताः। दीक्षिता इत्यर्थः। शिवासः शिवा यागादिना सर्वस्य लोकस्य शिवकराः। यागेन हि शिवं भवति लोकस्य। आ भनंत। अभिष्टुवंति तमिंद्रं। भनतिः शब्दकर्मा नौति भनतीति शब्दकर्मसु पाठात्। य इंद्रः सधमाः। सोमपानेन सह माद्यतीति सधमादः। सधमाद एव सधमाः। आर्यस्य कर्मशीलस्य गव्या गोसंघान् तृत्सुभ्यो हिंसकेभ्य आनयत्। अजगन् अजगत् स्वयं च गोसंघान् लेभे। युधा युद्धेन तान्नॄन् शत्रून् जघान चेति शेषः॥

दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयंतोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीं।
मह्नाविव्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥८॥
दुःऽआध्यः। अदितिं। स्रेवयंतः। अचेतसः। वि। जगृभ्रे। परुष्णीं।
मह्ना। अविव्यक्। पृथिवीं। पत्यमानः। पशुः। कविः। अशयत्। चायमानः ॥८॥

दुराध्यो दुष्टाभिसंधयोऽचेतसो मंदमतयः सुदासः शत्रवोऽदितिमदीनां परुष्णीं नदीं स्रेवयंतो वि जगृभ्रे। विग्रहः कूलभेदः। तमकुर्वन्। परुष्ण्याः कूलं बिभिदुरित्यर्थः। स सुदासो महेंद्रप्रसादलब्धेन महिम्ना पृथिवीमविव्यक्। तदैव व्याप्नोत्। न पुनरुदकेनाबाध्यत। ततः सुदासः शत्रुश्चायमानश्चयमानस्य पुत्रः कविः कविनामा पत्यमानः पलायमानः पशुर्यागे संज्ञप्तः पशुरिवाशयत्। अशेत। सुदासा निहत इत्यर्थः॥

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम।
सुदास इंद्रः सुतुकाँ अमित्रानरंधयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥९॥
ईयुः। अर्थं। न। निऽअर्थं। परुष्णीं। आशुः। चन। इत्। अभिऽपित्वं। जगाम।
सुऽदासे। इंद्रः। सुऽतुकान्। अमित्रान्। अरंधयत्। मानुषे। वध्रिऽवाचः ॥९॥

अथेंद्रः परुष्ण्या विच्छिन्नानि पर्वाणि संदधे। ततः परुष्ण्या आपो यथापूर्वमर्थं गंतव्यमेव प्रवणदेशं प्रति परुष्णीमीयुः। आययां चक्रुः॥ इण् गताविति धातोरंतर्भावितण्यर्थात् लिटीयुरिति। अतो द्विकर्मकमाख्यातं॥ न्यर्थमगंतव्यं परुष्ण्याः पार्श्वयोः स्थितं निम्नं देशं प्रति परुष्णीं नेयुः। आशुश्चन राज्ञः सुदासोऽश्वोऽप्यभिपित्वमभिप्राप्तव्यमेव जगाम। इंद्रश्च सुदासे राज्ञे मानुषे लोके वध्रिवाचो जल्पकानमित्रान् शत्रून् सुतुकान् सुतोकान्। तुक् तोकमित्यपत्यनामसु पाठात्। अरंधयत्। वशमानयत्॥

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रंतयश्च ॥ १० ॥
ईयुः । गावः । न । यवसात् । अगोपाः । यथाऽकृतं । अभि । मित्रं । चितासः ।
पृश्निऽगावः । पृश्निऽनिप्रेषितासः । श्रुष्टिं । चक्रुः । निऽयुतः । रंतयः । च ॥ १० ॥

यदेंद्रः सुदासो रक्षणार्थमागच्छति तदा पृश्निनिप्रेषितासः पृश्निनिप्रेषिताः पृश्न्या मात्रा नितरां प्रहितास्चितासः संहता जानंतो वा पृश्निगावः । पृश्निवर्णा गावोऽश्वा येषां ते पृश्निगावो मरुतो यथाकृतमिंद्रस्य साहाय्यं करवामेति यथा पूर्वं समयः कृतस्तं समयमनतिक्रम्य मित्रमिंद्रं यवसात् ॥ निमित्तार्थे पंचमी ॥ यवसं निमित्तीकृत्यागोपा गोपालेनारक्षिता गावो न गाव इवाभीयुः । अभिजग्मुः । रंतयो रममाणा नियुतो मरुतामश्वाश्च श्रुष्टिं शीघ्रप्राप्तिं चक्रुः । तस्मिन्युद्धे मरुत इंद्रं साहाय्यार्थमभ्यगच्छन्नित्यर्थः ॥ ॥ २५ ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिंद्र एषां ॥ ११ ॥
एकं । च । यः । विंशतिं । च । श्रवस्या । वैकर्णयोः । जनान् । राजा । नि । अस्तरित्यस्तः ।
दस्मः । न । सद्मन् । नि । शिशाति । बर्हिः । शूरः । सर्गं । अकृणोत् । इंद्रः । एषां ॥ ११ ॥

यो सुदासो राजा श्रवस्या यशस इच्छयान्नेच्छया वा परुष्ण्याः पार्श्वस्थयोर्वैकर्णयोर्जनपदयोर्विद्यमानानेकं च विंशतिं च जनान् न्यस्तः आत्मनाहन् स राजा दस्मो न दर्शनीयो युवाध्वर्युरिव सद्मन्यज्ञगृहे बर्हिर्यस्मिन्युद्धे सपत्नान्नि शिशाति नितरां लुनाति तस्मिन्युद्धे शूर इंद्र एषां मरुतां सर्गं प्रसवमकृणोत् सुदासः साहाय्यार्थमकरोत् ॥

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायंतो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥
अध । श्रुतं । कवषं । वृद्धं । अप्ऽसु । अनु । द्रुह्युं । नि । वृणक् । वज्रऽबाहुः ।
वृणानाः । अत्र । सख्याय । सख्यं । त्वाऽयंतः । ये । अमदन् । अनु । त्वा ॥ १२ ॥

अथापि च वज्रबाहुरिंद्रः श्रुतं कवषं च वृद्धं च त्रीन् तथा द्रुह्युमनु आनुपूर्व्येणाप्सूदकेषु नि वृणक् । न्यमज्जयदित्यर्थः । अत्रास्मिन्नवसरे ये त्वायंतस्त्वत्कामास्त्वा त्वामन्वमदन् अस्तुवन् ते सखायः सख्याय सख्यार्थं त्वां वृणानाः सख्यं लेभिर इति शेषः ॥

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिंद्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचं ॥ १३ ॥
वि । सद्यः । विश्वा । दृंहितानि । एषां । इंद्रः । पुरः । सहसा । सप्त । दर्दरिति दर्दः ।
वि । आनवस्य । तृत्सवे । गयं । भाक् । जेष्म । पूरुं । विदथे । मृध्रऽवाचं ॥ १३ ॥

एषां कवषादीनां विश्वा विश्वानि दृंहितानि दृढानि दुर्गाणि पुरो नगरीश्च तद्रक्षासाधनभूतान् सप्त प्राकारांश्चेंद्रः सहसा बलेन सद्य एव वि दर्दः । विदारयामास । अपि चानवस्यानोः संबंधिनो बलस्यानोः

पुत्रस्य वा गयं गृहं धनं वा तृत्सवे तृत्सुनामकाय राज्ञे तृत्सूनां गणाय वा वि भाक्। व्यभजत्। अदादित्यर्थः। इत्यमिंद्रं स्तुवंतो वयं विदथे युद्धे मृध्रवाचं बाधवाचं पूरुं मनुष्यं जेष्म। जयेम॥

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षड्डुवोयु विश्वेदिंद्रस्य वीर्या कृतानि॥१४॥
नि। गव्यवः। अनवः। द्रुह्यवः। च। षष्टिः। शता। सुसुपुः। षट्। सहस्रा।
षष्टिः। वीरासः। अधि। षट्। दुवःऽयु। विश्वा। इत्। इंद्रस्य। वीर्या। कृतानि॥१४॥

गव्यवो गोकामा अनवोऽनोः संबंधिनो द्रुह्यवो द्रुह्योः संबंधिनश्च वीरासो वीराः षष्टिः शता शतानि। सहस्राणीत्यर्थः। षट् सहस्रा सहस्राणि च षष्टिश्चाधि षडधिकाः षड्ड दुवोयु दुवोयुवे॥ चतुर्थ्या लुक्॥ परिचरणकामाय सुदासे। नमस्यति दुवस्यतीति परिचरणकर्मसु पाठात्। नि सुसुपुः। नितरां शेरते। निहता इत्यर्थः। तान्येतानि विश्वा विश्वानि कृतानि कार्याणींद्रस्येत् इंद्रस्यैव वीर्या वीर्याणीति॥

इंद्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवंत नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे॥१५॥
इंद्रेण। एते। तृत्सवः। वेविषाणाः। आपः। न। सृष्टाः। अधवंत। नीचीः।
दुःऽमित्रासः। प्रकलऽवित्। मिमानाः। जहुः। विश्वानि। भोजना। सुऽदासे॥१५॥

कदाचिदिंद्रेण रक्षिता अप्यन्यदा तेनैव बाध्यंते। एते तृत्सवो दुर्मित्रासो दुष्टमित्राः प्रकलविदजानंत इंद्रेण वेविषाणा युद्धार्थं संगताः सृष्टाः पलायनार्थमुद्युक्ता नीचीः नीचीना आपो न आप इवाधवंत। अधावंत। ततो मिमानाः सुदासा बाध्यमाना विश्वानि भोजना भोग्यानि धनानि सुदासे राज्ञे जहुः॥ ॥२६॥

अर्धं वीरस्य शृतपामनिंद्रं परा शर्धंतं नुनुदे अभि क्षां।
इंद्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः॥१६॥
अर्धं। वीरस्य। शृतऽपां। अनिंद्रं। परा। शर्धंतं। नुनुदे। अभि। क्षां।
इंद्रः। मन्युं। मन्युऽम्यः। मिमाय। भेजे। पथः। वर्तनिं। पत्यमानः॥१६॥

इंद्रोऽभि क्षां भूमिमभि। भूम्यामित्यर्थः। वीरस्य वीर्ययुक्तस्य सुदासोऽर्धं हिंसकं॥ अर्धेर्हिंसाकर्मणोऽर्धशब्दस्य निष्पत्तिः॥ अनिंद्रं। यस्य बुद्धाविंद्रो नास्त्यसावनिंद्रः। तं। इंद्रमगणयंतमित्यर्थः। शृतपां शृतस्य क्षीरादेर्हविषः पातारं शर्धंतमुत्सहमानं परा नुनुदे। किंच मन्युम्यो मन्युकर्तुर्मन्युना मिनतो हिंसतो वा शत्रोर्मन्युं क्रोधं मिमाय। बबाधे। अथ सुदासः शत्रुः पथो मार्गान् पत्यमानो गच्छन् वर्तनिं पलायनमार्गं भेजे। प्राप॥

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिंद्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे॥१७॥
आध्रेण। चित्। तत्। ऊं इति। एकं। चकार। सिंह्यं। चित्। पेत्वेन। जघान।
अव। स्रक्तीः। वेश्या। अवृश्चत्। इंद्रः। प्र। अयच्छत्। विश्वा। भोजना। सुऽदासे॥१७॥

इंद्रस्तत्तदाध्रेण चित् दरिद्रेणापि सुदासैकं मुख्यं दानकर्म चकार। कारयामास। सिंह्यं चित्। प्रवयाः

सिंहः सिंह्यः। तमपि पेत्वेन च्छागेन जघान। घातयामास। वेश्या। वेशी सूची। तया स्रक्तीर्यूपादेरश्रीनवावृश्चत्। अववृक्णवान्। वेश्यादेः क्षत्यं सूच्यैवाकरोदित्यर्थः। तान्येतानि चीणि कर्माण्यसंभावितानीति नाशंकनीयानींद्रस्य महिम्नोऽधिकत्वात्। विश्वा विश्वानि भोजना भोजनानि भोग्यानि धनानि सुदासे राज्ञे प्रायच्छत्। अदाश्च॥

शश्वंतो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विंद रंधिं।
मर्तां एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिंद्र॥१८॥
शश्वंतः। हि। शत्रवः। ररधुः। ते। भेदस्य। चित्। शर्धतः। विंद। रंधिं।
मर्तान्। एनः। स्तुवतः। यः। कृणोति। तिग्मं। तस्मिन्। नि। जहि। वज्रं। इंद्र॥१८॥

हे इंद्र ते तव शत्रवोऽरयः शश्वंतो बहवो ररधुः। वशमीयुः। चिदपि च शर्धत उत्सहमानस्य भेदस्य। भिनत्ति मर्यादा इति भेदो नास्तिकः। तस्य। यद्वा। भेदो नाम सुदासः शत्रुः कश्चित्। तस्येत्यर्थः। रंधिं वशीकरं विंद। लभस्व। यो भेदः स्तुवतस्त्वां स्तुवतो मर्तान्मर्त्यान् प्रत्येनः पापं कृणोति करोति तस्मिन् भेदे तिग्मं निशितं योद्धारमुत्साहयंतं। तथा च यास्कः। तिग्मं तेजतेरुत्साहकर्मणः। नि॰ १०. ६.। इति। वज्रं। वजति गच्छत्येव शत्रुं न प्रतिहन्यत इति वज्रः। तं॥ वज्रशब्दो वजेर्ऋज्रेंद्राग्रवज्रविप्रेत्यादिना रन्प्रत्ययांतो निपातितः॥ तं जहि। वज्रेण भेदं प्रहरेत्यर्थः॥

आवदिंद्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि॥१९॥
आवत्। इंद्रं। यमुना। तृत्सवः। च। प्र। अत्र। भेदं। सर्वऽताता। मुषायत्।
अजासः। च। शिग्रवः। यक्षवः। च। बलिं। शीर्षाणि। जभ्रुः। अश्व्यानि॥१९॥

अत्रास्मिन् सर्वताता सर्वतातौ युद्धे य इंद्रो भेदं नास्तिकं भेदनामकं वा सुदासः शत्रुं प्र मुषायत् प्रामुष्णात्। अवधीदित्यर्थः। तमिंद्रं यमुनावत्। अतोषयत्। तत्तीरवासी जनः सर्वोऽप्यतोषयदित्यर्थः। तृत्सवस्तृत्सोः पुरुषाश्चावन्। आवदित्येकवचनं बहुवचनांततया विपरिणतं सदत्र संबध्यते। किंचाजासोऽजा जनपदाः शिग्रवो जनपदा यक्षवश्च जनपदा अश्व्यान्यश्वसंबंधीनि शीर्षाणि शिरांसि। युद्धे हतानामश्वानां शिरांसीत्यर्थः। बलिमुपहारं तस्मा इंद्रायोप जभ्रुः। उपजह्रुः। यद्वा। अश्व्यानि शीर्षाणि युद्धे गृहीतान्मुख्यानश्वानिंद्रायोपहारं जह्रुरित्यर्थः॥

न तं इंद्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।
देवकं चिन्मान्यमानं जघंथाव त्मना बृहतः शंबरं भेत्॥२०॥
न। ते। इंद्र। सुऽमतयः। न। रायः। संऽचक्षे। पूर्वाः। उषसः। न। नूत्नाः।
देवकं। चित्। मान्यमानं। जघंथ। अव। त्मना। बृहतः। शंबरं। भेत्॥२०॥

हे इंद्र ते तव पूर्वाः पुरातनाः सुमतयः शोभनमतयो रायो धनानि चोषसो न उषस इव न संचक्षे संख्यातुं न शक्याः। न नूत्ना नूतनाश्च सुमतयो रायश्च न संचक्षे। किंच त्वं मान्यमानं मन्यमानस्य पुत्रं देवकं देवकनामानं शत्रुं जघंथ। अवधीः। त्मना स्वयमेव बृहतो महतः शैलात् शंबरं चाव भेत्। अवाभैत्सीरिति॥ ॥२७॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषंताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥
प्र । ये । गृहात् । अममदुः । त्वाऽया । पराऽशरः । शतऽयातुः । वसिष्ठः ।
न । ते । भोजस्य । सख्यं । मृषंत । अध । सूरिऽभ्यः । सुऽदिना । वि । उच्छान् ॥२१॥

हे इंद्र पराशरः शतयातुर्बहुरक्षाः । बहूनि रक्षांसि बाधितुं यं कामयंते स शतयातुर्बहूनां रक्षसां शातयिता वा । शक्तिर्वसिष्ठश्चैवमादयो ये ऋषयस्त्वाया त्वदिच्छया गृहाद्गृहं प्राप्य ॥ ल्यब्लोपे द्वितीयार्थे पंचमी । पा० २. ३. २८. १. ॥ यद्वा । गृहात् गृहे ॥ सप्तम्यर्थे पंचमी ॥ प्राममदुः त्वां प्रतुष्टुवुः प्रकर्षेण तर्पितवंतो वा ते पराशरप्रभृतयो भोजस्य भोजकस्य पालस्य ते तव सख्यं सख्युः कर्म स्तोत्रं यजनं वा न मृषंति । न विस्मरंति । मृष मर्षे । मर्षो मर्षणं । तन्न कुर्वंतीत्यर्थः । यतो न विस्मरंत्यधातो हेतोः सूरिभ्यः सूरीणां स्तोतॄणामेषां ॥ अत्र विभक्तिव्यत्ययः ॥ सुदिना सुदिनानि व्युच्छान् । व्युच्छंति । निवसंति । उपगच्छंतीत्यर्थः ॥

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमंता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥
द्वे इति । नप्तुः । देवऽवतः । शते इति । गोः । द्वा । रथा । वधूऽमंता । सुऽदासः ।
अर्हन् । अग्ने । पैजऽवनस्य । दानं । होताऽइव । सद्म । परि । एमि । रेभन् ॥२२॥

देववतो राज्ञो नप्तुः पौत्रस्य पैजवनस्य पिजवनपुत्रस्य सुदासो राज्ञो गोर्गवां द्वे शते वधूमंता वधूसंयुक्तौ द्वा द्वौ रथा रथौ च देयं दानं दानभूतान् रेभन् इंद्रं स्तुवन् अत एवार्हन्योग्योऽहं वसिष्ठो हे अग्ने सद्म यज्ञगृहं होतेव वषट्कर्तेव पर्येमि । अत्राग्नेः संबोधनं सर्वदेवमुख्यत्वप्रतिपादनार्थं न तु देवतात्वज्ञापनार्थमतद्देवताकत्वादस्य सूक्तस्य ॥

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहंति ॥२३॥
चत्वारः । मा । पैजऽवनस्य । दानाः । स्मत्ऽदिष्टयः । कृशनिनः । निःऽरेके ।
ऋज्रासः । मा । पृथिविऽस्थाः । सुऽदासः । तोकं । तोकाय । श्रवसे । वहंति ॥२३॥

पैजवनस्य पिजवनपुत्रस्य सुदासो राज्ञः स्मद्दिष्टयः प्रशस्तातिसर्जनाः श्रद्धादिदानांगयुक्ताः कृशनिनो हिरण्यालंकारवंतो निरेके दुर्गतौ सत्यामृज्रास ऋजुगामिनः पृथिविष्ठाः पृथिव्यां सुप्रतिष्ठिता दाना देयभूताश्चत्वारोऽश्वास्तोकं पुत्रवत्पालनीयं मां वसिष्ठं रथे स्थितं तोकाय तोकस्य पुत्रस्य ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥ श्रवसेऽन्नाय यशसे वा वहंति । पुनर्मेति पूरणः ॥

यस्य श्रवो रोदसी अंतरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिंद्रं न स्रवतो गृणंति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥
यस्य । श्रवः । रोदसी इति । अंतः । उर्वी इति । शीर्ष्णेऽशीर्ष्णे । विऽबभाज । विऽभक्ता ।
सप्त । इत् । इंद्रं । न । स्रवतः । गृणंति । नि । युध्यामधिं । अशिशात् । अभीके ॥२४॥

यस्य सुदासः श्रवो यश उर्वी विस्तीर्णे रोदसी द्यावापृथिव्यावंतः । विस्तीर्णयोर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तत

इत्यर्थः । यश्च सुदा विभक्ता धनस्य प्रदाता शीर्ष्णेशीर्ष्णे श्रेष्ठाय श्रेष्ठाय विबभाज धनं प्रददौ तं सुदासं सप्तेत् सप्तेव लोका इंद्रं न इंद्रमिव गृणंति । स्तुवंति । किंच स्रवतो नव्योऽभीके युद्धे युध्यामधिं युध्यामधिनामकं सपत्नं न्यशिशात् । न्यहन् ॥

इ॒मं नरो॑ मरुतः सश्चता॒नु दिवो॑दासं॒ न पि॒तरं॑ सु॒दासः॑ ।
अ॒वि॒ष्टना॑ पैजवनस्य॒ केतं॑ दूणाशं॑ क्ष॒त्रम॒जरं॑ दुवो॒यु ॥ २५ ॥
इ॒मं । न॒रः॒ । म॒रु॒तः॒ । स॒श्च॒त॒ । अनु॑ । दिवः॑ऽदासं । न । पि॒तरं॑ । सु॒ऽदासः॑ ।
अ॒वि॒ष्टन॑ । पै॒ज॒ऽव॒नस्य॑ । केतं॑ । दुः॒ऽनशं॑ । क्ष॒त्रं । अ॒जरं॑ । दु॒वः॒ऽयु ॥ २५ ॥

हे नरो नेतारो मरुत इमं सुदासं राजानं सुदासो राज्ञः पितरं दिवोदासं न दिवोदासमिव । दिवोदास इति पिजवनस्यैव नामांतरं । अनु सश्चत । अनुसेवध्वं । किंच दुवोयु परिचरणकामस्य ॥ षष्ठ्या लुक् ॥ पैजवनस्य पिजवनपुत्रस्य सुदासः केतं मंत्रं गृहं वाविष्टन । रक्षत । अपि चास्य सुदासः क्षत्रं बलं दूणाशं दुर्नशमविनाश्यजरमशिथिलं चास्तु ॥ ॥ २८ ॥

यस्तिग्मशृंग इत्येकादशर्चं द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । तथा चानुक्रांतं । यस्तिग्मशृंग एकादशेति ॥ आभिप्लविके पंचमेऽहन्येतन्निविद्धानं । सूचितं च । कया शुभा यस्तिग्मशृंग इति मध्यंदिनः । आ० ७. ७. । इति ॥ विषुवति निष्केवल्यशस्त्रेऽप्येतत्सूक्तं । सूचितं च । यस्तिग्मशृंगोऽभि त्यं मेषं । आ० ८. ६. । इति ॥ महाव्रते निष्केवल्येऽप्येतत्सूक्तं । सूचितं च । यस्तिग्मशृंगो वृषभो न भीम उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान् । ऐ० आ० ५. २. २. । इति ॥ आयुष्कामेष्ट्यां मा ते अस्यामितींद्रस्य चातुर्याज्या । सूचितं च । मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टौ पाहि नो अग्ने पायुभिः । आ० २. १०. । इति ॥

यस्ति॒ग्मशृं॑गो वृष॒भो न भी॒म एकः॑ कृ॒ष्टीश्च्या॒वय॑ति॒ प्र विश्वाः॑ ।
यः शश्व॑तो॒ अदा॑शुषो॒ गय॑स्य प्रय॒न्ता॑सि॒ सुष्वि॑तराय॒ वेदः॑ ॥ १ ॥
यः । ति॒ग्मऽशृं॑गः । वृ॒ष॒भः । न । भी॒मः । एकः॑ । कृ॒ष्टीः । च्य॒वय॑ति । प्र । विश्वाः॑ ।
यः । शश्व॑तः । अदा॑शुषः । गय॑स्य । प्र॒ऽय॒न्ता । अ॒सि॒ । सुस्वि॑ऽतराय । वेदः॑ ॥ १ ॥

य इंद्रस्तिग्मशृंगस्तीक्ष्णशृंगो वृषभो न वृषभ इव भीमो भयंकरः सन् एकोऽसहाय एव विश्वाः सर्वान् कृष्टीः शत्रुजनान् स्थानात् प्र च्यावयति । यश्चेंद्रोऽदाशुषोऽयजमानस्य शश्वतो बहोर्गयस्य गृहस्य धनस्य वापहर्ता भवतीति शेषः । हे इंद्र स त्वं सुष्वितरायातिशयेन सोमाभिषवं कुर्वते जनाय वेदो धनं प्रयंता प्रदातासि ॥ तृन्नंतत्वादत्र षष्ठ्या अभावः । असीत्यस्याख्यातस्यानुदात्तत्वाद्यद्वृत्तयोगाच्चानुदात्तत्वासंभवात् यद्वृत्तयुक्तमाख्यातांतरमध्याहृत्य योजना कृता ॥

त्वं ह॒ त्यदिं॑द्र॒ कुत्स॑माव॒ः शुश्रू॑षमाणस्त॒न्वा॑ सम॒र्ये ।
दासं॒ यच्छुष्णं॒ कुय॑वं॒ न्य॑स्मा॒ अर॑न्धय आर्जुनेया॒य शिक्ष॑न् ॥ २ ॥
त्वं । ह॒ । त्यत् । इ॒न्द्र॒ । कुत्सं॑ । आ॒वः॒ । शुश्रू॑षमाणः । त॒न्वा॑ । स॒ऽम॒र्ये ।
दासं॑ । यत् । शुष्णं॑ । कुय॑वं । नि । अ॒स्मै॒ । अर॑न्धयः । आ॒र्जु॒ने॒याय॑ । शिक्ष॑न् ॥ २ ॥

हे इंद्र त्वं ह त्वं खलु त्यत्तदा तन्वा शरीरेण शुश्रूषमाण उपचरन् समर्ये मर्यैर्मर्त्यैर्योद्धृभिः सहिते युद्धे कुत्समावः । अरक्षः । कदेत्यत आह । यद्यदार्जुनेयायार्जुन्याः पुत्रायास्मै कुत्साय शिक्षन् धनं प्रयच्छन् दासं दासनामकमसुरं शुष्णं च कुयवं च न्यरंधयः नितरां वशमानयः ॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासं ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुं ॥३॥
त्वं । धृष्णो इति । धृषता । वीतऽहव्यं । प्र । आवः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । सुऽदासं ।
प्र । पौरुऽकुत्सिं । त्रसदस्युं । आवः । क्षेत्रऽसाता । वृत्रऽहत्येषु । पूरुं ॥३॥

हे धृष्णो शत्रूणां धर्षकेंद्र धृषता धर्षकेण वज्रेण बलेन वा वीतहव्यं दत्तहविष्कं प्रजनितहविष्कं वा सुदासं राजानं विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभी रक्षाभिः प्रावः । प्रकर्षेणारक्षः । किंच वृत्रहत्येषु युद्धेषु क्षेत्रसाता क्षेत्रसातौ क्षेत्रस्य भूमेर्भजने निमित्ते पौरुकुत्सिं पुरुकुत्सस्यापत्यं त्रसदस्युं पूरुं च प्रावः ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहंतु ॥४॥
त्वं । नृऽभिः । नृऽमनः । देवऽवीतौ । भूरीणि । वृत्रा । हरिऽअश्व । हंसि ।
त्वं । नि । दस्युं । चुमुरिं । धुनिं । च । अस्वापयः । दभीतये । सुऽहंतु ॥४॥

हे नृमणो नृभिर्यज्ञानां नेतृभिः स्तोतृभिर्मननीय स्तोतव्येंद्र । नृषु मनो यस्येति बहुव्रीहिर्वा । देववीतौ यज्ञे क्रियमाणे सति संग्रामे वा । देवा विजिगीषवो यस्मिन् वियंति गच्छंतीति संग्रामो देववीतिः । नृभिर्मरुद्भिः सह भूरीणि बहूनि वृत्रा वृत्राणि शत्रून् हंसि । मारितवानसि । किंच हे हर्यश्वेंद्र त्वं दभीतये दभीतिनामकाय राजर्षये । तदर्थमित्यर्थः । दस्युं चुमुरिं च धुनिं च सुहंतु सुहंतुना वज्रेण नि नितरामस्वापयः । मारितवानसीत्यर्थः ॥

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहंञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५॥
तव । च्यौत्नानि । वज्रऽहस्त । तानि । नव । यत् । पुरः । नवतिं । च । सद्यः ।
निऽवेशने । शतऽतमा । अविवेषीः । अहन् । च । वृत्रं । नमुचिं । उत । अहन् ॥५॥

हे वज्रहस्त तव च्यौत्नानि बलानि तानि तादृशानि । यद्यदा त्वं शंबरस्य नव नवतिं च पुरः सद्यो युगपदेव विदारितवानसीति शेषः । तदा निवेशने निवेशनार्थं शततमा शततमीं पुरमविवेषीः । व्याप्नोः । वृत्रं चाहन् । उतापि च नमुचिमहन् ॥ ॥२९॥

सना ता त इंद्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यंतु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजं ॥६॥
सना । ता । ते । इंद्र । भोजनानि । रातऽहव्याय । दाशुषे । सुऽदासे ।
वृष्णे । ते । हरी इति । वृषणा । युनज्मि । व्यंतु । ब्रह्माणि । पुरुऽशाक । वाजं ॥६॥

हे इंद्र ते तव रातहव्याय दत्तहव्याय दाशुषे यजमानाय सुदासे ता तानि त्वया दत्तानि भोजनानि भोग्यानि धनानि सना सनानि सनातनानि बभूवुरिति शेषः । हे पुरुशाक बहुकर्मन्निंद्र वृष्णे कामानां वर्षित्रे ते तुभ्यं । त्वामानेतुमित्यर्थः । वृषणा वृषणौ हरी अश्वौ युनज्मि । रथे योजयामि । ब्रह्माण्यस्मदीयानि स्तोत्राणि वाजं बलिनं त्वां व्यंतु । गच्छंतु ॥

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७॥
मा। ते। अस्यां। सहसाऽवन्। परिष्टौ। अघाय। भूम। हरिऽवः। पराऽदै।
त्रायस्व। नः। अवृकेभिः। वरूथैः। तव। प्रियासः। सूरिषु। स्याम ॥७॥

हे सहसावन् बलवन् हरिवो हरिवन्निंद्र ते तवास्यां स्तोतृणामस्माभिः क्रियमाणायां परिष्टावन्वेषणायां परादै परादानायाघायाहंत्रे वयं मा भूम। किंच नोऽस्मानवृकेभिरबाधिर्वरूथैः। वारयंत्युपद्रवेभ्य इति वरूथानि रक्षणानि। तैस्त्रायस्व। पाहि। तव सूरिषु स्तोतृषु मध्ये वयं प्रियासः प्रियाः स्याम। भूयास्म ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८॥
प्रियासः। इत्। ते। मघऽवन्। अभिष्टौ। नरः। मदेम। शरणे। सखायः।
नि। तुर्वशं। नि। याद्वं। शिशीहि। अतिथिऽग्वाय। शंस्यं। करिष्यन् ॥८॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र ते तवाभिष्टावभ्येषणे नरः स्तोत्राणां नेतारो वयं सखायः समानख्यातयः प्रियासः प्रियाश्च संतः शरण इत् गृह एव मदेम। मोदेम। किंचातिथिग्वाय। पूजयातिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः। तस्मै सुदासे दिवोदासाय वाध्र्यश्वाय राज्ञे शंस्यं शंसनीयं सुखं करिष्यन् कुर्वन् तुर्वशं राजानं नि शिशीहि। वशं कुरु। याद्वं च राजानं नि शिशीहीत्यर्थः ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसंत्युक्थशास उक्था।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९॥
सद्यः। चित्। नु। ते। मघऽवन्। अभिष्टौ। नरः। शंसंति। उक्थऽशासः। उक्था।
ये। ते। हवेभिः। वि। पणीन्। अदाशन्। अस्मान्। वृणीष्व। युज्याय। तस्मै ॥९॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र ते तव नु अद्याभिष्टावभ्येषणे ये नर उक्थशास उक्थानां शंसितार उक्थोक्थानि शस्त्राणि सद्यश्चित् सद्य एव शंसंति। किंच ते तव हवेभिः स्तोत्रैः पणीनप्रदानशीलान् वणिजोऽपि व्यदाशन्। धनानि विशेषेणादापयन्नित्यर्थः। तानस्मान् तस्मै युज्याय सख्याय तत्सख्यमनुवर्तयितुं वृणीष्व। परिगृहाण ॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यंचो ददतो मघानि।
तेषामिंद्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणां ॥१०॥
एते। स्तोमाः। नरां। नृऽतम। तुभ्यं। अस्मद्र्यंचः। ददतः। मघानि।
तेषां। इंद्र। वृत्रऽहत्ये। शिवः। भूः। सखा। च। शूरः। अविता। च। नृणां ॥१०॥

हे नृतम नेतृतमेंद्र तुभ्यं नरां नेतृणां य एते स्तोमाः संघा मघानि मंहनीयानि हवींषि ददतो ददंतोऽस्मद्र्यंचोऽस्मदभिमुखा अभूवन्निति शेषः। तेषां नृणां वृत्रहत्ये संग्रामे शिवः कल्याणकृत् भूः। भव। सखा च भूः। अविता रक्षिता च भूः ॥

नू इंद्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११॥
नु । इंद्र । शूर । स्तवमानः । ऊती । ब्रह्मऽजूतः । तन्वा । ववृधस्व ।
उप । नः । वाजान् । मिमीहि । उप । स्तीन् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥११॥

हे शूरेंद्र नु अद्य स्तवमानोऽस्माभिः स्तूयमानो ब्रह्मजूतो ब्रह्मणा स्तोत्रेण प्रेरितस्तन्वा शरीरेण ऊत्या रक्षणेन ववृधस्व । अपि च नोऽस्मभ्यं वाजानन्नान्युप मिमीहि । प्रयच्छेत्यर्थः । स्तीन् गृहांश्चोप मिमीहि । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥३०॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननं ॥
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ तृतीयोऽध्याय आरभ्यते ॥ उग्रो जज्ञ इति दशर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । तथा चानुक्रम्यते । उग्रो दशेति ॥ आभिप्लविके चतुर्थेऽहनि निष्केवल्य एतत्सूक्तं निविद्धानं । सूत्रितं च । चतुर्थस्योग्रो जज्ञ इति निष्केवल्यं । आ० ७.७. । इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवल्य एतत्सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं । उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावानुदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या । ऐ० आ० ५. २. २. । इति ॥ सौमिकचातुर्मास्येषु वैश्वदेवस्य स्थाने प्रथमं पृष्ठ्यमहः । तत्रापि निष्केवल्य एतत्सूक्तं निविद्धानं । सूत्रितं च । जनिष्ठा उग्र उग्रो जज्ञ इति मध्यंदिनः । आ० ९. २. । इति ॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इंद्र एनसो महश्चित् ॥१॥
उग्रः । जज्ञे । वीर्याय । स्वधाऽवान् । चक्रिः । अपः । नर्यः । यत् । करिष्यन् ।
जग्मिः । युवा । नृऽसदनं । अवःऽभिः । त्राता । नः । इंद्रः । एनसः । महः । चित् ॥१॥

स्वधावान् बलवानुग्र ओजस्व्युद्गूर्णो वेंद्रो वीर्याय वीर्यं कर्तुं जज्ञे । बभूव । नर्यो नरहितः सन् यत्कर्म करिष्यन् भवति तदपः कर्म चक्रिः कर्तैव ॥ चक्रिरिति किन्प्रत्ययस्य लिड्वद्भावान्न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनामिति षष्ठीप्रतिषेधः ॥ अपि च नृषदनं यज्ञगृहं युवा नित्यतरुणः सन् अवोभी रक्षणैः सार्धं जग्मिर्गंता महश्चिन्महतोऽप्येनसः पापान्नोऽस्माकं त्राता रक्षिता च भवेति ॥

हंता वृत्रमिंद्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥

हंता। वृत्रं। इंद्रः। शूशुवानः। प्र। आवीत्। नु। वीरः। जरितारं। ऊती।
कर्ता। सुऽदासे। अह। वै। ऊं इति। लोकं। दाता। वसु। मुहुः। आ। दाशुषे। भूत् ॥२॥

इंद्रः शूशुवानो वर्धमानः सन् वृत्रमसुरं हंता भवति ॥ तृनंतत्वादत्र षष्ठ्यभावः ॥ वीरो वीरः सन् जरितारं स्तोतारं नु क्षिप्रमूती ऊत्या रक्षया प्रावीत्। प्ररक्षत्। सुदासे राज्ञे लोकं जनपदं कर्ता च। यद्वा। सुदासे कल्याणदानाय यजमानाय लोकं कर्ता च भवति ॥ इहाप्युत्तरत्रापि तृनंतत्वात्षष्ठ्यभावः। अह वा उ इति त्रयः पूरणाः ॥ दाशुषे यजमानाय वसु धनं मुहुर्भूयो भूयो दाता च भूत्। अभूत्। आ इति चार्थे ॥

युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड्जनुषेमषाळ्हः।
व्यास इंद्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयंतं जघान ॥३॥

युध्मः। अनर्वा। खजऽकृत्। समत्ऽवा। शूरः। सत्राषाट्। जनुषा। ईं। अषाळ्हः।
वि। आसे। इंद्रः। पृतनाः। सुऽओजाः। अध। विश्वं। शत्रुऽयंतं। जघान ॥३॥

युध्मो योद्धानर्वाभिगंतृरहितो युद्धेष्वपराङ्मुखो वा खजकृद्युद्धकृत्। खले खज इति युद्धनामसु पाठात्। समद्वा। समत् कलहः। तद्वान् शूरः शौर्योपेतो जनुषा जन्मना स्वभावत एव सत्राषाट् बहूनामभिभविताषाळ्हः स्वयं च केनाप्यनभिभूतः स्वोजाः सुबल ईमयमिंद्रः पृतनाः शत्रूणां सेना व्यासे। विक्षिपति। अधापि च शत्रूयंतं शात्रवमाचरंतं विश्वं सर्वं जघान। हंति ॥

उभे चिदिंद्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः।
नि वज्रमिंद्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समंधसा मदेषु वा उवोच ॥४॥

उभे इति। चित्। इंद्र। रोदसी इति। महिऽत्वा। आ। पप्राथ। तविषीभिः। तुविष्मः।
नि। वज्रं। इंद्रः। हरिऽवान्। मिमिक्षन्। सं। अंधसा। मदेषु। वै। उवोच ॥४॥

हे तुविष्मो बहुधनेंद्र महित्वा महत्त्वेन तविषीभिर्बलैश्चोभे चिदुभे अपि रोदसी द्यावापृथिव्यावा पप्राथ। आपूरितवानसि। अथ परोक्षस्तुतिः। हरिवानश्ववानिंद्रो वज्रं नि मिमिक्षन् शत्रुषु प्रापयन् मदेषु यज्ञेषु निवित्सु वांधसा सोमेन समुवोच। संसेव्यते संगच्छते वा ॥ उच समवाये इति धातुः। वा इति पूरणः ॥

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५॥

वृषा। जजान। वृषणं। रणाय। तं। ऊं इति। चित्। नारी। नर्यं। ससूव।
प्र। यः। सेनाऽनीः। अध। नृऽभ्यः। अस्ति। इनः। सत्वा। गोऽएषणः। सः। धृष्णुः ॥५॥

वृषा सेक्ता पिता कश्यपो वृषणं कामानां वर्षितारमिंद्रं रणाय युद्धार्थं जजान ॥ जन जनन इति धातुः ॥ नर्यं नरहितं तमु तमेवेंद्रं नारी चिददितिरपि ससूव। सुषुवे। अधापि च य इंद्रो नृभ्यो नृणां सेनानीः सेनानां नेता सन् प्रास्ति प्रभवति स इंद्र इनः सर्वस्य जगत ईश्वरो भवति। नियुत्वानिन इतीश्वरनामसु पाठात्। सत्वा शत्रूणां सादकश्च गवेषणो गवामन्वेष्टा च धृष्णुः शत्रूणां धर्षकश्च भवतीति शेषः ॥ ॥१॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इंद्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥६॥

नु। चित्। सः। भ्रेषते। जनः। न। रेषत्। मनः। यः। अस्य। घोरं। आऽविवासात्।
यज्ञैः। यः। इंद्रे। दधते। दुवांसि। क्षयत्। सः। राये। ऋतऽपाः। ऋतेऽजाः ॥६॥

यो जनोऽस्येंद्रस्य घोरं शत्रूणां बाधकं मनो यज्ञैराविवासात् परिचरति स जनः। नु इति प्रतिषेधे वर्तते। चिदित्येवकारार्थे। नू चित् नैव भ्रेषते। स्थानात् न भ्रश्यति। न रेषत्। नैव क्षीयेत। अपि च यो जनो दुवांसि परिचरणसाधनानि स्तोत्रशस्त्राणींद्रे दधते निधत्ते तस्मै जनाय ऋतपा यज्ञपाता ऋतेजा यज्ञे जातश्च स इंद्रो राये धनाय क्षयत्। निवसति। भवेदित्यर्थः ॥

यदिंद्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णं।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥७॥
यत्। इंद्र। पूर्वः। अपराय। शिक्षन्। अयत्। ज्यायान्। कनीयसः। देष्णं।
अमृतः। इत्। परि। आसीत। दूरं। आ। चित्र। चित्र्यं। भर। रयिं। नः ॥७॥

हे चित्र चायनीयेंद्र यद्धनं पूर्वः पिता ज्येष्ठो भ्राता वापराय पुत्राय कनीयसे वा शिक्षन् प्रयच्छन्। शिक्षतिर्दानकर्मा प्रीणाति शिक्षतीति दानकर्मसु पाठात्। भवतीति शेषः। यच्च देष्णं देयं धनं ज्यायान् ज्येष्ठः कनीयसोऽयत् प्राप्नुयात्। यच्चापि धनं पितृतो लब्ध्वा पुत्रोऽमृत इत् अमृत एव सन् पितृगृहं विहाय दूरं पर्यासीत आस्ते तत् विविधं चित्र्यं चायनीयं रयिं धनं नोऽस्मभ्यमा भर। आहर ॥

यस्त इंद्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥८॥
यः। ते। इंद्र। प्रियः। जनः। ददाशत्। असत्। निरेके। अद्रिऽवः। सखा। ते।
वयं। ते। अस्यां। सुऽमतौ। चनिष्ठाः। स्याम। वरूथे। अघ्नतः। नृऽपीतौ ॥८॥

हे इंद्र यस्ते तुभ्यं प्रियः सखा जनो ददाशत् हवींषि दद्यात् हे अद्रिवः स सखा ते तव निरेके दाने ऽसत्। स्यात्। वयं च वसिष्ठा अघ्नतोऽहिंसतस्ते तवास्यां सुमतावनुग्रहबुद्धौ वर्तमानाश्चनिष्ठाः स्तुतिमत्तरा अतिशयेनान्नवंतो वा। चनोऽन्नं। नृपीतौ नृणां रक्षके वरूथे गृहे परणीये वा धने स्याम। वसेम भवेम वा ॥

एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमंग शक्र वस्व आ शको नः ॥९॥
एषः। स्तोमः। अचिक्रदत्। वृषा। ते। उत। स्तामुः। मघऽवन्। अक्रपिष्ट।
रायः। कामः। जरितारं। ते। आ। अगन्। त्वं। अंग। शक्र। वस्वः। आ। शकः। नः ॥९॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र ते त्वदर्थं वृषा सेक्तैष स्तोमः सोमः सूयमानोऽचिक्रदत्। क्रंदति। उतापि च स्तामुः स्तोताक्रपिष्ट। अस्तौत्। अपि च हे शक्र ते तव जरितारं स्तोतारं मां रायो धनस्य कामोऽभिलाष आगन्। आगतः। अतस्त्वं वस्वो धनं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ नोऽस्मभ्यमंग क्षिप्रमा शकः। धेहि ॥

स न इंद्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनंति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

सः । नः । इंद्र । त्वऽयंताये । इषे । धाः । त्मनां । च । ये । मघऽवानः । जुनंति ।
वस्वीं । सु । ते । जरित्रे । अस्तु । शक्तिः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ १० ॥

हे इंद्र स त्वं त्वयताया इषे त्वया दत्तमन्नं भोक्तुं नोऽस्मान् धाः । धारय । ये च मघवानो हविष्मंतस्त्मना स्वयमेव जुनंति हवींषि त्वां प्रति प्रेरयंति तानपि त्वयताया इषे धाः । अपि च वस्वीष्वत्यंतं प्रशस्तासु स्तुतिषु ते तव जरित्रे स्तोत्रे मह्यं शक्तिः सामर्थ्यमस्तु । यद्वा । जरित्रे मह्यं ते तव वस्वी सु प्रशस्ता शक्तिर्दानमस्तु । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥ २ ॥

असावि देवमिति दशर्चं चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । तथा चानुक्रांतं । असावीति ॥ माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणस्योन्नीयमानमिदं सूक्तं । असावि देवमिहोप यातेत्यनुसवनं । आ० ५. ५. । इति ॥ इंद्रस्य वृत्रघ्नः पशावभि क्रत्वेति वपाया अनुवाक्या । सूत्रितं च । अभि क्रत्वेंद्र भूरध ज्मन् त्वं महाँ इंद्र तुभ्यं ह क्षाः । आ० ३. ८. । इति ॥

असावि देवं गोऋजीकमंधो न्यस्मिन्निंद्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममंधसो मदेषु ॥ १ ॥
असावि । देवं । गोऽऋजीकं । अंधः । नि । अस्मिन् । इंद्रः । जनुषा । ईं । उवोच ।
बोधामसि । त्वा । हरिऽअश्व । यज्ञैः । बोध । नः । स्तोमं । अंधसः । मदेषु ॥ १ ॥

देवं दीप्तं गोऋजीकं गोभिः संस्कृतं । गव्येन मिश्रितमित्यर्थः । अंधः सोमरूपमन्नमसावि । अभिषुतं । ईमयमिंद्रोऽस्मिन्नभिषुते सोमरूपेऽधसि जनुषा स्वभावत एव न्युवोच । नितरां संगतो भवति । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे हर्यश्व त्वा त्वां यज्ञैः स्तोत्रैर्हविर्भिर्वा बोधामसि । बोधयामः । अंधसः सोमस्य मदेषु नोऽस्माकं स्तोमं स्तोत्रं बोध । बुध्यस्व च ॥

प्र यंति यज्ञं विपयंति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियंते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥ २ ॥
प्र । यंति । यज्ञं । विपयंति । बर्हिः । सोमऽमादः । विदथे । दुध्रऽवाचः ।
नि । ऊं इति । भ्रियंते । यशसः । गृभात् । आ । दूरेऽउपब्दः । वृषणः । नृऽसाचः ॥ २ ॥

यज्ञं प्र यंति यष्टारो बर्हिश्च विपयंति । स्तृणंति । विपिः स्तरणकर्मा । विदथे यज्ञे सोममादो ग्रावाणश्च दुध्रवाचो दुर्धरवाचो भवंति । अपि च यशसो यशस्विनो दूरउपब्दः । दूर उपब्दिः शब्दो येषां ते दूरउपब्दः । नृषाचः । नृन्नितृनृत्विजः सचंत इति नृषाचः । वृषणो ग्रावाणो गृभाद्गृहात् । गृहमध्यमग्रावा । तस्मात् । आ इति चार्थे । नि भ्रियंते । अभिषववेलायां निगृह्यंते । उ इति पूरणः ॥

त्वमिंद्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजंते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ ३ ॥
त्वं । इंद्र । स्रवितवै । अपः । करिति कः । परिऽस्थिताः । अहिना । शूर । पूर्वीः ।
त्वत् । वावक्रे । रथ्यः । न । धेनाः । रेजंते । विश्वा । कृत्रिमाणि । भीषा ॥ ३ ॥

हे शूरेंद्र त्वमहिना वृत्रेण परिष्ठिता आक्रांताः पूर्वीर्बह्वीरप उदकानि स्रवितवै स्रवितुं कः । अकार्षीः ।

धेना नद्यश्च त्वत्त्वत्तो हेतो रथ्यो न रथिन इव वावक्रे। निर्गच्छंति ॥ वकि कौटिल्य इति धातुः ॥ विश्वा विश्वानि क्षत्रिमाणि भुवनानि च भीषा त्वत्तो भीत्या रेजंते। कंपंते ॥

भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्।
इंद्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥४॥
भीमः। विवेष। आयुधेभिः। एषां। अपांसि। विश्वा। नर्याणि। विद्वान्।
इंद्रः। पुरः। जर्हृषाणः। वि। दूधोत्। वि। वज्रऽहस्तः। महिना। जघान ॥४॥

इंद्रो नर्याणि नरहितानि विश्वा विश्वान्यपांसि कर्माणि विद्वाञ्जानन् आयुधेभिरायुधैर्भीमो भयंकरः सन् एषां ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ एतानसुरान् विवेष। व्याप्तवान्। पुरश्च तेषां वि दूधोत्। अकंपयत्। अपि च जर्हृषाणो हृष्यन् महिना महिम्ना युक्तो वज्रहस्तः सन् तान्वि जघान ॥

न यातव इंद्र जूजुवुर्नो न वंदना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जंतोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥
न। यातवः। इंद्र। जूजुवुः। नः। न। वंदना। शविष्ठ। वेद्याभिः।
सः। शर्धत्। अर्यः। विषुणस्य। जंतोः। मा। शिश्नऽदेवाः। अपि। गुः। ऋतं। नः ॥५॥

हे इंद्र यातवो राक्षसा नोऽस्मान्न जूजुवुः। न हिंस्युः। जूजुवुरिति हिंसाक्रियः पृथक्करणक्रियो वा। अपि च हे शविष्ठ बलवत्तमेंद्र वंदना वंदनानि रक्षांसि वेद्याभिर्वेद्याभ्यः प्रजाभ्यो नोऽस्मान्न जूजुवुः। न पृथक्कुर्वंतु। किंचार्यः स्वामी स इंद्रो विषुणस्य विषमस्य जंतोः प्राणिनः शासने शर्धत्। उत्सहेत। अथ च शिश्नदेवाः। शिश्नेन दीव्यंति क्रीडंत इति शिश्नदेवाः। अब्रह्मचर्या इत्यर्थः। नोऽस्माकमृतं यज्ञं सत्यं वा मापि गुः। मापिगमन्। तथा च यास्कः। स उत्सहतां यो विषुणस्य जंतोर्विषमस्य मा शिश्नदेवा अब्रह्मचर्याः। शिश्नं श्नथतेः। अपि गुर्ऋतं नः सत्यं वा यज्ञं वा। नि॰ ४. १९.। इति ॥ ॥३॥

अभि क्रत्वेंद्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघंथ न शत्रुरंतं विविदद्युधा ते ॥६॥
अभि। क्रत्वा। इंद्र। भूः। अध। ज्मन्। न। ते। विव्यक्। महिमानं। रजांसि।
स्वेन। हि। वृत्रं। शवसा। जघंथ। न। शत्रुः। अंतं। विविदत्। युधा। ते ॥६॥

हे इंद्र त्वं क्रत्वा कर्मणा ज्मन् पृथिव्यां वर्तमानान् जंतून्वाभि भूः। अभ्यभूः। अधापि च ते तव महिमानं रजांसि सर्वे लोका न विव्यक्। व्यचिर्व्याप्तिकर्मा। न व्याप्नुवन्नित्यर्थः। स्वेन ह्यात्मीयेन च शवसा बलेन वृत्रं जघंथ। त्वमवधीः। शत्रुश्च युधा युद्धेन ते तवांतं हिंसां न विविदत्। न लब्धवान् ॥

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि।
इंद्रो मघानि दयते विषह्येंद्रं वाजस्य जोहुवंत सातौ ॥७॥
देवाः। चित्। ते। असुर्याय। पूर्वे। अनु। क्षत्राय। ममिरे। सहांसि।
इंद्रः। मघानि। दयते। विऽसह्य। इंद्रं। वाजस्य। जोहुवंत। सातौ ॥७॥

पूर्वे देवाश्चिदसुरा अप्यसुर्याय बलाय क्षत्राय। क्षदिर्हिंसाकर्मा। बलं हिंसां चोभे कर्तुमित्यर्थः। हे इंद्र

ते तव सहांसि बलान्यनु ममिरे ॥ हीने । पा॰ १. ४. ८६. । इत्यनुः कर्मप्रवचनीयः ॥ तव बलेभ्यो हीना ममिर इत्यर्थः । तथा च निगमांतरं । अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं ममे । ऋ॰ १. ५७. ५. । इति । अथ परोक्षस्तुतिः । इंद्रः शत्रून्विषह्य मघानि मंहनीयानि धनानि दयते । भक्तेभ्यः प्रयच्छति । अपि चेंद्रं वाजस्यान्नस्य सातौ लाभार्थं जोहुवंत । स्तुवंति स्तोतार आह्वयंति वा ॥

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिंद्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥८॥
कीरिः । चित् । हि । त्वां । अवसे । जुहाव । ईशानं । इंद्र । सौभगस्य । भूरेः ।
अवः । बभूथ । शतंऽऊते । अस्मे इति । अभिऽक्षत्तुः । त्वाऽवतः । वरूता ॥८॥

हे इंद्र ईशानं त्वां कीरिः स्तोता । कारुः कीरिरिति स्तोतृनामसु पाठात् । वसिष्ठोऽवसे रक्षणाय जुहाव हि । स्तौति हि ह्वयति वा । चिदिति पूरणः । अपि च हे शतमूते बहुरक्षेंद्र अस्मे अस्माकं भूरेः प्रभूतस्य सौभगस्य धनस्यावो रक्षा बभूथ । बभूविथ । अभिक्षत्तुरभिहिंसकस्य त्वावतस्त्वत्सदृशस्य वरूता वारयिता च भव ॥

सखायस्त इंद्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वंतु स्मा तेऽवसा समीके३भीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥९॥
सखायः । ते । इंद्र । विश्वह । स्याम । नमःऽवृधासः । महिना । तरुत्र ।
वन्वंतु । स्म । ते । अवसा । संऽईके । अभिऽइतिं । अर्यः । वनुषां । शवांसि ॥९॥

हे इंद्र ते तव नमोवृधासो नमसा स्तुत्या हविषा वा वर्धयितारो वयं विश्वह सर्वदा सखायः स्याम । भवेम । महिना महिम्ना तरुत्रात्यंतं तारकेंद्र ते तवावसा रक्षणेन समीके संग्रामेऽर्योऽभीतिमभिगमनं वनुषां हिंसकानां शवांसि बलानि च वन्वंतु । स्तोतारो हिंसंतु ॥

स न इंद्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनंति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥
सः । नः । इंद्र । त्वऽयतायै । इषे । धाः । त्मना । च । ये । मघऽवानः । जुनंति ।
वस्वी । सु । ते । जरित्रे । अस्तु । शक्तिः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥१०॥

इयमृग्व्याख्यातचरा ॥ ॥४॥

पिबा सोममिंद्र मंदतु त्वेति नवर्चं पंचमं सूक्तं । अनुक्रम्यते च । पिब नव वैराजमृतेऽंत्यामिति । वसिष्ठ ऋषिः । आदितोऽष्टौ विराजो नवमी त्रिष्टुप् । इंद्रो देवता ॥ दशरात्रे चतुर्थेऽहनि निष्केवल्यशस्त्रे पिबा सोममिंद्रेति षट् स्तोत्रियानुरूपौ । सूत्रितं च । वैराजं चेत्पृष्ठं पिबा सोममिंद्र मंदतु त्वेति षट् स्तोत्रियानुरूपौ । आ॰ ७. ११. । इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवल्य आद्याः षडृचः । सूत्रितं च । पिबा सोममिंद्र मंदतु त्वेति षट् । ऐ॰ आ॰ ५. ३. १. । इति ॥ आद्या निष्केवल्यशस्त्रयाज्या । सूत्रितं च । पिबा सोममिंद्र मंदतु त्वेति याज्या । आ॰ ५. १५. । इति ॥ चतुर्थेऽहनि माध्यंदिनसवने होत्रकशस्त्रेषु सप्त विराजस्त्रींस्तृचान् छस्त्वैकैकस्तृचः शंसनीयः । तत्र न ते गिर इत्याद्यस्तस्य ऋचः । सूत्रितं च । न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य प्र वो महे महिवृधे भरध्वं । आ॰ ७. ११. । इति ॥

पिबा सोममिंद्र मंदतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥
पिब। सोमं। इंद्र। मंदतु। त्वा। यं। ते। सुसाव। हरिऽअश्व। अद्रिः। सोतुः।
बाहुऽभ्यां। सुऽयतः। न। अर्वा ॥१॥

हे इंद्र सोमं पिब। स सोमस्त्वा त्वां मंदतु। मादयतु। हे हर्यश्व ते त्वदर्थं सोतुरभिषवकर्तुर्बाहुभ्यामर्वा न रश्मिभ्यामश्व इव सुयतः सुष्ठु परिगृहीतोऽद्रिर्ग्रावा यं सोमं सुषाव ॥

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिंद्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥
यः। ते। मदः। युज्यः। चारुः। अस्ति। येन। वृत्राणि। हरिऽअश्व। हंसि। सः।
त्वां। इंद्र। प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो। ममत्तु ॥२॥

हे हर्यश्व ते तव यो युज्योऽनुगुणश्चारुः समीचीनो मदो मदकरः सोमोऽस्ति विद्यते येन च पीतेन सोमेन वृत्राणि हंसि हे प्रभूवसो प्रभूतधनेंद्र त्वां स सोमो ममत्तु। मादयतु ॥

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिं।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥
बोध। सु। मे। मघऽवन्। वाचं। आ। इमां। यां। ते। वसिष्ठः। अर्चति। प्रऽशस्तिं।
इमा। ब्रह्म। सधऽमादे। जुषस्व ॥३॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र ते तव प्रशस्तिं स्तुतिरूपां यां वाचं वसिष्ठोऽर्चति वदति तामिमां मे वसिष्ठस्य संबंधिनीं वाचं स्वा बोध। सुष्ठ्वभिबुध्यस्व। किंचेमेमानि ब्रह्म ब्रह्माणि सधमादे यज्ञे जुषस्व। सेवस्व ॥

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषां।
कृष्वा दुवांस्यंतमा सचेमा ॥४॥
श्रुधि। हवं। विऽपिपानस्य। अद्रेः। बोध। विप्रस्य। अर्चतः। मनीषां।
कृष्व। दुवांसि। अंतमा। सचा। इमा ॥४॥

हे इंद्र विपिपानस्य विपीतवतो विपिबतो वा ममाद्रेर्ग्राव्णो हवमाह्वानं श्रुधि। शृणु। तथा च निगमांतरं। ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः। ऋ॰ १०. ९४. १.। इति। विप्रस्य प्राज्ञस्य वसिष्ठस्यार्चतः स्तुवतो मनीषां स्तुतिं बोध। बुध्यस्व च। इमेमानि क्रियमाणानि दुवांसि परिचरणान्यंतमांतिकतमानि बुद्धिस्थानि सचा सह सहायभूतः सन्वा कृष्व। कुरु च ॥

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥५॥
न। ते। गिरः। अपि। मृष्ये। तुरस्य। न। सुऽस्तुतिं। असुर्यस्य। विद्वान्।
सदा। ते। नाम। स्वऽयशः। विवक्मि ॥५॥

हे इंद्र तुरस्य शत्रूणां हिंसकस्य ते तव गिरः स्तुतीरसुर्यस्य। द्वितीयार्थे षष्ठी। त्वदीयमसुर्यं बलं विद्वाञ्जानन्नहं नापि मृष्ये। मृषिर्मार्जनकर्मा। न मार्जयामि। न परित्यजामीत्यर्थः। सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं च

णापि मृष्ये। मृषेर्मार्जनकर्मत्वमन्यत्रापि दृश्यते। तद्यथा। मा णो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठाः। ऋ॰ १. ७१. १०.। इति। किंतु स्वयशोऽसाधारणयशस्ते तव नाम स्तोत्रं सदैव विवक्मि। ब्रवीमि॥ ॥५॥

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥६॥
भूरि। हि। ते। सवना। मानुषेषु। भूरि। मनीषी। हवते। त्वां। इत्।
मा। आरे। अस्मत्। मघऽवन्। ज्योक्। करिति कः ॥६॥

हे मघवन् ते तव सवना सवनानि सोमाभिषवणानि भूरि भूरीणि मानुषेष्वस्मासु वर्तंत इति शेषः। मनीषी स्तोता त्वामित्त्वामेव भूरि हवते। नितरां ह्वयति। स्तौति। अतोऽस्मदस्मत्त आरे दूरे ज्योक् चिरकालं मा कः। आत्मानं मा कार्षीः। क्षिप्रमात्मानमस्मदासन्नं कुर्वित्यर्थः॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥७॥
तुभ्यं। इत्। इमा। सवना। शूर। विश्वा। तुभ्यं। ब्रह्माणि। वर्धना। कृणोमि।
त्वं। नृऽभिः। हव्यः। विश्वधा। असि ॥७॥

हे शूर तुभ्येत्तुभ्यमेवेमेमानि विश्वा विश्वानि सवना सोमाभिषवणानि मया क्रियंत इति शेषः। तुभ्यं त्वदर्थमेव वर्धना वर्धनानि ब्रह्माणि स्तोत्राणि कृणोमि। करोमि। त्वमेव नृभिर्यज्ञानां नेतृभिर्विश्वधा सर्वप्रकारैर्हव्यो ह्वातव्यः स्तुत्यो वासि॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवंति महिमानमुग्र। न वीर्यमिंद्र ते न राधः ॥८॥
नु। चित्। नु। ते। मन्यमानस्य। दस्म। उत्। अश्नुवंति। महिमानं। उग्र। न।
वीर्यं। इंद्र। ते। न। राधः ॥८॥

हे दस्म दर्शनीय मन्यमानस्य स्तूयमानस्य ते तव महिमानं। नू चिदिति प्रतिषेधार्थः। नु क्षिप्रं नू चिदुदश्नुवंति। केचन न प्राप्नुवंति। हे उग्रोद्गूर्ण ते तव राधो धनं नोदश्नुवंति॥

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इंद्र ब्रह्माणि जनयंत विप्राः।
अस्मे ते संतु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥
ये। च। पूर्वे। ऋषयः। ये। च। नूत्नाः। इंद्र। ब्रह्माणि। जनयंत। विप्राः।
अस्मे इति। ते। संतु। सख्या। शिवानि। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥९॥

ये च पूर्वे प्राक्तना ऋषयो ये च नूत्ना नूतना विप्रा मेधाविन ऋषयो ब्रह्माणि स्तोत्राणि जनयंत अजनयंत तेष्विवास्मे अस्मास्वपि हे इंद्र ते तव सख्या सख्यानि शिवानि भद्राणि संतु। स्पष्टमन्यत्॥ ॥६॥

उदु ब्रह्माणीति षड्टचं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं। अनुक्रम्यते च। उदु षडिति॥ अग्निष्टोमे माध्यंदिने सवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्र एतत्सूक्तं। सूचितं च। उदु ब्रह्माण्यृजीषी वज्री वृषभस्तुराषाळिति याज्या। आ॰ ५. १६.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्र एतदहरहःशस्यसंज्ञकं सूक्तं। सूचितं च। उदु ब्रह्माण्यभि तष्टेवेतीतरावहरहःशस्ये। आ॰ ७. ४.। इति॥ अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःस्वेतदेव

सूक्तं ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवल्य एतत्सूक्तं । सूचितं च । उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या ते मह इंद्रोत्युथेति पंच सूक्तानि । ऐ० आ० ५. २. २. । इति ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येंद्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
उत् । ऊं इति । ब्रह्माणि । ऐरत । श्रवस्या । इंद्रं । सऽमर्ये । महय । वसिष्ठ ।
आ । यः । विश्वानि । शवसा । ततान । उपऽश्रोता । मे । ईवतः । वचांसि ॥ १ ॥

श्रवस्यान्नेच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवींषि चेंद्रार्थमुदैरत सर्व ऋषय इति शेषः । उ इति पूरणः । हे वसिष्ठ त्वमपि समर्ये यज्ञ इंद्रं महय । स्तोत्रेण हविषा च पूजय । अपि च य इंद्रो विश्वानि भुवनानि शवसा बलेना ततान स ईवत उपगमनवतो मे मम वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यान्युपश्रोता भवतु ॥

अयामि घोष इंद्र देवजामिरिरज्यंत यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
अयामि । घोषः । इंद्र । देवऽजामिः । इरज्यंत । यत् । शुरुधः । विऽवाचि ।
नहि । स्वं । आयुः । चिकिते । जनेषु । तानि । इत् । अंहांसि । अति । पर्षि । अस्मान् ॥ २ ॥

यद्यदा शुरुधः । शुचं संरुधंतीति शुरुध ओषध्यः । इरज्यंत वर्धंते तदा हे इंद्र त्वदर्थं विवाचि स्तोतरि देवजामिर्देवानां बंधुर्घोषः । स्तुतिरूपः शब्दो घोषः । अयामि । अकारि । अपि च जनेषु मध्ये केनापि स्वमायुः स्वजीवितं नहि चिकिते । न ज्ञायते । यैरायुः क्षीयते तानीत्तानि सर्वाण्येवांहांसि पापान्यस्मानति पर्षि । अतिपारय ॥

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेंद्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
युजे । रथं । गोऽएषणं । हरिऽभ्यां । उप । ब्रह्माणि । जुजुषाणं । अस्थुः ।
वि । बाधिष्ट । स्यः । रोदसी इति । महिऽत्वा । इंद्रः । वृत्राणि । अप्रति । जघन्वान् ॥ ३ ॥

गवेषणं गवां प्रापकमिंद्रस्य रथं हरिभ्यामिंद्रवाहाभ्यां युजे । स्तोत्रैरहं युनज्मि । ब्रह्माणि स्तोत्राणि जुजुषाणं परिवारैः सेव्यमानमिंद्रमुपास्थुः । उपातिष्ठंत । स्य सोऽयमिंद्रो महित्वा महत्त्वेन रोदसी द्यावापृथिव्यौ वि बाधिष्ट । व्यबाधिष्ट च । अपि चेंद्रो वृत्राणि शत्रूनप्रति द्वंद्वानि जघन्वान् हतवान् ॥

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इंद्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
आपः । चित् । पिप्युः । स्तर्यः । न । गावः । नक्षन् । ऋतं । जरितारः । ते । इंद्र ।
याहि । वायुः । न । निऽयुतः । नः । अच्छ । त्वं । हि । धीभिः । दयसे । वि । वाजान् ॥ ४ ॥

हे इंद्र त्वत्प्रसादादापश्चिदापः स्तर्यो न गावः स्तर्यो वशा गाव इव पिप्युः । वर्धंतां । अप्रसूता गावो मांसला भवंति हि । ते तव जरितारः स्तोतारस्त्वर्तमुदकं नक्षन् । व्याप्नुवन् । अपि च त्वं नोऽस्मान्नियुतो

वायुर्न वायुरिवाच्छ याहि । अभियाहि । त्वं हि धीभिः प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा वाजानन्नानि वि दयसे । स्तोतृभ्यः प्रयच्छसि ॥

ते त्वा मदा इंद्र मादयंतु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५॥
ते । त्वा । मदाः । इंद्र । मादयंतु । शुष्मिणं । तुविऽराधसं । जरित्रे ।
एकः । देवऽत्रा । दयसे । हि । मर्तान् । अस्मिन् । शूर । सवने । मादयस्व ॥५॥

हे इंद्र त्वा त्वां त एते मदा मदकराः सोमा मादयंतु । अपि च जरित्रे स्तोत्रे शुष्मिणं बलवंतं तुविराधसं बहुधनं पुत्रं प्रयच्छतीति शेषः । हे शूर त्वं देवत्रा देवेष्वेक एव मर्तान्मनुष्यान् दयसे हि । दयतिरनुकंपार्थः । अस्मिन्सवने यज्ञे मादयस्व ॥

एवेदिंद्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चंत्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
एव । इत् । इंद्रं । वृषणं । वज्रऽबाहुं । वसिष्ठासः । अभि । अर्चंति । अर्कैः ।
सः । नः । स्तुतः । वीरऽवत् । धातु । गोऽमत् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

वसिष्ठासो वसिष्ठा वज्रबाहुं वज्रकल्पबाहुं वृषणं कामानां वर्षितारमिंद्रमेवेदुक्तेन प्रकारेणैवार्कैरर्चनीयैः स्तोत्रैरभ्यर्चंति । अभिपूजयंति । स्तुतः स इंद्रो नोऽस्मभ्यं वीरवत्पुत्रादियुक्तं गोमद्गोयुक्तं च धनं धातु । ददातु । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥७॥

योनिष्ट इंद्र सदने अकारीति षडृचं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । अनुक्रम्यते च । योनिरिति ॥ महाव्रते निष्केवल्य एतत्सूक्तं । सूचितं च । योनिष्ट इंद्र सदने अकारीत्येतस्य चतस्रः शस्त्वोत्तमामुपसंतत्योपोत्तमया परिदधाति । ऐ॰ आ॰ ५. ३. १. । इति ॥

योनिष्ट इंद्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥१॥
योनिः । ते । इंद्र । सदने । अकारि । तं । आ । नृऽभिः । पुरुऽहूत । प्र । याहि ।
असः । यथा । नः । अविता । वृधे । च । ददः । वसूनि । ममदः । च । सोमैः ॥१॥

हे इंद्र ते तव सदने सदनार्थं योनिः स्थानमकारि । हे पुरुहूत नृभिर्मरुद्भिः सार्धं तं योनिमा प्र याहि । नोऽस्माकं यथाविता रक्षितासः भवसि नोऽस्माकं वृधे वर्धनाय चासः । तथा च वसूनि ददः । अस्मभ्यं देहि । सोमैरस्मदीयैर्ममदः । मादयस्व च ॥

गृभीतं ते मन इंद्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिंद्रं जोहुवती मनीषा ॥२॥
गृभीतं । ते । मनः । इंद्र । द्विऽबर्हाः । सुतः । सोमः । परिऽसिक्ता । मधूनि ।
विसृष्टऽधेना । भरते । सुऽवृक्तिः । इयं । इंद्रं । जोहुवती । मनीषा ॥२॥

हे इंद्र द्विबर्हाः। षष्ठ्यर्थे प्रथमा। द्विबर्हसो द्वयोः स्थानयोः परिवृढस्य ते तव मनो गृभीतमस्माभिः परिगृहीतं। सोमश्च सुतोऽभिषुतः। मधूनि च परिषिक्ता पात्रेषु परिषिक्तानि। विसृष्टधेना विसृष्टजिह्वा मध्यमस्वरेणोच्चार्यमाणा सुवृक्तिः सुसमाप्तिरियं मनीषा स्तुतिरिंद्रं जोहुवती भृशमाह्वयंती भरते। संभ्रियते च ॥

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि।
वहंतु त्वा हरयो मद्र्यंचमांगूषमच्छा तवसं मदाय ॥३॥
आ। नः। दिवः। आ। पृथिव्याः। ऋजीषिन्। इदं। बर्हिः। सोमऽपेयाय। याहि।
वहंतु। त्वा। हरयः। मद्र्यंचं। आंगूषं। अच्छ। तवसं। मदाय ॥३॥

हे ऋजीषिन्निंद्र नोऽस्माकमिदं बर्हिरिमं यज्ञं सोमपेयाय दिवः स्वर्गादा याहि। आगच्छ। पृथिव्या अंतरिक्षाच्च। आपः पृथिवीत्यंतरिक्षनामसु पाठात्। आ याहि। अपि च तवसं प्रवृद्धं बलवंतं वा मद्र्यंचं मदभिमुखं त्वा त्वामांगूषं स्तोत्रमच्छाभि मदाय मदार्थं हरयोऽश्वा वहंतु ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिंद्र ॥४॥
आ। नः। विश्वाभिः। ऊतिऽभिः। सऽजोषाः। ब्रह्म। जुषाणः। हरिऽअश्व। याहि।
वरीवृजत्। स्थविरेभिः। सुऽशिप्र। अस्मे इति। दधत्। वृषणं। शुष्मं। इंद्र ॥४॥

हे हर्यश्व हरिनामकाश्व सुशिप्र शोभनहनविंद्र विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभी रक्षाभिः सजोषाः संगतः स्थविरेभिर्वृद्धैर्मरुद्भिः सह वरीवृजच्छत्रून्भृशं हिंसन् अस्मे अस्मभ्यं वृषणं कामानां वर्षितारं शुष्मं बलवंतं पुत्रं दधत् प्रयच्छन् ब्रह्म स्तोत्रं जुषाणः सेवमानो नोऽस्माना याहि ॥

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि।
इंद्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥५॥
एषः। स्तोमः। महे। उग्राय। वाहे। धुरिऽइव। अत्यः। न। वाजयन्। अधायि।
इंद्र। त्वा। अयं। अर्कः। ईट्टे। वसूनां। दिविऽइव। द्यां। अधि। नः। श्रोमतं। धाः ॥५॥

महे महत उग्रायोद्गूर्णायौजस्विने वा वाहे विश्वस्य वोढ्र इंद्राय धुरीव रथस्यात्यो नाश्व इव वाजयन् बलं कुर्वन्नेष स्तोमोऽधायि। व्यधायि। अथ प्रत्यक्षस्तुतिः। हे इंद्र यं त्वामयमर्कः स्तोता वसूनां वसूनि धनानीट्टे याचते स त्वं नोऽस्मासु द्यां दिवीव श्रोमतं श्रवणीयमन्नं पुत्रं वाधि धाः। अधिधेहि ॥

एवा न इंद्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
एव। नः। इंद्र। वार्यस्य। पूर्धि। प्र। ते। महीं। सुऽमतिं। वेविदाम।
इषं। पिन्व। मघवत्ऽभ्यः। सुऽवीरां। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥६॥

हे इंद्र नोऽस्मानेवैवं वार्यस्य। तृतीयार्थे षष्ठी। वरणीयेन धनेन पूर्धि। पूरय। ते तव महीं महतीं सुमतिमनुग्रहबुद्धिं वेविदाम। भृशं लभेमहि। मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्योऽस्मभ्यं सुवीरां शोभनपुत्रादियुतामिषमन्नं पिन्व। प्रयच्छेत्यर्थः। स्पष्टमन्यत् ॥ ॥८॥

आ ते मह इंद्रेति षडृचमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । आ त इत्यनुक्रांतं ॥ महाव्रते निष्केवल्य इदमादीनि पंच सूक्तानि । सूत्रितं च । आ ते मह इंद्रोत्युग्रेति पंच सूक्तानि । ऐ० आ० ५. २. २. । इति ॥

आ ते मह इंद्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरंत सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥ १ ॥
आ । ते । महः । इंद्र । ऊती । उग्र । सऽमन्यवः । यत् । संऽअरंत । सेनाः ।
पताति । दिद्युत् । नर्यस्य । बाह्वोः । मा । ते । मनः । विष्वद्र्यक् । वि । चारीत् ॥ १ ॥

हे उग्रोद्गूर्णौजस्विन्निंद्र यद्यदा समन्यवः । समो मन्युरभिमानो यासां ताः समन्यवः । सेनाः समरंत युध्यंते संगच्छंते वा तदा नर्यस्य नरहितस्य महो महतस्ते तव बाह्वोः स्थिता दिद्युदायुधं । दिद्युद्वेतिरिति वज्रनामसु पाठात् । ऊत्यूत्यास्मद्रक्षाया आ पताति । आपततु । तव विष्वद्र्यग्विष्वग्गंतृ मनश्च मा वि चारीत् । अस्मास्वेव स्थिरं भवतु ॥

नि दुर्ग इंद्र श्नथिह्यमित्राँनभि ये नो मर्तासो अमंति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनां ॥ २ ॥
नि । दुःऽगे । इंद्र । श्नथिहि । अमित्रान् । अभि । ये । नः । मर्तासः । अमंति ।
आरे । तं । शंसं । कृणुहि । निनित्सोः । आ । नः । भर । संऽभरणं । वसूनां ॥ २ ॥

हे इंद्र दुर्गे युद्धे ये मर्तासो मर्ता अभ्यभिमुखाः संतो नोऽस्मानमंति अभिभवंति तानमित्राञ्छत्रून्नि श्नथिहि । निजहि । अपि च निनित्सोरस्मान्निंदितुमिच्छतो नरस्य तं शंसमाशंसनमारे दूरे कृणुहि । कुरु । अपि च नोऽस्मभ्यं वसूनां धनानां संभरणं समूहमा भर । आहर ॥

शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥
शतं । ते । शिप्रिन् । ऊतयः । सुऽदासे । सहस्रं । शंसाः । उत । रातिः । अस्तु ।
जहि । वधः । वनुषः । मर्त्यस्य । अस्मे इति । द्युम्नं । अधि । रत्नं । च । धेहि ॥ ३ ॥

हे शिप्रिन्नुष्णीषिन्निंद्र ते त्वदीयाः शतं बह्व्य ऊतयो रक्षाः सुदासे शोभनदानाय मह्यं संतु । सहस्रं शंसाः शंसनीयाः कामाश्च संतु । उतापि च रातिर्धनमस्तु । वनुषो हिंसकस्य मर्त्यस्य वधो हिंसासाधनमायुधं च जहि । अपि चास्मे अध्यस्मासु द्युम्नं दीप्तिमदन्नं यशो वा रत्नं च धेहि । तथा च यास्कः । द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा । अस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि । अस्मासु द्युम्नं च रत्नं च धेहि । नि० ५. ५. । इति ॥

त्वावतो हींद्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥ ४ ॥
त्वाऽवतः । हि । इंद्र । क्रत्वे । अस्मि । त्वाऽवतः । अवितुः । शूर । रातौ ।
विश्वा । इत् । अहानि । तविषीऽवः । उग्र । ओकः । कृणुष्व । हरिऽवः । न । मर्धीः ॥ ४ ॥

हे इंद्र त्वावतस्त्वत्सदृशस्य क्रत्वे कर्मणेऽस्मि । भवामि हि । हे शूर अवितुर्विश्वस्य रक्षितुस्त्वावतस्त्वत्स-

वृषस्य रातौ दाने चास्मीति शेषः। हे तविषीवो बलवत्पुत्रौजस्विन्निंद्र विश्वेदिद्याम्येवाहान्योकोऽस्माकं स्थानं कृणुष्व। कुरु। हे हरिवो हरिवन् न मर्धीः। अस्मान्न हिंस्याः॥

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिंद्रे सहो देवजूतमियानाः।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजं ॥५॥
कुत्साः। एते। हरिऽअश्वाय। शूषं। इंद्रे। सहः। देवऽजूतं। इयानाः।
सत्रा। कृधि। सुऽहना। शूर। वृत्रा। वयं। तरुत्राः। सनुयाम। वाजं ॥५॥

एते वयं वसिष्ठा हर्यश्वाय हरिनामकाश्वायेंद्राय शूषं सुखकरं स्तोत्रं कुत्साः कुर्वाणाः॥ करोतेः कुत्सशब्दनिष्पत्तिः॥ इंद्रे देवजूतं देवैः प्रेरितं सहो बलमियाना याचमानास्तरुत्रा दुर्गाणि तीर्णाः संतो वाजं बलं सनुयाम। लभेमहि। अपि च हे शूर वृत्रा वृत्राणि शत्रून् सुहना हंतुं सुशकानि सत्रा सर्वदा कृधि। कुरु॥

एवा न इंद्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
एव। नः। इंद्र। वार्यस्य। पूर्धि। प्र। ते। महीं। सुऽमतिं। वेविदाम।
इषं। पिन्व। मघवत्ऽभ्यः। सुऽवीरां। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥६॥

इयं व्याख्यातचरा॥ ॥९॥

न सोम इंद्रमिति पंचर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं। तथा चानुक्रम्यते। न सोमः पंचेति॥ महाव्रत उक्तो विनियोगः॥

न सोम इंद्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥१॥
न। सोमः। इंद्रं। असुतः। ममाद। न। अब्रह्माणः। मघऽवानं। सुतासः।
तस्मै। उक्थं। जनये। यत्। जुजोषत्। नृऽवत्। नवीयः। शृणवत्। यथा। नः ॥१॥

मघवानं धनवंतमिंद्रमसुतो नाभिषुतः सोमो न ममाद। न तर्पयति। सुतासोऽभिषुता अपि सोमा अब्रह्माणः स्तोत्रहीना न ममदुः। ममादेत्येतदाख्यातं बहुवचनांततया विपरिणतं सदत्र संबध्यते। अत एव त्रिष्वपि सवनेषु पावमानैः स्तोत्रैः स्तुता एव सोमा हूयंते। अपि च नोऽस्मदीयं यदुक्थमिंद्रो जुजोषत् सेवेत यथा च नृवद्राजेवादरेण शृणवत् शृणुयात् तथा नवीयो नवतरमुक्थं शस्त्रं तस्मा इंद्राय जनये। पठामीत्यर्थः॥

उक्थउक्थे सोम इंद्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवंते ॥२॥
उक्थेऽउक्थे। सोमः। इंद्रं। ममाद। नीथेऽनीथे। मघऽवानं। सुतासः।
यत्। ईं। सऽबाधः। पितरं। न। पुत्राः। समानऽदक्षाः। अवसे। हवंते ॥२॥

यद्यस्मादुक्थ उक्थे शस्त्रे शस्त्रे क्रियमाणे सोमो मघवानमिंद्रं ममाद मादयति नीथे नीथे स्तोत्रे स्तोत्रे क्रियमाणे सुतासोऽभिषुताः सोमा मादयंति तस्मादीमेनमिंद्रं सबाधः परस्परं मिलिताः समानदक्षाः समानोत्साहा ऋत्विजः पुत्राः पितरं न पितरमिवावसे तर्पणाय रक्षणाय वा हवंते । शस्त्रैः स्तोत्रैश्च स्तुवंति ॥

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवंति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इंद्रः सु सर्वाः ॥३॥
चकार । ता । कृणवत् । नूनं । अन्या । यानि । ब्रुवंति । वेधसः । सुतेषु ।
जनीःऽइव । पतिः । एकः । समानः । नि । ममृजे । पुरः । इंद्रः । सु । सर्वाः ॥३॥

वेधसः स्तोत्राणां विधातारः सुतेषु सोमेष्वभिषुतेषु यानि कर्माणि ब्रुवंति तानि वृत्रवधादीनि कर्माणींद्रः पूर्वस्मिन्काले चकार । नूनं संप्रत्यप्यन्यान्यानि कर्माणि कृणवत् । कुर्यात् । अपि च स इंद्रः सर्वाः पुरः शत्रुनगरीः समानः समवृत्तिरेकोऽसहायः पतिर्जनीरिव जाया इव सु नि मामृजे । सम्यक् शोधयेत् ॥

एवा तमाहुरुत शृण्व इंद्र एको विभक्ता तरणिर्मघानां ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥४॥
एव । तं । आहुः । उत । शृण्वे । इंद्रः । एकः । विऽभक्ता । तरणिः । मघानां ।
मिथःऽतुरः । ऊतयः । यस्य । पूर्वीः । अस्मे इति । भद्राणि । सश्चत । प्रियाणि ॥४॥

यस्येंद्रस्य मिथः परस्परं तुरो बाधमानाः संश्लिष्टा वा पूर्वीः पूर्व्यो बह्व्य ऊतयो रक्षाः संति तमेवैवमुक्तगुणमाहुः पूर्व ऋषयः । उतापि चाद्यापि स इंद्रो मघानां मंहनीयानां धनानां विभक्ता दातेति तरणिरापदस्तारयितेति शृण्वे । श्रूयते । तस्य च प्रसादादस्मे अस्मान् प्रियाणि भद्राणि कल्याणानि सश्चत । सेवंतां ॥

एवा वसिष्ठ इंद्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
एव । वसिष्ठः । इंद्रं । ऊतये । नृन् । कृष्टीनां । वृषभं । सुते । गृणाति ।
सहस्रिणः । उप । नः । माहि । वाजान् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

वसिष्ठो नृन् नृणां । षष्ठ्यर्थे द्वितीया । ऊतये रक्षार्थं कृष्टीनां प्रजानां वृषभं कामानां वर्षितारमिंद्रमेवैवं पूर्वोक्तप्रकारेण गृणाति । स्तौति । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे इंद्र नोऽस्मभ्यं सहस्रिणः सहस्रसंख्याकान्वाजानन्नान्युप माहि । प्रयच्छेत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥१०॥

इंद्रं नर इति पंचर्चं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । इंद्रं नर इत्यनुक्रांतं ॥ महाव्रते निष्केवल्य एतत्सूक्तमुक्तं तृतीयत्वेन ॥ ऐंद्रे पशौ वपापुरोडाशहविषामाद्यास्तिस्रः क्रमेणानुवाक्याः । सूत्रितं च । इंद्रं नरो नेमधिता हवंत इत्युरुं णो लोकमनु नेषि विद्वान् । आ॰ ३. ७. । इति ॥

इंद्रं नरो नेमधिता हवंते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥१॥
इंद्रं । नरः । नेमऽधिता । हवंते । यत् । पार्याः । युनजते । धियः । ताः ।
शूरः । नृऽसाता । शवसः । चकानः । आ । गोऽमति । व्रजे । भज । त्वं । नः ॥१॥

यद्यदा पार्या युद्धभरणनिमित्तास्ताः प्रसिद्धा धियः कर्माणि युनजते प्रयुञ्जते तदा नरो नेतारो यमिंद्रं नेमधिता नेमधितौ संग्रामे हवंते ह्वयंति स त्वं शूरो नृषाता नृणां संभक्ता च श्रवसो बलस्य बलं चकानः कामयमानश्च सन् गोमति व्रजे गोष्ठे गोसमूहे नोऽस्माना भज। प्रापय ॥

य इंद्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥
यः। इंद्र। शुष्मः। मघऽवन्। ते। अस्ति। शिक्ष। सखिऽभ्यः। पुरुऽहूत। नृऽभ्यः।
त्वं। हि। दृळ्हा। मघऽवन्। विऽचेताः। अप। वृधि। परिऽवृतं। न। राधः ॥२॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूतेंद्र ते तव यः शुष्मो बलमस्ति तं शुष्मं सखिभ्यः स्तोतृभ्यो नृभ्यः शिक्ष। देहि। अपि च हे मघवन् हि यस्माद्दृळ्हा दृढानि। पुरां द्वाराणि बिभेदिथेति शेषः। तस्मात्त्वं विचेता विविक्तप्रज्ञः सन् परिवृतं तिरोहितं राधो धनमप वृधि। अस्मभ्यमपवृणु। नेति संप्रत्यर्थे ॥

इंद्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३॥
इंद्रः। राजा। जगतः। चर्षणीनां। अधि। क्षमि। विषुऽरूपं। यत्। अस्ति।
ततः। ददाति। दाशुषे। वसूनि। चोदत्। राधः। उपऽस्तुतः। चित्। अर्वाक् ॥३॥

स इंद्रो जगतो जंगमस्य पश्वादेर्यतो राजेश्वरो भवति चर्षणीनां मनुष्याणां च राजा भवति अधि क्षमि क्षमायां विषुरूपं नानारूपं यद्धनमस्ति तस्यापि राजा भवति ततो दाशुषे यजमानाय वसूनि धनानि ददाति। स इंद्रोऽस्माभिरुपस्तुत एव सन्राधो धनमर्वागस्मदभिमुखं चोदत्। प्रेरयतु ॥

नू चिन्न इंद्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४॥
नु। चित्। नः। इंद्रः। मघऽवा। सऽहूती। दानः। वाजं। नि। यमते। नः। ऊती।
अनूना। यस्य। दक्षिणा। पीपाय। वामं। नृऽभ्यः। अभिऽवीता। सखिऽभ्यः ॥४॥

मघवा धनवान् दानो ददानः स इंद्रो नोऽस्माकं सहूती सहूत्या मरुद्भिः सहाह्वानेन वाजमन्नं नोऽस्मभ्यमूत्यै रक्षायै नू चित् क्षिप्रमेव नि यमते। प्रयच्छतु। यस्येंद्रस्यानूना संपूर्णाभिवीताभिप्राप्ता दक्षिणा दानं सखिभ्यः स्तोतृभ्यो नृभ्यो वामं वननीयं धनं पीपाय दोग्धि ॥

नू इंद्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यंतो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
नु। इंद्र। राये। वरिवः। कृधि। नः। आ। ते। मनः। ववृत्याम। मघाय।
गोऽमत्। अश्वऽवत्। रथऽवत्। व्यंतः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥५॥

हे इंद्र नोऽस्मभ्यं राये धनप्राप्तये नु क्षिप्रं वरिवो धनं। वेदो वरिव इति धननामसु पाठात्। त्वं कृधि। देहि। वयं ते तव मनो मघाय मंहनीयायै स्तुत्या आ ववृत्याम। आवर्तयाम। स्पष्टमन्यत् ॥ ॥११॥

ब्रह्मा ण इंद्रेति पंचर्चमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । ब्रह्मा ण इत्यनुक्रांतं ॥ महाव्रते निष्केवल्ये पंचमस्त्वेनास्य सूक्तस्य विनियोग उक्तः ॥ अष्टमेऽहनि प्रउगशस्त्र आद्यस्तृच ऐंद्रः । आ० ८.१०.॥

ब्रह्मा ण इंद्रोप याहि विद्वानर्वाचस्ते हरयः संतु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवंत मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥१॥
ब्रह्म । नः । इंद्र । उप । याहि । विद्वान् । अर्वाचः । ते । हरयः । संतु । युक्ताः ।
विश्वे । चित् । हि । त्वा । विऽहवंत । मर्ताः । अस्माकं । इत् । शृणुहि । विश्वंऽइन्व ॥१॥

हे इंद्र त्वं विद्वाञ्जानन्नोऽस्माकं ब्रह्म स्तोत्रमुप याहि । ते तव हरयोऽश्वाअर्वाचोऽस्मदभिमुखा युक्ताः संतु । हे विश्वमिन्व विश्वप्रीणयितरिंद्र त्वा त्वां विश्वे सर्वे मर्ता मनुष्याश्चिद्धि यद्यपि विहवंत पृथग्ह्वयंते तथाप्यस्माकमिदस्माकमेव हवं शृणुहि । शृणु ॥

हवं त इंद्र महिमा व्यानड्ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणां ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥२॥
हवं । ते । इंद्र । महिमा । वि । आनट् । ब्रह्म । यत् । पासि । शवसिन् । ऋषीणां ।
आ । यत् । वज्रं । दधिषे । हस्ते । उग्र । घोरः । सन् । क्रत्वा । जनिष्ठाः । अषाळ्हः ॥२॥

हे शवसिन्बलवन्निंद्र यद्यदा ऋषीणां ब्रह्म स्तोत्रं पासि रक्षसि । स्तोत्रस्य रक्षणं नाम फलप्रदानं । तदा ते तव महिमा हवं । हवः स्तोता । तं व्यानट् । व्याप्नोतु । हे उग्रौजस्विन्निंद्र यद्यदा हस्ते पाणौ वज्रमा दधिषे धारयसि तदा क्रत्वा शत्रुवधादिना कर्मणा घोरः सन्नषाळ्हः शत्रुभिरनभिभूतो जनिष्ठाः । अजनिष्ठाः । अभवः ॥

तव प्रणीतींद्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चिन्तूतुजिरशिश्नत् ॥३॥
तव । प्रऽनीती । इंद्र । जोहुवानान् । सं । यत् । नॄन् । न । रोदसी इति । निनेथ ।
महे । क्षत्राय । शवसे । हि । जज्ञे । अतूतुजिं । चित् । तूतुजिः । अशिश्नत् ॥३॥

हे इंद्र यद्यस्त्वं तव प्रणीती प्रणीत्या प्रणयनेन जोहुवानान् भृशं स्तुवतो नॄन्रोदसी द्यावापृथिव्यौ सं निनेथ संगमयसि । दिवि पृथिव्यां च स्तोतॄन् प्रतिष्ठापयसीत्यर्थः । स त्वं महे महते क्षत्राय धनाय । रयिः क्षत्रमिति धननामसु पाठात् । शवसे बलाय च । यजमानेभ्यो महद्धनं बलं च दातुमित्यर्थः । जज्ञे । जज्ञिषे । हीति हेत्वर्थे । यत एवमतः कारणादतूतुजिमदातारमयजमानं तूतुजिर्दाता यजमानोऽशिश्नत् ॥ श्नथतिर्हिंसाकर्मा । तस्माल्लङर्थे लुङ् ॥ हिनस्ति । चिदित्येवकारार्थे ॥

एभिर्न इंद्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवंते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४॥
एभिः । नः । इंद्र । अहऽभिः । दशस्य । दुःऽमित्रासः । हि । क्षितयः । पवंते ।
प्रति । यत् । चष्टे । अनृतं । अनेनाः । अव । द्विता । वरुणः । मायी । नः । सात् ॥४॥

हे इंद्र दुर्मित्रासो दुष्टमित्रभूता बाधकाः क्षितयो जनाः पवंते । अभिगच्छंति । पवतिर्गतिकर्मा । तेभ्यो

धनमाच्छिद्य नोऽस्मभ्यमेभिः सात्त्विकैरहभिरहोभिर्दशस्य । देहि । किंचानेना एनसां निहंता मायी प्रज्ञा-वान् वरुणो यदनृतं नोऽस्मासु प्रति चष्टे अभिपश्यति तदनृतं हे इंद्र त्वत्प्रसादाद्धिता द्विधाव सात् । अवस्यतु । विमोचयतु । तथा च यास्कः । स्यतिरुपसृष्टो विमोचने । नि॰ १. १७. । इति ॥

वोचेमेदिंद्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
वोचेम । इत् । इंद्रं । मघऽवानं । एनं । महः । रायः । राधसः । यत् । ददत् । नः ।
यः । अर्चतः । ब्रह्मऽकृतिं । अविष्ठः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

यद्य इंद्रो महो महतो राधसः संराधकस्य रायो धनस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । संराधकं महद्धनं नोऽस्मभ्यं ददत् प्रायच्छत् यश्चेंद्रोऽर्चतः स्तुवतो ब्रह्मकृतिं क्रियमाणं ब्रह्म स्तोत्रमविष्ठोऽतिशयेन रक्षिता गंता भवति तमेनं मघवानं धनवंतमिंद्रं वोचेमेत् । स्तुवेमैव । स्पष्टमन्यत् ॥ ॥१२॥

अयं सोम इंद्रेति पंचर्चं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । अयं सोम इत्यनुक्रांतं ॥ व्यूळ्हे दशरात्रे नवमेऽहन्ययं सोम इंद्रेति प्रउगशस्त्र ऐंद्रस्तृचः । सूचितं च । अयं सोम इंद्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र ब्रह्माणः । आ॰ ८. ११. । इति ॥ षोडशिशस्त्रे ब्रह्मन्वीरेत्येषा त्रिष्टुप् । सूचितं च । ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाण इति त्रिष्टुप् । आ॰ ६. २. । इति ॥

अयं सोम इंद्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥१॥
अयं । सोमः । इंद्र । तुभ्यं । सुन्वे । आ । तु । प्र । याहि । हरिऽवः । तत्ऽओकाः ।
पिब । तु । अस्य । सुऽसुतस्य । चारोः । ददः । मघानि । मघऽवन् । इयानः ॥१॥

हे इंद्र तुभ्यं त्वदर्थमयमेष सोमः सुन्वे । अभिषुतोऽभवत् । हे हरिवो हरिवन्निंद्र तदोकाः । सवनीयो यस्यासौ तदोकाः । तु क्षिप्रमा प्र याहि । सुषुतस्य सम्यगभिषुतस्य चारोः शोभनस्यास्य सोमस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । सम्यगभिषुतं शोभनमित्यर्थः । तु क्षिप्रं पिब च । अपि च हे मघवन् इयान उपगम्यमानो याच्यमानो वा त्वं मघानि धनानि ददः । अस्मभ्यं देहि ॥

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयं ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥२॥
ब्रह्मन् । वीर । ब्रह्मऽकृतिं । जुषाणः । अर्वाचीनः । हरिऽभिः । याहि । तूयं ।
अस्मिन् । ऊं इति । सु । सवने । मादयस्व । उप । ब्रह्माणि । शृणवः । इमा । नः ॥२॥

हे ब्रह्मन् परिवृढ वीरेंद्र ब्रह्मकृतिं क्रियमाणं स्तोत्रं जुषाणः सेवमानोऽर्वाचीनोऽस्मदभिमुखः सन् हरिभिरश्वैस्तूयं क्षिप्रं याहि । अस्मिन्नस्मिन्नेव सवने यज्ञे सु सुष्ठु मादयस्व च । नोऽस्मदीयानीमानि ब्रह्माणि स्तोत्राणि चोप शृणवः । उपशृणु ॥

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इंद्र शृणवो हवेमा ॥३॥

का । ते । अस्ति । अरंऽकृतिः । सुऽउक्तैः । कदा । नूनं । ते । मघऽवन् । दाशेम ।
विश्वाः । मतीः । आ । ततने । त्वाऽया । अध । मे । इंद्र । शृणवः । हवा । इमा ॥ ३ ॥

हे इंद्र ते तव सूक्तैरस्माभिः क्रियमाणैः स्तोत्रैरंकृतिरलंकृतिः कास्ति । कीदृशी भवति । हे मघवन् ते तव कदा नूनं कदा खलु दाशेम । प्रीतिमुत्पादयेम । त्वाया त्वत्कामनयैव विश्वा मतीः सर्वाः स्तुतीरा ततने । करोमि । अधातः कारणात् हे इंद्र मे मदीयानीमानि हवा हवानि स्तोत्राणि शृणवः । शृणु ॥

उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणां ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इंद्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥
उतो इति । घ । ते । पुरुष्याः । इत् । आसन् । येषां । पूर्वेषां । अशृणोः । ऋषीणां ।
अध । अहं । त्वा । मघऽवन् । जोहवीमि । त्वं । नः । इंद्र । असि । प्रऽमतिः । पिताऽइव ॥ ४ ॥

उतापि च । घेति पूरणः । हे मघवन् येषां पूर्वेषामृषीणां स्तुतीरशृणोः ते पूर्व ऋषयः पुरुष्या इत् पुरुषेभ्यो हिता एवासन् । अधातोऽहं त्वा त्वां जोहवीमि । भृशं स्तौमि । अपि च हे इंद्र त्वं नोऽस्माकं पितेव जनक इव प्रमतिर्बंधुरसि ॥

वोचेमेदिंद्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
वोचेम । इत् । इंद्रं । मघऽवानं । एनं । महः । रायः । राधसः । यत् । दत् । नः ।
यः । अर्चतः । ब्रह्मऽकृतिं । अविष्ठः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ५ ॥

इयं व्याख्यातचरा ॥ ॥ १३ ॥

आ नो देवेति पंचर्चं चयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं । आ नो देवेत्यनुक्रांतं ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र आ न इत्ययमैंद्रस्तृचः । सूत्र्यते हि । आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् प्र वो यज्ञेषु देवयंतो अर्चन् । आ॰ ८. ९. । इति ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इंद्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥
आ । नः । देव । शवसा । याहि । शुष्मिन् । भव । वृधः । इंद्र । रायः । अस्य ।
महे । नृम्णाय । नृऽपते । सुऽवज्र । महि । क्षत्राय । पौंस्याय । शूर ॥ १ ॥

हे देव द्योतमान शुष्मिन्बलवन्निंद्र नोऽस्माञ्छवसा बलेन सार्धमा याहि । अस्मास्वभ्यं देयस्य रायो धनस्य वृधो वर्धयिता च भव । हे नृपते सुवज्र महे महते नृम्णाय बलाय च भव । बाधो नृम्णमिति बलनामसु पाठात् । हे शूर महि महते क्षत्राय शत्रूणां हिंसकाय । क्षदिर्हिंसाकर्मा । पौंस्याय वीर्याय च भव ॥

हवंत उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रंधया सुहंतु ॥ २ ॥

हवंते । ऊं इति । त्वा । हव्यं । विऽवाचि । तनूषु । शूराः । सूर्यस्य । सातौ ।
त्वं । विश्वेषु । सेन्यः । जनेषु । त्वं । वृत्राणि । रंधय । सुऽहंतु ॥२॥

हे इंद्र हव्यं ह्वातव्यं त्वा त्वां विवाचि विविधा वाचो यस्मिन्प्रादुर्भवंति तस्मिन्युद्धे शूराः पुरुषास्तनूष्वंगेषु रक्षणीयासु सूर्यस्य सातौ संभजने । सरति गच्छतीत्यायुरत्र सूर्यो विवक्षितः । तस्य चिरकालं प्राप्त्यर्थं हवंते । ह्वयंति । विश्वेषु सर्वेषु जनेषु त्वमेव सेन्यः सेनार्होऽसि । अपि च त्वं वृत्राणि शत्रून् सुहंतु सुहंतुनाम्ना वज्रेण रंधय । अस्मभ्यं वशीकुरु ॥

अहा यदिंद्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥
अहा । यत् । इंद्र । सुऽदिना । विऽउच्छान् । दधः । यत् । केतुं । उपऽमं । समत्ऽसु ।
नि । अग्निः । सीदत् । असुरः । न । होता । हुवानः । अत्र । सुऽभगाय । देवान् ॥३॥

हे इंद्र यद्यदाहाहानि सुदिना सुदिनानि व्युच्छान् व्युच्छेयुः यद्यदा च समत्सु संग्रामेषु केतुं ज्ञानमुपममंतिकं दधः धारयेः तदासुरो बलवान् होता देवानामाह्वाताग्निः सुभगायास्माकं शोभनधनप्राप्तये देवान्हुवानो ह्वयन्नत्रास्मिन्यज्ञे नि षीदत् । न्यसीदत् ॥

वयं ते त इंद्र ये च देव स्तवंत शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवंत ॥४॥
वयं । ते । ते । इंद्र । ये । च । देव । स्तवंत । शूर । ददतः । मघानि ।
यच्छ । सूरिऽभ्यः । उपऽमं । वरूथं । सुऽआभुवः । जरणां । अश्नवंत ॥४॥

हे देव शूरेंद्र ते तव वयं वसिष्ठाः स्वभूताः । ये जना मदीयपुत्रपौत्रादयो मघानि मंहनीयानि हवींषि ददतः प्रयच्छंतः स्तवंत स्तुवंति तेऽपि तव स्वभूताः । तेभ्य उभयेभ्यः सूरिभ्यः स्तोतृभ्य उपमं श्रेष्ठं वरूथं गृहं यच्छ । प्रयच्छ । अपि च त उभे स्वाभुवः सुसमृद्धाः संतो जरणां जरामश्नवंत । प्राप्नुवंतु ॥

वोचेमेदिंद्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
वोचेम । इत् । इंद्रं । मघऽवानं । एनं । महः । रायः । राधसः । यत् । ददत् । नः ।
यः । अर्चतः । ब्रह्मऽकृतिं । अविष्ठः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

एषा सिद्धा ॥ ॥१४॥

प्र व इंद्रायेति द्वादशर्चं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं गायत्रमैंद्रं । दशम्याद्यास्तिस्रो विराजः शिष्टा गायत्र्यः । तथा चानुक्रांतं । प्र वो द्वादश गायत्रं त्रिविराळंतमिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ प्रथमे रात्रिपर्याये मैत्रावरुणशस्त्रे प्र व इंद्रायेत्याद्यस्तृचः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । प्र व इंद्राय मादनं प्र कृतान्यृजीषिणः । आ॰ ६. ४. । इति ॥ अतिरात्रे प्रथमे पर्याये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे वयमिंद्र त्वायवोऽभीत्यनुरूपस्तृचः । तथा च सूत्रितं । वयमिंद्र त्वायवोऽभि वार्त्रहत्यायेत्युत्तमामुद्धरेत् । आ॰ ६. ४. । इति ॥ चतुर्थेऽहनि माध्यंदिनसवने होत्रकशस्त्र आरंभणीयाभ्य ऊर्ध्वं वैराज एकस्तृच आहवनीयः । तदर्थाः प्र वो महे महिवृधे भरध्वमित्याद्यास्तिस्रः । सूत्रितं च । प्र वो महे महिवृधे भरध्वमिति षतस्रस्तिस्रश्च विराजः । आ॰ ७. ११. । इति ॥

प्र व इंद्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

प्र । वः । इंद्राय । मादनं । हरिऽअश्वाय । गायत । सखायः । सोमऽपाव्ने ॥१॥

हे सखायः वो यूयं हर्यश्वाय सोमपाव्ने सोमानां पात्र इंद्राय मादनं मदकरं स्तोत्रं प्र गायत ॥

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

शंस । इत् । उक्थं । सुऽदानवे । उत । द्युक्षं । यथा । नरः । चकृम । सत्यऽराधसे ॥२॥

उतापि च हे स्तोतः सुदानवे शोभनदानाय सत्यराधसे सत्यधनायेंद्रायोक्थं स्तोमं यथा नरोऽन्ये स्तोतारो द्युक्षं दीप्तिः साधनभूतं स्तोत्रं शंसंति तद्वत्त्वमपि शंस । उच्चारय । इदिति पूरणः । वयं च चकृम । स्तोत्रं करवाम ॥

त्वं न इंद्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

त्वं । नः । इंद्र । वाजऽयुः । त्वं । गव्युः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वं । हिरण्यऽयुः । वसो इति ॥३॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माकं वाजयुरन्नकामो भव । हे शतक्रतो त्वं नोऽस्माकं गव्युर्गोकामो भव । हे वसो वासयितरिंद्र त्वं हिरण्ययुर्हिरण्यकामोऽपि भव ॥ छंदसि परेच्छायामपि दृश्यते क्यजिति क्यच् ॥

वयमिंद्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्व१स्य नो वसो ॥४॥

वयं । इंद्र । त्वाऽयवः । अभि । प्र । नोनुमः । वृषन् । विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥४॥

हे वृषन् कामानां वर्षितरिंद्र त्वायवस्त्वत्कामा वयं वसिष्ठास्त्वामभि प्र णोनुमः । प्रकर्षेण स्तुमः । हे वसो वासयितरिंद्र अस्येदमस्मदीयं स्तोत्रं तु क्षिप्रं विद्धि । अवधारय ॥

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रंधीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५॥

मा । नः । निदे । च । वक्तवे । अर्यः । रंधीः । अराव्णे । त्वे इति । अपि । क्रतुः । मम ॥५॥

हे इंद्र अर्यः स्वामी त्वं वक्तवे परुषवाक्यानां वक्त्रे निदे निंदित्रेऽराव्णेऽदात्रे नोऽस्मान् मा रंधीः । वशं मा कार्षीः । अप्यपि च त्वे त्वयि मम क्रतुर्मदीयं स्तोत्रलक्षणं कर्म गच्छत्विति शेषः । अस्मदीयं स्तोत्रं भवच्चित्ते प्रविशत्वित्यर्थः ॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६॥

त्वं । वर्म । असि । सऽप्रथः । पुरःऽयोधः । च । वृत्रऽहन् । त्वया । प्रति । ब्रुवे । युजा ॥६॥

हे वृत्रहञ्छत्रूणां हिंसकेंद्र त्वं वर्मास्माकं कवचमसि । कवचवद्रक्षकोऽसीत्यर्थः । सप्रथः सर्वतः पृथुश्चासि । पुरोयोधश्च पुरो योद्धा चासि । त्वया युजा त्वया सहायेन प्रति ब्रुवे । शत्रून् प्रतिब्रवीमि । प्रतिहन्मीत्यर्थः ॥ ॥१५॥

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इंद्र रोदसी ॥७॥

महान् । उत । असि । यस्य । ते । अनु । स्वधावरी इति स्वधाऽवरी । सहः । मम्नाते इति । इंद्र । रोदसी इति ॥७॥

उतापि च हे इंद्र त्वं महानसि। सर्वाधिकोऽसि। हे इंद्र यस्य ते तव सहो बलं स्वधावरी अन्नवती रोदसी द्यावापृथिव्यावनु मन्नाति अनुमन्येते। त्वदीयं सहः सर्वाधिकमित्यत्रोभावपि लोकौ विसंवादं न कुरुत इत्यर्थः॥

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी। नक्षमाणा सह द्युभिः॥८॥

तं। त्वा। मरुत्वती। परि। भुवत्। वाणी। सऽयावरी। नक्षमाणा। सह। द्युऽभिः॥८॥

हे इंद्र तमुक्तगुणविशिष्टं त्वा त्वां सयावरी त्वया सह गंत्री। यत्र यत्र त्वं यासि तत्र तत्र यांतीत्यर्थः। द्युभिस्तेजोभिर्नक्षमाणा व्याप्नुवंती मरुत्वती। मरुतः स्तोतारः। तद्वती वाणी स्तुतिः परि भुवत्। परिभवतु। परिभवतिरत्र परिग्रहार्थीयः। परिगृह्णात्वित्यर्थः॥

ऊर्ध्वासस्त्वान्विंदवो भुवन्दस्ममुप द्यवि। सं ते नमंत कृष्टयः॥९॥

ऊर्ध्वासः। त्वा। अनु। इंदवः। भुवन्। दस्मं। उप। द्यवि। सं। ते। नमंत। कृष्टयः॥९॥

हे इंद्र उप द्यवि द्युलोकसमीपे स्थितं दस्मं दर्शनीयं त्वा त्वामनूद्दिश्योर्ध्वास ऊर्ध्वा इंदवोऽस्मदीयाः सोमा भुवन्। भवंति। कृष्टयः प्रजाश्च ते तुभ्यं सं नमंत। भुवि सोमास्त्वदर्थमेव जायंते प्रजाश्च त्वामेव प्रणमंतीतींद्रस्तुतिः॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वं।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः॥१०॥

प्र। वः। महे। महिऽवृधे। भरध्वं। प्रऽचेतसे। प्र। सुऽमतिं। कृणुध्वं।
विशः। पूर्वीः। प्र। चर। चर्षणिऽप्राः॥१०॥

हे मदीयाः पुरुषाः वो यूयं महिवृधे महतां धनानां वर्धयित्रे महे महत इंद्राय प्र भरध्वं। सोमान्प्रणयत। प्रचेतसे प्रकृष्टमतय इंद्राय सुमतिं सुष्टुतिं च प्र कृणुध्वं। प्रकुरुत। अथ प्रत्यक्षस्तुतिः। हे इंद्र चर्षणिप्राः कामैः प्रजानां पूरयिता त्वं पूर्वीर्बहुविधा पूरयित्रीर्विशः प्रजाः प्र चर। अभिगच्छ॥

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिंद्राय ब्रह्म जनयंत विप्राः।
तस्य व्रतानि न मिनंति धीराः॥११॥

उरुऽव्यचसे। महिने। सुऽवृक्तिं। इंद्राय। ब्रह्म। जनयंत। विप्राः।
तस्य। व्रतानि। न। मिनंति। धीराः॥११॥

उरुव्यचसे पृथुव्याप्तये महिने महते यस्मा इंद्राय सुवृक्तिं स्तुतिं ब्रह्मान्नं हविश्च विप्राः प्राज्ञा जनयंत जनयंति तस्येंद्रस्य व्रतानि रक्षणादीनि कर्माणि धीराः प्राज्ञा देवा अपि न मिनंति। न हिंसंति॥

इंद्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन्॥१२॥

इंद्रं। वाणीः। अनुत्तऽमन्युं। एव। सत्रा। राजानं। दधिरे। सहध्यै।
हरिऽअश्वाय। बर्हय। सं। आपीन्॥१२॥

सत्रा राजानं सर्वजगत ईश्वरमनुत्तमन्युं । केनाप्यनुत्तोऽबाधितो मन्युः क्रोधो यस्य सः । तमेवेंद्रं वाणीः स्तुतयः सहध्यै स्तोत्राणि शत्रूणामभिभवितुं दधिरे । अतो हेतोर्हे स्तोतः त्वमपि हर्यश्वायेंद्राय । हर्यश्वमिंद्रं स्तोतुमित्यर्थः । आपीन् बंधून् सं बर्हय । उत्साहय ॥ ॥१६॥

मो षु त्वेति सप्तविंशत्यृचं पंचदशं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । मो षु सप्ताधिका प्रागाथं तृतीया द्विपदा सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरंत्यं प्रगाथमालेभे सोऽर्धर्च उक्तेऽदह्यत । तं पुत्रोक्तं वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकं वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति तांडकमिति । मंडलद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः । इंद्र क्रतुं न इति प्रगाथस्यार्धर्चस्य च वसिष्ठपुत्रः शक्तिर्वसिष्ठो वा । इंद्रो देवता । अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः । तृतीया तु द्विपदा विराट् ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावेतत्सूक्तं । तत्र द्विपदामभि त्वा शूरेत्येतं राथंतरं प्रगाथं नकिः सुदास इति प्रगाथं च वर्जयेत् । तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं । मो षु त्वा वाघतश्चनेत्येतस्य द्विपदां चोद्धरति राथंतरं च प्रगाथमथ हास्य नकिः सुदासो रथमित्येतं प्रगाथमुद्धृत्य त्वामिदा ह्यो नर इत्येतं प्रगाथं प्रत्यवदधाति । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि पंचमेऽहनि च निष्केवल्ये मो षु त्वा वाघत इति प्रगाथः सद्विपदः । सूत्रितं च । मो षु त्वा वाघतश्चनेति सद्विपद उपसमस्येद्द्विपदां । आ० ७. ३. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि मरुत्वतीये प्राक्तनान्मरुत्वतीयात्प्रगाथादनंतरं नकिः सुदास इति प्रगाथं शंसेत् । पृष्ठ्याभिप्लवषडहयोस्तृतीये षष्ठेऽहनि चायं प्रगाथः । तथैव सूत्रितं । नकिः सुदासो रथमिति मरुत्वतीया ऊर्ध्वं नित्यादिति । एवं स्थितान् प्रगाथान्पृष्ठ्याभिप्लवयोरन्वहं पुनःपुनरावर्तयेयुः । आ० ७. ३. । इति ॥ अग्निष्टोमे माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्र उदिद्न्वस्य रिच्यत इति प्रगाथः । तथा च सूत्रितं । उदिन्वस्य रिच्यते भूय इत् । आ० ५. १६. । इति ॥ अग्निष्टोमे माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणशस्त्रे कस्तमिंद्रेति प्रगाथः । सूत्रितं च । कस्तमिंद्र त्वावसुं सद्यो ह जातः । आ० ५. १६. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणशस्त्रस्यायं प्रगाथः । अहर्गणेष्वपि द्वितीयादिष्वहःसु । सूत्रितं च । कस्तमिंद्र त्वावसुं कन्नव्यो अतसीनां । आ० ७. ४. । इति । आरंभणीयाः पर्यासान् कद्वतोऽहरहःशस्यानीति होत्रकाः । आ० ७. १. । इति ॥ पृष्ठ्यषडहस्य तृतीयेऽहनि निष्केवल्ये वैरूपसामपक्षे यदिंद्र यावत इत्यनुरूपस्तृचः । सूत्रितं च । यदिंद्र यावतस्त्वमिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ७. १०. । इति ॥ अग्निष्टोमे चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्रे तरणिरित्सिषासतीति वैकल्पिकस्तृचः । सूत्रितं च । तरोभिर्वो विदद्वसुं तरणिरित्सिषासति । आ० ७. ४. । इति ॥ अग्निष्टोमे निष्केवल्यशस्त्रे रथंतरसामपक्षेऽभि त्वा शूरेति प्रगाथः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । अभि त्वा शूर नोनुमोऽभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ५. १५. । इति ॥ आश्विनशस्त्रेऽप्ययं प्रगाथः । तथैव सूत्रितं च । अभि त्वा शूर नोनुमो बह्वः सूरचक्षस इति प्रगाथाः । आ० ६. ५. । इति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये दक्षिणपक्षेऽयं प्रगाथः । तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं । अभि त्वा शूर नोनुमोऽभि त्वा पूर्वपीतय इति रथंतरस्य स्तोत्रियानुरूपौ प्रगाथौ । ऐ० आ० ५. ८. । इति ॥ आश्विनशस्त्र इंद्र क्रतुं न इति प्रगाथः । सूत्रितं च । इंद्र क्रतुं न आ भराभि त्वा शूर नोनुमः । आ० ६. ५. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रेऽयं वैकल्पिकः स्तोत्रियः प्रगाथः । सूत्रितं च । इंद्र क्रतुं न आ भरेंद्र ज्येष्ठं न आ भर । आ० ७. ४. । इति ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥
मो इति । सु । त्वा । वाघतः । चन । आरे । अस्मत् । नि । रीरमन् ।
आरात्तात् । चित् । सधऽमादं । नः । आ । गहि । इह । वा । सन् । उप । श्रुधि ॥१॥

हे इंद्र त्वा त्वया वाघतश्चन यजमाना अप्यस्मदस्मत्त आरे दूरे मो नि रीरमन् । न नितरां रमयंतु । अतस्त्वमारात्ताच्चिद्दूरेऽपि वर्तमानोऽस्मदीयं सधमादं यज्ञमा गहि । आगच्छ । इह वात्रापि वा सन् विद्यमान उप श्रुधि । अस्मदीयं स्तोत्रमुपशृणु ॥

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इंद्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥
इमे । हि । ते । ब्रह्मऽकृतः । सुते । सचा । मधौ । न । मक्षः । आसते ।
इंद्रे । कामं । जरितारः । वसुऽयवः । रथे । न । पादं । आ । दधुः ॥२॥

हे इंद्र ते त्वदर्थं सुतेऽभिषुते सोमे ब्रह्मकृतः स्तोत्रकृतो मधौ न मधुनीव मक्षो मक्षिकाः सचा सहासते । उपविशंति । अथ परोक्षस्तुतिः । वसूयवो धनकामा जरितारः स्तोतारः काममिष्टमिंद्रे रथे न पादं रथे पादमिवा दधुः । समर्पयंति ॥

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥३॥
रायःऽकामः । वज्रऽहस्तं । सुऽदक्षिणं । पुत्रः । न । पितरं । हुवे ॥३॥

रायस्कामो धनकामोऽहं सुदक्षिणं शोभनदानं वज्रहस्तमिंद्रं पुत्रो न पुत्र इव पितरं हुवे । ह्वयामि ॥

इम इंद्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥४॥
इमे । इंद्राय । सुन्विरे । सोमासः । दधिऽआशिरः ।
तान् । आ । मदाय । वज्रऽहस्त । पीतये । हरिऽभ्यां । याहि । ओकः । आ ॥४॥

हे वज्रहस्त दध्याशिरो दधिमिश्रणा इमे सोमासः सोमा इंद्राय तुभ्यं सुन्विरे । सुता बभूवुः । तान् सोमान्मदाय मदार्थं पीतये पानार्थमोको यज्ञसदनमाभि हरिभ्यामश्वाभ्यामा याहि । आगच्छ ॥

श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद्गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्संतमा मिनत् ॥५॥
श्रवत् । श्रुत्ऽकर्णः । ईयते । वसूनां । नु । चित् । नः । मर्धिषत् । गिरः ।
सद्यः । चित् । यः । सहस्राणि । शता । ददत् । नकिः । दित्संतं । आ । मिनत् ॥५॥

श्रुत्कर्णो याञ्चाश्रवणरूपकर्ण इंद्रो वसूनां वसूनीयते । याच्यते । नोऽस्मदीया गिरो याञ्चावाक्यानि श्रवत् । शृणोतु । नू चिन्नैव मर्धिषत् । हिनस्तु । अश्रवणेन याञ्चावाक्यानि निष्फलानि न करोत्वित्यर्थः । अपि चेंद्रः सद्यश्चित् सद्य एव याञ्चानंतरमेव सहस्राणि शतानि च ददत् । प्रयच्छेत् । दित्संतं दातुमिच्छंतं तमिंद्रं नकिरा मिनत् । न हिंस्यात् । कश्चिदपि न वारयेदित्यर्थः ॥ ॥१७॥

स वीरो अप्रतिष्कुत इंद्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्सुनोत्या च धावति ॥६॥
सः । वीरः । अप्रतिऽस्कुतः । इंद्रेण । शूशुवे । नृऽभिः ।
यः । ते । गभीरा । सवनानि । वृत्रऽहन् । सुनोति । आ । च । धावति ॥६॥

हे वृत्रहन् ते त्वदर्थं यः पुमान् गभीरा गभीराणि सवनानि सोमान् सुनोति आ धावति च त्वां

स्तुतिभिरुपधावति च स वीर इंद्रेण हेतुनाप्रतिष्कुतः केनाप्यप्रतिगतोऽप्रतिशब्दितो वा भवेत् । नृभिः परिचारकैः शुशुवे । उपगम्यते च । श्वयतिर्गतिकर्मा ॥

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयं ॥७॥
भव । वरूथं । मघऽवन् । मघोनां । यत् । संऽअजासि । शर्धतः ।
वि । त्वाऽहतस्य । वेदनं । भजेमहि । आ । दुःऽनशः । भर । गयं ॥७॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र मघोनां हविष्मतां वरूथमुपद्रवाणां वारकं वर्म भव । यद्यस्त्वं शर्धत उत्सहमानाञ्छत्रून् समजासि संप्रेरयेः । अपि च त्वाहतस्य त्वया हतस्य शत्रोर्वेदनं धनं वि भजेमहि । विशेषेण लभेमहि । किंच दुर्नशो नाशयितुमशक्यस्त्वं गयं गृहं धनं वा भर । अस्मभ्यमाहर ॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिंद्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥८॥
सुनोत । सोमऽपाव्ने । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे ।
पचत । पक्तीः । अवसे । कृणुध्वं । इत् । पृणन् । इत् । पृणते । मयः ॥८॥

हे मदीयाः पुरुषाः वज्रिणे सोमपाव्ने सोमस्य पात्र इंद्राय सोमं सुनोत । अभिषुणुत । अवस इंद्रं तर्पयितुं पक्तीः पक्तव्यान् पुरोडाशादीन् पचत च । कृणुध्वमित् । इंद्रप्रियकराणि कर्माणि च कुरुतैव । इंद्रो हि मयः सुखं पृणन्निद्यजमानाय प्रयच्छन्नेव पृणते हवींषीति शेषः ॥

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥९॥
मा । स्रेधत । सोमिनः । दक्षत । महे । कृणुध्वं । राये । आऽतुजे ।
तरणिः । इत् । जयति । क्षेति । पुष्यति । न । देवासः । कवत्नवे ॥९॥

हे मदीया जनाः सोमिनः सोमवतो यागान्मा स्रेधत । मा हिंसिष्ट । दक्षत । यागादिकं कर्तुमुत्सहध्वं च । महे महत आतुजे । तुजिर्हिंसाकर्मा दानकर्मा वा । शत्रूणामभिहिंसकाय धनानां प्रदात्रे वेंद्राय राये धनलाभार्थं कृणुध्वं । कर्माणि कुरुत च । तरणिरित् कर्मसु त्वरित एव जयति शत्रून् । क्षेति । गृहे निवसति च । पुष्यति । प्रजया पशुभिश्च पुष्टो भवति । कवत्नवे कुत्सितक्रियायै ॥ कवोपसृष्टस्यातेः सातत्यगमनकर्मणो रूपं कवत्नुरिति ॥ देवासो देवा न भवंतीति शेषः । सुखप्राप्तये भवंतीत्यर्थः ॥

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इंद्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१०॥
नकिः । सुऽदासः । रथं । परि । आस । न । रीरमत् ।
इंद्रः । यस्य । अविता । यस्य । मरुतः । गमत् । सः । गोऽमति । व्रजे ॥१०॥

सुदासः शोभनदानस्य यजमानस्य रथं नकिः पर्यास । कश्चिन्न पर्यस्यति । न रीरमत् । न रमयति च । आत्मार्थं न कश्चिदेनं गृह्णातीत्यर्थः । अपि च यस्येंद्रोऽविता रक्षिता यस्य च मरुतोऽवितारः स गोमति गोयुक्ते व्रजे गोष्ठे गमत् । गच्छेत् ॥ ॥१८॥

गमद्वाजं वाजयन्निंद्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणां ॥११॥
गमत् । वाजं । वाजयन् । इंद्र । मर्त्यः । यस्य । त्वं । अविता । भुवः ।
अस्माकं । बोधि । अविता । रथानां । अस्माकं । शूर । नृणां ॥११॥

हे इंद्र त्वं यस्य मर्त्यस्याविता रक्षिता भुवः भवेः स मर्त्यो वाजयन् स्तोत्रेण त्वां बलिनं कुर्वन् वाजमन्नं गमत् । गच्छेत् । अपि च हे शूर अस्माकं वासिष्ठानां रथानामविता रक्षिता बोधि । भव ॥ भवतेर्लोटि रूपं । भकारस्य बकारश्छांदसः ॥ अस्माकं नृणां पुत्रादीनां चाविता भव ॥

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽंशो धनं न जिग्युषः ।
य इंद्रो हरिवान्न दभंति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥
उत् । इत् । नु । अस्य । रिच्यते । अंशः । धनं । न । जिग्युषः ।
यः । इंद्रः । हरिऽवान् । न । दभंति । तं । रिपः । दक्षं । दधाति । सोमिनि ॥१२॥

अस्येंद्रस्यांशो यष्टो सोमस्य भागोऽतिरिच्यतेऽन्येभ्योऽपि देवेभ्यः । इंद्रस्य त्रिष्वपि सवनेषु सोमपानमस्ति माध्यंदिनं हि सर्वमिंद्रमिति । जिग्युषो जितवतो धनं न धनमिव । उदिन्न्विति त्रयः पूरणाः । अपि च यो हरिवानिंद्रः सोमिनि यजमाने दक्षं बलं दधाति संदधाति तं रिपो रिपवो न दभंति । न हिंसंति ॥

मंत्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरंति तं य इंद्रे कर्मणा भुवत् ॥१३॥
मंत्रं । अखर्वं । सुऽधितं । सुऽपेशसं । दधात । यज्ञियेषु । आ ।
पूर्वीः । चन । प्रऽसितयः । तरंति । तं । यः । इंद्रे । कर्मणा । भुवत् ॥१३॥

हे जनाः अखर्वमनल्पं सुधितं सुविहितं सुपेशसं शोभनरूपं मंत्रं स्तोत्रं यज्ञियेषु यजनीयेषु देवेषु मध्य इंद्राय दधात । विधत्त । यो जनः कर्मणा स्तुत्यादिरूपेणेंद्र इंद्रस्य चित्ते भुवत् भवेत् तं जनं पूर्वीर्बह्व्यः प्रसितयः पाशादीनि बंधनानि । चनेति समुदायो नेत्यर्थे वर्तते । न तरंति । न व्याप्नुवंतीत्यर्थः ॥

कस्तमिंद्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४॥
कः । तं । इंद्र । त्वाऽवसुं । आ । मर्त्यः । दधर्षति ।
श्रद्धा । इत् । ते । मघऽवन् । पार्ये । दिवि । वाजी । वाजं । सिसासति ॥१४॥

हे इंद्र तव चित्ते यो भवेत् त्वावसुं । त्वं वसुर्व्यापको यस्येति बहुव्रीहिः । तं जनं को मर्त्य आ दधर्षति । आधर्षेत् । हे मघवन् ते त्वदर्थं यः श्रद्धा श्रद्धया युक्तः सन् वाजी हविष्मान् भवेत् पार्ये दिवि सौत्येऽहनि स वाजमन्नं बलं वा सिषासति । सेवते ॥

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५॥

स्तुतिभिरुपधावति च स वीर इंद्रेण हेतुनाप्रतिष्कुतः केनाप्यप्रतिगतोऽप्रतिशब्दितो वा भवेत् । नृभिः परिचारकैः शुशुवे । उपगम्यते च । श्वयतिर्गतिकर्मा ॥

भवा॒ वरू॑थं मघव॒न्मघो॑नां॒ यत्स॒मजा॑सि॒ शर्ध॑तः ।
वि त्वाह॑तस्य॒ वेद॑नं भजेमह्या दू॒णाशो॑ भरा॒ गय॑म् ॥७॥
भव॑ । वरू॑थम् । म॒घ॒ऽव॒न् । म॒घोना॑म् । यत् । स॒म्ऽअजा॑सि । शर्ध॑तः ।
वि । त्वाऽह॑तस्य । वेद॑नम् । भ॒जे॒म॒हि॒ । आ । दुः॒ऽनशः॑ । भ॒र॒ । गय॑म् ॥७॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र मघोनां हविष्मतां वरूथमुपद्रवाणां वारकं वर्म भव । यद्यस्त्वं शर्धत उत्सहमानाञ्छत्रून् समजासि संप्रेरयेः । अपि च त्वाहतस्य त्वया हतस्य शत्रोर्वेदनं धनं वि भजेमहि । विशेषेण लभेमहि । किंच दुर्णशो नाशयितुमशक्यस्त्वं गयं गृहं धनं वा भर । अस्मभ्यमाहर ॥

सु॒नोता॑ सोम॒पाव्ने॒ सोम॒मिंद्रा॑य व॒ज्रिणे॑ ।
पच॑ता प॒क्तीरव॑से कृणु॒ध्वमित्पृ॒णन्नित्पृ॑ण॒ते मयः॑ ॥८॥
सु॒नोत॑ । सो॒म॒ऽपाव्ने॑ । सोम॑म् । इंद्रा॑य । व॒ज्रिणे॑ ।
पच॑त । प॒क्तीः । अव॑से । कृ॒णु॒ध्वम् । इत् । पृ॒णन् । इत् । पृ॒ण॒ते । मयः॑ ॥८॥

हे मदीयाः पुरुषाः वज्रिणे सोमपाव्ने सोमस्य पात्र इंद्राय सोमं सुनोत । अभिषुणुत । अवस इंद्रं तर्पयितुं पक्तीः पक्तव्यान् पुरोडाशादीन् पचत च । कृणुध्वमित् । इंद्रप्रियकराणि कर्माणि च कुरुतैव । इंद्रो हि मयः सुखं पृणन्निद्यजमानाय प्रयच्छन्नेव पृणते हवींषीति शेषः ॥

मा स्रे॑धत सोमिनो॒ दक्ष॑ता म॒हे कृ॑णु॒ध्वं रा॒य आ॒तुजे॑ ।
त॒रणि॒रिज्ज॑यति॒ क्षेति॒ पुष्य॑ति॒ न दे॒वासः॑ कव॒त्नवे॑ ॥९॥
मा । स्रे॒ध॒त॒ । सो॒मि॒नः॒ । दक्ष॑त । म॒हे । कृ॒णु॒ध्वम् । रा॒ये । आ॒ऽतुजे॑ ।
त॒रणिः॑ । इत् । ज॒य॒ति॒ । क्षेति॑ । पुष्य॑ति । न । दे॒वासः॑ । क॒व॒त्नवे॑ ॥९॥

हे मदीया जनाः सोमिनः सोमवतो यागाख्या स्रेधत । मा हिंसिष्ट । दक्षत । यागादिकं कर्तुमुत्सहध्वं च । महे महत आतुजे । तुजिर्हिंसाकर्मा दानकर्मा वा । शत्रूणामभिहिंसकाय धनानां प्रदात्रे वेंद्राय राये धनलाभार्थं कृणुध्वं । कर्माणि कुरुत च । तरणिरित् कर्मसु त्वरित एव जयति शत्रून् । क्षेति । गृहे निवसति च । पुष्यति । प्रजया पशुभिश्च पुष्टो भवति । कवत्नवे कुत्सितक्रियायै ॥ कवोपपदष्टस्यातेः सातत्यगमनकर्मणो रूपं कवत्नुरिति ॥ देवासो देवा न भवंतीति शेषः । सुखप्राप्तये भवंतीत्यर्थः ॥

नकि॑ः सु॒दासो॒ रथं॒ पर्या॑स॒ न री॑रमत् ।
इंद्रो॒ यस्या॑वि॒ता यस्य॑ म॒रुतो॒ गम॒त्स गोम॑ति व्र॒जे ॥१०॥
नकिः॑ । सु॒ऽदासः॑ । रथ॑म् । परि॑ । आ॒स॒ । न । री॒र॒म॒त् ।
इंद्रः॑ । यस्य॑ । अ॒वि॒ता । यस्य॑ । म॒रुतः॑ । गम॑त् । सः । गोऽम॑ति । व्र॒जे ॥१०॥

सुदासः शोभनदानस्य यजमानस्य रथं नकिः पर्यास । कश्चिन्न पर्यस्यति । न रीरमत् । न रमयति च । आत्मार्थं न कश्चिदेनं गृह्णातीत्यर्थः । अपि च यस्येंद्रोऽविता रक्षिता यस्य च मरुतोऽवितारः स गोमति गोयुक्ते व्रजे गोष्ठे गमत् । गच्छेत् ॥ ॥१८॥

कुहचिद्विदे । कुत्रचिद्विद्यमानः कुहचिद्वित् । तस्मै । यत्र क्वापि विद्यमानायेत्यर्थः । मंहयते पूजयते जनाय दिवे दिवे प्रतिदिनं रायो धनानि धियेयमित् । द्रव्यामेव । आकारः पूरणः । एवमिंद्रस्य वाक्यं श्रुत्वा संतुष्ट ऋषिर्वदति । हे मघवन् त्वत्त्वत्तोऽन्यदस्माकमाप्यं ज्ञातियं न ह्यस्ति । वस्यः प्रशस्यः पिता चन पालयिता च त्वदन्यो नास्तीत्यर्थः ॥

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इंद्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वं ॥२०॥
तरणिः । इत् । सिसासति । वाजं । पुरंऽध्या । युजा ।
आ । वः । इंद्रं । पुरुऽहूतं । नमे । गिरा । नेमिं । तष्टाऽइव । सुऽद्र्वं ॥२०॥

तरणिरित् स्तुत्यादौ कर्मणि त्वरित एव पुमान् पुरंध्या महत्या धिया युजा सहायभूतया वाजमन्नं सिषासति । संभजते । पुरुहूतं बहुभिराहूतमिंद्रं वस्त्वां गिरा स्तुत्याहमा नमे नेमिं चक्रस्य वलयं सुद्र्वं शोभनदारुं तष्टेव । यथा वर्धकिर्दारुनेमिमानमयति तद्वदित्यर्थः ॥ ॥२०॥

न दुष्टुती मर्त्यो विंदते वसु न स्रेधंतं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२१॥
न । दुःऽस्तुती । मर्त्यः । विंदते । वसु । न । स्रेधंतं । रयिः । नशत् ।
सुऽशक्तिः । इत् । मघऽवन् । तुभ्यं । माऽवते । देष्णं । यत् । पार्ये । दिवि ॥२१॥

मर्त्यो मनुष्यो दुष्टुती दुष्टुत्या वसु धनं न विंदते । इंद्रं स्तुवन्नेव वसु लभत इत्यर्थः । स्रेधंतं हिंसंतं । इंद्रविषयस्तुत्यादिकर्माण्यकुर्वंतमित्यर्थः । रयिर्धनं न नशत् । न व्याप्नोति । हे मघवन् त्वया पार्ये दिवि सौत्ये दिवसे मावते मत्सदृशाय देष्णं दातव्यं यद्धनमस्ति तत्तुभ्यं त्वत्तः सुशक्तिरित् सुकर्मैव । विंदत इति व्यवहितमप्यनुषज्यतेऽध्याहारस्यांतिकत्वात् ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिंद्र तस्थुषः ॥२२॥
अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाःऽइव । धेनवः ।
ईशानं । अस्य । जगतः । स्वःऽदृशं । ईशानं । इंद्र । तस्थुषः ॥२२॥

हे शूरेंद्र अस्य जगतो जंगमस्येशानमीश्वरं तस्थुषः स्थावरस्य चेशानं । ईशानमिति पदस्यावृत्तिरादरार्था । स्वर्दृशं सर्वदृशं त्वा त्वामदुग्धा इव धेनवो यथादुग्धा धेनवः क्षीरपूर्णोधस्त्वेन वर्तंते तद्वत्सोमपूर्णचमसत्वेन वर्तमाना वयमभि नोनुमः । भृशमभिष्टुमः ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायंतो मघवन्निंद्र वाजिनो गव्यंतस्त्वा हवामहे ॥२३॥
न । त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जातः । न । जनिष्यते ।
अश्वऽयंतः । मघऽवन् । इंद्र । वाजिनः । गव्यंतः । त्वा । हवामहे ॥२३॥

हे मघवन्निंद्र दिव्यो दिवि भवस्त्वावान् त्वत्सदृशोऽन्यो न जायते । पार्थिवः पृथिव्यां भवोऽपि

त्वावानन्यो न जायते । दिव्यः पार्थिवो वा त्वावानन्यो न जातः । न च जनिष्यते । पृथिव्यां दिवि च त्रिष्वपि लोकेषु त्वत्सदृशः कश्चिन्नासीत्यर्थः । अश्वायंतोऽश्वानिच्छंतो वाजिनो वाजमिच्छंतः ॥ इच्छायामिनिप्रत्ययः ॥ हविष्मंतो वा गव्यंतो गा इच्छंतश्च वयं त्वा त्वां हवामहे । ह्वयामः ॥

अभी षतस्तदा भरेंद्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥२४॥
अभि । सतः । तत् । आ । भर । इंद्र । ज्यायः । कनीयसः ।
पुरुऽवसुः । हि । मघऽवन् । सनात् । असि । भरेऽभरे । च । हव्यः ॥२४॥

हे ज्यायो ज्यायन्निंद्र ॥ आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवदितींद्रपदस्याविद्यमानवद्भावात् ज्याय इत्यस्य सर्वानुदात्तत्वाभावः । नकारस्य रुत्वं व्यत्ययान्नुमभावो वा ॥ कनीयसः सतो मम तत्प्रसिद्धं धनमभ्या भर । हे मघवन् त्वं सनाच्चिरादेवारभ्य पुरूवसुर्हि बहुधनो ह्यसि । भरेभरे संग्रामे यज्ञे वा हव्यो हविष्यश्चासि ॥

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनां ॥२५॥
परा । नुदस्व । मघऽवन् । अमित्रान् । सुऽवेदा । नः । वसु । कृधि ।
अस्माकं । बोधि । अविता । महाऽधने । भव । वृधः । सखीनां ॥२५॥

हे मघवन् परा पराचीनानमित्राञ्छत्रून्नुदस्व । प्रेरय । नोऽस्मभ्यं वसु वसूनि सुवेदा सुलभानि कृधि । कुरु । महाधने संग्रामे । वाजसातौ महाधन इति संग्रामनामसु पाठात् । सखीनां स्तोतॄणामस्माकं वसिष्ठानामविता रक्षिता बोधि । भव । वृधो वर्धयिता च भव ॥

इंद्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥
इंद्र । क्रतुं । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।
शिक्ष । नः । अस्मिन् । पुरुऽहूत । यामनि । जीवाः । ज्योतिः । अशीमहि ॥२६॥

हे इंद्र नोऽस्मभ्यं क्रतुं कर्म प्रज्ञानं वा भर । आहर । अपि च यथा पिता पुत्रेभ्यो धनं प्रयच्छति तथा नोऽस्मभ्यं शिक्ष । धनं देहि । हे पुरुहूत बहुभिराहूत यामनि यज्ञे जीवा वयं ज्योतिः सूर्यमशीमहि । प्रतिदिनं प्राप्नुयाम ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७॥
मा । नः । अज्ञाताः । वृजनाः । दुःऽआध्यः । मा । अशिवासः । अव । क्रमुः ।
त्वया । वयं । प्रऽवतः । शश्वतीः । अपः । अति । शूर । तरामसि ॥२७॥

हे इंद्र अज्ञाता अज्ञातगमना वृजना हिंसका दुराध्यो नोऽस्मान्माव क्रमुः । मावचक्रमुः । हे शूर त्वया वयं वसिष्ठाः प्रवतः प्रवणकाः संतः शश्वतीर्बह्वीरपोऽति तरामसि । अतितराम ॥ ॥२१॥

श्वित्यंच इति चतुर्दशर्चं षोडशं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । श्वित्यंचः षळूना संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येंद्रेण

या संवाद इति । आदितो नवानां वसिष्ठ ऋषिः । वसिष्ठपुत्राणां स्तूयमानत्वात्त एव देवता । विद्युतो ज्योतिरित्यादिभिर्दशभ्यादिभिः स्वपुत्रैर्वसिष्ठः स्तूयते । अतो वसिष्ठो देवता । त एव ऋषयः । या तेनोच्यत इति न्यायात् । अनुक्तत्वात्त्रिष्टुप् ॥

श्वित्यंचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमंदुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥
श्वित्यंचः । मा । दक्षिणतःऽकपर्दाः । धियंऽजिन्वासः । अभि । हि । प्रऽमंदुः ।
उत्ऽतिष्ठन् । वोचे । परि । बर्हिषः । नॄन् । न । मे । दूरात् । अवितवे । वसिष्ठाः ॥१॥

श्वित्यंचः । श्वित्यं श्वेतवर्णमंचंतीति श्वित्यंचः । श्वेतवर्णा इत्यर्थः । धियंजिन्वासः कर्मणां पूरयितारो दक्षिणतस्कपर्दाः । दक्षिणे शिरसो भागे कपर्दाश्चूडा येषां ते दक्षिणतस्कपर्दाः । चूडाकर्मणि दक्षिणतो वसिष्ठानामिति स्मर्यते । मा मामभि प्रमंदुः । विद्याबलेनाभिप्राहर्षयन् । यतो मामभि प्रमंदुरतो बर्हिषो यज्ञात् । परीति पंचम्यर्थानुवादः । उत्तिष्ठन्नहं नॄन्यज्ञस्य नेतॄन्वोचे । ब्रवीमि । मे मत्तो दूराद्वसिष्ठा वसिष्ठस्य मम पुत्रा अवितवे गंतुं नार्हंतीति शेषः ॥

दूरादिंद्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशंतमति पांतमुग्रं ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिंद्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥२॥
दूरात् । इंद्रं । अनयन् । आ । सुतेन । तिरः । वैशंतं । अति । पांतं । उग्रं ।
पाशऽद्युम्नस्य । वायतस्य । सोमात् । सुतात् । इंद्रः । अवृणीत । वसिष्ठान् ॥२॥

यदा वसिष्ठस्य पुत्राः सुदासं राजानमयाजयन् तदैव पाशद्युम्नाख्योऽपि राजा सोमान्यष्टुमुद्यमं चकार । तदा ते वसिष्ठपुत्राः पाशद्युम्नं तिरस्कृत्य तदीये यागे सोमं पिबंतमिंद्रं मंत्रबलेन तस्मादाच्छिद्य सुदासो यज्ञे स्थापयामासुः । तदेतद्वृत्तांतं कीर्तयन् वसिष्ठः स्वसुताननेन मंत्रेण स्तौति ॥ वैशंतं । वेशंतः पल्वलं । अत्र वेशंत-शब्देन सोमाधारश्चमसो लक्ष्यते । तत्स्थं सोमं पांतं पिबंतमुग्रमुद्गूर्णमिंद्रं सुतेन सुदासो यज्ञेऽभिषुतेन सोमेन हेतुना तिरः पाशद्युम्नं तिरस्कृत्य दूरादानयन् । वसिष्ठा मंत्रबलेनानीतवंतः । इंद्रोऽपि वायतस्य वयतः पुत्रस्य पाशद्युम्नस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । वायतं पाशद्युम्नमत्यतिहाय सुदासो यज्ञेऽभिषुतात्सोमाद्धेतोर्वसिष्ठान्व-सिष्ठस्य पुत्रानवृणीत । पाशद्युम्नस्य सोमयागे चमसस्थं सोमं पिबन्नपींद्रस्तं पाशद्युम्नं तिरस्कृत्य मंत्रसामर्थ्य-बलेन सुदासो यज्ञ आह्वनकाले वसिष्ठानाजगामेत्यर्थः ॥

एवेन्नु कं सिंधुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिंद्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥
एव । इत् । नु । कं । सिंधुं । एभिः । ततार । एव । इत् । नु । कं । भेदं । एभिः । जघान ।
एव । इत् । नु । कं । दाशऽराज्ञे । सुऽदासं । प्र । आवत् । इंद्रः । ब्रह्मणा । वः । वसिष्ठाः ॥३॥

एवेत् यथा पाशद्युम्नस्य सवाख्ये सोमयागे चमसस्थं सोमं पिबंतमपींद्रं वसिष्ठैः सुदाः प्राप्तवान् एवमेव सिंधुं नदीमेभिर्वसिष्ठैः कं सुखेन ततार । तीर्ण आसीत् । न्विति पूरणः । तथा च निगमांतरं । अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदासे । ऋ॰ ७. १८. ५. । इति । एवेदेवमेव भेदं भेदनामकं शत्रुमप्येभिर्वसिष्ठैरेव जघान । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । एवेदेवमेव हे वसिष्ठाः वो युष्मदीयेन ब्रह्मणा स्तोत्रेण दाशराज्ञे दशभी राजभिः सह युद्धे प्रवृत्ते सति सुदासं राजानमिंद्रः प्रावत् । प्रारक्षत् । तथा च निगमांतरं । दश राजानः समिता अयज्यवः

सुदासमिंद्रावरुणा न युयुधुः । ऋ॰ ७. ८३. ७. । इति । दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः । ऋ॰ ७. ८३. ८. । इति च ॥

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्करीषु बृहता रवेणेंद्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥४॥

जुष्टी । नरः । ब्रह्मणा । वः । पितॄणां । अक्षं । अव्ययं । न । किल । रिषाथ ।
यत् । शक्करीषु । बृहता । रवेण । इंद्रे । शुष्मं । अदधात । वसिष्ठाः ॥४॥

हे नरः वो युष्मदीयेन ब्रह्मणा स्तोत्रेण पितॄणां जुष्टी प्रीतिर्भवति । पितॄणामित्यनेन पारोक्ष्येण वसिष्ठस्यैव कीर्तनं । अहं प्रीतो भवामीत्यर्थः । अथेदानीं स्वमाश्रमं गंतुमुद्यतोऽहमक्षं रथस्याक्षमव्ययं । व्ययामि ॥ लडर्थे लङ् ॥ चालयामीत्यर्थः । यूयं न किल रिषाथ न च क्षीणा भवथ हे वसिष्ठाः यद्यस्माच्छक्करीष्वृक्षु बृहता श्रेष्ठेन रवेण साम्निंद्रे शुष्मं बलमदधात अधारयत ॥

उद्द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इंद्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकं ॥५॥

उत् । द्यांऽइव । इत् । तृष्णऽजः । नाथितासः । अदीधयुः । दाशऽराज्ञे । वृतासः ।
वसिष्ठस्य । स्तुवतः । इंद्रः । अश्रोत् । उरुं । तृत्सुऽभ्यः । अकृणोत् । ऊं इति । लोकं ॥५॥

तृष्णजो जाततृष्णा वृतासस्तृत्सुभी राजभिर्वृता नाथितासो वृष्टिं याचमाना वसिष्ठा द्यामिवादित्यमिवेंद्रं दाशराज्ञे दशानां राज्ञां संग्राम उददीधयुः । उददीधयन् । स्तुवतो वसिष्ठस्य स्तोत्रमिंद्रोऽश्रोत् । अशृणोच्च । उरुं विस्तीर्णं लोकं तृत्सुभ्यो राजभ्योऽकृणोत् । अकरोच्च । अददाश्चेत्यर्थः ॥ ॥२२॥

दंडा इवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथंत ॥६॥

दंडाःऽइव । इत् । गोऽअजनासः । आसन् । परिऽछिन्नाः । भरताः । अर्भकासः ।
अभवत् । च । पुरःऽएता । वसिष्ठः । आत् । इत् । तृत्सूनां । विशः । अप्रथंत ॥६॥

गोअजनासो गवां प्रेरका दंडा इव यथा दंडाः परिच्छिन्नपत्रोपशाखा भवंति तद्वद्भरताः । तृत्सूनामेव राज्ञां भरता इति नामांतरेणोपादानं । शत्रुभिः परिच्छिन्ना एवासन् । अर्भकासोऽर्भका अल्पाश्चासन् । आदित्परिच्छिन्नत्वादनंतरमेव तेषां तृत्सूनां वसिष्ठः पुरएता पुरोहितोऽभवच्च । तत्पौरोहित्यसामर्थ्यात्तृत्सूनां विशः प्रजा अप्रथंत । अवर्धंत ॥

त्रयः कृण्वंति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचंते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

त्रयः । कृण्वंति । भुवनेषु । रेतः । तिस्रः । प्रऽजाः । आर्याः । ज्योतिःऽअग्राः ।
त्रयः । घर्मासः । उषसं । सचंते । सर्वान् । इत् । तान् । अनु । विदुः । वसिष्ठाः ॥७॥

भुवनेषु पृथिव्यंतरिक्षद्युषु त्रयोऽग्निवायुसूर्या यथाक्रमेण रेतो विश्वस्य धारकमुदकं कृण्वंति । कुर्वंति । तेषां त्रयाणां ज्योतिरग्रा आदित्यप्रमुखा आर्याः श्रेष्ठास्तिस्रः प्रजा भवंति । ते च त्रयोऽग्निवायुसूर्या घर्मासो

दीप्यमाना उषसं सचंते। समवयंति। दुर्ज्ञानात्सर्वानित्सर्वानेव तान्वसिष्ठा अनु विदुः। अभिजानंति। तेषां रहस्यविज्ञानादियमपि वसिष्ठानामेव स्तुतिः। तथा च शाट्यायनकं। त्रयः कृण्वंति भुवनेषु रेत इत्यग्निः पृथिव्यां रेतः कृणोति वायुरंतरिक्ष आदित्यो दिवि तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा इति वसवो रुद्रा आदित्यास्तासां ज्योतिर्यदसावादित्यस्त्रयो घर्मास उषसं सचंत इत्यग्निरुषसं सचते वायुरुषसं सचत आदित्य उषसं सचत इति ॥

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥
सूर्यस्यऽइव । वक्षथः । ज्योतिः । एषां । समुद्रस्यऽइव । महिमा । गभीरः ।
वातस्यऽइव । प्रऽजवः । न । अन्येन । स्तोमः । वसिष्ठाः । अनुऽएतवे । वः ॥ ८ ॥

हे वसिष्ठाः एषां वो युष्माकं स्तोमो महिमापि वा सूर्यस्य ज्योतिरिव वक्षथः प्रकाशोऽस्ति। हे वसिष्ठाः वो युष्माकं महिमा स्तोमोऽपि वा समुद्रस्येव गभीरो गंभीरोऽस्ति। तथा हे वसिष्ठाः एषां वो युष्माकं स्तोम ऋक्समूहो महिमापि वा वातस्येव प्रजवो यथा वातस्य प्रवेगोऽन्येनान्वेतुं न शक्यस्तद्वदन्येनान्वेतवेऽन्वेतुं न शक्यः ॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरंति ।
यमेन ततं परिधिं वयंतोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥
ते । इत् । निण्यं । हृदयस्य । प्रऽकेतैः । सहस्रऽवल्शं । अभि । सं । चरंति ।
यमेन । ततं । परिऽधिं । वयंतः । अप्सरसः । उप । सेदुः । वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

त इत्त एव वसिष्ठा निण्यं तिरोहितं दुर्ज्ञानं। निण्यं सस्वरित्यंतर्हितनामसु पाठात्। सहस्रवल्शं सहस्रशाखं संसारं हृदयस्य प्रकेतैः प्रज्ञानैरभि सं चरंति। एवं स्वाच्छंद्येनाभिसंचरंतस्ते वसिष्ठा यमेन कारणात्मना सर्वनियंत्रा ततं विस्तृतं परिधिं वस्त्रं। परिधिरित्यनेन जन्मादिप्रवाहो विवक्षितः। तं वयंतोऽप्सरसो जननीत्वेनोप सेदुः। अत्र वसिष्ठा इति बहुवचनं पूजायां। वसिष्ठः पूर्वं प्रजापतेरुत्पन्नं देहमुत्सृज्याप्सरःसु जायेयेति बुद्धिमकरोदिति भावः ॥

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥ १० ॥
विऽद्युतः । ज्योतिः । परि । संऽजिहानं । मित्रावरुणा । यत् । अपश्यतां । त्वा ।
तत् । ते । जन्म । उत । एकं । वसिष्ठ । अगस्त्यः । यत् । त्वा । विशः । आऽजभार ॥ १० ॥

एतास्वृक्षु वसिष्ठस्यैव देहपरिग्रहः प्रतिपाद्यते। एतास्विंद्रस्य वाक्यमित्येके वर्णयंत्यपरे वसिष्ठपुत्राणामिति। हे वसिष्ठ यद्यदा विद्युतो विद्युत इव स्वीयं ज्योतिर्देहांतरपरिग्रहार्थं परि संजिहानं परित्यजंतं त्वा त्वां ॥ छांदसमात्मनेपदं ॥ यद्वा। जिघृक्षितदेहार्थं स्वीयं ज्योतिः परि संजिहानं। परिजिघृक्षंतमित्यर्थः ॥ अस्मिन्पक्षे जहातेर्गत्यर्थत्वादात्मनेपदं छांदसं न भवति ॥ मित्रावरुणा मित्रावरुणावपश्यतां। आवाभ्यामयं जायेतेति समकल्पतामित्यर्थः। तत्तदा ते तवैकं जन्म। उतापि च यद्यदागस्त्यो विशो निवेशनान्मित्रावरुणावावां जनयिष्याव इत्येतस्मात्पूर्वावस्थानात्त्वामाजभार आजहार ॥ ॥ २३ ॥

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददंत ॥ ११ ॥

उत । असि । मैत्रावरुणः । वसिष्ठ । उर्वश्याः । ब्रह्मन् । मनसः । अधि । जातः ।
द्रप्सं । स्कन्नं । ब्रह्मणा । दैव्येन । विश्वे । देवाः । पुष्करे । त्वा । अददंत ॥११॥

उतापि च हे वसिष्ठ मैत्रावरुणो मित्रवरुणयोः पुत्रोऽसि । हे ब्रह्मन् वसिष्ठ उर्वश्या अप्सरसो मनसो ममायं पुत्रः स्यादितीदृशात्संकल्पाद्द्रप्सं रेतो मित्रावरुणयोरुर्वशीदर्शनात्स्कन्नमासीत् । तस्मादधि जातोऽसि । तथा च वक्ष्यते सत्रे ह जाताविषितेत्यृचि । एवं जातं त्वा त्वां दैव्येन देवसंबंधिना ब्रह्मणा वेदराशिनाहंभुवा युक्तं पुष्करे विश्वे देवा अददंत । अधारयंत ॥ तथा चादितेर्मित्रावरुणौ जज्ञाते इति प्रक्रम्य पठ्यते । तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीं । रेतश्चस्कंद तत्कुंभे न्यपतद्वासतीवरे ॥ तेनैव तु मुहूर्तेन वीर्यवंतौ तपस्विनौ । अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः ॥ बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले । स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः ॥ कुंभे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः । उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः ॥ मानेन संमितो यस्मात्तस्मान्मान्य इहोच्यते । यद्वा कुंभादृषिर्जातः कुंभेनापि हि मीयते ॥ कुंभ इत्यभिधानं च परिमाणस्य लक्ष्यते । ततोऽप्सु गृह्यमाणासु वसिष्ठः पुष्करे स्थितः ॥ सर्वतः पुष्करे तं हि विश्वे देवा अधारयन् । बृ॰ ५. ७८३–७८९. । इति ॥

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२॥
सः । प्रऽकेतः । उभयस्य । प्रऽविद्वान् । सहस्रऽदानः । उत । वा । सऽदानः ।
यमेन । ततं । परिऽधिं । वयिष्यन् । अप्सरसः । परि । जज्ञे । वसिष्ठः ॥१२॥

स वसिष्ठः प्रकेतः प्रकृष्टज्ञान उभयस्योभयं दिवं च पृथिवीं च प्रविद्वान् प्रकर्षेण जानन् सहस्रदानोऽभवत् । किमनेन सहस्रदान इति विशेषणेन उत वापि वा सदानः सर्वदानसहित एवाभवत् । किंच वसिष्ठो यमेन कारणात्मना सर्वनियंत्रा ततं विस्तृतं परिधिं वस्त्रं । परिधिरित्यनेन संसारप्रवाहो विवक्षितः । तं वयिष्यन्नप्सरस उर्वश्याः । परीति पंचम्यर्थानुवादः । जज्ञे । जातः ॥

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुंभे रेतः सिषिचतुः समानं ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठं ॥१३॥
सत्रे । ह । जातौ । इषिता । नमःऽभिः । कुंभे । रेतः । सिसिचतुः । समानं ।
ततः । ह । मानः । उत् । इयाय । मध्यात् । ततः । जातं । ऋषिं । आहुः । वसिष्ठं ॥१३॥

सत्रे बहुकर्तृके यागे । हेति पूरणः । जातौ दीक्षितौ मित्रावरुणाविषिताविषितौ स्वयमन्यैर्जनैर्नमोभिः स्तुतिभिः कुंभे वासतीवरे कलशे समानमेकदैव रेतः सिसिचतुः । असिंचतां । ततो वासतीवरात्कुंभान्मध्यादगस्त्यो मानः शमीप्रमाण उदियाय । प्रादुर्बभूव । तत एव कुंभाद्वसिष्ठमप्यृषिं जातमाहुः ॥

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥१४॥
उक्थऽभृतं । सामऽभृतं । बिभर्ति । ग्रावाणं । बिभ्रत् । प्र । वदाति । अग्रे ।
उप । एनं । आध्वं । सुऽमनस्यमानाः । आ । वः । गच्छाति । प्रऽतृदः । वसिष्ठः ॥१४॥

हे प्रतृदः । प्रतृद इति तृत्सव एवाभिधीयंते नामांतरेण । वो युष्मान्वसिष्ठ आ गच्छाति । आगच्छति ।

एनं वसिष्ठं सुमनस्यमानाः सुमनसः संत उपाध्वं । उपतिष्ठत । आगतश्चासौ वसिष्ठो यज्ञेऽग्रे पुरोहितो ब्रह्मा सन्नुकथभृतं शस्त्राणां संभक्तारं बिभर्ति । सामभृतमुन्नातारं बिभर्ति । ग्रावाणमभिषवणं बिभ्रद्बिभ्रतमध्वर्युं च बिभर्ति । प्र वदाति । यज्ञे यत्प्रवदितव्यं प्रेषादिनिमित्तं कर्तव्यमस्ति तदपि वदतीति तृत्सून् प्रतींद्रो ब्रवीति ॥ ॥२४॥ ॥२॥

तृतीयेऽनुवाके द्वाविंशति सूक्तानि । तत्र प्र शुक्रेति पंचविंशत्यृचं प्रथमं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । प्र शुक्रा पंचाधिका वैश्वदेवं हाद्या एकविंशतिर्द्विपदा अब्जामहेरर्धर्च उत्तरोऽहिर्बुध्न्यायेति । वसिष्ठ ऋषिः । आद्या एकविंशतिर्द्विपदा विंशत्यक्षरा विराजो द्वाविंशाद्याश्चतस्रस्त्रिष्टुभः । विश्वे देवा देवता ॥ व्यूळ्हे दशरात्रे चतुर्थेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं सूक्तं वैश्वदेवनिविद्धानं । सूत्रितं च । प्र शुक्रैत्विति वैश्वदेवं । आ॰ ८.८. । इति ॥ षोडशिन्या धूर्ष्वस्मा इति द्विपदा । आ॰ ६.२. । इति ॥ महाव्रतेऽप्येषा द्विपदा । तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं । आ धूर्ष्वस्मा इत्येका सूददोहाः । ऐ॰ आ॰ ५.८. । इति ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥१॥

प्र । शुक्रा । एतु । देवी । मनीषा । अस्मत् । सुऽतष्टः । रथः । न । वाजी ॥१॥

शुक्रा दीप्ता देवी सर्वेषां कामानां प्रदात्री मनीषा स्तुतिरस्मदस्मत्तोऽस्मिन् सूक्ते स्तोष्यमाणान्देवान् वाजी वेगवान् सुतष्टः सुसंस्कृतो रथो न रथ इव प्रैतु । प्रगच्छतु ॥

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वंत्यापो अध क्षरंतीः ॥२॥

विदुः । पृथिव्याः । दिवः । जनित्रं । शृण्वंति । आपः । अध । क्षरंतीः ॥२॥

अस्यामृच्यापः स्तूयंते । क्षरंतीः क्षरंत्य आपो दिवः पृथिव्याश्च । उभयोरपि लोकयोरित्यर्थः । जनित्रमुत्पत्तिं विदुः । जानंति । अधापि च शृण्वंति स्तोत्राणीति शेषः ॥

आपश्चिदस्मै पिन्वंत पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसंत उग्राः ॥३॥

आपः । चित् । अस्मै । पिन्वंत । पृथ्वीः । वृत्रेषु । शूराः । मंसंते । उग्राः ॥३॥

इंद्रोऽस्मिन्नृचे स्तूयते । पृथ्वीः पृथ्व्यः प्रथमाना आपश्चिदापोऽप्यस्मा इंद्राय पिन्वंत । प्यायंते । वृत्रेषूपद्रवेषु सत्सूग्रा उद्गूर्णास्तेजस्विनो वा शूरा योद्धारोऽपि मंसंते । इममेवेंद्रं स्तुवंति ॥

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिंद्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥४॥

आ । धूःऽसु । अस्मै । दधात । अश्वान् । इंद्रः । न । वज्री । हिरण्यऽबाहुः ॥४॥

अस्मै । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । अस्येंद्रस्यागमनायाश्वान् धूर्षु रथस्या दधात । इंद्रो न । नेति चार्थे । इंद्रो वज्री वज्रवान् हिरण्यबाहुर्हिरण्यहस्तश्च भवति ॥ षोडशिनि शस्यमानत्वादस्या ऐंद्रत्वं गम्यते । आ धूर्ष्वस्मा इत्यत्रास्मा इत्यस्य पदस्यानुदात्तत्वं पूर्वस्यामिंद्रस्य प्रकृतत्वात् अत एव पूर्वाप्यैंद्रीति विज्ञायते । पूर्वस्यामप्यृच्यस्मा इत्यत्रानुदात्तत्वमल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तमिति । तथा च यास्कः । अस्येति चोदात्तं प्रथमादेशेऽनुदात्तमन्वादेशे तीव्रार्थतरमुदात्तमल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तं । नि॰ ४.२५. । इति । अल्पीयस्त्वं चेदंशब्दप्रवृत्तिनिमित्तस्य संनिधानस्य दूरस्थत्वेनेत्यवगंतव्यं ॥

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥५॥

अभि । प्र । स्थात । अहाऽइव । यज्ञं । याताऽइव । पत्मन् । त्मना । हिनोत ॥५॥

यज्ञस्तुतिरियं । हे जनाः यज्ञमभि प्र स्थात । अभिक्रमत । अहेवेति पूरणी । अपि च पत्मन् पत्मनि यज्ञमार्गे त्मना स्वयमेव यातेव गंतेव हिनोत । गच्छत ॥ हि गताविति धातुः ॥

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरं ॥ ६ ॥

त्मना । समत्ऽसु । हिनोत । यज्ञं । दधात । केतुं । जनाय । वीरं ॥ ६ ॥

उक्तस्यैव विवरणमत्र । हे मदीया जनाः समत्सु संग्रामेषु त्मना स्वयमेव हिनोत । गच्छत । अपि च केतुं प्रज्ञापकं वीरं पापानां वारयितारं । नाशकमित्यर्थः । यज्ञं जनाय लोकाय । तद्रक्षार्थमित्यर्थः । दधात । विधत्त ॥

उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥

उत् । अस्य । शुष्मात् । भानुः । न । आर्त । बिभर्ति । भारं । पृथिवी । न । भूम ॥ ७ ॥

अस्य यज्ञस्य शुष्माद्बलाद्भानुः सूर्य उदार्त । उद्गच्छति । भूम भूतानि पृथिवीव भारं लोकस्यायं यज्ञो बिभर्ति च ॥

ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

ह्वयामि । देवान् । अयातुः । अग्ने । साधन् । ऋतेन । धियं । दधामि ॥ ८ ॥

अस्मिंस्तृचे देवाः स्तूयंते । हे अग्ने अयातुरहिंसादिनियमयुक्तोऽनृतेन यज्ञेन साधन्कामान्साधयन् देवान् ह्वयामि । अपि च धियं देवानां परिचरणात्मकं कर्म दधामि । करोमीत्यर्थः ॥

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वं ॥ ९ ॥

अभि । वः । देवीं । धियं । दधिध्वं । प्र । वः । देवऽत्रा । वाचं । कृणुध्वं ॥ ९ ॥

हे जनाः वो यूयमभि देवानुद्दिश्य देवीं दीप्तां धियं कर्म दधिध्वं । विधत्त । अपि च वो यूयं देवत्रा देवेषु वाचं स्तुतिरूपां प्र कृणुध्वं । प्रकर्षेण कुरुध्वं ॥

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥

आ । चष्टे । आसां । पाथः । नदीनां । वरुणः । उग्रः । सहस्रऽचक्षाः ॥ १० ॥

सहस्रचक्षा बहुचक्षुर्वरुण आसां नदीनां पाथो जलमा चष्टे । अभिपश्यति । कीदृशो वरुणः । उग्र उद्गूर्ण ओजस्वी वा ॥ ॥ २५ ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥

राजा । राष्ट्रानां । पेशः । नदीनां । अनुत्तं । अस्मै । क्षत्रं । विश्वऽआयु ॥ ११ ॥

राष्ट्रानां राष्ट्राणां ॥ णत्वाभावश्छांदसः ॥ ईश्वराणामपि वरुणो राजेश्वरो भवति । नदीनां पेशो रूपं रूपकृदपि भवतीत्यर्थः । अस्मै । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । अस्य वरुणस्य क्षत्रं बलमनुत्तमन्यैरबाधितं विश्वायु सर्वतो गंतृ भवतीति ॥

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥ १२ ॥

अविष्टो इति । अस्मान् । विश्वासु । विक्षु । अद्युं । कृणोत । शंसं । निनित्सोः ॥ १२ ॥

अयं तृचो दैवः । हे देवाः अस्मान् विश्वासु सर्वासु विक्षु प्रजासु । अविष्ट उ इति समुदितमविष्टो इति । अविष्ट । रक्षत । शंसं निनित्सोर्निंदितुमिच्छतः शत्रोरद्युमदीप्तिं कृणोत । कुरुत च ॥

व्येतु दिद्युद्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनां ॥१३॥
वि । एतु । दिद्युत् । द्विषां । अशेवा । युयोत । विष्वक् । रपः । तनूनां ॥१३॥

द्विषां शत्रूणां दिद्युदायुधमशेवासुखकरी विष्वक् सर्वतो व्येतु । अपगच्छतु । तनूनामंगानां रपः पापं देवाः युयोत । अस्मत्तः पृथक्कुरुत ॥

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥
अवीत् । नः । अग्निः । हव्यऽअत् । नमःऽभिः । प्रेष्ठः । अस्मै । अधायि । स्तोमः ॥१४॥

हव्याद्धव्यानामत्तायिर्नमोभिरस्मदीयैर्नमस्कारैः प्रेष्ठः प्रियतमः सन्नोऽस्मानवीत् । रक्षतु । अस्मा अग्नये स्तोत्रमधायि । अस्माभिर्व्यधायि ॥

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥१५॥
सऽजूः । देवेभिः । अपां । नपातं । सखायं । कृध्वं । शिवः । नः । अस्तु ॥१५॥

हे स्तोतः अपामुदकानां नपातं पुत्रमग्निं । सूनुर्नपादित्यपत्यनामसु पाठात् । देवेभिर्देवैः सजूः सह सखायं मित्रं स्तुतिभिः कृध्वं । कुरुध्वं । स चापां नपान्नोऽस्मभ्यं शिवः सुखकरोऽस्तु । भवतु ॥

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥१६॥
अप्ऽजां । उक्थैः । अहिं । गृणीषे । बुध्ने । नदीनां । रजःऽसु । सीदन् ॥१६॥

अहिं मेघानामाहंतारं नदीनामुदकानां बुध्ने स्थाने । बुध्नमंतरिक्षं बद्धा अस्मिन्धृता आप इति व्युत्पत्तेः । तस्मिन्रजःसूदकेषु सीदन् सीदंतमब्जामप्सु जातमिममग्निमुक्थैः स्तोत्रैर्गृणीषे । बुध्ने नदीनां रजःसूदकेषु सीदन् बुध्नमंतरिक्षं बद्धा अस्मिन्धृता आप इति । नि० १०. ४४. । इति ॥

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥१७॥
मा । नः । अहिः । बुध्न्यः । रिषे । धात् । मा । यज्ञः । अस्य । स्रिधत् । ऋतऽयोः ॥१७॥

अहिर्बुध्न्यः । बुध्नेऽंतरिक्षे भवो बुध्न्यः । अहिश्चासौ बुध्न्यश्चेत्यहिर्बुध्न्योऽग्निर्नोऽस्मान्रिषे हिंसकाय मा धात् । मा ददातु । अस्यर्तायोर्यज्ञकामस्य यजमानस्य यज्ञो मा च स्रिधत् । न क्षीयेत । यद्वा । अस्याहिर्बुध्न्यस्येममहिर्बुध्न्यमुद्दिश्य ऋतायोर्यज्ञकामस्य यो यज्ञः स न क्षीयेतेत्यर्थः ॥

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यंतु शर्धंतो अर्यः ॥१८॥
उत । नः । एषु । नृषु । श्रवः । धुः । प्र । राये । यंतु । शर्धंतः । अर्यः ॥१८॥

अयं तृचो दैवो मारुतो वा । उतापि च नोऽस्मदीयेष्वेषु नृषु पुरुषेषु श्रवोऽन्नं धुः । देवा मरुतो वा धारयंतु । राये धनार्थं शर्धंत उत्सहमानाः म्रियमाणा वार्योऽरयः प्र यंतु । प्रगच्छंतु । म्रियंतामित्यर्थः ॥

तपंति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषां ॥१९॥
तपंति । शत्रुं । स्वः । न । भूम । महाऽसेनासः । अमेभिः । एषां ॥१९॥

महासेनासो महासेना राजान एषां मरुतां देवानां वामेभिर्बलैर्भूमा भुवनानि स्वर्णादित्य इव शत्रुं स्वकीयं तपंति । बाधंते । महांतोऽपि राजानोऽमैर्बलैः शत्रून्बाधंते । तानि बलानि देवानामेवेत्यर्थः ॥

आ यन्नः पत्नीर्गमंत्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२०॥

आ। यत्। नः। पत्नीः। गमंति। अच्छ। त्वष्टा। सुऽपाणिः। दधातु। वीरान् ॥२०॥

अस्यां देवपत्न्यस्त्वष्टा च देवता। यद्यदा पत्नीर्देवानां पत्न्यो नोऽस्मानच्छाभ्या गमंति आगच्छंति तदा सुपाणिः शोभनहस्तस्त्वष्टा देवो वीरान् पुत्रान् दधातु। अस्मभ्यं ददातु॥ ॥२६॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥२१॥

प्रति। नः। स्तोमं। त्वष्टा। जुषेत। स्यात्। अस्मे इति। अरमतिः। वसुऽयुः ॥२१॥

नोऽस्माकं स्तोमं स्तोत्रं त्वष्टा प्रति जुषेत। प्रतिसेवेत। अपि चारमतिः पर्याप्तबुद्धिः सर्वविषयव्यापिबुद्धिर्वा त्वष्टास्मे अस्मदर्थं वसूयुर्धनकामः स्यात्। भूयात्॥

ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥२२॥

ता। नः। रासन्। रातिऽसाचः। वसूनि। आ। रोदसी इति। वरुणानी। शृणोतु।
वरूत्रीभिः। सुऽशरणः। नः। अस्तु। त्वष्टा। सुऽदत्रः। वि। दधातु। रायः ॥२२॥

ता यान्यस्माकमभीष्टानि तानि वसूनि धनानि रातिषाचो दानसमवेता देवपत्न्यो नोऽस्मभ्यं रासन्। प्रयच्छंतु। अपि च वरुणानी वरुणस्य पत्न्या शृणोतु। अस्मदीयं स्तोत्रमभिशृणोतु। रोदसी द्यावापृथिव्यौ चाभिशृणुतां। सुदत्रः कल्याणदानस्त्वष्टा च वरूत्रीभिरुपद्रवाणां वारयित्रीभिर्देवपत्नीभिः सह नोऽस्मभ्यं सुशरणः सुशरणप्रदोऽस्तु। रायो धनानि च विदधातु॥

तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३॥

तत्। नः। रायः। पर्वताः। तत्। नः। आपः। तत्। रातिऽसाचः। ओषधीः। उत। द्यौः।
वनस्पतिऽभिः। पृथिवी। सऽजोषाः। उभे इति। रोदसी इति। परि। पासतः। नः ॥२३॥

नोऽस्माकं। तदित्यव्ययः। ता रायो धनानि पर्वताः परिपांतु। नोऽस्माकं तत्ता राय आपश्च परिपांतु। तद्रातिषाचो दानसहिता देवपत्न्यश्च परिपांतु। ओषधीरोषधयश्च तत्परिपांतु। उतापि च द्यौस्तत्परिपातु। वनस्पतिभिः सजोषाः सहिता पृथिव्यंतरिक्षं च तत्परिपातु। आपः पृथिवीत्यंतरिक्षनामसु पाठात्। नोऽस्माकं तदुभे रोदसी द्याव्यापृथिव्यावपि परि पासतः। परिरक्षतां॥

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इंद्रसखा।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४॥

अनु। तत्। उर्वी इति। रोदसी इति। जिहातां। अनु। द्युक्षः। वरुणः। इंद्रऽसखा।
अनु। विश्वे। मरुतः। ये। सहासः। रायः। स्याम। धरुणं। धियध्यै ॥२४॥

तद्वक्ष्यमाणमुर्वी विस्तीर्णे रोदसी द्यावापृथिव्यावनु जिहातां। अनुगच्छतां। अनुमन्येतामित्यर्थः। द्युक्षो दीप्तिर्निवासभूत इंद्रसखेंद्रसखः॥ इंद्रः सखा यस्येति बहुव्रीहिः॥ वरुणश्च तदनु जिहीतां। द्विवचनांतस्यैक-

वचनांततया विपरिणामः । ये सहासः शत्रूणामभिभवितारस्ते मरुतोऽपि तदनु जिहतां । अत्र बहुवचनांततया विपरिणामः । यदनुमंतव्यं तदाह । धियध्यै भरणीयं धारयितुं रायो धनस्य धरुणं धाम स्थानं वयं स्याम । भवेमेति ॥

तन्न इंद्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषंत ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥

तत् । नः । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अग्निः । आपः । ओषधीः । वनिनः । जुषंत ।
शर्मन् । स्याम । मरुतां । उपऽस्थे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥२५॥

नोऽस्मभ्यं तदिदं स्तोत्रमिंद्रो वरुणश्च मित्रश्चाग्निश्चापश्चौषधीरोषधयश्च वनिनो वृक्षाश्च जुषंत । जुषंतां । सेवंतां । वयं च मरुतामुपस्थ उपस्थाने वर्तमानाः शर्मञ्छर्मणि सुखे गृहे वा स्याम । भवेम । सिद्धमन्यत् ॥ ॥२७॥

शं न इंद्राग्नी इति पंचदशर्चं द्वितीयं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । शं नः पंचोना शांतिरिति । वसिष्ठ ऋषिः । त्रिष्टुप् छंदः । वैश्वदेवं हेत्युक्तत्वादिदमपि वैश्वदेवं ॥ महानाम्नीव्रत एतत्सूक्तं जप्यं । तथा च सूत्रितं । भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः शं न इंद्राग्नी भवतामवोभिः । आ० ८. १४. । इति । एव - - सु ॥

शं न इंद्राग्नी भवतामवोभिः शं न इंद्रावरुणा रातहव्या ।
शमिंद्रासोमा सुविताय शं योः शं न इंद्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

शं । नः । इंद्राग्नी इति । भवतां । अवःऽभिः । शं । नः । इंद्रावरुणा । रातऽहव्या ।
शं । इंद्रासोमा । सुविताय । शं । योः । शं । नः । इंद्रापूषणा । वाजऽसातौ ॥१॥

नोऽस्माकमस्मभ्यं वेंद्राग्नी अवोभी रक्षणैः शं शांत्यै भवतां । रातहव्या रातहव्यौ यजमानैर्दत्तहविष्काविंद्रावरुणेंद्रावरुणावपि नोऽस्मभ्यं शं शांत्यै भवतां । इंद्रासोमेंद्रासोमावपि नः शं शांत्यै सुविताय कल्याणाय च भवतां । शं शांत्यै सुखाय च । पुनरुक्तिरादरार्था । अथवा शं शमनहेतुकं सुखं योर्विषययोगनिमित्तं सुखमित्यपुनरुक्तिः । इंद्रापूषणेंद्रापूषणावपि वाजसातौ युद्धेऽन्नलाभे निमित्ते वा नः शं शांत्यै भवतामित्यर्थः ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु संतु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

शं । नः । भगः । शं । ऊं इति । नः । शंसः । अस्तु । शं । नः । पुरंऽधिः । शं । ऊं इति । संतु । रायः ।
शं । नः । सत्यस्य । सुऽयमस्य । शंसः । शं । नः । अर्यमा । पुरुऽजातः । अस्तु ॥२॥

नोऽस्माकं शं शांत्यै भगो देवोऽस्तु । भवतु । नोऽस्माकं शमु शांत्या एव शंसो नराशंसोऽस्तु । भवतु । नोऽस्माकं शं शांत्यै पुरंधिर्बहुधीरप्यस्तु । रायो धनान्यपि शमु शांत्या एव संतु । नोऽस्माकं सुयमस्य शोभनयमयुक्तस्य सत्यस्य शंसो वचनमपि शमस्तु । नोऽस्माकं शं शांत्यै पुरुजातो बहुप्रादुर्भावोऽर्यमा देवोऽप्यस्तु ॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि संतु ॥३॥

शं। नः। धाता। शं। ऊं इति। धर्ता। नः। अस्तु। शं। नः। उरूची। भवतु। स्वधाभिः।
शं। रोदसी इति। बृहती इति। शं। नः। अद्रिः। शं। नः। देवानां। सुऽहवानि। संतु ॥ ३ ॥

नोऽस्माकं शं शांत्यै धाता देवोऽस्तु। नोऽस्माकं शमु शांत्या एव धर्ता पुण्यपापानां विधारयिता वरुणो देवोऽप्यस्तु। नोऽस्माकं शं शांत्या उरूची विवर्तगमना पृथिव्यपि स्वधाभिरन्नैः सहास्तु। बृहती महत्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यावपि शं भवतां। अद्रिः पर्वतोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतु। शं शांत्यै नोऽस्माकं देवानां सुहवानि सुष्टुतयो संतु। भवंतु ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शं।
शं नः सुकृतां सुकृतानि संतु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

शं। नः। अग्निः। ज्योतिःऽअनीकः। अस्तु। शं। नः। मित्रावरुणौ। अश्विना। शं।
शं। नः। सुऽकृतां। सुऽकृतानि। संतु। शं। नः। इषिरः। अभि। वातु। वातः ॥ ४ ॥

ज्योतिरनीको ज्योतिर्मुखोऽग्निर्नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु। भवतु। मित्रावरुणा मित्रावरुणावपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतां। अश्विनाश्विनावपि शं भवतां। सुकृतां पुण्यकर्मणां पुरुषाणां सुकृतानि पुण्यकर्माण्यपि नोऽस्माकं शं शांत्यै संतु। भवंतु। इषिरो गमनशीलोऽपि वातो वायुरपि नोऽस्माकं शं शांत्या अभि वातु ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमंतरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवंतु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

शं। नः। द्यावापृथिवी इति। पूर्वऽहूतौ। शं। अंतरिक्षं। दृशये। नः। अस्तु।
शं। नः। ओषधीः। वनिनः। भवंतु। शं। नः। रजसः। पतिः। अस्तु। जिष्णुः ॥ ५ ॥

नोऽस्माकं शं शांत्यै द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ पूर्वहूतौ प्रथमाह्वाने भवतां। अंतरिक्षमपि नोऽस्माकं दृशये दर्शनाय शमस्तु। नोऽस्माकं शं शांत्या ओषधीरोषधयोऽपि भवंतु। वनिनो वृक्षाश्च शं भवंतु। जिष्णुर्जयशीलो रजसो लोकस्य पतिरिंद्रोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु ॥ ॥ २८ ॥

शं न इंद्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं। नः। इंद्रः। वसुऽभिः। देवः। अस्तु। शं। आदित्येभिः। वरुणः। सुऽशंसः।
शं। नः। रुद्रः। रुद्रेभिः। जलाषः। शं। नः। त्वष्टा। ग्नाभिः। इह। शृणोतु ॥ ६ ॥

देवो द्योतनादिगुणयुक्त इंद्रो वसुभिर्देवैः सार्धं नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतु। सुशंसः शोभनस्तुतिर्वरुणो देव आदित्येभिरादित्यैर्देवैः सार्धं शं शांत्या अस्तु। भवतु। जलाषो रुद्रो दुःखद्रावको देवो रुद्रेभी रुद्रैः सार्धं शं शांत्यै नोऽस्माकं भवतु। इह यज्ञे त्वष्टा देवो ग्नाभिर्देवपत्नीभिः सार्धं नः शं शांत्यै भवतु। इह यज्ञे नः स्तोत्रं शृणोतु च ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु संतु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवंतु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं। नः। सोमः। भवतु। ब्रह्म। शं। नः। शं। नः। ग्रावाणः। शं। ऊं इति। संतु। यज्ञाः।
शं। नः। स्वरूणां। मितयः। भवंतु। शं। नः। प्रऽस्वः। शं। ऊं इति। अस्तु। वेदिः ॥७॥

नोऽस्माकं शं शांत्यै सोमो भवतु। ब्रह्म स्तोत्रमपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतु। ग्रावाणोऽभिषवसाधनभूताः पाषाणा अपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। यज्ञाश्च नः शमु शांत्या एव संतु। स्वरूणां यूपानां मितय उन्मानान्यपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। प्रस्व ओषधयोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। वेदिरपि नः शमु शांत्या एवास्तु ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवंतु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवंतु शं नः सिंधवः शमु संत्वापः ॥८॥
शं। नः। सूर्यः। उरुऽचक्षाः। उत्। एतु। शं। नः। चतस्रः। प्रऽदिशः। भवंतु।
शं। नः। पर्वताः। ध्रुवयः। भवंतु। शं। नः। सिंधवः। शं। ऊं इति। संतु। आपः ॥८॥

नोऽस्माकं शं शांत्यै सूर्य उरुचक्षा विस्तीर्णतेजाः सन्नुदेतु। उदयं प्राप्नोतु। चतस्रः प्रदिशो महादिशोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। नोऽस्माकं शं शांत्यै पर्वता ध्रुवयो ध्रुवा भवंतु। नोऽस्माकं शं शांत्यै सिंधवो नद्योऽपि भवंतु। आपश्च नः शमु शांत्या एव संतु ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवंतु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥
शं। नः। अदितिः। भवतु। व्रतेभिः। शं। नः। भवंतु। मरुतः। सुऽअर्काः।
शं। नः। विष्णुः। शं। ऊं इति। पूषा। नः। अस्तु। शं। नः। भवित्रं। शं। ऊं इति।
अस्तु। वायुः ॥९॥

अदितिर्देवी व्रतेभिर्व्रतैः कर्मभिः सार्धं नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतु। स्वर्काः शोभनस्तुतयो मरुतोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै संतु। विष्णुर्व्यापको नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु। पूषा देवोऽपि नोऽस्माकं शमु शांत्या एवास्तु। भवित्रं भुवनमंतरिक्षमुदकं वा नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु। वायुरपि नः शमु शांत्या एवास्तु ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवंतूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥
शं। नः। देवः। सविता। त्रायमाणः। शं। नः। भवंतु। उषसः। विऽभातीः।
शं। नः। पर्जन्यः। भवतु। प्रऽजाभ्यः। शं। नः। क्षेत्रस्य। पतिः। अस्तु। शंऽभुः ॥१०॥

देवः क्रीडनादिगुणयुक्तः सविता त्रायमाणो रक्षन्नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतु। विभातीर्व्युच्छंत्य उषसोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। नोऽस्माकं प्रजाभ्यः पर्जन्योऽपि शं भवतु। शंभुः सुखस्य भावयिता क्षेत्रस्य पतिर्नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु ॥ ॥२९॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवंतु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥११॥

शं । नः । देवाः । विश्वऽदेवाः । भवंतु । शं । सरस्वती । सह । धीभिः । अस्तु ।
शं । अभिऽसाचः । शं । ऊं इति । रातिऽसाचः । शं । नः । दिव्याः । पार्थिवाः ।
शं । नः । अप्याः ॥११॥

विश्वदेवा बहुस्तोत्रका देवा नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। सरस्वती च धीभिः स्तुतिभिः कर्मभिर्वा सह नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु । अभिषाचो यज्ञमभितः सेवमानाश्च नः शं शांत्यै भवंतु । रातिषाचो दानं सेवमाना अपि शमु शांत्या एव भवंतु। दिव्या दिवि भवाश्च नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। पार्थिवाः पृथिव्यां संभूताश्च नः शं भवंतु । अप्या अप्स्वंतरिक्षे भवाश्च । आकाशमाप इत्यंतरिक्षनामसु पाठात्। नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवंतु शं नो अर्वंतः शमु संतु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवंतु पितरो हवेषु ॥१२॥
शं । नः । सत्यस्य । पतयः । भवंतु । शं । नः । अर्वंतः । शं । ऊं इति । संतु । गावः ।
शं । नः । ऋभवः । सुऽकृतः । सुऽहस्ताः । शं । नः । भवंतु । पितरः । हवेषु ॥१२॥

सत्यस्य पतयः पालकाः सत्यशीला देवा नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु। अर्वंतोऽश्वाश्च नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु । गावोऽपि नः शं शांत्यै भवंतु । सुकृतः सुकर्माणः सुहस्ताः शोभनहस्ता ऋभवोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै संतु। हवेषु स्तोत्रेषु सत्सु पितरोऽपि नोऽस्माकं शं शांत्यै भवंतु ॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥
शं । नः । अजः । एकऽपात् । देवः । अस्तु । शं । नः । अहिः । बुध्न्यः । शं । समुद्रः ।
शं । नः । अपां । नपात् । पेरुः । अस्तु । शं । नः । पृश्निः । भवतु । देवऽगोपा ॥१३॥

अज एकपादज एकपान्नामधेयो देवो नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु । अहिर्बुध्न्यश्च नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु । समुद्रोऽपि नः शं शांत्या अस्तु । पेरुरुपद्रवेभ्यः पारयितापां नपादपांनपान्नामधेयोऽपि देवो नोऽस्माकं शं शांत्या अस्तु । देवगोपा देवा गोपयितारो यस्यां सा पृश्निर्मरुतां माता नोऽस्माकं शं शांत्यै भवतु ॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषंतेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वंतु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥१४॥
आदित्याः । रुद्राः । वसवः । जुषंत । इदं । ब्रह्म । क्रियमाणं । नवीयः ।
शृण्वंतु । नः । दिव्याः । पार्थिवासः । गोऽजाताः । उत । ये । यज्ञियासः ॥१४॥

नवीयो नवतरमस्माभिः क्रियमाणमिदं ब्रह्म स्तोत्रमादित्या दिव्याः । अदितिर्द्यौः । ऋ० १. ८९. १०. । इति श्रुतेः । रुद्रा आंतरिक्षा वसवः पार्थिवाश्च जुषंत । जुषंतां । सेवंतां । अन्ये दिव्या दिवि भवाः पार्थिवासः पार्थिवा गोजाता गोः पृश्निर्जाताः । नाको गौरिति साधारणनामसु पाठात् । उतापि च ये यज्ञियासो यज्ञार्हाः ते सर्वेऽपि नोऽस्माकं हवं शृण्वंतु ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासंतामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥
ये । देवानां । यज्ञियाः । यज्ञियानां । मनोः । यजत्राः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।
ते । नः । रासंतां । उरुऽगायं । अद्य । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥१५॥

यज्ञियानां यजनीयानां देवानामपि यज्ञिया यजनीया मनोः प्रजापतेश्च यजत्रा यजनीया अमृता मरणरहिता ऋतज्ञाः सत्यज्ञा ये देवाः संति ते सर्वे उरुगायं बहुकीर्तिं पुत्रमद्य नोऽस्मभ्यं रासंतां । प्रयच्छंतु । सिद्ध एवोत्तमः पादः ॥ ॥३०॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ पंचमाष्टके चतुर्थोऽध्याय आरभ्यते । तत्र षडनुवाकात्मकस्य वासिष्ठस्य सप्तमस्य मंडलस्य तृतीये ऽनुवाके द्वाविंशति सूक्तानि । तत्र प्र ब्रह्मेति नवर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं पूर्ववद्वैश्वदेवं । अनुक्रांतं च । प्र ब्रह्म नवेति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥१॥
प्र । ब्रह्म । एतु । सदनात् । ऋतस्य । वि । रश्मिऽभिः । ससृजे । सूर्यः । गाः ।
वि । सानुना । पृथिवी । सस्रे । उर्वी । पृथु । प्रतीकं । अधि । आ । ईधे । अग्निः ॥१॥

ऋतस्य यज्ञस्य सदनात् स्थानाद्देवयजनदेशाद्ब्रह्म स्तोत्रं स्तुत्यान् सूर्यादीन्प्रैतु । प्रकर्षेण गच्छतु । किं तद्ब्रह्मेति तदाह । सूर्यः सर्वस्य प्रेरकः शोभनवीर्यो वा देवो रश्मिभिरात्मीयैः किरणैर्गा अपो वृष्ट्युदकानि वि ससृजे । विसृजति । विमुंचति । प्रवर्षति । श्रूयते हि । याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षतीति । स्मृतिश्च भवति । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इति । अत ईदृशं माहात्म्यं सूर्यस्यैव विद्यते नान्यस्य चिदित्यनेन पादेन सूर्यः स्तूयते । अपि च पृथिवी प्रथिता भूमिः सानुना समुच्छ्रितेन पर्वतादिनोर्वी विस्तीर्णा सती वि सस्रे । विसरति । व्याप्नोति । तथाग्निः पृथु विस्तीर्णं प्रतीकं पृथिव्या अवयवं देवयजनलक्षणं स्थानमधि ॥ अधिपरी अनर्थकावित्यधेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां कर्मप्रवचनीययुक्त इति सप्तम्यर्थे द्वितीया ॥ ईदृशे स्थान ऐधे । आदीप्यते ॥

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥२॥

इमां । वां । मित्रावरुणा । सुऽवृक्तिं । इषं । न । कृण्वे । असुरा । नवीयः ।
इनः । वां । अन्यः । पदऽवीः । अदब्धः । जनं । च । मित्रः । यतति । ब्रुवाणः ॥२॥

हे असुरासुरौ बलवंतौ हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वां युवाभ्यामिषं न हवीरूपमन्नमिव नवीयो नवीयसीमिमामस्मदीयां पुरोवर्तिनीं सुवृक्तिं स्तुतिं कृण्वे । अहं स्तोता करोमि । वां युवयोरन्योऽन्यतर इनः प्रभुरदब्धः शत्रुभिरहिंसितो वरुणः पदवीः पदस्य स्थानस्य प्रजनयिता । वरुणो हि धर्माधर्मयोर्धारयितेति पदवीरित्युच्यते । ब्रुवाणोऽस्माभिः स्तूयमानो मित्रश्च जनं सर्वं प्राणिजातं यतति । यातयति । प्रवर्तयति । तथा च श्रूयते । मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणः । ऋ° ३. ५९. १. । इति ॥

आ वातस्य ध्रजतो रंत इत्या अपीपयंत धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद्वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥३॥
आ । वातस्य । ध्रजतः । रंते । इत्याः । अपीपयंत । धेनवः । न । सूदाः ।
महः । दिवः । सदने । जायमानः । अचिक्रदत् । वृषभः । सस्मिन् । ऊधन् ॥३॥

ध्रजतो गच्छतो वातस्य वायोरित्या गतय आ रंते । अभितो रमंते । तथा सूदाः ॥ सूद प्रेरण इति धातुः ॥ क्षीरस्य प्रेरयित्र्यो धेनवो न । नेति चार्थे । गावश्चापीपयंत । प्यायंते । एधंते । अपि च महो महतो दिवो द्योतमानस्यादित्यस्य सदने स्थानेऽंतरिक्षे जायमान उत्पद्यमानो वृषभो वर्षणशीलः पर्जन्यः सस्मिन्नूधन् तस्मिन्नंतरिक्षेऽचिक्रदत् ॥

गिरा य एता युनजद्धरी त इंद्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्यां ॥४॥
गिरा । यः । एता । युनजत् । हरी इति । ते । इंद्र । प्रिया । सुऽरथा । शूर । धायू इति ।
प्र । यः । मन्युं । रिरिक्षतः । मिनाति । आ । सुऽक्रतुं । अर्यमणं । ववृत्यां ॥४॥

अस्याः पूर्वोऽर्धर्च इंद्रस्तुतिरपरोऽर्यम्णः स्तुतिः । हे शूर विक्रांतेंद्र ते तव प्रिया प्रियौ सुरथा सुष्ठुरंहणौ धायू धारकावेतैतौ हरी त्वदीयावश्वौ यो जनो गिरा स्तुतिरूपया वाचा युनजत् रथे युंज्यात् हे इंद्र त्वमस्य यागमायाहीति शेषः । योऽर्यमा रिरिक्षतो हिंसितुमिच्छतः शत्रोः संबंधिनं मन्युं कोपं प्र मिनाति प्रकर्षेण हिनस्ति सुक्रतुं शोभनकर्माणमर्यमणमा ववृत्यां । स्तुत्यावर्तयामि ॥

यजंते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठं ॥५॥
यजंते । अस्य । सख्यं । वयः । च । नमस्विनः । स्वे । ऋतस्य । धामन् ।
वि । पृक्षः । बाबधे । नृऽभिः । स्तवानः । इदं । नमः । रुद्राय । प्रेष्ठं ॥५॥

अनया रुद्रः स्तूयते । नमस्विनो हविर्लक्षणान्नवंतः स्वे स्वकीय ऋतस्य यज्ञस्य धामन् धामनि स्थाने । स्वकीये यज्ञगृहे स्थिता इत्यर्थः । वयश्च गंतारः कर्माणि कुर्वाणा यजमाना अस्य रुद्रस्य सख्यं सखित्वमुद्दिश्य यजंते । पूजयंतु । नृभिर्नेतृभिः स्तवानः स्तूयमानो रुद्रः पृक्षोऽन्नं स्तोतृषु वि बाबधे । विबध्नाति । ददातीत्यर्थः । प्रेष्ठं रुद्रस्य प्रियतममिदं नमस्तस्मै रुद्राय मया क्रियते ॥ ॥१॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिंधुमाता ।
याः सुष्वयंत सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥६॥
आ । यत् । साकं । यशसः । वावशानाः । सरस्वती । सप्तथी । सिंधुऽमाता ।
याः । सुस्वयंत । सुऽदुघाः । सुऽधाराः । अभि । स्वेन । पयसा । पीप्यानाः ॥ ६ ॥

यद्यासां गंगादीनां नदीनां मध्ये सिंधुमातापां मातृभूता सरस्वत्येतदाख्या नदी सप्तथी सप्तमी भवति सुदुघाः कामान्दोग्धुं सुशक्याः सुधाराः शोभनधारोपेताश्च नद्यः सुष्वयंत सुष्वयंते । गतिकर्मैतत् । प्रवहंति । स्वेन स्वकीयेन पयसोदकेनाभि पीप्याना याश्चाभिवर्धयंत्यो यशसोऽन्नवत्यो वावशानाः कामयमाना नद्यः साकं युगपदेवा गच्छंतु ॥ आ इत्युपसर्गस्य योग्यक्रियाध्याहारः ॥

उत त्ये नो मरुतो मंदसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवंतु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरंत्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥७॥
उत । त्ये । नः । मरुतः । मंदसानाः । धियं । तोकं । च । वाजिनः । अवंतु ।
मा । नः । परि । ख्यत् । अक्षरा । चरंती । अवीवृधन् । युज्यं । ते । रयिं । नः ॥ ७ ॥

उतापि च मंदसाना मोदमाना वाजिनो वेगवंतस्त्ये ते मरुतो नोऽस्मदीयं धियं यज्ञाख्यं कर्म तोकं चास्मदीयं पुत्रं चावंतु । रक्षंतु । अक्षरा व्याप्ता चरंती वाग्देवता च नोऽस्मान् परि त्यक्त्वास्मद्व्यतिरिक्ता-नन्यान्मा ख्यत् । मा द्राक्षीत् । ते पूर्वोक्ता मरुतो वाक्च युज्यं युक्तमपि नोऽस्मदीयं रयिं धनमवीवृधन् । वर्धयंतु ॥

प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं१ न वीरं ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिं ॥८॥
प्र । वः । महीं । अरमतिं । कृणुध्वं । प्र । पूषणं । विदथ्यं । न । वीरं ।
भगं । धियः । अवितारं । नः । अस्याः । सातौ । वाजं । रातिऽसाचं । पुरंऽधिं ॥८॥

हे स्तोतारः वो यूयमरमतिमुपरतिरहितां महीं महतीं भूमिं प्र कृणुध्वं । आह्वयत । तथा विदथ्यं यज्ञार्हं वीरं न सर्वेषां प्रेरकं च पूषणमेतन्नामकं देवं प्र कृणुध्वं । तथास्या धियो नोऽस्मदीयस्यास्य कर्मणोऽवितारं रक्षितारं भगं देवं चाह्वयत । अपि च सातावस्मदीये यज्ञे युद्धे वा वाजमृभूणामन्यतमं देवमाह्वयत । कीदृशं वाजं । रातिषाचं दानसेवकं पुरंधिं पुराणां धारयितारं ॥

यज्ञपुच्छेऽच्छायं व इति चमसिनः स्वं स्वं चमसमभिमृशेयुः । सूचितं च । अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वित्येतयाभिमृशंति । आ॰ ६. १२. । इति ॥

अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥
अच्छ । अयं । वः । मरुतः । श्लोकः । एतु । अच्छ । विष्णुं । निसिक्तऽपां । अवःऽभिः ।
उत । प्रऽजायै । गृणते । वयः । धुः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ९ ॥

हे मरुतः वो युष्मानयं श्लोकोऽस्मदीयमिदं स्तोत्रमच्छैतु । अभिगच्छतु । निषिक्तपां निषिक्तस्य गर्भस्य

रक्षितारं । यद्वा । चमसे निषिक्तानां सोमानां पातारं । अवोभिरस्मद्विषयरक्षणैर्युक्तं विष्णुं चास्मदीयं स्तोत्रमच्छैतु । उतापि च मरुतो विष्णुश्च गृणते स्तुवते मह्यं प्रजायै पुत्ररूपां प्रजां वयोऽन्नं च धुः । अधुः । दधतु । हे मरुतो हे विष्णो यूयं स्वस्तिभिरविनाशिभिर्नोऽस्मान् सदा सर्वदा पात । रक्षत ॥ ॥२॥

आ वो वाहिष्ठ इत्यष्टर्चं चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वदेवं । अनुक्रम्यते च । आ वोऽष्टाविति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

आ वो॒ वाहि॑ष्ठो वहतु स्त॒वध्यै॒ रथो॒ वाजा ऋभुक्षणो॒ अमृ॑क्ताः ।
अ॒भि त्रि॑पृ॒ष्ठैः सव॑नेषु॒ सोमै॒र्मदे॑ सुशिप्रा म॒हभि॑ः पृणध्वं ॥१॥
आ । व॒ः । वाहि॑ष्ठः । व॒ह॒तु॒ । स्त॒वध्यै॑ । रथ॑ः । वा॒जा॒ः । ऋ॒भु॒क्ष॒ण॒ः । अमृ॑क्ताः ।
अ॒भि । त्रि॒ऽपृ॒ष्ठैः । सव॑नेषु । सोमै॑ः । मदे॑ । सु॒ऽशि॒प्रा॒ः । म॒हऽभि॑ः । पृ॒ण॒ध्वं॒ ॥१॥

अनेन तृचेनर्भवः स्तूयंते । ऋभुक्षणो विस्तीर्णस्य तेजसो निवासभूता हे वाजा ऋभवः वाहिष्ठो वोढृतमः स्तवध्यै स्तोतुमर्हो ऽमृक्तः केनाप्यहिंसितो युष्मदीयो रथो वो युष्माना वहतु । आ समंतादस्मदीयं यज्ञं प्रापयतु । हे सुशिप्राः शोभनहनवः यूयं तेन रथेनागत्य सवनेष्वस्मदीययज्ञेषु मदे मदनिमित्तं त्रिपृष्ठैः क्षीरदधिसक्तुमिश्रैर्महभिर्महद्भिः सोमैरभि पृणध्वं । युष्मदीयं जठरमभिपूरयत । स रथो युष्मानावहत्विति पूर्वेणान्वयः ॥

यू॒यं ह॒ रत्नं॑ म॒घव॑त्सु धत्थ स्व॒र्दृश॑ ऋभुक्षणो॒ अमृ॑क्तं ।
सं य॒ज्ञेषु॑ स्व॒धाव॑न्तः पिबध्वं॒ वि नो॒ राधां॑सि म॒तिभि॑र्दयध्वं ॥२॥
यू॒यं । ह॒ । रत्नं॑ । म॒घव॑त्ऽसु । ध॒त्थ॒ । स्व॒ःऽदृश॑ः । ऋ॒भु॒क्ष॒ण॒ः । अमृ॑क्तं ।
सं । य॒ज्ञेषु॑ । स्व॒धा॒ऽव॒न्त॒ः । पि॒ब॒ध्वं॒ । वि । न॒ः । राधां॑सि । म॒तिऽभि॑ः । द॒य॒ध्वं॒ ॥२॥

हे ऋभुक्षणो हे ऋभवः स्वर्दृशः स्वर्गं पश्यंतो यूयं ह यूयमेव मघवत्सु हविर्लक्षणान्नवत्स्वस्मासु निमित्तेष्वमृक्तमहिंसितं । चोरादिभिर्नापहृतमित्यर्थः । रत्नं रमणीयं धत्थ । धारयथ । तदनंतरं स्वधावंतो बलवंतस्ते यूयं यज्ञेष्वस्मदीययज्ञेषु सं पिबध्वं । सम्यक् सोमं पिबत । अपि च यूयं मतिभिर्धनहेतुभिर्नोऽस्मभ्यं राधांसि धनानि वि दयध्वं । विशेषेण दत्त ॥

उ॒वोचि॑थ॒ हि म॑घवन्दे॒ष्णं म॒हो अर्भ॑स्य॒ वसु॑नो विभा॒गे ।
उ॒भा ते॑ पू॒र्णा वसु॑ना॒ गभ॑स्ती॒ न सू॒नृता॒ नि य॑मते वस॒व्या॑ ॥३॥
उ॒वोचि॑थ । हि । म॒घ॒ऽव॒न् । दे॒ष्णं । म॒हः । अर्भ॑स्य । वसु॑नः । वि॒ऽभा॒गे ।
उ॒भा । ते॒ । पू॒र्णा । वसु॑ना । गभ॑स्ती॒ इति॑ । न । सू॒नृता॑ । नि । य॒म॒ते॒ । व॒स॒व्या॑ ॥३॥

उवोचिथेत्याद्याः पंचर्च इंद्रदेवताकाः । हे मघवन् धनवन्निंद्र त्वं महो महतोऽर्भस्याल्पस्य च वसुनो धनस्य विभागे परिचरणानुकूले दाननिमित्ते देष्णं धनमुवोचिथ हि । सेवसे खलु ॥ उचतिः सेवाकर्मा ॥ तथा ते त्वदीयावुभौ गभस्ती बाहू वसुना धनेन पूर्णा । संपूर्णौ भवतः । ते त्वदीया सूनृता वाग्वसव्या वसूनि धनानि न नि यमते । न नियच्छति । यद्वा । वसव्या वसुषु धनेषु साधुः सूनृता वाग्धनेन संपूर्णौ त्वदीयौ बाहू न नियच्छति । नाल्पं प्रदापयतीत्यर्थः ॥

त्वमिंद्र स्वयंशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वंतो हरिवो वसिष्ठाः ॥ ४॥
त्वं । इंद्र । स्वऽयंशाः । ऋभुक्षाः । वाजः । न । साधुः । अस्तं । एषि । ऋक्वा ।
वयं । नु । ते । दाश्वांसः । स्याम । ब्रह्म । कृण्वंतः । हरिऽवः । वसिष्ठाः ॥ ४॥

हे इंद्र स्वयशा असाधारणकीर्तिर्ऋभुक्षा ऋभुनिवासक ऋभूणामीश्वरो वा त्वं साधुः साधको वाजो नान्नमिव ऋक्वा ऋक्वणः स्तोतुर्ममास्तं गृहमेषि । प्राप्नुहि । न्वद्य वसिष्ठा एतत्संज्ञका ऋषयो वयं हे हरिवः स्वकीयाश्वोपेतेंद्र ते त्वदर्थं दाश्वांसो हविर्लक्षणान्नं दत्तवंतो ब्रह्म स्तोत्रं कृण्वंतः कुर्वंतः संतः स्याम । भवेम ॥

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इंद्र राय आ दशस्येः ॥ ५॥
सनिता । असि । प्रऽवतः । दाशुषे । चित् । याभिः । विवेषः । हरिऽअश्व । धीभिः ।
ववन्म । नु । ते । युज्याभिः । ऊती । कदा । नः । इंद्र । रायः । आ । दशस्येः ॥ ५॥

हे हर्यश्व हरिनामकाश्वेंद्र त्वं याभिर्धीभिरस्मदीयाभिः स्तुतिभिर्विवेषः व्याप्नोषि स त्वं दाशुषे चिद्धवि-र्दत्तवते यजमानायापि प्रवतः प्रवणस्य धनस्य सनितासि । दाता भवसि । अपि च हे इंद्र त्वं नोऽस्मभ्यं कदा कस्मिन्काले रायो धनान्या दशस्येः । प्रयच्छेः । न्वद्य ते तव युज्याभिर्योग्याभिरूत्यूतिभी रक्षाभिर्ववन्म । त्वां संभजेम ॥ ॥ ३॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इंद्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ६॥
वासयसिऽइव । वेधसः । त्वं । नः । कदा । नः । इंद्र । वचसः । बुबोधः ।
अस्तं । तात्या । धिया । रयिं । सुऽवीरं । पृक्षः । नः । अर्वा । नि । उहीत । वाजी ॥ ६॥

हे इंद्र त्वं कदा कस्मिन्काले नोऽस्मदीयं वचसो वचोरूपं स्तोत्रं बुबोधः । अवगच्छेः । तथा स त्वं वेधसः स्तोतॄनस्मान्वासयसीव । इवेदानीमर्थे । इदानीं स्वकीये स्थानेऽवस्थापयसि । किंच वाजी बलवानर्वा वेग-वांस्त्वदीयोऽश्वस्तात्या ॥ तनोतेरिदं रूपं ॥ संततया धियास्मत्प्रेरितया स्तुत्या हेतुभूतया सुवीरं शोभनपुत्रोपेतं रयिं त्वदीयं धनं पृक्षोऽन्नं च नोऽस्मदीयमस्तं गृहं न्युहीत । निवहेत् ॥

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षंत इंद्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबंधुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवंत मर्ताः ॥ ७॥
अभि । यं । देवी । निःऽऋतिः । चित् । ईशे । नक्षंते । इंद्रं । शरदः । सुऽपृक्षः ।
उप । त्रिऽबंधुः । जरत्ऽअष्टिं । एति । अस्वऽवेशं । यं । कृणवंत । मर्ताः ॥ ७॥

देवी द्योतमाना निर्ऋतिश्चिद्भूमिरपीशे ॥ कृत्यार्थे केन्प्रत्ययः ॥ ईशितव्यास्वभूता सती यमिंद्रमभि नक्षते व्याप्नोति । सुपृक्षः शोभनान्नैरुपेताः शरदः संवत्सराश्च यमिंद्रं नक्षंते व्याप्नुवंति । मर्ता मरणधर्माणः स्तोतारो वयं यमिंद्रमस्ववेशं स्वकीये स्थानेऽनुपविशंतं कृणवंत कुर्वंति । त्रिबंधुस्त्रयाणां लोकानां बंधको विधारकः स इंद्रो जरदष्टिं जरज्जीर्णमष्टिरशनं यस्य बलस्य हेतुभूतं तद्बलमुपैति । उपगच्छति ॥

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यंतु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
आ । नः । राधांसि । सवितरिति । स्तवध्यै । आ । रायः । यंतु । पर्वतस्य । रातौ ।
सदा । नः । दिव्यः । पायुः । सिसक्तु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ८ ॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरक देव त्वत्सकाशात्स्तवध्यै स्तोतुं योग्यानि राधांसि धनानि नोऽस्माना यंतु। आगच्छंतु। पर्वतस्य। पर्वत इति कश्चिदिंद्रस्य सखा। एतत्संज्ञकस्य देवस्य रातौ दाने सति रायो धनान्यस्माना यंतु। पायुः सर्वस्य पालको दिव्यो दिवि भवः स इंद्रः सदा सर्वदा नोऽस्मान् सिषक्तु। रक्षकत्वेन सेवतां। अस्मिन्सूक्ते ये प्रतिपादिता देवास्ते सर्वे यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणैः सदा पात। पालयत॥ ॥४॥

उदु ष्य देव इत्यष्टर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं सवितृदेवताकं। सप्तम्यष्टम्यौ वाजिदेवताके। भगमुग्रो ऽवस इत्यर्धर्चो भगदेवत्यः सावित्रो वा। तथा चानुक्रमणिका। उदु ष्य सावित्रमंत्ये वाजिन्यौ भगमिति भागो वार्धर्च इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ १ ॥
उत् । ऊं इति । स्यः । देवः । सविता । ययाम । हिरण्ययीं । अमतिं । यां । अशिश्रेत् ।
नूनं । भगः । हव्यः । मानुषेभिः । वि । यः । रत्ना । पुरुऽवसुः । दधाति ॥ १ ॥

सविता सर्वस्य प्रेरकः स्य स देवो हिरण्ययीं सुवर्णमयीं याममतिं। रूपनामैतत्। रूपं। प्रभामित्यर्थः। अशिश्रेत् आश्रयतिताममतिमुद्ययाम। उद्यच्छति। उन्नमयति। उ इति पादपूरणः। नूनमद्य भगो भजनीयो यः सविता मानुषेभिर्मनुष्यैः स्तोतृभिर्हव्यो हवनीयः स्तोतव्यो भवति। पुरूवसुर्बहुधनो यो देवः स्तोतृभ्यो रत्ना रत्नानि रमणीयानि धनानि वि दधाति करोति। स सविता देवस्ताममतिमुद्ययामेति पूर्वेण संबंधः ॥

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ २ ॥
उत् । ऊं इति । तिष्ठ । सवितरिति । श्रुधि । अस्य । हिरण्यऽपाणे । प्रऽभृतौ । ऋतस्य ।
वि । उर्वीं । पृथ्वीं । अमतिं । सृजानः । आ । नृऽभ्यः । मर्तऽभोजनं । सुवानः ॥ २ ॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरयितर्देव त्वमुत्तिष्ठ। ऊर्ध्वं गच्छ। ततो हे हिरण्यपाणे हे सुवर्णहस्त त्वमस्मदभीप्सितप्रदानायर्तस्य यज्ञस्य प्रभृतौ प्रणयनेऽस्यास्मदीयमिदं स्तोत्रं श्रुधि। शृणु। उ इति पूरणः। कीदृशस्त्वं। उर्वीं विस्तीर्णां पृथ्वीं प्रथिताममतिं रूपं प्रभां वि सृजानो विसृजन्नृभ्यो नेतृभ्यः स्तोतृभ्यो मर्तभोजनं मनुष्याणां भोगयोग्यं धनमा सुवानः प्रेरयन्। एवंभूतस्त्वमिदं स्तोत्रं शृण्विति संबंधः ॥

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणंति ।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३ ॥
अपि । स्तुतः । सविता । देवः । अस्तु । यं । आ । चित् । विश्वे । वसवः । गृणंति ।
सः । नः । स्तोमान् । नमस्यः । चनः । धात् । विश्वेभिः । पातु । पायुऽभिः । नि । सूरीन् ॥ ३ ॥

अपि च सविता देवोऽस्माभिः स्तुतोऽस्तु। अस्मदीयाः स्तुतीः शृणोत्वित्यर्थः। विश्वे वसवश्चित् सर्वे देवा अपि यं सवितारमा गृणंति अभिष्टुवंति नमस्यः सर्वैर्नमस्करणीयः स देवः स्तोमान्नोऽस्मदीयानि स्तोत्राणि चनोऽन्नं धात्। दधातु। अन्नफलानि करोतु। विश्वेभिर्विश्वैः सर्वैः पायुभिः पालनैः सूरीन् स्तोतृनस्मान्नि पातु। नितरां पालयतु॥

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा।
अभि सम्राजो वरुणो गृणंत्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः॥४॥

अभि। यं। देवी। अदितिः। गृणाति। सवं। देवस्य। सवितुः। जुषाणा।
अभि। संऽराजः। वरुणः। गृणंति। अभि। मित्रासः। अर्यमा। सऽजोषाः॥४॥

देवी द्योतमानादितिरदीना देवमाता यं सवितारमभि गृणाति अभिष्टौति। कीदृशी। सवितुर्देवस्यैव सवं प्रसवमनुज्ञां जुषाणा सेवमाना। सम्राजः सम्यग्राजमाना वरुणः। उपलक्षणमेतत्। वरुणादयो देवा यं सवितारमभि गृणंति अभिष्टुवंति। मित्रासो मित्रादयश्च सजोषाः समानप्रीतिरर्यमैतत्संज्ञको देवश्च यमभिगृणंति। स नः स्तोमांश्चनो धादिति पूर्वयर्चा संबंधः॥

अभि ये मिथो वनुषः सपंते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु॥५॥

अभि। ये। मिथः। वनुषः। सपंते। रातिं। दिवः। रातिऽसाचः। पृथिव्याः।
अहिः। बुध्न्यः। उत। नः। शृणोतु। वरूत्री। एकधेनुऽभिः। नि। पातु॥५॥

रातिषाचो दानसेविनो वनुषः संभक्तारो ये यजमाना मिथः परस्परं संहता भूत्वा सवितारमभिलक्ष्य सपंते परिचरंति। कीदृशं। दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूमेश्च रातिं मित्रभूतं। उतापि चाहिर्बुध्न्यः। बुध्नेऽंतरिक्षे भवो बुध्न्यः। एतीत्यहिः। एतत्पदद्वयाभिधो मध्यमस्थानोऽग्निरहिर्बुध्न्य इत्युच्यते। सवितुर्मित्रभूतः सोऽपि तेषां नोऽस्माकं सवितृविषयं स्तोत्रं शृणोतु। तथा वरूत्री वाग्देवी च सवितृसहिता सत्येकधेनुभिर्मुख्याभिर्गोभिर्नि पातु। नितरामस्मान्पालयतु॥

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नं॥६॥

अनु। तत्। नः। जाःपतिः। मंसीष्ट। रत्नं। देवस्य। सवितुः। इयानः।
भगं। उग्रः। अवसे। जोहवीति। भगं। अनुग्रः। अध। याति। रत्नं॥६॥

इयानोऽस्माभिर्याच्यमानो जास्पतिः प्रजानां पालकः सविता देवः सवितुर्देवस्य स्वस्य संबंधि रत्नं रमणीयं तत्प्रसिद्धं धनं नोऽस्माकमनु मंसीष्ट। अनुमन्यतां। उग्र ओजस्वी स्तोता भगं भजनीयं सवितारं भगसंज्ञकं देवं वावसे नोऽस्माकं रक्षणाय जोहवीति। भृशं ह्वयति। अधापि चानुग्रोऽसमर्थः स्तोता भगमेतत्संज्ञकं सवितारं वा रत्नं रमणीयं तत्प्रसिद्धं धनं याति। याचते॥

वैश्वदेवे पर्वणि वाजिनस्य हविषः शं नो भवंत्वित्यादिके द्वे याज्यानुवाक्ये। सूत्रितं च। शं नो भवंतु वाजिनो हवेषु वाजेवाजेऽवत वाजिनो न इत्यूर्ध्वजुरनवानं याज्यां। आ॰ २. १६.। इति॥

शं नो भवंतु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जंभयंतोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥७॥

शं । नः । भवंतु । वाजिनः । हवेषु । देवऽताता । मितऽद्रवः । सुऽअर्काः ।
जंभयंतः । अहिं । वृकं । रक्षांसि । सनेमि । अस्मत् । युयवन् । अमीवाः ॥७॥

देवताता देवतातौ यज्ञे हवेष्वस्मदीयेषु स्तोत्रेषु मितद्रवो मितद्रवणा मितमार्गाः स्वर्काः शोभनान्ना वाजिन एतदभिधायका देवा नोऽस्माकं शं सुखाय भवंतु । अपि चाहिमागत्य हंतारं वृकं वसूनामादातारं । चोरमिति शेषः । रक्षांसि च जंभयंतो हिंसंतो वाजिनो देवाः सनेमि । पुराणनामैतत् । पुरातना अमीवा रोगानस्मदस्मत्तो युयवन् । पृथक्कुर्वंतु ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥८॥
वाजेऽवाजे । अवत । वाजिनः । नः । धनेषु । विप्राः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।
अस्य । मध्वः । पिबत । मादयध्वं । तृप्ताः । यात । पथिऽभिः । देवऽयानैः ॥८॥

हे वाजिन एतन्नामका देवा विप्रा मेधाविनोऽमृता अमरणधर्माण ऋतज्ञाः सत्यं जानंतः एवंभूताः संतो यूयं वाजे वाजे सर्वेषु युद्धेषु नोऽस्मान्धनेषु धननिमित्तेष्ववत । पालयत । ततो यूयमस्य मध्वो मधुरोपेतमिमं सोमं पिबत । सोमपानानंतरं मादयध्वं । यूयं तृप्ता भवत । ततस्तृप्ता यूयं देवयानैर्देवगमनसाधनैः पथिभिर्मार्गैर्यात । गच्छत ॥ ॥५॥

ऊर्ध्वो अग्निरिति सप्तर्चं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वदेवं । ऊर्ध्वः सप्त वैश्वदेवं त्वित्यनुक्रमणिका ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्र ऊर्ध्वो अग्निरिति वैश्वदेवस्तृचः । सूचितं च । ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेदुत स्या नः सरस्वती जुषाणेति प्रउगं । आ० ८.१०. । इति ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पंथामृतं होता न इषितो यजाति ॥१॥
ऊर्ध्वः । अग्निः । सुऽमतिं । वस्वः । अश्रेत् । प्रतीची । जूर्णिः । देवऽतातिं । एति ।
भेजाते इति । अद्री इति । रथ्याऽइव । पंथां । ऋतं । होता । नः । इषितः । यजाति ॥१॥

अग्निरंगनादिगुणविशिष्ट ऊर्ध्व उन्नमनः सन् वस्वो वासकस्य स्तोतुः सुमतिमस्मदीयां शोभनां स्तुतिमश्रेत् । श्रयतु । सेवतां । प्रतीच्यभिमुखी जूर्णिः सर्वासां प्रजानां जरयित्र्युषोदेवता देवतातिं यज्ञमेति । गच्छति । अद्री आद्रियंतौ श्रद्धावंतौ पत्नीयजमानौ पंथां पंथानं यज्ञमार्गं रथ्येव रथिनाविव भेजाते । सेवेते । तथेषितः संप्रेषितो नोऽस्मदीयो होता ऋतं यज्ञं यजाति । यजतु । करोत्वित्यर्थः ॥

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२॥
प्र । ववृजे । सुऽप्रयाः । बर्हिः । एषां । आ । विश्पती इवेति विश्पती इव । बीरिटे ।
इयाते इति ।
विशां । अक्तोः । उषसः । पूर्वऽहूतौ । वायुः । पूषा । स्वस्तये । नियुत्वान् ॥२॥

एषां यजमानानां संबंधि सुप्रयाः शोभनान्नेन युक्तं बर्हिः कुशमयं प्र ववृजे । प्रवृज्यते । आसाद्यत इत्यर्थः । विश्पतीव । इवेतीदानीमर्थे । इदानीमस्मदीयानां प्रजानां पालकौ नियुत्वान् । नियुद्भिर्वडवा उच्यंते ।

तद्वान्वायुः पूषा च विशां प्रजानां स्वस्तये चैमायात्मो रात्रेः संबंधिन्या उषसः सकाशात्पूर्वहूती पूर्वस्मिन्नाह्वाने सति वीरिटेऽंतरिक्ष एयाते। आगच्छतां। यद्वा। विश्पतीवेत्युपमा। विशां मनुष्याणां वीरिटे गणे विश्पतीव राजानौ यथागच्छतां तद्वत्। अस्मिन्पक्षे विशामित्युभयत्र संबध्यते॥

ज्मया अत्र वसवो रंत देवा उरावंतरिक्षे मर्जयंत शुभ्राः।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य॥३॥
ज्मयाः। अत्र। वसवः। रंत। देवाः। उरौ। अंतरिक्षे। मर्जयंत। शुभ्राः।
अर्वाक्। पथः। उरुऽज्रयः। कृणुध्वं। श्रोत। दूतस्य। जग्मुषः। नः। अस्य॥३॥

वसवो वसुसंज्ञका देवा अत्रास्मिन्यज्ञे ज्मयाः पृथिव्यां भवा रंत। रमयंतां। उरौ विस्तीर्णेऽंतरिक्षे स्थिताः शुभ्रा दीप्यमाना मरुतश्च मर्जयंत। परिचर्यंते। हे उरुज्रयः प्रभूतगमना वसवो मरुतश्च यूयं पथो युष्मदीयान्मार्गानर्वागस्मदभिमुखं यथा भवति तथा कृणुध्वं। कुरुत। अपि च यूयं जग्मुषो युष्मान्प्रति गतवतो नोऽस्मदीयस्यास्य दूतस्याग्नेराह्वानं श्रोत। शृणुत। अग्निर्हि यजमानानां दूतः सन्देवानाह्वयतीत्यर्थः॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि संति देवाः।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिं॥४॥
ते। हि। यज्ञेषु। यज्ञियासः। ऊमाः। सधऽस्थं। विश्वे। अभि। संति। देवाः।
तान्। अध्वरे। उशतः। यक्षि। अग्ने। श्रुष्टी। भगं। नासत्या। पुरंऽधिं॥४॥

यज्ञेषु यागेषु ते हि ते खलु प्रसिद्धा यज्ञियासो यज्ञार्हा ऊमा रक्षका विश्वे सर्वे देवाः सधस्थं सहस्थानमभि संति। अभिभवंति। आक्रामंति। हे अग्ने अध्वरेऽस्मदीये यज्ञ उशतः कामयमानांस्तान्देवान्यक्षि। यज। तथा श्रुष्टी। क्षिप्रनामैतत्। क्षिप्रं भगमेतत्संज्ञकं देवं नासत्या नासत्यावश्विनौ च पुरंधिं पुरूणां धातारमिंद्रं च यज॥

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिंद्रमग्निं।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयंतां॥५॥
आ। अग्ने। गिरः। दिवः। आ। पृथिव्याः। मित्रं। वह। वरुणं। इंद्रं। अग्निं।
आ। अर्यमणं। अदितिं। विष्णुं। एषां। सरस्वती। मरुतः। मादयंतां॥५॥

हे अग्ने त्वं दिवो द्युलोकात्सकाशाद्गिरो गरणीयान् स्तुत्यान्देवानस्मदीयं यज्ञं प्रत्या वह। आह्वानं कुरु। पृथिव्या अंतरिक्षाच्चा वह। कान्देवानिति तदुच्यते। मित्रमेतत्संज्ञकं वरुणं चेंद्रं च देवेषु देवतास्वरूपेणावस्थितं चाग्निमर्यमणमेतत्संज्ञकमदितिमदीनां पृथिवीं च विष्णुं च। एवंभूतान्देवानेषामस्माकं यजमानानामर्थाया वह। सरस्वती वाग्देवता च मरुतश्च मादयंतां। अस्मदीयैः स्तोत्रैर्हविर्भिश्च माद्यंतु॥

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन्।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः॥६॥
ररे। हव्यं। मतिऽभिः। यज्ञियानां। नक्षत्। कामं। मर्त्यानां। असिन्वन्।
धात। रयिं। अविऽदस्यं। सदाऽसां। सक्षीमहि। युज्येभिः। नु। देवैः॥६॥

यज्ञियानां । चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । यज्ञार्हेभ्यो देवेभ्यो मतिभिरस्मदीयाभिः स्तुतिभिः सह हव्यं हवी ररे । अस्माभिर्दीयते । मर्तानां मनुष्याणामस्माकं काममभिलाषमसिन्वन्नप्रतिबध्नन्नपिर्मेधत् । अस्मदीयं यज्ञं व्याप्नोतु । हे देवाः यूयमविदस्यमनुपक्षपणीयं सदासां सर्वदा संभजनीयं रयिं धनं धात । अस्मभ्यं दत्त । त्वद्य वयं युष्मेभिः सहायभूतैरिह यज्ञे समागतैर्देवैः सचीमहि । यद्वा । न्विलुपमार्थे । युष्मेभिर्नु बंधुभिरिव देवैः सचीमहि ॥

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छंतु चंद्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
नु । रोदसी इति । अभिस्तुते इत्यभिऽस्तुते । वसिष्ठैः । ऋतऽवानः । वरुणः । मित्रः । अग्निः ।
यच्छंतु । चंद्राः । उपऽमं । नः । अर्कं । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

न्वद्य रोदसी द्यावापृथिव्यौ वसिष्ठैरस्माभिः । पूजार्थं बहुवचनं । अभिष्टुते अभितः सर्वतः स्तुते अभूतां । तथा ऋतावानोऽस्माभिः क्रियमाणैर्यज्ञैरुपेता वरुणो मित्रोऽग्निश्चैवंभूता देवा अस्माभिरभिष्टुता आसन् । चंद्रा आह्लादका देवा नोऽस्मभ्यमर्कमर्चनीयमन्नमुपमं सर्वोत्कृष्टं यच्छंतु । ददतु । सूक्ते प्रतिपादिता ये देवास्ते सर्वे यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिरविनाशैः सदा सर्वदा पात । पालयत ॥ ॥६॥

ओ श्रुष्टिरिति सप्तर्चं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वदेवं । ओ श्रुष्टिरित्यनुक्रांतं ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणां ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥१॥
ओ इति । श्रुष्टिः । विदथ्या । सं । एतु । प्रति । स्तोमं । दधीमहि । तुराणां ।
यत् । अद्य । देवः । सविता । सुवाति । स्याम । अस्य । रत्निनः । विऽभागे ॥१॥

हे देवाः विदथ्या विदथेन त्वदीयेन चित्तेन संपाद्या श्रुष्टिः सुखमस्मानो आ समेतु । आगच्छतु । अथवा श्रुष्टिर्वेगवती विदथ्या विदथे यज्ञे क्रियमाणास्मदीया स्तुतिर्युष्मानागच्छतु । वयं तुराणां वेगवतां देवानां स्तोमं स्तोत्रं प्रति दधीमहि । कुर्वीमहि । अद्येदानीं सविता देवो यद्धनं सुवाति अस्मभ्यं प्रेरयेत् रत्निनो रमणीयधनवतोऽस्य सवितुस्तस्य धनस्य विभागे दाने स्याम । वयं भवेम ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिंद्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥२॥
मित्रः । तत् । नः । वरुणः । रोदसी इति । च । द्युऽभक्तं । इंद्रः । अर्यमा । ददातु ।
दिदेष्टु । देवी । अदितिः । रेक्णः । वायुः । च । यत् । नियुवैते इति निऽयुवैते । भगः । च ॥२॥

मित्रो देवो नोऽस्मभ्यं तत्प्रसिद्धं धनं ददातु । प्रयच्छतु । तथा वरुणो ददातु । रोदसी च द्यावापृथिव्यौ च दत्तां । तथेंद्रो द्युभक्तं द्युभिर्द्योतमानैः स्तोतृभिः सेवितं तद्धनं ददातु । अर्यमा च ददातु । तथादितिर्देवी रेक्णो धनं दिदेष्टु । तद्धनमस्मभ्यं दिशतु । वायुश्च भगश्चोभौ देवौ यद्धनं नियुवैते अस्मान्नितरां योजयेतां तद्धनमिति पूर्वेण संबंधः ॥

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनंति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥३॥

सः । इत् । उग्रः । अस्तु । मरुतः । सः । शुष्मी । यं । मर्त्यं । पृषत्ऽअश्वाः । अवाथ ।
उत । ईं । अग्निः । सरस्वती । जुनंति । न । तस्य । रायः । परिऽएता । अस्ति ॥३॥

हे पृषदश्वाः । पृषच्छब्देन केचिन्मृगविशेषा उच्यंते । त एवाश्वा वाहा येषां ते । एवंभूता हे मरुतो रुद्रपुत्रा देवाः यूयं मर्त्यं मरणधर्माणं यं यजमानमवाथ पालयेत सेत्स एव यजमान उग्रोऽस्तु । ओजस्वी भवतु । तथा स शुष्मी बलवान् भवतु । तथोतापि चाग्निरंगनादिगुणयुक्तो देवः सरस्वती वाग्देवता चेत्याद्याः सर्वे देवा ईमेनं यजमानं जुनंति । प्रवर्तयंति । तस्य यजमानस्य संबंधिनो रायो धनस्य कश्चिदपि पर्येता परिगंता नास्ति । नाशको न भवतीत्यर्थः ॥

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥४॥
अयं । हि । नेता । वरुणः । ऋतस्य । मित्रः । राजानः । अर्यमा । अपः । धुरिति धुः ।
सुऽहवा । देवी । अदितिः । अनर्वा । ते । नः । अंहः । अति । पर्षन् । अरिष्टान् ॥४॥

ऋतस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा नेता प्रापयितायं ह्ययं खलु वरुणश्च मित्रश्चार्यमा चैते राजानः समर्था देवा अपोऽस्मदीयं यज्ञादिलक्षणं कर्म धुः । अधुः । दधति । अनर्वा केनाप्यप्रतिगता देवी द्योतमानादितिरदीना देवमाता सुहवा शोभनाह्वाना भवति । ते वरुणादयो देवा अरिष्टानबाधितान् सतो नोऽस्मानंहो दुरितमति पर्षन् । अतिपारयंतु ॥

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५॥
अस्य । देवस्य । मीळ्हुषः । वयाः । विष्णोः । एषस्य । प्रऽभृथे । हविःऽभिः ।
विदे । हि । रुद्रः । रुद्रियं । महिऽत्वं । यासिष्टं । वर्तिः । अश्विनौ । इराऽवत् ॥५॥

प्रभृथे हविर्भिर्हवीरूपैरन्नैरेषस्य प्रापणीयस्य मीळ्हुषः कामानां सेक्तुर्विष्णोः सर्वदेवात्मकस्यास्य देवस्य । विष्णुः सर्वा देवताः । ऐ० ब्रा० १. १. । इति श्रुतेः । अन्ये देवा वयाः शाखा इव भवंति । रुद्रो देवो रुद्रियं रुद्रसंबंधि सुखं महित्वं महत्त्वं च विदे हि । अस्मान्प्रापयति खलु । अपि च हे अश्विनौ देवौ युवामिरावद्वि-विलक्षणान्नयुक्तं वर्तिरस्मदीयं गृहं यासिष्टं । अयासिष्टं । आगच्छतं ॥

माच पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वंतो नि पांतु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥६॥
मा । अत्र । पूषन् । आघृणे । इरस्यः । वरूत्री । यत् । रातिऽसाचः । च । रासन् ।
मयःऽभुवः । नः । अर्वंतः । नि । पांतु । वृष्टिं । परिऽज्मा । वातः । ददातु ॥६॥

हे आघृणे प्राप्तदीप्ते एवंभूत हे पूषन् देव अत्रास्मिन्दाने मेरस्यः । विघातं मा कृथाः । वरूत्री सर्वैर्वरणीया सरस्वती रातिषाचश्च । रातिर्दानं । तस्य संभक्त्र्यो देवपत्न्यश्च यद्धनं रासन् अस्मभ्यं प्रयच्छेयुः । अत्र मा कृथा इति पूर्वेण संबंधः । किंच मयोभुवः सुखस्य भावका अर्वंतो गच्छंतो देवा नोऽस्मान्नि पांतु । नितरां पालयंतु । परिज्मा परितो गंता वातो वायुर्वृष्टिं वृष्टिलक्षणमुदकं ददातु । प्रयच्छत्वस्मभ्यं ॥

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छंतु चंद्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
नु। रोदसी इति। अभिस्तुते इत्यभिऽस्तुते। वसिष्ठैः। ऋतऽवानः। वरुणः। मित्रः। अग्निः।
यच्छंतु। चंद्राः। उपऽमं। नः। अर्कं। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥७॥

पूर्वं व्याख्यातेयं । अक्षरार्थस्तु । द्यावापृथिव्यौ वरुणादयो देवाश्च वसिष्ठैरस्माभिरभिष्टुता भवंति । एवंभूता आह्लादका देवाः सर्वोत्कृष्टमन्नमस्मभ्यं ददतु । अस्मिन्सूक्ते प्रतिपादिताः सर्वे देवा यूयं कल्याणैरस्मान्सर्वदा पालयत ॥ ॥७॥

प्रातरग्निमिति सप्तर्चमष्टमं सूक्तं । अत्रानुक्रमणिका । प्रातर्भागं जगत्याद्या लिंगोक्तदेवतांत्योषस्येति । वसिष्ठ ऋषिः । आद्या जगती शिष्टास्त्रिष्टुभः । आद्यामींद्रादिदेवत्या द्वितीयाद्याः पंच भगदेवत्याः सप्तम्युषोदेवत्या । अत्र केचिदाहुः । निविष्टुकामो रोगार्तो भगसूक्तं जपेत्सदा । निवेशं विशति क्षिप्रं रोगेभ्य परिमुच्यते । ऋग्वि° २. २५. । इति ॥

प्रातरग्निं प्रातरिंद्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥
प्रातः। अग्निं। प्रातः। इंद्रं। हवामहे। प्रातः। मित्रावरुणा। प्रातः। अश्विना।
प्रातः। भगं। पूषणं। ब्रह्मणः। पतिं। प्रातरिति। सोमं। उत। रुद्रं। हुवेम ॥१॥

प्रातरुषःकालेऽग्निं देवं हवामहे । वयं स्तोतार आह्वयामः । तथा प्रातःकाल इंद्रं हवामहे । तथा मित्रावरुणा मित्रावरुणावहोरात्राभिमानिनौ देवौ प्रातर्वयं हवामहे । तथाश्विनौ देवानां भिषजौ प्रातर्वयं हवामहे । तथा प्रातर्भगं देवं पूषणं देवं ब्रह्मणस्पतिं मंत्राभिमानिनमेतत्संज्ञकं चाह्वयामः । तथा प्रातः सोममेतत्संज्ञकं देवमुतापि च रुद्रं देवं च हुवेम । आह्वयामः ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥
प्रातःऽजितं। भगं। उग्रं। हुवेम। वयं। पुत्रं। अदितेः। यः। विऽधर्ता।
आध्रः। चित्। यं। मन्यमानः। तुरः। चित्। राजा। चित्। यं। भगं। भक्षि। इति। आह ॥२॥

यो भगो देवो विधर्ता विश्वस्य जगतो धारको जितं जयशीलमुग्रमुद्गूर्णमदितेः पुत्रं भगं देवं प्रातःकाल एव वयं हुवेम । आह्वयामः । आध्रश्चिद्दरिद्रोऽपि स्तोता यं भगं देवं मन्यमानः स्तुवन् भगं भजनीयं धनं भक्षि भज विभज मह्यं देहीत्याह ब्रवीति । तुरश्चित् । तुरतिर्गतिकर्मा । प्राप्तधनोऽपि राजा चित् समर्थोऽपि जनो यं भगं देवं भजनीयं धनं मह्यं भक्षि देहीत्याह । तं भगं प्रातरेव वयं हुवेमेति संबंधः ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवंतः स्याम ॥३॥
भग। प्रनेतरिति प्रऽनेतः। भग। सत्यऽराधः। भग। इमां। धियं। उत्। अव। ददत्। नः।
भग। प्र। नः। जनय। गोभिः। अश्वैः। भग। प्र। नृऽभिः। नृऽवंतः। स्याम ॥३॥

हे भग देव त्वं प्रणीता प्रकर्षेण नेतासि । तादृश प्रणेतर्हे भग त्वं सत्यराधः सत्यधनोऽसि । तादृश सत्यराधो हे भग त्वं नोऽस्मभ्यं ददत् कामान्प्रयच्छन्निमामस्मदीयां धियं स्तुतिमुदव । उद्रक्ष । सफलयुक्तां कुरु । हे भग त्वं गोभिरश्वैश्च नोऽस्मान् प्र जनय । प्रोद्भूतान् कुरु । हे भग त्वत्प्रसादाद्वयं नृभिर्नेतृभिः पुत्रादिभिर्नृवंतो मनुष्यवंतः प्र स्याम । प्रभवेम ॥

उतेदानीं भगवंतः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नां ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
उत । इदानीं । भगऽवंतः । स्याम । उत । प्रऽपित्वे । उत । मध्ये । अह्नां ।
उत । उत्ऽइता । मघऽवन् । सूर्यस्य । वयं । देवानां । सुऽमतौ । स्याम ॥ ४ ॥

उतापि चेदानीं वयं भगवंतः स्याम । हे भग भगेन त्वया स्वामिना युक्ता भवेम । यद्वा । भगवंतो धनवंतः स्याम । उतापि च प्रपित्वेऽह्नां प्राप्ते पूर्वाह्णे भगवंतः स्याम । उतापि चाह्नां दिवसानां मध्ये मध्याह्ने भगवंतः स्याम । उतापि च हे मघवन्धनवन्भग देव सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्य देवस्योदितोदितावुदये सति वयं त्वदनुग्रहाद्देवानामिंद्रादीनां सुमतावनुग्रहबुद्धौ स्याम । भवेम ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवंतः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
भगः । एव । भगऽवान् । अस्तु । देवाः । तेन । वयं । भगऽवंतः । स्याम ।
तं । त्वा । भग । सर्वः । इत् । जोहवीति । सः । नः । भग । पुरःऽएता । भव । इह ॥ ५ ॥

हे देवाः भगो देव एव भगवान् धनवानस्तु । तेन भगेन देवेन धनेन वा वयं भगवंतः स्याम । धनवंतो भवेम । हे भग तं प्रसिद्धं त्वा त्वां सर्व इत्सर्व एव जनो जोहवीति । भृशं पुनःपुनर्वाह्वयति । हे भग देव स त्वमिहास्मिन्यज्ञे नोऽस्माकं पुरएता पुरोगंता भव ॥

समध्वरायोषसो नमंत दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहंतु ॥ ६ ॥
सं । अध्वराय । उषसः । नमंत । दधिक्रावाऽइव । शुचये । पदाय ।
अर्वाचीनं । वसुऽविदं । भगं । नः । रथंऽइव । अश्वाः । वाजिनः । आ । वहंतु ॥ ६ ॥

शुचये शुद्धाय गमनयोग्याय पदाय स्थानाय दधिक्रावेवाश्वो यथा तथोषस उषोदेवता अध्वरायास्मदीयाय यागाय सं नमंत । संगच्छंतु । वाजिनो वेगवंतोऽश्वा रथमिव रथं यथा तथोषसोऽर्वाचीनमस्मदभिमुखं वसुविदं धनस्य प्रापकं भगं देवं नोऽस्मान्प्रत्या वहंतु । आनयंतु ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छंतु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । नः । उषसः । वीरऽवतीः । सदं । उच्छंतु । भद्राः ।
घृतं । दुहानाः । विश्वतः । प्रऽपीताः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

भद्रा भजनीया उषस उषोदेवता अश्वावतीरश्ववत्योऽश्वसहिताः सत्यो गोमतीर्गोमत्यश्च वीरवतीर्वी-

रवत्यः पुत्रादिजनोपेताश्च भवंत्यो नोऽस्मभ्यं सदं सर्वदोच्छंतु। व्युच्छंतु। नैशं तमो विवासयंतु। कीदृश्यः। घृतमुदकं दुहानाः सिंचंत्यो विश्वतः सर्वैर्गुणैः प्रपीताः प्रवृद्धाः। एवंभूता उषसस्तम उच्छंतु। अस्मिन् सूक्ते प्रतिपादिता हे सर्वे देवाः यूयं नोऽस्मान् सदा सर्वदा स्वस्तिभिः कल्याणैः पात। पालयत ॥ ॥ ८॥

प्र ब्रह्माण इति षडृचं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैश्वदेवं। अत्रानुक्रांतं। प्र ब्रह्माणः षड्वैश्वदेवं त्विति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ तृतीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे प्र ब्रह्माण इति वैश्वदेवसृचः। सूचितं च। प्र ब्रह्माणो अंगिरसो नक्षंत सरस्वतीं देवयंतो हवंते। आ० ८. ११.। इति ॥

प्र ब्रह्माणो अंगिरसो नक्षंत प्र क्रंदनुर्नभन्यस्य वेतु।
प्र धेनव उदप्रुतो नवंत युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥१॥
प्र। ब्रह्माणः। अंगिरसः। नक्षंत। प्र। क्रंदनुः। नभन्यस्य। वेतु।
प्र। धेनवः। उदऽप्रुतः। नवंत। युज्यातां। अद्री इति। अध्वरस्य। पेशः ॥१॥

ब्रह्माणोऽंगिरस एतन्नामका ऋषयः प्र नक्षंत। सर्वत्र व्याप्नुवंतु। क्रंदनुः पर्जन्यो नभन्यस्य स्तोत्रस्यास्मदीयं स्तोत्रं प्र वेतु। प्रकर्षेणेच्छतु। धेनवः प्रीणयित्र्यो नद्य उदप्रुत उदकानि सिंचंत्यः प्र नवंत। सर्पंतु। अद्री आद्रियंतौ पत्नीयजमानावध्वरस्य यज्ञस्य पेशो रूपं युज्यातां। योजयेतां ॥

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२॥
सुऽगः। ते। अग्ने। सनऽवित्तः। अध्वा। युक्ष्व। सुते। हरितः। रोहितः। च।
ये। वा। सद्मन्। अरुषाः। वीरऽवाहः। हुवे। देवानां। जनिमानि। सत्तः ॥२॥

हे अग्ने सनवित्तः सनाच्चिरकालादारभ्य लब्धस्ते त्वदीयोऽध्वा मार्गः सुगः सुष्ठु गंतव्यो भवतु। किंच हरितः श्यामवर्णा रोहितश्च लोहितवर्णाश्चेत्युभयविधा ये वा ये च ते त्वदीया अश्वाः सद्मन् सद्मनि यज्ञगृहे वीरवाहो वीरं शूरं त्वां वहंतोऽरुषा आरोचमाना भवंति तांश्च त्वं सु युक्ष्व। त्वदीये रथे सुष्ठु संयोजय। निसत्तो यज्ञगृहे निषण्णोऽहं होता सन् देवानामिंद्रादीनां जनिमा जनान् संघान्हुवे। आह्वयामि ॥

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मंद्रो रिरिच उपाके।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥३॥
सं। ऊं इति। वः। यज्ञं। महयन्। नमःऽभिः। प्र। होता। मंद्रः। रिरिचे। उपाके।
यजस्व। सु। पुरुऽअनीक। देवान्। आ। यज्ञियां। अरमतिं। ववृत्याः ॥३॥

हे देवाः वो युष्माकं यज्ञं नमोभिर्नमस्कारैर्युक्ता इमे स्तोतारो वा यजमाना वा सं महयन्। सम्यक् पूजयंति। उ इति पूरकः। मंद्रः स्तुतिशील उपाकेऽस्माकं समीपे स्थितोऽस्मदीयो होता प्र रिरिचे। अन्येभ्यो होतृभ्योऽतिरिच्यते। हे यजमान त्वं देवान् सु सुष्ठु यजस्व। हे पुर्वणीक बहुतेजस्विन्नग्ने त्वं यज्ञियां यज्ञार्हामरमतिं भूमिमा ववृत्याः। आवर्तय। तथा च निगमांतरे। आ नो महीमरमतिं सजोषाः। ऋ० ५. ४३. ६.। इति ॥

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत्।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥४॥

हे भग देव त्वं प्रणीता प्रकर्षेण नेतासि । तादृश प्रणेतर्हे भग त्वं सत्यराधः सत्यधनोऽसि । तादृश सत्यराधो हे भग त्वं नोऽस्मभ्यं ददत् कामान्प्रयच्छन्निमामस्मदीयां धियं स्तुतिमुदव । उद्रक्ष । सफलयुक्तां कुरु । हे भग त्वं गोभिरश्वैश्च नोऽस्मान् प्र जनय । प्रोद्भूतान् कुरु । हे भग त्वत्प्रसादाद्वयं नृभिर्नेतृभिः पुत्रादिभिर्नृवंतो मनुष्यवंतः प्र स्याम । प्रभवेम ॥

उतेदानीं भगवंतः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नां ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
उत । इदानीं । भगऽवंतः । स्याम । उत । प्रऽपित्वे । उत । मध्ये । अह्नां ।
उत । उत्ऽइता । मघऽवन् । सूर्यस्य । वयं । देवानां । सुऽमतौ । स्याम ॥ ४ ॥

उतापि चेदानीं वयं भगवंतः स्याम । हे भग भगेन त्वया स्वामिना युक्ता भवेम । यद्वा । भगवंतो धनवंतः स्याम । उतापि च प्रपित्वेऽह्नां प्राप्ते पूर्वाह्णे भगवंतः स्याम । उतापि चाह्नां दिवसानां मध्ये मध्याह्ने भगवंतः स्याम । उतापि च हे मघवन्धनवन्भग देव सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्य देवस्योदितोदितावुदये सति वयं त्वदनुग्रहाद्देवानामिंद्रादीनां सुमतावनुग्रहबुद्धौ स्याम । भवेम ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवंतः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
भगः । एव । भगऽवान् । अस्तु । देवाः । तेन । वयं । भगऽवंतः । स्याम ।
तं । त्वा । भग । सर्वः । इत् । जोहवीति । सः । नः । भग । पुरःऽएता । भव । इह ॥ ५ ॥

हे देवाः भगो देव एव भगवान् धनवानस्तु । तेन भगेन देवेन धनेन वा वयं भगवंतः स्याम । धनवंतो भवेम । हे भग तं प्रसिद्धं त्वा त्वां सर्व इत्सर्व एव जनो जोहवीति । भृशं पुनःपुनर्वाह्वयति । हे भग देव स त्वमिहास्मिन्यज्ञे नोऽस्माकं पुरएता पुरोगंता भव ॥

समध्वरायोषसो नमंत दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहंतु ॥ ६ ॥
सं । अध्वराय । उषसः । नमंत । दधिक्रावाऽइव । शुचये । पदाय ।
अर्वाचीनं । वसुऽविदं । भगं । नः । रथंऽइव । अश्वाः । वाजिनः । आ । वहंतु ॥ ६ ॥

शुचये शुद्धाय गमनयोग्याय पदाय स्थानाय दधिक्रावेवाश्वो यथा तथोषस उषोदेवता अध्वरायास्मदीयाय यागाय सं नमंत । संगच्छंतु । वाजिनो वेगवंतोऽश्वा रथमिव रथं यथा तथोषसोऽर्वाचीनमस्मदभिमुखं वसुविदं धनस्य प्रापकं भगं देवं नोऽस्मान्प्रत्या वहंतु । आनयंतु ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छंतु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । नः । उषसः । वीरऽवतीः । सदं । उच्छंतु । भद्राः ।
घृतं । दुहानाः । विश्वतः । प्रऽपीताः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

भद्रा भजनीया उषस उषोदेवता अश्वावतीरश्ववत्योऽश्वसहिताः सत्यो गोमतीर्गोमत्यश्च वीरवतीर्वी-

स्तोत्राणि वनिनो न शाखा वृक्षस्य शाखा इव विष्वग्विश्वतो वियंति विशेषेण गच्छंति। ते विप्राः प्रार्चन्निति पूर्वेण संबंधः ॥

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥२॥
प्र। यज्ञः। एतु। हेत्वः। न। सप्तिः। उत्। यच्छध्वं। सऽमनसः। घृताचीः।
स्तृणीत। बर्हिः। अध्वराय। साधु। ऊर्ध्वा। शोचींषि। देवऽयूनि। अस्थुः ॥२॥

अयमस्मदीयो यज्ञः प्रैतु। देवान्प्रति गच्छतु। तत्र दृष्टांतः। हेत्वो न सप्तिः शीघ्रगाम्यश्वो यथा तद्वत्। हे ऋत्विजः सर्वे यूयं समनसः सदृशमनस्काः संतो घृताचीः स्रुच उद्यच्छध्वं। हस्त उद्यम्य धारयत। तथाध्वराय यागं कर्तुं साधु साधकं बर्हिः कुशमयं स्तृणीत। वेद्यां छादयत। हे अग्ने देवयूनि देवान्कामयमानानि त्वदीयानि शोचींष्यर्चींष्यूर्ध्वोर्ध्वमुखान्यस्थुः। तिष्ठंतु ॥

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदंतु।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३॥
आ। पुत्रासः। न। मातरं। विऽभृत्राः। सानौ। देवासः। बर्हिषः। सदंतु।
आ। विश्वाची। विदथ्यां। अनक्तु। अग्ने। मा। नः। देवऽताता। मृधः। करिति कः ॥३॥

मातरं जननीं विभृत्रा विशेषेण भर्तव्याः पुत्रासो न पुत्रा इव तद्वदस्माकं भरणीया देवासो देवा बर्हिषः कुशमयस्य वेद्यामास्तीर्णस्य सानावुन्नते देश आ सदंतु। उपविशंतु। हे अग्ने विदथ्यां यज्ञयोग्यां त्वदीयां ज्वालां विश्वाची। विश्वं सर्वं हविरंचति गच्छतीति विश्वाची जुहूः। आनक्तु। आ समंतात्सिंचतु। देवताता देवतातौ युद्धे नोऽस्माकं मृधो हिंसकान् हे अग्ने त्वं मा कः। मा कार्षीः। यज्ञवाचको देवतातिशब्दोऽत्र संग्रामे वर्तते ॥

ते सीषपंत जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गंतन समनसो यति ष्ठ ॥४॥
ते। सीषपंत। जोषं। आ। यजत्राः। ऋतस्य। धाराः। सुऽदुघाः। दुहानाः।
ज्येष्ठं। वः। अद्य। महः। आ। वसूनां। आ। गंतन। सऽमनसः। यति। स्थ ॥४॥

यजत्रा यजनीयास्त इंद्रादयो देवा ऋतस्योदकस्य सुदुघाः सुखेन दोग्धुं शक्या धारा दुहाना वर्षंतो जोषं पर्याप्तं यथा भवति तथा आ सीषपंत। सपतिः परिचरणार्थः। स्तुतिभिरा समंतात्पर्यचीचरन्। अस्मान्परिचरणं कुर्वंतु। स्वीकुर्वंत्विति यावत्। अद्यास्मिन्दिने हे देवाः वसूनां धनानां मध्ये ज्येष्ठं श्रेष्ठं वो युष्मदीयं महो मंहनीयं धनमा गच्छतु। यूयमपि समनसस्तुल्यमतयः संत आ गंतन। आगच्छत। हे देवाः यूयं --- आगंतनेति संबंधः ॥

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
एव। नः। अग्ने। विक्षु। आ। दशस्य। त्वया। वयं। सहसाऽवन्। आस्क्राः।
राया। युजा। सधऽमादः। अरिष्टाः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥५॥

हे अग्ने एवैवं स्तुतस्त्वं विक्षु प्रजासु मध्ये नोऽस्मभ्यमा दशस्य। धनमभिप्रयच्छ। हे सहसावन्बलवन्नग्ने त्वयास्क्ता असक्ता वयं युजा नित्ययुक्तेन राया धनेन सधमादः सह माद्यंतोऽरिष्टा अहिंसिता भवेम। अस्मिन्सूक्ते प्रतिपादिताः सर्वे देवाः यूयं नोऽस्मान्कल्याणैः सर्वदा पालयत ॥ ॥१०॥

दधिक्रां व इति पंचर्चमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं दधिक्राख्यदेवताकं। आद्या जगती सा तु दधिक्रादिलिंगोक्तदेवताका शिष्टाश्चतस्त्रस्त्रिष्टुभः। अनुक्रम्यते हि। दधिक्रां दाधिक्रं जगत्याद्या लिंगोक्तदेवतेति ॥ गतो विनियोगः ॥

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे।
इंद्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥
दधिऽक्रां। वः। प्रथमं। अश्विना। उषसं। अग्निं। संऽइद्धं। भगं। ऊतये। हुवे।
इंद्रं। विष्णुं। पूषणं। ब्रह्मणः। पतिं। आदित्यान्। द्यावापृथिवी इति। अपः।
स्व१रिति स्वः ॥१॥

हे स्तोतारः वो युष्माकमूतये रक्षणाय प्रथमं दधिक्रामश्वाभिमानिनीं देवतां हुवे। आह्वयामि। ततोऽश्विनाश्विदेवावुषसमुषोदेवतां च समिद्धं सम्यग्दीप्तमग्निं च भगमेतदाख्यं देवं चाह्वयामि। इंद्रं विष्णुं पूषणं च ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् द्यावापृथिवी अप उदकदेवताः स्वः सूर्यमित्येतान्देवानाह्वयामि ॥

दधिक्रामु नमसा बोधयंत उदीराणा यज्ञमुपप्रयंतः।
इळां देवीं बर्हिषि सादयंतोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥२॥
दधिऽक्रां। ऊं इति। नमसा। बोधयंतः। उत्ऽईराणाः। यज्ञं। उपऽप्रयंतः।
इळां। देवीं। बर्हिषि। सादयंतः। अश्विना। विप्रा। सुऽहवा। हुवेम ॥२॥

दधिक्रामेतन्नामकमश्वविशेषं देवं नमसा स्तोत्रेण बोधयंतः प्रज्ञापयंत उदीराणाः प्रेरयंतो यज्ञं यागमुपप्रयंत उपक्रममाणा वयं बर्हिषीळां हवीरूपां देवीं सादयंत आस्थापयंतः सुहवा शोभनाह्वानौ विप्रा विप्रौ मेधाविनावश्विनाश्विनौ देवौ हुवेम। आह्वयाम। उ इति पूरणः ॥

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गां।
ब्रध्नं मँश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयंतु ॥३॥
दधिऽक्रावाणं। बुबुधानः। अग्निं। उप। ब्रुवे। उषसं। सूर्यं। गां।
ब्रध्नं। मँश्चतोः। वरुणस्य। बभ्रुं। ते। विश्वा। अस्मत्। दुःऽइता। यवयंतु ॥३॥

दधिक्रावाणमश्वविशेषं बुबुधानः स्तोत्रेण बोधयन्नहमग्निं देवमुप ब्रुवे। उपस्तौमि। तथा चोषसमुषोदेवतां सूर्यं सर्वस्य प्रेरकं देवं गां भूमिं। वाग्देवतां वा। एवंभूतान्देवानहमुपस्तौमि। मंश्चतोः। मन्यमानान् स्तुवतो जनांश्चेतयते जानातीति यद्वाभिमन्यमानांश्चातयते नाशयतीति मंश्चतुः। तस्य वरुणस्य ब्रध्नं महांतं बभ्रुं पिंगलवर्णमश्वं तस्यानयनार्थमहमुप ब्रुवे। ते देवा अस्मदस्मत्तो विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुरितानि पापानि यवयंतु। पृथक्कुर्वंतु ॥

दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन्।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरंगिरोभिः ॥४॥

दधिऽक्रावा । प्रथमः । वाजी । अर्वा । अग्रे । रथानां । भवति । प्रऽजानन् ।
संऽविदानः । उषसा । सूर्येण । आदित्येभिः । वसुऽभिः । अंगिरःऽभिः ॥ ४ ॥

प्रथमः सर्वेषामश्वानां मुख्यो वाजी शीघ्रगाम्यर्वा गमनशीलो दधिक्रावाश्वरूपो देवः प्रजानन् रथसंयोजनीयांस्तांस्तानश्वानधिष्ठाय ज्ञातव्यानि सम्यग्जानन् रथानामग्रे प्रमुखो भवति । कीदृशोऽश्वः । उषसोषोदेवतया सूर्येण सर्वस्य प्रेरकेण देवेनादित्येभिरादित्यैश्च वसुभिश्चांगिरोभिर्देवैः सह स्तोतव्यैर्ऋषिभिश्च संविदानः सम्यग्जानन् । ऐकमत्यं प्राप्त इत्यर्थः ॥

आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पंथामन्वेतवा उं ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वंतु विश्वे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥
आ । नः । दधिऽक्राः । पथ्यां । अनक्तु । ऋतस्य । पंथां । अनुऽएतवै । ऊं इति ।
शृणोतु । नः । दैव्यं । शर्धः । अग्निः । शृण्वंतु । विश्वे । महिषाः । अमूराः ॥ ५ ॥

दधिक्रा अश्वरूपो देव ऋतस्य यज्ञस्य पंथां पंथानं मार्गमन्वेतवा अनुगंतुं प्रवृत्तानां नोऽस्माकं पथ्यां पदवीमानक्तु । उदकेनासिंचतु । उ इति पूरणः । दैव्यं शर्धो देवसंबंधि बलमीदृग्रूपोऽग्निर्नोऽस्मदीयं हवं शृणोतु । अमूरा अमूढा महिषा महांतो विश्वे सर्वे देवा अस्मदीयं हवं शृण्वंतु ॥ ॥ ११ ॥

आ देवो यात्विति चतुर्ऋचं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं सवितृदेवताकं त्रैष्टुभं । आ देवश्चतुष्कं सावित्रमित्यनुक्रांतं ॥ व्यूळ्हे दशरात्रे चतुर्थेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं सावित्रनिविद्धानं । सूत्र्यते हि । चतुर्थेऽहन्या देवो यातु - - - । आ॰ ८. ८. ॥ - - इत्येषा वपानुवाक्या । सूत्रितं च । आ देवो यातु सविता सुरत्नः स घा नो देवः सविता सहावा । आ॰ ३. ७. । इति ॥ अश्वमेधेऽनुसवनं तिस्रः सावित्र्य इष्टयः । तत्र द्वितीयस्यामिष्टौ याज्येयं । सूत्रितं च । य इमा विश्वा जातान्या देवो यातु । आ॰ १०. ६. । इति ॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽतरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयंच्च प्रसुवंच्च भूम ॥ १ ॥
आ । देवः । यातु । सविता । सुऽरत्नः । अंतरिक्षऽप्राः । वहमानः । अश्वैः ।
हस्ते । दधानः । नर्या । पुरूणि । निऽवेशयन् । च । प्रऽसुवन् । च । भूम ॥ १ ॥

सुरत्नः शोभनरत्नोपेतोऽतरिक्षप्राः स्वकीयेन तेजसांतरिक्षस्य पूरयिताश्वैः स्वकीयैर्वाहैर्वहमान उह्यमानः सविता सर्वस्य प्रेरको देव आ यातु । आगच्छतु । कीदृशः । नर्या नर्याणि मनुष्यहितानि पुरूणि बहूनि धनानि हस्ते पाणौ दधानो दातुं धारयन् भूम भूतानि निवेशयंश्च रात्रिषु स्वे स्थाने स्थापयंश्च प्रसुवंश्चाहःसु प्रेरयंश्च । एवंभूतः सविता देव आ यातु ॥

उदस्य बाहू शिथिरा बृहंता हिरण्यया दिवो अंताँ अनष्टां ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्यां ॥ २ ॥
उत् । अस्य । बाहू इति । शिथिरा । बृहंता । हिरण्यया । दिवः । अंतान् । अनष्टां ।
नूनं । सः । अस्य । महिमा । पनिष्ट । सूरः । चित् । अस्मै । अनु । दात् । अपस्यां ॥ २ ॥

शिथिरा शिथिलौ दानार्थं प्रसारितौ बृहंता बृहंतौ महांतौ हिरण्यया हिरण्ययौ सुवर्णमयावस्य

सवितुः संबंधिनौ बाहू हस्तौ दिवोऽंतरिक्षस्यांतान् पर्यंतानुदनष्टां। ऊर्ध्वौ संतौ व्याप्नुवतां। नूनमद्यास्तेन्द्र-गभूतस्य सवितुः स तादृशो महिमा महत्त्वं पनिष्ट। अस्माभिः स्तूयते। सूरश्चित्सूर्योऽप्यस्मै सवित्रेऽपस्यां कर्मेच्छामनु दात्। अनुददातु ॥

सावित्रे पशौ पुरोडाशस्य हविषोः स घा न इति द्वे अनुवाक्ये। सूक्तं पूर्वमुदाहृतं ॥ आश्वमेधिकीषु सावित्रेष्टिषु तृतीयस्यामिष्टाविमे एव याज्यानुवाक्ये। सूत्रितं च। स घा नो देवः सविता सहावेति द्वे। आ॰ १०. ६.। इति ॥

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥
सः। घ। नः। देवः। सविता। सहऽवा। आ। साविषत्। वसुऽपतिः। वसूनि।
विऽश्रयमाणः। अमतिं। उरूचीं। मर्तऽभोजनं। अध। रासते। नः ॥ ३ ॥

सहावा। तेजोऽंतराण्यभिभावुकं तेजो यस्य सः। वसुपतिर्धनानां पालकः स सविता देवो नोऽस्मभ्यं वसूनि धनान्या साविषत्। आ समंतात्प्रेरयति। घेति पूरणः। स सविता देव उरूचीं विस्तीर्णगमनाममतिं रूपं। दीप्तिमित्यर्थः। विश्रयमाणो निषेवमाणः सन्नधाधुना नोऽस्मभ्यं मर्तभोजनं मनुष्याणां भोगयोग्यं धनं रासते। ददातु ॥

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिं।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥
इमाः। गिरः। सवितारं। सुऽजिह्वं। पूर्णऽगभस्तिं। ईळते। सुऽपाणिं।
चित्रं। वयः। बृहत्। अस्मे इति। दधातु। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥ ४ ॥

इमा ईदृग्भूता गिरः। गृणंति स्तुवंतीति गिरः स्तोत्र्यः प्रजाः। यद्वा। इमाः स्तुतिरूपा वाचः। सुजिह्वं शोभनजिह्वं। शोभनवाचमित्यर्थः। पूर्णगभस्तिं संपूर्णधनहस्तं सवितारं देवमीळते। स्तुवंति। स च सविता चित्रं चायनीयं बृहन्महद्वयोऽन्नमस्मे अस्मासु दधातु। यद्वा। अस्मे अस्मभ्यं प्रयच्छतु। हे सवितृप्रमुखा देवाः यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणैः सदा सर्वदा पात। पालयत ॥ ॥ १२ ॥

इमा रुद्रायेति चतुर्ऋचं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं रुद्रदेवताकं। अंत्या त्रिष्टुप् शिष्टा जगत्यः। तथा चानुक्रमणिका। इमा रौद्रं त्रिष्टुबंतमिति ॥ शूलगवादिषु रौद्रयज्ञेष्वनेन सूक्तेनोदीची दिगुपस्थेया। सूत्र्यते हि। इमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति सर्वरुद्रयज्ञेषु दिशामुपस्थानं। आ॰ गृ॰ ४. ९. २१.। इति ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥
इमाः। रुद्राय। स्थिरऽधन्वने। गिरः। क्षिप्रऽइषवे। देवाय। स्वधाऽव्ने।
अषाळ्हाय। सहमानाय। वेधसे। तिग्मऽआयुधाय। भरत। शृणोतु। नः ॥ १ ॥

हे अस्मदीयाः स्तोतारः यूयमिमा गिरः स्तुती रुद्रायैतन्नामकाय देवाय भरत। धारयत। कीदृशाय। स्थिरधन्वने दृढधनुष्काय क्षिप्रेषवे शीघ्रगामिबाणाय स्वधाव्नेऽन्नवतेऽषाळ्हाय केनाप्यनभिभूताय सहमानाय शत्रूणामभिभवित्रे वेधसे विधात्रे तिग्मायुधाय तीक्ष्णास्त्राय। एवंभूताय रुद्राय स्तुतीर्भरत। स च रुद्रो नोऽस्मदीयाः स्तुतीः शृणोतु ॥

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवंतीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥२॥
सः । हि । क्षयेण । क्षम्यस्य । जन्मनः । साम्ऽराज्येन । दिव्यस्य । चेतति ।
अवन् । अवंतीः । उप । नः । दुरः । चर । अनमीवः । रुद्र । जासु । नः । भव ॥२॥

स हि स खलु रुद्रो देवः क्षम्यस्य । क्षमायां पृथिव्यां भवः । तस्य जन्मनो जनस्य क्षयेणैश्वर्येण चेतति । प्रज्ञायते । दिव्यस्य जनस्य च साम्राज्येनैश्वर्येण प्रज्ञायते । शेषः प्रत्यक्षकृतः । हे रुद्र देव त्वं चावंतीस्त्वां स्तोत्रैस्तर्पयंतीर्नोऽस्मदीयाः प्रजा अवन् पालयन् दुरो दुर्याण्यस्मदीयानि गृहाण्युप चर । उपगच्छ । किंच त्वं नोऽस्मदीयासु प्रजास्वनमीवः । अमीवा रोगः । तामकुर्वन् भव ॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥
या । ते । दिद्युत् । अवऽसृष्टा । दिवः । परि । क्ष्मया । चरति । परि । सा । वृणक्तु । नः ।
सहस्रं । ते । सुऽअपिवात । भेषजा । मा । नः । तोकेषु । तनयेषु । रिरिषः ॥३॥

हे रुद्र ते वैद्युतात्मनस्तव संबंधिनी दिवस्पर्यंतरिक्षसकाशादवसृष्टा विमुक्ता या दिद्युदशनिरूपा हेतिः क्ष्मया क्षित्या क्षितौ वा चरति वर्तते सा दिद्युन्नोऽस्मान्परि वृणक्तु । परित्यजतु । अपि च हे स्वपिवात ते तव सहस्रं बहूनि भेषजा भेषजानि यान्यौषधानि संति तान्यस्मभ्यं प्रयच्छेति शेषः । नोऽस्माकं तोकेषु पुत्रेषु तनयेषु च मा रिरिषः । हिंसां मा कृथाः ॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥
मा । नः । वधीः । रुद्र । मा । परा । दाः । मा । ते । भूम । प्रऽसितौ । हीळितस्य ।
आ । नः । भज । बर्हिषि । जीवऽशंसे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥४॥

हे रुद्र त्वं नोऽस्मान्मा वधीः । मा हिंसीः । तथा मा परा दाः । मा च त्याक्षीः । अपि च हीळितस्य क्रुद्धस्य ते तव प्रसितौ प्रकर्षेण बंधने वयं च मा भूम । किंच जीवशंसे जीवैराशंसनीये बर्हिषि यज्ञे नोऽस्माना भज । भागिनः कुरु । हे रुद्रप्रमुखा देवाः यूयं नोऽस्मान्कल्याणैः सर्वदा पालयत ॥ ॥१३॥

आपो यं व इति चतुर्ऋचं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमब्देवताकं । आपो यमापमित्यनुक्रांतं च ॥ गतो विनियोगः ॥

आपो यं वः प्रथमं देवयंत इंद्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमंतं वनेम ॥१॥
आपः । यं । वः । प्रथमं । देवऽयंतः । इंद्रऽपानं । ऊर्मिं । अकृण्वत । इळः ।
तं । वः । वयं । शुचिं । अरिप्रं । अद्य । घृतऽप्रुषं । मधुऽमंतं । वनेम ॥१॥

देवयंतो देवानिच्छंतोऽध्वर्यवो हे आपो हे अब्देवताः वो युष्माकं कार्यभूतमिंद्रपानमिंद्रेण पातव्यमिळ इळाया भूम्याः संभूतं यमूर्मिं सोमाख्यं यं रसं प्रथमं पुराकृण्वत अभिषवणावचनादिभिः समस्कुर्वत अद्येदानीं

वयमपि वो युष्मदीयं तमूर्मिं वनेम। संभजेमहि। कीदृशं। शुचिं शुद्धमरिप्रं पापरहितं घृतप्रुषं वृष्टिलक्षणमुदकं सिंचंतं मधुमंतं मधुररसोपेतं। एवंभूतं तं वनेमेति संबंधः॥

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा।
यस्मिन्निंद्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयंतो वो अद्य॥२॥
तं। ऊर्मिं। आपः। मधुमत्ऽतमं। वः। अपां। नपात्। अवतु। आशुऽहेमा।
यस्मिन्। इंद्रः। वसुऽभिः। मादयाते। तं। अश्याम। देवऽयंतः। वः। अद्य॥२॥

हे आप एतत्संज्ञका देवाः वो युष्मदीयं मधुमत्तमं रसवत्तमं तमूर्मिं प्रसिद्धं सोमाख्यं रसमाशुहेमा शीघ्रगतिरपां नपादेतदाख्यो देवोऽवतु। पालयतु। इंद्रो यस्मिन्नूर्मौ वसुभिर्वासकैर्देवैः सह मादयाते माद्येत् अद्यास्मिन्दिने देवयंतो देवकामा वयं वो युष्मदीयं तमूर्मिमश्याम। प्राप्नुयाम॥

शतपवित्राः स्वधया मदंतीर्देवीर्देवानामपि यंति पाथः।
ता इंद्रस्य न मिनंति व्रतानि सिंधुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत॥३॥
शतऽपवित्राः। स्वधया। मदंतीः। देवीः। देवानां। अपि। यंति। पाथः।
ताः। इंद्रस्य। न। मिनंति। व्रतानि। सिंधुऽभ्यः। हव्यं। घृतऽवत्। जुहोत॥३॥

शतपवित्राः शतं बहूनि पवित्राणि पावनानि रूपाणि यासां ताः स्वधया स्वकार्यभूतेनान्नेन मदंतीर्जनान्मादयंत्यो देवीर्देव्यो द्योतमाना आपो देवानामिंद्रादीनां पाथः स्थानमपि यंति। प्रविशंति। तास्तादृश्य आप इंद्रस्य प्रीणनानि व्रतानि यज्ञादीनि कर्माणि न मिनंति। न हिंसंति। उत्पादयंतीत्यर्थः। हे अध्वर्यवः यूयं सिंधुभ्यस्ताभ्योऽद्भ्यो घृतवदुपस्तरणाभिघारणलक्षणाज्ययुक्तं हव्यं पुरोडाशादिकं हविर्जुहोत। जुहुत॥

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इंद्रो अरदद्गातुमूर्मिं।
ते सिंधवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥४॥
याः। सूर्यः। रश्मिऽभिः। आऽततान। याभ्यः। इंद्रः। अरदत्। गातुं। ऊर्मिं।
ते। सिंधवः। वरिवः। धातन। नः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥४॥

सूर्यो देवो या अपो रश्मिभिः स्वकीयैः किरणैराततान विस्तारयति। सूर्यो हि रश्मिभिरुदकसारमादाय वर्षतीत्यर्थः। याभ्योऽद्भ्यस्ताभ्य ऊर्मिं॥ अर्तेरिदं रूपं॥ गमनयोग्यं गातुं मेघेभ्यो निर्गमनसाधनं मार्गमिंद्रोऽप्यरदत् वज्रेण मेघांस्ताडयन्प्रयच्छति हे सिंधव आपः ते यूयं नोऽस्मभ्यं वरिवो धनं धातन। धत्त। प्रयच्छत॥ त इति सिंधुशब्देन समानाधिकरणत्वात्पुँल्लिंगत्वं॥ हे अब्देवताः यूयं सर्वदा नोऽस्मान्कल्याणैः पालयत॥ ॥१४॥

ऋभुक्षण इति चतुर्ऋचं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमृभुदेवताकं। अंत्याया विकल्पेन विश्वे देवा देवता। तथा चानुक्रांतं। ऋभुक्षण आर्भवमंत्या वैश्वदेवी वेति॥ दशमेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र आर्भवनिविद्धानं। सूत्र्यते हि। ऋभुक्षण इत्यार्भवं। आ० ८.१२.। इति॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयंतु॥१॥

ऋभुक्षणः । वाजाः । मादयध्वं । अस्मे इति । नरः । मघऽवानः । सुतस्य ।
आ । वः । अर्वाचः । क्रतवः । न । यातां । विऽभ्वः । रथं । नर्यं । वर्तयंतु ॥१॥

ऋभुरित्यृभूणां ज्येष्ठस्याख्या वाज इति तु कनिष्ठस्य । अत्रर्भुक्षणो वाजा इति बहुवचनेनर्भवस्त्रयो गृह्यंते । हे ऋभुक्षणो वाजा नरो नेतारो मघवानो धनवंत एवंभूता हे ऋभवः यूयमस्मे अस्मासु स्थितेन सुतस्याभिषुतेन सोमेन मादयध्वं । तृप्ता भवत । नेति संप्रत्यर्थे । इदानीं यातां गच्छतां वो युष्मदीयाः क्रतवः कर्मणां कर्तारो विभ्वो विभवः समर्था अश्वा अर्वाचोऽर्वाचोऽस्मदभिमुखा नर्यं मनुष्यहितं रथं युष्मदीयमा वर्तयंतु । आगमयंतु ॥

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविंद्रेण युजा तरुषेम वृत्रं ॥२॥
ऋभुः । ऋभुऽभिः । अभि । वः । स्याम । विऽभ्वः । विभुऽभिः । शवसा । शवांसि ।
वाजः । अस्मान् । अवतु । वाजऽसातौ । इंद्रेण । युजा । तरुषेम । वृत्रं ॥२॥

हे ऋभवः ऋभुभिर्युष्माभिर्वयमृभुः । उरु भवंतीत्यृभवः । संतो विभुभिर्युष्माभिर्विभ्वो विभवश्च संतः शवांसि शत्रूणां बलानि शवसा युष्मदीयेन बलेनाभि स्याम । अभिभवेम । तथा वाजसातौ संग्रामे वाज एतत्संज्ञक ऋभुरस्मानवतु । पालयतु । अपि च युजा सहायभूतेनेंद्रेण वृत्रं शत्रुं वयं तरुषेम । हनाम । प्रायेणर्भवोऽपींद्रेण सह स्तूयंत इति ॥

ते चिद्धि पूर्वीरभि संति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इंद्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णं ॥३॥
ते । चित् । हि । पूर्वीः । अभि । संति । शासा । विश्वान् । अर्यः । उपरऽताति । वन्वन् ।
इंद्रः । विऽभ्वा । ऋभुक्षाः । वाजः । अर्यः । शत्रोः । मिथत्या । कृणवन् । वि । नृम्णं ॥३॥

ते तादृशा इंद्र ऋभवश्च पूर्वीर्बह्वीरस्मच्छत्रुसेनाः शासा शासनेन स्वकीययाज्ञया । यद्वा । शिशस्ति हिंस्यतेऽनेनेति शासशब्द आयुधवाची । तेन । अभि संति । अभिभवंति । चिद्धीतीमौ पूरणौ । किंचोपरताति ॥ सप्तम्या लुक् ॥ उपरैरुपलैः पाषाणसदृशैरायुधैस्तायते विस्तार्यत इत्युपरताति युद्धं । तस्मिन्विश्वान् समस्तानर्योऽरीञ्छत्रून्वन्वन् । हिंसंति । विभ्वा ऋभुक्षा वाज एतत्संज्ञका ऋभवश्चेंद्रश्चार्यः शत्रूणामभिगंतारः संतः शत्रोः संबंधि नृम्णं बलं मिथत्या ॥ मेथतेरिदं रूपं ॥ मिथतिर्हिंसा । तया वि कृणवन् । विकुर्वंतु । विनाशयंत्वित्यर्थः ॥

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥
नु । देवासः । वरिवः । कर्तन । नः । भूत । नः । विश्वे । अवसे । सऽजोषाः ।
सं । अस्मे इति । इषं । वसवः । ददीरन् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥४॥

हे देवासो देवा द्योतमाना ऋभवः यूयं न्वद्य नोऽस्मभ्यं वरिवो धनं कर्तन । कुरुत । प्रयच्छत । तथा विश्वे सर्व ऋभवो यूयं सजोषाः सह प्रीयमाणाः संतो नोऽस्माकमवसे रक्षणाय भूत । भवत । अपि च वसवः

प्रशस्या ऋभव इषमन्नमस्मे अस्मभ्यं सं ददीरन्। संप्रयच्छेयुः। हे ऋभवः यूयमस्मान् सर्वदा कल्याणी रक्षत ॥ ॥१५॥

समुद्रज्येष्ठा इति चतुर्ऋचं षोडशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमब्देवताकं। तथा चानुक्रांतं। समुद्रज्येष्ठा आपमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यंत्यनिविशमानाः।
इंद्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥१॥
समुद्रऽज्येष्ठाः। सलिलस्य। मध्यात्। पुनानाः। यंति। अनिऽविशमानाः।
इंद्रः। याः। वज्री। वृषभः। ररादं। ताः। आपः। देवीः। इह। मां। अवंतु ॥१॥

समुद्रज्येष्ठाः। समुद्रोऽर्णवो ज्येष्ठः प्रशस्यतमो यासामपां ताः। सलिलस्य। अंतरिक्षनामैतत्। अंतरिक्षस्य मध्यान्माध्यमिकात्स्थानाद्यंति। गच्छंति। कीदृश्यः। पुनाना विश्वं शोधयंत्योऽनिविशमानाः सर्वदा गच्छंत्यः। वज्री वज्रभृद्वृषभः कामानां वर्षितेंद्रो या निरुद्धा अपो रराद लिखति देवीर्देव्यस्ता आप इहास्मिन्प्रदेशे स्थितं मामवंतु। रक्षंतु। अभिगच्छंतु वा ॥

या आपो दिव्या उत वा स्रवंति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥२॥
याः। आपः। दिव्याः। उत। वा। स्रवंति। खनित्रिमाः। उत। वा। याः। स्वयंऽजाः।
समुद्रऽअर्थाः। याः। शुचयः। पावकाः। ताः। आपः। देवीः। इह। मां। अवंतु ॥२॥

या आपो दिव्या अंतरिक्षभवाः संति। उत वापि च या आपो नद्यादिगताः सत्यः स्रवंति गच्छंति। याश्च खनित्रिमाः खननेन निवृत्ताः। उत वापि च याः स्वयंजाः स्वयमेव प्रादुर्भवंत्यः समुद्रार्थाः। समुद्र एवार्थो गंतव्यो यासां ताः समुद्रार्थाः। शुचयो दीप्तियुक्ताः पावकाः शोधयित्र्यश्च भवंति। ता आपो मामवंत्विति ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानां।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥३॥
यासां। राजा। वरुणः। याति। मध्ये। सत्यानृते इति। अवऽपश्यन्। जनानां।
मधुश्चुतः। शुचयः। याः। पावकाः। ताः। आपः। देवीः। इह। मां। अवंतु ॥३॥

वरुणो यासामपां राजा स्वामी मध्ये मध्यमलोके याति गच्छति। किं कुर्वन्। जनानां प्रजानां सत्यानृते सत्यं चानृतं चावपश्यन्। जानन्नित्यर्थः। या आपो मधुश्चुतो रसं क्षरंत्यः शुचयो दीप्तियुक्ताः पावकाः शोधयित्र्यः। ता आपो देव्यो मां रक्षंत्विति ॥

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदंति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवंतु ॥४॥
यासु। राजा। वरुणः। यासु। सोमः। विश्वे। देवाः। यासु। ऊर्जं। मदंति।
वैश्वानरः। यासु। अग्निः। प्रऽविष्टः। ताः। आपः। देवीः। इह। मां। अवंतु ॥४॥

अपां राजा वरुणो यास्वप्सु वर्तते। सोमो यास्वप्सु वर्तते। यास्वप्सु स्थिता विश्वे सर्वे देवा ऊर्जमन्नं मदंति। वैश्वानरोऽग्निर्यासु प्रविष्टः। ता आपो देव्य इह स्थितं मामवंतु ॥ ॥१६॥

आ मां मित्रावरुणेति चतुर्ऋचं सप्तदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं। चतुर्थ्यतिजगती व्यूहेन शक्वरी वादितस्तिस्रो जगत्यः। प्रथमा मैत्रावरुणी द्वितीयाग्नेयी तृतीया वैश्वदेवी चतुर्थी गंगादिनदीदेवताका। तथा चानुक्रमणिका। आ मां मैत्रावरुणाग्नेयी वैश्वदेवी नदीस्तुतिर्जागतमंत्यातिजगती शक्वरी वेति ॥ अस्य सूक्तस्य प्रत्यृचं विषादिहरणे विनियोगो लिंगादवगंतव्यः ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन्।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥
आ। मां। मित्रावरुणा। इह। रक्षतं। कुलाययत्। विऽश्वयत्। मा। नः। आ। गन्।
अजकाऽवं। दुःऽदृशीकं। तिरः। दधे। मा। मां। पद्येन। रपसा। विदत्। त्सरुः ॥१॥

हे मित्रावरुणा हे मित्रावरुणौ युवामिहास्मिँल्लोके मामा रक्षतं। आभिमुख्येन पालयतं। कुलाययत्। कुलायं स्थानं। तत्कुर्वद्विश्वयद्विशेषेण वर्धमानं विषं नोऽस्माना आभिमुख्येन मा गन्। मा गमत्। मा गच्छतु। तथाजकावं। अजका नाम रोगविशेषः। तद्वद्दुर्दृशीकं दुर्दर्शनं विषं तिरो दधे। तिरो धत्तां। नश्यत्वित्यर्थः। तथा त्सरुश्छद्मगामी। जिह्मगः सर्प इत्यर्थः। मां पद्येन पादभवेन रपसा। रपिः शब्दकर्मा। शब्देन मा विदत्। न जानातु ॥

यद्विजामन्परुषि वंदनं भुवदष्ठीवंतौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥२॥
यत्। विऽजामन्। परुषि। वंदनं। भुवत्। अष्ठीवंतौ। परि। कुल्फौ। च। देहत्।
अग्निः। तत्। शोचन्। अप। बाधतां। इतः। मा। मां। पद्येन। रपसा। विदत्। त्सरुः ॥२॥

वंदनमेतत्संज्ञकं यद्विषं विजामन् विविधजन्मनि परुषि वृक्षादीनां पर्वणि भुवत् उद्भवेत्। यच्च विषमष्ठीवंतौ जानुनी कुल्फौ गुल्फौ च परि देहत् ॥ दिह उपचये ॥ उपचितं कुर्यात्। अग्निर्देवः शोचन् दीप्यमानः सन्नितोऽस्माज्जनात्तद्विषमप बाधतां। अपहंतु। शिष्टं व्याख्यातं ॥

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषं।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवंतु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥३॥
यत्। शल्मलौ। भवति। यत्। नदीषु। यत्। ओषधीभ्यः। परि। जायते। विषं।
विश्वे। देवाः। निः। इतः। तत्। सुवंतु। मा। मां। पद्येन। रपसा। विदत्। त्सरुः ॥३॥

यद्विषं शल्मलावेतत्संज्ञके वृक्षे भवति। यद्विषं नदीषु तत्रस्थास्वप्सु प्रादुर्भवति। परीति पंचम्यर्थानुवादी। ओषधीभ्यः सकाशाद्यद्विषं जायते उत्पद्यते। विश्वे सर्वे देवास्तद्विषमितोऽस्माज्जनाद्देशाद्वा निः सुवंतु। निःशेषेण प्रेरयंतु। मा मामिति शिष्टं व्याख्यातं ॥

याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवंतु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवंतु ॥४॥

याः। प्रऽवर्तः। निऽवर्तः। उत्ऽवर्तः। उदन्ऽवतीः। अनुदकाः। च। याः।
ताः। अस्मभ्यं। पयसा। पिन्वमानाः। शिवाः। देवीः। अशिपदाः। भवंतु।
सर्वाः। नद्यः। अशिमिदाः। भवंतु ॥ ४ ॥

या नद्यः प्रवतः प्रवणदेशे गच्छंत्यः। या निवतो निम्नदेशे गच्छंत्यः। या उद्वत उन्नतदेशे गच्छंत्यः। या उदन्वतीरुदन्वत्य उदकयुक्ताः। अनुदकाश्चोदकरहिताश्च या नद्यो यांति। पयसोदकेन पिन्वमाना विश्वमाप्याययंत्यो देवीर्देव्यो द्योतमानास्तास्तादृश्यो नद्योऽस्मभ्यमशिपदाः। शिपदं नाम रोगविशेषः। तदकुर्वत्यः सत्यः शिवाः कल्याण्यो भवंतु। अपि च सर्वास्ता नद्योऽशिमिदाः। शिमिर्वधकर्मा। अहिंसाप्रदा भवंतु ॥ ॥१७॥

आदित्यानामिति तृचमष्टादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमादित्यदेवताकं। अनुक्रम्यते च। आदित्यानां तृचमादित्यं त्विति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ आदित्यदेवताके पशावादित्यानामवसेति वपाया अनुवाक्या। सूत्रितं च। आदित्यानामवसा नूतनेनेमा गिर आदित्येभ्यः। आ॰ ३. ८.। इति ॥ आदित्यग्रहस्यैवानुवाक्या। सूत्रितं च। आदित्यानामवसा नूतनेन होता यक्षदादित्यान्। आ॰ ५. १७.। इति ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ १ ॥
आदित्यानां। अवसा। नूतनेन। सक्षीमहि। शर्मणा। शंऽतमेन।
अनागाःऽत्वे। अदितिऽत्वे। तुरासः। इमं। यज्ञं। दधतु। श्रोषमाणाः ॥ १ ॥

आदित्यानामदितेः पुत्राणामेतत्संज्ञकानां देवानामवसा रक्षणेन। तद्धेतुभूतेनेत्यर्थः। नूतनेनाद्यतनेन शंतमेन। शं सुखं। अतिशयेन तत्कारणेन शर्मणा। शर्मेति गृहनामैतत्। गृहेण सक्षीमहि। वयं संगच्छेमहि। तुरासस्तुरास्त्वरिता आदित्याः श्रोषमाणा अस्मदीयानि स्तोत्राणि शृण्वंतो यज्ञं यष्टारमिमं जनमनागास्त्वेऽनपराधत्वे चादितित्वेऽदीनत्वे च दधतु। स्थापयंतु ॥

आदित्यासो अदितिरित्यादित्यग्रहस्य याज्या। सूत्रितं च। आदित्यासो अदितिर्मादयंतामिति नैतं ग्रहमीक्षेत ह्रयमानं। आ॰ ५. १७.। इति ॥

आदित्यासो अदितिर्मादयंतां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः।
अस्माकं संतु भुवनस्य गोपाः पिबंतु सोममवसे नो अद्य ॥ २ ॥
आदित्यासः। अदितिः। मादयंतां। मित्रः। अर्यमा। वरुणः। रजिष्ठाः।
अस्माकं। संतु। भुवनस्य। गोपाः। पिबंतु। सोमं। अवसे। नः। अद्य ॥ २ ॥

आदित्यास आदित्या देवा अदितिस्तेषां माता च। यद्वा। अदितिरिति देवविशेषणं। अदितिरदितयोऽदीनाः। रजिष्ठा अतिशयेनर्जवो मित्रोऽर्यमा वरुणश्चेतत्संज्ञका मादयंतां। तृप्ताः संतु। भुवनस्य सर्वस्य जगतो गोपा रक्षका एवंभूता देवा अस्माकं संतु। अस्माकमेव रक्षका भवंत्वित्यर्थः। अद्यास्मिन्दिने नोऽस्माकमवसे रक्षणाय सोममस्माभिरभिषुतं पिबंतु ॥

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे।
इंद्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

आदित्याः । विश्वे । मरुतः । च । विश्वे । देवाः । च । विश्वे । ऋभवः । च । विश्वे ।
इंद्रः । अग्निः । अश्विना । तुस्तुवानाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥३॥

आदित्या अदितेः पुत्रा विश्वे सर्वे द्वादशसंख्याका अर्का विश्वे मरुतश्च सर्व एकोनपंचाशत्संख्योपेताश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्चेंद्रोऽग्निरश्विनाश्विनावितत्संज्ञका एवंभूता ये देवास्तुष्टुवाना अस्माभिः स्तुता बभूवुः सर्वे ते देवा यूयं सदा सर्वदा नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणैः पात । रक्षत ॥ ॥१८॥

आदित्यासो अदितय इति तृचात्मकमेकोनविंशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमादित्यदेवताकं । आदित्यास इत्यनुक्रमणिका ॥ गतो विनियोगः ॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनंतो भवेम द्यावापृथिवी भवंतः ॥१॥
आदित्यासः । अदितयः । स्याम । पूः । देवऽत्रा । वसवः । मर्त्यऽत्रा ।
सनेम । मित्रावरुणा । सनंतः । भवेम । द्यावापृथिवी इति । भवंतः ॥१॥

हे आदित्यास आदित्या देवाः ॥ व्यत्ययेनाद्युदात्तत्वाभावः ॥ यद्वा । आदित्यानामिम आदित्याः ॥ तस्येदमित्यर्थे प्राग्दीव्यतीयो ण्यप्रत्ययः ॥ आदित्यानां शेषभूता वयमदितयोऽखंडनीयाः स्याम । भवेम । देवत्रा देवेषु वसवो वासका देवाः युष्मदीयं पूः पालनं मर्त्यत्रा मनुष्येष्वस्मासु भवतु । हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ सनंतो युवां संभजंतो वयं सनेम । युवाभ्यां दत्तं धनं संभजेमहि । हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ युवयोः प्रसादाद्वयं भवंतो भवेम । भूतिमंतः स्याम ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहंत शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥२॥
मित्रः । तत् । नः । वरुणः । ममहंत । शर्म । तोकाय । तनयाय । गोपाः ।
मा । वः । भुजेम । अन्यऽजातं । एनः । मा । तत् । कर्म । वसवः । यत् । चयध्वे ॥२॥

मित्रो वरुणोऽहर्निशाभिमानिनौ देवावितदाद्याः सर्व आदित्या नोऽस्मभ्यं तत्प्रसिद्धं शर्म सुखं ममहंत । मंहतिर्दानकर्मा । ददतु । गोपा विश्वस्य रक्षकास्ते देवास्तोकायास्मदीयाय पुत्राय तनयाय तत्पुत्राय च शर्म प्रयच्छंतु । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे देवाः वो युष्मदीया वयमन्यजातमन्येनोत्पादितमेनः पापं मा भुजेम । मा भुक्तवंतः स्याम । हे वसवो वासका देवाः यशेन युष्मदप्रियेण कर्मणा चयध्वे यूयमस्मान्नाशयत तत्तादृशं कर्म वयं मा कर्म । मा कार्ष्म ॥ लुङि करोतेरुत्तमस्य बहुवचनं । मंत्रे घसह्वरेत्यादिना च्लेर्लोपः ॥

तुरण्यवोऽंगिरसो नक्षंत रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषंत ॥३॥
तुरण्यवः । अंगिरसः । नक्षंत । रत्नं । देवस्य । सवितुः । इयानाः ।
पिता । च । तत् । नः । महान् । यजत्रः । विश्वे । देवाः । सऽमनसः । जुषंत ॥३॥

तुरण्यवो यज्ञादिकर्मसु त्वरिता अंगिरस एतन्नामका ऋषय इयानाः सवितारं याचमानाः संतः सवितुः प्रेरकस्य देवस्य संबंधि रत्नं रमणीयं यज्ञनं नक्षंत आप्नुवंत । उत्तरार्धगततच्छब्दापेक्षया यच्छब्दोऽध्याह्रियते । यजत्रो यजनशीलो महान् प्रभूतः पिता च वसिष्ठस्य पितृभूतो वरुणश्च । यद्वा । सर्वेषां पिता प्रजा-

पतिः । विश्वे सर्वे देवाः समनसः समानमनस्कास्तत्तादृशं रत्नं नोऽस्मान्जुषंत । सेवयंतु । यद्वा । नोऽस्मभ्यं ददतु ॥ ॥१९॥

प्र द्यावा यज्ञैरिति तृचात्मकं विंशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं द्यावापृथिव्यं । अनुक्रम्यते च । प्र द्यावा द्यावापृथिव्यमिति ॥ चतुर्थेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं द्यावापृथिव्यमिविज्ञानं । सूत्रितं च । आ देवो यातु प्र द्यावेति वासिष्ठं । आ० ८. ८. । इति ॥ द्यावापृथिव्ये पशौ वपापुरोडाशयोः प्र द्यावेति द्वे ऋचौ याज्ये । सूत्रितं च । प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिरिति द्वे । आ० ३. ८. । इति ॥

प्र द्यावा॑ यज्ञैः पृ॑थिवी नमो॑भिः स॒बाध॑ ईळे बृह॒ती यज॑त्रे ।
ते चि॒द्धि पूर्वे॑ क॒वयो॑ गृ॒णंतः॑ पु॒रो म॒ही द॑धि॒रे दे॒वपु॑त्रे ॥१॥
प्र । द्यावा॑ । य॒ज्ञैः । पृ॒थि॒वी इति॑ । नमः॑ऽभिः । स॒ऽबाधः॑ । ई॒ळे॒ । बृ॒ह॒ती इति॑ । यज॑त्रे॒ इति॑ ।
ते इति॑ । चि॒त् । हि । पूर्वे॑ । क॒वयः॑ । गृ॒णंतः॑ । पु॒रः । म॒ही इति॑ । द॒धि॒रे । दे॒वपु॑त्रे॒ इति॑
दे॒वऽपु॑त्रे ॥१॥

यजत्रे यजनीये बृहती बृहत्यौ महत्यौ द्यावा पृथिवी द्यावापृथिव्यौ यज्ञैर्यागैर्नमोभिः स्तोत्रैश्चाहं स्तोता सबाधो बाधासहितः । ऋत्विजां संबाधयुक्त इत्यर्थः । प्रेळे । प्रकर्षेण स्तौमि । मही महत्यौ देवपुत्रे । देवाः पुत्रा ययोस्ते । ते चिद्धि तादृश्यौ खल्वपि द्यावापृथिव्यौ पूर्वे पुरातनाः कवयो गृणंतः स्तुवंतः पुरो दधिरे । पुरस्तात्स्थापयामासुः ॥

आग्रयणे द्यावापृथिव्यैककपालस्य प्र पूर्वजे इति याज्या । सूत्रितं च । मही द्यौः पृथिवी च नः प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः । आ० २. ९. । इति ॥

प्र पू॑र्व॒जे पि॒तरा॒ नव्य॑सीभिर्गी॒र्भिः कृ॑णुध्वं॒ सद॑ने ऋ॒तस्य॑ ।
आ नो॑ द्यावापृथिवी॒ दैव्ये॑न॒ जने॑न यातं॒ महि॑ वां॒ वरू॑थं ॥२॥
प्र । पू॒र्व॒जे इति॑ पूर्व॒ऽजे । पि॒तरा॑ । नव्य॑सीभिः । गीः॒ऽभिः । कृ॒णु॒ध्वं॒ । सद॑ने॒ इति॑ । ऋ॒तस्य॑ ।
आ । नः॒ । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ इति॑ । दैव्ये॑न । जने॑न । या॒तं॒ । महि॑ । वां॒ । वरू॑थं ॥२॥

हे अस्मदीयाः स्तोतारः यूयं नव्यसीभिर्नवतराभिर्गीर्भिः स्तुतिरूपाभिर्वाग्भिर्ऋतस्य यज्ञस्य सदने स्थानभूते पूर्वजे पूर्वं प्रजाते पितरा पितरौ विश्वस्य मातापितृभूते द्यावापृथिव्यौ प्र कृणुध्वं । पुरस्कुरुत । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ युवां दैव्येन देवसंबंधिना जनेन सह नोऽस्मानभ्या यातं । आगच्छतं । किमर्थमा यातमिति उच्यते । वां युवयोर्वरूथमस्माभिर्वरणीयं महि महत् । यद्धनमस्तीति शेषः । तद्धनमस्मभ्यं दीयतामित्यर्थः ॥

उ॒तो हि वां॑ रत्न॒धेया॑नि॒ संति॑ पु॒रूणि॑ द्यावापृथिवी सु॒दासे॑ ।
अ॒स्मे ध॑त्तं॒ यदस॒दस्कृ॑धोयु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३॥
उ॒तो इति॑ । हि । वां॒ । र॒त्न॒ऽधेया॑नि । संति॑ । पु॒रूणि॑ । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ इति॑ । सु॒ऽदासे॑ ।
अ॒स्मे इति॑ । ध॒त्तं॒ । यत् । अस॑त् । अस्कृ॑धोयु । यू॒यं । पा॒त॒ । स्व॒स्तिऽभिः॑ । सदा॑ । नः॒ ॥३॥

उतो अपि च खलु हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ वां युवयोः सुदासे शोभनहविर्दानाय यजमानाय देयानि पुरूणि बहूनि रत्नधेयानि रमणीयानि धनानि संति । भवंति । तेषां मध्ये यद्धनमस्कृधोयु । अधुको

ह्रस्वः। अह्रस्वमनल्पमसत् भवेत् तद्धनमस्मे अस्मभ्यं धत्तं। प्रयच्छतं। हे द्यावापृथिव्यौ यूयं युवां नोऽस्मान् सर्वदा कल्याणैः पात। पालयतं॥ ॥२०॥

वास्तोष्पत इति तृचात्मकमेकविंशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वास्तोष्पत्यं। तथा चानुक्रम्यते। वास्तोष्पते वास्तोष्पत्यमिति॥ स्मार्ते गृहनिर्माणे वास्तोष्पत इति चतसृभिः प्रत्यृचं जुहुयात्। सूचितं च। वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मानिति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा। आ॰ गृ॰ २. ९. ९.। इति॥

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥१॥

वास्तोः। पते। प्रति। जानीहि। अस्मान्। सुऽआवेशः। अनमीवः। भव। नः।
यत्। त्वा। ईमहे। प्रति। तत्। नः। जुषस्व। शं। नः। भव। द्विऽपदे। शं। चतुःऽपदे॥१॥

हे वास्तोष्पते गृहस्य पालयितर्देव त्वमस्मांस्त्वदीयान्स्तोतॄनिति प्रति जानीहि। प्रबुध्यस्व। तदनंतरं नोऽस्माकं स्वावेशः शोभननिवेशोऽनमीवोऽरोगकृच्च भव। किंच वयं त्वा त्वां यद्धनमीमहे याचामहे त्वमपि तद्धनं नोऽस्मभ्यं प्रति जुषस्व। प्रयच्छ। अपि च नोऽस्माकं द्विपदे पुत्रपौत्रादिजनाय शं सुखकरो भव। चतुष्पदेऽस्मदीयाय गवाश्वादिवर्गाय च शं सुखकरो भव॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिंदो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व॥२॥

वास्तोः। पते। प्रऽतरणः। नः। एधि। गयऽस्फानः। गोभिः। अश्वेभिः। इंदो इति।
अजरासः। ते। सख्ये। स्याम। पिताऽइव। पुत्रान्। प्रति। नः। जुषस्व॥२॥

हे वास्तोष्पते गृहस्य पालयितर्देव त्वं नोऽस्माकं प्रतरणः प्रवर्धको गयस्फानो गयस्यास्मदीयस्य धनस्य स्फाययिता प्रवर्धक एधि। भव। हे इंदो सोमवदाह्लादक ते त्वया सह सख्ये सति वयं गोभिः पशुभिरश्वेभिरश्वैश्च सहिता अजरासो जरारहिताः स्याम। भवेम। विनाशरहिता इत्यर्थः। पितेव पुत्रान् यथा पिता पुत्रान्रक्षकत्वेन सेवते तथा त्वमपि नोऽस्मान्प्रति जुषस्व। सेवस्व॥

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥३॥

वास्तोः। पते। शग्मया। संऽसदा। ते। सक्षीमहि। रण्वया। गातुऽमत्या।
पाहि। क्षेमे। उत। योगे। वरं। नः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥३॥

हे वास्तोष्पते देव शग्मया सुखकर्या रण्वया रमणीयया गातुमत्या धनवत्या ते त्वया देयया संसदा स्थानेन सक्षीमहि। वयं संगच्छेमहि। त्वमपि क्षेमे प्राप्तस्य रक्षणे उतापि च योगेऽप्राप्तस्य प्रापणे वरं वरणीयं नोऽस्मदीयं धनं पाहि। रक्ष। हे वास्तोष्पते यूयं त्वं नोऽस्मान् सर्वदा कल्याणैः पात। पाहि॥ ॥२१॥

अमीवहेत्यष्टर्चं द्वाविंशं सूक्तं। आद्या गायत्री पंचम्याद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभो द्वितीयाद्यास्तिस्र उपरिष्टाद्बृहत्यः। त्र्यष्टका चतुर्थद्वादशकौ बृहतीति तल्लक्षणयोगात्। आद्या वास्तोष्पतिदेवताका शिष्टा ऐंद्र्यः। तथा चानुक्रांतं। अमीवहाष्टौ वास्तोष्पत्याद्या गायत्री शेषास्त्युपरिष्टाद्बृहत्यादयोऽनुष्टुभः प्रस्वापिन्य उपनिषदिति॥ गतो विनियोगः॥ बृहद्देवतायां यदुक्तं तदिह लिख्यते। वरुणस्य गृहान्रात्रौ वसिष्ठः स्वप्नमाचरन्। प्रविवेशाथ तं तत्र श्वा नदन्नभ्यवर्तत॥ क्रंदंतं सारमेयं स धावंतं दष्टुमुद्यतं। यदर्जुनेति च द्वाभ्यां सांत्वयित्वा

ह्यसूषुपत्। एवं प्रस्थापयामास जनमन्यं च वारुणं। बृ॰ ६. ८१९–८२१.। इति ॥ अत्र केचित्पुनरेवमाहुः। आसां प्रस्वापिनित्वं तु कथासु परिकल्प्यते। वसिष्ठस्तृषितोऽन्नार्थी चिरात्रालब्धभोजनः। चतुर्थरात्री चौर्यार्थं वारुणं गृहमेत्यनु ॥ कोष्ठागारे प्रवेशाय पालकश्वादिसुप्तये। यदर्जुनेति सप्तर्चं ददर्श च जजाप चेति ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः ॥१॥
अमीवऽहा। वास्तोः। पते। विश्वा। रूपाणि। आऽविशन्। सखा। सुऽशेवः।
एधि। नः ॥१॥

हे वास्तोष्पते गृहस्य पालकैतत्संज्ञक देव अमीवहामीवानां रोगाणां नाशकस्त्वं विश्वा विश्वानि बहूनि रूपाण्याविशन् प्रविशन्। यद्यद्रूपं कामयंते तत्तद्देवा विशंति। नि॰ १०. १७.। इति यास्कः। नोऽस्माकं सखा मित्रभूतः सुशेवः सुष्ठु सुखकर एधि। भव ॥

यदर्जुन सारमेय दतः पिशंग यच्छसे।
वीव भ्राजंत ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२॥
यत्। अर्जुन। सारमेय। दतः। पिशंग। यच्छसे।
विऽइव। भ्राजंते। ऋष्टयः। उप। स्रक्वेषु। बप्सतः। नि। सु। स्वप ॥२॥

हे अर्जुन श्वेत हे सारमेय। सरमा नाम देवशुनी। तस्याः कुलोद्भव हे पिशंग केषुचिदंगेषु पिंगलवर्णैवंभूत हे शुनक त्वं दतो दंतान्यद्यदा यच्छसे विवृणोषि। अस्मान्दष्टुमित्यर्थः। तदानीं वीव भ्राजंत ऋष्टयो यथायुधानि विशेषेण भासंते तथोपास्मत्समीपे बप्सतो भक्षयतस्तव दंताः स्रक्वेषु स्रक्वासु भासंते। स्रक्वाशब्द ओष्ठप्रदेशविशेषवाचीत्यर्थः। तथाभूतस्त्वमिदानीं सु सुष्ठु नि स्वप। नितरां निद्रां कुरु ॥

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर।
स्तोतॄनिंद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥
स्तेनं। राय। सारमेय। तस्करं। वा। पुनःऽसर।
स्तोतॄन्। इंद्रस्य। रायसि। किं। अस्मान्। दुच्छुनऽयसे। नि। सु। स्वप ॥३॥

हे पुनःसर। गतमेव देशं पुनः सरतीति पुनःसरः। तादृग्भूत हे सारमेय त्वं स्तेनं। प्रच्छन्नधनापहारी स्तेनः। तं तस्करं। प्रत्यक्षधनापहारी तस्करः। तं वा राय। गच्छ। इंद्रस्य स्तोतॄनस्मान् किं रायसि। गच्छसि। अस्मान्दुच्छुनायसे। किं बाधसे। नि षु स्वप। अत्यंतं निद्रां कुरु ॥

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः।
स्तोतॄनिंद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४॥
त्वं। सूकरस्य। दर्दृहि। तव। दर्दर्तु। सूकरः।
स्तोतॄन्। इंद्रस्य। रायसि। किं। अस्मान्। दुच्छुनऽयसे। नि। सु। स्वप ॥४॥

हे सारमेय त्वं सूकरस्य वराहस्य ॥ द्वितीयार्थे षष्ठी ॥ दर्दृहि। विदारय। सूकरोऽपि तव दर्दर्तु। विदारयतु। युवयोर्नित्यवैरित्वात्। अस्मान्मा दशेत्यर्थः ॥ स्तोतॄनित्यर्धर्चः पूर्वस्यामृचि व्याख्यातः ॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससंतु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५॥
सस्तु । माता । सस्तु । पिता । सस्तु । श्वा । सस्तु । विश्पतिः ।
ससंतु । सर्वे । ज्ञातयः । सस्तु । अयं । अभितः । जनः ॥५॥

हे सारमेय माता त्वदीया जननी सस्तु । स्वपतु । पिता च सस्तु । श्वा सारमेयो भवान् सस्तु । विश्पतिर्जामाता यद्वा विशां जनानां पालको गृही सस्तु । सर्वे ज्ञातयो बंधवोऽपि ससंतु । स्वपंतु । अभितः परितः स्थितोऽयमपि सर्वो जनः सस्तु । स्वपतु ॥

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६॥
यः । आस्ते । यः । च । चरति । यः । च । पश्यति । नः । जनः ।
तेषां । सं । हन्मः । अक्षाणि । यथा । इदं । हर्म्यं । तथा ॥६॥

यो जन आस्ते अस्मिन्प्रदेशे तिष्ठति यश्च चरति गच्छति यश्च जनो नोऽस्मान्पश्यति एवंभूतानां तेषां जनानामक्षाणींद्रियाणि सं हन्मः । संहनाम । संहतिर्निमीलनं । निमीलयामेत्यर्थः । इदं प्रत्यक्षेणोपलभ्यमानं हर्म्यं प्रासादादिस्थावरात्मकं वस्तुजातं यथा निश्चलं भवति तथेमे सर्वे जना निश्चला भवंत्वित्यर्थः ॥

सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्स्वापयामसि ॥७॥
सहस्रऽशृंगः । वृषभः । यः । समुद्रात् । उत्ऽआचरत् ।
तेन । सहस्येन । वयं । नि । जनान् । स्वापयामसि ॥७॥

सहस्रशृंगः सहस्रकिरणो वृषभो कामानां वर्षिता यः सूर्यः समुद्रादंबुधेः सकाशादुदाचरत् उदागच्छति सहस्येनाभिभवित्रा तेन सूर्येण वयं स्तोतारो जनान् सर्वान्नि ष्वापयामसि । नितरां स्वापयामः ॥

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगंधास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥८॥
प्रोष्ठेऽशयाः । वह्येऽशयाः । नारीः । याः । तल्पऽशीवरीः ।
स्त्रियः । याः । पुण्यऽगंधाः । ताः । सर्वाः । स्वापयामसि ॥८॥

या यादृश्यो नारीर्भार्याः स्त्रियः प्रोष्ठेशयाः प्रांकणे शयानाः । या वह्येशयाः । वह्यं वाहनं । तस्मिञ्छयानाः । यास्तल्पशीवरीस्तल्पशयाः । याः स्त्रियः पुण्यगंधा मंगल्यगंधाः । तास्तादृशीः सर्वाः स्त्रीः स्वापयामसि । वयं निद्रां कारयामः ॥ ॥२२॥ ॥३॥

अथ चतुर्थेऽनुवाके पंचदश सूक्तानि । तत्र क ईं व्यक्ता इति पंचविंशत्यृचं प्रथमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं मरुद्देवताकं । आद्या एकादश द्विपदा विंशत्यक्षरा विराजः शिष्टाश्चतुर्दश त्रिष्टुभः । तथा चानुक्रांतं । क ईं पंचाधिका मारुतं हाद्या एकादश द्विपदा इति ॥ दशरात्रे चतुर्थेऽहन्याग्निमारुते शस्त्र इदं मारुतनिविद्धानं । सूत्र्यते हि । वैश्वानरस्य सुमती क ईं व्यक्ता नरः । आ० ८.८. । इति ॥

क ईं व्यंक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥

के । ईं । विऽअंक्ताः । नरः । सऽनीळाः । रुद्रस्य । मर्याः । अध । सुऽअश्वाः ॥ १ ॥

व्यक्ताः कांतियुक्ता नरो नेतारः सनीळाः समानौकसो रुद्रस्य महादेवस्य पुत्रा मर्या मर्त्येभ्यो नृभ्यो हिता अधापि च स्वश्वाः शोभनवाहा ईमिम एवंभूताः के भवंतीति रूपातिशयादृषिराश्चर्येणाह ॥

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अंग विद्रे मिथो जनित्रं ॥ २ ॥

नकिः । हि । एषां । जनूंषि । वेद । ते । अंग । विद्रे । मिथः । जनित्रं ॥ २ ॥

एषां मरुतां जनूंषि जन्मानि नकिर्हि वेद । कश्चिदपि न खलु जानाति । ते तादृशा मरुतो मिथः परस्परं जनित्रं रुद्रपृश्निभ्यां सकाशात्प्रादुर्भूतं स्वकीयं जन्मांग विद्रे । स्वयमेव विदंति ॥

अभि स्वपूभिर्मिथो वपंत वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥ ३ ॥

अभि । स्वऽपूभिः । मिथः । वपंत । वातऽस्वनसः । श्येनाः । अस्पृध्रन् ॥ ३ ॥

मरुतः स्वपूभिः स्वकीयैः पवनैः संचरणैः स्वयमेव संचरंतो मिथः परस्परमभि वपंत । संगच्छंते । अपि च वातस्वनसो वायुवत्स्वनंतः शब्दायमानाः श्येनाः ॥ श्यैङ् गताविति धातो रूपं ॥ गमनशीलाः । यद्वा । श्येना इति लुप्तोपममेतत् । श्येनाः पक्षिणः । तद्वद्गच्छंतः । अस्पृध्रन् । परस्परं रूपसौंदर्यादिभिः स्पर्धंते ॥

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥

एतानि । धीरः । निण्या । चिकेत । पृश्निः । यत् । ऊधः । मही । जभार ॥ ४ ॥

धीरो धीमाञ्छास्त्रज्ञो जनो निण्या निण्यानि श्वेतवर्णान्येतानि मरुदात्मकानि भूतानि चिकेत । जानीयात् । किंतु न सर्वे जना जानंतीत्यर्थः । मही महती पृश्निर्मरुतां जननी यद्यानि मरुदात्मकानि भूतान्यूध ऊधन्यंतरिक्षे स्वकीये जठरे वा जभार बभार । एतानि चिकेतेति पूर्वेण संबंधः ॥

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहंती पुष्यंती नृम्णं ॥ ५ ॥

सा । विट् । सुऽवीरा । मरुत्ऽभिः । अस्तु । सनात् । सहंती । पुष्यंती । नृम्णं ॥ ५ ॥

सा विट् सा प्रजा मरुतः परिचरति । सा प्रजा मरुद्भिर्हेतुभिः सनाच्चिरात्सहंती शत्रूनभिभवंती नृम्णं धनं बलं वा पुष्यंती लभंती सुवीरा शोभनपुत्रयुक्तास्तु । भवतु ॥

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥

यामं । येष्ठाः । शुभा । शोभिष्ठाः । श्रिया । संऽमिश्लाः । ओजःऽभिः । उग्राः ॥ ६ ॥

मरुतो यामं यातव्यं गंतव्यं प्रदेशं येष्ठा यातृतमा अतिशयेन गंतारः शुभालंकारेण शोभिष्ठा अतिशयेन शोभायुक्ताः श्रिया कांत्या संमिश्लाः संगच्छमाना ओजोभिर्बलैरुग्रा उद्गूर्णाः । एवंभूता भवंतीति शेषः ॥

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥

उग्रं । वः । ओजः । स्थिरा । शवांसि । अध । मरुत्ऽभिः । गणः । तुविष्मान् ॥ ७ ॥

हे मरुतः वो युष्माकमोजस्तेज उग्रमुद्गूर्णं भवतु । शवांसि युष्मदीयानि बलानि स्थिरा स्थिराणि कैश्चिदप्यपहर्तव्यानि भवंतु । अधापि च मरुद्भिर्गणो मरुतां संघस्तुविष्मान् वृद्धिमान्भवतु ॥

शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥

शुभ्रः । वः । शुष्मः । क्रुध्मी । मनांसि । धुनिः । मुनिःऽइव । शर्धस्य । धृष्णोः ॥ ८ ॥

हे मरुतः वो युष्माकं शुष्मो बलं शुभ्रः सर्वतः शोभमानं । किंच वो मनांसि क्रुध्मी संग्रामेषु शत्रुहननार्थं क्रोधनशीलानि । धृष्णोर्धर्षणशीलस्य शर्धस्य बलवतो युष्मदीयस्य गणस्य धुनिर्वृक्षादीनां कंपयितृवेगो मुनिरिव । मननान्मुनिः स्तोता । स यथा बहुविधं शब्दमुत्पादयति एवं बहुविधशब्दस्योत्पादक इत्यर्थः ॥

सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ॥ ९ ॥

सनेमि । अस्मत् । युयोत । दिद्युं । मा । वः । दुःऽमतिः । इह । प्रणक् । नः ॥ ९ ॥

[हे मरुतः सनेमि पुराणं दिद्युमायुधमस्मदस्मत्तो युयोत । पृथक्कुरुत । वो युष्मदीया दुर्मतिः क्रूरमतिरिहास्मिन्कर्मणि नोऽस्मान्मा प्रणक् । मा व्याप्नोतु ॥]

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥

प्रिया । वः । नाम । हुवे । तुराणां । आ । यत् । तृपत् । मरुतः । वावशानाः ॥ १० ॥

[हे मरुतः तुराणां शत्रूणां हिंसकानां त्वरावतां वा वो युष्माकं प्रिया प्रियेण नाम नाम्ना हुवे । आह्वयामि । यद्येनानेन वावशानाः कामयमानाः संतस्तृपत् तृप्तिं गच्छंति ॥]　॥ २३ ॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुंभमानाः ॥ ११ ॥

सुऽआयुधासः । इष्मिणः । सुऽनिष्काः । उत । स्वयं । तन्वः । शुंभमानाः ॥ ११ ॥

स्वायुधासः स्वायुधाः शोभनास्त्रा इष्मिणो गंतारः सुनिष्काः शोभनालंकारा उतापि च तन्वः स्वकीयानि शरीराणि शुंभमानाः स्वयमेव शोभयंतो मरुत एवंभूता भवंतीत्यर्थः ॥

मारुते पशौ शुची वो हव्येति वपाया अनुवाक्या । सूत्रितं च । शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां नू ष्ठिरं मरुतः । आ॰ ३.७. । इति ॥

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ १२ ॥

शुची । वः । हव्या । मरुतः । शुचीनां । शुचिं । हिनोमि । अध्वरं । शुचिऽभ्यः ।
ऋतेन । सत्यं । ऋतऽसापः । आयन् । शुचिऽजन्मानः । शुचयः । पावकाः ॥ १२ ॥

हे मरुतः शुचीनां शुद्धानां वो युष्माकं शुची शुचीनि हव्या हव्यानि हवींषि भवंतु । शुचिभ्यः प्रकाशमानेभ्यो युष्मभ्यं शुचिं शुद्धमध्वरं यागं हिनोमि । अहं प्रेरयामि । ऋतसाप ऋतमुदकं स्पृशंतो मरुत ऋतेन सत्येनैव सत्यमायन् । गच्छंति । कीदृशाः । शुचिजन्मानः शोभनजननाः शुचयो दीप्यमानाः पावकाः शोधकाः । एवंभूता गच्छंतीत्यर्थः ॥

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥

अंसेषु । आ । मरुतः । खादयः । वः । वक्षःऽसु । रुक्माः । उपऽशिश्रियाणाः ।
वि । विऽद्युतः । न । वृष्टिऽभिः । रुचानाः । अनु । स्वधां । आयुधैः । यच्छमानाः ॥ १३ ॥

हे मरुतः अंसेषु युष्मदीयेषु स्कंधप्रदेशेषु खादयोऽलंकारविशेषा आ मुक्ता भवंतीति शेषः। सुरुक्माः सुष्ठु रोचमाना हारा वो युष्मदीयं वक्ष उरःप्रदेशमुपशिश्रियाणा आश्रिता भवंति। किंच हे मरुतः वृष्टिभिर्वर्षैः सार्धं विद्युतो न तडितो यथा रुचाना रोचमानास्तादृग्भूता यूयमायुधैर्मेघताडनैः स्वधामुदकमनु यच्छमानाः प्रयच्छंतो वि चरथेति शेषः॥

गृहमेधीये प्र बुध्न्या व इति प्रधानस्य याज्या। सूत्रितं च। प्र बुध्न्या व ईरते महांसीति पुष्टिमंतौ विराजौ संयाज्ये। आ० २. १८.। इति॥

प्र बुध्न्या॑ व ईरते म॒हांसि॒ प्र नामा॑नि प्रयज्यवस्तिरध्वं।
स॒ह॒स्रियं॒ दम्यं॑ भा॒गमे॒तं गृ॑हमे॒धीयं॑ मरुतो जुषध्वं॥१४॥
प्र। बु॒ध्न्या॑। वः॒। ई॒र॒ते॒। म॒हांसि। प्र। नामा॑नि। प्र॒ऽय॒ज्य॒वः॒। ति॒र॒ध्वं॒।
स॒ह॒स्रियं॑। दम्यं॑। भा॒गं। ए॒तं। गृ॒ह॒ऽमे॒धीयं॑। म॒रु॒तः॒। जु॒ष॒ध्वं॒॥१४॥

हे मरुतः वो युष्मदीयानि बुध्न्या बुध्न्यान्यंतरिक्षे भवानि महांसि तेजांसि प्रेरते। प्रकर्षेण गच्छंति। किंच हे प्रयज्यवः प्रकर्षेण यष्टव्या मरुतः यूयं नामानि। पांसून्नमयंतीति नामान्युदकानि। प्र तिरध्वं। वर्धयत। हे मरुतः यूयं सहस्रियं सहस्रसंख्याकं दम्यं दमे गृहे भवं गृहमेधीयं गृहमेधिगुणेभ्यो युष्मभ्यं देयमेतमेतादृशं भागं जुषध्वं। सेवध्वं। एकं भागं सहस्रियमिति कथमाह। तथा च श्रूयते। यावदेका देवता कामयते यावदेका तावदाहुतिः प्रथते न हि तदस्ति यत्तावदेव स्याद्यावज्जुहोतीति॥

यदि॑ स्तु॒तस्य॑ मरुतो अधी॒थेत्था विप्र॑स्य वा॒जिनो॒ हवी॑मन्।
म॒क्षू रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य दात॒ नू चि॒द्यम॒न्य आ॒दभ॒दरा॑वा॥१५॥
यदि॑। स्तु॒तस्य॑। म॒रु॒तः॒। अ॒धि॒ऽइ॒थ। इ॒त्था। विप्र॑स्य। वा॒जिनः॑। हवी॑मन्।
म॒क्षु। रा॒यः। सु॒ऽवीर्य॑स्य। दा॒त॒। नु। चि॒त्। यं। अ॒न्यः। आ॒ऽदभ॑त्। अरा॑वा॥१५॥

वाजिनो हविर्लक्षणान्नवतो विप्रस्य मेधाविनो मम संबंधिनि हवीमन् हविष्मति हविषा युक्ते स्तोत्रे क्रियमाणे सति हे मरुतः यूयं यदि यस्मात्कारणात् स्तुतस्य स्तुतं मदीयं स्तोत्रमित्थेत्थमनेन प्रकारेणाधीथ अवगच्छथ तस्मात्कारणात् हे मरुतः यूयं सुवीर्यस्य शोभनपुत्रोपेतस्य रायो रायं धनं। द्वितीयार्थे षष्ठी। मक्षु शीघ्रं दात। दत्त। अरावारातिः शत्रुभूतोऽन्यो जनो यं रायं नू चिदादभत् नैवाभिहन्यात्। तद्धनमस्मभ्यं दत्तेति संबंधः॥ ॥२४॥

मरुद्भ्यः क्रीळिभ्यः सप्तकपालमित्यस्यात्यास इति याज्या। सूत्रितं च। अत्यासो न ये मरुतः स्वंचो जुष्टो दमूनाः। आ० २. १८.। इति॥

अत्या॑सो॒ न ये म॒रुतः॒ स्वंचो॑ य॒क्ष॒दृशो॒ न शु॒भयं॑त॒ मर्याः॑।
ते ह॒र्म्ये॒ष्ठाः शिश॑वो॒ न शु॒भ्रा व॒त्सासो॒ न प्र॑क्री॒ळिनः॑ पयो॒धाः॥१६॥
अत्या॑सः। न। ये। म॒रुतः॑। सु॒ऽअंचः॑। य॒क्ष॒ऽदृशः॑। न। शु॒भयं॑त। मर्याः॑।
ते। ह॒र्म्ये॒ऽस्थाः। शिश॑वः। न। शु॒भ्राः। व॒त्सासः॑। न। प्र॒ऽक्री॒ळिनः॑। प॒यः॒ऽधाः॥१६॥

अत्यासो नात्याः सततगामिनोऽश्वा इव स्वंचः सुष्ठु गच्छंतो ये मरुतो यक्षदृशो न मर्या यक्षस्योत्सवस्य द्रष्टारो मनुष्या इव शुभयंत शोभंते हर्म्येष्ठा हर्म्ये स्थिताः शिशवो न कुमारा इव शुभ्राः शोभमाना वत्सासो

न वत्सा इव प्रक्रीळिनः प्रकर्षेण क्रीडमानास्ते मरुतः पयोधाः पयस उदकस्य धारयितारो दातारो वा भवंति ॥

दशस्यंतो नो मरुतो मृळंतु वरिवस्यंतो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वं ॥१७॥
दशस्यंतः । नः । मरुतः । मृळंतु । वरिवस्यंतः । रोदसी इति । सुमेके इति सुऽमेके ।
आरे । गोऽहा । नृऽहा । वधः । वः । अस्तु । सुम्नेभिः । अस्मे इति । वसवः । नमध्वं ॥१७॥

मरुतो नोऽस्मभ्यं दशस्यंतो धनानि प्रयच्छंतः सुमेके सुरूपे रोदसी द्यावापृथिव्यौ वरिवस्यंतः स्वमहिम्ना पूरयंतो मृळंतु । मृळयंतु । अस्मान्सुखयुक्तान् कुर्वंतु । अपि च हे वसवो वासका मरुतः गोहा गवां मेघस्थानामुदकानां भेदको नृहा नृणां शत्रूणां हंता वो युष्मदीयं वध आयुधमारेऽस्तु । अस्मत्तो दूरे भवतु । यूयमपि सुम्नेभिः सुम्नैः सुखैः सहास्मे अस्मासु नमध्वं । स्वयमेवाभिमुखा भवत ॥

मारुते पशावा वो होतेत्येषानुवाक्या । सूत्रितं च । आ वो होता जोहवीति सत्तः प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय । आ॰ ३.७. । इति ॥

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥१८॥
आ । वः । होता । जोहवीति । सत्तः । सत्राचीं । रातिं । मरुतः । गृणानः ।
यः । ईवतः । वृषणः । अस्ति । गोपाः । सः । अद्वयावी । हवते । वः । उक्थैः ॥१८॥

हे मरुतः सत्तो होतृषदने निषण्णोऽस्मदीयो होता सत्राचीं सर्वतो गमनशीलां रातिं त्वदीयं दानं गृणानः स्तुवन् वो युष्माना जोहवीति । भृशमाह्वयति । हे वृषणः कामानां वर्षितारो मरुतः यो होतेवतो गच्छतो व्यापारवतो यजमानस्य गोपा अस्ति युष्मदाह्वाननिमित्तेन रक्षको भवति स होताद्वयावी मायारहितः सन्वो युष्मानुक्थैः स्तोत्रैर्हवते । स्तौति ॥

इमे तुरं मरुतो रामयंतीमे सहः सहस आ नमंति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पांति गुरु द्वेषो अररुषे दधंति ॥१९॥
इमे । तुरं । मरुतः । रमयंति । इमे । सहः । सहसः । आ । नमंति ।
इमे । शंसं । वनुष्यतः । नि । पांति । गुरु । द्वेषः । अररुषे । दधंति ॥१९॥

इम ईदृशो मरुतस्तुरं कर्मसु क्षिप्रवंतं यजमानं रमयंति । क्रीडयंति । इमे मरुतः सहः सहसा बलेन सहसो बलवतो जनाना नमंति । इमे मरुतो वनुष्यतो हिंसकात्पुरुषाच्छंसं शंसकं स्तोतारं नि पांति । नितरां पालयंति । अररुषे हविरप्रयच्छते जनाय गुरु महद्द्वेषोऽप्रियं दधंति । कुर्वंति ॥

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनंति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषंत ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥२०॥
इमे । रध्रं । चित् । मरुतः । जुनंति । भृमिं । चित् । यथा । वसवः । जुषंत ।
अप । बाधध्वं । वृषणः । तमांसि । धत्त । विश्वं । तनयं । तोकं । अस्मे इति ॥२०॥

इमे मरुतो रध्रं चित् समृद्धमपि जनं जुनंति। प्रेरयंति। भृमिं चिद्भ्रमणशीलमपि दरिद्रं जुनंति। प्रेरयंति। वसवो वासका देवा युष्मान्यथा जुषंत कामयेरन् हे वृषणः कामानां वर्षितारः ते यूयं तमांस्यप बाधध्वं। नाशयत। अपि चास्मै अस्मभ्यं विश्वं बहुलं तोकं पुत्रं तनयं पौत्रं च धत्त। प्रयच्छत॥ ॥२५॥

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति॥२१॥
मा। वः। दात्रात्। मरुतः। निः। अराम। मा। पश्चात्। दघ्म। रथ्यः। विऽभागे।
आ। नः। स्पार्हे। भजतन। वसव्ये। यत्। ईं। सुऽजातं। वृषणः। वः। अस्ति॥२१॥

हे मरुतः वो युष्माकं दात्राद्दानान्मा निरराम। वयं मा निर्गमाम। यूयमस्मान्परित्यज्यान्येभ्यो धनं मा दत्तेत्यर्थः। हे रथ्यो रथवंतो मरुतः विभागे युष्मदीयस्य धनस्य दाने पश्चान्मा दघ्म। दघ्यतिर्गतिकर्मा। वयं पश्चाद्भागिनो मा भूम। यूयं प्रथममस्मभ्यमेव दत्तेति यावत्। स्पार्हे स्पृहणीये वसव्ये धनसमूहे यूयं नोऽस्माना भजतन। भागिनः कुरुत। हे वृषणो वर्षितारो मरुतः वो युष्माकं सुजातं शोभनजन्मं यद्वसव्यमस्ति तस्मिन्भागिनः कुरुतेति संबंधः। ईमिति पूरणः॥

सं यद्धनंत मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः॥२२॥
सं। यत्। हनंत। मन्युऽभिः। जनासः। शूराः। यह्वीषु। ओषधीषु। विक्षु।
अध। स्म। नः। मरुतः। रुद्रियासः। त्रातारः। भूत। पृतनासु। अर्यः॥२२॥

यद्यदा शूरा विक्रांता जनासो जना यह्वीषु महतीष्वोषधीषु विक्षु प्रजासु च जेतव्यासु मन्युभिः कोपैरभिमानैर्वा सं हनंत संगच्छंते अध तदानीं हे रुद्रियासो रुद्रपुत्रा हे मरुतः यूयं पृतनासु युद्धेष्वर्योऽरेः शत्रोः सकाशान्नोऽस्माकं त्रातारो भूत। रक्षका भवत॥

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यंते पुरा चित्।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा॥२३॥
भूरि। चक्र। मरुतः। पित्र्याणि। उक्थानि। या। वः। शस्यंते। पुरा। चित्।
मरुत्ऽभिः। उग्रः। पृतनासु। साळ्हा। मरुत्ऽभिः। इत्। सनिता। वाजं। अर्वा॥२३॥

हे मरुतः यूयं भूरि भूरीणि बहूनि पित्र्याण्यस्मत्पितृसंबंधीनि धनदानादीनि कर्माणि चक्र। कृतवंतो भवत। पुरा चित् पूर्वकालेऽपि वो युष्माकमुक्थानि प्रशस्यानि यानि कर्माणि प्रशस्यंते प्रख्यायंते तानि चक्रेति संबंधः। उग्र ओजस्वी पृतनासु युद्धेषु मरुद्भिर्युष्माभिर्हेतुभिः साळ्हा शत्रूणामभिभविता भवति। मरुद्भिरिन्मरुद्भिर्युष्माभिरेव हेतुभिरर्वा स्तोत्रैरभिगंता वाजमन्नं सनिता संभक्ता भवति। यद्वा। अर्वाश्वो वाजं युद्धं सनिता भवति॥

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम॥२४॥
अस्मे इति। वीरः। मरुतः। शुष्मी। अस्तु। जनानां। यः। असुरः। विऽधर्ता।
अपः। येन। सुऽक्षितये। तरेम। अध। स्वं। ओकः। अभि। वः। स्याम॥२४॥

हे मरुतः असौ अस्माकं वीरः पुत्रः पुष्यस्तु । बलवान्भवतु । असुरः प्रज्ञावान्यो जनानां शत्रूणां विधर्ता विधारकः । येन पुत्रेण वयं सुक्षितये सुष्ठु निवासायाप आप्नुवतः शत्रूंस्तरेम हिंसेम । स पुत्रो बलवानस्त्विति पूर्वेणान्वयः । अधापि च वो युष्मदीया वयं स्वमोक आत्मीयं स्थानमभि स्याम । आतिष्ठेम ॥

तन्न इंद्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषंत ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥
तत् । नः । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अग्निः । आपः । ओषधीः । वनिनः । जुषंत ।
शर्मन् । स्याम । मरुतां । उपऽस्थे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥२५॥

पूर्वं व्याख्यातेयं । अक्षरार्थस्तु । इंद्रादयो देवा अस्मदीयं स्तोत्रं सेवंतां । मरुतामुपस्थाने वर्तमाना वयं सुखे स्याम । हे मरुतः यूयं सर्वदास्मानविनाशैः पालयत ॥ ॥२६॥

मध्वो व इति सप्तर्चं द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं मरुद्देवताकं । मध्वः सप्तेत्यनुक्रांतं ॥ दशरात्रे षष्ठेऽहन्याग्निमारुत इदं मारुतनिविद्धानं । सूचितं च । मध्वो वो नाम स प्रत्नथेत्याग्निमारुतं । आ॰ ८. ८. । इति ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदंति ।
ये रेजयंति रोदसी चिदुर्वी पिन्वंत्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥१॥
मध्वः । वः । नाम । मारुतं । यजत्राः । प्र । यज्ञेषु । शवसा । मदंति ।
ये । रेजयंति । रोदसी इति । चित् । उर्वी इति । पिन्वंति । उत्सं । यत् । अयासुः । उग्राः ॥१॥

हे यजत्रा यजनीया मरुतः वो युष्मदीयं मारुतं मरुत्संबंधि नाम नामधेयं मध्वो मधवो मादयितारः स्तोतारो यज्ञेषु यागेषु शवसा बलेन प्र मदंति । प्रकर्षेण स्तुवंति । उच्चैः स्तुवंतीत्यर्थः । ये मरुत उर्वी विस्तीर्णे रोदसी चिद्द्यावापृथिव्यावपि रेजयंति कंपयंति किंचोत्सं मेघं पिन्वंति वर्षयंति उग्रा उद्गूर्णा यद्ये मरुतोऽयासुः यांति सर्वत्र गच्छंति । तेषां मरुतां युष्माकं नाम प्र मदंतीति पूर्वेणान्वयः ॥

निचेतारो हि मरुतो गृणंतं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥२॥
निऽचेतारः । हि । मरुतः । गृणंतं । प्रऽनेतारः । यजमानस्य । मन्म ।
अस्माकं । अद्य । विदथेषु । बर्हिः । आ । वीतये । सदत । पिप्रियाणाः ॥२॥

ये मरुतो गृणंतं स्तुवंतं जनं निचेतारो हि मृगयमाणा भवंति खलु अपि च यजमानस्य मन्माभिमतं कामं प्रणेतारश्च भवंति । अपरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । हे मरुतः यूयं पिप्रियाणाः प्रीयमाणाः संतोऽद्यास्मिन्दिवसेऽस्माकं विदथेषु यज्ञेषु वीतये सोमस्य भक्षणाय बर्हिर्बर्हिषि कुशमय आ सदत । आसीदत । उपविशत ॥

नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजंते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमंज्यंजते शुभे कं ॥३॥
न । एतावत् । अन्ये । मरुतः । यथा । इमे । भ्राजंते । रुक्मैः । आयुधैः । तनूभिः ।
आ । रोदसी इति । विश्वऽपिशः । पिशानाः । समानं । अंजि । अंजते । शुभे । कं ॥३॥

इम ईदृशा मरुतो यथा यत्परिमाणं धनादिकं ददति अन्ये मरुद्व्यतिरिक्ता देवा एतावद्धनादिकं न

दधुरित्यर्थः। ते च रुक्मै रोचमानैराभरणैरायुधैः स्वकीयास्तैस्तनूभिरात्मीयैः केवलैरंगैश्च भ्राजंते। सर्वदा भासंते। कश्चिदेकवाक्यतामाह। यथेमे मरुतो रुक्मादिभिर्भ्राजंते नैतावदेतद्व्यतिरिक्ता भ्राजंत इति। अपि च रोदसी द्यावापृथिव्यौ पिशानाः प्रकाशयंतो विश्वपिशो व्याप्तदीप्तय एवंभूता मरुतः शुभे शोभायै समानं सदृशरूपमंज्याभरणमांजते। स्वकीयावयवेष्वभिव्यक्तीकुर्वंति। कमिति पूरणः॥

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा॥४॥
ऋधक्। सा। वः। मरुतः। दिद्युत्। अस्तु। यत्। वः। आगः। पुरुषता। कराम।
मा। वः। तस्याम्। अपि। भूम। यजत्राः। अस्मे इति। वः। अस्तु। सुऽमतिः। चनिष्ठा॥४॥

हे मरुतः वो युष्मदीया सा प्रसिद्धा दिद्युद्धेतिर्ऋधगस्तु। अस्मत्तः पृथग्भवतु। यद्यद्यपि वयं वो युष्माकमागोऽपराधं पुरुषता पुरुषतया मनुष्यत्वेन कराम करवाम। मनुष्याणां हि प्रमादः सुलभ इत्यर्थः। हे यजत्रा यजनीया मरुतः वो युष्मदीयायां तस्यां दिद्युत्यपीषदपि मा भूम। चनिष्ठान्नवत्तमा। अतिशयेनान्नप्रदेत्यर्थः। वो युष्मदीया सुमतिरनुग्रहबुद्धिरस्मे अस्मास्वस्तु॥

कृते चिदत्र मरुतो रणंतानवद्यासः शुचयः पावकाः।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः॥५॥
कृते। चित्। अत्र। मरुतः। रणंत। अनवद्यासः। शुचयः। पावकाः।
प्र। नः। अवत। सुमतिऽभिः। यजत्राः। प्र। वाजेभिः। तिरत। पुष्यसे। नः॥५॥

अत्रास्मिन्कृते चिदस्मदीये यज्ञकर्मण्येव मरुतो रणंत। रमंतां। कीदृशा मरुतः। अनवद्यासोऽनिंदिताः शुचयो दीप्तियुक्ताः पावकाः शोधका एवंभूता इति। किंच हे मरुतो यजत्रा यजनीयाः यूयं नोऽस्मान् सुमतिभिरनुग्रहबुद्धिभिः सुष्टुतिभिर्हेतुभिर्वा प्रावत। प्रकर्षेण पालयत। तथा नोऽस्मान्वाजेभिर्वाजैरन्नैः पुष्यसे पोषार्थं प्र तिरत। प्रवर्धयत॥

उत स्तुतासो मरुतो व्यंतु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि॥६॥
उत। स्तुतासः। मरुतः। व्यंतु। विश्वेभिः। नामऽभिः। नरः। हवींषि।
ददात। नः। अमृतस्य। प्रऽजायै। जिगृत। रायः। सूनृता। मघानि॥६॥

उतापि च स्तुतास एवमस्माभिः स्तुता मरुतो हवींषि व्यंतु। भक्षयंतु। कीदृशाः। विश्वेभिर्विश्वैर्नामभिरुदकैः सहिता नरो नेतारः। शेषः प्रत्यक्षस्तुतः। हे मरुतः नोऽस्मदीयायै प्रजायै संततयेऽमृतस्यामृतमुदकं ददात। दत्त। तथा हविषो दातुर्यजमानस्य सूनृता सूनृतानि सुष्ठु नृत्यंति शोभनयोग्यानि मघानि धनानि जिगृत। उद्गिरत। प्रयच्छतेत्यर्थः॥

आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्सर्वताता जिगात।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयंति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥

आ। स्तुतासः। मरुतः। विश्वे। ऊती। अच्छ। सूरीन्। सर्वऽताता। जिगात।
ये। नः। त्मना। शतिनः। वर्धयंति। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥७॥

हे मरुतः स्तुतास एवमस्माभिः स्तुता विश्वे सर्वे यूयमूत्यूत्या रक्षया सहिताः सूरीन् स्तोतृनच्छाभिलक्ष्य सर्वताता सर्वतातौ यज्ञ आ जिगात। आगच्छत। ये मरुतस्त्मनात्मनैव नोऽस्माञ्छतिनः शतसंख्याकान्वर्धयंति। यथा वयं पुत्रपौत्रादिभिः शतिनो भवेम तथा वर्धयंतीत्यर्थः। ते यूयमा जिगातेति पूर्वेण संबंधः। एवंभूता मरुतः यूयं सर्वदास्मान्पालयत ॥ ॥२७॥

प्र साकमुक्ष इति षडृचं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं मरुद्देवताकं। अनुक्रांतं च। प्र साकमुक्षे षडिति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान्।
उत क्षोदंति रोदसी महित्वा नक्षंते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥१॥
प्र। साकंऽउक्षे। अर्चत। गणाय। यः। दैव्यस्य। धाम्नः। तुविष्मान्।
उत। क्षोदंति। रोदसी इति। महिऽत्वा। नक्षंते। नाकं। निःऽऋतेः। अवंशात् ॥१॥

हे स्तोतारः यूयं साकमुक्षे संततं वर्षित्रे गणाय मरुत्समूहाय प्रार्चत। स्तोत्रं प्रोच्चारयत। यो मरुद्गणो दैव्यस्य देवसंबंधिनो धाम्नः स्वर्गाख्यस्य स्थानस्य तुविष्मान् वृद्धिमान्भवति। सर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रवृद्ध इत्यर्थः। तस्मै गणायेति पूर्वेण संबंधः। उतापि च मरुतो महित्वा स्वकीयेन महत्त्वेन सहिता रोदसी द्यावापृथिव्यौ क्षोदंति। भंजंति। तथा निर्ऋतेर्भूमेरवंशादंतरिक्षाच्च नाकं स्वर्गं नक्षंते। व्याप्नुवंति ॥

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः।
प्र ये महोभिरोजसोत संति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२॥
जनूः। चित्। वः। मरुतः। त्वेष्येण। भीमासः। तुविऽमन्यवः। अयासः।
प्र। ये। महःऽभिः। ओजसा। उत। संति। विश्वः। वः। यामन्। भयते। स्वःऽदृक् ॥२॥

हे भीमासो भीमास्तुविमन्यवः प्रवृद्धमतयोऽयासो गंतार इति त्रीणि संबोधनानि। एवंभूता हे मरुतः वो युष्माकं जनूर्जन्म त्वेष्येण दीप्तेन रुद्रेण बभूवेति शेषः। उतापि च ये मरुतो महोभिस्तेजोभिरोजसा बलेन च प्र संति प्रभवंति तेषां वो युष्माकं यामन् यामनि गमने विश्वः स्वर्दृक् सूर्यस्य द्रष्टा सर्वो जीवसमूहः। यद्वा। स्वरंतरिक्षं। तत्पश्यतीति वृक्षः स्वर्दृक्। सर्वदोत्तिष्ठन्नित्यर्थः। भयते। बिभेति ॥

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः।
गतो नाध्वा वि तिराति जंतुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥
बृहत्। वयः। मघवत्ऽभ्यः। दधात। जुजोषन्। इत्। मरुतः। सुऽस्तुतिं। नः।
गतः। न। अध्वा। वि। तिराति। जंतुं। प्र। नः। स्पार्हाभिः। ऊतिऽभिः। तिरेत ॥३॥

हे मरुतः यूयं मघवद्भ्यो हविर्लक्षणान्नवद्भ्योऽस्मभ्यं बृहन्महद्वयोऽन्नं दधात। प्रयच्छत। नोऽस्मदीयां सुष्टुतिं शोभनं स्तोत्रं जुजोषन्नित्। सेवंतामेव। गतो मरुद्भिः प्राप्तोऽध्वा मार्गो जंतुं प्राणिनं न वि तिराति। नाहंति। उदकेनाप्याययत्येव। यद्वा। वितिरतिर्वर्धनार्थः। नेति चार्थे। मरुद्भिर्गतो मार्गश्च जंतुं वर्धयति। तथा नोऽस्मान् स्पार्हाभिः स्पृहणीयाभिरूतिभी रक्षाभिः प्र तिरेत। प्रवर्धयते ॥

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हंति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णं ॥ ४ ॥
युष्माऽऊंतः । विप्रः । मरुतः । शतस्वी । युष्माऽऊंतः । अर्वा । सहुरिः । सहस्री ।
युष्माऽऊंतः । संऽराट् । उत । हंति । वृत्रं । प्र । तत् । वः । अस्तु । धूतयः । देष्णं ॥ ४ ॥

हे मरुतः युष्मोतो युष्माभी रक्षितो विप्रः स्तोता शतस्वी शतसंख्योपेतधनवान्भवति । युष्मोतो युष्माभी रक्षितोऽर्वाभिगंता सहुरिः शत्रूणामभिभविता स्तोता सहस्री सहस्रधनवान्भवति । युष्मोतो युष्माभी रक्षितः सम्राट् साम्राज्ययुक्तो भवति । उतापि च वृत्रं शत्रुं हंति । युष्मद्रक्षको हिनस्ति । हे धूतयः कंपयितारो मरुतः वो युष्माभिर्दत्तं तत्प्रसिद्धं देष्णं धनं प्रास्तु । प्रभूतं भवतु ॥

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसंते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणां ॥ ५ ॥
तान् । आ । रुद्रस्य । मीळ्हुषः । विवासे । कुवित् । नंसंते । मरुतः । पुनः । नः ।
यत् । सस्वर्ता । जिहीळिरे । यत् । आविः । अव । तत् । एनः । ईमहे । तुराणां ॥ ५ ॥

मीळ्हुषः कामानां वर्षितू रुद्रस्येश्वरस्य पुत्रांस्तान्मरुत आ विवासे । अहं होता परिचरामि । ते मरुतो नोऽस्मभ्यं कुविद्बहुकृत्वः पुनर्भूयो नंसंते । नमंतां । अभिमुखीभवंतु । कुविच्छब्देनैव पुनःशब्दार्थस्य लब्धत्वात्पुनःशब्दग्रहणं किमर्थं । आदरार्थं । सस्वर्तांतर्हितेनाप्रकाशेन यद्येनेनसा जिहीळिरे मरुतः क्रुध्येयुः आविः प्रकाशेन यद्येनेनसा च जिहीळिरे तुराणां क्षिप्राणां मरुतां संबंधि तदुभयमेनोऽपराधमवेमहे । स्तोत्रेण वयमपनयामः ॥

प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषंत ।
आराच्चिद्द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
प्र । सा । वाचि । सुऽस्तुतिः । मघोनां । इदं । सुऽउक्तं । मरुतः । जुषंत ।
आरात् । चित् । द्वेषः । वृषणः । युयोत । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

मघोनां धनवतां मरुतां संबंधिनी सुष्टुतिर्या शोभना स्तुतिरस्मिन्सूक्ते कृता सा स्तुतिरस्माभिः प्र वाचि । प्रोक्तासीत् । मरुत इदमीदृग्भूतं सूक्तं जुषंत । सेवंतां । हे वृषणः कामानां वर्षितारः यूयं द्वेषो द्वेषांसि शत्रूनाराच्चिद्दूरादेव युयोत । अस्मत्तः पृथक्कुरुत । यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः सर्वदा रक्षत ॥ ॥ २८ ॥

यं त्रायध्व इति द्वादशर्चं चतुर्थं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । यं त्रायध्वे द्वादश त्रिप्रगाथादि नवम्याद्यास्तिस्रो गायत्र्योऽंत्यानुष्टुब्रौद्री मृत्युविमोचनीति । आद्यातृतीयापंचम्यो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः सप्तम्यष्टम्यावनुक्तत्वात्त्रिष्टुभौ नवमीदशम्येकादश्यो गायत्र्यः । द्वादश्यनुष्टुप् सा च रुद्रदेवताका । शिष्टा मारुत्यः ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥
यं । त्रायध्वे । इदंऽइदं । देवासः । यं । च । नयथ ।
तस्मै । अग्ने । वरुण । मित्र । अर्यमन् । मरुतः । शर्म । यच्छत ॥ १ ॥

हे देवासो देवाः इदमिदमितो भयहेतोर्यं स्तोतारं त्रायध्वे पालयध्वे। यं च स्तोतारं नयथ सन्मार्गं प्रापयथ। हे अग्ने वरुण मित्रार्यमन् हे मरुत एवंभूता हे देवाः तस्मै स्तोत्रे शर्म सुखं यच्छत। दत्त॥

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥२॥
युष्माकं। देवाः। अवसा। अहनि। प्रिये। ईजानः। तरति। द्विषः।
प्र। सः। क्षयं। तिरते। वि। महीः। इषः। यः। वः। वराय। दाशति ॥२॥

हे देवाः युष्माकं युष्मदीयेनावसा रक्षणेन प्रियेऽहनि सर्वेषां देवानां प्रियभूते सुत्याभिधाने दिवस ईजान इष्टवाञ्जनो द्विषः शत्रूंस्तरति। आक्रामति। स यजमानः क्षयं स्वकीयं निवासं प्र तिरते। प्रवर्धयति। यो यजमानो वो युष्मभ्यं महीर्महतीरिषो हविर्लक्षणान्यन्नानि वराय निवारणाय यूयं नान्यत्र गच्छतास्मदीयान्येव हवींषि स्वीकुरुतेति निरोधनं कर्तुं वि दाशति विशेषेण ददाति। अत एव स स्वकीयं निवासं वर्धयतीत्यर्थः॥

नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥३॥
नहि। वः। चरमं। चन। वसिष्ठः। परिऽमंसते।
अस्माकं। अद्य। मरुतः। सुते। सचा। विश्वे। पिबत। कामिनः ॥३॥

वसिष्ठ ऋषिर्वो युष्माकं मध्ये चरमं चनावरमपि नहि परिमंसते। वर्जयित्वा न स्तौति। किंतु सर्वानेव युष्मान् स्तौतीत्यर्थः। अद्यास्मिन्दिनेऽस्माकमस्मदीये सुते सोमेऽभिषुते सति हे मरुतः कामिनः सोमं कामयमाना विश्वे यूयं सचा संगत्य पिबत। पानं कुरुत॥

नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥४॥
नहि। वः। ऊतिः। पृतनासु। मर्धति। यस्मै। अराध्वं। नरः।
अभि। वः। आ। अवर्त्। सुऽमतिः। नवीयसी। तूयं। यात। पिपीषवः ॥४॥

हे मरुतः वो युष्मदीयोती रक्षा पृतनासु युद्धेषु नहि मर्धति। न खलु हिनस्ति। शत्रुभिः कृतां हिंसां न सहत इत्यर्थः। हे नरो नेतारः यूयं यस्मै जनायाराध्वं कामानदध्वं तं जनं न हिनस्तीति संबंधः। नवीयसी नवतरा वो युष्मदीया सुमतिरनुग्रहबुद्धिरभ्यावर्त्। अस्मानभ्यावर्ततां। तथा हे पिपीषवः सोमपानकामाः यूयमपि तूयं क्षिप्रं यात। आगच्छत॥

ओ षु घृष्विराधसो यातनांधांसि पीतये।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्वन्यत्र गंतन ॥५॥
ओ इति। सु। घृष्विऽराधसः। यातन। अंधांसि। पीतये।
इमा। वः। हव्या। मरुतः। ररे। हि। कं। मो इति। सु। अन्यत्र। गंतन ॥५॥

हे घृष्विराधसः परस्परघृष्टानि सुसंहतानि राधांसि येषां ते हे मरुतः यूयमंधांसि सोमलक्षणानि

हवींषि पीतये भक्षणार्थं सु सुष्ठो यातन । आयात । हि यस्मात्कारणात् हे मरुतः वो युष्मभ्यमिमिमाणि हव्या हव्यानि हवींषि ररे अहं ददामि अतः कारणाद्यूयमन्यत्र मो षु गंतन । मा गच्छत ॥

आ चं नो बर्हिः सदंताविता चं नः स्पार्हाणि दातंवे वसुं ।
अस्रेंधंतो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मांदयाध्वै ॥ ६॥
आ । च । नः । बर्हिः । सदंत । अवित । च । नः । स्पार्हाणिं । दातंवे । वसुं ।
अस्रेंधंतः । मरुतः । सोम्ये । मधौं । स्वाहां । इह । मादयाध्वै ॥ ६॥

हे मरुतः यूयं नोऽस्मदीये बर्हिः कुशमये बर्हिष्या सदत च । उपविशत । स्पार्हाणि स्पृहणीयानि वसु वसूनि धनानि दातवेऽस्मभ्यं दातुं नोऽस्मानवित च । आगच्छत च । हे मरुतः अस्रेधंतोऽहिंसंतो यूयमिहास्मिन्यज्ञे मधौ मदकरे सोम्ये सोमात्मके हविषि स्वाहा स्वाहाकारेण मादयाध्वै । मादयध्वं । माद्यत ॥ ॥२९॥

सस्वश्चिद्धि तन्वः॑ शुंभंमाना आ हंसासो नीलंपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धौ अभितौ मा नि षेंद नरो न रण्वाः सवंने मदंतः ॥ ७॥
सस्वरितिं । चित् । हि । तन्वः॑ । शुंभंमानाः । आ । हंसासः । नीलंऽपृष्ठाः । अपप्तन् ।
विश्वं । शर्धः । अभितः । मा । नि । सेद । नरः । न । रण्वाः । सवंने । मदंतः ॥ ७॥

सस्वरंतर्हिता मरुतस्तन्वः स्वकीयान्यंगानि शुंभमाना अलंकरणैः शोभयंतो मरुतो नीलपृष्ठा असितवर्णा हंसासो हंसा इवापप्तन् । आपतंतु । आगच्छंतु । विश्वं शर्धो व्याप्तो मरुद्गणो मा मामभितः समंतान्नि षेद । निषीदतु । तत्र दृष्टांतः । सवनेऽस्मदीये यज्ञे मदंतो हृष्यंतो रण्वा रमणीया नरो न मनुष्या इव तद्वत् ॥

साकमेधेषु मरुद्भ्यः सांतपनेभ्य इत्यस्य यो नो मरुत इति पूर्वानुवाक्या सांतपना इदमिति याज्या । तथा च सूचितं । सांतपना इदं हविर्यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुः । आ० २. १८. । इति ॥

यो नौ मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानिं वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुंचीष्ट तपिंष्ठेन हन्मंना हंतना तं ॥ ८॥
यः । नः । मरुतः । अभि । दुःऽहृणायुः । तिरः । चित्तानिं । वसवः । जिघांसति ।
द्रुहः । पाशान् । प्रतिं । सः । मुचीष्ट । तपिंष्ठेन । हन्मंना । हंतन । तं ॥ ८॥

हे वसवः प्रशस्ता हे मरुतः नोऽस्मदीयानि चित्तानि दुर्हृणायुरशोभनं क्रुध्यंस्तिरः सर्वैस्तिरस्कृतो यो जनोऽभि जिघांसति आभिमुख्येन हंतुमिच्छति स जनो द्रुहः पापानां द्रोग्धुर्वरुणस्य पाशानस्मासु प्रति स मुचीष्ट । बध्नीयात् । यूयं तं जनं तपिष्ठेन तप्तृतमेन हन्मना हननसाधनेनायुधेन हंतन । हत । हिंस्त ॥

सांतंपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुंजुष्टन । युष्माकोती रिंशादसः ॥ ९॥
सांऽतंपनाः । इदं । हविः । मरुतः । तत् । जुजुष्टन । युष्माकं । ऊती । रिशादसः ॥ ९॥

सांतपनाः शत्रूणां संतापका हे मरुतः इदं प्रत्यक्षेणोपलभ्यमानं हविर्युष्मभ्यं कल्पितमिति शेषः । हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो रिशानामत्तारो वा यूयं युष्माक युष्माकमूत्यूत्या रक्षया तत्तादृशं हविर्जुजुष्टन । सेवध्वं ॥

गृहमेधास इति गृहमेधीयस्य हविषोऽनुवाक्या । सूचितं च । गृहमेधास आ गत प्र बुध्न्या व ईरते महांसि । आ° २. १८. । इति ॥

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥१०॥

गृहऽमेधासः । आ । गत । मरुतः । मा । अप । भूतन । युष्माक । ऊती । सुऽदानवः ॥१०॥

गृहमेधासो गृहे क्रियमाणो यज्ञो येषां ते सुदानवः शोभनदाना हे मरुतः यूयं युष्माक युष्माकमूत्या रक्षया युक्ता आ गत । अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छत । हे मरुतः माप भूतन । अपगता मा भवत ॥ भू प्राप्ताविति धातुः ॥

वैश्वदेवे पर्वणि मारुतस्यानुवाक्येहेह व इत्येषा । सूचितं च । इहेह वः स्वतवसः प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय । आ° २. १६. । इति ॥

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

इहऽइह । वः । स्वऽतवसः । कवयः । सूर्यऽत्वचः । यज्ञं । मरुतः । आ । वृणे ॥११॥

हे स्वतवसः स्वायत्तबलाः स्वयं प्रवृद्धा वा हे कवयः क्रांतदर्शिनः सूर्यत्वचः सूर्यवर्णा एवंभूता हे मरुतः यूयमिहेहैवास्मदीयं यज्ञमा वृणे । आभजामि । कल्पयामि ॥

त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनं ।
उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२॥
त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनं ।
उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२॥

अत्र शौनकः । त्रिरात्रं नियतोऽपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुं । तेनाहुतिशतं पूर्णं जुहुयाच्छंसितव्रतः ॥ समुद्दिश्य महादेवं त्र्यंबकं त्र्यंबकेत्यृचा । एतत्पर्वशतं कृत्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी । ऋग्वि° २. २७. । [त्रयाणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणामंबकं पितरं यजामह इति शिष्यसमाहितो वसिष्ठो ब्रवीति । किंविशिष्टमित्यत आह । सुगंधिं प्रसारितपुण्यकीर्तिं । पुनः किंविशिष्टं । पुष्टिवर्धनं जगद्बीजं । उरुशक्तिमित्यर्थः । उपासकस्य वर्धनं । अणिमादिशक्तिवर्धनं । अतस्त्वत्प्रसादादेव मृत्योर्मरणात्संसाराद्वा मुक्षीय । मोचय । यथा बंधनादुर्वारुकं कर्कटीफलं मुच्यते तद्वन्मरणात्संसाराद्वा मोचय । किं मर्यादीकृत्य । आमृतात् । सायुज्यतामोचपर्यंतमित्यर्थः । अथ तैत्तिरीयभाष्ये । तै° सं° १. ८. ६. २. । शोभनः शरीरगंधः पुण्यगंधो वा यस्यासौ सुगंधिः । यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गंधो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गंधो वातीति श्रुतेः । पुष्टिं शरीरधनादिविषयां वर्धयतीति पुष्टिवर्धनः । तादृशं त्र्यंबकं यजामहे । पूजयामः । लोके यथोर्वारुकफलानि बंधनाद्वृंतात्स्वयमेव मुच्यंते तद्वदहं त्र्यंबकप्रसादेन मृत्योर्मुक्षीय । मोचनयुक्तो भूयासं । अमृताच्चिरजीवितात्स्वर्गादेर्वा मा मुक्षीय । चतुर्थपादार्थमंत्रस्य तात्पर्यातिशयं दर्शयति । त्र्यंबकं यजामह इत्याह मृत्योर्मुक्षीय मामृतादिति वावैतदाहेति ॥] ॥३०॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥
व्याख्याय निगमाभिज्ञः पंचमस्य चतुर्थकं। अध्यायं सायणाचार्यः पंचमं व्याकरोत्यथ ॥

तत्र यदद्य सूर्येति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। यदद्य मैत्रावरुणं तु वै सौर्याद्येति। मंडलद्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः। अनुक्तत्वात्त्रिष्टुप् छंदः। तु वा इत्युक्तत्वादेतदादीनि सप्त सूक्तानि मित्रावरुणदेवत्यानि। आद्या सूर्यदेवत्या ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

यद॒द्य सूर्य॒ ब्रवो॑ऽनागा उ॒द्यन्मि॒त्राय॒ वरु॑णाय स॒त्यं।
व॒यं दे॑व॒त्रादि॑ते स्याम॒ तव॑ प्रि॒यासो॑ अर्यमन्गृ॒णंतः॑ ॥१॥
यत्। अ॒द्य। सू॒र्य॒। ब्रवः॑। अ॒नागाः॑। उ॒त्ऽयन्। मि॒त्राय॑। वरु॑णाय। स॒त्यं।
व॒यं। दे॒व॒ऽत्रा। अ॒दि॒ते॒। स्या॒म॒। तव॑। प्रि॒यासः॑। अ॒र्य॒म॒न्। गृ॒णंतः॑ ॥१॥

हे सूर्य सर्वस्य प्रेरकैतन्नामक देव उद्यन्नुदयंस्त्वं यद्यद्यद्यास्मिन्ननुष्ठानकालेऽस्मान्ब्रवः ब्रूयाः। किमिति। अनागा अनागस इति। एतेऽपापा इति यदि देवेषु मध्ये ब्रूयाः तर्हि वयं हे अदिते अदीनदेव देवत्रा देवेषु देवानां मध्ये मित्राय वरुणाय च सत्यमवितथं स्याम। अनागसो भवेम। किंच हे अर्यमन् दातः त्वां गृणंतः स्तुवंतस्तव प्रियासः प्रियाः स्याम। त्वत्प्रेमविषया भवेम। यद्वा। उत्तरार्धं एकं वाक्यं। हे अदिते हे अर्यमन्नुक्तलक्षण देव वयं देवेषु मध्ये त्वां गृणंतस्तवैव प्रियाः स्याम। यदि मां देवेष्वपापं ब्रूयास्तर्हि तैरयमनपराधीत्यनुगृहीतस्त्वां स्तुत्वा तव प्रियो भवेयमित्यर्थः ॥

ए॒ष स्य मि॑त्रावरुणा नृ॒चक्षा॑ उ॒भे उदे॑ति॒ सूर्यो॑ अ॒भि ज्मन्।
विश्व॑स्य स्था॒तुर्जग॑तश्च गो॒पा ऋ॒जु मर्ते॑षु वृ॒जि॒ना च॒ पश्य॑न् ॥२॥
ए॒षः। स्यः। मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒। नृ॒ऽचक्षाः॑। उ॒भे इति॑। उत्। ए॒ति॒। सूर्यः॑। अ॒भि। ज्मन्।
विश्व॑स्य। स्था॒तुः। जग॑तः। च॒। गो॒पाः। ऋ॒जु। मर्ते॑षु। वृ॒जि॒ना। च॒। पश्य॑न् ॥२॥

हे मित्रावरुणा एष पुरतो दृश्यमानः स्य स सर्वैः स्तुत्यत्वेन प्रसिद्धो नृचक्षा नृणां मनुष्याणां द्रष्टा सूर्य उभे द्यावापृथिव्यावभ्यभिलक्ष्योदेति ज्मन्नंतरिक्षे गच्छन्। स विशेष्यते। विश्वस्य सर्वस्य स्थातुः स्थावरस्य जगतो जंगमस्य च गोपा गोपायिता। किं कुर्वन्। मर्तेषु मनुष्येषु स्थितान्यृज्वृजूनि सुकृतानि वृजिनानि पापानि च पश्यन् ॥

अयु॑क्त स॒प्त ह॒रितः॑ स॒धस्था॒द्या ईं॒ वहं॑ति॒ सूर्यं॑ घृ॒ताचीः॑।
धामा॑नि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव॒ जनि॑मानि॒ चष्टे॑ ॥३॥
अयु॑क्त। स॒प्त। ह॒रितः॑। स॒धऽस्था॑त्। याः। ई॒म्। वहं॑ति। सूर्यं॑। घृ॒ताचीः॑।
धामा॑नि। मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒। यु॒वाकुः॑। सं। यः। यू॒थाऽइ॑व। जनि॑मानि। चष्टे॑ ॥३॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ युवयोरागमनाय सधस्थात्सहस्थानादंतरिक्षादंतरिक्षे सप्त सर्पणस्वभावान् तत्संख्याकान्वा हरितो हरिद्वर्णानश्वानयुक्त। युक्तवानयं। हरित आदित्यस्येति हि निरुक्तं। या हरित ईमेनं सूर्यं देवं घृताचीर्घृतांचना उदकवत्यः। उदकप्रदा इत्यर्थः। तादृश्यः सत्यो वहंति ता अयुक्त। अयोदितः

सन्धामानि स्थानानि लोकाञ्जनिमानि जन्मानि। जन्मभाजः प्राणिन इत्यर्थः। तांश्च युवाकुर्युवां कामयमानो यो देवः संचष्टे सम्यक् पश्यति यूथेव गोयूथानीव यूथपाः। स यथा सर्वयूथं तदवांतरगोव्यक्तिं च सम्यक् पश्यति तद्वल्लोकान्प्राणिनश्च पश्यति ॥

उद्वां पृक्षासो मधुमंतो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदंति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४ ॥
उत् । वां । पृक्षासः । मधुऽमंतः । अस्थुः । आ । सूर्यः । अरुहत् । शुक्रं । अर्णः ।
यस्मै । आदित्याः । अध्वनः । रदंति । मित्रः । अर्यमा । वरुणः । सऽजोषाः ॥ ४ ॥

हे मित्रावरुणौ वां युवयोरर्थाय पृक्षासोऽन्नानि चरुपुरोडाशादीनि मधुमंतो माधुर्योपेतानि तत्साधनान्योषध्यादीनि वोदस्थुः। संपादितान्यासन्। सूर्यश्च शुक्रं दीप्तमर्णोऽर्णवमंतरिक्षमारुहत्। आरोहति। यस्मै सूर्याय तन्नमनार्थमादित्या अदितेः पुत्रा देवा अध्वनो मार्गान्रदंति विलिखंति साधयंति। के ते। मित्रोऽर्यमा वरुणश्चैते त्रयोऽपि देवाः सजोषसः समानप्रीतयः संतः। स देव आरुहदिति ॥

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि संति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥
इमे । चेतारः । अनृतस्य । भूरेः । मित्रः । अर्यमा । वरुणः । हि । संति ।
इमे । ऋतस्य । ववृधुः । दुरोणे । शग्मासः । पुत्राः । अदितेः । अदब्धाः ॥ ५ ॥

इमे मित्रोऽर्यमा वरुणश्च त्रयोऽप्यनृतस्य पापस्य भूरेः प्रभूतस्य चेतारो हंतारः संति। भवंति हि। इमे मित्रादय ऋतस्य यज्ञस्य दुरोणे गृहे ववृधुः। वर्धंते हविषा स्तुत्या च। कीदृशास्ते। शग्मासः सुखकरा अदितेः पुत्रा अदब्धा अहिंसिताः ॥

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयंति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतंतस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयंति ॥ ६ ॥
इमे । मित्रः । वरुणः । दुःऽदभासः । अचेतसं । चित् । चितयंति । दक्षैः ।
अपि । क्रतुं । सुऽचेतसं । वतंतः । तिरः । चित् । अंहः । सुऽपथा । नयंति ॥ ६ ॥

इम आदित्या मित्रो वरुणश्च। एतद्द्वयमर्यम्णोऽप्युपलक्षणं। एते दूळभासो दुर्दभा अनभिभाव्या अचेतसं चिदप्रज्ञानमनुष्ठानविषयज्ञानरहितमपि दक्षैः सामर्थ्यैश्चितयंति। अपि सुचेतसं प्रकृष्टज्ञानवंतं पुरुषं क्रतुं कर्तारं कर्मानुष्ठानवंतं वतंतो गच्छंतोऽंहो दुष्कृतं तिरश्चित्तिरो नयंतोऽस्मान्सुपथा शोभनेन मार्गेण नयंति। प्रापयंत्यभिमतं यज्ञं स्वर्गादिकं वा ॥ ॥ १ ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयंति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥
इमे । दिवः । अनिऽमिषा । पृथिव्याः । चिकित्वांसः । अचेतसं । नयंति ।
प्रऽव्राजे । चित् । नद्यः । गाधं । अस्ति । पारं । नः । अस्य । विष्पितस्य । पर्षन् ॥ ७ ॥

इमे मित्रादयो दिवो द्युलोकस्य पृथिव्याश्च संबंधिनोऽनिमिषानिमेषेण सर्वदा चिकित्वांसो जानंतः।

कं । अचेतसमज्ञानं । नयंति । प्रापयंति कर्माणि । प्रव्राजे चित् प्रवणेऽप्यत्यंतनिम्नेऽपि देशे नद्यो नद्या गाधमस्ति । भवति युष्मत्सामर्थ्यात् । ते महांतो नोऽस्माकमस्य विष्पितस्य व्याप्तितस्य कर्मणः पारं पर्षन् । पारयंतु । नयंतु ॥

यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छंति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥८॥
यत् । गोपावत् । अदितिः । शर्म । भद्रं । मित्रः । यच्छंति । वरुणः । सुऽदासे ।
तस्मिन् । आ । तोकं । तनयं । दधानाः । मा । कर्म । देवऽहेळनं । तुरासः ॥८॥

यच्छर्म सुखं गृहं वा गोपावद्रक्षणोपेतं भद्रं स्तुत्यमदितिरदीनोऽर्यमादितिर्वा मित्रो वरुणश्चेति त्रयो देवाः सुदासे सुदानाय मह्यं यच्छंति प्रयच्छंति तस्मिञ्छर्मणि तोकं पुत्रं तनयं तत्पुत्रादिकं । अथवा तनयशब्दोऽपत्यसामान्यवचनः । तोकं बलवंतं पुत्रमा सर्वतो दधाना धारयंतो वयं हे तुरासो गमनाय त्वरमाणाः देवहेळनं देवानां मित्रादीनां कोपनं मा कर्म । मा कार्ष्म ॥

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकं ॥९॥
अव । वेदिं । होत्राभिः । यजेत । रिपः । काः । चित् । वरुणऽध्रुतः । सः ।
परि । द्वेषःऽभिः । अर्यमा । वृणक्तु । उरुं । सुऽदासे । वृषणौ । ऊं इति । लोकं ॥९॥

हे मित्रादयः सोऽस्मद्वेषी वेदिं यागसाधनं होत्राभिः । वाङ्नामैतत् । वाग्रूपाभिः स्तुतिभिः सार्धमव यजेत । वेद्यां कर्माणि कुर्वन्देवान्न स्तुयादित्यर्थः । अवपूर्वो यजतिस्त्यागार्थः । स किं प्राप्नुयादिति तत्राह । वरुणध्रुतो वरुणेन त्वया हिंसितः स काश्चिद्रिपो हिंसाः प्राप्नुयादिति शेषः । अस्मांस्त्वर्यमा देवो द्वेषोभिर्द्वेष्टृभी रक्षःप्रभृतिभिः परि वृणक्तु । वर्जयतु । उरुं विस्तीर्णं लोकं स्थानं सुदासे शोभनदानाय मह्यं प्रयच्छतं हे वृषणा वर्षकौ कामानां मित्रावरुणौ ॥

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहंते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥
सस्वरिति । चित् । हि । संऽऋतिः । त्वेषी । एषां । अपीच्येन । सहसा । सहंते ।
युष्मत् । भिया । वृषणः । रेजमानाः । दक्षस्य । चित् । महिना । मृळत । नः ॥१०॥

एषां मित्रादीनां समृतिः संगतिः संहतिर्वा सस्वरंतर्हिता निगूढा त्वेषी दीप्ता च भवति । तादृशा एतेऽपीच्येन । एतदप्यंतर्हितनाम । निगूढेन सहसा बलेन सहंते । अभिभवंत्यस्मद्द्विष्टॄन् । किंच हे वृषणोऽभिमतवर्षका मित्रादयः युष्मद्युष्मत्तो भिया भीत्या रेजमानाः कंपमाना भवंति विरोधिनः । यस्मादेवं तस्माद्दक्षस्य युष्माकं बलस्य महिना महिम्ना महत्त्वेन नोऽस्मभ्यं मृळत । उपदयां कुरुत ॥

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षंत मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११॥
यः । ब्रह्मणे । सुऽमतिं । आऽयजाते । वाजस्य । सातौ । परमस्य । रायः ।
सीक्षंत । मन्युं । मघऽवानः । अर्यः । उरु । क्षयाय । चक्रिरे । सुऽधातु ॥११॥

यो यजमानो ब्रह्मणे परिवृढस्तकर्मणे युष्मत्स्तोत्ररूपाय सुमतिं शोभनां बुद्धिमायजाति आयजते। यजतिरत्र दाने। ददाति करोति। किमर्थं। वाजस्यान्नस्य सातौ दाने निमित्ते परमस्योत्कृष्टस्य रायो धनस्य च सातौ। तस्यार्थः। ईरयति स्तुतीः प्रेरयतीत्यरिः स्तोता। मन्युं स्तोत्रं मघवानो दानवंतोऽर्यमादयः सीषंत। सचंते। सेवित्वा च तस्योरुक्षयाय विस्तीर्णनिवासाय सुधातु सुधाम शोभनस्थानं चक्रिरे। कुर्वते॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥
इयं। देवा। पुरःऽहितिः। युवऽभ्यां। यज्ञेषु। मित्रावरुणौ। अकारि।
विश्वानि। दुःऽगा। पिपृतं। तिरः। नः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥१२॥

अनया स्तुतिमुपसंहरति। हे देवा देवौ मित्रावरुणौ युवभ्यां युवाभ्यां यज्ञेष्वियं पुरोहितिः पुरस्क्रिया पूजा स्तुतिलक्षणाकारि। कृताभूत्। तां सेवित्वा विश्वानि सर्वाणि दुर्गा दुःखेन गंतव्यान्यापदस्तिरः। तिरस्कुरुतं। तथा कृत्वा नोऽस्मान्पिपृतं। पारयतं। शिष्टो गतः॥ ॥२॥

उद्वां चक्षुरिति सप्तर्चं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं मैत्रावरुणं। उद्वां सप्तेत्यनुक्रमणिका॥ विनियोगो लैंगिकः॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१॥
उत्। वां। चक्षुः। वरुणा। सुऽप्रतीकं। देवयोः। एति। सूर्यः। ततन्वान्।
अभि। यः। विश्वा। भुवनानि। चष्टे। सः। मन्युं। मर्त्येषु। आ। चिकेत ॥१॥

हे वरुणा मित्रावरुणौ देवयोर्द्योतमानयोर्वां युवयोश्चक्षुः प्रकाशकं तेजः सुप्रतीकं शोभनरूपमेवंरूपः सूर्यस्ततन्वांस्तेजो विस्तारयन्नुदेति। उद्गच्छति। अथोदितो यो देवो विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्यभि चष्टे अभिपश्यति स देवो मर्त्येषु प्रवृत्तं मन्युं स्तोत्रं कर्म वा चिकेत। आजानाति॥

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥
प्र। वां। सः। मित्रावरुणौ। ऋतऽवा। विप्रः। मन्मानि। दीर्घऽश्रुत्। इयर्ति।
यस्य। ब्रह्माणि। सुक्रतू इति सुऽक्रतू। अवाथः। आ। यत्। क्रत्वा। न। शरदः।
पृणैथे इति ॥२॥

हे मित्रावरुणौ वां युवयोर्मन्मानि मननीयानि स्तोत्राणि स प्रसिद्धो विप्रो मेधाव्यृतावा यज्ञवान् दीर्घश्रुच्चिरकालं श्रोता एवमुक्तलक्षणो वसिष्ठ इयर्ति। प्रेरयति। यस्यर्षेर्ब्रह्माणि परिवृढानि स्तोत्राणि हे सुक्रतू शोभनकर्माणौ अवाथः रक्षथः। यत्कर्म शरदो बह्वन् संवत्सराना पृणैथे आपूरयेथे स उदियर्ति॥

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद्बृहतः सुदानू।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

प्र। उरोः। मित्रावरुणा। पृथिव्याः। प्र। दिवः। ऋष्वात्। बृहतः। सुदानू इति सुऽदानू। स्पशः। दधाथे इति। ओषधीषु। विक्षु। ऋधक्। यतः। अनिऽमिषं। रक्षमाणा ॥ ३॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ युवामुरोर्विस्तीर्णायाः पृथिव्या अपि प्र। प्ररिरिचाथे। अस्येदेव प्र रिरिचे। ऋ० १. ६१. ९.। इत्यादिषु प्रशब्दस्य रिरिच इत्यनेन सह संबंधदर्शनादत्राप्युचितक्रियाध्याहारेण रिरिच इति योज्यं। तथर्ष्वाद्दर्शनीर्महतो बृहतः स्वरूपतोऽतिमहतो दिवो द्युलोकादपि प्र रिरिचाथे हे सुदानू शोभनदानौ। किंचौषधीषु विक्षु प्रजासु निमित्तभूतासु प्रजासु चेति वा स्पशो रूपं दधाथे। धारयेथे। किं कुर्वंतौ। ऋधग्यत ऋधक्सत्येन यतो विवेकात् सत्येन गच्छतो जनाननिमिषमव्यवधानेन सर्वदा रक्षमाणा पालयंतौ ॥

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४॥
शंस। मित्रस्य। वरुणस्य। धाम। शुष्मः। रोदसी इति। बद्बधे। महिऽत्वा।
अयन्। मासाः। अयज्वनां। अवीराः। प्र। यज्ञऽमन्मा। वृजनं। तिराते ॥ ४॥

हे ऋषे मित्रस्य वरुणस्य च धाम तेजःस्थानं शंस। स्तुहि। ययोर्देवयोः शुष्मो बलं रोदसी द्यावापृथिव्यौ सह वर्तमाने महित्वा स्वमहत्त्वेन बद्बधे बध्नाति पृथक्स्थापयति इयं पृथिवीयं द्यौरिति पृथक्करोति। द्यावापृथिवी सहास्तामिति श्रुतेः। अयज्वनामननुष्ठातॄणां मासाः कालावयवा अवीरा अपुत्रा एवायन्। यंतु। गच्छंतु। तद्विपरीतो यज्ञमन्मा यज्ञार्थं मतिमान्यज्वा वृजनं बलं प्र तिराते। प्रवर्धयतु। प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः ॥

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षं।
द्रुहः सचंते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥ ५॥
अमूरा। विश्वा। वृषणौ। इमाः। वां। न। यासु। चित्रं। ददृशे। न। यक्षं।
द्रुहः। सचंते। अनृता। जनानां। न। वां। निण्यानि। अचिते। अभूवन् ॥ ५॥

हे अमूरामूढौ हे विश्वा व्याप्तौ हे वृषणौ वर्षितारौ वां युवाभ्यामिमा इमानि स्तुतिवचांसि क्रियंते। यासु स्तुतिषु चित्रमाश्चर्यं न ददृशे न दृश्यते न यक्षं न पूजा दृश्यते। युवाभ्यां महिम्नोऽपि महत्त्वात् प्रयत्नेन क्रियमाणमपि स्तोत्रं न चमत्करोतीत्यर्थः। जनानामनृतास्तुत्यविषयाणि स्तोत्राणि द्रुहो द्रोग्धारः सचंते। सेवंते। न महांतः। वां युवाभ्यां क्रियमाणानि निण्यान्यंतर्हितानि रहस्यान्यपि स्तोत्राण्यचितेऽज्ञानाय नाभूवन्। न भवंति ॥

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६॥
सं। ऊं इति। वां। यज्ञं। महयं। नमःऽभिः। हुवे। वां। मित्रावरुणा। सऽबाधः।
प्र। वां। मन्मानि। ऋचसे। नवानि। कृतानि। ब्रह्म। जुजुषन्। इमानि ॥ ६॥

हे मित्रावरुणौ वां युवयोर्यज्ञं नमोभिर्नमस्कारैः स्तुतिभिः समु महयं। संपूजयाम्यहं। तदर्थं हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वां सबाधो बाधायुक्तोऽहं हुवे। आह्वयामि बाधापरिहाराय। वां युवामृचसे सेवितुं

नवानि नूतनानि स्तुत्यानि वा मन्मानि स्तोत्राणि प्र भवंत्वित्यध्याहारः। कृतानि मया समूहीकृतानीमानीदानीं क्रियमाणानि ब्रह्म परिवृढानि स्तोत्राणि युवां जुजुषन्। प्रीणयंतु ॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
इयं। देवा। पुरःऽहितिः। युवऽभ्यां। यज्ञेषु। मित्रावरुणौ। अकारि।
विश्वानि। दुःऽगा। पिपृतं। तिरः। नः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥७॥

इयं देवेति सप्तमी गता ॥ ॥३॥

उत्सूर्य इति षडृचं सप्तमं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। उत्सूर्यः षळाद्यास्तिस्रः सौर्य इति। वसिष्ठ ऋषिः। त्रिष्टुप् छंदः। आद्यास्तिस्रः सूर्यदेवत्याः शिष्टा मित्रावरुणदेवत्याः ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणां।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥
उत्। सूर्यः। बृहत्। अर्चींषि। अश्रेत्। पुरु। विश्वा। जनिम। मानुषाणां।
समः। दिवा। ददृशे। रोचमानः। क्रत्वा। कृतः। सुऽकृतः। कर्तृऽभिः। भूत् ॥१॥

सूर्यः सर्वस्य प्रेरको देवो बृहदत्यधिकं पुरु पुरूणि बहून्यर्चींषि तेजांस्युदश्रेत्। ऊर्ध्वं श्रयति। किं प्रति। मानुषाणां मनुष्याणां विश्वा सर्वाणि जनिम जनिमानि जनान्। जनशब्दः संघवचनः। तान्प्रत्युदश्रेत्। स देवो दिवाहनि रोचमानः सन् समो ददृशे। एकरूपः प्रतिनियतः सन्दृश्यते। तस्मात्पुरुषं पुरुषं प्रत्यादित्यो भवतीति हि श्रुतिः। स देवः क्रत्वा सर्वस्य कर्ता कृतः संपादितः प्रजापतिना कर्तृभिः स्तुतिकर्तृभिः सुकृतः स्तुत्या तीक्ष्णीकृतो भूत्। भवति ॥

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥२॥
सः। सूर्य। प्रति। पुरः। नः। उत्। गाः। एभिः। स्तोमेभिः। एतशेभिः। एवैः।
प्र। नः। मित्राय। वरुणाय। वोचः। अनागसः। अर्यम्णे। अग्नये। च ॥२॥

हे सूर्य स प्रसिद्धस्त्वं नोऽस्मान्प्रति पुरः पुरस्तादुद्गाः। उद्गच्छ। कैः साधनैः। एभिः स्तोमेभिः स्तोमैः स्तुत्यैरेतशेभिरेतवर्णैः ॥ स्वार्थिकः शकारः या जरंता युवशा ता। ऋ० १.१६१.७.। पुरुषः कृष्णशवास्युत्तरतः। ऐ० ब्रा० ५.१४.। इत्यादिवत् ॥ तादृशैरेवैर्गमनशीलैरश्वैरुद्गाः। अथ तथा कृत्वास्माभिः स्तुतः सन्नोऽस्माननागसोऽपापान्प्र वोचः। केभ्यः। मित्राय वरुणायार्यम्णेऽग्नये च। अत्र सौर्य इतरेषां मित्रादीनां संकीर्तनं तेषामपि निपातभाक्त्वादविरुद्धं। एवं पूर्वत्रोत्तरत्र च मैत्रावरुणेऽर्यमादीनां संकीर्तनमपि न विरुध्यते ॥

वि नः सहस्रं शुरुधो रदंत्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छंतु चंद्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरंतु स्तवानाः ॥३॥
वि। नः। सहस्रं। शुरुधः। रदंतु। ऋतऽवानः। वरुणः। मित्रः। अग्निः।
यच्छंतु। चंद्राः। उपऽमं। नः। अर्कं। आ। नः। कामं। पूपुरंतु। स्तवानाः ॥३॥

नोऽस्मभ्यं शुरुधः शुचेर्दुःखस्य प्रतिरोद्धार ऋतावानः सत्यवंतो वरुणादयः सहस्रं सहस्रसंख्याकं धनं वि रदंतु। वितरंतु। अथवा शुरुध उक्तलक्षणाः सहस्रसंख्याका ओषधी रदंतु। किंच ते चंद्रा आह्लादकारिणो ऽस्मभ्यमुपमं स्तुत्यमर्कमर्चनीयं यच्छंतु। किंच त्वया त्वाना अस्माभिः स्तूयमाना नोऽस्माकं काममपेक्षितं पुपुरंतु। पूरयंतु। हे सूर्य त्वयानुज्ञाता इति सूर्यस्य स्तुतिः॥

द्यावा॑भूमी॒ अदि॑ते॒ त्रासी॑थां नो॒ ये वां॑ ज॒ज्ञुः सु॒जनि॑मान ऋष्वे।
मा हेळे॑ भूम॒ वरु॑णस्य वा॒योर्मा मि॒त्रस्य॑ प्रि॒यत॑मस्य नृ॒णां॥४॥
द्यावा॑भूमी॒ इति॑। अदि॑ते। त्रासी॑थां। नः॒। ये। वां॑। ज॒ज्ञुः। सु॒ऽजनि॑मानः। ऋ॒ष्वे॒ इति॑।
मा। हेळे॑। भू॒म॒। वरु॑णस्य। वा॒योः। मा। मि॒त्रस्य॑। प्रि॒यऽत॑मस्य। नृ॒णां॥४॥

हे द्यावाभूमी द्यावापृथिव्यौ हे अदितेऽखंडनीये। एतद्द्यावाभूम्योरेवैकवचनेन संबोधनं। हे ऋष्वे। महन्नामैतत्। हे महत्यौ नोऽस्मांस्त्रासीथां। रक्षतं। ये वयं सुजनिमानः शोभनजन्मानो वां युवां जज्ञुः ज्ञातवंतः स्म। किंच वयं वरुणस्य हेळे क्रोधे मा भूम। तथा वायोर्मा भूम। तथा नृणां स्तुतिनेतॄणां मनुष्याणां प्रियतमस्य मित्रस्य हेळे मा भूम॥

प्र बाहवेति पंचमी मैत्रावरुणे पशौ पशुपुरोडाशस्य याज्या। सूत्रितं च। प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नो यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू। आ॰ ३. ८.। इति॥

प्र बा॒हवा॑ सिसृतं जी॒वसे॑ न॒ आ नो॒ गव्यू॑तिमुक्षतं घृ॒तेन॑।
आ नो॒ जने॑ श्रवयतं युवाना श्रु॒तं मे॑ मित्रावरुणा॒ हवे॒मा॥५॥
प्र। बा॒हवा॑। सि॒सृ॒तं॒। जी॒वसे॑। नः॒। आ। नः॒। गव्यू॑तिं। उ॒क्ष॒तं॒। घृ॒तेन॑।
आ। नः॒। जने॑। श्र॒वय॒तं॒। यु॒वा॒ना॒। श्रु॒तं। मे॒। मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒। हवा॑। इ॒मा॥५॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ देवौ बाहवा युवाभ्यां बाहू प्र सिसृतं। प्रसारयतं हविःस्वीकाराय धनप्रदानाय वा। किमर्थमिति। नो जीवसेऽस्माकं जीवनाय। किंच नोऽस्माकं गव्यूतिं। गावो यंति गच्छंत्यत्रेति गव्यूतिर्गोमार्गभूमिः। तां तृणादिप्ररोहाय घृतेनोदकेना समंतादुक्षतं। सिंचतं। किंच नोऽस्माञ्जनेऽस्मत्समाने मनुष्यसमूहे वा नोऽस्माञ्छ्रवयतं। विश्रुतं कुरुतं। हे युवाना नित्ययौवनौ सर्वत्र व्याप्तौ वा युवां मे ममेमानि हवाह्वानानि श्रुतं। शृणुतं॥

नू मि॒त्रो वरु॑णो अ॒र्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधंतु।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि संतु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥६॥
नु। मि॒त्रः। वरु॑णः। अ॒र्य॒मा। नः॒। त्मने॑। तो॒काय॑। वरि॑वः। द॒धं॒तु॒।
सु॒ऽगा। नः॒। विश्वा॑। सु॒ऽपथा॑नि। सं॒तु॒। यू॒यं। पा॒त॒। स्व॒स्तिऽभिः॑। सदा॑। नः॒॥६॥

मित्रो वरुणोऽर्यमा चैते त्रयो देवा न्वद्य नोऽस्माकं त्मन आत्मन आत्महिताय तोकाय पुत्राय च वरिवो धनं दधंतु। प्रयच्छंतु। नोऽस्माकं विश्वा सर्वाणि गंतव्यानि सुगा सुगमनानि सुपथानि च संतु। भवंतु। शिष्टं गतं॥ ॥४॥

उद्वेतीति षडृचमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं। आद्यास्तिस्रः पंचम्याः पूर्वार्धश्च सूर्यदेवत्या अवशिष्टास्त्रयो ऽर्धर्चो मित्रावरुणदेवत्याः। तथा चानुक्रांतं। उद्वेतीति चार्धपंचमा इति॥ विनियोगो लैंगिकः॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणां ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥१॥
उत् । ऊं इति । एति । सुऽभगः । विश्वऽचक्षाः । साधारणः । सूर्यः । मानुषाणां ।
चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । देवः । चर्मऽइव । यः । संऽअविव्यक् । तमांसि ॥१॥

उद्वेति उद्गच्छत्ययं सूर्यः सुभगः शोभनभाग्यः सुष्ठु भजनीयो वा विश्वचक्षाः सर्वस्य द्रष्टा मानुषाणां सर्वेषां मनुष्याणां साधारणः । साधारणत्वप्रतिपादकश्रुतिः पूर्वमुदाहृता । मित्रस्य वरुणस्य च चक्षुः प्रकाशको देवो द्योतमानः । यो देवश्चर्मेव चर्माणीव तमांसि समविव्यक् सह विचति संवेष्टयति स महानुभावो देव उद्वेति ॥

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥२॥
उत् । ऊं इति । एति । प्रऽसविता । जनानां । महान् । केतुः । अर्णवः । सूर्यस्य ।
समानं । चक्रं । परिऽआविवृत्सन् । यत् । एतशः । वहति । धूःऽसु । युक्तः ॥२॥

अयं सूर्यस्य सूर्यः ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ उद्वेति । उद्गच्छति । कीदृशोऽयं । जनानां सर्वेषां प्रसविता सर्वेषु कर्मस्वनुज्ञाता महान् पूज्यः केतुः सर्वस्य प्रज्ञापकोऽर्णव उदकप्रदः । किं कुर्वन्नुदेतीति उच्यते । समानं सर्वेषामेकरूपमेकमेव चक्रं रथांगं चरणशीलं रथं वा पर्याविवृत्सन् पर्यावर्तयितुमिच्छन् । यद्रथचक्रं धूर्षु रथस्य युक्त एतश एतशवर्णो हरितवर्णोऽश्वो वहति । एको अश्वो वहति सप्तनामा । ऋ॰ १. १६४. २. । इत्युक्तं ॥

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छंद यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३॥
विऽभ्राजमानः । उषसां । उपऽस्थात् । रेभैः । उत् । एति । अनुऽमद्यमानः ।
एषः । मे । देवः । सविता । चच्छंद । यः । समानं । न । प्रऽमिनाति । धाम ॥३॥

अयं सूर्यो विभ्राजमानो विशेषेण दीप्यमान उषसामुपस्थादुपस्थे मध्ये रेभैः स्तोतृभिरनुमद्यमानः सन्नुदेति । किंचैष देवो द्योतमानः सविता मे मह्यं चच्छंद । उपच्छंदयति कामान् । एष इत्युक्तं क इति । यो देवः समानं सर्वेषां प्राणिनामेकरूपं धाम स्वीयं तेजःस्थानं न प्रमिनाति न हिनस्ति न संकोचयति स देव उदेतीति ॥

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥४॥
दिवः । रुक्मः । उरुऽचक्षाः । उत् । एति । दूरेऽअर्थः । तरणिः । भ्राजमानः ।
नूनं । जनाः । सूर्येण । प्रऽसूताः । अयन् । अर्थानि । कृणवन् । अपांसि ॥४॥

अयं सूर्यो रुक्मो रोचमान उरुचक्षाः प्रभूततेजाश्च सन्दिवोऽन्तरिक्षादुदेति । यद्वा । दिवोऽन्तरिक्षस्य रुक्म आभरणस्थानीयः । कीदृशोऽयं । दूरेअर्थो दूरेगंता ॥ अर्थोऽर्तेः ॥ दूरे प्रार्थ्यमानो वा । तरणिस्तारको भ्राजमानो दीप्यमानः सन्नुदेति । नूनं निश्चयं जनाः सर्वे प्राणिनः सूर्येण प्रेरकेण देवेन प्रसूता अनुज्ञाताः प्रेरिताः संतोऽर्थानि गंतव्यान्यनुष्ठेयान्यपांसि कर्माणि कृणवन् । कुर्वंति ॥

यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥५॥
यत्र । चक्रुः । अमृताः । गातुं । अस्मै । श्येनः । न । दीयन् । अनु । एति । पाथः ।
प्रति । वां । सूरे । उत्ऽइते । विधेम । नमःऽभिः । मित्रावरुणा । उत । हव्यैः ॥५॥

यत्र यस्मिन्नंतरिक्षेऽमृता अमरणधर्माणः पूर्वे देवा अस्मै सूर्याय गातुं मार्गं चक्रुः अकुर्वन् तत्पाथोऽंतरिक्षमन्वेति । अनुगच्छति । क इव । दीयन् गच्छञ्छ्येनो न शंसनीयगमनो गृध्र इव । अयमर्धर्चः सौर्य इत्युक्तं । हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वां युवां सूरे सूर्य उदिते सति प्रातःसवने नमोभिर्नमस्कारैः स्तुतिभिरुतापि च हव्यैर्हविर्भिश्च प्रति विधेम । परिचरेम ॥

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधंतु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि संतु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
नु । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । नः । त्मने । तोकाय । वरिवः । दधंतु ।
सुऽगा । नः । विश्वा । सुऽपथानि । संतु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

नू मित्र इति षष्ठी गता ॥ ॥५॥

दिवि क्षयंतेति पंचर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं मैत्रावरुणं । दिवि पंचेत्यनुक्रमणिका ॥ तृतीये छंदोमे प्रउगशस्त्र आद्यस्तृचो मैत्रावरुणस्य । सूत्रितं च । दिवि क्षयंता रजसः पृथिव्यामा विश्ववाराश्विना गतं नः । आ० ८. ११. । इति ॥

दिवि क्षयंता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषंत ॥१॥
दिवि । क्षयंता । रजसः । पृथिव्यां । प्र । वां । घृतस्य । निःऽनिजः । ददीरन् ।
हव्यं । नः । मित्रः । अर्यमा । सुऽजातः । राजा । सुऽक्षत्रः । वरुणः । जुषंत ॥१॥

दिवि द्युलोकेऽंतरिक्षे पृथिव्यां च वर्तमानस्य रजस उदकस्य क्षयंता । क्षयतिरैश्वर्यकर्मा । स्वामिनौ भवथः । हे मित्रावरुणौ वां युवाभ्यां प्रेरिता मेघा घृतस्य निर्णिज उदकस्य रूपाणि ददीरन् । ददते । प्रयच्छंति । अथवा वां युवाभ्यां घृतस्य निर्णिजो रूपाणि । घृतानीत्यर्थः । तानि ददीरन् । दीयंते । नोऽस्माकं संबंधि हव्यं मित्रः सुजातः सुष्ठु प्रादुर्भूतोऽर्यमा राजा सर्वस्य स्वामी सुक्षत्रः शोभनबलो वरुणश्चैते जुषंत । सेवंतां ॥

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिंधुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥२॥
आ । राजाना । महः । ऋतस्य । गोपा । सिंधुपती इति सिंधुऽपती । क्षत्रिया ।
यातं । अर्वाक् ।
इळां । नः । मित्रावरुणा । उत । वृष्टिं । अव । दिवः । इन्वतं । जीरदानू इति
जीरऽदानू ॥२॥

हे राजाना सर्वस्य स्वामिनौ हे महो महत ऋतस्योदकस्य यज्ञस्य गोपा गोपायितारौ ॥ सुबामंत्रिते परांगवत्स्वर इति परांगवद्भावात् षष्ठ्यामंत्रितसमुदायस्य निघातत्वं ॥ हे सिंधुपती नद्याः पालयितारौ हे क्षत्रिया बलवंतौ युवामर्वागस्मदभिमुखमा यातं । आगच्छतं । किंच हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ हे जीरदानू क्षिप्रदानौ युवां नोऽस्मभ्यमिळामन्नमुतापि च पुष्टिं तत्साधिकां वृष्टिं च दिवोऽंतरिक्षाद्द्यावस्मादिन्वतं । प्रेरयतं ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयंतु ।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥३॥
मित्रः । तत् । नः । वरुणः । देवः । अर्यः । प्र । साधिष्ठेभिः । पथिऽभिः । नयंतु ।
ब्रवत् । यथा । नः । आत् । अरिः । सुऽदासे । इषा । मदेम । सह । देवऽगोपाः ॥३॥

मित्रो वरुणो देवोऽर्योऽर्यमा चैते त्रयोऽपि नोऽस्मांस्तत्तदा यदास्माकमपेक्षितं तदा साधिष्ठेभिः साधकतमैः पथिभिर्मार्गैर्नयंतु । प्रापयंतु । किंच नोऽस्मान् सुदासे शोभनदानाय जनायारिरर्यमा यथा ब्रवत् असावनुकंप्य इति ब्रूयात् तथा कुर्वंतु । अर्यम्णः पुनरभिधानमादरार्थं । देवगोपा देवा यूयं गोपायितारो येषामस्माकं ते वयमिषा युष्माभिर्दातव्येनान्नेन सह पुत्रादिसहिता मदेम । हृष्येम ॥

यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथां ॥४॥
यः । वां । गर्तं । मनसा । तक्षत् । एतं । ऊर्ध्वां । धीतिं । कृणवत् । धारयत् । च ।
उक्षेथां । मित्रावरुणा । घृतेन । ता । राजाना । सुऽक्षितीः । तर्पयेथां ॥४॥

हे मित्रावरुणौ यो वां युवयोरेतं गर्तं रथं मनसा तक्षत् स्तोमेन संकल्पयेत् तथा कृत्वोर्ध्वामुन्नतां धीतिं कर्म स्तुतिरूपं कृणवत् कुर्यात् उच्चैः स्तुयात् एवं कृत्वा धारयच्च यागे धारयेत् हे राजाना स्वामिनौ मित्रावरुणा मित्रावरुणौ ता तौ युवां जनं घृतेनोदकेनोक्षेथां । सिंचतं । तस्मै सुक्षितीः शोभननिवासाः प्रजाः तर्पयेथां । यथा सुक्षितयो भवंति तथा तर्पयेथामिति ॥

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
एषः । स्तोमः । वरुण । मित्र । तुभ्यं । सोमः । शुक्रः । न । वायवे । अयामि ।
अविष्टं । धियः । जिगृतं । पुरंऽधीः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

अनया स्तुतिमुपसंहरति । हे वरुण हे मित्र तुभ्यं युवयोर्वायवे । वायुर्गतादित्यः । स एवार्यमा । तस्मै चैष स्तोमः स्तवोऽयामि । अकारि । किमिव । शुक्रो दीप्तः सोमो न युष्मभ्यं प्रीतिकरः सोमो यथा दीयते तद्वत् । धियः कर्माण्यस्मदीयान्यविष्टं । रक्षतं । पुरंधीः स्तुतीर्जिगृतं । प्रबुध्यतं । अन्यद्गतं ॥ ॥६॥

प्रति वां सूर इति पंचर्चं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं मैत्रावरुणं । प्रति वामित्यनुक्रांतं ॥ द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्रेऽप्येष तृचः । सूत्रितं च । प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्धेनुः प्रत्नस्य । आ॰ ८. १०. । इति ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षं ।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥१॥

प्रति॑ । वा॒म् । सूरे॑ । उत्ऽइ॑ते । सु॒ऽउ॒क्तैः । मि॒त्रम् । हु॒वे॒ । वरु॑णम् । पू॒तऽद॑क्षम् ।
ययोः॑ । अ॒सु॒र्य॑म् । अक्षि॑तम् । ज्येष्ठ॑म् । विश्व॑स्य । याम॑न् । आ॒ऽचिता॑ । जि॒ग॒त्नु ॥ १ ॥

सूरे सूर्य उदिते प्रातःसवने मित्रं पूतदक्षं शुद्धबलं वरुणं वां सूक्तैर्हुवे । आह्वये । ययोर्मित्रावरुणयोरक्षितमक्षीणमत एव ज्येष्ठमसुर्यं बलमाचिताचित उपचिते शूरसंघैरुपेते यामन् यामनि संग्रामे विश्वस्य शत्रुसंघस्य जिगत्नु जेतृ भवति ॥

ता हि दे॒वाना॒मसु॑रा॒ ताव॒र्या ता नः॑ क्षि॒तीः क॑रतमू॒र्जय॑न्तीः ।
अ॒श्याम॑ मित्रावरुणा व॒यं वां॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ पी॒पय॒न्नहा॑ च ॥ २ ॥
ता । हि । दे॒वाना॑म् । असु॑रा । तौ । अ॒र्या । ता । नः॒ । क्षि॒तीः । क॒र॒त॒म् । ऊ॒र्जय॑न्तीः ।
अ॒श्याम॑ । मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒ । व॒यम् । वा॒म् । द्यावा॑ । च॒ । यत्र॑ । पी॒पय॑न् । अहा॑ । च॒ ॥ २ ॥

ता हि तौ खलु देवौ देवानां मध्येऽसुरा बलवंतौ । अर्यार्यौ तौ सर्वस्येश्वरौ । ता तौ नोऽस्माकं क्षितीः पुत्रादिरूपाः प्रजा ऊर्जयंतीः प्रवृद्धाः करतं । कुरुतं । हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वयं वां युवामश्याम । व्याप्नुयाम । यत्र यस्यां युवयोर्व्याप्तौ द्यावा द्यावापृथिव्यौ । सर्वदा तयोः सहभावाद्यमर्थो लभ्यते । अहा च । एतद्रात्रिरुपलक्षणं । अहोरात्राणि च पीपयन् अस्मान् प्याययेयुः ॥

ता भूरि॑पाशा॒वनृ॑तस्य॒ सेतू॑ दुर॒त्येतू॑ रि॒पवे॒ मर्त्या॑य ।
ऋ॒तस्य॑ मित्रावरुणा प॒था वा॑म॒पो न ना॒वा दु॑रि॒ता त॑रेम ॥ ३ ॥
ता । भूरि॑ऽपाशौ । अनृ॑तस्य । सेतू॒ इति॑ । दु॒र॒त्येतू॒ इति॑ दुः॒ऽअ॒त्येतू॑ । रि॒पवे॑ । मर्त्या॑य ।
ऋ॒तस्य॑ । मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒ । प॒था । वा॒म् । अ॒पः । न । ना॒वा । दुः॒ऽइ॒ता । त॒रे॒म॒ ॥ ३ ॥

ता तौ मित्रावरुणौ भूरिपाशौ प्रभूतबंधनसाधनपाशोपेतावनृतस्य यागरहितस्य सेतू सेतुवद्बंधकौ रिपवे मर्त्याय वैरिजनाय दुरत्येतू दुरतिक्रमौ भवतः । हे मित्रावरुणा तादृशौ मित्रावरुणौ वां युवयोर्ऋतस्य यज्ञस्य युवयोरर्थायानुष्ठीयमानस्य यागस्य पथा मार्गेण दुरिता दुःखानि तरेम नावापो न प्रभूतान्युदकानीव ॥

मैत्रावरुणे पशावा नो मित्रावरुणेत्येषा चतुर्थ्यनुवाक्या । सूत्रितं च । आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे । आ० ३. ८. । इति ॥

आ नो॑ मित्रावरुणा ह॒व्यजु॑ष्टिं घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षत॒मिळा॑भिः ।
प्रति॑ वा॒मत्र॒ वर॒मा जना॑य पृणी॒तमु॒द्नो दि॒व्यस्य॒ चारोः॑ ॥ ४ ॥
आ । नः॒ । मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒ । ह॒व्यऽजु॑ष्टिम् । घृ॒तैः । गव्यू॑तिम् । उ॒क्ष॒त॒म् । इळा॑भिः ।
प्रति॑ । वा॒म् । अत्र॑ । वर॑म् । आ । जना॑य । पृ॒णी॒तम् । उ॒द्नः । दि॒व्यस्य॑ । चारोः॑ ॥ ४ ॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ नोऽस्माकं हव्यजुष्टिं हविःसेवनवंतं यज्ञमा गच्छतमिति शेषः । आगत्य चेळाभिरन्नैः सह घृतैरुदकैर्गव्यूतिमस्मदीयां भूमिमुक्षतं । सिंचतं । वां युवां प्रत्यत्रास्मिँल्लोके वरमुत्कृष्टं हविः स्तोत्रं वा क आ यच्छेदिति शेषः । अतः केवलं कृपयैव दिव्यस्य दिवि भवस्य चारोश्चरणीयस्योद्न उदकस्य ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ उक्तलक्षणमुदकं पृणीतं । प्रयच्छतं ॥

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
एषः । स्तोमः । वरुण । मित्र । तुभ्यं । सोमः । शुक्रः । न । वायवे । अयामि ।
अविष्टं । धियः । जिगृतं । पुरंऽधीः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

एष स्तोम इति पंचमी गता ॥ ॥७॥

प्र मित्रयोरित्येकोनविंशत्यृचमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं । अत्रेयमनुक्रमणिका । प्र मित्रयोरेकोना गायत्रं दशम्याद्यास्त्रयः प्रगाथाः पुरउष्णिक् चतुर्थ्याद्या दशादित्यास्तिस्रः सौर्य इति । दशमी बृहत्येकादशी सतोबृहती द्वादशी बृहती त्रयोदशी सतोबृहती चतुर्दशी बृहती पंचदशी सतोबृहती षोडशी पुरउष्णिक् शिष्टा गायत्र्यः । चतुर्थ्याद्यास्त्रयोदश्यंता आदित्यदेवताश्चतुर्दश्याद्यास्तिस्रः सूर्यदेवत्याः । आद्यंत्यौ तृचौ पूर्ववन्मित्रावरुणौ ॥ अग्निष्टोमे माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणशस्त्र आदितो नवर्चः शस्याः । प्र मित्रयोर्वरुणयोरिति नव ।आ॰ ५. १०.। इति सूत्रितत्वात् ॥ पृष्ठ्याभिप्लवषडहयोः स्तोमवृद्धिनिमित्तमावापार्था आद्याः षडृचः । सूत्रितं च । प्र मित्रयोर्वरुणयोरिति षट् ।आ॰ ७. ५.। इति ॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान्तुविजातयोः ॥१॥
प्र । मित्रयोः । वरुणयोः । स्तोमः । नः । एतु । शूष्यः । नमस्वान् । तुविऽजातयोः ॥१॥

मित्रयोर्वरुणयोः । मित्रावरुणयोरित्यर्थः । उभयत्र प्रतियोगापेक्षया द्विवचनत्वं । तुविजातयोर्बहुप्रादुर्भावयोर्देवयोर्नोऽस्मदीयः शूष्यः सुखकरो नमस्वानन्नवान् हविर्भिर्युक्तः स्तोमः स्तोत्रं प्रैतु । गच्छतु । अहोरात्रं वै मित्रावरुणाविति श्रुतिः । अनयोरहोरात्रापेक्षत्वात्तयोः पुनःपुनरागमनादनयोस्तुविजातत्वं । अथवा बहूनामुपकारायानयोः प्रादुर्भावात्तुविजातत्वं ॥

या धारयंत देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा ॥२॥
या । धारयंत । देवाः । सुऽदक्षा । दक्षऽपितरा । असुर्याय । प्रऽमहसा ॥२॥

या यौ युवां धारयंत । के । देवा आदिकर्तारोऽसुर्याय बलकरणाय । कीदृशौ युवां । सुदक्षा शोभनबलौ दक्षपितरा बलस्य पालकौ स्वामिनौ वा । बलप्रदावित्यर्थः । प्रमहसा प्रकृष्टतेजस्कौ । तौ साधयतमित्युत्तरत्रान्वयः ॥

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणां । मित्र साधयतं धियः ॥३॥
ता । नः । स्तिऽपा । तनूऽपा । वरुण । जरितॄणां । मित्र । साधयतं । धियः ॥३॥

ता तौ स्तिपा । स्त्यायंत इति स्तयो गृहाः । तान्पात इति स्तिपौ । तनूपा तन्वः पातारौ हे वरुण हे मित्र उक्तलक्षणौ युवां जरितॄणां नोऽस्माकं धियः कर्माणि स्तुतिरूपाणि साधयतं । सफलवंति कुरुतं ॥

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥४॥
यत् । अद्य । सूरे । उत्ऽइते । अनागाः । मित्रः । अर्यमा । सुवाति । सविता । भगः ॥४॥

यद्धनमस्माकमपेक्षितं तदद्यास्मिन्काले सूर उदिते सति प्रातःसवनेऽनागाः पापहंता मित्रोऽर्यमा सविता भगश्चैते प्रत्येकं सुवाति । प्रेरयेत् । अथवा । अनागा मित्रोऽर्यमा दाता भवतु । तदीप्सितं धनं भगो भजनीयः सविता सुवाति । प्रेरयतु ॥

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥५॥
सुप्रऽअवीः । अस्तु । सः । क्षयः । प्र । नु । यामन् । सुऽदानवः । ये । नः । अंहः । अतिऽपिप्रति ॥५॥

स क्षयः स निवासः सुप्रावीरस्तु । सुष्ठु प्रकर्षेण रक्षितास्तु । प्रशब्द आदरार्थः । प्रकर्षेण नु क्षिप्रं भवत्विति शेषः । कदेति उच्यते । हे सुदानवः सुदानाः युष्माकं यामन् यामनि गमने सति । कीदृशानां गमने । ये यूयमागत्य नोऽस्माकमंहः पापमतिपिप्रति अतिपारयथ तेषां गमन इति ॥ ॥ ८ ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥६॥
उत । स्वऽराजः । अदितिः । अदब्धस्य । व्रतस्य । ये । महः । राजानः । ईशते ॥६॥

उतापि च ये मित्रादयस्त्रयः स्वराजः सर्वस्य स्वामिनोऽदितिरेषां माता च संति अदब्धस्याहिंसितस्य महो महतो व्रतस्यास्य कर्मणो राजानः स्वामिनः त ईशते । समर्था भवंति । अभिमतं दातुमिति शेषः । अथवैवं योज्यं । ये मित्रादयोऽदितिश्चादब्धस्य व्रतस्य स्वराज ईश्वराः ते महो महतोऽस्मदभिमतधनस्य राजानः स्वामिनः संत ईशतेऽस्मभ्यं तद्दातुं ॥

प्रति वामित्येष तृचश्चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवने मैत्रावरुणस्य पर्यासार्थः । सूत्रितं च । प्रति वां सूर उदिते व्यंतरिक्षमतिरत् । आ० ७. २. । इति ॥

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणं । अर्यमणं रिशादसं ॥७॥
प्रति । वां । सूरे । उत्ऽइते । मित्रं । गृणीषे । वरुणं । अर्यमणं । रिशादसं ॥७॥

हे मित्रावरुणौ मित्रं त्वां वरुणं च युवां रिशादसं शत्रूणामत्तारमर्यमणं च प्रति प्रत्येकं गृणीषे । स्तुवे । कदेति उच्यते । सूरे सूर्ये देव उदिते सति । प्रातरित्यर्थः ॥

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥८॥
राया । हिरण्यऽया । मतिः । इयं । अवृकाय । शवसे । इयं । विप्रा । मेधऽसातये ॥८॥

हिरण्यया हितरमणीयेन राया धनेन सहितायावृकायाहिंस्राय शवसेऽस्माकं बलायेयमिदानीं क्रियमाणा मतिः स्तुतिर्भवत्विति शेषः ॥ हिरण्ययेत्यत्र सुपां सुलुगिति तृतीयैकवचनस्य याजादेशः ॥ किंच हे विप्राः प्राज्ञाः इयं मे च स्तुतिर्मेधसातये यज्ञलाभाय च भवतु ॥

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥९॥
ते । स्याम । देव । वरुण । ते । मित्र । सूरिऽभिः । सह । इषं । स्वरिति स्वः । च । धीमहि ॥९॥

हे देव वरुण ते वयं तव स्तोतारः स्याम । समृद्धा भवेम । न केवलं वयमेव यजमानाः किंतु सूरिभिः स्तोतृभिर्ऋत्विग्भिः सह । तथा हे मित्र देव ते वयं सूरिभिः सह स्याम । भवेम । किंचेषमन्नं स्वरुदकं च धीमहि । धारयामहे ॥

आश्विनशस्त्रे बह्वः सूरचक्षस इति प्रगाथः । सूत्रितं च । बह्वः सूरचक्षस इति प्रगाथाः । आ० ६. ५. । इति ॥ दशरात्रे पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रेऽप्ययं प्रगाथः । सूत्रितं च । बह्वः सूरचक्षस इमा उ वां दिविष्टयः । आ० ७. १२. । इति ॥

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥
बहवः । सूरऽचक्षसः । अग्निऽजिह्वाः । ऋतऽवृधः ।
त्रीणि । ये । येमुः । विदथानि । धीतिऽभिः । विश्वानि । परिभूतिऽभिः ॥१०॥

बहवो महांतः सूरचक्षसः सूर्यसदृशप्रकाशाः । सूरः प्रकाशको येषामिति वा । अग्निजिह्वाः । अग्निरेव जिह्वादनसाधनो येषां तादृशाः । ऋतावृधो यज्ञस्य वर्धयितारो मित्रादयः । किंच ये त्रीणि विश्वानि व्याप्तानि विदथानि क्षित्यादिस्थानानि क्षित्यादीनि परिभूतिभिः परिभावुकैर्धीतिभिः कर्मभिर्येमुः प्रयच्छंति ते क्षत्रमाशतेत्युत्तरत्र संबंधनीयं । अथवात्रैव ये त्रीणि स्थानानि प्रयच्छंति ते बहुत्वादिगुणोपेता आगच्छंत्वित्यध्याहार्यं ॥ ॥९॥

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचं ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥११॥
वि । ये । दधुः । शरदं । मासं । आत् । अहः । यज्ञं । अक्तुं । च । आत् । ऋचं ।
अनाप्यं । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । क्षत्रं । राजानः । आशत ॥११॥

ये मित्रादयः शरदं संवत्सरं वि दधुः अकुर्वन् आदनंतरमेव मासमनंतरमहरनंतरमहःसाध्यं यज्ञं आदनंतरमक्तुं रात्रिं च ऋचं मंत्रांश्च । यद्वा । सर्वत्रादित्ययमपीत्यर्थे वर्तते । तथा सति क्रमोऽविवक्षितः । ते वरुणो मित्रोऽर्यमा च त्रयोऽनाप्यमन्यैरप्राप्तं क्षत्रं बलं राजानो राजमाना आशत । व्याप्तवंतः ॥

तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥१२॥
तत् । वः । अद्य । मनामहे । सुऽउक्तैः । सूरे । उत्ऽइते ।
यत् । ओहते । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । यूयं । ऋतस्य । रथ्यः ॥१२॥

तत्प्रसिद्धमद्यास्मिन्यागकाले वो युष्मान्मनामहे । याचामहे । कैः साधनैः । सूक्तैः । कस्मिन्काले । सूर उदिते । प्रातःकाल इत्यर्थः । यद्धनं हे ऋतस्योदकस्य रथ्यो नेतारः यूयं वरुणादय ओहते । यूयमित्यनेन सामानाधिकरण्यादोहत इत्यत्र पुरुषव्यत्ययः । ओहध्व इत्यर्थः । तद्धनं मनामह इति ॥

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥१३॥
ऋतऽवानः । ऋतऽजाताः । ऋतऽवृधः । घोरासः । अनृतऽद्विषः ।
तेषां । वः । सुम्ने । सुच्छर्दिःऽतमे । नरः । स्याम । ये । च । सूरयः ॥१३॥

ये यूयमृतावान ऋतवंतो यज्ञवंत उदकवंतो वा ऋतजाताः । उक्त ऋतशब्दार्थः । तदर्थमुत्पन्नाः । अथवा । ऋतात्प्रजापतेः सकाशादुत्पन्नाः । ऋतावृध उक्तार्थस्यर्तस्य वर्धयितारो घोरासो घोरा अनृतद्विषोऽयष्टृद्वेष्टारः तेषां वो युष्माकं सुच्छर्दिष्टमे सुखतमे सुम्ने धनेऽत्यंतरमणीयगृहयुक्ते सुखे वा ये वयं ये चान्ये सूरयः स्तोतारः ते सर्वे स्याम । भवेम ॥

सोमातिरेके माध्यंदिनसवने नैमित्तिके शस्त्र उदु त्यदित्ययं प्रगाथोऽनुरूपः। सूचितं च। बरण्महाँ असि सूर्योदु त्यद्दर्शतं वपुरिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ।आ॰ ६.७.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽयमेव वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः। सूत्रितं च। उदु त्यद्दर्शतं वपुरुदु त्ये मधुमत्तमाः।आ॰ ७.४.। इति॥

उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरं॥१४॥
उत्। ऊं इति। त्यत्। दर्शतं। वपुः। दिवः। एति। प्रतिऽह्वरे।
यत्। ईं। आशुः। वहति। देवः। एतशः। विश्वस्मै। चक्षसे। अरं॥१४॥

त्यत्तद्दर्शतं दर्शनीयं वपुर्मंडलं दिवोऽंतरिक्षस्य प्रतिह्वरे समीप उद्वेति। उदेति। उ इति पूरणः। यदीं यदेतन्मंडलमाशुः शीघ्रगाम्येतश एतवर्णोऽश्वो वहति धारयति। किमर्थं। विश्वस्मै सर्वस्मा अरं चक्षसे सम्यक्सर्वलोकदर्शनाय॥

शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहंति हरितो रथे॥१५॥
शीर्ष्णःऽशीर्ष्णः। जगतः। तस्थुषः। पतिं। समया। विश्वं। आ। रजः।
सप्त। स्वसारः। सुविताय। सूर्यं। वहंति। हरितः। रथे॥१५॥

शीर्ष्णः शीर्ष्णः सर्वस्यापि शिरसः। तृतीयार्थे पंचमी। स्वस्वशिरसेत्यर्थः। सूर्यं वहंतीत्यनेन संबध्यते। अथवा शिरःशब्देन तद्वान्पदार्थो लक्ष्यते। वीप्सया तस्य कार्त्स्न्यमुच्यते। सर्वस्य श्रेष्ठमित्यर्थः। जगतो जंगमस्य तस्थुषः स्थावरस्य पतिं स्वामिनं रथे वर्तमानं सूर्यं सुविताय कल्याणाय विश्वं रजः समया सर्वलोकस्य समीपे॥ अभितःपरितःसमयेत्यादिना।म॰ २.३.२.१.। समयाशब्दयोगात् द्वितीया॥ सप्त सप्तसंख्याकाः स्वसारोऽन्यनिरपेक्षेण स्वयमेव सरंत्यो हरितो हरितवर्णा अश्वा वहंति॥ ॥१०॥

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं॥१६॥
तत्। चक्षुः। देवऽहितं। शुक्रं। उत्ऽचरत्। पश्येम। शरदः। शतं। जीवेम।
शरदः। शतं॥१६॥

तत्प्रसिद्धं चक्षुः सर्वस्य प्रकाशकं देवहितं देवानां हितं। तेषां हविःस्वीकारस्यैतदधीनत्वात्। अथवा देवेन हितं। शुक्रं निर्मलं सूर्यमंडलमुच्चरत्। उद्गच्छति। तच्छरदः शतं शतसंवत्सरं पश्येम। जीवेम शरदः शतं। पुनःश्रुतिरादरार्था॥

पृष्ठ्याभिप्लवषडहयोः स्तोमनिमित्त आवापे काव्येभिरदाभ्येति तृचः। काव्येभिरदाभ्येति तिस्रः।आ॰ ७.५.। इति हि सूत्रितं॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये॥१७॥
काव्येभिः। अदाभ्या। आ। यातं। वरुण। द्युऽमत्। मित्रः। च। सोमऽपीतये॥१७॥

हे अदाभ्यादंभनीयौ हे वरुण त्वं मित्रश्च द्युमद्द्युतिमंतौ युवां काव्येभिरस्मत्कृतैः स्तोत्रैरा यातं। किमर्थं। सोमपीतये सोमपानाय॥

दि॒वो धाम॑भिर्वरुण मि॒त्रश्चा या॑तम॒द्रुहा॑ । पिब॑तं॒ सोम॑मातु॒जी ॥१८॥

दि॒वः । धाम॑ऽभिः । व॒रु॒ण॒ । मि॒त्रः । च । आ । या॒तं॒ । अ॒द्रुहा॑ । पिब॑तं । सोम॑ं । आ॒तु॒जी इत्या॑ऽतु॒जी ॥१८॥

हे वरुण त्वं मित्रश्चाद्रुहाद्रोग्धारौ युवां दिवो द्युलोकसंबंधिभ्यो धामभिर्धामभ्यः स्थानेभ्यः । पंचम्यर्थे तृतीया । अथवा धामभिस्तेजोभिर्विभूतिभिः सार्धमा यातं । अस्मद्यज्ञमागच्छतं । आगत्य चातुजी शत्रूणां सर्वतो हिंसकावादातारौ वा धनानां एवंरूपौ संतौ सोमं पिबतं ॥ तुजि पिजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु । अत्र हिंसायामादाने वा वर्तते ॥

आ या॑तं मित्रावरुणा जुषा॒णावाहु॑तिं नरा । पा॒तं सोम॑मृतावृधा ॥१९॥

आ । या॒तं॒ । मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒ । जु॒षा॒णौ । आऽहु॑तिं । न॒रा॒ । पा॒तं । सोम॑ं । ऋ॒त॒ऽवृ॒धा॒ ॥१९॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ हे नरा यागनेतारौ आहुतिं सोमलक्षणां जुषाणौ प्रियमाणौ संतावा यातं । आगच्छतं यज्ञं । आगत्य च हे ऋतावृधा यज्ञस्य वर्धकौ युवां सोमं पातं । पिबतं ॥ ॥११॥

प्रति वां रथमिति दशर्चं द्वादशं सूक्तं । प्रति वां दशाश्विनं तु तदित्यनुक्रमणिका । ऋषिर्वसिष्ठः । छंदस्त्रिष्टुप् । तुह्यादिपरिभाषयैतदादीन्यष्ट सूक्तान्यश्विदेवत्यानि ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ त्रैष्टुभे छंदस्येतदादिसूक्तसप्तकं द्वितीयवर्जं शंस्यं । तथा च सूत्रं । प्रति वां रथमिति सप्तानां द्वितीयमुद्धरेत् । आ॰ ४. १५. । इति ॥

प्रति॑ वां॒ रथं॑ नृपती ज॒रध्यै॑ ह॒विष्म॑ता॒ मन॑सा य॒ज्ञिये॑न ।

यो वां॑ दू॒तो न धि॑ष्ण्या॒वजी॑गर॒च्छा॑ सू॒नुर्न पि॒तरा॑ विवक्मि ॥१॥

प्रति॑ । वा॒ं । रथं॑ । नृ॒प॒ती॒ इति॑ नृऽपती । ज॒रध्यै॑ । ह॒विष्म॑ता । मन॑सा । य॒ज्ञिये॑न ।

यः । वा॒ं । दू॒तः । न । धि॒ष्ण्यौ॒ । अजी॑गः । अच्छ॑ । सू॒नुः । न । पि॒तरा॑ । वि॒व॒क्मि॒ ॥१॥

हे नृपती नृणामृत्विग्यजमानानां स्वामिनावश्विनौ वां युवयो रथं जरध्यै । जरा स्तुतिः । स्तोतुं प्रति गच्छामीति शेषः । केन साधनेनेति तदुच्यते । हविष्मता हविर्युक्तेन यज्ञियेन यज्ञार्हेण मनसा स्तोत्रेण । यो रथो वां हे धिष्ण्यौ धिषणार्हौ । धिषणा स्तुतिः । वां युवां दूतो न दूत इवाजीगः जागरयति प्रबोधयति अस्मान्प्रति गंतुं तं रथमच्छा विवक्मि । आवच्मि । प्रबोधने दृष्टांतः । सूनुर्न पितरा पुत्रो मातापितराविव । अथवात्र यो रथो युवामजीगः तेन रथेन गंतुं बुध्यमानौ युवामच्छा विवक्मीति वा योज्यं ॥

अशो॑च्य॒ग्निः स॑मिधा॒नो अ॒स्मे उपो॑ अदृश्र॒न्तम॑सश्चि॒दंताः॑ ।

अचे॑ति के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑च्छ्रि॒ये दि॒वो दु॑हि॒तुर्जाय॑मानः ॥२॥

अशो॑चि । अ॒ग्निः । स॒म्ऽइ॒धा॒नः । अ॒स्मे इति॑ । उपो॑ इति॑ । अ॒दृ॒श्र॒न् । तम॑सः । चि॒त् । अंताः॑ ।

अचे॑ति । के॒तुः । उ॒षसः॑ । पु॒रस्ता॑त् । श्रि॒ये । दि॒वः । दु॒हि॒तुः । जाय॑मानः ॥२॥

अग्ने अस्माभिः समिधानः समिध्यमानः सन्नग्निरशोचि । दीप्यते । तमसश्चित्तमसोऽप्यंताः पर्यंताः प्रदेशा उपो अदृश्रन् । उपदृश्यंते सर्वैः । केतुः सर्वस्य प्रज्ञापकः सूर्यो दिवो दुहितुरुषसः पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि श्रिये शोभायै जायमानः सन्नचेति । ज्ञायते । यस्मादेवं तस्माद्युवयोरागमनसमयः । अत आगच्छतमिति शेषः ॥

अ॒भि वां॑ नू॒नम॑श्विना॒ सुहो॑ता॒ स्तोमैः॑ सिषक्ति नासत्या विव॒क्वान् ।

पू॒र्वीभि॑र्यातं प॒थ्या॑भिर॒र्वाक्स्व॒र्विदा॑ वसु॑मता॒ रथे॑न ॥३॥

अभि। वां। नूनं। अश्विना। सुऽहोता। स्तोमैः। सिसक्ति। नासत्या। विवक्वान्। पूर्वीभिः। यातं। पथ्याभिः। अर्वाक्। स्वःऽविदा। वसुऽमता। रथेन ॥३॥

हे अश्विना वां युवां सुहोता सुष्ठु देवानां स्तोता विवक्वान् स्तुतीनां वक्ताहं हे नासत्या सत्यभूतौ। इदमश्विनावित्यत्र योज्यं। स्तोमैः सिषक्ति। सेवते। अतोऽर्वागस्मदभिमुखं पूर्वीभिः पथ्याभिः पूर्वत्नुभिर्मार्गैः स्वर्विदा स्वर्गमुदकं वा जानता स्वरणवता वा वसुमता धनवता वा रथेन यातं। गच्छतं॥

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः।
आ वां वहंतु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥४॥

अवोः। वां। नूनं। अश्विना। युवाकुः। हुवे। यत्। वां। सुते। माध्वी इति। वसुऽयुः। आ। वां। वहंतु। स्थविरासः। अश्वाः। पिबाथः। अस्मे इति। सुऽसुता। मधूनि ॥४॥

हे अश्विनाश्विनौ अवो रक्षित्रोर्युवाभ्यां युवाकुर्युवां कामयमानोऽहं नूनमद्य स्वभूतो भवामीति शेषः। यद्यस्मात् हे माध्वी मधुरस्य सोमस्यार्हौ मधुविद्यासंबंधिनौ वा वां युवां सुतेऽभिषुते सोमे वसूयुर्वसुकामो हुवे स्तौमि अतो वां स्वभूतः। वां युवामा वहंतु। के। स्थविरासः स्थूलाः प्रवृद्धा अश्वाः। एतयोरतिप्रवृद्धत्वाच्छीघ्रगतेरपेक्षितत्वाच्च स्थविरैरेव भाव्यं। आगमनानंतरमस्मे अस्माभिः सुषुता सुष्ठभिषुतानि मधूनि मधुररसान् पिबाथः। पिबतं॥

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुं।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥५॥

प्राचीं। ऊं इति। देवा। अश्विना। धियं। मे। अमृध्रां। सातये। कृतं। वसुऽयुं। विश्वाः। अविष्टं। वाजे। आ। पुरंऽधीः। ता। नः। शक्तं। शचीपती इति शचीऽपती। शचीभिः ॥५॥

हे अश्विनाश्विनौ देवा देवौ युवां प्राचीमृज्वीममृध्रामहिंसितां वसूयुं धनमिच्छंतीं मे मम धियं बुद्धिं स्तुतिं कर्म वा सातये लाभायोचितां कृतं। कुरुतं। किंच वाज आ संग्रामेऽपि विश्वाः पुरंधीरस्मदीया बुद्धीरविष्टं। रक्षतं। हे शचीपतो। शचीति कर्मनाम। कर्मणां पालकौ ता तौ युवां शचीभिरस्मदीयैः स्तुत्यादिरूपैः कर्मभिर्नोऽस्माञ्छक्तं। प्रयच्छतं धनमिति शेषः॥ ॥१२॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु।
आ वां तोके तनये तूतुंजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥६॥

अविष्टं। धीषु। अश्विना। नः। आसु। प्रजाऽवत्। रेतः। अह्रयं। नः। अस्तु। आ। वां। तोके। तनये। तूतुंजानाः। सुऽरत्नासः। देवऽवीतिं। गमेम ॥६॥

हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्माकमासु धीष्वेषु कर्मस्वविष्टं। रक्षतं। नोऽस्मभ्यमह्रयमक्षीणं प्रजावत्पुत्राद्युपेतं पुत्रोत्पादनसमर्थं रेतोऽस्तु। वां युवयोरनुग्रहाल्लब्धे तोके पुत्रे तनये तत्पुत्रादौ च तूतुजाना अभिमतं धनं प्रयच्छंतः सुरत्नासः शोभनधनाश्च संतो देववीतिं देवानां वीतिः प्राप्तिर्यस्मिंस्तादृशं यज्ञमा गमेम। आगच्छेम॥

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥१८॥

दिवः । धामऽभिः । वरुण । मित्रः । च । आ । यातं । अद्रुहा । पिबतं । सोमं । आतुजी इत्याऽतुजी ॥१८॥

हे वरुण त्वं मित्रश्चाद्रुहाद्रोग्धारौ युवां दिवो द्युलोकसंबंधिभ्यो धामभिर्धामभ्यः स्थानेभ्यः । पंचम्यर्थे तृतीया । अथवा धामभिस्तेजोभिर्विभूतिभिः सार्धमा यातं । अस्मद्यज्ञमागच्छतं । आगत्य चातुजी शत्रूणां सर्वतो हिंसकावादातारौ वा धनानां एवंरूपौ संतौ सोमं पिबतं ॥ तुजि पिजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु । अत्र हिंसायामादाने वा वर्तते ॥

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा ॥१९॥

आ । यातं । मित्रावरुणा । जुषाणौ । आऽहुतिं । नरा । पातं । सोमं । ऋतऽवृधा ॥१९॥

हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ हे नरा यागनेतारौ आहुतिं सोमलक्षणां जुषाणौ प्रियमाणौ संतावा यातं । आगच्छतं यज्ञं । आगत्य च हे ऋतावृधा यज्ञस्य वर्धकौ युवां सोमं पातं । पिबतं ॥ ॥११॥

प्रति वां रथमिति दशर्चं द्वादशं सूक्तं । प्रति वां दशाश्विनं तु तदित्यनुक्रमणिका । ऋषिर्वसिष्ठः । छंदस्त्रिष्टुप् । तुह्यादिपरिभाषयैतदादीन्यष्ट सूक्तान्यश्विदेवत्यानि ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ त्रैष्टुभे छंदस्येतदादिसूक्तसप्तकं द्वितीयवर्जं शंस्यं । तथा च सूत्रं । प्रति वां रथमिति सप्तानां द्वितीयमुद्धरेत् । आ॰ ४. १५. । इति ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥१॥

प्रति । वां । रथं । नृपती इति नृऽपती । जरध्यै । हविष्मता । मनसा । यज्ञियेन ।
यः । वां । दूतः । न । धिष्ण्यौ । अजीगः । अच्छ । सूनुः । न । पितरा । विवक्मि ॥१॥

हे नृपती नृणामृत्विग्यजमानानां स्वामिनावश्विनौ वां युवयो रथं जरध्यै । जरा स्तुतिः । स्तोतुं प्रति गच्छामीति शेषः । केन साधनेनेति तदुच्यते । हविष्मता हविर्युक्तेन यज्ञियेन यज्ञार्हेण मनसा स्तोत्रेण । यो रथो वां हे धिष्ण्यौ धिषणार्हौ । धिषणा स्तुतिः । वां युवां दूतो न दूत इवाजीगः जागरयति प्रबोधयति अस्मान्प्रति गंतुं तं रथमच्छा विवक्मि । आवच्मि । प्रबोधने दृष्टांतः । सूनुर्न पितरा पुत्रो मातापितराविव । अथवात्र यो रथो युवामजीगः तेन रथेन गंतुं बुध्यमानौ युवामच्छा विवक्मीति वा योज्यं ॥

अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदंताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥२॥

अशोचि । अग्निः । सम्ऽइधानः । अस्मे इति । उपो इति । अदृश्रन् । तमसः । चित् । अंताः ।
अचेति । केतुः । उषसः । पुरस्तात् । श्रिये । दिवः । दुहितुः । जायमानः ॥२॥

अस्मे अस्माभिः समिधानः समिध्यमानः सन्नग्निरशोचि । दीप्यते । तमसश्चित्तमसोऽप्यंताः पर्यंताः प्रदेशा उपो अदृश्रन् । उपदृश्यंते सर्वैः । केतुः सर्वस्य प्रज्ञापकः सूर्यो दिवो दुहितुरुषसः पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि श्रिये शोभायै जायमानः सन्नचेति । ज्ञायते । यस्मादेवं तस्माद्युवयोरागमनसमयः । अत आगच्छतमिति शेषः ॥

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥३॥

हे युवाना नित्ययौवनौ न्वद्य युवां मे हवमस्मदीयां स्तुतिमा शृणुतं। श्रुत्वा च हे अश्विनौ इरावद्भिर्युक्तं वर्तिर्गृहं यासिष्टं। आगच्छतं। आगत्य च रत्नानि रमणीयानि धनानि धत्तं। दत्तं। सूरीन् स्तोतॄञ्जरतं। वर्धयतं ॥ धातूनामनेकार्थत्वात् ॥ शिष्टं स्पष्टं ॥ ॥१३॥

आ शुभ्रा यातमिति नवर्चं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमाश्विनं। आदितः सप्त विराजोऽष्टमीनवम्यौ त्रिष्टुभौ। अनुक्रम्यते च। आ शुभ्रा नव सप्ताद्या विराज इति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥१॥

आ। शुभ्रा। यातं। अश्विना। सुऽअश्वा। गिरः। दस्रा। जुजुषाणा। युवाकोः।
हव्यानि। च। प्रतिऽभृता। वीतं। नः ॥१॥

हे शुभ्रा दीप्तौ स्वश्वा शोभनाश्वौ हे अश्विनाश्विनौ आ यातं। अस्मद्यज्ञमागच्छतं। दस्रा शत्रूणामुपक्षपयितारौ युवां युवाकोर्युवां कामयमानस्य मम गिरः स्तुतीर्जुजुषाणा सेवमानौ भवतमिति शेषः। न केवलं स्तुतिं किंतु नोऽस्मदीयानि प्रतिभृता संभृतानि हव्यानि हवींषि च वीतं। भक्षयतं ॥

प्र वामंधांसीत्येषाश्विनशस्त्रयाज्या। सूत्रितं च। प्र वामंधांसि मद्यान्यस्थुरुभा पिबतमश्विना। आ॰ ६.५.। इति ॥

प्र वामंधांसि मद्यान्यस्थुररं गंतं हविषो वीतये मे।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥२॥

प्र। वां। अंधांसि। मद्यानि। अस्थुः। अरं। गंतं। हविषः। वीतये। मे।
तिरः। अर्यः। हवनानि। श्रुतं। नः ॥२॥

हे अश्विनौ वां युवाभ्यां मद्यानि मदजनकान्यंधांसि सोमलक्षणान्यन्नानि प्रास्थुः। प्रास्थिषत। गृहीतान्यासन्नित्यर्थः। अतो युवां मे मम हविषो वीतये पानायारमत्यर्थं शीघ्रं गंतं। आगच्छतं। अर्योऽरेरस्मद्विरोधिनो हवनानि तिरस्तिरस्कृत्य नः। अस्मदाह्वानमित्यर्थः। तच्छ्रुतं। शृणुतं ॥ श्रुतमित्यस्य वाक्यादित्वादनिघातः ॥

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥३॥

प्र। वां। रथः। मनःऽजवाः। इयर्ति। तिरः। रजांसि। अश्विना। शतऽऊतिः।
अस्मभ्यं। सूर्यावसू इति। इयानः ॥३॥

हे सूर्यावसू सूर्यायाः सह रथे वसंतौ वां युवयो रथोऽस्मभ्यमस्मदर्थमियानो याच्यमानः सन्नियर्ति। आगच्छत्यस्मद्यज्ञं। अथवा वां प्रेरयति गमनाय। कीदृशो रथः। मनोजवा मनोवेगः शतोतिरपरिमितास्मद्विषयरक्षणः। किं कुर्वन्। रजांसि लोकांस्तिरस्तिरस्कृत्यातिक्रम्येयर्तीति ॥

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्यां।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥४॥

अयं। ह। यत्। वां। देवऽयाः। ऊं इति। अद्रिः। ऊर्ध्वः। विवक्ति। सोमऽसुत्। युवऽभ्यां।
आ। वल्गू इति। विप्रः। ववृतीत। हव्यैः ॥४॥

यद्यदा वां युवां प्रति देवया देवौ युवां कामयमानः । उ इति पूरणः । अयमद्रिरभिषवग्रावा सोमसुत् सोममभिषुण्वन् युवभ्यां । युवाभ्यामर्थायाभिषुण्वन्निति संबंधः । एवं कुर्वन्नूर्ध्व उन्नतः सन् विवक्ति उच्चैः शब्दयति तदानीं वल्गू सुंदरौ युवां विप्रो मेधावी यजमानो हव्यैर्हविर्भिरा ववृतीत । आवर्तयति ॥

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वंतं युयोतं ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५॥

चित्रं । ह । यत् । वां । भोजनं । नु । अस्ति । नि । अत्रये । महिष्वंतं । युयोतं ।
यः । वां । ओमानं । दधते । प्रियः । सन् ॥५॥

हे अश्विनौ वां युवयोश्चित्रं चायनीयं यद्भोजनं धनमस्ति ह अस्ति खलु । न्विति पूरणः । तदस्मभ्यं दत्तमित्यर्थः । अथ तयोः स्तुतिः । अत्रय एतन्नामकावृषेः । पंचम्यर्थे चतुर्थी । तस्मान्महिष्वंतमृबीसं नि युयोतं । पृथक्कुरुतं । योऽत्रिः प्रियः सन् स्तोतृत्वाद्युवाभ्यां प्रियभूतः सन् युवाभ्यामेव कृतमोमानं रक्षणं सुखं दधते धारयति ॥ ॥१४॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥६॥

उत । त्यत् । वां । जुरते । अश्विना । भूत् । च्यवानाय । प्रतीत्यं । हविःऽदे ।
अधि । यत् । वर्पः । इतःऽऊति । धत्थः ॥६॥

उतापि च हे अश्विनाश्विनौ वां युवयोः कर्म कुर्वते जुरते जूर्णाय हविर्दे हविर्दात्रे च्यवानायैतन्नामकाय महर्षये त्यत्तत्प्रतीत्यं प्रतिगमनं तस्य रूपस्य प्रत्याप्त्यै भूत् । अभूत् । किं तदिति । यद्वर्पो रूपमितऊतीतोगमनाख्यं मृत्योः सकाशादितःप्राप्तिरूपमधि धत्थः अध्यधत्तं । युवं च्यवानमश्विना जरंतं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः । ऋ° १. ११७. १३. । इत्यादिषु च्यवानस्य युवयोर्नवीकरणं प्रसिद्धं ॥

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥७॥

उत । त्यं । भुज्युं । अश्विना । सखायः । मध्ये । जहुः । दुःऽएवासः । समुद्रे ।
निः । ईं । पर्षत् । अरावा । यः । युवाकुः ॥७॥

उतापि च त्यं तं भुज्युमेतन्नामानं समुद्रे मध्ये समुद्रोदकस्य मध्ये सखायो भुज्युसखिभूता दुरेवासो दुष्टगमना जहुः । त्यक्तवंतः । ईमेनं समुद्रमध्ये क्षिप्तं निः पर्षत् । निरपारयतं । यो भुज्युर्युवाकुर्युवां कामयितारावारणवानभिगंता च तमेनं निरपारयतं । अत्राश्विनेषु सूक्तेषु कथाः सूच्यंते । अत्रिभुज्य्वादीनामग्निजलादिभ्यो रक्षणरूपास्ताः सर्वा महता प्रपंचेनास्माभिर्नासत्याभ्यां बर्हिरिव । ऋ° १. ११६. १. । इत्यत्र प्रपंचिताः । तास्तत्र द्रष्टव्याः ॥

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥८॥

वृकाय । चित् । जसमानाय । शक्तं । उत । श्रुतं । शयवे । हूयमाना ।
यौ । अघ्न्यां । अपिन्वतं । अपः । न । स्तर्यं । चित् । शक्ती । अश्विना । शचीभिः ॥८॥

वृकाय धनादात्रे । अभिलषत इत्यर्थः । चिदिति पूरणः । अथवा परेभ्यो धनानि प्रयच्छते । यद्वा । वृकाय वृकवद्धिंसकाय । एतन्नामकाय जसमानाय कर्मभिरुपक्षीयमाणायर्षये शक्तं । अभिमतं धनमदत्तं ॥ शकेर्दानार्थस्य लुङ्येतद्रूपं । अडभावश्छांदसः ॥ उतापि च शयव एतन्नामकायर्षये ह्वयमानाह्वयमानौ युवां श्रुतं । अशृणुतं । यौ युवामघ्न्यां गामपिन्वतं अपूरयतं क्षीरेण अपो नाव्भिरिव नदीं । तां यथोदकेन पूरयतस्तद्वत् । कीदृशीमघ्न्यां । स्तर्यं चित् स्तरीमपि निवृत्तप्रसवां वृद्धामपि शक्ती शक्त्या सामर्थ्येन दोहनलक्षणेन युक्तां कृत्वा शचीभिर्युष्मदीयैः कर्मभिर्हि अश्विनाविति । शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गां । ऋ॰ १. ११६. २२. । इत्यादि ह्युक्तं ॥

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥
एषः । स्यः । कारुः । जरते । सुऽउक्तैः । अग्रे । बुधानः । उषसां । सुऽमन्मा ।
इषा । तं । वर्धत् । अघ्न्या । पयःऽभिः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥९॥

एष स्तोता स्य स प्रसिद्धो वसिष्ठः कारुः स्तोतोषसामग्रे प्रातःसवने बुधानो बुध्यमानः सुमन्मा शोभनमतिः सुष्टुतिर्वा सूक्तैर्जरते । स्तौति । तमिषान्नेन वर्धत् । वर्धयतं ॥ वचनव्यत्ययः ॥ अघ्न्याहंतव्या गौश्च वर्धत् । वर्धयतु । अथवैकमेव वाक्यं । अघ्न्या गौर्वसिष्ठस्य प्रतिनियताग्निहोत्रार्था गौरिषान्नेन । घृतादिनेत्यर्थः । पयोभिश्च तं वसिष्ठं वर्धत् । वर्धयतु । एवमात्मानं परोक्षेण निर्दिदेश । शिष्टं स्पष्टं ॥ ॥१५॥

आ वां रथ इत्यष्टर्चं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाश्विनं । अनुक्रम्यते च । आ वां रथोऽष्टाविति ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोर्विनियोग उक्तः ॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥
आ । वां । रथः । रोदसी इति । बद्बधानः । हिरण्ययः । वृषऽभिः । यातु । अश्वैः ।
घृतऽवर्तनिः । पविऽभिः । रुचानः । इषां । वोळ्हा । नृऽपतिः । वाजिनीऽवान् ॥१॥

हे अश्विनौ वां रथो वृषभिर्युवभिरश्वैर्युक्तः सन्ना यातु यज्ञमस्मदीयं । कीदृशो रथः । रथो विशेष्यते । रोदसी द्यावापृथिव्यौ बद्बधानो बाधमानो हिरण्ययो हिरण्मयो घृतवर्तनिर्घृतमुदकं वर्तन्यां यस्य तादृशः पविभी रथनेमिभिर्मधुपात्रैर्वा रुचानो दीप्यमान इषां वोळ्हा यजमानैर्दत्तानां हविषां वाहको दातव्यानां वान्नानां वोळ्हा नृपतिर्नृणां यजमानानां स्वामी वाजिनीवानन्नवान् ॥

स पप्रथानो अभि पंच भूमा त्रिवंधुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयंतीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२॥
सः । पप्रथानः । अभि । पंच । भूम । त्रिऽवंधुरः । मनसा । आ । यातु । युक्तः ।
विशः । येन । गच्छथः । देवऽयंतीः । कुत्र । चित् । यामं । अश्विना । दधाना ॥२॥

स रथः पंच भूम भूतानि सर्वप्राणिनः पप्रथानः प्रथमानस्त्रिवंधुरः । वंधुरमुच्चावचं सारथ्यवस्थानं काष्ठमयं । तादृशैस्त्रिभिर्युक्तो मनसास्मत्स्तुत्या युक्तोऽभ्या यातु । येन रथेन देवयंतीर्विशो यजमानान्प्रति गच्छथः । हे अश्विनाश्विनौ कुत्र चिदत्र क्वापि यामं गमनं दधाना धारयंतौ येन विशो गच्छथः स यात्विति ॥

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमंतं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽंतान्दिवो बाधते वर्तनिभ्यां ॥३॥
सुऽअश्वा । यशसा । आ । यातं । अर्वाक् । दस्रा । निऽधिं । मधुऽमंतं । पिबाथः ।
वि । वां । रथः । वध्वा । यादमानः । अंतान् । दिवः । बाधते । वर्तनिऽभ्यां ॥३॥

हे देवौ स्वश्वा शोभनाश्वेन यशसा चार्वागस्मदभिमुखं यातं । आगच्छतं । हे दस्रा शत्रूणामुपक्षपयितारौ मधुमंतं मधुररसोपेतं निधिं निधिवन्निहितं सोमं पिबाथः । पिबतं । वां युवयो रथो वध्वा सूर्यया सह यादमानो गंतव्यान्प्रति गच्छन् । गमयन्नित्यर्थः । एवं कुर्वन् वर्तनिभ्यां स्वचक्राभ्यां दिवोऽंतान् पर्यंतप्रदेशान बाधते । शीघ्रगमनेन पीडयति ॥

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायां ।
यद्देवयंतमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥
युवोः । श्रियं । परि । योषा । अवृणीत । सूरः । दुहिता । परिऽतक्म्यायां ।
यत् । देवऽयंतं । अवथः । शचीभिः । परि । घ्रंसं । ओमना । वां । वयः । गात् ॥४॥

युवोर्युवयोः श्रियं । श्रयत इति श्री रथः । तं सेवामेव वा योषा सर्वदा मिश्रयंती योषित् सूरः सूर्यस्य दुहिता पर्यवृणीत । कदा । परितक्म्यायां रात्रौ परितस्तकनवति संग्रामे यज्ञे वा गंतव्ये । किंच यद्यदा देवयंतं देवकामं यजमानं यज्ञं वा शचीभिर्युवयोर्गमनादिलक्षणैः कर्मभिरवथः रक्षथः तदानीं घ्रंसं दीप्तं वयोऽन्नं सोमादिलक्षणमोमनावनेन रक्षणेन निमित्तेन वां परि गात् । पर्यगात् ॥

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥
यः । ह । स्यः । वां । रथिरा । वस्ते । उस्राः । रथः । युजानः । परिऽयाति । वर्तिः ।
तेन । नः । शं । योः । उषसः । विऽउष्टौ । नि । अश्विना । वहतं । यज्ञे । अस्मिन् ॥५॥

यो रथः । हेति पूरणः । स्य स प्रसिद्धो रथो हे रथिरा रथिनौ ॥ मत्वर्थीयो रः ॥ उस्रास्तेजांसि वस्ते आच्छादयति । यश्च रथो युजानोऽश्वैर्युक्तः सन्वर्तिर्मार्गं यजमानगृहं वा परियाति परिगच्छति । तेन रथेन हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्माकमस्मिन्यज्ञ उषसो व्युष्टौ प्रातःकाले शं शमनाय पापानां योर्मिश्रणाय च सुखानां नि वहतं । नितरां प्रापुतं ॥

नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातं ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवंते मा वामन्ये नि यमन्देवयंतः ॥६॥
नरा । गौराऽइव । विऽद्युतं । तृषाणा । अस्माकं । अद्य । सवना । उप । यातं ।
पुरुऽत्रा । हि । वां । मतिभिः । हवंते । मा । वां । अन्ये । नि । यमन् । देवऽयंतः ॥६॥

हे नरा नेतारावश्विनौ गौरेव गौरा मृगीव विद्युतं विशेषेण दीप्यमानं सोमं प्रति तृषाणा तृष्णायुक्ता-वद्यास्माकं सवना सवनान्युप यातं । उपागच्छतं । पुरुत्रा बहुषु यज्ञेषु वां युवां यजमाना मतिभिः स्तुतिभि-र्हवंते हि । स्तुवंति । अतो वां युवामन्ये यष्टारो देवयंतो देवौ कामयमाना वां युवां मा नि यमन् । मा नियच्छंतु ॥

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयंता ॥७॥
युवं । भुज्युं । अवऽविद्धं । समुद्रे । उत् । ऊहथुः । अर्णसः । अस्रिधानैः ।
पतत्रिऽभिः । अश्रमैः । अव्यथिऽभिः । दंसनाभिः । अश्विना । पारयंता ॥७॥

हे अश्विनाश्विनौ युवं भुज्युमेतन्नामकमवविद्धं विक्षिप्तं सखिभिः समुद्रे तन्मध्ये निमग्नमर्णस उदकादुदूहथुः । किं कुर्वंताविति तदुच्यते । अस्रिधानैरक्षीयमाणैरश्रमैरव्यथिभिश्च पतत्रिभिः पतनवद्भिर्गमनवद्भी रथे नियुक्तैरश्वैर्दंसनाभिः शारीरैः कर्मभिश्च पारयंता पारयंतौ समुद्रमर्णस उदूहथुरिति । नासत्या भुज्युमूहथुः पतंगैः । ऋ॰ १. ११६. ४. । इति ह्युक्तं ॥

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥
नु । मे । हवं । आ । शृणुतं । युवाना । यासिष्टं । वर्तिः । अश्विनौ । इराऽवत् ।
धत्तं । रत्नानि । जरतं । च । सूरीन् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥८॥

नू मे हवमित्यष्टमी सिद्धा ॥ ॥१६॥

आ विश्ववारेति सप्तर्चं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाश्विनं । अनुक्रम्यते च । आ विश्ववारा सप्तेति ॥ प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्रे च विनियोग उक्तः ॥ आद्यस्तृचस्तृतीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे विनियुक्तः । आ विश्ववाराश्विना गतं नोऽयं सोम इंद्र । आ॰ ८. ११. । इति सूचितत्वात् ॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्यां ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिं ॥१॥
आ । विश्वऽवारा । अश्विना । गतं । नः । प्र । तत् । स्थानं । अवाचि । वां । पृथिव्यां ।
अश्वः । न । वाजी । शुनऽपृष्ठः । अस्थात् । आ । यत् । सेदथुः । ध्रुवसे । न । योनिं ॥१॥

हे विश्ववारा सर्वैर्वरणीयावश्विनाश्विनौ नोऽस्माकं यज्ञं यागमा गतं आगच्छतं वां युवयोस्तत्स्थानं पृथिव्यां वेद्यां प्रावाचि । प्रोच्यते । तदर्थं शुनपृष्ठः सुखकरपृष्ठभागः । अत्यंतविपुलत्वादारूढानां सुखकरपृष्ठभाग इत्यर्थः । वाजी वेगवानश्वोऽस्थात् । तिष्ठतु युवयोः समीपे । यत् । यमित्यर्थः । यमश्वमा सेदथुः आसीदथः सोऽश्वः । यद्वा । यत्स्थानमासीदथः तत्स्थानमश्व आश्रयत्वितो गमनाय । स्थितौ दृष्टांतः । ध्रुवसे ध्रुवाय निवासाय योनिं न योनिं स्थानमिव ॥

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥२॥
सिसक्ति । सा । वां । सुऽमतिः । चनिष्ठा । अतापि । घर्मः । मनुषः । दुरोणे ।
यः । वां । समुद्रान् । सरितः । पिपर्ति । एतऽग्वा । चित् । न । सुऽयुजा । युजानः ॥२॥

सा सुमतिरस्माभिः क्रियमाणा शोभना स्तुतिश्चनिष्ठा कमनीयतमातिशयेनान्नवती वा वां युवां सिषक्ति । सेवते । किंच घर्मः प्रवर्ग्यश्च मनुषो मनुष्यस्य यजमानस्य दुरोणे यागगृहेऽतापि । तप्तोऽभूत् । यश्चाँ इत्यप-

तत्तद्घर्मस्य घर्मत्वं । तै० आ० ५. १. ५. । इति श्रुतिः । यज्ञस्य शिरःस्थानीयत्वादस्य । यो घर्मो वां युवां । प्राप्नुवन्निति शेषः । समुद्रान् सरितश्च पिपर्ति पूरयति वृष्टिद्वारा । एतस्मा चिन्न । चिदिति पूरणः । अश्वाविव यथा सुयुजा सुष्ठु युक्तौ रथे भवतस्तथेत्यर्थः । नेत्युपमार्थे । तद्वद्युवां यत्ते युजानो योजयन्यज्ञः । स एवं करोति ॥

यानि॒ स्थाना॑न्यश्विना द॒धाथे॑ दि॒वो य॒ह्वीष्वोष॑धीषु वि॒क्षु ।
नि पर्व॑तस्य मू॒र्धनि॒ सदं॒तेषं॒ जना॑य दा॒शुषे॒ वहं॑ता ॥३॥
यानि॑ । स्थाना॑नि । अ॒श्वि॒ना॒ । द॒धाथे॒ इति॑ । दि॒वः । य॒ह्वीषु॑ । ओष॑धीषु । वि॒क्षु ।
नि । पर्व॑तस्य । मू॒र्धनि॑ । सदं॑ता । इषं॑ । जना॑य । दा॒शुषे॑ । वहं॑ता ॥३॥

हे अश्विना युवां दिवो द्युलोकादागत्य यानि स्थानानि दधाथे कुरुथः । कुत्रेति उच्यते । यह्वीषु महतीष्वोषधीषु विक्षु यजमानेषु च । तौ युवां पर्वतस्य मेघस्यांतरिक्षस्य वा मूर्धनि स्थाने सदंता निषीदंताविषमन्नं दाशुषे हविर्दात्रे जनाय यजमानाय वहंता प्रापयंतौ भवतमिति शेषः ॥

च॒नि॒ष्टं दे॑वा॒ ओष॑धीष्व॒प्सु यद्यो॒ग्या अ॒श्नवै॑थे॒ ऋषी॑णां ।
पु॒रूणि॒ रत्ना॒ दध॑तौ॒ न्य१॒स्मे अनु॒ पूर्वा॑णि चख्यथुर्यु॒गानि॑ ॥४॥
च॒नि॒ष्टं । दे॒वौ॒ । ओष॑धीषु । अ॒प्ऽसु । यत् । यो॒ग्याः । अ॒श्नवै॑थे॒ इति॑ । ऋषी॑णां ।
पु॒रूणि॑ । रत्ना॑ । दध॑तौ । नि । अ॒स्मे इति॑ । अनु॑ । पूर्वा॑णि । च॒ख्य॒थुः॒ । यु॒गानि॑ ॥४॥

हे देवा देवौ युवामोषधीष्वोषधिविकारांश्चरुपुरोडाशादिकानप्सु सोमरसांश्चनिष्टं । अत्यंतकमनीयतमं कामयेथामित्यर्थः । यद्यस्माद्योग्या युवयोरुचिता ओषधीरपश्चर्षीणां संबंधिनीरश्नवैथे व्याप्नुथः तस्मादस्मदीया अपि कामयेथामित्यर्थः । यद्वा । ऋषीणामस्माकमिति पूजार्थं बहुवचनं । यद्यस्मादोषधीष्वप्सु च चनिष्टं योग्याः स्तुतीश्चाश्नवैथे तस्मादस्मे अस्मासु पुरूणि बहूनि रत्ना रमणीयानि धनानि नि दधतौ पूर्वाणि युगानि मिथुनानि जायापतिरूपाण्यनु चख्यथुः । ख्यातवंतौ । अनुग्रहवंतावनुग्रहार्थं ॥

शु॒श्रु॒वांसा॑ चिदश्विना पु॒रूण्य॒भि ब्रह्मा॑णि चक्षाथे॒ ऋषी॑णां ।
प्रति॒ प्र या॑तं॒ वर॒मा जना॑यास्मे वा॑मस्तु सुम॒तिश्चनि॑ष्ठा ॥५॥
शु॒श्रु॒ऽवांसा॑ । चि॒त् । अ॒श्वि॒ना॒ । पु॒रूणि॑ । अ॒भि । ब्रह्मा॑णि । च॒क्षा॒थे॒ इति॑ । ऋषी॑णां ।
प्रति॑ । प्र । या॒तं॒ । वरं॑ । आ । जना॑य । अ॒स्मे इति॑ । वां॒ । अ॒स्तु॒ । सु॒ऽम॒तिः । चनि॑ष्ठा ॥५॥

हे अश्विनाश्विनौ । चिदिति पूरणः । युवां शुश्रुवांसा श्रुतवंतौ संतौ पुरूणि बहूनि ब्रह्माणि परिवृढानि कर्माणि स्तुतिलक्षणान्यृषीणामस्माकं संबंधीन्यभि चक्षाथे । अभिपश्यथो युवां । अतो जनाय जनस्य यजमानस्य मम वरं यज्ञं प्रति प्र यातं । वां युवयोश्चनिष्ठोऽन्नलक्षणा सुमतिरनुग्रहमतिरस्मे अस्मास्वस्तु । भवतु ॥

यो वां॑ य॒ज्ञो ना॑सत्या ह॒विष्मा॑न्कृ॒तब्र॑ह्मा सम॒र्यो॒३॒ भवा॑ति ।
उप॒ प्र या॑तं॒ वर॒मा वसि॑ष्ठमि॒मा ब्रह्मा॑ण्यृच्यंते यु॒वभ्यां॑ ॥६॥
यः । वां॒ । य॒ज्ञः । ना॒स॒त्या॒ । ह॒विष्मा॑न् । कृ॒तऽब्र॑ह्मा । स॒ऽम॒र्यः॑ । भवा॑ति ।
उप॑ । प्र । या॒तं॒ । वरं॑ । आ । वसि॑ष्ठं । इ॒मा । ब्रह्मा॑णि । ऋ॒च्यं॒ते॒ । यु॒वऽभ्यां॑ ॥६॥

हे नासत्याश्विनौ वां युवयोर्यो यज्ञो यजमानः समर्य ऋत्विग्भिर्मर्त्यैः सहितः सन् हविष्मान् हविषा

युक्तः कृतब्रह्मा कृतस्तोत्ररूपकर्मा भवाति भवति तं वरं वरणीयं वसिष्ठमोप प्र यातं। प्रकर्षेणोपागच्छतं। इमेमानि ब्रह्माणि मंत्रजातानि युवभ्यां युवाभ्यामर्थायागमनायर्च्यंते। स्तूयंते। क्रियंत इत्यर्थः॥

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथां।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥
इयं। मनीषा। इयं। अश्विना। गीः। इमां। सुऽवृक्तिं। वृषणा। जुषेथां।
इमा। ब्रह्माणि। युवऽयूनि। अग्मन्। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥७॥

हे अश्विनाश्विनौ इयं मनीषा स्तुतिर्युवयोः कृतेति शेषः। तदेवादरार्थं पुनरुच्यते। इयं गीः स्तुतिः कृता। हे वृषणा कामानां वर्षकौ इमामस्मत्कृतां सुवृक्तिं शोभनां स्तुतिं जुषेथां। सेवेथां। इमेमानि ब्रह्माणि कर्माणि स्तुतिरूपाणि युवयूनि युवां कामयमानानि संत्यग्मन्। गच्छंतु युवां। यूयं पातेति सिद्धं॥ ॥१७॥ ॥४॥

पंचमेऽनुवाक एकोनविंशति सूक्तानि। तत्राप स्वसुरिति षडृचं प्रथमं सूक्तं त्रैष्टुभमाश्विनं। अनुक्रम्यते च। अप स्वसुः षडिति॥ गतो विनियोगः॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पंथां।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतं॥१॥
अप। स्वसुः। उषसः। नक्। जिहीते। रिणक्ति। कृष्णीः। अरुषाय। पंथां।
अश्वऽमघा। गोऽमघा। वां। हुवेम। दिवा। नक्तं। शरुं। अस्मत्। युयोतं॥१॥

स्वसुः स्वसृस्थानीयाया उषसः सकाशान्नमक्तं रात्रिरप जिहीते। अपगच्छति। तस्या अवकाशं दत्त्वा स्वयमपगतेत्यर्थः। स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैक्। ऋ० १. १२४. ८.। इत्युक्तं। कृष्णीः कृष्णवर्णा रात्रिररुषायारोचमानायाह्ने सूर्याय वा पंथां पंथानं मार्गं रिणक्ति। रेचयति। यस्मादेवं तस्माद्युवयोरागमनसमयत्वात् हे अश्वामघाश्वधनौ हे गोमघा गोधनौ। उभयोः प्रदातारावित्यर्थः। ईदृशौ वां युवां हुवेम। स्तुमः। आह्वयामः। दिवा नक्तं सर्वदा शरुं हिंसकमस्मदस्मत्तो युयोतं। पृथक्कुरुतं॥

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहंता।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः॥२॥
उपऽआयातं। दाशुषे। मर्त्याय। रथेन। वामं। अश्विना। वहंता।
युयुतं। अस्मत्। अनिरां। अमीवां। दिवा। नक्तं। माध्वी इति। त्रासीथां। नः॥२॥

हे अश्विनौ युवामुपायातं। उपागच्छतमस्मदाह्वानं प्रति। किमर्थं। दाशुषे हविषां दात्रे यजमानाय तदर्थं रथेन वामं वननीयं धनं वहंता वहंतौ। अस्मदस्मत्तो युयुतं। पृथक्कुरुतं। किं। अनिरां। इरान्नं। तदन्नदारिद्र्यमित्यर्थः। अमीवां रोगं च। हे माध्वी मधुमंतौ युवां नोऽस्मान् दिवा नक्तं सर्वदा त्रासीथां। रक्षतं॥

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयंतु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमंतं वहेथां॥३॥
आ। वां। रथं। अवमस्यां। विऽउष्टौ। सुम्नऽयवः। वृषणः। वर्तयंतु।
स्यूमऽगभस्तिं। ऋतयुक्ऽभिः। अश्वैः। आ। अश्विना। वसुऽमंतं। वहेथां॥३॥

तत्तद्धर्मस्य घर्मत्वं । तै० आ० ५. १. ५. । इति श्रुतिः । यज्ञस्य शिरःस्थानीयत्वादस्य । यो घर्मो वां युवां । प्राप्नुवन्निति शेषः । समुद्रान् सरितश्च पिपर्ति पूरयति वृष्टिद्वारा । एतम्वा चिन्न । चिदिति पूरणः । अश्वाविव यथा सुयुजा सुष्ठु युक्तौ रथे भवतस्तथेत्यर्थः । नेत्युपमार्थे । तद्वद्युवां यज्ञे युजानो योजयन्यज्ञः । स एवं करोति ॥

यानि॒ स्थाना॑न्यश्विना द॒धाथे॑ दि॒वो य॒ह्वीष्वोष॑धीषु वि॒क्षु ।
नि पर्व॑तस्य मू॒र्धनि॒ सदं॑ते॒षं जना॑य दा॒शुषे॒ वहं॑ता ॥३॥

यानि॑ । स्थाना॑नि । अ॒श्वि॒ना॒ । द॒धा॒थे॒ इति॑ । दि॒वः । य॒ह्वीषु॑ । ओष॑धीषु । वि॒क्षु ।
नि । पर्व॑तस्य । मू॒र्धनि॑ । सदं॑ता । इ॒षं॑ । जना॑य । दा॒शुषे॑ । वहं॑ता ॥३॥

हे अश्विना युवां दिवो द्युलोकादागत्य यानि स्थानानि दधाथे कुरुथः । कुत्रेति उच्यते । यह्वीषु महतीष्वोषधीषु विक्षु यजमानेषु च । तौ युवां पर्वतस्य मेघस्यांतरिक्षस्य वा मूर्धनि स्थाने सदंता निषीदंताविषमन्नं दाशुषे हविर्दात्रे जनाय यजमानाय वहंता प्रापयंतौ भवतमिति शेषः ॥

च॒नि॒ष्टं दे॑वा॒ ओष॑धीष्व॒प्सु यद्यो॒ग्या अ॒श्नवै॑थे॒ ऋषी॑णां ।
पु॒रूणि॒ रत्ना॒ दध॑तौ॒ न्य१॒॑स्मे अनु॒ पूर्वा॑णि चख्यथु॒र्युगा॑नि ॥४॥

च॒नि॒ष्टं । दे॒वौ॒ । ओष॑धीषु । अ॒प्ऽसु । यत् । यो॒ग्याः । अ॒श्नवै॑थे॒ इति॑ । ऋषी॑णां ।
पु॒रूणि॑ । रत्ना॑ । दध॑तौ । नि । अ॒स्मे इति॑ । अनु॑ । पूर्वा॑णि । च॒ख्य॒थुः॒ । यु॒गानि॑ ॥४॥

हे देवा देवौ युवामोषधीष्वोषधिविकारांश्चरुपुरोडाशादिकानप्सु सोमरसांश्चनिष्टं । अत्यंतकमनीयतमं कामयेथामित्यर्थः । यद्यस्माद्योग्या युवयोरुचिता ओषधीरपश्चर्षीणां संबंधिनीरश्नवैथे व्याप्नुथः तस्मादस्मदीया अपि कामयेथामित्यर्थः । यद्वा । ऋषीणामस्माकमिति पूजार्थं बहुवचनं । यद्यस्मादोषधीष्वप्सु च चनिष्टं योग्याः स्तुतीश्चाश्नवैथे तस्मादस्मे अस्मासु पुरूणि बहूनि रत्ना रमणीयानि धनानि नि दधतौ पूर्वाणि युगानि मिथुनानि जायापतिरूपाण्यनु चख्यथुः । ख्यातवंतौ । अनुकृष्टवंतावनुग्रहार्थं ॥

शु॒श्रु॒वांसा॑ चिदश्विना पु॒रूण्य॒भि ब्रह्मा॑णि चक्षाथे॒ ऋषी॑णां ।
प्रति॒ प्र या॑तं॒ वर॒मा जना॑यास्मे वा॑मस्तु सुम॒तिश्चनि॑ष्ठा ॥५॥

शु॒श्रु॒ऽवांसा॑ । चि॒त् । अ॒श्वि॒ना॒ । पु॒रूणि॑ । अ॒भि । ब्रह्मा॑णि । च॒क्षा॒थे॒ इति॑ । ऋषी॑णां ।
प्रति॑ । प्र । या॒तं॒ । वरं॑ । आ । जना॑य । अ॒स्मे इति॑ । वा॒ं । अ॒स्तु॒ । सु॒ऽम॒तिः । चनि॑ष्ठा ॥५॥

हे अश्विनाश्विनौ । चिदिति पूरणः । युवां शुश्रुवांसा श्रुतवंतौ संतौ पुरूणि बहूनि ब्रह्माणि परिवृढानि कर्माणि स्तुतिलक्षणान्यृषीणामस्माकं संबंधीन्यभि चक्षाथे । अभिपश्यथो युवां । अतो जनाय जनस्य यजमानस्य मम वरं यज्ञं प्रति प्र यातं । वां युवयोश्चनिष्ठोक्तलक्षणा सुमतिरनुग्रहमतिरस्मे अस्मास्वस्तु । भवतु ॥

यो वां॑ य॒ज्ञो नास॑त्या ह॒विष्मा॑न्कृ॒तब्र॑ह्मा सम॒र्यो॒३॒॑ भवा॑ति ।
उप॒ प्र या॑तं॒ वर॒मा वसि॑ष्ठमि॒मा ब्रह्मा॑ण्यृच्यंते यु॒वभ्यां॑ ॥६॥

यः । वा॒ं । य॒ज्ञः । ना॒स॒त्या॒ । ह॒विष्मा॑न् । कृ॒तऽब्र॑ह्मा । स॒ऽम॒र्यः॑ । भवा॑ति ।
उप॑ । प्र । या॒तं॒ । वरं॑ । आ । वसि॑ष्ठं । इ॒मा । ब्रह्मा॑णि । ऋ॒च्यं॒ते॒ । यु॒वऽभ्यां॑ ॥६॥

हे नासत्याश्विनौ वां युवयोर्यो यज्ञो यजमानः समर्य ऋत्विग्भिर्मर्त्यैः सहितः सन् हविष्मान् हविषा

आ। गोऽमता। नासत्या। रथेन। अश्वऽवता। पुरुऽचंद्रेण। यातं।
अभि। वां। विश्वाः। निऽयुतः। सचंते। स्पार्हया। श्रिया। तन्वा। शुभाना ॥१॥

हे नासत्याश्विनौ गोमता गोयुक्तेनाश्वावताश्वयुक्तेन। अश्वैर्वृषभैश्चोढेनेत्यर्थः। यद्वा। गोमता गोप्रदेन। पुरुश्चंद्रेण बहुधनेन। धनप्रदेनेत्यर्थः। तादृशेन रथेना यातं। आगच्छतं। वां विश्वा बह्व्यो नियुतः स्तुतयः सचंते सेवंतेऽस्मत्प्रेरिताः। हे स्पार्हया स्पृहणीयया श्रिया शोभया तन्वा शरीरेण च शुभाना दीप्यमानौ युवां ॥

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बंधुरुत तस्य वित्तं ॥२॥
आ। नः। देवेभिः। उप। यातं। अर्वाक्। सऽजोषसा। नासत्या। रथेन।
युवोः। हि। नः। सख्या। पित्र्याणि। समानः। बंधुः। उत। तस्य। वित्तं ॥२॥

हे नासत्याश्विनौ युवां देवेभिरितरैर्देवैः सह सजोषसा समानप्रीतौ परस्परं संतौ नोऽस्माकमर्वागभिमुखं रथेना यातं। आगच्छतं। आगमने बंधुत्वातिशयमाह। युवोर्युवयोर्नोऽस्माकं च सख्या सख्यानि पित्र्याणि पितृतः प्राप्तानि। नेदानीं स्तुत्याद्युपाधिना प्राप्तानि भवंतीत्यर्थः। तदेवाह। उतापि च युवयोर्मम च बंधुर्बंधकः पितामहः समान एक एव। तस्य वित्तं ॥ तस्येति कर्मणि षष्ठी ॥ तं बंधुं तद्बंधुत्वं वा वित्तं। जानीतं ॥ विवस्वान्वरुणश्चोभावपि कश्यपाददितेर्जातौ विवस्वानश्विनोर्जनको वरुणो वसिष्ठस्येतीत्थेवं समानबंधुत्वं। तथा च बृहद्देवतायामुक्तं। अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरण्यूस्त्रिशिराः सह। स वै सरण्यूं प्रायच्छत्स्वयमेव विवस्वते ॥ ततः सरण्य्वां जाते ते यमयम्यौ विवस्वतः। तावप्युभौ यमावेव ह्यास्तां यम्या च वै यमः ॥ सृष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्यूः सदृशीं स्त्रियं। निक्षिप्य मिथुनं तस्यामश्वा भूत्वा प्रचक्रमे ॥ अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु तस्यामजनयन्मनुं। राजर्षिरासीत्स मनुर्विवस्वानिव तेजसा ॥ स विज्ञाय अपक्रांतां सरण्यूमात्मरूपिणीं। त्वाष्ट्रीं प्रतिजगामाशु वाजी भूत्वा सलक्षणः ॥ सरण्यूस्तु विवस्वंतं विज्ञाय हयरूपिणं। मैथुनायोपचक्राम तां च तत्रारुरोह सः ॥ ततस्तयोस्तु वेगेन शुक्रं तदपतद्भुवि। उपाजिघ्रच्च सा त्वश्वा तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ॥ आघ्राणमाचाच्छुक्रं तत्कुमारौ संबभूवतुः। नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ स्तुतावश्विनावपीति ॥

उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥३॥
उत्। ऊं इति। स्तोमासः। अश्विनोः। अबुध्रन्। जामि। ब्रह्माणि। उषसः। च। देवीः।
आऽविवासन्। रोदसी इति। धिष्ण्ये इति। इमे इति। अच्छ। विप्रः। नासत्या।
विवक्ति ॥३॥

स्तोमासः स्तोमाः स्तवा अश्विनाश्विनावुदबुध्रन्। उत्कृष्टं बोधयंति। उ इति पूरणः। जामि। बंधुनामैतत्। बंधुस्थानीयानि ब्रह्माणि परिवृढानि कर्माणि देवीर्द्योतमाना उषसः। चकारादश्विनौ च। अबुध्रन्। विप्रो मेधावी वसिष्ठ इमे रोदसी द्यावापृथिव्यौ धिष्ण्ये धिषणार्हे स्तुत्ये आविवासन् परिचरन् नासत्याश्विनावच्छाभिमुखं विवक्ति। स्तौति ॥

वि चेदुच्छंत्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरंते।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्बृहदग्नयः समिधा जरंते ॥४॥

वि। च। इत्। उच्छंति। अश्विना। उषसः। प्र। वां। ब्रह्माणि। कारवः। भरंते।
ऊर्ध्वं। भानुं। सविता। देवः। अश्रेत्। बृहत्। अग्नयः। सम्ऽइधा। जरंते ॥४॥

हे अश्विनौ उषास उषसो व्युच्छंति चेत्। तमांसि विवासयंति। चेदिति पूरणस्यार्थे वा। स च वक्ष्यमाणसूर्याद्यपेक्षकः॥ चेद्योगादनिघातः॥ अतो युवयोः स्तुतिसमयत्वाद्ब्रह्माणि स्तोत्राणि कारवः स्तोतारः प्र भरंते। प्रकर्षेण संपादयंति। ऊर्ध्वमश्रेत् आश्रयति भानुं तेजः सविता देवः। अग्नयोऽपि समिधा समिंधनेन बृहदतिमहज्जरंते। स्तूयंते॥

आ पश्चातादिति पंचम्याश्विने पशौ वपाया अनुवाक्या। सूचितं च। आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादा गोमता नासत्या रथेन। आ० ३. ८.। इति॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पांचजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
आ। पश्चातात्। नासत्या। आ। पुरस्तात्। आ। अश्विना। यातं। अधरात्। उदक्तात्।
आ। विश्वतः। पांचऽजन्येन। राया। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥५॥

हे नासत्याश्विनौ पश्चातात्पश्चाद्देशादा यातं। तथा पुरस्तात्पूर्वस्माद्देशात् तथाधरादधस्तनाद्देशाद्दक्षिणत उदक्तादुदग्देशात्। सर्वत्रा यातमिति संबंधः। किं बहुना विश्वतः सर्वस्माद्देशात्पांचजन्येन पंचजनहितेन राया धनेन सहा यातं। निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णाः पंचजनाः॥ ॥१९॥

अतारिष्मेति पंचर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमाश्विनं। अतारिष्मेत्यनुक्रमणिका॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयंतो दधानाः।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१॥
अतारिष्म। तमसः। पारं। अस्य। प्रति। स्तोमं। देवऽयंतः। दधानाः।
पुरुऽदंसा। पुरुऽतमा। पुराऽजा। अमर्त्या। हवते। अश्विना। गीः ॥१॥

अस्य तमसोऽज्ञानस्य तत्कार्यस्य जननमरणवतः संसारदुःखस्य अथवा प्रकृतत्वात् प्रयोगविषयाज्ञानस्य पारमतारिष्म। तीर्णाः स्म। किं कुर्वंतः। देवयंतो देवकामाः स्तोमं स्तुतिं प्रति दधाना देवेषु कुर्वाणाः। पुरुदंसा बहुकर्माणौ पुरुतमा प्रभूततमौ पुराजा पूर्वजातावत एवामर्त्यामरणधर्माणावश्विनाश्विनौ गीर्गरिता स्तोता वसिष्ठो हवते। स्तौति। आह्वयति वा॥

न्युं प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वंदते च।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥२॥
नि। ऊं इति। प्रियः। मनुषः। सादि। होता। नासत्या। यः। यजते। वंदते। च।
अश्नीतं। मध्वः। अश्विना। उपाके। आ। वां। वोचे। विदथेषु। प्रयस्वान् ॥२॥

प्रियो युवयोः प्रियभूतो मनुषो मानुषो मनुषः सकाशाज्जातो वा होता देवानामाह्वाता स्तोतायं नि षादि। न्यसादि। निषण्णो भवति। युवयोः कर्मणि वर्तत इत्यर्थः। हे नासत्याश्विनौ यो यजते यागं करोति

वंदते स्तौति च तस्य संबंधिनं मध्वो मधुरं सोमरसं हे अश्विनाश्विनौ उपाके अंतिके एव समीपे स्थितैवाग्नीतं। पिबतमित्यर्थः। विदथेषु यज्ञेषु वां युवां प्रयस्वान् अन्नवान्सन्ना वोचे। आह्वये ॥

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथां।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥३॥
अहेम। यज्ञं। पथां। उराणाः। इमां। सुऽवृक्तिं। वृषणा। जुषेथां।
श्रुष्टीवाऽइव। प्रऽइषितः। वां। अबोधि। प्रति। स्तोमैः। जरमाणः। वसिष्ठः ॥३॥

उराणा उरु स्तोत्रं कुर्वाणाः स्तोतारो वयं पथां पततामागच्छतां देवानामर्थाय यज्ञं यागं तत्साधनं हविर्वाहेम। वर्धयेम। हे वृषणा वर्षकौ कामानां इमां सुवृक्तिं शोभनस्तुतिं जुषेथां। सेवेथां। वां युवां श्रुष्टीवेव। श्रुष्टीति क्षिप्रनाम। क्षिप्रगंता दूत इव प्रेषितोऽहमबोधि। बोधयति शीघ्रं गंतव्यमिति। किं कुर्वन्। स्तोमैः स्तोत्रैः प्रति जरमाणः प्रतिस्तुवन्। कः। वसिष्ठोऽहमबोधीति ॥

उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी।
समंधांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥४॥
उप। त्या। वह्नी इति। गमतः। विशं। नः। रक्षःऽहना। संऽभृता। वीळुपाणी
इति वीळुऽपाणी।
सं। अंधांसि। अग्मत। मत्सराणि। मा। नः। मर्धिष्टं। आ। गतं। शिवेन ॥४॥

त्या त्यौ तौ वह्नी हविषां वोढारौ नोऽस्माकं विशं प्रजामृत्विजमुप गमतः। उपगच्छतां। कीदृशौ तौ। रक्षोहणा रक्षसां हंतारौ संभृता सम्यग्भृतौ पुष्टांगौ वीळुपाणी दृढपाणी। यद्वा। अयमर्धर्चोऽश्वपरतया व्याख्येयः। तथा सति तौ रथस्य वोढारौ दृढपादावश्विनोरश्वावुपगच्छतामिति तस्यार्थः। अंधांस्यन्नानि मत्सराणि मदकराणि सोमाः समग्मत। समगच्छंत युवां। नोऽस्मान् मा मर्धिष्टं। मा हिंस्तं। किंतु शिवेन मंगलेन धनेन सार्धमा गतं। आगच्छतं ॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पांचजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
आ। पश्चातात्। नासत्या। आ। पुरस्तात्। आ। अश्विना। यातं। अधरात्। उदक्तात्।
आ। विश्वतः। पांचऽजन्येन। राया। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥५॥

आ पश्चातादिति पंचम्या विनियोगो व्याख्या च गता ॥ ॥२०॥

इमा उ वामिति षळृचं चतुर्थं सूक्तमाश्विनं वसिष्ठस्यार्षं। आद्यातृतीयापंचम्यो बृहत्यः शिष्टाः सतोबृहत्यः। तथा चानुक्रांतं। इमा उ वां षट् प्रगाथमिति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे च सूक्तं। सूत्रितं च। इमा उ वामयं वां। आ० ४.१५.। इति ॥ दशरात्रे पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्र इमा उ वामित्ययमाश्विनस्तृचः। सूत्रितं च। इमा उ वां दिविष्टय पिबा सुतस्य रसिनः। आ० ७.१२.। इति ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवंते अश्विना।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

इमाः। ऊं इति। वां। दिविष्टयः। उस्रा। हवंते। अश्विना।
अयं। वां। अह्वे। अवसे। शचीवसू इति शचीऽवसू। विशंऽविशं। हि। गच्छथः॥१॥

इमा दिविष्टयो दिवमिच्छंत्यः प्रजा ऋत्विजोऽपि। उ इति चार्थे। हे अश्विना उस्रा वासकौ वां हवंते। आह्वयंति। अयं वसिष्ठोऽपि हे शचीवसू कर्मधनौ वां युवामवसेऽस्मद्रक्षणाय युवयोस्तर्पणाय वाह्वे। आह्वयामि। किमर्थमेवं प्रजा अप्यहमपीत्यादरोक्तिरिति तत्राह। हि यस्मात्कारणाद्युवां विशं विशं प्रजां प्रजां प्रति गच्छथः॥

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु॥२॥
युवं। चित्रं। ददथुः। भोजनं। नरा। चोदेथां। सूनृताऽवते।
अर्वाक्। रथं। सऽमनसा। नि। यच्छतं। पिबतं। सोम्यं। मधु॥२॥

हे अश्विनौ युवं युवां चित्रं चायनीयं भोजनं धनं ददथुः। धारयेथे। तद्धनं सूनृतावते स्तुतिवते स्तोत्रे चोदेथां। प्रेरयतं। तदर्थं समनसा समानमनस्कौ संतौ रथं युवयोः संबंधिनमर्वागस्मदभिमुखं नि यच्छतं। नियमतं। तथा कृत्वा सोम्यं सोमसंबंधिनं मधु मधुररसं पिबतं॥

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतं॥३॥
आ। यातं। उप। भूषतं। मध्वः। पिबतं। अश्विना।
दुग्धं। पयः। वृषणा। जेन्यावसू इति। मा। नः। मर्धिष्टं। आ। गतं॥३॥

हे अश्विना युवामा यातं। आगच्छतं। आगत्य चोप समीपे भूषतं। भवतं। मध्वो मधुरं सोमरसं पिबतं। पीत्वा च हे वृषणा वर्षकौ हे जेन्यावसू जेतव्यधनौ। जितधनावित्यर्थः। युवां पयो वृष्ट्युदकमंतरिक्षाद्दुग्धं। नोऽस्मान् मा मर्धिष्टं। मा हिंस्तं। ईदृशप्रार्थनाकरणमेव हिंसा। आ गतं। आगच्छतं शीघ्रं॥

अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयंति बिभ्रतः।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू॥४॥
अश्वासः। ये। वां। उप। दाशुषः। गृहं। युवां। दीयंति। बिभ्रतः।
मक्षुयुऽभिः। नरा। हयेभिः। अश्विना। आ। देवा। यातं। अस्मयू इत्यस्मऽयू॥४॥

येऽश्वासोऽश्वा वां युवयोः स्वभूता दाशुषो हविर्दातुर्गृहं युवां बिभ्रतो धारयंतो दीयंति। गमयंतीत्यर्थः। मक्षूयुभिः शीघ्रगंतृभिर्हयेभिर्हयैरश्वैर्हे नरा नेतारावश्विनाश्विनौ देवा देवौ अस्मयू अस्मान्कामयमानावा यातं। अस्मदभिमुखमागच्छतं॥

अधा ह यंतो अश्विना पृक्षः सचंत सूरयः।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या॥५॥

अध । ह । यंतः । अश्विना । पृक्षः । सचंत । सूरयः ।
ता । यंसतः । मघवत्ऽभ्यः । ध्रुवं । यशः । छर्दिः । अस्मभ्यं । नासत्या ॥५॥

अधा ह्यपि चाश्विनाश्विनौ यंतः स्तुतिभिर्गच्छंतो यजमानाः सूरयो मेधाविनः स्तोतारः पृक्षोऽन्नं प्रभूतं सचंत । सेवंते । संयंति वा । ता तौ युवां मघवद्भ्योऽन्नवद्भ्योऽस्मभ्यं ध्रुवमविचलितं यशोऽन्नं यश एव वा छर्दिर्गृहं यंसतः । प्रयच्छतं । हे नासत्याश्विनौ ॥

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानां ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियंति सुक्षितिं ॥६॥
प्र । ये । ययुः । अवृकासः । रथाःऽइव । नृऽपातारः । जनानां ।
उत । स्वेन । शवसा । शूशुवुः । नरः । उत । क्षियंति । सुऽक्षितिं ॥६॥

ये यजमाना अवृकासः परकीयधनस्यानादातारो जनानां मनुष्याणां मध्ये नृपातार ऋत्विग्रूपाणां नृणां रक्षितारः संतो ययुः युवां प्राप्नुवंति हविर्भिः । प्राप्तौ दृष्टांतः । रथा इव व्रीह्यादिपूर्णा रथा यथा प्राप्नुवंति स्वामिगृहं । उतेत्ययमुत्तरवाक्यापेक्षः । अपि च ते नरो यजमानाः स्वेन शवसा स्वीयेन बलेन शूशुवुः । वर्धंते । उतापि च सुक्षितिं सुनिवासं क्षियंति । गच्छंति । प्राप्नुवंति ॥ ॥२१॥

व्युषा आव इत्यष्टर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं । अत्रानुक्रमणिका । व्युषा अष्टावुषस्यं तु वा इति । तु वा इत्युक्तत्वात्तुह्यादिपरिभाषयेदमादीनि सप्त सूक्तान्युषोदेवत्यानि ॥ प्रातरनुवाक उषस्ये क्रतौ त्रैष्टुभे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदमादीनि षट् सूक्तानि । तथा च सूत्र्यते । व्युषा आवो दिविजा इति षळिति त्रैष्टुभं । आ० ४. १४. । इति ॥ ऋग्विधान आख्यातो विनियोगोऽत्र लिख्यते । रात्र्या अपरकाले य उत्थाय प्रयतः शुचिः । व्युषा इत्युपतिष्ठेत षड्भिः सूक्तैः कृतांजलिः ॥ प्राप्नुयात्स हिरण्यानि नानारूपं धनं बहु । गा अश्वान्पुरुषान्धान्यं स्त्रियो वासांस्यजाविकं । ऋग्वि० २. २८. । इति ॥

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमंगिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१॥
वि । उषाः । आवः । दिविऽजाः । ऋतेन । आविःऽकृण्वाना । महिमानं । आ । अगात् ।
अप । द्रुहः । तमः । आवः । अजुष्टं । अंगिरःऽतमा । पथ्याः । अजीगरिति ॥१॥

इयमुषा दिविजा दिव्यंतरिक्षे प्रादुर्भूता सती व्यावः । व्यौच्छत् । विभानं कृतवतीत्यर्थः ॥ वसिर्निवासवाच्यत्र विपूर्वो व्युच्छने भवेत् । छंदस्यपि दृश्यत इत्याट् । दृशिग्रहणस्य विध्यंतरोपसंग्रहणार्थत्वादनजादेरप्याडागमः । हल्ङ्याब्भ्य इति लोपः ॥ सैवोषा ऋतेन तेजसा महिमानं स्वमहत्त्वमाविष्कृण्वानागात् । आगतवती । आगत्य च द्रुहोऽस्मद्द्रोग्धॄनजुष्टं सर्वेषामप्रियं तमश्चापावः । अपवृणोति । किंचांगिरस्तमा । अंगेर्गत्यर्थादंगिराः । गंतृतमा पथ्याः पदवीरजीगः । उद्गिरति । प्राणिनां व्यवहाराय प्रकाशयतीत्यर्थः ॥

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यंधि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युं ॥२॥
महे । नः । अद्य । सुविताय । बोधि । उषः । महे । सौभगाय । प्र । यंधि ।
चित्रं । रयिं । यशसं । धेहि । अस्मे इति । देवि । मर्तेषु । मानुषि । श्रवस्युं ॥२॥

अथ नोऽस्माकं महे महते सुविताय सुखप्राप्तये सुखगमनाय वा बोधि। भव। किंच हे उषः महे महते सौभगाय सौभाग्याय प्र यंधि। प्रयच्छास्मान्। किंच चित्रं चायनीयं यशसं यशोयुक्तं रयिं धनं धेहि धारयास्मे अस्मासु। हे मानुषि मनुष्यहिते देवि मर्तेष्वस्मासु श्रवस्युमन्नवंतं पुत्रं धेहीत्यनुषंगः॥

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः।
जनयंतो दैव्यानि व्रतान्यापृणंतो अंतरिक्षा व्यस्थुः॥३॥
एते। त्ये। भानवः। दर्शतायाः। चित्राः। उषसः। अमृतासः। आ। अगुः।
जनयंतः। दैव्यानि। व्रतानि। आऽपृणंतः। अंतरिक्षा। वि। अस्थुः॥३॥

दर्शताया दर्शनीयायाः प्रकाशयुक्ताया उषस एते पुरो दृश्यमानास्त्ये ते प्रसिद्धाश्चित्राः पूज्या आश्चर्यभूता वा अमृतासोऽमरणा अनश्वरा भानवो रश्मय आगुः। आगच्छंति। किं कुर्वंतः। दैव्यानि देवानां संबंधीनि व्रतानि कर्माणि जनयंत उत्पादयंतः। तदनुकूलप्रकाशप्रदानात्तदुत्पादकत्वमेषां। अंतरिक्षांतरिक्षाण्यापृणंत आपूरयंतः। एकस्यैवांतरिक्षस्य वायुमेघपक्षिणामालंबनोपाधिना त्रिविधत्वं। अतो बहुवचनमुपपन्नं। एवं कुर्वंतो भानवो व्यस्थुः। विविधं तिष्ठंति। सरंति॥

एषा स्या युजाना पराकात्पंच क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यंती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी॥४॥
एषा। स्या। युजाना। पराकात्। पंच। क्षितीः। परि। सद्यः। जिगाति।
अभिऽपश्यंती। वयुना। जनानां। दिवः। दुहिता। भुवनस्य। पत्नी॥४॥

एषा स्या सोषाः पराकाद्दूरदेशाद्दूरे स्थितापि युजानोद्योगं कुर्वाणा प्रकाशाय पंच क्षितीर्निषादपंचमांश्चतुरो वर्णान् सद्यः परि जिगाति। किं कुर्वती। जनानां प्राणिनां वयुना प्रज्ञानान्यभिपश्यंती साक्षित्वेनावलोकयंती। कीदृशी सा। दिवो दुहिता दुहितृस्थानीया भुवनस्य भूतजातस्य पत्नी पालयित्री। परि जिगातीत्यन्वयः॥

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनां।
ऋषिष्टुता जरयंती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना॥५॥
वाजिनीऽवती। सूर्यस्य। योषा। चित्रऽमघा। रायः। ईशे। वसूनां।
ऋषिऽस्तुता। जरयंती। मघोनी। उषाः। उच्छति। वह्निऽभिः। गृणाना॥५॥

वाजिनीवती बह्वन्ना। यद्यप्युषोनामैतत् तथापि चित्रामघेत्यस्याप्युषोनामकस्य पृथक्विद्यमानत्वाद्वैको योगरूढोऽवगंतव्यः। सूर्यस्य योषा योषिच्चित्रामघा विचित्रधना विचित्ररश्म्याख्यधना वा रायो धनस्याविशिष्टस्य तस्य वसूनां देवमनुष्यादिसर्वाश्रयाणां धनानां चेशे। ईष्टे। अथवा वसवो वासका रश्मयः। तेषामपीष्टे। ऋषिष्टुता ऋषिभिः स्तुता जरयंती प्राणिजातानि। उषाः खलु पुनःपुनरावर्तमाना प्राणिनामायुः क्षपयति। मघोनी धनवत्युषा वह्निभिः कर्मवोढृभिर्यजमानैर्गृणाना स्तूयमानोच्छति। विभानं करोति॥

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहंतः।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय॥६॥

प्रति । द्युतानां । अरुषासः । अश्वाः । चित्राः । अदृश्रन् । उषसं । वहंतः ।
याति । शुभ्रा । विश्वऽपिशा । रथेन । दधाति । रत्नं । विधते । जनाय ॥ ६ ॥

द्युतानां द्योतमानामुषसं वहंतो धारयंतोऽरुषास आरोचमानाश्चित्राश्चायनीया अश्वाः प्रत्यदृश्रन् । प्रतिदृश्यंते । सा चोषाः शुभ्रा दीप्यमाना विश्वपिशा बहुरूपेण रथेन याति । सर्वत्र गच्छति । विधते परिचरते जनाय रत्नं रमणीयं धनं दधाति । ददाति च ॥

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशंत ॥ ७ ॥
सत्या । सत्येभिः । महती । महत्ऽभिः । देवी । देवेभिः । यजता । यजत्रैः ।
रुजत् । दृळ्हानि । ददत् । उस्रियाणां । प्रति । गावः । उषसं । वावशंत ॥ ७ ॥

सत्यान्यैरबाध्या महती पूजनीया प्रवृद्धा वा गुणैर्देवी द्योतमाना यजता यजनीयोषाः सत्येभिः सत्यैर्महद्भिर्देवैर्यजत्रैर्यष्टव्यैः किरणैर्निपातभागिभरन्यैर्देवैर्वा सहिता सती दृळ्हान्यत्यंतं स्थिराणि तमांसि रुजत् । भिनत्ति । उस्रियाणां । गोनामैतत् । उत्स्राविण आसां भोगा इति तद्व्युत्पत्तिः । तासां संचाराय ददत् । ददाति । सामर्थ्यात्प्रकाशमित्यर्थः । अथवोस्रिया गा ददत् । ददाति स्तोतृभ्यः । किंच गावः । उपलक्षणमेतत् । सर्वेऽपि तमोऽवरुद्धाः प्राणिन उषसं वावशंत । उशंति । कामयंते । विशेषेण गवां प्रभाते संचारार्थमुषसोऽपेक्षितत्वात्तासां प्राधान्येनोक्तिः ॥

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
नु । नः । गोऽमत् । वीरऽवत् । धेहि । रत्नं । उषः । अश्वऽवत् । पुरुऽभोजः । अस्मे इति ।
मा । नः । बर्हिः । पुरुषता । निदे । कः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ८ ॥

हे उषः नु नोऽस्मभ्यं गोमद्बहुभिर्गोभिर्युक्तं वीरवद्वीरैः पुत्रैरुपेतं रत्नं रमणीयं धनं पुरुभोजो बह्वन्नं चास्मे अस्मासु धेहि । देहि । पादभेदादस्मे इति पुनरभिधानं । नोऽस्माकं बर्हिर्यज्ञं पुरुषता पुरुषतायां पुरुषसमूहेषु । अस्मत्सदृशेष्वित्यर्थः । निदे निंदायै मा कः । मा कार्षीः । यथा ते निंदंति तथा मा कुर्वित्यर्थः ॥ ॥ २२ ॥

उदु ज्योतिरिति सप्तर्चं षष्ठं सूक्तं त्रैष्टुभमुषस्यं । तथा चानुक्रांतं । उदु सप्तेति ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः ॥

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥
उत् । ऊं इति । ज्योतिः । अमृतं । विश्वऽजन्यं । विश्वानरः । सविता । देवः । अश्रेत् ।
क्रत्वा । देवानां । अजनिष्ट । चक्षुः । आविः । अकः । भुवनं । विश्वं । उषाः ॥ १ ॥

अमृतममृतत्वसाधकमविनाशि वा विश्वजन्यं विश्वेषां जनानां हितकरं ज्योतिर्विश्वानरः सर्वेषां नेता सविता देव उदश्रेत् । ऊर्ध्वं श्रयति । देवानां व्यवहर्तॄणां स्तोतॄणां वा यजमानानां क्रत्वा कर्मणा निमित्तेन । यागानुष्ठानार्थमित्यर्थः । तदर्थं यद्वा देवानां चक्षुश्चक्षुःस्थानीयमौषसं तेजः क्रत्वा कर्मणा निमित्तेनाजनिष्ट ।

प्रादुरभूत्। उत्पन्ना चोषा विश्वं सर्वं भुवनं भूतजातमाविरकः। प्रादुरकः। अकरोत्। समस्तं जगदाविष्कृतवती ॥

प्र मे॒ पंथा॑ देव॒याना॑ अदृश्र॒न्नम॑र्धंतो॒ वसु॑भि॒रिष्कृ॑तासः ।
अभू॑दु के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑त्प्रती॒च्याग॒दधि॑ ह॒र्म्येभ्यः॑ ॥२॥
प्र । मे॒ । पंथाः॑ । दे॒व॒ऽयानाः॑ । अ॒दृ॒श्र॒न् । अम॑र्धंतः । वसु॑ऽभिः । इष्कृ॑तासः ।
अभू॑त् । ऊं॒ इति॑ । के॒तुः । उ॒षसः॑ । पु॒रस्ता॑त् । प्र॒ती॒ची । आ । अ॒गा॒त् । अधि॑ । ह॒र्म्येभ्यः॑ ॥२॥

मे मया देवयाना देवप्रापकाः पंथाः पंथानः प्रादृश्रन्। प्रदृश्यंते। कीदृशाः पंथानः। अमर्धंतोऽहिंसंतो वसुभिस्तेजोभिरिष्कृतासः संस्कृताः। पुरस्तात् पूर्वस्यां दिश्युषसः केतुः प्रज्ञापकं तेजोऽभूत्। अचेति। ज्ञायते। सोषाश्च प्रतीची प्रत्यगंचनास्मदभिमुखी हर्म्येभ्योऽध्युच्छ्रितेभ्यः प्रदेशेभ्यः। हर्म्यशब्द उन्नतप्रदेशोपलक्षकः। आगात्। आगच्छति ॥

तानीदहा॑नि बहु॒लान्या॑सन्या प्रा॒चीन॒मुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
यतः॒ परि॑ जा॒र इ॑वा॒चरं॑त्युषो॑ ददृ॒क्षे न पुन॑र्य॒तीव॑ ॥३॥
तानि॑ । इत् । अहा॑नि । ब॒हु॒लानि॑ । आ॒स॒न् । या । प्रा॒चीन॑म् । उत्ऽइ॑ता । सूर्य॑स्य ।
यतः॑ । परि॑ । जा॒रःऽइ॑व । आ॒ऽचरं॑ती । उषः॑ । द॒दृ॒क्षे । न । पुनः॑ । य॒तीऽइ॑व ॥३॥

हे उषः तानीत्तान्येव तव तेजांसि बहुलान्यहान्यासन्। उषःप्रकाशयुक्तस्यैव कालस्याहःशब्दव्यवहारात्। तानीत्युक्तं कानीत्याह। या यानि सूर्यस्योदितोदितावुदये सति प्राचीनं तस्य प्राग्देशं प्रत्युदयंति। यद्वा। सूर्यस्य प्राचीने देशे या यान्युदितोदितानि तानीत्यर्थः। हे उषः यतो यैश्च तेजोभिः परि ददृक्षे दृश्यसे त्वं। जार इव पत्याविवाचरंती समीपे संचरंती साध्वी नारीव जारे रात्रेर्जरयितरि सूर्ये संचरंती त्वं दृश्यसे। यथा लोके दुष्टं भ्रमणशीलमपि पतिमत्यज्यैव साध्वी संचरति तद्वत् तमविमुंचती त्वमित्यर्थः। न पुनर्यतीव यती पतिं परित्यज्येतस्ततः संचरंती व्यभिचारिणीव सूर्यमपरित्यजंती त्वं। पुनरित्ययं वैलक्षण्यद्योतनार्थः। एवं यैस्तेजोभिर्युक्ता परिदृश्यसे तान्येवाहान्यासन्निति संबंधः ॥

त इद्दे॒वानां॑ सध॒माद॑ आसन्नृ॒तावा॑नः क॒वयः॑ पू॒र्व्यासः॑ ।
गू॒ळ्हं ज्योतिः॑ पि॒तरो॒ अन्व॑विंदन्स॒त्यमं॑त्रा अजनयन्नु॒षासं॑ ॥४॥
ते । इत् । दे॒वानां॑ । स॒ध॒ऽमादः॑ । आ॒स॒न् । ऋ॒तऽवा॑नः । क॒वयः॑ । पू॒र्व्यासः॑ ।
गू॒ळ्हं । ज्योतिः॑ । पि॒तरः॑ । अनु॑ । अ॒विं॒द॒न् । स॒त्यऽमं॑त्राः । अ॒ज॒न॒य॒न् । उ॒षसं॑ ॥४॥

त इत्तेऽंगिरस एवर्षीणां मध्ये देवानां सधमादः सह मादयंत आसन्। अभवन्। त इत्युक्तं क इत्याह। य ऋतावानः सत्यवंतः कवयोऽनूचानाः। ये वा अनूचानास्ते कवयः। ऐ॰ ब्रा॰ २. ३८.। इति श्रुतेः। पूर्व्यासः पूर्वकालीनाः पितरः पालयितारः सर्वस्यांगिरसो गूळ्हं तमसावृतं ज्योतिः सौर्यं तेजोऽन्वविंदन् लब्धवंतो मंत्रसामर्थ्यात् ते सत्यमंत्राः सत्यस्तुतयः संत उषासमुषसमजनयन्। प्रादुरकुर्वन्। तुरीयेण ब्रह्मणाविंददत्रिः। ऋ॰ ५. ४०. ६.। अत्रयस्तमन्वविंदन्। ऋ॰ ५. ४०. ९.। इति निगमौ। अत्रांगिरसां स्तुत्योषस एव स्तुतिर्ज्ञातव्या ॥

स॒मा॒न ऊ॒र्वे अधि॒ संग॑तासः॒ सं जा॑नते॒ न य॑तंते मि॒थस्ते ।
ते दे॒वानां॒ न मि॑नंति व्र॒तान्यम॑र्धंतो॒ वसु॑भि॒र्याद॑मानाः ॥५॥

समाने। ऊर्वे। अधि। सम्ऽगतासः। सं। जानते। न। यतंते। मिथः। ते।
ते। देवानां। न। मिनंति। व्रतानि। अमर्धंतः। वसुऽभिः। यादमानाः ॥ ५॥

समाने सर्वेषां साधारणे ऊर्वे गोसमूहे पणिभिरपहृते पुनर्लब्धव्ये सति। अधीत्यनर्थकः। संगतासो मिलिताः संतस्ते सं जानते। एकबुद्धयो भवंति। न मिथः परस्परं यतंते। सहैव साधनमनुतिष्ठंतीत्यर्थः। तेऽंगिरसो देवानां व्रतानि कर्माणि यागलक्षणानि न मिनंति। न हिंसंति। किंतु परिपालयंतीत्यर्थः। किं कुर्वंतः। अमर्धंतोऽहिंसंतो वसुभिर्वासकैस्तेषसां तेजोभिर्यादमाना गच्छंतः॥

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६॥
प्रति। त्वा। स्तोमैः। ईळते। वसिष्ठाः। उषःऽबुधः। सुऽभगे। तुस्तुऽवांसः।
गवां। नेत्री। वाजऽपत्नी। नः। उच्छ। उषः। सुऽजाते। प्रथमा। जरस्व ॥ ६॥

हे सुभगे देव्युषः त्वा त्वामुषर्बुध उषसि बुध्यंतस्तुष्टुवांसः स्तुवंतो वसिष्ठाः स्तोमैः स्तोत्रैरीळते। स्तुवंति। गवां नेत्री प्रापयित्री वाजपत्न्यन्नस्य पालयित्री। अन्नदात्रीत्यर्थः। ईदृशी त्वं नोऽस्मदर्थमुच्छ। विभाहि। हे उषः सुजाते सुप्रादुर्भावे प्रथमेतरदेवेभ्यो मुख्यभूता जरस्व॥

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छंती रिभ्यते वसिष्ठैः।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७॥
एषा। नेत्री। राधसः। सूनृतानां। उषाः। उच्छंती। रिभ्यते। वसिष्ठैः।
दीर्घऽश्रुतं। रयिं। अस्मे इति। दधाना। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥ ७॥

एषोषा राधसः स्तोतुः सूनृतानां स्तुतीनां नेत्री सत्युच्छंती तमो विवासयंती वसिष्ठैर्वसिष्ठगोत्रोत्पन्नै रिभ्यते। स्तूयते। दीर्घश्रुतं दीर्घं श्रूयमाणं सर्वत्र प्रसिद्धं रयिं धनमस्मे अस्मासु दधाना धारयंती॥ ॥ २३॥

उषो रुरुच इति षडृचं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमुषस्यं। तथा चानुक्रांतं। उषो रुरुचे षडिति॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः॥

उषो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवंती चरायै।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १॥
उषो इति। रुरुचे। युवतिः। न। योषा। विश्वं। जीवं। प्रऽसुवंती। चरायै।
अभूत्। अग्निः। सम्ऽइधे। मानुषाणां। अकः। ज्योतिः। बाधमाना। तमांसि ॥ १॥

इयमुषा उषो समीप एव सूर्यस्य रुरुचे। दीप्यते। युवतिर्यौवनोपेता योषा न योषिदिव। सा यथा वस्त्राभरणादिना पत्युः समीपे प्रदीप्यते तद्वत्। किं कुर्वती। विश्वं सर्वं जीवं जीवसंघं चरायै संचाराय प्रसुवंती प्रेरयंती। किंचाग्निर्मानुषाणां मनुष्याणामर्थाय समिधेऽभूत्। समिंधनीयोऽभवत्॥ तादर्थ्ये केन्॥ समिद्धः संस्तमांस्यंधकारान्बाधमाना बाधमानं बाधकं ज्योतिस्तेजःसंघमकः। अकार्षीत्। अथवा। औषसं ज्योतिस्तमांसि बाधमाना बाध्यमानान्यकः। अकरोत्॥

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥२॥
विश्वं। प्रतीची। सऽप्रथाः। उत्। अस्थात्। रुशत्। वासः। बिभ्रती। शुक्रं। अश्वैत्।
हिरण्यऽवर्णा। सुदृशीकऽसंदृक्। गवां। माता। नेत्री। अह्नां। अरोचि ॥२॥

विश्वं कृत्स्नं जगत्प्रति प्रतीच्यभिमुखी सप्रथाः सर्वतः पृथुतरोदस्थात्। उदगच्छत्। उदिता च रुशद्दीप्तं शुक्रं तेजोमयं वासो वसनीयं तेजःसमूहं बिभ्रती धारयंत्यश्वैत्। वर्धते। हिरण्यवर्णा हितरमणीयवर्णोपेता सुदृशीकसंदृक्। संदर्शयतीति संदृक् तेजः। सुष्ठु दर्शनीयं संदृक् तेजो यस्याः सा तादृशी। गवां वाचां गवामेव वा माता निर्मात्री। उषःकाले हि पक्षिमनुष्यादीनां वाचो निर्गच्छंति। गवामपि तस्मिन्काले संचारात्तन्निर्मातृत्वं। अथवा रश्मीनां निर्मात्री। अरोचि रोचतेऽह्नां नेत्री दिवसानां प्रापयित्री ॥

देवानां चक्षुः सुभगा वहंती श्वेतं नयंती सुदृशीकमश्वं।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥३॥
देवानां। चक्षुः। सुऽभगा। वहंती। श्वेतं। नयंती। सुऽदृशीकं। अश्वं।
उषाः। अदर्शि। रश्मिऽभिः। विऽअक्ता। चित्रऽमघा। विश्वं। अनु। प्रऽभूता ॥३॥

देवानां चक्षुश्चक्षुःस्थानीयं तेजो वहंती धारयंती सुभगा शोभनधना सुदृशीकं सुदर्शनमश्वं सर्वदा गंतारमादित्यं नयंती प्रापयंती। किं। श्वेतं श्वेतवर्णोपेतं सूर्यं। प्रकाशयुक्तं कुर्वतीत्यर्थः। कीदृश्युषाः। रश्मिभिः स्वकीयैर्व्यक्तादर्शि। दृश्यते च। चित्रामघा विचित्रधना विश्वमनु सर्वं जगदनुलक्ष्य प्रभूता प्रवृद्धा। सर्वजगद्व्यवहारायेत्यर्थः ॥

अंतिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥४॥
अंतिऽवामा। दूरे। अमित्रं। उच्छ। उर्वीं। गव्यूतिं। अभयं। कृधि। नः।
यवय। द्वेषः। आ। भर। वसूनि। चोदय। राधः। गृणते। मघोनि ॥४॥

हे उषः अंतिवामा। अंत्यस्मदंतिके वामं वननीयं धनं यस्याः सांतिवामा। त्वममित्रमस्मच्छत्रुं दूरेऽस्मत्तो विप्रकृष्टदेशे वर्तमानं कृत्वा व्युच्छ। विभाहि। यथामित्रो दूरे भवति तथा व्युच्छेत्यर्थः। तथोर्वीं गव्यूतिं भूमिमभयं नोऽस्माकं कृधि। कुरु। किंच द्वेषोऽस्मद्द्वेष्टॄन्यावय। अस्मत्तः पृथक्कुरु। वसूनि शत्रूणां धनान्याभर। आहर। राधो धनं चोदय प्रेरय गृणते स्तुवते मह्यं हे मघोनि धनवति ॥

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरंती न आयुः।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥५॥
अस्मे इति। श्रेष्ठेभिः। भानुऽभिः। वि। भाहि। उषः। देवि। प्रऽतिरंती। नः। आयुः।
इषं। च। नः। दधती। विश्वऽवारे। गोऽमत्। अश्वऽवत्। रथऽवत्। च। राधः ॥५॥

हे उषो देवि अस्मे अस्मभ्यं श्रेष्ठेभिः प्रशस्तैर्भानुभी रश्मिभिः प्रकाशैर्वि भाहि। प्रकाशय। किं कुर्वती।

नोऽस्माकमायुरायुष्यं प्रतिरंती वर्धयंती । हे विश्ववारे विश्वैः संभजनीये देवि नोऽस्मभ्यमिषं च गोमद्भोभिर्बलीवर्दैरुपेतमश्वावदश्वैरुपेतं रथवद्रथैरुपेतं राधो धनं च दधती वि भाहीति ॥

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयंत्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहंतं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

यां । त्वा । दिवः । दुहितः । वर्धयंति । उषः । सुऽजाते । मतिऽभिः । वसिष्ठाः ।
सा । अस्मासु । धाः । रयिं । ऋष्वं । बृहंतं । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

हे दिवो दुहितरुषः सुजाते शोभनजनने यां त्वा त्वां मतिभिः स्तोत्रैर्वसिष्ठा वर्धयंति सा त्वमस्मासु वसिष्ठेष्वृष्वं प्रदीप्तं बृहंतं महांतं रयिं धनं धाः । धेहि ॥ ॥२४॥

प्रति केतव इति पंचर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमुषस्यं । प्रति पंचेत्यनुक्रमणिका ॥ उक्तो विनियोगः ॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अंजयो वि श्रयंते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥१॥

प्रति । केतवः । प्रथमाः । अदृश्रन् । ऊर्ध्वाः । अस्याः । अंजयः । वि । श्रयंते ।
उषः । अर्वाचा । बृहता । रथेन । ज्योतिष्मता । वामं । अस्मभ्यं । वक्षि ॥१॥

अस्याः प्रथमाः प्रथमोत्पन्नाः केतवः प्रज्ञापका रश्मयः प्रत्यदृश्रन् । प्रतिदृश्यंते । अस्या अंजयो व्यंजका रश्मय ऊर्ध्वा ऊर्ध्वमुखा वि श्रयंते । विविधं सर्वत्र श्रयंति । हे उषो देवि अर्वाचास्मदभिमुखेनागच्छता बृहता महता ज्योतिष्मता तेजोवता रथेनास्मभ्यं वामं वननीयं धनं वक्षि । वहसि ॥

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणंतः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरितापं देवी ॥२॥

प्रति । सीं । अग्निः । जरते । संऽइद्धः । प्रति । विप्रासः । मतिऽभिः । गृणंतः ।
उषाः । याति । ज्योतिषा । बाधमाना । विश्वा । तमांसि । दुःऽइता । अप । देवी ॥२॥

अग्निः समिद्धः सन् सीं सर्वतः प्रति जरते । अभिवर्धते । विप्रासो विप्रा मेधाविन ऋत्विजश्च मतिभिः स्तुतिभिरुषसं गृणंतः स्तुवंतो जरंते । उषाश्च देवी ज्योतिषा विश्वा सर्वाणि तमांसि दुरितास्मद्दुरितान्यप बाधमाना याति । ऊर्ध्वं गच्छति ॥

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छंतीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टं ॥३॥

एताः । ऊं इति । त्याः । प्रति । अदृश्रन् । पुरस्तात् । ज्योतिः । यच्छंतीः । उषसः । विऽभातीः ।
अजीजनन् । सूर्यं । यज्ञं । अग्निं । अपाचीनं । तमः । अगात् । अजुष्टं ॥३॥

एता उ । उ इति पूरणः । त्यास्ताः प्रसिद्धा एता विभातीर्विभात्यो विभानं कुर्वत्यो ज्योतिस्तेजो यच्छंतीः प्रयच्छंत्य उषसः पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि प्रत्यदृश्रन् । प्रतिदृश्यंते । ता उषसः सूर्यं यज्ञमग्निं चाजीजनन् । प्रादुरकुर्वन् । उषस उदयानंतरं तेषां संभवात्तज्जनकत्वमुपचर्यते । किंचापाचीनं नीचीनमजुष्टमप्रियं । सर्वेषां दृष्टिनिरोधकत्वादप्रियत्वं । तादृशं तमोऽगात् । अपगतमभूत् ॥

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यंत्युषसं विभातीं ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहंति ॥४॥
अचेति । दिवः । दुहिता । मघोनी । विश्वे । पश्यंति । उषसं । विऽभातीं ।
आ । अस्थात् । रथं । स्वधया । युज्यमानं । आ । यं । अश्वासः । सुऽयुजः । वहंति ॥४॥

दिवो दुहिता मघोनी धनवत्युषा अचेति । सर्वैर्ज्ञायते । विश्वे सर्वेऽपि प्राणिनो विभातीमुच्छंतीमुषसं पश्यंति । तादृशी देवी स्वधयान्नेन युज्यमानं रथमास्थात् । आतिष्ठत् । आरोहति । यं रथं सुयुजः शोभनयोजना अश्वासोऽश्वा आ वहंति अभिमतदेशं प्रापयंति तं रथमास्थादिति ॥

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधंतास्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
प्रति । त्वा । अद्य । सुऽमनसः । बुधंत । अस्माकासः । मघऽवानः । वयं । च ।
तिल्विलायध्वं । उषसः । विऽभातीः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

हे उषः त्वा त्वामद्यास्मिन्काले सुमनसः शोभनस्तुतिका मघवानो हविर्लक्षणान्नवंतोऽस्माकासोऽस्माका अस्मदीयाः पुरुषा ऋत्विजः । यद्वा । मघवान इत्येतद्वयमित्येतस्य विशेषणं । हविष्मंतो वयं । प्रति बुधंत । प्रत्यबोधयन् स्तुतिभिः । हे उषसः यूयं च विभातीर्व्युच्छंत्यः सत्यस्तिल्विलायध्वं । जगत् स्निग्धभूमिकं कुरुत ॥ तिल स्नेहन इत्यस्मात्तिलुः ॥ तिलुरिला भूमिर्यस्य तत्तिल्विलं । तत्कुरुत । शिष्टं स्पष्टं ॥ ॥२५॥

व्युषा आव इति पंचर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमुषस्यं त्रैष्टुभं । व्युषा इत्यनुक्रमणिका ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः ॥

व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पंच क्षितीर्मानुषीर्बोधयंती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥१॥
वि । उषाः । आवः । पथ्या । जनानां । पंच । क्षितीः । मानुषीः । बोधयंती ।
सुसंदृक्ऽभिः । उक्षऽभिः । भानुं । अश्रेत् । वि । सूर्यः । रोदसी इति । चक्षसा ।
आवरित्यावः ॥१॥

जनानां सर्वप्राणिनां पथ्या पथि हितोषा व्यावः । व्यौच्छत् । यद्वा । जनानां हिताय व्यौच्छदिति योज्यं । किं कुर्वती । मानुषीर्मनुष्यरूपाः पंच क्षितीर्निषादपंचमांश्चतुरो वर्णान्बोधयंती । ईदृश्युषाः सुसंदृग्भिः । संदृश्यते संदर्शयतीति वा संदृक् तेजः । सुतेजोभिरुक्षभिर्गोभिर्भानुमश्रेत् । अरुणैरुषा आजिमधावत् । ऐ० ब्रा० ४. ९. । इति हि श्रुतिः । अरुण्यो गाव उषसामिति निरुक्तं । सूर्यश्च रोदसी द्यावापृथिव्यौ तमोयुक्ते चक्षसा प्रकाशकेन तेजसा व्यावः । विवृणोति ॥

व्यंजते दिवो अंतेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतंते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयंति ज्योतिर्यच्छंति सवितेव बाहू ॥२॥
वि । अंजते । दिवः । अंतेषु । अक्तून् । विशः । न । युक्ताः । उषसः । यतंते ।
सं । ते । गावः । तमः । आ । वर्तयंति । ज्योतिः । यच्छंति । सविताऽइव । बाहू इति ॥२॥

उषसोऽक्तूंस्तेजांसि दिवोऽंतरिक्षस्यांतेषु पर्यंतप्रदेशेषु व्यंजते। व्यक्तीकुर्वतीत्यर्थः। युक्ताः परस्परं संयुक्ता विशो न प्रजा इव सेना इव यतंते। प्रयतंते तमोनाशनायात्र गमनाय वा। अथ प्रत्यक्षवादः। हे उषः ते तव गावो रश्मयस्तमोऽंधकारं समा वर्तयंति। नाशयंति। ज्योतिस्तेजो यच्छंति। प्रयच्छंति। सविता सूर्यो बाहू इव ॥

अभूंदुषा इंद्रंतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यंगिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥३॥
अभूत्। उषाः। इंद्रंऽतमा। मघोनी। अजीजनत्। सुविताय। श्रवांसि।
वि। दिवः। देवी। दुहिता। दधाति। अंगिरःऽतमा। सुऽकृते। वसूनि ॥३॥

इंद्रतमा सर्वस्येश्वरतमा मघोनी धनवत्युषा अभूत्। प्रादुरभूत्। सुविताय कल्याणाय श्रवांस्यन्नान्यजीजनत्। उदपादयत्। प्रकाशितवतीत्यर्थः। दिवो दुहितांगिरस्तमा गंतृतमा। यद्वा। अंगिरोगोत्रैर्भारद्वाजैः सह रात्रेरप्युत्पत्ते रात्र्यवसानस्योषारूपत्वादंगिरस्तमेत्युच्यते। भारद्वाजे रात्रेः सहोत्पत्तिरनुक्रमण्यामुक्ता। रात्री कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी। अनु॰ ऋ॰ १०. १२७.। इति। तादृश्युषाः सुकृते यजमानाय वसूनि धनानि वि दधाति। करोति ॥

तावंदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरंदो गृणाना।
यां त्वां जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४॥
तावंत्। उषः। राधः। अस्मभ्यं। रास्व। यावंत्। स्तोतृऽभ्यः। अरंदः। गृणाना।
यां। त्वा। जज्ञुः। वृषभस्य। रवेण। वि। दृळ्हस्य। दुरः। अद्रेः। और्णोः ॥४॥

हे उषः यावद्राधो धनं स्तोतृभ्यः पूर्वमरदः दत्तवत्यसि तावद्राधो धनं गृणाना स्तूयमानास्मभ्यमपि रास्व। देहि। यां त्वा त्वां वृषभस्य रवेण। लुप्तोपमैषा ॥ वृषभस्येति कर्मणि षष्ठी ॥ वृषभं रवेणेव त्वां प्रकाशेन जज्ञुः जानंति प्राणिनः। अथवा वृषभस्य प्रवृद्धस्य स्तोत्रस्य रवेण शब्देन जज्ञुः ज्ञापयंति। दृळ्हस्य दृढस्याद्रेर्दुरो द्वाराणि पणिभिर्गाः प्रवेश्य पिहितानि व्यौर्णोः। विवृतान्यकरोः ॥

देवंदेवं राधसे चोदयंत्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयंती।
व्युच्छंती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
देवंऽदेवं। राधसे। चोदयंती। अस्मद्र्यक्। सूनृताः। ईरयंती।
विऽउच्छंती। नः। सनये। धियः। धाः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥५॥

देवं देवं सर्वमपि स्तोतारं राधसे धनाय चोदयंती प्रेरयंत्यस्मद्र्यगस्मदभिमुखं सूनृता वचांसीरयंती प्रेरयंती व्युच्छंती व्युच्छनं कुर्वती नोऽस्माकं सनये दानाय धनलाभाय धियो बुद्धीर्धाः। धेहि। शिष्टं स्पष्टं ॥ ॥२६॥

प्रति स्तोमेभिरिति तृचात्मकं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमुषस्यं। प्रति तृचमित्यनुक्रमणिका ॥ प्रातरनुवाकाश्विनशस्त्रयोरुक्तो विनियोगः ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।
विवर्तयंती रजसी समंते आविष्कृण्वती भुवनानि विश्वा ॥१॥

प्रति । स्तोमेभिः । उषसं । वसिष्ठाः । गीःऽभिः । विप्रासः । प्रथमाः । अबुध्रन् ।
विऽवर्तयंतीं । रजसी इति । समंते इति संऽअंते । आविःऽकृण्वतीं । भुवनानि ।
विश्वा ॥१॥

विप्रासो मेधाविनो वसिष्ठा वसिष्ठगोत्राः स्तोमेभिः स्तोतृभिः प्रयुज्यमाना गीर्भिः स्तुतिभिः प्रथमा इतरयजमानेभ्यः पूर्वभूताः संत उषसं प्रत्यबुध्रन् । प्रतिबोधयंति । कीदृशीमुषसं च । रजसी द्यावापृथिव्यौ समंते समानपर्यंते एकीभूतप्रांते विवर्तयंतीं व्यावर्तयंतीं विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्याविष्कृण्वतीं प्रकटीकुर्वतीं स्वभासा ॥

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्रं एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निं ॥२॥
एषा । स्या । नव्यं । आयुः । दधाना । गूढ्वी । तमः । ज्योतिषा । उषाः । अबोधि ।
अग्रे । एति । युवतिः । अह्रयाणा । प्र । अचिकितत् । सूर्यं । यज्ञं । अग्निं ॥२॥

एषोषाः स्या सा गतदिवसेषु प्रसिद्धा दृश्यमानैषा नव्यं नवतरमायुरायुष्यं । यौवनमित्यर्थः । तादृशं दधाना धारयंती गूढ्वी गूढं तमोऽंधकारं ज्योतिषा स्वतेजसा निवारयंत्यबोधि । बुध्यते । अग्रे पुरोदेशे सूर्यस्य पुरस्तात् देवानामग्रे वा । इतरदेवेभ्यः पूर्वमित्यर्थः । युवतिर्नित्यतरुणी सर्वत्र मिश्रयंती वाह्रयाणा । लुप्तोपमैषा । अलज्जा युवतिरिव । सा यथा पत्युरग्रे संचरति तद्वत् सूर्यस्य पुरस्तादेति । एवंभूता सती सूर्यं यज्ञमग्निं च प्राचिकितत् । प्रज्ञापयति ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छंतु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । नः । उषसः । वीरऽवतीः । सदं । उच्छंतु । भद्राः ।
घृतं । दुहानाः । विश्वतः । प्रऽपीताः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥३॥

अश्वावतीर्बहुभिरश्वैः प्रदेयैरश्वैस्तद्वत्यस्तथा गोमतीर्गोमत्यो गोप्रदा वीरवतीर्वीरवत्यः पुत्रदा अत एव भद्राः स्तुत्या उषास उषसः सदं सर्वदोच्छंतु । पुनः कीदृश्यः । घृतमुदकं दुहाना दोग्ध्र्यो विश्वतः प्रपीताः सर्वतः प्रवृद्धाः । यूयं पातेति गतं ॥ ॥२७॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ षष्ठो व्याख्यायते । सप्तमे मंडले पंचमेऽनुवाके दश सूक्तानि व्याकृतानि । प्रत्यु अदर्शीति षडुत्तमे-कादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमुषस्यं । प्रथमाद्या अयुजो बृहत्यो द्वितीयाद्या युजः सतोबृहत्यः । तथा चानुक्रांतं ।

प्रत्यु षट् प्रागाथमिति ॥ प्रातरनुवाक उषस्ये क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूत्रितं च । प्रत्यु अदर्शि सह वामेनेति बार्हतं । आ॰ ४. १४. । इति ॥

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छंती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥
प्रति । ऊं इति । अदर्शि । आऽयती । उच्छंती । दुहिता । दिवः ।
अपो इति । महि । व्ययति । चक्षसे । तमः । ज्योतिः । कृणोति । सूनरी ॥१॥

आयत्यागच्छंती व्युच्छंती तमांसि विवासयंती वर्जयंती दिवो द्युलोकस्य सूर्यस्य वा दुहिता पुत्री एवंभूतोषाः प्रत्यदर्शि । सर्वैः प्रतिदृश्यते । उ इति पूरकः । सैषा महि महत्तमो नैशमंधकारं । अप उ इति निपातद्वयसमुदायोऽपेत्यस्यार्थे । अपो व्ययति । अपवृणोति । किमर्थं । चक्षसे दर्शनार्थं । एवं कृत्वा सूनरी जनानां सुष्ठु नेत्र्युषा ज्योतिः प्रकाशं कृणोति । करोति ॥

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥
उत् । उस्रियाः । सृजते । सूर्यः । सचा । उत्ऽयत् । नक्षत्रं । अर्चिऽवत् ।
तव । इत् । उषः । विऽउषि । सूर्यस्य । च । सं । भक्तेन । गमेमहि ॥२॥

सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्य उस्रिया रश्मीन् सचा सह युगपदेवोत्सृजते । उन्नमयति । तथोद्यदुद्गच्छत प्रादुर्भवन्नक्षत्रं नभसि दृश्यमानं ग्रहनक्षत्रादिकमर्चिवद्दीप्तिमत्करोति । सौरेण तेजसा हि नक्तं चंद्रप्रभृतीनि नक्षत्राणि भासंते । सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चंद्रमा गंधर्वः । वा॰ सं॰ १८. ४०. । इति हि निगमः । एवं च सति हे उष उषोदेवते तव सूर्यस्य च व्युषि विवासने प्रकाशने सति भक्तेनान्नेन सं गमेमहि । वयं संगच्छेमहि । इच्छब्दः पूरकः ॥

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥३॥
प्रति । त्वा । दुहितः । दिवः । उषः । जीराः । अभुत्स्महि ।
या । वहसि । पुरु । स्पार्हं । वनन्ऽवति । रत्नं । न । दाशुषे । मयः ॥३॥

हे दिवो दुहितर्दिवोऽंतरिक्षाज्जायमाने हे उष उषोदेवते त्वा त्वां जीराः क्षिप्रकारिणो वयं प्रत्यभुत्स्महि । प्रतिबोद्धारो भवेम । हे वनन्वति । वननं संभजनं संभक्तव्यं धनं वा । तद्वति या त्वं पुरु बहु स्पार्हं स्पृहणीयं धनं वहसि प्रापयसि दाशुषे हवींषि दत्तवते यजमानाय रत्नं रमणीयं धनमिव मयः सुखं च या त्वं वहसि तां त्वां प्रत्यभुत्स्महीत्यन्वयः ॥

उच्छंती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४॥
उच्छंती । या । कृणोषि । मंहना । महि । प्रऽख्यै । देवि । स्वः । दृशे ।
तस्याः । ते । रत्नऽभाजः । ईमहे । वयं । स्याम । मातुः । न । सूनवः ॥४॥

हे महि महति देवि दानादिगुणयुक्त उषोदेवते व्युच्छंती तमांसि वर्जयंती मंहना महिम्ना युक्ता । यद्वा । मंहतिर्दानकर्मा । दानयुक्ता । या त्वं स्वः सर्वं जगत् प्रख्यै प्रबोधनार्थं दृशे दर्शनार्थं च कृणोषि करोषि तस्यास्तादृश्या रत्नभाजो रत्नानां रमणीयानां धनानां भाजयित्र्याः सेवयित्र्या ईमहे । याचामहे । किं । रत्नभाज इति समभिव्याहाराद्रत्नानीति गम्यते । अपि च वयं तव प्रियतमाः स्याम । भवेम । मातुर्न सूनवः । यथा मातुर्जनन्याः सूनवः पुत्राः प्रियतमा भवंति तद्वत् ॥

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमं ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥
तत् । चित्रं । राधः । आ । भर । उषः । यत् । दीर्घश्रुत्ऽतमं ।
यत् । ते । दिवः । दुहितः । मर्तऽभोजनं । तत् । रास्व । भुनजामहै ॥ ५ ॥

हे उषः तच्चित्रं चायनीयं राधो धनमा भर । आहर । अस्मभ्यं प्रयच्छ । यद्धनं दीर्घश्रुत्तमं देशकालयोर्विप्रकर्षेऽप्यतिशयेन श्रोतव्यं । अपि च हे दिवो दुहितः ते तव त्वया देयं मर्तभोजनं मर्तानां मनुष्याणां भोगयोग्यं यदन्नमस्ति तद्रास्व । देह्यस्मभ्यं । वयं च त्वद्दत्तं धनमन्नं च भुनजामहै । अभ्यवहरेम ॥

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥
श्रवः । सूरिऽभ्यः । अमृतं । वसुऽत्वनं । वाजान् । अस्मभ्यं । गोऽमतः ।
चोदयित्री । मघोनः । सूनृताऽवती । उषाः । उच्छत् । अप । स्रिधः ॥ ६ ॥

हे उषः सूरिभ्यः स्तोतृभ्योऽस्मभ्यममृतं मरणरहितं नित्यं वसुत्वनं वासकं वसुत्वयुक्तं वा श्रवः श्रवणीयं यशो रास्वेत्यनुषंगः । तथा गोमतो बहुभिर्गोभिर्युक्तान्वाजानन्नानि चास्मभ्यं रास्व । शिष्टः परोक्षकृतः । मघोनो हविष्मतो यजमानस्य चोदयित्री प्रेरयित्री सूनृतावती । प्रियसत्यात्मिका वाक्सूनृता । तद्वत्युषाः स्रिधः शोषकाञ्छत्रूनपोच्छत् । अपगमयतु ॥ ॥ १ ॥

इंद्रावरुणेति दशर्चं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं जागतं । इदमादीनि चत्वारि सूक्तानींद्रावरुणदेवतानि । तथा चानुक्रांतं । इंद्रावरुणा दशैंद्रावरुणं ह जागतं त्विति ॥ तृतीये सवन उक्थ्ये प्रशास्तुः शस्त्र एतत्सूक्तं । सूत्रितं च । इंद्रावरुणा युवमा वां राजानौ । आ॰ ६. १. । इति ॥

इंद्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतं ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥
इंद्रावरुणा । युवं । अध्वराय । नः । विशे । जनाय । महि । शर्म । यच्छतं ।
दीर्घऽप्रयज्युं । अति । यः । वनुष्यति । वयं । जयेम । पृतनासु । दुःऽध्यः ॥ १ ॥

हे इंद्रावरुणेंद्रावरुणौ युवं युवां नोऽस्माकं विशे निवेशयित्रे परिचारकाय जनाय पुत्रपौत्रादिलक्षणायाध्वराय यज्ञानुष्ठानार्थं महि महच्छर्म गृहं सुखं वा यच्छतं । प्रयच्छतं । अपि च दीर्घप्रयज्युं दीर्घप्रततयज्ञमस्मदीयं जनं यः शत्रुरति वनुष्यति अतिजिघांसति पृतनासु संग्रामेषु दूढ्यो दुर्धियो दुष्टाभिसंधींस्ताञ्छत्रून्वयं जयेम । अभिभवेम ॥

सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महांताविंद्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥

सम्ऽराट् । अन्यः । स्वऽराट् । अन्यः । उच्यते । वां । महांतौ । इंद्रावरुणा । महावसू इति महाऽवसू ।
विश्वे । देवासः । परमे । विऽओमनि । सं । वां । ओजः । वृषणा । सं । बलं । दधुः ॥२॥

द्वितीयः पादः परोक्षकृतः शिष्टाः प्रत्यक्षकृताः । हे इंद्रावरुणौ वां युवयोर्मध्येऽन्य एको वरुणः सम्राट् सम्यग्राजमान इत्युच्यते । ता सम्राजा घृतासुती । ऋ॰ २. ४१. ६. । इत्यादिषु कीर्त्यते । अन्य इंद्रः स्वराट् स्वयमेवान्यनिरपेक्षयैव राजमान इत्युच्यते । स्वराळिंद्रो दमे । ऋ॰ १. ६१. ९. । इत्यादिषु कीर्त्यते । तथाविधाविंद्रावरुणाविंद्रावरुणौ महांतौ गुणैरधिकौ महावसू महाधनौ च भवतः । हे वृषणा कामानां वर्षिताराविंद्रावरुणौ वां युवां परमे व्योमन्युत्कृष्ट आकाशे विश्वे देवासः सर्वे देवा ओजः सं दधुः । समयोजयन् शरीरदार्ढ्याय । तद्धेतुभूतं तदोज इत्युच्यते । स्मर्यते च । ओजः साष्टमी दशेति । तथा बलं वृत्रवधादेः कार्यस्य हेतुभूतं सामर्थ्यं च युवाभ्यां सं दधुः । समयोजयन् ॥

अन्वपां खान्यतृंतमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुं ।
इंद्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३॥
अनु । अपां । खानि । अतृंतं । ओजसा । आ । सूर्यं । ऐरयतं । दिवि । प्रऽभुं ।
इंद्रावरुणा । मदे । अस्य । मायिनः । अपिन्वतं । अपितः । पिन्वतं । धियः ॥३॥

हे इंद्रावरुणौ अपामुदकानां खानि द्वाराणि वृत्रेण पिहितान्योजसा बलेनान्वतृंतं । अन्वविध्यतं । आवरकस्य वृत्रस्य वधेन वृष्टिप्रतिबंधं निराकृतवंताविंत्यर्थः । तथा सूर्यं सर्वस्य प्रेरकमादित्यं दिव्यंतरिक्षे प्रभुं प्रभूतं संतमैरयतं । अभ्यगमयतं । स्वर्भानुनावृतं सूर्यं तद्वधेन प्रकाशितवंताविंत्यर्थः । हे इंद्रावरुणाविंद्रावरुणौ मायिनः प्रज्ञाकरस्यास्य सोमस्य पानेन मदे हर्षे सत्यपितो जलरहिता नदीरपिन्वतं । जलेनापूरयतं । तथा च निवित्पदमाम्नायते । अस्य मदे जरितरिंद्रोऽजिन्वदजुवोऽपिन्वदपित इति । अपि च धियः कर्माण्यस्माभिरनुष्ठितानि कर्माणि पिन्वतं । सिंचतं । फलेन पूरयतं ॥

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इंद्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥४॥
युवां । इत् । युत्ऽसु । पृतनासु । वह्नयः । युवां । क्षेमस्य । प्रऽसवे । मितऽज्ञवः ।
ईशाना । वस्वः । उभयस्य । कारवः । इंद्रावरुणा । सुऽहवा । हवामहे ॥४॥

हे इंद्रावरुणौ वह्नयो हविषां स्तोत्राणां वा वोढार ऋत्विजो युत्सु युद्धेषु पृतनासु शत्रुसेनासु रक्षणार्थं युवामिद्युवामेव हवंते । आह्वयंति । मितज्ञवः संकुचितजानुका अंगिरसोऽपि क्षेमस्य रक्षणस्य प्रसव उत्पादने निमित्तभूते सति युवामेव हवंते । अतः कारणात् हे इंद्रावरुणौ कारवः स्तोतारो वयमप्युभयस्य दिव्यस्य पार्थिवस्य च वस्वो वसुनो धनस्येशानेश्वरौ सुहवा सुखेन ह्वातव्यौ युवामेव हवामहे । आह्वयामहे ॥

इंद्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥५॥
इंद्रावरुणा । यत् । इमानि । चक्रथुः । विश्वा । जातानि । भुवनस्य । मज्मना ।
क्षेमेण । मित्रः । वरुणं । दुवस्यति । मरुत्ऽभिः । उग्रः । शुभं । अन्यः । ईयते ॥५॥

हे इंद्रावरुणौ यथौ युवां भुवनस्य लोकस्य संबंधीनीमानि परिदृश्यमानानि विश्वा सर्वाणि जातानि जातिमंति भूतजातानि मज्मनात्मीयेन बलेन चक्रथुः कृतवंतौ तयोर्युवयोर्मध्य एकं वरुणं क्षेमेण रक्षणहेतुना मित्रो देवो दुवस्यति। परिचरति। मित्रावरुणौ हि परस्परं प्राप्तसख्यौ। अत एव सहचरौ दृश्येते। अन्य एक इंद्रो मरुद्भिर्मरुद्गणैश्च उग्रूर्णबलः सन्शुभं शोभनमलंकारमीयते। प्राप्नोति। यद्वा। मरुद्भिर्मध्यस्था-नैर्देवगणैः सार्धमुग्र ओजस्वींद्रः शुभमुदकमीयते। प्रेरयति॥ ॥२॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वं।
अजामिमन्यः श्नथयंतमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः॥६॥
महे। शुल्काय। वरुणस्य। नु। त्विषे। ओजः। मिमाते इति। ध्रुवं। अस्य। यत्। स्वं।
अजामिं। अन्यः। श्नथयंतं। आ। अतिरत्। दभ्रेभिः। अन्यः। प्र। वृणोति। भूयसः॥६॥

वरुणस्य। उपलक्षणमेतत्। इंद्रस्य वरुणस्य च त्विषे दीप्त्यर्थमोजो बलं नु क्षिप्रं मिमाते। स्तोत्रेण निर्मिमाते यजमानपत्न्यौ। स्तोत्रेण हि बलं जायते। किमर्थं। महे महते शुल्काय धनाय। ईदृशस्य धनस्य लाभार्थं। अस्येंद्रस्य वरुणस्य च ध्रुवं नित्यं स्वं स्वकीयमसाधारणं यदोजो विद्यते तदोजो मिमाते इत्यन्वयः। तयोरिंद्रावरुणयोरन्य एको वरुणोऽजामिमबंधुमस्तुवंतं श्नथयंतं हिंसंतं कर्माण्यकुर्वंतमस्तोतारमयजमानं चातिरत्। अभिहंति। अन्य एक इंद्रो दभ्रेभिरल्पैरेवोपायैर्भूयसो बहुतराञ्छत्रून्प्र वृणोति। प्रकर्षेणावृतान् बाधितान् करोति। यद्वा। भूयसो यजमानान्प्र वृणोति। प्रवरानुत्कृष्टान्करोति॥

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिंद्रावरुणा न तपः कुतश्चन।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः॥७॥
न। तं। अंहः। न। दुःऽइतानि। मर्त्यं। इंद्रावरुणा। न। तपः। कुतः। चन।
यस्य। देवा। गच्छथः। वीथः। अध्वरं। न। तं। मर्तस्य। नशते। परिऽह्वृतिः॥७॥

हे इंद्रावरुणाविंद्रावरुणौ तं मर्त्यं मनुष्यमंहः पापं न नशते। न व्याप्नोति। न च दुरितानि दुर्गमनानि पापफलानि च प्राप्नुवंति। कुतश्चन कस्मादपि निमित्तात्तपः संतापश्च तं न प्राप्नोति। हे देवा देवौ दानादि-गुणयुक्ताविंद्रावरुणौ यस्य मर्त्यस्य मनुष्यस्याध्वरं यज्ञं गच्छथः प्राप्नुथो युवां वीथः कामयेथे च यस्य हवींषि तं मनुष्यं परिह्वृतिः परिबाधा न नशते। उक्तप्रकारेण न प्राप्नोति॥

अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिंद्रावरुणा नि यच्छतं॥८॥
अर्वाक्। नरा। दैव्येन। अवसा। आ। गतं। शृणुतं। हवं। यदि। मे। जुजोषथः।
युवोः। हि। सख्यं। उत। वा। यत्। आप्यं। मार्डीकं। इंद्रावरुणा। नि। यच्छतं॥८॥

हे नरा नेताराविंद्रावरुणौ दैव्येन देवसंबंधिनावसा रक्षणेन सहार्वागस्मदभिमुखमा गतं। आगच्छतं। आगत्य च मदीयं हवं स्तोत्रं शृणुतं। यदि मे मम जुजोषथः प्रीयेथे। मयि प्रीतिरस्ति चेत् युवाभ्यामागंतव्यं मदीयं स्तोत्रं श्रोतव्यं च भवतीत्यर्थः। युवोर्हि युवयोः खलु यत्सख्यं सखित्वमुत वापि च यदाप्यमापित्वं बांधवं मार्डीकं मृडीकस्य सुखस्य साधनं तदुभयं हे इंद्रावरुणौ नि यच्छतं। अस्मभ्यं प्रयच्छतं॥

अस्माकमिंद्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा।
यद्वां हवंत उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु॥९॥

अस्माकं। इंद्रावरुणा। भरेऽभरे। पुरःऽयोधा। भवतं। कृष्टिऽओजसा।
यत्। वां। हवंते। उभये। अध। स्पृधि। नरः। तोकस्य। तनयस्य। सातिषु ॥९॥

हे कृष्ट्योजसा शत्रूणां कर्षकमोजो बलं ययोस्तादृशौ हे इंद्रावरुणौ भरे भरे संग्रामे संग्रामेऽस्माकं पुरोयोधा पुरस्ताद्योद्धारौ भवतं। यद्यौ वामुभय उभयविधाः पूर्वकालीना इदानींतनाश्च नरो नेतारः स्तोतारः स्पृधि युद्धे यौ युवां हवंते। अधापि च तोकस्य पुत्रस्य तनयस्य पौत्रस्य सातिषु संभजनीयेषु निमित्तभूतेषु च यौ युवां हवंते। तावस्माकं पुरोयोधा भवतमित्यन्वयः॥

अस्मे इंद्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छंतु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥
अस्मे इति। इंद्रः। वरुणः। मित्रः। अर्यमा। द्युम्नं। यच्छंतु। महि। शर्म। सऽप्रथः।
अवध्रं। ज्योतिः। अदितेः। ऋतऽवृधः। देवस्य। श्लोकं। सवितुः। मनामहे ॥१०॥

अस्मे अस्मभ्यमिंद्रादयो द्युम्नं द्योतमानं धनं यच्छंतु। प्रयच्छंतु। तथा महि महत्सप्रथः सर्वतः पृथु विस्तीर्णं शर्म गृहं च प्रयच्छंतु। अपि चर्तावृध ऋतस्य यज्ञस्य वर्धयित्र्या अदितेरदीनाया देवमातुर्ज्योतिस्तेजश्च नोऽस्माकमवध्रमहिंसकमस्तु। वयं च देवस्य दानादिगुणयुक्तस्य सवितुः सर्वस्य प्रेरकस्य श्लोकं स्तोत्रं मनामहे। जानीमः। कुर्म इत्यर्थः। यद्वा। देवेन सवित्रास्मभ्यं देयं श्लोकं यशो मनामहे। याचामहे॥ ॥३॥

युवां नरेति दशर्चं त्रयोदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं जागतमैंद्रावरुणं। युवां नरेत्यनुक्रांतं॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु स्तोमवृद्धौ प्रशास्तुरिदं सूक्तमावापार्थं। सूत्रितं च। युवां नरा पुनीषे वां। आ॰ ७. ९.। इति॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यंतः पृथुपर्शवो ययुः।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिंद्रावरुणावसावतं ॥१॥
युवां। नरा। पश्यमानासः। आप्यं। प्राचा। गव्यंतः। पृथुऽपर्शवः। ययुः।
दासा। च। वृत्रा। हतं। आर्याणि। च। सुऽदासं। इंद्रावरुणा। अवसा। अवतं ॥१॥

हे नरा नेताराविंद्रावरुणौ युवां। षष्ठ्यर्थे द्वितीया। युवयोराप्यं बंधुभावं पश्यमानासः पश्यंतो युष्मद्बांधवलाभार्थिनो गव्यंतो गा आत्मन इच्छंतो यजमानाः पृथुपर्शवः। पृथुर्विस्तीर्णः पर्शुः पार्श्वास्थि येषां ते तथोक्ताः। विस्तीर्णाश्वपर्शुहस्ताः संतः प्राचा प्राचीनं ययुः। बर्हिराहरणार्थं गच्छंति। पर्श्वा हि बर्हिराच्छिद्यते। तथा च तैत्तिरीयकं। अश्वपर्श्वा बर्हिराच्छयतीति। हे इंद्रावरुणौ युवां दासा दासान्युपक्षपयित्रीणि च वृत्राण्यावरकाणि शत्रुजातान्यार्याणि च कर्मानुष्ठानपराणि च शत्रुजातानि हतं। हिंस्तं। अपि च सुदासमस्मद्याज्यमेतत्संज्ञं राजानमवसा रक्षणेन सार्धमवतं। आगच्छतं॥

यत्रा नरः समयंते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियं।
यत्रा भयंते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इंद्रावरुणाधि वोचतं ॥२॥
यत्र। नरः। संऽअयंते। कृतऽध्वजः। यस्मिन्। आजा। भवति। किं। चन। प्रियं।
यत्र। भयंते। भुवना। स्वःऽदृशः। तत्र। नः। इंद्रावरुणा। अधि। वोचतं ॥२॥

यत्र यस्मिन्संग्रामे नरो मनुष्याः कृतध्वजा उच्छ्रितध्वजाः समयंते युद्धार्थं संगच्छंते। यस्मिंश्चाजावाजौ युद्धे। चनेति निपातद्वयसमुदायो विभज्य योजनीयः। किंच किमपि प्रियमनुकूलं न भवति अपि तु सर्वं दुष्करं

भवति। यत्र च युद्धे भुवना भुवनानि भूतजातानि स्वर्दृशः शरीरपातादूर्ध्वं स्वर्गस्य द्रष्टारो वीराश्च भयंते बिभ्यति। तत्र तादृशे संग्रामे हे इंद्रावरुणौ नोऽस्मानधि वोचतं। अस्मत्पक्षपातवचनौ भवतं ॥

सं भूम्या अंता ध्वसिरा अदृक्षतेंद्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतं ॥३॥

सं। भूम्याः। अंताः। ध्वसिराः। अदृक्षत। इंद्रावरुणा। दिवि। घोषः। आ। अरुहत्।
अस्थुः। जनानां। उप। मां। अरातयः। अर्वाक्। अवसा। हवनऽश्रुता। आ। गतं ॥३॥

हे इंद्रावरुणौ भूम्या अंताः पर्यंता ध्वसिराः सैनिकैर्ध्वस्ताः समदृक्षत। संदृश्यंते। तथा दिवि द्युलोके घोषः सैनिकानां शब्दश्चारुहत्। आरूढोऽभूत्। जनानामस्मदीयानां भटानामरातयः शत्रवो मामुपास्थुः। उपस्थिताः। एवं प्रवर्तमानेऽस्मिन्युद्धे हे हवनश्रुताह्वानशीलाविंद्रावरुणौ अर्वागस्मदभिमुखमवसा रक्षणेन सह आ गतं। आगच्छतं ॥

इंद्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वंता प्र सुदासमावतं।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥४॥

इंद्रावरुणा। वधनाभिः। अप्रति। भेदं। वन्वंता। प्र। सुऽदासं। आवतं।
ब्रह्माणि। एषां। शृणुतं। हवीमनि। सत्या। तृत्सूनां। अभवत्। पुरःऽहितिः ॥४॥

हे इंद्रावरुणेंद्रावरुणौ वधनाभिर्वधकैरायुधैरप्रतिगतमप्राप्तं भेदमेतत्संज्ञं सुदासः शत्रुं वन्वंता हिंसंतौ युवां सुदासं। शोभनं ददातीति सुदाः। एतत्संज्ञं मम याज्यं राजानं प्रावतं। प्रकर्षेणारक्षतं। एषां तृत्सूनां मम याज्यानां ब्रह्माणि स्तोत्राणि शृणुतं। अशृणुतं। कदा। हवीमनि। आह्वयंतेऽस्मिन्युद्धार्थं परस्परमिति हवीमा संग्रामः। तस्मिन्। यस्मादेवं तस्मात्तृत्सूनामेतत्संज्ञानां मम याज्यानां पुरोहितिर्मम पुरोधानं सत्या सत्यफलमभवत्। तेषु यन्मम पौरोहित्यं तत्सफलं जातमित्यर्थः ॥

इंद्रावरुणावभ्या तपंति माघान्यर्यो वनुषामरातयः।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥५॥

इंद्रावरुणौ। अभि। आ। तपंति। मा। अघानि। अर्यः। वनुषां। अरातयः।
युवं। हि। वस्वः। उभयस्य। राजथः। अध। स्म। नः। अवतं। पार्ये। दिवि ॥५॥

हे इंद्रावरुणौ अर्योऽरेः शत्रोः संबंधीन्यघान्याहंतॄण्यायुधानि मा मामभ्या तपंति। अभितो बाधंते। अपि च वनुषां हिंसकानां मध्येऽरातयोऽभिगमनशीलाः शत्रवश्च मामभितपंति। युवं हि युवां खलूभयस्य पार्थिवस्य दिव्यस्य वस्वो वसुनो धनस्य राजथः। ईशाथे। राजतिरैश्वर्यकर्मा। अध स्मातः कारणात् पार्ये तरणीये दिवि दिवसे युद्धदिने नोऽस्मानवतं। रक्षतं ॥ ॥४॥

युवां हवंत उभयास आजिष्विंद्रं च वस्वो वरुणं च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

युवां। हवंते। उभयासः। आजिषु। इंद्रं। च। वस्वः। वरुणं। च। सातये।
यत्र। राजऽभिः। दशऽभिः। निऽबाधितं। प्र। सुऽदासं। आवतं। तृत्सुऽभिः। सह ॥६॥

उभयास उभयविधाः सुदाःसंज्ञो राजा तत्सहायभूतास्तृत्सवश्चैवं द्विप्रकारा जना आजिषु संग्रामेष्विंद्रं च वरुणं च युवां हवंते। आह्वयंते। किमर्थं। वस्वो धनस्य सातये संभजनार्थं। यत्र येष्वाजिषु दशभिर्दशसंख्याकै राजभिः शत्रुभूतैर्नृपैर्निबाधितं नितरां हिंसितं सुदासं तृत्सुभिः सह वर्तमानं प्रावतं युवां प्रकर्षेणारक्षतं। तेष्वाजिष्वित्यन्वयः॥

दश राजानः समिता अयंज्यवः सुदासमिंद्रावरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥
दश। राजानः। संऽइताः। अयंज्यवः। सुऽदासं। इंद्रावरुणा। न। युयुधुः।
सत्या। नृणां। अद्मऽसदां। उपऽस्तुतिः। देवाः। एषां। अभवन्। देवऽहूतिषु ॥७॥

हे इंद्रावरुणौ दशसंख्याका राजानः सुदासः शत्रवः समिताः संगताः परस्परं समवेता अयज्यवोऽयजमानाः एवंभूतास्ते सुदासमेतत्संज्ञमेकमपि राजानं न युयुधुः। न संप्रजह्रुः। युवाभ्यामनुगृहीतं तं प्रहर्तुं न शेकुः। तदानीमद्मसदां। अद्मन्यन्ने हविषि सीदंतीत्यद्मसद ऋत्विजः। हविर्भिर्युक्तानां नृणां यज्ञस्य नेतॄणामृत्विजामुपस्तुतिः स्तोत्रं सत्या सफलाभूत्। अपि चैषां देवहूतिषु। देवा ह्वयंत एष्विति देवहूतयो यज्ञाः। तेषु सर्वे च देवा अभवन्। युष्मदनुग्रहात्प्रादुर्भवंति॥

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इंद्रावरुणावशिक्षतं।
श्वित्यंचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवंतो असपंत तृत्सवः ॥८॥
दाशऽराज्ञे। परिऽयत्ताय। विश्वतः। सुऽदासे। इंद्रावरुणौ। अशिक्षतं।
श्वित्यंचः। यत्र। नमसा। कपर्दिनः। धिया। धीऽवंतः। असपंत। तृत्सवः ॥८॥

हे इंद्रावरुणौ दाशराज्ञे॥ दशशब्दस्य छांदसो दीर्घः। विभक्तिव्यत्ययः॥ दशभी राजभिः शत्रुभूतैर्विश्वतः सर्वतः परियत्ताय परिवेष्टिताय सुदासे राज्ञेऽशिक्षतं। बलं प्रायच्छतं। यत्र यस्मिन्देशे श्वित्यंचः श्वितं श्वैत्यं नैर्मल्यमंचंतो गच्छंतः कपर्दिनो जटिला धीवंतः कर्मभिर्युक्तास्तृत्सवो वसिष्ठशिष्या एतत्संज्ञा ऋत्विजो नमसा हविर्लक्षणेनान्नेन धिया स्तुत्यासपंत पर्यचरन्। तस्मिन्देशे युवां तस्मै राज्ञे बलं प्रायच्छतमित्यर्थः॥

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इंद्रावरुणा शर्म यच्छतं ॥९॥
वृत्राणि। अन्यः। संऽइथेषु। जिघ्नते। व्रतानि। अन्यः। अभि। रक्षते। सदा।
हवामहे। वां। वृषणा। सुवृक्तिऽभिः। अस्मे इति। इंद्रावरुणा। शर्म। यच्छतं ॥९॥

हे इंद्रावरुणौ युवयोरन्य एक इंद्रो वृत्राणि शत्रून् समिथेषु संग्रामेषु जिघ्नते। हंति। अन्य एको वरुणः सदा सर्वदा व्रतानि कर्माण्यभि रक्षते। अभितः सर्वतो रक्षति। हे वृषणा कामानां वर्षिताराविंद्रावरुणौ तथाविधौ वां युवां सुवृक्तिभिः सुप्रवृत्ताभिः स्तुतिभिर्हवामहे। आह्वयामहे। आहूतौ च युवामस्मे अस्मभ्यं शर्म सुखं यच्छतं। दत्तं॥

अस्मे इंद्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छंतु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥

अस्मे इति। इंद्रः। वरुणः। मित्रः। अर्यमा। द्युम्नं। यच्छंतु। महि। शर्म। सऽप्रथः।
अवध्रं। ज्योतिः। अदितेः। ऋतऽवृधः। देवस्य। श्लोकं। सवितुः। मनामहे ॥१०॥

व्याख्यातेयं। अक्षरार्थस्तु। इंद्रादयोऽस्मभ्यं द्योतमानं धनं प्रयच्छंतु सर्वतो विस्तीर्णं महद्गृहं च। यज्ञस्य वर्धयित्र्या अदीनाया देवमातुस्तेजश्चास्माकमबाधकं भवतु। वयं च प्रेरकस्य देवस्य स्तोत्रं मनामहे। कुर्महे॥ ॥५॥

आ वामिति पंचर्चं चतुर्दशं सूक्तं वासिष्ठं त्रैष्टुभमैंद्रावरुणं। अनुक्रांतं च। आ वां पंचेति॥ उक्थ्ये तृतीयसवने मैत्रावरुणशस्त्र इदं सूक्तं। सूत्रितं च। आ वां राजानाविंद्रावरुणा मधुमत्तमस्येति याज्या। आ० ६.१.। इति॥

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिंद्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥
आ। वां। राजानौ। अध्वरे। ववृत्यां। हव्येभिः। इंद्रावरुणा। नमःऽभिः।
प्र। वां। घृताची। बाह्वोः। दधाना। परि। त्मना। विषुऽरूपा। जिगाति ॥१॥

हे राजानौ राजमानावीश्वरौ वेंद्रावरुणौ अध्वरे हिंसारहितेऽस्मिन्यागे वां युवां हव्येभिर्हविर्भिर्नमोभिः स्तोत्रैश्चा ववृत्यां। आवर्तयामि। अपि च बाह्वोर्हस्तयोर्दधाना धार्यमाणा विषुरूपा। रूप्यत इति रूपं हविः। विविधहविर्युक्ता घृताची घृतमंचंती जुहूस्त्मनात्मना स्वयमेव वां युवां परि प्र जिगाति। अभिप्रगच्छति। यद्वा। विषुरूपा नानाविधरूपौ वामिति योज्यं॥

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इंद्रः कृणवदु लोकं ॥२॥
युवोः। राष्ट्रं। बृहत्। इन्वति। द्यौः। यौ। सेतृऽभिः। अरज्जुऽभिः। सिनीथः।
परि। नः। हेळः। वरुणस्य। वृज्याः। उरुं। नः। इंद्रः। कृणवत्। ऊं इति। लोकं ॥२॥

हे इंद्रावरुणौ युवोर्युवयोर्बृहन्महद्राष्ट्रं राज्यं द्यौर्द्युलोकरूपमिन्वति। वृध्या सर्वान्प्रीणयति। यौ युवां सेतृभिर्बंधकैररज्जुभी रज्जुरहितै रोगादिभिः सिनीथः पापकृतो बध्नीथः॥ षिञ् बंधन इति धातुः॥ तयोर्मध्ये वरुणस्य वारयितुर्देवस्य हेळः क्रोधो नोऽस्मान्परि वृज्याः। परिवृणक्तु। परित्यज्यान्यत्र गच्छतु। इंद्र उ इंद्रश्चोरुं विस्तीर्णं लोकं स्थानं कृणवत्। करोतु॥

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतं ॥३॥
कृतं। नः। यज्ञं। विदथेषु। चारुं। कृतं। ब्रह्माणि। सूरिषु। प्रऽशस्ता।
उपो इति। रयिः। देवऽजूतः। नः। एतु। प्र। नः। स्पार्हाभिः। ऊतिऽभिः। तिरेतं ॥३॥

हे इंद्रावरुणौ नोऽस्माकं विदथेषु गृहेषु क्रियमाणं यज्ञं चारुं शोभनं फलसहितं कृतं। कुरुतं। तथा सूरिषु स्तोतृष्वस्मासु विद्यमानानि ब्रह्माणि परिवृढानि स्तोत्राणि प्रशस्ता प्रशस्तान्युत्कृष्टानि फलभांजि कृतं। कुरुतं। अपि च देवजूतो देवाभ्यां युवाभ्यां प्रेरितो रयिर्धनं नोऽस्मानुपैतु। प्राप्नोतु। तथा स्पार्हाभिः स्पृहणीयाभिरूतिभी रक्षाभिर्नोऽस्मान्प्र तिरेतं। युवां वर्धयेथां। प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः॥

अस्मे इंद्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमंतं पुरुक्षुं ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥४॥
अस्मे इति । इंद्रावरुणा । विश्वऽवारं । रयिं । धत्तं । वसुऽमंतं । पुरुऽक्षुं ।
प्र । यः । आदित्यः । अनृता । मिनाति । अमिता । शूरः । दयते । वसूनि ॥४॥

हे इंद्रावरुणौ अस्मे अस्मभ्यं रयिं धनं धत्तं । प्रयच्छतं । कीदृशं । विश्ववारं विश्वैः सर्वैर्वरणीयं संभजनीयं वसुमंतं निवासयुक्तं पुरुक्षुं बह्वन्नं पुरुभिर्बहुभिः प्रशस्यं वा । आदित्योऽदितेः पुत्रो यो वरुणोऽनृतानृतानि सत्यरहितानि भूतानि प्र मिनाति प्रहिनस्ति ॥ मीङ् हिंसायामिति धातुः ॥ शूरः शौर्यवान् स वरुणोऽमितामितान्यपरिमितानि वसूनि धनानि दयते । स्तोतृभ्यो ददाति ॥

इयमिंद्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
इयं । इंद्रं । वरुणं । अष्ट । मे । गीः । प्र । आवत् । तोके । तनये । तूतुजाना ।
सुऽरत्नासः । देवऽवीतिं । गमेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

मे मदीयेयं गीः स्तुतिरिंद्रं वरुणं चाष्ट । अश्नुतां । व्याप्नोतु । तथा तूतुजाना मया प्रेर्यमाणा सा तोके पुत्रे तनये पौत्रे च विषये प्रावत् । प्ररक्षत्वस्मान् । वयं च सुरत्नासः शोभनधनाः संतो देववीतिं देवैः कामयितव्यं यज्ञं गमेम । प्राप्नुयाम । हे इंद्रावरुणादयः सर्वे देवाः यूयं स्वस्तिभिः कल्याणैर्नोऽस्मान्सदा सर्वदा पात । रक्षत ॥ ॥६॥

पुनीषे वामिति पंचर्चं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रावरुणं । पुनीष इत्यनुक्रांतं ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने स्तोमवृद्धौ प्रशास्तुरिदमावापार्थं । सूत्रितं च । युवां नरा पुनीषे वां । आ० ७. ९. । इति ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिंद्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥१॥
पुनीषे । वां । अरक्षसं । मनीषां । सोमं । इंद्राय । वरुणाय । जुह्वत् ।
घृतऽप्रतीकां । उषसं । न । देवीं । ता । नः । यामन् । उरुष्यतां । अभीके ॥१॥

इंद्रावरुणौ वां युवाभ्यां युवयोरर्थमरक्षसं रक्षोरहितां राक्षसैरसंस्पृष्टां मनीषां स्तुतिं पुनीषे । शोधयामि । किं कुर्वन् । इंद्राय वरुणाय च सोमं जुह्वदिंद्रं वरुणं चोद्दिश्य सोममग्नौ प्रक्षिपन् । कीदृशीं मनीषां । देवीं द्योतमानामुषसं नोषसमिव घृतप्रतीकां दीप्तावयवां । शिष्टः परोक्षकृतः । ता ताविंद्रावरुणावभीकेऽभिगते युद्धे यामन्यामनि युद्धार्थं गमने सति नोऽस्मानुरुष्यतां । रक्षतां ॥

स्पर्धंते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतंति ।
युवं ताँ इंद्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥२॥
स्पर्धंते । वै । ऊं इति । देवऽहूये । अत्र । येषु । ध्वजेषु । दिद्यवः । पतंति ।
युवं । तान् । इंद्रावरुणौ । अमित्रान् । हतं । पराचः । शर्वा । विषूचः ॥२॥

देवहूये । देवा विजिगीषवो योद्धारो ह्वयंते युद्धार्थं परस्परमाह्वयंत इति देवहूयः संग्रामः । तत्रा-

स्मिन्देवहूये संग्रामे स्पर्धंते वै शत्रवोऽस्माभिः स्पर्धंते खलु । उ इति पूरकः । येषु संग्रामेषु ध्वजेषु पताकासु दिद्यवः शत्रुक्षिप्तान्यायुधानि पतंति तांस्तेषु संग्रामेषु विद्यमानानमित्राञ्छत्रून् हे इंद्रावरुणौ युवं युवां शर्वा शरुणा हिंसकेनायुधेन पराचः पराङ्मुखान् विषूचो विविधगतींश्च हतं । हिंस्तं । यथा ते शत्रवः पराङ्मुखा इतस्ततः पलायमानाश्च भवंति तथा तान्बाधेथामित्यर्थः ॥

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिंद्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हंति ॥३॥
आपः । चित् । हि । स्वऽयशसः । सदःऽसु । देवीः । इंद्रं । वरुणं । देवता । धुरिति धुः ।
कृष्टीः । अन्यः । धारयति । प्रऽविक्ताः । वृत्राणि । अन्यः । अप्रतीनि । हंति ॥३॥

आपश्चिदप्विकाराः सोमाश्च स्वयशसः स्वायत्तयशस्का देवीर्द्योतमानाः संतः सदःसु सदनेषु स्थानेष्विंद्रं वरुणं च देवतेते द्वे देवते धुः । धारयंति । अवस्थापयंति । सोमेनाप्यायिता हि देवताः स्वे स्वे स्थानेऽवतिष्ठंते । यद्वा । वसतीवर्याख्या आप एव सोमाभिषवद्वारा सदनेष्विंद्रं वरुणं च धारयंति । तयोरिंद्रावरुणयोरन्य एकः प्रविक्ताः पृथक्कृताः पुण्यापुण्यविवेकेन विचित्रफलभोक्त्रीः कृष्टीः प्रजा असांकर्येण धारयति । अन्य इंद्रो वृत्राणि शत्रुजातान्यप्रतीन्यन्यैरप्रतिगतानि हंति । हिनस्ति ॥

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥४॥
सः । सुऽक्रतुः । ऋतऽचित् । अस्तु । होता । यः । आदित्या । शवसा । वां । नमस्वान् ।
आऽववर्तत् । अवसे । वां । हविष्मान् । असत् । इत् । सः । सुविताय । प्रयस्वान् ॥४॥

सुक्रतुः शोभनकर्मा शोभनप्रज्ञो वा स होता स्तोता ऋतचिदृतस्योदकस्य यज्ञस्य वा चेता निचेतास्तु । भवतु । हे आदित्यादितेः पुत्राविंद्रावरुणौ ॥ छांदसः सांहितिको ह्रस्वः ॥ यो नमस्वान्नमसा नमस्कारेण स्तोत्रेण वा युक्तः सञ्छवसा बलेन युक्तौ वां युवां परिचरतीति शेषः । स सुक्रतुरित्यन्वयः । अपि च यो हविष्मान् हविर्भिर्युक्तः सन्नवसे तर्पणार्थं वां युवामाववर्तत् आवर्तयेत् स यजमानः प्रयस्वानन्नवान् भूत्वा सुविताय सुष्ठु प्राप्तव्याय फलायासदित् । भवेदेव ॥

इयमिंद्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
इयं । इंद्रं । वरुणं । अष्ट । मे । गीः । प्र । आवत् । तोके । तनये । तूतुजाना ।
सुऽरत्नासः । देवऽवीतिं । गमेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

व्याख्यातेयं । मदीया स्तुतिरिंद्रं वरुणं चाश्नुतां । मया प्रेर्यमाणा सा पुत्रे पौत्रे च विषयेऽस्मान्प्ररक्षतु । वयं शोभनधनाः संत उत्तरोत्तरं यागं प्राप्नुयाम । हे इंद्रावरुणादयो देवाः अस्मान्सर्वदा कल्याणी रक्षत ॥ ॥७॥

धीरा त्वस्येत्यष्टर्चं षोडशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वरुणदेवत्यं । तथा चानुक्रांतं । धीराष्टौ वारुणं हेति ॥ गतो विनियोगः ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तंभ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहंतं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥१॥

धीरा। तु। अस्य। महिना। जनूंषि। वि। यः। तस्तंभ। रोदसी इति। चित्। उर्वी इति।
प्र। नाकं। ऋष्वं। नुनुदे। बृहंतं। द्विता। नक्षत्रं। पप्रथत्। च। भूम ॥१॥

अस्य वरुणस्य जनूंषि जन्मानि महिना महिम्ना तु क्षिप्रं धीरा धीराणि धैर्यवंति भवंति। यो वरुण उर्वी विस्तीर्णे रोदसी चिद्द्यावापृथिव्यावपि वि तस्तंभ विविधं स्तब्धे स्वकीये स्थाने स्थिते अकरोत्। यश्च बृहंतं महांतं नाकमादित्यं नक्षत्रं चर्ष्वं दर्शनीयं द्विता द्वैधं प्र नुनुदे प्रेरयति स्म। अहनि सूर्यं दर्शनीयं प्रेरयति रात्रौ नक्षत्रं तथेति द्विप्रकारः। भूम भूमिं च यः पप्रथत् अप्रथयत् विस्तारितवान्। तस्यास्य वरुणस्येत्यन्वयः॥

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१ंतर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यं ॥२॥
उत। स्वया। तन्वा। सं। वदे। तत्। कदा। नु। अंतः। वरुणे। भुवानि।
किं। मे। हव्यं। अहृणानः। जुषेत। कदा। मृळीकं। सुऽमनाः। अभि। ख्यं ॥२॥

वरुणं शीघ्रं दिदृक्षमाण ऋषिरनया वितर्कयति। उतेति विचिकित्सायां। उत किं स्वया तन्वा स्वीयेनात्मीयेन शरीरेण सं वदे। सहवदनं करोमि। आहो स्वित् तत्तेन वरुणेन सह सं वदे। कदा नु कदा खलु वरुणे देवेऽंतर्भुवानि। अंतर्भूतो भवानि। वरुणस्य चित्ते संलग्नो भवानीत्यर्थः। अपि च मे मदीयं हव्यं स्तोत्रं हविर्वाहृणानोऽक्रुध्यन् वरुणः किं केन हेतुना जुषेत। सेवेत। सुमनाः शोभनमनस्कः सन्नहं कदा कस्मिन्काले मृळीकं सुखयितारं वरुणमभि ख्यं। अभिपश्येयं॥

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छं।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥३॥
पृच्छे। तत्। एनः। वरुण। दिदृक्षु। उपो इति। एमि। चिकितुषः। विऽपृच्छं।
समानं। इत्। मे। कवयः। चित्। आहुः। अयं। ह। तुभ्यं। वरुणः। हृणीते ॥३॥

हे वरुण तदेनः पापं पृच्छे। त्वां पृच्छामि। दिदृक्षु॥ छांदसः सुलोपः॥ द्रष्टुमिच्छन्नहं। येन पापेन हेतुना त्वदीयैः पाशैर्बद्धोऽस्मि पृष्टः संस्तत्पापं कथय। अहं विपृच्छं विविधं प्रष्टुं चिकितुषो विदुषो जनानुपो एमि। उपागां। ते कवयश्चित् क्रांतदर्शिनो जनाश्च मे मह्यं समानमित् समानमेवैकरूपमेवाहुः। अकथयन्। यदाहुस्तदाह। हे स्तोतः तुभ्यमयं हायमेव वरुणो हृणीते। क्रुध्यतीति। अतः क्रोधं परित्यज्यास्मान्पाशेभ्यो मोचय॥

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायं।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयां ॥४॥
किं। आगः। आस। वरुण। ज्येष्ठं। यत्। स्तोतारं। जिघांससि। सखायं।
प्र। तत्। मे। वोचः। दुःऽदभ। स्वधाऽवः। अव। त्वा। अनेनाः। नमसा। तुरः। इयां ॥४॥

हे वरुण ज्येष्ठमधिकं किमाग आस। कोऽपराधो मया कृतो बभूव। यद्येनागसा सखायं मित्रभूतं संतं स्तोतारं जिघांससि हंतुमिच्छसि। हे दूळभ दुर्दभान्यैर्बाधितुमशक्य स्वधावस्तेजस्विन् हे वरुण तदागो मे

मह्यं प्र वोचः। प्रब्रूहि। एवं सति तस्य प्रायश्चित्तं कृत्वानेना अपापः सन्नहं तुरस्त्वरमाणः शीघ्रो नमसा नमस्कारेण हविषा वा त्वामवेयां। उपगच्छेयं॥

अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठं ॥५॥
अव। द्रुग्धानि। पित्र्या। सृज। नः। अव। या। वयं। चकृम। तनूभिः।
अव। राजन्। पशुऽतृपं। न। तायुं। सृज। वत्सं। न। दाम्नः। वसिष्ठं ॥५॥

हे वरुण पित्र्या पितृतः प्राप्तानि नोऽस्मदीयानि द्रुग्धानि द्रोहान्बंधनहेतुभूतानव सृज। विमुंच। अस्मत्तो विश्लेषय। वयं च या यानि द्रोहजातानि तनूभिः शरीरैश्चकृम कृतवंतः स्म तानि चाव सृज। हे राजन्राजमान वरुण पशुतृपं न तायुं स्तैन्यप्रायश्चित्तं कृत्वावसाने घासादिभिः पशूनां तर्पयितारं स्तेनमिव दाम्नो रज्जोर्वत्सं न वत्समिव च वसिष्ठं मां बंधकात्पापादव सृज। विमुंच॥

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥
न। सः। स्वः। दक्षः। वरुण। ध्रुतिः। सा। सुरा। मन्युः। विऽभीदकः। अचित्तिः।
अस्ति। ज्यायान्। कनीयसः। उपऽअरे। स्वप्नः। चन। इत्। अनृतस्य। प्रऽयोता ॥६॥

हे वरुण स स्वो दक्षः पुरुषस्य स्वभूतं तद्बलं पापप्रवृत्तौ कारणं न भवति। किंतर्हि ध्रुतिः स्थिरोत्पत्तिसमय एव निर्मिता दैवगतिः कारणं॥ ध्रु गतिस्थैर्ययोरिति धातुः॥ सा च ध्रुतिर्वक्ष्यमाणरूपा। सुरा प्रमादकारिणी मन्युः क्रोधश्च गुर्वादिविषयः सन्ननर्थहेतुः। विभीदको द्यूतसाधनोऽक्षः। स च द्यूतेषु पुरुषं प्रेरयन्ननर्थहेतुर्भवति। अचित्तिरज्ञानमविवेककारणं। अत ईदृशी दैवकॢप्तिरेव पुरुषस्य पापप्रवृत्तौ कारणं। अपि च कनीयसोऽल्पस्य हीनस्य पुरुषस्य पापप्रवृत्तावुपार उपागते समीपे नियंतृत्वेन स्थितो ज्यायानधिक ईश्वरोऽस्ति। स एव तं पापे प्रवर्तयति। तथा चाम्नातं। एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते। कौ॰ उ॰ ३. ८.। इति। एवं च सति स्वप्नश्चन स्वप्नोऽप्यनृतस्य पापस्य प्रयोता प्रकर्षेण मिश्रयिता भवति। इदिति पूरकः। स्वप्ने कृतैरपि कर्मभिर्बहूनि पापानि जायंते किमु वक्तव्यं जाग्रति कृतैः कर्मभिः पापान्युत्पद्यंत इति। अतो ममापराधो दैवागत इति हे वरुण त्वया क्षंतव्य इति भावः॥

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥७॥
अरं। दासः। न। मीळ्हुषे। कराणि। अहं। देवाय। भूर्णये। अनागाः।
अचेतयत्। अचितः। देवः। अर्यः। गृत्सं। राये। कविऽतरः। जुनाति ॥७॥

मीळ्हुषे सेक्त्रे कामानां वर्षित्रे भूर्णये जगतो भर्त्रे देवाय दानादिगुणयुक्ताय वरुणायानागास्तत्प्रसादादपापः सन्नहमरमलं पर्याप्तं कराणि। परिचरणं करवाणि। दासो न यथा भृत्यः स्वामिने सम्यक् परिचरति तद्वत्। अर्यः स्वामी स च देवोऽचितोऽजानतोऽस्मानचेतयत्। चेतयतु। प्रज्ञापयतु। गृत्सं स्तोतारं च कवितरः प्राज्ञतरो देवो राये धनाय धनप्राप्त्यर्थं जुनाति। जुनातु। प्रेरयतु॥

एकादशिने वारुणे पशावयमिति पुरोडाशस्यानुवाक्या। सूत्रितं च। अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधाव एवा वंदस्व वरुणं बृहंतं। आ॰ ३.७.। इति॥

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥
अयं । सु । तुभ्यं । वरुण । स्वधाऽवः । हृदि । स्तोमः । उपऽश्रितः । चित् । अस्तु ।
शं । नः । क्षेमे । शं । ऊं इति । योगे । नः । अस्तु । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥८॥

हे स्वधावोऽन्नवन्वरुण तुभ्यं त्वदर्थं क्रियमाणोऽयमेतत्सूक्तात्मकं स्तोमः स्तोत्रं हृदि त्वदीये हृदये सु सुष्ठूपश्रित उपगतः समवेतोऽस्तु । चिदिति पूरकः । अप्राप्तस्य प्रापणं योगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः । नोऽस्मदीये क्षेमे रक्षणे शमुपद्रवाणां शमनमस्तु । योगे च नोऽस्मदीये प्रापणे शमु शमनमेवास्तूपद्रवाणां । हे वरुणादयो देवाः नोऽस्मान्सर्वदा स्वस्तिभिरविनाशैः पात । रक्षत ॥ ॥८॥

रदत्पथ इति सप्तर्चं सप्तदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वारुणं । अनुक्रांतं च । रदत्सप्तेति ॥ गतो विनियोगः ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनां ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥१॥
रदत् । पथः । वरुणः । सूर्याय । प्र । अर्णांसि । समुद्रिया । नदीनां ।
सर्गः । न । सृष्टः । अर्वतीः । ऋतऽयन् । चकार । महीः । अवनीः । अहऽभ्यः ॥१॥

अयं वरुणो देवः सूर्याय सर्वस्य प्रेरकायादित्याय पथो मार्गानंतरिक्षप्रदेशान्प्र रदत् । प्रायच्छत् । समुद्रिया समुद्र उदधौ भवानि । यद्वा । समुद्रवंत्यस्मादाप इति समुद्रमंतरिक्षं । तत्र भवानि । अर्णांस्युदकानि नदीनां प्रासृजत् । सर्गो न । सृज्यते युद्धभूमौ सादिना प्रेर्यत इति सर्गोऽश्वः । स यथार्वतीर्वडवाः प्रति शीघ्रं गच्छति तद्वदृतायन्नृतं शीघ्रं गमनमात्मन इच्छन्महीर्महतीरवनी रात्रीरहभ्योऽहोभ्यः सकाशाच्चकार । भेदेन कृतवान् । अस्तं गच्छन्सूर्य एव वरुण इत्युच्यते । स हि स्वगमनेन रात्रीर्जनयति ॥

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अंतर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥२॥
आत्मा । ते । वातः । रजः । आ । नवीनोत् । पशुः । न । भूर्णिः । यवसे । ससऽवान् ।
अंतः । मही इति । बृहती इति । रोदसी इति । इमे इति । विश्वा । ते । धाम ।
वरुण । प्रियाणि ॥२॥

हे वरुण ते त्वदीयस्त्वयांतरिक्षे प्रेर्यमाणो वातो वायुरात्मा सर्वस्य प्राणिजातस्य प्राणरूपेण धारयिता । स च रज उदकमा नवीनोत् । समंतात्प्रेरयति । वातेन हि वृष्टिर्जायते । भूर्णिर्जगतो भर्ता स वायुर्यवसे घासे प्रक्षिप्ते सति यथा पशुरन्नवान्भवति तद्वत्ससवान् । ससमित्यन्ननाम । तद्वान्भवति । हविर्लक्षणमन्नमपि तस्मै प्रयच्छंतीत्यर्थः । यद्वा ॥ सनोतेः क्वसौ रूपं ॥ ततः ससवान् संभक्तवान्वातो घासे सति पशुर्यथा भारवाही भवति तद्वज्जगतो भर्ता । हे वरुण मही महत्यौ बृहती परिवृढे इमे रोदसी द्यावापृथिव्यावंतर्मध्ये । द्यावापृथिव्योर्मध्य इत्यर्थः । ते तव विश्वा सर्वाणि धाम धामानि स्थानानि तेजांसि वा प्रियाणि सर्वेषां प्रीतिकराणि भवंति ॥

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यंति रोदसी सुमेके।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयंत मन्म ॥३॥
परि। स्पशः। वरुणस्य। स्मत्ऽइष्टाः। उभे इति। पश्यंति। रोदसी इति। सुमेके इति सुऽमेके।
ऋतऽवानः। कवयः। यज्ञऽधीराः। प्रऽचेतसः। ये। इषयंत। मन्म ॥३॥

स्पशंति स्पृशंतीति स्पशश्चराः। वरुणस्य देवस्य स्पशश्चराः स्मदिष्टाः। स्मदित्येतत् प्रशस्यार्थे सहार्थे च वर्तते। प्रशस्तगतयः। यद्वा। सह प्रेषिताः संतः। सुमेके शोभनमेहने सुरूपे वोभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ परि पश्यंति। परित ईक्षंते। उभयोर्लोकयोर्वर्तमानान्पुण्यापुण्यकारिणो जनान्पश्यंतीत्यर्थः। यस्मादेवं तस्मात्तज्ज्ञीत्या ऋतावानः कर्मवंतो यज्ञधीरा यज्ञेषु कृतबुद्धयः प्रचेतसः प्राज्ञाः कवयः क्रांतदर्शिनो ये जना मन्म मन्मानि स्तोत्राणीषयंत गमयंति वरुणं प्रापयंति। तानपि परि पश्यंतीत्यर्थः। अतोऽस्मानपि स्तोतॄञ्ज्ञात्वा पापान्मुंचंत्वित्यृषिराशास्ते ॥

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥४॥
उवाच। मे। वरुणः। मेधिराय। त्रिः। सप्त। नाम। अघ्न्या। बिभर्ति।
विद्वान्। पदस्य। गुह्या। न। वोचत्। युगाय। विप्रः। उपराय। शिक्षन् ॥४॥

मेधिराय मेधाविने मे मह्यं वरुण उवाच। उक्तवान्। किमुक्तवान् तदाह। त्रिः सप्तैकविंशतिसंख्याकानि नामान्यघ्न्या गौर्बिभर्ति। धारयतीति। वागत्र गौरुच्यते। सा चोरसि कंठे शिरसि च बद्धानि गायत्र्यादीनि सप्त च्छंदसां नामानि बिभर्ति। यद्वा। वेदात्मिका वागेकविंशतिसंस्थानां यज्ञानां नामानि बिभर्ति। धारयति। अपर आह। गौः पृथिवी। तस्याश्च गौग्मा ज्मेति पठितान्येकविंशति नामानीति। अपि च विद्वाञ्जानन्विप्रो मेधावी स वरुणो युगाय युक्तायोपरायोप समीपे रममाणायांतेवासिने मह्यं शिक्षन्नुपदिशन्पदस्योत्कृष्टस्य स्थानस्य ब्रह्मलोकलक्षणस्य संबंधीनि गुह्या गुह्यानि रहस्यान्युपदेशे गम्यानि। नशब्दश्चार्थे। इमानि च वोचत्। उक्तवान्। अतोऽहं वरुणस्य शिष्योऽस्मि। तस्मात्स वरुणोऽस्मान्पापान्मोचयत्वित्यर्थः ॥

तिस्रो द्यावो निहिता अंतरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेंखं हिरण्ययं शुभे कं ॥५॥
तिस्रः। द्यावः। निऽहिताः। अंतः। अस्मिन्। तिस्रः। भूमीः। उपराः। षट्ऽविधानाः।
गृत्सः। राजा। वरुणः। चक्रे। एतं। दिवि। प्रऽईंखं। हिरण्ययं। शुभे। कं ॥५॥

तिस्रस्त्रिप्रकारा उत्तममध्यमाधमभावेन त्रिविधा द्यावो द्युलोका अस्मिन्वरुणेऽंतर्मध्ये निहिताः। तिस्रः पूर्ववत्त्रिविधा भूमीर्भूम्यश्च षड्विधानाः। विधानं विधा। वसंताद्यृतुभेदेन षड्विधाः प्रकारा यासु तादृश्यः। उपरा अस्मिन्नेव वरुण उप्ता अंतर्भूताः। लोकानां त्रित्वं च त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोका इत्यादिना ब्राह्मणेनावगम्यते। तिस्रो भूमीर्धारयन्। ऋ० २. २७. ८.। इति निगमश्च भवति। इमौ लोकावावृत्य वरुणस्तिष्ठतीत्यर्थः। अपि च गृत्सः स्तुत्यो राजेश्वरः स वरुणो दिव्यंतरिक्षे हिरण्ययं हिरण्मयं सुवर्णमयं हितरमणीयं वा प्रेंखं दोलावद्दिग्द्वयसंसर्गिणमेतं सूर्यं शुभे कं दीप्त्यर्थं चक्रे। कृतवान्। दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ। ऋ० ५. ८५. २.। इति हि श्रूयते ॥

वारुणी पश्वावव सिंधुमिति वपाया अनुवाक्या। सूचितं च। अव सिंधुं वरुणो द्यौरिव स्थादयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावः। आ॰ ३. ७.। इति॥

अव सिंधुं वरुणो द्यौरिव स्थाद्द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्।
गंभीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा॥६॥

अव। सिंधुं। वरुणः। द्यौःऽइव। स्थात्। द्रप्सः। न। श्वेतः। मृगः। तुविष्मान्।
गंभीरऽशंसः। रजसः। विऽमानः। सुपारऽक्षत्रः। सतः। अस्य। राजा॥६॥

द्यौरिव सूर्य इव दीप्तो वरुणः सिंधुं समुद्रमव स्थात्। वेलायामवस्थापयति। यथा वेलां नातिक्रामति तथा करोतीत्यर्थः। कीदृशो वरुणः। द्रप्सो न द्रवणशील उदविंदुरिव श्वेतः शुभ्रवर्णो मृगः। लुप्तोपममेतत्। गौरमृग इव तुविष्मान् बलवान् प्रवृद्धो वा गंभीरशंसः। गंभीरो महाञ्छंसः स्तोत्रं यस्य स तथोक्तः। रजस उदकस्य विमानो निर्माता सुपारक्षत्रः सुष्ठु दुःखात्पारकं क्षत्रं बलं धनं वा यस्य तादृशो वरुणः सतो विद्यमानस्यास्य जगतो राजेश्वरो भवति॥

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधंतो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥

यः। मृळयाति। चक्रुषे। चित्। आगः। वयं। स्याम। वरुणे। अनागाः।
अनु। व्रतानि। अदितेः। ऋधंतः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥७॥

आगोऽपराधं चक्रुषे चित्कृतवतेऽपि स्तोत्रे यो वरुणो मृळयाति उपदयां करोति तस्मिन्वरुणेऽनागा अनागसोऽनपराधाः संतो वयं स्याम। वर्तमाना भवेम। किं कुर्वंतः। अदितेरदीनस्य वरुणस्य संबंधीनि व्रतानि कर्माण्यन्वानुपूर्व्येणर्धंतः समर्धयंतः। हे वरुणादयो देवाः यूयमस्मान्सर्वदा कल्याणैः पालयत॥ ॥९॥

प्र शुंध्युवमिति सप्तर्चमष्टादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वारुणं। प्र शुंध्युवमित्यनुक्रांतं॥ गतो विनियोगः॥

प्र शुंध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व।
य ईमर्वांचं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहंतं॥१॥

प्र। शुंध्युवं। वरुणाय। प्रेष्ठां। मतिं। वसिष्ठ। मीळ्हुषे। भरस्व।
यः। ईं। अर्वांचं। करते। यजत्रं। सहस्रऽमघं। वृषणं। बृहंतं॥१॥

ऋषिरात्मानमेव प्रत्यक्षीकृत्य स्तुतौ नियुंक्ते। हे वसिष्ठ त्वं मीळ्हुषे सेक्त्रे वरुणाय शुंध्युवं शोधयित्रीं यद्वा स्वत एव शुद्धां प्रेष्ठां प्रियतमां मतिं मननीयामीदृशीं स्तुतिं प्र भरस्व। प्रहर। प्रापय। यो वरुण ईमेनं सूर्यमर्वाचमस्मदभिमुखं करते अंतरिक्षे करोति तस्मै वरुणायेत्यन्वयः। कीदृशं सूर्यं। यजत्रं यष्टव्यं सहस्रामघं बहुधनं वृषणं कामानां वर्षकं बृहंतं महांतं॥

अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अंधोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात्॥२॥

अध। नु। अस्य। संऽदृशं। जगन्वान्। अग्नेः। अनीकं। वरुणस्य। मंसि।
स्वः। यत्। अश्मन्। अधिऽपाः। ऊं इति। अंधः। अभि। मा। वपुः। दृशये।
निनीयात्॥२॥

अधाधुनास्य वरुणस्य संदृशं संदर्शनं नु क्षिप्रं जगन्वान् गतवानहमग्नेरनीकं ज्वालासंघं मंसि। स्तवानि। तं वरुणं यष्टुमिति शेषः। यद्यदा वरुणः स्वः सुखकरमश्मन्नश्मन्यभिषवार्थे पाषाणेऽवस्थितं। अभिषुतमित्यर्थः। ईदृशमंधः सोमलक्षणमन्नमधिपा अधिकं पाता भवेत्॥ छांदसः षष्ठ्यभावः॥ उ इति पूरकः। तदानीं मा मां वपुः शरीरं स्वकीयं। वपुरिति रूपनाम। प्रशस्तं रूपं वा दृशये दर्शनार्थमभि निनीयात्। अभिप्रापयेत्॥

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यं।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेंख ईंखयावहै शुभे कं॥३॥
आ। यत्। रुहाव। वरुणः। च। नावं। प्र। यत्। समुद्रं। ईरयाव। मध्यं।
अधि। यत्। अपां। स्नुऽभिः। चराव। प्र। प्रऽईंखे। ईंखयावहै। शुभे। कं॥३॥

यद्यदा वरुणे प्रसन्ने सत्यहं वरुणश्चोभौ नावं द्रुममयीं तरणसाधनभूतामा रुहाव उभावारूढावभूव। तां च नावं यद्यदा समुद्रं मध्यं समुद्रस्य मध्यं प्रति प्रेरयाव प्रकर्षेण गमयाव। यद्यदा चापामुदकानामध्युपरि स्नुभिर्गंत्रीभिरन्याभिरपि नौभिश्चराव वर्तावहै। तदानीं शुभे शोभार्थं प्रेंखे नौरूपायां दोलायामेव प्रेंखयावहै। निम्नोन्नतैस्तरंगैरितश्चेतश्च प्रविचलंतौ संक्रीडावहै। कमिति पूरकः। यद्वा। क्रियाविशेषणं। कं सुखं यथा भवति तथेत्यर्थः॥

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः॥४॥
वसिष्ठं। ह। वरुणः। नावि। आ। अधात्। ऋषिं। चकार। सुऽअपाः। महःऽभिः।
स्तोतारं। विप्रः। सुदिनऽत्वे। अह्नां। यात्। नु। द्यावः। ततनन्। यात्। उषसः॥४॥

एवं वसिष्ठेनात्मनोक्ते यद्वरुणेन कृतं तद्दर्शयति। वसिष्ठं ह वसिष्ठं खलु वरुणो नावि स्वकीयायामाधात्। आरोहयत्। तथा तमृषिमवोभी रक्षणैः स्वपां स्वपसं शोभनकर्माणं चकार। वरुणः कृतवान्। अपि च विप्रो मेधावी वरुणोऽह्नां दिवसानां मध्ये सुदिनत्वे यत्फलत्वेन शोभनदिनत्वं तत्र स्तोतारमस्थापयदिति शेषः। किं कुर्वन्। यात्द्यातो गच्छतो द्यावो दिवसान् यात्यातीरुषास उषसोपलक्षिता रात्रीश्च नु क्षिप्रं ततनन् सूर्यात्मना विस्तारयन्॥

क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित्।
बृहंतं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते॥५॥
क्व। त्यानि। नौ। सख्या। बभूवुः। सचावहे इति। यत्। अवृकं। पुरा। चित्।
बृहंतं। मानं। वरुण। स्वधाऽवः। सहस्रऽद्वारं। जगम। गृहं। ते॥५॥

हे वरुण त्यानि तानि पुरातनानि नावावयोः सख्या सख्यानि सखित्वानि क्व कुत्र बभूवुः। पुरा पूर्वस्मिन्कालेऽवृकमहिंस्यमात्यंतिकं यत्सख्यमस्ति तत्सचावहे। आवां सेवावहे। चिदिति पूरकः। अपि च हे स्वधावोऽन्नवन्वरुण ते त्वदीयं गृहं जगम। गच्छानि॥ लोडर्थे लिट्॥ कीदृशं गृहं। बृहंतं महांतं मानं। मांत्यस्मिन्सर्वाणि भूतानीति मानं। सर्वस्य भूतजातस्य परिच्छेदकमित्यर्थः। सहस्रद्वारं बहुद्वारं॥

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते।
मा त एनस्वंतो यक्षिन्भुजेम यंधि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथं॥६॥

यः । आपिः । नित्यः । वरुण । प्रियः । सन् । त्वां । आगांसि । कृणवत् । सखा । ते ।
मा । ते । एनस्वंतः । यक्षिन् । भुजेम । यंधि । स्म । विप्रः । स्तुवते । वरूथं ॥ ६ ॥

हे वरुण यो वसिष्ठो नित्यो ध्रुव आपिर्बंधुः । औरसः पुत्र इत्यर्थः । यः पूर्वं प्रियः संस्त्वां प्रत्यागांस्यप-राधान् कृणवत् अकरोत् स इदानीं ते तव सखा समानख्यानः प्रियोऽस्तु । हे यक्षिन्यजनीय वरुण ते तव स्वभूता वयमेनस्वंत एनसा पापेन युक्ताः संतो मा भुजेम । मा भुज्महि । त्वत्प्रसादात्पापरहिता एव संतो भोगान् भुनजामहै । विप्रो मेधावी त्वं च स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते वसिष्ठाय वरूथमनिष्टनिवारकं वरणीयं वा गृहं यंधि । प्रयच्छ । स्मेति पूरकः ॥

अत्र ऋग्विधानं । ध्रुवासु त्वासु चितिषु जपन् बंधात्प्रमुच्यते । तिष्ठन्रात्रौ जपेदेतां पिशाचस्तं न गच्छति । ऋग्वि० २. २८. । इति ॥

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियंतो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
ध्रुवासु । त्वा । आसु । क्षितिषु । क्षियंतः । वि । अस्मत् । पाशं । वरुणः । मुमोचत् ।
अवः । वन्वानाः । अदितेः । उपऽस्थात् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

ध्रुवासु नित्यास्वासु दृश्यमानासु चितिषु भूमिषु चियंतो निवसंतो वयं हे वरुण त्वा त्वां स्तुम इति शेषः । स च वरुणोऽस्मदस्मत्तः पाशं बंधकं पापं वि मुमोचत् । मोचयेत् । तथादितेरखंडनीयायाः पृथिव्या उपस्था-दुपस्थानाद्वो रक्षणं वरुणेन दत्तं वन्वानाः संभजमाना वयं स्याम । अन्यद्गतं ॥ ॥ १० ॥

मो षु वरुणेति पंचर्चमेकोनविंशं सूक्तं वारुणं । अंत्या जगती शिष्टाश्चतस्रो गायत्र्यः । तथा चानुक्रांतं । मो षु पंच गायत्रं जगत्यंतमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमं । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥
मो इति । सु । वरुण । मृत्ऽमयं । गृहं । राजन् । अहं । गमं । मृळ । सुऽक्षत्र । मृळय ॥ १ ॥

हे राजन्नीश्वर वरुण त्वदीयं मृन्मयं मृदादिभिर्निर्मितं गृहं मो मा उ नैवाहं गमं । गतोऽस्मि । अपि तु सुशोभनं सुवर्णमयमेव त्वदीयं गृहं प्राप्नवानि । स त्वं मां मृळ । सुखय । हे सुक्षत्र शोभनधन वरुण मृळय । उपदयां च कुरु ॥

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥
यत् । एमि । प्रस्फुरन्ऽइव । दृतिः । न । ध्मातः । अद्रिऽवः । मृळ । सुऽक्षत्र । मृळय ॥ २ ॥

हे अद्रिव आयुधवन्वरुण यद्यदा प्रस्फुरन्निव शैत्येन प्रविचलन्निव त्वद्भयाद्वेपमानो दृतिर्न दृतिरिव ध्मातो वायुना पूर्णः सन् त्वया बद्धोऽहमेमि गच्छामि तदानीं मृळ । सुखय । हे सुक्षत्र सुधन मृळय । उपदयां कुरु ॥

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥
क्रत्वः । समह । दीनता । प्रतिऽईपं । जगम । शुचे । मृळ । सुऽक्षत्र । मृळय ॥ ३ ॥

हे समह सधन शुचे स्वभावतो निर्मल वरुण दीनता दीनतयाशक्ततया क्रत्वः कर्मणः कर्तव्यत्वेन विहि-तस्य श्रौतस्मार्तादिलक्षणस्य प्रतीपं प्रतिकूलमननुष्ठानं जगम । प्राप्नवानस्मि । अत एव त्वया बद्धः । तादृशं मां मृळ । सुखय । अन्यद्गतं ॥

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारं । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥४॥

अपां । मध्ये । तस्थिऽवांसं । तृष्णा । अविदत् । जरितारं । मृळ । सुऽक्षत्र । मृळय ॥४॥

अपां समुद्राणामुदकानां मध्ये तस्थिवांसं स्थितवंतमपि जरितारं तव स्तोतारं मां तृष्णा पिपासाविदत् । आप्तवती । लवणोत्कटस्य सामुद्रजलस्य पानानर्हत्वात् । अतस्तादृशं मां मृळ । सुखय । अन्यद्गतं ॥

देवसुवां हविःषु वारुणस्य हविषो यत्किं चेदमिति याज्या । सूत्रितं च । यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जन उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरमिति द्वे । आ॰ ४. ११. । इति ॥

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५॥

यत् । किं । च । इदं । वरुण । दैव्ये । जने । अभिऽद्रोहं । मनुष्याः । चरामसि ।
अचित्ती । यत् । तव । धर्म । युयोपिम । मा । नः । तस्मात् । एनसः । देव । रिरिषः ॥५॥

हे वरुण दैव्ये देवसमूहरूपे जने यदिदं किंचनाभिद्रोहमपकारजातं मनुष्या वयं चरामसि चरामः निर्वर्तयामः । तथाचित्त्यचित्त्याज्ञानेन तव त्वदीयं यद्धर्म धारकं कर्म युयोपिम वयं विमोहितवंतः । हे देव तस्मादेनसः पापान्नोऽस्मान्मा रीरिषः । मा हिंसीः ॥ ॥११॥ ॥५॥

षष्ठेऽनुवाके पंचदश सूक्तानि । तत्र प्र वीरयेति सप्तर्चं प्रथमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वायव्यं । यासु पंचम्याद्यासु द्विवचनमस्ति ता ऐंद्रवायव्यः । तथा चानुक्रांतं । प्र वीरया सप्त वायव्यं ह्यैंद्रश्च या द्विवदुक्ता इति ॥ तृतीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे प्र वीरयेति वायव्यस्तृचः । सूत्रितं च । प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वां ते सत्येन मनसा दीध्यानाः । आ॰ ८. ११. । इति ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमंतः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यांधसो मदाय ॥१॥

प्र । वीरऽया । शुचयः । दद्रिरे । वां । अध्वर्युऽभिः । मधुऽमंतः । सुतासः ।
वह । वायो इति । निऽयुतः । याहि । अच्छ । पिब । सुतस्य । अंधसः । मदाय ॥१॥

हे वायो वीरया वीराय विविधमीरयित्रे ॥ सुपां सुलुगिति चतुर्थ्या याजादेशः ॥ वां ते ॥ व्यत्ययेन द्विवचनं ॥ तुभ्यं शुचयः शुद्धा मधुमंतो माधुर्योपेताः सुतासोऽभिषुताः सोमा ऐतरेयिभिर्नवमेऽहनि प्रउगेऽध्वर्युभिरध्वरस्य नेतृभिर्ऋत्विग्भिः प्र दद्रिरे । प्रदीयंते ॥ दद दान इत्यस्यैतद्रूपं ॥ यत एवमतः कारणात् हे वायो नियुतो वडवा वह । रथं प्रापय । तेन च रथेनाच्छ याहि । अस्मद्यज्ञमभिगच्छ । अभिगत्य च सुतस्याभिषुतस्यांधसोऽन्नस्य सोमलक्षणस्य स्वकीयं भागं पिब । किमर्थं । मदाय मदोत्पत्त्यर्थं ॥

शुनासीरीये पर्वणि वायव्यस्य हविष ईशानायेति याज्या । सूत्रितं च । स त्वं नो देव मनसेशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् । आ॰ २. २०. । इति ॥ वायव्ये पशावेषैव पशुपुरोडाशस्य याज्या । सूत्रितं च । ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं । आ॰ ३. ८. । इति ॥

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्छुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥२॥

ईशानाय । प्रऽहुतिं । यः । ते । आनट् । शुचिं । सोमं । शुचिऽपाः । तुभ्यं । वायो इति ।
कृणोषि । तं । मर्त्येषु । प्रऽशस्तं । जातःऽजातः । जायते । वाजी । अस्य ॥२॥

हे वायो ईशानायेश्वराय ते तुभ्यं त्वदर्थं प्रकृतिं प्रकृष्टामाकृतिं चरुपुरोडाशादिसाध्यां यो यजमान आनट् प्राप्नोत्। ददातीत्यर्थः। तथा हे शुचिपाः शुद्धस्य सोमस्य पातर्वायो तुभ्यं शुचिं शुद्धं सोमं च यः प्रयच्छति मर्त्येषु मनुष्येषु मध्ये तं यजमानं प्रशस्तं मुख्यं कृणोषि। करोषि। स च जातो जातः सर्वत्र प्रादुर्भूतः प्रख्यातः सन् वाज्यस्य प्राप्तव्यस्य धनस्य प्राप्तये जायते। अवकल्पते। सर्वं धनं लभत इत्यर्थः॥

नियुत्वद्गुणविशिष्टवायुदेवताके पशौ राये नु यमिति पुरोडाशस्य याज्या। सूत्रितं च। राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा। आ॰ ३. ८.। इति॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवं।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके॥३॥
राये। नु। यं। जज्ञतुः। रोदसी इति। इमे इति। राये। देवी। धिषणा। धाति। देवं।
अध। वायुं। निऽयुतः। सश्चत। स्वाः। उत। श्वेतं। वसुऽधितिं। निरेके॥३॥

इमे रोदसी द्यावापृथिव्यौ यं वायुं राये धनार्थं नु क्षिप्रं जज्ञतुः जनयामासतुः तं देवं दानादिगुणयुक्तं वायुं देवी द्योतमाना धिषणा स्तुती राये धनार्थं धाति। धारयति। धनं यथा लभ्यते तथा प्रेरयतीत्यर्थः। अधाधुनैवं स्तुतौ प्रवृत्तायां स्वाः स्वकीया नियुतो वडवा रथवाहा वायुं सश्चत। सचंते। सेवंते। उतापि च श्वेतं शुभ्रवर्णं निरेके। नितरां रेको रिक्तता निरेकः। दारिद्र्यमित्यर्थः। तस्मिन्सति वसुधितिं वसूनां धातारं प्रदातारं तं वायुं नियुतोऽस्मदभिमुखं प्रापयंतीति शेषः॥

द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचस्योच्छन्नुषस इति तृतीया। सूत्रितं च। उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा इत्येकपातिन्यः। आ॰ ८. १०.। इति॥

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः॥४॥
उच्छन्। उषसः। सुऽदिनाः। अरिप्राः। उरु। ज्योतिः। विविदुः। दीध्यानाः।
गव्यं। चित्। ऊर्वं। उशिजः। वि। वव्रुः। तेषां। अनु। प्रऽदिवः। सस्रुः। आपः॥४॥

येऽंगिरसो वायुमस्तोषत तेषामरिप्राः पापरहिता उषसः सुदिनाः शोभनदिनस्य हेतुभूताः सत्य उच्छन्। औच्छन्। व्यवासयन्। ते च दीध्याना दीप्यमानाः संत उरु विस्तीर्णं ज्योतिः सूर्याख्यं विविदुः। वायोः प्रसादादलभंत। अपि चोशिजः कामयमानास्तेऽंगिरसो गव्यं चिन्नोसंघरूपमपूर्वं धनं पणिभिरपहृतं वि वव्रुः। व्यवृण्वन्। अलभंत। तथा तेषामंगिरसामर्थाय प्रदिवः पुराण आपोऽनु सस्रुः। अन्वसरन्। अन्वगच्छन्। हिताहिताचरणपरा आसन्नित्यर्थः। आवरकस्यासुरस्य वायुना हननादसुरेणाहृतानुषःप्रभृतीन् पुनर्लब्धवंत इत्यर्थः॥

तृतीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे ते सत्येनेत्यैंद्रवायवस्तृचः। सूत्रितं च। ते सत्येन मनसा दीध्याना दिवि क्षयंता रजसः पृथिव्यां। आ॰ ८. ११.। इति॥

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहंति।
इंद्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचंते॥५॥
ते। सत्येन। मनसा। दीध्यानाः। स्वेन। युक्तासः। क्रतुना। वहंति।
इंद्रवायू इति। वीरऽवाहं। रथं। वां। ईशानयोः। अभि। पृक्षः। सचंते॥५॥

ते प्रसिद्धाः सत्येन यथार्थेन मनसा मननीयेन स्तोत्रेण युक्ता दीध्याना दीप्यमानाः स्वेन स्वकीयत्वे विहितेन क्रतुना कर्मणा नित्यनैमित्तिकात्मना युक्तासो युक्ता एवंभूता यजमाना हे इंद्रवायू वीरवाहं वीरैर्विशेषेणेरयितृभिः स्तोतृभिर्वहनीयं प्रापणीयं। यद्वा। वीरैरश्वैर्वहनीयं। तमीशानयोरीश्वरयोर्वा युवयोः स्वभूतं रथं वहंति। स्वं स्वं यज्ञं प्रापयंति। तत्र च पृक्षोऽन्नानि हविर्लक्षणान्यभि सचंते। युवामभिसेवंते॥

ई॒शा॒नासो॒ ये दध॑ते॒ स्व॑र्णो॒ गोभि॒रश्वे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्हिर॑ण्यैः।
इंद्र॑वायू सू॒रयो॒ विश्व॒मायु॒रर्व॑द्भिर्वी॒रैः पृत॑नासु स॒ह्युः॥६॥
ई॒शा॒नासः॑। ये। दध॑ते। स्वः॑। नः॒। गोभिः॑। अश्वे॑भिः। वसु॑ऽभिः। हिर॑ण्यैः।
इंद्र॑वायू॒ इति॑। सू॒रयः॑। विश्वं॑। आयुः॑। अर्व॑त्ऽभिः। वी॒रैः। पृत॑नासु। स॒ह्युः॥६॥

हे इंद्रवायू ईशानास ईश्वराः प्रभवो ये जना नोऽस्मभ्यं गोभिरश्वेभिरश्वैर्वसुभिर्निवासकैर्हिरण्यैश्च सहितं स्वः सुष्ठरणीयं सुखं दधते ददति प्रयच्छंति। यद्वा। हिरण्यव्यतिरिक्तानि धनानि वसूनि। तैर्हिरण्यैश्च सहेत्यर्थः। ते सूरयो दातारो विश्वं व्याप्तमायुरन्नं जीवनं वा शत्रूणां स्वभूतं पृतनासु संग्रामेष्वर्वद्भिरश्वैर्वीरैः शूरभटैश्च साधनभूतैः सह्युः। अभिभवेयुः। यद्वा। सहार्थे तृतीया। अर्वद्भिर्वीरैः पुत्रैश्च सहितं शत्रूणामायुरभिभवेयुरित्यर्थः॥

अर्वं॑तो॒ न श्रव॑सो॒ भिक्ष॑माणा इंद्रवा॒यू सु॑ष्टु॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः।
वा॒ज॒यंतः॒ स्वव॑से हुवेम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥७॥
अर्वं॑तः। न। श्रव॑सः। भिक्ष॑माणाः। इं॒द्र॒वा॒यू इति॑। सु॒स्तु॒तिऽभिः॑। वसि॑ष्ठाः।
वा॒ज॒ऽयंतः॑। सु। अव॑से। हु॒वे॒म॒। यू॒यं। पा॒त॒। स्व॒स्तिऽभिः॑। सदा॑। नः॒॥७॥

अर्वंतो नाश्वा इव हविषां वोढारः श्रवसोऽन्नस्य। द्वितीयार्थे षष्ठी। अन्नं भिक्षमाणा याचमाना वाजयंतो वाजं बलमात्मन इच्छंतो वसिष्ठा वयं स्ववसे शोभनरक्षणाय सुष्ठुतर्पणाय वा सुष्टुतिभिः शोभनाभिः स्तुतिभिरिंद्रवायू इंद्रं वायुं च हुवेम। आह्वयेमहि। अन्यद्गतं॥ ॥१२॥

कुविदंगेति सप्तर्चं द्वितीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वायव्यं। कुविदंगेत्यनुक्रांतं॥ गतः सूक्तविनियोगः॥ वायव्ये पशौ कुविदंगेति वपाया याज्या। सूत्रितं च। कुविदंग नमसा ये वृधास ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्। आ॰ ३. ८.। इति॥

कु॒वि॒दं॒ग नम॑सा॒ ये वृ॒धासः॑ पु॒रा दे॒वा अ॑नव॒द्यास॒ आस॑न्।
ते वा॒यवे॒ मन॑वे बाधि॒तायावा॑सयन्नु॒षसं॒ सूर्ये॑ण॥१॥
कु॒वित्। अं॒ग। नम॑सा। ये। वृ॒धासः॑। पु॒रा। दे॒वाः। अ॒न॒व॒द्यासः॑। आस॑न्।
ते। वा॒यवे॑। मन॑वे। बा॒धि॒ताय॑। अवा॑सयन्। उ॒षसं॑। सूर्ये॑ण॥१॥

दीव्यंति स्तुवंतीति देवाः स्तोतारः। पुरा पूर्वस्मिन्काले ये वृधासो वृद्धा देवाः स्तोतारः। कुविदिति बहुनाम। अंगेति क्षिप्रनाम। कुविद्बहुशोऽंग क्षिप्रं कृतेन नमसा वायुविषयेण स्तोत्रेण नमस्कारेण वानवद्यासोऽवद्यरहिता आसन् तेऽद्यापि वायवे हवींषि दातुं सूर्येण सहोषसमवासयन्। उषसो व्युष्टिं सूर्योदयं च वायुयागार्थं कुर्वंतीत्यर्थः। किमर्थं। मनवे मनुष्याणां बाधिताय बाधितानां पुत्रादीनां रक्षणार्थमित्यर्थः। यद्वा। मनवे बाधितायेति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। बाधितस्य मनोः प्रजापतेर्यागे वायवे हवींषि दातुमित्यन्वयः॥

द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतृचस्योशंतेत्येषा प्रथमा । सूचितं च । उशंता दूता न दभाय गोपा यावत्तरस्तन्वो यावदोज इत्येका द्वे च । आ॰ ८. १०. । इति ॥

उशंता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इंद्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यं ॥२॥
उशंता । दूता । न । दभाय । गोपा । मासः । च । पाथः । शरदः । च । पूर्वीः ।
इंद्रवायू इति । सुऽस्तुतिः । वां । इयाना । मार्डीकं । ईट्टे । सुवितं । च । नव्यं ॥२॥

हे इंद्रवायू उशंतोशंतौ कामयमानौ दूतौ ॥ देवतेर्गतिकर्मणो दूतशब्दः ॥ गंतारौ गोपा गोपायितारावीदृशौ युवां दभाय हिंसायै न भवतं । अपि तु मासो मासांश्च पूर्वीर्बह्वीः शरदः संवत्सरांश्च चिरकालमस्मान् पाथः । रक्षतं । अपि च हे इंद्रवायू सुष्टुतिरस्मदीया शोभना स्तुतिर्वां युवामियाना गच्छंती प्राप्नुवंती मार्डीकं सुखमीट्टे । याचते । यद्वा । सुखं यथा भवति तथा युवामीट्टे । स्तौति । तथा नव्यं प्रशस्यं सुवितं सुष्ठु प्राप्यं धनं चेट्टे ॥

नियुत्वद्वायुदेवताके पशौ पीवोअन्नानिति वपाया याज्या । सूचितं च । पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधा राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे । आ॰ ३. ८. । इति ॥ तथा द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचस्यैषैव द्वितीया । सूचितं च । पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधा उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्राः । आ॰ ८. १०. । इति ॥

पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥३॥
पीवःऽअन्नान् । रयिऽवृधः । सुऽमेधाः । श्वेतः । सिसक्ति । निऽयुतां । अभिऽश्रीः ।
ते । वायवे । सऽमनसः । वि । तस्थुः । विश्वा । इत् । नरः । सुऽअपत्यानि । चक्रुः ॥३॥

पीवोअन्नान् पीवांसि स्थूलानि प्रभूतान्यन्नानि येषां तान् रयिवृधो रय्या धनेन वृद्धानेवंभूतानाढ्यजनान् सुमेधाः शोभनप्रज्ञो नियुतां वडवानां स्ववाहानामभिश्रीरभिश्रयणीयः श्वेतः श्वेतवर्णो वायुः सिषक्ति । सेवते । ते च जनाः समनसः समानमनस्काः संतो वायवे वायुमुद्दिश्य यष्टुं वि तस्थुः । विविधमवतिष्ठंते । स्थित्वा च ते नरः कर्मणां नेतारो जना विश्वेद्विश्वानि सर्वाण्येव स्वपत्यानि शोभनापत्यहेतूनि यद्वा सुष्ठ्वपतनकारणानि वायुदेवत्यानि कर्माणि चक्रुः । कुर्वंति ॥

द्वितीये छंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतृचस्य यावत्तर इत्यादिके द्वे ऋचौ । सूत्रं तु पूर्वमेवोदाहृतं ॥

यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इंद्रवायू सदतं बर्हिरेदं ॥४॥
यावत् । तरः । तन्वः । यावत् । ओजः । यावत् । नरः । चक्षसा । दीध्यानाः ।
शुचिं । सोमं । शुचिऽपा । पातं । अस्मे इति । इंद्रवायू इति । सदतं । बर्हिः । आ । इदं ॥४॥

हे इंद्रवायू युवयोस्तन्वः शरीरस्य तरो वेगो यावदस्ति यावच्चौजो बलं यावच्च नरः कर्मणां नेतार ऋत्विजश्चक्षसा ज्ञानेन दीध्याना दीप्यमाना भवंति तस्य सर्वस्यानुरूपं शुचिपा शुचेः सोमस्य पाताराविंद्रवायू शुचिं शुद्धं सोममस्मे अस्मदीयं पातं । पिबतं । इदं वेद्यां स्तीर्णं बर्हिस्था सदतं । पानार्थमासीदतं । बर्हिष्युपविशतमित्यर्थः ॥

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इंद्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥५॥
निऽयुवाना । निऽयुतः । स्पार्हऽवीराः । इंद्रवायू इति । सऽरथं । यातं । अर्वाक् ।
इदं । हि । वां । प्रऽभृतं । मध्वः । अग्रं । अध । प्रीणाना । वि । मुमुक्तं । अस्मे इति ॥५॥

हे इंद्रवायू स्पार्हवीराः स्पृहणीयस्तोतृकान्नियुत आत्मीयानश्वान् सरथमुभयोः समानमेकं रथं नियुवाना निमिश्रयंतौ युवामर्वागस्मदभिमुखं यातं । गच्छतं । इदं हीदं खलु मध्वो मधुरस्य सोमस्याग्रं ग्रहेष्वाद्यमैंद्रवायवाख्यं ग्रहं वां युवयोरर्थं प्रभृतं प्रकर्षेण हृतं होमार्थमुत्तरवेदिं प्रति नीतं । अधाथ तादृशस्य सोमस्य पानानंतरं प्रीणाना प्रीयमाणौ युवामस्मे अस्मान् वि मुमुक्तं । पापाद्विमोचयतं ॥

प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतृचस्य या वां शतमिति तृतीया । सूत्रितं च । या वां शतं नियुतो याः सहस्रमित्येकपातिन्यः । आ० ८. ९. । इति ॥

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिंद्रवायू विश्ववाराः सचंते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६॥
याः । वां । शतं । निऽयुतः । याः । सहस्रं । इंद्रवायू इति । विश्वऽवाराः । सचंते ।
आ । आभिः । यातं । सुऽविदत्राभिः । अर्वाक् । पातं । नरा । प्रतिऽभृतस्य । मध्वः ॥६॥

हे इंद्रवायू या नियुतः शतं शतसंख्याकाः सत्यो वां युवां सचंते सेवंते । याश्च विश्ववारा विश्वैर्वरणीया नियुतः सहस्रं सहस्रसंख्याकाः सत्यो युवां सचंते । सुविदत्राभिः शोभनधनप्रदाभिराभिर्नियुद्भिरर्वागस्मदभिमुखमा यातं । आगच्छतं । हे नरा नेतारौ प्रतिभृतस्योत्तरवेदिं प्रति नीतस्य मध्वो मधुरस्य सोमस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । ईदृशं सोमं पातं । पिबतं ॥

अर्वंतो न श्रवसो भिक्षमाणा इंद्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयंतः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
अर्वंतः । न । श्रवसः । भिक्षमाणाः । इंद्रवायू इति । सुस्तुतिऽभिः । वसिष्ठाः ।
वाजऽयंतः । सु । अवसे । हुवेम । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

व्याख्यातेयं । अक्षरार्थस्तु । अश्वा इव हविषां वोढारोऽन्नं याचमाना बलं कामयमाना वसिष्ठा वयं शोभनरक्षणाय शोभनैः स्तोत्रैरिंद्रवायू आह्वयेमहीति ॥ ॥१३॥

आ वायो इति पंचर्चं तृतीयं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वायव्यं । अनुक्रांतं च । आ वायो पंचेति ॥ शुनासीरीये पर्वणि वायोर्नियुत्वतो यागस्या वायो इत्यनुवाक्या । सूत्रितं च । आ वायो भूष शुचिपा उप नः प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छ । आ० २. २०. । इति ॥ नियुत्वद्वायुदेवताके पशावेषैव वपाया अनुवाक्या । आ० ३. ८. ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचस्यैषैवाद्या । सूत्रितं च । समुद्रादूर्मिरित्याज्यमा वायो भूष शुचिपाः । आ० ८. ९. । इति ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अंधो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं ॥१॥

आ। वायो इति। भूष। शुचिऽपाः। उप। नः। सहस्रं। ते। निऽयुतः। विश्वऽवार।
उपो इति। ते। अंधः। मद्यं। अयामि। यस्य। देव। दधिषे। पूर्वऽपेयं ॥१॥

हे शुचिपाः शुचेः शुद्धस्य सोमस्य पातर्वायो नोऽस्माकमुप समीप आ भूष। आगच्छ ॥ भू प्राप्तावित्यस्यैतद्रूपं ॥ हे विश्ववार विश्वैर्वरणीय ते तव वाहनभूता नियुतो वडवाः सहस्रं सहस्रसंख्याका विद्यंते। यत एवमतः शीघ्रमागच्छ। ते तव मद्यं मदकरं सोमलक्षणमंधोऽन्नमुपो उप उ उपायामि। उपयतं पात्रे गृहीतमासीत्। हे देव वायो यस्य सोमस्य पूर्वपेयं प्रथमपानं दधिषे दधासि धारयसि। ऐंद्रवायवग्रहे प्रथमे वषट्कारे केवलाय वायवे हूयते द्वितीये त्विंद्रवायुभ्यामिति वायोः प्रथमपानं। तादृशमंध उपायामीत्यन्वयः ॥

प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतृचस्य प्र सोतेत्याद्या। सूचितं च। प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थाद्वे वायव इंद्रमादनासः। आ० ८. ९.। इति ॥

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिंद्राय वायवे पिबध्यै।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरंत्यध्वर्यवो देवयंतः शचीभिः ॥२॥
प्र। सोता। जीरः। अध्वरेषु। अस्थात्। सोमं। इंद्राय। वायवे। पिबध्यै।
प्र। यत्। वां। मध्वः। अग्रियं। भरंति। अध्वर्यवः। देवऽयंतः। शचीभिः ॥२॥

जीरः क्षिप्रकारी सोताभिषोताध्वर्युरिंद्राय वायवे च पिबध्यै पानार्थमध्वरेषु यागेषु सोमं प्रास्थात्। प्रातिष्ठिपत्। पुरस्तादुत्तरवेदिं प्रापितवान्। हे इंद्रवायू यद्येषु यज्ञेषु मध्वः सोमस्याग्रियमग्रभवं प्रथमभागं देवयंतो देवकामा अध्वर्यवः शचीभिः कर्मभिरभिषवादिलक्षणैर्वां युवयोरर्थं प्र भरंति प्रकर्षेण भरंति संपादयंति। तेष्वध्वरेष्वित्यन्वयः ॥

शुनासीरीये पर्वणि नियुत्वद्वायोर्यागस्य प्र याभिरिति याज्या। सूचितं च। प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छ स त्वं नो देव मनसा। आ० २. २०.। इति ॥ तद्देवत्ये पशावेषैव पुरोडाशस्यानुवाक्या। सूचितं च। प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नो नियुद्भिः शतिनीभिः। आ० ३. ८.। इति ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र एषैव वायवतृचस्य द्वितीया। सूचितं च। आ वायो भूष शुचिपा उप नः प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा। आ० ८. ९.। इति ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३॥
प्र। याभिः। यासि। दाश्वांसं। अच्छ। नियुत्ऽभिः। वायो इति। इष्टये। दुरोणे।
नि। नः। रयिं। सुऽभोजसं। युवस्व। नि। वीरं। गव्यं। अश्व्यं। च। राधः ॥३॥

हे वायो दुरोणे यज्ञगृहे स्थितं दाश्वांसं हविषां दातारं यजमानमिष्टये यागाय याभिर्नियुद्भिर्वडवाभिरच्छ यासि अभिगच्छसि ताभिरस्मान्प्रत्यागच्छेति शेषः। आगत्य च नोऽस्मभ्यं सुभोजसं शोभनान्नयुक्तं रयिं धनं नि युवस्व। नितरां मिश्रय। प्रयच्छ। तथा वीरं पुत्रं गव्यं गोसंघमश्व्यमश्वसंघमेतदुभयात्मकं राधो धनं च नि युवस्व। प्रयच्छ ॥

प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्र ऐंद्रवायवतृचस्य ये वायव इंद्रेति द्वितीया। सूचितं च। ये वायव इंद्रमादनासो या वां शतं नियुतो याः सहस्रं। आ० ८. ९.। इति ॥

ये वायव इंद्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नंतो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४॥

ये । वायवे॑ । इं॒द्र॒ऽमाद॑नासः । आऽदे॑वासः । नि॒ऽतोश॑नासः । अर्यः॑ ।
घ्नंतः॑ । वृ॒त्राणि॑ । सू॒रिऽभिः॑ । स्या॒म॒ । स॒स॒ह्वांसः॑ । यु॒धा । नृऽभिः॑ । अ॒मित्रा॑न् ॥ ४ ॥

ये सूरयः स्तोतार इंद्रमादनासः स्तोत्रैरिंद्रस्य तर्पयितारस्तथा वायवे वायोश्च मादनास्तर्पका भवंति । ये चादेवासो जागतैरुपेता अत एवार्योऽरेः शत्रोर्नितोशनासो निहंतारः । तैरस्मदीयैः सूरिभिः स्तोतृभिर्वृत्राणि शत्रून् घ्नंतो हिंसंतः स्याम । भवेम । किं कुर्वंतः । अमित्राञ्छत्रुभटान्नृभिरस्मदीयैः पुरुषैर्युधा युद्धेभिः ससह्वांसोऽभिभवंतः ॥

नियुत्वद्वायुदेवताके पशावा नो नियुद्भिरिति हविषोऽनुवाक्या । सूत्रितं च । आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः । आ° ३. ८. । इति ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचस्यैषैव तृतीया । सूत्रितं च । आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् । आ° ८. ९. । इति ॥

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रं स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि य॒ज्ञं ।
वायो॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने मादयस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ५ ॥

आ । नः॒ । नि॒युत्ऽभिः॑ । श॒तिनी॑भिः । अ॒ध्व॒रं । स॒ह॒स्रिणी॑भिः । उप॑ । या॒हि॒ । य॒ज्ञं ।
वायो॒ इति॑ । अ॒स्मिन् । सव॑ने । मा॒द॒य॒स्व॒ । यू॒यं । पा॒त॒ । स्व॒स्तिऽभिः॑ । सदा॑ । नः॒ ॥ ५ ॥

हे वायो नोऽस्माकमध्वरं हिंसारहितं यज्ञं शतिनीभिः शतसंख्यावतीभिः सहस्रिणीभिः सहस्रसंख्यावतीभिश्च नियुद्भिर्वडवाभिरुपा याहि । उपागच्छ । तदनंतरमस्मिन् सवने प्रातःसवने मादयस्व । सोमेन तृप्यस्व । अन्यद्गतं ॥ ॥ १४ ॥

शुचिं न्वित्यष्टर्चं चतुर्थं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्राग्नं । अनुक्रम्यते हि । शुचिं न्वष्टावैंद्राग्नं त्विति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ ऐंद्राग्नस्य पशोर्वपायाः शुचिमित्येषा याज्या । सूत्रितं च । शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्य गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः । आ° ३. ७. । इति ॥

शुचिं॒ नु स्तोमं॒ नव॑जातम॒द्येंद्रा॑ग्नी वृत्रहणा जु॒षेथां॑ ।
उ॒भा हि वां॑ सु॒हवा॒ जोह॑वीमि॒ ता वाजं॑ स॒द्य उ॑श॒ते धेष्ठा॑ ॥ १ ॥

शुचिं॑ । नु । स्तोमं॑ । नव॑ऽजातं । अ॒द्य । इंद्रा॑ग्नी॒ इति॑ । वृ॒त्र॒ऽह॒ना॒ । जु॒षेथां॑ ।
उ॒भा । हि । वां॒ । सु॒ऽहवा॑ । जोह॑वीमि । ता । वाजं॑ । स॒द्यः । उ॒श॒ते । धेष्ठा॑ ॥ १ ॥

हे वृत्रहणा वृत्राणां शत्रूणां हंताराविंद्राग्नी शुचिं शुद्धं निरवद्यं नवजातमिदानीमुत्पन्नं स्तोममस्मदीयं स्तोत्रमद्यास्मिन्काले नु क्षिप्रं जुषेथां । सेवेथां । हि यस्मात्सुहवा सुखमाह्वातुं शक्यावुभोभौ वां युवां जोहवीमि पुनःपुनराह्वयामि । अत आगत्य सेवेथामित्यर्थः । किंच ता तौ तथाविधौ युवामुशते कामयमानाय यजमानाय वाजमन्नं बलं वा सद्यस्तदानीमेव शीघ्रं धेष्ठा धातृतमौ भवतं ॥

ता सा॑न॒सी श॑वसाना॒ हि भू॒तं सा॑कं॒वृधा॒ शव॑सा शूशु॒वांसा॑ ।
क्षयं॑तौ रा॒यो यव॑सस्य भूरेः॑ पृं॒क्तं वाजं॑स्य स्थवि॑रस्य घृष्वेः॑ ॥ २ ॥

ता । सा॒न॒सी इति॑ । श॒व॒सा॒ना॒ । हि । भू॒तं । सा॒कं॒ऽवृधा॑ । शव॑सा । शू॒शु॒ऽवांसा॑ ।
क्षयं॑तौ । रा॒यः । यव॑सस्य । भूरेः॑ । पृं॒क्तं । वाजं॑स्य । स्थवि॑रस्य । घृष्वेः॑ ॥ २ ॥

हे इंद्राग्नी ता तौ तादृशौ सानसी सर्वैः संभजनीयौ युवां शवसाना । शवो बलं । तद्वदाचरंतौ हि खलु

भूतं। बलमिव शत्रूणां भंजकावास्तामित्यर्थः। कीदृशौ संतौ। साकंवृधा सह प्रवृद्धौ शवसा बलेन शूशुवांसा वर्धमानौ तथा रायो धनस्य भूरेर्बहुलस्य यवसस्यान्नस्य क्षयंतावीश्वरौ। एवंविधौ युवं युवां स्थविरस्य स्थूलस्य घृष्वेः शत्रूणां घर्षकस्य वाजस्यान्नस्य॥ क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी॥ ईदृशमन्नं पृंक्तं। संयोजयतं। अस्मभ्यं प्रयच्छतमित्यर्थः॥

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः।
अर्वंतो न काष्ठां नक्षमाणा इंद्राग्नी जोहुवतो नरस्ते॥३॥
उपो इति। ह। यत्। विदथं। वाजिनः। गुः। धीभिः। विप्राः। प्रऽमतिं। इच्छमानाः।
अर्वंतः। न। काष्ठां। नक्षमाणाः। इंद्राग्नी इति। जोहुवतः। नरः। ते॥३॥

वाजिनो हविष्मंतो विप्रा मेधाविनः प्रमतिं प्रकृष्टां मतिमिंद्राग्न्योरनुग्रहबुद्धिमिच्छमाना आत्मन इच्छंतो यद्यो यजमाना विदथं। विदंति जानंति देवांस्तत्र यष्टव्यत्वेनेति विदथो यज्ञः। तं धीभिः कर्मभिर्बुद्धिभिर्वोपो गुः उपगच्छंति। उ इति पूरकः। ते नरः कर्मणां नेतारो जना अर्वंतो न काष्ठां यथाश्वाः शीघ्रं युद्धभूमिं व्याप्नुवंति तथा नक्षमाणा ऐंद्राग्नानि कर्माणि व्याप्नुवंत इंद्राग्नी इंद्रमग्निं च जोहुवतः पुनःपुनराह्वयंतो भवंति॥

अमावास्यायामैंद्राग्नस्य हविषो गीर्भिरित्येषा याज्या। सूचितं च। इंद्राग्नी अवसा गतं गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः। आ० १. ६.। इति॥ ऐंद्राग्ने पशौ पुरोडाशस्यैषैव याज्या। सूत्रं तूदाहृतं॥

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजं।
इंद्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः॥४॥
गीःऽभिः। विप्रः। प्रऽमतिं। इच्छमानः। ईट्टे। रयिं। यशसं। पूर्वऽभाजं।
इंद्राग्नी इति। वृत्रऽहना। सुऽवज्रा। प्र। नः। नव्येभिः। तिरतं। देष्णैः॥४॥

हे इंद्राग्नी प्रमतिं युवयोरनुग्रहबुद्धिमिच्छमान इच्छन् विप्रो मेधावी वसिष्ठो यशसं यशसा युक्तं पूर्वभाजं पूर्वमेव संभजनीयं रयिं धनमुद्दिश्य गीर्भिः स्तुतिभिरीट्टे। युवां स्तौति। हे वृत्रहणा वृत्रस्य हंतारौ सुवज्रा शोभनायुधाविंद्राग्नी नव्येभिर्नवतरैः प्रशस्तैर्देष्णैर्दातव्यैर्धनैर्नोऽस्मान् प्र तिरतं। प्रवर्धयतं॥

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन॥५॥
सं। यत्। मही इति। मिथती इति। स्पर्धमाने इति। तनूऽरुचा। शूरऽसाता। यतैते इति।
अदेवऽयुं। विदथे। देवयुऽभिः। सत्रा। हतं। सोमऽसुता। जनेन॥५॥

मही महत्यौ मिथती परस्परं हिंसंत्यौ। यद्वा। मेथतिराक्रोशकर्मा। परस्परमाक्रोशंत्यौ। स्पर्धमाने स्पर्धां कुर्वत्यौ तनूरुचा - - - हतं। हिंस्तं। तथा सोमसुता सोममभिषुण्वता जनेन यजमानसंघेनासोमसुतं जनं हिंस्तं॥ ॥१५॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एंद्राग्नी सौमनसाय यातं।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः॥६॥

इमां। ऊं इति। सु। सोमंऽसुतिं। उप। नः। आ। इंद्राग्नी इति। सौमनसाय। यातं।
नु। चित्। हि। परिमम्नाथे इति परिऽमम्नाथे। अस्मान्। आ। वां। शश्वत्ऽभिः।
ववृतीय। वाजैः ॥ ६ ॥

हे इंद्राग्नी इमामु इमामेव नोऽस्मदीयां सोमसुतिं सोमाभिषवक्रियां सौमनसाय सुमनसो भावाय सु सुष्ठूपा यातं। उपागच्छतं। अपि च युवामस्मान् परित्यज्य नु चिन्नैव मम्नाथे। अन्यान्न मन्येथे। अस्मानेव सर्वदा बुध्येथे। हि यस्मादेवं तस्माद्वां युवां शश्वद्भिर्बहुभिर्वाजैरन्नैर्हविर्लक्षणैरा ववृतीय। आवर्तयामि ॥

सो अंग्न एना नमंसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिंद्रं वोचेः।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथंतु ॥ ७ ॥

सः। अग्ने। एना। नमंसा। संऽइद्धः। अच्छ। मित्रं। वरुणं। इंद्रं। वोचेः।
यत्। सीं। आगः। चकृम। तत्। सु। मृळ। तत्। अर्यमा। अदितिः। शिश्रथंतु ॥ ७ ॥

हे अग्ने स त्वमेनैनेन नमसान्नेनास्मदीयेन हविषा समिद्धः संदीप्तः सन्मित्रं वरुणमिंद्रं चाच्छ वोचेः। अभिब्रूयाः। अयमस्मदीयो रक्षणीय इति कथय। वयं यदागोऽपराधं। सीमिति परिग्रहार्थीयः। सीं सर्वतो वाङ्मनःकायैश्चकृम कृतवंतो वयं तत्तस्मादागसः सु मृळ। अस्मान् सुष्ठु रक्ष। तस्मागोऽर्यमादितिर्मित्रादयश्च शिश्रथंतु। अस्मत्तो वियोजयंतु ॥

एता अंग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यंश्याम वाजान्।
मेंद्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

एताः। अग्ने। आशुषाणासः। इष्टीः। युवोः। सचा। अभि। अश्याम। वाजान्।
मा। इंद्रः। नः। विष्णुः। मरुतः। परि। ख्यन्। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥ ८ ॥

हे अग्ने। उपलक्षणमेतत्। हे इंद्राग्नी एता इष्टीरिमान्यज्ञानाशुषाणास आशु शीघ्रं संभजमाना वयं युवोर्युवयोः स्वभूतान्वाजानन्नानि सचा सह युगपदेवाभ्यश्याम। अभिप्राप्नुयाम। अपि चेंद्रो विष्णुर्मरुतश्च नोऽस्मान् मा परि ख्यन्। अस्मान्परित्यज्यान्यान् मा द्राक्षुः। सर्वदास्मानेव पश्यंतु। अन्यद्गतं ॥ ॥ १६ ॥

इयं वामिति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षमैंद्राग्नं। द्वादश्यनुष्टुप् शिष्टा गायत्र्यः। तथा चानुक्रांतं। इयं वां द्वादश गायत्रमंत्यानुष्टुबिति ॥ ज्योतिष्टोमे प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्र आदितो नवर्चः शस्यंते। सूत्र्यते हि। इयं वामस्य मन्मन इति नव। आ॰ ५. १०.। इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु स्तोमेषु वृद्धावच्छावाकस्य प्रातःसवन इदं सूक्तमावापार्थमुत्तमावर्जं। सूचितं च। इयं वामस्य मन्मन इत्येकादश। आ॰ ७. ५.। इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवने तस्यैवावपस्तृचः। सूचितं च। इयं वामस्य मन्मन इंद्राग्नी युवामिमे। आ॰ ७. २.। इति ॥

इयं वामस्य मन्मन इंद्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः। अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

इयं। वां। अस्य। मन्मनः। इंद्राग्नी इति। पूर्व्यऽस्तुतिः। अभ्रात्। वृष्टिःऽइव। अजनि ॥ १ ॥

हे इंद्राग्नी इयं पूर्व्यस्तुतिः पूर्व्या मुख्या स्तुतिरस्य मन्मनः स्तोतुरस्माद्वसिष्ठाद्वां युवाभ्यां युवयोरर्थमभ्रान्मेघाद्वृष्टिरिव बह्वी सत्यजनि। प्रादुर्भूता। तां शृणुतमित्युत्तरत्र संबंधः ॥

शृणुतं जरितुर्हवमिंद्राग्नी वनतं गिरः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

शृणुतं। जरितुः। हवं। इंद्राग्नी इति। वनतं। गिरः। ईशाना। पिप्यतं। धियः ॥ २ ॥

हे इंद्राग्नी जरितुः स्तोतुर्हवमाह्वानं युवां शृणुतं । श्रुत्वा च गिरस्तदीयाः स्तुतीर्वनतं । संभजतं । तथेशानेश्वरौ युवां धियोऽनुष्ठितानि कर्माणि पिप्यतं । तत्स्थैः फलैः पूरयतं ॥

मा पापत्वाय नो नरेंद्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥३॥

मा । पापऽत्वाय । नः । नरा । इंद्राग्नी इति । मा । अभिऽशस्तये । मा । नः । रीरधतं । निदे ॥३॥

हे नरा नेताराविंद्राग्नी नोऽस्मान् पापत्वाय हीनभावाय मा रीरधतं । तथाभिशस्तये शत्रुभिः कृतायाभिशंसनाय मा रीरधतं । तथा निदे निंदकाय जनाय नोऽस्मान् मा रीरधतं । मा वशीकुरुतं ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छावाकस्येंद्रे अग्नेत्ययं षडहस्तोत्रियसंज्ञकस्तृचः । सूत्रितं च । इंद्रे अग्ना नमो बृहत्ता ऊवे ययोरिदं । आ० ७. २. । इति ॥

इंद्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥४॥

इंद्रे । अग्ना । नमः । बृहत् । सुऽवृक्तिं । आ । ईरयामहे । धिया । धेनाः । अवस्यवः ॥४॥

अवस्यवो रक्षणकामा वयमिंद्रे देवेऽग्नौ च बृहद्बृंहणं वर्धकं नमो हविर्लक्षणमन्नं सुवृक्तिं सुप्रवृत्तां स्तुतिं चेरयामहे । अभिप्रेरयामः । तथा धिया कर्मणा युक्ता धेनाः । वाङ्नामैतत् । अप्रगीताः स्तुतिवाचश्चाभिप्रेरयामः ॥

ता हि शश्वंत ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥५॥

ता । हि । शश्वंतः । ईळते । इत्था । विप्रासः । ऊतये । सऽबाधः । वाजऽसातये ॥५॥

ता हि तौ खल्विंद्राग्नी शश्वंतो बहवो विप्रासो मेधाविनो जना ऊतये रक्षणायेत्थेत्थमनेन प्रकारेणेळते । स्तुवंति । तथा सबाधः समानं बाधमानाः परस्परं बाध्यमाना जना वाजसातयेऽन्नलाभाय तावेवेंद्राग्नी ईळते । स्तुवंति । यद्वा । वाजसातिरिति संग्रामनाम । संग्रामार्थं ॥

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वंतो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥६॥

ता । वां । गीःऽभिः । विपन्यवः । प्रयस्वंतः । हवामहे । मेधऽसाता । सनिष्यवः ॥६॥

विपन्यवः स्तोत्रमिच्छंतः प्रयस्वंतो हविर्लक्षणेनान्नेनोपेताः सनिष्यवः सनिं धनमात्मन इच्छंतो वयं मेधसाता मेधानां यागानां सातौ संभजने निमित्तभूते सति हे इंद्राग्नी ता तौ वां युवां गीर्भिः स्तुतिभिर्हवामहे । आह्वयामहे ॥ ॥१७॥

अमावास्यायामैंद्राग्नस्य हविष इंद्राग्नी अवसेत्यनुवाक्या । सूत्रितं च । इंद्राग्नी अवसा गतं गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमानः । आ० १. ६. । इति ॥

इंद्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥७॥

इंद्राग्नी इति । अवसा । आ । गतं । अस्मभ्यं । चर्षणिऽसहा । मा । नः । दुःऽशंसः । ईशत ॥७॥

हे चर्षणीसहा चर्षणीनां मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवितारौ हे इंद्राग्नी अस्मभ्यं स्तोतृभ्यो देयेनावसान्नेन सह गतं । आगच्छतं । दुःशंसो दुष्टाभिशंसनः पारुष्यवादी शत्रुश्च नोऽस्मानीशत । ईशिष्ट । अस्मान्बाधितुं मा शक्नोतु ॥

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । इंद्राग्नी शर्म यच्छतं ॥८॥

मा । कस्य । नः । अररुषः । धूर्तिः । प्रणक् । मर्त्यस्य । इंद्राग्नी । शर्म । यच्छतं ॥८॥

हे इंद्राग्नी कस्य कस्यचिदप्यररुषोऽरेर्मर्त्यस्य मनुष्यस्य संबंधिनी धूर्तिर्हिंसा नोऽस्मान्मा प्रणक् । मा प्राप्नोतु । शर्म सुखं चास्मभ्यं यच्छतं । दत्तं ॥

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इंद्राग्नी तद्वनेमहि ॥९॥

गोऽमत् । हिरण्यऽवत् । वसु । यत् । वां । अश्वऽवत् । ईमहे । इंद्राग्नी इति । तत् । वनेमहि ॥९॥

हे इंद्राग्नी गोमद्गोभिर्युक्तं हिरण्यवद्धिरण्यैः सुवर्णैर्युक्तमश्वावदश्वैश्चोपेतं यद्वसु वां युवामीमहे याचामहे तद्वसु युवयोः प्रसादाद्वयं वनेमहि । संभजेमहि ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्रे यत्सोम आ सुत इत्यारंभणीयाहर्गणेषु च द्वितीयादिष्वहः-स्वेषा प्रातःसवने तेनैव शंसनीया । सूत्रितं च । यत्सोम आ सुते नर इत्यारंभणीयाः शस्त्वा । आ॰ ७. २. । इति ॥

यत्सोम आ सुते नर इंद्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवंता सपर्यवः ॥१०॥

यत् । सोमे । आ । सुते । नरः । इंद्राग्नी इति । अजोहवुः । सप्तिऽवंता । सपर्यवः ॥१०॥

सोमे सुतेऽभिषुते सति नरः कर्मणां नेतार ऋत्विजः सपर्यवः परिचरणकामाः संतः सप्तीवंता प्रशस्ताश्वाविंद्राग्नी इंद्रमग्निं च यद्यदाजोहवुः अभिह्वयंते तदा युवामागच्छतमिति शेषः ॥

उक्थेभिर्वृत्रहंतमा या मंदाना चिदा गिरा । आंगूषैराविवासतः ॥११॥

उक्थेभिः । वृत्रहन्ऽतमा । या । मंदाना । चित् । आ । गिरा । आंगूषैः । आऽविवासतः ॥११॥

वृत्रहंतमा वृत्राणामावरकाणां हंतृतमौ मंदाना मोदमानौ या याविंद्राग्नी उक्थेभिः शस्त्रैर्गिरा च स्तुत्या चाविवासतः परिचर्येते ॥ व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॥ आंगूषैराघोषैरन्यैश्च स्तोत्रैर्यावाविवासतः परिचर्येते तौ युवामागच्छतमिति शेषः ॥

ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनं । आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतं ॥१२॥

तौ । इत् । दुःऽशंसं । मर्त्यं । दुःऽविद्वांसं । रक्षस्विनं । आऽभोगं । हन्मना । हतं । उदऽधिं । हन्मना । हतं ॥१२॥

हे इंद्राग्नी तौ युवां दुःशंसं दुष्टाभिशंसनं दुर्विद्वांसं दुर्विज्ञानं रक्षस्विनं बलवंतमाभोगमाहत्यास्मत्तोऽपहृत्य भोक्तारं मर्त्यं मनुष्यं शत्रुं हन्मना हननसाधनेनायुधेन हतं । हिंस्तं । उक्तमेवार्थं दृष्टांतेन दृढयति । उदधिं । लुप्तोपममेतत् । उदधानं कुंभमिव । यथा कुंभोऽनायासेन भिद्यत एवमनायासेनैव शत्रुमायुधेन युवां हिंस्तं ॥ ॥१८॥

प्र क्षोदसेति षडृचं षष्ठं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं सरस्वतीदेवताकं । तृतीया तु सरस्वद्देवताका । अनुक्रम्यते च । प्र क्षोदसा षट् सारस्वतं तु तृतीया सरस्वत इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ प्रथमे छंदोमे प्रउगशस्त्रे प्र

क्षोदसा धायसा सस्र एषेति प्रउगं। आ॰ ८.९.। इति ॥ सारस्वते पशौ प्र क्षोदसेति वपाया याज्या। सूचितं च। प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा पावीरवी कन्या चित्रायुः। आ॰ ३.७.। इति ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिंधुरन्याः ॥१॥
प्र। क्षोदसा। धायसा। सस्रे। एषा। सरस्वती। धरुणं। आयसी। पूः।
प्रऽबाबधाना। रथ्याऽइव। याति। विश्वाः। अपः। महिना। सिंधुः। अन्याः ॥१॥

सरस्वत्या एषा नदीवन्निगमा। एषा दृश्यमाना नदीरूपा सरस्वत्यायस्ययसा निर्मिता पूः पुरीव धरुणं ॥ लिंगव्यत्ययः ॥ धरुणा धारयित्री धायसा धारकेण क्षोदसोदकेन प्र सस्रे। प्रधावति। शीघ्रं गच्छति। सिंधुः स्यंदनशीला नदीरूपा सान्या विश्वाः सर्वा अप आपगा महिना महिम्ना प्रबाबधाना भृशं बाधमाना रथ्येव प्रतोलीव विस्तीर्णा सती याति। गच्छति। यद्वा। रथ्येव रथिनेव यथा रथी रथेन मार्गस्थं तरुगुल्मादिकं चूर्णीकृत्य गच्छति तद्वत् स्वकीयेन वेगेन सर्वं संपिंषती गच्छतीत्यर्थः ॥

सारस्वत एव पशौ वपाया एकाचेतदित्यनुवाक्या। सूचितं च। एकाचेतत्सरस्वती नदीनामुत स्या नः सरस्वती जुषाणा। आ॰ ३.७.। इति ॥

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतंती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥२॥
एका। अचेतत्। सरस्वती। नदीनां। शुचिः। यती। गिरिऽभ्यः। आ। समुद्रात्।
रायः। चेतंती। भुवनस्य। भूरेः। घृतं। पयः। दुदुहे। नाहुषाय ॥२॥

सहस्रवत्सरेण क्रतुना यक्ष्यमाणो नाहुषो नाम राजा सरस्वतीं नदीं प्रार्थयामास सा च तस्मै सहस्रसंवत्सरपर्याप्तं पयो घृतं च प्रददौ। अयमर्थोऽत्र प्रतिपाद्यते। नदीनामन्यासां मध्ये शुचिः शुद्धा गिरिभ्यः सकाशादा समुद्रात्समुद्रपर्यंतं यती गच्छंत्येका सरस्वती नद्यचेतत्। नाहुषस्य प्रार्थनामज्ञासीत्। तथा भुवनस्य भूतजातस्य भूरेर्बहुलस्य रायो धनानि चेतंती प्रज्ञापयंती प्रयच्छंती नाहुषाय राज्ञे घृतं पयश्च सहस्रसंवत्सरक्रतोः पर्याप्तं दुदुहे। दुग्धवती। दत्तवती ॥

सरस्वद्देवताके पशौ स वावृध इति पुरोडाशस्य याज्या। सूचितं च। स वावृधे नर्यो योषणासु यस्य व्रतं पशवो यंति सर्वे। आ॰ ३.८.। इति ॥

स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥३॥
सः। ववृधे। नर्यः। योषणासु। वृषा। शिशुः। वृषभः। यज्ञियासु।
सः। वाजिनं। मघवत्ऽभ्यः। दधाति। वि। सातये। तन्वं। ममृजीत ॥३॥

मध्यस्थानो वायुः सरस्वान्। नर्यो नृभ्यो हितो वृषा सेचनसमर्थः शिशुरल्पः प्रादुर्भावसमयेऽल्पतया दृश्यमानो वृषभो वर्षिता एवंभूतः स सरस्वान् यज्ञियासु यज्ञार्हासु योषणासु योषित्स्वात्मनः कलत्रभूतासु मध्यमस्थानास्वप्सु मध्ये ववृधे। वर्धते। स तादृशः सरस्वान् मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्यो यजमानेभ्यो वाजिनं बलिनं पुत्रं दधाति। ददाति। तथा सातये लाभार्थं तन्वं तेषां शरीरं वि मामृजीत। विमार्ष्टि। लाभार्थं संस्करोती-

त्यर्थः । यद्यप्येषा सरस्वतः स्तुतिः तथापि सरस्वत्याः प्रीणनार्थं तत्सवनमिति च्छांदोमिके सारस्वते तृचेऽस्या उक्तो विनियोगो न विरुध्यते ॥

दशरात्रेऽष्टमेऽहनि प्रउग उत स्या न इति सारस्वतः सप्तमस्तृचः । सूत्रितं च । उत स्या नः सरस्वती जुषाणेति प्रउगं । आ॰ ८. १०. । इति ॥ सारस्वते पशौ पुरोडाशस्योत स्या न इत्यनुवाक्या । सूत्रितं च । उत स्या नः सरस्वती जुषाणा सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यः । आ॰ ३. ७. । इति ॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥४॥
उत । स्या । नः । सरस्वती । जुषाणा । उप । श्रवत् । सुऽभगा । यज्ञे । अस्मिन् ।
मितज्ञुऽभिः । नमस्यैः । इयाना । राया । युजा । चित् । उत्ऽतरा । सखिऽभ्यः ॥४॥

उतापि च जुषाणा प्रीयमाणा सुभगा शोभनधना स्या सा सरस्वती नोऽस्माकमस्मिन्यज्ञ उप श्रवत् । अस्मदीयाः स्तुतीरुपशृणोतु । कीदृशी सा । मितज्ञुभिः प्रह्वैर्जानुभिर्नमस्यैर्नमस्कारैर्देवैरियानोपगम्यमाना । चिच्छब्द स्वार्थे । युजा नित्ययुक्तेन राया धनेन च संगता सखिभ्य उत्तरोत्कृष्टतरा । ईदृश्यस्मदीयाः स्तुतीरुपशृणोत्वित्यन्वयः ॥

पवित्रेष्ट्यां सारस्वतस्य हविष इमा जुह्वाना इति याज्या । सूत्रितं च । इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिर्दधिक्राव्णो अकारिषं । आ॰ २. १२. । इति ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षं ॥५॥
इमा । जुह्वानाः । युष्मत् । आ । नमःऽभिः । प्रति । स्तोमं । सरस्वति । जुषस्व ।
तव । शर्मन् । प्रियऽतमे । दधानाः । उप । स्थेयाम । शरणं । न । वृक्षं ॥५॥

हे सरस्वति इमेमान्यस्मदीयानि हवींषि जुह्वानास्तुभ्यं जुह्वतो वयं नमोभिस्त्वद्विषयैर्नमस्कारैर्युष्मत्त्वत्सकाशादा ॥ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥ आददीमहि धनानीति शेषः । स्तोमं चास्मदीयं स्तोत्रं प्रति जुषस्व । प्रतिसेवस्व । वयं च प्रियतमेऽतिशयेन प्रिये तव त्वदीये शर्मञ्छर्मणि सुखे दधाना निधीयमानाः संतः शरणं न वृक्षमाश्रयभूतं वृक्षमिवोप स्थेयाम । त्वामुपतिष्ठेम । संगच्छेमहि ॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
अयं । ऊं इति । ते । सरस्वति । वसिष्ठः । द्वारौ । ऋतस्य । सुऽभगे । वि । आवरित्यावः ।
वर्ध । शुभ्रे । स्तुवते । रासि । वाजान् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

हे सुभगे शोभनधने सरस्वति अयं वसिष्ठस्ते त्वां यंतुर्ऋतस्य यज्ञस्य संबंधिन्यौ द्वारौ पूर्वापरे व्यावः । विवृणोति । उ इति पूरकः । हे शुभ्रे शुभ्रवर्णे देवि वर्ध । वर्धस्व । तथा स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते वसिष्ठाय वाजानन्नानि रासि । प्रदेहि । अन्यद्गतं ॥ ॥१९॥

बृहदु गायिष इति षडृचं सप्तमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं । आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती तृतीया प्रस्तारपंक्तिः शिष्टास्तिस्रो गायत्र्यः । आद्यस्तृचः सरस्वतीदेवताकोऽंत्यस्य सरस्वद्देवताकः । तथा चानुक्रांतं । बृहदु

प्रगाथः प्रस्तारपंक्तिः परास्तिस्रो गायत्र्यः सरस्वत इति ॥ पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्र आद्यः प्रगाथः सरस्वतस्तृचः। सूचितं च। बृहदु गायिष इति बार्हतं प्रउगं प्रगाथानेके। आ॰ ७. १२.। इति ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनां।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥
बृहत्। ऊं इति। गायिषे। वचः। असुर्या। नदीनां।
सरस्वतीं। इत्। महय। सुवृक्तिऽभिः। स्तोमैः। वसिष्ठ। रोदसी इति ॥१॥

अनयर्षिरात्मानं संबोध्य सरस्वत्याः स्तुतौ प्रेरयति। हे वसिष्ठ त्वं बृहदु बृहदेव महदेव वचः स्तोत्रं गायिषे। गायसि। किमर्थं। नदीनां मध्येऽसुर्या ॥ असुराशब्दाच्चतुर्थ्येकवचनस्य ड्यादेशः ॥ असुरायै बलवत्यै नदीरूपायै सरस्वत्यै। अस्याः प्रीणनार्थमित्यर्थः। तथा रोदसी द्यावापृथिव्योः स्थितां दिवि देवतारूपेण भूम्यां वाग्रूपेण निवसंतीं सरस्वतीमित् सरस्वतीमेव सुवृक्तिभिः सुष्ठु दोषवर्जितैः स्तोमैः स्तोत्रैर्महय। पूजय। सर्वदा सरस्वतीमेव स्तुहि नान्यां देवतामिति भावः ॥

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अंधसी अधिक्षियंति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनां ॥२॥
उभे इति। यत्। ते। महिना। शुभ्रे। अंधसी इति। अधिऽक्षियंति। पूरवः।
सा। नः। बोधि। अवित्री। मरुत्ऽसखा। चोद। राधः। मघोनां ॥२॥

हे शुभ्रे शुभ्रवर्णे सरस्वति यद्यस्मात्ते तव महिना महिम्नोभे अंधसी उभयविधं दिव्यं पार्थिवं चान्नं ग्राम्यमारण्यं वा पूरवः पूरयितव्या मनुष्या अधिक्षियंति अधिगच्छंति सा त्वमवित्री रक्षित्री सती नोऽस्मान्बोधि। बुध्यस्व। अपि च मरुत्सखा। मरुतो माध्यमिका देवगणाः। ते सखायो यस्या माध्यमिकाया वाचस्तादृशी त्वं मघोनां हविर्लक्षणधनोपेतानामस्माकं राधो धनं चोद। प्रेरय ॥

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥३॥
भद्रं। इत्। भद्रा। कृणवत्। सरस्वती। अकवऽअरी। चेतति। वाजिनीऽवती।
गृणाना। जमदग्निऽवत्। स्तुवाना। च। वसिष्ठऽवत् ॥३॥

भद्रा कल्याणी भजनीया वा सरस्वती भद्रमिद्भद्रमेव कल्याणमेव कृणवत्। अस्माकं करोतु। तथाकवार्यकुत्सितगमना वाजिनीवत्यन्नवती चेतति। चेतयतु। अस्मान् प्रज्ञापयतु। यद्वा। मदीयं स्तोत्रं चेतति। जानातु। तथा जमदग्निवज्जमदग्निनर्षिणेव मया गृणाना स्तूयमाना वसिष्ठवत् ॥ अर्हार्थे वतिप्रत्ययः ॥ वसिष्ठार्हं वसिष्ठस्यानुरूपं स्तुवाना स्तूयमाना च भव ॥

सरस्वद्देवताके पशौ जनीयंत इति तिस्रः पुरोडाशहविषां क्रमेणानुवाक्याः। सूचितं च। जनीयंतो न्वग्रव इति तिस्रो दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहंतं। आ॰ ३. ८.। इति ॥

जनीयंतो न्वग्रवः पुत्रीयंतः सुदानवः। सरस्वंतं हवामहे ॥४॥
जनिऽयंतः। नु। अग्रवः। पुत्रिऽयंतः। सुऽदानवः। सरस्वंतं। हवामहे ॥४॥

जनीयंतः । आयंत आत्मपत्नीनीति अनयो जायाः । ता इच्छंतः पुत्रीयंतः पुत्रान्कामयमानाः सुदानवः शोभनदाना अथवा उपगंतारो वयं त्वया सरस्वंतं देवं हवामहे । स्तुमहे । आह्वयामहे वा ॥

ये ते॑ सरस्व ऊ॒र्मयो॒ मधु॑मंतो घृत॒श्चुतः॑ । तेभि॑र्नोऽवि॒ता भ॑व ॥५॥
ये । ते॒ । स॒र॒स्वः॒ । ऊ॒र्मयः॑ । मधु॑ऽमंतः । घृ॒त॒ऽश्चुतः॑ । तेभिः॑ । नः॒ । अ॒वि॒ता । भ॒व॒ ॥५॥

हे सरस्वः सरस्वन् देव ते त्वदीया य ऊर्मयो जलसंघा मधुमंतो रसवंतो घृतश्चुतो घृतस्य वृष्ट्युदकस्य चारिणो भवंति तेभिस्तैरूर्मिभिर्नोऽस्माकमविता रक्षिता भव ॥

अन्वारंभणीयायां सरस्वतो यागस्य पीपिवांसमित्यनुवाक्या । सूत्रितं च । पीपिवांसं सरस्वतो दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहंतं । आ० २. ८. । इति ॥

पी॒पि॒वांसं॒ सर॑स्वतः॒ स्तनं॒ यो वि॒श्वद॑र्शतः । भ॒क्षी॒महि॑ प्र॒जामिषं॑ ॥६॥
पी॒पि॒ऽवांसं॑ । सर॑स्वतः । स्तनं॑ । यः । वि॒श्वऽद॑र्शतः । भ॒क्षी॒महि॑ । प्र॒ऽजां । इषं॑ ॥६॥

पीपिवांसं प्रवृद्धं सरस्वतो देवस्य स्तनं शब्दायमानं स्तनवद्रसाधारं वा मेघं भक्षीमहि । भजेमहि । प्राप्नुयाम । यो विश्वदर्शतो विश्वैः सर्वैर्दर्शतो भवति दृश्यमानो भवति । तं स्तनं मेघमित्यर्थः । तथा प्रजां पुत्रादिरूपामिषमन्नं च सरस्वतः प्रसादाद्भक्षीमहि ॥ ॥२०॥

यज्ञे दिव इति दशर्चमष्टमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं । प्रथमैंद्री तृतीयानवम्योरिंद्राब्रह्मणस्पती देवता दशम्या इंद्राबृहस्पती शिष्टानां तु बृहस्पतिः । तथा चानुक्रांतं । यज्ञे दशैंद्र्यादि बार्हस्पत्यमंत्यैंद्री च तृतीयानवम्यावैंद्राब्राह्मणस्पत्ये इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने स्तोमवृद्धौ ब्राह्मणाच्छंसिन इदमुत्तरं च सूक्तमावापार्थं । सूत्रितं च । यज्ञे दिवः । आ० ७. ९. । इति ॥

य॒ज्ञे दि॒वो नृ॒षद॑ने पृथि॒व्या नरो॒ यत्र॑ देव॒यवो॒ मदं॑ति ।
इंद्रा॑य॒ यत्र॒ सव॑नानि सु॒न्वे गम॒न्मदा॑य प्रथ॒मं वय॑श्च ॥१॥
य॒ज्ञे । दि॒वः । नृ॒ऽसद॑ने । पृ॒थि॒व्याः । नरः॑ । यत्र॑ । दे॒व॒ऽयवः॑ । मदं॑ति ।
इंद्रा॑य । यत्र॑ । सव॑नानि । सु॒न्वे । गम॑त् । मदा॑य । प्र॒थ॒मं । वयः॑ । च॒ ॥१॥

यत्र यस्मिन्यज्ञे देवयवो देवान्कामयमाना नरो नेतार ऋत्विजो मदंति हृष्यंति यत्र यस्मिंश्च सवनान्यभिषोतव्याः सोमा इंद्रायेंद्रार्थं सुन्वे अभिषूयंते पृथिव्याः संबंधिनि नृषदने नृणां नेतॄणां सदनभूते तस्मिन्यज्ञे प्रथमं सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं दिवो द्युलोकाद्गमत् । आगच्छतु । किमर्थं । मदाय मदार्थं । सोमं पातुमित्यर्थः । तथा वयश्च गंतारस्तदीया अश्वाश्च गमत् । आगच्छंतु ॥

आ दैव्या॑ वृणीमहेऽवां॑सि॒ बृह॒स्पति॑र्नो मह॒ आ स॑खायः ।
यथा॒ भवे॑म मी॒ळ्हुषे॒ अना॑गा॒ यो नो॑ दा॒ता प॑रा॒वतः॑ पि॒तेव॑ ॥२॥
आ । दैव्या॑ । वृ॒णी॒म॒हे॒ । अवां॑सि । बृह॒स्पतिः॑ । नः॒ । म॒हे॒ । आ । स॒खा॒यः॒ ।
यथा॑ । भवे॑म । मी॒ळ्हुषे॑ । अना॑गाः । यः । नः॒ । दा॒ता । प॒रा॒ऽवतः॑ । पि॒ताऽइ॑व ॥२॥

हे सखायः समानख्यानाः स्तोतारः वयं दैव्या दैव्यानि देवसंबंधीन्यवांसि रक्षणान्या वृणीमहे । अभिभजामहे । प्रार्थयामहे । नोऽस्माकं हविर्बृहस्पतिर्बृहतां पालयिता देव आ महे । महतिर्दानार्थः । आमहते । आदत्ते ॥ लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः ॥ यो बृहस्पतिः परावतो दूरदेशाद्धनान्याहृत्य पुत्रेभ्यः पितेव

नोऽस्मभ्यं दाता भवति तस्मै मीळ्हुषे सेक्त्रे बृहस्पतयेऽनागा अनागस अनपराधा यथा वयं भवेम हे सखायः तथा यूयं परिचरतेति शेषः ॥

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इंद्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥३॥
तं । ऊं इति । ज्येष्ठं । नमसा । हविःऽभिः । सुऽशेवं । ब्रह्मणः । पतिं । गृणीषे ।
इंद्रं । श्लोकः । महि । दैव्यः । सिसक्तु । यः । ब्रह्मणः । देवऽकृतस्य । राजा ॥३॥

ज्येष्ठं प्रशस्यतमं सुशेवं सुसुखं ब्रह्मणो मंत्रस्य पतिं पालयितारमेतत्संज्ञं तमु तमेव देवं नमसा नमस्कारेण हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिश्च सार्धं गृणीषे । गृणे । स्तुवे । अपि च महि महांतमिंद्रं दैव्यो देवार्हः श्लोको ऽस्मदीयः स्तावको मंत्रः सिषक्तु । सेवतां । ब्रह्मणोऽन्नस्य मंत्रस्य वा देवकृतस्य देवैः स्तोतृभिः कृतस्य य इंद्रो ब्रह्मणस्पतिर्वा राजेश्वरो भवति । तमिंद्रं तं ब्रह्मणस्पतिमिति संबंधः ॥

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥४॥
सः । आ । नः । योनिं । सदतु । प्रेष्ठः । बृहस्पतिः । विश्वऽवारः । यः । अस्ति ।
कामः । रायः । सुऽवीर्यस्य । तं । दात् । पर्षत् । नः । अति । सश्चतः । अरिष्टान् ॥४॥

प्रेष्ठः प्रियतमः स बृहस्पतिर्नोऽस्माकं योनिं स्थानं वेदिलक्षणमा सदतु । आसीदतु । आगत्योपविशतु । यो बृहस्पतिर्विश्ववारो विश्वैर्वरणीयोऽस्ति भवति । अपि च रायो धनस्य सुवीर्यस्य शोभनवीर्यस्य च यः कामोऽस्माकमभिलाषोऽस्ति तं काममस्मभ्यं दात् । ददातु । काम्यमानं प्रयच्छत्वित्यर्थः । तथा सश्चत उपद्रवैः संसक्तान्नोऽस्मानरिष्टानहिंसितान् कृत्वाति पर्षत् । अतिपारयति शत्रून् ॥

तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रंदं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥५॥
तं । आ । नः । अर्कं । अमृताय । जुष्टं । इमे । धासुः । अमृतासः । पुराऽजाः ।
शुचिऽक्रंदं । यजतं । पस्त्यानां । बृहस्पतिं । अनर्वाणं । हुवेम ॥५॥

तं सर्वत्र भोक्तव्यतया प्रसिद्धममृतायामरणत्वाय जीवनाय जुष्टं पर्याप्तमर्कमर्चनसाधनमन्नं पुराजाः पुरा जाता इमेऽमृतासोऽमरणा देवा बृहस्पतेराज्ञया नोऽस्मभ्यमा धासुः । प्रदद्युः । वयं च शुचिक्रंदं शुद्धस्तोत्रं पस्त्यानां । पस्त्यमिति गृहनाम । तेन तद्वंतो लक्ष्यंते । गृहिणां यजतं यष्टव्यमनर्वाणमप्रत्यृतं केनाप्यप्रतिगतं बृहस्पतिं बृहतां पालकं देवं हुवेम । आह्वयाम । स्तुयेम वा ॥ ॥२१॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहंति ।
सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥६॥
तं । शग्मासः । अरुषासः । अश्वाः । बृहस्पतिं । सहऽवाहः । वहंति ।
सहः । चित् । यस्य । नीलऽवत् । सधऽस्थं । नभः । न । रूपं । अरुषं । वसानाः ॥६॥

शग्मासः शग्माः सुखकराः शक्ता वारुषास आरोचमानाः सहवाहः संहत्य वाहका अश्वास्तं बृहस्पतिं वहंति । वहंतु । यस्य बृहस्पतेः सहसिद्धत्वं च भवति । नीलवत् । नीलं निलयो निवासः । तद्युक्तं सधस्थं सहस्थानं च यस्य । तं बृहस्पतिमित्यन्वयः । कीदृशा अश्वाः । नभो नादित्यमिवारुषमारोचमानं रूपं वसाना धारयंतः ॥

स हि शुचिः शतपत्रः स शुंध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥

सः । हि । शुचिः । शतऽपत्रः । सः । शुंध्युः । हिरण्यऽवाशीः । इषिरः । स्वःऽसाः ।
बृहस्पतिः । सः । सुऽआवेशः । ऋष्वः । पुरु । सखिऽभ्यः । आऽसुतिं । करिष्ठः ॥ ७ ॥

स हि स खलु बृहस्पतिः शुचिः शुद्धः शतपत्रो बहुविधवाहनः । स एव शुंध्युः सर्वेषां शोधयिता हिरण्यवाशीः । वाशीति वाङ्नाम । हितरमणीयवाक् । यद्वा । वाशीभिस्तक्षतारमन्मयीभिः । ऋ॰ १०. १०१. १०. । इति निगमाद्वाश्यायुधं । स्वर्णमयायुधः । इषिरो गंताभ्येषणीयो वा स्वर्षाः स्वर्गस्य संभक्ता । यद्वा । सरणशीलस्योदकस्य सनिता दाता । स एव बृहस्पतिः स्वावेशः सुनिवास ऋष्वो दर्शनीयः । ईदृशो देवः सखिभ्यः स्तोतृभ्यः पुरु बहुलमासुतिमन्नं करिष्ठः कर्तृतमो दातृतमो भवति ॥

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

देवी इति । देवस्य । रोदसी इति । जनित्री इति । बृहस्पतिं । ववृधतुः । महिऽत्वा ।
दक्षाय्याय । दक्षत । सखायः । करत् । ब्रह्मणे । सुऽतरा । सुऽगाधा ॥ ८ ॥

देवी देव्यौ दानादिगुणयुक्ते देवस्य बृहस्पतेर्जनित्री जनयित्र्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यौ महित्वा महत्त्वेन युक्तं बृहस्पतिं ववृधतुः । वर्धयामासतुः । हे सखायः यूयमपि दक्षाय्याय वर्धनीयाय । द्वितीयार्थे चतुर्थी । वर्धनीयं तं बृहस्पतिं दक्षत । वर्धयत । स च बृहस्पतिर्ब्रह्मणे बृंहिताय प्रभूतायान्नाय तदर्थं सुतरा सुतरणानि सुखेन तरणीयानि सुगाधा सुखेनावगाहनीयान्युदकानि करत् । करोतु ॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेंद्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

इयं । वां । ब्रह्मणः । पते । सुऽवृक्तिः । ब्रह्म । इंद्राय । वज्रिणे । अकारि ।
अविष्टं । धियः । जिगृतं । पुरंऽधीः । जजस्तं । अर्यः । वनुषां । अरातीः ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मणस्पते तुभ्यं वज्रिणे वज्रवत इंद्राय च वां युवाभ्यां ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ ब्रह्म मंत्ररूपेयं सुवृक्तिः सुप्रवृत्ता स्तुतिरकारि । मया कृताभूत् । तौ युवां धियोऽस्मदीयानि कर्माण्यविष्टं । रक्षतं । तथा पुरंधीः पुरुधीर्बह्वीः स्तुतीर्जिगृतं । निगिरतं । शृणुतमिति यावत् । अर्योऽरीरभिगंत्रीर्वनुषां संभक्तॄणामस्माकमरातीः शत्रुसेना जजस्तं । उपक्षपयतं ॥

तृतीयसवन उक्थ्ये ब्राह्मणाच्छंसिनो बृहस्पते युवमिति शस्त्रयाज्या । सूचितं च । बृहस्पते युवमिंद्रश्च वस्व इति याज्या । आ॰ ६. १. । इति ॥ वाजपेयेऽतिरिक्तोक्थस्यैषैव परिधानीया । सूचितं च । बृहस्पते युवमिंद्रश्च वस्व इति परिधानीया । आ॰ ९. ९. । इति ॥

बृहस्पते युवमिंद्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥
बृहस्पते । युवं । इंद्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । ईशाथे इति । उत । पार्थिवस्य ।
धत्तं । रयिं । स्तुवते । कीरये । चित् । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥१०॥

हे बृहस्पते त्वं चेंद्रश्च युवां दिव्यस्य दिवि भवस्य वस्वो वसुनो धनस्येशाथे । अतः कारणात् स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कीरये । स्तोतृनामैतत् । स्तोत्रे रयिं धनं धत्तं । दत्तं । चिदिति पूरणः । अन्यद्गतं ॥ ॥२२॥

अध्वर्यव इति सप्तर्चं नवमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभमैंद्रं सप्तम्यैंद्राबार्हस्पत्या । तथा चानुक्रांतं । अध्वर्यवः सप्तोक्तदेवतांत्येति ॥ पूर्वसूक्तेन सहोक्तो विनियोगः ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनां ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिंद्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥
अध्वर्यवः । अरुणं । दुग्धं । अंशुं । जुहोतन । वृषभाय । क्षितीनां ।
गौरात् । वेदीयान् । अवऽपानं । इंद्रः । विश्वाहा । इत् । याति । सुतऽसोमं । इच्छन् ॥१॥

हे अध्वर्यवोऽध्वरस्य नेतार ऋत्विजः क्षितीनां जनानां मध्ये वृषभाय श्रेष्ठायेंद्रायारुणमारोचमानं दुग्धमभिषुतमंशुं सोमं जुहोतन । जुहुत । अवपानमवक्रम्य स्थितं दूरस्थं पातव्यं सोमं गौराद्गौरमृगादपि वेदीयानतिशयेन विद्वानिंद्रः सुतसोममभिषुतसोमं यजमानमिच्छन्नन्विच्छन् विश्वाहा विश्वान्यहानीदेव सर्वदैव याति । गच्छति । अतस्तस्मा इंद्राय सोमं जुहुतेत्यन्वयः ॥

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निंद्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥२॥
यत् । दधिषे । प्रऽदिवि । चारु । अन्नं । दिवेऽदिवे । पीतिं । इत् । अस्य । वक्षि ।
उत । हृदा । उत । मनसा । जुषाणः । उशन् । इंद्र । प्रऽस्थितान् । पाहि । सोमान् ॥२॥

हे इंद्र प्रदिवि प्रगतेषु दिवसेषु पूर्वस्मिन्काले चारु शोभनं यत्सोमलक्षणमन्नं दधिषे पानेनोदरे धारयसि अस्य सोमस्य पीतिमित् पानमेव दिवे दिवे प्रतिदिवसमिदानीमपि वक्षि । कामयसे ॥ वश कांतावित्यस्य सिपि शपो लुकि षत्वकत्वषत्वेष्वेतद्रूपं ॥ उतापि च हे इंद्र हृदा हृदयेन । उतशब्दश्चार्थे । मनसा च जुषाणः सेवमान उशन्नस्मान्कामयमानस्त्वं प्रस्थितान् पुरस्तान्नीतानुत्तरवेदिस्थान् सोमान्पाहि । पिब ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एंद्र पप्राथोर्वंतरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥
जज्ञानः । सोमं । सहसे । पपाथ । प्र । ते । माता । महिमानं । उवाच ।
आ । इंद्र । पप्राथ । उरु । अंतरिक्षं । युधा । देवेभ्यः । वरिवः । चकर्थ ॥३॥

हे इंद्र त्वं जज्ञानो जायमान एव सहसे बलाय सोमं पपाथ । पीतवानसि । ते तव महिमानं महत्त्वं माता त्वदीया जनन्यदितिः प्रोवाच । प्रोक्तवती । संवादसूक्तेऽयं पंथा इत्यादिके मही त्वस्य । ऋ॰ ४. १८. ४.।

इत्यर्धर्चादारभ्यादित्थिंद्रमहत्त्वस्योक्तत्वात्। अतः कारणात् हे इंद्र त्वमुरु विस्तीर्णमंतरिक्षमा पप्राथ। स्वतेजसापूरितवानसि। अपि च युधा युद्धेन देवेभ्यः स्तोतृभ्यो देवेभ्य एव वा वरिवो धनं चकर्थ। कृतवानसि॥

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान्।
यद्वा नृभिर्वृत इंद्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम॥४॥
यत्। योधयाः। महतः। मन्यमानान्। साक्षाम। तान्। बाहुऽभिः। शाशदानान्।
यत्। वा। नृऽभिः। वृतः। इंद्र। अभिऽयुध्याः। तं। त्वया। आजिं। सौश्रवसं। जयेम॥४॥

हे इंद्र महतः प्रभूतान् मन्यमानाञ्छत्रून्यद्यदा योधयाः अस्माभिर्योधयेः। तैः सह योद्धुं बलं प्रयच्छेरित्यर्थः। तदानीं शाशदानान् हिंसतस्ताञ्छत्रून्बाहुभिरायुधभिरपेक्षैर्हस्तैरेव त्वत्प्रसादात्साक्षाम। सहेम। अभिभवेम। यद्वा यदि वा हे इंद्र नृभिर्नेतृभिर्मरुद्भिर्वृतः परिवृतस्त्वमेवाभियुध्याः अस्मदीयाञ्छत्रूनभियुध्येश्च सौश्रवसं। श्रवोऽन्नं यशो वा। शोभनस्य श्रवसो हेतुं तमाजिं संग्रामं त्वया सहायेन वयं जयेम॥

प्रेंद्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य॥५॥
प्र। इंद्रस्य। वोचं। प्रथमा। कृतानि। प्र। नूतना। मघऽवा। या। चकार।
यदा। इत्। अदेवीः। असहिष्ट। मायाः। अथ। अभवत्। केवलः। सोमः। अस्य॥५॥

इंद्रस्य कृतानि वीर्यकर्माणि प्रथमा प्रथमानि पुरातनानि प्र वोचं। प्रब्रवीमि। मघवा मघवानिंद्रो या यानि चकार कृतवान् नूतना नूतनान्यभिनवानि च तानि प्र वोचं। यदेद्यदैवादेवीरासुरीर्मायास्तैः कृतान्यसहिष्ट अभ्यभूत् अथानंतरमेवास्येंद्रस्य सोमः केवलोऽसाधारणोऽभवत्। तदाप्रभृत्येव सोमस्येंद्रस्य चासाधारणः संबंधो जात इत्यर्थः॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इंद्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः॥६॥
तव। इदं। विश्वं। अभितः। पशव्यं। यत्। पश्यसि। चक्षसा। सूर्यस्य।
गवां। असि। गोऽपतिः। एकः। इंद्र। भक्षीमहि। ते। प्रऽयतस्य। वस्वः॥६॥

हे इंद्र पशव्यं। पशवो द्विविधा द्विपादश्चतुष्पादश्च। तेभ्यो हितमभितः सर्वतो विद्यमानमिदं विश्वं सर्वं जगत्तवेत्तवैव स्वभूतं। सूर्यस्य प्रेरकस्यादित्यस्य चक्षसा तेजसा यद्विश्वं पश्यसि त्वं प्रकाशयसि। अपि च हे इंद्र एक एव त्वं गोपतिरसि। न केवलमेकस्या एव गोपतिरपि तु सर्वासामित्याह गवामिति। अतः कारणात्ते त्वया प्रयतस्य प्रत्तस्य। द्वितीयार्थे षष्ठी। प्रत्तं वस्वो धनं भक्षीमहि। भजेमहि॥

बृहस्पते युवमिंद्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥
बृहस्पते। युवं। इंद्रः। च। वस्वः। दिव्यस्य। ईशाथे इति। उत। पार्थिवस्य।
धत्तं। रयिं। स्तुवते। कीरये। चित्। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥७॥

व्याख्यातेयं । अक्षरार्थस्तु । हे बृहस्पते त्वं चेंद्रश्च युवां दिव्यस्य पार्थिवस्य चोभयविधस्य धनस्येश्वरौ भवथः । तौ युवां स्तुवते स्तोत्रे धनं दत्तमिति ॥ ॥ २३ ॥

परो मात्रयेति सप्तर्चं दशमं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं । उरुं यज्ञायेत्याद्यास्तिस्र ऐंद्रावैष्णव्यः शिष्टाः केवलविष्णुदेवताकाः । तथा चानुक्रांतं । परो वैष्णवं तूरुमित्यैंद्र्यश्च तिस्र इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ विष्णुदेवताके पशौ परो मात्रयेति पुरोडाशस्य याज्या । सूत्रितं च । परो मात्रया तन्वा वृधानेरावती धेनुमती हि भूतं । आ० ३. ८. । इति ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवंति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१॥
परः । मात्रया । तन्वा । वृधान । न । ते । महिऽत्वं । अनु । अश्नुवंति ।
उभे इति । ते । विद्म । रजसी इति । पृथिव्याः । विष्णो इति । देव । त्वं । परमस्य । वित्से ॥१॥

पर इति सकारांतं परस्तादित्यस्यार्थे ॥ परशब्दाच्छांदसोऽसिप्रत्ययः परो दिवा पर एना पृथिव्या । ऋ० १०. ८२. ५. । इति यथा । मात्रयेति व्यत्ययेन तृतीया ॥ मात्रया परः परस्ताद्वर्तमानयापरिमितया तन्वा शरीरेण वृधान वर्धमान हे विष्णो ते तव महित्वं महत्त्वं नान्वश्नुवंति । नानुव्याप्नुवंति । त्रैविक्रमसमये यत्तव माहात्म्यं तत्सर्वैरपि जनैर्ज्ञातुं न शक्यत इत्यर्थः । ते तवोभे रजसी उभौ लोकौ पृथिव्या आरभ्य पृथिवीमंतरिक्षं च विद्म । जानीमः । वयं चक्षुषोपलभामहे नान्यत् । हे देव द्योतमान विष्णो त्वमेव परमस्य स्वर्गादेरुत्कृष्टलोकस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । परमं लोकं वित्से । जानासि । अतस्तव महत्त्वं न केनापि व्याप्तुं शक्यमिति भावः ॥

पूर्वोक्त एव पशौ न ते विष्णो इति वपाया अनुवाक्या । सूत्रितं च । न ते विष्णो जायमानो न जातस्त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यां । आ० ३. ८. । इति ॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमंतमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहंतं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२॥
न । ते । विष्णो इति । जायमानः । न । जातः । देव । महिम्नः । परं । अंतं । आप ।
उत् । अस्तभ्नाः । नाकं । ऋष्वं । बृहंतं । दाधर्थ । प्राचीं । ककुभं । पृथिव्याः ॥२॥

हे देव दानादिगुणयुक्त विष्णो ते तव महिम्नो महत्त्वस्य परं विप्रकृष्टमंतमवसानं जायमानः प्रादुर्भवञ्जनो नाप । न प्राप्नोति । तथा जातः प्रादुर्भूतोऽपि जनो नैव प्राप्नोति । तव महत्त्वस्यावसानं नास्ति । अत एव सर्वैर्न ज्ञायत इति भावः । कोऽसौ महिमा तमाह । ऋष्वं दर्शनीयं बृहंतं महांतं नाकं द्युलोकमुदस्तभ्नाः । त्वमूर्ध्वमधारयः । यथाधो न पतति तथा । पृथिव्या भूमेः संबंधिनीं प्राचीं ककुभं च दाधर्थ । धारितवानसि । उपलक्षणमेतत् सर्वस्य भूतजातस्य । तथा च मंत्रांतरं । य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा । ऋ० १. १५४. ४. । इति ॥

पूर्वोक्त एव पशाविरावती इति हविषो याज्या । सूत्रितं च । इरावती धेनुमती हि भूतं विश्वकर्मन्हविषा वावृधान इति द्वे । आ० ३. ८. । इति ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३॥

इरावती इतीराऽवती । धेनुमती इति धेनुऽमती । हि । भूतं । सुयवसिनी इति सुऽयवसिनी । मनुषे । दशस्या ।
वि । अस्तभ्नाः । रोदसी इति । विष्णो इति । एते इति । दाधर्थ । पृथिवीं । अभितः । मयूखैः ॥ ३ ॥

हे द्यावापृथिव्यौ मनुषे सुवते मनुष्याय दशस्या दित्सया युक्ते युवामिरावती अन्नवत्यौ धेनुमती गोमत्यौ सूयवसिनी शोभनयवसे च भूतं । अभूतं । हिशब्दः प्रसिद्धौ । विष्णुना विक्रांतत्वाद्युवामेवमेव खलु पूर्वमभूतमित्यर्थः । हे विष्णो एते इमे रोदसी द्यावापृथिव्यौ व्यस्तभ्नाः । विविधमधारयः । पृथिवीमूर्ध्वमुखत्वेन द्यामधोमुखत्वेनेति विविधत्वं । अपि च पृथिवीं प्रथितामिमां भूमिमभितः सर्वत्र स्थितैर्मयूखैः पर्वतैर्दाधर्थ । धारितवानसि । यथा न चलति तथा दृढीकृतवानित्यर्थः । पर्वता हि विष्णोः स्वभूताः । विष्णुः पर्वतानामधिपतिरिति श्रुतेः । तै॰ सं॰ ३. ४. ५. १. ॥

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयंता सूर्यमुषासमग्निं ।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥
उरुं । यज्ञाय । चक्रथुः । ऊं इति । लोकं । जनयंता । सूर्यं । उषसं । अग्निं ।
दासस्य । चित् । वृषऽशिप्रस्य । मायाः । जघ्नथुः । नरा । पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

हे इंद्राविष्णू यज्ञाय यजमानायोरुं विस्तीर्णं लोकं स्वर्गाख्यं चक्रथुरु । कृतवंतौ खलु युवां । किं कुर्वंतौ । सूर्यं सर्वस्य प्रेरकमादित्यमुषसं तमोनिवारकमुषःकालमग्निं चासुरैरावृतं जनयंतौ पुनः प्रादुर्भावयंतौ । हे नरा नेताराविंद्राविष्णू वृषशिप्रस्यैतत्संज्ञस्य दासस्य चिदुपक्षपयितुरसुरस्य मायाः पृतनाज्येषु संग्रामेषु जघ्नथुः । जिहिंसथुः । युवां सूर्यादिकं जनयंतावित्युच्यते ॥

इंद्राविष्णू दृंहिताः शंबरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टं ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥
इंद्राविष्णू इति । दृंहिताः । शंबरस्य । नव । पुरः । नवतिं । च । श्नथिष्टं ।
शतं । वर्चिनः । सहस्रं । च । साकं । हथः । अप्रति । असुरस्य । वीरान् ॥ ५ ॥

हे इंद्राविष्णू दृंहिता दृढीकृता नव नवतिं च नवोत्तरनवतिसंख्याकाः पुरः पुराणि शंबरस्य स्वभूतानि श्नथिष्टं । अहिंसिष्टं ॥ श्नथ हिंसायां ॥ अपि च शतं सहस्रं च वर्चिनोऽसुरस्य वीरानप्रति प्रतिद्वंद्विनो यथा न भवंति तथा साकं सह सद्य एव हथः । अहिंसिष्टं । यो वर्चिनः शतमिंद्रः सहस्रं । ऋ॰ २. १४. ६. । इति हि निगमांतरं ॥

इयं मनीषा बृहती बृहंतोरुक्रमा तवसा वर्धयंती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विंद्र ॥ ६ ॥
इयं । मनीषा । बृहती । बृहंता । उरुऽक्रमा । तवसा । वर्धयंती ।
ररे । वां । स्तोमं । विदथेषु । विष्णो इति । पिन्वतं । इषः । वृजनेषु । इंद्र ॥ ६ ॥

बृहती महतीयं मनीषा मननीया स्तुतिर्बृहंता बृहंतौ महांतावुरुक्रमा विस्तीर्णविक्रमौ । विष्णुना सहैका-

र्थाभावादिंद्रस्याप्युरुक्रमत्वं । तवसा । तव इति बलस्य वृद्धेर्वा नामधेयं । तद्वंतौ एवंभूतौ युवां वर्धयंती प्रवृद्धौ कुर्वत्यस्माभिः कृता । हे विष्णो हे इंद्र विदथेषु यज्ञेषु वां युवाभ्यां स्तोममुक्तलक्षणं स्तोत्रं ररे । ददे ॥ रा दान इति धातुः ॥ तौ युवां वृजनेष्विषोऽन्नानि पिन्वतं । अस्मभ्यं वर्धयतं ॥

अभ्युदयेष्टौ विष्णोः शिपिविष्टस्य वषट् इत्येषानुवाक्या । सूत्रितं च । भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि । आ० ३. १३. । इति ॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यं ।
वर्धंतु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
वषट् । ते । विष्णो इति । आसः । आ । कृणोमि । तत् । मे । जुषस्व । शिपिऽविष्ट । हव्यं ।
वर्धंतु । त्वा । सुऽस्तुतयः । गिरः । मे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

हे विष्णो ते तुभ्यमास आस्यादाभिमुखं वषट् कृणोमि । करोमि । वषट्कारेण हविर्हावयामि । हे शिपिविष्ट । शिपयो रश्मयः । तैराविष्ट विष्णो तद्वषट्कृतं मे मदीयं हव्यं हविर्जुषस्व । सेवस्व । सुष्टुतयः शोभनस्तुत्यात्मिका गिरो वाचश्च त्वां वर्धतु । वर्धयंतु । अन्यद्गतं ॥ ॥२४॥

नू मर्त इति सप्तर्चमेकादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं वैष्णवं । नू मर्त इत्यनुक्रांतं ॥ उक्थ्येऽच्छावाकशस्त्र इदं शंसनीयं । सूत्रितं च । ऋतुर्जनित्री नू मर्तो भवा मित्रः । आ० ६. १. । इति ॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावंतं नर्यमाविवासात् ॥१॥
नु । मर्तः । दयते । सनिष्यन् । यः । विष्णवे । उरुऽगायाय । दाशत् ।
प्र । यः । सत्राचा । मनसा । यजाते । एतावंतं । नर्यं । आऽविवासात् ॥१॥

स मर्तो मनुष्यः सनिष्यन्धनमिच्छन्नु क्षिप्रं दयते । धनमादत्ते ॥ दयतिराङ्पूर्वार्थे द्रष्टव्यः ॥ यो मनुष्य उरुगायाय बहुभिः कीर्तनीयाय विष्णवे दाशत् हवींषि दद्यात् । यश्च सत्राचा सहांचता मनसा मननेन स्तोत्रेण प्र यजाति प्रकर्षेण पूजयेत् एतावंतमेतावत्परिमाणं महांतं नर्यं नरेभ्यो हितं विष्णुमाविवासात् नमस्कारादिभिः परिचरेत् । स मर्तो दयत इत्यन्वयः । यद्वा ॥ सनिष्यन्निति सनतेर्लाभार्थस्य लृटि रूपं ॥ स मर्तः सनिष्यन् धनादीनि लप्स्यमानो भवन्नेव हविरादिकं नु क्षिप्रं दयते विष्णवे ददातीति योज्यं ॥

विष्णुदेवत्ये पशौ पुरोडाशस्य त्वं विष्णो इत्यनुवाक्या । सूत्रितं च । त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यां वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां । आ० ३. ८. । इति ॥

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चंद्रस्य रायः ॥२॥
त्वं । विष्णो इति । सुऽमतिं । विश्वऽजन्यां । अप्रऽयुतां । एवऽयावः । मतिं । दाः ।
पर्चः । यथा । नः । सुवितस्य । भूरेः । अश्वऽवतः । पुरुऽचंद्रस्य । रायः ॥२॥

हे एवयावः । एवा प्राप्तव्याः कामाः । तान् यापयति प्रापयति स्तोतॄनित्येवयावः । हे एवयावन् विष्णो त्वं विश्वजन्यां सर्वजनहितां दोषैर्वियुक्तां सुमतिमनुग्रहबुद्धिं दाः । अस्मभ्यं देहि । सुवितस्य सुष्ठु प्राप्तव्यस्य भूरेर्बहुलस्याश्वावतोऽश्वयुक्तस्य पुरुश्चंद्रस्य पुरूणां बहूनामाह्लादकस्य रायो धनस्य पर्चः संपर्को नोऽस्माकं यथा भवति तथा देहीत्यन्वयः ॥

वैष्णव्यस्योपांशुयाजस्य त्रिर्देव इति याज्या। सूचितं च। इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां। आ॰ १. ६.। इति ॥ वैष्णव्ये पशावप्येषैव वपाया याज्या। सूचितं च। त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां परो मात्रया तन्वा वृधान। आ॰ ३. ८.। इति ॥

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३॥
त्रिः। देवः। पृथिवीं। एषः। एतां। वि। चक्रमे। शतऽअर्चसं। महिऽत्वा।
प्र। विष्णुः। अस्तु। तवसः। तवीयान्। त्वेषं। हि। अस्य। स्थविरस्य। नाम ॥३॥

एष देवो दानादिगुणयुक्तो विष्णुः शतर्चसं शतसंख्यान्यर्चींषि यस्यास्तादृशीमेतां पृथिवीं। उपलक्षणमेतत्। पृथिव्यादींस्त्रीँल्लोकान्महित्वा महत्त्वेन त्रिर्वि चक्रमे। त्रिभिः पदैर्विक्रांतवान्। तवसस्तवस्विनो वृद्धादपि तवीयान् तवस्वितरो विष्णुः प्रास्तु। अस्माकं प्रभवतु। स्वामी भवतु। अस्य स्थविरस्य वृद्धस्य विष्णोर्नाम नामकं रूपं विष्णुरित्येतन्नामैव वा त्वेषं हि यस्माद्दीप्तं तस्मात्कारणात्स विष्णुः प्रभवत्वित्यर्थः ॥

पूर्वोक्त एव पशौ वि चक्रम इति वपाया अनुवाक्या। सूचितं च। वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां। आ॰ ३. ८.। इति ॥

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥
वि। चक्रमे। पृथिवीं। एषः। एतां। क्षेत्राय। विष्णुः। मनुषे। दशस्यन्।
ध्रुवासः। अस्य। कीरयः। जनासः। उरुऽक्षितिं। सुऽजनिमा। चकार ॥४॥

एष देवो विष्णुरेतां पृथिवीं पृथिव्यादीनिमांस्त्रीँल्लोकान् क्षेत्राय निवासार्थं मनुषे स्तुवते देवगणाय दशस्यन्नसुरेभ्योऽपहृत्य प्रदास्यन् वि चक्रमे। विक्रांतवान्। अस्य च विष्णोः कीरयः स्तोतारो जनासो जना ध्रुवासो निश्चला भवंति। ऐहिकामुष्मिकयोर्लाभेन स्थिरा भवंतीत्यर्थः। सुजनिमा शोभनानि जनिमानि कीर्तनस्मरणादिना सुखहेतुभूतानि यस्य तादृशो विष्णुरुरुक्षितिं विस्तीर्णनिवासं चकार। स्तोतृभ्यः करोति ॥

तृतीयसवनेऽतिरात्रादूर्ध्वं सोमातिरेके सति नैमित्तिके होतुः शस्त्रे प्र तत्ते अद्येति स्तोत्रियस्तृचः। आ॰ ६. ७.॥ अभ्युदयेष्टौ विष्णोः शिपिविष्टस्य प्र तत्ते अद्येति याज्या। सूचितं च। वषट्ते विष्णवास आ कृणोमि प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नाम। आ॰ ३. १३.। इति ॥

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयंतमस्य रजसः पराके ॥५॥
प्र। तत्। ते। अद्य। शिपिऽविष्ट। नाम। अर्यः। शंसामि। वयुनानि। विद्वान्।
तं। त्वा। गृणामि। तवसं। अतव्यान्। क्षयंतं। अस्य। रजसः। पराके ॥५॥

हे शिपिविष्ट रश्मिभिराविष्ट विष्णो ते तव तत्प्रसिद्धं विष्णुरिति प्रख्यातं नामार्यः स्वामी स्तुतीनां हविषां वा तथा वयुनानि ज्ञातव्यान्यर्थजातानि विद्वाञ्जानन्नहमद्येदानीं प्र शंसामि। प्रकर्षेण स्तौमि। तवसं प्रवृद्धं तं त्वा त्वां विष्णुमतव्यानतवीयानवृद्धतरोऽहं गृणामि। स्तौमि। कीदृशं। अस्य रजसो लोकस्य पराके दूरदेशे क्षयंतं निवसंतं ॥

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥६॥

किं । इत् । ते । विष्णो इति । परिऽचक्ष्यं । भूत् । प्र । यत् । ववक्षे । शिपिऽविष्टः । अस्मि ।
मा । वर्पः । अस्मत् । अप । गूहः । एतत् । यत् । अन्यऽरूपः । संऽइथे । बभूथ ॥६॥

पुरा खलु विष्णुः स्वं रूपं परित्यज्य कृत्रिमं रूपांतरं धारयन् संग्रामे वसिष्ठस्य साहाय्यं चकार । तं जानन्नृषिरनया प्रत्याचष्टे ॥ अत्र निरुक्तं । शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवतः । कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः । किं ते विष्णो प्रख्यातमेतद्भवत्यप्रख्यापनीयं यन्नः प्रब्रूषे शेप इव निर्वेष्टितोऽस्मीत्यप्रतिपन्नरश्मिः । अपि वा प्रशंसानामैवाभिप्रेतं स्यात् । किं ते विष्णो प्रख्यातमेतद्भवति प्रख्यापनीयं यदुत प्रब्रूषे शिपिविष्टोऽस्मीति प्रतिपन्नरश्मिः । शिपयोऽत्र रश्मय उच्यंते तैराविष्टो भवति । मा वर्पो अस्मदप गूह एतत् । वर्प इति रूपनाम वृणोतीति सतः । यदन्यरूपः समिथे संग्रामे भवसि संयतरश्मिः । नि॰ ५. ८. । इति ॥ तत्र कुत्सितार्थपक्षे योजना । हे विष्णो ते तव तन्नाम किं परिचक्ष्यं प्रख्यापनीयं भूत् । भवति । किंशब्दः क्षेपे । अप्रख्यापनीयमेव तद्भवति । यन्नामास्मभ्यं प्र ववक्षे प्रब्रूषे शिपिविष्टोऽस्मीति । अंतर्णीतोपमानमेतत् । शेप इव निर्वेष्टितस्तेजसानाच्छादितो भवामीति । तदश्लीलार्थत्वादिदं नाम न प्रशस्तमित्यर्थः । तन्नाम किं परिचक्ष्यं वर्जनीयं परित्याज्यं । विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वात्स्वत एव परित्यक्तं हि तत् । शिष्टं समानं पूर्वेण । अत उक्तरूपविलक्षणं यद्वैष्णवरूपमस्त्येतद्वर्पो रूपमस्मदस्माकं माप गूहः । अपगूढं संवृतं मा कुरु ॥ गुहू संवरणे ॥ अपि तु तदेव रूपं प्रकटय । वैष्णवस्य रूपस्य गूहने का प्रसक्तिरिति चेत् । यद्यस्मादन्यरूपो रूपांतरमेव धारयन् समिथे संग्रामे बभूथ अस्माकं सहायो भवसि तस्मादिदं गूहनं न कार्यमिति ॥ प्रशंसापक्षे तु । हे विष्णो ते तव तन्नाम किं परिचक्ष्यं भूत् । किं प्रख्यापनीयं भवति । न प्रख्यापनीयं । किं तन्नाम । शिपिविष्टो रश्मिभिराविष्टोऽस्मीति यन्नाम प्रब्रूषे । यत एवं प्रख्यातरूपस्त्वमतोऽस्माकमेतद्वैष्णवं रूपं संवृतं मा कार्षीः । इदानीं गूढरूपोऽपि यद्यस्मात्त्वं समिथे संग्रामेऽन्यरूपः कृत्रिमरूपं यदन्यद्वैष्णवं रूपं शौर्यादिलक्षणं तादृग्रूप एव बभूथ भवसि तस्मात्त्वं गूढोऽपि ज्ञायस एवेति व्यर्थमेव तस्य रूपस्य गूहनं । अतो बहुतेजस्कं यद्वैष्णवं रूपं तदस्माकं प्रदर्शयेति तात्पर्यार्थः ॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यं ।
वर्धंतु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

वषट् । ते । विष्णो इति । आसः । आ । कृणोमि । तत् । मे । जुषस्व । शिपिऽविष्ट । हव्यं ।
वर्धंतु । त्वा । सुऽस्तुतयः । गिरः । मे । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

व्याख्यातेयं । अक्षरार्थस्तु । हे विष्णो तुभ्यमास्यादास्येन वषट्करोमि । वषट्कृतं तन्मदीयं हविर्हे शिपिविष्ट सेवस्व । शोभनस्तुतिरूपा मदीया वाचश्च त्वां वर्धयंत्विति । शिष्टः पादः सिद्धः ॥ ॥२५॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ सप्तमो व्याख्यास्यते। सप्तममंडलस्य षष्ठेऽनुवाक एकादश सूक्तानि व्याख्यातानि। तिस्रो वाच इति षडृचं द्वादशं सूक्तं। अत्रानुक्रम्यते। तिस्रः षट् पार्जन्यं त्विति। एते कुमार आग्नेयोऽपश्यद्वसिष्ठ एव वेति वक्ष्यमाणत्वादग्निपुत्रः कुमार ऋषिर्वसिष्ठो वा। अनुक्तत्वात्त्रिष्टुप्। इदमुत्तरं च पर्जन्यदेवत्यं ॥ अत्र शौनकः। आस्यदघ्नं विगाह्यापः प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः। सूक्ताभ्यां तिस्रआदिभ्यामुपतिष्ठेत भास्करं। अनश्नतैतज्जप्तव्यं वृष्टिकामेन यत्नतः। पंचरात्रेऽप्यतिक्रांते महतीं वृष्टिमाप्नुयात्। ऋग्वि॰ २. ३०.। इति ॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१॥
तिस्रः। वाचः। प्र। वद। ज्योतिःऽअग्राः। याः। एतत्। दुह्रे। मधुऽदोघं। ऊधः।
सः। वत्सं। कृण्वन्। गर्भं। ओषधीनां। सद्यः। जातः। वृषभः। रोरवीति ॥१॥

ऋषिरात्मानं स्तुतौ प्रेरयति। हे ऋषे तिस्रस्त्रिविधा ऋग्यजुःसामात्मिकाः स्तुतिरूपा वाचः प्र वद। प्रब्रूहि। कीदृश्यो वाचः। ज्योतिरग्राः। ज्योतिर्द्योतमानः प्रणवोऽग्रे प्रमुखो यासां तादृशीः। या वाचो मधुदोघं मधुन उदकस्य दोहकं वृष्ट्युदकस्य कर्तारमेतन्नभसि दृश्यमानमूध उद्धतं मेघं। यद्वा। लुप्तोपममेतत्। ऊध इव पयस आश्रयभूतं मेघं दुह्रे दुहते॥ दुहेर्लटि लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः। बाहुलकाद्रुट् ॥ स्तोत्रैः प्रीतो हि पर्जन्यो मेघैर्वर्षयति। अतो वाच एव दुहंतीत्युपचर्यते। यद्वा॥ वदेति व्यत्ययेन मध्यमः॥ तिस्र इति द्रुतविलंबितमध्यमभेदेन त्रिविधा ज्योतिरग्रा विद्युत्प्रमुखा वाचः प्रवदेतेति। या गर्जितलक्षणा वाचो वृष्टिप्रदमेतं मेघं दुह्रे उदकानि दुहंति। एवंभूतः स च पर्जन्यो वत्सं सह निवसंतं वैद्युताग्निं कृण्वन् प्रादुष्कुर्वन् तमेवौषधीनां व्रीह्यादीनां च गर्भं कुर्वन् सद्यः शीघ्रं जातः प्रादुर्भूतो वृषभो वर्षिता सन्रोरवीति। भृशं शब्दायते ॥

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे ॥२॥
यः। वर्धनः। ओषधीनां। यः। अपां। यः। विश्वस्य। जगतः। देवः। ईशे।
सः। त्रिऽधातु। शरणं। शर्म। यंसत्। त्रिऽवर्तु। ज्योतिः। सुऽअभिष्टि। अस्मे इति ॥२॥

यः पर्जन्य ओषधीनां वर्धनो वर्धयिता। यश्चापामुदकानां वर्धकः। यश्च देवो द्योतमानः पर्जन्यो विश्वस्य सर्वस्य जगत ईशे ईष्टे॥ लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः। अधीगर्थेति। पा॰ २. ३. ५२.। कर्मणि शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी। अनुदात्तेत्त्वाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः। यद्वृत्तान्नित्यमिति निघातप्रतिषेधः॥ स पर्जन्यस्त्रिधातु त्रिभूमिकं शरणं गृहं शर्म सुखं च यंसत्। यच्छतु। अस्मभ्यं ददात्वित्यर्थः॥ यमेर्लेट्यडागमः। सिब्बहुलमिति सिप्। इतश्च लोप इतीकारलोपः॥ तथा त्रिवर्तु त्रिष्वृतुष्वतिशयेन वर्तमानं। श्रूयते हि। त्रीणि वा आदित्यस्य तेजांसि वसंता प्रातर्ग्रीष्मे मध्यंदिने शरदपराह्णे। तै॰ सं॰ २. १. २. ५.। इति। एवंविधं स्वभिष्टि स्वभ्येषणं ज्योतिस्तेजश्चास्मे अस्मभ्यं प्रयच्छतु ॥

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

स्तरीः । ऊं इति । त्वत् । भवति । सूते । ऊं इति । त्वत् । यथाऽवशं । तन्वं । चक्रे । एषः ।
पितुः । पयः । प्रति । गृभ्णाति । माता । तेन । पिता । वर्धते । तेन । पुत्रः ॥३॥

त्वदिति तकारांतोऽन्यशब्दपर्यायोऽनुदात्तः सर्वनामसु पठितः ॥ अस्य पर्जन्यस्य त्वदन्यद्रूपं स्तरीर्निवृत्तप्रसवा गौः सा यथा न दोग्ध्री तद्वद्वर्षुकं न भवति । उ इति पूरकः । द्वितीय उशब्दश्चार्थे । त्वदन्यच्च रूपं सूते । धेनुवत्प्रसूते । उदकानि प्रवर्षति । एष पर्जन्यस्तन्वं स्वकीयं शरीरं यथावशं यथाकामं स्तरीत्वेन धेनुत्वेन च चक्रे । करोति । अपि च पितुर्दिवः सकाशात्पयो वृष्ट्युदकं माता पृथिवी प्रति गृभ्णाति । प्रतिगृह्णाति ॥ हृग्रहोर्भ इति भत्वं ॥ प्रतिगृहीतेन तेन हविरात्मना परिणतेन पिता द्युलोको वर्धते । तेनैवोदकेन पुत्रः पृथिव्यां भवः प्राणिसंघोऽपि वर्धते ॥

यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतंत्यभितो विरप्शं ॥४॥
यस्मिन् । विश्वानि । भुवनानि । तस्थुः । तिस्रः । द्यावः । त्रेधा । सस्रुः । आपः ।
त्रयः । कोशासः । उपऽसेचनासः । मध्वः । श्चोतंति । अभितः । विऽरप्शं ॥४॥

यस्मिन्पर्जन्ये विश्वानि भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि तस्थुः तिष्ठंति । यदधीनवृत्तीनि भवंतीत्यर्थः । यस्मिंश्च द्यावो द्युप्रभृतयो लोका अवतिष्ठंते । यस्माच्चापस्त्रेधा सस्रुः प्राच्यः प्रतीच्योऽवाच्यश्च सत्यो निर्गच्छंति । उपसेचनास उपसेक्तारस्त्रयः पौरस्त्यः प्रतीच्य उदीच्यश्चेति त्रिप्रकाराः कोशासो मेघा विरप्शं महांतं पर्जन्यमभितः परितो मध्वः ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ मधूदकं श्चोतंति । क्षारयंति । वर्षंति ॥

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वंतरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः संत्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥५॥
इदं । वचः । पर्जन्याय । स्वऽराजे । हृदः । अस्तु । अंतरं । तत् । जुजोषत् ।
मयःऽभुवः । वृष्टयः । संतु । अस्मे इति । सुऽपिप्पलाः । ओषधीः । देवऽगोपाः ॥५॥

इदं वचो वचनं स्तोत्रं स्वराजे स्वायत्तदीप्तये पर्जन्याय क्रियते । एतच्च हृदस्तदीयस्य हृदयस्यांतरमंतर्गतमस्तु । स च तत्स्तोत्रं जुजोषत् । सेवतां ॥ जुषी प्रीतिसेवनयोः । लेट्यडागमश्छांदसः । शपः श्लुः ॥ मयोभुवः सुखस्य भावयित्र्यो वृष्टयोऽस्मे अस्माकं तत्प्रसादात्संतु । भवंतु । तथा देवगोपा देवः पर्जन्यो गोपायिता रक्षिता यासां तथाविधा ओषधीरोषधयश्च सुपिप्पलाः सुफला अस्माकं भवंतु ॥

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
सः । रेतःऽधाः । वृषभः । शश्वतीनां । तस्मिन् । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ।
तत् । मा । ऋतं । पातु । शतऽशारदाय । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

स पर्जन्यः शश्वतीनां बह्वीनामोषधीनां रेतोधा रेतस उदकस्य बीजभूतस्य धाता विनिधाता भवति । वृषभ इत्युपमा । यथा कश्चिद्वृषभो बह्वीनां गवां गर्भस्याधाता भवति तद्वत् । अतस्तस्मिन् पर्जन्ये जगतो जंगमस्य तस्थुषः स्थावरस्य चात्मा देहो वर्तते । तत्पर्जन्येन दत्तमृतमुदकं मा मां शतशारदाय शतसंवत्सरजीवनार्थं पातु । रक्षतु ॥ माशब्दस्य ऋत्यक इति प्रकृतिभावो ह्रस्वत्वं च ॥ अन्यद्गतं ॥ ॥१॥

पर्जन्यायेति तृचं चयोदशं सूक्तं गायत्रं। पूर्ववदृषिर्देवते। तथा चानुक्रांतं। पर्जन्याय तृचं गायत्रमिति॥ वैश्वानरपार्जन्यायामन्वारंभणीयायां पार्जन्यस्य चरोः पर्जन्यायेत्यनुवाक्या। सूत्र्यते हि। पर्जन्याय प्र गायत प्र वाता वांति पतयंति विद्युतः। आ० २. १५.। इति॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे। स नो यवसमिच्छतु॥१॥

पर्जन्याय। प्र। गायत। दिवः। पुत्राय। मीळ्हुषे। सः। नः। यवसं। इच्छतु॥१॥

हे स्तोतारः पर्जन्याय देवाय प्र गायत। प्रकर्षेण स्तोत्रमुच्चारयत। कीदृशाय। दिवोऽंतरिक्षस्य पुत्राय। तत्र हि पर्जन्यः प्रादुर्भवति। मीळ्हुषे सेक्त्रे। स तादृशः पर्जन्यो नोऽस्मभ्यं यवसमोषधादिलक्षणमन्नं दातुमिच्छतु॥

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वतां। पर्जन्यः पुरुषीणां॥२॥

यः। गर्भं। ओषधीनां। गवां। कृणोति। अर्वतां। पर्जन्यः। पुरुषीणां॥२॥

यः पर्जन्य ओषधीनां व्रीह्यादीनां गवामर्वतामर्वतीनां पुरुषीणां नारीणां च यः पर्जन्यो गर्भं प्रसूतिहेतु बीजमुदकरूपं कृणोति करोति तस्मै पर्जन्यायेत्युत्तरत्र संबंधः॥

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमं। इळां नः संयतं करत्॥३॥

तस्मै। इत्। आस्ये। हविः। जुहोत। मधुमत्ऽतमं। इळां। नः। संऽयतं। करत्॥३॥

तस्मा इत्तस्मा एव पर्जन्यायास्ये देवानामास्यभूतेऽग्नौ मधुमत्तमं रसवत्तमं हविर्जुहोत। जुहुत हे ऋत्विजः। स च पर्जन्यो नोऽस्मभ्यमिळामन्नं संयतं सम्यग्यितं यथा भवति तथा करत्। करोतु। ददात्विति यावत्॥ ॥२॥

संवत्सरमिति दशर्चं चतुर्दशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं। आद्या त्वनुष्टुप्। मंडूका देवता। तथा चानुक्रांतं। संवत्सरं दश पर्जन्यस्तुतिः संहृष्टान्मंडूकांस्तुष्टावाद्यानुष्टुबिति॥ वृष्टिकामेनैतत्सूक्तं जप्यं॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मंडूका अवादिषुः॥१॥

संवत्सरं। शशयानाः। ब्राह्मणाः। व्रतऽचारिणः।
वाचं। पर्जन्यऽजिन्वितां। प्र। मंडूकाः। अवादिषुः॥१॥

अत्र निरुक्तं। वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव तं मंडूका अन्वमोदंत स मंडूकाननुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव। नि० ९. ६.। इति। मंडूका मज्जूका मज्जनान्मदतेर्वा मोदतिकर्मणो मंदतेर्वा तृप्तिकर्मणो मंडयतेरिति वैयाकरणा मंड एषामोक इति वा मंडो मदेर्वा मुदेर्वा तेषामेषा भवति। नि० ९. ५.। इति॥ व्रतचारिणो व्रतं संवत्सरसत्त्रात्मकं कर्माचरंतो ब्राह्मणाः। लुप्तोपममेतत्। एवंभूता ब्राह्मणा इव संवत्सरं शरत्प्रभृत्या वर्षर्तोरेकं संवत्सरं शशयानाः शिश्याना वर्षणार्थं तपश्चरंत इव बिल एव संत एते मंडूकाः पर्जन्यजिन्वितां पर्जन्येन प्रीतां यया वाचा पर्जन्यः प्रीतो भवति तादृशीं वाचं प्रावादिषुः। प्रवदंति॥

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानं।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मंडूकानां वग्नुरत्रा समेति॥२॥

दिव्याः। आपः। अभि। यत्। एनं। आयन्। दृतिं। न। शुष्कं। सरसी इति। शयानं।
गवां। अह। न। मायुः। वत्सिनीनां। मंडूकानां। वग्नुः। अत्र। सं। एति ॥२॥

दिव्या दिवि भवा आपो दृतिं न दृतिमिव शुष्कं नीरसं सरसी ॥ महत्सरः सरसी। गौरादिलक्षणो ङीष्। सरस्यां। सुपां सुलुगिति सप्तम्या लुक्। ईदूतौ च सप्तम्यर्थ इति प्रगृह्यसंज्ञा ॥ महति सरसि निर्जले घर्मकाले शयानं निवसंतमेनं मंडूकगणं यद्यदायन् अभिगच्छंति तदात्रास्मिन्वर्षणे पर्जन्ये वा सति वत्सिनीनां वत्सयुक्तानां गवां न मायुर्गवां शब्द इव मंडूकानां वग्नुः शब्दः समेति। संगच्छते। यथा वत्सैः संगतासु गोषु महान् घोषो जायते तद्वद्वृष्टे पर्जन्ये महान् कलकलशब्दो जायत इत्यर्थः। अहेति पूरकः ॥

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायां।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदंतमेति ॥३॥
यत्। ईं। एनान्। उशतः। अभि। अवर्षीत्। तृष्याऽवतः। प्रावृषि। आऽगतायां।
अख्खलीकृत्य। पितरं। न। पुत्रः। अन्यः। अन्यं। उप। वदंतं। एति ॥३॥

उशतः कामयमानांस्तृष्यावतस्तृष्णावत एनान्मंडूकान् प्रावृषि वर्षर्तावागतायामागते सति यद्यदाभ्यवर्षीत् पर्जन्यो जलैरभिषिंचति। ईमिति पूरणः। तदानीमख्खलीकृत्य। अख्खल इति शब्दानुकरणं। अख्खलशब्दं कृत्वा पुत्रः पितरं न पितरमिवान्यो मंडूको वदंतं शब्दयंतमन्यं मंडूकमुपैति। प्राप्नोति ॥

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमंदिषातां।
मंडूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः संपृंक्ते हरितेन वाचं ॥४॥
अन्यः। अन्यं। अनु। गृभ्णाति। एनोः। अपां। प्रऽसर्गे। यत्। अमंदिषातां।
मंडूकः। यत्। अभिऽवृष्टः। कनिस्कन्। पृश्निः। संऽपृंक्ते। हरितेन। वाचं ॥४॥

एनोरेनयोर्द्वयोर्मंडूकयोरन्यो मंडूकोऽन्यं मंडूकमनुगम्य गृभ्णाति। गृह्णाति। अपामुदकानां प्रसर्गे प्रसर्जने वर्षणे सति यद्यदामंदिषातां हृष्टावभूतां। यद्यदा चाभिवृष्टः पर्जन्येनाभिषिक्तः कनिष्कन् ॥ स्कंदते-र्यङ्लुगंतस्य रूपं ॥ भृशं स्कंदन्नुत्प्लवं कुर्वन् पृश्निः पृश्निवर्णो मंडूको हरितेन हरितवर्णेनान्येन मंडूकेन वाचं संपृंक्ते संयोजयति उभावप्येकविधं शब्दं कुर्वाते। तदानीमन्योऽन्यमनु गृभ्णातीत्यन्वयः ॥

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५॥
यत्। एषां। अन्यः। अन्यस्य। वाचं। शाक्तस्यऽइव। वदति। शिक्षमाणः।
सर्वं। तत्। एषां। समृधाऽइव। पर्व। यत्। सुऽवाचः। वदथन। अधि। अप्ऽसु ॥५॥

हे मंडूकाः यद्यदेषां युष्माकं मध्येऽन्यो मंडूकोऽन्यस्य मंडूकस्य वाचं वदति अनुवदति अनुकरोति शिक्षमाणः शिक्ष्यमाणः शिष्यः शाक्तस्येव शक्तिमतः शिक्षकस्य वाचं यथानुवदति तद्वत्। यद्यदा च सुवाचः शोभनवाचो यूयं सर्वेऽप्सु वृष्टिषूदकेष्वध्युपरि प्लवंतो वदथन वदत शब्दं कुरुत। तत्तदेषां युष्माकं सर्वं पर्व पर्ववच्छरीरं समृधेव समृद्धमेवाविकलावयवमेव भवति। इवशब्दोऽवधारणे। घर्मकाले मृद्भावमापन्ना मंडूकाः पुनर्वर्षणे सत्यविकलांगाः प्रादुर्भवंतीत्यर्थः ॥ ॥३॥

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषां ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदंतः ॥ ६ ॥
गोऽमायुः । एकः । अजऽमायुः । एकः । पृश्निः । एकः । हरितः । एकः । एषां ।
समानं । नाम । बिभ्रतः । विऽरूपाः । पुरुऽत्रा । वाचं । पिपिशुः । वदंतः ॥ ६ ॥

एषां मंडूकानां मध्य एको मंडूको गोमायुर्गोर्मायुरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशो भवति । एकोऽन्यो मंडूकोऽजमायुरजस्य मायुरिव मायुर्यस्य तादृशो भवति । एकः पृश्निः पृश्निवर्णः । एकोऽपरो हरितो हरितवर्णः । एवं विरूपा नानारूपा अपि समानमेकं मंडूका इति नाम बिभ्रतो धारयंतः पुरुत्रा बहुषु देशेषु वाचं वदंतः शब्दं कुर्वंतः पिपिशुः । अवयवीभवंति । प्रादुर्भवंति ॥ पिश अवयवे । पुरुशब्दाद्देवमनुष्येत्यादिना त्राप्रत्ययः ॥

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदंतः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मंडूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥
ब्राह्मणासः । अतिऽरात्रे । न । सोमे । सरः । न । पूर्णं । अभितः । वदंतः ।
संवत्सरस्य । तत् । अहरिति । परि । स्थ । यत् । मंडूकाः । प्रावृषीणं । बभूव ॥ ७ ॥

रात्रिमतीत्य वर्तत इत्यतिरात्रः । अतिरात्रे न सोमे । यथातिरात्राख्ये सोमयागे ब्राह्मणासो ब्राह्मणा रात्रौ स्तुतशस्त्राणि पर्यायेण शंसंति हे मंडूकाः । द्वितीयो नशब्दः संप्रत्यर्थे । न संप्रति पूर्णं सरोऽभितः सर्वतो वदंतो रात्रौ शब्दं कुर्वाणा यूयं तदहस्तद्दिनं परि ष्ठ । परितः सर्वतो भवथ । यदहः प्रावृषीणं प्रावृषेण्यं प्रावृषि भवं बभूव तस्मिन्नहनि सर्वतो वर्तमाना भवथेत्यर्थः ॥

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वंतः परिवत्सरीणं ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवंति गुह्या न के चित् ॥ ८ ॥
ब्राह्मणासः । सोमिनः । वाचं । अक्रत । ब्रह्म । कृण्वंतः । परिवत्सरीणं ।
अध्वर्यवः । घर्मिणः । सिस्विदानाः । आविः । भवंति । गुह्याः । न । के । चित् ॥ ८ ॥

सोमिनः सोमयुक्ताः परिवत्सरीणं सांवत्सरिकं गवामयनिकं ब्रह्म स्तुतशस्त्रात्मकं कृण्वंतः कुर्वंतो ब्राह्मणासः । लुप्तोपममेतत् । ब्राह्मणा इव वाचं शब्दमक्रत । अकृषतेमे मंडूकाः । अपि च घर्मिणो घर्मेण प्रवर्ग्येण चरंतोऽध्वर्यवोऽध्वरस्य नेतार ऋत्विज इव सिष्विदानाः स्विद्यन्गात्रा गुह्या घर्मकाले बिलेऽभिगूढाः के चित् केचन मंडूका न संप्रति वृष्टौ सत्यामाविर्भवंति । जायंते ॥

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनंत्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गं ॥ ९ ॥
देवऽहितिं । जुगुपुः । द्वादशस्य । ऋतुं । नरः । न । प्र । मिनंति । एते ।
संवत्सरे । प्रावृषि । आऽगतायां । तप्ताः । घर्माः । अश्नुवते । विऽसर्गं ॥ ९ ॥

नरो नेतार एते मंडूका देवहितिं देवैः कृतं विधानमस्मर्तोरयं धर्म इत्येवंरूपं जुगुपुः । गोपायंति । काले काले रक्षंति । अत एव द्वादशस्य द्वादशमासात्मकस्य संवत्सरस्यर्तुं तं तं वसंतादिकं न प्र मिनंति । न

हिंसंति। पर्जन्यस्तुतिरनुमोदनेन तत्तत्काले वृष्टिहेतवो भवंतीत्यर्थः। संवत्सरे संपूर्णे प्रावृषि वर्षर्तावागतायामागते सति घर्माः पूर्वं घर्मकाले वर्तमानास्तप्तास्तापेन पीडिताः संप्रति विसर्गं विसर्जनं बिलान्मोचनमश्नुवते। प्राप्नुवंति ॥

गोमा॑युरदादजमा॑युरदा॒त्पृश्नि॑रदा॒द्धरि॑तो नो॒ वसू॑नि ।
गवां॑ मं॒डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रंत॒ आयुः॑ ॥१०॥
गोऽमा॑युः । अ॒दा॒त् । अ॒जऽमा॑युः । अ॒दा॒त् । पृश्निः॑ । अ॒दा॒त् । हरि॑तः । न॒ः । वसू॑नि ।
गवा॑म् । मं॒डूकाः॑ । दद॑तः । श॒तानि॑ । स॒ह॒स्र॒ऽसा॒वे । प्र । ति॒र॒न्ते॒ । आयुः॑ ॥१०॥

गोमायुर्गोरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशो मंडूको वसूनि धनानि नोऽस्मभ्यमदात्। ददातु। अजमायुश्चादात्। ददातु। हरितो हरितवर्णश्चादात्। ददातु। पृश्निः पृश्निवर्णश्चादात्। ददातु। तथा सहस्रसावे। सहस्रसंख्याका ओषधयः सूयंत उत्पद्यंत इति वर्षर्तुः सहस्रसावः। तस्मिन् सति सर्वे मंडूका गवां शतान्यपरिमिता गा ददतोऽस्मभ्यं प्रयच्छंत आयुर्जीवनं प्र तिरंते। प्रवर्धयंतु ॥ ॥४॥

इंद्रासोमेति पंचविंशत्यृचं पंचदशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं। आद्याः षड्जगत्यः सप्तमी जगती त्रिष्टुब्वाष्टादश्येकविंशीत्रयोविंश्यो जगत्योऽत्या प्रति चक्ष्वेत्यनुष्टुप् शिष्टाश्चतुर्दश त्रिष्टुभः। नवमीद्वादशीत्रयोदश्यः सोमदेवत्या एकादशी देवदेवत्याष्टमीषोडश्याविंद्रदेवताके सप्तदशी ग्रावदेवत्याष्टादशी मरुद्देवताका दशमीचतुर्दश्यावग्निदेवताके प्र वर्तयेत्याद्याः पंचर्च इंद्रदेवताकाः। मा नो रक्ष इति त्रयोविंश्याः पूर्वोऽर्धर्चो वसिष्ठस्य प्रार्थनापरः। अतस्तद्देवताकः। उत्तरोऽर्धर्चः पृथिव्यंतरिक्षदेवत्यः। शिष्टानां रक्षोहणाविंद्रासोमौ देवता। तथा चानुक्रांतं। इंद्रासोमा पंचाधिकेंद्रासोमं राक्षोघ्नं शापाभिशापप्रायं षट् सप्त चाद्या जगत्य एकविंशीत्रयोविंश्यौ चाष्टादशी मारुती च दशमीचतुर्दश्यावाग्नेय्यौ दैव्येकादश्यंत्यानुष्टुम्नवमी द्वादशी त्रयोदशी सौम्यः सप्तदशी ग्राव्ण्यष्टमीषोडश्यविंद्र्यौ प्र वर्तयेति पंचैंद्र्यो मा नो रक्ष इत्यृषेरात्मन आशीरुत्तरोऽर्धर्चः पृथिव्यंतरिक्षदेवत इति ॥ अत्र बृहद्देवतायामनुक्रम्यते। संवत्सरं तु मंडूकानैंद्रासोमं परं तु यत्। ऋषिर्ददर्श रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः। हते पुत्रशते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा। बृ० ६. ८३७. ८४३.। इति ॥ अतो रक्षोनिबर्हणार्थमेतत्सूक्तं जाप्यं ॥

इंद्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं वृषणा तमो॒वृधः॑ ।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्रिणः॑ ॥१॥
इंद्रा॑सोमा । तप॑तम् । रक्षः॑ । उ॒ब्जत॑म् । नि । अ॒र्प॒य॒त॒म् । वृ॒ष॒णा॒ । त॒मः॒ऽवृधः॑ ।
परा॑ । शृ॒णी॒त॒म् । अ॒चितः॑ । नि । ओ॒ष॒त॒म् । ह॒तम् । नु॒देथा॑म् । नि । शि॒शी॒त॒म् । अ॒त्रिणः॑ ॥१॥

हे इंद्रासोमा। इंद्रश्च सोमश्चेंद्रासोमौ ॥ देवताद्वंद्वे चेति पूर्वपदस्यानङ्। आमंत्रिताद्युदात्तत्वं ॥ रक्षो रक्षांसि ॥ जातावेकवचनं ॥ युवां तपतं। संतापयतं ॥ आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवदित्यविद्यमानवत्त्वात् तपतमिति तिङंतस्य निघाताभावः ॥ तथोब्जतं। हिंस्तं ॥ उब्जतिर्हिंसाकर्मा। तिङः परत्वान्निघाताभावः ॥ हे वृषणा वृषणौ कामानां वर्षितारौ न्यर्पयतं। रक्षांसि नीचैर्दुःखं प्रापयतं। तमोवृधस्तमसावरकेणांधकारेण मायारूपेण वर्धमानान् तमसि रात्रौ वर्धमानान्वाचितो ज्ञानरहितान्मूढान्राक्षसान् परा शृणीतं। पराङ्मुखा यथा भवंति तथा हिंस्तं। तथा न्योषतं। नितरां दहतं ॥ उष दाहे ॥ हतं। तान्मारयतं। नुदेथां। अस्मत्तो हतांस्तान् प्रेरयेथां। अत्रिणोऽदनशीलांस्तान्राक्षसान्नि शिशीतं। नितरां तनूकुरुतं ॥

इंद्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑समभ्य१॒॑घं तपु॑र्ययस्तु च॒रुर॑ग्नि॒वाँ इ॑व ।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑ ॥२॥

इंद्रासोमा। सं। अघऽशंसं। अभि। अघं। तपुः। ययस्तु। चरुः। अग्निवान्ऽइव।
ब्रह्मऽद्विषे। क्रव्यऽअदे। घोरऽचक्षसे। द्वेषः। धत्तं। अनवायं। किमीदिने ॥२॥

हे इंद्रासोमौ अघशंसमघस्यानर्थस्य शंसितारमघमागत्य हंतारं राक्षसं सं सहैव। अभीति श्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः। अभिभवतं। स च तपुर्युवयोस्तेजसा तप्यमानो राक्षसोऽग्निवानिवाग्नियुक्तोऽग्नौ प्रक्षिप्तश्चरुरिव ययस्तु॥ यसु प्रयत्ने। केवलोऽप्ययमाङ्पूर्वार्थे द्रष्टव्यः॥ आयस्यतु। आयासं प्राप्नोतु। उपक्षीयतामित्यर्थः। अपि च ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणेभ्योऽस्मभ्यं द्वेष्ट्रे क्रव्यादे क्रव्यं मांसं भक्षयित्रे घोरचक्षसे घोरदर्शनाय परुषभाषिणे वा किमीदिने किमिदानीमिति चरते पिशुनाय द्वेषो द्वेषभावमनवायमव्यवायमनवयवं नैरंतर्येण यथा भवति तथा धत्तं। दत्तं॥

इंद्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अंतरनारंभणे तमसि प्र विध्यतं।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥
इंद्रासोमा। दुःऽकृतः। वव्रे। अंतः। अनारंभणे। तमसि। प्र। विध्यतं।
यथा। न। अतः। पुनः। एकः। चन। उत्ऽअयत्। तत्। वां। अस्तु। सहसे।
मन्युऽमत्। शवः ॥३॥

हे इंद्रासोमौ दुष्कृतो दुष्कर्मकारिणो राक्षसान् वव्रे वारकेऽतर्मध्येऽनारंभण आलंबनरहिते तमस्यंधकारे प्र विध्यतं। प्रवेश्य ताडयतं। यथा येन प्रकारेणैषां मध्य एकश्चनैकोऽपि राक्षसोऽतोऽस्मात्तमसः पुनर्नोदयत् उन्नच्छेत्। तथा विध्यतमित्यर्थः॥ एतेर्लंड्यडागमः। इतश्च लोप इतीकारलोपः। गुणायादेशौ॥ तत्प्रसिद्धं मन्युमत्क्रोधयुक्तं वां युवयोः शवो बलं सहसे रक्षसामभिभवनायास्तु। भवतु॥

इंद्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणं।
उत्तक्षतं स्वर्यं१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥
इंद्रासोमा। वर्तयतं। दिवः। वधं। सं। पृथिव्याः। अघऽशंसाय। तर्हणं।
उत्। तक्षतं। स्वर्यं। पर्वतेभ्यः। येन। रक्षः। ववृधानं। निऽजूर्वथः ॥४॥

हे इंद्रासोमौ दिवोऽतरिक्षात् द्युलोकाद्वा वधं हननसाधनमायुधं सं वर्तयतं। उत्पादयतं। पृथिव्या अस्मादपि लोकात्तर्हणं हिंसकमायुधमघशंसायाघशंसमनर्थस्याशंसकं राक्षसं हंतुमुत्पादयतं। तथा पर्वतेभ्यः पर्ववद्भ्यो मेघेभ्यः सकाशात्स्वर्यं॥ स्वृ शब्दोपतापयोः॥ उपतापकमशनिमुत्तक्षतं। उद्गूर्तं कुरुतं। येनाशनिना वावृधानं वर्धमानं प्रवृद्धं वा रक्षो राक्षसं निजूर्वथः निहथः॥ जुर्वी हिंसायां॥ तमशनिमुत्तक्षतमित्यर्थः॥

इंद्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यंतु निस्वरं ॥५॥
इंद्रासोमा। वर्तयतं। दिवः। परि। अग्निऽतप्तेभिः। युवं। अश्महन्मऽभिः।
तपुःऽवधेभिः। अजरेभिः। अत्रिणः। नि। पर्शाने। विध्यतं। यंतु। निऽस्वरं ॥५॥

हे इंद्रासोमौ दिवोऽतरिक्षात्परितः सर्वतो वर्तयतं। आयुधानि प्रेरयतं। युवं तौ युवामग्नितप्तेभिरग्निना संतप्तैस्तपुर्वधेभिस्तापकप्रहारैरजरेभिर्जरारहितैर्दृढैरश्महन्मभिरश्मसारभूतैरायसैर्विकारैर्हननसाधनैस्तैरा-

युधिरक्षिणो राक्षसस्य पर्शाने पार्श्वस्थाने नि विध्यतं। निहतं। ते च राक्षसा निःस्वरं निःशब्दं यंतु। अपयंतु। निर्गच्छंतु॥ ॥५॥

इंद्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतं॥६॥
इंद्रासोमा। परि। वां। भूतु। विश्वतः। इयं। मतिः। कक्ष्या। अश्वाऽइव। वाजिना।
यां। वां। होत्रां। परिऽहिनोमि। मेधया। इमा। ब्रह्माणि। नृपती इवेति नृपतीऽइव।
जिन्वतं॥६॥

हे इंद्रासोमौ इयमस्माभिः क्रियमाणा मतिर्मननीया स्तुतिर्वाजिना वाजिनौ बलवंतौ वां युवां विश्वतः सर्वतः परि भूतु। परिगृह्णातु। व्याप्नोतु वा। तत्र दृष्टांतः। कक्ष्या कक्षबंधनी रज्जुरश्वेव यथाश्वं परिगृह्णाति तद्वत्। यां होत्रां वाचं वां युवाभ्यां मेधया परिहिनोमि प्रेरयामि। सेयं मतिरिति संबंधः। अपि चेमेमान्यस्माभिः कृतानि ब्रह्माणि स्तोत्राणि --- यथा धनैः पूरयंति तथा जिन्वतं। फलैः पूरयतं॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भंगुरावतः।
इंद्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा॥७॥
प्रति। स्मरेथां। तुजयत्ऽभिः। एवैः। हतं। द्रुहः। रक्षसः। भंगुरऽवतः।
इंद्रासोमा। दुःऽकृते। मा। सुऽगं। भूत्। यः। नः। कदा। चित्। अभिऽदासति। द्रुहा॥७॥

हे इंद्रासोमौ तुजयद्भिस्त्वरमाणैरेवैर्गंतृभिरश्वैः प्रति स्मरेथां। अभिगच्छतं॥ उपसर्गवशेन स्मरतिरत्रार्थांतरे वर्तते। यथा प्रस्मरणं प्रस्थानमिति॥ अभिगत्य च द्रुहो द्रोग्धॄन् भंगुरावतो भंजनकर्मवतो रक्षसो राक्षसान् हतं। हिंस्तं। हे इंद्रासोमौ दुष्कृते पापकारिणे राक्षसाय सुगं सुखं मा भूत्। मा भवतु। द्रुहा द्रोहेण युक्तो यो नोऽस्मान् कदा चिदप्यभिदासति अभिहंति तस्मै दुष्कृत इत्यन्वयः॥

यो मा पाकेन मनसा चरंतमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इंद्र वक्ता॥८॥
यः। मा। पाकेन। मनसा। चरंतं। अभिऽचष्टे। अनृतेभिः। वचःऽभिः।
आपःऽइव। काशिना। संऽगृभीताः। असन्। अस्तु। असतः। इंद्र। वक्ता॥८॥

पाकेन पक्वेन शुद्धेन मनसा चरंतं वर्तमानं सत्यवादिनं यो मां राक्षसोऽनृतेभिरनृतैरसत्यैर्वचोभिर्वचनैरभिचष्टे अभिशंसति मय्यसत्यवचनमारोपयति हे इंद्र काशिना मुष्टिना संगृभीताः सम्यग्गृहीता आप इव यथापो विशीर्णा भवंति तथासतोऽसत्यस्य वक्ता स राक्षसोऽसन्नस्तु। अविद्यमानो भवतु। नश्यत्वित्यर्थः॥

ये पाकशंसं विहरंत एवैर्ये वा भद्रं दूषयंति स्वधाभिः।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे॥९॥
ये। पाकऽशंसं। विऽहरंते। एवैः। ये। वा। भद्रं। दूषयंति। स्वधाभिः।
अहये। वा। तान्। प्रऽददातु। सोमः। आ। वा। दधातु। निःऽऋतेः। उपऽस्थे॥९॥

ये राक्षसाः पाकशंसं परिपक्ववचनं सत्यभाषिणं मामेवैरेतव्यैः प्राप्तव्यैरात्मीयैः कामैर्हेतुभूतैर्विहरंते विशेषेण हरंति उपक्षपयंति । यथाकामं परिवदंतीत्यर्थः । ये वा स्वधाभिर्बलैर्युक्ता भद्रं कल्याणवर्तनं मां दूषयंति दुष्टं कुर्वंति तान् सर्वान् सोमोऽहये वा सर्पाय वा प्रददातु । निर्ऋतेः पापदेवताया उपस्थ उत्संगे वा आ दधातु । प्रक्षिपतु ॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनां ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥१०॥
यः । नः । रसं । दिप्सति । पित्वः । अग्ने । यः । अश्वानां । यः । गवां । यः । तनूनां ।
रिपुः । स्तेनः । स्तेयऽकृत् । दभ्रं । एतु । नि । सः । हीयतां । तन्वा । तना । च ॥१०॥

हे अग्ने यो राक्षसो नोऽस्माकं पित्वोऽन्नस्य रसं सारं दिप्सति जिघांसति । यश्चाश्वानामस्मदीयानां रसं दिप्सति । यश्च गवां रसं दिप्सति । यश्च तनूनामस्मदीयानां शरीराणां रसं दिप्सति । रिपुर्बाधकः स्तेनश्चौरः स्तेयकृद्धनस्यापहर्ता स सर्वो जनो दभ्रं हिंसामेतु । प्राप्नोतु । अपि च स बाधकस्तन्वा स्वकीयेन शरीरेण तना च तनयेन च नि हीयतां । निहीनो भवतु ॥ ॥ ६ ॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तं ॥११॥
परः । सः । अस्तु । तन्वा । तना । च । तिस्रः । पृथिवीः । अधः । अस्तु । विश्वाः ।
प्रति । शुष्यतु । यशः । अस्य । देवाः । यः । नः । दिवा । दिप्सति । यः । च । नक्तं ॥११॥

स राक्षसस्तन्वा तना च ॥ व्यत्ययेन तृतीया ॥ तन्वाः शरीरस्य तनयस्य च परः परस्तादस्तु । वर्तमानो भवतु । उभाभ्यां वियुक्तो भवत्वित्यर्थः । विश्वा व्याप्तास्तिस्रः पृथिवीस्त्रींल्लोकानधोऽस्तु । अधस्ताद्भवतु । लोकत्रयादपि प्रच्युतो भवत्वित्यर्थः । हे देवाः अस्य शत्रोर्यशोऽन्नं कीर्तिर्वा प्रति शुष्यतु । यो राक्षसो नोऽस्मान्दिवाहनि दिप्सति जिघांसति यश्च नक्तं रात्रौ जिघांसति अस्योभयविधस्य यशः प्रति शुष्यत्विति संबंधः ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हंत्यासत् ॥१२॥
सुऽविज्ञानं । चिकितुषे । जनाय । सत् । च । असत् । च । वचसी इति । पस्पृधाते इति ।
तयोः । यत् । सत्यं । यतरत् । ऋजीयः । तत् । इत् । सोमः । अवति । हंति । असत् ॥१२॥

प्रायेणेदमादिभिर्ऋग्भी राक्षसेन सहर्षिणा शपथः क्रियते । अत्र केचिदाहुः । हत्वा पुत्रशतं पूर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः । वसिष्ठं राक्षसोऽसि त्वं वासिष्ठं रूपमास्थितः ॥ अहं वसिष्ठ इत्येवं जिघांसू राक्षसोऽब्रवीत् । अत्रोत्तरा ऋचो दृष्टा वसिष्ठेनेति नः श्रुतमिति ॥ चिकितुषे विदुषे जनायेदं सुविज्ञानं विज्ञातुं सुशकं भवति । किं तत् । सच्चासच्च सत्यं चासत्यं च । वचसी सत्यासत्यरूपे वचने पस्पृधाते । मिथः स्पर्धेते । तयोः सदसतोर्मध्ये यत्सत्यं यथार्थं वचनं यतरच्चर्जीय ऋजुतममकुटिलं तदित्तदेवाकुटिलं सत्यभाषणं सोमोऽवति । रक्षति । असदुक्तविलक्षणमसत्यं हंति । हिनस्ति । एवं सत्यावयोर्मध्ये कतरोऽनृतभाषीति विद्वद्भिः सुविज्ञानमित्यर्थः ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयंतं ।
हंति रक्षो हंत्यासद्वदंतमुभाविंद्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

न । वै । ऊं इति । सोमः । वृजिनं । हिनोति । न । क्षत्रियं । मिथुया । धारयंतं ।
हंति । रक्षः । हंति । असत् । वदंतं । उभौ । इंद्रस्य । प्रऽसितौ । शयाते इति ॥ १३ ॥

वृजिनं पापकारिणं राक्षसं सोमो देवो न वा उ न खलु हिनोति । प्रेरयति । गच्छ त्वमिति न मुंचति । तथा क्षत्रियं । क्षत्रं बलं । तद्वंतं मिथुया मिथ्याभूतं वचनं धारयंतं बिभ्रतमसत्यवादिनं पुरुषं न च हिनोति । न विसृजति । अपि तु रक्षो राक्षसं हंति । असदसत्यं वदंतं च हंति । हिनस्ति । उभौ राक्षसानृतवादिनौ तौ सोमेन हताविंद्रस्य संबंधिनि प्रसितौ बंधने शयाते । निवसतः । यद्वा । इंद्रस्येति तृतीयार्थे षष्ठी । इंद्रेणेश्वरेण सोमेन प्रसितौ बद्धौ ॥ षिञ् बंधने । अस्मात्कर्मणि निष्ठा । गतिरनंतर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वं ॥

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचंतां ॥ १४ ॥
यदि । वा । अहं । अनृतऽदेवः । आस । मोघं । वा । देवान् । अपिऽऊहे । अग्ने ।
किं । अस्मभ्यं । जातऽवेदः । हृणीषे । द्रोघऽवाचः । ते । निःऽऋथं । सचंतां ॥ १४ ॥

यदि वाहमनृतदेवोऽनृता असत्यभूता देवा यस्य तादृशो यद्यहमास अस्मि । अथवा मोघं वा निष्फलं वा देवानप्यूहे उपगच्छामि । अहं यद्युक्तरूपोऽस्मि हे अग्ने तर्हि मां बाधस्व । न ह्यहं तथाविधोऽस्मि । एवं सति हे जातवेदो जातानां वेदितरग्ने अस्मभ्यं किंकारणं हृणीषे । क्रुध्यसि । तव क्रोधोऽस्मासु न जायतामित्यर्थः । द्रोघवाचोऽनृतवाचो राक्षसास्ते तव निर्ऋथं ॥ निष्पूर्वोऽर्तिर्हिंसायां वर्तते ॥ निर्ऋथं निःशेषेणार्तिं हिंसां सचंतां । सेवंतां ॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥
अद्य । मुरीय । यदि । यातुऽधानः । अस्मि । यदि । वा । आयुः । ततप । पुरुषस्य ।
अध । सः । वीरैः । दशभिः । वि । यूयाः । यः । मा । मोघं । यातुऽधान । इति । आह ॥ १५ ॥

इयमपि शपथरूपैव । यद्यहं वसिष्ठो यातुधानो राक्षसोऽस्मि अद्यास्मिन्नेव दिने मुरीय । म्रियेय । अपि वा पुरुषस्य मनुष्यस्यायुर्जीवितं यद्यहं राक्षसो भूत्वा ततप हिंसितवानस्मि तर्ह्यप्यहमद्य म्रियेयेत्यन्वयः । अधाथैवं स्यात् अहं वसिष्ठस्त्वं राक्षस इति तर्हि स त्वं दशभिर्वीरैः पुत्रैः । उपलक्षणमेतत् । सर्वैर्बंधुजनैर्वियूयाः । वियुक्तो भवेः । यो राक्षसो मा मां मोघं मृषैव हे यातुधान हे राक्षसेति संबोध्याह ॥ ॥ ७ ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इंद्रस्तं हंतु महता वधेन विश्वस्य जंतोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥
यः । मा । अयातुं । यातुऽधान । इति । आह । यः । वा । रक्षाः । शुचिः । अस्मि । इति । आह ।
इंद्रः । तं । हंतु । महता । वधेन । विश्वस्य । जंतोः । अधमः । पदीष्ट ॥ १६ ॥

यो राक्षसो मामयातुमराक्षसं संतं हे यातुधान हे राक्षसेति संबोध्याह ब्रूते यो वा यश्च रक्षा राक्षसः शुचिरस्मि शुद्धो भवामि न राक्षसोऽस्मीत्याह ब्रूते तमुभयविधं राक्षसमिंद्रो महता प्रौढेन वधेनायुधेन वज्रेण हंतु । हिनस्तु । स च विश्वस्य सर्वस्य जंतोर्जनस्याधमो निकृष्टः सन् पदीष्ट । पततु ॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना ।
वव्राँ अनंताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नंतु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥
प्र । या । जिगाति । खर्गलाऽइव । नक्तं । अप । द्रुहा । तन्वं । गूहमाना ।
वव्रान् । अनंतान् । अव । सा । पदीष्ट । ग्रावाणः । घ्नंतु । रक्षसः । उपब्दैः ॥१७॥

या राक्षसी नक्तं रात्रौ द्रुहा द्रोहेण युक्ता खर्गलेवोलूकीव प्र जिगाति प्रगच्छति । किं कुर्वती । तन्वं स्वकीयं शरीरमप गूहमानापवृण्वती प्रकाशयंती । सा राक्षस्यनंतानपर्यंतान्वव्रान् गर्तानव पदीष्ट । अवाङ्मुखी पततु । ग्रावाणः सोमाभिषवार्थाः पाषाणास्चोपब्दैरभिषवशब्दै रक्षसो राक्षसान् घ्नंतु । हिंसंतु ॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयंति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥
वि । तिष्ठध्वं । मरुतः । विक्षु । इच्छत । गृभायत । रक्षसः । सं । पिनष्टन ।
वयः । ये । भूत्वी । पतयंति । नक्तऽभिः । ये । वा । रिपः । दधिरे । देवे । अध्वरे ॥१८॥

हे मरुतः यूयं विक्षु प्रजासु वि तिष्ठध्वं । विविधं तिष्ठत । तत्र गूढान्राक्षसान् हंतुमिच्छत । अन्विच्छत । तदनंतरं रक्षसस्तान्राक्षसान् गृभायत । गृभ्णीत । गृह्णीत । गृहीत्वा च सं पिनष्टन । चूर्णयत । ये राक्षसा वयः पक्षिणो भूत्वी भूत्वा नक्तभी रात्रिभी रात्रिषु पतयंति आगच्छंति । ये वा ये च देवे दीप्तेऽध्वरे यागे रिपो हिंसा दधिरे विदधिरे । तान्राक्षसान् सं पिनष्टेत्यन्वयः ॥

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिंद्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥
प्र । वर्तय । दिवः । अश्मानं । इंद्र । सोमऽशितं । मघऽवन् । सं । शिशाधि ।
प्राक्तात् । अपाक्तात् । अधरात् । उदक्तात् । अभि । जहि । रक्षसः । पर्वतेन ॥१९॥

हे इंद्र दिवोऽंतरिक्षादश्मानमशनिं प्र वर्तय । प्रेरय राक्षसान् हंतुं । तथा सोमशितं सोमेन तीक्ष्णीभूतं यजमानं हे मघवन् धनवन्निंद्र सं शिशाधि । संस्कुरु । अपि च प्राक्तात् प्राच्या अपाक्तात् प्रतीच्या अधरादवाच्या उदक्तादुत्तरतः सर्वस्मादपि दिग्भागाद्रक्षसो राक्षसान् पर्वतेन पर्ववता वज्रेणाभि जहि । मारय ॥

एत उ त्ये पतयंति श्वयातव इंद्रं दिप्संति दिप्सवोऽदाभ्यं ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥
एते । ऊं इति । त्ये । पतयंति । श्वऽयातवः । इंद्रं । दिप्संति । दिप्सवः । अदाभ्यं ।
शिशीते । शक्रः । पिशुनेभ्यः । वधं । नूनं । सृजत् । अशनिं । यातुमत्ऽभ्यः ॥२०॥

त्ये त एते राक्षसाः श्वयातवः श्वभिः परिकरभूतैर्हिंसंतः श्वभिः सह यांतो वा पतयंति । पतंति । ये दिप्सवो जिघांसवः संतोऽदाभ्यमहिंस्यमिंद्रं दिप्संति जिघांसंति तेभ्यः पिशुनेभ्यः पिशुनान् कपटान् हंतुं शक्रः शक्त इंद्रो वधमायुधमशनिरूपं शिशीते । तीक्ष्णीकरोति । यातुमद्भ्यो राक्षसेभ्यो नूनं क्षिप्रमशनिं सृजत् । विसृजतु हननार्थं ॥ ॥८॥

इंद्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या३ विवासतां ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिंदन्सत एति रक्षसः ॥२१॥
इंद्रः । यातूनां । अभवत् । पराऽशरः । हविःऽमथीनां । अभि । आऽविवासतां ।
अभि । इत् । ऊं इति । शक्रः । परशुः । यथा । वनं । पात्राऽइव । भिंदन् । सतः ।
एति । रक्षसः ॥२१॥

यातूनां हिंसकानां रक्षसामयमिंद्रः पराशरः पराशातयिता हिंसिताभवत् । कीदृशानां । हविर्मथीनां हवींषि मथ्नतामभिमुखमाविवासतामागच्छतां । अपि चायं शक्र इंद्रो वनं वृक्षजातं परशुर्यथा छिंदन्कुठार इव पात्रेव मृन्मयानि पात्राणि भिंदन् मुद्गर इव च सतः । प्राप्तनामैतत् । यदाह यास्कः । तिरः सत इति प्राप्तस्य । नि॰ ३. २०. । इति । प्राप्तान्रक्षसो राक्षसान् भिंदन् हिंसन्नभ्येति । अभिगच्छति । इदु पूरणे ॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुं ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इंद्र ॥२२॥
उलूकऽयातुं । शुशुलूकऽयातुं । जहि । श्वऽयातुं । उत । कोकऽयातुं ।
सुपर्णऽयातुं । उत । गृध्रऽयातुं । दृषदाऽइव । प्र । मृण । रक्षः । इंद्र ॥२२॥

उलूकयातुं । उलूकैः परिकरभूतैः सह यातयति हिनस्तीति याति गच्छतीति वोलूकयातुः । यद्वा । उलूकरूपी यातीत्युलूकयातुः । हे इंद्र तादृशं राक्षसं जहि । विनाशय ॥ तथा च बृहद्देवतायामुक्तं । उलूकयातुं अह्येतान्नानारूपान्निशाचरान् । स्त्रीपुंरूपांश्च तिर्यंचो जिघांसूनिंद्र मे जहीति । बृ॰ ६. ८४१. ॥ एवमुत्तरत्रापि योज्यं । शुशुलूकयातुं । उलूका द्विविधाः बृहदुलूका अल्पोलूकाश्चेति । तत्रोलूकयातुमिति बृहदुलूकाभिप्रायेणोक्तं । शिशुरल्प उलूकः शुशुलूकः । तद्रूपेण वर्तमानं राक्षसं श्वयातुं श्वरूपेण वर्तमानं राक्षसमुतापि च कोकयातुं । कोकश्चक्रवाकः । तद्रूपेण वर्तमानं राक्षसं सुपर्णयातुं । सुपर्णः श्येनः । तदाकारं यातुधानमुतापि च गृध्रयातुं गृध्ररूपं च यातुधानं । एतान् सर्वान्नानाकारान् हे इंद्र जहि । किं बहुना दृषदेव पाषाणेनेव वज्रेण रक्षो राक्षसमात्रं प्र मृण । मारय ॥

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽंतरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥
मा । नः । रक्षः । अभि । नट् । यातुऽमावतां । अप । उच्छतु । मिथुना । या । किमीदिना ।
पृथिवी । नः । पार्थिवात् । पातु । अंहसः । अंतरिक्षं । दिव्यात् । पातु । अस्मान् ॥२३॥

रक्षो राक्षसजातिर्नोऽस्मान् माभि नट् । माभिव्याप्नोतु ॥ नशतेर्व्याप्तिकर्मणो लुङि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक् । न माङ्योग इत्यडभावः ॥ तथा यातुमावतां यातनावतां राक्षसानां मिथुना मिथुनानि स्त्रीपुंरूपाणि युगलान्यपोच्छतु । उषा अपि विनाशयतु । अपवर्जयतु । या यानि मिथुनानि किमीदिना किमीदिनानि किमिदं किमिदमिति जिघांसया वर्तमानानि भवंति । अपि च पृथिवी प्रथितेयं भूमिश्च नोऽस्मान् पार्थिवात्पृथिव्या अंतरिक्षस्य संबंधिनोऽंहसः पापात्पातु । रक्षतु । अंतरिक्षं च दिव्याद्दिवि भवात्पापादस्मान् पातु । रक्षतु ॥

इंद्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानां ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदंतु मा ते दृशन्सूर्यमुच्चरंतं ॥२४॥

इंद्र । जहि । पुमांसं । यातुऽधानं । उत । स्त्रियं । मायया । शाशदानां ।
विऽग्रीवासः । मूरऽदेवाः । ऋदंतु । मा । ते । दृशन् । सूर्यं । उत्ऽचरंतं ॥२४॥

हे इंद्र पुमांसं पुंरूपधारिणं यातुधानं राक्षसं जहि । मारय । उतापि च मायया वंचनया शाशदानां हिंसंतीं स्त्रियं राक्षसीं च जहि । अपि च मूरदेवा मारणक्रीडा राक्षसा विग्रीवासो विच्छिन्नग्रीवाः संत ऋदंतु । नश्यंतु । ते तथाविधा राक्षसा उच्चरंतमुद्यंतं सूर्यमादित्यं मा दृशन् । मा द्राक्षुः ॥

उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलाद्यंतहोमे प्रति चक्ष्वेत्येषा । सूचितं च । यो नः स्वो अरणः प्रति चक्ष्व । आ० गृ० ३. ५. ७. । इति ॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेंद्रश्च सोम जागृतं । रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५॥
प्रति । चक्ष्व । वि । चक्ष्व । इंद्रः । च । सोम । जागृतं । रक्षःऽभ्यः । वधं । अस्यतं ।
अशनिं । यातुमत्ऽभ्यः ॥ २५ ॥

हे सोम त्वमिंद्रश्च प्रति चक्ष्व । प्रत्येकं पश्य राक्षसान् । तथा वि चक्ष्व । विविधं पश्य । यथास्मान्न बाधेरन् तथा पश्येत्यर्थः । युवां च संहतौ जागृतं । जागरूकौ रक्षोवधोद्युक्तौ भवतं । यातुमद्भ्यो हिंसावद्भ्यो रक्षोभ्यो राक्षसेभ्योऽशनिमशनिरूपं वधमायुधमस्यतं । क्षिपतं ॥ ॥ ९ ॥

॥ इति सप्तमे मंडले षष्ठोऽनुवाकः । सप्तमं मंडलं समाप्तं ॥

॥ अथाष्टमं मंडलं ॥

अष्टमे मंडले दशानुवाकाः। तत्र प्रथमेऽनुवाके पंच सूक्तानि। तेषु मा चिदन्यदिति चतुस्त्रिंशदृचं प्रथमं सूक्तं। अत्रानुक्रम्यते। मा चित्चतुस्त्रिंशन्मेधातिथिमेध्यातिथी ऐंद्रं बार्हतं द्विप्रगाथादि द्वित्रिष्टुबंतमाद्यं तृचं प्रगाथोऽपश्यत्स घौरः सन्भ्रातुः कण्वस्य पुत्रतामगात् प्लायोगिश्चासंगो यः स्त्रीभूत्वा पुमानभूत्स मेध्यातिथये दानं दत्त्वा स्तुहि स्तुहीति चतसृभिरात्मानं तुष्टाव पत्नी चास्यांगिरसी शश्वती पुंस्त्वमुपलभ्यैनं प्रीतांत्यया तुष्टावेति। अस्यायमर्थः। अस्य सूक्तस्य मेधातिथिमेध्यातिथिनामानौ द्वावृषी तौ च कण्वगोत्रौ। ऋषिश्चानुक्तगोत्रः प्राग्वत्स्यात्काण्व इति परिभाषितत्वात्। आद्यस्य तृचस्य तु घोरस्य पुत्रः स्वकीयभ्रातुः कण्वस्य पुत्रतां प्राप्तत्वात्काण्वः प्रगाथाख्य ऋषिः। प्लयोगनाम्नो राज्ञः पुत्र आसंगाभिधानो राजा देवशापात् स्त्रीत्वमनुभूय पश्चात्तपोबलेन मेधातिथेः प्रसादात्पुमान् भूत्वा तस्मै बहु धनं दत्त्वा स्वकीयमंतरात्मानं दत्तदानं स्तुहि स्तुहीत्यादिभिश्चतसृभिर्ऋग्भिरस्तौत्। अतस्तासामासंगाख्यो राजा ऋषिः। अस्यासंगस्य भार्यांगिरसः सुता शश्वत्याख्या भर्तुः पुंस्त्वमुपलभ्य प्रीता सती स्वभर्तारमन्वस्य स्थूरमित्यनया स्तुतवती। अतस्तस्या ऋचः शश्वत्यृषिका। अंत्ये द्वे त्रिष्टुभौ द्वितीयाचतुर्थ्यौ सतोबृहत्यौ शिष्टा बृहत्यः। कृत्स्नस्य सूक्तस्येंद्रो देवता। स्तुहि स्तुहीत्याद्याश्चतस्र आत्मकृतस्य दानस्य स्तूयमानत्वात्तद्देवताकाः। अन्वस्येत्यस्या आसंगाख्यो राजा देवता। या तेनोच्यते सा देवतेति न्यायात्॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावादित एकोनत्रिंशद्विनियुक्ताः। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं। मा चिदन्यद्वि शंसतेत्येकया न त्रिंशत्। ऐ० आ० ५. २. ४.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणस्य मा चिदन्यदिति वैकल्पिकः स्तोत्रियः प्रगाथः। सूत्रितं च। मा चिदन्यद्वि शंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति स्तोत्रियानुरूपौ। आ० ७. ४.। इति॥ ग्रावस्तोत्रेऽप्याद्या विनियुक्ता। सूत्रितं च। आ तू न इंद्र क्षुमंतं मा चिदन्यद्वि शंसत। आ० ५. १२.। इति॥ उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलादिहोमेऽप्येषा। सूत्र्यते हि। मा चिदन्यदाग्ने याहि स्वादिष्ठयेति॥

मा चि॑द॒न्यद्वि शं॑सत॒ सखा॑यो॒ मा रि॑षण्यत।
इंद्र॒मित्स्तो॑ता॒ वृष॑णं॒ सचा॑ सु॒ते मुहु॑रु॒क्था च॑ शंसत॥१॥
मा। चि॒त्। अ॒न्यत्। वि। शं॒स॒त॒। सखा॑यः। मा। रि॒ष॒ण्य॒त॒।
इंद्रं॑। इत्। स्तो॒त॒। वृष॑णं। सचा॑। सु॒ते। मुहुः॑। उ॒क्था। च॒। शं॒स॒त॒॥१॥

हे सखायः समानख्यानाः स्तोतारः इंद्रस्तोत्रादन्यत्स्तोत्रं मा चिद्वि शंसत। मैवोच्चारयत। मा रिषण्यत। मा हिंसितारो भवत। अन्यदीयस्तोत्रोच्चारणेन वृथोपक्षीणा मा भवत। सुतेऽभिषुते सोमे वृषणं कामानां वर्षितारमिंद्रमिदिंद्रमेव हे प्रस्तोत्रादयः सचा सह संघीभूय स्तोत। स्तुत। हे प्रशस्त्रादयः उक्था चोक्थानि शस्त्राणि चेंद्रविषयाणि यूयं मुहुः पुनःपुनः शंसत॥

अ॒व॒क्र॒क्षिणं॑ वृ॒ष॒भं य॑था॒जुरं॒ गां न च॑र्षणी॒सहं॑।
वि॒द्वेष॑णं सं॒वन॑नोभयंक॒रं मंहि॑ष्ठमु॒भया॒विनं॑॥२॥
अ॒व॒ऽक्र॒क्षिणं॑। वृ॒ष॒भं। य॒था॒। अ॒जुरं॑। गां। न। च॒र्ष॒णि॒ऽसहं॑।
वि॒ऽद्वेष॑णं। सं॒ऽवन॑ना। उ॒भ॒यं॒ऽक॒रं। मंहि॑ष्ठं। उ॒भ॒या॒विनं॑॥२॥

वृषभं यथा वृषभमिवावक्रक्षिणमवकर्षणशीलं शत्रूणां हिंसितारमजुरं अजरारहितमहिंसितं वा गां न गामिव वृषभमिव चर्षणीसहं चर्षणीनां मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवितारं विद्वेषणं विद्वेष्टारं शत्रूणां संवनना

संवननं सम्यक्संभजनीयं स्तोतृभिरुभयंकरं विग्रहानुग्रहयोरुभयोः कर्तारं मंहिष्ठं दातृतममुभयाविनं दिव्यपार्थिवलक्षणेनोभयविधधनेनोपेतं । यद्वा । स्थावरजंगमरूपेण द्विप्रकारेण रक्षितव्येनोपेतं । अथवोभयविधैः स्तोतृभिर्यष्टृभिश्चोपेतं । एवंविधमिंद्रमित् स्तोतेत्यन्वयः ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने यच्चिद्धि त्वेति प्रशास्तुर्वैकल्पिकोऽनुरूपः प्रगाथः । सूत्रं तूदाहृतं ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवंत ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिंद्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनं ॥३॥
यत् । चित् । हि । त्वा । जनाः । इमे । नाना । हवंते । ऊतये ।
अस्माकं । ब्रह्म । इदं । इंद्र । भूतु । ते । अहा । विश्वा । च । वर्धनं ॥३॥

इमे दृश्यमानाः सर्वे जना हे इंद्र त्वामूतये रक्षणाय तर्पणाय वा नाना पृथक्पृथक् यच्चिद्यद्यपि हवंते स्तुवंति । हीति पूरणः । तथाप्यस्माकमिदं ब्रह्म स्तोत्रमेव हे इंद्र ते तव वर्धनं वर्धकं भूतु । भवतु । न केवलमिदानीमेव अपि तु विश्वाहा सर्वाण्यहानि सर्वेष्वहःसु चेदमेव स्तोत्रं त्वां वर्धयत्वित्यर्थः ॥

वि तर्तूर्यंते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानां ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥
वि । तर्तूर्यंते । मघऽवन् । विपःऽचितः । अर्यः । विपः । जनानां ।
उप । क्रमस्व । पुरुऽरूपं । आ । भर । वाजं । नेदिष्ठं । ऊतये ॥४॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र विपश्चितो विद्वांसस्त्वदीयाः स्तोतारोऽर्योऽभिगंतारो जनानां शत्रूणां विपो वेपयितारः संतो वि तर्तूर्यंते । भृशमापदो वितरंति । अतिक्रामंति । तादृशस्त्वमुप क्रमस्व । उपगच्छास्मान् । पुरुरूपं बहुरूपं नेदिष्ठमंतिकतमं वाजमन्नमूतये तर्पणाया भरास्मभ्यं ॥

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयां ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥५॥
महे । चन । त्वां । अद्रिऽवः । परा । शुल्काय । देयां ।
न । सहस्राय । न । अयुताय । वज्रिऽवः । न । शताय । शतऽमघ ॥५॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र त्वां । चनेति निपातद्वयसमुदायो विभज्य योजनीयः । महे च महतेऽपि शुल्काय मूल्याय न परा देयां । न विक्रीणानि । हे वज्रिवो वज्रहस्तेंद्र सहस्राय सहस्रसंख्याय च धनाय न परा देयां । अयुताय दशसहस्राय च शुल्काय न परा देयां । हे शतामघ बहुधनेंद्र शताय । बहुनामैतत् । अपरिमिताय च धनाय न परा देयां । न विक्रीणानि । उक्तसंख्याद्धनादपि त्वं मम प्रियतमोऽसीत्यर्थः ॥ ॥ १० ॥

वस्याँ इंद्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुंजतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥६॥
वस्यान् । इंद्र । असि । मे । पितुः । उत । भ्रातुः । अभुंजतः ।
माता । च । मे । छदयथः । समा । वसो इति । वसुऽत्वनाय । राधसे ॥६॥

हे इंद्र त्वं मे मदीयात्पितुर्जनकादपि वस्यान् वसीयान् वसुमत्तरोऽसि । उतापि चाभुंजतोऽपालयतो मम भ्रातुरपि वसीयांस्त्वमधिकोऽसि । हे वसो वासकेंद्र मे मदीया माता च त्वं च समा समौ समानौ संतौ ॥ पुमान् स्त्रिया । पा० १. २. ६७. । इति पुंसः शेषः ॥ छदयथः । अर्चतिकर्मायं । मां पूजितं कुरुथः । किमर्थं । वसुत्वनाय व्यापनाय राधसे धनाय च । उभयोर्लाभायेत्यर्थः ॥

क्वे॑यथ॒ क्वेद॑सि पुरु॒त्रा चि॒द्धि ते॒ मनः॑ ।
अल॑र्षि युध्म खजकृत्पुरंदर॒ प्र गा॑यत्रा अगासिषुः ॥७॥
क्व॑ । इ॒यथ॒ । क्व॑ । इत् । अ॒सि॒ । पु॒रु॒ऽत्रा । चि॒त् । हि । ते॒ । मनः॑ ।
अल॑र्षि । यु॒ध्म॒ । ख॒ज॒ऽकृ॒त् । पु॒र॒म्ऽद॒र॒ । प्र । गा॒य॒त्राः । अ॒गा॒सि॒षुः॒ ॥७॥

हे इंद्र क्व कुत्र देशे इयथ । गतवानसि पुरा । क्वेत् कुत्र चासि । भवसि । इदानीं वर्तसे । पुरुत्रा चिद्धि बहुषु हि यजमानेषु ते त्वदीयं मनः संचरति । हे युध्म युद्धकुशल खजकृत्युद्धस्य कर्तर्हे पुरंदरासुरीणां पुरां दारयितर्हे इंद्र अलर्षि । आगच्छ । गायत्रा गानकुशला अस्मदीयाः स्तोतारः प्रागासिषुः । प्रगायंति । स्तुवंति ॥ अलर्षीत्येतत् दाधर्त्यादौ । पा० ७. ४. ६५. । इयर्तेर्निपात्यते ॥

प्रास्मै॑ गाय॒त्रम॑र्चत वा॒वातु॒र्यः पु॑रंद॒रः ।
याभिः॑ का॒ण्वस्योप॑ ब॒र्हिरा॒सदं॒ यास॑द्वज्री भि॒नत्पुरः॑ ॥८॥
प्र । अ॒स्मै॒ । गा॒य॒त्रं । अ॒र्च॒त॒ । व॒वातुः॑ । यः । पु॒र॒म्ऽद॒रः ।
याभिः॑ । का॒ण्वस्य॑ । उप॑ । ब॒र्हिः । आ॒ऽसदं॑ । यास॑त् । व॒ज्री । भि॒नत् । पुरः॑ ॥८॥

अस्मा इंद्राय गायत्रं गातव्यं साम गायत्रसंज्ञं वा प्रार्चत । प्रगायत । पुरंदरः पुरां दारयिता य इंद्रो वावातुर्वननीयः संभजनीयः । यद्वा । वावातुः संभक्तुः स्तोतुर्य इंद्रः पुरंदरः शत्रुपुराणां दारयिता । याभिर्ऋग्भिः काण्वस्य कण्वपुत्रस्य मेधातिथेर्मेध्यातिथेश्च बर्हिर्यज्ञमुपासदमुपासत्तुमुपगंतुं यासत् गच्छेत वज्री वज्रयुक्तः सन् । याभिश्चर्ग्भिः स्तूयमानः सन् पुरः शात्रवीर्भिनत् भिंद्यात् । तास्वृक्षु गायत्रं साम गायतेत्यर्थः ॥

ये ते॒ संति॑ दश॒ग्विनः॑ श॒तिनो॒ ये स॑हस्रिणः॑ ।
अश्वा॑सो॒ ये ते॒ वृष॑णो रघु॒द्रुव॒स्तेभि॑र्नस्तूय॒मा ग॑हि ॥९॥
ये । ते॒ । संति॑ । द॒श॒ऽग्विनः॑ । श॒तिनः॑ । ये । स॒ह॒स्रिणः॑ ।
अश्वा॑सः । ये । ते॒ । वृष॑णः । र॒घु॒ऽद्रुवः॑ । तेभिः॑ । नः॒ । तू॒यं । आ । ग॒हि॒ ॥९॥

हे इंद्र दशग्विनो दशयोजनगामिनो येऽश्वास्ते तव संति विद्यंते । ये चान्ये शतिनः शतसंख्याकाः सहस्रिणः सहस्रसंख्याकाः संति । ये ते त्वदीया अश्वासोऽश्वा वृषणः सेचनसमर्था युवानो रघुद्रुवः शीघ्रगामिनश्च । तेभिस्तैः सर्वैरश्वैर्नोऽस्मांस्तूयं क्षिप्रमा गहि । आगच्छ ॥

आ त्व१॒द्य स॑बर्दुघां हुवे गाय॒त्रवे॑पसं ।
इंद्रं॑ धे॒नुं सु॒दुघा॒मन्या॒मिष॑मु॒रुधा॑रामरं॒कृतं॑ ॥१०॥

आ । तु । अद्य । सबःऽदुघां । हुवे । गायत्रऽवेपसं ।
इंद्रं । धेनुं । सुऽदुघां । अन्यां । इषं । उरुऽधारां । अरंऽकृतं ॥ १० ॥

अनयेंद्रं धेनुरूपेण वृष्टिरूपेण च निरूपयन् स्तौति । अद्येदानीं धेनुं धेनुरूपमिंद्रं तु क्षिप्रमा हुवे । आह्वये । कीदृशीं धेनुं । सबर्दुघां पयसो दोग्ध्रीं गायत्रवेपसं प्रशस्यवेगां सुदुघां सुखेन दोग्धुं शक्यां । अन्यामुक्तविलक्षणामुरुधारां बहूदकधारामिषमेषणीयां वृष्टिं । एतद्रूपेण वर्तमानमरंकृतमलंकर्तारं पर्याप्तकारिणं वेंद्रं चाह्वये ॥ ॥ ११ ॥

यत्तुदत्सूर एतशं वंकू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुः त्सरद्गंधर्वमस्तृतं ॥ ११ ॥
यत् । तुदत् । सूरः । एतशं । वंकू इति । वातस्य । पर्णिना ।
वहत् । कुत्सं । आर्जुनेयं । शतऽक्रतुः । त्सरत् । गंधर्वं । अस्तृतं ॥ ११ ॥

सूरः सूर्य एतशमेतत्संज्ञं राजर्षिं यद्यदा तुदत् अव्यथयत् तदानीमेतशं रक्षितुं वंकू वक्रगामिनौ वातस्य वायोः सदृशौ पर्णिना पर्णिनौ पतनवंतावीदृशावश्वौ शतक्रतुर्बहुविधकर्मेंद्र आर्जुनेयमर्जुन्याः पुत्रं कुत्समृषिं वहत् । अवहत् । अनयत् । कुत्सेन सार्धं समानं रथमारुह्यैतशरक्षणायागच्छदित्यर्थः । तथा च निगमांतरं । प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिंद्रः । ऋ° १. ६१. १५. । इति । गंधर्वं गवां रश्मीनां धर्तारं सूर्यमस्तृतं केनाप्यहिंसितं त्सरत् । अत्सरत् । छद्मगत्यागच्छत् । सूर्येण योद्धुं गतवानित्यर्थः ॥

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ १२ ॥
यः । ऋते । चित् । अभिऽश्रिषः । पुरा । जत्रुऽभ्यः । आऽतृदः ।
संऽधाता । संऽधिं । मघऽवा । पुरुऽवसुः । इष्कर्ता । विऽह्रुतं । पुनरिति ॥ १२ ॥

य इंद्रोऽभिश्रिषोऽभिश्लिषोऽभिश्लेषणात्संधानद्रव्यादृते चिद्विनापि जत्रुभ्यो ग्रीवाभ्यः सकाशादातृद आतर्दनाद्रा रुधिरनिःस्रवणात् पुरा पूर्वमेव संधिं संधातव्यं तं संधाता संयोजयिता भवति मघवा धनवान् पुरूवसुर्बहुधनः स इंद्रो विह्रुतं विच्छिन्नं तं पुनरिष्कर्ता संस्कर्ता भवति ॥

मा भूम निष्ट्या इवेंद्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥
मा । भूम । निष्ट्याःऽइव । इंद्र । त्वत् । अरणाःऽइव ।
वनानि । न । प्रऽजहितानि । अद्रिऽवः । दुरोषासः । अमन्महि ॥ १३ ॥

हे इंद्र त्वत्त्वत्तस्त्वत्प्रसादान्निष्ट्या इव । नीचैर्भूता हीना निष्ट्याः । त इव वयं मा भूम । तथारणा इवारमणा दुःखिन इव वयं मा भूम । अपि च प्रजहितानि प्रक्षीणानि शाखादिभिर्वियुक्तानि वनानि न वृक्षजातानीव वयं पुत्रादिभिर्वियुक्ता मा भूम । हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र दुरोषास ओषितुमन्यैर्दग्धुमशक्या दुर्येषु गृहेषु निवसंतो वा वयममन्महि । त्वां स्तुमः ॥

अमन्महीदनाशवोऽनुयासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥१४॥
अमन्महि । इत् । अनाशवः । अनुयासः । च । वृत्रऽहन् ।
सकृत् । सु । ते । महता । शूर । राधसा । अनु । स्तोमं । मुदीमहि ॥१४॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्यासुरस्य हंतरिंद्र अनाशवोऽशीघ्रा अत्वरमाणा अनुग्रासोऽनुग्रा अनुद्गूर्णाश्च संतो वयं भक्तिश्रद्धापुरःसरं शनैस्त्वाममन्महीत् । स्तुम एव । हे शूर वीर्यवन्निंद्र ते त्वदर्थं सकृदेकवारमपि महता प्रभूतेन राधसा धनेन हविर्लक्षणेन सह सु शोभनं स्तोमं स्तोत्रमनु मुदीमहि । अनुमोदेमहि । अनुब्रवामेत्यर्थः ॥

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिंद्रमिंदवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मंदंतु तुग्र्यावृधः ॥१५॥
यदि । स्तोमं । मम । श्रवत् । अस्माकं । इंद्रं । इंदवः ।
तिरः । पवित्रं । ससृऽवांसः । आशवः । मंदंतु । तुग्र्यऽवृधः ॥१५॥

अयमिंद्रो मम मदीयं स्तोत्रं यदि श्रवत् शृणुयात् तदानीं तमिंद्रमस्माकमस्मदीया इंदवः सोमा मदंतु । मादयंतु । हर्षयंतु । कीदृशाः सोमाः । तिरस्तिर्यगवस्थितं पवित्रं पवनसाधनं दशापवित्रं ससृवांसः प्राप्तवंतः । दशापवित्रेण पूता इत्यर्थः । आशवः शीघ्रं मदजनकास्तुग्र्यावृधस्तुग्र्याभिर्वसतीवर्येकधनाख्याभिरद्भिर्वर्धमानाः ॥ ॥१२॥

आ त्व१द्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिं ॥१६॥
आ । तु । अद्य । सधऽस्तुतिं । ववातुः । सख्युः । आ । गहि ।
उपऽस्तुतिः । मघोनां । प्र । त्वा । अवतु । अध । ते । वश्मि । सुऽस्तुतिं ॥१६॥

हे इंद्र वावातुः संभक्तुस्त्वां सेवमानस्य सख्युः स्तोतुः सधस्तुतिमन्यैर्ऋत्विग्भिः सह क्रियमाणां स्तुतिमद्येदानीं तु क्षिप्रमा गहि । आगच्छ । मघोनां हविष्मतामन्येषामपि यजमानानामुपस्तुतिः स्तोत्रं त्वा त्वां प्रावतु । प्रगच्छतु । प्रतर्पयतु वा । अधाधुना सुष्टुतिं त्वद्विषयां शोभनां स्तुतिमहमपि वश्मि । कामये ॥

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयंत इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥१७॥
सोत । हि । सोमं । अद्रिऽभिः । आ । ईं । एनं । अप्ऽसु । धावत ।
गव्या । वस्त्राऽइव । वासयंतः । इत् । नरः । निः । धुक्षन् । वक्षणाभ्यः ॥१७॥

हे अध्वर्यवः अद्रिभिर्ग्रावभिः सोमं सोत । हिरवधारणे । अभिषुणुतैव । एनमिममप्सु वसतीवरीष्वा धावत । अस्य सोमस्य धवनं कुरुत । अदाभ्यग्रहे हिमादासुत इत्यादिभिर्मंत्रैर्वसतीवरीष्वाधवनं सोमस्य क्रियते । तत्कुरुतेत्यर्थः । गव्या गवि भवानि वस्त्रेव वस्त्राण्याच्छादकानि चर्माणीव मेघान् वासयंत इदाच्छा-

दयंत एव नरो नेतार इंद्रस्यानुचरा मरुतो वक्षणाभ्यो नदीभ्यो नदीनामर्थाय निर्धुषन्। उदकानि निर्दुहंति। धारयंति। यत एवमतः कारणादिंद्रयागाय सोममद्रिभिरभिषुणुतैव। मोदासिषतेत्यर्थः॥

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥१८॥
अध। ज्मः। अध। वा। दिवः। बृहतः। रोचनात्। अधि।
अया। वर्धस्व। तन्वा। गिरा। मम। आ। जाता। सुक्रतो इति सुऽक्रतो। पृण ॥१८॥

हे इंद्र अधाधुना ज्मः। अमंति गच्छंत्यस्यामिति ज्मा पृथिवी। तस्याः सकाशादध वापि वा दिवोऽंतरिक्षाद्बृहतो महतो रोचनान्नक्षत्रैर्दीप्यमानात्स्वर्गाद्वागत्य। अधिः पंचम्यर्थानुवादी। अयानया तन्वा ततया विस्तृतया मम मदीयया गिरा स्तुत्या वर्धस्व। वृद्धो भव। हे सुक्रतो शोभनकर्मवन्निंद्र जाता जातानस्मदीयाञ्जनाना पृण। अभिलषितैः फलैरापूरय॥

इंद्राय सु मदिंतमं सोमं सोता वरेण्यं।
शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुं ॥१९॥
इंद्राय। सु। मदिन्ऽतमं। सोमं। सोत। वरेण्यं।
शक्रः। एनं। पीपयत्। विश्वया। धिया। हिन्वानं। न। वाजऽयुं ॥१९॥

हे अध्वर्यवः इंद्रायेंद्रार्थं मदिंतमं मादयितृतमं वरेण्यं वरणीयं संभजनीयं सोमं सु सोत। अभिषुणुत। कुत इत्यत आह। शक्र इंद्रो विश्वया धिया सर्वया क्रिययाग्निष्टोमादिलक्षणया हिन्वानं प्रीणयंतं वाजयुमन्नमात्मन इच्छंतमेनं यजमानं। नेति संप्रत्यर्थीयः। संप्रति पीपयत्। वर्धयति। अतः कारणात्तस्मा इंद्राय सोमं सुनुतेत्यर्थः॥

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२०॥
मा। त्वा। सोमस्य। गल्दया। सदा। याचन्। अहं। गिरा।
भूर्णिं। मृगं। न। सवनेषु। चुक्रुधं। कः। ईशानं। न। याचिषत् ॥२०॥

हे इंद्र त्वां सवनेषु यज्ञेषु सोमस्य गल्दया गालनेनास्रावणेन गिरा स्तुत्या च युक्तोऽहं सदा सर्वदा याचन् याचमानः सन् मा चुक्रुधं। मा क्रोधयानि। बहुशो याच्यमाने त्वयि क्रोधो जायते तं सोमस्य गालनेन स्तुत्या चापनयामीत्यर्थः। कीदृशं त्वां। भूर्णिं भर्तारं मृगं न सिंहमिव भीमं। स्वामिन इंद्रस्य याचने लौकिकन्यायं दर्शयति। लोके को वा पुरुष ईशानमीश्वरं स्वामिनं न याचिषत्। न याचेत। सर्व एव हि याचते। अतोऽहमपि त्वां स्वामिनं याच इति भावः॥ ॥१३॥

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥२१॥
मदेन। इषितं। मदं। उग्रं। उग्रेण। शवसा।
विश्वेषां। तरुतारं। मदऽच्युतं। मदे। हि। स्म। ददाति। नः ॥२१॥

मदेन मादयित्वा स्तोत्रेषितं प्रेषितं मदं मदकरं सोममुग्रमुद्गूर्णं रसमुग्रेणोद्गूर्णेनाधिकेन शवसा बलेन युक्त इंद्रः पिबत्विति शेषः। पीत्वा च विश्वेषां सर्वेषां शत्रूणां तरुतारं तरीतारं जेतारं मदच्युतं मदस्य शत्रूणां गर्वस्य च्यावयितारं पुत्रं मदे सोमपानेन जनिते हर्षे सति नोऽस्मभ्यं ददाति हि ष्म। ददाति खलु। अतः सोमं पिबत्वित्यर्थः ॥

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥२२॥
शेवारे। वार्या। पुरु। देवः। मर्ताय। दाशुषे।
सः। सुन्वते। च। स्तुवते। च। रासते। विश्वऽगूर्तः। अरिऽस्तुतः ॥२२॥

शेवारे। शेवं सुखं। तस्य गमके यज्ञे दाशुषे चरुपुरोडाशादीनि दत्तवते यजमानाय पुरु पुरूणि बहूनि वार्याणि वरणीयानि धनानि देवो दानादिगुणयुक्त इंद्रो रासते। ददाति। स एव सुन्वते च सोमाभिषवं कुर्वते च स्तुवते च स्तोत्रं कुर्वते च धनानि रासते। कीदृशः सः। विश्वगूर्तो विश्वेषु सर्वेषु कार्येषूद्यतः स्वतः प्रवृत्तोऽरिष्टुतोऽरिभिः प्रेरयितृभिः प्रशस्तः ॥

एंद्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरं ॥२३॥
आ। इंद्र। याहि। मत्स्व। चित्रेण। देव। राधसा।
सरः। न। प्रासि। उदरं। सपीतिऽभिः। आ। सोमेभिः। उरु। स्फिरं ॥२३॥

हे इंद्र आ याहि। आगच्छ। हे देव द्योतमान चित्रेण दर्शनीयेन राधसा धनेन सोमलक्षणेन मत्स्व। माद्य। सपीतिभिर्मरुद्भिः सह पीयमानैः सोमेभिः सोमैरुरु विस्तीर्णं स्फिरं वृद्धमुदरमात्मीयं जठरं सरो न सर इवा प्रासि। आपूरय ॥ प्रा पूरण आदादिकः ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने ब्रह्मशस्त्र आ त्वेति वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः। सूत्र्यते हि। आ त्वा सहस्रमा शतं मम त्वा सूर उदित इति ब्राह्मणाच्छंसिनः। आ॰ ७. ४.। इति ॥

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इंद्र केशिनो वहंतु सोमपीतये ॥२४॥
आ। त्वा। सहस्रं। आ। शतं। युक्ताः। रथे। हिरण्यये।
ब्रह्मऽयुजः। हरयः। इंद्र। केशिनः। वहंतु। सोमऽपीतये ॥२४॥

हे इंद्र त्वा त्वां सहस्रं सहस्रसंख्याका हरयस्त्वदीया अश्वा आ वहंतु। आनयंत्वस्मदभिमुखं। तथा शतं शतसंख्याकाश्च भवदीया अश्वास्त्वामा वहंतु। यद्यपि द्वावेवास्य हरी तथापि तद्विभूतयोऽन्येऽपि बहवोऽश्वाः संति। ननु युगपदनेकैरश्वैः कथं यातुं शक्यत इति अत आह युक्ता इति। हिरण्यये हिरण्मये स्वर्णविकारे ॥ हिरण्यशब्दाद्विकारार्थे विहितस्य मयट ऋत्व्यवास्त्वेत्यादौ मलोपो निपात्यते ॥ तादृशे रथे युक्ताः संबद्धाः। बहूनामश्वानां शीघ्रगमनाय रथे नियुक्तत्वाद्युगपदेव सर्वैरश्वैर्गंतुं शक्यत इति भावः। कीदृशा हरयः। ब्रह्मयुजो ब्रह्मणा परिवृढेनेंद्रेण युक्ताः। यद्वा। ब्रह्मणास्मदीयेन स्तोत्रेणास्माभिर्दत्तेन हविषा वा युक्ताः। केशिनः। केशाः केसराः। तैर्युक्ताः। किमर्थमिंद्रस्य वहनं तत्राह। सोमपीतये सोमस्य पानाय। यथास्मदीयं सोमं पिबेत् अत आवहंत्वित्यर्थः ॥

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अंधसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५॥
आ । त्वा । रथे । हिरण्यये । हरी इति । मयूरऽशेप्या ।
शितिऽपृष्ठा । वहतां । मध्वः । अंधसः । विवक्षणस्य । पीतये ॥२५॥

पूर्वं हर्योर्विभूतिरूपा अश्वा इंद्रमावहंत्विति प्रार्थितं । अधुना तावेवेंद्रमावहतामिति प्रार्थ्यते । हिरण्यये हिरण्मये रथे युक्तौ मयूरशेप्या मयूरशेपौ मयूरवर्णशेपो ययोस्तौ ॥ सुपां सुलुगिति विभक्तेर्ड्यादेशः ॥ शितिपृष्ठा श्वेतपृष्ठौ एवंभूतावश्वौ हे इंद्र त्वामा वहतां । किमर्थं । मध्वो मधुररसस्य विवक्षणस्य वक्तुमिष्टस्य स्तुत्यस्य यद्वा वोढव्यस्य प्राप्तव्यस्यांधसोऽन्नस्य सोमरूपस्य पीतये पानार्थं ॥ ॥१४॥

पिबा त्व१स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥२६॥
पिब । तु । अस्य । गिर्वणः । सुतस्य । पूर्वपाःऽइव ।
परिऽकृतस्य । रसिनः । इयं । आऽसुतिः । चारुः । मदाय । पत्यते ॥२६॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीय स्तुतिभिः संभजनीयेंद्र सुतस्याभिषुतस्यास्य सोमस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ इममभिषुतं सोमं तु क्षिप्रं पिब । तत्र दृष्टांतः । पूर्वपा इव । पूर्वः सर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रथमभावी सन् पिबतीति पूर्वपा वायुः । स इवेंद्रवायवे मुख्ये ग्रहे सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं पिबेत्यर्थः । कीदृशस्य सोमस्य । परिष्कृतस्याभिषवादिभिः संस्कृतस्य ॥ संपर्युपेभ्यः । पा० ६. १. १३७. । इति करोतेर्भूषणे सुट् । परिनिविभ्यः । पा० ८. ३. ७०. । इति सुटः षत्वं ॥ रसिनो रसवतः । अपि चेयमासुतिरय मासवो मदकरश्चारुः शोभनः सोमरसो मदाय हर्षाय हर्षजननाय पत्यते । संपद्यते ॥ पत् गतौ ॥ यद्वा । पत्यतिरैश्वर्यकर्मा । मदाय मदस्य पत्यते । ईष्टे । मदोत्पादने शक्त इत्यर्थः ॥

य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥२७॥
यः । एकः । अस्ति । दंसना । महान् । उग्रः । अभि । व्रतैः ।
गमत् । सः । शिप्री । न । सः । योषत् । आ । गमत् । हवं । न । परि । वर्जति ॥२७॥

य इंद्र एकः केवलोऽसहाय एव व्रतैरात्मीयैः कर्मभिरभ्यस्ति शत्रूनभिभवति । यश्च दंसना कर्मणा महानधिकः अत एवोग्र उद्गूर्णबलः शिप्री । शिप्रं शिरस्त्राणं ॥ प्रशंसायामिनिः ॥ शोभनशिरस्त्राणः । यद्वा । शिप्रे हनू नासिके वा । तद्वान् । स इंद्रो गमत् । गच्छतु । प्राप्नोतु सर्वदा । स तादृशो न योषत् । न पृथग्भवतु । न वियुक्तो भवतु ॥ गमेर्यौतेश्च लेट्यडागमः । इतश्च लोप इतीकारलोपः । गमेर्बहुलं छंदसीति शपो लुक् । यौतेः सिब्बहुलमिति सिप् ॥ हवमस्मदीयं स्तोत्रं चा गमत् । अभिगच्छतु । प्राप्नोतु । न परि वर्जति । न परिवर्जयतु । न परित्यजतु । सर्वदास्मानस्मदीयं स्तोत्रं चेंद्रः प्राप्नोत्विति यावत् ॥

त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिंद्र हव्यो भुवः ॥२८॥

त्वं । पुरं । चरिष्णवं । वधैः । शुष्णस्य । सं । पिणक् ।
त्वं । भाः । अनु । चरः । अध । द्विता । यत् । इंद्र । हव्यः । भुवः ॥२८॥

हे इंद्र त्वं शुष्णस्य शोषकस्यासुरस्य चरिष्णवं चरणशीलं ॥ वा छंदसीत्यमि पूर्वत्वस्य विकल्पितत्वाद्यणादेशः ॥ पुरं निवासस्थानं वधैर्वज्रादिभिरायुधैः सं पिणक् । समचूर्णयः । अभांक्षीरित्यर्थः ॥ पिनष्टेर्लङि मध्यमैकवचने रूपमेतत् ॥ अधापि च भा भासमानस्त्वमनु चरः । तं शुष्णं हंतुमन्वगच्छः । यद्वा । अध शुष्णस्य पुरभेदनानंतरं भा दीप्तीस्त्वमनु चरः । अन्वगच्छः । प्राप्तवानित्यर्थः । हे इंद्र त्वं यद्यदा द्विता द्विधा द्विविधैः स्तोतृभिर्यष्टृभिश्च हव्यो ह्वातव्यो भुवः भवेः । तदानीं त्वं शुष्णस्य पुरं सं पिणगित्यन्वयः ॥ भवतेर्लेटि सिप्यडागमः । छांदसः शपो लुक् । भूसुवोस्तिङीति गुणप्रतिषेधादुवङ् ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्रह्मशस्त्रे मम त्वेति वैकल्पिकोऽनुरूपस्तृचः । सूत्रं तु पूर्वमुदाहृतं ॥

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥२९॥
मम । त्वा । सूरे । उत्ऽइते । मम । मध्यंदिने । दिवः ।
मम । प्रऽपित्वे । अपिऽशर्वरे । वसो इति । आ । स्तोमासः । अवृत्सत ॥२९॥

सूरे सूर्य उदित उदयं प्राप्ते पूर्वाह्णसमये मम स्तोमासः स्तोत्राणि हे वसो वासकेंद्र त्वामावृत्सत । आवर्तयंतु । अस्मदभिमुखं गमयंतु । तथा दिवो दिवसस्य मध्यंदिने मध्याह्नेऽपि मदीयाः स्तोमास्त्वामावर्तयंतु । तथा प्रपित्वे प्राप्ते दिवसस्यावसाने सायाह्नेऽपि मदीयाः स्तोमास्त्वामावर्तयंतु । अपिशर्वरे । शर्वरीं रात्रिमपिगतः कालोऽपिशर्वरः । शार्वरे कालेऽपि मदीयाः स्तोमास्त्वामावर्तयंतु ॥

स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनां ।
निंदिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३०॥
स्तुहि । स्तुहि । इत् । एते । घ । ते । मंहिष्ठासः । मघोनां ।
निंदितऽअश्वः । प्रऽपथी । परमऽज्याः । मघस्य । मेध्यऽअतिथे ॥३०॥

आसंगो राजर्षिर्मेध्यातिथये बहु धनं दत्त्वा तमृषिं दत्तदानस्य स्वस्य स्तुतौ प्रेरयति । हे मेध्यातिथे यथार्हातिथ एतत्संज्ञर्षे स्तुहि स्तुहीत् । पुनःपुनरस्मान् प्रशंसैव । मोदस्व । औदासीन्यं मा कार्षीः । एते घेति खलु वयं मघोनां धनवतां मध्ये ते तुभ्यं मघस्य धनस्य मंहिष्ठासो दातृतमाः । अतोऽस्मान् स्तुहीत्यर्थः । कासौ स्तुतिः तामाह । निंदिताश्वः । यस्य वीर्येण परेषामश्वा निंदिताः कुत्सिता भवंति तादृशः । प्रपथी । प्रकृष्टः पंथाः प्रपथः । तद्वान् । सन्मार्गवर्तीत्यर्थः । परमज्या उत्कृष्टज्यः । अनेन धनुरादिकं लक्ष्यते । उत्कृष्टायुध इत्यर्थः । यद्वा । परमानुत्कृष्टाञ्छत्रूञ्जिनाति हिनस्तीति परमज्याः ॥ ज्या वयोहानौ । अस्मादातो मनिन्निति विच् ॥ एवंभूतोऽहमासंग इति स्तुहीत्यर्थः ॥ ॥१५॥

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहं ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥३१॥
आ । यत् । अश्वान् । वनन्ऽवतः । श्रद्धया । अहं । रथे । रुहं ।
उत । वामस्य । वसुनः । चिकेतति । यः । अस्ति । याद्वः । पशुः ॥३१॥

वनन्वतो वननवतः संभक्तवतोऽश्वांस्तुरगानहं प्रायोगिः श्रद्धयादरातिशयेन युक्तः सन् यद्यदा हे मेध्यातिथे त्वदीये रथ आ रुहं आरोहयं ॥ रुहेरंतर्भावितण्यर्थाल्लुङि कृमृदृरुहिभ्य इति च्लेरङादेशः ॥ तदानीं मामेवं स्तुहि । उतापि च । प्रकृतस्तुत्यपेक्ष एष समुच्चयः । वामस्य वननीयस्य वसुनो धनस्य ॥ पूर्ववत्कर्मणि षष्ठी ॥ ईदृशं धनं चिकेतति । एष आसंगो दातुं जानाति । याद्वो यदुवंशोद्भवः । यद्वा । यद्वो मनुष्याः । तेषु प्रसिद्धः । पशुः ॥ लुप्तमत्वर्थमेतत् ॥ पशुमान् । यद्वा । पशुः पश्यतेः । सूक्ष्मस्य द्रष्टा । य आसंगोऽस्ति विद्यते एष चिकेततीत्यन्वयः ॥

य ऋ॒ज्रा मह्यं॑ मामहे स॒ह त्व॒चा हि॑र॒ण्यया॑ ।
ए॒ष विश्वा॑न्य॒भ्य॑स्तु॒ सौभ॑गासं॒गस्य॑ स्व॒नद्र॑थः ॥३२॥
यः । ऋ॒ज्राः । मह्य॑म् । म॒म॒हे । स॒ह । त्व॒चा । हि॒र॒ण्यया॑ ।
ए॒षः । विश्वा॑नि । अ॒भि । अ॒स्तु॒ । सौभ॑गा । आ॒ऽसं॒गस्य॑ । स्व॒नत्ऽर॑थः ॥३२॥

एवमेवं मां स्तुहीत्यासंगो मेध्यातिथिं ब्रूते । य आसंगस्यात्मा ऋज्रा गमनशीलानि धनानि हिरण्यया हिरण्मय्या त्वचा चर्मणास्तरणेन सह सहितानि मह्यं मेध्यातिथये ममहे ददौ । मंहतिर्दानकर्मा । एष आसंगस्यात्मा स्वनद्रथः शब्दायमानरथः सन् विश्वानि व्याप्तानि सौभगानि धनानि शत्रूणां स्वभूतान्यभ्यस्तु । अभिभवतु ॥

अध॒ प्लायो॑गि॒रति॑ दासद॒न्याना॑सं॒गो अ॑ग्ने द॒शभि॑ः स॒हस्रै॑ः ।
अधो॒क्षणो॒ दश॒ मह्यं॒ रुश॑न्तो न॒ळा इ॑व॒ सर॑सो॒ निर॑तिष्ठन् ॥३३॥
अध॑ । प्लायो॑गिः । अति॑ । दा॒स॒त् । अ॒न्यान् । आ॒ऽसं॒गः । अ॒ग्ने॒ । द॒श॒ऽभिः॑ । स॒हस्रैः॑ ।
अध॑ । उ॒क्षणः॑ । दश॑ । मह्य॑म् । रुश॑न्तः । न॒ळाःऽइ॑व । सर॑सः । निः । अ॒ति॒ष्ठ॒न् ॥३३॥

अधापि च प्लायोगिः प्रयोगनाम्नः पुत्र आसंगो नाम राजा दशभिर्दशगुणितैः सहस्रैः सहस्रसंख्याकैर्गवादिभिरन्यान्दातॄनति दासत् । अतिक्रम्य ददाति । अधानंतरमुक्षणः सेचनसमर्था मह्यमासंगेन दत्ता रुशंतो दीप्यमाना दश दशगुणितसहस्रसंख्याकास्ते गवादयो नळा इव । नळास्तटाकोद्भवास्तृणविशेषाः । ते यथा सरसस्तटाकात्संघशो निर्गच्छंति तथैव मह्यं दत्ता गवादयोऽस्मादासंगान्निरतिष्ठन् । निर्गत्यावास्थिषत । एवमेवंप्रकारेण मां स्तुहीति मेध्यातिथिं प्रत्युक्तत्वादेतासां चतसृणामृचां प्रायोगिरासंग ऋषिः स एव देवतेत्येतदुपपन्नं भवति ॥

अन्व॑स्य स्थू॒रं द॑दृशे पु॒रस्ता॑दन॒स्थ ऊ॒रुर॑व॒रम्ब॑माणः ।
शश्व॑ती॒ नार्य॑भि॒चक्ष्या॑ह॒ सुभ॑द्रमर्य॒ भोज॑नं बिभर्षि ॥३४॥
अनु॑ । अ॒स्य॒ । स्थू॒रम् । द॒दृ॒शे॒ । पु॒रस्ता॑त् । अ॒न॒स्थः । ऊ॒रुः । अ॒व॒ऽरम्ब॑माणः ।
शश्व॑ती । नारी॑ । अ॒भि॒ऽचक्ष्य॑ । आ॒ह॒ । सु॒ऽभ॑द्रम् । अ॒र्य॒ । भोज॑नम् । बि॒भ॒र्षि॒ ॥३४॥

अयमासंगो राजा कदाचिद्देवशापेन नपुंसको बभूव । तस्य पत्नी शश्वती भर्तुर्नपुंसकत्वेन खिन्ना सती महत्तपस्तेपे । तेन च तपसा स च पुंस्त्वं प्राप । प्राप्तपुंव्यंजनं तं रात्रावुपलभ्य प्रीता शश्वत्यनया तमस्तौत् ॥ अस्यासंगस्य पुरस्तात्पुरोभागे गुह्यदेशे स्थूरं स्थूलं वृद्धं सत्पुंव्यंजनमनु ददृशे । अनुदृश्यते । अनस्थोऽस्थिरहितः स चावयव ऊरुरुरुर्विस्तीर्णोऽवरंबमाणोऽतिदीर्घत्वेनावाङ्मुखं लंबमानः । यद्वा । ऊरुः ॥ सुपां सुलुगिति द्विवचनस्य सुः ॥ ऊरू प्रत्यवलंबमानो भवति । शश्वती नामांगिरसः सुता नारी तस्यासंगस्य भार्याभिचक्ष्यैवं-

भूतमवयवं गिरिं वृक्षा हे अर्य स्वामिन् भर्तः सुभद्रमतिशयेन कल्याणं भोजनं भोगसाधनं बिभर्षि धारयसीत्याह। श्रुते॥ ॥१६॥

इदं वसो इति द्विचत्वारिंशदृचं द्वितीयं सूक्तं काण्वस्य मेधातिथेरांगिरसस्य च प्रियमेधस्यार्षं। शिक्षा विभिंदो इत्यादिके द्वे मेधातिथेरेव। स्वादवः सोमा इत्येषानुष्टुप् शिष्टा गायत्र्यः। इंद्रो देवता। अंत्ये द्वे ऋचौ विभिंदोर्दानस्तुतिलात्तद्देवताके। तथा चानुक्रांतं। इदं वसो द्विचत्वारिंशन्मेधातिथिरांगिरसश्च प्रियमेधः स्वादवोऽनुष्टुबंत्याभ्यां मेधातिथिर्विभिंदोर्दानं तुष्टावेति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥ ज्योतिष्टोमे मरुत्वतीय आद्यस्तृचोऽनुचरः। सूत्र्यते हि। इदं वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ। आ० ५.१४.। इति ॥ द्वितीये रात्रिपर्याये ब्रह्मशस्त्रेऽयमेव स्तोत्रियस्तृचः। सूचितं च। इदं वसो सुतमंध इंद्रेहि मत्स्यंधसः। आ० ६.४.। इति ॥ अयमेव चतुर्थेऽहन्यपि मरुत्वतीयस्यानुचरस्तृचः। सूचितं च। तं त्वा यज्ञेभिरीमह इदं वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ। आ० ७.११.। इति ॥

इदं वसो सुतमंधः पिबा सुपूर्णमुदरं। अनाभयिन्ररिमा ते ॥१॥
इदं। वसो इति। सुतं। अंधः। पिब। सुऽपूर्णं। उदरं। अनाभयिन्। ररिम। ते ॥१॥

हे वसो वासयितरिंद्र इदं पुरोवर्तमानं सुतमभिषुतमंधोऽन्नं सोमलक्षणं पिब। यथोदरं त्वदीयं जठरं सुपूर्णमतिशयेन संपूर्णं भवति तथेत्यर्थः। हे अनाभयिन्। आ समंताद्विभेतीत्याभयी ॥ बिभेतेरौणादिक इनिः ॥ नाभय्यनाभयी। तादृश हे इंद्र ते तुभ्यं त्वदर्थं ररिम। उक्तलक्षणं सोमं दद्मः ॥ रा दाने। छांदसो लिट् ॥

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥
नृऽभिः। धूतः। सुतः। अश्नैः। अव्यः। वारैः। परिऽपूतः। अश्वः। न। निक्तः। नदीषु ॥२॥

नृभिरध्वरस्य नेतृभिर्ऋत्विग्भिर्धूत आधुतोऽदाभ्यग्रह आधवनेन संस्कृतोऽश्नैरश्मभिर्ग्रावभिः करणभूतैः सुतोऽध्वर्युभिरभिषुतोऽव्योऽवेर्मेषस्य वारैर्वालैः परिपूतः। दशापवित्रस्य नाभिं कुरुते शुक्लं वस्त्र्याः पवित्रममोतं भवतीति। नदीषु नदनास्वप्स्वश्वो नाश्व इव निक्तो निर्णिक्तः शोधितः। यथाप्सु स्नातोऽश्वोऽपगतमलः सन् दीप्तो भवति एवं वसतीवर्याख्याभिरद्भिरभिषुतः सोमो दीप्तो भवतीत्यर्थः। ईदृशो यः सोमः तं ते यवमित्युत्तरया संबंधः ॥

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणंतः। इंद्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥
तं। ते। यवं। यथा। गोभिः। स्वादुं। अकर्म। श्रीणंतः। इंद्र। त्वा। अस्मिन्। सधऽमादे ॥३॥

तं पूर्वोक्तगुणं सोमं हे इंद्र ते त्वदर्थं यवं यथा यवमयं सवनीयपुरोडाशमिव गोभिर्गवि भवैः क्षीरादिभिः श्रयणद्रव्यैः श्रीणंतो मिश्रीकुर्वंतः स्वादुं रसत्वेन स्वादनीयमकर्म। अकार्ष्म ॥ करोतेर्लुङि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक् ॥ यस्मादेवं तस्मात् हे इंद्र त्वा त्वां तादृशं सोमं पातुमस्मिन्वर्तमाने सधमादे सहमदने यज्ञ आह्वयामीति शेषः ॥

महाव्रते निष्केवल्ये गायत्रतृचाशीताविंद्र इत्सोमपा इत्येतदादिसूक्तशेषः शंसनीयः। अंत्यास्तिस्रो वर्जयित्वा तत्रापि स्वादव इत्येतां परित्यज्य तत्र स्थाने न ह्यन्यं बळाकरमित्येतामावपेत्। तथैव पंचमारण्यके सूचितं। इंद्र इत्सोमपा एक इत्येतत्प्रभृतीनां तिस्र उत्तमा उद्धरति। तासां स्वादवः सोमा आ याहीत्येतामुद्धृत्य न ह्यन्यं बळाकरमित्येतां प्रत्यवदधाति। ऐ० आ० ५.२.३.। इति ॥ पंचमेऽहनि मरुत्वतीय इंद्र इदित्यनुचरस्तृचः। सूत्र्यते हि। इंद्र इत्सोमपा एक इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ। आ० ७.१२.। इति ॥

इंद्र इत्सोमपा एक इंद्रः सुतपा विश्वायुः । अंतर्देवान्मर्त्यांश्च ॥४॥

इंद्रः । इत् । सोमऽपाः । एकः । इंद्रः । सुतऽपाः । विश्वऽआयुः । अंतः । देवान् । मर्त्यान् । च ॥४॥

इंद्र इदिंद्र एक एव देवान् मर्त्यान् मनुष्यांश्चांतर्मध्ये देवेषु च मध्ये सोमपाः कृत्स्नस्य सोमस्य पाता । नान्ये । ते ह्येकदेशभाजः । अत एव सुतपाः सुतस्याभिषुतस्यास्मदीयस्य सोमस्य कार्त्स्न्येन पाता । इंद्र एक एव विश्वायुः । स चेंद्रः सर्वात्मो भवति । धानाकरंभादिहवींषि सवनेष्विंद्रायैव हूयंते तदभिप्रायेणेदमुच्यते । अत एवंविध इंद्रोऽस्मदीयं हविः स्वीकरोत्वित्यर्थः ॥

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसं । अपस्पृण्वते सुहार्दं ॥५॥

न । यं । शुक्रः । न । दुःऽआशीः । न । तृप्राः । उरुऽव्यचसं । अपऽस्पृण्वते । सुऽहार्दं ॥५॥

उरुव्यचसं विस्तीर्णव्यापनं सुहार्दं सुहृदयं यमिंद्रं शुक्रो रसाधिक्येन दीप्तः सोमो नापस्पृणुते ॥ स्पृ प्रीतिबलयोरत्रोपसर्गवशात् प्रीत्यभावे वर्तते ॥ नञा च प्रीत्यभावो निवार्यते । न प्रीणयतीति न अपि तु प्रीणयत्येव । तथा दुराशीर्दुःखेन निष्पाद्याशीराश्रयणद्रव्यं यस्य तार्तीयसवनिकस्य सोमस्य सोऽपि यमिंद्रं नापस्पृणुते प्रीणयत्येव । तृप्रास्तर्पका अन्ये चरुपुरोडाशादयश्च यमिंद्रं नापस्पृण्वते न न प्रीणयंति अपि तु प्रीणयंत्येव तमिंद्रं स्तुम इति शेषः । यद्वा । अपेत्युपसर्गो धात्वर्थानुवादकः । यमिंद्रं शुक्रादयो नापस्पृण्वते न प्रीणयंति । उरुव्यचसमिति हेतुगर्भविशेषणं । यतोऽयमिंद्र उरुव्यचा विस्तीर्णव्याप्तिकः अतः कारणादपर्याप्ताः संतः शुक्रादयः प्रीणयितुं न शक्नुवंतीति भावः ॥ ॥१७॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयंते । अभित्सरंति धेनुभिः ॥६॥

गोभिः । यत् । ईं । अन्ये । अस्मत् । मृगं । न । व्राः । मृगयंते । अभिऽत्सरंति । धेनुऽभिः ॥६॥

यदेऽस्मदस्मत्तोऽन्य ऋत्विग्यजमाना ईमेनमिंद्रं गोभिर्गवि भवैः क्षीरादिभिः संस्कृतैः सोमैः सहिताः संतो मृगयंते अन्विष्यंते । तत्र दृष्टांतः । व्रा वरीतारो जालादिभिरुपायैर्निरुंधाना व्याधा मृगं न । यथा मृगमन्विष्यंति तद्वदनधिकारिण एव बलादिंद्रस्यान्वेषणे वर्तंत इत्यर्थः ॥ मृग अन्वेषण इति धातुः ॥ ये च जना धेनुभिः । धेनुरिति वाङ्नाम । वाग्भिः स्तुतिभिश्चाभित्सरंति अभिमुखं कुत्सितं गच्छंति । सम्यक्स्तोतुं न शक्नुवंतीत्यर्थः ॥ त्सर छद्मगतौ ॥ तथाविधा जना इंद्रं नोपलभंत इत्यर्थः ॥

दशरात्रे तृतीयेऽहनि मरुत्वतीयस्य त्रय इंद्रस्येति तृचोऽनुचरः । सूत्र्यते हि । तं तमिद्राधसे महे त्रय इंद्रस्य सोमा इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ॰ ७. १०. । इति ॥

त्रय इंद्रस्य सोमाः सुतासः संतु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥७॥

त्रयः । इंद्रस्य । सोमाः । सुतासः । संतु । देवस्य । स्वे । क्षये । सुतऽपाव्नः ॥७॥

देवस्य दानादिगुणयुक्तस्येंद्रस्य पानार्थं त्रयः सवनत्रयरूपेण त्रिधा वर्तमानाः स्वे क्षये स्वकीये यज्ञगृहे सुतासोऽभिषुताः संतु । भवंतु । सुतपाव्नः । हेतुगर्भविशेषणमेतत् । यस्मादयमिंद्रोऽभिषुतस्यैव सोमस्य पाता तस्मादभिषुताः संत्वित्यर्थः ॥

त्रयः कोशासः श्चोतंति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ॥८॥

त्रयः । कोशासः । श्चोतंति । तिस्रः । चम्वः । सुऽपूर्णाः । समाने । अधि । भार्मन् ॥८॥

त्रयस्त्रिसंख्याकाः कोशासः कोशाः सोमस्याश्रयभूता द्रोणकलशपूतभृदाधवनीयाख्याः श्चोतंति । क्षरंति ।

इंद्रार्थं सोमं स्रावयंति। तिस्रस्त्रिविधाः सवनत्रये वर्तमानाश्चम्वश्चमसाश्च सुपूर्णा इंद्रयागाय सोमैः सुपूरिता आसन्। एतत्सर्वं कुत्रेति चेत् उच्यते। समान एकस्मिन्नेव भार्मन् भर्मणि भर ऋत्विग्भिर्भ्रियमाणे यज्ञे। अधि सप्तम्यर्थानुवादी॥

शुचिरसि पुरुनिष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः। दध्ना मंदिष्ठः शूरस्य ॥९॥
शुचिः। असि। पुरुनिःऽस्थाः। क्षीरैः। मध्यतः। आऽशीर्तः। दध्ना। मंदिष्ठः। शूरस्य ॥९॥

हे सोम त्वं शुचिरसि। दशापवित्रेण शोधितो भवसि। स त्वं पुरुनिष्ठाः पुरुषु बहुषु पात्रेषु ग्रहचमसादिषु निःशेषेण स्थाता मध्यतो मध्ये मैत्रावरुणग्रहादौ क्षीरैः पयःप्रभृतिभिः श्रयणद्रव्यैराशीर्तो मिश्रणेन संस्कृतः। तृतीये सवने दध्ना चाशीर्तः। एवंभूतस्त्वं शूरस्य विक्रांतस्येंद्रस्य मंदिष्ठो मादयितृतमो भव॥

इमे त इंद्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः। शुक्रा आशिरं याचंते ॥१०॥
इमे। ते। इंद्र। सोमाः। तीव्राः। अस्मे इति। सुतासः। शुक्राः। आऽशिरं। याचंते ॥१०॥

हे इंद्र ते त्वदीया इमे सोमास्तीव्रास्तीव्रमदा अस्मे अस्माभिरध्वर्युभिः सुतासोऽभिषुताः शुक्राः शुभ्राः संत आशिरं क्षीरादिकं श्रयणद्रव्यं त्वां याचंते। तान्छ्रीणीहीत्युत्तरत्रान्वयः॥ ॥१८॥

ताँ आशिरं पुरोळाशमिंद्रेमं सोमं श्रीणीहि। रेवंतं हि त्वा शृणोमि ॥११॥
तान्। आऽशिरं। पुरोळाशं। इंद्र। इमं। सोमं। श्रीणीहि। रेवंतं। हि। त्वा। शृणोमि ॥११॥

हे इंद्र तान् पूर्वोक्तान् सोमानाशिरं श्रयणद्रव्यं च क्षीरादिकं श्रीणीहि। मिश्रय यागार्थं। तदनंतरं पुरोळाशं धानाकरंभादिलक्षणं सवनीयपुरोडाशमिममस्मदीयं सोमं च श्रीणीहि। मिश्रय। प्रथमं भक्षितं पुरोळाशं पश्चात्पीतेन सोमेन संयोजयेत्यर्थः। तव प्रार्थने को हेतुरिति चेत्। हि यस्माद्रेवंतं रयिमंतं॥ रयेर्मतौ बहुलमिति संप्रसारणं॥ बहुलधनं त्वां शृणोमि त्वं बहुधन इति सर्वत्र श्रूयते अतः कारणात् त्वामेव प्रार्थयामहे॥

हृत्सु पीतासो युध्यंते दुर्मदासो न सुरायां। ऊधर्न नग्ना जरंते ॥१२॥
हृत्ऽसु। पीतासः। युध्यंते। दुःऽमदासः। न। सुरायां। ऊधः। न। नग्नाः। जरंते ॥१२॥

हे इंद्र पीतासस्त्वया पीताः सोमा हृत्सु हृदयेषु त्वदीयेषु युध्यंते। परस्परं संप्रहारं कुर्वते। तत्र दृष्टांतः। सुरायां पीतायां जायमाना दुर्मदासो न। दुष्टमदा यथा पातारं मादयंति तद्वत्त्वां मादयितुं परस्परं युध्यंत इत्यर्थः। अपि च। नग्नश्छंदांसि। तानि न जहतीति नग्नाः स्तोतारः। ते चोधर्न पयसा पूर्णं गवादेरूध इव सोमपूर्णं त्वां जरंते। स्तुवंति। जरतिः स्तुतिकर्मा॥

षष्ठेऽहनि यदि रैवतसामसाध्यं पृष्ठस्तोत्रं तदा निष्केवल्ये रेवाँ इदित्यनुरूपस्तृचः। सूत्र्यते हि। रेवतीर्नः सधमादे रेवाँ इद्रेवतः स्तोतेति स्तोत्रियानुरूपौ। आ० ८. १। इति॥

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः। प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥१३॥
रेवान्। इत्। रेवतः। स्तोता। स्यात्। त्वाऽवतः। मघोनः। प्र। इत्। ऊं इति। हरिऽवः। श्रुतस्य ॥१३॥

हे हरिवो हरिवन्॥ मतुवसो रुरिति नकारस्य रुत्वं॥ हरी अश्वौ। तद्वन्निंद्र रेवतो रयिमतो बहुधनोपेतस्य तव स्तोता रेवान् स्यात्। रयिमान् भवेत्। इच्छब्दोऽवधारणे। धनवान् भवेदेव न तु दारिद्र्यं

प्राप्नोति । तदमेवार्थं कैमुतिकन्यायेन दृढयति । त्वावतस्त्वत्सदृशस्य ॥ युष्मदस्मद्भ्यां छंदसि सादृश्य उपसंख्यानमिति वतुप् ॥ मघोनो मघवतो धनाढ्यस्य श्रुतस्य विश्रुतस्य सर्वत्र प्रख्यातस्यान्यस्यापि स्तोता प्रेद्रु । स्वादित्वगुपश्यति । प्रख्यात् । प्रभवेदेव न तु निहीयते । किमु वक्तव्यं तव स्तोता धनवान् भवेदेवेति ॥

उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं ॥१४॥

उक्थं । चन । शस्यमानं । अगोः । अरिः । आ । चिकेत । न । गायत्रं । गीयमानं ॥१४॥

गायतेर्गौः । अगोरस्तोतुररिः शत्रुरिंद्रः शस्यमानं होत्रा पठ्यमानमुक्थं चन शस्त्रमप्या चिकेत । अभिजानाति ॥ कित ज्ञाने । छांदसो लिट् ॥ नेति संप्रत्यर्थे । न संप्रति प्रस्तोत्रादिभिर्गीयमानं गायत्रं गातव्यं साम यद्वा गायत्राख्यमपि चिकेतेत्येव । अतः कारणाद्वयमपि तमिंद्रं स्तुम इत्यर्थः ॥

मा न इंद्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥१५॥

मा । नः । इंद्र । पीयत्नवे । मा । शर्धते । परा । दाः । शिक्ष । शचीऽवः । शचीभिः ॥१५॥

हे इंद्र त्वं पीयत्नवे । पीयतिर्वधकर्मा । वधशीलाय हिंसाकारिणे शत्रवे नोऽस्मान्मा परा दाः । मा परित्याक्षीः । मा च शर्धतेऽभिभविचेऽस्मान्मा परा दाः ॥ शृधु प्रसहन इति धातुः ॥ अपि तु हे शचीवः शक्तिमन्निंद्र शचीभिरात्मीयैः कर्मभिः शिक्ष । अस्माननुशाधि । यद्वा । शिक्षतिर्दानकर्मा । अभीष्टं धनमस्मभ्यं देहि । यद्वा । शक्नुहितुं शिक्ष । शक्तान् कर्तुमिच्छ ॥ शकेः सनंतस्य सनि मीमेतीत्यादिनेऽभ्यासलोपे च कृते लोटि रूपमेतत् ॥ ॥१९॥

प्रथमे रात्रिपर्याये ब्राह्मणशस्ते वयमु त्वेति स्तोत्रियतृचः । सूत्रितं च । वयमु त्वा तदिदर्था वयमिंद्र त्वायवोऽभि । आ° ६. ४. । इति ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इंद्र त्वायंतः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरंते ॥१६॥

वयं । ऊं इति । त्वा । तदित्ऽअर्थाः । इंद्र । त्वाऽयंतः । सखायः । कण्वाः । उक्थेभिः । जरंते ॥१६॥

हे इंद्र त्वायंतस्त्वामात्मन इच्छंतः सखायः समानख्याना वयं तदिदर्था यत्त्वद्विषयं स्तोत्रं तदित्तदेवार्थः प्रयोजनं येषां तादृशाः संतस्त्वा त्वां जरामहे । स्तुमहे । उ इति पूरणः । कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्ना अस्मदीयाः पुत्रादयस्त्वोक्थेभिरुक्थैः शस्त्रैर्जरंते । त्वां स्तुवंति ॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥१७॥

न । घ । ईं । अन्यत् । आ । पपन । वज्रिन् । अपसः । नविष्टौ । तव । इत् । ऊं इति । स्तोमं । चिकेत ॥१७॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र अपसोऽपस्विनः कर्मवतस्तव संबंधिनि नविष्टावभिनवे यागे वर्तमानोऽहमन्यत्त्वद्विषयादन्यत्स्तोत्रं न घ ईं नैवा पपन । अभिष्टौमि ॥ पनतेः स्तुतिकर्मण उत्तमे णलि लिटि रूपं ॥ अपि तु तवेदु तवैव स्तोमं स्तोत्रं चिकेत । अभिजानामि । त्वामेव सर्वदा स्तौमीत्यर्थः ॥

इच्छंति देवाः सुन्वंतं न स्वप्नाय स्पृहयंति । यंति प्रमादमतंद्राः ॥१८॥

इच्छंति । देवाः । सुन्वंतं । न । स्वप्नाय । स्पृहयंति । यंति । प्रऽमादं । अतंद्राः ॥१८॥

सुन्वंतं सोमाभिषवं कुर्वंतं यजमानं देवा इंद्रादयः सर्वे इच्छंति रक्षितुं । स्वप्नाय न स्पृहयंति । स्वप्नावस्थां

तस्य सुन्वतो नेष्यंति। सर्वदा प्रबुद्धमेव कुर्वंतीत्यर्थः ॥ स्पृहेरीप्सितः। पा॰ १. ४. ३६.। इति कर्मणि चतुर्थी। स्पृह ईप्सायां चुरादिरदंतः ॥ यत एवमतः कारणादतंद्रा अनालसा देवाः प्रमादं प्रकर्षेण मदकरं तदीयं सोमं यंति। प्राप्नुवंति ॥

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्य१स्मान्। महाँ इव युवजानिः ॥१९॥

ओ इति। सु। प्र। याहि। वाजेभिः। मा। हृणीथाः। अभि। अस्मान्। महान्ऽइव। युवऽजानिः ॥१९॥

हे इंद्र वाजेभिर्वाजैरस्मभ्यं दातव्यैरन्नैः सार्धमस्मानभ्याभिमुख्येन सु सुष्ठु प्र प्रकर्षेण ओ आ उ याहि। शीघ्रमायाह्येव। आगच्छैव। मा हृणीथाः। मा क्रुध्यस्व। हृणीयतिः क्रुध्यतिकर्मा। यद्वा। मा लज्जां प्राप्नुहि ॥ हृणीङ् लज्जायामिति कण्ड्वादौ पठ्यते ॥ तत्र दृष्टांतः। महानिव युवजानिः। युवतिर्जाया यस्य स तथोक्तः ॥ जायाया निङिति समासांतो निङादेशः ॥ ईदृशो महान् गुणैरधिकोऽपि यथा स्वभार्यां प्रति निर्लज्जः सन्छीघ्रं गच्छति तद्वत् ॥

मो ष्व१द्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत्। अश्रीर इव जामाता ॥२०॥

मो इति। सु। अद्य। दुःऽहनावान्। सायं। करत्। आरे। अस्मत्। अश्रीरःऽइव। जामाता ॥२०॥

दुर्हणावान्। परैर्दुःसहहननं दुर्हणं। तद्वानिंद्रोऽद्येदानीमस्मदारेऽस्माकं समीप आगच्छतु। सु सुष्ठतिशयेन सायं दिवसस्यावसानं सायंकालं मो करत्। मा कार्षीत् ॥ करोतेर्माङि लुङि कृमृदृरुहिभ्य इति च्लेरङादेशः ॥ जामाता। जायत इति जा अपत्यं। तस्य निर्माता दुहितुःपतिः। अश्रीर इव। न श्रीरश्रीः। तदस्यास्तीत्यश्रीरः ॥ मत्वर्थीयो रः ॥ गुणैर्विहीनः कुत्सितो जामातासक्षदाहूयमानोऽप्यासायंकालं विलंबते। तद्वत्त्वं कालविलंबं मा कृथा इत्यर्थः ॥ ॥२०॥

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिं। त्रिषु जातस्य मनांसि ॥२१॥

विद्म। हि। अस्य। वीरस्य। भूरिऽदावरीं। सुऽमतिं। त्रिषु। जातस्य। मनांसि ॥२१॥

अस्येंद्रस्य वीरस्य विक्रांतस्य भूरिदावरीं बहुधनस्य दात्रीं सुमतिं कल्याणीं मतिमनुग्रहबुद्धिं विद्मा हि। जानीमः खलु। तथा त्रिषु भूम्यादिषु त्रिषु लोकेषु जातस्य तत्कार्यार्थं प्रादुर्भूतस्य मनांसि हृदयानि च जानीमः। अतस्तस्येंद्रस्य यथा प्रीतिर्जनिष्यते तथा स्तोत्रं कुर्म इत्यर्थः ॥

आ तू षिंच कण्वमंतं न घा विद्म शवसानात्। यशस्तरं शतमूतेः ॥२२॥

आ। तु। सिंच। कण्वऽमंतं। न। घ। विद्म। शवसानात्। यशःऽतरं। शतंऽऊतेः ॥२२॥

हे अध्वर्यो कण्वमंतं। कणतिः शब्दकर्मा। कण्वाः स्तोतारः। यद्वा। कण्वगोत्रा ऋषयः। तैर्युक्तमिंद्रमुद्दिश्य तु क्षिप्रमा सिंच। सोमं जुहुधि। शवसानात्। शवो बलं। तदिवाचरतोऽतिबलाच्छतमूतेः। शतं बहुनामैतत्। बह्व्य ऊतयो रक्षा यस्मिन् स शतमूतिः। तादृशादस्मादिंद्राद्यशस्तरं यशस्वितरं पुरुषं न घ नैव विद्म। जानीमः। अतस्तमेवोद्दिश्य सोमं जुहुधीत्यर्थः ॥

ज्येष्ठेन सोतरिंद्राय सोमं वीराय शक्राय। भरा पिबन्नर्याय ॥२३॥

ज्येष्ठेन। सोतः। इंद्राय। सोमं। वीराय। शक्राय। भर। पिबत्। नर्याय ॥२३॥

हे सोतरभिषोतरध्वर्यो वीराय विक्रांताय शक्राय शक्तियुक्ताय नर्याय नृभ्यो हितायेंद्राय ज्येष्ठेन मुख्येनेंद्रवायवग्रहेण । स हि धाराग्रहाणां मध्ये श्रेष्ठः । तेन सोमं भर । हर । आहर । वीर्यं प्रापय । स चेंद्रः पिबत् । तं सोमं पिबतु ॥

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावंतं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमंतं ॥२४॥

यः । वेदिष्ठः । अव्यथिषु । अश्वऽवंतं । जरितृऽभ्यः । वाजं । स्तोतृऽभ्यः । गोऽमंतं ॥२४॥

य इंद्रोऽव्यथिष्वव्यथयितृषु सुखकरेषु स्तोतृषु वेदिष्ठोऽतिशयेन वेदिता कृतस्य स्तोत्रस्य ज्ञाता स इंद्रो जरितृभ्यः शंसितृभ्यो होत्रादिभ्यः स्तोतृभ्यः प्रस्तोत्रादिभ्यश्चाश्वावंतं बहुभिरश्वैरुपेतं गोमंतं बहुभिर्गोभिरुपेतं संतं वाजमन्नं बलं वा ददातीति शेषः ॥

अहीनांतर्गतेऽतिरात्रे प्रथमे पर्याये होतुः शस्त्रे पन्यंपन्यमिति स्तोत्रियस्तृचः छंदोगैरस्य तृचस्य स्तूयमानत्वात् । छंदोगप्रत्ययं स्तोमः स्तोत्रियः । आ० ८. १३. । इति हि स्मर्यते ॥

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥२५॥

पन्यंऽपन्यं । इत् । सोतारः । आ । धावत । मद्याय । सोमं । वीराय । शूराय ॥२५॥

हे सोतारोऽभिषोतारोऽध्वर्यवः मद्याय मादयितव्याय वीराय विक्रांताय शूराय शौर्यवत इंद्राय पन्यं पन्यमित् सर्वत्र स्तुत्यमेव सोममा धावत । अभिगमयत । प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ ॥२१॥

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥२६॥

पाता । वृत्रऽहा । सुतं । आ । घ । गमत् । न । आरे । अस्मत् । नि । यमते । शतंऽऊतिः ॥२६॥

सुतमभिषुतं सोमं पाता पानशीलः ॥ ताच्छीलिकस्तृन् । न लोकाव्ययेति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः ॥ वृत्रहा वृत्रस्यासुरस्य हंतेंद्र आ गमत् । घेत्यवधारणे । आगच्छत्वेव । अस्मदस्मत्त आरे दूरदेशे मा भवतु । आगत्य च शतमूतिर्बहुविधरक्षण इंद्रो नि यमते । अस्मदीयाञ्छत्रून्नियच्छतु । तिरस्करोतु । यद्वा । धनान्यस्मभ्यं नियच्छतु । ददातु ॥

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायं । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसं ॥२७॥

आ । इह । हरी इति । ब्रह्मऽयुजा । शग्मा । वक्षतः । सखायं । गीःऽभिः । श्रुतं । गिर्वणसं ॥२७॥

(ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मंत्रेण स्तोत्रेण हविषा वा युज्यमानौ शग्मा शग्मौ सुखकरौ शक्तौ वा ईदृशौ हरी अश्वाविहास्मिन्यज्ञे सखायं समानख्यानं मित्रभूतमिंद्रमा वक्षतः । आवहतां । कीदृशमिंद्रं । गीर्भिः स्तुतिभिः श्रुतं प्रख्यापितमाहात्म्यं गिर्वणसं गिरां संभक्तारं स्तुतिभिः संभजनीयं वा ॥)

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादं ॥२८॥

स्वादवः । सोमाः । आ । याहि । श्रीताः । सोमाः । आ । याहि ।
शिप्रिन् । ऋषिऽवः । शचीऽवः । न । अयं । अच्छ । सधऽमादं ॥२८॥

हे शिप्रिन् । शिप्रं शिरस्त्राणं । यद्वा । शिप्रे हनू नासिके वा । तद्वन् हे ऋषीव ऋषिभिः स्तोतृभिर्युक्त

शचीवः शक्तिमन् एवंभूत हे इंद्र अस्मदीया इमे सोमाः स्वादवः। अभिषवादिभिः संस्कृतत्वेनास्वादनार्हा जाताः। अतस्त्वमा याहि। आगच्छ। तथा ते सोमाः श्रीताः। पयआदिभिः श्रयणद्रव्यैर्मिश्रिताः संस्कृताः। अतोऽप्या याहि। आगच्छ। नेति संप्रत्यर्थे। न संप्रत्ययं स्तोता सधमादं सह मादयितव्यं त्वामच्छाभिमुखं स्तौतीति शेषः। अतोऽप्यायाहीत्यर्थः॥

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धंति महे राधसे नृम्णाय। इंद्र कारिणं वृधंतः॥२९॥

स्तुतः। च। याः। त्वा। वर्धंति। महे। राधसे। नृम्णाय। इंद्र। कारिणं। वृधंतः॥२९॥

हे इंद्र कारिणं कर्मणां कर्तारं वृधंतो वर्धयंतो ये स्तुतः स्तोतारः याश्च तदीयाः स्तुतयस्त्वा त्वां वर्धंति वर्धयंति। किमर्थं। महे महते राधसे धनाय नृम्णाय बलाय च। उभयोर्लाभार्थं। ते तदुभयं लभंत इत्यध्याहारः। यद्वा। उत्तरत्र ते सचा दधिरे शवांसीति संबंधः॥

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि। सचा दधिरे शवांसि॥३०॥

गिरः। च। याः। ते। गिर्वाहः। उक्था। च। तुभ्यं। तानि। सचा। दधिरे। शवांसि॥३०॥

हे गिर्वाहो गीर्भिः स्तुतिभिर्वहनीयेंद्र ते तुभ्यं क्रियमाणा गिरश्च स्तुतिरूपाश्च वाचो याः संति। उक्था चोक्थानि च शस्त्ररूपाणि च वचांसि तुभ्यं त्वदर्थं क्रियमाणानि यानि संति। तानि सर्वाणि सचा सहैव शवांसि बलानि दधिरे। तव विदधिरे॥ ॥२२॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः। सनादमृक्तो दयते॥३१॥

एव। इत्। एषः। तुविऽकूर्मिः। वाजान्। एकः। वज्रऽहस्तः। सनात्। अमृक्तः। दयते॥३१॥

एष एवेंद्रस्तुविकूर्मिर्बहुकर्मा। इदिति पूरकः। एकः सर्वेषु देवेषु मुख्यो वज्रहस्तो वज्रबाहुः सनाच्चिरकालादारभ्यामृक्तः शत्रुभिरबाधितः एवंभूतः स इंद्रो वाजानन्नानि बलानि वा दयते। स्तोतृभ्यो ददाति॥

हंता वृत्रं दक्षिणेनेंद्रः पुरू पुरुहूतः। महान्महीभिः शचीभिः॥३२॥

हंता। वृत्रं। दक्षिणेन। इंद्रः। पुरु। पुरुऽहूतः। महान्। महीभिः। शचीभिः॥३२॥

अयमिंद्रो दक्षिणेन हस्तेनैकेनैव वृत्रमावरकमसुरं हंता साधु हतवान्॥ हंतेः साधुकारिणि तृन्। न लोकाव्ययेति षष्ठीप्रतिषेधः॥ पुरु पुरुषु॥ सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक्॥ बहुषु देशेषु पुरुहूतो महीभिर्महतीभिः शचीभिः क्रियाभिः शक्तिभिर्वा महान् सर्वेभ्य उत्कृष्टः। एवंभूत इंद्रोऽस्मान्रक्षत्वित्यर्थः॥

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च। अनु घेन्मंदी मघोनः॥३३॥

यस्मिन्। विश्वाः। चर्षणयः। उत। च्यौत्ना। ज्रयांसि। च। अनु। घ। इत्। मंदी।
मघोनः॥३३॥

विश्वाः सर्वाश्चर्षणयः प्रजा यस्मिन्निंद्रे वर्तंते यदधीना भवंति। उतापि च च्यौत्ना च्यौत्नानि। बलनामैतत्। प्रच्युतिसाधनानि बलानि च ज्रयांसि शत्रुविषयाण्यभिभवनानि यस्मिन्निंद्रे वर्तंते॥ जि ज्रि अभिभवन इति धातुः॥ स इंद्रो मघोनः। मघं हविर्लक्षणं धनं। तद्वतो यजमानाननु मंद्यनुमोदको भवति। घेदिति पूरकौ। यद्वा। मंदी स्तुत्यः स इंद्रस्तानन गृह्णातीति शेषः। अथवा। यस्य मघोनो धनवत इंद्रस्य मंदी स्तोतानुकूलो भवति एष एतानीत्युत्तरत्रैकवाक्यता॥

एष एतानि चकारेंद्रो विश्वा योऽति शृण्वे। वाजदावा मघोनां ॥३४॥

एषः। एतानि। चकार। इंद्रः। विश्वा। यः। अति। शृण्वे। वाजऽदावा। मघोनां ॥३४॥

एष इंद्रो विश्वा विश्वानि व्याप्तान्येतानि वृत्रवधादीनि वीर्याणि। यद्वा। पृथिव्यादीनि भूतजातानि। तानि चकार। कृतवान्। य इंद्रो बलैरतिशयितः शृण्वे श्रूयते सर्वत्र स्तूयते। अपि च स इंद्रो मघोनां हविष्मतां यजमानानां वाजदावा वाजस्यान्नस्य दाता भवति॥

प्रभर्ता रथं गव्यंतमपाकाच्चिद्यमवति। इनो वसु स हि वोळ्हा ॥३५॥

प्रऽभर्ता। रथं। गव्यंतं। अपाकात्। चित्। यं। अवति। इनः। वसु। सः। हि। वोळ्हा ॥३५॥

प्रभर्ता प्रहर्ता प्रहरणशील इंद्रो रथं रंहणं गव्यंतं गा इच्छंतं यं स्तोतारमपाकादविपक्वप्रज्ञाच्छत्रोः। चिच्छब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। विपक्वप्रज्ञादप्यवति रक्षति स हि स खलु स्तोतेन ईश्वरः सन् वसु धनं वोळ्हा साधुवाही भवति॥ वहेः साधुकारिणि तृन्। अतो न लोकाव्ययेति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः॥ ॥२३॥

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हंता वृत्रं नृभिः शूरः। सत्योऽविता विधंतं ॥३६॥

सनिता। विप्रः। अर्वत्ऽभिः। हंता। वृत्रं। नृऽभिः। शूरः। सत्यः। अविता। विधंतं ॥३६॥

विप्रो मेधावी स इंद्रोऽर्वद्भिरश्वैर्वाहनभूतैः सनिता गंतव्यं संभक्ता। तथा शूरः शौर्योपेतः सन्नृभिर्नेतृभिर्मरुद्भिः सार्धं वृत्रमावरकमसुरं हंता साधुघाती। अपि च विधंतं परिचरंतं यजमानं सत्यः साधुरवितथस्वभावो वा स इंद्रोऽविता परिचरतो यजमानस्य रक्षिता भवति॥ सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वादत्र कर्मणि षष्ठी न प्रवर्तते॥

यजध्वैनं प्रियमेधा इंद्रं सत्राचा मनसा। यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥३७॥

यजध्व। एनं। प्रियऽमेधाः। इंद्रं। सत्राचा। मनसा। यः। भूत्। सोमैः। सत्यऽमद्वा ॥३७॥

हे प्रियमेधाः। प्रियोऽनुकूलो मेधो यज्ञो येषां ते तथोक्ताः। आत्मनि पूजार्थं बहुवचनं। प्रियमेधा अस्य। ऋषिरात्मानं संबोध्य ब्रूते। हे प्रियमेधाः सत्राचा सहांचता स्तोतव्येनेंद्रेण सह वर्तमानेन मनसा चित्तेनैनमिंद्रं यजध्व। यजध्वं। बुद्धिपूर्वकं यजेत्यर्थः॥ यजध्वैनं। पा॰ ७. १. ४३.। इति निपातनाद्वर्णलोपः॥ य इंद्रः सोमैः करणभूतैः सत्यमद्वा भूत् सत्यमदोऽवितथमदो भवति॥

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानं। कण्वासो गात वाजिनं ॥३८॥

गाथऽश्रवसं। सत्ऽपतिं। श्रवःऽकामं। पुरुऽत्मानं। कण्वासः। गात। वाजिनं ॥३८॥

हे कण्वासः कण्वपुत्रा मेधातिथयः। पूर्ववद्बहुवचनमात्मनः संबोधनं च। हे कण्वस्य पुत्रा मेधातिथयः यूयं गाथश्रवसं गातव्ययशसं सत्पतिं सतां पालयितारं श्रवस्कामं। श्रवःस्वन्नेषु हविःषु कामोऽभिलाषो यस्य तादृशं। पुरुत्मानं बह्वात्मानं यद्वा पुरुषु बहुषु प्रदेशेष्वततं सततं गच्छंतं वाजिनं वेगवंतं एवंगुणकमिंद्रं गात। गायत। स्तुध्वं॥

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान्। ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥३९॥

यः। ऋते। चित्। गाः। पदेभ्यः। दात्। सखा। नृऽभ्यः। शचीऽवान्। ये। अस्मिन्। कामं। अश्रियन् ॥३९॥

पणिभिर्देवगवीष्वपहृतासु पदेभ्यो गतानां गवां मार्गे संलग्नेभ्योऽन्वेषणसाधनभूतेभ्य ऋते चिदृतेऽपि विनापि सखा मित्रभूतः शचीवान् कर्मवान् प्रशस्तकर्मा य इंद्रो नृभ्यो नेतृभ्यो देवेभ्यो गाः पणिभिरपहृता दात् पुनर्दत्तवान्। ये देवा अस्मिन्निंद्रे काममभिलाषमश्रियन् असेवंत प्राप्नुवन्। तेभ्यो नृभ्य इत्यन्वयः। तमिंद्रं गातेति पूर्वेण सहैकवाक्यता ॥

इ॒त्था धीवं॑तमद्रिवः का॒ण्वं मेध्या॑तिथिं। मे॒षो भू॒तो॒३॒॑भि यन्नयः ॥४०॥

इ॒त्था। धीऽवं॑तं। अ॒द्रि॒ऽव॒ः। का॒ण्वं। मेध्य॑ऽअतिथिं। मे॒षः। भू॒तः। अ॒भि। यन्। अयः॑ ॥४०॥

इत्थेत्थमनेनोक्तेन प्रकारेण धीवंतं स्तुतिमंतं काण्वं कण्वपुत्रं मेध्यातिथिं यज्ञार्हातिथिमेतत्संज्ञमृषिं हे अद्रिवो वज्रिवन्निंद्र मेषो भूतो मेषरूपतां प्राप्तोऽभि यन्नभिगच्छन् ॥ य इत्यनुवर्तते। तद्योगाच्च तिङो निघाताभावः ॥ यस्त्वमयः अगमयः तं त्वां स्तुम इत्यर्थः। मेधातिथेर्मेषेति सुब्रह्मण्यामंत्रैकदेशस्य व्याख्यानरूपं ब्राह्मणं छंदोगैरेवमाम्नायते। मेधातिथिं हि काण्वायनिं मेषो भूत्वाजहार। षड्विं० ब्रा० १. १.। इति। तदभिप्रायेणेयं स्तुतिः कृता ॥

शिक्षा॑ विभिंदो अ॒स्मै च॒त्वार्य॒युता॑ द॒दत्। अ॒ष्टा प॒रः स॒हस्रा॑ ॥४१॥

शिक्ष॑। विभिं॒दो॒ इति॑ विऽभिंदो। अ॒स्मै॒। च॒त्वारि॑। अ॒युता॑। द॒दत्। अ॒ष्ट। प॒रः। स॒हस्रा॑ ॥४१॥

विभिंदुनाम्नो राज्ञः सकाशाद्बहु धनं लब्ध्वा तदीयं दानमिदमादिकेन तृचेन प्रशंसति। हे विभिंदो राजन् ददद्दाता त्वमस्मै मह्यमृषये चत्वार्ययुतायुतानि दशसहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि शिक्ष। अशिक्षः। दत्तवानसि। परः परस्तादूर्ध्वमप्यष्टसंख्याकानि सहस्रा सहस्राणि च दत्तवानसि ॥

उ॒त सु त्ये प॑यो॒वृधा॑ मा॒की रण॑स्य न॒प्त्या॑। ज॒नि॒त्व॒नाय॑ मामहे ॥४२॥

उ॒त। सु। त्ये इति॑। प॒यः॒ऽवृधा॑। मा॒की इति॑। रण॑स्य। न॒प्त्या॑। ज॒नि॒ऽत्व॒नाय॑। म॒म॒हे॒ ॥४२॥

उतापि च सु सुष्ठु त्ये ते सर्वत्र प्रसिद्धे पयोवृधा पयस उदकस्य वर्धयित्र्यौ माकी निर्मात्र्यौ भूतजातस्य रणस्य। स्तोतॄणामेतत्। स्तोतुर्नप्त्या नप्त्र्यौ न पातयित्र्यौ सर्वदानुग्रहशीले द्यावापृथिव्यौ जनित्वनाय पूर्वोक्तधनस्य जननाय प्रादुर्भावाय लाभाय ममहे। स्तुतवानस्मि। द्यावापृथिव्योः प्रसन्नयोरेवेदं दानं लभ्यते नान्यदेति दानमाहात्म्यप्रशंसाधिगंतव्या ॥ ॥ २४ ॥

पिबा सुतस्येति चतुर्विंशत्यृचं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य मेध्यातिथेरार्षं। अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्य एकविंश्यनुष्टुब्द्वाविंशीत्रयोविंश्यौ गायत्र्यौ चतुर्विंशी बृहती। एतास्तिस्रः कुरयाणस्य पुत्रस्य पाकस्थामनाम्नो राज्ञो दानस्तुतिप्रतिपादिकाः। अतस्तद्देवताकाः। शिष्टा ऐंद्र्यः। तथा चानुक्रांतं। पिब चतुर्विंशतिर्मेध्यातिथिः प्रागाथं त्वनुष्टुब्गायत्र्यौ बृहती चांत्याः कौरयाणस्य पाकस्थाम्नो दानस्तुतिरिति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतौ दानस्तुतीर्विनेदं सूक्तं सप्तम्यष्टम्योश्चोद्धारः। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं। पिबा सुतस्य रसिन इति विंशतेः सप्तमीं चाष्टमीं चोद्धरति। ऐ० आ० ५. २. ४.। इति ॥ ज्योतिष्टोमे निष्केवल्य आद्यो रथंतरसामप्रगाथः शंसनीयः। सूत्र्यते हि। पिबा सुतस्य रसिन इति सामप्रगाथः। आ० ५. १५.। इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि निष्केवल्येऽप्ययं प्रगाथः। सूत्र्यते हि। उक्तो रथंतरस्योभयं शृणवच्च न इति बृहतः। आ० ७. ३.। इति ॥ एवमन्यत्रापि यदि रथंतरं पृष्ठं भवति तत्र सर्वत्रायं प्रगाथो द्रष्टव्यः ॥ पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रे पिबा सुतस्येत्ययमैंद्रः प्रगाथः। सूत्रितं च। पिबा सुतस्य रसिनो देवं देवं वोऽवसे। आ० ७. १२.। इति ॥

पिबा॑ सु॒तस्य॑ र॒सिनो॒ मत्स्वा॑ न इंद्र॒ गोम॑तः।

आ॒पिर्नो॑ बोधि सध॒माद्यो॑ वृ॒धे॒३॒॑स्माँ अ॑वंतु ते॒ धियः॑ ॥१॥

पिब । सुतस्य । रसिनः । मत्स्व । नः । इंद्र । गोऽमतः ।
आपिः । नः । बोधि । सधऽमाद्यः । वृधे । अस्मान् । अवंतु । ते । धियः ॥१॥

हे इंद्र रसिनो रसवतो गोमतो गोविकारैः पयःप्रभृतिभिः श्रयणद्रव्यैर्युक्तस्य नोऽस्मदीयस्य सुतस्याभिषुतस्य ॥ क्रियायहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ ईदृशं सोमं पिब । पीत्वा च मत्स्व । तृप्तो भव । अपि च सधमाद्यः सह मादयितव्यः संहितैरस्माभिस्तर्पयितव्यस्त्वमापिरापयिता बंधुः सन्नोऽस्माकं वृधे वर्धनाय बोधि । बुध्यस्व । ते त्वदीया धियो बुद्धयोऽनुग्रहात्मिका अस्मान् स्तोतॄनवंतु । रक्षंतु ॥

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥
भूयाम । ते । सुऽमतौ । वाजिनः । वयं । मा । नः । स्तः । अभिऽमातये ।
अस्मान् । चित्राभिः । अवतात् । अभिष्टिऽभिः । आ । नः । सुम्नेषु । यमय ॥२॥

हे इंद्र ते तव सुमतौ शोभनायां मतावनुग्रहबुद्धौ वाजिनो हविष्मंतो वयं भूयाम । वर्तमाना भवाम । अभिमातये । अभिमन्यत इत्यभिमातिः शत्रुः । तस्मै तदर्थं नोऽस्मान्मा स्तः । मा हिंसीः ॥ स्तृङ् हिंसायां । माङि लुङि च्छांदसश्चेर्लुक् ॥ अपि त्वमभिष्टिभिरभ्येषणीयाभिः प्रार्थनीयाभिश्चित्राभिश्चायनीयाभिर्बहुविधाभिर्वा त्वदीयाभिरूतिभिरस्मानवतात् । अव । रक्ष । तथा नोऽस्मान् सुम्नेषु सुखेष्वा यामय । आयतान् कुरु । सर्वदा सुखिन एव कुरु ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धंतु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥३॥
इमाः । ऊं इति । त्वा । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । गिरः । वर्धंतु । याः । मम ।
पावकऽवर्णाः । शुचयः । विपःऽचितः । अभि । स्तोमैः । अनूषत ॥३॥

हे पुरूवसो बहुधनेंद्र मम मदीया इमा गिरः शस्त्ररूपा वाचस्त्वा त्वां वर्धंतु । वर्धयंतु । तथा पावकवर्णा अग्निसमानतेजस्काः अत एव शुचयः शुद्धा विपश्चितो विद्वांस उद्गातारश्च स्तोमैः स्तोत्रैर्बहिष्पवमानादिभिरभ्यनूषत । त्वामभिष्टुवंति ॥ णु स्तुतौ कुटादिः ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥४॥
अयं । सहस्रं । ऋषिऽभिः । सहःऽकृतः । समुद्रःऽइव । पप्रथे ।
सत्यः । सः । अस्य । महिमा । गृणे । शवः । यज्ञेषु । विप्रऽराज्ये ॥४॥

अयमिंद्रः सहस्रं सहस्रसंख्याकैर्ऋषिभिरतींद्रियार्थदर्शिभिः स्तोतृभिः सहस्कृतः सहसा बलेन युक्तः कृतः । स्तुत्या हि देवताया बलं वर्धते । स चैवंभूतः सन् समुद्र इवोदधिरिव पप्रथे । प्रथितो विस्तीर्णो बभूव । अस्य चेंद्रस्य सत्योऽवितथः स प्रसिद्धो महिमा महत्त्वं शवो बलं च यज्ञेषु यागेषु विप्रराज्ये । राज्ञः कर्म राज्यं । विप्राणां स्तोतॄणां राज्ये स्तुतशस्त्रसंघे गृणे । स्तूयते ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि निष्केवल्ये इंद्रमिद्देवतातय इति रैवतसामप्रगाथः शंसनीयः पृष्ठ्येऽहनि निष्केवल्ये त्वयं प्रगाथः । सूत्र्यते हि । इंद्रमिद्देवतातय इतीतरेषां पृष्ठ्य एवैकैकमन्वहं । आ॰ ७. ३. । इति ॥

इंद्रमिद्देवतातय इंद्रं प्रयत्यध्वरे ।
इंद्रं समीके वनिनो हवामह इंद्रं धनस्य सातये ॥५॥
इंद्रं । इत् । देवऽतातये । इंद्रं । प्रऽयति । अध्वरे ।
इंद्रं । संऽईके । वनिनः । हवामहे । इंद्रं । धनस्य । सातये ॥५॥

देवतातये । देवैः स्तोतृभिस्तायते विस्तार्यत इति देवतातिर्यज्ञः । तदर्थमिंद्रमिद्देवेषु मध्य इंद्रमेवाह्वयामहे । अध्वरे यज्ञे प्रयति प्रगच्छत्युपक्रांते सतींद्रं हवामहे । तथा समीके सम्यग्गते संपूर्णे च यागे वनिनः संभजमाना वयमिंद्रमेवाह्वयामहे । यद्वा । समीकमिति संग्रामनाम । समीके संग्राम इंद्रमाह्वयामहे । धनस्य सातये लाभायेंद्रमेवाह्वयामहे । अतः शीघ्रमिंद्र आगच्छत्वित्यर्थः ॥ ॥२५॥

इंद्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इंद्रः सूर्यमरोचयत् ।
इंद्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इंद्रे सुवानास इंदवः ॥६॥
इंद्रः । मह्ना । रोदसी इति । पप्रथत् । शवः । इंद्रः । सूर्यं । अरोचयत् ।
इंद्रे । ह । विश्वा । भुवनानि । येमिरे । इंद्रे । सुवानासः । इंदवः ॥६॥

अयमिंद्रः शवः शवस आत्मीयस्य बलस्य मह्ना महिम्ना महत्त्वेन रोदसी द्यावापृथिव्यौ पप्रथत् । अप्रथयत् । विस्तारितवान् । तथा स्वर्भानुनावृतं सूर्यमयमेवेंद्रोऽरोचयत् । अदीपयत् । तस्यासुरस्य वधेन प्रकाशितवान् । अपि चेंद्रे ह्यस्मिन्नेवेंद्रे विश्वा विश्वानि व्याप्तानि भुवनानि भूतजातानि येमिरे । उपरमंते । इंद्रेण नियम्यंत इत्यर्थः । तथा सुवानासः सूयमाना अभिषूयमाणा इंदवः सोमास्तास्मिन्नेवेंद्रे नियम्यंते । अंतर्भवंतीत्यर्थः ॥

ज्योतिष्टोमो यदि रथंतरपृष्ठस्तदा निष्केवल्येऽभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथोऽनुरूपः । सूत्र्यते हि । अभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ५. १५. । इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवल्ये दक्षिणपक्षेऽप्ययं प्रगाथः । सूत्रितं च । अभि त्वा पूर्वपीतय इति रथंतरस्य स्तोत्रियानुरूपौ प्रगाथौ । ऐ० आ० ५. २. २. । इति ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इंद्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणंत पूर्व्यं ॥७॥
अभि । त्वा । पूर्वऽपीतये । इंद्र । स्तोमेभिः । आयवः ।
संऽईचीनासः । ऋभवः । सं । अस्वरन् । रुद्राः । गृणंत । पूर्व्यं ॥७॥

हे इंद्र आयवो मनुष्याः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोत्रैस्त्वामभिष्टुवंति । किमर्थं । पूर्वपीतये सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं प्रथमत एव सोमस्य पानाय । सवनमुखे हि चमसगणैरिंद्रस्यैव सोमो हूयते । तथा समीचीनासः संगता ऋभवः । प्रथमवाचकेन शब्देन त्रयोऽप्युपलक्ष्यंते । ऋभुर्विभ्वा वाज इत्येते च समस्वरन् । त्वामेव सम्यगस्तुवन् ॥ स्वृ शब्दोपतापयोः ॥ रुद्रा रुद्रपुत्रा मरुतश्च पूर्व्यं पुरातनं वृद्धं त्वामेव गृणंत । अभ्यस्तुवन् । वृत्रवधसमये प्रहर भगवो जहि वीरयस्वेत्येवंरूपया वाचा त्वां स्तुतवंत इत्यर्थः ॥

अस्येदिंद्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवंति पूर्वथा ॥८॥

अस्य । इत् । इंद्रः । वृवृधे । वृष्ण्यं । शवः । मदे । सुतस्य । विष्णवि ।
अद्य । तं । अस्य । महिमानं । आयवः । अनु । स्तुवंति । पूर्वऽथा ॥८॥

अस्येदस्यैव यजमानस्य वृष्ण्यं वृषत्वं वीर्यं शवो बलं चेंद्रो वावृधे । वर्धयति । सुतस्याभिषुतस्य सोमस्य पानेन विष्णवि कृत्स्नदेहस्य व्यापके मदे हर्षे सति तस्यैव यजमानस्य बलं वर्धयतीत्यर्थः । अद्यास्मिन् काले ऽस्येंद्रस्य तमुक्तगुणं महिमानं महत्त्वमायवो मनुष्या अनु ष्टुवंति । आनुपूर्व्येण स्तुवंति । पूर्वथा ॥ पूर्वशब्दादिवार्थे प्रत्नपूर्वेत्यादिना थाल्प्रत्ययः ॥ यथा पूर्वस्मिन् कालेऽस्तुवन् एवमिदानीमपि तेनैव क्रमेण स्तुवंतीत्यर्थः ॥

ज्योतिष्टोमे माध्यंदिनसवने ब्रह्मशस्त्रे तत्त्वा यामीति प्रगाथोऽनुरूपः । सूचितं च । तत्त्वा यामि सुवीर्यमिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ॰ ५. १६. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽप्ययं प्रगाथस्तस्यैवानुरूपः । सूचितं च । तत्त्वा यामि सुवीर्यमभि प्र वः सुराधसं । आ॰ ७. ४. । इति ॥

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९॥
तत् । त्वा । यामि । सुऽवीर्यं । तत् । ब्रह्म । पूर्वऽचित्तये ।
येन । यतिऽभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वं । आविथ ॥९॥

हे इंद्र तत्सुवीर्यं शोभनवीर्यं त्वा त्वां यामि । याचामि ॥ छांदसो वर्णलोपः ॥ तथा तद्ब्रह्म परिवृढमन्नं पूर्वचित्तये पूर्वप्रज्ञानायान्येभ्यः पूर्वमेव लाभाय त्वां याचामि । धने हितेऽभीष्टे सति येन सुवीर्येण यतिभ्यः कर्मसूपरतेभ्योऽयष्टृभ्यो जनेभ्यः सकाशाद्धनमाहृत्य भृगवे महर्षये प्रयच्छसि । यद्वा । कर्मसु नियता अंगिरसो यतयः । तेषामर्थं धनं प्रयच्छसि ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ येन च ब्रह्मणा प्रस्कण्वं कण्वप्रभवं कण्वस्य पुत्रमृषिमाविथ ररक्षिथ । तदुभयं याचामीत्यन्वयः ॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिंद्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१०॥
येन । समुद्रं । असृजः । महीः । अपः । तत् । इंद्र । वृष्णि । ते । शवः ।
सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । संऽनशे । यं । क्षोणीः । अनुऽचक्रदे ॥१०॥

हे इंद्र येनात्मीयेन बलेन समुद्रमब्धिं प्रति महीर्महतीरप उदकान्यसृजः व्यसृजः । महान् समुद्रो यावद्भिर्जलैः पूर्यते तावंति जलानि पुरा त्वं सृष्टवानित्यर्थः । ते त्वदीयं तच्छवो बलं वृष्णि वर्षकं । अभीष्टफलदमित्यर्थः । अस्येंद्रस्य स महिमा न संनशे । न सम्यगापनीयः । परैरप्रधृष्य इत्यर्थः ॥ नशेः कृत्यार्थे केन्प्रत्ययः ॥ यं महिमानं क्षोणीः क्षोणी पृथिव्यनुचक्रदे अनुगच्छति । क्रदिरत्र गत्यर्थः । यदधीना वर्तत इत्यर्थः ॥ ॥२६॥

शग्धी न इंद्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यं ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥११॥
शग्धि । नः । इंद्र । यत् । त्वा । रयिं । यामि । सुऽवीर्यं ।
शग्धि । वाजाय । प्रथमं । सिसासते । शग्धि । स्तोमाय । पूर्व्य ॥११॥

हे इंद्र सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं ॥ बहुव्रीहौ वीरवीर्यौ चेत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वं ॥ यद्रयिं धनं त्वां यामि

याचामि ॥ छांदसो वर्णलोपः ॥ नोऽस्मभ्यं तद्धनं शग्धि । देहि ॥ शकिरत्र दानार्थः । तस्माल्लोटि हौ छांदसो विकरणस्य लुक् । ऊश्रृणुभ्य इति हेर्धित्वं ॥ तथा सिषासते संभक्तुमिच्छते ॥ सनतेः सनि सनीवंतर्धेति विकल्पनादिड्भावे जनसनखनामित्यात्वं ॥ वाजाय । वाज इत्यन्ननाम । तेन च तद्वाँल्लक्ष्यते । हविष्मते यजमानाय प्रथमं सर्वेभ्यः पूर्वमेव शग्धि । धनं प्रयच्छ । यद्वा । वाजायेति द्वितीयार्थे चतुर्थी । कर्मभिस्त्वां संभक्तुमिच्छते जनाय प्रथमं वाजाय वाजमन्नं शग्धि । देहि । पश्चात्सोमाय स्तोत्रे हे पूर्व्य पूर्वस्मिन् काले भव चिरंतनेंद्र शग्धि । देहि ॥ स्तौतेः कर्तर्यर्तिस्तुसुहुस्रिल्यादिना मन्प्रत्ययः ॥

शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धियं इंद्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिंद्र प्रावः स्वर्णरं ॥१२॥
शग्धि । नः । अस्य । यत् । ह । पौरं । आविथ । धियः । इंद्र । सिसासतः ।
शग्धि । यथा । रुशमं । श्यावकं । कृपं । इंद्र । प्र । आवः । स्वःऽनरं ॥१२॥

हे इंद्र धियः कर्माणि स्तोत्राणि वा सिषासतः संभक्तवतो नोऽस्माकं संबंधिनोऽस्य यजमानस्य तद्धनं शग्धि प्रदेहि यद्ध येन खलु धनेन पौरं । पुरुर्नाम राजा । तस्य पुत्रमाविथ ररक्षिथ । अपि च हे इंद्र रुशमं श्यावकं कृपं चैतन्नामकांस्त्रीन्राजर्षीन् यथा येन प्रकारेण प्रावः प्रारक्षः तथा स्वर्णरं सर्वस्य हविषो नेतारं प्रापयितारं । यद्वा । स्वः स्वर्गं प्रति नेतव्यमिमं यजमानं शग्धि । शक्तं कुरु । धनादिसंपत्त्या यागानुष्ठानाय यथा शक्तो भवति तथा कुर्वित्यर्थः । इंद्रेत्यामंत्रितस्य पादादित्वेनाष्टमिकनिघाताभावे षाष्ठिकमामंत्रिताद्युदात्तत्वं ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्रह्मशस्त्रे कन्नव्य इति कद्वान्प्रगाथः । सूत्रितं च । कन्नव्यो अतसीनां कदू न्वस्याकृतमिति कद्वंतः प्रगाथाः । आ॰ ७. ४. । इति ॥ अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःसु तस्मिञ्छस्त्रे तस्यैवायं प्रगाथः । सूत्र्यते हि । आरंभणीयाः पर्यासान् कद्वतोऽहरहःशस्यानीति होत्रका द्वितीयादिष्वेव । आ॰ ७. १. । इति ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिंद्रियं स्वर्गृणंत आनशुः ॥१३॥
कत् । नव्यः । अतसीनां । तुरः । गृणीत । मर्त्यः ।
नहि । नु । अस्य । महिमानं । इंद्रियं । स्वः । गृणंतः । आनशुः ॥१३॥

अतसीनामतंतीनां सततगामिनीनां स्तुतीनां तुरः प्रेरयिता मर्त्यो मरणधर्मा नव्योऽभिनव इदानींतनः कत् को नाम स्तोता गृणीत । इंद्रं स्तुयात् । अल्पप्रज्ञैरिदानींतनैरिंद्रः स्तोतुं न शक्यत इत्यर्थः ॥ गॄ शब्दे । क्रैयादिकः । प्वादीनां ह्रस्व इति ह्रस्वत्वं ॥ नु पुरा पूर्वस्मिन्नपि काले विद्यमानाः स्वः सर्वे गृणंतः स्तोतारः । यद्वा । स्वः सुष्ठ्वरणीयं प्राप्तव्यमिंद्रं गृणंतः स्तुवंतो जनाः । इंद्रियं । इंद्रियमिंद्रस्य लिंगमिंद्रस्यैवासाधारणं । अस्येंद्रस्य महिमानं महत्त्वं न ह्यानशुः । न खलु प्राप्नुवन् ॥ अश्नोतेर्लिटि व्यत्ययेन परस्मैपदं । अत आदेरित्यभ्यासस्यात्वं । अश्नोतेश्चेति नुट् । हि चेति निघातप्रतिषेधः ॥

कदु स्तुवंत ऋतयंत देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निंद्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥१४॥
कत् । ऊं इति । स्तुवंतः । ऋतऽयंत । देवता । ऋषिः । कः । विप्रः । ओहते ।
कदा । हवं । मघऽवन् । इंद्र । सुन्वतः । कत् । ऊं इति । स्तुवतः । आ । गमः ॥१४॥

हे इंद्र स्तुवंतः स्तोत्रं कुर्वतः कदु के खलु जना देवता ॥ देवात्तलिति स्वार्थिकस्तल्प्रत्ययः । व्यत्ययेन प्रथमा ॥ देवं त्वामुद्दिश्य ऋतयंत । ऋतं यज्ञमैच्छन् । त्वदीययागेच्छापि दुर्लभा दूरे त्वद्यागकथा । ऋषिर्द्रष्टा विप्रो मेधावी कः स्तोतीहते । वहति । त्वां स्तुतीः प्रापयति । न कश्चिदपि त्वां स्तोतुं शक्नोतीत्यर्थः । यत एवमतः कारणात् हे मघवन् धनवन्निंद्र अनुग्रहीत्रा त्वयैवागंतव्यं । स त्वं कदा कस्मिन्काले सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य हवमाह्वानं प्रत्या गमः । आगच्छः । कदु कदा च कस्मिंश्च काले स्तुवतः केवलं स्तोत्रं कुर्वतो यजमानस्य हवमाह्वानमा गमः । अभ्यगच्छः ॥ सुन्वतः स्तुवत इत्युभयत्र शतुरनुम इति विभक्तेरुदात्तत्वं । गमेर्लुङि लृदित्त्वात् च्लेरङादेशः ॥

ज्योतिष्टोमे माध्यंदिनसवने ब्रह्मशस्त्र उदु त्य इति प्रगाथोऽनुरूपानंतरं शंसनीयः । सूत्रितं च । उदु त्ये मधुमत्तमा इंद्रः पूर्भित् । आ॰ ५. १६. । इति ॥ चातुर्विंशिके माध्यंदिनसवने तस्मिन्नेव शस्त्रेऽयं प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्रितं च । उदु त्ये मधुमत्तमास्त्वमिंद्र प्रतूर्तिषु । आ॰ ७. ४. । इति ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयंतो रथा इव ॥१५॥
उत् । ऊं इति । त्ये । मधुमत्ऽतमाः । गिरः । स्तोमासः । ईरते ।
सत्राऽजितः । धनऽसाः । अक्षितऽऊतयः । वाजऽयंतः । रथाःऽइव ॥१५॥

त्ये ते प्रसिद्धा मधुमत्तमा अतिशयेन मधुरा गिरोऽप्रगीताः शस्त्ररूपा वाचः स्तोमासः प्रगीतानि बहिष्पवमानादीनि स्तोत्राणि चोदीरते । हे इंद्र त्वामुद्दिश्योद्गच्छंति । ऊर्ध्वं प्रसरंति ॥ ईर गतौ । आदादिकः ॥ तत्र दृष्टांतः । सत्राजितः सहैव शत्रूञ्जयंतः अत एव धनसा धनानि संभजंतः ॥ वन षण संभक्तौ । जनसनखनक्रमगमो विट् । विड्वनोरनुनासिकस्यादित्यात्वं ॥ अक्षितोतयः । अक्षिताः क्षयरहिता ऊतयो रक्षा येषां ते तथोक्ताः ॥ क्षियो भावे निष्ठा । निष्ठायामण्यदर्थ इति पर्युदासाद्दीर्घाभावः । अत एव क्षियो दीर्घादिति निष्ठानत्वाभावश्च ॥ वाजयंतो वाजमन्नमिच्छंतः ॥ क्यचि न च्छंदस्यपुत्रस्येतीत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः ॥ एवंगुणविशिष्टा रथा इव । ते यथा विविधमितस्तत उत्तिष्ठंति तद्वदुदीरत इत्यर्थः ॥ ॥२७॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इंद्रं स्तोमेभिर्महयंत आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥
कण्वाःऽइव । भृगवः । सूर्याःऽइव । विश्वं । इत् । धीतं । आनशुः ।
इंद्रं । स्तोमेभिः । महयंतः । आयवः । प्रियऽमेधासः । अस्वरन् ॥१६॥

कण्वा इव कण्वगोत्रोत्पन्ना ऋषय इव स्तुवंतो भृगवो भृगुगोत्रोत्पन्ना ऋषयो धीतमाध्यातं विश्वमिद्व्याप्तं तमेवेंद्रमानशुः । व्यापुः । सूर्या इव । यथा सूर्यरश्मयः सर्वं जगद्व्याप्नुवंति तद्वत् । अपि च प्रियमेधासः प्रियप्रज्ञा एतत्संज्ञा वायवो मनुष्यास्तमेवेंद्रं महयंतः पूजयंतः स्तोमेभिः स्तोत्रैरस्वरन् । अस्तुवन् ॥ स्वृ शब्दोपतापयोः । भौवादिकः ॥

युक्ष्वा हि वृत्रहंतम हरी इंद्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥१७॥
युक्ष्व । हि । वृत्रहन्ऽतम । हरी इति । इंद्र । पराऽवतः ।
अर्वाचीनः । मघऽवन् । सोमऽपीतये । उग्रः । ऋष्वेभिः । आ । गहि ॥१७॥

हे वृत्रहंतम। वृत्रं हतवान् वृत्रहा। अतिशयेन हतवान् वृत्रहंतमः। यथा पुनर्नोत्तिष्ठति तथा हतवानित्यर्थः॥ अमो नुडिति तमपो नुट्॥ हे तावृशेंद्र हरी त्वदीयावश्वौ युत्त्व। हिरवधारणे। आत्मीये रथे योजयैव। हे मघवन् धनवन् उग्र उद्गूर्णस्त्वं सोमपीतये सोमपानार्थं॥ दासीभारादित्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं॥ अर्वाचीनोऽस्मदभिमुख ऋष्वेभिर्ऋष्वैर्दर्शनीयैर्मरुद्भिः सार्धं परावतः। दूरनामैतत्। दूरे वर्तमानाद्युलोकादागहि। आगच्छ॥ गमेर्लोटः सेर्हिः। छांदसः शपो लुक्। अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः। तस्यासिद्धवदत्राभादित्यसिद्धत्वाद्धेर्लुगभावः॥

इ॒मे हि ते॑ का॒रवो॑ वाव॒शुर्धि॒या विप्रा॑सो मे॒धसा॑तये।
स त्वं नो॑ मघवन्निंद्र गिर्वणो॒ वेनो॒ न शृ॑णुधी॒ हव॑म्॥१८॥
इ॒मे। हि। ते॒। का॒रवः॑। वा॒व॒शुः। धि॒या। विप्रा॑सः। मे॒धऽसा॑तये।
सः। त्वं। नः॒। म॒घ॒ऽव॒न्। इं॒द्र॒। गि॒र्व॒णः॒। वे॒नः। न। शृ॒णु॒धि॒। हव॑म्॥१८॥

कारवः कर्मणां कर्तारो विप्रासो मेधाविन इमे हीमे खलु यजमाना धिया स्तुत्या हे इंद्र ते त्वां वावशुः। पुनरस्तुवन्॥ वाशृ शब्द इत्यस्माद्यङ्लुगंताद्रूपमेतत्॥ यद्वा। वावशुः पुनःपुनरकामयंत॥ वश कांतौ। अस्माद्यङ्लुगंताल्लङि सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्। बाहुलकोऽडभावः। लिटि वा तुजादित्वादभ्यासदीर्घत्वं। हि चेति निघातप्रतिषेधः॥ किमर्थं। मेधसातये मेधस्य यागस्य संभजनार्थं॥ सनतेः क्तिनि जनसनखनामित्यात्वं। दासीभारादित्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं॥ हे मघवन् धनवन् गिर्वणो गीर्भिर्वननीय नोऽस्माकं हवं स्तोत्रं सर्वपूर्वोक्तगुणस्त्वं शृणुधि। शृणु। बुध्यस्व। वेनो न। वेनतिः कांतिकर्मा। यथा कांतो जाताभिलाषः पुरुषः कामयितव्यमैकाग्र्येण शृणोति तद्वत्॥ श्रुशृणुपृकृवृभ्य इति हेर्धित्वं। अन्येषामपीति सांहितिको दीर्घः॥

निरिं॑द्र बृह॒तीभ्यो॑ वृ॒त्रं धनु॑भ्यो अस्फुरः।
निरर्बु॑दस्य॒ मृग॑यस्य मा॒यिनो॒ निः पर्व॑तस्य॒ गा आ॑जः॥१९॥
निः। इं॒द्र॒। बृ॒ह॒तीभ्यः॑। वृ॒त्रं। धनु॑ऽभ्यः। अ॒स्फु॒रः॒।
निः। अर्बु॑दस्य। मृग॑यस्य। मा॒यिनः॑। निः। पर्व॑तस्य। गाः। आ॒जः॒॥१९॥

हे इंद्र वृत्रमावरकमसुरं बृहतीभ्यो महद्भ्यः॥ लिंगव्यत्ययः॥ धनुभ्यो धनुर्भ्यः कोदंडेभ्यः॥ छांदसो रेफलोपः। हेतौ पंचमी॥ महद्भिर्धनुर्भिर्हेतुभिर्निरस्फुरः। स्फुरतिर्वधकर्मा। निरवधीः। निःशेषेण हतवानसि। यद्वा। वृत्रमावरकं मेघं धनुभ्यः। धन्वंति गच्छंतीति धनव आपः। महतीभ्योऽद्भ्यः॥ तादर्थ्ये चतुर्थी॥ ईदृशीनामपां लाभार्थं निरवधीः। अपि च मायिनो मायाविनोऽर्बुदस्यैतत्संज्ञकस्यासुरस्य मृगयस्यैतत्संज्ञकस्य च॥ उभयत्र कर्मणि षष्ठी॥ इमावप्यसुरौ निरस्फुरः। निःशेषेणावधीः॥ मायाशब्दस्य व्रीह्यादिषु पाठात् व्रीह्यादिभ्यश्चेति मत्वर्थीयो विनिः॥ तथा पर्वतस्य वलनाम्नासुरेण गवामदर्शनाय निहितस्य गिरेः संबंधिनीर्गा बलेनापहृता निराजः। निरगमयः॥ अज गतिक्षेपणयोः॥

निर॒ग्नयो॑ रुरुचु॒र्निरु॒ सूर्यो॒ निः सोम॑ इंद्रि॒यो रसः॑।
निरं॒तरि॑क्षादधमो म॒हामहिं॑ कृ॒षे तदिं॑द्र॒ पौंस्य॑म्॥२०॥
निः। अ॒ग्नयः॑। रु॒रु॒चुः॒। निः। ऊं॒ इति॑। सूर्यः॑। निः। सोमः॑। इं॒द्रि॒यः। रसः॑।
निः। अं॒तरि॑क्षात्। अ॒ध॒मः॒। म॒हां। अहिं॑। कृ॒षे। तत्। इं॒द्र॒। पौंस्य॑म्॥२०॥

हे इंद्र महां महांतं कृत्स्नस्य जगतो व्यापकमहिमाहननशीलं वृत्रं यदा त्वमंतरिक्षादाकाशान्निरधमः

निरगमयः। धमतिर्गतिकर्मा। तत्तदानीं पौंस्यं वृत्रहननहेतुभूतं बलं कृषे। कुरुषे। पुरस्कुरुषे ॥ करोतेश्छांदसो विकरणस्य लुक् ॥ अमयश्च त्रिस्थानगता नी ररुचुः। निःशेषेण दिदीपिरे। सूर्यः प्रेरक आदित्योऽपि निःशेषेण दिदीपे। इंद्रिय इंद्रेण सेव्यो रसो रसात्मकोऽमृतमयः सोमश्च निःशेषेण दिदीपे। अग्न्यादयः सर्वे पूर्वं वृत्रेणावृतत्वान्निष्प्रभाः संत इदानीं तस्मिन्नावरके हते सम्यक् प्राकाशिषतेत्यर्थः ॥ ॥२८॥

यं मे दुरिंद्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानं ॥२१॥

यं। मे। दुः। इंद्रः। मरुतः। पाकऽस्थामा। कौरयाणः।
विश्वेषां। त्मना। शोभिष्ठं। उपऽइव। दिवि। धावमानं ॥२१॥

इदमादिकेन चतुर्ऋचेन कुरयाणपुत्रात्पाकस्थामनाम्नो राज्ञो दानं लब्ध्वा मेध्यातिथिस्तदीयं दानं स्तौति। यं यादृशं धनसंघं मह्यमिंद्रो मरुतश्च दुः दत्तवंतः तादृशमेव धनसमूहं कौरयाणः। शत्रून् प्रति युद्धाभिमुख्येन कृतं यानं हस्त्यश्वादिकं येनासौ कुरयाणः। तस्य पुत्रः कौरयाणः। पाकस्थामा। तिष्ठत्यनेनेति स्थाम बलं। परिपक्वबलः। एतत्संज्ञो राजा मह्यं प्रादात् ॥ ददातेर्लुङि गातिस्थेति सिचो लुक्। अडभावश्छांदसः ॥ कीदृशं धनसंघं। विश्वेषां सर्वेषां धनानां मध्ये त्मनात्मना स्वत एव शोभिष्ठमतिशयेन शोभावंतं ॥ मंत्रेष्वाङ्यादेरित्यात्मन आकारलोपः। शोभावच्छब्दादातिशायनिक इष्ठन्। विन्मतोर्लुक्। यस्येति लोपः ॥ अतिशयेन शोभावत्त्वे दृष्टांतः। दिव्याकाश उपेव धावमानं प्रभाभिरुपेतं शीघ्रगामिनं सूर्यमिव। शोभावत्तममित्यर्थः ॥

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्रां। अदाद्रायो विबोधनं ॥२२॥

रोहितं। मे। पाकऽस्थामा। सुऽधुरं। कक्ष्यऽप्रां। अदात्। रायः। विऽबोधनं ॥२२॥

पाकस्थामा राजा रोहितं लोहितवर्णं वृषभमश्वं वा मे मह्यमदात्। दत्तवान्। कीदृशं। सुधुरं शोभनधुरं शोभनवहनप्रदेशं ॥ ऋक्पूरब्धूः। पा॰ ५. ४. ७४.। इत्यकारः समासांतः। क्रत्वादयश्चेति बहुव्रीहावुत्तरपदाद्युदात्तत्वं ॥ कक्ष्यप्रां। कक्ष्या कक्षयोर्बाहुमूलयोर्बध्यमाना रज्जुः। तस्याः प्रातारं पूरयितारं। पीवरमित्यर्थः ॥ प्रा पूरणे ॥ रायो धनस्य विबोधनं विशेषेण बोधकं। बहुधनप्राप्तिहेतुमित्यर्थः ॥ ऊडिदमित्यादिना रायो विभक्तिरुदात्ता ॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहंति वह्नयः। अस्तं वयो न तुग्र्यं ॥२३॥

यस्मै। अन्ये। दश। प्रति। धुरं। वहंति। वह्नयः। अस्तं। वयः। न। तुग्र्यं ॥२३॥

पूर्वोक्त एवाश्वो विशेष्यते। यस्मै। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। यस्याश्वस्य वृषभस्य वा धुरं वोढव्यं युगधुरमन्ये प्रकृतादस्माद्विलक्षणा दशसंख्याका वह्नयो वोढारोऽश्वा बलीवर्दा वा प्रतिनिधयः संतो मां वोढुं वहंति बिभ्रति। बहूनामेकत्र वहने दृष्टांतः। अस्तं। अस्यते क्षिप्यते तस्मिन्पदार्थजातमित्यस्तं गृहं। प्रति वयो न गंतारोऽश्वा यथा तुग्र्यं तुग्रपुत्रं भुज्युं समुद्रतीरादवहन् तद्वत्। तादृशमश्वं मह्यं प्रादादिति पूर्वस्यामृच्यन्वयः ॥ भुज्योर्वहनं च नासत्या भुज्युमूहथुः। ऋ॰ १. ११६. ४.। इत्यादाववगंतव्यं। यद्वा। यस्मा इति कर्मणि चतुर्थी। यं रथमन्ये दशसंख्याका वह्नयो वोढारोऽश्वा धुरं वहनप्रदेशं प्रति गताः संतो वहंति तादृशं रथमपि मह्यं दत्तवानित्यर्थः ॥

आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यंजनं।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवं ॥२४॥

आत्मा । पितुः । तनूः । वासः । ओजःऽदाः । अभिऽअंजनं ।
तुरीयं । इत् । रोहितस्य । पाकऽस्थामानं । भोजं । दातारं । अब्रवं ॥२४॥

अयं पाकस्थामात्मा स्वयं पितुर्जनकस्य तनूस्तन्मयः । पिता यथा सन्मार्गवर्तितया प्रशस्त एवमयमपीत्यर्थः । तथा वासो वासयिता निवासयिता ॥ वासयतेरौणादिकोऽसुन् ॥ अभ्यंजनमभिव्यक्तं यथा भवति तथौजोदा ओजसो बलस्य दाता धारयिता वा । यद्वा । आत्मा सततगामी । पितुरित्यन्ननाम । व्याप्तमन्नं येन दत्तं । तनूर्विस्तृतं वासो वस्त्रमभ्यंजनमभ्यंजनसाधनं घृततैलादिकं च येन दत्तं । यश्चौजोदा बलस्य दातारं पाकस्थामानं तुरीयं स्वकीयप्रपितामहापेक्षया चतुर्थं यद्वा तुरीयं शत्रूणां तूर्वकं हिंसितारं भोजं शत्रूणां भोजयितारं रोहितस्य लोहितवर्णस्य पूर्वोक्तस्याश्वस्य दातारं एवंगुणकं पाकस्थामानमब्रवं । उक्तेन प्रकारेणास्तौषं । इदिति पूरकः ॥ ॥२९॥

यदिंद्रेत्येकविंशत्यर्चं चतुर्थं सूक्तं काण्वगोत्रस्य देवातिथेरार्षं । वृचाश्चिन्न इत्येषा पुरउष्णिक् शिष्टास्त्वयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः । स्थूरं राध इत्यादिभिस्तिसृभिः कुरुंगदानस्य स्तूयमानत्वात्तास्तद्देवताकाः । तत्पूर्वाः पंचदश्याद्यास्तस्रः पूषदेवताका इंद्रदेवताका वा शिष्टा ऐंद्र्यः । तथा चानुक्रांतं । यदिंद्र सैका देवातिथिस्तृचोऽंत्यः पुरउष्णिगंतः कुरुंगस्य दानस्तुतिस्तत्पूर्वास्तस्रः पौष्ण्यो वेति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावाद्यास्तुर्दशर्चः शंसनीयाः । तथैव पंचमारण्यके । यदिंद्र प्रागपागुदगिति चतुर्दश । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने सवनेऽच्छावाकशस्त्र आद्यः प्रगाथो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूत्र्यते हि । यदिंद्र प्रागपागुदग्यथा गौरो अपा कृतं । आ० ७. ४. । इति ॥

यदिंद्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥
यत् । इंद्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । हूयसे । नृऽभिः ।
सिम । पुरु । नृऽसूतः । असि । आनवे । असि । प्रऽशर्ध । तुर्वशे ॥१॥

हे इंद्र यद्यदि प्राक्प्राच्यां दिशि वर्तमानैः ॥ सप्तम्यंताद्दिक्छब्दाद्विहितस्यास्तातेरंचेर्लुक् । पा० ५. ३. ३०. । इति लुक् ॥ अपाक्प्रतीच्यां दिशि वर्तमानैः । यदि वोदगुदीच्यां दिशि वर्तमानैः । यद्वा न्यङ्नीच्यां दिश्यधस्ताद्वर्तमानैः ॥ न्यधी इति नेः प्रकृतिस्वरत्वं । उदात्तस्वरितयोर्यण इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं ॥ एवंभूतैर्नृभिः स्तोतृभिस्त्वं ह्वयसे स्वस्वकार्यायाह्वयसे हे सिम श्रेष्ठेंद्र । सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षत इति वाजसनेयकं । यद्यप्येवं बहुभिराह्वयसे तथाप्यानवे । आनुर्नाम राजा । तस्य पुत्रे राजर्षौ पुरु बहुलं नृषूतो नृभिस्तदीयैः स्तोतृभिः प्रेरितोऽसि । भवसि । राज्ञो हितकरणे त्वां स्तोतारः प्रेरयंतीत्यर्थः ॥ षू प्रेरणे । अस्मात्कर्मणि निष्ठा । तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥ अपि च हे प्रशर्ध प्रकर्षेण शर्धयितरभिभवितरिंद्र तुर्वश एतत्संज्ञे च राजनि नृषूतोऽसि । नृभिः प्रेरितो भवसि ॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इंद्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इंद्रा यच्छंत्या गहि ॥२॥
यत् । वा । रुमे । रुशमे । श्यावके । कृपे । इंद्र । मादयसे । सचा ।
कण्वासः । त्वा । ब्रह्मऽभिः । स्तोमऽवाहसः । इंद्र । आ । यच्छंति । आ । गहि ॥२॥

यद्वा यद्यपि रुमादिषु चतुर्षु राजसु हे इंद्र त्वं सचा सह मादयसे माद्यसि तथापि स्तोमवाहसः स्तोमानां स्तोत्राणां वोढारः कण्वासः कण्वगोत्रा ऋषयो ब्रह्मभिः परिवृढैर्मंत्रैर्हविर्भिर्वा हे इंद्र त्वामा

यच्छंति । आगमयंति । यद्वा । द्वितीयार्थे तृतीया । ब्रह्मभिर्ब्रह्माणि हवींष्याभिमुख्येन प्रयच्छंति । ददति ॥ दाण् दाने । पाघ्रेत्यादिना यच्छादेशः ॥ अतस्त्वमा गहि । शीघ्रमागच्छ ॥ गमेर्लोटि छांदसः शपो लुक् ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्रे यथेति प्रगाथोऽनुरूपः । सूचितं च । यथा गौरो अपा कृतमित्यच्छावाकस्य । आ० ७.४. । इति ॥

यथा॑ गौ॒रो अ॒पा कृ॒तं तृष्य॒न्नेत्यवेरि॑णं ।
आ॒पि॒त्वे नः॑ प्रपि॒त्वे तूय॒मा ग॑हि॒ कण्वे॑षु॒ सु सचा॒ पिब॑ ॥३॥
यथा॑ । गौ॒रः । अ॒पा । कृ॒तं । तृष्य॑न् । एति॑ । अव॑ । इरि॑णं ।
आ॒ऽपि॒त्वे । नः॒ । प्र॒ऽपि॒त्वे । तूयं॑ । आ । ग॒हि॒ । कण्वे॑षु । सु । सचा॑ । पिब॑ ॥३॥

गौरो गौरमृगस्तृष्यन् पिपासन्नपाप्सिद्धदकैः ॥ व्यत्ययेनैकवचनं । ऊडिदमित्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वं ॥ कृतं संपूर्णं कृतमिरिणं निम्नगं तटाकदेशं यथा येन प्रकारेणावैति अवगच्छति । अवशब्दोऽभिशब्दस्यार्थे । अभिमुखः सञ्छीघ्रं गच्छति तथापित्वे बंधुत्वे प्रपित्वे प्राप्ते सति हे इंद्र त्वं नोऽस्मांस्तूयं । क्षिप्रनामैतत् । शीघ्रमा गहि । आगच्छ । आगत्य च कण्वेषु कण्वपुत्रेष्वस्मासु सचा सहैकयत्नेनैव विद्यमानं सर्वं सोमं सु सुष्ठु पिब ॥

मंदं॑तु त्वा मघवन्निंद्रें॒दवो॑ राधो॒देया॑य सुन्व॒ते ।
आ॒मुष्या॒ सोम॑मपिबश्च॒मू सु॒तं ज्येष्ठं॒ तद्द॑धिषे॒ सहः॑ ॥४॥
मंदं॑तु । त्वा॒ । म॒घ॒ऽव॒न् । इं॒द्र॒ । इंद॑वः । रा॒धः॒ऽदेया॑य । सु॒न्व॒ते ।
आ॒ऽमुष्य॑ । सोमं॑ । अ॒पि॒बः॒ । च॒मू इति॑ । सु॒तं । ज्येष्ठं॑ । तत् । द॒धि॒षे॒ । सहः॑ ॥४॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र इंदवः क्लेदनाः सोमास्त्वां मंदंतु । मादयंतु । हर्षयंतु ॥ मदेर्व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ किमर्थं । सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय राधोदेयाय राधसो धनस्य दानार्थं ॥ ददातेरचो यदिति भावे यत् । ईद्यतीतीकारः । यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वं । शतुरनुम इति सुन्वच्छब्दात्परा विभक्तिरुदात्ता ॥ अपि च त्वं सोममामुष्यामोषणं कृत्वादत्तमपि बलादपहृत्यापिबः । पीतवानसि । स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् । तै० सं० २.४.१२.१. । इति श्रुतेः । कीदृशं सोमं । चमू चम्वोरधिषवणफलकयोः सुतमभिषुतं । यद्वा । चमूभ्यां चमसाभ्यां होतुर्मैत्रावरुणस्य च संबंधिभ्यां संस्कृताभिर्वसतीवरीभिः सुतमभिषुतं । यस्मादेवं तत्तस्मात्कारणाज्ज्येष्ठं प्रशस्यतमं वृद्धतमं वा सहो बलं दधिषे । हे इंद्र त्वं धारयसि । अतो मदीया अपि सोमास्त्वां मादयंत्विति प्रार्थ्यते ॥

प्र च॑क्रे॒ सह॑सा॒ सहो॑ ब॒भंज॑ म॒न्युमोज॑सा ।
विश्वे॑ त इंद्र पृतना॒यवो॑ यहो॒ नि वृ॒क्षा इ॑व येमिरे ॥५॥
प्र । च॒क्रे॒ । सह॑सा । सहः॑ । ब॒भंज॑ । म॒न्युं । ओज॑सा ।
विश्वे॑ । ते॒ । इं॒द्र॒ । पृ॒त॒ना॒ऽयवः॑ । य॒हो॒ इति॑ । नि । वृ॒क्षाःऽइ॑व । ये॒मि॒रे॒ ॥५॥

स इंद्रः सहसात्मीयेनाभिभवेन वीर्यकर्मणा सहः शत्रूणामभिभवनं प्र चक्रे । प्रकर्षेण कृतवान् । तथौजसा बलेन मन्युं परकीयं क्रोधं बभंज । भग्नवान् । उत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । हे यहो । महन्नामैतत् । हे महन्निंद्र विश्वे सर्वे पृतनायवो युद्धकामाः शत्रवस्ते त्वया वृक्षा इव महीरुहा इव नि येमिरे । नियता आसन् । यथा वृक्षा निश्चलास्तिष्ठंति तद्वन्निर्व्यापारा अभूवन्नित्यर्थः ॥ ॥३०॥

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिं ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥
सहस्रेणऽइव । सचते । यविऽयुधा । यः । ते । आनट् । उपऽस्तुतिं ।
पुत्रं । प्रावर्गं । कृणुते । सुऽवीर्ये । दाश्नोति । नमउक्तिऽभिः ॥ ६ ॥

हे इंद्र ते तवोपस्तुतिं स्तोत्रं यः पुरुष आनट् प्राप्नोति त्वां प्रापयति ॥ अश्नोतेर्लङि व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ - - - सचते । समवैति ॥ षच समवाये ॥ सहस्रेणेव यथा सहस्रसंख्येन बलेन तथेत्यर्थः । यश्च यजमानो नमउक्तिभिर्नमस्कारवचनैः स्तोत्रैः सार्धं दाश्नोति हवींषि तुभ्यं ददाति ॥ दाशृ दाने ॥ स यजमानः सुवीर्ये शोभनवीर्ययुक्ते संग्रामे प्रावर्गं प्रकर्षेण शत्रूणां वर्जयितारं पुत्रं कृणुते । करोति । उत्पादयति । त्वत्प्रसादाल्लभत इत्यर्थः ॥ प्रपूर्वाद्वृजेः कृत्यल्युटो बहुलमिति कर्तरि घञ् । उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये । पा॰ ६. ३. १२२. । इति दीर्घः । थाथादिनोत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ यद्वा । सुवीर्य इत्येतत्पुत्रस्य विशेषणं । द्वितीयार्थे सप्तमी । शोभनवीर्यं पुत्रं ॥ बहुव्रीहौ वीरवीर्यौ चेत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वं ॥

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुं ॥ ७ ॥
मा । भेम । मा । श्रमिष्म । उग्रस्य । सख्ये । तव ।
महत् । ते । वृष्णः । अभिऽचक्ष्यं । कृतं । पश्येम । तुर्वशं । यदुं ॥ ७ ॥

हे इंद्र उग्रस्योद्गूर्णबलस्य तव सख्ये सखित्वे सति वयं मा भेम । मा भैष्म । कुतश्चिदपि शत्रोर्भीता मा भूम । मा श्रमिष्म । श्रांताः पीडिताश्च मा भूम । वृष्णः कामानां वर्षितुस्ते तव संबंधि महत्प्रभूतं कृतं वृत्रवधादिलक्षणं कर्माभिचक्ष्यं । अभितः ख्यापनीयं स्तोतव्यं । अतो महानुभावस्य तव सख्यं प्राप्तानां भीतिश्रमौ न जायेते इत्यर्थः । तत्कथमवगम्यत इति चेत् उच्यते । तुर्वशमेतत्संज्ञं राजर्षिं यदुमेतत्संज्ञं च त्वत्प्रसादात्सुखेन जीवंतौ पश्येम । दृष्टवंतः खलु वयं । अतः कारणात्त्वत्सख्यं प्राप्तस्य भयादिकं न जायत इत्येतदुपपन्नमित्यर्थः ॥

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ ८ ॥
सव्यां । अनु । स्फिग्यं । ववसे । वृषा । न । दानः । अस्य । रोषति ।
मध्वा । संऽपृक्ताः । सारघेण । धेनवः । तूयं । आ । इहि । द्रव । पिब ॥ ८ ॥

वृषा कामानां वर्षितेंद्रः सव्यां दक्षिणेतरां स्फिग्यं कटिप्रदेशमनु ॥ तृतीयार्थेऽनोः कर्मप्रवचनीयत्वं ॥ सव्यया स्फिग्या शरीरैकदेशेनैव वावसे । वस्ते । सर्वभूतजातमाच्छादयति । स्वयं कृत्स्नं जगदतीत्य वर्तत इत्यर्थः । निगमांतरं च भवति । यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः । ऋ॰ ३. ३२. ११. । इति । अपि च दानोऽवखंडयिता ॥ दाप् अवखंडने । पचाद्यच् ॥ स चास्येममिंद्रं न रोषति । न हिनस्ति ॥ रिष रुष हिंसायां ॥ इंद्रं हिंसितुं शक्तः कश्चिदपि नास्तीत्यर्थः । यद्वा । दानो हविषां दाता यजमानश्चास्येंद्रस्य न रोषति । रोषं न जनयति । सर्वदा हविर्भिः परिचरतीत्यर्थः । उत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । सारघेण । सरघा मधुमक्षिका । तत्संबंधिना मध्वा मधुना । लुप्तोपममेतत् । मधुनेव रसवता क्षीरादिना श्रयणद्रव्येण संपृक्ताः संस्पृष्टाः संस्कृता धेनवो धेनुवत् प्रीतिजनका अस्मदीयाः सोमाः । यद्वा । धिवेः प्रीणनार्थाद्धेनवः । प्रीणयितार इत्यर्थः । यत एवमतः कारणात् हे इंद्र तूयं क्षिप्रमेहि । अस्मत्समीपमागच्छ । आगत्य च द्रव । सोमा यस्मि-

न्नुत्तरवेदिलक्षणे स्थाने ह्रयते तं देशं शीघ्रं गच्छ ॥ द्रु गताविति धातुः । द्व्यचोऽतस्तिङ इति सांहितिको दीर्घः ॥ तदनंतरमध्वर्युणा दत्तं सोमं पिब । तेन सोमेन सम्यक् स्वोदरं पूरयेत्यर्थः ॥

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिंद्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चंद्रो याति सभामुप ॥९॥
अश्वी । रथी । सुऽरूपः । इत् । गोऽमान् । इत् । इंद्र । ते । सखा ।
श्वात्रऽभाजा । वयसा । सचते । सदा । चंद्रः । याति । सभां । उप ॥९॥

हे इंद्र ते तव सखा मित्रभूतः पुरुषोऽश्व्यादिगुणविशिष्ट एव भवति । इच्छब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । अश्वीद्वहुभिरश्वैरुपेत एव भवति । न कदाचिदश्वैर्वियुज्यते । रथी रथवानेव स भवति । सुरूप इच्छोभनरूपः शोभनावयव एव स भवति । गोमाँ इद्बह्वीभिर्गोभिर्युक्त एव स भवति । न कदाचिदेतैर्वियुज्यत इत्यर्थः । अपि च श्वात्रभाजा । श्वात्रमिति धननाम । आश्वतनीयं शीघ्रं प्राप्तव्यं शोभनं धनं संभजतेदृग्धनसंयुक्तेन वयसा । अन्ननामैतत् । अन्नेन स सर्वदा सचते । समवैति । संगच्छते ॥ षच समवाये ॥ अत एव चंद्रः सर्वेषामाह्लादकः सन् सभां जनसंसदमुप याति । उपगच्छति ॥

ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१०॥
ऋश्यः । न । तृष्यन् । अवऽपानं । आ । गहि । पिब । सोमं । वशान् । अनु ।
निऽमेघमानः । मघऽवन् । दिवेऽदिवे । ओजिष्ठं । दधिषे । सहः ॥१०॥

हे इंद्र ऋश्यो गर्श्याख्यो मृग इव तृष्यन् पिपासंस्त्वमवपानमवनीतं ग्रहचमसादिषु पात्रेष्वानीतं पातव्यं सोममा गहि । अभिगच्छ । गत्वा च तमस्मदीयं सोमं वशाँ अन्वनुकामं यथाकामं पिब । यावता पीतेन पर्याप्तिर्जायते तावता सोमेन स्वोदरं पूरयेत्यर्थः । अत एव सोमपानात् प्राप्तबलस्त्वं दिवे दिवे प्रतिदिवसं निमेघमानो न्यंच्यवाङ्मुखानि वृष्ट्युदकानि सिंचन् हे मघवन्निंद्र ओजिष्ठमोजस्वितममुद्गूर्णतमं सहो बलं दधिषे । धारयसि ॥ ओजस्विशब्दादिष्ठनि विन्मतोर्लुगिति विनो लुक् । टेरिति टिलोपः ॥ ॥३१॥

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिंद्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११॥
अध्वर्यो इति । द्रवय । त्वं । सोमं । इंद्रः । पिपासति ।
उप । नूनं । युयुजे । वृषणा । हरी इति । आ । च । जगाम । वृत्रऽहा ॥११॥

हे अध्वर्यो अध्वरस्य नेतः त्वं सोमं द्रावय । उत्तरवेदिलक्षणं स्थानं प्रापय । यद्वा । रसात्मना द्रवणशीलं कुरु । अभिषुणुहीत्यर्थः । किं कारणमिति चेत् । इंद्रः पिपासति । इमं सोमं पातुमिच्छति । त्वयैतत्कथमवगतमिति चेत् तत्राह । वृषणा वर्षितारौ युवानौ वा हरी अश्वौ नूनमद्य युयुजे । उपगम्य सारथियोजितवानस्थे । वृत्रहा वृत्रस्य हंतेंद्रश्चा जगाम । आगतवान् ॥

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृंपसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२॥

स्वयं। चित्। सः। मन्यते। दाशुरिः। जनः। यत्र। सोमस्य। तृंपसि।
इदं। ते। अन्नं। युज्यं। संऽउक्षितं। तस्य। आ। इहि। प्र। द्रव। पिब ॥१२॥

दाशुरिर्दाश्वान् ॥ दाशतेरौणादिक उरिन् ॥ हविषां दाता स यजमानलक्षणो जनः स्वयं चित् स्वयमेवात्मनैव मन्यते। सर्वं जानाति। परायत्तप्रज्ञो न भवतीत्यर्थः। यत्र यस्मिञ्जने सोमस्य पानेन हे इंद्र त्वं तृंपसि तृप्यसि ॥ तृप तृन्फ तृप्तौ। तौदादिकः। शे तृन्फादीनां। पा॰ ७. १. ५९. १.। इति नुम् ॥ ते त्वदीयं युज्यं योग्यमिदमस्मदीयं सोमलक्षणमन्नं समुक्षितं सम्यक् पात्रेष्वासिक्तं ॥ उक्ष सेचने। कर्मणि निष्ठा। गतिरनंतर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वं ॥ अतस्त्वं तादृशं सोममेहि। अभिगच्छ। प्र द्रव। शीघ्रं प्राप्नुहि। तदनंतरं पिब। पानं कुरु ॥

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिंद्राय सोतन।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वंतो दाश्वध्वरं ॥१३॥
रथेऽस्थाय। अध्वर्यवः। सोमं। इंद्राय। सोतन।
अधि। ब्रध्नस्य। अद्रयः। वि। चक्षते। सुन्वंतः। दाशुऽअध्वरं ॥१३॥

रथेष्ठाय। रथे तिष्ठतीति रथेष्ठः ॥ सुपि स्थ इति कप्रत्ययः। तत्पुरुषे कृति बहुलमिति सप्तम्या अलुक् ॥ एवंलक्षणायेंद्राय हे अध्वर्यवः सोमं सोतन। अभिषुणुत ॥ षुञ् अभिषवे। तप्तनप्तनथनाश्चेति तनबादेशः ॥ ब्रध्नस्य बुध्नस्य मूलस्याभिषवार्थं चर्मणि स्थापितस्योपराख्यस्य विस्तृतस्याश्मनोऽध्युपर्यद्रयोऽन्ये ग्रावाणश्चतसृषु दिक्षु वर्तमाना दाश्वध्वरं दाशोर्दातुर्यजमानस्याध्वरो यागो येन निष्पद्यते तादृशं सोमं सुन्वंत ऋत्विग्भिरपेक्षं स्वयमेवाभिषुण्वंतो वि चक्षते। विशेषेण प्रकाशंते। सोमाभिषवेऽतिशयेनानुकूला वर्तंत इत्यर्थः। अथवाद्रयस्तैरद्रिभिर्हे अध्वर्यवः सोममभिषुणुतेति योज्यं ॥

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इंद्रमपसु वक्षतः।
अर्वाचं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहंतु सवनेदुप ॥१४॥
उप। ब्रध्नं। ववाता। वृषणा। हरी इति। इंद्रं। अपऽसु। वक्षतः।
अर्वाचं। त्वा। सप्तयः। अध्वरऽश्रियः। वहंतु। सवना। इत्। उप ॥१४॥

ब्रध्नमंतरिक्षं वावाता संभक्तवंतौ ॥ वनतेर्निष्ठायां छांदसं द्विर्वचनमिडभाव आत्वं धातुस्वरश्च। अन्येषामपि दृश्यत इति सांहितिकोऽभ्यासदीर्घः ॥ यद्वा। वावाता पुनःपुनर्गंतौ ॥ वा गतिगंधनयोः। अस्माद्यङ्लुगंतात्कर्तरि निष्ठा ॥ वृषणा वृषणौ सेक्तारौ हरी हरणशीलावश्वावुक्तगुणौ संतावपस्वस्मदीयेषु कर्मसु ॥ अपस्शब्दः सकारांतः कर्मवचनः। पीवोपवसनानां छंदसि लोपो वक्तव्यः। म॰ ६. ३. १०९. ६.। इतीह सकारो लुप्यते ॥ तवेममिंद्रमुप वक्षतः। उपवहतां। उपानयतां ॥ वहतेर्लेट्यडागमः। सिब्बहुलमिति सिप् ॥ अपि चाध्वरश्रियोऽध्वरं सेवमानाः सप्तयः सर्पणशीला अन्येऽपि त्वदीया अश्वाः सवना सवनानि प्रातःसवनादीन्यस्मद्यागसंबंधीनि प्रति हे इंद्र त्वामर्वाचमभिमुखमुप वहंतु। उपगमयंतु। इदिति पूरकः ॥

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुं।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥
प्र। पूषणं। वृणीमहे। युज्याय। पुरुऽवसुं।
सः। शक्र। शिक्ष। पुरुऽहूत। नः। धिया। तुजे। राये। विऽमोचन ॥१५॥

इदमाद्यासु चतसृषु पूष्ण इंद्रस्य च लिंगसद्भावादेता उभयथा व्याख्यायंते । पुरूवसुं बहुधनं पूषणं पोषकमिंद्रं यद्वैतत्संज्ञं देवं प्र वृणीमहे । प्रकर्षेण संभजामहे । किमर्थं । युज्याय । युंक्त इति युङ् सखा । तस्य भावाय । सखित्वायेत्यर्थः । हे शक्र शक्त पुरुहूत बहुभिराहूत हे विमोचन पापाद्विमोचयितरिंद्र पूषन्वा स त्वं नोऽस्मान् धियात्मीयया बुद्ध्या शिक्ष । शक्तान् कर्तुमिच्छ । किमर्थं । राये धनाय धनप्राप्त्यर्थं तुजे शत्रूंस्तोजयितुं हिंसितुं ॥ तुज हिंसायां । अस्मात्कृत्यार्थे केन्प्रत्ययः ॥ यद्वा । राय इति क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । जातावेकवचनं ॥ रायो धनानि धिया स्तुत्या प्रीतः सन्नोऽस्मभ्यं शिक्ष । देहि ॥ शिक्षतिर्दानकर्मा । ऊडिदमिति रायो विभक्तिरुदात्ता ॥ ॥३२॥

सं नः॑ शिशीहि भु॒रिजो॑रिव क्षु॒रं रास्व॑ रा॒यो वि॑मोचन ।
त्वे तन्नः॑ सु॒वेद॑मु॒स्रियं॒ वसु॒ यं त्वं हि॒नोषि॒ मर्त्यं॑ ॥१६॥
सं । नः॒ । शि॒शी॒हि॒ । भु॒रिजोः॑ऽइव । क्षु॒रं । रास्व॑ । रा॒यः । वि॒ऽमो॒च॒न॒ ।
त्वे इति॑ । तत् । नः॒ । सु॒ऽवेदं॑ । उ॒स्रियं॑ । वसु॑ । यं । त्वं । हि॒नोषि॑ । मर्त्यं॑ ॥१६॥

हे इंद्र पूषन्वा नोऽस्मान् सं शिशीहि । सम्यक्छिक्ष । तीक्ष्णबुद्धीन् कुरु । भुरिजोरिव । बाहुनामैतत् । नापितस्य बाह्वोरिव स्थितं क्षुरमिव । अपि च हे विमोचन पापाद्विमोचन पापाद्विमोचयितः रायो धनानि रास्व । अस्मभ्यं देहि ॥ रा दाने ॥ तत्कस्य हेतोः । त्वे त्वयि खलूस्रियं । उस्रा गावः । तत्संबद्धं तद्वसु निवासकं धनं नोऽस्माकं सुवेदं सुलभं नान्येषु देवेषु । यं धनसमूहं मर्त्यं मनुष्यं स्तोतारं प्रति त्वं हिनोषि प्रेरयसि तद्वसु त्वयीत्यन्वयः । यत एवं तस्माद्रास्वेति योज्यं ॥

वेमि॑ त्वा पूषन्नृ॒ञ्जसे॒ वेमि॒ स्तोत॑व आघृणे ।
न तस्य॑ वेम्यर॒णं हि तद्व॑सो स्तु॒षे प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥१७॥
वेमि॑ । त्वा॒ । पू॒ष॒न् । ऋ॒ञ्जसे॑ । वेमि॑ । स्तोत॑वे । आ॒घृ॒णे॒ ।
न । तस्य॑ । वे॒मि॒ । अ॒र॒णं । हि । तत् । व॒सो॒ इति॑ । स्तु॒षे । प॒ज्राय॑ । साम्ने॑ ॥१७॥

हे पूषन् पोषकेंद्र एतत्संज्ञ वा देव त्वा त्वामृंजसे प्रसाधयितुं वेमि । कामये । आघृणे आगतदीप्ते स्तोतवे त्वां स्तोतुं वेमि । कामये । यत्त्वद्व्यतिरिक्तं देवतांतरं तस्य स्तोत्रं न वेमि । न कामये । तत्कुत इति चेत् । हि यस्मादरणमरमणमसुखकरं । अतस्त्वामेव स्तोतुं कामय इत्यर्थः । हे वसो वासक स्तुषे स्तुवते पज्राय प्रार्जकाय स्तोत्राणां साम्ने । साम स्तोत्रं । सामर्थ्यादच तद्वानुँच्यते । तद्वते । यद्वा । पज्र इति कक्षीवत आख्या । आम्नातं हि । यद्वां पज्रासो अश्विना हवंते । ऋ॰ १. ११७. १०. । इति । तस्मै कक्षीवत इव मह्यं । सामर्थ्यादुपमार्थो लभ्यते । अपेक्षितं धनं देहीति शेषः ॥

परा॒ गावो॒ यव॑सं॒ कच्चि॑दाघृणे॒ नित्यं॒ रेक्णो॑ अमर्त्य ।
अ॒स्माकं॑ पूषन्नवि॒ता शि॒वो भ॑व॒ मंहि॑ष्ठो॒ वाज॑सातये ॥१८॥
परा॑ । गावः॑ । यव॑सं । कत् । चि॒त् । आ॒घृ॒णे॒ । नित्यं॑ । रेक्णः॑ । अ॒म॒र्त्य॒ ।
अ॒स्माकं॑ । पू॒ष॒न् । अ॒वि॒ता । शि॒वः । भ॒व॒ । मंहि॑ष्ठः । वाज॑ऽसातये ॥१८॥

हे आघृण आगतदीप्ते पूषन्निंद्र वा कच्चित् कस्मिंश्चित्कालेऽस्मदीया गावो यवसं तृणं भक्षितुं परा गच्छंति । हे अमर्त्यामरण देव तदा गीं रेक्णस्तन्नोरूपं धनं नित्यमस्माकं ध्रुवमस्तु । चोरव्याघ्रादिभिर्हिंसितं मा भूत् । अपि च हे पूषन् पोषयितः अस्माकमविता रक्षिता भूत्वा शिवः सुखकरो भव । तथा वाजसातये वाजस्यान्नस्य बलस्य वा संभजनार्थं मंहिष्ठो दातृतमो भव ॥

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुंगस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥१९॥
स्थूरं । राधः । शतऽअश्वं । कुरुंगस्य । दिविष्टिषु ।
राज्ञः । त्वेषस्य । सुऽभगस्य । रातिषु । तुर्वशेषु । अमन्महि ॥१९॥

इदमादिकेन तृचेन देवातिथिः कुरुंगनाम्नो राज्ञो दानं स्तौति । कुरुंगस्य । कुत्सितं गच्छति कुत्सं गच्छतीति वा कुरुंगः ॥ डोऽन्यत्रापि दृश्यत इति गमेर्डः । पृषोदरादिः ॥ एतत्संज्ञस्य त्वेषस्य दीप्तस्य सुभगस्य शोभनधनस्य एवंभूतस्य राज्ञः संबंधिनीषु दिविष्टिषु दिवः स्वर्गस्यैषणीषु प्राप्तिहेतुभूतासु यागक्रियासु रातिषु दानेषु दक्षिणारूपेषु सत्सु तुर्वशेषु । मनुष्यनामैतत् ॥ निर्धारणे सप्तमी ॥ मनुष्येषु मध्ये वयं स्थूरं स्थूलं प्रभूतं शताश्वमश्वानां शतेन युक्तं राधो धनममन्महि । अज्ञासिष्म । अलभामहीत्यर्थः ॥

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥२०॥
धीभिः । सातानि । काण्वस्य । वाजिनः । प्रियऽमेधैः । अभिद्युऽभिः ।
षष्टिं । सहस्रा । अनु । निःऽमजां । अजे । निः । यूथानि । गवां । ऋषिः ॥२०॥

काण्वस्य कण्वपुत्रस्य वाजिनो हविष्मतो मेधातिथेः संबंधिभिर्धीभिर्ध्यातृभिः स्तोतृभिः सातानि संभक्तान्यभिद्युभिरभिगतदीप्तिभिः प्रियमेधैरेतत्संज्ञैरृषिभिः सेवितानि निर्मजां निःशेषेण शुद्धानां गवां षष्टिं सहस्रा षष्टिसंख्याकानि सहस्राणि यूथान्यृषिर्देवातिथिरहमनु पश्चात् निरजे । निःशेषेणागच्छं । साकल्येन प्राप्तवानस्मि ॥ अज गतिक्षेपणयोः ॥ यथा प्रियमेधानां काण्वानां च गवां यूथानि राज्ञा दत्तानि तत्प्रतिगृहीतं एवं तेन दत्तानि मया प्रतिगृह्यंत इत्यर्थः ॥

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः । गां भजंत मेहनाश्वं भजंत मेहना ॥२१॥
वृक्षाः । चित् । मे । अभिऽपित्वे । अरारणुः । गां । भजंत । मेहना । अश्वं । भजंत ।
मेहना ॥२१॥

मे मयाभिपित्वे पूर्वोक्ते धनेऽभिप्राप्ते सति वृक्षाश्चिद्वृक्षा अप्यरारणुः । अशब्दयन् । कथमिति तदाह । इम ऋषयो मेहना मंहनीयां प्रशस्यां गां भजंत । असेवंत । अलभंत । मेहना मंहनीयमश्वं च भजंत । अलभंतेति ॥ गामश्वमिति जात्यभिप्रायमेकवचनं ॥ यद्वा । मेहनेति म इह नेति पदत्रयात्मकमेकं पदं । यदाह यास्कः । यदिंद्र चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनमस्ति । यन्म इह नास्तीति वा त्रीणि मध्यमानि पदानि ।नि॰ ४. ४.। तदेवं व्याख्येयं । इम ऋषयो गामश्वं चालभंत । इहास्मिन्राजनि प्रशस्तस्य धनस्य तद्दानं मम नासीन्मम नासीदिति वृक्षप्रमुखा सर्वेऽपि जनाः प्रोचुरित्यर्थः ॥ ॥३३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथाष्टमो व्याख्यातुमारभ्यते। अष्टमे मंडले प्रथमेऽनुवाके चत्वारि सूक्तानि व्याख्यातानि। दूरादित्येकोनचत्वारिंशदृचं पंचमं सूक्तं कण्वगोत्रस्य ब्रह्मातिथेरार्षं। आदितः षट्त्रिंशद्गायत्र्यः। ततो द्वे बृहत्यौ। अंतिमानुष्टुप्। अंत्येषु पंचस्वर्धर्चेषु चेदिपुत्रस्य कशुनाम्नो राज्ञो दानं स्तूयते। अतस्तद्देवताकाः। शिष्टा आश्विन्यः। तथा चानुक्रांतं। दूरादेकान्नचत्वारिंशद्ब्रह्मातिथिराश्विनं द्विबृहत्यनुष्टुबंतमंत्याः पंचार्धर्चाश्चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिरिति ॥ प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्रयोराश्विने क्रतौ गायत्रे छंदस्यंत्यतृचवर्जमिदं सूक्तं। सूत्र्यते हि। दूरादिहेवेति तिस्र उत्तमा उद्धरेत्। आ॰ ४. १५.। इति ॥

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत्। वि भानुं विश्वधातनत् ॥१॥
दूरात्। इहऽइव। यत्। सती। अरुणऽप्सुः। अशिश्वितत्। वि। भानुं। विश्वधा। अतनत् ॥१॥

दूराद्दूरत एव विप्रकृष्ट एव नभसः प्राक्प्रदेशे वर्तमानेहेव सतीह समीपे विद्यमानेव ॥ अस्तेः शतरि श्नसोरल्लोप उगितश्चेति ङीप्। शतुरनुम इति नद्या उदात्तत्वं ॥ अरुणप्सुरारोचमानरूपा ईदृश्युषा यद्यदाशिश्वितत् अश्वेतयत् ॥ श्विता वर्णे। अस्माण्णयंताल्लुङि चङि रूपं। यद्वृत्तान्नित्यमिति निघातप्रतिषेधः ॥ तदा भानुं दीप्तिं विश्वधा बहुविधं व्यतनत्। विस्तारितवती ॥ तनोतेर्व्यत्ययेन शप् ॥ ईदृशीमुषसं हे अश्विनौ सचेथे इत्युत्तरयैकवाक्यता। यद्वा। प्रातरनुवाक्य उषस्येन कांडेनोषाः स्तुता सती प्रादुर्बभूव। हे अश्विनौ शंसिष्यमाणमाश्विनं क्रतुं श्रोतुं युवामपि प्रादुर्भवतमित्यध्याहारेण वाक्यं पूरणीयं ॥

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा। सचेथे अश्विनोषसं ॥२॥
नृऽवत्। दस्रा। मनःऽयुजा। रथेन। पृथुऽपाजसा। सचेथे इति। अश्विना। उषसं ॥२॥

हे दस्रा दस्रौ दर्शनीयौ शत्रूणामुपक्षपयितारौ वा ॥ सुपां सुलुगित्याकारः ॥ ईदृशौ हे अश्विनाश्विनौ नृवन्नृभिर्नेतृभिस्तुल्यं वर्तमानौ युवां ॥ तेन तुल्यमिति प्रथमार्थे वतिः ॥ यद्वा। नृवतीं ॥ नृशब्दान्मतुप्छांदसत्वं। रश्रुतिसामान्याद्वा छंदसीर इति वत्वं। ङीपश्छांदसो लुक्। ह्रस्वनुड्भ्यां मतुबिति मतुप उदात्तत्वं ॥ ईदृशीमुषसं रथेनात्मीयेन वाहनेन सचेथे। सम्यगागच्छथः ॥ षच समवाये ॥ यद्वा। सचतिः सेवनार्थः। सचेथे। सेवेथे। तदाह यास्कः। सचस्वा नः स्वस्तये सेवस्व नः स्वस्तये। नि॰ ३. २१.। इति। कीदृशेन रथेन। मनोयुजा मनसैव व्यापारांतरनिरपेक्षेण स्मरणमात्रेणाश्वैर्युज्यमानेन पृथुपाजसा विस्तीर्णबलेन बह्वन्नेन वा। उषसोऽनंतरमश्विनोः स्तूयमानत्वात्तामश्विनौ गच्छत इत्युच्यते ॥

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत। वाचं दूतो यथोहिषे ॥३॥
युवाभ्यां। वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू। प्रति। स्तोमाः। अदृक्षत। वाचं।
दूतः। यथा। ओहिषे ॥३॥

हे वाजिनीवसू। वाजो हविर्लक्षणमन्नं। तद्युक्ता यागक्रिया वाजिनी। तस्यां वसु धनं ययोरस्ति तौ तथोक्तौ। यद्वा। अन्नयुक्तं स्तोतृभ्यो देयं वसु धनं ययोरस्ति तादृशौ। हे अश्विनौ युवाभ्यां स्तोमा अस्माभिः कृतानि स्तोत्राणि प्रत्यदृक्षत। प्रतिदृश्यंतां ॥ दृशेश्छांदसः कर्मणि लुङ्। लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विति कित्त्वात्सृजिदृशोरित्यमभावः। षत्वकत्वषत्वानि ॥ अहं च यथा येन प्रकारेण दूतः प्रेष्यो वाचं स्वामिनो वाक्यं याचते तथा युवयोः प्रीतिपूर्विकां वाचमोहिषे। पुरुषव्यत्ययः। याचे ॥ उहिरर्दने। याचन इत्यर्थः। व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥ यद्वा। दूतो यथा स्वामिनोक्तां वाचं विदेशस्थमन्यं प्रापयति एवमहमपि स्तुतिरूपां वाचमोहिषे।

वहे। युवां प्रापयामि ॥ वहेर्व्यत्ययेन मध्यमः। छांदसं संप्रसारणं। छंदस्युभयथेत्यार्धधातुकत्वादिडागमः। शबभावो लघूपधगुणश्च। एङि पररूपमिति पररूपत्वं ॥

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमंद्रा पुरूवसू। स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥४॥
पुरुऽप्रिया। नः। ऊतये। पुरुऽमंद्रा। पुरुवसू इति पुरुऽवसू। स्तुषे। कण्वासः। अश्विना ॥४॥

पुरुप्रिया बहूनां प्रियौ पुरुमंद्रा बहुमदौ बहूनां मादयितारौ वा। यद्वा। पुरु बहुलं माद्यंतौ। पुरुवसू बहुधनौ ईदृशावश्विनाश्विनौ नोऽस्माकमूतये रक्षणाय कण्वासः कण्वगोत्रा वयं स्तुषे। स्तुमहे ॥ पुरुषवचनयोर्व्यत्ययः ॥ यद्वा। कण्वास इति पूजार्थं बहुवचनं। ऋषिरात्मानं संबोध्य ब्रूते। हे अंतरात्मन् कण्वासः कण्वगोत्रस्त्वं स्तुषे। अश्विनौ स्तुहि ॥

मंहिष्ठा वाजसातमेषयंता शुभस्पती। गंतारा दाशुषो गृहं ॥५॥
मंहिष्ठा। वाजऽसातमा। इषयंता। शुभः। पती इति। गंतारा। दाशुषः। गृहं ॥५॥

मंहिष्ठा मंहिष्ठौ मंहनीयौ पूजनीयौ यद्वा दातृतमौ वाजसातमा। वाजोऽन्नं बलं वा। तस्यातिशयेन दातारौ। यद्वा। वाजो हविर्लक्षणमन्नं। तस्य संभक्तृतमौ ॥ सनोतेः सनतेर्वा जनसनेति विट्। विड्वनोरनुनासिकस्यात्वं ॥ इषयंता स्तोतृभ्य इषमन्नं कुर्वंतौ ॥ इट्शब्दात्तत्करोतीति णिच्। णेरिष्ठवद्भावेन टिलोपे प्राप्ते प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावः ॥ यद्वा। इषयंतैषयंतौ श्रेयांसि प्रापयंतौ ॥ इष गतौ। अस्माद्धेतुमति णिच्। संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्गुणाभावः ॥ शुभः शोभनस्य धनस्योदकस्य वा पती स्वामिनौ ॥ षष्ठ्याः पतिपुत्रेति विसर्जनीयस्य सत्वं ॥ दाशुषश्चरुपुरोडाशादीनि दत्तवतो यजमानस्य गृहं गंतारा गमनशीलौ ॥ गमेस्ताच्छीलिकस्तृन्। अतो न लोकाव्ययेति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः ॥ ईदृशावश्विनौ स्तुम इति शेषः ॥ ॥१॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीं। घृतैर्गव्यूतिमुक्षतं ॥६॥
ता। सुऽदेवाय। दाशुषे। सुऽमेधां। अविऽतारिणीं। घृतैः। गव्यूतिं। उक्षतं ॥६॥

हे अश्विनौ ता तौ तादृशौ युवां सुदेवाय। शोभना देवा येन यष्टव्याः स तथोक्तः ॥ बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ तस्मै दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ ईदृग्यजमानार्थं सुमेधां शोभनयज्ञामवितारिणीं। वितरणं विगमनमपायः। अनपायिनीं ॥ नञ्समासेऽव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥ ईदृशीं गव्यूतिं। गावो यूयंते संयुज्यंतेऽत्रेति गव्यूतिर्गोसंचारभूमिः ॥ गोयूतौ छंदसि। पा॰ ६. १. ७९. २.। इत्यवादेशः ॥ तां घृतैः क्षरणशीलैरुदकैरुक्षतं। सिंचतं ॥ उक्ष सेचने ॥

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः। यातमश्वेभिरश्विना ॥७॥
आ। नः। स्तोमं। उप। द्रवत्। तूयं। श्येनेभिः। आशुऽभिः। यातं। अश्वेभिः। अश्विना ॥७॥

हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्माकं स्तोमं स्तोत्रमश्वेभिरश्वैः। द्रवत् तूयमित्युभे क्षिप्रनामनी। एकः पूरकः। तूयं क्षिप्रमुपा यातं। उपगच्छतं। यद्वा। द्रवदिति स्तोमविशेषणं। द्रवच्छीघ्रं प्रवर्तमानं स्तोममित्यर्थः। कीदृशैरश्वैः। श्येनेभिः शंसनीयगामिभिः प्रशस्यगमनैराशुभिः शीघ्रगैः ॥

येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना। त्रीँरक्तून्परिदीयथः ॥८॥
येभिः। तिस्रः। पराऽवतः। दिवः। विश्वानि। रोचना। त्रीन्। अक्तून्। परिऽदीयथः ॥८॥

हे अश्विनौ तिस्रो दिवस्त्रीन्दिवसांस्त्रीनक्तूंस्तिस्रो रात्रीश्च ॥ अत्यंतसंयोगे द्वितीया ॥ एतावंतं काल

विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा रोचना रोचमानानि नक्षत्ररूपाणि देवगृहाणि परावतो दूरदेशावधिभिरैरश्वैः परिदीयथः परिगच्छथः । दीयतिर्गतिकर्मा । तैरस्माकं स्तोत्रमुपयातमिति पूर्वत्रान्वयः ॥

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितं ॥९॥

उत । नः । गोऽमतीः । इषः । उत । सातीः । अहःऽविदा । वि । पथः । सातये । सितं ॥९॥

उतापि च हे अहर्विदाह्नो लंभयितारौ । यद्वा । अह्नि प्रभातसमये वेदितव्यौ स्तोतव्यौ । नोऽस्मभ्यं गोमतीर्बह्वीभिर्गोभिर्युक्ता इषोऽन्नानि दत्तमिति शेषः । उतापि च सातीः संभजनीया दातव्या वा रायस्त्वस्मभ्यं दत्तं ॥ सनतेः सनोतेर्वा कर्मणि क्तिन् । जनसनखनामित्यात्वं । ऊतियूतीत्यादिना क्तिन उदात्तत्वं निपात्यते ॥ अपि चास्माकं सातय उक्तानां गवादीनां लाभाय संभजनाय वा पथस्तदुपायरूपान्मार्गान् वि सितं । विशेषेण बध्नीतं । यथान्ये न प्रविशंति तथा कुरुतमित्यर्थः ॥ षिञ् बंधने । छांदसो विकरणस्य लुक् ॥ यद्वा । उपसर्गवशादयं धातुः स्वार्थविपरीते बंधनाभावे वर्तते । प्रस्मरणं प्रस्थानमिति यथा । पथो मार्गान् वि सितं । विमुंचतं । प्रदर्शयतमित्यर्थः ॥ पथिञ्छब्दोऽंतोदात्तः । तस्य शसि टिलोप उदात्तनिवृत्तिस्वरेण शस उदात्तत्वं ॥

आ नो गोमंतमश्विना सुवीरं सुरथं रयिं । वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥१०॥

आ । नः । गोऽमंतं । अश्विना । सुऽवीरं । सुऽरथं । रयिं । वोळ्हं । अश्वऽवतीः । इषः ॥१०॥

हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्मभ्यं रयिं धनमा वोळ्हं । आवहतं । आहरतं ॥ वहेर्लोटि छांदसः शपो लुक् । ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपेषु कृतेषु सहिवहोरोदवर्णस्येत्योत्वं ॥ कीदृशं रयिं । गोमंतं बह्वीभिर्गोभिर्युक्तं सुवीरं । वीर्याज्जायंत इति वीराः पुत्राः । शोभनैस्तैरुपेतं । विविधमीरयंति शत्रूनिति वा वीराः शूराः । तैरुपेतं । सुरथं शोभनरथेन युक्तं । अपि चाश्वावतीरश्वयुक्ताः ॥ मंत्रे सोमाश्वेति मतौ दीर्घः ॥ इष इष्यमाणान्यन्नानि चास्मभ्यमावहतं ॥ ॥२॥

द्विदेवत्यस्याश्विनग्रहस्य वावृधानेत्येषा याज्या । सूत्र्यते हि । होता यक्षदश्विना नासत्या वावृधाना शुभस्पती । आ० ५. ५. । इति ॥

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥११॥

ववृधाना । शुभः । पती इति । दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । पिबतं ।
सोम्यं । मधु ॥११॥

हे शुभस्पती शुभः शोभनस्यालंकारस्योदकस्य वा पती स्वामिनौ हे अश्विनौ ॥ सुबामंत्रित इति षष्ठ्यंतस्य परांगवद्भावात् षष्ठ्यामंत्रितसमुदायस्याष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वं ॥ दस्रा दर्शनीयौ शत्रूणामुपक्षपयितारौ वा हिरण्यवर्तनी हिरण्मयमार्गौ । यद्वा । वर्ततेऽस्मिन्निति वर्तनी रथः । हिरण्मयो रथो ययोस्तौ । यद्वा । वर्तनि वर्तनमाचरणं । हितरमणीयाचरणौ । ववृधाना प्रवृद्धौ ॥ वृधेर्लिटः कानच् ॥ ईदृशौ युवां सोम्यं सोममयं मधु माधुर्योपेतं मदकरं वा रसं पिबतं ॥

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यंतमदाभ्यं ॥१२॥

अस्मभ्यं । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । मघवत्ऽभ्यः । च । सऽप्रथः । छर्दिः ।
यंतं । अदाभ्यं ॥१२॥

हे वाजिनीवसू । वाजिनी हविर्युक्ता यागक्रिया । तस्यां वसु धनं हविर्भागलक्षणं ययोस्तथाविधौ हे अश्विनौ अस्मभ्यं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्यः । मघं धनं हविर्लक्षणं । तद्वद्भ्यो यजमानेभ्यश्च सप्रथः सर्वतः पृथु विस्ती-

र्यमदाभ्यं केनाप्यहिंस्यं छर्दिः । गृहनामैतत् । गृहं यंतं । नियच्छतं । दत्तमिति यावत् ॥ यमेश्छांदसः शपो लुक् । छंदस्युभयथेत्यार्धधातुकत्वेन ङित्त्वाभावादनुनासिकलोपाभावः ॥

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतं । मो ष्वन्याँ उपारतं ॥१३॥

नि । सु । ब्रह्म । जनानां । या । अविष्टं । तूयं । आ । गतं । मो इति । सु । अन्यान् । उप । अरतं ॥१३॥

हे अश्विनौ या यौ युवां जनानां प्राणिनां मध्ये ब्रह्म ब्राह्मणजातिं सु सुष्ठु नि नितरामविष्टं अरक्षिष्टं । यद्वा । जनानां यजमानानां ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं हविर्लक्षणमन्नं वा यौ युवां न्यविष्टं न्यगच्छतं । अवतिर्गत्यर्थः । तौ युवां तूयं क्षिप्रमा गतं । अस्मानप्यागच्छतं । अन्यानस्मद्व्यतिरिक्तान्यजमानान् मो मैव सूपारतं । उपगमतं । कदाचिदपि मैव प्राप्नुतमित्यर्थः ॥ अर्तेर्माङि लुङि सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेति च्लेरङादेशः ॥

आपराह्णिके प्रवर्ग्ये घर्मस्य हविषोऽस्य पिबतमिति द्वितीया याज्या । सूत्रितं च । अस्य पिबतमश्विनेति वा प्रेषितो होता । आ॰ ४.७. । इति ॥

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४॥

अस्य । पिबतं । अश्विना । युवं । मदस्य । चारुणः । मध्वः । रातस्य । धिष्ण्या ॥१४॥

हे अश्विनाश्विनौ हे धिष्ण्या । धिषणा स्तुतिः । तदर्हौ युवं युवां मदस्य मदकरस्य चारुणः शोभनस्य रातस्यास्माभिर्दत्तस्यास्य मध्वो मधुरस्य सोमस्य स्वांशलक्षणं भागं पिबतं । यद्वा । द्वितीयार्थे षष्ठी । इमं सोमं पिबतं ॥

अस्मे आ वहतं रयिं शतवंतं सहस्रिणं । पुरुक्षुं विश्वधायसं ॥१५॥

अस्मे इति । आ । वहतं । रयिं । शतऽवंतं । सहस्रिणं । पुरुऽक्षुं । विश्वऽधायसं ॥१५॥

हे अश्विनौ अस्मे अस्मभ्यं रयिं धनमा वहतं । आनयतं । कथंभूतं । शतवंतं शतसंख्योपेतं सहस्रिणं सहस्रसंख्योपेतं च पुरुक्षुं बहुनिवासं यद्वा पुरुभिर्बहुभिः स्तुत्यं विश्वधायसं विश्वेषां सर्वेषामस्मदीयानां धारकं ॥ वहिहाधाञ्भ्यश्छंदसीति दधातेरसुन् । णिदित्यनुवृत्तेर्णिद्वद्भावेन युगागमः ॥ ॥३॥

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयंते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतं ॥१६॥

पुरुऽत्रा । चित् । हि । वां । नरा । विऽह्वयंते । मनीषिणः । वाघत्ऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥१६॥

हे नरा नरौ स्तोतॄणां धनस्य नेतारावश्विनौ मनीषिणो मनस ईशितारः स्तोतारो वां युवां पुरुत्रा चिद्धि बहुषु हि देशेषु विह्वयंते । विविधमाह्वयंति । तथा सति हे अश्विनौ वाघद्भिर्वाहकैरश्वैरा गतं । अस्मानेवागच्छतं ॥

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मंतो अरंकृतः । युवां हवंते अश्विना ॥१७॥

जनासः । वृक्तऽबर्हिषः । हविष्मंतः । अरंऽकृतः । युवां । हवंते । अश्विना ॥१७॥

वृक्तबर्हिषः । वृक्तं छिन्नं बर्हिर्यैस्ते तथोक्ताः । हविष्मंतो हविर्भिर्युक्ता अरंकृतः पर्याप्तकारिणः यद्वा हविरादीनामलंकर्तारो जनास ऋत्विग्लक्षणा जना हे अश्विनाश्विनौ युवां हवंते । आह्वयंति । अत आगच्छतमिति शेषः ॥

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अंतमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

अस्माकं । अद्य । वां । अयं । स्तोमः । वाहिष्ठः । अंतमः । युवाभ्यां । भूतु । अश्विना ॥१८॥

अद्येदानीमस्माकमयं स्तोमोऽस्मदीयं स्तोत्रं हे अश्विनौ वां युवयोर्वाहिष्ठो वाहयितृतमः प्रापयितृतमः सन् युवाभ्यामंतमोऽंतिकतमोऽतिशयेन समीपवर्ती भूतु । भवतु ॥ तमे तादेश्च । पा॰ ६. ४. १४९. ९. । इत्यंतिकशब्दस्य तादिर्लुप्यते । भवतेश्छांदसः शपो लुक् ॥

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥१९॥

यः । ह । वां । मधुनः । दृतिः । आऽहितः । रथऽचर्षणे । ततः । पिबतं । अश्विना ॥१९॥

हे अश्विनाश्विनौ रथचर्षणे रथस्य चर्षणे द्रष्टव्ये मध्ये देशे यो दृतिर्मधुनो मधुरस्यास्माभिर्दत्तस्य सोमस्य संबंधी तेन मधुना पूर्ण आहितः स्थापितो वर्तते ततो दृतेः सकाशात्सोमं पिबतं ॥

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥२०॥

तेन । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । पश्वे । तोकाय । शं । गवे । वहतं । पीवरीः । इषः ॥२०॥

हे वाजिनीवसू । वाजोऽन्नं बलं वा । तद्युक्तधनौ नोऽस्माकं पश्वे पशवेऽश्वादिलक्षणाय ॥ जसादिषु छंदसि वावचनमिति घेर्ङितीति गुणस्य विकल्पितत्वाद्यण् ॥ तोकाय पुत्राय गवे च ॥ आत्माभिप्रायं सर्वत्रैकवचनं ॥ पश्वादिभ्यः शं सुखं यथा भवति तथा पीवरीः प्रवृद्धानीषोऽन्नानि तेन भवदीयेन रथेन वहतं । आवहतं । प्रापयतं । दत्तमित्यर्थः ॥ ॥४॥

उत नो दिव्या इष उत सिंधूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥

उत । नः । दिव्याः । इषः । उत । सिंधून् । अहःऽविदा । अप । द्वाराऽइव । वर्षथः ॥२१॥

उतापि च हे अहर्विदाह्नो लंभयितारौ । यद्वा । अह्नि प्रभातसमये वेदितव्यौ स्तोतव्यावश्विनौ । दिव्या दिवि भवा इष इष्यमाणा अपो नोऽस्मदर्थं द्वारेव द्वारेणेव छिद्रेणेवाप वर्षथः । मेघादपकृष्य युवां सिंचथः । उतापि च सिंधून् स्यंदनशीला नदीर्वृष्टिलब्धैरुदकैरस्माकं स्नानपानादिकार्याय कृतवंतावित्यर्थः ॥

कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥२२॥

कदा । वां । तौग्र्यः । विधत् । समुद्रे । जहितः । नरा । यत् । वां । रथः । विऽभिः । पतात् ॥२२॥

हे नरा नरौ नेतारावश्विनौ तौग्र्यस्तुग्रपुत्रो भुज्युः समुद्रे जलधौ जहितोऽसुरैः प्रक्षिप्तः सन् कदा कस्मिन्काले वां युवां विधत् । अविधत् । स्तुतिभिः पर्यचरत् । यद्यदा वां युवयोर्विभिर्गंतृभिरश्वैरुपेतो रथः पतात् तं भुज्युमानेतुं पतेत् गच्छेत् तदानीं भुज्युरस्तौदिति पूर्वेणार्धेन पृष्टस्य प्रतिवचनं ॥

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥

युवं । कण्वाय । नासत्या । अपिऽरिप्ताय । हर्म्ये । शश्वत् । ऊतीः । दशस्यथः ॥२३॥

हे नासत्या । सत्सु साधू सत्यौ । न सत्यावसत्यौ । न असत्यौ नासत्यौ ॥ नभ्राण्नपादिति नञः प्रकृतिभावः ॥ यद्वा । सत्यस्य नेतारौ नासिकाप्रभवौ वा । उक्तं च भगवता यास्केन । सत्यावेव नासत्यावित्यौ-

र्णवाभः। सत्यस्य प्रणेतारावित्यौर्णवाभः। नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा। नि०६.१३.। इति। तौ युवां कण्वायैतत्संज्ञायर्षये हर्म्ये हर्म्यतलेऽपिरिप्तायासुरैर्बाधिताय प्रयच्छतीर्बह्वीरूती रक्षा दशस्यथः। दत्तवंतौ। युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं। ऋ०१.११८.७.। इत्यत्रेतिहास उक्तः। सोऽत्र द्रष्टव्यः॥

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः। यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥२४॥

ताभिः। आ। यातं। ऊतिऽभिः। नव्यसीभिः। सुशस्तिऽभिः। यत्। वां। वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू। हुवे ॥२४॥

हे वृषण्वसू वर्षणधनौ॥ वृषण्वस्वश्वयोरुपसंख्यानं। पा०१.४.१८.४.। इति वृषण्भावो निपात्यते॥ तदानीं ताभिः पूर्वोक्ताभिर्नव्यसीभिर्नवतराभिः सुशस्तिभिः सुप्रशस्ताभिरूतिभी रक्षाभिः सार्धमा यातं। आगच्छतं। यद्यदा वां हुवे स्तुतिभिराह्वयामि॥

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतं। अत्रिं शिंजारमश्विना ॥२५॥

यथा। चित्। कण्वं। आवतं। प्रियऽमेधं। उपऽस्तुतं। अत्रिं। शिंजारं। अश्विना ॥२५॥

हे अश्विनाश्विनौ यथा चिद्येन खलु प्रकारेण कण्वमेतत्संज्ञमृषिमावतं अरक्षतं प्रियमेधं प्रिययज्ञमेतत्संज्ञं चोपस्तुतमेतदाख्यं च शिंजारं शब्दयंतं स्तुवंतमत्रिमेतानृषींश्च येन प्रकारेणारक्षतं तथास्मानपि रक्षतमिति शेषः। यद्वा। एतावद्वां वृषण्वसू इत्यनयैकवाक्यता॥ ॥५॥

यथोत कृत्व्ये धनेंऽशुं गोष्वगस्त्यं। यथा वाजेषु सोभरिं ॥२६॥

यथा। उत। कृत्व्ये। धने। अंशुं। गोषु। अगस्त्यं। यथा। वाजेषु। सोभरिं ॥२६॥

उतापि च यथा येन प्रकारेण धने कृत्व्ये कर्तव्ये प्राप्तव्ये सत्यंशुमेतत्संज्ञं स्तोतारमावतं अरक्षतं। गोषु च लब्धव्यासु यथागस्त्यमृषिमरक्षतं। वाजेष्वन्नेषु लब्धव्येषु यथा येन प्रकारेण सोभरिमेतत्संज्ञमृषिं चारक्षतं। अत्रापि पूर्ववद्वाक्यशेष उत्तरयैकवाक्यता वा॥

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना। गृणंतः सुम्नमीमहे ॥२७॥

एतावत्। वां। वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू। अतः। वा। भूयः। अश्विना। गृणंतः। सुम्नं। ईमहे ॥२७॥

हे वृषण्वसू वर्षणधनावश्विनाश्विनौ गृणंतः स्तुवंतो वयमेतावत् यथा चित् कण्वमित्यादिना यावदशुक्तां-तमेतत्परिमाणं सुम्नं सुखमतो वास्माद्वा भूयो बहुतरमधिकं सुम्नं वां युवामीमहे। याचामहे॥

रथं हिरण्यवंधुरं हिरण्याभीशुमश्विना। आ हि स्थाथो दिविस्पृशं ॥२८॥

रथं। हिरण्यऽवंधुरं। हिरण्यऽअभीशुं। अश्विना। आ। हि। स्थाथः। दिविऽस्पृशं ॥२८॥

हे अश्विनाश्विनौ हिरण्यवंधुरं। सारथिस्थानं वंधुरं। हिरण्मयसारथिस्थानं हिरण्याभीशुं हिरण्मयप्रग्रहं दिविस्पृशमत्युन्नतत्वाद्दिवं स्पृशंतं॥ स्पृशेः क्विन्। दिव्शब्दाद्द्वितीयार्थे सप्तमी। हद्युभ्यां ङेरुपसंख्यानमित्यलुक्॥ ईदृशं रथमा हि स्थाथः। युवामातिष्ठथ एव। हिरवधारणे। अस्मदीयां स्तुतिं श्रोतुं शीघ्रं रथमास्थायागत-मिति भावः॥ ष्ठा गतिनिवृत्तौ। लटि छांदसः शपो लुक्॥

हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः। उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

हिरण्ययी। वां। रभिः। ईषा। अक्षः। हिरण्ययः। उभा। चक्रा। हिरण्यया ॥२९॥

हे अश्विनौ वां युवयो रभिरारंभणीयालंभनभूता रथस्येषा हिरण्ययी हिरण्मयी हिरण्यविकारा। अक्षश्च हिरण्ययो हिरण्मयो हिरण्यनिर्मितः॥ ईषा अक्षादिषु छंदसि। पा॰ ६. १. १२७. २.। इति प्रकृतिभावः॥ अपि चोभोभे द्वे अपि चक्रा चक्रे रथचरणे हिरण्यया हिरण्मये सुवर्णनिर्मिते॥ सुपां सुलुगिति द्विवचनस्याकारः। ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वेत्यादिना हिरण्यशब्दान्मयटो मलोपो निपात्यते॥

तेन॑ नो वाजिनीवसू परा॒वत॑श्चि॒दा ग॑तं। उपे॒मां सु॑ष्टु॒तिं मम॑ ॥३०॥

तेन॑। नः॒। वा॒जि॒नी॒व॒सू॒ इति॑ वाजिनीऽवसू। प॒रा॒ऽवतः॑। चि॒त्। आ। ग॒तं॒। उप॑। इ॒मां। सु॒ऽस्तु॒तिं। मम॑ ॥३०॥

हे वाजिनीवसू अन्नवन्तावश्विनौ य उक्तो हिरण्मयसर्वावयवो रथः तेन रथेन नोऽस्मान्परावतश्चिद्दूरदेशादप्या गतं। आगच्छतं॥ गमेश्छांदसः शपो लुक्। अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः॥ इदानीमृषिरेकवदाह। मम मदीयामिमामिदानीं क्रियमाणां सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं चोपगच्छतं॥ ॥६॥

आ व॑हेथे परा॒कात्पू॒र्वीर॒श्नंता॑वश्विना। इषो॒ दासी॑रमर्त्या ॥३१॥

आ। व॒हे॒थे॒ इति॑। प॒रा॒कात्। पू॒र्वीः। अ॒श्नंतौ॑। अ॒श्वि॒ना॒। इषः॑। दासीः॑। अ॒म॒र्त्या॒ ॥३१॥

हे अमर्त्यामरणावश्विनाश्विनौ दासीः। दासा उपक्षपयितारोऽसुराः। तत्संबंधिनीः पूर्वीः पुरीरश्नंतौ भक्षयंतौ भंजंतौ युवामिषोऽन्नानि पराकात्परागताद्दूरदेशादा वहेथे। अस्मान्प्रापयथः। यद्वा। अश्नंतौ व्याप्नुवंतौ॥ अशू व्याप्तौ। अस्माद्व्यत्ययेन श्ना परस्मैपदं च॥ पूर्वीर्बह्वीर्दासीर्दासस्योपक्षपयितुः शत्रोः संबंधिनीरिषोऽन्नानि शत्रुभ्योऽपहृत्यास्मान्प्रापयथः॥

आ नो॑ द्यु॒म्नैरा श्रवो॑भि॒रा रा॒या या॑तमश्विना। पुरु॑श्चंद्रा॒ नास॑त्या ॥३२॥

आ। नः॒। द्यु॒म्नैः। आ। श्रवः॑ऽभिः। आ। रा॒या। या॒तं॒। अ॒श्वि॒ना॒। पुरु॑ऽचंद्रा। नास॑त्या ॥३२॥

हे पुरुश्चंद्रा बहुहिरण्यौ यद्वा पुरूणां बहूनामाह्लादकौ॥ ह्रस्वाच्चंद्रोत्तरपदे मंत्र इति सुट्। पादादित्वात्षाष्ठिकमामंत्रिताद्युदात्तत्वं॥ हे नासत्या सत्यस्वभावौ सत्यस्य नेतारौ नासिकाप्रभवौ वा॥ आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवदिति पूर्वस्यामंत्रितस्याविद्यमानवद्भावादिदमप्यामंत्रितमाद्युदात्तं। न च नामंत्रिते समानाधिकरण इत्यविद्यमानवत्त्वनिषेधः पुरुश्चंद्रेत्यस्य विशेषवचनत्वात्॥ ईदृशौ हे अश्विनाश्विनौ द्युम्नैर्द्योतमानैरन्नैर्दातव्यैः सार्धं नोऽस्माना यातं। आगच्छतं। तथा श्रवोभिः श्रवणीयैर्यशोभिश्चास्मानागच्छतं। तथा राया धनेन चास्मानागच्छतं॥

एह वां॑ प्रुषि॒तप्स॑वो॒ वयो॑ वहंतु प॒र्णिनः॑। अच्छा॑ स्वध्व॒रं जनं॑ ॥३३॥

आ। इ॒ह। वां॒। प्रु॒षि॒तऽप्स॑वः। वयः॑। व॒हं॒तु॒। प॒र्णिनः॑। अच्छ॑। सु॒ऽअ॒ध्व॒रं। जनं॑ ॥३३॥

हे अश्विनौ इहास्मिन्यागे वां युवां प्रुषितप्सवः। प्रुषिः स्नेहनकर्मा। स्निग्धरूपाः पर्णिनः पक्षोपेताः। यद्वा। लुप्तोपममेतत्। पक्षिण इव शीघ्रगामिनः। वयो गंतारोऽश्वाः स्वध्वरं शोभनयज्ञं यजमानलक्षणं जनमच्छाभिमुखमा वहंतु। आनयंतु॥

रथं॑ वा॒मनु॑गायसं॒ य इ॒षा वर्त॑ते स॒ह। न च॒क्रम॒भि बाध॑ते ॥३४॥

रथं॑। वा॒ं। अनु॑ऽगायसं। यः। इ॒षा। वर्त॑ते। स॒ह। न। च॒क्रं। अ॒भि। बा॒ध॒ते॒ ॥३४॥

हे अश्विनौ यो रथोऽस्मभ्यं देयेनान्नेन सह वर्तते वां युवयोः स्वभूतमनुगायसं स्तोतृभिरनुगातव्यं तं रथं

चक्रं परसैन्यं नाभि बाधते। नाभिहंति। यद्वा। चक्रं वीर्यकर्मसाधनं॥ चमर्थे कविधानमिति कः। कृष्णादीनां वे। का० ६. १. १२. १.। इति द्विर्वचनं। अस्मिन्पक्षेऽन्यः शत्रुरिति कर्तृपदमध्याहर्तव्यं॥

हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः। धीजवना नासत्या ॥३५॥

हिरण्ययेन। रथेन। द्रवत्पाणिऽभिः। अश्वैः। धीऽजवना। नासत्या ॥३५॥

हे धीजवना मनोवद्वेगवंतौ ॥ आमंत्रिताद्युदात्तत्वं ॥ हे नासत्या सत्यस्वभावौ सत्यस्य नेतारौ वा ॥ आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवदिति पूर्वस्याविद्यमानत्वेन पदादपरत्वादाष्टमिकनिघाताभावः। न च नामंत्रितविद्यमानवत्त्वनिषेधो धीजवनेत्यस्य विशेषणत्वेन सामान्यवचनत्वाभावात्। व्यावर्तकं हि विशेषणं॥ ईदृशौ युवां द्रवत्पाणिभिः शीघ्रगमनपदैरश्वैर्युक्तेन हिरण्ययेन हिरण्मयेन स्वर्णमयेन रथेनागतमिति शेषः। यद्वा॥ धीजवना नासत्येत्येतद्द्वयमपि प्रथमांतमेव नामंत्रितं। धियो जव इव जवो ययोस्तौ। बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं॥ ईदृशेन रथेन शीघ्रगमनौ नासत्यावश्विनावागच्छतमिति शेषः॥ ॥७॥

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू। ता नः पृंक्तमिषा रयिं॥३६॥

युवं। मृगं। जागृऽवांसं। स्वदथः। वा। वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू। ता। नः। पृंक्तं। इषा। रयिं॥३६॥

वाशब्दः समुच्चये। अपि च हे वृषण्वसू वर्षणधनावश्विनौ युवं युवां जागृवांसं जागरणशीलं स्वकार्ये मदजननेऽव्ययं मृगं मृग्यमन्वेषणीयं सोमं स्वदथः। आस्वादयथः। यद्वा। जागृवांसं जाग्रतं मृगं मृगनामानमसुरं स्वदथः। स्वादयथः। हिंस्थ इत्यर्थः। ता तौ युवां नोऽस्मदर्थमिषान्नेन रयिं धनं पृंक्तं। संपृंक्तं। कुरुतं। ईदृशं धनमस्मभ्यं प्रयच्छतमित्यर्थः॥

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानां।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनां ॥३७॥

ता। मे। अश्विना। सनीनां। विद्यातं। नवानां।
यथा। चित्। चैद्यः। कशुः। शतं। उष्ट्रानां। ददत्। सहस्रा। दश। गोनां ॥३७॥

हे अश्विनाश्विनौ ता तादृशौ युवां नवानामभिनवानां श्रेष्ठानां सनीनां संभजनीयानां धनानां॥ कर्मणि षष्ठी॥ ईदृशानि धनानि मे मह्यं दापयितुं विद्यातं। जानीतं। यथा चिद्येन खलु प्रकारेण चैद्यश्चेदिपुत्रः कशुरेतत्संज्ञो राजोष्ट्राणां शतं तथा गोनां गवां दश सहस्रा दशसंख्यानि सहस्राणि ददत् दद्यात् तथा विद्यातमिति पूर्वत्रान्वयः॥

यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥३८॥

यः। मे। हिरण्यऽसंदृशः। दश। राज्ञः। अमंहत।
अधःऽपदाः। इत्। चैद्यस्य। कृष्टयः। चर्मऽम्नाः। अभितः। जनाः ॥३८॥

यः कशुसंज्ञो राजा मे मह्यं हिरण्यसंदृशो हिरण्यसंदर्शनान् हिरण्यसमानतेजस्कान् दश राज्ञोऽमंहत परिचरणार्थं दत्तवान्। दशसंख्याकान्राज्ञो युद्धे पराजितान् गृहीत्वा दासत्वेनास्मै दत्तवानित्यर्थः। नन्वीदृशानां बहुविधानां राज्ञां दान एकः कथं शक्नुयादिति तत्राह। कृष्टयः सर्वाः प्रजास्तस्य चैद्यस्य चेदिपुत्रस्य

कशोरधस्तदा इत् पादयोरधस्तादेव वर्तंते । न कश्चिदपि तत्समानस्तदधिको वा विद्यते । अभितः सर्वतो वर्तमाना जनाश्चर्मम्नाश्चर्ममयस्य कवचादेर्धारणे कृताभ्यासाः । यद्वा । चर्माणि चरणसाधनान्यश्वादीनि वाहनानि । तेषु मनंत्यभ्यस्यंतीति चर्मम्नाः ॥ म्ना अभ्यासे । आतो मनिन्निति विच् ॥ सर्वे मनुष्यास्तस्य भटा इत्यर्थः ॥

माकि॑रे॒ना प॒था गा॒द्येने॒मे यंति॑ चे॒दयः॑ ।
अ॒न्यो नेत्सू॒रिरोह॑ते भूरि॒दाव॑त्तरो॒ जनः॑ ॥३९॥
माकिः॑ । ए॒ना । प॒था । गा॒त् । येन॑ । इ॒मे । यंति॑ । चे॒दयः॑ ।
अ॒न्यः । न । इत् । सू॒रिः । ओह॑ते । भूरि॒दाव॑त्ऽतरः । जनः॑ ॥३९॥

येन मार्गेणेमे चेदयोऽस्य राज्ञः पितृपितामहादयो यंति गच्छंति एनानेन पथा मार्गेण माकिर्गात् । अन्यो न गंतुं शक्नोति । अपि चास्माद्राज्ञोऽन्यो भूरिदावत्तरो बहुदातृतमः सूरिर्विद्वान् सज्जनो नेन्नैवोहते । वहति । स्तोतृभ्यो धनं प्रापयति । यद्वा । बहुदातृजनो यो जनः कशुर्नाम तस्मादन्यः ॥ व्यत्ययेन प्रथमा ॥ अन्यं सूरिः स्तोता नेदोहते । नैव याचते । ओहतिर्याच्ञाकर्मा । यथान्यं न याचते तथा बहु धनं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ ॥८॥ ॥१॥

द्वितीयेऽनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्र महाँ इंद्र इत्यष्टाचत्वारिंशदृचं प्रथमं सूक्तं काण्वस्य वत्सस्यार्षं गायत्रं । अंत्यतृचवर्जमैंद्रं । तस्मिन्परशुनाम्नो राज्ञः पुत्रस्य तिरिंदिरस्य दानं स्तूयते । अतः स तृचस्तद्देवताकः । तथा चानुक्रांतं । महाँ इंद्रोऽष्टाचत्वारिंशद्वत्सस्तृचोंऽत्यस्तिरिंदिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिरिति ॥ महाव्रते गायत्रतृचाशीतावंत्यतृचवर्जमिदं सूक्तं । तथैव पंचमारण्यके सूत्र्यते । महाँ इंद्रो य ओजसेति तिस्र उत्तमा उद्धरति । ऐ॰ आ॰ ५. २. २. । इति ॥ प्रातःसवने सोमातिरेके महानित्यादिकाः स्तोमातिशंसनार्थाः । सूचितं च । महाँ इंद्रो य ओजसातो देवा अवंतु न इत्यैंद्रीभिर्वैष्णवीभिश्च स्तोममतिशस्य । आ॰ ६. ७. । इति ॥ तृतीये पर्याये होतुः शस्त्रे महाँ इंद्र इति तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । महाँ इंद्रो य ओजसा समस्य मन्यवे विश इति । आ॰ ६. ४. । इति ॥ अप्तोर्यामे ब्रह्मणोऽतिरिक्तोक्थ्य अयमेव तृचोऽनुरूपः । सूत्र्यते हि । महाँ इंद्रो य ओजसा नूनमश्विना । आ॰ ९. ११. । इति ॥ दर्शयागे महेंद्रयाजिनः सांनाय्यस्य महानित्येषानुवाक्या । सूत्र्यते हि । महाँ इंद्रो य ओजसा भुवस्त्वमिंद्र ब्रह्मणा महान् । आ॰ १. ६. । इति ॥

म॒हाँ इंद्रो॒ य ओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ इ॑व । स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे ॥१॥
म॒हान् । इंद्रः॑ । यः । ओज॑सा । प॒र्जन्यः॑ । वृ॒ष्टि॒मान्ऽइ॑व । स्तोमैः॑ । व॒त्सस्य॑ । व॒वृ॒धे॒ ॥१॥

य इंद्र ओजसा बलेन महान् सर्वेभ्योऽधिकः । क इव । वृष्टिमानिव । यथा वृष्ट्या युक्तः पर्जन्यो रसानां पार्जयिता देवो महान् स इवेत्यर्थः । स इंद्रो वत्सस्य पुत्रस्थानीयस्य स्तोतुर्वत्सनाम्न एतैः स्तोत्रैर्ववृधे । प्रवर्धते ॥

प्र॒जामृ॒तस्य॒ पिप्र॑तः॒ प्र यद्भरं॑त॒ वह्न॑यः । विप्रा॑ ऋ॒तस्य॒ वाह॑सा ॥२॥
प्र॒ऽजां । ऋ॒तस्य॑ । पिप्र॑तः । प्र । यत् । भरं॑त । वह्न॑यः । विप्राः॑ । ऋ॒तस्य॑ । वाह॑सा ॥२॥

ऋतस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा प्रजां प्रकर्षेण जातमिंद्रं पिप्रतो नभसः प्रदेशान् पूरयंतो वह्नयो वाहका अश्वा यद्यदा प्र भरंत प्रकर्षेण भरंति वहंति तदा विप्रा मेधाविन ऋतस्य यज्ञस्य वाहसा प्रापकेण स्तोत्रेण तमिंद्रं स्तुवंतीति शेषः ॥

कण्वा॒ इंद्रं॒ यदक्र॑त॒ स्तोमै॑र्य॒ज्ञस्य॒ साध॑नं । जा॒मि ब्रु॑वत॒ आयु॑धं ॥३॥
कण्वाः॑ । इंद्रं॑ । यत् । अक्र॑त । स्तोमैः॑ । य॒ज्ञस्य॑ । साध॑नं । जा॒मि । ब्रु॒व॒ते॒ । आयु॑धं ॥३॥

कण्वाः । स्तोतृनामैतत् । स्तोतारः कण्वगोत्रा येंद्रं स्तोमैः स्तोत्रैर्यज्ञस्य यागस्य साधनं साधयितारं निष्पादकं यथादाकृत अकृषत ॥ करोतेर्लुङि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक् ॥ तदानीमायुधं शत्रूणां हिंसकं बाणादिकं जामि । अतिरिक्तनामैतत् । अतिरिक्तमहितं प्रयोजनरहितं ब्रुवते । कथयंति । आयुधसाध्यस्य सर्वकार्यस्येंद्रेण कृतत्वादायुधं निष्प्रयोजनमित्यर्थः । यद्वा । आयुधमायोधनशीलमिंद्रं जामि जामिं भ्रातरं ब्रुवते । वदंति । सर्वकार्येषु भ्रातृवद्वर्तत इत्यर्थः ॥

तृतीये पर्याये होतुः शस्त्रे समस्य मन्यव इत्याद्या द्विचत्वारिंशदृचः । सूत्र्यते हि । समस्य मन्यवे विश इति द्विचत्वारिंशद्विश्वजिति । आ० ६. ४. । इति ॥

सम॑स्य म॒न्यवे॒ विशो॒ विश्वा॑ नमंत कृ॒ष्टयः॑ । स॒मु॒द्रायै॑व॒ सिंध॑वः ॥४॥

सं । अ॒स्य॒ । म॒न्यवे॑ । विशः॑ । विश्वाः॑ । न॒मं॒त॒ । कृ॒ष्टयः॑ । स॒मु॒द्रायऽइव । सिंध॑वः ॥४॥

विशो विशंत्यो विश्वाः सर्वाः कृष्टयः प्रजा अस्येंद्रस्य मन्यवे क्रोधाय । यद्वा । मन्युर्मननसाधनं स्तोत्रं । तदर्थं । सं नमंत । सम्यक् स्वत एव नमंति ॥ नमतेः कर्मकर्तरि छांदसो लङ् । न दुहस्नुनमामिति यक्चिणोः प्रतिषेधः ॥ प्रह्वीभवंति । तत्र दृष्टांतः । समुद्रायेव यथा समुद्रमब्धिं प्रति सिंधवः स्यंदनशीला नद्यः स्वयमेव नमंते तद्वत् ॥

ओज॒स्तद॑स्य तित्विष उ॒भे यत्स॒मव॑र्तयत् । इंद्र॒श्चर्मे॑व॒ रोद॑सी ॥५॥

ओजः॑ । तत् । अ॒स्य॒ । ति॒त्वि॒षे॒ । उ॒भे इति॑ । यत् । सं॒ऽअव॑र्तयत् । इंद्रः॑ । चर्म॑ऽइव । रोद॑सी॒ इति॑ ॥५॥

अस्येंद्रस्य तदोजो बलं तित्विषे । दिदीपे ॥ त्विष दीप्तौ ॥ यद्येनौजसायमिंद्र उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ चर्मेव समवर्तयत् सम्यग्वर्तयति । यथा कश्चित्किंचिच्चर्म कदाचिद्विस्तारयति कदाचित्संकोचयति एवं तदधीने अभूतामित्यर्थः ॥ ॥९॥

वि चि॑द्वृ॒त्रस्य॒ दोध॑तो॒ वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा । शिरो॑ बिभेद वृ॒ष्णिना॑ ॥६॥

वि । चि॒त् । वृ॒त्रस्य॑ । दोध॑तः । वज्रे॑ण । श॒तऽप॑र्वणा । शिरः॑ । बि॒भे॒द॒ । वृ॒ष्णिना॑ ॥६॥

चिच्छब्दोऽप्यर्थे । स च भिन्नक्रमः । वृत्रस्य चिदावरकस्यापि दोधतोऽत्यर्थं जगत्कंपयतोऽसुरस्य शिरो मूर्धानं शतपर्वणा शतसंख्यापर्वाणि धारा यस्य तादृशेन वृष्णिना वीर्यवता वज्रेणेंद्रो वि बिभेद । विचिच्छेद ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने प्रशास्तुः शस्त्र इमा अभीति तृचो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूचितं च । इमा अभि प्र णोनुम इत्यथ ब्राह्मणाच्छंसिनः । आ० ७. ८. । इति ॥

इ॒मा अ॒भि प्र णो॑नुमो वि॒पामग्रे॑षु धी॒तयः॑ । अ॒ग्नेः शो॒चिर्न दि॒द्युतः॑ ॥७॥

इ॒माः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ । वि॒पां । अग्रे॑षु । धी॒तयः॑ । अ॒ग्नेः । शो॒चिः । न । दि॒द्युतः॑ ॥७॥

विपां स्तोतृणामग्रेषु पुरस्तादिमा अस्मदीया धीतयो धियः स्तोत्राण्यभि प्र णोनुमः । आभिमुख्येन पुनःपुनः प्रवदामः ॥ णु शब्दे ॥ कीदृशीः स्तुतीः । अग्नेः शोचिर्न दीप्तिरिव दिद्युतो दीप्यमाना वेदरूपाः ॥

गुहा॑ स॒तीरुप॒ त्मना॒ प्र यच्छोचं॑त धी॒तयः॑ । कण्वा॑ ऋ॒तस्य॒ धार॑या ॥८॥

गुहा॑ । स॒तीः । उप॑ । त्मना॑ । प्र । यत् । शोचं॑त । धी॒तयः॑ । कण्वाः॑ । ऋ॒तस्य॑ । धार॑या ॥८॥

गुहा गुहायां सतीः सत्यो भवंत्यो यद्या धीतयः स्तुतयः कर्माणि वा त्मनात्मना स्वेनेंद्रेणोपगम्यमानाः प्र

शोधंत प्रादीप्यंत। यद्वा। आत्मना स्वत एवेंद्रमुपगच्छंत्यः प्रदीप्यंते। ताः स्तुतीः कण्वाः कण्वगोत्रा ऋषय ऋतस्योदकस्य सोमात्मकस्य धारया सहिताः कुर्वंतीति शेषः॥

प्र तमिंद्र नशीमहि रयिं गोमंतमश्विनं। प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये॥९॥

प्र। तं। इंद्र। नशीमहि। रयिं। गोऽमंतं। अश्विनं। प्र। ब्रह्म। पूर्वऽचित्तये॥९॥

हे इंद्र गोमंतं गोभिर्युक्तमश्विनमश्वैरुपेतं तं प्रसिद्धं रयिं त्वदीयं धनं प्र नशीमहि। प्राप्नुयाम। तथा ब्रह्म परिवृढमन्नं च पूर्वचित्तयेऽन्येभ्यः पूर्वमेव ज्ञानाय प्राप्नवाम॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ। अहं सूर्य इवाजनि॥१०॥

अहं। इत्। हि। पितुः। परि। मेधां। ऋतस्य। जग्रभ। अहं। सूर्यःऽइव। अजनि॥१०॥

पितुः पालकस्यर्तस्य सत्यस्यावितथस्येंद्रस्य मेधामनुग्रहात्मिकां बुद्धिमहमिदहमेव परि जग्रभ। परिगृहीतवानस्मि नान्ये। हि यस्मादेवं तस्मादहं सूर्य इवाजनि सूर्यो यथा प्रकाशमानः सन् प्रादुर्भवति तथाजनिषं। प्रादुरभूवं॥ ॥१०॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुंभामि कण्ववत्। येनेंद्रः शुष्ममिद्दधे॥११॥

अहं। प्रत्नेन। मन्मना। गिरः। शुंभामि। कण्वऽवत्। येन। इंद्रः। शुष्मं। इत्। दधे॥११॥

कण्ववन्मम जनकः कण्व इवाहं प्रत्नेन नित्येन वेदरूपेण मन्मना मननसाधनेनेंद्रविषयेण स्तोत्रेण गिरो वाचः शुंभामि। अलंकरोमि। यदा हींद्रविषये प्रयुज्यंते तदानीं यथार्थत्वाद्वाचोऽलंकृता भवंति। येन खलु स्तोत्रेणेंद्रः शुष्मं शत्रूणां शोषकं बलं दध इत् धत्त एव धारयत्येव। यत्स्तोत्रमिंद्र ईदृशं बलमवश्यं जनयति तेन मन्मनेत्यर्थः॥

ये त्वामिंद्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः॥१२॥

ये। त्वां। इंद्र। न। तुस्तुवुः। ऋषयः। ये। च। तुस्तुवुः। मम। इत्। वर्धस्व। सुऽस्तुतः॥१२॥

हे इंद्र ये जनास्त्वां न तुष्टुवुः न स्तुवंति ये चर्षयो मंत्राणां द्रष्टारो जनास्तुष्टुवुः त्वां स्तुवंति उभयेषां मध्ये ममेन्ममैव स्तोत्रेण सुष्टुतः शोभनं स्तुतः सन् वर्धस्व। वृद्धो भव॥

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन्। अपः समुद्रमैरयत्॥१३॥

यत्। अस्य। मन्युः। अध्वनीत्। वि। वृत्रं। पर्वऽशः। रुजन्। अपः। समुद्रं। ऐरयत्॥१३॥

अस्येंद्रस्य मन्युः क्रोधो वृत्रमावृत्य तिष्ठंतमसुरं मेघं वा पर्वशः पर्वणि पर्वणि परुषि परुषि वि रुजन् विभंजन् यद्यदाध्वनीत् स्तनयितुलक्षणं शब्दमकरोत् तदानीं समुद्रं समुंदनीयमुदधिं प्रत्यपो वृष्ट्युदकान्यैरयत्। स इंद्रः प्रेरितवान्॥

नि शुष्ण इंद्र धर्णसिं वज्रं जघंथ दस्यवि। वृषा ह्युग्र शृण्विषे॥१४॥

नि। शुष्णे। इंद्र। धर्णसिं। वज्रं। जघंथ। दस्यवि। वृषा। हि। उग्र। शृण्विषे॥१४॥

हे इंद्र शुष्णे शोषक एतत्संज्ञे दस्यव्युपक्षपयितर्यसुरे धर्णसिं धारयितव्यं वज्रं कुलिशं त्वं नि जघंथ। निहतवानसि। वज्रेण तमसुरं न्यवधीरित्यर्थः। हे उग्रोद्गूर्णबलेंद्र वृषा कामानां वर्षितेति हि शृण्विषे। श्रूयसे। अतोऽस्मदपेक्षितं धनं देहीति शेषः॥

न द्याव इंद्रमोजसा नांतरिक्षाणि वज्रिणं। न विव्यचंत भूमयः ॥१५॥

न। द्यावः। इंद्रं। ओजसा। न। अंतरिक्षाणि। वज्रिणं। न। विव्यचंत। भूमयः ॥१५॥

द्यावो द्युलोका इममिंद्रमोजसा बलेन न विव्यचंत। न व्याप्नुवंति। द्युलोकेभ्योऽप्यस्य बलमधिकमित्यर्थः। तथांतरिक्षाण्यंतरा क्षांतानि द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमाना लोका वज्रिणं वज्रवंतमिंद्रं न व्याप्नुवंति। तथा भूमयो भूलोकाश्च तमिंद्रं न व्याप्नुवंति। त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः। ऐ॰ ब्रा॰ १. १. २.। इति ब्राह्मणादेकैकस्य लोकस्य त्रित्वं। तिस्रो भूमीः। ऋ॰ २. २७. ८.। इत्यादिनिगमाश्च॥ ॥११॥

यस्त इंद्र महीरपः स्तभूयमान आशयत्। नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥१६॥

यः। ते। इंद्र। महीः। अपः। स्तभुऽयमानः। आ। अशयत्। नि। तं। पद्यासु। शिश्नथः ॥१६॥

हे इंद्र ते तव संबंधिनीर्महीर्महतीरप आंतरिक्ष्याण्युदकानि यो वृत्रः स्तभूयमानः स्तंभयन् यथाधो न पतंति तथा कुर्वन्नाशयत् आवृत्याशेत तमसुरं पद्यासु गमनशीलास्वप्सु मध्ये नि शिश्नथः। न्यहिंसीः। श्नथिर्हिंसार्थः। वज्रेण तमसुरं हत्वा नदीषु पातितवानित्यर्थः॥

य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत्। तमोभिरिंद्र तं गुहः ॥१७॥

यः। इमे इति। रोदसी इति। मही इति। समीची इति संऽईची। संऽअजग्रभीत्।
तमःऽभिः। इंद्र। तं। गुहः ॥१७॥

यो वृत्रो मही महत्यौ विस्तीर्णे समीची संगते इमे प्रत्यक्षत उपलभ्यमाने रोदसी द्यावापृथिव्यौ समजग्रभीत् सम्यगग्रहीत्। आवृणोदित्यर्थः। तमसुरं हे इंद्र त्वं तमोभिरंधकारैर्गुहः। संवृतमकरोः। अनावृगंतं मरणलक्षणं तमः प्रावेशय इत्यर्थः॥

य इंद्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः। ममेदुग्र श्रुधी हवं ॥१८॥

ये। इंद्र। यतयः। त्वा। भृगवः। ये। च। तुस्तुवुः। मम। इत्। उग्र। श्रुधि। हवं ॥१८॥

हे इंद्र ये यतयो नियता अंगिरसस्त्वां तुष्टुवुः ये च भृगवो भृगुगोत्रास्त्वां तुष्टुवुः स्तुवंति तेषु मध्ये ममैवामैव हवं स्तोत्रं हे उग्रौजस्विन्निंद्र श्रुधि। शृणु॥

इमास्त इंद्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरं। एनामृतस्य पिप्युषीः ॥१९॥

इमाः। ते। इंद्र। पृश्नयः। घृतं। दुहते। आऽशिरं। एनां। ऋतस्य। पिप्युषीः ॥१९॥

हे इंद्र ते त्वदीया इमाः पृश्नयः प्राष्टवर्णा गावो घृतं क्षरणशीलमेनामाशिरमाश्रयणद्रव्यं पयो दुहते। दुहंति। क्षारयंति। कीदृश्यः पृश्नयः। ऋतस्य सत्यस्यावितथस्येंद्रस्य यज्ञस्य वा पिप्युषीर्वर्धयित्र्यः॥

या इंद्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन्। परि धर्मेव सूर्यं ॥२०॥

याः। इंद्र। प्रऽस्वः। त्वा। आसा। गर्भं। अचक्रिरन्। परि। धर्मऽइव। सूर्यं ॥२०॥

हे इंद्र प्रस्वः। प्रसुवते गर्भं विमुंचंतीति प्रस्वः॥ सूतेः सत्सूद्विषेति क्विप्॥ ईदृश्यो या गाव आसास्येन त्वा त्वदीयं वीर्यं वृत्रवधानंतरमोषध्यादिरूपेण परिणतं भक्षयित्वा गर्भमचक्रिरन् अकुर्वन् त्वदीयं वीर्यमंतरधारयन्। तत्र दृष्टांतः। सूर्यं परितः सूर्यमंडलस्योपरि धर्मेव धारकं पोषकमुदकं यथा रश्मयो गर्भरूपेण बिभ्रति तद्वत्। यद्वा। परि धर्मेव परितो धारयितारं सूर्यमिव। यथा सूर्यः परितः सर्वं जगद्धत्ते तद्वत्।

ह्लत्नस्य जगतो धारकमिंद्रस्य वीर्यमित्यर्थः। ओषध्यादिरूपेण परिणतस्येंद्रवीर्यस्य गोभिरात्मनि धारणमिंद्रस्य वृषं अघुष इत्यारभ्य तैत्तिरीयके विस्पष्टमाम्नातं। तत्पशव ओषधीभ्योऽध्यात्मन्त्समनयन् तत्प्रत्यदुहन्। तै॰ सं॰ २. ५. ३. ३.। इति। पयोरूपेण परिणतं तद्वीर्यमिमा गाव आशिरार्थं दुहत इति पूर्वस्यामृच्यन्वयः॥ ॥१२॥

वाजपेयेऽतिरिक्तोक्थे त्वामिच्छवसस्पत इत्येषा। सूचितं च। त्वामिच्छवसस्पते तं प्रत्नथा। आ॰ ९. ९.। इति॥

त्वामिच्छ॑वसस्पते॒ कण्वा॑ उ॒क्थेन॑ वावृधुः। त्वां सु॒तास॒ इंद॑वः ॥२१॥

त्वां। इत्। श॒व॒सः॒। प॒ते॒। कण्वाः॑। उ॒क्थेन॑। व॒वृ॒धुः॒। त्वां। सु॒तासः॑। इंद॑वः ॥२१॥

हे शवसस्पते बलस्य स्वामिन्निंद्र त्वामेव कण्वाः स्तोतारः कण्वगोत्रा वर्धय उक्थेन शस्त्रेण ववृधुः। वर्धयंति। सुतासोऽध्वर्युभिरभिषुता इंदवः सोमाश्च त्वामेव वर्धयंति॥

तवेदिं॑द्र प्रणी॑तिषू॒त प्रश॑स्तिरद्रिवः। य॒ज्ञो वि॑तंत॒साय्यः॑ ॥२२॥

तव॑। इत्। इं॒द्र॒। प्रऽनी॑तिषु। उ॒त। प्रऽश॑स्तिः। अ॒द्रि॒ऽव॒ः। य॒ज्ञः। वि॒तं॒त॒साय्यः॑ ॥२२॥

उतापि च हे अद्रिवः। आदृणात्यनेनेत्यद्रिर्वज्रः। तद्वन्निंद्र तवेत्तवैव प्रणीतिषु प्रकृष्टेषु नयनेषु धनप्रदानेषु सत्सु प्रशस्तिः प्रकृष्टा स्तुतिः क्रियते। तथा वितंतसाय्यो विस्तृततमः॥ तनोतेश्छांदसमेतद्रूपं। यद्वा। तंतसिः कंड्वादिर्वृद्ध्यर्थः। तस्मादौणादिक आय्यप्रत्ययः॥ प्रवृद्धो यज्ञश्च तवैव क्रियते॥

आ न॑ इंद्र म॒हीमिषं॒ पुरं॒ न द॑र्षि॒ गोम॑तीं। उ॒त प्र॒जां सु॒वीर्यं॑ ॥२३॥

आ। नः॒। इं॒द्र॒। म॒हीं। इषं॑। पुरं॑। न। द॒र्षि॒। गोऽम॑तीं। उ॒त। प्र॒ऽजां। सु॒ऽवीर्यं॑ ॥२३॥

हे इंद्र नोऽस्मभ्यमस्मदर्थं महीं महतीं गोमतीं गोभिर्युक्तामिषमन्नमा दर्षि। आद्रियस्व। दातुं कामयस्व। नशब्दश्चार्थे। पुरं न। पालनं पूः। पालनं रक्षणं चास्मभ्यं कर्तुमाद्रियस्व॥

उ॒त त्यदा॒श्वश्व्यं॒ यदिं॑द्र॒ नाहु॑षी॒ष्वा। अग्रे॑ वि॒क्षु प्र॒दीद॑यत् ॥२४॥

उ॒त। त्यत्। आ॒शु॒ऽअश्व्यं॑। यत्। इं॒द्र॒। नाहु॑षीषु। आ। अग्रे॑। वि॒क्षु। प्र॒ऽदीद॑यत् ॥२४॥

हे इंद्र नाहुषीषु। नहुषा इति मनुष्यनाम। तत्संबंधिनीषु। यद्वा। नाहुषो नाम कश्चिद्राजा। तदीयासु। विक्षु प्रजास्वग्रे पुरस्ताद्यदाश्वश्व्यं शीघ्रगाम्यश्वसंघात्मकं बलं प्रदीदयत् प्रादीप्यत उतापि च त्यत्तदप्यस्मभ्यं देहीति शेषः। आकारः पूरकः॥

अ॒भि व्र॒जं न त॑त्निषे॒ सूर॑ उपा॒कच॑क्षसं। यदिं॑द्र मृ॒ळया॑सि नः ॥२५॥

अ॒भि। व्र॒जं। न। त॒त्नि॒षे॒। सूरः॑। उ॒पा॒कऽच॑क्षसं। यत्। इं॒द्र॒। मृ॒ळया॑सि। नः॒ ॥२५॥

न संप्रत्यर्थे। न संप्रतीदानीं हे इंद्र सूरः प्राज्ञस्त्वं व्रजं गोष्ठमुपाकचक्षसं। उपाक इत्यंतिकनाम। अंतिके द्रष्टव्यमभि तत्निषे। अभितनोषि। अभिविस्तारयसि। गोभिः पूर्णं करोषीत्यर्थः॥ तनोतेश्छांदसे लिटि तनिपत्योश्छंदसीत्युपधालोपः॥ यद्यदा हे इंद्र त्वं नोऽस्मान् मृळयासि मृळयसि सुखयसि॥ ॥१३॥

यदं॒ग त॑विषीयस॒ इंद्र॑ प्र॒राज॑सि क्षि॒तीः। म॒हाँ अ॑पा॒र ओज॑सा ॥२६॥

यत्। अं॒ग। त॒वि॒षी॒ऽय॒से॑। इंद्र॑। प्र॒ऽराज॑सि। क्षि॒तीः। म॒हान्। अ॒पा॒रः। ओज॑सा ॥२६॥

ष्वंगेत्यभिमुखीकरणे । हे इंद्र यद्यस्त्वं तविषीयसे । तविषीति बलनाम । बलमिवाचरसि । हस्त्यश्वरथादिकं बलं यथा सर्वं शत्रुजातं भनक्ति तद्वत्त्वमसहाय एव सन् सर्वमेव शत्रुजातं मारयसीत्यर्थः । यच्च त्वं क्षितीः । मनुष्यनामैतत् । मनुष्यान् प्रराजसि प्रकर्षेणेशिषे । राजतिरैश्वर्यकर्मा ॥ अस्यापि यद्वृत्तयोगान्न निघातः ॥ स इंद्र ओजसा बलेन महान् सर्वेभ्योऽधिकः अत एवापारः पाररहितः । केनाप्यवसानं प्रापयितुमशक्य इत्यर्थः ॥

तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये । उरुज्रयसमिंदुभिः ॥२७॥

तं । त्वा । हविष्मतीः । विशः । उप । ब्रुवते । ऊतये । उरुऽज्रयसं । इंदुऽभिः ॥२७॥

हे इंद्र तं पूर्वोक्तगुणमुरुज्रयसं विस्तीर्णव्यापिनं त्वां हविष्मतीर्हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिर्युक्ता विशः प्रजा उप ब्रुवते । उपेत्य स्तुवंति । किमर्थं । इंदुभिः सोमैरूतये तर्पणाय । यद्वा । इंदुभिः सोमैरुरुज्रयसं विस्तीर्णजवमूतये रक्षणाय स्तुवंति ॥

उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनां । धिया विप्रो अजायत ॥२८॥

उपऽह्वरे । गिरीणां । संऽगथे । च । नदीनां । धिया । विप्रः । अजायत ॥२८॥

गिरीणां पर्वतानामुपह्वर उपह्वर्तव्ये प्रांते नदीनां सरितां संगथे संगमने च ईदृग्विधे देशे क्रियमाणया धिया यागक्रियया स्तुत्या वा विप्रो मेधावींद्रोऽजायत । प्रादुर्भवति । अतो वयमपि तादृशे देशे यजामः स्तुमो वेति भावः ॥ गिरीणामित्यत्र नामन्यतरस्यामिति नाम उदात्तत्वं ॥

अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति । यतो विपान एजति ॥२९॥

अतः । समुद्रं । उत्ऽवतः । चिकित्वान् । अव । पश्यति । यतः । विपानः । एजति ॥२९॥

यतो यस्मिन्द्युलोके विपानो व्याप्नुवन् विशिष्टपानयुक्तो वेंद्र एजति चेष्टते उद्वत उन्नतात् ॥ उपसर्गाच्छंदसि धात्वर्थ इति वतिः ॥ अतोऽस्माद्द्युलोकाच्चिकित्वाञ्जानन् स इंद्रः समुद्रं समुंदनशीलं यजमानैर्दीयमानं सोममव पश्यति । अवाङ्मुखः सन्नीक्षते । यद्वा । सूर्यात्मनेंद्रः स्तूयते । यस्मिन्नभसि विपानो व्याप्नुवन् सूर्यात्मेंद्र एजति वर्तते चिकित्वाञ्जानन् विद्वान्वा स इंद्र उद्वत उन्नतादतोऽस्मादंतरिक्षात्समुद्रं । उपलक्षणमेतत् । समुद्रोपलक्षितं सर्वं जगदव पश्यति । अवाङ्मुखं प्रसृतैः किरणैः प्रकाशयति ॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यंति वासरं । परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥

आत् । इत् । प्रत्नस्य । रेतसः । ज्योतिः । पश्यंति । वासरं । परः । यत् । इध्यते । दिवा ॥३०॥

परो दिवा दिवः परस्ताद्द्युलोकस्योपरि यद्यदायमिंद्रः सूर्यात्मनेध्यते दीप्यते आदिदनंतरमेव प्रत्नस्य चिरंतनस्य रेतसो गंतुः ॥ री गतिरेषणयोः । अस्मात् सुरीभ्यां तुट् च । उ० ४. २०१. । इत्यसुन् तुडागमश्च ॥ यद्वा । रेत इत्युदकनाम । रेतस्विन उदकवतः । सामर्थ्यान्मत्वर्थो लक्ष्यते । ईदृशस्येंद्रस्य सूर्यात्मनो वासरं निवासकं वासरस्य निवासस्य हेतुभूतं वा ज्योतिर्द्योतमानं तेजः पश्यंति सर्वे जनाः । यद्वा । वासरमित्यत्यंतसंयोगे द्वितीया । कृत्स्नमहरुदयप्रभृत्यास्तमनं यावज्ज्योतिष्पश्यंतीत्यर्थः ॥ इसुसोः सामर्थ्य इति विसर्जनीयस्य षत्वं ॥ ॥१४॥

कण्वास इंद्र ते मतिं विश्वे वर्धंति पौंस्यं । उतो शविष्ठ वृष्ण्यं ॥३१॥

कण्वासः । इंद्र । ते । मतिं । विश्वे । वर्धंति । पौंस्यं । उतो इति । शविष्ठ । वृष्ण्यं ॥३१॥

हे इंद्र ते त्वदीयां मतिं बुद्धिं पौंस्यं । बलनामैतत् । बलं च विश्वे सर्वे कण्वासः कण्वाः स्तोतारः

कण्वगोत्रा ऋषयो वर्धंति । वर्धयंति ॥ छंदस्युभयथेति शप आर्धधातुकत्वाणेरनिटीति णिलोपः ॥ उतो अपि च हे शविष्ठ शवस्वितम बलवत्तम ॥ विन्मतोर्लुक् । टेरिति टिलोपः ॥ ईदृशेंद्र वृष्ण्यं त्वदीयं वीर्यं बलकर्म च कण्वासो वर्धयंत्येव ॥

इमां म इंद्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव । उत प्र वर्धया मतिं ॥३२॥

इमां । मे । इंद्र । सुऽस्तुतिं । जुषस्व । प्र । सु । मां । अव । उत । प्र । वर्धय । मतिं ॥३२॥

हे इंद्र इमां पुरोवर्तिनीं मे मदीयां सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं जुषस्व । सेवस्व । सेवित्वा च स्तोतारं मां सु शोभनं प्राव । प्रकर्षेण रक्ष । उतापि च मतिमस्मदीयां बुद्धिं प्र वर्धय । प्रवृद्धां कुरु । यथा बह्वर्थदर्शिनी भवति तथा कुर्वित्यर्थः ॥

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥३३॥

उत । ब्रह्मण्या । वयं । तुभ्यं । प्रऽवृद्ध । वज्रिऽवः । विप्राः । अतक्ष्म । जीवसे ॥३३॥

उतापि च हे प्रवृद्ध स्तुतिभिः प्रकृष्टां वृद्धिं प्राप्त हे वज्रिवो वज्रवन्निंद्र ॥ एको मत्वर्थीयोऽनुवादः । यद्वा । वज्रोऽस्यास्तीति वज्री हस्तः । तद्वान् । छंदसीर इति मतुपो वत्वं । मतुवसो रुरिति मकारस्य रुत्वं ॥ ईदृशेंद्र तुभ्यं त्वदर्थं विप्रा मेधाविनो ब्रह्मण्या ब्रह्माणि स्तोत्राणि हविर्लक्षणान्यन्नानि वा ॥ सुपां सुलुगिति सुपो याजादेशः ॥ जीवसे जीवनार्थमतक्ष्म । अकार्ष्म ॥ तक्षू त्वक्षू तनूकरणे । लङि छांदसः शपो लुक् ॥

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः । इंद्रं वनन्वती मतिः ॥३४॥

अभि । कण्वाः । अनूषत । आपः । न । प्रऽवता । यतीः । इंद्रं । वनन्ऽवती । मतिः ॥३४॥

कण्वाः कण्वगोत्रा ऋषयोऽभ्यनूषत । इंद्रमभिष्टुवंति ॥ णू स्तुतौ । कुटादिः ॥ प्रवता प्रवणेन मार्गेण यतीर्गच्छंत्य आपो नाप इव मतिर्मननीया कण्वैः क्रियमाणा स्तुतिः स्तुत्यमिंद्रं वनन्वती स्वयमेव संभजनवती भवति ॥

इंद्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिंधवः । अनुत्तमन्युमजरं ॥३५॥

इंद्रं । उक्थानि । ववृधुः । समुद्रंऽइव । सिंधवः । अनुत्तऽमन्युं । अजरं ॥३५॥

उकथानि शस्त्राण्यस्माभिः शस्यमानानींद्रं ववृधुः । वर्धयंति । सिंधवः स्यंदनशीला नद्यः समुद्रमिव समुद्रं जलधिं यथा वर्धयंति तद्वत् । कीदृशमिंद्रं । अनुत्तमन्युं । अनुत्तोऽप्रेरितः परैरनभिभूतो मन्युः क्रोधो यस्य तादृशं ॥ नुदविदोंदत्रेत्यादिना । पा॰ ८. २. ५६. । विकल्पितत्वान्निष्ठानत्वाभावः ॥ अजरं जरारहितं ॥ बहुव्रीहौ नञो जरमरमित्रमृता इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वं ॥ ॥१५॥

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्यां । इममिंद्र सुतं पिब ॥३६॥

आ । नः । याहि । पराऽवतः । हरिऽभ्यां । हर्यताभ्यां । इमं । इंद्र । सुतं । पिब ॥३६॥

हे इंद्र परावतः परागताद्दूरे वर्तमानाद्द्युलोकाद्धर्यताभ्यां कांताभ्यां हरिभ्यामश्वाभ्यां नोऽस्माना याहि । आगच्छ । आगत्य चेममस्मदीयं सुतमभिषुतं सोमं पिब ॥

त्वामिद्वृत्रहंतम जनासो वृक्तबर्हिषः । हवंते वाजसातये ॥३७॥

त्वां । इत् । वृत्रहन्ऽतम । जनासः । वृक्तऽबर्हिषः । हवंते । वाजऽसातये ॥३७॥

हे वृत्रहंतमातिशयेन वृत्राणामावृण्वतां शत्रूणां हंतः त्वामित्त्वामेव वृक्तबर्हिषो वृक्तं यागार्थं छिन्नं बर्हिर्येषां तथाविधोक्ताः प्रवृत्तयज्ञा जनासो जना ऋत्विग्लक्षणा हुयंते । आह्वयंति ॥ ह्वेञः शपि बहुलं छंदसीति संप्रसारणं ॥ किमर्थं । वाजसातये वाजस्यान्नस्य बलस्य वा सातये लाभाय । यद्वा । संग्रामनामैतत् । वाजस्य सातिर्यस्मिन् संग्रामे तत्र साहाय्याय त्वामाह्वयंतीत्यर्थः ॥

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशं । अनु सुवानास इंदवः ॥३८॥

अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । चक्रं । न । वर्ति । एतशं । अनु । सुवानासः । इंदवः ॥३८॥

हे इंद्र त्वा त्वामुभे रोदसी द्यावापृथिव्यावनुवर्तेते । त्वदधीने भवत इत्यर्थः । तत्र दृष्टांतः । चक्रं न यथा रथचक्रमेतशं । अश्वनामैतत् । पुरो गच्छंतमश्वमनु वर्ति अनुवर्तते तद्वत् । अपि च सुवानास ऋत्विग्भिरभिषूयमाणा इंदवः सोमाश्च त्वामनुवर्तंते ॥

मंदस्वा सु स्वर्णर उतेंद्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ॥३९॥

मंदस्व । सु । स्वःऽनरे । उत । इंद्र । शर्यणाऽवति । मत्स्व । विवस्वतः । मती ॥३९॥

उतापि च हे इंद्र शर्यणावति । शर्यणा नाम कुरुक्षेत्रवर्तिनो देशाः । तेषामदूरभवं सरः शर्यणावत् ॥ मध्वादिभ्यश्चेति स्वार्थिको मतुप् । मतौ बह्वच इति दीर्घः । संज्ञायामिति वत्वं ॥ तस्मिन् सरसि विद्यमाने स्वर्णरे सर्वैर्ऋत्विग्भिर्नेतव्ये यज्ञे सु सुष्ठु मंदस्व । माद्य । तृप्तो भव । अपि च विवस्वतः परिचरणवतो यजमानस्य मती मत्या च मत्स्व । मदं प्राप्नुहि ॥ मतिशब्दात्तृतीयायाः सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृत्रहा सोमपातमः ॥४०॥

ववृधानः । उप । द्यवि । वृषा । वज्री । अरोरवीत् । वृत्रऽहा । सोमऽपातमः ॥४०॥

वावृधानो वृद्धो वज्री वज्रवान् अत एव वृत्रहा वृत्रस्य मेघस्यासुरस्य वा हंता सोमपातमोऽतिशयेन सोमस्य पातेंद्रो वृषोदकानां वर्षिता द्यवि द्युलोकेऽंतरिक्ष उप समीपे यथास्माभिः श्रूयते तथारोरवीत् । भृशं स्तनयित्नुलक्षणं शब्दमकरोत् । मेघेन वज्रहस्तेनेदृशं शब्दमचीकरदित्यर्थः ॥ ॥१६॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इंद्र चोष्कूयसे वसु ॥४१॥

ऋषिः । हि । पूर्वऽजाः । असि । एकः । ईशानः । ओजसा । इंद्र । चोष्कूयसे । वसु ॥४१॥

हे इंद्र पूर्वजाः सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं जात उत्पन्नः । यद्वा । यज्ञेषु प्रथममेव प्रादुर्भूतः । त्वमृषिर्हि द्रष्टा सर्वज्ञः खल्वसि । भवसि । अपि च सर्वेषु देवेषु मध्य एको मुख्य ओजसा बलेनेशान ईश्वरो भवसि । यद्वा । एकोऽसहाय एव सन्नोजसात्मीयेनैव बलेनेशानः सर्वस्य जगत ईश्वरो भवसि । स त्वं वसु धनं चोष्कूयसे । पुनःपुनः स्तोतृभ्यो ददासि ॥ स्कुञ् आप्रवण इह दानार्थः । तथा चोक्तं । चोष्कूयमाण इंद्र भूरि वामं ददद्इंद्र बहु वननीयं । नि० ६. २२. । इति ॥

अस्माकँ त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहंतु हरयः ॥४२॥

अस्माकँ । त्वा । सुतान् । उप । वीतऽपृष्ठाः । अभि । प्रयः । शतं । वहंतु । हरयः ॥४२॥

हे इंद्र अस्माकमस्मदीयान् सोमानुपलक्ष्य प्रयः । अन्ननामैतत् । धानाकरंभादिहविर्लक्षणमन्नं चाभिलक्ष्य वीतपृष्ठाः प्रशस्तोपरिभागाः शतं शतसंख्याका हरयोऽश्वास्त्वां वहंतु । प्रापयंतु ॥

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीं । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥४३॥

इमां । सु । पूर्व्यां । धियं । मधोः । घृतस्य । पिप्युषीं । कण्वाः । उक्थेन । ववृधुः ॥४३

इमामिदानीं क्रियमाणां सु सुष्ठु पूर्व्या पूर्वैः पित्रादिभिः कृतां मधोर्मधुरस्य घृतस्य क्षरणशीलस्योदकस्य पिप्युषीं वर्धयित्रीं । यद्वा । मधुरेण घृतेनाज्येन प्रवृद्धां धियं यागक्रियां कण्वाः कण्वगोत्रा ऋषय उक्थेन शस्त्रेण वावृधुः । इंद्रार्थं वर्धयंति । उक्थैर्हि यागो वर्धते । अत्यग्निष्टोमादिषूत्तरासु संस्थासु शस्त्रवृद्धेर्दृष्टत्वात् । यद्वा । पूर्व्या चिरंतनीमिमामिंद्रस्य धियमनुग्रहबुद्धिं क्षरणशीलेन मधुरेण सोमेन पिप्युषीं वर्धनीयामुक्थेन स्तोत्रेण वावृधुः । वर्धयंति ॥

इंद्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इंद्रं सनिष्युरूतये ॥४४॥

इंद्रं । इत् । विऽमहीनां । मेधे । वृणीत । मर्त्यः । इंद्रं । सनिष्युः । ऊतये ॥४४॥

विमहीनां विशेषेण महतां देवानां मध्य इंद्रमिदिंद्रमेव मेधे यज्ञे मर्त्यो मनुष्यो होता वृणीत । स्तुतिभिः संभजते । तथा सनिष्युर्धनकामस्य स्तोतोतये रक्षणायेंद्रमेव वृणीते । स्तुत्या संभजते ॥

अर्वांचं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥४५॥

अर्वांचं । त्वा । पुरुऽस्तुत । प्रियमेधऽस्तुता । हरी इति । सोमऽपेयाय । वक्षतः ॥४५॥

हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुतेंद्र प्रियमेधस्तुता प्रियमेधैः प्रिययज्ञैर्ऋषिभिः स्तुतौ ॥ तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं । सुपां सुलुगित्याकारः ॥ ईदृशौ हरी अश्वौ सोमपेयाय सोमपानार्थं त्वामर्वांचमस्मदभिमुखं वक्षतः । वहतां ॥

शतमहं तिरिंदिरे सहस्रं पर्शावा ददे । राधांसि याद्वानां ॥४६॥

शतं । अहं । तिरिंदिरे । सहस्रं । पर्शौ । आ । ददे । राधांसि । याद्वानां ॥४६॥

इदमादिकेन तृचेन तिरिंदिरस्य राज्ञो दानं स्तूयते । पर्शौ परशुनाम्नः पुत्रे ॥ उपचाराज्जन्ये जनकशब्दः ॥ तिरिंदिर एतत्संज्ञे राजनि याद्वानां । यदुरिति मनुष्यनाम । यदव एव याद्वाः ॥ स्वार्थिकस्तद्धितः ॥ तेषां मध्येऽहं शतं शतसंख्याकानि सहस्रं सहस्रसंख्याकानि च राधांसि धनान्या ददे । स्वीकरोमि । यद्वा । याद्वानां यदुकुलजानामन्येषां राज्ञां स्वभूतानि राधांसि बलादपहृतानि तिरिंदिरे वर्तमानान्यहं प्राप्नोमि ॥

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनां । ददुष्पज्राय साम्ने ॥४७॥

त्रीणि । शतानि । अर्वतां । सहस्रा । दश । गोनां । ददुः । पज्राय । साम्ने ॥४७॥

पूर्वस्यामृचि स्वसंप्रदानकं दानमुक्तं । अधुनान्येभ्योऽप्यृषिभ्यस्तिरिंदिरो बहु दानं दत्तवानित्याह । अर्वतां गंतॄणामश्वानां त्रीणि शतानि गोनां गवां दश दशगुणितानि सहस्रा सहस्राणि च पज्राय स्तुतीनां प्रार्जकाय साम्न एतत्संज्ञायर्षये । यद्वा । साम्ने । साम स्तोत्रं । तद्वते । पज्राय पज्रकुलजाताय कक्षीवते ददुः । तिरिंदिराख्या राजानो दत्तवंतः ॥

उदानट्ककुहो दिवमुष्ट्रांश्चतुर्युजो ददत् । श्रवसा याद्वं जनं ॥४८॥

उत् । आनट् । ककुहः । दिवं । उष्ट्रान् । चतुःऽयुजः । ददत् । श्रवसा । याद्वं । जनं ॥४८॥

अयं राजा ककुह उच्छ्रितः सञ्छ्रवसा कीर्त्या दिवं स्वर्गमुदानट् । उत्कृष्टतरं व्याप्नोत् । किं कुर्वन् । चतुर्युजश्चतुर्भिः स्वर्णभारैर्युक्तानुष्ट्रान् ददत् प्रयच्छन् । तथा याद्वं जनं च दासत्वेन प्रयच्छन् ॥ ॥१७॥

प्र यद्व इति षट्त्रिंशदृचं द्वितीयं सूक्तं कण्वगोत्रस्य पुनर्वत्सस्यार्षं मारुतं गायत्रं । तथा चानुक्रांतं । प्र यद्वः षट्त्रिंशत्पुनर्वत्सो मारुतमिति ॥ व्यूळ्हे दशरात्रे प्रथमे छंदोम आग्निमारुतशस्त्र इदं सूक्तं मारुतनिविद्धानं । सूत्रितं च । प्र यद्वस्त्रिष्टुभं दूतं व इत्याग्निमारुतं । आ० ८. ९. । इति ॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥१॥
प्र । यत् । वः । त्रिऽस्तुभं । इषं । मरुतः । विप्रः । अक्षरत् । वि । पर्वतेषु । राजथ ॥१॥

हे मरुतो मितराविणो मितरोचिनो वा एतत्संज्ञा माध्यमका देवगणाः ॥ पादादित्वादपादादाविति पर्युदासादाष्टमिकनिघाताभावे षाष्ठिकमामंत्रितायुदात्तत्वं ॥ वो युष्मभ्यं विप्रो मेधावी स्तोता त्रिष्टुभं त्रिषु सवनेषु प्रशस्यां त्रिभिर्देवैः स्तुतां वा यद्वा त्रिष्टुप्छंदसा संबद्धां माध्यंदिनसवनिकीमिषं सोमलक्षणमन्नं यद्यदा प्राक्षरत् प्रासिंचत् अग्नौ प्राक्षिपत् । यद्वा । त्रिष्टुभं त्रिष्टुप्छंदस्कं स्तोत्रमिषं सोमं चेति योज्यं । तदानीं यूयं पर्वतेषु पर्ववत्सु त्रिलोकाश्रयेषु वि राजथ । तेन सोमेन लब्धबलाः संतो विशेषेण दीप्ता भवथ ॥

यदंग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वं । नि पर्वता अहासत ॥२॥
यत् । अंग । तविषीऽयवः । यामं । शुभ्राः । अचिध्वं । नि । पर्वताः । अहासत ॥२॥

हे तविषीयवः । तविषीति बलनाम । तां कामयमानाः । यद्वा । बलयुक्ताः । हे शुभ्राः शोभमाना अंग हे मरुतः यामं । याति गच्छतीति यामो रथः । तं यद्यदाचिध्वं समचिनुध्वं अश्वादिभिः साधनैः संचितं संश्लिष्टं कुरुथ गमनार्थं तदानीं पर्वता गिरयोऽपि न्यहासत । नितरां गच्छंति । युष्मद्रथवेगाद्भीताः संतः स्वस्थानात्प्रचलंति ॥ ओहाङ् गतौ । छांदसो लुङ् ॥

उदीरयंत वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षंत पिप्युषीमिषं ॥३॥
उत् । ईरयंत । वायुऽभिः । वाश्रासः । पृश्निऽमातरः । धुक्षंत । पिप्युषीं । इषं ॥३॥

वाश्रासो वाशनशीलाः शब्दकारिणः पृश्निमातरः । पृश्निर्माध्यमिका वाक् । सा माता जननी येषां ते तथोक्ताः ॥ ऋतश्छंदसीति कपः प्रतिषेधः ॥ ईदृशा मरुतो वायुभिः । वांति गच्छंतीति वायवः पृषत्यः । पृषतीभिर्वाहनभूताभिः स्वावयवभूतैर्वायुभिरेव वोदीरयंत । उन्नमयंति मेघादिकं । तथा पिप्युषीं वर्धयित्रीमिषमन्नं च स्तोतृभ्यो धुक्षंत । दुहंति ॥

वपंति मरुतो मिहं प्र वेपयंति पर्वतान् । यद्यामं यांति वायुभिः ॥४॥
वपंति । मरुतः । मिहं । प्र । वेपयंति । पर्वतान् । यत् । यामं । यांति । वायुऽभिः ॥४॥

मरुत एतत्संज्ञा देवा मिहं वृष्टिं वपंति । विकिरंति । विक्षिपंति । तथा पर्वतान् गिरीन् प्र वेपयंति । प्रकंपयंति । अयमर्थः कदेति चेत् । यद्यदा वायुभिः सार्धं यामं रथं गमनं वा यांति प्राप्नुवंति तदानीमित्यर्थः ॥

नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिंधवो विधर्मणे । महे शुष्माय येमिरे ॥५॥
नि । यत् । यामाय । वः । गिरिः । नि । सिंधवः । विऽधर्मणे । महे । शुष्माय । येमिरे ॥५॥

हे मरुतः वो युष्माकं यामाय रथाय गमनाय वा गिरिः ॥ सुपां सुलुगिति जसः सुः ॥ गिरयः पर्वता यद्यदा नि येमिरे स्वयमेव नियम्यंते तथा सिंधवः स्यंदनशीलाः समुद्रा नद्यो वा विधर्मणे विधरणाय महे महते शुष्माय शोषकाय युष्मदीयाय बलाय नि येमिरे स्वयमेव नियम्यंते । गिरयो नद्यश्च युष्मद्यामाद्भयाच्च भीतिकवैकस्थाने नियता वर्तंत इत्यर्थः । तदानीं वपंति मरुतो मिहमिति शेषः ॥ यमेः कर्मकर्तरि लिट् । यद्वृत्तान्नित्यमिति निघातप्रतिषेधः ॥ ॥१८॥

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे । युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥६॥
युष्मान् । ऊं इति । नक्तं । ऊतये । युष्मान् । दिवा । हवामहे । युष्मान् । प्रऽयति । अध्वरे ॥६॥

हे मरुतः युष्माँ उ युष्मानेव नक्तं रात्रावूतये रक्षणार्थं हवामहे। दिवाह्नि च युष्मानेवाह्वयामहे। अध्वरे। ध्वरो नास्त्यस्मिन्नित्यध्वरो यागः ॥ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ यागे प्रयति प्रगच्छति प्रवर्तमाने सति रक्षणार्थं युष्मानेवाह्वयामहे ॥

उदु त्ये अ॒रु॒णप्स॑वश्चि॒त्रा याम॑भिरीरते। वा॒श्रा अधि॑ ष्णुना॑ दि॒वः ॥७॥

उत्। ऊं॒ इति॑। त्ये। अ॒रु॒णऽप्स॑वः। चि॒त्राः। याम॑ऽभिः। ई॒र॒ते॒। वा॒श्राः। अधि॑। स्नुना॑। दि॒वः ॥७॥

त्ये ते पूर्वोक्तगुणा अरुणप्सवोऽरुणवर्णरूपाश्चित्राश्चायनीया आश्चर्यभूता वा वाश्राः शब्दकारिणः एवंभूता मरुतो यामेभिर्यामैर्यानैर्दिवोऽधि द्युलोकस्योपरि स्नुना सानुना समुच्छ्रितप्रदेशेनोदीरते। उद्गच्छंति। उ इति पूरणः ॥ पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानमिति सानुशब्दस्य स्नुभावः ॥

कारीर्यां सौर्यस्य हविषः सृजंति रश्मिमित्येषानुवाक्या। सूत्र्यते हि। सृजंति रश्मिमोजसा वह्निष्ठेभिर्विहरन्यासि तंतुं। आ॰ २. १३.। इति ॥

सृ॒जंति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पंथां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे। ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे ॥८॥

सृ॒जंति॑। र॒श्मिं। ओज॑सा। पंथां॑। सूर्या॑य। यात॑वे। ते। भा॒नुऽभिः॑। वि। त॒स्थि॒रे॒ ॥८॥

तच्छब्दश्रुतेर्यच्छब्दाध्याहारः। ये मरुतः सूर्याय सूर्यस्य ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्येति चतुर्थी ॥ यातवे गंतुं रश्मिं व्याप्तं ॥ अशू रश चेत्यश्नोतेरौणादिको मिप्रत्ययो रशादेशश्च ॥ यद्वा। रश्मिभिस्तेजोभिर्युक्तं। पंथां पंथानमोजसा बलेन सृजंति उत्पादयंति। वृत्रादिभिरावृतं सूर्यपथमावरकस्य वृत्रादेरपनयनेन जनयंतीत्यर्थः। ते मरुतो भानुभिस्तेजोभिर्वि तस्थिरे। कृत्स्नं जगद्व्याप्यावतिष्ठंते ॥

इ॒मां मे॑ मरुतो॒ गिर॑मि॒मं स्तोम॑मृभुक्षणः। इ॒मं मे॑ वनता॒ हवं॑ ॥९॥

इ॒मां। मे॒। म॒रु॒तः॒। गिरं॑। इ॒मं। स्तोमं॑। ऋ॒भु॒क्ष॒णः॒। इ॒मं। मे॒। व॒न॒त॒। हवं॑ ॥९॥

हे मरुतः इमां पुरोवर्तिनीं मे मम गिरं शस्त्ररूपां वाचं वनत। संभजत। हे ऋभुक्षणः। महन्नामैतत्। महांतः ॥ असीतोऽत्सर्वनामस्थान इत्यकारः। वा षपूर्वस्य निगम इति दीर्घाभावः ॥ ते यूयमिमं स्तोमं स्तोत्रं प्रगीतमंत्रसाध्यं मे ममेमं पुरोवर्तिनं हवमाह्वानरूपं च याजुषं मंत्रं वनत। संभजत। सेवध्वं ॥

त्रीणि॒ सरां॑सि॒ पृश्न॑यो दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑। उत्सं॒ कवं॑धमु॒द्रिणं॑ ॥१०॥

त्रीणि॑। सरां॑सि। पृश्न॑यः। दु॒दु॒ह्रे॒। व॒ज्रिणे॑। मधु॑। उत्सं॑। कवं॑धं। उ॒द्रिणं॑ ॥१०॥

पृश्नयो मरुन्मातृभूता गावो वज्रिणे वज्रवत इंद्राय ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ इंद्रार्थं मधु मधुरं क्षीरादिकमाश्रयणद्रव्यं त्रीणि सरांसि सर इव सोमैः पूरितानि त्रीणि सवनानि त्रिष्वपि सवनेषु श्रयणार्थं दुदुह्रे। दुदुहिरे। यद्वा। मधु मधुरं सोमं वज्रिणे वज्रयुक्ताय मरुद्गणाय त्रीणि सरांसि द्रोणकलशाधवनीयपूतभृल्लक्षणानि प्रति पृश्नयो माध्यमिका वाचो दुदुह्रे। वृष्टिद्वारा दुहंति। यद्वा। पृश्नय इति मातृवाचिना शब्देन पुत्रा उच्यंते। पृश्निमातरो मरुत इंद्रार्थं त्रीणि सरांसि द्रोणकलशादीनि मधु मधुना सोमेन पूरयितुमुत्समुत्स्रवणशीलं कवंधमुदकमुद्रिणमुदकवंतं मेघं दुदुह्रे। दुहते ॥ दुहेश्छांदसो लिट्। इरयो रे इति रेभावः। पादादित्वादनिघातः ॥ ॥१९॥

मरु॑तो॒ यद्ध॑ वो दि॒वः सु॑म्ना॒यंतो॒ हवा॑महे। आ तू॒ न॒ उप॑ गंतन ॥११॥

मरु॑तः। यत्। ह॒। वः॒। दि॒वः। सु॒म्न॒ऽयंतः॑। हवा॑महे। आ। तु। नः॒। उप॑। गं॒त॒न॒ ॥११॥

हे मरुतः यत्र यदा खलु वो युष्मान् सुम्नायंतः सुम्नं सुखमात्मन इच्छंतो वयं दिवो द्युलोकाद्धवामहे स्तुतिभिराह्वयामहे आ त्वनंतरमेव शीघ्रं नोऽस्मानुप गंतन । उपगच्छत ॥ गमेर्लोटि तप्तनप्तनथनाश्चेति तनबादेशः ॥

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥१२॥

यूयं । हि । स्थ । सुऽदानवः । रुद्राः । ऋभुक्षणः । दमे । उत । प्रऽचेतसः । मदे ॥१२॥

उतापि च हे सुदानवः शोभनदाना हे रुद्रा रुद्रपुत्राः ॥ पादादित्वादामंत्रितनिघाताभावः ॥ हे ऋभुक्षणो महांत उरुतेजस्का वा ईदृशा हे मरुतः यूयं हि खलु दमे यज्ञगृहे मदे मदकरे सोमे पीते सति प्रचेतसः स्थ । प्रकृष्टज्ञाना भवथ ॥

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसं । इयर्ता मरुतो दिवः ॥१३॥

आ । नः । रयिं । मदऽच्युतं । पुरुऽक्षुं । विश्वऽधायसं । इयर्त । मरुतः । दिवः ॥१३॥

हे मरुतः नोऽस्माकं रयिं धनं दिवो द्युलोकादेयर्त । आगमयत ॥ ऋ गतावित्यस्मादंतर्भावितण्यर्थाज्जुहोत्यादिकाल्लोटि तस्य तप्तनप्तनेति तबादेशः । अनुदात्ते चेत्यभ्यस्तायुदात्तत्वं ॥ कीदृशं रयिं । मदच्युतं मदं स्रवंतं यद्वा शात्रवस्य मदस्य च्यावयितारं पुरुक्षुं बहुनिवासं बहुभिः स्तूयमानं वा विश्वधायसं विश्वेषां सर्वेषामस्मदीयानां धारणाय पोषणाय पर्याप्तं ॥

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वं । सुवानैर्मंदध्व इंदुभिः ॥१४॥

अधिऽइव । यत् । गिरीणां । यामं । शुभ्राः । अचिध्वं । सुवानैः । मंदध्वे । इंदुऽभिः ॥१४॥

हे शुभ्राः शोभमाना मरुतः गिरीणां पर्वतानामधीवोपरीव यद्यदा यामं युष्मदीयं रथमचिध्वं गमनसाधनैरश्वादिभिरुपचितं कुरुथ तदानीं सुवानैरभिषूयमाणैरिंदुभिः सोमैर्मंदध्वे । मादयध्वे ॥

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥१५॥

एतावतः । चित् । एषां । सुम्नं । भिक्षेत । मर्त्यः । अदाभ्यस्य । मन्मऽभिः ॥१५॥

मर्त्यो मनुष्यः स्तोता मन्मभिः स्तोत्रैः सुम्नं सुखं धनं वैषां मरुतां स्वभूतं भिक्षेत । याचेत । इदानीं गणाभिप्रायेणैकवदाह । एतावतश्चित्यत्परिमाणस्य चादाभ्यस्य केनापि हिंसितुमशक्यस्य मरुद्गणस्य सुम्नं भिक्षेत ॥ एतच्छब्दात् यत्तदेतेभ्य इति परिमाणेऽर्थे वतुप् । आ सर्वनाम्न इत्यात्वं ॥ ॥२०॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमंत्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहंतो अक्षितं ॥१६॥

ये । द्रप्साःऽइव । रोदसी इति । धमंति । अनु । वृष्टिऽभिः । उत्सं । दुहंतः । अक्षितं ॥१६॥

ये मरुतो द्रप्सा इवोदबिंदव इव रोदसी द्यावापृथिव्यौ वृष्टिभिर्वर्षणैरनु धमंति अनुगच्छंति साकल्येन व्याप्नुवंति । यद्वा । अनुध्माते उच्छ्वसितावयवे कुर्वंति । किं कुर्वंतः । अक्षितमक्षीणमुदकमुत्सं मेघं दुहंतः पूरयंतो मेघादवाङ्मुखं पातयंतः ॥ दुहेर्लक्षणहेत्वोः । पा॰ ३. २. १२६. । इति हेतौ शतृप्रत्ययः ॥ यत एवं दुहंति ततो रोदसी अनुधमंतीत्यर्थः ॥

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः । उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥१७॥

उत् । ऊं इति । स्वानेभिः । ईरते । उत् । रथैः । उत् । ऊं इति । वायुऽभिः । उत् । स्तोमैः । पृश्निऽमातरः ॥१७॥

स्वानेभिः स्वानैः शब्दैर्मरुत उदीरते । उद्गच्छंति ॥ स्वन शब्दे । स्वनहसोर्वा । पा॰ ३. ३. ६२. । इत्यपो विकल्पितत्वात्पक्षे घञ् । कर्षात्वत इत्यंतोदात्तत्वं । बहुलं छंदसीति भिस ऐसभावः ॥ उ इति पूरणः । तथा रथे रथप्रमुखैर्वाहनैश्चोदीरते । पृश्निमातरः ---॥

येना॒व तु॒र्वशं॒ यदुं॒ येन॒ कण्वं॑ धन॒स्पृतं॑ । रा॒ये सु तस्य॑ धीमहि ॥१८॥

येन॑ । आ॒व । तु॒र्वश॑ं । यदु॑ं । येन॑ । कण्व॑ं । ध॒न॒ऽस्पृत॑ं । रा॒ये । सु । तस्य॑ । धी॒म॒हि॒ ॥१८॥

येनात्मीयेन रक्षणेन तुर्वशमेतत्संज्ञं यदुमेतत्संज्ञं च राजर्षिमाव यूयं रक्षितवंतः स्थ ॥ अवतेर्लिटि मध्यमबहुवचने रूपमेतत् ॥ येन च धनस्पृतं धनकामं कण्वमृषिं रक्षितवंतः स्थ तस्य युष्मदीयं रक्षणं राये धनार्थं सु धीमहि । शोभनं ध्यायाम ॥

इ॒मा उ॑ वः सुदानवो घृ॒तं न पि॒प्युषी॒रिषः॑ । वर्धा॑न्का॒ण्वस्य॒ मन्म॑भिः ॥१९॥

इ॒माः । ऊं॒ इति॑ । व॒ः । सु॒ऽदा॒न॒व॒ः । घृ॒तं । न । पि॒प्युषी॑ः । इषः॑ । वर्धा॑न् । का॒ण्वस्य॑ । मन्म॑ऽभिः ॥१९॥

हे सुदानवः शोभनदाना मरुतः घृतं न घृतमिव पिप्युषीर्वर्धयित्र्यः शरीरपुष्टिहेतुभूता इमा इदानीं प्रदीयमाना इषोऽन्नानि सोमलक्षणानि काण्वस्य कण्वगोत्रस्य मम संबंधिभिर्मन्मभिः स्तोत्रैः सार्धं वो युष्मान् वर्धान् वर्धयंतु ॥ वृधेर्ण्यंताल्लेटि रूपमेतत् । उ इति पूरणः ॥

क्व॑ नू॒नं सु॑दानवो॒ मद॑था वृक्तबर्हिषः । ब्र॒ह्मा को वः॑ सपर्यति ॥२०॥

क्व॑ । नू॒नं । सु॒ऽदा॒न॒व॒ः । मद॑थ । वृ॒क्त॒ऽब॒र्हि॒ष॒ः । ब्र॒ह्मा । कः॑ । व॒ः । स॒प॒र्य॒ति॒ ॥२०॥

मरुदागमनस्य विलंबमसहमान ऋषिरनया वितर्कयति । सुदानवः शोभनदाना हे वृक्तबर्हिषः । वृक्तं वृकणं छिन्नं बर्हिर्येषां यागाय । यद्वा । बर्हिरिति यज्ञनाम । वृक्तः प्रवृक्तो यज्ञो येषां ते तथोक्ताः । हे ईदृशा मरुतः क्व कुत्र देशे नूनमिदानीं मदथ । माद्यथ ॥ मदी हर्षे । व्यत्ययेन शप् ॥ कस्य ब्रह्मा ब्राह्मणः स्तोता वो युष्मान् सपर्यति । परिचरति । किंकारणं बहुशः स्तुतैरपि भवद्भिरिदानीं नागम्यत इति न जानीमः ॥ ॥२१॥

न॒हि ष्म॒ यद्ध॑ वः पु॒रा स्तोमे॑भिर्वृक्तबर्हिषः । शर्धाँ॑ ऋ॒तस्य॒ जिन्व॑थ ॥२१॥

न॒हि॒ । स्म॒ । यत् । ह॒ । व॒ः । पु॒रा । स्तोमे॑भिः । वृ॒क्त॒ऽब॒र्हि॒ष॒ः । शर्धा॑न् । ऋ॒तस्य॑ । जिन्व॑थ ॥२१॥

पूर्वया वितर्कयेदानीं निश्चिनोति । हे वृक्तबर्हिषः प्रवृत्तयज्ञका मरुतः नहि ष्म । तन्न खलु संभवति । वो यूयं पुराक्षत्तः पूर्वमेव छतैः स्तोमैरन्यदीयैः स्तोत्रैर्ऋतस्योदकस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा संबंधिनः शर्धानात्मीयानि बलानि जिन्वथ प्रीणयथेति यद्ध यत्खलु तन्न संभवत्येव । अतः शीघ्रमागच्छतेत्यर्थः । यद्वा । वृक्तबर्हिष इत्यृत्विङ्नाम । हे ऋत्विजः वो युष्माकं संबंधिभिः स्तोमेभिः स्तोत्रैर्ऋतस्य यज्ञस्य संबंधिनो यागार्हाञ्छर्धान् मारुतानि बलानि पुरान्येभ्यः स्तोतृभ्यः पूर्वं यद्यस्मात्कारणाज्जिन्वथ यूयं प्रीणयथ ॥ जिविः प्रीणनार्थः ॥ तस्मादन्यदीयैः स्तोत्रैर्नहि ष्म न खलु ते मरुतो वशीभवंतीत्यर्थः ॥

प्रवर्ग्ये महावीरे पयसोरासिक्तयोः सतोः समु त्ये महतीरप इत्येषानुवक्तव्या । सूत्र्यते हि । आसिक्तयोः समु त्ये महतीरप इति महावीरमादायोत्तिष्ठतु । आ॰ ४. ७. । इति ॥

समु॒ त्ये म॑ह॒तीर॒पः सं क्षो॒णी समु॒ सूर्यं॑ । सं वज्रं॑ पर्व॒शो द॑धुः ॥२२॥

सं । ऊं॒ इति॑ । त्ये । म॒ह॒तीः । अ॒पः । सं । क्षो॒णी इति॑ । सं । ऊं॒ इति॑ । सूर्यं॑ । सं । वज्रं॑ । पर्व॑ऽशः । द॒धुः ॥२२॥

त्ये ते पूर्वोक्तगुणा मरुतो महतीर्बह्वीरपो वृष्ट्युदकानि समु दधुः। संदधति। ओषध्यादिभिः संयोजयंति। यद्वा। घर्मकाले सूर्यरश्मिभिराहृता उपरि सम्यग्धारयंति ॥ बृहन्महतोरुपसंख्यानमिति महतः परस्य ङीप उदात्तत्वं। ऊडिदमित्यादिनाप्शब्दात्परः शस् उदात्तः ॥ तथा क्षोणी क्षोण्यौ द्यावापृथिव्यौ च ते मरुतः सं दधुः। यथा स्वे स्वे स्थानेऽवतिष्ठेते तथा धारयंति। सूत्रात्मना वायुना सर्वं जगद्धार्यते। तथा च श्रूयते। वायुर्वै गोतम तत्सूत्रं वायुना वै गोतम सूत्रेणायं च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवंति। बृ॰ उ॰ ३. ७. २.। इति। तथा सूर्यं सर्वस्य प्रेरकमादित्यं चांतरिक्षे सं दधुः। सम्यग्धारयंति। उशब्दः समुच्चये। ईदृशास्ते मरुतो वज्रमात्मीयमायुधं पर्वशः पर्वणि पर्वणि वृत्रस्य सर्वेष्ववयवसंबंधिषु हननार्थं सं दधुः। समयूयुजन् ॥

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः। चक्राणा वृष्णि पौंस्यं ॥ २३ ॥

वि। वृत्रं। पर्वऽशः। ययुः। वि। पर्वतान्। अराजिनः। चक्राणाः। वृष्णिं। पौंस्यं ॥ २३ ॥

अराजिनो राज्ञा केनचित्स्वामिनानधिष्ठिताः। यद्वा। राजा स्वाम्यस्य न विद्यत इत्यराजेंद्रः। तद्युक्ताः। वृष्णि वीर्यवत्पौंस्यं बलं चक्राणाः कुर्वाणा मरुतो वृत्रमावरकमसुरं मेघं वा पर्वशः पर्वणि पर्वणि भेदेन वि ययुः। विशिष्टं वधमगमयन्। तथा पर्वतान् गिरींश्च विशिष्टं वधं प्रापयन् ॥

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुं। अन्विंद्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥

अनु। त्रितस्य। युध्यतः। शुष्मं। आवन्। उत। क्रतुं। अनु। इंद्रं। वृत्रऽतूर्ये ॥ २४ ॥

त्रितस्याप्त्यस्यैतत्संज्ञस्य युध्यतः शत्रून् संप्रहरतो राजर्षेः शुष्मं परेषां शोषकं बलं मरुतोऽन्वावन्। साहाय्यार्थमन्वगच्छन्। यद्वा। अनुगुणमरक्षन्। उतापि च क्रतुं तदीयं कर्म चारक्षन्। अपि च वृत्रतूर्ये वृत्रवधार्थे संग्राम इंद्रं चान्वावन्। अरक्षन् ॥

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः। शुभ्रा व्यंजत श्रिये ॥ २५ ॥

विद्युत्ऽहस्ताः। अभिऽद्यवः। शिप्राः। शीर्षन्। हिरण्ययीः। शुभ्राः। वि।
अंजत। श्रिये ॥ २५ ॥

विद्युद्धस्ता विद्योतमानायुधबाहवोऽभिद्यवोऽभिगतदीप्तयः शुभ्राः शोभमाना मरुतः शीर्षञ्छीर्ष्णि शिरस्स्वात्मीयेषु शिरःसु हिरण्ययीर्हिरण्मयीः स्वर्णमयानि शिप्राः शिरस्त्राणानि श्रिये शोभार्थं व्यंजत। व्यंजयंति। व्यक्तीकुर्वंति। धारयंतीत्यर्थः ॥ ॥ २२ ॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रंध्रमयातन। द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥ २६ ॥

उशना। यत्। पराऽवतः। उक्ष्णः। रंध्रं। अयातन। द्यौः। न। चक्रदत्। भिया ॥ २६ ॥

हे मरुतः उशनाः ॥ व्यत्ययेन प्रथमा ॥ उशनसा काव्येनर्षिणा स्तूयमाना यूयं। यद्वा ॥ उशनःशब्दात्सुपां सुलुगिति जसः सुः ॥ उशनसः स्तोतॄन् कामयमाना यूयं। उक्ष्णः सेक्तुः कामानां वर्षितुरात्मीयस्य रथस्य वृष्टिहेतोरंतरिक्षस्य वा रंध्रं मध्यं परावतो दूरदेशाद्यद्यदायातन अगच्छत ॥ यातेर्लङि मध्यमबहुवचनस्य तप्तनप्तनथनाश्चेति तनादेशः ॥ तदानीं द्यौर्न। अत्र द्युशब्देन तत्रत्यो जनसंघो लक्ष्यते। द्युलोके वर्तमानो जनसंघ इव पार्थिवमपि सर्वं भूतजातं भिया युष्मद्वेगजनितया भीत्या चक्रदत्। अशब्दयत् अकंपत वा ॥

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः। देवास उप गंतन ॥ २७ ॥

आ। नः। मखस्य। दावने। अश्वैः। हिरण्यपाणिऽभिः। देवासः। उप। गंतन ॥ २७ ॥

हे देवासो दानादिगुणयुक्ता मरुतः नोऽस्माकं मखस्य यज्ञस्य दावने दानाय ॥ ददातेरौणादिको भावे वनिः ॥ हिरण्यपाणिभिः स्वर्णमयपादैः स्वर्णालंकृतैर्हितरमणीयपादैर्वाश्वैरोप गंतन । उपागच्छत । प्राप्नुत ॥ गमेर्लोटि छांदसः शपो लुक् । तप्तनप्तनथनाश्चेति तनबादेशः । अत एव ङित्त्वाभावादनुनासिकलोपो न क्रियते ॥

यदे॑षां॒ पृष॑ती॒ रथे॒ प्रष्टि॒र्वह॑ति॒ रोहि॑तः । यांति॑ शु॒भ्रा रि॒णन्न॒पः ॥ २८ ॥

यत् । ए॒षा॒म् । पृष॑तीः । रथे॑ । प्रष्टिः॑ । वह॑ति । रोहि॑तः । यांति॑ । शु॒भ्राः । रि॒णन् । अ॒पः ॥ २८ ॥

एषां मरुतां रथे पृषतीः पृषद्भिः श्वेतबिंदुभिर्युक्ता मृग्यो यद्यदा वहंति यदा च प्रष्टिः प्राशुः शीघ्रगामी । यद्वा । प्रमुखे युज्यमानः सन् । रोहितः पृषतः पृषद्भिर्युक्तो मृगो वहति तदानीं शुभ्राः शोभमाना मरुतो यांति । गच्छंति । तेषां गमने च सत्यप उदकानि वृष्टिलक्षणानि रिणन् । अरिणन् । अगच्छन् । सर्वत्र प्रवहंति ॥ री गतिरेषणयोः क्रैयादिकः । प्वादीनां ह्रस्वः । छांदसोऽडभावः । समानवाक्ये निघातयुष्मद्-स्मदादेशा वक्तव्याः ।पा० ८. १. १८. ५.। इति वचनादत्र पूर्वपदस्य वाक्यांतरगतत्वात्तिङ्ङतिङ इति निघाताभावः ॥

सु॒षोमे॑ शर्य॒णाव॑त्यार्जी॒के प॒स्त्याव॑ति । य॒युर्नि॑चक्रया॒ नरः॑ ॥ २९ ॥

सु॒ऽसोमे॑ । श॒र्य॒णाऽव॑ति । आ॒र्जी॒के । प॒स्त्यऽव॑ति । य॒युः । निऽच॑क्रया । नरः॑ ॥ २९ ॥

सुषोमे शोभनसोमयुक्त आर्जीके । ऋजीका नाम देशाः । तत्संबंधिनि शर्यणावति कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे शर्यणावत्संज्ञे सरसि पस्त्यावति । पस्त्यमिति गृहनाम । यज्ञगृहोपेते सोमपानाय नरो नेतारो मरुतो निचक्रया नीचीनचक्रयावाङ्मुखं प्रवर्तमानया रथकव्यया ययुः । यांति । गच्छंति ॥ यातेश्छांदसो लिट् ॥ यद्वा । नरो नेतार ऋत्विज उक्तगुणविशिष्टे शर्यणावति मरुद्यागाय सोममाहर्तुं निचक्रया नीचीनचक्रया शकट्या ययुः । गच्छंति ॥

क॒दा ग॑च्छाथ मरुत इ॒त्था विप्रं॒ हव॑मानं । मा॒र्डी॒केभि॒र्नाध॑मानं ॥ ३० ॥

क॒दा । ग॒च्छा॒थ॒ । म॒रु॒तः॒ । इ॒त्था । विप्रं॑ । हव॑मानं । मा॒र्डी॒केभिः॑ । नाध॑मानं ॥ ३० ॥

हे मरुतः इत्थेत्थमनेन प्रकारेण हवमानमाह्वयंतं स्तुवंतं नाधमानं याचमानं विप्रं मेधाविनं स्तोतारं मां कदा कस्मिन्काले मार्डीकेभिः सुखहेतुभिर्धनैः सार्धं गच्छाथ । गच्छथ । विलंबं मा कुरुत शीघ्रमागच्छतेति भावः ॥ ॥ २३ ॥

कद्ध॑ नू॒नं क॑धप्रियो॒ यदिंद्र॒मज॑हातन । को वः॑ सखि॒त्व ओ॑हते ॥ ३१ ॥

कत् । ह॒ । नू॒नं । क॒ध॒ऽप्रि॒यः॒ । यत् । इंद्रं॑ । अज॑हातन । कः । व॒ः । स॒खि॒ऽत्वे । ओ॒ह॒ते ॥ ३१ ॥

हे कधप्रियः कथया स्तुत्या प्रीयमाणाः ॥ कथ वाक्यप्रबंधने । अस्माद्भावे चिंतिपूजीत्यादिनाङ् । ततष्टाप् । उत्तरपदे ङ्यापोः संज्ञाछंदसोरिति ह्रस्वत्वं । धत्वं छांदसं ॥ ईदृशा हे मरुतः वृत्रेण सह युध्यमानमिंद्रं नूनं सत्यमजहातन पर्यत्यजतेति यदेतत् तत्कद्ध कदा खलु कस्मिन् काले जातं । न कदाचिदपीत्यर्थः । तथा च ब्राह्मणं । मरुतो हैनं नाजहुः प्रहर भगवो जहि वीरयस्व ।ऐ० ब्रा० ३. २०.। इति । वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणाः ।ऋ० ८. ९६. ७.। इत्यादि च निगमांतरं । यत एवमतः कारणाद्वो युष्माकं सखित्वे ॥ व्यत्ययेन सप्तमी ॥ सखिभावं कः स्तोतौहते । याचते । यद्वा । वहति । प्राप्नोति । ईदृशमनपायं युष्मत्सखित्वं दुर्लभमित्यर्थः ॥

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः । स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥३२॥

सहो इति । सु । नः । वज्रऽहस्तैः । कण्वासः । अग्निं । मरुत्ऽभिः । स्तुषे । हिरण्यऽवाशीभिः ॥३२॥

वज्रहस्तैर्वज्रबाहुभिर्हिरण्यवाशीभिः । हिरण्मयी वाशी तक्षणसाधनमायुधं येषामस्ति तादृशैः । मरुद्भिः सहो सहैव वर्तमानमग्निं नोऽस्मदीया हे कण्वासः कण्वाः स्तोतारः कण्वगोत्रा ऋषयः यूयं स्तुषे । स्तुध्वं । यद्वा । न इति प्रथमार्थे द्वितीया । नो वयं कण्वगोत्राः ॥ अस्मदो द्वयोश्च ।पा० १.२.५९.। इत्येकस्मिन् बहुवचनं । सविशेषणस्य प्रतिषेधः ।का० १.२.५९.१.। इति तु व्यत्ययेन प्रवर्तते ॥ स्तुषे । स्तुवे ॥ स्तौतेरुत्तमैकवचने सिब्बहुलमिति सिप् ॥

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय । ववृत्यां चित्रवाजान् ॥३३॥

ओ इति । सु । वृष्णः । प्रऽयज्यून् । आ । नव्यसे । सुविताय । ववृत्यां । चित्रऽवाजान् ॥३३॥

वृष्णो वर्षितॄनभीष्टफलदान् प्रयज्यून् प्रकर्षेण यष्टव्यान् चित्रवाजान् विचित्रगमनान् विचित्रबलान् विचित्रधनान्वा एवंभूतान्मरुतः सु सुष्ठो आ उ ववृत्यां । आवर्तयामि । अस्मदभिमुखं यथा गच्छंति तथा करोमि । अपि च नव्यसे नवीयसे नवतरायात्यंतं प्रशस्ताय सुविताय सुष्ठु प्राप्तव्याय धनाय च ताना ववृत्यां । आवर्तयामि ॥

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः । पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥३४॥

गिरयः । चित् । नि । जिहते । पर्शानासः । मन्यमानाः । पर्वताः । चित् । नि । येमिरे ॥३४॥

मरुत्स्वागच्छत्सु गिरयश्चिन्निरयोऽपि शिलोच्चया अपि पर्शानासः पीड्यमानाः । यद्वा । मरुद्भिः स्पृश्यमानाः । अत एव मन्यमाना अभिमन्यमाना बाध्यमानाः संतो नि जिहते । नितरां गच्छंति । मरुद्वेगेन स्थानात् प्रच्यवंते । तथा पर्वताश्चित् पर्ववंतो मेघा अपि तदीयेन गमनेन नि येमिरे । नियम्यंते । यद्वा । गिरयः क्षुद्राः शिलोच्चया महांतः पर्वताः ॥

आक्ष्णयावानो वहंत्यंतरिक्षेण पततः । धातारः स्तुवते वयः ॥३५॥

आ । अक्ष्णऽयावानः । वहंति । अंतरिक्षेण । पततः । धातारः । स्तुवते । वयः ॥३५॥

अक्ष्णयावानोऽक्ष्णं व्याप्तं गच्छंतः । यद्वा । अक्ष्णश्चक्षुषोऽपि शीघ्रं यांतीत्यक्ष्णयावानः ॥ यातेरातो मनिन्निति वनिप् ॥ ईदृशा अश्वा अंतरिक्षेणाकाशमार्गेण पततो गच्छतो मरुत आ वहंति । आनयंति । यद्वा । पतत इत्यश्वानां विशेषणं । अंतरिक्षे नभसि पततो गच्छंतः ॥ छांदसो नुमभावः ॥ किं कुर्वंतः । स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते जनाय वयोऽन्नं धातारो विधातारः कुर्वाणाः ॥

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छंदो न सूरो अर्चिषा । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥३६॥

अग्निः । हि । जनि । पूर्व्यः । छंदः । न । सूरः । अर्चिषा । ते । भानुऽभिः । वि । तस्थिरे ॥३६॥

अग्निर्ह्यग्निः खल्वर्चिषा तेजसा पूर्व्यः सर्वेषु देवेषु मुख्यो जानि । अजायत ॥ दीपजनेत्यादिना ।पा० ३.१.६१.। कर्तरि लुङि च्लेश्चिणादेशः ॥ तत्र दृष्टांतः । छंद उपच्छंदनीयः सूरो न सूर्य इव । तदनंतरं ते पूर्वोक्तगुणा मरुतो भानुभिर्दीप्तिभिर्वि तस्थिरे । विविधमवतिष्ठंते । आग्निमारुते ह्यग्निः पूर्वं स्तूयते पश्चान्मरुतः । तदपेक्षया च पूर्वोत्तरयोरर्धर्चयोः क्रमेणाग्निर्मरुतश्च स्तूयंते ॥ ॥२४॥

आ नो विश्वाभिरिति त्रयोविंशत्यृचं तृतीयं सूक्तं सध्वंसाख्यस्य काण्वस्यार्षमानुष्टुभं । एतदादीनि त्रीणि

सूक्तान्यश्विदेवत्यानि । तथा चानुक्रांतं । आ नस्त्र्यधिका सप्तांत आश्विनं ह्यानुष्टुभं त्विति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतावानुष्टुभे छंदस्याश्विनशस्त्रे चैतत्सूक्तं । सूत्र्यते हि । आ नो विश्वाभिस्त्यं चिदत्रिमित्यानुष्टुभं । आ॰ ४. १५. । इति ॥ अप्तोर्यामे प्रशास्तुरतिरिक्तोकथेऽप्येतत् । सूचितं च । आ नो विश्वाभिः प्रातर्यावाणा । आ॰ ९. ११. । इति ॥ चतुर्थेऽहनि प्रउगशस्त्र आ नो विश्वाभिरित्याश्विनस्तृचः । सूचितं च । आ नो विश्वाभिरूतिभिस्त्यमु वो अप्रहणं । आ॰ ७. ११. । इति ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवं ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥१॥
आ । नः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । अश्विना । गच्छतं । युवं ।
दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । पिबतं । सोम्यं । मधु ॥१॥

हे अश्विनाश्विनावश्नुवानौ सर्वं जगद्व्याप्नुवंतौ यद्वाश्वैर्युक्तौ युवं युवां विश्वाभिः सर्वाभिर्व्याप्ताभिर्वोतिभी रक्षाभिर्दातव्याभिः सार्धं नोऽस्माना गच्छतं । आगत्य च हे दस्रा दस्रौ दर्शनीयौ शत्रूणामुपक्षपयितारौ वा हे हिरण्यवर्तनी हिरण्मयरथौ हितरमणीयाचरणौ वा ईदृशौ हे अश्विनौ सोम्यं सोममयं मधु पिबतं ॥

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा । भुजी हिरण्यपेशसा कवी गंभीरचेतसा ॥२॥
आ । नूनं । यातं । अश्विना । रथेन । सूर्यऽत्वचा । भुजी इति । हिरण्यऽपेशसा ।
कवी इति । गंभीरऽचेतसा ॥२॥

हे भुजी हविषां भोक्तारौ यद्वा स्तोतृभिरन्नानां भोजयितारौ सर्वस्य जगतः पालकौ वा हे हिरण्यपेशसा हिरण्मयालंकारौ हिरण्मयावयवौ वा हे कवी क्रांतदर्शिनौ स्तोतव्यौ वा हे गंभीरचेतसा प्रशस्तप्रज्ञौ ईदृशौ हे अश्विनाश्विनौ सूर्यत्वचा सूर्यवद्भासमानेन रथेन नूनमवश्यमस्माना यातं । आगच्छतं ॥

आ यातं नहुषस्पर्यांतरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतं ॥३॥
आ । यातं । नहुषः । परि । आ । अंतरिक्षात् । सुवृक्तिऽभिः ।
पिबाथः । अश्विना । मधु । कण्वानां । सवने । सुतं ॥३॥

हे अश्विनौ नहुषस्परि । नहुष इति मनुष्यनाम । सामर्थ्याच्चात्र तत्संबद्धो लोको लक्ष्यते । मानुषात्तस्माल्लोकात् ॥ परि पंचम्यर्थानुवादी ॥ सुवृक्तिभिः सुष्ठु दोषवर्जिताभिः सुप्रवृत्ताभिर्वा स्तुतिभिर्हेतुभूताभिरा यातं । आगच्छतं । तथांतरिक्षाद्दंतरा क्षांतान्मध्यमाल्लोकादप्यागच्छतं । आगत्य च कण्वानां कण्वगोत्राणामस्माकं सवने यज्ञे प्रातःसवनादौ सुतमभिषुतं मधु मधुरं सोमं हे अश्विनौ पिबाथः । पिबतं ॥

आ नो यातं दिवस्पर्यांतरिक्षादधप्रिया । पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥४॥
आ । नः । यातं । दिवः । परि । आ । अंतरिक्षात् । अधऽप्रिया । पुत्रः । कण्वस्य । वां ।
इह । सुसाव । सोम्यं । मधु ॥४॥

हे अश्विनौ दिवस्परि दिवोऽधि द्युलोकान्नोऽस्माना यातं । आगच्छतं ॥ पंचम्याः परावध्यर्थ इति विसर्जनीयस्य सत्वं ॥ हे अधप्रियाधोऽधस्तादस्मिँल्लोके विद्यमानेन सोमेन प्रीयमाणौ । यद्वा । कधप्रिया ॥

छांदसो वर्णलोपः ॥ कथया स्तुत्या प्रीयमाणौ । हे ईदृशावश्विनौ अंतरिक्षादप्यागच्छतं । इहास्मिन्यज्ञे कण्वस्यर्षेः पुत्रः सोम्यं सोममयं मधु वां युवाभ्यां युवयोरर्थं सुषाव । अभिषुणोति । अत आ यातमित्यन्वयः ॥

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥५॥

आ । नः । यातं । उपऽश्रुति । अश्विना । सोमऽपीतये ।
स्वाहा । स्तोमस्य । वर्धना । प्र । कवी इति । धीतिऽभिः । नरा ॥५॥

हे अश्विनाश्विनौ नोऽस्माकमुपश्रुति । श्रूयत इति श्रुत् स्तुतिः । उपगता श्रुद्यस्मिन् तस्मिन्यज्ञे सोमपीतये सोमपानाया यातं । आगच्छतं । हे वर्धना वर्धनौ कवी क्रांतदर्शिनावश्विनौ स्वाहा स्वाहाकर्तां स्वाहाकारेण सम्यगिष्टौ संतौ । यद्वा । स्वाहेति वाङ्नाम । स्तुतिरूपया वाचा स्तुतौ वाचा स्तोमस्य स्तोतुः प्रवर्धकौ भवतं । तथा हे नरा नेतारावश्विनौ धीतिभिः कर्मभिर्यष्टुश्च प्रवर्धकौ भवतं । यद्वा । स्वाहेत्यादीन्यामंत्रितानि । हे स्वाहा स्वाहाकृतौ स्तोमस्य स्तोत्रस्य स्तोतुर्वा हे प्रवर्धना प्रवर्धयितारौ हे कवी क्रांतदर्शिनौ धीतिभिर्बुद्धिभिरात्मीयैः कर्मभिर्वा हे नरा सर्वेषां नेतारावश्विनौ सोमपानाया यातमित्येकमेव वाक्यं ॥ अस्मिन्पक्षे धीतिभिरित्यपरांगवत्त्वाभावश्छांदसः ॥ यद्वा । धीतिभिर्ध्यातव्याभिर्युष्मदीयाभिरूतिभिः सार्धमा यातमिति क्रियया संबंधः ॥ ॥२५॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥६॥

यत् । चित् । हि । वां । पुरा । ऋषयः । जुहूरे । अवसे । नरा ।
आ । यातं । अश्विना । आ । गतं । उप । इमां । सुऽस्तुतिं । मम ॥६॥

हे नरा नेतारावश्विनौ यच्चिद्धि यदा खलु वां युवां पुरा पूर्वस्मिन्काल ऋषयोऽतींद्रियार्थदर्शिनः स्तोतारोऽवसे रक्षणाय जुहूरे जुहुविरे स्तुतिभिराह्वयन् ॥ ह्वयतेर्लिट्यभ्यस्तस्य चेति संप्रसारणं । हल इति दीर्घः । इरयो र इति रेभावः ॥ तदानीं हे अश्विनौ आ यातं । आगच्छतं । आगतवंतौ स्थः । अतो मम मदीयामिमां सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिमप्युपा गतं । उपागच्छतं ॥

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गंतं स्वर्विदा । धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥७॥

दिवः । चित् । रोचनात् । अधि । आ । नः । गंतं । स्वःऽविदा । धीभिः । वत्सऽप्रचेतसा । स्तोमेभिः । हवनऽश्रुता ॥७॥

हे स्वर्विदा स्वः सूर्यस्य द्युलोकस्य वा लंभयितारावश्विनौ दिवश्चिद्द्युलोकाच्च रोचनादधि रोचमानादंतरिक्षाच्च नोऽस्मान्गा गंतं । आगच्छतं ॥ पूर्ववदधिः पंचम्यर्थानुवादकः ॥ हे वत्सप्रचेतसा वत्से स्तोतरि प्रकृष्टज्ञानौ । यद्वा । वत्सं निवासकं वेदितव्यं वा प्रकृष्टं चेतो ज्ञानं ययोस्तौ तथोक्तौ । तौ युवां धीभिरात्मीयाभिर्बुद्धिभिः सहागच्छतं । हे हवनश्रुता हवनस्यास्मदीयस्याह्वानस्य स्तोत्रस्य श्रोतारौ स्तोमेभिः स्तोत्रैरस्मत्कृतैर्युज्यमानौ संतावागच्छतं ॥

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥८॥

किं । अन्ये । परि । आसते । अस्मत् । स्तोमेभिः । अश्विना ।
पुत्रः । कण्वस्य । वां । ऋषिः । गीःऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥८॥

अस्मदस्मत्तोऽन्ये व्यतिरिक्ताः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोत्रैरश्विनाश्विनौ देवौ किं पर्यासते । अस्मद्व्यतिरिक्ताः केऽप्यश्विनौ स्तोतुं न शक्नुवंतीत्यर्थः । कण्वस्यर्षेः पुत्र ऋषिर्मंत्रद्रष्टा वत्सो गीर्भिः स्तुतिभिर्हे अश्विनौ वां युवामवीवृधत् । अवर्धयत् ॥

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहंतमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥९॥
आ । वां । विप्रः । इह । अवसे । अह्वत् । स्तोमेभिः । अश्विना ।
अरिप्रा । वृत्रहन्ऽतमा । ता । नः । भूतं । मयःऽभुवा ॥९॥

हे अश्विनाश्विनौ विप्रो मेधावी स्तोतेहास्मिन्यागेऽवसे रक्षणार्थं स्तोमेभिः स्तोत्रैर्वां युवामाह्वत् । आह्वतवान् ॥ ह्वयतेर्लुङि लिपिसिचिह्वश्चेति च्लेरङादेशः ॥ हे अरिप्रा । रिप्रमिति पापनाम । अपापौ हे वृत्रहंतमा वृत्राणां शत्रूणां हंतृतमौ ता तौ तादृशौ युवां नोऽस्माकं मयोभुवा सुखस्य भावयितारौ भूतं । भवतं ॥

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतं ॥१०॥
आ । यत् । वां । योषणा । रथं । अतिष्ठत् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
विश्वानि । अश्विना । युवं । प्र । धीतानि । अगच्छतं ॥१०॥

हे वाजिनीवसू । वाजिनी हविष्मती यागक्रिया । तस्यां विद्यमानस्वांशलक्षणधनावश्विनौ योषणा योषित्सूर्याजिधावनेन ध्रियमाणा सती वां युवयो रथं यद्यदातिष्ठत् आस्थितवती आरूढवती तदा हे अश्विनाश्विनौ युवं युवां धीतानि ध्यातान्यभिलषितानि विश्वानि सर्वाणि प्रकर्षेणागच्छतं । प्रापतं ॥ ॥२६॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥११॥
अतः । सहस्रऽनिर्निजा । रथेन । आ । यातं । अश्विना ।
वत्सः । वां । मधुऽमत् । वचः । अशंसीत् । काव्यः । कविः ॥११॥

हे अश्विनाश्विनौ येषु लोकेषु यत्र वर्तेथे अतोऽस्मात्स्थानात्सहस्रनिर्णिजा । निर्णिगिति रूपनाम । स्वर्णमयतया बहुविधरूपयुक्तेन रथेना यातं । आगच्छतं । काव्यः कवेः पुत्रः कविर्मेधावी वत्स ऋषिर्वां युवाभ्यां युवयोरर्थं मधुमन्माधुर्योपेतं वचो वचनमुकथमशंसीत् । शंसितवान् । यत एवमत आगच्छतमित्यर्थः ॥

पुरुमंद्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणां ।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषातां ॥१२॥
पुरुऽमंद्रा । पुरुवसू इति पुरुऽवसू । मनोतरा । रयीणां ।
स्तोमं । मे । अश्विनौ । इमं । अभि । वह्नी इति । अनूषातां ॥१२॥

पुरुमंद्रा बहुमदौ बहुभिः सोमैर्मादयितव्यौ वा पुरूवसू बहुधनौ बहूनां निवासकौ वा रयीणां धनानां मनोतरा मंतारौ दातारौ ॥ मन्यतेस्तृचि पृषोदरादित्वाद्रूपसिद्धिः। नामन्यतरस्यामिति रैशब्दान्नाम उदात्तत्वं ॥ वह्नी कृत्स्नस्य जगतो वोढारौ ईदृशावश्विनौ मे ममेमं स्तोमं स्तोत्रमभ्यनूषातां। सम्यक्स्तुतमिति प्राशंसिषातां ॥ णु स्तुतौ ॥ यद्वा। नुवतिरत्र श्रवणार्थे वर्तते। अभिप्राप्तावश्रौष्टां ॥

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥१३॥

आ। नः। विश्वानि। अश्विना। धत्तं। राधांसि। अह्रया।
कृतं। नः। ऋत्वियऽवतः। मा। नः। रीरधतं। निदे ॥१३॥

हे अश्विनाश्विनौ अह्रयाह्रयाण्यह्रीतिकराण्यलज्जाहेतूनि प्रशस्तानि विश्वानि सर्वाणि राधांसि धनानि नोऽस्मभ्यमा धत्तं। प्रयच्छतं। अपि च नोऽस्मानृत्वियावतः। ऋतौ काले भवं प्रजोत्पादनरूपं कर्म ऋत्वियं। तद्वतः कुरुतं। तथा निदे निंदायै निंदकाय वा नोऽस्मान्मा रीरधतं। मा वशं नैष्टं ॥

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यंबरे।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४॥

यत्। नासत्या। पराऽवति। यत्। वा। स्थः। अधि। अंबरे।
अतः। सहस्रऽनिर्निजा। रथेन। आ। यातं। अश्विना ॥१४॥

हे नासत्या सत्यस्वभावौ सत्यस्य नेतारौ नासिकाप्रभवौ वाश्विनौ यद्यदि परावति दूरदेशे स्थः। यद्वा यदि चांबरे। अंतिकनामैतत्। समीपे स्थः भवथः ॥ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॥ अतोऽस्मात्सर्वस्मात्स्थानात्सहस्रनिर्णिजा बहुविधरूपेण रथेन हे अश्विनौ आगच्छतं ॥

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतं ॥१५॥

यः। वां। नासत्यौ। ऋषिः। गीःऽभिः। वत्सः। अवीवृधत्।
तस्मै। सहस्रऽनिर्निजं। इषं। धत्तं। घृतऽश्चुतं ॥१५॥

हे नासत्यौ यो वत्साख्य ऋषिर्वां युवां गीर्भिः स्तुतिभिरवीवृधत् अवर्धयत् तस्मा ऋषये सहस्रनिर्णिजं बहुविधरूपं घृतश्चुतं घृतं क्षरंतीमिषमन्नं धत्तं। प्रयच्छतं ॥ ॥२७॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवं।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥१६॥

प्र। अस्मै। ऊर्जं। घृतऽश्चुतं। अश्विना। यच्छतं। युवं।
यः। वां। सुम्नाय। तुस्तवत्। वसुऽयात्। दानुनः। पती इति ॥१६॥

हे अश्विनाश्विनौ अस्मै स्तोत्रे घृतश्चुतं घृतधारया युक्तामूर्जं बलकरमन्नरसं युवं युवां प्र यच्छतं। दत्तं। हे दानुनस्पती दानस्याधिपती वां युवां सुम्नाय सुखार्थं यस्तुष्टवत् स्तुयात्। यश्च वसूयात् वसु धनमात्मन इच्छेत्। अस्मा इत्यन्वयः ॥

आ नो गतं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा। कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७॥
आ। नः। गतं। रिशादसा। इमं। स्तोमं। पुरुऽभुजा। कृतं। नः। सुऽश्रियः। नरा।
इमा। दातं। अभिष्टये ॥१७॥

हे रिशादसा रिशतां हिंसतां निरसितारौ यद्वा रिशानां हिंसकानामत्तारौ भक्षितारौ हे पुरुभुजा बहुलस्य हविषो भोक्तारौ बहूनां पालकौ वा हे अश्विनौ नोऽस्माकमिमं स्तोमं स्तोत्रमा गतं। अभिगच्छतं। आगत्य च हे नरा नेतारौ नोऽस्मान् सुश्रियः सुश्रीकाञ्छोभनया संपदा युक्तान् कृतं। कुरुतं। तदर्थमिमेमानि पुरो वर्तमानानि पार्थिवान्यभिष्टयेऽभिप्राप्तये दातं। दत्तं ॥ ददातेर्लोटि छांदसः शपो लुक् ॥

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
राजंतावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥
आ। वां। विश्वाभिः। ऊतिऽभिः। प्रियऽमेधाः। अहूषत।
राजंतौ। अध्वराणां। अश्विना। यामऽहूतिषु ॥१८॥

हे अश्विनाश्विनौ यामहूतिषु यामानां यातॄणां देवानां हूतिराह्वानं येषु यागेषु तेषु प्रियमेधा प्रिययज्ञा एतत्संज्ञा ऋषयोऽध्वराणां यज्ञानां राजंतावीश्वरौ। राजतिरैश्वर्यकर्मा। अश्विनौ हि देवानामध्वर्यू आस्तामिति हि ब्राह्मणं। ईदृशौ विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभी रक्षाभिः सहितौ वां युवामाहूषत। आह्वयन्। अस्तुवन्नित्यर्थः ॥

आ नो गतं मयोभुवाश्विना शंभुवा युवं।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१९॥
आ। नः। गतं। मयःऽभुवा। अश्विना। शंऽभुवा। युवं।
यः। वां। विपन्यू इति। धीतिऽभिः। गीःऽभिः। वत्सः। अवीवृधत् ॥१९॥

हे अश्विनाश्विनौ मयोभुवा मयसः सुखस्य भावयितारौ शंभुवा रोगाणां शमस्य भावयितारौ युवं युवां नोऽस्माना गतं। आगच्छतं। हे विपन्यू स्तुत्यावश्विनौ यो वत्सः स्तोता वां युवां धीतिभिः कर्मभिः परिचरणैर्गीर्भिः स्तुतिभिश्चावीवृधत् अवर्धयत् तानस्मानिति पूर्वेणान्वयः ॥

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजं।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥
याभिः। कण्वं। मेधऽअतिथिं। याभिः। वशं। दशऽव्रजं।
याभिः। गोऽशर्यं। आवतं। ताभिः। नः। अवतं। नरा ॥२०॥

हे अश्विनौ याभिरूतिभिः कण्वमृषिं मेधातिथिं चावतं अरक्षतं। याभिश्च वशमेतत्संज्ञं चावतं। याभिश्च गोशर्यं। शीर्णा गौर्यस्य स गोशर्यः शयुः। तथा चाम्नातं। शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गां। ऋ° १. ११६. २२.। इति। ईदृशं गोशर्यं शयुमावतं अरक्षतं। हे नरा नेतारौ ताभिरूतिभिर्नोऽस्मानवतं। रक्षतं॥ ॥२८॥

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१॥
याभिः । नरा । त्रसदस्युं । आवतं । कृत्व्ये । धने ।
ताभिः । सु । अस्मान् । अश्विना । प्र । अवतं । वाजऽसातये ॥२१॥

हे नरा नेतारावश्विनौ धने कृत्व्ये कर्तव्ये प्राप्तव्ये सति त्रसदस्युमेतत्संज्ञं पुरुकुत्सपुत्रमृषिं याभिरूतिभिरावतं अरक्षतं हे अश्विनौ ताभिरूतिभिः सु सुष्ठ्वस्मान् प्रावतं । प्ररक्षतं । किमर्थं । वाजसातये वाजस्यान्नस्य बलस्य वा सातये संभजनार्थं ॥

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धंत्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहंतमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२॥
प्र । वां । स्तोमाः । सुऽवृक्तयः । गिरः । वर्धंतु । अश्विना ।
पुरुऽत्रा । वृत्रहन्ऽतमा । ता । नः । भूतं । पुरुऽस्पृहा ॥२२॥

हे अश्विनौ स्तोमाः प्रगीतमंत्ररूपाः स्तुतयः सुवृक्तयः सुप्रवृत्ताः सुष्ठु दोषवर्जिता वा गिरः शस्त्ररूपा वाचश्च वां युवां प्र वर्धंतु । प्रवर्धयंतु । अपि च हे पुरुत्रा बहूनां त्रातारौ हे वृत्रहंतमा वृत्राणां शत्रूणां हंतृतमौ ईदृशौ हे अश्विनौ ता तौ युवां नोऽस्माकं पुरुस्पृहा पुरु बहुलं स्पृहणीयावीप्सितव्यौ भूतं । भवतं ॥

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सांति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥२३॥
त्रीणि । पदानि । अश्विनोः । आविः । संति । गुहा । परः ।
कवी इति । ऋतस्य । पत्मऽभिः । अर्वाक् । जीवेभ्यः । परि ॥२३॥

त्रीणि त्रिसंख्याकान्यनयोरश्विनोर्देवयो रथस्य संबंधीनि पदानि चक्राणि गुहा गुहायां वर्तमानान्येतावंतं कालमदृश्यमानानि परो गुहायाः परस्ताद्दृष्टिगोचरे देश आविः संति । आविर्भवंति ॥ सांहितिकश्छांदसो दीर्घः । व्यत्ययेन निघाताभावः । यद्वा । संतीत्येतदस्तेः शतरि असि रूपं ॥ आविर्भूतानि दृश्यंते । आश्विनस्य रथस्य चक्रत्रयोपेतत्वं च रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते । ऋ॰ ४. ३६. १. । इत्यादिनिगमांतरे प्रसिद्धं । कवी क्रांतदर्शिनावश्विनावृतस्य सत्यस्योदकस्य यज्ञस्य वा हेतुभूतैः पत्मभिर्यैः पदैर्जीवेभ्यस्परि । परिरुपर्यर्थः ॥ पंचम्याः परावध्यर्थ इति सत्वं ॥ जीवानामुपरि जीवेष्वस्मास्वर्वागभिमुखं । आगच्छतमिति शेषः । तानि पदानीदानीमुपलभ्यंत इत्यन्वयः ॥ ॥२९॥

आ नूनमित्येकविंशत्यृचं चतुर्थं सूक्तं शशकर्णस्यार्षमश्विदेवत्यं । त्रिंशेकविंशौ द्वितीयातृतीये चेति चतस्रो गायत्र्यः प्रथमा चतुर्थी षष्ठी चतुर्दशी पंचदशी चेति पंच बृहत्यः पंचमी ककुप् मध्यमश्चेत्ककुप् । अनु॰ ५. ३. । इत्युक्तलक्षणसद्भावात् । दशमी त्रिष्टुबेकादशी विराड्द्वादशी जगती शिष्टा अनुष्टुभः । तथा चानुक्रांतं । आ नूनं सैका शशकर्णोंऽत्ये गायत्र्यावुपाद्ये चाद्या चतुर्थी षष्ठी चतुर्दश्याद्ये च बृहत्यः पंचमी ककुब्दशम्याद्यास्त्रिष्टुब्विराड्जगत्य इति ॥ अप्तोर्यामे ब्राह्मणाच्छंसिनोऽतिरिक्तोकथ्य इदं सूक्तं । सूत्र्यते हि । आ नूनमश्विना तं वां रथं । आ॰ ९. ११. । इति ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गंतमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१॥

आ । नूनं । अश्विना । युवं । वत्सस्य । गंतं । अवसे ।
प्र । अस्मै । यच्छतं । अवृकं । पृथु । छर्दिः । युयुतं । याः । अरातयः ॥१॥

हे अश्विनाश्विनौ युवं युवां वत्सस्य स्तोतुर्ममावसे रक्षणार्थं नूनमवश्यमा गंतं । आगच्छतं । आगत्य चास्मा अस्मायेऽवृकं बाधकरहितं पृथु विस्तीर्णं छर्दिर्गृहं प्र यच्छतं । प्रदत्तं । तथा या अरातयोऽदानशीलाः शत्रुभूताः प्रजास्ता युयुतं । स्तोतृभ्यः पृथक्कुरुतं ॥

यदंतरिक्षे यद्दिवि यत्पंच मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥२॥
यत् । अंतरिक्षे । यत् । दिवि । यत् । पंच । मानुषान् । अनु । नृम्णं । तत् । धत्तं । अश्विना ॥२॥

अंतरिक्षे गंधर्वादिभिः सेविते मध्यमे लोके यन्नृम्णं धनमस्ति । दिवि द्युलोके च यदस्ति । पंच पंचसंख्याकान्मानुषान्मनुष्यानन्नु ॥ लक्षणेऽन्वोः कर्मप्रवचनीयत्वं । कर्मप्रवचनीययुक्ते इति द्वितीया ॥ पंचविधा मनुष्या निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णा यत्र वर्तंते तत्र चेह लोके यन्नृम्णं धनमस्ति । हे अश्विनौ तत्त्रिविधं नृम्णं धनं धत्तं । अस्मभ्यं प्रयच्छतं ॥

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत्काण्वस्य बोधतं ॥३॥
ये । वां । दंसांसि । अश्विना । विप्रासः । परिऽममृशुः । एव । इत् । काण्वस्य । बोधतं ॥३॥

हे अश्विनौ वां युवयोः संबंधीनि दंसांसि कर्माणि परिचरणात्मकानि ये विप्रासो विप्रा मेधाविनो यजमानाः परिमामृशुः परिमृशंति पुनःपुनः स्पृशंति । अनुतिष्ठंतीत्यर्थः । यथा तदीयानि परिचरणानि युवां जानीथः एवेदेवमेव काण्वस्य कण्वपुत्रस्य मम परिचरणं बोधतं । अवगच्छतं ॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४॥
अयं । वां । घर्मः । अश्विना । स्तोमेन । परि । सिच्यते ।
अयं । सोमः । मधुऽमान् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । येन । वृत्रं । चिकेतथः ॥४॥

हे अश्विनौ वां युवयोः संबंध्ययं घर्मः प्रवर्ग्यः स्तोमेन स्तोत्रेण ऋक्सामरूपेण परि षिच्यते । आर्द्रीक्रियते । यथा युवयोस्तृप्तिकरो भवति तथा क्रियत इत्यर्थः । यद्वा । घर्मस्य हविष आधारभूतो महावीरो घर्मः । स स्तोमेन स्तोतव्येन पयसा परि षिच्यते । आसिच्यते वां युवयोरर्थं । अपि च हे वाजिनीवसू अन्नवंतौ अयं सोमस्तार्तीयसवनिको मधुमान्माधुर्यवान् युवाभ्यां दीयते । येन युवां वृत्रमावरकं शत्रुं चिकेतथः हंतव्यतया जानीथः । अयं घर्मः सोमश्चेत्युभयत्रान्वयः ॥

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतं । तेन माविष्टमश्विना ॥५॥
यत् । अप्ऽसु । यत् । वनस्पतौ । यत् । ओषधीषु । पुरुऽदंससा । कृतं । तेन । मा । अविष्टं । अश्विना ॥५॥

हे पुरुदंससा बहुकर्माणावश्विनौ अप्सूदकेषु यद्भेषजं कृतं युवामकार्ष्टं ॥ करोतेर्लुङि मंत्रे घसेत्यादिना च्लेर्लुक् ॥ तथा वनस्पतौ । वनानां पतिर्वनस्पतिः ॥ पारस्करादित्वात्सुट् । उभे वनस्पत्यादिष्विति पूर्वोत्तरपदयोर्युगपत्प्रकृतिस्वरत्वं । जातौ चेदमेकवचनं ॥ वनस्पतिषु वृक्षेषु यच्च भेषजं युवामकुरुतं । ओषधीषु । ओषः पाक आसु धीयत इत्योषधयो व्रीह्यादयः ॥ कर्मण्यधिकरणे चेति दधातेरधिकरणे किप्रत्ययः । दासीभारा-

दिषु पठितत्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं । ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायामिति दीर्घः ॥ व्रीह्यादिष्वोषधीषु च यद्भेषजं कृतं युवामकार्ष्टं । हे अश्विनाश्विनौ तेन सर्वेण भेषजेन मा मामविष्टं । रक्षतं ॥ अवतेर्लोटि सिब्बहुलमिति बहुलग्रहणात्सिप् । तत इट् ॥ ॥ ३० ॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विंधते हविष्मंतं हि गच्छथः ॥ ६ ॥
यत् । नासत्या । भुरण्यथः । यत् । वा । देवा । भिषज्यथः ।
अयं । वां । वत्सः । मतिऽभिः । न । विंधते । हविष्मंतं । हि । गच्छथः ॥ ६ ॥

हे नासत्या सत्यस्वभावावश्विनौ यद्यौ युवां भुरण्यथः सर्वं जगत्पोषयथः ॥ भुरण् धारणपोषणयोः । कंड्वादिः ॥ हे देवा दानादिगुणयुक्तावश्विनौ ॥ छांदसः सांहितिको ह्रस्वः ॥ यद्वा । यौ च युवां भिषज्यथः सर्वस्य प्राणिजातस्य भैषज्यं रोगोपशमनं कुरुथः ॥ भिषज् चिकित्सायां । अयमपि कंड्वादिः ॥ तौ वां युवामयं वत्सः स्तोता मतिभिर्मननीयैः केवलैः स्तोत्रैर्न विंधते । न विंदते । न लभते ॥ वर्णविकारश्छांदसः ॥ कुत इति चेत् उच्यते । हविष्मंतं हविर्भिर्युक्तं स्तोतारं हि युवां गच्छथः । तस्माद्युवां हविर्भिर्युक्तैः स्तोत्रैः प्रसीदथ इति भावः ॥

प्रवर्ग्ये महावीरे गोपयस्यासिच्यमान आ नूनमित्येषानुवक्तव्या । सूत्र्यते हि । आ नूनमश्विनोर्ऋषिरिति गव्य आ सुते सिंचत श्रियमित्याजे । आ० ४. ७. । इति ॥

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिंचादथर्वणि ॥ ७ ॥
आ । नूनं । अश्विनोः । ऋषिः । स्तोमं । चिकेत । वामया ।
आ । सोमं । मधुमत्ऽतमं । घर्मं । सिंचात् । अथर्वणि ॥ ७ ॥

हे अश्विनौ यदा युवामागच्छेयाथां तदानीं युवयोरश्विनोः स्तोमं स्तोत्रमृषिर्मंत्रद्रष्टा वामया वननीययोत्कृष्टया बुद्ध्या नूनमवश्यमा चिकेत । अभिजानीयात् ॥ कित ज्ञाने । छांदसो लिट् ॥ तथा मधुमत्तममतिशयेन मधुरं सोमं घर्मं प्रवर्ग्यसंबंधि घर्माख्यं हविश्चाथर्वण्यहिंसकेऽग्नौ । यद्वा । अथर्वा ऋषिः । तेन निर्मथितोऽग्निरुपचारादथर्वेत्युच्यते । अथर्वणा निर्मथनं च त्वामग्ने पुष्करादधि । ऋ० ६. १६. १३. । इत्यादिनिगमांतरेऽवगम्यते । तस्मिन्नग्नावा सिंचात् । आसिंचेत् । प्रक्षिपेत् । अतः शीघ्रमागच्छतमित्यर्थः ॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥
आ । नूनं । रघुऽवर्तनिं । रथं । तिष्ठाथः । अश्विना ।
आ । वां । स्तोमाः । इमे । मम । नभः । न । चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

हे अश्विनौ रघुवर्तनिं लघुवर्तनं शीघ्रगमनं रथं नूनमवश्यमिदानीमेवा तिष्ठाथः । आतिष्ठतं । अधिरोहतं ॥ वालमूललघ्वलमिति लघोर्लकारस्य रेफः ॥ मम मदीया इमे स्तोमाः स्तोत्राणि नभो न सूर्यमिव तेजस्विनौ वां युवामा चुच्यवीरत । आच्यवंते । अभिगच्छंति । यद्वा । च्यवतिरत्रांतर्भावितण्यर्थः । आच्यावयंति । युवामभिप्रापयंति ॥

यद्द्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि । यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतं ॥९॥
यत् । अद्य । वां । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि । यत् । वा । वाणीभिः ।
अश्विना । एव । इत् । काण्वस्य । बोधतं ॥९॥

हे नासत्यौ अद्येदानीमुक्थैः शस्त्रैर्यद्यथा येन प्रकारेण वां युवामाचुच्युवीमहि आगमयेम हे अश्विनौ यद्वा यथा वाणीभिरुक्थव्यतिरिक्ताभिरपि वाग्भिः स्तुतिभिर्युवामागमयेम एवेदेवमेव तथैव काण्वस्य मम तदुक्थादिकं बोधतं । अवगच्छतं ॥

यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथां ॥१०॥
यत् । वां । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः । ऋषिः । यत् । वां । दीर्घऽतमाः । जुहाव ।
पृथी । यत् । वां । वैन्यः । सदनेषु । एव । इत् । अतः । अश्विना । चेतयेथां ॥१०॥

हे अश्विनौ वां युवां कक्षीवानृषिर्यद्यथा जुहाव तुष्टाव । उतापि च व्यश्व एतत्संज्ञ ऋषिश्च यद्यथा जुहाव । यद्यथा च वां युवां दीर्घतमा ऋषिर्जुहाव । सदनेषु यज्ञगृहे वैन्यो वेनस्य पुत्रः पृथ्येतत्संज्ञो राजर्षिर्वा युवां यद्यथा जुहाव तुष्टाव । एवेदेवमेव स्तुवतो ममात इदं स्तोत्रं ॥ इदंशब्दाद्वितीयार्थे तसिः ॥ हे अश्विनौ चेतयेथां । जानीतं ॥ ॥३१॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातं ॥११॥
यातं । छर्दिःऽपौ । उत । नः । परःऽपा । भूतं । जगत्ऽपौ । उत । नः । तनूऽपा ।
वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातं ॥११॥

हे अश्विनौ छर्दिष्पौ । छर्दिरिति गृहनाम । तस्यास्मदीयस्य पालकौ संतौ युवां यातं । आगच्छतं । उतापि च नोऽस्माकं परस्पा परमतिशयेन पालकौ भूतं । भवतं ॥ पारस्करादित्वात्सुट् ॥ तथा जगत्पौ सर्वस्य जगतो जंगमस्य प्राणिजातस्यास्मदीयस्य पालकौ भवतं । उतापि च नोऽस्माकं तनूपा तनूनां शरीराणां तनयानां वा पालकौ भवतं । एतत्सर्वार्थं तोकाय तोकस्य पुत्रस्य तनयाय तनयस्य पौत्रस्य चास्मदीयस्य वर्तिर्गृहं यातं । गच्छतं ॥

यदिंद्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥
यत् । इंद्रेण । सऽरथं । याथः । अश्विना । यत् । वा । वायुना । भवथः । संऽओकसा ।
यत् । आदित्येभिः । ऋभुऽभिः । सऽजोषसा । यत् । वा । विष्णोः । विऽक्रमणेषु ।
तिष्ठथः ॥१२॥

हे अश्विनौ इंद्रेण सह सरथं समानमेकं रथमास्थाय यद्यदि याथः गच्छथः । यद्वा यदि वा वायुना सह समोकसा समाननिवासौ भवथः । यद्यदि वादित्येभिरदितिपुत्रैर्मित्रादिभिर्ऋभुभिश्च सजोषसा सह प्रीयमाणौ वर्तेथे । यद्वा यदि वा विष्णोर्विक्रमणेषु विष्णुना देवेन विक्रांतेषु त्रिषु लोकेषु तिष्ठथः । अतः सर्वस्मादपि स्थानादागच्छतमिति शेषः ॥

यद्द्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये। यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३॥
यत्। अद्य। अश्विनौ। अहं। हुवेयं। वाजऽसातये। यत्। पृत्ऽसु। तुर्वणे। सहः।
तत्। श्रेष्ठं। अश्विनोः। अवः ॥१३॥

यदद्याहमश्विनौ वाजसातये संग्रामार्थं हुवेय आह्वयेय यदेदानीं तावागच्छतमिति शेषः। पृत्सु पृतनासु संग्रामेषु तुर्वणे शत्रूणां हिंसने यत्सहः शत्रूणामभिभवितृ रक्षणमश्विनोः तदवो रक्षणं श्रेष्ठं प्रशस्यतमं। अतस्तावाह्वयामीति भावः॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥१४॥
आ। नूनं। यातं। अश्विना। इमा। हव्यानि। वां। हिता।
इमे। सोमासः। अधि। तुर्वशे। यदौ। इमे। कण्वेषु। वां। अथ ॥१४॥

हे अश्विनौ नूनमवश्यमा यातं। आगच्छतं। इमेमानि पुरोवर्तीनि हव्यानि हवींषि वां युवाभ्यां हिता हितानि। यद्वा। युवयोरर्थं विहितानि कृतानि। इमे च सोमासः सोमास्तुर्वशे यदौ च वर्तमानाः। वां युवाभ्यां युवयोरर्थं संस्कृता वा॥ अधिः सप्तम्यर्थानुवादकः॥ अथापि च कण्वेषु कण्वपुत्रेष्वस्मासु चेमे सोमा वां युवाभ्यां दत्ताः। अत आयातमित्यर्थः॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजं।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतं ॥१५॥
यत्। नासत्या। पराके। अर्वाके। अस्ति। भेषजं।
तेन। नूनं। विऽमदाय। प्रऽचेतसा। छर्दिः। वत्साय। यच्छतं ॥१५॥

हे नासत्यावश्विनौ पराके दूरदेशेऽर्वाके समीपे च यद्युवयोः संबंधि भेषजं रोगोपशमनकारणमस्ति तेन भेषजेन सहितं छर्दिर्गृहं हे प्रचेतसा प्रकृष्टज्ञानावश्विनौ विमदाय। लुप्तोपममेतत्। एतत्संज्ञायेवर्षये वत्साय नूनमवश्यं प्रयच्छतं॥ ॥३२॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः। व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१६॥
अभुत्सि। ऊं इति। प्र। देव्या। साकं। वाचा। अहं। अश्विनोः। वि। आवः। देवि।
आ। मतिं। वि। रातिं। मर्त्येभ्यः ॥१६॥

अश्विनोः संबंधिन्या देव्या द्योतमानया वाचा स्तुतिरूपया साकं सहाहं प्राभुत्सि। प्रबुद्धोऽस्मि। उ इति पूरणः। हे देवि द्योतमान उषः त्वं च मतिं मया कृतां स्तुतिमाभिलक्ष्य व्यावः। तमांसि विवृणु। अपगमय। प्रकाशयेत्यर्थः॥ वृणोतेश्छांदसे लुङि मंत्रे घसेत्यादिना च्लेर्लुक्। छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः॥ अपि च मर्त्येभ्यो मनुष्येभ्यः स्तोतृभ्योऽस्मभ्यं रातिं धनं व्यावः। प्रकाशय॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७॥

प्र । बोधय । उषः । अश्विना । प्र । देवि । सूनृते । महि ।
प्र । यज्ञऽहोतः । आनुषक् । प्र । मदाय । श्रवः । बृहत् ॥ १७ ॥

हे उषः अश्विनौ देवौ प्र बोधयास्मत्स्तोत्रस्य श्रवणार्थं । हे देवि दानादिगुणयुक्ते हे सूनृते सुष्ठु नेत्रि हे महि महति इत्थंमहाभागा त्वमश्विनौ प्र बोधय । हे यज्ञहोतर्यज्ञानां यष्टव्यानां देवानामाह्वातर्होतर्वा आनुषगनुषक्तं संततं यथा भवति तथाश्विनौ स्तुतिभिः प्र बोधय । तथा मदायाश्विनोर्मदोत्पादनार्थं बृहन्म- हच्छ्रवः श्रवणीयं सोमलक्षणमन्नमस्माभिः कल्पितं ॥

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे। आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यं॥१८॥
यत् । उषः । यासि । भानुना । सं । सूर्येण । रोचसे । आ । ह । अयं । अश्विनोः ।
रथः । वर्तिः । याति । नृऽपाय्यं ॥ १८ ॥

हे उषः भानुना दीप्त्या सह यद्यदा यासि गच्छसि तदानीं सूर्येण सं रोचसे । सम्यग्दीप्यसे । अपि च तस्मिन्समयेऽश्विनोरयं रथो नृपाय्यं यन्नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिः पालनीयं वर्तिर्यज्ञगृहमा याति ह । आग- च्छति खलु ॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयंतो अश्विना ॥ १९ ॥
यत् । आऽपीतासः । अंशवः । गावः । न । दुह्रे । ऊधऽभिः ।
यत् । वा । वाणीः । अनूषत । प्र । देवऽयंतः । अश्विना ॥ १९ ॥

यद्यदापीतास आ समंतात्पीतवर्णा अंशवः सोमलता ऊधभिर्गावो न गाव इव दुह्रे रसं दुहते ॥ लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः । बहुलं छंदसीति रुडागमः ॥ यद्वा यदा च देवयंतो देवान्कामयमाना ऋत्विजो वाणीर्वाचः स्तुतीरनूषत अस्तुवन् । अकुर्वन्नित्यर्थः । तदाश्विनौ देवौ प्रावतं । प्ररक्षतं ॥

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ २० ॥
प्र । द्युम्नाय । प्र । शवसे । प्र । नृऽसह्याय । शर्मणे । प्र । दक्षाय । प्रऽचेतसा ॥ २० ॥

प्रचेतसा प्रकृष्टज्ञानावश्विनौ द्युम्नाय द्योतमानायान्नाय यशसे वा ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ द्युम्नार्थमस्मान् प्ररक्षतं । शवसे बलाय च प्ररक्षतं । नृषाह्याय नृभिः सोढव्याय शर्मणे सुखाय च प्ररक्षतं । दक्षाय वृद्ध्यर्थं प्ररक्षतं । यद्वा ॥ द्युम्नायेत्यादौ क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥ द्युम्नादीन्यस्मभ्यं प्रयच्छतमित्यर्थः ॥

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ २१ ॥
यत् । नूनं । धीभिः । अश्विना । पितुः । योना । निऽसीदथः । यत् । वा । सुम्नेभिः ।
उक्थ्या ॥ २१ ॥

हे अश्विनौ पितुः पालयितुर्द्युलोकस्य संबंधिनि योना योनौ स्थाने यद्यदि धीभिः कर्मभिः सह निषीदथः निवसथः । यद्वा यदि वा हे उक्थ्योक्थ्यौ प्रशस्यौ सुम्नेभिः सुम्नैः सुखैः सह निवसथः । तदास्माभिः स्तुतौ संतावागच्छतमिति शेषः । अथवा । पितुः पालयितुर्यजमानस्य संबंधिनि योनौ यज्ञगृहे धीभिः स्तुतिभिः

सार्धं यदि निवसथः यदि च सुन्नैः सुखकरैर्हविर्भिश्च सह निवसथः तस्मादागच्छतं। नूनमिति पदपूरणः। उक्तं च यास्केन। अथापि पदपूरणः। नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे। नि॰१.७.। इति॥ ॥३३॥

यत्स्थ इति षडृचं पंचमं सूक्तं काण्वपुत्रस्य प्रगाथस्यार्षमाश्विनं। आद्या बृहती। द्वितीया मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप् यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः। अनु॰९.८.। इत्युक्तलक्षणसद्भावात्। तृतीयानुष्टुप्। चतुर्थ्यास्तारपंक्तिः। अंत्या चेदास्तारपंक्तिः। अनु॰८.७.। इति हि तल्लक्षणं। पंचमी बृहती षष्ठी सतोबृहती। तथा चानुक्रांतं। यत्स्थः षट् प्रगाथोऽपश्यद्बृहती मध्येज्योतिरनुष्टुबास्तारपंक्तिः प्रगाथ इति॥ प्रातरनुवाकाश्विने क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। सूत्र्यते हि। युञ्जो वां यत्स्थ इति बार्हतं। आ॰४.१५.। इति॥

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना॥१॥
यत्। स्थः। दीर्घऽप्रसद्मनि। यत्। वा। अदः। रोचने। दिवः।
यत्। वा। समुद्रे। अधि। आऽकृते। गृहे। अतः। आ। यातं। अश्विना॥१॥

हे अश्विनौ दीर्घप्रसद्मनि। प्रसीदंत्येषु देवा इति प्रसद्मानो यज्ञगृहाः। दीर्घा आयताः प्रसद्मानो यस्मिन् तस्मिँल्लोके यद्यदि स्थः भवथः वर्तेथे। यद्वा यदि वादोऽमुष्मिन्दिवो द्युलोकस्य संबंधिनि रोचने रोचमाने स्थाने भवथः। यद्वा यदि वा समुद्रेऽंतरिक्षे। समुद्रवंत्यस्मादाप इति समुद्रमंतरिक्षं। तस्मिन्। आकृते निर्मिते गृहेऽधिवसथः। अतस्त्रितयादपि स्थानात् हे अश्विनौ आ यातं। आगच्छतं॥

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतं।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इंद्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा॥२॥
यत्। वा। यज्ञं। मनवे। संऽमिमिक्षथुः। एव। इत्। काण्वस्य। बोधतं।
बृहस्पतिं। विश्वान्। देवान्। अहं। हुवे। इंद्राविष्णू इति। अश्विनौ। आशुऽहेषसा॥२॥

हे अश्विनौ यद्वा यथा वा येन वा प्रकारेण मनवे प्रजापतये यजमानाय यज्ञं संमिमिक्षथुः संसिक्तवंतौ युवां कृतवंतौ एवेदेवमेव काण्वस्य कण्वगोत्रस्य मम यज्ञं कर्तुं बोधतं। अवगच्छतं। अपि च बृहस्पतिं बृहतां देवानां पतिं देवपुरोहितं विश्वान् सर्वान्मित्रादीन्देवांश्चेंद्राविष्णू चाशुहेषसा शीघ्राश्वौ। यद्वा॥ हेषृ शब्दे॥ शीघ्रं सर्वत्र शब्द्यमानौ स्तूयमानावश्विनौ चाहं हुवे। आह्वये॥

त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता। ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यं॥३॥
त्या। नु। अश्विना। हुवे। सुऽदंससा। गृभे। कृता। ययोः। अस्ति। प्र। नः। सख्यं।
देवेषु। अधि। आप्यं॥३॥

त्या त्यौ पूर्वोक्तगुणावश्विनौ नु क्षिप्रमहं हुवे। आह्वयामि। कीदृशौ। सुदंससा शोभनकर्माणौ गृभे ग्रहे ग्रहणायास्माभिर्दत्तानां हविषां स्वीकरणायास्मभ्यं धनदानाय वा कृता कृतौ प्रादुर्भूतौ देवेषु मध्ये॥ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी॥ ययोरश्विनोराप्यमाप्तव्यं नोऽस्माकं सख्यं सखित्वं प्रास्ति प्रभवति उत्कर्षेण वर्तते तौ हुव इत्यन्वयः॥

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे संति सूरयः।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु॥४॥

यथोः । अधि । प्र । यज्ञाः । असूरे । संति । सूरयः ।
ता । यज्ञस्य । अध्वरस्य । प्रऽचेतसा । स्वधाभिः । या । पिबतः । सोम्यं । मधु ॥४॥

ययोरश्विनोरध्युपरि यज्ञा ज्योतिष्टोमादयः सर्वे यागाः प्र संति प्रभवंति । छिन्नस्य यज्ञशिरसोऽश्विभ्यां संधानात् । तथा च यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यतेत्युपक्रम्य तैत्तिरीयकं । तावेतद्यज्ञशिरः प्रत्यधत्तां यदाश्विनो गृह्यते यज्ञस्य निष्कृत्यै । तै॰ सं॰ ६. ४. ९. ५. । इति । असूरे स्तोतृरहितेऽपि देशे ययोश्च सूरयः स्तोतारः संति तावश्विनावध्वरस्य हिंसाप्रत्यवायरहितस्य यज्ञस्य ज्योतिष्टोमादेः प्रचेतसा प्रकृष्टं ज्ञातारौ स्वधाभिर्बलहेतुभिः स्तुतिभिराह्वयामीति शेषः । या यावश्विनौ सोम्यं सोममयं मधु मधुरं सोमरसं पिबतः ॥

यदुद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।
यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतं ॥५॥
यत् । अद्य । अश्विनौ । अपाक् । यत् । प्राक् । स्थः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
यत् । द्रुह्यवि । अनवि । तुर्वशे । यदौ । हुवे । वां । अथ । मा । आ । गतं ॥५॥

हे अश्विनौ अद्येदानीं यद्यद्यपाक् प्रतीच्यां दिशि स्थः भवथः वर्तेथे । हे वाजिनीवसू अन्नवज्जनौ यद्यदि प्राक् प्राच्यां दिशि स्थः भवथः । यद्यदि वा द्रुह्युप्रभृतिषु चतुर्षु स्तोतृषु संनिहितौ भवथः । एवं सर्वत्र संनिहितौ वां युवां हुवे । अहमाह्वयामि । अथानंतरमेव मा मामा गतं । आगच्छतं ॥

यदंतरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।
यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥६॥
यत् । अंतरिक्षे । पतथः । पुरुऽभुजा । यत् । वा । इमे इति । रोदसी इति । अनु ।
यत् । वा । स्वधाभिः । अधिऽतिष्ठथः । रथं । अतः । आ । यातं । अश्विना ॥६॥

हे पुरुभुजा बहूनां पालयितारौ बहुलहविषो भोक्तारौ वा यद्यद्यंतरिक्षे पतथः गच्छथः । यद्वा यदि वेमे रोदसी द्यावापृथिव्यावनुलक्ष्य गच्छथः । यद्वा यदि वा स्वधाभिरात्मीयैस्तेजोभिर्बलैर्वा सार्धं रथमधितिष्ठथः रथ उपविशथः ॥ अधिशीङ्स्थासामित्याधारस्य कर्मसंज्ञा ॥ अतः सर्वस्मात्स्थानात् हे अश्विनौ आ यातं । आगच्छतं ॥ ॥३४॥

त्वमग्न इति दशर्चं षष्ठं सूक्तं कण्वगोत्रस्य वत्सस्यार्षमाग्नेयं । आद्या प्रतिष्ठागायत्री अष्टकसप्तकषट्कोपेतत्वात् । द्वितीया वर्धमाना षट्कसप्तकाष्टकोपेतत्वात् । तथा चोक्तं । षट्कसप्तकाष्टकैव वर्धमाना विपरीता प्रतिष्ठेति । दशमी त्रिष्टुप् शिष्टा गायत्र्यः । तथा चानुक्रांतं । त्वमग्ने दश वत्स आग्नेयं गायत्रं त्या त्रिष्टुबाद्या प्रतिष्ठोपाद्या वर्धमानेति ॥ प्रातरनुवाकस्याग्नेये क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चोत्तमावर्जमेतत्सूक्तं । सूत्र्यते हि । त्वमग्ने व्रतपा इत्युत्तमामुद्धरेत् । आ॰ ४. १३. । इति ॥ व्रातपत्यामाद्यानुवाक्या । सूचितं च । त्वमग्ने व्रतपा असि यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि । आ॰ ३. १३. । इति ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१॥
त्वं । अग्ने । व्रतऽपाः । असि । देवः । आ । मर्त्येषु । आ । त्वं । यज्ञेषु । ईड्यः ॥१॥

हे अग्ने देवो द्योतमानस्त्वं मर्त्येष्वा मनुष्येषु च देवेषु च मध्ये व्रतपा असि । व्रतानां कर्मणां रक्षिता भवसि । अतः कारणाद्यज्ञेषु त्वमीड्यः स्तुत्योऽसि ॥

त्वम॑सि प्रश॒स्यो॑ वि॒दथे॑षु सहन्त्य । अग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म् ॥ २ ॥

त्वं । अ॒सि॒ । प्र॒ऽश॒स्यः॑ । वि॒दथे॑षु । स॒ह॒न्त्य॒ । अग्ने॑ । र॒थीः । अ॒ध्व॒राणा॑म् ॥ २ ॥

हे सहंत्य शत्रूणामभिभवितरग्ने विदथेषु यज्ञेषु त्वं प्रशस्यः स्तुत्योऽसि । अध्वराणां यागानां रथीर्नेता च भवसि ॥

स त्वम॒स्मदप॒ द्विषो॑ युयो॒धि जा॑तवेदः । अदे॑वीरग्ने॒ अरा॑तीः ॥ ३ ॥

सः । त्वं । अ॒स्मत् । अप॑ । द्विषः॑ । यु॒यो॒धि । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ । अदे॑वीः । अ॒ग्ने॒ । अरा॑तीः ॥ ३ ॥

हे जातवेदो जातानां वेदितरग्ने स पूर्वोक्तगुणस्त्वमस्मदस्मत्तो द्विषो द्वेष्टॄञ्छत्रूनप युयोधि । पृथक्कुरु । अदेवीरासुरीररातीः शत्रुसेनाश्च पृथक्कुरु ॥

अन्ति॑ चि॒त्सन्त॒मह॑ य॒ज्ञं मर्त॑स्य रि॒पोः । नोप॑ वेषि जातवेदः ॥ ४ ॥

अन्ति॑ । चि॒त् । सन्त॑म् । अह॑ । य॒ज्ञम् । मर्त॑स्य । रि॒पोः । न । उप॑ । वे॒षि॒ । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ ॥ ४ ॥

हे जातवेदः अंति चिदंतिकेऽपि संतं भवंतं समीपे विद्यमानमपि रिपोरस्मच्छत्रोर्मर्तस्य मनुष्यस्य यज्ञं नोप वेषि । अहशब्दोऽवधारणे । नैव कामयसे ॥

मर्ता॑ अम॑र्त्यस्य ते॒ भूरि॒ नाम॑ मनामहे । विप्रा॑सो जा॒तवे॑दसः ॥ ५ ॥

मर्ताः॑ । अम॑र्त्यस्य । ते॒ । भूरि॑ । नाम॑ । म॒ना॒म॒हे॒ । विप्रा॑सः । जा॒त॒ऽवे॑दसः ॥ ५ ॥

मर्ता मनुष्या विप्रासो मेधाविनो वयं हे अग्ने जातवेदसो जातानां वेदितुरमर्त्यस्य मरणरहितस्य देवस्य भूरि विस्तृतं नाम स्तोत्रं मनामहे । जानीमः । कुर्म इति यावत् ॥ ॥ ३५ ॥

विप्रं॒ विप्रा॑सोऽव॑से दे॒वं मर्ता॑स ऊ॒तये॑ । अ॒ग्निं गी॒र्भिर्ह॑वामहे ॥ ६ ॥

विप्र॑म् । विप्रा॑सः । अव॑से । दे॒वम् । मर्ता॑सः । ऊ॒तये॑ । अ॒ग्निम् । गीः॒ऽभिः । ह॒वा॒म॒हे॒ ॥ ६ ॥

विप्रासो मेधाविनो मर्तासो मर्ता मनुष्या वयं विप्रं मेधाविनं देवं दानादिगुणयुक्तमग्निमवसे हविर्भिस्तर्पयितुमूतयेऽस्माकं रक्षणार्थं च गीर्भिर्हवामहे । आह्वयामहे ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवन आ ते वत्स इति वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः । सूत्रितं च । आ ते वत्सो मनो यमदाग्ने स्थूरं रयिं भर । आ॰ ७. ८. । इति ॥

आ ते॑ व॒त्सो मनो॑ यमत्पर॒माच्चि॑त्स॒धस्था॑त् । अग्ने॒ त्वांका॑मया गि॒रा ॥ ७ ॥

आ । ते॒ । व॒त्सः । मनः॑ । य॒म॒त् । प॒र॒मात् । चि॒त् । स॒ध॒ऽस्थात् । अग्ने॑ । त्वाम्ऽका॑मया । गि॒रा ॥ ७ ॥

हे अग्ने वत्स ऋषिस्ते तव मनः परमाच्चिदुत्कृष्टादपि सधस्थात्सहस्थानाद्युलोकादा यमत् । आयमयति । केन साधनेन । त्वांकामया त्वामभिलषंत्या गिरा स्तुत्या ॥

पु॒रु॒त्रा हि स॒दृङ्ङसि॒ विशो॒ विश्वा॒ अनु॑ प्र॒भुः । स॒मत्सु॑ त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

पु॒रु॒ऽत्रा । हि । स॒ऽदृङ् । असि॑ । विशः॑ । विश्वाः॑ । अनु॑ । प्र॒ऽभुः । स॒मत्ऽसु॑ । त्वा॒ । ह॒वा॒म॒हे॒ ॥ ८ ॥

हे अग्ने पुरुत्रा हि बहुषु देशेषु त्वं सदृङ्ङसि । समानं द्रष्टा भवसि । अत एव विश्वाः सर्वा विशः प्रजा अनुलक्ष्य प्रभुरीश्वरो भवसि । ईदृशं त्वां समत्सु संग्रामेषु रक्षणार्थं हवामहे । आह्वयामहे ॥

समत्स्वग्निमवसे वाजयंतो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसं ॥९॥

समत्ऽसु । अग्निं । अवसे । वाजऽयंतः । हवामहे । वाजेषु । चित्रऽराधसं ॥९॥

समत्सु सहमर्दनेषु संग्रामेषु वाजयंतो बलमिच्छंतो वयमवसे रक्षणार्थमग्निं हवामहे । कीदृशं । वाजेषु संग्रामेषु चित्रराधसं चायनीयधनं ॥

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।

स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१०॥

प्रत्नः । हि । कं । ईड्यः । अध्वरेषु । सनात् । च । होता । नव्यः । च । सत्सि ।

स्वां । च । अग्ने । तन्वं । पिप्रयस्व । अस्मभ्यं । च । सौभगं । आ । यजस्व ॥१०॥

हे अग्ने अध्वरेषु यज्ञेष्वीड्यः स्तुत्यस्त्वं प्रत्नो हि चिरंतनः खलु भवसि । कमिति पूरकः । तथा सनाच्चिरकालादारभ्य होता देवानामाह्वाता च सन्नव्यः स्तुत्यश्च सन् सत्सि । यज्ञेषु निषीदसि । हे अग्ने देवानां हविर्वहंस्त्वं स्वां च तन्वमात्मीयं च शरीरं पिप्रयस्व । त्वदीयेन हविर्भागेन तर्पय । अस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्च सौभगं सुभगत्वं चा यजस्व । प्रदेहि ॥ सुभगशब्दाद्भावार्थे सुभगान्मंत्र इत्युद्गात्रादिषु पाठादञ्प्रत्ययः ॥ ॥३६॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये पंचमाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ कल्याणं भूयात् ॥

ओं

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे। यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननं ॥
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

इत्थं पंचमाष्टकं व्याख्यायेदानीमृषिच्छंदोदेवताविनियोगप्रदर्शनपुरःसरं षष्ठस्य प्रथमोऽध्यायो व्याख्यातुमारभ्यते ॥ अष्टममंडलस्य द्वितीयेऽनुवाके षट् सूक्तानि जातानि। य इंद्रेति त्रयस्त्रिंशदृचं सप्तमं सूक्तं कण्वगोत्रस्य पर्वताख्यस्यार्षमौष्णिहमैंद्रं। तथा चानुक्रांतं। य इंद्र त्रयस्त्रिंशत्पर्वत औष्णिहं त्विति ॥ महाव्रते निष्केवल्य औष्णिहतृचाशीताविदमादिके द्वे सूक्ते। तथैव पंचमारण्यके सूत्र्यते। औष्णिही तृचाशीतिर्य इंद्र सोमपातम इति सूक्ते। ऐ॰ आ॰ ५. २. ५.। इति ॥ दशमेऽहनि निष्केवल्य आदितः षड्ऋचः शंसनीयाः। सूत्र्यते हि। य इंद्र सोमपातम इति षळुष्णिहः। आ॰ ८. १२.। इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने ब्रह्मशस्त्र आद्यस्तृचो वैकल्पिकोऽनुरूपः। सूत्रितं च। य इंद्र सोमपातम एंद्र नो गधि। आ॰ ७. ८.। इति ॥ तृतीये पर्यायेऽच्छावाकशस्त्रेऽप्ययमेव तृचोऽनुरूपः। सूत्रितं च। इंद्रः सुतेषु सोमेषु य इंद्र सोमपातमः। आ॰ ६. ४.। इति ॥

य इंद्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति। येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे ॥१॥
यः। इंद्र। सोमऽपातमः। मदः। शविष्ठ। चेतति। येन। हंसि। नि। अत्रिणं। तं। ईमहे ॥१॥

हे इंद्र यस्त्वं सोमपातमोऽतिशयेन सोमस्य पाता। हे शविष्ठ बलवत्तम ॥ शव इति बलनाम। तस्माद्विनंतादातिशायनिक इष्ठन्। विन्मतोर्लुक्। टिलोपः ॥ हे ईदृशेंद्र तस्य तव सोमपानजनितो यो मदश्चेतति सम्यग्जानाति वृत्रवधादीनि कार्याणि कर्तुं ॥ य इत्यस्य चेततीत्यनेनापि संबंधाद्यद्वृत्तान्नित्यमिति तिङ् निहन्यते ॥ अथवैतदेवं वाक्यं। हे बलवत्तमेंद्र सोमपातमः सोमस्य पातृतमो यस्त्वं मदः सोमैर्मादयितव्यस्तर्पणीयः संश्चेतति ॥ पुरुषव्यत्ययः ॥ चेतसि सम्यग्जानासि ॥ मदोऽनुपसर्ग इति मदेः कर्मण्यप् ॥ येन सोमपानजनितेन मदेनात्रिणमत्तारं राक्षसादिकं नि हंसि नि हिनस्सि निकृष्टां हिंसां प्रापयसि तं मदं तादृङ्मदोपेतं त्वां वेमहे। याच्ञाकर्मायं। याचामहे। यद्वा ॥ ई गतौ दैवादिकः। छांदसो विकरणस्य लुक् ॥ ईयामहे। उपगच्छामः। स्तुतिभिः संभजामह इत्यर्थः ॥

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयंतं स्वर्णरं। येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥२॥
येन। दशऽग्वं। अध्रिऽगुं। वेपयंतं। स्वःऽनरं। येन। समुद्रं। आविथ। तं। ईमहे ॥२॥

हे इंद्र येन सोमपानजनितेन मदेन दशग्वं। ये दशभिर्मासैः सत्त्रासनं परिसमाप्य निरगमन् ते दशग्वा अंगिरसः। तेषामन्यतममध्रिगुमधृतगमनमनिवारितगतिमेतत्संज्ञं चर्षिं वेपयंतं तमांसि वर्जयंतं स्वर्णरं सर्वस्य नेतारं सूर्यं चाविथ वृत्रादेर्दस्योरपनयनेन ररक्षिथ। येन च मदेन समुद्रमुदधिमंतरिक्षं वाविथ ररक्षिथ। त्वदीयं मदं तद्वंतं त्वां वेमहे। याचामहे। मदे हि सति हृष्टः सन्निंद्रो बहु धनं प्रयच्छति। अतस्तत्कारणस्य मदस्य याच्ञोपपन्ना ॥

येन सिंधुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः। पंथामृतस्य यातवे तमीमहे ॥३॥
येन। सिंधुं। महीः। अपः। रथान्ऽइव। प्रऽचोदयः। पंथां। ऋतस्य। यातवे। तं। ईमहे ॥३॥

हे इंद्र महीर्महतीरपो वृष्ट्युदकानि सिंधुं स्यंदनशीलां नदीं समुद्रं वा प्रति येन सोमपानजन्येन मदेन प्रचोदयः प्रेरयसि । तत्र दृष्टांतः । रथानिव । यथा रथिनो रथान् स्वाभिलषितदेशगमनाय प्रेरयंति तद्वत् । ऋतस्य यज्ञस्य पंथां पंथानं मार्गं यातवे यातुं प्राप्तुं तं मदमीमहे । याचामहे ॥

इमं स्तोमंमभिष्टये घृतं न पूतमंद्रिवः । येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥४॥

इमं । स्तोमं । अभिष्टये । घृतं । न । पूतं । अद्रिऽवः । येन । नु । सद्यः । ओजसा । ववक्षिथ ॥४॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र घृतं न घृतमिव मंत्रपूतमाज्यमिव पूतं शुद्धमिममस्मदीयं स्तोमं स्तोत्रं बुध्यस्वेति शेषः । किमर्थं । अभिष्टयेऽभिप्राप्त्यै । इष्टस्य धनादेरस्माकं लाभायेत्यर्थः । येन स्तोत्रेण स्तूयमानः सन्नोजसात्मीयेन बलेन सद्यस्तदानीमेव स्तुतिसमय एव नु क्षिप्रं ववक्षिथ अस्मान्वहसि अभिलषितं प्रापयसि इमं स्तोममित्यन्वयः ॥

इमं जुंषस्व गिर्वणः समुद्र इंव पिन्वते । इंद्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥५॥

इमं । जुषस्व । गिर्वणः । समुद्रःऽइव । पिन्वते । इंद्र । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । ववक्षिथ ॥५॥

हे गिर्वणो गिरां स्तुतीनां संभक्तः यद्वा स्तुतिभिः संभजनीयेंद्र इमं स्तोमं मया क्रियमाणं जुषस्व । सेवस्व । स च स्तोमः समुद्र इव समुद्रो यथा चंद्रोदयं प्राप्य पिन्वते । वर्धते । अभिधेयस्येंद्रगुणगणस्याधिक्येन तत्प्रतिपादिका स्तुतिरपि विस्तृता भवतीत्यर्थः ॥ पूर्वस्यामृचि ववक्षिथेत्यनेन युक्तो येनेति शब्दोऽत्रापि सामर्थ्यात्तेन संबध्यते । अत एवास्य तिङ्ङतिङ इति निघाताभावः ॥ हे इंद्र येन स्तोमेन हेतुना विश्वाभिर्व्याप्ताभिरूतिभी रक्षाभिर्ववक्षिथ वहसि श्रेयांस्यस्मान्प्रापयसि ॥ वहेः सनंताल्लिट्यमंत्र इति निषेधादामभावे थलि लिटि रूपमेतत् ॥ ॥१॥

यो नों देवः परावतः सखित्वनायं मामहे । दिवो न वृष्टिं प्रथयंन्ववक्षिथ ॥६॥

यः । नः । देवः । पराऽवतः । सखिऽत्वनायं । ममहे । दिवः । न । वृष्टिं । प्रथयंन् । ववक्षिथ ॥६॥

यो नो देवो दानादिगुणयुक्त इंद्रः परावतः परावताद्दूराद्द्युलोकादागत्य नोऽस्माकं सखित्वनाय सखित्वाय मामहे धनानि प्रददौ ॥ मंहतेर्दानकर्मण एतद्रूपं ॥ यद्वा । अस्माभिः पूज्यते ॥ मह पूजायां । अस्माच्छांदसः कर्मणि लिट् ॥ उत्तरार्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । हे इंद्र दिवो न वृष्टिं दिवः सकाशाद्वृष्टिमिव प्रथयन्नस्मदीयानि धनानि विस्तारयन् यस्त्वं ववक्षिथ अस्मान् वोढुमिच्छसि तादृशं त्वां स्तौमीति शेषः ॥

ववक्षुरस्य केतवं उत वज्रो गभंस्त्योः । यत्सूर्यो न रोदसी अवंर्धयत् ॥७॥

ववक्षुः । अस्य । केतवंः । उत । वज्रंः । गभंस्त्योः । यत् । सूर्यंः । न । रोदसी इति ।
अवंर्धयत् ॥७॥

अस्येंद्रस्य केतवः प्रज्ञानान्यस्मत्स्तुतिविषयाणि । यद्वा । रथ उत्क्षिप्ताः पताकाः केतवः । ववक्षुः । अवहन् । अस्माञ्छ्रेयांसि प्रापयन् । उतापि च गभस्त्योः । बाह्वोर्नामैतत् । इंद्रस्य हस्तयोरवस्थितो वज्रश्चावहत । यद्यदायमिंद्रः सूर्यो न सर्वस्य प्रेरक आदित्य इव रोदसी द्यावापृथिव्यौ वृष्ट्यादिप्रदानेनावर्धयत् तदानीमित्यर्थः ॥

यदिं प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघंः । आदित्तं इंद्रियं महि प्र वांवृधे ॥८॥

यदिं । प्रऽवृद्ध । सत्ऽपते । सहस्रं । महिषान् । अघंः । आत् । इत् । ते । इंद्रियं । महिं ।
प्र । ववृधे ॥८॥

हे प्रवृद्ध प्रकर्षेण महन् हे सत्पते सतामनुष्ठातॄणां पालयितरिंद्र सहस्रं सहस्रसंख्याकान्महिषान्। महन्नामैतत्। महतोऽसुरान् वृत्रादीन् यदि यदाघः अवधीः॥ हंतेर्लुङ्यडभावश्छांदसमेतद्रूपं। यद्वा। घस्लृ अदने। लुङि सिपि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक्॥ आदिद्नंतरमेव हे इंद्र ते तवेंद्रियं वीर्यं महि महद्बलं सत्र वावृधे। प्रकर्षेण वर्धते॥

इंद्रः॑ सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॒र्न्य॑र्शसा॒नमो॑षति। अ॒ग्निर्वने॑व सास॒हिः प्र वा॑वृधे॥९॥
इंद्रः॑। सूर्य॑स्य। र॒श्मिऽभिः॑। नि। अ॒र्श॒सा॒नं। ओ॒ष॒ति॒। अ॒ग्निः। वना॑ऽइव। स॒स॒हिः। प्र। व॒वृ॒धे॒॥९॥

अयमिंद्रः सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य रश्मिभिः किरणैः करणभूतैरर्शसानं॥ अर्तेर्गुणः शुट्च। उ० २.८८.। इत्यृ गतावित्यस्मादसानच्प्रत्ययः शुडागमश्च। अयं केवलोऽप्यर्तिराङ्पूर्वार्थो द्रष्टव्यः। आङ्पूर्वश्च बाधने वर्तते। यथा आर्तिमार्तोः। शत० १३. १. २. ४.। इति॥ अर्शसानं बाधमानं मंदेहादिकमसुरं न्योषति। नितरां दहति॥ उष दाहे॥ तत्र दृष्टांतः। अग्निर्वनेव। यथा वनारण्यानि दावानलो भस्मसात्करोति तद्वत्। एवं सासहिः शत्रूणामभिभवनशील इंद्रः प्र वावृधे। प्रकर्षेण वर्धते॥

इ॒यं त॑ ऋ॒त्विया॑वती धी॒तिरे॑ति॒ नवी॑यसी। स॒प॒र्यंती॑ पुरुप्रि॒या मिमी॑त॒ इत्॥१०॥
इ॒यं। ते॒। ऋ॒त्विय॑ऽवती। धी॒तिः। ए॒ति॒। नवी॑यसी। स॒प॒र्यंती॑। पु॒रु॒ऽप्रि॒या। मिमी॑ते। इत्॥१०॥

हे इंद्र ते त्वामियं पुरोवर्तिनी मया क्रियमाणा धीतिः स्तुतिरेति। गच्छति। कीदृशी। ऋत्वियावती। ऋतौ वसंतादिकालेऽनुष्ठेयं यज्ञकर्म ऋत्वियं। तद्वती नवीयस्यतिशयेनाभिनवा स्तुतिः। सपर्यंती पूजयंती पुरुप्रिया पुरु बहुलं प्रीणयित्री सती मिमीत इत्। इंद्रगतान् गुणान् परिच्छिनत्त्येव। माहात्म्यं प्रख्यापयत्येव सेयमित्यन्वयः॥ अनुमीयमानेन यच्छब्देन च योगान्मिमीत इत्यस्य निघाताभावः। यद्वा। सपर्यंती पुरुप्रियेतीदमप्येतीत्यनेन संबंधनीयं। अतः पूर्वपदस्य भिन्नवाक्यस्थत्वात् समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्या इति वचनात्तदपेक्षया निघाताभावे सत्यभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वं॥ ॥२॥

गर्भो॑ य॒ज्ञस्य॑ देव॒युः क्रतुं॑ पुनीत आनु॒षक्। स्तोमै॒रिंद्र॑स्य वावृधे॒ मिमी॑त॒ इत्॥११॥
गर्भः॑। य॒ज्ञस्य॑। दे॒व॒ऽयुः। क्रतुं॑। पु॒नी॒ते॒। आ॒नु॒षक्। स्तोमैः॑। इंद्र॑स्य। व॒वृ॒धे॒। मिमी॑ते। इत्॥११॥

यज्ञस्य यष्टव्यस्येंद्रस्य गर्भो गरिता स्तोता॥ गॄ शब्दे। अर्तिगॄभ्यां भन्॥ यद्वा॥ यजेर्भाव एव नङ्प्रत्ययः॥ यागस्य गर्भो गृहीतानुष्ठाता। देवयुर्देवं दानादिगुणयुक्तमिंद्रमात्मन इच्छन्नानुषगनुषक्तमानुपूर्व्येण संततं यथा भवति तथा क्रतुं प्रज्ञापकं सोमं पुनीते। दशापवित्रेण शोधयति। इंद्रपानार्थमिति शेषः। यद्वा। यज्ञस्य गर्भो दीक्षितः। पुनर्वा एतमृत्विजो गर्भं कुर्वंति। ऐ० ब्रा० १. ३.। इत्यादि ब्राह्मणं। स देवकामः क्रतुं ज्योतिष्टोमादिकमानुषक्। आनुपूर्व्यनामैतत्। यदाह यास्कः। आनुषगिति नामानुपूर्व्यस्य। नि० ६. १४.। इति। स स्तोतेंद्रस्य॥ कर्मणि षष्ठी॥ इंद्रविषयैः स्तोमैः स्तोत्रैर्ववृधे। वर्धते। यद्वा। वृधिना प्रयोज्यव्यापारवाचिना प्रयोजकव्यापारो लक्ष्यते। स्तोमैः स्तोत्रैस्तमिंद्रं वर्धयति। स च स्तोमैर्मिमीत इत्। इंद्रस्य गुणजातं परिच्छिनत्त्येव। अनुगतार्थो भवतीत्यर्थः॥

सनिर्मित्रस्य पप्रथ इंद्रः सोमस्य पीतये। प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥१२॥
सनिः। मित्रस्य। पप्रथे। इंद्रः। सोमस्य। पीतये। प्राची। वाशीऽइव। सुन्वते।
मिमीते। इत् ॥१२॥

मित्रस्य मित्रभूतस्य स्तोतुः सनिर्धनस्य दातेंद्रः सोमस्य पीतये पानाय पप्रथे। प्रथितो विस्तीर्णशरीरो बभूव। यथा पीतो बहुलः सोम उदरेऽंतर्भवति तथा प्रवृद्धशरीरो बभूवेत्यर्थः। तत्र प्रथमे दृष्टांतः। प्राची प्रांचंती प्रकर्षेण स्तुत्यं गुणगणं प्राप्नुवती वाशीव। वाङ्नामैतत्। स्तुतिरूपा वाक् सुन्वते ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्येति चतुर्थी ॥ सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य संबंधिनी यथा स्तुत्यगुणबाहुल्येन विस्तीर्णा भवति तथेंद्रः पप्रथ इत्यर्थः। प्रथिता च सा मिमीत इत्। इंद्रमाहात्म्यं यथावत्परिच्छिनत्त्येव ॥

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमंदुरायवः। घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥१३॥
यं। विप्राः। उक्थऽवाहसः। अभिऽप्रमंदुः। आयवः। घृतं। न। पिप्ये। आसनि।
ऋतस्य। यत् ॥१३॥

विप्रा मेधाविन उक्थवाहस उक्थानां शस्त्राणां वोढारः प्रापयितार आयवो मनुष्या यमिंद्रमभिप्रमंदुः अभि प्रकर्षेण मादयंति ॥ मदेर्व्यत्ययेन परस्मैपदं द्विर्वचनपरेण च्छंदसि वेति वचनाद्द्विर्वचनाभावः ॥ तस्येंद्रस्यासन्यास्ये ॥ पद्दन्नित्यादिनास्यशब्दस्यासन्नादेशः ॥ घृतं न घृतमिव शुद्धं पिप्ये। सेचनेन वर्धये ॥ प्यायतेश्छांदसो लिट्। लिड्यङोश्चेति पीभावः ॥ किं तद्धविः। ऋतस्य यज्ञस्य संबंधि यत्सोमलक्षणं हविरस्ति तदित्यर्थः ॥

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिंद्राय जीजनत्। पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥१४॥
उत। स्वऽराजे। अदितिः। स्तोमं। इंद्राय। जीजनत्। पुरुऽप्रशस्तं। ऊतये।
ऋतस्य। यत् ॥१४॥

उतापि चादितिरदीना देवमाताखंडनीयस्तोता वा स्वराजे स्वयमेव राजमानायेंद्राय पुरुप्रशस्तं बहुलमुत्कृष्टं यद्वा पुरुभिर्बहुभिः प्रशंसितव्यं स्तोमं स्तोत्रं जीजनत्। अजीजनत्। अजनयत्। किमर्थं। ऊतये रक्षणार्थं। यत् स्तोत्रमृतस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा संबंधि भवति तं स्तोममित्यन्वयः ॥

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये। न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५॥
अभि। वह्नयः। ऊतये। अनूषत। प्रऽशस्तये। न। देव। विऽव्रता। हरी इति।
ऋतस्य। यत् ॥१५॥

वह्नयो वोढार ऋत्विज ऊतये रक्षणार्थं प्रशस्तये प्रशस्त्यर्थं चाभ्यनूषत। इंद्रमभ्यस्तुवन् ॥ नु स्तुतौ। कुटादिः ॥ हे देव दानादिगुणयुक्तेंद्र। नेति संप्रत्यर्थे। संप्रति विव्रता विविधकर्माणौ हरी त्वदीयावश्वावृतस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा संबंधि यत् स्तोत्रं हविर्वा विद्यते तदभिलक्ष्य त्वां वहत इति शेषः ॥ ॥३॥

यत्सोममिंद्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये। यद्वा मरुत्सु मंदसे समिंदुभिः ॥१६॥
यत्। सोमं। इंद्र। विष्णवि। यत्। वा। घ। त्रिते। आप्त्ये। यत्। वा। मरुत्ऽसु।
मंदसे। सं। इंदुऽभिः ॥१६॥

हे इंद्र विष्णवि विष्णौ पानार्थमागते सत्यन्यदीये यागे सोमं यद्यदि तेन विष्णुना सार्धं पिबसि। यद्वा

यदि चाप्त्येऽपां पुत्रे त्रित एतत्संज्ञे राजर्षौ यजमाने सोमं पिबसि। घेति पूरणः। यद्वा यदि च मरुत्सु च सोमपानायागतेष्वन्यदीये यज्ञे मंदसे माद्यसि। तथाप्यस्मदीयैरेवेंदुभिः सोमैः सं सम्यङ्माद्य ॥

यद्वा॑ शक्र परा॒वति॑ समु॒द्रे अधि॒ मंद॑से। अ॒स्माक॒मित्सु॒ते र॑णा॒ समिंदु॑भिः ॥१७॥

यत्। वा॒। श॒क्र॒। प॒रा॒ऽवति॑। स॒मु॒द्रे। अधि॑। मंद॑से। अ॒स्माकं॑। इत्। सु॒ते। र॒ण॒। सं। इंदु॑ऽभिः ॥१७॥

हे शक्र शक्तेंद्र परावति परागते दूरदेशे समुद्रे समुंदनशीले सोमे। अधि सप्तम्यर्थानुवादी। यद्वा यदि वा मंदसे माद्यसि तथाप्यस्माकमिदस्माकमेव सोमेऽभिषुते सतींदुभिः सोमरसैः सं रण। सम्यग्रमस्व ॥

यद्वासि॑ सुन्व॒तो वृ॒धो यज॑मानस्य सत्पते। उ॒क्थे वा॒ यस्य॒ रण्य॑सि॒ समिंदु॑भिः ॥१८॥

यत्। वा॒। असि॑। सु॒न्व॒तः। वृ॒धः। यज॑मानस्य। स॒त्ऽप॒ते॒। उ॒क्थे। वा॒। यस्य॑। रण्य॑सि। सं। इंदु॑ऽभिः ॥१८॥

हे सत्पते सतां पालयितरिंद्र सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य यद्वा यदि वा वृधोऽसि वर्धयिता भवसि ॥ वृधेरंतर्णीतण्यर्थादिगुपधलक्षणः कः ॥ यस्य च यजमानस्योक्थे शस्त्रे वा शंसिते सति रण्यसि रमसे। एवमपींदुभिरस्मदीयैरेव सोमैः सम्यग्रमस्व ॥

दे॒वंदे॑वं वोऽवस॒ इंद्र॑मिंद्रं गृणी॒षणि॑। अधा॑ य॒ज्ञाय॑ तु॒र्वणे॒ व्या॑नशुः ॥१९॥

दे॒वंऽदे॑वं। वः॒। अव॑से। इंद्रं॑ऽइंद्रं। गृ॒णी॒षणि॑। अध॑। य॒ज्ञाय॑। तु॒र्वणे॑। वि। आ॒न॒शुः॒ ॥१९॥

हे ऋत्विग्यजमानाः वो युष्माकमवसे रक्षणाय देवं देवमिंद्रमिंद्रं दानादिगुणयुक्तं। इंद्रो बहुषु देशेषु युगपत्प्रवृत्तेषु यागेषु तत्र तत्र हविःस्वीकरणाय बहूनि शरीराण्याददानः स्वयमेकोऽप्यनेकः संस्तत्र तत्र संनिधत्ते। तथा च निगमांतरं। इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। ऋ॰ ६. ४७. १८.। इति। तदपेक्षयेयं वीप्सा। बहु विभज्य वर्तमानं सर्वं तमिंद्रं गृणीषणि। अहं स्तौमि ॥ गृणातेर्लिङि छांदसमेतद्रूपं ॥ यद्वा। कारकमेवैतत्। गृणीषणि स्तवनेच्छायां सत्यां। अधानंतरं सर्वमिंद्रं मदीयाः स्तुतयो व्यानशुः। व्याप्नुवंति। किमर्थं। तुर्वणे तूर्णं संभजनाय यज्ञाय यागार्थं। यद्वा ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥ यज्ञं यष्टव्यं तुर्वणे शत्रूणां हिंसितारं तूर्णसंभजनं वा ॥

य॒ज्ञेभि॑र्य॒ज्ञवा॑हसं॒ सोमे॑भिः सोम॒पात॑मं। होत्रा॑भि॒रिंद्रं॑ वावृधु॒र्व्या॑नशुः ॥२०॥

य॒ज्ञेभिः॑। य॒ज्ञऽवा॑हसं। सोमे॑भिः। सो॒म॒ऽपात॑मं। होत्रा॑भिः। इंद्रं॑। व॒वृ॒धुः॒। वि। आ॒न॒शुः॒ ॥२०॥

यज्ञेभिर्यज्ञैर्यजमानसाधनैर्हविर्भिर्यज्ञवाहसं यज्ञे वोढव्यं प्रापणीयं यज्ञैर्यागैर्यष्टॄणां यजमानानां फलस्य प्रापयितारं वा। अथवा यज्ञवाहसं यज्ञेन प्राप्यं। न केवलमेकेन यज्ञेनापि तु सर्वैरित्याह यज्ञेभिरिति। एवं सोमेभिः सोमपातमं सर्वेषां सोमानां पातृतममिंद्रं होत्राभिः स्तुतिभिर्वावृधुः। स्तोतारो वर्धयंति। ताश्च क्रियमाणाः स्तुतयो व्यानशुः। तमिंद्रं व्याप्नुवंति च ॥ अश्नोतेर्व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ ॥४॥

म॒हीर॑स्य॒ प्रणी॑तयः पू॒र्वीरु॒त प्रश॑स्तयः। विश्वा॒ वसू॑नि दा॒शुषे॒ व्या॑नशुः ॥२१॥

म॒हीः। अ॒स्य॒। प्रऽनी॑तयः। पू॒र्वीः। उ॒त। प्रऽशं॑स्तयः। विश्वा॑। वसू॑नि। दा॒शुषे॑। वि। आ॒न॒शुः॒ ॥२१॥

अस्येंद्रस्य प्रणीतयः प्रणयनानि धनानां प्रकृष्टप्रापणानि महीर्महत्यो महांति भवंति । उतापि चास्य प्रशस्तयः प्रशंसनीयाः कीर्तयः पूर्वीर्बह्व्यो विस्तृततमा भवंति । ता उभयविधा दाशुषे चरुपुरोडाशादीनि दत्तवते यजमानाय दातुं विश्वा विश्वानि सर्वाणि वसूनि धनानि व्यानशुः । व्याप्नुवंति ॥

इंद्रं॑ वृ॒त्राय॒ हंत॑वे दे॒वासो॑ दधिरे पु॒रः । इंद्रं॒ वाणी॑रनूषता॒ समोज॑से ॥२२॥

इंद्रं॑ । वृ॒त्राय॑ । हंत॑वे । दे॒वासः॑ । द॒धि॒रे॒ । पु॒रः । इंद्रं॑ । वाणीः॑ । अ॒नू॒ष॒त॒ । सं । ओज॑से ॥२२॥

देवासो देवा वृत्राय हंतवे वृत्रमावरकमसुरं हंतुं ॥ हंतेस्तुमर्थे तवेन्प्रत्ययः ॥ इममिंद्रं पुरो दधिरे । पुरस्तात्स्वामित्वेनाधारयन् । वाणीर्वाण्यः स्तुतिरूपा वाचश्चेममेवेंद्रमनूषत । स्तुवंति । किमर्थं । सं समीचीनायौजसे बलार्थं । यथा वृत्रवधानुगुणमुत्कृष्टं बलमस्य जायते तथा स्तुवंतीत्यर्थः ॥

म॒हांतं॑ महि॒ना व॒यं स्तोमे॑भिर्हवन॒श्रुतं॑ । अ॒र्कैर॒भि प्र णो॑नुमः॒ समोज॑से ॥२३॥

म॒हांतं॑ । म॒हि॒ना । व॒यं । स्तोमे॑भिः । ह॒व॒न॒ऽश्रुतं॑ । अ॒र्कैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ । सं । ओज॑से ॥२३॥

महिना महिम्ना महांतं सर्वेभ्योऽधिकं हवनश्रुतं हवनस्याह्वानस्य श्रोतारमिंद्रं वयं स्तोमेभिः स्तोमैस्त्रिवृत्पंचदशादिभिरर्कैरर्चनसाधनैः शस्त्रैश्चाभि प्र णोनुमः । आभिमुख्येन प्रकर्षेण पुनःपुनः स्तुमः ॥

न यं विवि॒क्तो रोद॑सी॒ नांतरि॑क्षाणि व॒ज्रिणं॑ । अमा॒दिद॑स्य तित्विषे॒ समोज॑सः ॥२४॥

न । यं । वि॒वि॒क्तः । रोद॑सी॒ इति॑ । न । अं॒तरि॑क्षाणि । व॒ज्रिणं॑ । अमा॑त् । इत् । अ॒स्य॒ । ति॒त्वि॒षे॒ । सं । ओज॑सः ॥२४॥

यं वज्रिणं वज्रवंतमिंद्रं रोदसी द्यावापृथिव्यौ न विविक्तः न पृथक्कुरुतः स्वसमीपात्पृथक्कर्तुं न शक्नुतः । द्यावापृथिव्यौ व्याप्य य इंद्रो वर्तत इत्यर्थः ॥ विचिर् पृथग्भावे ॥ अंतरिक्षाण्यंतरा क्षांतानि द्यावापृथिव्योर्वर्तमानानि गंधर्वादीनां स्थानानि च यं न पृथक्कुर्वंति । अस्येंद्रस्यामादित् । अमति गच्छति शत्रूननेनेत्यमो बलं । बलादेव तित्विषे । सर्वं जगद्दीप्यते । किमर्थं । ओजसो बलस्य संगमाय ॥ यद्वा । ओजःशब्दाद्विहितस्य विभक्तेः छंदसीति लुक् ॥ ओजस्विनो बलवतोऽस्येंद्रस्येति योज्यं । समित्युपसर्गः स तित्विष इत्यनेन संबध्यते ॥

षोडशशस्त्रे यदिंद्र पृतनाज्य इति तृचः । सूत्र्यते हि । यदिंद्र पृतनाज्येऽयं ते अस्तु हर्यत इत्यौष्णिहबार्हती तृचौ । आ॰ ६. २. । इति ॥

यदिं॑द्र पृत॒नाज्ये॑ दे॒वास्त्वा॑ दधि॒रे पु॒रः । आदित्ते॑ हर्य॒ता हरी॑ ववक्षतुः ॥२५॥

यत् । इं॒द्र॒ । पृ॒त॒नाज्ये॑ । दे॒वाः । त्वा॒ । द॒धि॒रे । पु॒रः । आत् । इत् । ते॒ । ह॒र्य॑ता । हरी॒ इति॑ । व॒व॒क्ष॒तुः॒ ॥२५॥

हे इंद्र पृतनाज्ये । संग्रामनामैतत् ॥ पृतनाः सेना अजंति गच्छंत्यस्मिन्निति वा पृतना जीयतेऽत्रेति वा पृतनाज्यं संग्रामः ॥ तत्र त्वा त्वां यद्यदा देवाः पुरो दधिरे वृत्रहननाय पुरतोऽधारयन् आदिदनंतरमेव हर्यता हर्यतौ कांतौ ॥ हर्य गतिकांत्योः । भृमृदृशीत्यादिनौणादिकोऽतच्प्रत्ययः ॥ ईदृशौ हरी अश्वौ ते त्वां ववक्षतुः । अवहतां ॥ ॥५॥

य॒दा वृ॒त्रं न॒दी॒वृतं॒ शव॑सा वज्रि॒न्नव॑धीः । आदित्ते॑ हर्य॒ता हरी॑ ववक्षतुः ॥२६॥

य॒दा । वृ॒त्रं । न॒दी॒ऽवृतं॑ । शव॑सा । व॒ज्रि॒न् । अव॑धीः । आत् । इत् । ते॒ । ह॒र्य॑ता । हरी॒ इति॑ । व॒व॒क्ष॒तुः ॥२६॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र नदीवृतं । नदनान्नद्य आपः । श्रूयते हि । अहावनदता हते तस्मादा नद्यो नाम स्थ । तै॰ सं॰ ५. ६. १. २ । इति । ता आवृण्वंतं वृत्रमवर्षणशीलं मेघमसुरं वा यदा यस्मिन्काले शवसा बलेनावधीः अहिंसीः । शिष्टं समानं ॥

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे । आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२७॥

यदा । ते । विष्णुः । ओजसा । त्रीणि । पदा । विऽचक्रमे । आत् । इत् । ते । हर्यता । हरी इति । ववक्षतुः ॥२७॥

हे इंद्र ते तवानुजो विष्णुर्व्यापनशीलो देव ओजसा बलेन यदा यस्मिन्काले त्रीणि पदानि पदत्रयरूपेण त्रीँल्लोकान् विचक्रमे विक्रांतवान् परिच्छिन्नवान् । गतमन्यत् ॥

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८॥

यदा । ते । हर्यता । हरी इति । ववृधाते इति । दिवेऽदिवे । आत् । इत् । ते । विश्वा । भुवनानि । येमिरे ॥२८॥

हे इंद्र त्वदीयौ हर्यता हर्यतौ कांतौ हरी हरणशीलावश्वौ दिवे दिवे प्रतिदिवसं यदा यस्मिन्काले वावृधाते प्रवृद्धौ बभूवतुः आदिदनंतरमेव त्वया विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि येमिरे । नियम्यंते स्म ॥

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिंद्र नियेमिरे । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९॥

यदा । ते । मारुतीः । विशः । तुभ्यं । इंद्र । निऽयेमिरे । आत् । इत् । ते । विश्वा । भुवनानि । येमिरे ॥२९॥

हे इंद्र तुभ्यं त्वदर्थं मारुतीर्मारुत्यो मरुद्रूपास्ते त्वदीया विशः प्रजा यदा यस्मिन्काले नियेमिरे नियच्छंति भूतजातानि । अन्यद्गतं ॥

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥

यदा । सूर्यं । अमुं । दिवि । शुक्रं । ज्योतिः । अधारयः । आत् । इत् । ते । विश्वा । भुवनानि । येमिरे ॥३०॥

हे इंद्र अमुं विप्रकृष्टं शुक्रं निर्मलं ज्योतिर्द्योतमानं सूर्यं सर्वस्य प्रेरकं शोभनवीर्यं वादित्यं दिवि द्युलोके जगतः प्रकाशनाय यदा यस्मिन्कालेऽधारयः धारितवानसि । समानमन्यत् ॥

इमां त इंद्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः । जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१॥

इमां । ते । इंद्र । सुऽस्तुतिं । विप्रः । इयर्ति । धीतिऽभिः । जामिं । पदाऽइव । पिप्रतीं । प्र । अध्वरे ॥३१॥

हे इंद्र विप्रो मेधावी स्तोताध्वरे यज्ञ इमां पुरोवर्तिनीं पिप्रतीं पूजयंतीं प्रीणयंतीं वा सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं धीतिभिः कर्मभिः परिचरणैः सार्धं ते त्वां प्रेरयति । प्रगमयति । जामिं पदेव यथा बंधुभूतं पुरुषमुत्कृष्टानि पदानि स्थानानि प्रापयति तद्वत् ॥

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन्। नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२॥

यत्। अस्य। धामनि। प्रिये। संऽईचीनासः। अस्वरन्। नाभा। यज्ञस्य। दोहना। प्र। अध्वरे ॥३२॥

अध्वरे यज्ञेऽस्येंद्रस्य धामनि स्थाने तेजसि वा प्रिये प्रीणयितव्ये सति समीचीनासः संगताः स्तोतारो यद्यदा प्रास्वरन् प्रकर्षेणास्तुवन् ॥ स्वृ शब्दोपतापयोः ॥ अयाळिंद्रस्य प्रिया धामानीति हि निगमः। कस्मिन्देशे। नाभा नाभौ पृथिव्या नाभिस्थानीये मध्ये यज्ञस्य यजनसाधनस्य सोमस्य दोहना दोहने दोहनाधिकरणेऽभिषवस्थाने। वेद्यामित्यर्थः। तदानीं धनं प्रदेहीत्युत्तरत्र संबंधः ॥

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिंद्र दद्धि नः। होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३॥

सुऽवीर्यं। सुऽअश्व्यं। सुऽगव्यं। इंद्र। दद्धि। नः। होताऽइव। पूर्वऽचित्तये। प्र। अध्वरे ॥३३॥

सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं स्वश्व्यं शोभनेनाश्वसंघेन च युक्तं सुगव्यं शोभनगोसंघयुक्तं च धनं हे इंद्र नोऽस्मभ्यं दद्धि। ददस्व ॥ दद दाने। अनुदात्तेत्। व्यत्ययेन परस्मैपदं। छांदसः शपो लुक् ॥ अहं चाध्वरे यागे होतेव यथा मानुषो होतर्त्विक् स्तौति एवमेव पूर्वचित्तये पूर्वप्रज्ञानायान्येभ्यः स्तोतृभ्यः पूर्वमेवास्मत्स्तोत्रपरिज्ञानाय प्राशंसिषमिति शेषः ॥ ॥६॥ ॥२॥

तृतीयेऽनुवाकेऽष्ट सूक्तानि। तत्रेंद्रः सुतेष्विति त्रयस्त्रिंशदृचं प्रथमं सूक्तं काण्वस्य नारदस्यार्षमौष्णिहमैंद्रं। तथा चानुक्रांतं। इंद्रः सुतेषु नारद इति ॥ महाव्रते निष्केवल्य औष्णिहतृचाशीतौ पूर्वसूक्तेन सहोक्तो विनियोगः ॥ तृतीये पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र इंद्रः सुतेष्विति तृचः स्तोत्रियः। सूत्र्यते हि। इंद्रः सुतेषु सोमेषु य इंद्र सोमपातमः। आ० ६. ४.। इति ॥

इंद्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यं। विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥१॥

इंद्रः। सुतेषु। सोमेषु। क्रतुं। पुनीते। उक्थ्यं। विदे। वृधस्य। दक्षसः। महान्। हि। सः ॥१॥

सोमेषु सुतेष्वभिषुतेषु सत्स्विंद्रस्तान्पीत्वा क्रतुं कर्मणां कर्तारमुक्थ्यं स्तोतारं च पुनीते। शोधयति। यद्वा। सोमेष्वभिषुतेषूक्थ्याख्यं क्रतुं यागं तैः सोमैः पुनीते। यजमानैः पूतं कारयति। किमर्थं। वृधस्य वर्धकस्य दक्षसो बलस्य विदे लाभाय। स तादृश इंद्रो महान् हि महान् खलु। अत एवं कर्तुं शक्नोतीति भावः ॥

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः। सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

सः। प्रथमे। विऽओमनि। देवानां। सदने। वृधः। सुऽपारः। सुश्रवःऽतमः। सं। अप्सुऽजित् ॥२॥

स इंद्रः प्रथमे प्रथिते विस्तीर्णे मुख्ये वा व्योमनि विशेषेण रक्षके देवानां सदने। सीदंत्यस्मिन्निति सदनं स्थानं स्वर्गाख्यं। तत्र स्थितः सन् वृधो यजमानानां वर्धयिता च भवति। तथा सुपारः सुष्ठु पारयिता प्रारब्धस्य सम्यक्परिसमापयिता सुश्रवस्तमः। अतिशयेन शोभनं श्रवोऽन्नं यशो वा यस्य स तथोक्तः। सं सम्यगप्सुजिदप्सूदकेषु प्राप्येषु सत्सु तद्विघातिनो वृत्रादेर्जेता। यद्वा। आप इत्यंतरिक्षनाम। अंतरिक्षे वर्तमानानामसुराणां जेता। तमह्व इत्युत्तरत्र संबंधः ॥

तमंह्वे वाजसातय इंद्रं भराय शुष्मिणं। भवा नः सुम्ने अंतमः सखा वृधे ॥३॥
तं। अह्वे। वाजऽसातये। इंद्रं। भराय। शुष्मिणं। भव। नः। सुम्ने। अंतमः।
सखा। वृधे ॥३॥

तं पूर्वोक्तगुणं शुष्मिणं बलवंतमिंद्रं वाजसातये बलानामन्नानां वा सातिर्लाभो यस्मिन् तादृशाय भराय संग्रामाय। यद्वा। भ्रियंते तस्मिन् हवींषीति भरो यज्ञः। प्रायेण संग्रामनामानि यज्ञनामत्वेन च दृश्यंते। भराय यज्ञार्थं। अह्वे। आह्वये॥ लिपिसिचिह्वश्चात्मनेपदेष्वन्यतरस्यामिति ह्वयतेश्छांदसे लङि च्लेरङादेशः॥ हे इंद्र त्वं सुम्ने सुखे धने वा लिप्सिते सति नोऽस्माकमंतमोऽंतिकतमः संनिकृष्टतमो भव॥ तमे तादेश्चेत्यंतिकशब्दस्य तादिलोपः॥ तथा वृधे वर्धनार्थं च सखा समानख्यानो मित्रभूतो भव॥

इयं त इंद्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः। मंदानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४॥
इयं। ते। इंद्र। गिर्वणः। रातिः। क्षरति। सुन्वतः। मंदानः। अस्य। बर्हिषः।
वि। राजसि ॥४॥

हे गिर्वणो गीर्भिः स्तुतिभिर्वननीय संभजनीयेंद्र ते तुभ्यं त्वदर्थमियं पुरोवर्तिनी सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य संबंधिनी रातिर्ऋत्विग्भिर्दीयमाना सोमाहुतिः क्षरति। आहवनीयं प्रति गच्छति। त्वं च तया मंदानो मंदमानो मोदमानस्तृप्यन्नस्य बर्हिषो यज्ञस्य वि राजसि। विशेषेणेशिषे। राजतिरैश्वर्यकर्मा॥

नूनं तदिंद्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वंत ईमहे। रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदं ॥५॥
नूनं। तत्। इंद्र। दद्धि। नः। यत्। त्वा। सुन्वंतः। ईमहे। रयिं। नः। चित्रं। आ।
भर। स्वःऽविदं ॥५॥

हे इंद्र नूनमवश्यं तद्धनं नोऽस्मभ्यं दद्धि। ददस्व॥ दद दाने। व्यत्ययेन परस्मैपदं। छांदसः शपो लुक्॥ यद्धनं त्वा त्वां सुन्वंतः सोममभिषुण्वंतो वयमीमहे। अपि च चित्रं चायनीयं स्वर्विदं सर्वस्य लंभकं यद्वा स्वर्गस्य वेदितारमास्तिकं रयिं पुत्रं नोऽस्मभ्यमा भर। आहर॥ ॥७॥

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद्गिरः। वया इवानु रोहते जुषंत यत् ॥६॥
स्तोता। यत्। ते। विऽचर्षणिः। अतिऽप्रशर्धयत्। गिरः। वयाःऽइव। अनु।
रोहते। जुषंत। यत् ॥६॥

हे इंद्र विचर्षणिर्विशेषेण द्रष्टा स्तोता ते तुभ्यं त्वदर्थं गिरः स्तुतीर्यद्यदातिप्रशर्धयत् अतिशयेन प्रशर्धयित्रीरकरोत्। शत्रूणां प्रसहनसमर्थाः॥ शृधु प्रसहने॥ यद्यदा च ता गिरो जुषंत त्वामसेवंत अप्रीणयन्वा तदा वया इव शाखा इव यथैकस्मिन्वृक्षे बह्वाः शाखा उपरि प्ररोहंति तथानु रोहते। स्तुत्या सर्वे गुणास्त्वयि प्ररोहंति॥

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवं। मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥७॥
प्रत्नऽवत्। जनय। गिरः। शृणुधि। जरितुः। हवं। मदेऽमदे। ववक्षिथ। सुऽकृत्वने ॥७॥

हे इंद्र प्रत्नवत् पुरा यथा स्तोतृभ्योऽपेक्षितफलप्रदानेन स्तुतीर्जनयसि एवमिदानीमपि गिरः स्तुतीर्जनय।

उत्पादय। जरितुः स्तोतुर्हवमाह्वानं च श्रुणुधि। शृणु। जानीहि। तादृशस्त्वं मदे मदे सोमेन तर्पणे तर्पणे सति सुक्षत्वने शोभनकर्त्रे यजमानाय ववक्षिथ। अपेक्षितं फलं वहसि। ददासीत्यर्थः ॥

क्रीळंत्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः। अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥८॥
क्रीळंति। अस्य। सूनृताः। आपः। न। प्रऽवता। यतीः। अया। धिया। यः।
उच्यते। पतिः। दिवः ॥८॥

अस्येंद्रस्य सूनृताः प्रियसत्यात्मिका वाचः क्रीळंति। विहरंति। तत्र दृष्टांतः। प्रवता प्रवणेन मार्गेण यतीर्गच्छंत्य आपो नाप इव। यथा निम्नोन्नतेन पथा गच्छंत्य आप उत्पतननिपतनेन विहरंति तद्वत्। दिवः स्वर्गस्य पतिः पालयिता य इंद्रोऽयानया धिया स्तुत्योच्यते प्रतिपाद्यते अस्येंद्रस्येत्यन्वयः ॥

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी। नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥९॥
उतो इति। पतिः। यः। उच्यते। कृष्टीनां। एकः। इत्। वशी। नमःऽवृधैः। अवस्युऽभिः।
सुते। रण ॥९॥

उतो अपि च वशी वशयितैक इदेक एव कृष्टीनां मनुष्याणां पतिः पालयितेति य इंद्र उच्यते। कैः। नमोवृधैर्नमसा स्तोत्रेण हविषा वा वर्धयितृभिरवस्युभी रक्षणेच्छुभिः स त्वं पूर्वोक्ते सुतेऽभिषुते सोमे रण। रमस्व। यद्वा। हे स्तोतः तमिंद्रं सुते सोमे स्तुहि। रणतिः शब्दार्थः ॥

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा। गंतारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१०॥
स्तुहि। श्रुतं। विपःऽचितं। हरी इति। यस्य। प्रऽसक्षिणा। गंतारा। दाशुषः।
गृहं। नमस्विनः ॥१०॥

हे स्तोतः विपश्चितं विशिष्टज्ञानं श्रुतं विश्रुतं प्रख्यातं तमिंद्रं स्तुहि। प्रशंस। यस्येंद्रस्य हरी अश्वौ प्रसक्षिणा शत्रूणां प्रसहनशीलौ नमस्विनो हविष्मतो दाशुषो दत्तवतो यजमानस्य गृहं गंतारा गमनशीलौ च तमिंद्रं स्तुहीति संबंधः ॥ गमेस्ताच्छीलिकस्तृन् ॥ ॥८॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः। आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११॥
तूतुजानः। महेऽमते। अश्वेभिः। प्रुषितप्सुऽभिः। आ। याहि। यज्ञं। आशुऽभिः।
शं। इत्। हि। ते ॥११॥

हे महेमते। महते फलाय मतिर्बुद्धिर्यस्यासौ महेमतिः ॥ अलुक् छांदसः ॥ स तादृश हे इंद्र तूतुजानस्त्वरमाणः सन् प्रुषितप्सुभिः स्निग्धरूपैराशुभिः शीघ्रगामिभिरश्वेभिरश्वैर्यज्ञमस्मदीयमा याहि। आगच्छ। हि यस्मात्ते तव तस्मिन्यज्ञे शमित् सुखं विद्यत एव अत आगच्छेत्यर्थः ॥

इंद्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय। श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं ॥१२॥
इंद्र। शविष्ठ। सत्ऽपते। रयिं। गृणत्ऽसु। धारय। श्रवः। सूरिऽभ्यः। अमृतं।
वसुऽत्वनं ॥१२॥

हे शविष्ठ बलवत्तम सत्पते सतां पालयितरिंद्र गृणत्स्वस्मासु रयिं धनं धारय। अवस्थापय। अपि च सूरिभ्यः स्तोतृभ्योऽमृतमनश्वरं वसुत्वनं व्याप्तिमच्छ्रवोऽन्नं यशो वा देहीति शेषः ॥

हवे॑ त्वा॒ सूर॒ उदि॑ते॒ हवे॑ म॒ध्यंदि॑ने दि॒वः । जु॒षा॒ण इं॑द्र॒ सप्ति॑भिर्न॒ आ ग॑हि ॥ १३ ॥
हवे॑ । त्वा॒ । सूरे॑ । उत्ऽइ॑ते । हवे॑ । म॒ध्यंदि॑ने । दि॒वः । जु॒षा॒णः । इं॒द्र॒ । सप्ति॑ऽभिः ।
न॒ः । आ । ग॒हि॒ ॥ १३ ॥

हे इंद्र सूरे सूर्य उदित उदयं प्राप्ते सति प्रातःसवने त्वां हवे । आह्वये । तथा दिवो दिवसस्य मध्यंदिने मध्यभागे माध्यंदिनसवने त्वां हवे । आह्वये । हे इंद्र स त्वं जुषाणः प्रीयमाणः सन् सप्तिभिः सर्पणशीलैरश्वैर्नोऽस्माना गहि । आगच्छ ॥

आ तू ग॑हि॒ प्र तु द्र॑व॒ मत्स्वा॑ सु॒तस्य॒ गोम॑तः । तंतुं॑ तनुष्व पू॒र्व्यं यथा॑ वि॒दे ॥ १४ ॥
आ । तु । ग॒हि॒ । प्र । तु । द्र॒व॒ । मत्स्व॑ । सु॒तस्य॑ । गोऽम॑तः । तंतु॑म् । त॒नु॒ष्व॒ । पू॒र्व्यम् ।
यथा॑ । वि॒दे ॥ १४ ॥

हे इंद्र तु क्षिप्रमा गहि । आगच्छ । आगत्य च तु क्षिप्रं प्र द्रव । सोमो यत्र निवसति तं देशं प्रति शीघ्रं गच्छ । गत्वा च गोमतो गोविकारैः पयःप्रभृतिभिः श्रयणद्रव्यैर्युक्तस्य सुतस्याभिषुतस्य सोमस्य पानेन मत्स्व । माद्य । हृष्टो भव । तदनंतरं यथाहं विदे उपलभे तथा पूर्व्यं पूर्वैः कृतं तंतुं विस्तृतं यज्ञं तनुष्व । सम्यङ्निष्पादय । फलोत्पादनसमर्थं कुर्वित्यर्थः ॥

यच्छ॒क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृत्रहन् । यद्वा॑ समु॒द्रे अंध॑सोऽवि॒तेद॑सि ॥ १५ ॥
यत् । श॒क्र॒ । असि॑ । प॒रा॒ऽवति॑ । यत् । अ॒र्वा॒ऽवति॑ । वृ॒त्र॒ऽह॒न् । यत् । वा॒ । स॒मु॒द्रे ।
अंध॑सः । अ॒वि॒ता । इत् । अ॒सि॒ ॥ १५ ॥

हे शक्र शक्तेंद्र परावति दूरदेशे यद्यसि भवसि । हे वृत्रहन् यद्यदि वार्वावति समीपे भवसि वर्तसे । यद्वा यदि वा समुद्रे जलधावंतरिक्षे वा वर्तसे । तस्मात्सर्वस्मात्स्थानादागत्यांधसोऽन्नस्य सोमलक्षणस्य पानेनावितासि । रक्षिता भवसि ॥ ॥ ९ ॥

इंद्रं॑ वर्धंतु नो॒ गिर॒ इंद्रं॑ सु॒तास॒ इंद॑वः । इंद्रे॑ ह॒विष्म॑ती॒र्विशो॑ अराणिषुः ॥ १६ ॥
इंद्र॑म् । व॒र्ध॒न्तु॒ । न॒ः । गिरः॑ । इंद्र॑म् । सु॒तासः॑ । इंद॑वः । इंद्रे॑ । ह॒विष्म॑तीः । विशः॑ ।
अ॒रा॒णि॒षुः॒ ॥ १६ ॥

नोऽस्माकं गिरः स्तुतिरूपा वाच इंद्रं वर्धंतु । वर्धयंतु । सुतासोऽभिषुता इंदवः सोमाश्चास्मदीयास्तमिंद्रं वर्धयंतु । हविष्मतीर्हविष्मत्यो हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिर्युक्ता विशः प्रजास्तस्मिन्निंद्रेऽराणिषुः । अरंसिषुः ॥

तमिद्विप्रा॑ अव॒स्यवः॑ प्र॒वत्व॑तीभिरू॒तिभिः॑ । इंद्रं॑ क्षो॒णीर॑वर्धयन्व॒या इ॑व ॥ १७ ॥
तम् । इत् । विप्राः॑ । अ॒व॒स्यवः॑ । प्र॒वत्व॑तीभिः । ऊ॒तिऽभिः॑ । इंद्र॑म् । क्षो॒णीः । अ॒व॒र्ध॒य॒न् ।
व॒याःऽइ॑व ॥ १७ ॥

विप्रा मेधाविनोऽवस्यवो रक्षणकामाः स्तोतारस्तमित्तमेवेंद्रं प्रवत्वतीभिः प्रकर्षेणाभिगंत्रीभिरूतिभिस्तृप्तिकरीभिराहुतिभिः स्तुतिभिर्वा वर्धयंति । तथा क्षोणीः क्षोण्यः । क्षोणीति पृथिवीनाम । तदुपलक्षिताः सर्वे लोका वया इव वृक्षस्य शाखा इव तदधीनाः संतोऽवर्धयन् । वर्धयंति ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धंतु नो गिरः सदावृधं ॥१८॥
त्रिऽकद्रुकेषु । चेतनं । देवासः । यज्ञं । अत्नत । तं । इत् । वर्धंतु । नः । गिरः ।
सदाऽवृधं ॥१८॥

त्रिकद्रुकेषु । त्रिकद्रुका नाम ज्योतिर्गौरायुरिति त्रीण्याभिप्लविकान्यहानि । तेषु देवासो देवाश्चेतनं चेतयितारमिंद्रं यज्ञं यष्टव्यमत्नत । अतन्वत । अकुर्वत ॥ तनोतेर्लङि छांदसो विकरणस्य लुक् । तनिपत्यो-श्छंदसीत्युपधालोपः ॥ तमित्तमेवेंद्रं नोऽस्माकं गिरः स्तुतयश्च वर्धयंतु । कीदृशं । सदावृधं सर्वदा स्तोतॄणां वर्धयितारं ॥

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे । शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥१९॥
स्तोता । यत् । ते । अनुऽव्रतः । उक्थानि । ऋतुऽथा । दधे । शुचिः । पावकः । उच्यते ।
सः । अद्भुतः ॥१९॥

हे इंद्र यद्यस्य ते तव स्तोतानुव्रतोऽनुकूलकर्मा सन्नृतुथा ऋतुषु काले काल उक्थानि शस्त्रादि दधे विधत्ते करोति ॥ लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः ॥ परोऽर्धर्चः परोक्षकृतः । स इंद्रोऽद्भुत आश्चर्यभूतः शुचिः शुद्धः पावकोऽन्येषामपि शोधक उच्यते । स्तोतृभिः स्तूयते ॥

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु । मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥२०॥
तत् । इत् । रुद्रस्य । चेतति । यह्वं । प्रत्नेषु । धामऽसु । मनः । यत्र । वि । तत् । दधुः ।
विऽचेतसः ॥२०॥

तदित्तदेव रुद्रस्य । रुद्दुःखं । तस्य द्रावयितुरीश्वरस्य यह्वमपत्यं मरुत्संघात्मकं । यद्वा । रुद्रशब्देन लक्षणया मरुद्गण उच्यते । रुद्रस्य रुद्रपुत्रस्य मरुद्गणस्य यह्वं । महन्नामैतत् । महत्तदेव बलं प्रत्नेषु चिरंतनेषु धामसु पृथिव्यादिस्थानेषु चेतति । ज्ञायते । वर्तते । यत्र यस्मिन्बलविषये विचेतसो विशिष्टज्ञानाः स्तोता-रस्तत्प्रसिद्धं मनो मननसाधनं स्तोत्रं वि दधुः कुर्वंति तदित्यन्वयः ॥ ॥१०॥

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यंधसः । येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥२१॥
यदि । मे । सख्यं । आऽवरः । इमस्य । पाहि । अंधसः । येन । विश्वाः । अति ।
द्विषः । अतारिम ॥२१॥

हे इंद्र मम सख्यं सखित्वं यद्यावरः यद्याभिमुख्येन वृणुयाः तर्हीमस्यास्य ॥ हलि लोपाभावश्छांदसः ॥ पुरोवर्तिनोंऽधसोऽन्नस्य सोमलक्षणस्य स्वांशं पाहि । पिब ॥ अंधस इति कर्मणि वा षष्ठी । पिबतेश्छांदसः शपो लुक् ॥ येन त्वत्पीतेन सोमेन हेतुना वयं विश्वाः सर्वा द्विषो द्वेष्ट्रीः शत्रुसेना अत्यतारिम अतितरेम अतिक्रामेम ॥

कदा त इंद्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२॥
कदा । ते । इंद्र । गिर्वणः । स्तोता । भवाति । शंऽतमः । कदा । नः । गव्ये । अश्व्ये ।
वसौ । दधः ॥२२॥

हे गिर्वणो गिरां स्तुतीनां संभक्तरिंद्र ते तव स्तोता शंतमः सुखतमोऽतिशयेन सुखवान् कदा कस्मिन्काले

भवाति। भवेत्। कदा कस्मिंश्च काले गोऽश्वान् गव्ये गोसमूहेऽश्व्येऽश्वसंघे वसौ निवासभूतेऽन्यस्मिन्नपि धने दधः। धारयेः॥

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथं। अजुर्यस्य मदिंतमं यमीमहे॥२३॥

उत। ते। सुऽस्तुता। हरी इति। वृषणा। वहतः। रथं। अजुर्यस्य। मदिन्ऽतमं। यं। ईमहे॥२३॥

उतापि च हे इंद्र सुष्टुता शोभनं स्तुतौ वृषणौ कामानां वर्षितारौ हरी अश्वावजुर्यस्य जरारहितस्य ते तव रथमिदानीं वहतः। अस्मन्निकटं प्रापयतः। मदिंतममतिशयेन मदवंतं यं त्वां धनमीमहे याचामहे तस्य त इत्यन्वयः॥

तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः। नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता॥२४॥

तं। ईमहे। पुरुऽस्तुतं। यह्वं। प्रत्नाभिः। ऊतिऽभिः। नि। बर्हिषि। प्रिये। सदत्। अध। द्विता॥२४॥

यह्वं महांतं पुरुस्तुतं बहुभिः स्तुतं तमिंद्रं प्रत्नाभिः पुराणीभिरूतिभिस्तृप्तिकरीभिः सोमाहुतिभिर्हेतुभिरीमहे। याचामहे। स चेंद्रः प्रिये प्रीतिकरे बर्हिष्यास्तीर्णे दर्भे नि षदत्। निषीदतु। हविःस्वीकरणायोपविशतु। अधानंतरं द्विता द्वैधं वर्तमानानि चरुपुरोडाशादीनि सोमलक्षणानि च हवींषि स्वीकरोत्विति शेषः॥

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः। धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः॥२५॥

वर्धस्व। सु। पुरुऽस्तुत। ऋषिऽस्तुताभिः। ऊतिऽभिः। धुक्षस्व। पिप्युषीं। इषं। अव। च। नः॥२५॥

हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुतेंद्र ऋषिष्टुताभिर्ऋषिभिर्मंत्रदर्शिभिः पुरा स्तुताभिरूतिभी रक्षाभिः सु सुष्ठु वर्धस्व। अस्मान्वर्धय। यद्वा। ऋषिभिरुत्पादिताभिरूतिभिः स्तुतिभिस्त्वं वर्धस्व। वृद्धिं प्राप्नुहि। नोऽस्मभ्यं च पिप्युषीं प्रवृद्धामिषमिष्यमाणमन्नमव धुक्षस्व। अवाङ्मुखमस्मदभिमुखं धुक्षस्व। क्षारय। देहीत्यर्थः॥ ॥११॥

इंद्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः। ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजं॥२६॥

इंद्र। त्वं। अविता। इत्। असि। इत्था। स्तुवतः। अद्रिऽवः। ऋतात्। इयर्मि। ते। धियं। मनःऽयुजं॥२६॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र त्वमित्थेत्थमनेन प्रकारेण स्तुवतः स्तोत्रं कुर्वतो यजमानस्यावितेदसि। रक्षितैव भवसि। यत एवमतः कारणादहमप्यृतात्सत्याद्वितोर्मनोयुजं मनसा मननीयेन स्तोत्रेण प्राप्यां ते त्वदीयां धियमनुग्रहबुद्धिमियर्मि। प्राप्नोमि। यद्वा। ऋतात्सत्यभूतात्त्वत्तः स्तोत्रेण युक्तं त्वत्प्रीतिकरं कर्माहं प्राप्नोमि॥

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये। हरी इंद्र प्रतद्वसू अभि स्वर॥२७॥

इह। त्या। सधऽमाद्या। युजानः। सोमऽपीतये। हरी इति। इंद्र। प्रतद्वसू इति प्रतत्ऽवसू। अभि। स्वर॥२७॥

हे इंद्र इहास्मिन्यागे सोमपीतये सोमपानायाभि स्वर। अभिगच्छ। किं कुर्वन्। त्या त्यौ तौ प्रसिद्धौ

सधमाद्या त्वया सह हविर्भिर्मादयितव्यौ तर्पयितव्यौ प्रतद्वसू प्राप्तवसू विस्तीर्णधनौ ईदृशौ हरी त्वदीयावश्वौ युञ्जानो रथेन संयोजयन् ॥

अभि स्वरंतु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियं। उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥२८॥

अभि। स्वरंतु। ये। तव। रुद्रासः। सक्षत। श्रियं। उतो इति। मरुत्वतीः। विशः।
अभि। प्रयः ॥२८॥

अभि स्वरंतु अभिगच्छंतु ते हे इंद्र तवानुचरा रुद्रासो रुद्रपुत्रा ये मरुतः संति। अपि च ते श्रियं श्रयणीयमिमं यज्ञं सक्षत। सचंतु। प्राप्नुवंतु। उतो अपि च मरुत्वतीर्मरुद्भिर्युक्ता विशोऽन्यापि दैवी प्रजा प्रयः। अन्ननामैतत्। अस्मदीयं हविर्लक्षणमन्नमभिगच्छंतु ॥

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषंत यद्दिवि। नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥२९॥

इमाः। अस्य। प्रऽतूर्तयः। पदं। जुषंत। यत्। दिवि। नाभा। यज्ञस्य। सं। दधुः।
यथा। विदे ॥२९॥

अस्येंद्रस्य संबंधिन्य इमाः पूर्वोक्ता मरुदादिरूपाः प्रजाः प्रतूर्तयः प्रकर्षेण शत्रूणां हिंसित्र्यः पदं स्थानं जुषंत। असेवंत। दिवि द्युलोके यत्स्थानमन्यैर्दुष्प्रापमस्ति तत्पदमित्यर्थः। अपि च ता यज्ञस्य ज्योतिष्टोमादे- र्नाभा नाभौ नाभिस्थानीये हविर्धान उत्तरवेद्यां वा सं दधुः। संनिदधते। यथा येन प्रकारेण विदे विंदे अपेक्षितं धनं लभे तथेत्यर्थः। यद्वा। विदे ज्ञानाय यथास्माकं दृष्टावरं ज्ञानं भवति तथेत्यर्थः ॥

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे। मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३०॥

अयं। दीर्घाय। चक्षसे। प्राचि। प्रऽयति। अध्वरे। मिमीते। यज्ञं। आनुषक्।
विऽचक्ष्य ॥३०॥

प्राचि प्राचीने प्रागायते यज्ञगृहेऽध्वरे हिंसारहिते यज्ञे प्रयति गच्छति प्रवर्तमाने सत्ययमिंद्रः प्रवर्तमानं तं यज्ञमानुषगनुषक्तमानुपूर्व्येण विचक्ष्य विशेषेण दृष्ट्वा मिमीते। निष्पादयति। किमर्थं। दीर्घायायताय चक्षसे दर्शनाय। यद्वा। द्रष्टव्याय फलाय ॥ ॥१२॥

वृषायमिंद्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी। वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥३१॥

वृषा। अयं। इंद्र। ते। रथः। उतो इति। ते। वृषणा। हरी इति। वृषा। त्वं। शतक्रतो
इति शतऽक्रतो। वृषा। हवः ॥३१॥

हे इंद्र ते त्वदीयोऽयं रथो वृषा कामानां वर्षिता। उतो अपि च ते तव हरी अश्वौ वृषणा वृषणौ वर्षितारौ। हे शतक्रतो बहुकर्मन् बहुप्रज्ञेंद्र त्वं च वृषा वर्षिता कामानां। तथा हवस्त्वद्विषयमाह्वानं च वृषा वर्षिता। त्वद्विषयमाह्वानमपि कामान्वर्षति। किमु वक्तव्यं त्वदीया रथादयो वर्षंतीति भावः ॥

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः। वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥३२॥

वृषा। ग्रावा। वृषा। मदः। वृषा। सोमः। अयं। सुतः। वृषा। यज्ञः। यं। इन्वसि।
वृषा। हवः ॥३२॥

ग्रावाभिषवसाधनपाषाणो वृषा वर्षिता कामानां। हे इंद्र त्वदीयः सोमपानजन्यो मदश्च वृषा वर्षिता। सुतस्त्वदर्थमभिषुतोऽयं सोमश्च वृषा वर्षिता। यं यज्ञमिन्वसि त्वं प्राप्नोषि स च यज्ञो वृषाभीष्टफलस्य वर्षिता। त्वदीयो हवश्च वृषा ॥

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः। वावंथ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥३३॥

वृषा। त्वा। वृषणं। हुवे। वज्रिन्। चित्राभिः। ऊतिऽभिः। ववंथ। हि। प्रतिऽस्तुतिं। वृषा। हवः ॥३३॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र वृषणं वृषाणं वर्षितारं त्वां वृषा वर्षिता हविषामासेक्ताहं चित्राभिश्चायनीयाभिर्नानाविधाभिर्वोतिभिस्तृप्तिकरीभिः स्तुतिभिर्हुवे। आह्वये। हि यस्मात्त्वं प्रतिष्टुतिं त्वामभिलक्ष्य कृतं स्तोत्रं ववंथ वनसि संभजसि अतस्त्वदीयो हव आह्वानं वृषा वर्षिता। यद्वा। हवो ह्वातव्यो वृषा वर्षिता त्वं यस्मात्स्तुतिं वनसि तस्मात्त्वां हुव इत्यर्थः ॥ ॥१३॥

यदिंद्राहमिति पंचदशर्चं द्वितीयं सूक्तं गोषूक्त्यश्वसूक्तिनोः काण्वगोत्रयोरार्षं गायत्रमैंद्रं। तथा चानुक्रांतं। यदिंद्र पंचोना गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनाविति ॥ महाव्रते निष्केवल्य एतत्सूक्तं। तथैव पंचमारण्यके सूत्र्यते। यदिंद्राहं यथा त्वं प्र सम्राजं चर्षणीनामिति सूक्ते। ऐ॰ आ॰ ५. २. ५.। इति ॥ तृतीये पर्याये ब्रह्मशस्त्रेऽपीदं सूक्तं। सूत्रितं च। यदिंद्राहं प्र ते महे। आ॰ ६. ४.। इति ॥

यदिंद्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१॥

यत्। इंद्र। अहं। यथा। त्वं। ईशीय। वस्वः। एकः। इत्। स्तोता। मे। गोऽसखा। स्यात् ॥१॥

हे इंद्र यथा त्वमेक इदेक एव केवलं वस्वो वसुनो धनस्येशिषे एवमपि यद्यदीशीय ऐश्वर्ययुक्तः स्यां तदानीं मे मम स्तोता गोसखा स्यात्। गोभिः सहितो भवेत्। ईश्वरस्य तव स्तोता कुतो हेतोर्गोसहितो न भवेत् अपि तु भवेदित्यभिप्रायः ॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्यां ॥२॥

शिक्षेयं। अस्मै। दित्सेयं। शचीऽपते। मनीषिणे। यत्। अहं। गोऽपतिः। स्यां ॥२॥

हे शचीपते शक्तिमन्निंद्र अस्मै मनीषिणे मनस ईशित्रे स्तोत्रे दित्सेयं। दातुमिच्छेयं। तदनंतरं शिक्षेयं। प्रार्थितं धनं दद्यां च। यद्यद्यहं गोपतिर्गवामधिपतिः स्यां भवेयं त्वत्प्रसादादिति शेषः ॥

धेनुष्ट इंद्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

धेनुः। ते। इंद्र। सूनृता। यजमानाय। सुन्वते। गां। अश्वं। पिप्युषी। दुहे ॥३॥

हे इंद्र ते तव सूनृता स्तुतिरूपा वाग्धेनुर्दोग्ध्री गौर्भूत्वा सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय गामश्वं च। उपलक्षणमेतत्। गवाश्वादिकं सर्वमभिलषितं दुहे। दुग्धे। किं कुर्वती। पिप्युषी तमेव प्रवर्धयित्री ॥

न ते वर्तास्ति राधस इंद्र देवो न मर्त्यः। यद्दित्ससि स्तुतो मघं ॥४॥

न। ते। वर्ता। अस्ति। राधसः। इंद्र। देवः। न। मर्त्यः। यत्। दित्ससि। स्तुतः। मघं ॥४॥

हे इंद्र ते तव राधसो धनस्य स्तोतृभ्यो दातव्यस्य वर्ता निवारको देवो नास्ति। न विद्यते। न मर्त्यो मनुष्योऽपि निवारको नास्ति। स्तुतः स्तोतृभिः प्रख्यापितगुणः सन् यन्महां मघं मंहनीयं धनं दित्ससि त्वं दातुमिच्छसि ॥

यज्ञ इंद्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ॥५॥

यज्ञः। इंद्रं। अवर्धयत्। यत्। भूमिं। वि। अवर्तयत्। चक्राणः। ओपशं। दिवि ॥५॥

यज्ञो यजमानैरनुष्ठीयमानो याग इंद्रं देवमवर्धयत्। श्रूयते हि। इंद्र इदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्यायोऽकृतेति। स इंद्रो यद्यस्माद्भूमिं पृथिवीं व्यवर्तयत् वृष्ट्यादिप्रदानेन विशेषेण वर्तमानामकरोत्। किं कुर्वन्। दिव्यंतरिक्षे मेघमोपशमुपेत्य शयानं चक्राणः कुर्वन्। यद्वा। आत्मनि समवेतो वीर्यविशेष ओपशः। तमंतरिक्षे कुर्वन् ॥ ॥१४॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिंद्रा वृणीमहे ॥६॥

ववृधानस्य। ते। वयं। विश्वा। धनानि। जिग्युषः। ऊतिं। इंद्र। आ। वृणीमहे ॥६॥

हे इंद्र वावृधानस्य वर्धमानस्य विश्वा विश्वानि सर्वाणि धनानि शत्रुसंबंधीनि जिग्युषो जितवतस्ते तवोतिं रक्षां वयमा वृणीमहे। आभिमुख्येन संभजामहे ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवने ब्रह्मशस्त्रे व्यंतरिक्षमतिरदित्ययं पर्यासस्तृचः। सूत्र्यते हि। व्यंतरिक्षमतिरच्छ्यावाश्वस्य सुन्वत इति तृचाः पर्यासाः। आ० ७. २.। इति ॥ अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःस्वपि तस्यैव तस्मिन्नेव शस्त्रेऽयं पर्यासस्तृचः। सूचितं च। पर्यासान्कद्वतोऽहरहःशस्यानीति होत्रका द्वितीयादिष्वेव। आ० ७. १.। इति ॥

व्यं१तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इंद्रो यदभिनद्वलं ॥७॥

वि। अंतरिक्षं। अतिरत्। मदे। सोमस्य। रोचना। इंद्रः। यत्। अभिनत्। वलं ॥७॥

सोमस्य पानेन मदे हर्षे सति रोचना रोचमानमंतरिक्षमयमिंद्रो व्यतिरत्। व्यवर्धयत्। यद्यस्मात्कारणाद्वलमावृत्य स्थितमसुरं मेघं वाभिनत् व्यदारयत् ॥

उद्गा आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाचं नुनुदे वलं ॥८॥

उत्। गाः। आजत्। अंगिरःऽभ्यः। आविः। कृण्वन्। गुहा। सतीः। अर्वांचं।
नुनुदे। वलं ॥८॥

अंगिरोभ्य ऋषिभ्यो वलानुचरैः पणिभिरपहृता गा उदाजत्। उदगमयत्। किं कुर्वन्। गुहा गुहायां बिले सतीर्विद्यमाना यथा न दृश्यंते तथा पणिभिर्गूढास्ता गा आविष्कृण्वन् प्रकाशयन्। अपि च पणीनामधिपतिं वलमसुरमप्यर्वाचमधोमुखं नुनुदे। प्रेरितवान् ॥

इंद्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे ॥९॥

इंद्रेण। रोचना। दिवः। दृळ्हानि। दृंहितानि। च। स्थिराणि। न। पराऽनुदे ॥९॥

दिवो द्युलोकस्य संबंधीनि रोचना रोचमानानि देवगृहात्मकानि नक्षत्राणींद्रेण दृळ्हानि दृढावयवानि बलवंति कृतानि दृंहितानि च दृढीकृतानि। यथैकत्र नैश्चल्येनावतिष्ठंते तथा कृतानीत्यर्थः। यद्वा ॥ दृह दृहि वृहि वृद्धौ ॥ दृंहितानि वर्धितानि चेत्यर्थः। अपि च स्थिराणि स्थास्नूनि दृढानि तानि न पराणुदे। परानोदनीयानि न भवंति। न केनापि स्थानात्प्रच्यावयितुं शक्यानीत्यर्थः ॥ णुद प्रेरणे। अस्मात्कृतार्थ इति केन्प्रत्ययः ॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इंद्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥१०॥
अपां । ऊर्मिः । मदन्ऽइव । स्तोमः । इंद्र । अजिरऽयते । वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥१०॥

अपां समुद्राणामूर्मिस्तरंगो मदन्निव यथा माद्यन्नुपर्युपरि जायते । हे इंद्र स्तोमस्त्वदीयं स्तोत्रं तथाजिरायते । अजिरः क्षिप्रगामी । स इवाचरति । अपि च ते त्वदीया मदाः स्तोत्रजन्याः सोमपानजन्याश्च व्यराजिषुः । विशेषेण राजंते । दीप्यंते ॥ ॥१५॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इंद्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥११॥
त्वं । हि । स्तोमऽवर्धनः । इंद्र । असि । उक्थऽवर्धनः । स्तोतॄणां । उत । भद्रऽकृत् ॥११॥

हे इंद्र त्वं हि त्वं खलु स्तोमवर्धनः स्तोमेन त्रिवृत्पंचदशादिना वर्धनीयोऽसि । तथोक्थवर्धन उक्थैः शस्त्रैर्वर्धनीयश्च त्वमेवासि । उतापि च स्तोतॄणामस्माकं भद्रकृद्भद्रस्य कल्याणस्य फलस्य कर्तापि त्वमेवासि ॥

इंद्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसं ॥१२॥
इंद्रं । इत् । केशिना । हरी इति । सोमऽपेयाय । वक्षतः । उप । यज्ञं । सुऽराधसं ॥१२॥

केशिना केशिनौ । मूर्धजानि लोमानि केशाः । तद्वंतौ हरी अश्वौ सुराधसं शोभनधनमिंद्रमिदिंद्रमेव यज्ञमुपास्मद्यज्ञं प्रति सोमपेयाय सोमपानार्थं वक्षतः । वहतां । यद्वा । यज्ञं यष्टव्यमिंद्रमुपवहतां ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इंद्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥१३॥
अपां । फेनेन । नमुचेः । शिरः । इंद्र । उत् । अवर्तयः । विश्वाः । यत् । अजयः । स्पृधः ॥१३॥

पुरा किलेंद्रोऽसुराञ्जित्वा नमुचिमसुरं ग्रहीतुं न शशाक । स च युध्यमानस्तेनासुरेण जगृहे । स च गृहीतमिंद्रमेवमवोचत् । त्वां विसृजामि रात्रावह्नि च शुष्केणार्द्रेण चायुधेन यदि मां मा हिंसीरिति । स इंद्रस्तेन विसृष्टः सन्नहोरात्रयोः संधौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन फेनेन तस्य शिरश्चिच्छेद । अयमर्थोऽस्यां प्रतिपाद्यते ॥ हे इंद्र अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेरसुरस्य शिर उदवर्तयः । शरीरादुद्गतमवर्तयः । अच्छैत्सीरित्यर्थः । कदेति चेत् । यद्यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्धमाना आसुरीः सेना अजयः जितवानसि । इंद्रो वृत्रं हत्वासुरान् ---॥

मायाभिरुत्सिसृप्सत इंद्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥१४॥
मायाभिः । उत्ऽसिसृप्सतः । इंद्र । द्यां । आऽरुरुक्षतः । अव । दस्यून् । अधूनुथाः ॥१४॥

---हे इंद्र त्वमवाधूनुथाः । अवाङ्मुखं प्रेरितवानसि ॥

असुन्वामिंद्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥१५॥
असुन्वां । इंद्र । संऽसदं । विषूचीं । वि । अनाशयः । सोमऽपाः । उत्ऽतरः । भवन् ॥१५॥

हे इंद्र त्वं सोमपाः सोमस्य पाता भूत्वोत्तर उत्कृष्टतरो भवन्नसुन्वां सोमाभिषवहीनां संसदं जनसंहतिं विषूचीं परस्परविरोधेन विषु नाना गंत्रीं व्यनाशयः । विशेषेण नाशयसि ॥ ॥१६॥

तमभीति चतुर्दशर्चं तृतीयं सूक्तमौष्णिहमैंद्रं । पूर्वोक्तावेवर्षी । तथा चानुक्रम्यते । तमभि सप्तोनौष्णिहमिति ॥ महाव्रते निष्केवल्य औष्णिहतृचाशीतावुक्तमावर्जमेतत्सूक्तं । सूत्र्यते हि । तमभि प्र गायतेत्युत्तमामु-

ध्यरति । ऐ० आ० ५. २. ५. । इति ॥ आभिप्लविकेषूकथ्येषु तृतीयसवने ब्रह्मशस्त्र आद्यस्तृचो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्रितं च । तम्वभि प्र गायत वयमु त्वामपूर्व्य । आ० ७. ८. । इति ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतं । इंद्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥१॥

तं । ऊं इति । अभि । प्र । गायत । पुरुऽहूतं । पुरुऽस्तुतं । इंद्रं । गीःऽभिः । तविषं । आ । विवासत ॥१॥

पुरुहूतं बहुभिराहूतं पुरुष्टुतं बहुभिः स्तुतं तमु तमेवेंद्रं हे स्तोतारः अभि प्र गायत । अभिमुखं प्रकर्षेण स्तुध्वं । एतदेव स्पष्टयति । तविषं महांतमिंद्रं गीर्भिर्वाग्भिरा विवासत । परिचरत ॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥२॥

यस्य । द्विऽबर्हसः । बृहत् । सहः । दाधार । रोदसी इति । गिरीन् । अज्रान् । अपः । स्वः । वृषऽत्वना ॥२॥

द्विबर्हसो द्वयोः स्थानयोः परिवृढस्य यस्येंद्रस्य बृहन्महत्सहो बलं रोदसी द्यावापृथिव्यौ दाधार धारयति ॥ छांदसो लिट् । तुजादित्वादभ्यासदीर्घः ॥ तथाज्रान् क्षिप्रगमनान् गिरीन् पर्वतान् मेघान्वा स्वः सरणशीला अप उदकानि च वृषत्वना वृषत्वेन वीर्येण यस्येंद्रस्य बलं धारयति तत्रावस्थापयति । तम्वभीति पूर्वया संबंधः स त्वमित्युत्तरया वा ॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इंद्र जैत्रा श्रवस्या च यंतवे ॥३॥

सः । राजसि । पुरुऽस्तुत । एकः । वृत्राणि । जिघ्नसे । इंद्र । जैत्रा । श्रवस्या । च । यंतवे ॥३॥

हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुतेंद्र स पूर्वोक्तगुणस्त्वं राजसि । दीप्यसे । ईशिषे वा । अपि च त्वमेकः सहायरहितः केवल एव सन् वृत्राण्यावरकाणि शत्रुजातानि जिघ्नसे । हतवानसि । किमर्थं । जैत्राणि जेतव्यानि धनानि श्रवस्या श्रवस्यानि श्रवणीयान्यन्नानि यद्वा श्रवणार्हाणि यशांसि च यंतवे यंतुं नियंतुं स्वाधीनं कर्तुं ॥

आभिप्लविकेषूकथ्येषु तृतीयसवने ब्रह्मशस्त्रे तं ते मदमिति तृचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूत्र्यते हि । तं ते मदं गृणीमसि तम्वभि प्र गायत । आ० ७. ८. । इति ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिं । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियं ॥४॥

तं । ते । मदं । गृणीमसि । वृषणं । पृत्ऽसु । ससहिं । ऊं इति । लोकऽकृत्नुं । अद्रिऽवः । हरिऽश्रियं ॥४॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र ते त्वदीयं तं मदं सोमपानजनितं हर्षं गृणीमसि । गृणीमः । प्रशंसामः ॥ गॄ शब्दे क्र्यादिः । प्वादीनां ह्रस्वः । इदंतो मसीति मस इकारागमः ॥ कीदृशं । वृषणं वर्षितारं कामानां पृत्सु संग्रामेषु सासहिं शत्रूणामभिभवितारं लोककृत्नुं लोकस्य स्थानस्य कर्तारं हरिश्रियं हरिभ्यामश्वाभ्यां श्रयणीयं सेव्यं । उशब्दः समुच्चये पदपूरणे वा ॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मंदानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥५॥

येन । ज्योतींषि । आयवे । मनवे । च । विवेदिथ । मंदानः । अस्य । बर्हिषः । वि । राजसि ॥५॥

हे इंद्र येनात्मीयेन मदेनायव और्वशेयाय मनवे विवस्वतः पुत्राय च ज्योतींषि सूर्यादीनि वृत्रादिभिरावृतानि तद्वधेन विवेदिथ अलंभयः। प्रज्ञापितवान् प्रकाशितवानसीत्यर्थः। तेन मदेन मंदानो मोदमानस्त्वमस्य बर्हिषो वृद्धस्य यज्ञस्य वि राजसि। विशेषेणेशिषे। यद्वा। अस्येति तृतीयार्थे षष्ठी। अनेन बर्हिषा वृद्धेन हृष्यन् वि राजसि। विशेषेण दीप्यसे॥ ॥१७॥

तद्द्या चित्त उक्थिनोऽनुं ष्टुवंति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥६॥

तत्। अद्य। चित्। ते। उक्थिनः। अनु। स्तुवंति। पूर्वऽथा। वृषऽपत्नीः। अपः।
जय। दिवेऽदिवे ॥६॥

हे इंद्र ते त्वदीयं तत्प्रसिद्धं बलमद्य चिदद्यापि पूर्वथा पूर्वस्मिन्काल इवोक्थिनः शस्त्रिणः स्तोतारोऽनु ष्टुवंति। क्रमेण प्रशंसंति। स त्वं वृषपत्नीः वृषा वर्षिता पर्जन्यः पतिर्यासां तादृशीरपो दिवे दिवे प्रतिदिवसं जय। स्वायत्तं कुरु॥

तव त्यदिंद्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुं। वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यं ॥७॥

तव। त्यत्। इंद्रियं। बृहत्। तव। शुष्मं। उत। क्रतुं। वज्रं। शिशाति। धिषणा।
वरेण्यं ॥७॥

हे इंद्र त्यत्तत्प्रसिद्धमिंद्रियमिंद्रस्य लिंगं बृहत्प्रभूतं वीर्यं धिषणा स्तुतिः शिशाति। निःश्यति। तीक्ष्णीकरोति। तथा तव त्वदीयं शुष्मं शोषकं बलमुतापि च क्रतुं प्रज्ञानं बलं कर्म वा वरेण्यं वरणीयं वज्रमायुधं च स्तुतिस्तीक्ष्णीकरोति॥

तव द्यौरिंद्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः। त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥८॥

तव। द्यौः। इंद्र। पौंस्यं। पृथिवी। वर्धति। श्रवः। त्वां। आपः। पर्वतासः। च।
हिन्विरे ॥८॥

हे इंद्र तव त्वदीयं पौंस्यं बलं द्यौर्वर्धति। वर्धयति। त्वदीयं श्रवो यशः पृथिवी वर्धयति॥ वृधेर्ण्यंताल्लटि शपि छंदस्युभयथेत्यार्धधातुकत्वात्सेरनिटीति णिलोपः॥ तं त्वामाप उदकान्यंतरिक्षाणि पर्वतासः पर्वताः पर्ववंतो मेघाश्च गिरयश्च वा हिन्विरे। प्रीणयंति। स्वामित्वेन प्राप्नुवंति वा॥

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतं ॥९॥

त्वां। विष्णुः। बृहन्। क्षयः। मित्रः। गृणाति। वरुणः। त्वां। शर्धः। मदति।
अनु। मारुतं ॥९॥

हे इंद्र बृहन्महान् क्षयो निवासहेतुर्विष्णुर्मित्रो वरुणश्च त्वां गृणाति। स्तौति। तथा मारुतं मरुत्संबंधि शर्धो बलं त्वामनु मदति। तव मदमनुलक्ष्य पश्चान्माद्यति। त्वामनुमादयति वा॥

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इंद्र जज्ञिषे। सचा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥१०॥

त्वं। वृषा। जनानां। मंहिष्ठः। इंद्र। जज्ञिषे। सचा। विश्वा। सुऽअपत्यानि। दधिषे ॥१०॥

हे इंद्र वृषा वर्षिता त्वं जनानां देवजनानां मध्ये मंहिष्ठो दातृतमो जज्ञिषे। प्रादुर्भवसि। अत एव विश्वा सर्वाणि स्वपत्यानि शोभनैः पुत्रादिभिः सहितानि सचा सह दधिषे। दातुं धारयसि। ददासि वा॥ ॥१८॥

सचा त्वं पुरुष्टुत एको वृत्राणि तोशसे। नान्य इंद्रात्करणं भूय इन्वति ॥११॥
सचा। त्वं। पुरुऽस्तुत। एकः। वृत्राणि। तोशसे। न। अन्यः। इंद्रात्। करणं। भूयः। इन्वति ॥११॥

हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुतेंद्र त्वमेकोऽसहाय एव सन् सचा। महन्नामैतत्। महांति वृत्राणि शत्रुजातानि। यद्वा। सचेति सहार्थे। सहैव युगपदेवैकयत्नेनैव। तोशसे। हिनस्सि। तोशतिर्वधकर्मा। अकर्तुं शक्नोषीति भावः। अपि चास्मादिंद्रादन्यः कश्चिद्भूयो बहुतरं करणं कर्म वृत्रवधादिकं नेन्वति। न प्राप्नोति। इंद्र एव कर्तुं शक्नोतीति भावः ॥

यदिंद्र मन्मशस्त्वा नाना हवंत ऊतये। अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥१२॥
यत्। इंद्र। मन्मऽशः। त्वा। नाना। हवंते। ऊतये। अस्माकेभिः। नृऽभिः। अत्र। स्वः। जय ॥१२॥

हे इंद्र यद्यस्मिन् संग्रामे त्वां मन्मशो मन्मना स्तोत्रेण नाना बहुप्रकारं हवंते आह्वयंति। किमर्थं। ऊतये रक्षार्थं। अत्रास्मिन् संग्रामेऽस्माकेभिरस्माकैरस्मदीयैरेव नृभिर्नेतृभिः स्तोतृभिराहूतः सन् स्वः शत्रुबलं जय। अभिभव ॥

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन्। इंद्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिं ॥१३॥
अरं। क्षयाय। नः। महे। विश्वा। रूपाणि। आऽविशन्। इंद्रं। जैत्राय। हर्षय। शचीऽपतिं ॥१३॥

हे स्तोतः महे महते नोऽस्माकं क्षयाय। गृहनामैतत्। गृहाय ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ गृहार्थमरमलं पर्याप्तं विश्वा विश्वानि व्याप्तानि रूपाणींद्रगतानि गुणजातान्याविशन् स्तुत्या व्याप्नुवन् शचीपतिं। शचीति कर्मनाम। कर्मणां पालकं। यद्वा। शच्या इंद्राण्या भर्तारं। तमेवेंद्रं जैत्राय जेतव्यधनार्थं हर्षय। तोषय स्तुत्या परिचरणेन वेति शेषः ॥ ॥१९॥

प्र सम्राजमिति द्वादशर्चं चतुर्थं सूक्तमिरिंबिठिनाम्नः काण्वस्यार्षं गायत्रमैंद्रं। अनुक्रम्यते हि। प्र सम्राजं द्वादशेरिंबिठिरिति ॥ अतिरात्रे द्वितीये पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र एतत्सूक्तं। सूचितं च। प्र सम्राजमुप क्रमस्वा भर। आ॰ ६. ४.। इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवल्य एतदादिके द्वे सूक्ते उपरितनस्यांत्यं तृचं वर्जयित्वा। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं। प्र सम्राजं चर्षणीनामिति सूक्ते उत्तरस्योत्तमे उद्धरति। ऐ॰ आ॰ ५. २. ५.। इति ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिंद्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः। नरं नृषाहं मंहिष्ठं ॥१॥
प्र। संऽराजं। चर्षणीनां। इंद्रं। स्तोत। नव्यं। गीःऽभिः। नरं। नृऽसहं। मंहिष्ठं ॥१॥

चर्षणीनां मनुष्याणां मध्ये सम्राजं सम्यग्राजमानं यद्वा मनुष्याणामधीश्वरमिंद्रं हे स्तोतारः प्र स्तोत। प्रकर्षेण स्तुत। कीदृशं। गीर्भिः स्तुतिभिर्नव्यं स्तुत्यं नरं नेतारं नृषाहं नृणां शत्रुमनुष्याणामभिभवितारं मंहिष्ठं दातृतमं ॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्यंति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे ॥२॥
यस्मिन्। उक्थानि। रण्यंति। विश्वानि। च। श्रवस्या। अपां। अवः। न। समुद्रे ॥२॥

यस्मिन्निंद्र उक्थानि शस्त्राणि रण्यंति रमंते विश्वानि सर्वाणि श्रवस्या श्रवस्यानि श्रवणीयानि हविर्ल-

चरणान्यन्नानि च रमंते। तत्र दृष्टांतः। समुद्र उदधावपामुदकानामवो न। अवति गच्छतीत्यवस्तरंगजालं। तद्यथा समुद्रेऽंतर्भवति तथा रमंतीत्यर्थः ॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुं। महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३॥

तं। सुऽस्तुत्या। आ। विवासे। ज्येष्ठऽराजं। भरे। कृत्नुं। महः। वाजिनं। सनिऽभ्यः ॥३॥

तमिंद्रं सुष्टुत्या शोभनया स्तुत्या विवासे। परिचरामि। कीदृशं। ज्येष्ठराजं ज्येष्ठेषु प्रशस्यतमेषु देवेषु मध्ये राजमानं ॥ राजतेः सत्सूद्विषेति क्विप् ॥ भरे संग्रामे महो महतो वृत्रवधादेः कृत्नुं कर्तारं वाजिनमन्नवंतं बलवंतं वा। किमर्थं। सनिभ्यो धनेभ्यः। धनलाभायेत्यर्थः ॥

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः। हर्षुमंतः शूरसातौ ॥४॥

यस्य। अनूनाः। गभीराः। मदाः। उरवः। तरुत्राः। हर्षुऽमंतः। शूरऽसातौ ॥४॥

यस्येंद्रस्य मदाः सोमपानजनिता अनूना अन्यूना गभीरा गांभीर्योपेता उरवो विस्तीर्णास्तरुत्राः शत्रूणां तारकाः शूरसातौ शूरसंभजनीये संग्रामे हर्षुमंतो हर्षयुक्ताः संग्रामोत्सुका भवंति। तमिंद्रमिति पूर्वयोत्तरया वा संबंधः ॥

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवंते। येषामिंद्रस्ते जयंति ॥५॥

तं। इत्। धनेषु। हितेषु। अधिऽवाकाय। हवंते। येषां। इंद्रः। ते। जयंति ॥५॥

धनेषु हितेषु शत्रुषु निहितेषु प्राप्तेषु सत्सु तमित्तं पूर्वोक्तगुणमेवेंद्रमधिवाकायाधिवचनाय पक्षपातवचनाय हवंते। स्तोतार आह्वयंति। तत्र च येषां पक्ष इंद्रो वर्तते त एव जयंति। जयेन तानि धनानि लभंते नान्ये ॥

तमिच्च्यौत्नैरार्यंति तं कृतेभिश्चर्षणयः। एष इंद्रो वरिवस्कृत् ॥६॥

तं। इत्। च्यौत्नैः। आर्यंति। तं। कृतेभिः। चर्षणयः। एषः। इंद्रः। वरिवःऽकृत् ॥६॥

तमित्तमेवेंद्रं च्यौत्नैर्बलकरैः स्तोत्रैरार्यंति। आर्यमभिज्ञमीश्वरं कुर्वंति। चर्षणयो मनुष्याः कृतैः कर्मभिश्चार्यंति। एष एवंगुणक इंद्रो वरिवस्कृद्धनस्य कर्ता भवति स्तोतॄणां ॥ ॥२०॥

इंद्रो ब्रह्मेंद्र ऋषिरिंद्रः पुरू पुरुहूतः। महान्महीभिः शचीभिः ॥७॥

इंद्रः। ब्रह्मा। इंद्रः। ऋषिः। इंद्रः। पुरु। पुरुऽहूतः। महान्। महीभिः। शचीभिः ॥७॥

अयमिंद्रो ब्रह्मा परिवृढः सर्वेभ्योऽधिकः। स एवेंद्र ऋषिर्द्रष्टा सर्वस्यार्थजातस्य। स इंद्रः पुरु बहुलं पुरुहूतो बहुभिराहूतश्च महीभिर्महतीभिः शचीभिः क्रियाभिर्वृत्रवधादिरूपाभिर्महान्प्रभूतो भवति ॥

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः। एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥८॥

सः। स्तोम्यः। सः। हव्यः। सत्यः। सत्वा। तुविऽकूर्मिः। एकः। चित्। सन्। अभिऽभूतिः ॥८॥

स पूर्वोक्त इंद्रः स्तोम्यः स्तोमार्हः स्तुत्यर्हः। स एव हव्यो ह्वातव्यश्च सत्यः सत्सु साधुरवितथस्वभावः सत्वा शत्रूणामवसादयिता तुविकूर्मिर्बहुकर्मा। यत एवातः कारणादेकश्चित्सन्नसहायोऽपि भवन्नभिभूतिः शत्रूणामभिभविता तिरस्कर्ता भवति ॥

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः। इंद्रं वर्धंति क्षितयः ॥९॥

तं। अर्केभिः। तं। सामऽभिः। तं। गायत्रैः। चर्षणयः। इंद्रं। वर्धंति। क्षितयः ॥९॥

चर्षणयो द्रष्टारो मंत्राणां चितयो मनुष्यास्तमिंद्रमर्कैभिरर्चनसाधनैर्यजूरूपैर्मंत्रैर्वर्धंति । वर्धयंति । तथोद्गातारः सामभिर्गानविशिष्टैर्मंत्रैस्तं वर्धयंति । तथा गायत्रैर्गायत्र्यादिच्छंदोयुक्तैः शस्त्ररूपैरप्रगीतैर्मंत्रैस्त-मेवेंद्रं होतारो वर्धयंति ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१०॥

प्रऽनेतारं । वस्यः । अच्छ । कर्तारं । ज्योतिः । समत्ऽसु । ससह्वांसं । युधा । अमित्रान् ॥१०॥

वस्यो वसीयः प्रशस्तं वसु धनमच्छाभिमुख्येन प्रणेतारं प्रापयितारं समत्सु संग्रामेषु शत्रुनिरसनेन ज्योतिः प्रकाशं जयलक्षणं कर्तारं करणशीलं ॥ करोतेस्ताच्छीलिकस्तृन् ॥ कुत इत्यत आह । युधायुधेनामित्राञ्छत्रून् ससह्वांसमभिभूतवंतं । एवंगुणकमिंद्रं वर्धयंतीति शेषः ॥

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इंद्रो विश्वा अति द्विषः ॥११॥

सः । नः । पप्रिः । पारयाति । स्वस्ति । नावा । पुरुऽहूतः । इंद्रः । विश्वाः । अति । द्विषः ॥११॥

पप्रिः प्राता पूरयिता पुरुहूतो बहुभिराहूतः स इंद्रो विश्वाः सर्वा द्विषो द्वेष्ट्रीः प्रजा नोऽस्मान्नावा तरणसाधनेन स्वस्ति क्षेमेणाति पारयाति । अतिपारयतु ॥

स त्वं न इंद्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥१२॥

सः । त्वं । नः । इंद्र । वाजेभिः । दशस्य । च । गातुऽय । च । अच्छ । च । नः । सुम्नं । नेषि ॥१२॥

हे इंद्र स तादृशस्त्वं नोऽस्मभ्यं वाजेभिर्बलैर्दशस्य च । धनं प्रयच्छ च । दशस्यतिर्दानकर्मा । गातुय च । गातुं मार्गमस्मभ्यमिच्छ च ॥ गातुशब्दाच्छंदसि परेच्छायामिति क्यच् । न च्छंदस्यपुत्रस्येति दीर्घनिषेधः ॥ तथा नोऽस्मान् सुम्नं सुखं चाच्छ नेषि । अभिप्रापय ॥ ॥२१॥

आ याहीति पंचदशर्चं पंचमं सूक्तमिरिंबिठेरार्षमैंद्रं । चतुर्दशी बृहती पंचदशी सतोबृहत्यादितस्त्रयोदश गायत्र्यः । अनुक्रम्यते हि । आ याहि पंचोना प्रगाथांतमिति ॥ अंत्यं प्रगाथं वर्जयित्वा शिष्टस्य महाव्रत उक्तो विनियोगः ॥ ज्योतिष्टोमे प्रातःसवने ब्रह्मशस्त्र आद्याः षडृचः स्तोत्रियानुरूपार्थाः । तथानंतराः सप्तर्चश्च शंसनीयाः । सूत्र्यते हि । आ याहि सुषुमा हि त इति षट् स्तोत्रियानुरूपावनंतराः सप्त । आ॰ ५. १०. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवन आद्यस्तृचोऽस्मिन्नेव शस्त्रे षळहस्तोत्रियसंज्ञक आवापार्थः । सूचितं च । आ याहि सुषुमा हि त इंद्रमिन्नाथिनो बृहत् । आ॰ ७. २. । इति ॥

आ याहि सुषुमा हि त इंद्र सोमं पिबा इमं । एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

आ । याहि । सुसुम । हि । ते । इंद्र । सोमं । पिब । इमं । आ । इदं । बर्हिः । सदः । मम ॥१॥

हे इंद्र त्वमा याहि । आगच्छ । ते त्वदर्थं सुषुम हि । अभिषुतवंतः खलु सोमं वयं । तमिममभिषुतं सोमं पिब । तदर्थं मम मदीयमिदं बर्हिर्वेद्यामास्तीर्णमा सदः । आसीद । अभिनिषीद ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिंद्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

आ । त्वा । ब्रह्मऽयुजा । हरी इति । वहतां । इंद्र । केशिना । उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥२॥

हे इंद्र ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मंत्रेण युज्यमानौ केशिना केशवंतौ हरी हरणशीलावश्वौ त्वा त्वामा वहतां । अभिप्रापयतां । त्वं चास्मद्यज्ञमुपेत्य नोऽस्माकं ब्रह्माणि स्तोत्राणि शृणु । स्तोत्राणि गृहाण । सम्यक् चित्ते धारय ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिंद्र सोमिनः । सुतावंतो हवामहे ॥३॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयं । युजा । सोमऽपां । इंद्र । सोमिनः । सुतऽवंतः । हवामहे ॥३॥

हे इंद्र ब्रह्माणो ब्राह्मणा वयं त्वा त्वां युजा योग्येन स्तोत्रेण हवामहे । आह्वयामहे । कथंभूतं । सोमपां सोमस्य पातारं । कीदृशा वयं । सोमिनः सोमयुक्ताः सुतावंतोऽभिषुतैश्च सोमैरुपेताः ॥

आ नो याहि सुतावंतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नंधसः ॥४॥

आ । नः । याहि । सुतऽवंतः । अस्माकं । सुऽस्तुतीः । उप । पिब । सु । शिप्रिन् । अंधसः ॥४॥

हे इंद्र सुतावतोऽभिषुतसोमयुक्तानस्माना याहि । अभिगच्छ । ततोऽस्माकं संबंधीनि सुष्टुतीः शोभनानि स्तोत्राण्युपगच्छ । जानीहि । हे सुशिप्रिञ्छोभनशिरस्त्राण शोभनहनुक वेंद्र अंधसोऽन्नस्य सोमलक्षणस्य स्वांशलक्षणं भागं पिब । यद्वा ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ अंधोऽस्मदीयं सोमं पिब ॥

आ ते सिंचामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥५॥

आ । ते । सिंचामि । कुक्ष्योः । अनु । गात्रा । वि । धावतु । गृभाय । जिह्वया । मधु ॥५॥

हे इंद्र ते तव कुक्ष्योरुदरयोरा सिंचामि । सोमानवनयामि । कुक्षी सोमेन पूरयामीत्यर्थः । इंद्रस्य हि द्वे उदरे । तथा च श्रूयते । ओभा कुक्षी पृणता वार्चघ्ने च माघोनं चेति । यद्वा । एकस्यैवोदरस्य सव्यदक्षिण-भेदेनोर्ध्वाधोभागभेदेन वा द्वित्वं । स चासिक्तः सोमो गात्राणि शरीरावयवानि हस्तपादादीनि सर्वाण्यनु-क्रमेण वि धावतु । व्याप्नोतु । त्वं च मधु मधुरं मया सिच्यमानं सोमं जिह्वया रसनेंद्रियेण गृभाय । गृहाण ॥ छंदसि शायजपीति ग्रह उत्तरस्य श्नः शायजादेशः । हृग्रहोर्भ इति भत्वं ॥ ॥२२॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥६॥

स्वादुः । ते । अस्तु । संऽसुदे । मधुऽमान् । तन्वे । तव । सोमः । शं । अस्तु । ते । हृदे ॥६॥

संसुदे सम्यक् सुष्ठु दात्रे हे इंद्र ते तुभ्यं मधुमान्माधुर्यवानयं सोमः स्वादुरस्तु । रुचिकरो भवतु । तव तन्वे शरीराय च स्वादुरस्तु । तव हृदे हृदयाय च स सोमः शमस्तु । सुखजनकं भवतु ॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इंद्र सर्पतु ॥७॥

अयं । ऊं इति । त्वा । विऽचर्षणे । जनीःऽइव । अभि । संऽवृतः । प्र । सोमः । इंद्र । सर्पतु ॥७॥

हे विचर्षणे विद्रष्टरिंद्र जनीरिव जनयो जाया इव ता यथा शुक्लैर्वस्त्रैः संवृता भवंति एवं संवृतः पयःप्रभृतिभिः श्रयणद्रव्यैरावृतोऽयं सोमोऽभि प्र सर्पतु । अभिगच्छतु । उ इति पूरकः ॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरंधसो मदे । इंद्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥

तुविऽग्रीवः । वपाऽउदरः । सुऽबाहुः । अंधसः । मदे । इंद्रः । वृत्राणि । जिघ्नते ॥८॥

तुविग्रीवो विस्तीर्णकंधरो वपोदरः पीवरोदरः । यथा बहवः सोमाः पीता अंतर्भवंति तथा विस्तृतजठर इत्यर्थः । सुबाहुः शोभनबाहुः एवंगुणक इंद्रोऽंधसोऽन्नस्य सोमात्मकस्य मदे हर्षे सति वृत्राणि शत्रुजातानि जिघ्नते । हिनस्ति ॥

इंद्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥९॥

इंद्र । प्र । इहि । पुरः । त्वं । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा । वृत्राणि । वृत्रऽहन् । जहि ॥९॥

हे इंद्र ओजसा बलेन विश्वस्य सर्वस्य जगत ईशानः स्वामी भवंस्त्वं पुरोऽस्माकं पुरस्तात्प्रेहि। प्रगच्छ। प्राप्नुहि। हे वृत्रहन् वृत्राणामावरकाणां शत्रूणां हंतः वृत्राण्यस्मदीयानि शत्रुजातानि जहि। विनाशय॥

अभ्युदयेष्टाविंद्रस्य प्रदातुर्दीर्घस्ते अस्त्वंकुश इत्यनुवाक्या। सूत्र्यते हि। दीर्घस्ते अस्त्वंकुशो भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी। आ॰ ३.१३.। इति॥

दीर्घस्ते अस्त्वंकुशो येना वसु प्रयच्छसि। यजमानाय सुन्वते ॥१०॥

दीर्घः। ते। अस्तु। अंकुशः। येन। वसु। प्रऽयच्छसि। यजमानाय। सुन्वते ॥१०॥

हे इंद्र ते तवांकुशः स्रणिराकर्षणसाधनमायुधं दीर्घोऽस्तु। आयतो भवतु। यथा दूरस्थमपि वस्तु व्याप्नोषि तथायामवान् भवत्वित्यर्थः। येनांकुशेन सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय वसु धनमाहृत्य प्रयच्छसि ददासि॥ ॥२३॥

द्वितीये पर्याये होतुः शस्त्रेऽयं त इंद्रेति स्तोत्रियस्तृचः। सूत्रितं च। अयं त इंद्र सोमोऽयं ते मानुषे जने। आ॰ ६.४.। इति॥

अयं त इंद्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब ॥११॥

अयं। ते। इंद्र। सोमः। निऽपूतः। अधि। बर्हिषि। आ। इहि। ईं। अस्य। द्रव। पिब ॥११॥

हे इंद्र ते तुभ्यं त्वदर्थमयं सोमो बर्हिष्यधि वेद्यामास्तीर्णे दर्भे निपूतो नितरां दशापवित्रेण शोधितः। अभिषवादिसंस्कारैः संस्कृत इत्यर्थः। ईमिदानीमस्येमं सोमं प्रत्येहि। आगच्छ। आगत्य यत्र रसात्मकः सोमो हूयते तं देशं प्रति द्रव। शीघ्रं गच्छ। तदनंतरं तं सोमं पिब॥

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखंडल प्र हूयसे ॥१२॥

शाचिगो इति शाचिऽगो। शाचिऽपूजन। अयं। रणाय। ते। सुतः। आखंडल।
प्र। हूयसे ॥१२॥

हे शाचिगो। शाचयः शक्ता गावो यस्यासौ शाचिगुः। यद्वा॥ शच व्यक्तायां वाचि। अस्मादौणादिक इङ्प्रत्ययः॥ शाचयो व्यक्ता प्रख्याता गावो रश्मयो गाव एव वा यस्य तादृश। हे शाचिपूजन। पूज्यतेऽनेनेति पूजनं स्तोत्रादि। प्रख्यातपूजन ते तव रणाय रमणाय सुखजननायायं सोमः सुतोऽभिषुतः। यतः कारणात् हे आखंडल शत्रूणामाखंडयितः प्र हूयसे प्रकृष्टाभिः स्तुतिभिराहूयसे। अत आगत्येमं सोमं पिबेति भावः॥

यस्ते शृंगवृषो नपात्प्रणपात्कुंडपाय्यः। न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥१३॥

यः। ते। शृंगऽवृषः। नपात्। प्रनपादिति प्रऽनपात्। कुंडऽपाय्यः। नि। अस्मिन्।
दध्रे। आ। मनः ॥१३॥

हे शृंगवृषो नपात्। शृंगवृषा नाम कश्चिदृषिः तस्य चेंद्रः स्वयमेव पुत्रतया जज्ञ इत्याख्यायिका। नपादित्यपत्यनाम। शृंगवृषः पुत्र। यद्वा। शृणंति हिंसंतीति शृंगाणि रश्मयः। तैर्वर्षतीति शृंगवृडादित्यः। तस्य न पातयितः स्वकीये स्थानेऽवस्थापयितः॥ सुबामंत्रित इति षष्ठ्यंतस्य परांगवद्भावेनामंत्रितानुप्रवेशात् समुदायस्याष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वं॥ ईदृश हे इंद्र ते तव संबंधी प्रणपात् प्रकर्षेण न पातयिता रक्षिता कुंडपाय्यः। कुंडैः पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुंडपाय्यः क्रतुविशेषः॥ क्रतौ कुंडपाय्यसंचाय्यौ। पा॰ ३.१.१३०.। इति पिबतेरधिकरणे ण्यत्प्रत्ययो युगागमश्च निपात्यते॥ एतत्संज्ञो यः क्रतुरस्त्यस्मिन् कुंडपाय्ये क्रतौ मनः स्वांतमा

णि दधे । अभितो वर्तमानाः कुंडपायिनामान ऋषयः पुरा निदधिरे । सम्यक् त्वद्देवत्यं क्रतुमनुष्ठितवंत इत्यर्थः ॥ दधातेर्लिटीरयो र इति रेभावः ॥

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानां ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिंद्रो मुनीनां सखा ॥१४॥
वास्तोः । पते । ध्रुवा । स्थूणा । अंसत्रं । सोम्यानां ।
द्रप्सः । भेत्ता । पुरां । शश्वतीनां । इंद्रः । मुनीनां । सखा ॥१४॥

हे वास्तोष्पते गृहपते स्थूणा गृहाधारभूतः स्तंभो ध्रुवा स्थिरा भवतु । सोम्यानां सोमार्हाणां सोमसंपादिनां वास्माकमंसत्रमंसत्राणमंसोपलक्षितस्य कृत्स्नशरीरस्य त्रायकं रक्षकं बलं भवतु । अपि च द्रप्सो द्रवणशीलः सोमः तद्वान् ॥ अर्शआदित्वादच्प्रत्ययः ॥ शश्वतीनां बह्वीनां पुरामसुरपुरीणां भेत्ता विदारयिता एवंभूत इंद्रो मुनीनामृषीणामस्माकं सखा मित्रभूतो भवतु ॥

पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेंद्रं सोमस्य पीतये ॥१५॥
पृदाकुऽसानुः । यजतः । गोऽएषणः । एकः । सन् । अभि । भूयसः ।
भूर्णिं । अश्वं । नयत् । तुजा । पुरः । गृभा । इंद्रं । सोमस्य । पीतये ॥१५॥

पृदाकुसानुः । पृदाकुः सर्पः । स इव सानुः समुच्छ्रितः । तद्वदुन्नतशिरस्क इत्यर्थः । यद्वा । पृदाकुवत्सानुः संभजनीयः । स यथा बहुभिर्मणिमंत्रौषधादिभिः संसेव्यो नाल्पैः एवमिंद्रोऽपि बहुभिः स्तोत्रादिभिर्यत्नैः सेव्य इत्यर्थः । यजतो यष्टव्यो गवेषणो गवामेषयिता प्रापयिता एवंगुणको य इंद्र एकः सन्नसहायः केवल एव सन् भूयसो बहुतराञ्छत्रूनभिभवति भूर्णिं भरणशीलमश्वं व्याप्नुवंतं तमिंद्रं सोमस्य पीतये पानार्थं पुरोऽस्माकं पुरस्तान्नयत् । नयति । प्रापयति । सामर्थ्यात् स्तोतेति लभ्यते । केन साधनेन । तुजा क्षिप्रगामिना गृभा ग्रहणसाधनेन स्तोत्रेण । यद्वा । अश्वमिति लुप्तोपममेतत् । यथा वोढारमश्वं दुर्ग्रहं पाशेनानयंति एवमुक्तेन प्रकारेण महानुभावमिंद्रं स्तुत्या स्तोतानयतीत्यर्थः ॥ ॥२४॥

इदं हेति द्वाविंशत्यृचं षष्ठं सूक्तमिरिंबिठेरार्षमुष्णिक्छंदस्कं । उत त्येत्येषाश्विदेवताका । शमग्निरित्येषाग्निसूर्यवायुदेवताका । शिष्टा आदित्यदेवताकाः । तथा चानुक्रम्यते । इदं ह द्व्यधिकादित्यमौष्णिहमष्टम्यश्विभ्यां परामिसूर्यानिलानामिति ॥ गतो विनियोगः ॥

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥१॥
इदं । ह । नूनं । एषां । सुम्नं । भिक्षेत । मर्त्यः । आदित्यानां । अपूर्व्यं । सवीमनि ॥१॥

इदं हेदानीं खलु नूनमवश्यमादित्यानामदितेः पुत्राणामेषां देवानां मित्रादीनां सवीमनि प्रसवे प्रेरणे सति मर्त्यो मनुष्यः स्तोतापूर्व्यमभिनवं सुम्नं सुखकरं धनं भिक्षेत । याचेत । न कालांतरे ॥

अनर्वाणो ह्येषां पंथा आदित्यानां । अदब्धाः संति पायवः सुगेवृधः ॥२॥
अनर्वाणः । हि । एषां । पंथाः । आदित्यानां । अदब्धाः । संति । पायवः । सुगेऽवृधः ॥२॥

एषामादित्यानां पंथाः पंथानो मार्गाः ॥ सुपां सुलुगिति जसः सुः ॥ अनर्वाणोऽप्रत्यृताः परैरप्रतिगताः अत एवादब्धा अहिंसिताश्च संति । भवंति । हि यस्मादेवं तस्मात्पायवः पालयितारस्ते मार्गाः सुगेवृधः सुगमे सुखे विषये वर्धका भवंतु ॥

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा। शर्म यच्छंतु सप्रथो यदीमहे ॥३॥

तत्। सु। नः। सविता। भगः। वरुणः। मित्रः। अर्यमा। शर्म। यच्छंतु। सऽप्रथः।
यत्। ईमहे ॥३॥

सवित्रादयश्चत्वारो देवाः सप्रथः सर्वतः पृथु विस्तीर्णं तच्छर्म सुखं गृहं वा नोऽस्मभ्यं सु सुष्ठु यच्छंतु। ददतु। यच्छर्मेमहे वयं याचामहे ॥

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि। स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥४॥

देवेभिः। देवि। अदिते। अरिष्टऽभर्मन्। आ। गहि। स्मत्। सूरिऽभिः। पुरुऽप्रिये।
सुशर्मऽभिः ॥४॥

हे देवि दानादिगुणयुक्ते हे अरिष्टभर्मन्नहिंसितभरणे हे पुरुप्रिये बहुभिः प्रीयमाणे हे एवंगुणविशिष्टेऽदिते सूरिभिः प्राज्ञैः सुशर्मभिः सुसुखैर्देवेभिर्देवैरात्मीयैः पुत्रैः सार्धं। स्मदिति निपातः शोभनार्थः। स्मच्छोभनं यथा भवति तथा गहि। आगच्छ ॥

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे। अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥५॥

ते। हि। पुत्रासः। अदितेः। विदुः। द्वेषांसि। योतवे। अंहोः। चित्। उरुऽचक्रयः।
अनेहसः ॥५॥

अदितेः पुत्रासः पुत्रास्ते हि ते खलु मित्रादयो देवा द्वेषांसि द्वेष्टॄणि राक्षसादीनि योतवे पृथक्कर्तुं विदुः। जानंति ॥ विदो लटो वेति विद उत्तरस्य झेरुसादेशः ॥ तथोरुचक्रयो विस्तीर्णस्य कर्मणः कर्तारोऽनेहसोऽनाहंतारो रक्षकास्तेंऽहोश्चिदाहननशीलात्पापादपि योतवे पृथक्कर्तुमस्माञ्जानंति ॥ ॥२५॥

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः। अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ॥६॥

अदितिः। नः। दिवा। पशुं। अदितिः। नक्तं। अद्वयाः। अदितिः। पातु। अंहसः।
सदाऽवृधा ॥६॥

नोऽस्माकं पशुमदितिरदीनाखंडनीया वा देवमाता दिवाहनि पातु। रक्षतु। तथाद्वया बाह्याभ्यंतरभेदेन प्रकारद्वयरहिता सर्वदैकप्रकारा कपटरहिता सादितिर्नक्तं रात्रौ चास्मदीयं गवादिपशुजातं रक्षतु। तथास्मानप्यंहसः पापात् पातु। रक्षतु। केन साधनेन। सदावृधा सर्वदा वृद्धिमतात्मीयेन रक्षणेन ॥

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत्। सा शंताति मयस्करदप स्रिधः ॥७॥

उत। स्या। नः। दिवा। मतिः। अदितिः। ऊत्या। आ। गमत्। सा। शंऽताति।
मयः। करत्। अप। स्रिधः ॥७॥

उतापि च स्या सा पूर्वोक्ता मतिर्मंत्री मंतव्या स्तोतव्या वादितिरूत्या रक्षया सार्धं दिवाहनि नोऽस्माना गमत्। आगच्छतु। आगत्य च शंताति शांतिकरं मयः सुखं सादितिः करत्। करोतु। स्रिधो बाधकाञ्छत्रूंश्चापगमयतु ॥ स्रिधिर्बाधनार्थः। शिवशमरिष्टस्य करे। पा० ४. ४. १४३.। इति शंशब्दात्करणार्थे तातिल्प्रत्ययः ॥

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना। युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥८॥
उत। त्या। दैव्या। भिषजा। शं। नः। करतः। अश्विना। युयुयातां। इतः। रपः।
अप। स्रिधः ॥८॥

उतापि च त्या तौ प्रसिद्धौ दैव्या देवेषु भवौ भिषजा चिकित्सकौ ईदृशावश्विनाश्विनौ नोऽस्माकं शं सुखं रोगाणां शमनं वा करतः। कुरुतां। इतोऽस्मत्तो रपः पापं युयुयातां। पृथक्कुर्यातां। स्रिधः शत्रूंश्चापगमयतां ॥

शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः। शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥९॥
शं। अग्निः। अग्निऽभिः। करत्। शं। नः। तपतु। सूर्यः। शं। वातः। वातु। अरपाः।
अप। स्रिधः ॥९॥

अग्निभिः स्वविभूत्या विभिन्नैर्गार्हपत्यादिभिरग्निर्देवः शं करत्। अस्माकं रोगशांतिं सुखं वा करोतु। सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यश्च नोऽस्माकं शं सुखं यथा भवति तथा तपतु। प्रदीप्यतां। वातो वायुश्चारपा अपापः सन् शं यथा भवति तथा च वातु। अनुवर्ततां। स्रिधः शत्रूंश्चैतेऽग्न्यादयोऽपगमयंतु ॥

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिं। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥१०॥
अप। अमीवां। अप। स्रिधं। अप। सेधत। दुःऽमतिं। आदित्यासः। युयोतन।
नः। अंहसः ॥१०॥

हे आदित्याः अमीवां रोगमप सेधत। अस्मत्तोऽपगमयत। स्रिधं चापसेधकं शत्रुं चाप सेधत। दुर्मतिमस्माकं दुःखस्य मंतारं चाप सेधत। अपि च हे आदित्यास आदित्याः नोऽस्मानंहसः पापाद्युयोतन। पृथक्कुरुत ॥ यौतेर्लोटि छांदसः शपः श्लुः। तप्तनप्तनथनाश्चेति तस्य तनबादेशः। पित्त्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरः शिष्यते। आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवदिति पूर्वस्याविद्यमानत्वेन पदादपरत्वान्निघातो न भवति ॥ ॥२६॥

युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिं। ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥११॥
युयोत। शरुं। अस्मत्। आ। आदित्यासः। उत। अमतिं। ऋधक्। द्वेषः। कृणुत।
विश्वऽवेदसः ॥११॥

हे आदित्याः शरुं हिंसकमस्मदास्मत्तश्च युयोत। पृथक्कुरुत। उतापि चामतिं दुर्बुद्धिं च पृथक्कुरुत। हे विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञा वा द्वेषो द्वेष्टॄञ्छत्रूनृधक् पृथक् कृणुत। कुरुत। अस्मत्तो वियोजयत ॥

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति। एनस्वंतं चिदेनसः सुदानवः ॥१२॥
तत्। सु। नः। शर्म। यच्छत। आदित्याः। यत्। मुमोचति। एनस्वंतं। चित्।
एनसः। सुऽदानवः ॥१२॥

हे आदित्याः तच्छर्म सुखं नोऽस्मभ्यं सु सुष्ठु यच्छत। दत्त। हे सुदानवः शोभनदानाः युष्मदीयं यच्छर्मैनस्वंतं चित् पापिनमपि स्तोतारमेनसः पापान्मुमोचति मोचयति तद्यच्छतेत्यन्वयः ॥

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः । स्वैः ष एवैः रिरिषीष्ट युर्जनः ॥१३॥

यः । नः । कः । चित् । रिरिक्षति । रक्षःऽत्वेन । मर्त्यः । स्वैः । सः । एवैः । रिरिषीष्ट । युः । जनः ॥१३॥

यः कश्चिन्मर्त्यो मनुष्यो नोऽस्मान् रक्षस्त्वेन रक्षोभावेन पिशाचाद्यात्मना रिरिक्षति जिहिंसिषति ॥ रिष हिंसायामिति धातुः ॥ स मनुष्यः स्वैरेवैरात्मीयैरेव चेष्टितै रिरिषीष्ट । हिंसितो भूयात् । स जनो युर्यातापगमनशीलश्च भवतु । यद्वा । स जनः स्वैरेव गमनैर्युर्दुःखं गच्छन् हिंसितो भवतु ॥

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुं । यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥१४॥

सं । इत् । तं । अघं । अश्नवत् । दुःऽशंसं । मर्त्यं । रिपुं । यः । अस्मऽत्रा । दुःऽहनावान् । उप । द्वयुः ॥१४॥

दुःशंसं दुष्कीर्तिं रिपुं शत्रुं तं मर्त्यमिन्मनुष्यमेवाघं पापं समश्नवत् । सम्यग्व्याप्नोतु । यो मर्त्योऽस्मत्रास्मास्वस्मद्विषये दुर्हणावान्दुष्टहननवानुपजायते द्वयुर्द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां युक्तश्च भवति । अयमर्थः । प्रत्यक्षतो हितं वदति परोक्षतस्त्वहितं । तादृशः कपटो द्वयुरित्युच्यते । यश्चास्मद्विषये कपटो भवति तमपि पापं व्याप्नोत्विति ॥

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यं । उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥१५॥

पाकऽत्रा । स्थन । देवाः । हृत्ऽसु । जानीथ । मर्त्यं । उप । द्वयुं । च । अद्वयुं । च । वसवः ॥१५॥

हे देवा दानादिगुणयुक्ता आदित्याः यूयं पाकत्रा पाकेषु विपक्वप्रज्ञेषु स्तोतृषु स्थन । भवथ । यद्वा ॥ प्रथमार्थे त्राप्रत्ययः ॥ पाकत्रा पाकाः परिपक्वज्ञाना भवथ । यत एवमतः कारणाद्धृत्स्वात्मीयेषु हृदयेषु द्वयुं द्विप्रकारयुक्तं कपटिनं चाद्वयुं च तद्विलक्षणं कापट्यरहितं च मर्त्यं मनुष्यमुपेत्य हे वसवो वासकाः जानीथ । अवगच्छथ ॥ ॥२७॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतं ॥१६॥

आ । शर्म । पर्वतानां । आ । उत । अपां । वृणीमहे । द्यावाक्षामा । आरे । अस्मत् । रपः । कृतं ॥१६॥

पर्वतानां मेघानां गिरीणां वा संबंधि शर्म सुखं वयमा वृणीमहे । आभिमुख्येन संभजामहे । उतापि चापामुदकानां च । हे द्यावाक्षामा द्यावापृथिव्यौ अस्मदारेऽस्मत्तो विप्रकृष्टे देशे रपः पापं कृतं । कुरुतं । अस्मत्तो वियोजयतमित्यर्थः ॥

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥१७॥

ते । नः । भद्रेण । शर्मणा । युष्माकं । नावा । वसवः । अति । विश्वानि । दुःऽइता । पिपर्तन ॥१७॥

हे वसवो वासयितार आदित्याः ते पूर्वोक्तगुणा यूयं भद्रेण शोभनेन शर्मणा सुखेन युष्माकं नावा नोऽस्मान् विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुर्गमनान्यति पिपर्तन । पिपृत । अतिपारयत ॥

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥१८॥

तुचे । तनाय । तत् । सु । नः । द्राघीयः । आयुः । जीवसे । आदित्यासः । सुऽमहसः । कृणोतन ॥१८॥

हे आदित्यासोऽदितेः पुत्राः सुमहसः शोभनतेजस्काः नोऽस्माकं तुचे पुत्राय तनाय तत्तनयाय पौत्राय च जीवसे जीवनाय द्राघीयो दीर्घतमं तत्प्रसिद्धमायुर्जीवितं सु सुष्ठु कृणोतन ॥

यज्ञो हीळो वो अंतर आदित्या अस्ति मृळत । युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥१९॥

यज्ञः । हीळः । वः । अंतरः । आदित्याः । अस्ति । मृळत । युष्मे इति । इत् । वः । अपि । स्मसि । सऽजात्ये ॥१९॥

हे आदित्याः हीळः ॥ हीडिर्गत्यर्थः ॥ गंतव्यः प्राप्तव्योऽस्माभिरनुष्ठितो यज्ञो वो युष्माकमंतरोऽस्ति । अंतिके वर्तमानो भवति । अतोऽस्मान्मृळत । सुखयत । वो युष्माकं सजात्ये सजातत्वे ज्ञातित्वे बांधवे वर्तमाना वयं युष्मे इद्युष्मास्वेवापि स्मसि । सर्वदा भवामोऽपि ॥ इदंतो मसिः ॥

बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥२०॥

बृहत् । वरूथं । मरुतां । देवं । त्रातारं । अश्विना । मित्रं । ईमहे । वरुणं । स्वस्तये ॥२०॥

मरुतां देवानां स्वामिनां त्रातारं पालयितारं देवमिंद्रमश्विनाश्विनौ च मित्रं वरुणं च बृहत्प्रौढं वरूथं शीतातपादिनिवारकं गृहं स्वस्तयेऽविनाशायेमहे । याचामहे ॥

अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यं । त्रिवरूथं मरुतो यंत नश्छर्दिः ॥२१॥

अनेहः । मित्र । अर्यमन् । नृऽवत् । वरुण । शंस्यं । त्रिऽवरूथं । मरुतः । यंत । नः । छर्दिः ॥२१॥

हे मित्र हे अर्यमन् हे वरुण हे मरुतः ते सर्वे यूयमनेहोऽहिंसितं नृवन्नृभिः पुत्रादिभिरुपेतं शंस्यं स्तुत्यं त्रिवरूथं त्रयाणां शीतातपवर्षाणां निवारकं यद्वा त्रिभूमिकं छर्दिर्गृहं यंत । यच्छत । दत्तेत्यर्थः ॥

ये चिद्धि मृत्युबंधव आदित्या मनवः स्मसि । प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥२२॥

ये । चित् । हि । मृत्युऽबंधवः । आदित्याः । मनवः । स्मसि । प्र । सु । नः । आयुः । जीवसे । तिरेतन ॥२२॥

हे आदित्याः ये चित्रे च वयं मनवो मनुष्या हि यस्मान्मृत्युबंधवः स्मसि मृत्योर्यमस्य बंधुभूताः प्रत्यासन्नमरणा भवामः अतो हेतोस्तेषां नोऽस्माकं जीवसे जीवनाय चिरकालावस्थानायायुर्जीवितं सु प्र तिरेतन । शोभनं प्रवर्धयत ॥ ॥२८॥

तं गूर्धयेति सप्तत्रिंशदृचं सप्तमं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षं प्रथमातृतीयाद्ययुजः ककुभो द्वितीयाचतुर्थ्यादियुजः सतोबृहत्यः । पितुर्न पुत्र एषा सप्तविंशी द्विपदा विंशत्यक्षरा विराट् । यमादित्यास इत्येषा चतुस्त्रिंशुष्णिक् । यूयं राजान एषा पंचत्रिंशी सतोबृहती । अदान्म इत्येषा ककुप् । उत म इत्येषा सप्तत्रिंशी पंक्तिः । षट्त्रिंशी सप्तत्रिंशी च त्रसदस्युनाम्नो राज्ञो दानस्तुतिरूपत्वात्तद्देवताके । चतुस्त्रिंशीपंचत्रिंश्यावादित्यदेवताके ।

शिष्टा आग्नेय्यः । तथा चानुक्रांतं । तं गूर्धय सप्तविंशत् सोभरिराग्नेयं काकुभं प्रागाथं ह पितुर्न द्विपदांत्ये ककुप्पंक्ती चसदस्योर्दानस्तुतिस्तत्पूर्वे उष्णिक्सतोबृहत्यावादित्येभ्य इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे ॥१॥

तं । गूर्धय । स्वःऽनरं । देवासः । देवं । अरतिं । दधन्विरे । देवऽत्रा । हव्यं । आ । ऊहिरे ॥१॥

हे स्तोतः तं प्रसिद्धमग्निं गूर्धय । स्तुहि । गूर्धयतिः स्तुतिकर्मा । कीदृशं । स्वर्णरं सर्वस्य नेतारं सर्वैर्यजमानैः कर्मादौ नीतं वा । अथवा स्वर्गं प्रति हविषां नेतारं । देवासः दीव्यंति स्तुवंतीति देवा ऋत्विजो देवं दानादिगुणयुक्तमरतिमर्यं स्वामिनं यद्वाभिप्राप्तद्रव्यं दधन्विरे । धन्वंति । गच्छंति । स्तुत्यादिभिः प्राप्नुवंति । धविर्गत्यर्थः । प्राप्य च तेनाग्निना देवत्रा देवान् ॥ देवमनुष्येत्यादिना द्वितीयार्थे त्राप्रत्ययः ॥ हव्यं चरुपुरोडाशादिलक्षणं हविरोहिरे । अभिप्रापयंति ॥ वहेर्यजादित्वात्संप्रसारणं ॥

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यंतुरं ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यं ॥२॥

विभूतऽरातिं । विप्र । चित्रऽशोचिषं । अग्निं । ईळिष्व । यंतुरं ।
अस्य । मेधस्य । सोम्यस्य । सोभरे । प्र । ईं । अध्वराय । पूर्व्यं ॥२॥

ऋषिरात्मानं संबोध्य स्तुतौ प्रेरयति । हे विप्र मेधाविन् सोभर एतत्संज्ञर्षे अध्वराय यागायेममग्निं प्रेळिष्व । प्रस्तुहि । कीदृशं । विभूतरातिं विभूतदानं चित्रशोचिषं चायनीयतेजस्कं विचित्रदीप्तिकं वा सोम्यस्य सोमसाध्यस्यास्य मेधस्य यज्ञस्य यंतुरं नियंतारं पूर्व्यं चिरंतनं ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने प्रशास्तुः शस्त्रे यजिष्ठं त्वेत्यादिकौ प्रगाथौ वैकल्पिकौ स्तोत्रियानुरूपौ । सूचितं च । यजिष्ठं त्वा ववृमहे यः समिधा य आहुती । आ० ७. ८. । इति ॥

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यं । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ॥३॥

यजिष्ठं । त्वा । ववृमहे । देवं । देवऽत्रा । होतारं । अमर्त्यं । अस्य । यज्ञस्य । सुऽक्रतुं ॥३॥

हे अग्ने यजिष्ठमिष्टतमं त्वा ववृमहे । वृणीमहे । संभजामहे । कीदृशं त्वां । देवत्रा देवेषु मध्ये देवमतिशयेन दानादिगुणयुक्तं होतारं देवानामाह्वातारममर्त्यमविनाशमस्य यज्ञस्य यागस्य सुक्रतुं सुष्ठु कर्तारं ॥

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषं ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥४॥

ऊर्जः । नपातं । सुऽभगं । सुऽदीदितिं । अग्निं । श्रेष्ठऽशोचिषं ।
सः । नः । मित्रस्य । वरुणस्य । सः । अपां । आ । सुम्नं । यक्षते । दिवि ॥४॥

ऊर्जोऽन्नस्य नपातं न पातयितारं । यद्वा । नप्तारं चतुर्थं । हविर्लक्षणेनान्नेनापो जायंतेऽद्भ्यश्चौषधिवनस्पतयस्तेभ्य एष जात इति चतुर्थत्वं ॥ नभ्राण्नपादिति नञः प्रकृतिता च ॥ सुभगं शोभनधनं सुदीदितिं सुष्ठु दीपयितारं श्रेष्ठशोचिषं प्रशस्यतमतेजस्कमग्निं स्तौमीति शेषः । स तादृशोऽग्निर्नोऽस्मदर्थं दिवि द्योतमाने देवयजने द्युलोके वा मित्रस्य देवस्य वरुणस्य च सुम्नं सुखमाभिलक्ष्य यक्षते । यजतु । तथा सोऽग्निरपामब्देवतानां सुम्नमभियजतु ॥

यः स॒मिधा॒ य आहु॑ती॒ यो वेदे॑न द॒दाश॒ मर्तो॑ अ॒ग्नये॑। यो नम॑सा स्वध्व॒रः ॥ ५ ॥

यः। स॒म्ऽइधा॑। यः। आऽहु॑ती। यः। वेदे॑न। द॒दाश॑। मर्तः॑। अ॒ग्नये॑। यः। नम॑सा।
सु॒ऽअ॒ध्व॒रः ॥ ५ ॥

इयं पाकयज्ञप्रशंसापरेति भगवताश्वलायनेन व्याख्याता। आ॰ गृ॰ १. १. ४.। यो मर्त्यो मनुष्यः समिधा पालाशादिनेध्मेनाग्नयेऽग्न्यर्थं ददाश परिचरति। यश्चाहुती आहुत्याज्यादिसाध्यया परिचरति। यश्च वेदेन वेदाध्ययनेन परिचरति। यश्च स्वध्वरः शोभनेनाध्वरेण ज्योतिष्टोमादिना युक्तः सन्नमसान्नेन चरुपुरोडाशादिनाग्नये ददाश अग्न्यर्थं परिचरति। तस्येदर्वंत इत्युत्तरत्र संबंधः ॥ ॥ २९ ॥

तस्येदर्वं॑तो रंहयंत आ॒श॒व॒स्तस्य॑ द्यु॒म्नित॑मं॒ यशः॑।
न तमंहो॑ दे॒वकृ॑तं॒ कुत॑श्च॒न न मर्त्य॑कृतं नशत् ॥ ६ ॥

तस्य॑। इत्। अर्वं॑तः। रं॒ह॒यं॒ते॒। आ॒शवः॑। तस्य॑। द्यु॒म्निऽत॑मं। यशः॑।
न। तं। अंहः॑। दे॒वऽकृ॑तं। कुतः॑। च॒न। न। मर्त्य॑ऽकृतं। न॒श॒त् ॥ ६ ॥

यः पूर्वोक्तस्तस्येत्तस्यैवाशवो व्यापनशीला अर्वंतोऽश्वा रंहयंते। वेगं कुर्वंति। शत्रून् प्रसहंत इत्यर्थः। द्युम्नितमं दीप्तिमत्तमं यशः कीर्तिश्च तस्यैव भवति। यद्वा। द्युम्नमिति धननाम। धनवत्तमं यशोऽन्नं च तस्य भवति। अपि च देवकृतमंहः पापं कुतश्चन कस्मादपि हेतोस्तं न नशत्। न प्राप्नोति। न मर्त्यकृतं मनुष्यैः कृतं ॥

स्व॒ग्नयो॑ वो अ॒ग्निभि॑ः स्याम॑ सूनो सहस ऊर्जां पते। सु॒वीर॒स्त्वम॑स्म॒युः ॥ ७ ॥

सु॒ऽअ॒ग्नयः॑। व॒ः। अ॒ग्निऽभिः॑। स्याम॑। सू॒नो॒ इति॑। स॒ह॒सः॒। ऊर्जां॒। प॒ते॒। सु॒ऽवीरः॑।
त्वं। अ॒स्म॒ऽयुः ॥ ७ ॥

हे सहसः सूनो बलस्य पुत्र। अग्निर्हि बलेन मथ्यमानो जायते। हे ऊर्जां पतेऽन्नानां हविर्लक्षणानां स्वामिन्नग्ने वः ॥ वचनव्यत्ययः ॥ तवावयवभूतैरग्निभिर्गार्हपत्यादिभिर्वयं स्वग्नयः शोभनाग्निकाः स्याम। भवेम। सुवीरः शोभनैर्वीरैरुपेतस्त्वं चास्मयुरस्मान्कामयमानो भव ॥

प्र॒शंस॑मानो॒ अति॑थि॒र्न मि॒त्रियो॒ऽग्नी रथो॒ न वेद्यः॑।
त्वे क्षेमा॑सो॒ अपि॑ संति सा॒धव॒स्त्वं राजा॑ र॒यी॒णां ॥ ८ ॥

प्र॒ऽशंस॑मानः। अति॑थिः। न। मि॒त्रियः॑। अ॒ग्निः। रथः॑। न। वेद्यः॑।
त्वे इति॑। क्षेमा॑सः। अपि॑। सं॒ति॒। सा॒धवः॑। त्वं। राजा॑। र॒यी॒णां ॥ ८ ॥

प्रशंसमानः स्तुवन्नतिथिरिव। यद्वा ॥ व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॥ प्रशस्यमानः। सोऽग्निर्मित्रियो मित्राणां स्तोतॄणां हितो भवति। तथा रथो न रथ इव वेद्यो लंभनीयोऽभिषवफलसाधनत्वेन ज्ञातव्यो वा। उत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः। हे अग्ने त्वे त्वयि साधवः साधकाः समीचीनाः क्षेमासो धारणान्यपि संति। भवंति। तथा रयीणां धनानामेव राजेश्वरो भवसि ॥

सो अ॒द्धा दा॒श्वंध्व॒रोऽग्ने॒ मर्तः॑ सुभग॒ स प्र॒शंस्यः॑। स धी॒भिर॑स्तु॒ सनि॑ता ॥ ९ ॥

सः। अ॒द्धा। दा॒शुऽअ॒ध्व॒रः। अग्ने॑। मर्तः॑। सु॒ऽभ॒ग॒। सः। प्र॒ऽशंस्यः॑। सः। धी॒भिः।
अ॒स्तु॒। सनि॑ता ॥ ९ ॥

हे अग्ने यो मर्तो मनुष्यो दाश्वध्वरश्च दत्तयज्ञो भवति सो अद्धा। सत्यनामैतत्। सत्यफलो भवतु। हे सुभग शोभनधनाग्ने स एव प्रशंस्यः प्रशंसनीयः श्लाघनीयश्च भवतु। तथा स धीभिः कर्मभिः स्तोत्रैर्वा सनिता संभजनशीलो भवतु ॥

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतं ॥१०॥
यस्य। त्वं। ऊर्ध्वः। अध्वराय। तिष्ठसि। क्षयत्ऽवीरः। सः। साधते।
सः। अर्वत्ऽभिः। सनिता। सः। विपन्युऽभिः। सः। शूरैः। सनिता। कृतं ॥१०॥

हे अग्ने यस्य यजमानस्याध्वराय यागनिष्पादनाय त्वमूर्ध्व उद्युक्तः संस्तिष्ठसि अवतिष्ठसे स यजमानः क्षयद्वीरो निवसद्भिरित्वरैर्वा वीरैः पुत्रादिभिरुपेतः सन् साधते। सर्वकर्तव्यं साधयति। तदेव विवृणोति। स तादृशो जनोऽर्वद्भिरश्वैः कृतं निष्पादितं जयादिकं सनिता संभजनशीलो भवति। स तादृशो जनो विपन्युभिर्मेधाविभिः स शूरैश्च सनिता भवति ॥ ॥३०॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः। हव्या वा वेविषद्विषः ॥११॥
यस्य। अग्निः। वपुः। गृहे। स्तोमं। चनः। दधीत। विश्वऽवार्यः। हव्या। वा।
वेविषत्। विषः ॥११॥

यस्य यजमानस्य गृहे विश्ववार्यो विश्वैर्वरणीयो वपुः। रूपनामैतत्। रूपवान् दीप्तिमानग्निः स्तोमं स्तोत्रं चनोऽन्नं च हविर्लक्षणं दधीत धारयेत्। यस्य च हव्या। वाशब्दः समुच्चये। हव्यानि हवींषि च विषो व्याप्तान् देवान् वेविषत् प्रापयेत् ॥ विष्लृ व्याप्तौ। अस्माल्लेटि रूपमेतत् ॥ स यजमान इति पूर्वेण संबंधः ॥

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥१२॥
विप्रस्य। वा। स्तुवतः। सहसः। यहो इति। मक्षुऽतमस्य। रातिषु।
अवःऽदेवं। उपरिऽमर्त्यं। कृधि। वसो इति। विविदुषः। वचः ॥१२॥

हे सहसो यहो बलस्य पुत्राग्ने विप्रस्य मेधाविनः स्तुवतः स्तोतुर्वा रातिषु हविर्दानेषु मक्षुतमस्य शीघ्रतमस्य यष्टुर्वा विविदुषो ज्ञातव्यस्याभिज्ञस्य वचो वचनं हे वसो वासकाग्ने अवोदेवं देवानामवस्तादुपरिमर्त्यं मर्त्यानामुपरिष्टाच्च कृधि। कुरु। सर्वं नभःप्रदेशं व्यापयेति यावत् ॥

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति। गिरा वाजिरशोचिषं ॥१३॥
यः। अग्निं। हव्यदातिऽभिः। नमःऽभिः। वा। सुऽदक्षं। आऽविवासति। गिरा।
वा। अजिरऽशोचिषं ॥१३॥

यो यजमानो हव्यदातिभिर्हविषां दानैर्नमोभिर्नमस्कारैर्वा सुदक्षं शोभनबलमग्निमाविवासति परिचरति गिरा वा स्तुत्या वाजिरशोचिषं क्षिप्रगामितेजस्कं तमग्निं परिचरति स समृद्धो भवतीति शेषः ॥

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् ॥१४॥

संऽइधा । यः । निऽशिती । दाशत् । अदितिं । धामऽभिः । अस्य । मर्त्यः ।
विश्वा । इत् । सः । धीभिः । सुऽभगः । जनान् । अति । द्युम्नैः । उद्नःऽइव । तारिषत् ॥१४॥

यो मर्त्यो मनुष्योऽस्याग्नेर्धामभिः शरीरैर्गार्हपत्यादिरूपेण विभज्य वर्तमानैः सार्धमदितिमखंडनीयं तमेवाग्निं निशिती निशितया निशानसाधनया प्रज्वलनहेतुभूतया समिधा दाशत् परिचरेत् धीभिः कर्मभिर्बुद्धिविशेषैर्वा सुभगः सन् विश्वेत् सर्वानेव जनान्द्युम्नैर्द्योतमानैरन्नैर्यशोभिर्वोद्न इवोदकानीवाति तारिषत् । अतितरेत् । अतिक्रामेत् ॥

तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासहत्सदने कं चिदत्रिणं । मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥१५॥
तत् । अग्ने । द्युम्नं । आ । भर । यत् । ससहत् । सदने । कं । चित् । अत्रिणं । मन्युं ।
जनस्य । दुःऽध्यः ॥१५॥

हे अग्ने तद्द्युम्नमा भर । अस्मभ्यमाहर । यत्सदने गृहे वर्तमानं कं चित्कमप्यत्रिणमत्तारं राक्षसादिकं सासहत् अत्यर्थमभिभवेत् । तथा दूढ्यो दुर्धियः पापबुद्धेः शत्रुजनस्य मन्युं क्रोधं यच्च द्युम्नमभिभवेत् तदाहरेत्यन्वयः ॥ ध्यै चेति पृषोदरादिपाठादुरो रेफस्योत्वं उत्तरपदादेष्टुत्वं च ॥ ॥३१॥

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।
वयं तत्ते शवसा गातुवित्तमा इंद्रत्वोता विधेमहि ॥१६॥
येन । चष्टे । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । येन । नासत्या । भगः ।
वयं । तत् । ते । शवसा । गातुवित्ऽतमाः । इंद्रत्वाऽऊताः । विधेमहि ॥१६॥

येनाग्नेयेन तेजसा वरुणो देवश्चष्टे प्रकाशयति । येन च मित्रोऽर्यमा च चष्टे । येन च नासत्याश्विनौ च चक्षाते । भगो भजनीय एतत्संज्ञो देवश्च चष्टे । शवसा बलेन गातुवित्तमा गातोर्गातव्यस्य स्तोत्रस्य ज्ञातृतमाः । यद्वा । गंतव्यस्य प्राप्तव्यस्य लब्धृतमाः । इंद्रत्वोता इंद्रेणेश्वरेण त्वयोता रक्षिताः संतो वयं हे अग्ने ते त्वदीयं तत्तेजो विधेमहि । परिचरेमहि ॥

ते घेदग्ने स्वाध्यो३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसं । विप्रासो देव सुक्रतुं ॥१७॥
ते । घ । इत् । अग्ने । सुऽआध्यः । ये । त्वा । विप्र । निऽदधिरे । नृऽचक्षसं । विप्रासः ।
देव । सुऽक्रतुं ॥१७॥

हे अग्ने ते घेत्त एव खलु स्वाध्यः शोभनाध्याना भवंति । हे विप्र मेधाविन् देव द्योतमानाग्ने ये विप्रासो विप्रा मेधाविन ऋत्विजो नृचक्षसं नृणां चष्टारं सुक्रतुं सुकर्माणं शोभनप्रज्ञं वा त्वा त्वां निदधिरे निदधति यागार्थं गार्हपत्यादिस्थानेष्वाधानसंस्कारेण स्थापयंति ते घेदित्यन्वयः ॥

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥१८॥
ते । इत् । वेदिं । सुऽभग । ते । आऽहुतिं । ते । सोतुं । चक्रिरे । दिवि ।
ते । इत् । वाजेभिः । जिग्युः । महत् । धनं । ये । त्वे इति । कामं । निऽएरिरे ॥१८॥

हे सुभग शोभनधनाग्ने त इत्त एव यजमानास्त्वद्यागाय वेदिं चक्रिरे। कुर्वंति। तदनंतरं ते यजमाना आहुतिं चरुपुरोडाशादिसाध्यां दीक्षणीयादिषु कुर्वंति। ततो दिवि द्योतमाने सुत्येऽहनि सोतुं सोममभिषोतुं चक्रिरे। उद्योगं कुर्वंति। अनुष्ठितयज्ञास्त इत्त एव वाजेभिर्वाजैर्बलैर्महत्प्रभूतं धनं जिग्युः। जयंति। शत्रुभ्यो लभंते। कुत इत्यत आह। ये यजमाना हे अग्ने त्वे त्वयि काममभिलाषं न्येरिरे नितरां गच्छंति। त्वामादरातिशयेन स्तुवंतीत्यर्थः॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने प्रशास्तुः शस्त्रे भद्रो न इति प्रगाथो वैकल्पिकः स्तोत्रियः। सूत्र्यते हि। भद्रो नो अग्निराहुतो यदी घृतेभिराहुतः। आ० ७.८.। इति॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः॥१९॥

भद्रः। नः। अग्निः। आऽहुतः। भद्रा। रातिः। सुऽभग। भद्रः। अध्वरः। भद्राः। उत। प्रऽशस्तयः॥१९॥

आहुतो हविर्भिस्तर्पितोऽग्निर्नोऽस्माकं भद्रः कल्याणो भवतु। हे सुभग शोभनधनाग्ने भद्रा कल्याणी रातिर्दानं चास्माकं भवतु। भद्रः कल्याणोऽध्वरो यागश्च भवतु। उतापि च भद्राः कल्याण्यः प्रशस्तयः प्रशंसाः स्तुतयश्च भवंतु॥

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः॥२०॥

भद्रं। मनः। कृणुष्व। वृत्रऽतूर्ये। येन। समत्ऽसु। ससहः।
अव। स्थिरा। तनुहि। भूरि। शर्धतां। वनेम। ते। अभिष्टिऽभिः॥२०॥

हे अग्ने वृत्रतूर्ये संग्रामे भद्रं शोभनं मनः कृणुष्व। अस्माकं कुरु। येन मनसा त्वं समत्सु संग्रामेषु सासहः भृशं शत्रूनभिभवसि। अपि च शर्धतामभिभवतां शत्रूणां भूरि भूरीणि बहूनि स्थिराणि दृढान्यप्यव तनुहि। अवांचि कुरु। पराजितानि कुर्वित्यर्थः। वयं चाभिष्टिभिरभ्येषणसाधनैर्हविर्भिः स्तोत्रैश्च ते त्वां वनेम। संभजेमहि। यद्वा। ते तव प्रसादादभिष्टिभिरभीष्टैः फलैर्वनेम। संगच्छेमहि॥ ॥३२॥

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे। यजिष्ठं हव्यवाहनं॥२१॥

ईळे। गिरा। मनुःऽहितं। यं। देवाः। दूतं। अरतिं। निऽएरिरे। यजिष्ठं। हव्यऽवाहनं॥२१॥

गिरा वाचा स्तुतिरूपया मनुर्हितं मनुना प्रजापतिना यजमानेनाहितं तमग्निमीळे। स्तौमि। कीदृशं। यजिष्ठं यष्टृतमं हव्यवाहनं हविषां वोढारमरतिमर्यमीश्वरं वा दूतं देवानां दूत्ये वर्तमानं। यमग्निं देवा न्येरिरे नितरां प्रेरयंति॥

तिग्मजंभाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः॥२२॥

तिग्मऽजंभाय। तरुणाय। राजते। प्रयः। गायसि। अग्नये।
यः। पिंशते। सूनृताभिः। सुऽवीर्यं। अग्निः। घृतेभिः। आऽहुतः॥२२॥

तिग्मजंभाय तीक्ष्णज्वालाय तरुणाय नित्ययूने जरामरणरहिताय राजते राजमानायाग्नये प्रयो हविर्लक्षणमन्नं गायसि हे स्तोतः । प्रवृद्धिं प्रयच्छेत्यर्थः । योऽग्निः सूनृताभिः प्रियसत्यात्मिकाभिर्वाग्भिः स्तुतो घृतेभिर्घृतैराज्यैराहुतोऽभिहुतश्च सन् सुवीर्यं शोभनवीर्यं पिंशते आश्लेषयति स्तोतृभिः संयोजयति ॥ पिश अवयवे ॥ तस्मा अग्नय इत्यन्वयः ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु प्रशास्तुः शस्त्रे यदा भद्रो नः । ऋ॰ ८. १९. १९. । इति प्रगाथः स्तोत्रियः तदानीं यदी घृतेभिरिति प्रगाथोऽनुरूपः । सूक्तं तु पूर्वमेवोदाहृतं ॥

यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च । असुर इव निर्णिजं ॥२३॥

यदि । घृतेभिः । आऽहुतः । वाशीं । अग्निः । भरते । उत् । च । अव । च । असुरःऽइव । निःऽनिजं ॥२३॥

घृतेभिर्घृतैराहुतोऽभिहुतोऽयमग्निर्यदि यदा यस्मिन्काले वाशीं । वाङ्नामैतत् । वाचं शब्दमुच्चोर्ध्वं चाव चावाक्च भरते संपादयति । यद्वा । वाशीं वाशनशीलां शब्दकारिणीं ज्वालामुद्भरते उद्धरति उन्नमयत्यूर्ध्वमुखमव च भरते अवाङ्मुखं च हरति उपसंहरति । असुर इव रश्मीनां क्षेप्ता सूर्यो यथा निर्णिजमात्मीयं रूपमुपरितनेषु लोकेषु प्रकाशयतयोन्नमयति अधस्तनेषु चावाङ्मुखं गमयति तद्वदुच्चनीचभावनयाग्निस्तेज उन्नमयति । तं स्तुम इति शेषः ॥

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगंधिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥२४॥

यः । हव्यानि । ऐरयत । मनुःऽहितः । देवः । आसा । सुऽगंधिना ।
विवासते । वार्याणि । सुऽअध्वरः । होता । देवः । अमर्त्यः ॥२४॥

यो मनुर्हितो मनुना प्रजापतिनाहितो देवो द्योतमानोऽग्निः सुगंधिना शोभनगंधयुक्तेनासास्येन हव्यान्यस्मदीयानि हवींष्यैरयत देवान्प्रति प्रेरयति स्वध्वरः शोभनयज्ञो होता देवानामाह्वाता देवो दीप्यमानोऽमर्त्यो मरणरहितः सोऽग्निर्वार्याणि वरणीयानि धनानि विवासते । परिचरते । यजमानाय प्रयच्छतीति शेषः ॥

यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत ॥२५॥

यत् । अग्ने । मर्त्यः । त्वं । स्यां । अहं । मित्रऽमहः । अमर्त्यः । सहसः । सूनो इति । आऽहुत ॥२५॥

हे सहसः सूनो बलस्य पुत्राहुत घृतैरभिहुत हे मित्रमहोऽनुकूलदीप्तिमन्नग्ने मर्त्यो मरणधर्माहं यद्यदि त्वं स्यां त्वदुपासनया त्वद्रूपमापन्नो भवेयं । ये यथायथोपासते ते तदेव भवंतीति श्रुतेः । तर्ह्यहममर्त्यो मरणरहितो देव एव भवेयमिति ॥ ॥३३॥

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय संत्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥२६॥

न । त्वा । रासीय । अभिऽशस्तये । वसो इति । न । पापऽत्वाय । संत्य ।
न । मे । स्तोता । अमतिऽवा । न । दुःऽहितः । स्यात् । अग्ने । न । पापया ॥२६॥

हे वसो वासकाग्ने त्वा त्वामभिशस्तयेऽभिशंसनाय मिथ्यापवादाय हिंसायै च न रासीय । नाक्रोशयेयं ॥ रास्ट शब्दे ॥ हे संत्य संभजनीयाग्ने पापत्वाय त्वां न रासीय । मे मदीयः स्तोता चानभिमतवचनेन त्वां नाक्रोशयतु । अत एवामतीवा । अमतिरशोभना बुद्धिः । तद्वान् अपि च दुर्हितः शत्रुर्हे अग्ने अस्माकं न स्यात् । न भवतु । अत एव पापयाशोभनया बुद्ध्या स न बाधतां ॥

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥२७॥

पितुः । न । पुत्रः । सुऽभृतः । दुरोणे । आ । देवान् । एतु । प्र । नः । हविः ॥२७॥

पितुर्न पुत्रः पितुः पुत्र इवास्माकं सुभृतः सुष्ठु भर्ता । यद्वा । पित्रा पुत्र इवास्माभिः सम्यग्भृतो हविर्भिः पोषितः । अयमग्निः पुत्र इवास्माकं सुभृतो दुरोणे यज्ञगृहे देवानाभिलक्ष्य नोऽस्माकं हविः प्रैतु । प्रगमयतु । यद्वा । अग्निरैतु । आगच्छतु । अस्मदीयं हविश्च देवान् प्राप्नोतु ॥

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः ॥२८॥

तव । अहं । अग्ने । ऊतिऽभिः । नेदिष्ठाभिः । सचेय । जोषं । आ । वसो इति । सदा ।
देवस्य । मर्त्यः ॥२८॥

हे वसो वासकाग्ने नेदिष्ठाभिरंतिकतमाभिर्ऋजुगामिनीभिर्वा देवस्य तवोतिभी रक्षाभिर्मर्त्यो मनुष्योऽहं स्तोता सदा सर्वदा जोषमा सचेय । प्रीतिमभिसेवेय ॥

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥२९॥

तव । क्रत्वा । सनेयं । तव । रातिऽभिः । अग्ने । तव । प्रशस्तिऽभिः ।
त्वां । इत् । आहुः । प्रऽमतिं । वसो इति । मम । अग्ने । हर्षस्व । दातवे ॥२९॥

हे अग्ने तव क्रत्वा त्वदीयेन परिचरणरूपेण कर्मणा सनेयं । त्वां संभजेयं । एतदेव विशदयति । तव रातिभिस्त्वदीयैर्हविर्दानैश्च सनेयं । तथा तव प्रशस्तिभिः प्रशंसनैः स्तोत्रैश्च त्वां संभजेयं । अस्यैव संभजने किं कारणं तदाह । हे वसो वासकाग्ने मम स्तोतुः प्रमतिं प्रकृष्टबुद्धिं रक्षकं त्वामित्त्वामेवाहुः । ब्रह्मवादिनः कथयंति । अतो हे अग्ने दातवे दातुं हर्षस्व । हृष्टो भव । हर्षयुक्तः सन् बहु धनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

पूर्वोक्त एव प्रशास्तुः शस्त्रे प्र स इति प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्र्यते हि । प्र सो अग्ने तवोतिभिरग्निं वो वृधंतं । आ० ७.८. । इति ॥

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः ॥३०॥

प्र । सः । अग्ने । तव । ऊतिऽभिः । सुऽवीराभिः । तिरते । वाजभर्मऽभिः । यस्य ।
त्वं । सख्यं । आऽवरः ॥३०॥

हे अग्ने तवोतिभी रक्षाभिः स यजमानः प्र तिरते । प्रवर्धते । ऊतयो विशेष्यंते । सुवीराभिः । शोभना वीराः पुत्रादयो यासु तास्तथोक्ताः । वाजभर्मभिः । वाजानामन्नानां बलानां वा भर्म भरणं यासु तादृशीभिः । हे अग्ने त्वं यस्य यजमानस्य सख्यं सखित्वं मित्रत्वमावरः अभिवृणोषि स तिरत इत्यन्वयः ॥ ॥३४॥

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इंधानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१॥

तव। द्रप्सः। नीलऽवान्। वाशः। ऋत्वियः। इंधानः। सिष्णो इति। आ। ददे।
त्वं। महीनां। उषसां। असि। प्रियः। क्षपः। वस्तुषु। राजसि ॥३१॥

हे सिष्णो ॥ सिषिः सेचनार्थः ॥ सोमेनासिच्यमानाग्ने द्रप्सो द्रवणशीलो नीलवान् शकटनीडेऽवस्थानात् तद्वान् वाशः कांतः शब्दायमानो वा ऋत्विय ऋतौ वसंतादिकालविशेषे भव इंधानः संदीपयन् एवंभूतस्तव सोम आ ददे। तुभ्यं होमायाध्वर्युणादीयते। अपि च त्वं महीनां महतीनामुषसां प्रियो मित्रभूतोऽसि। उषसि ह्यग्नयो होमाय प्रज्वाल्यंते। तथा क्षपः क्षपाया रात्रेः संबंधिषु वस्तुषु राजसि। प्रकाशसे। यद्वा। रात्रिसंबंधीनि वस्तूनि पदार्थजातानि त्वं प्रकाशयसि ॥

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे। सम्राजं त्रासदस्यवं ॥३२॥
तं। आ। अगन्म। सोभरयः। सहस्रऽमुष्कं। सुऽअभिष्टिं। अवसे। संऽराजं।
त्रासदस्यवं ॥३२॥

सोभरय ऋषयो वयमवसे रक्षणाय तमग्निमागन्म। हविर्भिः स्तुतिभिश्च प्राप्ता अभूम। कीदृशं। सहस्रमुष्कं। मुष्णंति तमांस्यपहरंतीति मुष्काणि तेजांसि। बहुतेजस्कं स्वभिष्टिं शोभनाभ्येषणं सम्राजं सम्यग्राजमानं त्रासदस्यवं। त्रसदस्युर्नाम राजर्षिः। तस्य स्तोतव्यत्वेन संबंधिनं ॥

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥३३॥
यस्य। ते। अग्ने। अन्ये। अग्नयः। उपऽक्षितः। वयाःऽइव।
विपः। न। द्युम्ना। नि। युवे। जनानां। तव। क्षत्राणि। वर्धयन् ॥३३॥

हे अग्ने यस्य ते तवान्येऽग्नयो वया इव वृक्षस्य शाखा इवोपक्षितः समीपे निवसंतो भवंति जनानां जनिमतां मनुष्याणां मध्येऽहं तस्य तव क्षत्राणि बलानि स्तुत्या वर्धयन् विपो न। स्तोतृनामैतत्। अन्ये स्तोतार इव द्युम्ना द्योतमानान्यन्नानि यशांसि वा नि युवे। नितरां प्राप्नोमि। त्वत्प्रसादाल्लभेयेत्यर्थः ॥

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यं। मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥३४॥
यं। आदित्यासः। अद्रुहः। पारं। नयथ। मर्त्यं। मघोनां। विश्वेषां। सुऽदानवः ॥३४॥

हे अद्रुहोऽद्रोग्धारो हे सुदानवो हे आदित्यासोऽदितेः पुत्रा मित्रादयः मघोनां हविष्मतां विश्वेषां सर्वेषां मध्ये यं मर्त्यं मनुष्यं यजमानं पारं नयथ आरब्धस्य कर्मणः समाप्तिं प्रापयथ। स तत्फलं लभत इत्यर्थः ॥

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयंतं मानुषाँ अनु।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५॥
यूयं। राजानः। कं। चित्। चर्षणिऽसहः। क्षयंतं। मानुषान्। अनु।
वयं। ते। वः। वरुण। मित्र। अर्यमन्। स्याम। इत्। ऋतस्य। रथ्यः ॥३५॥

हे राजानो राजमाना हे चर्षणीसहः शत्रुभूतानामभिभवितार आदित्याः यूयं मानुषाननु मनुष्यान्यजमानाननुलक्ष्य क्षयंतं क्षपयंतं कं चित् कमपि शत्रुवर्गमभिभवथेति शेषः। यद्वा। मनुष्येषु यजमानेषु क्षयंतं स्तुतीनामीश्वरं कं चित् कमपि स्तोतारं मा यूयं गच्छत। हे वरुण हे मित्र हे अर्यमन् ते तादृशा वयं वो युष्माकं संबंधिन ऋतस्य यज्ञस्य रथ्यः स्याम। नेतारो भवेम ॥

हे वसो वासकाग्ने त्वा त्वामभिशस्तयेऽभिशंसनाय मिथ्यापवादाय हिंसायै च न रासीय। नाक्रोशयेयं॥ रास शब्दे॥ हे संत्य संभजनीयाग्ने पापत्वाय त्वां न रासीय। मे मदीयः स्तोता चानभिमतवचनेन त्वां नाक्रोशयतु। अत एवामतीवा। अमतिरशोभना बुद्धिः। तद्वान् अपि च दुर्हितः शत्रुर्हे अग्ने अस्माकं न स्यात्। न भवतु। अत एव पापयाशोभनया बुद्ध्या स न बाधतां॥

पि॒तुर्न पु॒त्रः सु॒भृ॑तो दुरो॒ण आ दे॒वाँ ए॑तु॒ प्र णो॑ ह॒विः ॥२७॥

पि॒तुः। न। पु॒त्रः। सु॒ऽभृ॑तः। दु॒रो॒णे। आ। दे॒वान्। ए॒तु॒। प्र। नः॒। ह॒विः ॥२७॥

पितुर्न पुत्रः पितुः पुत्र इवास्माकं सुभृतः सुष्ठु भर्ता। यद्वा। पित्रा पुत्र इवास्माभिः सम्यग्भृतो हविर्भिः पोषितः। अयमग्निः पुत्र इवास्माकं सुभृतो दुरोणे यज्ञगृहे देवानाभिलक्ष्य नोऽस्माकं हविः प्रैतु। प्रगमयतु। यद्वा। अग्निरेतु। आगच्छतु। अस्मदीयं हविश्च देवान् प्राप्नोतु॥

तवा॒हम॑ग्न ऊ॒तिभि॒र्नेदि॑ष्ठाभिः सचेय॒ जोष॒मा व॑सो। सदा॑ दे॒वस्य॒ मर्त्यः॑ ॥२८॥

तव॑। अ॒हं। अ॒ग्ने॒। ऊ॒तिऽभिः॑। नेदि॑ष्ठाभिः। स॒चे॒य॒। जोषं॑। आ। व॒सो॒ इति॑। सदा॑। दे॒वस्य॑। मर्त्यः॑ ॥२८॥

हे वसो वासकाग्ने नेदिष्ठाभिरंतिकतमाभिर्ऋजुगामिनीभिर्वा देवस्य तवोतिभी रक्षाभिर्मर्त्यो मनुष्योऽहं स्तोता सदा सर्वदा जोषमा सचेय। प्रीतिमभिसेवेय॥

तव॒ क्रत्वा॑ सनेयं॒ तव॑ रा॒तिभि॑रग्ने॒ तव॒ प्रश॑स्तिभिः।
त्वामिदा॑हुः॒ प्रम॑तिं वसो॒ ममाग्ने॒ हर्ष॑स्व दा॒तवे॑ ॥२९॥

तव॑। क्रत्वा॑। स॒ने॒यं॒। तव॑। रा॒तिऽभिः॑। अग्ने॑। तव॑। प्रश॑स्तिऽभिः।
त्वां। इत्। आ॒हुः॒। प्रऽम॑तिं। व॒सो॒ इति॑। मम॑। अग्ने॑। हर्ष॑स्व। दा॒तवे॑ ॥२९॥

हे अग्ने तव क्रत्वा त्वदीयेन परिचरणरूपेण कर्मणा सनेयं। त्वां संभजेयं। एतदेव विशदयति। तव रातिभिस्त्वदीयैर्हविर्दानैश्च सनेयं। तथा तव प्रशस्तिभिः प्रशंसनैः स्तोत्रैश्च त्वां संभजेयं। अस्यैव संभजने किं कारणं तदाह। हे वसो वासकाग्ने मम स्तोतुः प्रमतिं प्रकृष्टबुद्धिं रक्षकं त्वामित्त्वामेवाहुः। ब्रह्मवादिनः कथयंति। अतो हे अग्ने दातवे दातुं हर्षस्व। हृष्टो भव। हर्षयुक्तः सन् बहु धनं प्रयच्छेत्यर्थः॥

पूर्वोक्त एव प्रशास्तुः शस्त्रे प्र स इति प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुरूपः। सूत्र्यते हि। प्र सो अग्ने तवोतिभिरग्निं वो वृधंतं। आ० ७. ८.। इति॥

प्र सो अ॑ग्ने॒ तवो॒तिभिः॑ सु॒वीरा॑भिस्तिरते॒ वाज॑भर्मभिः। यस्य॒ त्वं स॒ख्यमा॒वरः॑ ॥३०॥

प्र। सः। अ॒ग्ने॒। तव॑। ऊ॒तिऽभिः॑। सु॒ऽवीरा॑भिः। ति॒र॒ते॒। वाज॑भर्मऽभिः। [illegible]।
त्वं। स॒ख्यं। आ॒ऽवरः॑ ॥३०॥

हे अग्ने तवोतिभी रक्षाभिः स यजमानः प्र तिरते। प्रवर्धते। ऊतयो विशिष्यंते। सुवीराभिः। [illegible] वीराः पुत्रादयो यासु तास्तथोक्ताः। वाजभर्मभिः। वाजानामन्नानां बलानां वा भर्म भरणं या[illegible] हे अग्ने त्वं यस्य यजमानस्य सख्यं सखित्वं मित्रत्वमावरः अभिवृणोषि स तिरत इत्यन्वयः॥ [illegible]

तव॑ द्र॒प्सो नील॑वान्वा॒श ऋ॒त्विय॒ इंधा॑नः सिष्ण॒वा द॑दे।
त्वं म॒हीना॑मु॒षसा॑मसि प्रि॒यः क्ष॒पो वस्तु॑षु राजसि ॥३१॥

तवं। द्रप्सः। नीलऽवान्। वाशः। ऋत्वियः। इंधानः। सिष्णो इति। आ। ददे।
त्वं। महीनां। उषसां। असि। प्रियः। क्षपः। वस्तुषु। राजसि ॥३१॥

हे सिष्णो ॥ सिषिः सेचनार्थः ॥ सोमेनासिच्यमानापि द्रप्सो द्रवणशीलो नीलवान् शकटनीडेऽवस्थानात् तद्वान् वाशः कांतः शब्दायमानो वा ऋत्विय ऋतौ वसंतादिकालविशेषे भव इंधानः संदीपयन् एवंभूतस्तव सोम आ ददे। तुभ्यं होमायाध्वर्युणादीयते। अपि च त्वं महीनां महतीनामुषसां प्रियो मित्रभूतोऽसि। उषसि ह्यग्नयो होमाय प्रज्वाल्यंते। तथा क्षपः क्षपाया रात्रेः संबंधिषु वस्तुषु राजसि। प्रकाशसे। यद्वा। रात्रिसंबंधीनि वस्तूनि पदार्थजातानि त्वं प्रकाशयसि ॥

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे। सम्राजं त्रासदस्यवं ॥३२॥
तं। आ। अगन्म। सोभरयः। सहस्रऽमुष्कं। सुऽअभिष्टिं। अवसे। संऽराजं।
त्रासदस्यवं ॥३२॥

सोभरय ऋषयो वयमवसे रक्षणाय तममिमागन्म। हविर्भिः स्तुतिभिश्च प्राप्ता अभूम। कीदृशं। सहस्रमुष्कं। मुष्णंति तमांस्यपहरंतीति मुष्काणि तेजांसि। बहुतेजस्कं स्वभिष्टिं शोभनाभ्येषणं सम्राजं सम्यग्राजमानं त्रासदस्यवं। त्रसदस्युर्नाम राजर्षिः। तस्य स्तोतव्यत्वेन संबंधिनं ॥

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥३३॥
यस्य। ते। अग्ने। अन्ये। अग्नयः। उपऽक्षितः। वयाःऽइव।
विपः। न। द्युम्ना। नि। युवे। जनानां। तव। क्षत्राणि। वर्धयन् ॥३३॥

हे अग्ने यस्य ते तवान्येऽग्नयो वया इव वृक्षस्य शाखा इवोपक्षितः समीपे निवसंतो भवंति जनानां जनिमतां मनुष्याणां मध्येऽहं तस्य तव क्षत्राणि बलानि स्तुत्या वर्धयन् विपो न। स्तोतॄनामैतत्। अन्ये स्तोतार इव द्युम्ना द्योतमानान्यन्नानि यशांसि वा नि युवे। नितरां प्राप्नोमि। त्वत्प्रसादाल्लभेयेत्यर्थः ॥

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यं। मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥३४॥
यं। आदित्यासः। अद्रुहः। पारं। नयथ। मर्त्यं। मघोनां। विश्वेषां। सुऽदानवः ॥३४॥

हे अद्रुहोऽद्रोग्धारो हे सुदानवो हे आदित्यासोऽदितेः पुत्रा मित्रादयः मघोनां हविष्मतां विश्वेषां सर्वेषां मध्ये यं मर्त्यं मनुष्यं यजमानं पारं नयथ आरब्धस्य कर्मणः समाप्तिं प्रापयथ। स तत्फलं लभत इत्यर्थः ॥

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयंतं मानुषाँ अनु।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५॥
यूयं। राजानः। कं। चित्। चर्षणिऽसहः। क्षयंतं। मानुषान्। अनु।
वयं। ते। वः। वरुण। मित्र। अर्यमन्। स्याम। इत्। ऋतस्य। रथ्यः ॥३५॥

हे राजानो राजमाना हे चर्षणीसहः मनु[illegible] मानुषाननु मनुष्याणजना-
नामनुलक्ष्य क्षयंतं क्षपयंतं कं चित् कमपि [illegible] समाविषु क्षयंतं [illegible]
नामीश्वरं कं चित् कमपि स्तोतारं मा यूयं [illegible] तादृशा वयं वो [illegible]
संबंधिन ऋतस्य यज्ञस्य रथ्यः स्याम। [illegible] ॥

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पंचाशतं त्रसदस्युर्वधूनां। मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६॥
अदात्। मे। पौरुऽकुत्स्यः। पंचाशतं। त्रसदस्युः। वधूनां। मंहिष्ठः। अर्यः।
सत्ऽपतिः ॥३६॥

इदमादिकेन प्रगाथेन त्रसदस्योर्दानमृषिः प्रशंसति। पौरुकुत्स्यः पुरुकुत्सपुत्रस्त्रसदस्युर्मे मह्यं वधूनां पंचाशतमदात्। दत्तवान्। कीदृशः। मंहिष्ठो दातृतमोऽर्योऽभिगंतव्यः स्वामी वा सत्पतिः सतां श्रेष्ठानां स्तोतॄणां पालयिता॥

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥३७॥
उत। मे। प्रयियोः। वयियोः। सुऽवास्त्वाः। अधि। तुग्वनि।
तिसृणां। सप्ततीनां। श्यावः। प्रऽनेता। भुवत्। वसुः। दियानां। पतिः ॥३७॥

॥३५॥

आ गंतेति षड्विंशत्यृचमष्टमं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षं मारुतं प्रथमायुजः ककुभो द्वितीयादियुजः सतोबृहत्यः। अनुक्रम्यते हि। आ गंत षड्विंशतिर्मारुतमिति॥ गतो विनियोगः॥

आ गंता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः। स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥१॥
आ। गंत। मा। रिषण्यत। प्रऽस्थावानः। मा। अप। स्थात। सऽमन्यवः। स्थिरा।
चित्। नमयिष्णवः ॥१॥

हे प्रस्थावानो गमनशीला मरुतः यूयमा गंत। आगच्छत। मा रिषण्यत। अनागमनेनास्मान्मा हिंस्त। हे समन्यवः समानतेजस्काः समानक्रोधा वा स्थिरा चित् स्थिराणि दृढान्यपि पर्वतादीनि हे नमयिष्णवो नमनशीलाः कंपयितारः माप स्थात। अस्मत्तोऽपेत्यान्यत्र मा तिष्ठत। अस्मास्वेव तिष्ठतेत्यर्थः॥

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥२॥
वीळुपविऽभिः। मरुतः। ऋभुक्षणः। आ। रुद्रासः। सुदीतिऽभिः।
इषा। नः। अद्य। आ। गत। पुरुऽस्पृहः। यज्ञं। आ। सोभरीऽयवः ॥२॥

हे ऋभुक्षणो महांत उरुभासमाननिवासा वा हे रुद्रासो रुद्रा रुद्रपुत्राः ईदृशा हे मरुतः सुदीतिभिः शोभनदीप्तिकैर्वीळुपविभिः। रथनेमयः पवयः। वीळु दृढाः पवयो येषु तादृशै रथैरा गत। आगच्छत। एतदेव विवृणोति। हे पुरुस्पृहो बहुभिः स्पृहणीया ईप्सितव्याः सोभरीयवः सोभरिमृषिं मां कामयमाना नोऽस्माकं यज्ञं प्रत्यद्येदानीमिषान्नेन सहागच्छत। आ पूरणः॥

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवतां। विष्णोरेषस्य मीळ्हुषां ॥३॥
विद्म। हि। रुद्रियाणां। शुष्मं। उग्रं। मरुतां। शिमीऽवतां। विष्णोः। एषस्य।
मीळ्हुषां ॥३॥

रुद्रियाणां रुद्रपुत्राणां शिमीवतां कर्मवतां विष्णोर्व्याप्तस्यैषयैषणीयस्य वृष्ट्युदकस्य मीळ्हुषां सेक्तॄणां मरुतामुग्रमुगूर्णं शुष्मं बलं विद्म हि। जानीमः खलु ॥

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजंत रोदसी।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजंथ स्वभानवः ॥४॥

वि। द्वीपानि। पापतन्। तिष्ठत्। दुच्छुना। उभे इति। युजंत। रोदसी इति।
प्र। धन्वानि। ऐरत। शुभ्रऽखादयः। यत्। एजंथ। स्वऽभानवः ॥४॥

द्वीपानि द्वयोः पार्श्वयोरापो येषु तान्युदमध्यस्थलानि ॥ द्व्यंतरुपसर्गेभ्योऽप ईत्। पा॰ ६. ३. ९७.। इतीत्वं। ऋक्पूरित्यादिनाकारः समासांतः ॥ तानि च वि पापतन्। अत्यर्थं मरुद्वेगेन विपतंति। तिष्ठत् स्थावरं धान्यवृक्षजातं दुच्छुना दुःखेन युज्यते। उभे रोदसी द्यावापृथिव्यावपि युजंत। ते मरुतः स्वागमनजनितेन कंपनेन योजयंति। परोऽर्धर्चः परोक्षकृतः। धन्वानि गमनशीलान्युदकानि च प्रैरत। प्रगच्छंति। हे शुभ्रखादयः शोभनायुधाः शोभनहविष्का वा हे स्वभानवः स्वायत्तदीप्तयः यूयं यद्यदेजथ कंपयथ। तदेतत्पूर्वोक्तं सर्वं निष्पादयत इत्यर्थः ॥

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानंदति पर्वतासो वनस्पतिः। भूमिर्यामेषु रेजते ॥५॥

अच्युता। चित्। वः। अज्मन्। आ। नानंदति। पर्वतासः। वनस्पतिः। भूमिः।
यामेषु। रेजते ॥५॥

हे मरुतः वो युष्माकमज्मन्नज्मनि गमने सत्यच्युता चिच्च्यावयितुमशक्या अपि पर्वतासः पर्वता मेघा गिरयो वा वनस्पतिः ॥ जातावेकवचनं ॥ वनस्पतयो वृक्षाश्चा नानदति। अभितो भृशं शब्दायंते। अपि च यामेषु युष्मदीयेषु गमनेषु निमित्तेषु भूमिः पृथिवी च रेजते। कंपते ॥ ॥३६॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत्।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥६॥

अमाय। वः। मरुतः। यातवे। द्यौः। जिहीते। उत्ऽतरा। बृहत्।
यत्र। नरः। देदिशते। तनूषु। आ। त्वक्षांसि। बाहुऽओजसः ॥६॥

हे मरुतः वो युष्माकममाय बलाय यातवे यातुं द्यौर्द्युलोको बृहदंतरिक्षं विलङ्घ्योत्तरोन्नततरा जिहीते। गच्छति। युष्मदागमनाद्भीता सती युष्मदीयमांतरिक्षं स्थानं परित्यज्योर्ध्वं पालयत इत्यर्थः। यत्र यस्मिन्नंतरिक्षे बाह्वोजसः बाह्वोरोजो बलं येषां तादृशा नरो नेतारो मरुतस्त्वक्षांसि दीप्तान्याभरणानि तनूष्वात्मीयेषु शरीरेष्वा देदिशते आदिष्टानि धृतानि कुर्वंति। यद्वा। तनूषु विस्तृतासु मेघस्थास्वप्सु त्वक्षांसि तनूकृतानि तीक्ष्णीकृतान्यायुधानि मेघोद्भेदनाया देदिशते पुनःपुनरादिशंति। तद्बृहदंतरिक्षं जिहीत इत्यन्वयः ॥

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवंतो वृषप्सवः। वहंते अह्रुतप्सवः ॥७॥

स्वधां। अनु। श्रियं। नरः। महि। त्वेषाः। अमऽवंतः। वृषऽप्सवः। वहंते।
अह्रुतऽप्सवः ॥७॥

नरो नेतारो मरुतः स्वधामनु। स्वधेत्यन्ननाम। हविर्लक्षणमन्नमनुलक्ष्य श्रियं शोभां महि महत्प्रौढं वहंते। धारयंति। कीदृशाः। त्वेषा दीप्ता अमवंतो बलवंतो वृषप्सवो वर्षणरूपा अह्रुतप्सवोऽकुटिलरूपाश्च ॥

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबंधवः सुजातास इषे भुजे महांतो नः स्परसे नु ॥८॥
गोभिः । वाणः । अज्यते । सोभरीणां । रथे । कोशे । हिरण्यये ।
गोऽबंधवः । सुऽजातासः । इषे । भुजे । महांतः । नः । स्परसे । नु ॥८॥

सोभरीणामृषीणां गोभिः शब्दैः स्तुतिलक्षणैर्वाणो मरुद्वीणाज्यते। व्यज्यते। प्रकटीक्रियते। कुत्र। हिरण्यये रथे कोशे कोशवद्वेष्टिते मध्यदेशे। यद्वा। गोभिर्गंतृभिर्गोमातृकैर्वा मरुद्भिर्वाणोऽज्यते। व्यज्यते। सोभरीणां स्नानायेदृशे रथे वाद्यत इत्यर्थः। अपि च गोबंधवो गोमातृकाः सुजातासः शोभनजन्मानो महांतो महानुभावास्ते मरुतो नोऽस्माकमिषेऽन्नाय भुजे भोगाय स्परसे प्रीत्यै च बलनाय वा नु क्षिप्रं भवंत्विति शेषः॥

प्रति वो वृषदंजयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वं । हव्या वृषप्रयाव्णे ॥९॥
प्रति । वः । वृषत्ऽअंजयः । वृष्णे । शर्धाय । मारुताय । भरध्वं । हव्या । वृषऽप्रयाव्ने ॥९॥

हे वृषदंजयो वृषता वर्षकेण सोमेनांजंतः सिंचंतोऽध्वर्यवः वो यूयं वृष्णे वर्षित्रे मारुताय मरुत्संघरूपाय शर्धाय बलाय हव्यानि हवींषि प्रति भरध्वं। आहवनीयं प्रति हरत। शर्धं विशेष्यते। वृषप्रयाव्णे। वृषाणः सेक्तारः प्रयावानः प्रकृष्टं गंतारो मरुतो यस्मिन् तत्तथोक्तं। तस्मै॥

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥१०॥
वृषणश्वेन । मरुतः । वृषऽप्सुना । रथेन । वृषऽनाभिना ।
आ । श्येनासः । न । पक्षिणः । वृथा । नरः । हव्या । नः । वीतये । गत ॥१०॥

हे नरो नेतारो मरुतः वृषणश्वेन वृषभिः सेचनसमर्थैरश्वैरुपेतेन वृषप्सुना वर्षकरूपयुक्तेन वृषनाभिना। नाभिश्चक्रच्छिद्रं। वर्षकनाभियुक्तेन रथेन नोऽस्माकं हव्यानि हवींष्या गत। आगच्छत। वृथानायासेनैव वीतये भक्षणार्थं। तत्र दृष्टांतः। श्येनासो न पक्षिणः श्येनाः शंसनीयगतयः पक्षिणो यथा शीघ्रमागच्छंति। तद्वदनायासेन शीघ्रमागच्छतेत्यर्थः॥ ॥३७॥

समानमंज्येषां वि भ्राजंते रुक्मासो अधि बाहुषु । दविद्युतत्यृष्टयः ॥११॥
समानं। अंजि। एषां। वि। भ्राजंते। रुक्मासः। अधि। बाहुषु। दविद्युतति। ऋष्टयः॥११॥

एषां मरुतामंजि रूपाभिव्यंजकमाभरणं समानमेकविधमेव। एतदेवाह। रुक्मासो रुक्मा दीप्यमानाः सुवर्णमया हारा वि भ्राजंते। वक्षःस्थलेषु विशेषेण दीप्यंते। तथा बाहुष्वध्यंसेष्वृष्टयः शक्त्यादीन्यायुधानि दविद्युतति। अत्यर्थं द्योतंते॥

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२॥
ते । उग्रासः । वृषणः । उग्रऽबाहवः । नकिः । तनूषु । येतिरे ।
स्थिरा । धन्वानि । आयुधा । रथेषु । वः । अनीकेषु । अधि । श्रियः ॥१२॥

उग्रास उद्गूर्णाः सर्वकार्येषूद्यता वृषणो वर्षितार उग्रबाहव उद्गूर्णबाहवस्ते मरुतस्तनूष्वात्मीयेषु शरीरेषु नकिर्येतिरे। रक्षणाय न प्रयतंते। न हि कश्चित्तेषां शरीराणि बाधितुं शक्नोति येन यत्नः क्रियेत। परोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः। हे मरुतः वो युष्माकं रथेषु धन्वानि धनूंष्यायुधान्यायोधनानि बाणादीनि च स्थिरा स्थिराणि दृढतराणि संति। अत एव कारणादनीकेष्वधि सेनामुखेषु श्रियो जयसंपदो युष्माकं भवंति ॥

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे। वयो न पित्र्यं सहः ॥१३॥
येषां। अर्णः। न। सऽप्रथः। नाम। त्वेषं। शश्वतां। एकं। इत्। भुजे। वयः। न।
पित्र्यं। सहः ॥१३॥

अर्णो गोदकमिव सप्रथः सर्वतः पृथु विस्तीर्णं त्वेषं दीप्तं शश्वतां बहूनां येषां मरुतामीदृशं नाम मरुत इति नामधेयमेकमिदेकमेवासहायमेव सद्भुजे स्तोतॄणां भोगाय भवति। तत्र दृष्टांतः। सहः प्रसहनशीलं पित्र्यं पितुरागतं वयो नान्नमिव। यथा तद्विस्रंभेण भोगाय भवति तथेत्यर्थः। तानित्युत्तरचैकवाक्यता ॥

तान्वंदस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनां।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषां ॥१४॥
तान्। वंदस्व। मरुतः। तान्। उप। स्तुहि। तेषां। हि। धुनीनां।
अराणां। न। चरमः। तत्। एषां। दाना। मह्ना। तत्। एषां ॥१४॥

हे अंतरात्मन् तान्पूर्वोक्तगुणान्मरुतो वंदस्व। प्रणम। तानेवोपेत्य स्तुहि। हि यस्माद्धुनीनां कंपयितॄणां तेषां मरुतां वयं शेषभूताः स्म। अराणामर्याणां स्वामिनां यथा चरमो हीनः सेवकः शेषभूतस्तद्वत्। तत्तस्मादेषां मरुतां दाना दानानि मह्ना महत्त्वेन युक्तान्यस्माकं भवंति। तदेषामिति द्विरुक्तिरादरार्था पदपूरणार्था वा ॥

सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु। यो वा नूनमुतासति ॥१५॥
सुऽभगः। सः। वः। ऊतिषु। आस। पूर्वासु। मरुतः। विऽउष्टिषु। यः। वा। नूनं।
उत। असति ॥१५॥

हे मरुतः वो युष्माकमूतिषु रक्षासु सतीषु स स्तोता सुभग आस। शोभनधनो भवति ॥ अस्तेश्छांदसो भूभावाभावः ॥ यद्वा। सुभग आस। दीप्यते ॥ अस गतिदीप्त्यादानेषु ॥ कदेति चेत् उच्यते। पूर्वासु व्युष्टिषु पूर्वेषुऽतीतेषु विवासितेषु दिवसेषु। यद्वा। पूर्वास्वागामिनीषु व्युष्टिषूषःसु। उषःकालोपलक्षितेषु दिवसेषु। उतापि च यो मनुष्यः स्तोता यष्टा वा नूनमवश्यमसति युष्माकं भवति ॥ अस्तेश्छांदसः शपो लुगभावः ॥ स सुभग इत्यन्वयः ॥ ॥३८॥

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥१६॥
यस्य। वा। यूयं। प्रति। वाजिनः। नरः। आ। हव्या। वीतये। गथ।
अभि। सः। द्युम्नैः। उत। वाजसातिऽभिः। सुम्ना। वः। धूतयः। नशत् ॥१६॥

हे नरो नेतारो मरुतः यूयं यस्य वा यस्य च वाजिनो हविष्मतो यजमानस्य हव्या हव्यानि हवींषि प्रति

वीतये भक्षणाया गथ आगच्छथ स यजमानो हे धूतयः कंपयितारो मरुतः युष्मैर्योतमानैरग्नैर्यशोभिर्वा उतापि च वाजसातिभिर्वाजानां संभजनैश्च वो युष्माकं संबंधीनि सुखान्यभि नशत्। अभितो व्याप्नोति ॥

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशंत्यसुरस्य वेधसः। युवानस्तथेदसत् ॥१७॥

यथा। रुद्रस्य। सूनवः। दिवः। वशंति। असुरस्य। वेधसः। युवानः। तथा। इत्।
असत् ॥१७॥

रुद्रस्य दुःखद्रावयितुरीश्वरस्य सूनवः पुत्रा असुरस्योदकानां क्षेप्तुर्मेघस्य वेधसो विधातारः। यद्वा। असवः प्राणाः। तान्राति ददातीत्यसुरं वृष्टिजलं। तस्य कर्तारः। युवानो नित्यतरुणाः ईदृशा मरुतो दिवोऽंतरिक्षादागत्य यथा येन प्रकारेण वशंति अस्मान् कामयंते तथेत्तेनैव प्रकारेणासत्। इदं स्तोत्रं भवतु ॥ वष्टेश्छांदसः शपो लुगभावः ॥

ये चार्हंति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरंति ये।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वं ॥१८॥

ये। च। अर्हंति। मरुतः। सुऽदानवः। स्मत्। मीळ्हुषः। चरंति। ये।
अतः। चित्। आ। नः। उप। वस्यसा। हृदा। युवानः। आ। ववृध्वं ॥१८॥

सुदानवः शोभनदाना ये च यजमाना मरुतो देवानर्हंति पूजयंति। ये च मीळ्हुषः सेक्तृन्मरुतः स्मत् प्रशस्तं चरंति हविर्भिः प्रचरंति यजंति। यत एवमतोऽपि कारणात्तानुभयविधान्नोऽस्मानाभिलक्ष्य वस्यसा वसीयसा वसुमत्तमेन हृदा हृदयेन हे युवानो मरुतः उपा ववृध्वं। उपेत्याभिसंभजत ॥

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा। गाय गा इव चर्कृषत् ॥१९॥

यूनः। ऊं इति। सु। नविष्ठया। वृष्णः। पावकान्। अभि। सोभरे। गिरा। गाय।
गाःऽइव। चर्कृषत् ॥१९॥

हे सोभरे यूनो नित्यतरुणान् वृष्णो वर्षिष्ठान् पावकांस्तान्मरुतो नविष्ठयातिशयेनाभिनवया गिरा वाचा स्तुतिरूपया सु शोभनमभि गाय। अभिष्टुहि। चर्कृषत् पुनःपुनः कृषन् कृषीवलो गा इव। स यथा यूनः शक्ताननडुहः स्तौति तद्वत् ॥

साहा ये संति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु।
वृष्णश्चंद्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वंदस्व मरुतो अह ॥२०॥

सहाः। ये। संति। मुष्टिहाऽइव। हव्यः। विश्वासु। पृत्ऽसु। होतृषु।
वृष्णः। चंद्रान्। न। सुश्रवःऽतमान्। गिरा। वंदस्व। मरुतः। अह ॥२०॥

विश्वासु सर्वासु पृत्सु पृतनासु युद्धेषु होतृष्वाह्वानशीलेषु योद्धृषु च ये मरुतः सहाः संति अभिभवितारो भवंति हव्यो ह्वातव्यो मुष्टिहेव। मुष्टिभिरेव हंतीति मुष्टिहा मल्लः। स इव। नेति संप्रत्यर्थे। न संप्रति वृष्णो वर्षितृंश्चंद्रानाह्लादकान् सुश्रवस्तमानतिशयेन शोभनयशस्कांस्तान्मरुतोऽह मरुत एव गिरा वाचा वंदस्व। स्तुहि ॥ ॥३९॥

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबंधवः। रिहते ककुभो मिथः ॥२१॥

गावः। चित्। घ। सऽमन्यवः। सऽजात्येन। मरुतः। सऽबंधवः। रिहते। ककुभः। मिथः ॥२१॥

हे समन्यवः समानतेजस्काः समानक्रोधा वा हे मरुतः गावश्चिन्नावश्च युष्मन्मातृभूताः सजात्येन समानजातित्वेन सबंधवः समानबंधुकाः सत्यः ककुभो दिशः प्राच्यादिदिग्भागान् प्राप्य मिथः परस्परं रिहते। लिहंति। घेति पूरकः ॥

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२॥

मर्तः। चित्। वः। नृतवः। रुक्मऽवक्षसः। उप। भ्रातृऽत्वं। आ। अयति।
अधि। नः। गात। मरुतः। सदा। हि। वः। आपिऽत्वं। अस्ति। निऽध्रुवि ॥२२॥

हे नृतवो नृत्यंतो हे रुक्मवक्षसः। रोचमानमाभरणं रुक्मं वक्षसि येषां ते तथोक्ताः। ईदृशा हे मरुतः मर्तश्चिन्मनुष्योऽपि स्तोता वो युष्माकं भ्रातृत्वं सखित्वमा आभिमुख्येनोपायति। उपगच्छति। अतो नोऽस्मान्मनुष्यान्स्तोतॄनधि गात। अधिब्रूत। अस्मत्पक्षपातवचना भवत। हि यस्माद्वो युष्माकमापित्वं बंधुत्वं निध्रुवि नितरां धारयितव्ये स्तोत्रे यज्ञे वा सदा सर्वदास्ति विद्यते तस्मादित्यर्थः ॥

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः। यूयं सखायः सप्तयः ॥२३॥

मरुतः। मारुतस्य। नः। आ। भेषजस्य। वहत। सुऽदानवः। यूयं। सखायः। सप्तयः ॥२३॥

हे सुदानवः शोभनदाना हे सखायः समानख्याना हे सप्तयः सर्पणशीला मरुतः नोऽस्माकं मारुतस्य भेषजस्य मरुत्संबंधि भेषजमौषधं यूयमा वहत। आनयत ॥

याभिः सिंधुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविं।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥२४॥

याभिः। सिंधुं। अवथ। याभिः। तूर्वथ। याभिः। दशस्यथ। क्रिविं।
मयः। नः। भूत। ऊतिऽभिः। मयःऽभुवः। शिवाभिः। असचऽद्विषः ॥२४॥

हे मरुतः याभिरूतिभिः सिंधुं समुद्रमवथ रक्षथ। याभिश्च तूर्वथ स्तोतॄणां शत्रून् हिंस्थ ॥ तुर्वी हिंसार्थः ॥ याभिश्च क्रिविं कूपं तृष्णजे गोतमाय दशस्यथ प्रयच्छथ। हे मयोभुवो मयसः सुखस्य भावयितारो हे असचद्विषोऽसक्तशत्रवः शत्रुरहिताः शिवाभिः कल्याणीभिः सर्वाभिरूतिभी रक्षाभिर्नोऽस्माकं मयः सुखं भूत। भावयत। उत्पादयत। यद्वा ॥ भू प्राप्तौ ॥ प्रापयत ॥

यत्सिंधौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः। यत्पर्वतेषु भेषजं ॥२५॥

यत्। सिंधौ। यत्। असिक्न्यां। यत्। समुद्रेषु। मरुतः। सुऽबर्हिषः। यत्। पर्वतेषु। भेषजं ॥२५॥

हे सुबर्हिषः शोभनयज्ञा मरुतः सिंधावेतत्संज्ञे स्यंदनशीले नदे यद्भेषजमस्ति यच्चासिक्न्यां यच्च समुद्रेषु जलधिषु यच्च पर्वतेषु भेषजं विद्यते तत्सर्वं भेषजं पश्यंत इत्युत्तरयैकवाक्यता ॥

विश्वं पश्यंतो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६॥
विश्वं । पश्यंतः । बिभृथ । तनूषु । आ । तेन । नः । अधि । वोचत ।
क्षमा । रपः । मरुतः । आतुरस्य । नः । इष्कर्त । विऽह्रुतं । पुनरिति ॥२६॥

विश्वं सर्वं पूर्वोक्तं भेषजं पश्यंतो जानंतो यूयं तनूष्वस्मदीयेषु विषयेष्वा बिभृथ । आहरथ । आहृतेन च तेन नोऽस्मानधि वोचत । अधिब्रूत । चिकित्सतेत्यर्थः । अपि च हे मरुतः नोऽस्माकं मध्य आतुरस्य रोगिणो रपः । पापनामैतत् । रपसः पापफलस्य रोगस्य क्षमा क्षांतिर्यथा भवति तथा विह्रुतं विबाधितमंगं पुनरिष्कर्त । निःशेषेण संपूर्णं कुरुत ॥ निसो नलोपश्छांदसः । करोतेर्लोटि छांदसो विकरणस्य लुक् । तप्तनप्तनथनाश्चेति तशब्दस्य तबादेशः । अत एवोपसर्गसमुदायो नावगृह्यते ॥ ॥४०॥ ॥३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

चतुर्थेऽनुवाके दश सूक्तानि । तत्र वयमु त्वामित्यष्टादशर्चं प्रथमं सूक्तं । अत्रानुक्रमणिका । वयमु द्व्यूनांत्ये तृचे चित्रस्य दानस्तुतिरिरिति । ऋषिश्चान्यस्मादिति परिभाषया काण्वः सोभरिर्ऋषिः । काकुभं प्रागाथं हेत्युक्तत्वादस्यापि सूक्तस्यायुजः ककुभो युजः सतोबृहत्यः । अंत्ये तृचे चित्रस्य दानं देवता । शिष्टा ऐंद्र्यः ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ उक्थ्ये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे वयमु त्वामिति प्रगाथः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । वयमु त्वामपूर्व्य यो न इदमिदं पुरेति प्रगाथौ । आ॰ ६. १. । इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येष्वपि तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिनो वैकल्पिकोऽयं स्तोत्रियः प्रगाथः । सूत्रमुक्तं ॥ अस्मिन्नेव शस्त्रे त्वं न इंद्रा भरेति प्रगाथो यदा स्तोत्रियः तदा वयमु त्वेत्यनुरूपतृचस्याद्या । सूत्रितं च । वयमु त्वामपूर्व्य यो न इदमिदं पुरा याहीम इंदव इति समाहार्योऽनुरूपः । आ॰ ७. ८. । इति ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरंतोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥१॥
वयं । ऊं इति । त्वां । अपूर्व्य । स्थूरं । न । कत् । चित् । भरंतः । अवस्यवः । वाजे ।
चित्रं । हवामहे ॥१॥

हे अपूर्व्य त्रिषु सवनेषु प्रादुर्भूतत्वादभिनवेंद्र भरंतः सोमलक्षणैरन्नैस्त्वां पोषयंतो वयं वाजे । वाजंति गच्छंति योद्धारोऽत्रेति वाजयंत्यायुधान्यत्रेति वा वाजः संग्रामः । तस्मिंश्चित्रं चायनीयं विविधरूपं त्वामु त्वामेवावस्यवो रक्षणमात्मन इच्छंतः संतो हवामहे । त्वामाह्वयामः । तत्र दृष्टांतः । स्थूरं न यथा भरंतो व्रीह्यादिभिर्गृहं पूरयंतो जना वाजेऽन्नविषये स्थूरं स्थूलं गुणाधिकं कच्चित् कंचिन्मानवं यथाह्वयंति तद्वत् ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इंद्र सानसिं ॥२॥

उप । त्वा । कर्मन् । ऊतये । सः । नः । युवा । उग्रः । चक्राम । यः । धृषत् ।
त्वां । इत् । हि । अवितारं । ववृमहे । सखायः । इंद्र । सानसिं ॥२॥

प्रथमपादः प्रत्यक्षकृतः । हे इंद्र कर्मन्नग्निष्टोमादिकर्मण्यूतये रक्षणाय त्वा त्वामुपगच्छामः । द्वितीयः पादः परोक्षकृतः । य इंद्रो धृषत् धृष्णोति शत्रूनभिभवति ॥ ञिधृषा प्रागल्भ्ये । बहुलं छंदसीति शप्रत्ययः ॥ युवा तरुण उग्र उद्गूर्णः स इंद्रो नोऽस्मान् प्रति चक्राम । आगच्छतु । यद्वा । चक्राम । अस्मानुत्साहयुक्तान् करोतु ॥ क्रमतेः सर्गार्थे व्यत्ययेन परस्मैपदं । पा॰ १. ३. ३८. ॥ परोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । सखायः समानख्याना बंधुभूता वा वयं सानसिं ॥ वन षण संभक्तौ ॥ संभजनीयमवितारं सर्वस्य रक्षितारं त्वामित्त्वामेव ववृमहे । वृणीमहे । संभजामहे । हिः प्रसिद्धौ ॥ हियोगादनिघातः ॥

आ याहीम इंदवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥३॥
आ । याहि । इमे । इंदवः । अश्वऽपते । गोऽपते । उर्वराऽपते । सोमं । सोमऽपते ।
पिब ॥३॥

अश्वपतेऽश्वानां स्वामिन् गोपते गवां पालयितरुर्वरापते । सर्वसस्याढ्या भूमिरुर्वरा । तस्याः पते हे इंद्र इंदवः सोमा इमे भवदीयाः । त्वदर्थमभिषुता इत्यर्थः । तस्मादा याहि । आगच्छ । आगत्य सोमपते हे इंद्र सोमं पिब ॥

वयं हि त्वा बंधुमंतमबंधवो विप्रास इंद्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥४॥
वयं । हि । त्वा । बंधुऽमंतं । अबंधवः । विप्रासः । इंद्र । येमिम ।
या । ते । धामानि । वृषभ । तेभिः । आ । गहि । विश्वेभिः । सोमऽपीतये ॥४॥

हे इंद्र अबंधवो बंधुरहिता विप्रासो मेधाविनो वयं बंधुमंतं बंधुभिर्देवैरंगिरोभिर्वा तद्वंतं त्वा त्वां । हिरवधारणे । त्वामेव येमिम । बंधुत्वेन नियच्छाम ॥ यच्छतेर्लिटि रूपं ॥ तथा सति हे वृषभ कामानां वर्षितरिंद्र ते तव या यानि धामानि शरीराणि तेजांसि वा विद्यंते तेभिस्तैर्विश्वेभिः सर्वैर्धामभिः सह सोमपीतये सोमपानार्थमा गहि । आगच्छ ॥

सीदंतस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिंद्र नोनुमः ॥५॥
सीदंतः । ते । वयः । यथा । गोऽश्रीते । मधौ । मदिरे । विवक्षणे । अभि । त्वां । इंद्र ।
नोनुमः ॥५॥

हे इंद्र गोश्रीते ॥ श्रीञ् पाके ॥ गोविकारे दधिपयसी गोशब्देनोच्येते । दध्ना पयसा च श्रीतेन श्रयणद्रव्येण मिश्रिते मदिरे मदकरे विवक्षणे स्वर्गप्रापणशीले त्वदीये मधौ सोमे सीदंतो निवसंतः । सदने दृष्टांतः । वयो यथा पक्षिणो यथैकत्र संघीभूय तिष्ठंति तद्वत् सीदंतो वयं त्वामभ्याभिमुख्येन नोनुमः । पुनःपुनर्भृशं वा स्तुमः ॥ ॥१॥

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः ।
संति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं संति नो धियः ॥६॥

अच्छ । च । त्वा । एना । नमसा । वदामसि । किं । मुहुः । चित् । वि । दीधयः ।
संति । कामासः । हरिऽवः । ददिः । त्वं । स्मः । वयं । संति । नः । धियः ॥६॥

हे इंद्र अच्छ चापि चाभिमुख्येन वैनेनेन नमसा स्तोत्रेण हविर्लक्षणेनान्नेन वा सह त्वा त्वां वदामसि। अभिवदामः ॥ चवायोगे प्रथमेति न निघातः ॥ त्वं तु मुहुश्चिन्मुहुर्मुहुः किं कस्माद्धेतोर्वि दीधयः। विपूर्वो दीधितिश्चिंतने। विचिंतयसि ॥ दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः। व्यत्ययेन परस्मैपदं लुगभावश्च ॥ किमर्थं यूयं वदथेति चेत् हरिवो हरिताश्ववन् हे इंद्र अस्माकं कामासः पुत्रपश्वादिविषयाः कामाः संति। कामाः संतु। अहं न प्रयच्छामीति चेत्। त्वं तु ददिर्धनादिदाता खलु। तस्माद्वयं त्वत्संनिधौ स्मः। भवामः। किंच नोऽस्माकं धियः कर्माणि च तव समीपे संति। तिष्ठंति। ततो धनादिलाभार्थं त्वां वदाम इत्यर्थः ॥

नूत्ना इदिंद्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः। विद्मा पुरा परीणसः ॥७॥
नूत्नाः। इत्। इंद्र। ते। वयं। ऊती। अभूम। नहि। नु। ते। अद्रिऽवः। विद्म। पुरा।
परीणसः ॥७॥

हे इंद्र ते तवोत्यूत्यै रक्षणे वयं नूत्ना इन्नूतना एव भवामः। अद्रिवो वज्रिन् हे इंद्र पुरा पूर्वं त्वां परीणसः ॥ सुब्व्यत्ययः ॥ परीणसं परितो व्याप्तं महांतं वेति नहि विद्म। न जानीमः। नु संप्रति तु ते त्वां महांतमिति जानंतो वयं भवता रक्ष्या इति ॥

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥८॥
विद्म। सखिऽत्वं। उत। शूर। भोज्यं। आ। ते। ता। वज्रिन्। ईमहे।
उतो इति। समस्मिन्। आ। शिशीहि। नः। वसो इति। वाजे। सुऽशिप्र। गोऽमति ॥८॥

शूर शत्रूणां शातयितर्बलवन् हे इंद्र सखित्वं तव सखिभावं वयं विद्म। जानीमः। उतापि च भोज्यमभ्यवहारार्थं धनं च विद्म। वज्रिन् हे इंद्र ते त्वदीये ता ते सख्यधने आ आभिमुख्येनेमहे। वयं याचामहे। उतो अपि च वसो सर्वस्य वासयितः सुशिप्र शोभनहनो यद्वा शोभनशिरस्त्राण हे इंद्र गोमति गवादियुक्ते समस्मिन् सर्वस्मिन् वाजेऽन्ने नोऽस्माना शिशीहि। तीक्ष्णीकुरु। उपलक्षणं। प्रदानेनास्मान् प्रसिद्धान् कुर्वित्यर्थः ॥ शिञ् निशान इत्यस्य छांदसः श्नुः ॥

उक्थ्ये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे यो न इदमिदमित्ययं प्रगाथोऽनुरूपः। यो न इदमिदं पुरेति प्रगाथौ सर्वाः ककुभः। आ० ६. १.। इति सूत्रितं ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येष्वपि ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रेऽयं वैकल्पिकोऽनुरूपः। आ० ७. ८.॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे त्वं न इंद्रा भरेति प्रगाथे स्तोत्रिये सत्यनुरूपतृचः समाहार्यः। तत्रेयं यो न इदमिदमिति द्वितीया। सूत्रितं च। यो न इदमिदं पुरा याहीम इंद्रव इति समाहार्योऽनुरूपः। आ० ७. ८.। इति ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे। सखाय इंद्रमूतये ॥९॥
यः। नः। इदंऽइदं। पुरा। प्र। वस्यः। आऽनिनाय। तं। ऊं इति। वः। स्तुषे। सखायः।
इंद्रं। ऊतये ॥९॥

सखायः समानख्याना हे ऋत्विग्यजमानाः य इंद्रः पुरा पूर्वमिदं दर्शनीयतया विद्यमानं वस्यो वसीयः ॥ वसोरीयसुनीकारलोपश्छांदसः ॥ प्रशस्तं वसु नोऽस्मान् प्राणिनाय प्रकर्षेणानीतवान् तमु तमेव धनानामानेतारमिंद्रं वो युष्माकं धनलाभार्थमूतये रक्षणाय च स्तुषे। सोभरिरहं स्तौमि ॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमंदत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतं ॥१०॥
हरिऽअश्वं । सत्ऽपतिं । चर्षणिऽसहं । सः । हि । स्म । यः । अमंदत ।
आ । तु । नः । सः । वयति । गव्यं । अश्व्यं । स्तोतृऽभ्यः । मघऽवा । शतं ॥१०॥

हर्यश्वं हरितवर्णाश्वोपेतं सत्पतिं स्वप्रकाशाधिक्येन सतां नक्षत्राणां पतिं सतां श्रेष्ठानां पतिं वा चर्षणीसहं चर्षणीनां शत्रुभूतानां मनुष्याणामभिभवितारं स हि ष्म स खलु जनः स्तौति । यो जनो अमंदत ततो लब्धधनः संतृप्तो भवति स एनं तुष्टूषति । एवं सति मघवा धनवान् स इंद्रः शतं गव्यमश्व्यमनेकं गवाश्वसंघं स्तोतृभ्यो नोऽस्मभ्यं तु क्षिप्रमा वयति आप्रापयतु ॥ वी गत्यादिषु । अस्माल्लेट्यडागमः ॥ ततो लब्धगवादिका वयं चैनं स्तुम इति ॥ ॥२॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसंतं वृषभ ब्रुवीमहि । संस्थे जनस्य गोमतः ॥११॥
त्वया । ह । स्वित् । युजा । वयं । प्रति । श्वसंतं । वृषभ । ब्रुवीमहि । संऽस्थे । जनस्य ।
गोऽमतः ॥११॥

वृषभ वर्षितर्हे इंद्र गोमतो गवादियुक्तस्य जनस्य संस्थे स्थाने युद्धे श्वसंतमस्मान्प्रति क्रोधातिशयेन श्वासकारिणं शत्रुं युजा सहायेन त्वया ह स्वित्त्वयैव खलु वयं प्रति ब्रुवीमहि । प्रतिवचनं कुर्मः । निराकरिष्याम इत्यर्थः ॥

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिंद्र प्र णो धियः ॥१२॥
जयेम । कारे । पुरुऽहूत । कारिणः । अभि । तिष्ठेम । दुःऽध्यः ।
नृऽभिः । वृत्रं । हन्याम । शूशुयाम । च । अवेः । इंद्र । प्र । नः । धियः ॥१२॥

पुरुहूत बहुभिराह्वातव्य हे इंद्र अस्माकं विविधाः शत्रव उपद्रवकारिणो बाधां मनसा स्मरंतश्चेति । तत्र कारिणो हिंसां कुर्वतः शत्रून् कारे । कीर्यंत आयुधान्यत्रेति कारो युद्धं । तस्मिंस्तान्वयं जयेम । दूढ्यो दुर्धियः पापबुद्धीनप्यभि तिष्ठेम । अभितः स्थास्यामः । किंच वृत्रं गवामावरकं शत्रुं नृभिरायुधनेतृभिर्मरुद्भिः सह हन्याम । हिंस्याम । हत्वा शूशुयाम च । शत्रुराहित्येन पुत्रपौत्रैरग्निष्टोमादिकर्मभिश्च वर्धयेमहि । यद्वा । श्वयतिरत्रांतर्णीतण्यर्थः । शत्रुभ्यो बाधाभावात्सोमलक्षणैरन्नैस्त्वां वर्धयेम । ततस्त्वं नोऽस्माकं धियः कर्माणि प्रावेः । प्रकर्षेण रक्ष ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रेऽभ्रातृव्य इत्यादिकौ द्वौ प्रगाथौ वैकल्पिकौ स्तोत्रियानुरूपौ । सूत्रितं च । अभ्रातृव्यो अना त्वं मा ते अमाजुरो यथा । आ० ७. ८. । इति ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिंद्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१३॥
अभ्रातृव्यः । अना । त्वं । अनापिः । इंद्र । जनुषा । सनात् । असि । युधा । इत् ।
आपित्वं । इच्छसे ॥१३॥

हे इंद्र त्वं जनुषा जन्मनैवाभ्रातृव्यः ॥ व्यन् सपत्ने । पा० ४. १. १४५. । इति व्यन्प्रत्ययः ॥ अनानेतृकः ॥ ऋतश्छंदसीति कपः प्रतिषेधः ॥ अनियंतृक इत्यर्थः । अनापिर्बंधुवर्जितश्च सनादसि । चिरादेव भ्रातृव्यादि-

वर्जितोऽसि । यत्र त्वयापित्वं बांधवमिच्छसे इच्छसि तत्र युधेद्युद्धेनैव । युद्धं कुर्वन्नेव स्तोतॄणां सखा भवसीति ॥

नकी॑ रे॒वंतं॑ स॒ख्याय॑ विंद॒से॒ पीय॑ंति ते सु॒रा॒श्वः॑ ।
य॒दा कृ॒णोषि॑ न॒दनुं॑ समू॑हु॒स्यादि॒त्पि॒तेव॑ हूयसे ॥१४॥
नकि॑ः । रे॒वंतं॑ । स॒ख्याय॑ । वि॒द॒से॒ । पीय॑ंति । ते॒ । सु॒रा॒श्वः॑ ।
य॒दा । कृ॒णोषि॑ । न॒द॒नुं । सं । ऊ॒ह॒सि॒ । आत् । इत् । पि॒ताऽइ॑व । हू॒य॒से॒ ॥१४॥

हे इंद्र रेवंतं धनवंतं केवलधनवंतं दानादिरहितमयष्टारमाढ्यं मानवं सख्याय सखिभावाय नकिर्विंदसे। न भजसे । नाश्रयसीत्यर्थः । अयष्टारो जनाः किं संतीत्यत आह । सुराश्वः ॥ टुओश्वि गतिवृद्ध्योः ॥ सुरया वृद्धास्तद्वत् प्रमत्ता नास्तिकास्ते त्वां पीयंति ॥ पीयतिर्हिंसाकर्मा । हिंसंति । तान्नाश्रयसीत्यर्थः ॥

मा ते॑ अमा॒जुरो॑ यथा मू॒रास॑ इंद्र स॒ख्ये त्वाव॑तः । नि ष॑दाम॒ सचा॑ सु॒ते ॥१५॥
मा । ते॒ । अ॒मा॒ऽजुर॑ः । य॒था॒ । मू॒रास॑ः । इं॒द्र॒ । स॒ख्ये । त्वाऽव॑तः । नि । स॒दा॒म॒ ।
सचा॑ । सु॒ते ॥१५॥

हे इंद्र ते तव स्वभूता वयं तथा मा भूम मा भवाम यथा त्वावतस्त्वादृशस्त्वत्सदृशस्य देवस्य सख्ये मूरासो मूराः । सोमप्रदानादिंद्रेण सह सख्यं कुर्म इत्येतदजानंतो मूढा जनाः । अमाजुरः सोमाभिषवमकुर्वंतस्ते गृहैः पुत्रैः पौत्रैर्धनादिभिश्च सह जीर्णा भवंति । तथा वयममाजुरो न भवाम । कथं । सचा ऋत्विग्भिः सह सुतेऽभिषुते सोमे वयं तु नि षदाम । निवसाम । तस्मात्सोमदानेन त्वया सह सखिभावं कुर्म इत्यर्थः ॥ ॥३॥

मा ते॑ गोदत्र॒ निर॑राम॒ राध॑स इंद्र॒ मा ते॑ गृहामहि ।
दृ॒ळ्हा चि॑द॒र्यः प्र मृ॑शा॒भ्या भ॑र॒ न ते॑ दा॒मान॑ आ॒दभे॑ ॥१६॥
मा । ते॒ । गो॒ऽद॒त्र॒ । निः । अ॒रा॒म॒ । राध॑सः । इं॒द्र॒ । मा । ते॒ । गृ॒हा॒म॒हि॒ ।
दृ॒ळ्हा । चि॒त् । अ॒र्यः । प्र । मृ॒श॒ । अ॒भि । आ । भ॒र॒ । न । ते॒ । दा॒मान॑ः । आ॒ऽदभे॑ ॥१६॥

हे गोदत्र स्तोतॄणां गवादिदानशील हे इंद्र ते तव स्वभूता वयं राधसो धनात्मा निरराम । मा निर्गमाम ॥ अर्तेर्लुङि सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेत्यङादेशः । ऋदृशोऽङीति गुणः ॥ सर्वदा त्वत्तो धनाढ्या भवाम। किंच ते तव स्वभूता वयं धनं प्रयच्छाम । कस्माच्चिन्मा गृहामहि । तस्मादन्यन्न गृह्णीमः । अपि तु त्वत्त एव धनं गृह्णीम इत्यर्थः ॥ गृहेर्लुङि बहुलं छंदसीति शः । ङित्वात्संप्रसारणं ॥ अर्यः स्वामी त्वं दृळ्हा चिद्दृढान्यपि विनश्वराणि धनानि प्र मृश । प्रकर्षेणास्मासु स्थापय । किंचाभ्याभिमुख्येना भर । धनादिभिः समंतादस्मान्पोषय । ते तव दामानस्तानि दानानि नादभे न कैश्चिदप्यादंभितुं शक्यंते । तस्माद्दानादियुक्तानस्मान् कुर्वित्यर्थः ॥

इंद्रो॑ वा॒ घेदि॒यन्म॒घं सर॑स्वती वा सु॒भगा॑ द॒दिर्वसु॑ । त्वं वा॑ चित्र दा॒शुषे॑ ॥१७॥
इंद्र॑ः । वा॒ । घ॒ । इत् । इ॒यत् । म॒घं । सर॑स्वती । वा॒ । सु॒ऽभगा॑ । द॒दिः । वसु॑ । त्वं ।
वा॒ । चि॒त्र॒ । दा॒शुषे॑ ॥१७॥

अत्र चित्रस्य दानं स्तौति । चित्रो नाम राजा सरस्वतीतीरे इंद्रार्थं यागमकृत । तत्र मंत्रद्रष्टर्षिर्बहुध-

नत्वाभावान्मह्यमेतावद्धनं को वा प्रायच्छदिति विकल्पयति । दाशुषे इंद्राय हवींषि दत्तवते मह्यमिंद्रो वा घेदिंद्र एव किं खल्वेतावन्मघं मंहनीयं धनं ददिः प्रायच्छत् । यद्वा सुभगा शोभनधना सरस्वती नदी वसु धनं ददिः किं प्रायच्छत् । अथवा चित्र एतन्नामक हे राजन् त्वं वैतावद्धनं मह्यं प्रादा इति ॥

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥
चित्रः । इत् । राजा । राजकाः । इत् । अन्यके । यके । सरस्वतीं । अनु ।
पर्जन्यःऽइव । ततनत् । हि । वृष्ट्या । सहस्रं । अयुता । ददत् ॥१८॥

अनया चित्र एव प्रादादिति निश्चयमकार्षीत् । सहस्रं सहस्रसंख्याकं धनमयुतायुतानि च धनानि च ददत् प्रयच्छंश्चित्र इच्चित्रनामैव राजा । अन्यके यके ॥ अल्प इत्यर्थे कः ॥ अल्पा येऽन्ये राजका इद्राजान एव सरस्वतीमनु सरस्वत्यास्तीरे वर्तंते । तान् सर्वानयाचमानानयमेव चित्रो राजा ततनत् धनैस्तनोति ॥ तनोतेर्लुङि चङि रूपं । चङ्यन्यतरस्यामिति स्वरः ॥ तत्र दृष्टांतः । पर्जन्य इव यथा पर्जन्यः पृथिवीं वृष्ट्या तनोति प्रीणयति तथायं चित्रः सर्वान् धनैः प्रीणयतीत्यर्थः ॥ ॥४॥

ओ त्यमह्व इत्यष्टादशर्चं द्वितीयं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षं । आद्यातृतीयापंचम्यो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः सप्तमी बृहत्यष्टम्यनुष्टुप् । काकुभं प्रागाथं हैत्युक्तत्वात् मूत्रेः शिष्टाश्चत्वारः काकुभाः प्रगाथाः । अश्विनौ देवता । तथा चानुक्रांतं । ओ त्यमाश्विनं त्रिप्रगाथादि बृहत्यनुष्टुबेकादश्याद्ये ककुम्मध्येज्योतिषी इति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे चाद्याः सप्तर्चः । सूत्रितं च । ओ त्यमह्व आ रथमिति सप्त । आ॰ ४.१५. । इति ॥

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥१॥
ओ इति । त्यं । अह्वे । आ । रथं । अद्य । दंसिष्ठं । ऊतये ।
यं । अश्विना । सुऽहवा । रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी । आ । सूर्यायै । तस्थथुः ॥१॥

हे अश्विनौ दंसिष्ठमत्यंतदर्शनीयं यद्वातिशयेन शत्रूणामुपक्षपयितारं त्यं तं युवयो रथमूतये रक्षणायास्मिन्यागदिनेऽह्वे । सोभरिरहमाह्वयामि । सुहवा स्तोत्रशस्त्रादिभिः शोभनमाह्वानौ रुद्रवर्तनी संग्रामे रोदनशीलमार्गौ यद्वा स्तूयमानमार्गौ हे अश्विनौ सूर्यायै सूर्यास्वयंवरे वरयितुं यं रथं युवामा तस्थथुः आश्रयथः तं रथमाह्वयामीति ॥

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यं ।
सचनावंतं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसं ॥२॥
पूर्वऽआपुषं । सुऽहवं । पुरुऽस्पृहं । भुज्युं । वाजेषु । पूर्व्यं ।
सचनाऽवंतं । सुमतिऽभिः । सोभरे । विऽद्वेषसं । अनेहसं ॥२॥

हे सोभरे सुमतिभिः कल्याणीभिः स्तुतिभिरश्विनो रथं स्तुहि । किंविशिष्टं । पूर्वापुषं पूर्वेषां स्तोतॄणां धनादिदानेन पोषकं सुहवं सुष्ठु शोभनाह्वानं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं भुज्युं ॥ भुज पालने ॥ सर्वस्य रक्षकं वाजेषु पूर्व्यं संग्रामेष्वग्रतो गंतारं सचनावंतं सर्वैर्भजनवंतं विद्वेषसं शत्रूणां विशेषेण द्वेष्टारमनेहसं केनचिदप्यनुपद्रवं पापरहितं वा रथं स्तुहीत्यन्वयः ॥

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गंतारा दाशुषो गृहं ॥३॥
इह । त्या । पुरुऽभूतमा । देवा । नमःऽभिः । अश्विना ।
अर्वाचीना । सु । अवसे । करामहे । गंतारा । दाशुषः । गृहं ॥३॥

पुरुभूतमातिशयेन बहूनां शत्रूणां भावयितारौ देवा देवौ द्योतनशीलौ स्तोतव्यौ वा दाशुषो हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहं प्रति गंतारौ गमनशीलौ त्या तावश्विनाश्विनौ युवामिहास्मिन्कर्मण्यवसे रक्षणाय नमोभिर्हविर्भिः स्तोत्रैर्वार्वाचीनार्वाचीनावभिमुखमागच्छंतौ सु करामहे । वयं सुष्ठु कुर्मः ॥

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥४॥
युवोः । रथस्य । परि । चक्रं । ईयते । ईर्मा । अन्यत् । वां । इषण्यति ।
अस्मान् । अच्छ । सुऽमतिः । वां । शुभः । पती इति । आ । धेनुःऽइव । धावतु ॥४॥

हे अश्विनौ युवोर्युवयो रथस्यैकं चक्रं परितो द्यां गच्छति । अन्यदवस्थितं रथस्य चक्रमीर्मैर्मौ सर्वस्यांतर्यामितया प्रेरकौ यद्वोदकस्य प्रेरयितारौ वां युवामिषण्यति । गच्छति । उक्तार्थे मंत्रांतरं । न्यघ्न्यस्य मूर्धनि । ऋ० १. ३०. १९. । इति । हे शुभस्पती उदकस्य पालयितारौ हे अश्विनौ वां युवयोः सुमतिः कल्याणी मतिरच्छाभिमुख्येनास्मान्प्रति आ धावतु । आगच्छतु । तत्र दृष्टांतः । धेनुरिव यथा नवप्रसूता गौर्वत्सं प्रति पयोदानार्थमागच्छति तद्वद्युवयोः सुमतिरस्मान्प्रति धनादिप्रदानार्थमागच्छतु ॥

रथो यो वां त्रिवंधुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतं ॥५॥
रथः । यः । वां । त्रिऽवंधुरः । हिरण्यऽअभीशुः । अश्विना ।
परि । द्यावापृथिवी इति । भूषति । श्रुतः । तेन । नासत्या । आ । गतं ॥५॥

हे अश्विनाश्विनौ त्रिवंधुरः । वंधुरं सारथिस्थानं । त्रिप्रकारवंधुरोपेतः । यद्वा । द्वे ईषे तन्मध्ये रज्जुसज्जनार्थको दंडः । एते त्रयो वंधुरशब्देनोच्यंते । त्रिवंधुरयुक्तो हिरण्याभीशुर्हिरण्मयाश्वादिरज्जुर्वां युवयोर्यो रथः श्रुतः सर्वत्र प्रसिद्धः सन् द्यावापृथिव्यौ परि भूषति स्वबलेन परिभवति ॥ भवतेर्लेटि सिप्यडागमः ॥ यद्वा । परितः स्वप्रकाशेनालंकरोति । हे नासत्या नासत्यौ तेन पूर्वोक्तेन रथेना गतं । आगच्छतं ॥ ॥५॥

दशस्यंता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥
दशस्यंता । मनवे । पूर्व्यं । दिवि । यवं । वृकेण । कर्षथः ।
ता । वां । अद्य । सुमतिऽभिः । शुभः । पती इति । अश्विना । प्र । स्तुवीमहि ॥६॥

हे अश्विनौ पूर्व्यं पुरातनं दिवि द्युलोके स्थितमुदकं मनव एतन्नामकाय राज्ञे दशस्यंता दशस्यंतौ प्रयच्छंतौ युवां वृकेण । वृको लांगलं भवति विकर्तनात् । नि० ६. २६. । इति यास्कः । तेन लांगलेन यवं यवनामकं धान्

वर्षथः। पुनश्च तस्मै विलेखनं कुरुथः। शुभस्पती उदकस्य पालयितारौ हे अश्विनाश्विनौ ता तौ पूर्वोक्तलक्षणयुक्तौ वां युवामस्मास्विन्यस्मिन्दिने सुमतिभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः प्रकर्षेण स्तुवीमहि। वयं स्तुमः॥

उप॑ नो वाजिनीवसू या॒तमृ॒तस्य॑ प॒थिभिः॑।
येभि॑स्तृ॒क्षिं वृ॑षणा त्रासदस्य॒वं म॒हे क्ष॒त्राय॒ जिन्व॑थः॥७॥
उप॑। नः॒। वा॒जि॒नी॒व॒सू॒ इति॑ वाजिनीऽवसू। या॒तं। ऋ॒तस्य॑। प॒थिऽभिः॑।
येभिः॑। तृ॒क्षिं। वृ॒ष॒णा॒। त्रा॒स॒द॒स्य॒वं। म॒हे। क्ष॒त्राय॑। जिन्व॑थः॥७॥

हे वाजिनीवसू अन्नधनवंतौ। अन्नमेव धनं ययोस्तौ। अश्विनौ ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य पथिभिर्मार्गैर्नो ऽस्मानुप यातं। आगच्छतं। वृषणा वृषणौ धनानां सेक्तारौ हे अश्विनौ त्रासदस्यवं त्रसदस्योः पुत्रं तृक्षिमेतन्नामकं येभिर्यैर्यज्ञमार्गैर्महे महते क्षत्राय धनाय जिन्वथः प्रीणयथ एव। तैर्मार्गैरस्मान् धनादिभिः प्रीणयितुमागतमित्यर्थः॥

अ॒यं वा॒मद्रि॑भिः सु॒तः सोमो॑ नरा वृषण्वसू।
आ या॑तं॒ सोम॑पीतये॒ पिब॑तं दा॒शुषो॑ गृ॒हे॥८॥
अ॒यं। वा॒ं। अद्रि॑ऽभिः। सु॒तः। सोमः॑। न॒रा॒। वृ॒ष॒ण्व॒सू॒ इति॑ वृषण्ऽवसू।
आ। या॒तं॒। सोम॑ऽपीतये। पिब॑तं। दा॒शुषः॑। गृ॒हे॥८॥

नरा सर्वस्य नेतारौ यद्वा स्तोतॄणां धनस्य नेतारौ वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतौ हे अश्विनौ वां युष्मदर्थमद्रिभिर्ग्रावभिरयं सोमः सुतोऽभिषुतः। तस्मात्सोमपीतये सोमपानार्थं युवामा यातं। आगत्य च दाशुषो हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहे यज्ञस्थाने सोमं युवां पिबतं॥

आ हि रु॒हत॑मश्विना॒ रथे॒ कोशे॑ हिर॒ण्यये॑ वृषण्वसू। यु॒ञ्जाथां॒ पीव॑रीरिषः॥९॥
आ। हि। रु॒हत॑ं। अ॒श्वि॒ना॒। रथे॑। कोशे॑। हि॒र॒ण्यये॑। वृ॒ष॒ण्व॒सू॒ इति॑ वृषण्ऽवसू।
यु॒ञ्जाथा॑ं। पीव॑रीः। इषः॑॥९॥

वृषण्वसू वर्षणशीलधनौ हे अश्विनाश्विनौ हिरण्यये हिरण्मयरज्ज्वादियुक्ते कोशे आयुधादीनां कोशस्थाने रमणशीले रथे। हिरवधारणे। युवामेवा रुहतं। आरोहणं कुरुतं। ततः पीवरीः पावयितॄणि स्थूलानि वेषोऽन्नानि युंजाथां। अस्मासु योजयतं॥

याभिः॑ प॒क्थमव॑थो॒ याभि॒रध्रि॑गुं॒ याभि॑र्ब॒भ्रुं विजो॑षसं।
ताभि॑र्नो म॒क्षू तूय॑मश्विना॒ गत॑ं भिषज्य॒तं यदातु॑रं॥१०॥
याभिः॑। प॒क्थं। अव॑थः। याभिः॑। अध्रि॑ऽगुं। याभिः॑। ब॒भ्रुं। विऽजो॑षसं।
ताभिः॑। नः॒। म॒क्षु। तूय॑ं। अ॒श्वि॒ना॒। आ। ग॒तं॒। भि॒ष॒ज्यत॑ं। यत्। आतु॑रं॥१०॥

हे अश्विनौ याभिरूतिभिः पक्थमेतन्नामकं राजानमवथः रक्षथः। याभिरूतिभिश्चाध्रिगुमधृतगमनं राजानमवथः। याभिरूतिभिश्च बभ्रुं राजानं च विजोषसं विशेषेण सोमैः प्रीणयंतं। एतान् सर्वान् यैः पालनैरवथः ताभिरूती रक्षणैर्मक्षु क्षिप्रं तूयं तूर्णं नोऽस्माना गतं। रक्षणार्थमागच्छतं। किंच यद्यदातुरं रोगादिसहितमस्माकं पुत्रादिकं प्रति भिषज्यतं। भैषज्यं कुरुतं। भिषक्कंड्वादिः॥ ॥६॥

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे। वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११॥
यत्। अध्रिऽगावः। अध्रिगू इत्यध्रिऽगू। इदा। चित्। अह्नः। अश्विना। हवामहे।
वयं। गीःऽभिः। विपन्यवः ॥११॥

अध्रिगावोऽधृतगमनाः कर्मसु त्वरमाणा विपन्यवो मेधाविनो वयमध्रिगू अधृतगमनौ संग्रामे शत्रुवधार्थं त्वरया गच्छंतावश्विनाश्विनौ युवामह्नो दिवसस्येदा चिदिदानीमेव प्रातःकाले गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिर्यद्यदा हवामहे युवामाह्वयामः तदा ताभिरूतिभिरस्मानागच्छतमित्युत्तरत्र संबंधः ॥

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यं।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतं ॥१२॥
ताभिः। आ। यातं। वृषणा। उप। मे। हवं। विश्वऽप्सुं। विश्वऽवार्यं।
इषा। मंहिष्ठा। पुरुऽभूतमा। नरा। याभिः। क्रिविं। ववृधुः। ताभिः। आ। गतं ॥१२॥

वृषणा वृषणौ वर्षणशीलौ हे अश्विनौ विश्वप्सुं। प्सुरिति रूपनाम। स्तोत्रशस्त्रात्मकत्वेन नानारूपं विश्ववार्यं सर्वैर्देवैर्वरणीयं मे मदीयं हवं युष्मद्विषयमाह्वानमाभिमुख्यीकृत्य ताभिरूतिभिरुप यातं। युवामागच्छतं। याभिर्नरा नरौ सर्वस्य नेतारावश्विनाविषा ॥ इष इच्छायां ॥ हवींषीच्छंतौ मंहिष्ठा मंहिष्ठावतिशयेन धनानां दातारौ पुरुभूतमा पुरुभूतमौ युद्धेष्वत्यंतं पुरुधा भवंतौ यद्वातिशयेन बहूनां शत्रूणामभिभवितारौ भवंतौ क्रिविं कूपं प्रति याभिरूतिभिरुदकानि वावृधुः अवर्धयतः ॥ द्वयोर्बहुवचनं पूजार्थं ॥ कूपपतितो वंदनो मायाभिः कूपं पूरयित्वा युवाभ्यामुत्थापितः खलु। तथा मंत्रः। उद्वंदनमैरयतं स्वर्दृशे। ऋ० १. ११२. ५.। इति। ताभिस्तैः पालनैरा गतं। अस्मद्रक्षणार्थमागच्छतं ॥

ताविदा चिदहानां तावश्विना वंदमान उप ब्रुवे। ता ऊ नमोभिरीमहे ॥१३॥
तौ। इदा। चित्। अहानां। तौ। अश्विना। वंदमानः। उप। ब्रुवे। तौ। ऊं इति।
नमःऽभिः। ईमहे ॥१३॥

तौ संग्राम आयुधानि स्तोतृभ्यो धनानि वा विस्तारयंतौ पूर्वोक्तावश्विनाश्विनावहानामह्नामिदा चिदिदानीमेव प्रातःकाले वंदमानोऽभिवादनं कुर्वन् सन्नुप ब्रुवे। तयोः समीपे स्तौमि। ततस्ता उ तावेव नमोभिर्हविर्भिः स्तोत्रैर्वेमहे। वयं धनादिकं याचामहे ॥

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतं ॥१४॥
तौ। इत्। दोषा। तौ। उषसि। शुभः। पती इति। ता। यामन्। रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी।
मा। नः। मर्ताय। रिपवे। वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू। परः। रुद्रौ। अति।
ख्यतं ॥१४॥

शुभस्पती उदकस्य पालयितारौ रुद्रवर्तनी युद्धे रोदनशीलमार्गौ स्तूयमानमार्गौ वा तावित्तावेवाश्विनौ दोषा दोषायां रात्रौ तावेवोषस्युषःकाले तावश्विनौ यामन्यामन्यहनि च सर्वेषु कालेषु वयमश्विनावाह्वयामः। एवं सति वाजिनीवसू अन्नधनौ रुद्रौ हे अश्विनौ मर्ताय मनुष्याय रिपवे शत्रवे नोऽस्मत्परः परस्तान्माति ख्यतं। मा ब्रूतं। शत्रवेऽस्मान्मा कुरुतमित्यर्थः ॥

आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी। हुवे पितेव सोभरी ॥१५॥
आ। सुग्म्याय। सुग्म्यं। प्रातरिति। रथेन। अश्विना। वा। सक्षणी इति। हुवे।
पिताऽइव। सोभरी ॥१५॥

वापि च सक्षणी सेवनीयशीलावश्विनाश्विनौ युवां सुग्म्याय सुखार्हाय मह्यं सुग्म्यं सुखं प्रातःकाले रथेनावहतं। ततः सोभरी सोभरिरहं हुवे। युवामाह्वयामि। तत्र दृष्टांतः। पितेव यथा मम पिताजुहाव तद्वदहमाह्वयामि॥ ॥७॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥१६॥
मनःऽजवसा। वृषणा। मदऽच्युता। मक्षुऽगमाभिः। ऊतिऽभिः।
आरात्तात्। चित्। भूतं। अस्मे इति। अवसे। पूर्वीभिः। पुरुऽभोजसा ॥१६॥

हे मनोजवसा मनोवच्छीघ्रं गच्छंतौ वृषणा वृषणौ धनानां वर्षितारौ मदच्युता। माद्यंतीति मदाः शत्रवः। तेषां च्यावयितारौ पुरुभोजसा बहूनां भोक्तारौ रक्षकौ यद्वा बहून् स्तोतॄन् धनादिभिर्भोजयंतौ हे अश्विनौ मक्षुंगमाभिः शीघ्रं गच्छद्भिरूतिभी रक्षाभिः पूर्वीभिर्बहुभिरस्मे अस्माकमवसे रक्षणायारात्तादंतिक एव भूतं। भवतं॥

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा। गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७॥
आ। नः। अश्वऽवत्। अश्विना। वर्तिः। यासिष्टं। मधुऽपातमा। नरा। गोऽमत्।
दस्रा। हिरण्यऽवत् ॥१७॥

मधुपातमातिशयेन मधोः सोमस्य पातारौ नरा नेतारौ दस्रा सर्वैर्दर्शनीयौ हे अश्विनौ नोऽस्माकं वर्तिः। वर्ततेऽत्रेति वर्तिर्गृहं। तदश्वावदश्वयुक्तं गोमद्गवादियुक्तं हिरण्यवत्सुवर्णकनकादियुक्तं कृत्वा आ यासिष्टं। आगच्छतं। यद्वा। अस्मान्प्रति वर्तिर्यज्ञमार्गमश्वादियुक्तं कृत्वागच्छतं॥ यातेर्लुङि रूपं॥

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥१८॥
सुऽप्रावर्गं। सुऽवीर्यं। सुष्ठु। वार्यं। अनाधृष्टं। रक्षस्विना।
अस्मिन्। आ। वां। आऽयाने। वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू। विश्वा।
वामानि। धीमहि ॥१८॥

सुप्रावर्गं शोभनं प्रवर्जनं यस्य तत्। स्तोतृभ्यः स्वयमेव प्रयच्छतीत्यर्थः। तथाविधं सुवीर्यं शोभनवीर्यं सुष्ठु शोभनं यथा भवति तथा वार्यं सर्वैर्वरणीयं रक्षस्विना बलवताप्यनाधृष्टमनभिभवनीयं धनमा धीमहि। त्वत्तो वयं धारयामः। तदेवाह। वाजिनीवसू बलयुक्तधनावन्नधनौ वाश्विनौ वां युवयोरस्मिन्नायानेऽस्मद्गृहं प्रत्यागमने विश्वा विश्वानि दिव्यभौमादीनि वामानि धनान्या धीमहि। वयं लभामहे॥ धीङ् आधार इत्यस्य लिङि छांदसो विकरणस्य लुक्॥ ॥८॥

ईळिष्वेति त्रिंशदृचं तृतीयं सूक्तं। व्यश्वपुत्रो विश्वमना ऋषिः। उष्णिक् छंदः। अग्निर्देवता। तथा चानु-

क्रांतं। ईळिष्व त्रिंशद्विश्वमना वैयश्व आग्नेयमौष्णिहं हेति ॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतावौष्णिहे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। सूत्रितं च। ईळिष्वा हीत्यौष्णिहं। आ॰ ४. १३.। इति ॥

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं१ यजस्व जातवेदसं। चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषं ॥१॥

ईळिष्व। हि। प्रतीव्यं। यजस्व। जातऽवेदसं। चरिष्णुऽधूमं। अगृभीतऽशोचिषं ॥१॥

प्रतीव्यं शत्रुषु प्रतिगमनशीलमग्निं। हिरवधारणे। अग्निमेवेळिष्व। स्तुतिभिः स्तोत्रं कुरु। किंच चरिष्णुधूमं सर्वतश्चरणशीलधूमजालमगृभीतशोचिषं रक्षोभिरगृह्यमाणदीप्तिं जातवेदसं जातप्रज्ञं। यद्वा। जातानि भूतानि वेत्तीति जातवेदाः। तमग्निं यजस्व। हविर्भिः पूजय ॥

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा। उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानां ॥२॥

दामानं। विश्वऽचर्षणे। अग्निं। विश्वऽमनः। गिरा। उत। स्तुषे। विऽस्पर्धसः।
रथानां ॥२॥

उतापि च हे विश्वचर्षणे विश्वस्य सर्वस्यार्थस्य ज्ञानेन द्रष्टर्विश्वमनः। सर्वेषु स्थावरजंगमात्मकेष्वेकं मनो यस्य सः। एतन्नामक हे ऋषे विस्पर्धसो विगतमात्सर्यस्य यजमानस्य रथानां रथादीनां दामानं दातारमेवंविधमग्निं गिरा स्तुतिलक्षणया वाचा स्तुषे। स्तोत्रं कुरु ॥

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे। उपविदा वह्निर्विंदते वसु ॥३॥

येषां। आऽबाधः। ऋग्मियः। इषः। पृक्षः। च। निऽग्रभे। उपऽविदा। वह्निः।
विंदते। वसु ॥३॥

आबाधः शत्रूणामाभिमुख्येन बाधक ऋग्मिय ऋग्भिरर्चनीयोऽग्निर्येषामयजमानानामिषोऽन्नानि पृक्षोऽन्नादिरसांश्च निग्रभे निगृह्णीते ॥ ग्रहेर्लटि छांदसो विकरणस्य लुक्। लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः। हृग्रहोर्भश्छंदसीति भकारः ॥ निगृह्य च वह्निर्हविषां वोढा स एवाग्निरुपविदोपवेदनेन एते हवींषि देवार्थं न प्रयच्छंतीत्येतज्ज्ञानेन तेषामेव वसु धनं विंदते। लभते ॥

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्य१जरं। तपुर्जंभस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥४॥

उत्। अस्य। शोचिः। अस्थात्। दीदियुषः। वि। अजरं। तपुःऽजंभस्य। सुऽद्युतः।
गणऽश्रियः ॥४॥

दीदियुषः। दीदितिर्दीप्तिकर्मा। संदीप्यमानस्य तपुर्जंभस्य तापयितृदंष्ट्रस्य सुद्युतः शोभनदीप्तेर्गणश्रियः। हविरादानार्थं यजमानगणं श्रयति तस्य। अस्यैतादृशोऽग्नेरजरं जरारहितं पुनःपुनर्मथ्यमानत्वान्नूतनं हविर्भिर्वर्धमानत्वादभिनवं वा शोचिस्तेज उदस्थात्। उन्नतमभूत् ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा। अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥५॥

उत्। ऊं इति। तिष्ठ। सुऽअध्वर। स्तवानः। देव्या। कृपा। अभिऽख्या। भासा।
बृहता। शुशुक्वनिः ॥५॥

स्वध्वर शोभनयज्ञ हे अग्ने अभिख्याभिमुखं गच्छंत्याभितः प्रसिद्धया वा बृहता बृहत्या भासा दीप्त्या शुशुक्वनिः ॥ शुच दीप्तौ ॥ दीपनशीलस्त्वं स्तवानः स्तोतृभिः स्तूयमानः सन् देव्या द्योतमानया कृपा ज्वालयोत्तिष्ठ। तमःपरिहारार्थमुन्नच्छ। उ प्रसिद्धौ ॥ ॥९॥

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक्। यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥६॥
अग्ने। याहि। सुशस्तिऽभिः। हव्या। जुह्वानः। आनुषक्। यथा। दूतः। बभूथ। हव्यऽवाहनः ॥६॥

हे अग्ने आनुषगानुषक्तं यथा भवति तथा हव्या हव्यानि हवनयोग्यान्यन्नानि जुह्वानो जुह्वन् देवेभ्यः यच्छंस्त्वं सुशस्तिभिः शोभनैः स्तोत्रैः सह याहि। देवानां हविष्प्रदानार्थं गच्छ। अस्य हविष्प्रदातृत्वं कथमिाशंक्याह। यथा त्वं हव्यवाहनो हविषां वोढा देवानां दूतो बभूथ भवसि तथा जुह्वान इत्यन्वयः ॥

अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनां। तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥७॥
अग्निं। वः। पूर्व्यं। हुवे। होतारं। चर्षणीनां। तं। अया। वाचा। गृणे। तं। ऊं इति। वः। स्तुषे ॥७॥

चर्षणीनां मनुष्याणां होतारं होमनिष्पादकं पूर्व्यं पुरातनं वो यष्टृत्वेन युष्मत्संबंधिनमग्निं हुवे। आह्वयामि। आहूय च तमग्निमयानया सूक्तरूपया वाचा गिरा गृणे। शंसामि। किंच वो युष्मदर्थं तमु मेवाग्निं स्तुषे। स्तौमि ॥

यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयंत इत्। मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥८॥
यज्ञेभिः। अद्भुतऽक्रतुं। यं। कृपा। सूदयंते। इत्। मित्रं। न। जने। सुऽधितं। ऋतऽवनि ॥८॥

अद्भुतक्रतुं बहुविधप्रज्ञं यद्वा चित्रकर्माणं मित्रं न यजमानानां मित्रमिव स्थितं सुधितं हविर्भिः संतर्पितं मग्निमृतावनि यज्ञवति जने यजमाने कृपा स्वसामर्थ्येन यज्ञेभिर्यज्ञैः सूदयंते। सूदिः क्षरणकर्मा। अध्वर्य्वायः कामान् क्षारयंत्येव। यजमानस्य कामान् प्रापयंतीत्यर्थः। तमग्निमुपासेवध्वमित्युत्तरत्र संबंधः ॥

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा। उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥९॥
ऋतऽवानं। ऋतऽयवः। यज्ञस्य। साधनं। गिरा। उपो इति। एनं। जुजुषुः। नमसः। पदे ॥९॥

ऋतायवो यज्ञकामा हे यजमानाः ऋतावानं यज्ञवंतं यज्ञस्य साधनं साधनभूतमेनमग्निं नमसो हविषः दे स्थाने यज्ञांगे वा गिरा स्तुतिलक्षणया वाचोपो जुजुषुः। उपासेवध्वं ॥ तिङां तिङो भवंतीति मध्यमपुषस्य प्रथमपुरुषादेशः ॥

अच्छा नो अंगिरस्तमं यज्ञासो यंतु संयतः। होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥१०॥
अच्छ। नः। अंगिरःऽतमं। यज्ञासः। यंतु। संऽयतः। होता। यः। अस्ति। विक्षु। आ। यशःऽतमः ॥१०॥

संयतः स्रुगादिभिर्नियमिता नोऽस्माकं यज्ञासो यज्ञा अंगिरस्तममंगिरसां विशिष्टमग्निमच्छाभिमुख्येन च तु। गच्छंतु। योऽग्निर्विक्षु मनुष्येषु होता होमनिष्पादकः सन्ना सर्वतो यशस्तमः ॥ स्रुप्तमत्वर्थीयः ॥ यशस्विमोऽस्ति भवति तमग्निं यंत्वित्यन्वयः ॥ ॥१०॥

अग्ने तव त्ये अजरेंधानासो बृहद्भाः। अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥११॥
अग्ने। तव। त्ये। अजर। इंधानासः। बृहत्। भाः। अश्वाःऽइव। वृषणः। तविषीऽयवः ॥११॥

अजर जरारहित हे अग्ने इंधानास इंधाना दीप्यमाना बृहद्बृहंतो महांतस्ते ते सर्वगतास्तव त्वदीया भा भासो रश्मयो वृषणः कामानां वर्षितारः संतस्तविषीयवो बलमाचरंतो भवंति। तत्र दृष्टांतः। अश्वा इव यथा वृषणो रेतसः सेक्तारोऽश्वा बलमाचरंतो भवंति तद्वत्॥

स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यं। प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥१२॥
स। त्वं। नः। ऊर्जां। पते। रयिं। रास्व। सुऽवीर्यं। प्र। अव। नः। तोके। तनये।
समत्ऽसु। आ ॥१२॥

ऊर्जामन्नानां पते स्वामिन् हे अग्ने स तथाविधस्त्वं नोऽस्मभ्यं सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं रयिं धनं रास्व। देहि। नोऽस्माकं तोके पुत्रे तनये। तनोति विस्तारयति पुत्रमिति तनयः पौत्रः। तस्मिन्वर्तमानं धनं समत्सु संग्रामेषु च यद्रक्षितव्यं धनं तच्च प्राव। प्रकर्षेण रक्ष। अनेन पुत्रपौत्रप्रार्थनं करोति॥

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि। विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥१३॥
यत्। वै। ऊं इति। विश्पतिः। शितः। सुऽप्रीतः। मनुषः। विशि। विश्वा। इत्। अग्निः।
प्रति। रक्षांसि। सेधति ॥१३॥

विश्पतिर्विशां पालयिता शितो हविर्भिस्तीक्ष्णीकृतः सोऽग्निः सुप्रीतः सुष्ठु प्रीतः सन् मनुषो मनुष्यस्य विशि निवेशने गृहे यद्वै यदा खलु वर्तते तदानीमग्निर्विश्वेद्विश्वान्येव तस्य बाधकानि रक्षांसि प्रति षेधति। हिनस्ति॥ षिधु गत्यां। भौवादिकः। उ प्रसिद्धौ॥

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते। नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥१४॥
श्रुष्टी। अग्ने। नवस्य। मे। स्तोमस्य। वीर। विश्पते। नि। मायिनः। तपुषा।
रक्षसः। दह ॥१४॥

वीर शत्रूणां विनाशयितर्वीर्यवन्विश्पते विशां पालयितर्हे अग्ने नवस्येदानींक्रियमाणत्वान्नूतनं मे मदीयं स्तोमस्य स्तोत्रशस्त्रादिकं श्रुष्टी श्रुत्वा मायिनो मायाविनो रक्षसो कर्मविघ्नकारिणो राक्षसांस्तपुषा तापकेन तेजसा नि दह। नितरां भस्मीकुरु॥ श्रुष्टी। स्नात्व्यादयश्चेति निपातितः। वकारलोपश्छांदसः॥

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः। यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥१५॥
न। तस्य। मायया। चन। रिपुः। ईशीत। मर्त्यः। यः। अग्नये। ददाश। हव्यदातिऽभिः ॥१५॥

मर्त्यो मनुष्यो रिपुः शत्रुः। चनेति निपातसमुदायोऽप्यर्थे। मायया चन माययापि तस्य जनस्य नेशीत। ईश्वरो न भवति। यो जनो हव्यदातिभिर्हविषां दातृभिर्ऋत्विग्भिरग्नये ददाश हवींषि प्रयच्छति। तस्य रिपुर्नास्तीत्यर्थः॥ ॥११॥

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः। महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥१६॥
विऽअश्वः। त्वा। वसुऽविदं। उक्षण्युः। अप्रीणात्। ऋषिः। महः। राये। तं।
ऊं इति। त्वा। सं। इधीमहि ॥१६॥

उक्षण्युर्धनानां सेक्तारमात्मन इच्छन् यद्वा वृष्टिसेक्तारमिच्छन् व्यश्व ऋषिरेतन्नामको मम पिता वसुविदं वसूनां धनानां लंभकं त्वामप्रीणात्। धनादिप्राप्त्यर्थं हविर्भिरतोषयत्। तथा वयमपि महो महते राये धनाय तमु तथाविधमेव त्वा त्वां समिधीमहि। सम्यगाज्यादिहविर्भिर्दीपयेम॥

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत्। आयजिं त्वा मनवे जातवेदसं ॥१७॥
उशना। काव्यः। त्वा। नि। होतारं। असादयत्। आऽयजिं। त्वा। मनवे। जातऽवेदसं ॥१७॥

हे अग्ने काव्यः कविपुत्र उशनैतन्नामक ऋषिर्मनवे राज्ञे। तस्य गृह इत्यर्थः। आयजिमाभिमुख्येन यष्टारं जातवेदसं जातप्रज्ञं त्वा त्वां। पुनस्त्वाशब्द आदरार्थः। त्वामेव होतारं होमनिष्पादकं न्यसादयत्। नितरामुपावेशयत्॥

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत। श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥१८॥
विश्वे। हि। त्वा। सऽजोषसः। देवासः। दूतं। अक्रत। श्रुष्टी। देव। प्रथमः। यज्ञियः। भुवः ॥१८॥

हे अग्ने विश्वे सर्वे देवासो देवाः सजोषसः संगताः संतोऽस्माकं हवींष्यानयतीति विचार्य। हिरवधारणे। त्वामेव दूतं हविषां वोढारं दूतमक्रत। अकार्षुः। ततो देव द्योतमान हे अग्ने प्रथमो देवानां मुख्यभूतस्त्वं श्रुष्टी। श्रुष्टीति क्षिप्रनाम। क्षिप्रं यज्ञियो देवानां हविर्दातृत्वेन यज्ञार्हो भुवः। भूयाः॥

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः। पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसं ॥१९॥
इमं। घ। वीरः। अमृतं। दूतं। कृण्वीत। मर्त्यः। पावकं। कृष्णऽवर्तनिं। विऽहायसं ॥१९॥

अनया यजमानस्याग्निं देवानां दूतमकार्षीदित्याह। वीरः कर्मणि समर्थो मर्त्यो मनुष्यो यजमानोऽमृतं मरणधर्मरहितं पावकं पापानां शोधकं कृष्णवर्तनिं। वर्तनिर्मार्गः। कृष्णमार्गं विहायसं। विहाया इति महन्नाम। गुणैस्तेजोऽधिकत्वेन वा महांतमिमं घेममेवाग्निं दूतं देवानां वोढृत्वेन दूतं कृण्वीत। अकार्षीत्॥

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषं। विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यं ॥२०॥
तं। हुवेम। यतऽस्रुचः। सुऽभासं। शुक्रऽशोचिषं। विशां। अग्निं। अजरं। प्रत्नं। ईड्यं ॥२०॥

यतस्रुचो गृहीतस्रुचो यद्वा तत्तत्स्थानेषु नियमितस्रुचो वयं सुभासं शोभनदीप्तिं शुक्रशोचिषं दीपनशीलतेजस्कं विशां स्वामिनं। यद्वा। विशामीड्यमित्यन्वयः। मनुष्याणां स्तोतव्यमजरं जरारहितं प्रत्नं पुरातनं तं तथाविधमग्निं हुवेम। स्तोत्रशस्त्रादिभिराह्वयामः॥ ॥१२॥

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्। भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥२१॥
यः। अस्मै। हव्यदातिऽभिः। आऽहुतिं। मर्तः। अविधत्। भूरि। पोषं। सः। धत्ते। वीरऽवत्। यशः ॥२१॥

यो मर्तो मनुष्यो हव्यदातिभिर्हविर्दातृभिर्ऋत्विग्भिरस्मा अग्नय आहुतिमविधत् विदधाति स मनुष्यो भूरि बहु पोषं धनादिभिः पोषणं वीरवत् पुत्रपौत्रादियुक्तं यशः कीर्तिं च धत्ते। धारयति। तस्मै धनादीनि प्रयच्छतीत्यर्थः॥

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं । प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥२२॥
प्रथमं । जातऽवेदसं । अग्निं । यज्ञेषु । पूर्व्यं । प्रति । स्रुक् । एति । नमसा । हविष्मती ॥२२॥

प्रथमं देवानां प्रधानभूतं जातवेदसं जातप्रज्ञं पूर्व्यं पुरातनं एतादृशमग्निं यज्ञेष्वग्निष्टोमादियज्ञेषु हविष्मती सोमादिहविर्युक्ता स्रुगमसा स्तोत्रेण नमस्कारेण वा सह प्रत्येति । अग्निं प्रति गच्छति ॥

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥२३॥
आभिः । विधेम । अग्नये । ज्येष्ठाभिः । व्यश्वऽवत् । मंहिष्ठाभिः । मतिऽभिः । शुक्रऽशोचिषे ॥२३॥

विश्वमनोनामका वयं ज्येष्ठाभिः प्रशस्यतमाभिर्मंहिष्ठाभिः पूज्यतमाभिराभिः सूक्तरूपाभिः स्तुतिभिः शुक्रशोचिषे ज्वालातेजसेऽग्नये विधेम । परिचरेम वयमिह व्यश्ववत् । यथा व्यश्वोऽस्माकं पिताग्निं स्तुतिभिः पर्यचरत् तद्वद्वयमपि परिचरेम ॥

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥२४॥
नूनं । अर्च । विऽहायसे । स्तोमेभिः । स्थूरयूपऽवत् । ऋषे । वैयश्व । दम्याय । अग्नये ॥२४॥

वैयश्व व्यश्वस्य पुत्र हे विश्वमनोनामकर्षे विहायसे महते दम्याय दमे गृहेऽरणीभिर्मथ्यमानत्वेन भवाय । यद्वा । यजमानगृहाणां बाधपरिहारेण हिताय । अग्नये नूनं संप्रति स्तोमेभिस्त्रिवृत्पंचदशादिलक्षणैः स्तोमैरर्च । स्तुहि । तत्र दृष्टांतः । स्थूरयूपवत् । यथा स्थूरयूपो नामर्षिरेनमग्निमानर्च तद्वदर्चेत्यर्थः ॥

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनां । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥२५॥
अतिथिं । मानुषाणां । सूनुं । वनस्पतीनां । विप्राः । अग्निं । अवसे । प्रत्नं । ईळते ॥२५॥

विप्रा मेधाविनो यजमाना मानुषाणां मनुष्याणामतिथिमतिथिवत्पूज्यं वनस्पतीनां सूनुं वनस्पतिरूपाभिररणीभिर्जायमानत्वेन तेषां सूनुं प्रत्नं पुरातनं एवंविधमग्निमवसे कर्मरक्षणायेळते । स्तुतिभिः स्तुवंति ॥ ॥१३॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा । अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥२६॥
महः । विश्वान् । अभि । सतः । अभि । हव्यानि । मानुषा । अग्ने । नि । सत्सि । नमसा । अधि । बर्हिषि ॥२६॥

हे अग्ने महः कर्मकर्तृत्वेन महतो विश्वान् सर्वान् सतः स्तोत्रकरणार्थं वर्तमानान् स्तोतॄनभ्यभितस्त्वं नमसा स्तुत्यतया बर्हिष्यधि नि षत्सि । निषीद । तथा मानुषा मनुष्यसंबंधीनि हव्यानि हवींष्यभ्यभितस्तानि स्वीकर्तुं निषीद ॥

वस्वा नो वार्या पुरु वस्व रायः पुरुस्पृहः। सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥२७॥
वस्व। नः। वार्या। पुरु। वस्व। रायः। पुरुऽस्पृहः। सुऽवीर्यस्य। प्रजाऽवतः। यशस्वतः ॥२७॥

हे अग्ने वार्या वार्याणि वरणीयानि पुरु पुरूणि बहूनि गवादीनि नोऽस्मभ्यं वस्व। प्रयच्छ। तथा पुरुस्पृहः पुरुभिर्बहुभिः स्पृहणीयं रायो धनं। किंविशिष्टं। सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतं प्रजावतः पुत्रपौत्रादिसहितं यशस्वतः कीर्तिमद्य धनं नोऽस्मभ्यं वस्व। प्रयच्छ ॥

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय। सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८॥
त्वं। वरो इति। सुऽसाम्ने। अग्ने। जनाय। चोदय। सदा। वसो इति। रातिं। यविष्ठ। शश्वते ॥२८॥

वरो सर्वैर्वरणीय वसो शत्रूणां वासयितर्यविष्ठ पुनःपुनर्जायमानत्वेन युवतम हे अग्ने त्वं सुषाम्णे सुसाम्ने ॥ सुषामादित्वात् षत्वं ॥ त्वत्प्रसादाच्छोभनसामवते शश्वते बहवे जनाय प्रादुर्भूताय स्तोतॄणां सदा सर्वदा रातिं धनादिकं चोदय। प्रेरय ॥

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः। महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥२९॥
त्वं। हि। सुऽप्रतूः। असि। त्वं। नः। गोऽमतीः। इषः। महः। रायः। सातिं। अग्ने। अप। वृधि ॥२९॥

हे अग्ने त्वं। हिरवधारणे। त्वमेव सुप्रतूः स्तोतॄणां धनादिकं सुष्ठु प्रदातासि। प्रयच्छसीत्यर्थः। अत एव गोमतीः पश्वादियुक्तानीषोऽन्नानि महो महतो रायो धनस्य मध्ये सातिं देयं धनं च नः स्तोतॄणामस्माकमपा वृधि। अपावृणु। प्रयच्छेत्यर्थः ॥

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह। ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥३०॥
अग्ने। त्वं। यशाः। असि। आ। मित्रावरुणा। वह। ऋतऽवाना। संऽराजा। पूतऽदक्षसा ॥३०॥

हे अग्ने त्वं यशाः ॥ लुप्तमत्वर्थीयः ॥ देवानां मध्ये यशस्व्यसि। भवसि। अत एव त्वमृतावाना ऋतावानौ सत्यवंतौ यज्ञवंतौ वा सम्राजा सम्राजौ सम्यग्राजमानौ पूतदक्षसा पूतदक्षसौ। दक्ष इति बलनाम। शुद्धबलौ मित्रावरुणावस्मिन्कर्मण्या वह। आहूय। प्रायेण कर्मण्यग्नेर्मित्रावरुणसहितत्वमस्तीति सूचयति ॥ ॥१४॥

सखाय आ शिषामहीति त्रिंशदृचं चतुर्थं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। सखायस्तृचोऽन्त्यः सौषाम्णस्य वरोर्दानस्तुतिरंत्यानुष्टुबिति। व्यश्वपुत्रो विश्वमना ऋषिः। औष्णिहं हेत्युक्तत्वादेतदादीनि त्रीणि सूक्तान्युष्णिक्छंदस्कानि। अनुक्तत्वादिंद्रो देवता। अंत्यासु तिसृषु सुषामाख्यस्य राज्ञः पुत्रस्य वरुनाम्नो राज्ञो दानं स्तूयते। अतस्तास्तद्देवताकाः ॥ महाव्रते निष्केवल्य औष्णिहतृचाशीतावेतत्सूक्तं। तथैव पंचमारण्यके शौनकेन सूत्र्यते। सखाय आ शिषामहि य एक इद्विदयते। ऐ॰ आ॰ ५. २. ५.। इति ॥ दशमेऽहनि मरुत्वतीयशस्त्रे सखाय इति तिस्र ऋचः। सूत्र्यते च। सखाय आ शिषामहीति तिस्र उष्णिहः। आ॰ ८. १२.। इति ॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेंद्राय वज्रिणे। स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१॥
सखायः। आ। शिषामहि। ब्रह्म। इंद्राय। वज्रिणे। स्तुषे। ऊं इति। सु। वः।
नृऽतमाय। धृष्णवे ॥१॥

सखायो मित्रभूता हे ऋत्विजः वज्रिणे वज्रहस्तायेंद्राय ब्रह्म कर्तव्यमेतत्सूक्तरूपं स्तोत्रमा शिषामहि। वयमाशास्महे॥ शासु अनुशिष्टौ। लुङि च्लेरङादेशः। इत्त्वषत्वे। व्यत्ययेनात्मनेपदं॥ तत्र वः सर्वेषामेव युष्माकमर्थाय नृतमाय सर्वेषां नेतृतमाय यद्वा संग्रामेष्वायुधादीनां नेतृतमाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणशीलाय तस्मा इंद्रायाहमेव सु सुष्ठु स्तुषे। स्तौमि॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा। मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥२॥
शवसा। हि। असि। श्रुतः। वृत्रऽहत्येन। वृत्रऽहा। मघैः। मघोनः। अति।
शूर। दाशसि ॥२॥

हे इंद्र त्वं शवसा बलेन श्रुतः प्रसिद्धोऽसि। भवसि। हि प्रसिद्धौ। तदेवाह। वृत्रहत्येन वृत्रासुरहननेन वृत्रहा वृत्रहेति प्रसिद्धो भवसि। शूर शौर्यवन् हे इंद्र मघोनो मघवतो धनवतः पुरुषान्मघैस्त्वदीयैर्धनैरत्यतिक्रम्य दाशसि। स्तोतृभ्योऽस्मभ्यं प्रयच्छसि॥

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमं। निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥३॥
सः। नः। स्तवानः। आ। भर। रयिं। चित्रश्रवःऽतमं। निरेके। चित्। यः।
हरिऽवः। वसुः। ददिः ॥३॥

हे इंद्र स तथाविधस्त्वं स्तवानोऽस्माभिः स्तूयमानः संश्चित्रश्रवस्तममतिशयेन नानाविधान्नोपेतं रयिं पुत्रं धनं वा नोऽस्मभ्यमा भर। संपादय। देहीत्यर्थः। हरिवः। हरी अश्वौ। तद्वन् हे इंद्र यस्त्वं निरेके चिन्निर्गमन एव वसुः शत्रूणां वासयिता भवसि। तवायुधनिर्गमनादेव शत्रवः पलायंते खलु। किंच त्वं ददिर्धनानां दाता भवसि॥

आ निरेकमुत प्रियमिंद्र दर्षि जनानां। धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥४॥
आ। निरेकं। उत। प्रियं। इंद्र। दर्षि। जनानां। धृषता। धृष्णो इति। स्तवमानः।
आ। भर ॥४॥

हे इंद्र उतापि च प्रियं प्रीणनात् प्रियतमं निरेकं। निरेकं धनं भवति विरेचनान्निर्गमनाद्वेति। तद्धनं जनानां स्तोतॄणामस्माकमा दर्षि। आविदारय। विवृतं कुरु॥ दॄ विदारणे। छांदसो विकरणस्य लुक्॥ विवृत्य च धृष्णो धर्षणशील हे इंद्र स्तवमानः स्तोतृभिरस्माभिः स्तूयमानः सन् धृषता धृष्टेन मनसा सहा भर। तद्धनमस्मभ्यं देहि॥

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरंत आमुरः। न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥५॥
न। ते। सव्यं। न। दक्षिणं। हस्तं। वरंते। आऽमुरः। न। परिऽबाधः। हरिऽवः।
गोऽइष्टिषु ॥५॥

हे हरिवोऽश्ववन्निंद्र आमुरः संग्राम आभिमुख्येन कर्तारः प्रतियोद्धारो गविष्टिषु पणिभिरपहृतानामं-

गिरसां गवामन्वेषणेषु ते तव सव्यं हस्तं न वरंते। न निवारयंति। तेषामायुधादिभिर्न निवार्यत इत्यर्थः। तथा दक्षिणं हस्तं च न निवारयंति। किंच परिबाधः परितो बाधमाना वृत्रादयोऽसुराश्च तव सव्यदक्षिणहस्तौ न निवारयंति। संग्रामेषु त्वया सर्वे शत्रवश्छिन्नहस्ताः सर्वतो गच्छंतु। त्वं तु तैरबाधितो वर्तस इत्यर्थः॥ ॥१५॥

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः। आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥६॥
आ। त्वा। गोभिःऽइव। व्रजं। गीःऽभिः। ऋणोमि। अद्रिऽवः। आ। स्म। कामं।
जरितुः। आ। मनः। पृण ॥६॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिस्त्वा त्वामा ऋणोमि। प्राप्नोमि॥ ऋणु गतौ। तनादिः॥ तत्र दृष्टांतः। गोभिरिव। यथा गोपालो गोभिर्व्रजं गोष्ठं गच्छति तद्वत्त्वां स्तुतिभिः प्राप्नोमीत्यर्थः। ततस्त्वं जरितुः स्तोतुर्मम कामं धनादिविषयमा पृण। आपूरय। तथा मनो मदीयं मानसं धनादिप्रदानेनापूरय॥

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहंतम। उग्रं प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥७॥
विश्वानि। विश्वऽमनसः। धिया। नः। वृत्रहन्ऽतम। उग्र। प्रनेतरिति प्रऽनेतः।
अधि। सु। वसो इति। गहि ॥७॥

हे वृत्रहंतमातिशयेन वृत्रासुरस्योपद्रवाणां वा हंतः॥ नाद्घस्येति तमपो नुडागमः॥ कीदृश। उग्रोद्गूर्णबल प्रणेतः स्तोतॄणां प्रकर्षेण धनादेर्नेतः॥ आमंत्रित इत्युपेत्यस्याविद्यमानवत्त्वाद्मप्रतिषेधः॥ तथाविध वसो शत्रूणां वासयितरिंद्र नः। पूजायां बहुवचनं। विश्वमनस एतन्नाम्नो मम विश्वानि सर्वाणि स्तोत्राणि कर्माणि वा धिया मनसा सु सुष्ठ्वधि गहि। अधिगच्छ। स्तुत्यतया यष्टव्यतया वा मनोवेगेन गच्छेत्यर्थः॥ गमेर्लोटि छांदसः शपो लुक्। हेर्ङिद्वद्भावादनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः॥

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः। वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥८॥
वयं। ते। अस्य। वृत्रऽहन्। विद्याम। शूर। नव्यसः। वसोः। स्पार्हस्य। पुरुऽहूत।
राधसः ॥८॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हंतः शूर बलवन् पुरुहूत पुरुभिर्बहुभिराह्वातव्येंद्र नव्यसो नवीयसः॥ ईयसुन ईकारलोपश्छांदसः॥ नवतरं स्पार्हस्य स्पृहणीयं राधसः॥ राध साध संसिद्धौ॥ शर्मादेः संसाधकं ते त्वदीयमस्य वसोः॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वसोः संप्रदानसंज्ञा। चतुर्थ्यर्थे बहुलं छंदसीति वसोः षष्ठी॥ त्वदीयमिदं परिदृश्यमानं धनं वयं विद्याम। लभेमहि॥ विद्लृ लाभे। आदादिकः। छांदसो विकरणस्य लुक्॥

इंद्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः। अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥९॥
इंद्र। यथा। हि। अस्ति। ते। अपरिऽइतं। नृतो इति। शवः। अमृक्ता। रातिः।
पुरुऽहूत। दाशुषे ॥९॥

हे नृतो सर्वस्यांतर्यामितया नर्तयितरिंद्र ते त्वदीयं शवो बलं यथापरीतमस्ति शत्रुभिरपरिगतमव्याप्तं भवति। हि प्रसिद्धौ। तथा हे पुरुहूत पुरुभिर्बहुभिराहूतेंद्र दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रातिर्धनादिदानममृक्ता शत्रुभिरहिंसितं भवति। त्वत्तो लब्धं यजमानस्य धनं शत्रवो न हिंसंति। यथा त्वदीयबलस्य रक्षक एवं तस्य धनस्यापि रक्षक इत्यर्थः॥

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे। दृळ्हश्चिद्दृह्य मघवन्मघत्तये ॥१०॥

आ। वृषस्व। महाऽमह। महे। नृऽतम। राधसे। दृळ्हः। चित्। दृह्य। मघऽवन्। मघत्तये ॥१०॥

हे महामहातिशयेन सर्वैः पूजनीय नृतम नेतृतमेंद्र महे महते राधसे शत्रुधनानां संसाधकाय बलाय बलार्थमा वृषस्व। स्वोदरमासिंच। सोमं पिबेत्यर्थः। हे मघवन् धनवन्निंद्र सोमपानेन मत्तः सन् दृळ्हश्चिद्दृढानि परैरबाधितान्यपि शत्रुपुराणि मघत्तये मघानां धनानां लाभाय दृह्य। जिघांस। विदारयेत्यर्थः॥ ॥१६॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११॥

नु। अन्यत्र। चित्। अद्रिऽवः। त्वत्। नः। जग्मुः। आऽशसः। मघऽवन्। शग्धि। तव। तत्। नः। ऊतिऽभिः ॥११॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र त्वं धनवान् दाता चेत्यपरिज्ञाय नोऽस्मदीयान्याशस आशंसनान्यभिलाषास्त्वत्तोऽन्यत्र देवादौ नु चित् पुरा जग्मुः। अगच्छन्। तत्र फलं नालभंत। इदानीं त्वं धनवान् दानशील इत्यस्माभिर्ज्ञातं। अत एव हे मघवन् धनवन्निंद्र तव त्वदीयं तच्छत्रुपुरविदारणलब्धं धनमूतिभिस्त्वद्रक्षणैर्नोऽस्मभ्यं शग्धि। देहि॥ शग्धीति दानकर्मा। शक्नोतेर्लोटि च्छांदसो विकरणस्य लुक्॥

नह्यंग नृतो त्वदन्यं विंदामि राधसे। राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२॥

नहि। अंग। नृतो इति। त्वत्। अन्यं। विंदामि। राधसे। राये। द्युम्नाय। शवसे। च। गिर्वणः ॥१२॥

हे नृतो नर्तयितर्गिर्वणो गीर्भिः स्तुतिभिर्वननीय संभजनीयेंद्र राधसे बलसंसाधकायान्नाय राये धनाय द्युम्नाय द्योतमानाय यशसे शवसे वर्धकाय बलाय च त्वत्त्वत्तोऽन्यं नहि विंदामि। न लभे। अंग प्रसिद्धौ॥

एंदुमिंद्राय सिंचत पिबाति सोम्यं मधु। प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३॥

आ। इंदुं। इंद्राय। सिंचत। पिबाति। सोम्यं। मधु। प्र। राधसा। चोदयाते। महिऽत्वना ॥१३॥

हे ऋत्विजः इंदुं स्यंदनशीलं सोममिंद्रार्थमा सिंचत। आग्रयणाद्द्रव्येण सेचनं कुरुत। अभिषुतेत्यर्थः। ततः सोम्यं सोममयं मधु मधुकरं सोमरसं पिबाति। पिबतु। पीत्वा च स इंद्रो महित्वना स्वमहत्त्वेनैव राधसान्नेन सह धनादिकं स्तोतृभ्यः प्र चोदयाते। प्रकर्षेण चोदयति। यद्वा। यजमानो महित्वना। इंद्राय प्रदीयमानत्वादस्य महत्त्वं। महत्त्वयुक्तेन राधसान्नेन सह स्तोतॄन् प्रचोदयति। इंद्राय हविर्दत्तेति स्तोतॄन्प्रेरयतीत्यर्थः॥

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृंचंतमब्रवं। नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४॥

उपो इति। हरीणां। पतिं। दक्षं। पृंचंतं। अब्रवं। नूनं। श्रुधि। स्तुवतः। अश्व्यस्य ॥१४॥

हरीणां हरितवर्णानामश्वानां पतिं पालयितारं दक्षं वर्धकं स्वबलं पृंचंतं॥ पृची संपर्के॥ मरुत्सु योजयंतं। यद्वा। शत्रुषु स्वबलमायुधादिभिः संपर्चयंतं। एतादृशमिंद्रं त्वामुपो अब्रवं। विश्वमना अहं स्तोत्रं

करवाणि। अश्व्यस्य। व्यश्वो नामर्षिरश्वशब्देनोच्यते। तस्य पुत्रस्य स्तुवतः स्तोत्रं कुर्वतो मम संबंधिनीं त्वद्विषयां स्तुतिं नूनं संप्रति श्रुधि। शृणु ॥

नह्यं१ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत्। नकी राया नैवथा न भंदना ॥१५॥
नहि। अंग। पुरा। चन। जज्ञे। वीरऽतरः। त्वत्। नकिः। राया। न। एवऽथा। न। भंदना ॥१५॥

हे इंद्र त्वत्त्वत्तः पुरा पूर्वं वीरतरः सामर्थ्यवान् कश्चिन्नहि जज्ञे। जातः खलु। अंग प्रसिद्धौ। त्वमेव सामर्थ्यवाञ्जात इत्यर्थः। किंच त्वत्तोऽपि राया धनेन समर्थो नकिर्न कश्चिदस्ति। तथैवथा शत्रुपुराणि संग्रामं वा प्रति गमनेन त्वत्तोऽधिको न जातः। यद्वा। एवथा ॥ अव रक्षणादिषु। अकारस्यैकारश्छांदसः। औणादिकोऽथप्रत्ययः ॥ शरणागतानां स्तोतृणां पावनेन त्वत्तोऽधिको नास्ति। किंच भंदना। भंदतिः स्तुतिकर्मा। स्तुत्या च त्वदधिको न जातः। धनवान्रक्षकः स्तुत्यश्च त्वत्तोऽन्यो न जज्ञ इति ॥ ॥१७॥

एदु मध्व इति तृचः पूर्वोक्ते ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे वैकल्पिकोऽनुरूपः। सूचितं च। एदु मध्वो मदिंतरमेतो न्विंद्रं स्तवाम सखायः। आ॰ ७. ८.। इति ॥

एदु मध्वो मदिंतरं सिंच वाध्वर्यो अंधसः। एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥१६॥
आ। इत्। ऊं इति। मध्वः। मदिन्ऽतरं। सिंच। वा। अध्वर्यो इति। अंधसः। एव। हि। वीरः। स्तवते। सदाऽवृधः ॥१६॥

हे अध्वर्यो अध्वरस्य नेतर्ऋत्विक् सदावृधः सर्वदा वृद्धिमतो मध्वो मदकरस्यांधसः सोमलक्षणस्यान्नस्य मदिंतरमत्यर्थं मादयितृतमं सोमरसमेवा सिंचेंद्रार्थं। अयमेवेंद्रः स्तवते हि। स्तोत्रशस्त्रादिभिः स्तूयते खलु। स्तुतायेंद्राय सोमो दातव्यः। तस्मादा सिंचेति समन्वयः ॥

इंद्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिं। उदानंश शवसा न भंदना ॥१७॥
इंद्र। स्थातः। हरीणां। नकिः। ते। पूर्व्यऽस्तुतिं। उत्। आनंश। शवसा। न। भंदना ॥१७॥

हे हरीणां स्थातरश्वानामधिष्ठातरिंद्र ते त्वदीयां पूर्व्यस्तुतिं पूर्वैर्ऋषिभिः कृतां स्तुतिं। उपलक्षणं। इदानींतनैः क्रियमाणामपि स्तुतिं नकिर्न कश्चिच्छवसा बलेनोदानंश। व्याप्नोति ॥ अशू व्याप्तौ। लिट्यश्नोतेश्चेति नुट्। छांदसो नुम् ॥ कश्चिन्नातिक्रामतीत्यर्थः। किंच भंदना सर्वैः प्रार्थनीयत्वात् पूजनीयेन धनेन स्तुत्या वा त्वदीयां स्तुतिं न कश्चिदतिक्रामति। त्वत्तो बलवान् धनी स्तुत्यो वान्यो नास्तीत्यर्थः ॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यं ॥१८॥
तं। वः। वाजानां। पतिं। अहूमहि। श्रवस्यवः। अप्रायुऽभिः। यज्ञेभिः। ववृधेन्यं ॥१८॥

अप्रायुभिः कर्मस्वप्रमाद्यद्भिरनुष्ठातृभिः। अथवा। अप्रमत्ता एकत्र स्थित्वैव कर्म कुर्वंति। कर्म प्रारभ्य नान्यं देशं गच्छंतीत्यर्थः। एवंविधमनुष्ठातृभिर्यज्ञैर्यष्टृभिः। एतादृशमनुष्ठातृभिर्वा वावृधेन्यं वर्धनीयं वाजानामन्नानां पतिं स्वामिनं वो यष्टृयष्टव्यसंबंधेन युष्मदीयं तं तादृशमिंद्रं श्रवस्यवो वयमन्नकामाः संतोऽह्वमहि। आह्वयामः ॥ ह्वयतेर्लुङि बहुलं छंदसीति संप्रसारणं ॥

पूर्वोक्त एव शस्त्र एतो न्विंद्रमित्येतौ तृचौ वैकल्पिकौ स्तोत्रियानुरूपौ। सूचितं च। एतो न्विंद्रं स्तवाम सखायः स्तुहींद्रं व्यश्ववत्। आ॰ ७. ८.। इति ॥

एतो न्विंद्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरं। कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९॥
एतो इति। नु। इंद्रं। स्तवाम। सखायः। स्तोम्यं। नरं। कृष्टीः। यः। विश्वाः।
अभि। अस्ति। एकः। इत् ॥१९॥

हे सखायः समानख्याना मित्रभूता वा हे ऋत्विजः नु क्षिप्रमेतो। आगच्छतैव। किमर्थं तदाह। स्तोम्यं स्तोमार्हं नरं सर्वस्य नेतारं तमिंद्रं स्तवाम। स्तोत्रं करवाम। य इंद्र एक इदेकोऽसहाय एव सन् विश्वाः सर्वाः कृष्टीः शत्रुसेना अभ्यस्ति अभिभवति। तं स्तवामेति शेषः ॥

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः। घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२०॥
अगोऽरुधाय। गोऽइषे। द्युक्षाय। दस्म्यं। वचः। घृतात्। स्वादीयः। मधुनः। च।
वोचत ॥२०॥

हे ऋत्विजः अगोरुधाय। गाः स्तुती रुणद्धीति गोरुधः। न गोरुधोऽगोरुधः। ता न विनाशयत्यादरेण शृणोतीत्यर्थः। तादृशाय अत एव गविषे स्तोत्राणीच्छते द्युक्षाय दीप्यमानायेंद्राय दस्म्यं दर्शनीयं घृतात्स्वादुतरादाज्यान्मधुनश्च स्वादीयोऽतिशयेन स्वादुभूतं वचः स्तोत्ररूपं वाक्यं वोचत। ब्रूत ॥ ऋत्विग्भिः कृतं कर्म यजमानोऽपि कृतवान्भवतीति यदिदमिंद्रविषयं वचो घृतान्मधुनश्च स्वादुतरं भवत्वित्याशास्ते। तदाह भगवानाश्वलायनः। वच एव म इदं घृतान्मधुनश्च स्वादीयोऽस्तु प्रीतिः स्वादीयोऽस्त्वित्येव तदाह। आ० गृ० १. १. ५.। इति ॥ ॥१८॥

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे। ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥२१॥
यस्य। अमितानि। वीर्या। न। राधः। परिऽएतवे। ज्योतिः। न। विश्वं। अभि।
अस्ति। दक्षिणा ॥२१॥

यस्येंद्रस्य वीर्या वीर्याणि वृत्रहननादिलक्षणानि सामर्थ्यान्यमितानि अस्येयंति सामार्थ्यानि नान्यानीति परिमितानि न भवंति। यद्वा ॥ मीङ् हिंसायां। छांदसो ह्रस्वः ॥ शत्रुभिरहिंसितानि भवंति। तथा यस्येंद्रस्य राधो धनं पर्येतवे शत्रुभिः परिगंतुं प्राप्तुं शक्यं न भवति। अत एव यस्य दक्षिणा धनं दानं विश्वमभ्यस्ति सर्वं स्तोतृजनमभिभवति। तत्र दृष्टांतः। ज्योतिर्न। ज्योतिषामयनत्वाज्ज्योतिरंतरिक्षं। यथांतरिक्षं सर्वलोकं पिधाय तिष्ठति तद्वत्स्तोतृजनं धनदानेन पिधत्त इत्यर्थः ॥

स्तुहींद्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमं। अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२॥
स्तुहि। इंद्रं। व्यश्वऽवत्। अनूर्मिं। वाजिनं। यमं। अर्यः। गयं। मंहमानं। वि।
दाशुषे ॥२२।

हे विश्वमनः अनूर्मिं। ऊर्मिर्हिंसाकर्मा। कैश्चिदप्यहिंस्यं। अथवा शत्रुभिरगंतव्यं। अत एव वाजिनं बलवंतं यमं स्तोतृभिः सुनियतमेतादृशमिंद्रं स्तुहि। स्तोत्रे दृष्टांतः। व्यश्ववत्। यथा व्यश्वो विश्वमनसः पितेंद्रमस्तौत्तद्वत्स्तुहीत्यर्थः। स्तुतश्चेत् अर्यः स्वामींद्रो दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय मंहमानं पूज्यमानं गयं धनं। यद्वा। देवानां पूजायै गयं गृहं। गृहमस्ति चेत् देवा हविर्भिः पूज्यंते। तादृशं गृहं वितरति। तस्मात्त्वं धनगृहलाभाय स्तुहीत्यर्थः ॥

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवं। सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनां ॥२३॥
एव। नूनं। उप। स्तुहि। वैयश्व। दशमं। नवं। सुऽविद्वांसं। चर्कृत्यं। चरणीनां ॥२३॥

हे वैयश्व व्यश्वस्य पुत्र विश्वमनः चर्षणीनां मनुष्याणां देहे स्थितानां नवानां प्राणानां दशमं दशसंख्यापूरकं। तत्र मंत्रः। नव वै पुरुषे प्राणा मनुष्येषु वर्तमाना इंद्रस्तेषां दशधा भवतींद्रस्यात्मानं दशधा चरंतमिति। एतादृशं अत एव नवं स्तुत्यं सुविद्वांसमंतर्यामित्वात् सुष्ठु सर्वं जानंतं चर्कृत्यं भूयो भूयः कार्येषु सर्वैर्नमस्कर्तव्यं एवंविधमिंद्रमेव नूनमिदानीमुप स्तुहि। समीपे स्तुहि ॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजं। अहरहः शुंध्युः परिपदामिव ॥२४॥

वेत्थ। हि। निःऽऋतीनां। वज्रऽहस्त। परिऽवृजं। अहःऽअहः। शुंध्युः। परिपदांऽइव ॥२४॥

इदानीमृषिरिंद्रं संबोध्याह। हे वज्रहस्त वज्रयुक्तहस्तेंद्र निर्ऋतीनामुपद्रवकारिणां रक्षसां परिवृजं परिवर्जनं। हिरवधारणे। त्वमेव वेत्थ। जानीषे। तत्र दृष्टांतः। अहरहः शुंध्युः। अस्मिन्नुदिते सति ब्राह्मणा आत्मीयं कर्म कृत्वा शुद्धा भवंतीति शोभाहेतुत्वात् शुंध्युरादित्यः। परिपदामिव परितो यजमानानामिव। यद्वा। परिपदां समानाधिकरणः। परितः पततां पक्षिणां वर्जनं स्वस्थानत्यागमहरहः प्रतिदिवसं यथा वेत्ति। उदिते सूर्ये पक्षिणः स्वस्थानं परित्यज्य सर्वतो गच्छंति खलु। एवं त्वयींद्रे स्वबलेन प्रकाशमाने सति शत्रवः स्वपुरादि त्यक्त्वा पलायंत इत्यर्थः ॥

तदिंद्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने। द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५॥

तत्। इंद्र। अवः। आ। भर। येन। दंसिष्ठ। कृत्वने। द्विता। कुत्साय। शिश्नथः। नि। चोदय ॥२५॥

हे इंद्र तदवस्तद्रक्षणमस्मभ्यमा भर। हे दंसिष्ठात्यंतं दर्शनीय यद्वा शत्रूणामुपक्षपयितरिंद्र कृत्वने कर्म कुर्वते यजमानाय तदर्थं येन पालनमकरोथाः तद्रक्षणमा भरेति समन्वयः। किंच कुत्साय कुत्सनामकाय राजर्षये द्विता द्विधा द्विप्रकारेण शिश्नथः त्वं शत्रूनवधीः। तस्मै द्वैधं पालनमकार्षीरित्यर्थः। तद्रक्षणमस्मभ्यं नि चोदय। नितरामत्यर्थं प्रेरय। यद्वा। कृत्वन इति सामान्येनोक्त्वा निःशेषेण तदेवाह कुत्सायेत्यादि। शेषं पूर्ववत् ॥ ॥१९॥

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे। स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६॥

तं। ऊं इति। त्वा। नूनं। ईमहे। नव्यं। दंसिष्ठ। सन्यसे। सः। त्वं। नः। विश्वाः। अभिऽमातीः। सक्षणिः ॥२६॥

हे दंसिष्ठातिशयेन दर्शनीयेंद्र नव्यं स्तोतृभिः स्तोतव्यं तमु तादृशमेव त्वा त्वां नूनमिदानीमीमहे। वयं याचामहे। किमर्थं। संन्यसे ॥ असु क्षेपणे। भावे क्विप् ॥ संन्यासार्थं याचामह इति शेषः। स तादृशस्त्वं नोऽस्माकं विश्वाः सर्वा अभिमातीः शत्रुसेनाः सक्षणिः ॥ सहेः सनिप्रत्ययः ॥ सहनशीलोऽभिभवनशीलो भवसि ॥

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिंधुषु। वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७॥

यः। ऋक्षात्। अंहसः। मुचत्। यः। वा। आर्यात्। सप्त। सिंधुषु। वधः। दासस्य। तुविऽनृम्ण। नीनमः ॥२७॥

पूर्वोऽर्धर्चः परोक्षकृतः। य इंद्र ऋक्षात् ॥ ऋन् मनुष्यान् क्षणोति। क्षणोतेरौणादिको डप्रत्ययः ॥ तस्माद्रक्षसो जातादंहसः पापरूपादुपद्रवान्मुचत् मुंचति। राक्षस एनं न बाधते किं पुनस्तं हंतीत्यर्थः। अपि

च य इंद्रः सप्त सिंधुषु गंगाद्यासु नदीषु। यद्वा। सप्त सर्पणशीलासु सिंधुषु। तत्कूलेष्वित्यर्थः। गंगायां घोष इतिवत्। पा॰ १. ४. ४२*.। तेषु वर्तमानानां स्तोतॄणामार्यात् धनादिकं प्रेरयेत्॥ ऋ गतिप्रापणयोः। आशीर्लिङि गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः। पा॰ ७. ४. २९.। इति गुणः। बहुलं छंदसीति लिङ्यप्याडागमः॥ अथ प्रत्यक्षः। हे तुविनृम्ण बहुधनेंद्र दासस्योपक्षपयितुरसुरस्य वधर्हननसाधकमायुधं नीनमः। नमय॥

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिं। व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८॥

यथा। वरो इति। सुऽसाम्ने। सनिऽभ्यः। आ। अवहः। रयिं। विऽअश्वेभ्यः। सुऽभगे। वाजिनीऽवति ॥२८॥

अनेन तृचेन वरोर्दानं स्तूयते। हे वरो वरुनामक राजन् सुषाम्णे सुसाम्ने सुषामाख्यं राजानं स्वपितरमुद्दिश्य तस्योत्तमलोकप्राप्त्यर्थं सनिभ्यो भिक्षमाणेभ्य आ कोशादाहृत्य रयिं धनं यथा पुरावहः प्रापितवानसि अत एवमिदानीं व्यश्वेभ्यो व्यश्वपुत्रेभ्योऽस्मभ्यं धनमावह। वाजिनीवतीति पदलिंगादियमुषस्या। अयं तृचोऽप्युषस्य इति शौनकेनोक्तं। यथा वरो सुषाम्ण इत्युत्तमस्त्वौषसस्तृच इति। हे सुभगे शोभनधनयुक्ते वाजिनीवत्यन्नवति॥ मतुबनुवादार्थः॥ यद्वा। वाजो वाजनं गमनमस्यास्तीति वाजिन्यन्नं। तद्वति हे उषः त्वं चास्मभ्यं धनं प्रयच्छ। वरोर्बहुधनदानात्तस्य दानस्तुतिः। यद्वा। विश्वमना ऋषिर्वरुं संबोध्याह। हे सुभगे शोभनधने वाजिनीवत्यन्नवति हे उषः यथा त्वं सुषाम्णे सुषामनाम्ने मम पित्रे धनं दत्त्वा तेनैव सुषाम्णा सनिभ्यो याचमानेभ्यो धनं यथा प्रापितवत्यसि तेन यथा दानमकारयः एवं मह्यमपि धनं दत्त्वा व्यश्वेभ्यः॥ पूजायां बहुवचनं॥ व्यश्वपुत्राय विश्वमनसे धनं प्रापयेति मयापि दानं करोषि। हे वरो उषसमेवं वदेत्यृषिराह॥

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः। स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥२९॥

आ। नार्यस्य। दक्षिणा। विऽअश्वान्। एतु। सोमिनः। स्थूरं। च। राधः। शतऽवत्। सहस्रऽवत् ॥२९॥

अनया धनमृषिरादत्तवानित्याह। नार्यस्य। नरहितो नर्यः। तस्यापत्यं नार्यः॥ तस्मात्संबंधमात्रे तस्येदमित्यण्॥ तस्य सोमिनः सोमवतो यजमानस्य। यद्वा। व्यश्वानां विशेषणं। तादृशस्य वरोर्दक्षिणा दानं सोमवतो व्यश्वान् व्यश्वपुत्रानस्मानेतु। आगच्छतु। किंच स्थूरं स्थूलं शतवत्सहस्रवच्छतसहस्रधनयुक्तं राधोऽन्नं चास्मानागच्छतु॥

यत्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते।
एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३०॥

यत्। त्वा। पृच्छात्। ईजानः। कुहया। कुहयाऽकृते।
एषः। अपऽश्रितः। वलः। गोऽमतीं। अव। तिष्ठति ॥३०॥

इदानीमुषसं संबोध्याभिधीयते। हे कुहयाकृते स वरुः कुह कुत्र तिष्ठतीत्येतदिच्छयाभिलक्षणप्रवृत्तैर्जिज्ञासुभिः पुरस्कृते॥ कुहशब्दात्क्यच्॥ एतादृशे हे उषः त्वा त्वां यद्यदा कश्चित्पृच्छात् पृच्छति ईजान इष्टवान् वरुः कुहया क्व तिष्ठतीति यदा पृच्छति तदानीमपश्रितः सर्वैराश्रितः। यद्वा। विवृतद्वारः। यदा याचमाना आगच्छंति तदा दौवारिका न प्रतिबध्नंतीत्यर्थः। तादृशो वलो वरः स्वबलेनावारकः शत्रूणां। यद्वा। भिक्षूणां धनादिप्रदानेनावरिता। एषो एष वरुर्गोमतीमेतन्नामिकां नदीं॥ कालाध्वनोरिति द्वितीया॥ तस्यास्तीरेऽव तिष्ठतीति तदानीं त्वं कथयसि॥ ॥२०॥

ता वामिति चतुर्विंशत्यृचं पंचमं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। ता वां चतुर्विंशतिर्मैत्रावरुणं दशम्याद्यास्तिस्रो वैश्वदेव्य उपांत्योष्णिग्गर्भेति। व्यश्वपुत्रो विश्वमना ऋषिः। उष्णिक् छंदः। उपांत्योष्णिग्गर्भा षट्सप्त-

कादशा उष्णिग्गर्भा । अनु० ४.३.। इति तल्लक्षणोपेतत्वात् । दशम्येकादशीद्वादश्यो वैश्वदेव्योऽवशिष्टानां मित्रावरुणौ देवता ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥१॥
ता । वां । विश्वस्य । गोपा । देवा । देवेषु । यज्ञिया । ऋतऽवाना । यजसे । पूतऽदक्षसा ॥१॥

हे मित्रावरुणौ विश्वस्य सर्वस्य लोकस्य गोपा गोपायितारौ देवा देवौ द्योतनशीलौ देवेषु मध्ये यज्ञिया यज्ञार्हौ ता तौ तादृशौ वां युवां हविष्प्रदानार्थं यजमानं भजथः । अत एव हे विश्वमनः ऋतावानर्तावानौ सत्यवंतौ यज्ञवंतौ वा पूतदक्षसौ शुद्धबलौ । आवां बलवंताविति वचनमात्रेण बलवंतौ न भवतः किंतु यथार्थत्वेन सामर्थ्यवंतौ । मित्रावरुणौ यजसे । हविर्भिः पूजयसि ॥

मित्रा तना न रथ्या३ वरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥२॥
मित्रा । तना । न । रथ्या । वरुणः । यः । च । सुऽक्रतुः । सनात् । सुऽजाता । तनया । धृतऽव्रता ॥२॥

सुक्रतुः शोभनकर्मा यो वरुणः सुकर्मा मित्रा च मित्रावरुणौ । कीदृशौ । तना । तन्वंति मुकुटकटकादिनेति तनानि धनानि । नञ्चार्थे । धनानि च रथ्या रथ्यौ नेतारौ । यद्वा । धनानि कर्मणः कर्तृपरत्वात् प्रयच्छंताविति संबध्यते । तादृशौ रथ्यौ रथवंतौ सनाच्चिरादेव सुजाता सुजातौ शोभनजन्मानौ । तदेवाह । तनया तनयावदितेः पुत्रौ धृतव्रता धृतव्रतौ धृतकर्माणौ ता यजस इति पूर्वेण समन्वयः ॥

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥३॥
ता । माता । विश्वऽवेदसा । असुर्याय । प्रऽमहसा । मही । जजान । अदितिः । ऋतऽवरी ॥३॥

अदितेस्तनयत्वमेव स्फुटयति । विश्ववेदसा विश्ववेदसौ सर्वधनौ । यद्वा । विश्वानि स्थावरजंगमात्मकानि सर्वाणि विदतुर्जानीत इति विश्ववेदसौ । प्रमहसा प्रमहसौ प्रकृष्टतेजस्कौ ता तौ तादृशौ मित्रावरुणौ मही महत्यृतावरी सत्यवती माता देवमातादितिर्जजान । जनयामास । किमर्थं । असुर्यायासुराणां हंत्रे बलाय । असुरान् हंतुमुत्पादितवतीत्यर्थः ॥

महांता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥४॥
महांता । मित्रावरुणा । सम्ऽराजा । देवौ । असुरा । ऋतऽवानौ । ऋतं । आ । घोषतः । बृहत् ॥४॥

महांता गुणाधिक्येन महांतौ सम्राजा सम्राजौ सम्यग्दीप्यमानावसुरासुरौ बलवंतौ । यद्वा । सर्वांतर्यामितया प्रेरकौ । ऋतावाना सत्यवंतौ मित्रावरुणौ देवौ बृहत् स्तोत्रशस्त्रादिना महांतमृतं यज्ञमा घोषतः । स्वदीप्त्या प्रकाशयतः ॥ घुषेर्लटि रूपं ॥

नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥५॥
नपाता । शवसः । महः । सूनू इति । दक्षस्य । सुक्रतू इति सुऽक्रतू । सृप्रदानू इति सृप्रऽदानू । इषः । वास्तु । अधि । क्षितः ॥५॥

महो महतः शवसो बलस्य नपाता नपातौ पौत्रौ। बलत उत्पादिताविति बलस्य पौत्रौ। तादृशौ दक्षस्य। दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे चेति दक्षो वेगः। तस्य सूनू पुत्रौ। बलाद्वेग इति तयोः पुत्रत्वं। तौ सुक्रतू शोभनकर्माणौ स्वप्रदानू प्रकृतधनादिदानौ मित्रावरुणाविषोऽन्नस्य वास्तु निवासस्थानेऽधि क्षितः। अधिवसतः॥ अधिशीङिति वास्तुनः कर्मसंज्ञा। क्षयतेर्लटि छांदसो विकरणस्य लुक्॥ ॥२१॥

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः। नभस्वतीरा वां चरंतु वृष्टयः॥६॥

सं। या। दानूनि। येमथुः। दिव्याः। पार्थिवीः। इषः। नभस्वतीः। आ। वां। चरंतु। वृष्टयः॥६॥

हे मित्रावरुणौ यौ युवां दानूनि देयानि धनानि सं येमथुः अस्मासु संयच्छतं तथा दिव्या दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवीः पृथिव्यामुत्पन्नानीषोऽन्नानि संयच्छतं। वृष्ट्यभावे कथमन्नं लभ्यत इति चेत् तदुच्यते। नभस्वतीरुदकवत्यो वृष्टयस्तादृशौ वां युवामा चरंतु। उपतिष्ठंतु। यदा वृष्टिवेला तदा वर्षतमित्यर्थः॥

अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः। ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता॥७॥

अधि। या। बृहतः। दिवः। अभि। यूथाऽइव। पश्यतः। ऋतऽवाना। संऽराजा। नमसे। हिता॥७॥

या यौ मित्रावरुणौ बृहतो दिवो द्योतमानान्देवानधि पश्यतः। तत्र दृष्टांतः। यूथेव यथा वृषभो गोयूथानि रंतुमभ्यभिमुखं पश्यति तद्वदेतौ स्ववीर्येणासुरान्हत्वा देवान्मोदयितुं पश्यत इत्यर्थः। कीदृशौ। ऋतावाना सत्यवंतौ सम्राजा सम्राजौ सम्यग्दीप्यमानौ नमसे हविषे हिता हितौ प्रियौ पश्यत इति॥

ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू। धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः॥८॥

ऋतऽवाना। नि। सेदतुः। सांऽराज्याय। सुक्रतू इति सुऽक्रतू। धृतऽव्रता। क्षत्रिया। क्षत्रं। आशतुः॥८॥

ऋतावानर्तावानौ सत्यवंतौ सुक्रतू शोभनकर्माणौ सुप्रज्ञौ वा मित्रावरुणौ साम्राज्याय साम्राज्यार्थं नि षेदतुः। न्यसीदतां। तथा मंत्रः। नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा साम्राज्याय सुक्रतुः। ऋ० १. २५. १०. इति। धृतव्रता धृतव्रतौ धृतकर्माणौ क्षत्रिया क्षत्रियौ बलवंतौ क्षत्रं बलमाशतुः। आनशाते। व्याप्नुत इत्यर्थः॥

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा। नि चिन्मिषंता निचिरा नि चिक्यतुः॥९॥

अक्ष्णः। चित्। गातुवित्ऽतरा। अनुल्बणेन। चक्षसा। नि। चित्। मिषंता। निऽचिरा। नि। चिक्यतुः॥९॥

अक्ष्णश्चिच्चक्षुषोऽपि पूर्वं गातुवित्तरा गातुवित्तरावतिशयेन मार्गवेत्तारौ। यद्वा। गातुवित्तरौ गातु गमनशीलं प्राणिजातं चक्षुषोऽपि पूर्वं वेत्तारौ मित्रावरुणौ। कीदृशौ। नि मिषंता निमिषंतौ सर्वमुन्मेषयंतौ स्वस्वकर्मणि निचिरा नितरां चिरंतनौ तावनुल्बणेन। उल्बणमिति दुःसहमपैस्तेजः। तद्वद्दुःसहेन चक्षसाहोरात्रयोर्व्याप्तेन तेजसैव नि चिक्यतुः। पूजितौ बभूवतुः। चिदवधारणे॥

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या। उरुष्यंतु मरुतो वृद्धशवसः॥१०॥

उत। नः। देवी। अदितिः। उरुष्यतां। नासत्या। उरुष्यंतु। मरुतः। वृद्धऽशवसः॥१०॥

उतापि च देवी द्योतनशीलादितिर्मित्रावरुणयोर्माता नोऽस्मान्रक्षतु। नासत्या नासत्यौ। असत्यमनयोर्नास्तीति नासत्यौ। अश्विनौ चोरुष्यतां। रक्षतां॥ उरुष्यतिः कण्ड्वादिः॥ वृद्धश्रवसो वृद्धवेगाः। अतिशयेन वेगवंत इत्यर्थः। यद्वा वर्धनशीलहविर्लक्षणान्नोपेता मरुत उरुष्यंतु। अस्मान्पालयंतु॥ ॥२२॥

ते नो॒ ना॒वमु॑रुष्यत॒ दिवा॒ नक्तं॑ सुदानवः। अरि॑ष्यंतो॒ नि पा॒युभिः॑ सचेमहि ॥११॥

ते। नः॒। ना॒वं। उ॒रु॒ष्य॒त॒। दिवा॑। नक्तं॑। सु॒ऽदा॒न॒वः॒। अरि॑ष्यंतः। नि। पा॒युऽभिः॑।
स॒चे॒म॒हि॒ ॥११॥

हे सुदानवः शोभनदाना मरुतोऽरिष्यंतः केनाप्यहिंसिताः ते तादृशा यूयं नोऽस्मदीयां नावं यज्ञियां नावं दिवा नक्तं चोरुष्यत। पालयत। ततो वयं पायुभिर्युष्मदीयैः पालनैर्नि सचेमहि। नितरां समवेता भवेम॥

अघ्नते॒ विष्ण॑वे वयमरि॑ष्यंतः सु॒दान॑वे। श्रु॒धि स्व॑यावन्त्सिंधो पूर्व॑चित्तये ॥१२॥

अघ्न॑ते। विष्ण॑वे। व॒यं। अरि॑ष्यंतः। सु॒ऽदान॑वे। श्रु॒धि। स्व॒ऽया॒व॒न्। सिं॒धो॒ इति॑।
पू॒र्व॑ऽचित्तये ॥१२॥

पूर्वोऽर्धर्चः परोक्षकृतः। अरिष्यंतः पालनवत्त्वात् केनाप्यबाधिता वयमघ्नते स्तोतॄणां यष्टॄणां चाहिंसकाय सुदानवे शोभनदानाय विष्णवे स्वमहत्त्वेन सर्वव्यापकायैतन्नामकाय देवाय स्तुतिं कुर्मः। अथ प्रत्यक्षः। हे स्वयावन्। स्वयमेवासहायः सन् दिवि संग्रामे वा यातीति स्वयावान्। सिंधो स्तोतॄन् प्रति धनानां स्यंदनशील विष्णो पूर्वचित्तये। चित्तिः कर्म। मंत्रांतरेऽपि तथा श्रवणात्। सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं। ऋ० १.१६४.२९.। इति। पूर्वं प्रारब्धकर्मणे यजमानाय तदर्थं श्रुधि। अस्माभिः क्रियमाणां स्तुतिं त्वं शृणु॥

तद्वार्यं॑ वृणीमहे॒ वरि॑ष्ठं गोप॒यत्यं॑। मि॒त्रो यत्पांति॒ वरु॑णो॒ यद॑र्य॒मा ॥१३॥

तत्। वार्यं॑। वृ॒णी॒म॒हे॒। वरि॑ष्ठं। गो॒प॒यत्यं॑। मि॒त्रः। यत्। पांति॑। वरु॑णः। यत्।
अ॒र्य॒मा ॥१३॥

वरिष्ठमुरुतरं गोपयत्यं सर्वेषां रक्षकं यतैः पालनीयं वा वार्यं सर्वैर्वननीयं तद्धनं वृणीमहे। वयं संभजामहे। यद्धनं मित्रः सर्वेषां मित्रभूतो वरुणः शत्रूणां वारयितार्यमा सर्वदा गच्छन् एतन्नामकास्त्रयो देवाः पांति पालयंति। तद्धनं वृणीमहे। अस्मदीयस्य धनस्य रक्षका भवंतीत्यर्थः॥

उ॒त नः॒ सिंधु॑र॒पां तन्म॒रुत॒स्तद॒श्विना॑। इंद्रो॒ विष्णु॑र्मी॒ढ्वांसः॑ स॒जोष॑सः ॥१४॥

उ॒त। नः॒। सिंधुः॑। अ॒पां। तत्। म॒रुतः॑। तत्। अ॒श्विना॑। इंद्रः॑। विष्णुः॑। मी॒ढ्वांसः॑।
स॒ऽजोष॑सः ॥१४॥

पुनरपि धनरक्षणमेवाशास्ते। उतापि चापामुदकानां सिंधुः स्यंदनशीलः पर्जन्यो नोऽस्मदीयं तद्धनं रक्षतु। तदेव मरुतश्च पालयंतु। अश्विनाश्विनौ देवौ तद्धनं पालयतां। तथेंद्रो विष्णुश्च मीढ्वांसः कामानां सेक्तार एते सर्वे देवाः सजोषसः संगताः संतोऽस्मदीयं धनं रक्षंतु। एते देवा अस्मभ्यं धनं दत्त्वा पालयंत्वित्यर्थः॥

ते हि ष्मा॑ व॒नुषो॒ नरो॒ऽभिमा॑तिं॒ कय॑स्य चित्।
ति॒ग्मं न क्षोदः॑ प्रति॒घ्नंति॒ भूर्ण॑यः ॥१५॥

ते । हि । स्म । वनुषः । नरः । अभिऽमातिं । कयस्य । चित् ।
तिग्मं । न । क्षोदः । प्रतिऽघ्नंति । भूर्णयः ॥१५॥

वनुषो वननीयाः संभजनीया नरो नेतारस्ते हि ष्मा ते खलु देवा भूर्णयः चिप्रगमनाः संतः कयस्य चित्कस्यचिच्छत्रोरभिमातिमभिमानं प्रतिघ्नंति । प्रतिकूलं यथा भवति तथा हिंसंति । तत्र दृष्टांतः । तिग्मं न यथा तिग्मं तीक्ष्णं जवेन गच्छत्क्षोद उदकमग्रतः स्थितं वृक्षमुन्मूलयति तद्वत्तस्याभिमानं घ्नंतीत्यर्थः ॥ ॥२३॥

अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥१६॥
अयं । एकः । इत्था । पुरु । उरु । चष्टे । वि । विश्पतिः । तस्य । व्रतानि । अनु । वः ।
चरामसि ॥१६॥

मित्रस्य कर्माख्याह । विश्पतिर्विशां पालयितानयोर्मित्रावरुणयोरेकोऽयं मित्रः पुरु पुरूणि बहूनि चोरूरूणि च द्रव्याणीत्थेत्थं वि चष्टे । स्वतेजसा पश्यति । तस्य मित्रस्य व्रतानि कर्माणि वो युष्मदर्थमनु चरामसि । अनुचरामः । कुर्म इत्यर्थः ॥

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥१७॥
अनु । पूर्वाणि । ओक्या । साम्ऽराज्यस्य । सश्चिम । मित्रस्य । व्रता । वरुणस्य ।
दीर्घऽश्रुत् ॥१७॥

साम्राज्यस्य । सम्राजो भावः साम्राज्यं । साम्राज्यमस्यास्तीति साम्राज्यः ॥ अर्शआदिभ्य इत्यच्प्रत्ययः ॥ साम्राज्यवतो वरुणस्य पूर्वाणि पुरातनान्योक्या । ओको गृहं । तस्मै हितानि कर्माणि वयं सश्चिम ॥ सश्चतिर्गतिकर्मा । लिटि रूपं । द्विर्वचनस्य छंदसि विकल्पितत्वाद्द्विर्वचनाभावः ॥ तदेवाह । मित्रस्य व्रता व्रतानि कर्माणि च दीर्घश्रुत् ॥ सुपां सुलुगिति षष्ठ्या लुक् ॥ दीर्घश्रुतोऽतिशयेन प्रसिद्धस्य वरुणस्य व्रतानि च सश्चिमेति ॥

परि यो रश्मिना दिवोऽतान्ममे पृथिव्याः । उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥१८॥
परि । यः । रश्मिना । दिवः । अंतान् । ममे । पृथिव्याः । उभे इति । आ । पप्रौ ।
रोदसी इति । महिऽत्वा ॥१८॥

यो मित्रो दिवः पृथिव्या द्यावापृथिव्योरंतान्रश्मिना स्वतेजसा परि ममे परिमिमीते । तयोः पर्यंतान् स्वरश्मिना भासयतीत्यर्थः । स एवोभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ महित्वा स्वमहिम्ना पप्रौ । आ समंतात्पूरयति ॥

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥१९॥
उत् । ऊं इति । स्यः । शरणे । दिवः । ज्योतिः । अयंस्त । सूर्यः । अग्निः । न । शुक्रः ।
सम्ऽइधानः । आऽहुतः ॥१९॥

सूर्यः सुवीर्यः सुष्ठु सर्वस्य प्रेरकः स्य स मित्रो वरुणश्च दिवो द्योतमानस्यादित्यस्य शरणे स्थाने नभसि ज्योतिरात्मीयं तेज उदयंस्त । उद्यच्छति । ऊर्ध्वं गमयति । सर्वत्र विस्तारयतीत्यर्थः ॥ यमेर्लुङि रूपं ॥ ततः सोऽग्निर्न शुक्रोऽग्निरिव दीप्यमानः समिधानो हविर्भिः समिध्यमान आहुतः सर्वैराहूतस्तिष्ठति ॥

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः। ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥२०॥
वचः। दीर्घऽप्रसद्मनि। ईशे। वाजस्य। गोऽमतः। ईशे। हि। पित्वः। अविषस्य।
दावने ॥२०॥

हे स्तोतः दीर्घप्रसद्मनि दीर्घं प्रततं विस्तृतं सद्म सदनं यस्मिन्यज्ञे वचः। मित्रं वरुणं च स्तुहि ॥ वर्क्तेर्लेट्यडागमः ॥ स वरुणो गोमतः पशुमतो वाजस्यान्नस्येशे। ईष्टे। स्वामी भवति। केवलं स्वामी न भवति किंत्वविषस्य महतः प्रीतिकारिणः पित्वोऽन्नस्य दावने दानाय चेशे। समर्थो भवति। ये स्तोत्रं कुर्वंति तेभ्योऽन्नं ददातीत्यर्थः ॥ ॥२४॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे। भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥२१॥
तत्। सूर्यं। रोदसी इति। उभे इति। दोषा। वस्तोः। उप। ब्रुवे। भोजेषु। अस्मान्।
अभि। उत्। चर। सदा ॥२१॥

सूर्यं सुवीर्यं तद्वारुणं मैत्रं च तेज उभे रोदसी उभे द्यावापृथिव्यौ च दोषा ॥ सुपां सुलुगिति द्वितीयाया लुक्। कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ रात्रौ वस्तोरहनि चाहमुप ब्रुवे। उपस्तौमि। त्वं स्तूयमानो वरुणो भोजेषु दातृष्वस्मान् सदाभ्युच्चर। सर्वदाभिमुखं प्रेरय। दातृष्वेतेषां दानेष्वस्मान् पुरोभाविनः कुर्वित्यर्थः ॥

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे। रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥२२॥
ऋज्रं। उक्षण्यायने। रजतं। हरयाणे। रथं। युक्तं। असनाम। सुऽसामनि ॥२२॥

सुषाम्णः पुत्रो वरुर्नाम राजा। स यद्दानं प्रादाद्विश्वमनसे तदसौ विश्वमना ऋषिरनयाचष्टे। उक्षण्यायने। उक्षनामा कश्चिद्वरोः पूर्वजः ॥ तस्य गोत्रापत्य उक्षणशब्दात्स्यः। तदंतात्फक्प्रत्ययः। एतौ छांदसौ। वृद्धिभावोऽपि संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति न भवति ॥ तस्य गोत्रापत्ये हरयाणे शत्रुजीवितैश्वर्यादिहरणशीलयान एतादृशे सुषामणि। बहुवत्पितृशब्देन पुत्रोऽभिधीयते। सुषाम्णः पुत्रे वरौ राजनि ददति सति किमभूत्। ऋज्रमृजुगामिनं रजतं रजतमयं रजतसदृशं वा युक्तमश्वाभ्यां युक्तं रथमसनाम। एतेषां मित्रादीनां प्रसादाद्वयं संभक्तवंतो लब्धवंतोऽभूम ॥

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना। उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥२३॥
ता। मे। अश्व्यानां। हरीणां। निऽतोशना। उतो इति। नु। कृत्व्यानां।
नृऽवाहसा ॥२३॥

ऋषिः प्रतिगृहीतावश्वावाह। हरीणां हरितवर्णानामश्व्यानामश्वसंघानां मध्ये नितोशना नितोशनौ। तोशतिर्हिंसाकर्मा। शत्रूणामत्यंतं बाधकावुतो अपि च कृत्व्यानां युद्धकर्मणि कुशलानां च नु कुशलमिति बाधकौ नृवाहसा नृवाहसावायुधनेतृणां मनुष्याणां वोढारौ ता तावश्वौ मे मह्यं नु क्षिप्रं सौषाम्णेन वरुणा दत्तौ भवेतां ॥

स्मदभीशू कशावंता विप्रा नविष्ठया मती। महो वाजिनावर्वंता सचासनं ॥२४॥
स्मदभीशू इति स्मत्ऽअभीशू। कशाऽवंता। विप्रा। नविष्ठया। मती। महः।
वाजिना। अर्वंता। सचा। असनं ॥२४॥

ऋषिरिदानीं तावश्वावग्रहीषमित्याह । स्वदभीशू । स्वत्सुमत् ॥ उकारलोपश्छांदसः ॥ शोभनरज्जुयुक्तौ यद्वा शोभनशरीरकांती कशावंता कशावंतौ कशायुक्तौ विप्रा विप्रौ मेधाविनामुचितौ । मेधावी स्तोता यथा स्तुत्यं देवं स्तुतिभिः प्रीणयति तद्वत् संतोषकौ । महो महतः सौषाम्णस्य वरोः संबंधिनौ वाजिनौ शीघ्रगमनवंतावर्वतार्वतौ द्वावश्वौ सचा सह युगपदेव नविष्ठया नवतरया मती मत्या स्तुत्या मित्रादीन् स्तुवन्नसनं । विश्वमना अहं समभजं । प्रत्यग्रहीषमित्यर्थः ॥ ॥२५॥

युवोरु ष्विति पंचविंशत्यृचं षष्ठं सूक्तं । अत्रानुक्रमणिका । युवोः पंचाधिका व्यश्वो वांगिरस आश्विनं विंश्याद्या वायव्यास्तत्पूर्वाश्चतस्रो गायत्र्योऽंत्यैकविंश्यौ च विंश्यनुष्टुबिति । आंगिरसो व्यश्वो वैयश्वो विश्वमना वा ऋषिः । षोडश्याद्याश्चतस्रो गायत्र्यो विंश्यनुष्टुबेकविंशी पंचविंशी च गायत्र्यौ शिष्टाः पूर्ववदुष्णिहः । अश्विनौ देवता । विंश्याद्याः पंचर्चो वायुदेवताकाः ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतावौष्णिहे छंदस्याश्विनशस्त्रे चादितः पंचर्चः । सूत्रितं च । युवोरु षू रथं हुव इति पंचदशेत्यौष्णिहं । आ॰ ४. १५. । इति ॥

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥१॥
युवोः । ऊं इति । सु । रथं । हुवे । सधऽस्तुत्याय । सूरिषु । अतूर्तऽदक्षा । वृषणा ।
वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥१॥

हे अतूर्तदक्षा ॥ तॄ प्लवनतरणयोरित्यस्य निष्ठायां नसत्तेति सूत्रेण निपातितः ॥ परैरहिंसितबलौ वृषणा वृषणौ कामानां सेक्तारौ अत एव वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनौ युवोर्युवयो रथं सु हुवे । सुष्ठु स्तोत्रादिभिराह्वयामि । किमर्थं । सूरिषु प्राज्ञेषु स्तोतृषु मध्ये सधस्तुत्याय ॥ स्तौतेर्भावे क्यप् ॥ सह भवंतौ स्तोतुं । तस्माद्युवयोः शीघ्रगत्यै युष्मद्गमनसाधनरथमेवाह्वयामि ॥

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥२॥
युवं । वरो इति । सुऽसाम्ने । महे । तने । नासत्या । अवःऽभिः । याथः । वृषणा ।
वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥२॥

ऋषिर्वरुं राजानं संबोध्याह । हे नासत्या नासत्यौ । न विद्यतेऽसत्यमनयोरिति नासत्यौ । वृषणा कामानां वर्षितारौ वृषण्वसू वर्षणशीलवसुमंतावश्विनौ युवं युवां सुषाम्णे सुषामाख्यराज्ञे मम पित्रेऽस्मै महे महते तने । तनोतीति तनं धनं । धनाय ॥ क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी ॥ तस्मै धनं दातुं पुरा यथागच्छतं तद्वन्मह्यमपि धनं दातुमवोभिः पालनैः सह याथः युवामायातमिति हे वरो वरुनामक राजन्नेवं ब्रूहीत्यृषिर्वदति ॥

ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयंतावति क्षपः ॥३॥
ता । वां । अद्य । हवामहे । हव्येभिः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । पूर्वीः ।
इषः । इषयंतौ । अति । क्षपः ॥३॥

हे वाजिनीवसू अन्नयुक्तधनवंतावश्विनौ पूर्वीर्बह्वीरिषोऽन्नानीषयंतौ ॥ इषु इच्छायां ॥ इच्छंतौ ता तौ प्रसिद्धौ वां युवामद्यास्मिन्यागदिनेऽति क्षपः क्षपाया अतिक्रमे । उषःकाल इत्यर्थः । तस्मिन्नुषःकाले हव्येभिर्हविर्लक्षणैरन्नैः सह वयं हवामहे । आह्वयामः । आश्विनशस्त्रस्य तत्र शस्यमानत्वादुषःकाल एवाह । याग इत्यर्थः ॥

आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥४॥
आ । वां । वाहिष्ठः । अश्विना । रथः । यातु । श्रुतः । नरा । उप । स्तोमान् । तुरस्य ।
दर्शथः । श्रिये ॥४॥

हे नरा सर्वस्य नेतारावश्विनाश्विनौ वां युवयोर्वाहिष्ठो वोढृतमः श्रुतो विश्रुतः सर्वत्र प्रसिद्धो रथ आ यातु। अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छतु। तेन रथेन युवामागत्य तुरस्य क्षिप्रं स्तोत्रं कुर्वतस्तस्य स्तोमांस्त्रिवृत्पंचद-शादिस्तोमाञ्छ्रिये तस्मैश्वर्यप्रदानायोप दर्शथः। पश्यतिर्दर्शनकर्मा। जानीतं॥ दृशेर्लेटि व्यत्ययेनाङादेशः॥

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू। युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः॥५॥
जुहुराणा। चित्। अश्विना। आ। मन्येथां। वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू। युवं। हि। रुद्रा। पर्षथः। अति। द्विषः॥५॥

हे वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनाश्विनौ जुहुराणा चित्॥ हृर्छा कौटिल्ये। हुर्छेः सनो लुक् छलोपश्च। उ० २. ९२.। इत्यानच्प्रत्ययः॥ कुटिलान्कर्मविघ्नकारिणो मायाविनोऽपि शत्रूना आभिमुख्येन मन्येथां। जानीतं। ततो हे रुद्रा संग्रामे रोदनशीलौ स्तुवंतौ वाश्विनौ युवं। हिरवधारणे। युवामेव द्विषो द्वेषकारिण-स्ताञ्छत्रूनति पर्षथः। अतीत्य संक्लेशयतं। हतमित्यर्थः॥ पृषु हिंसासंक्लेशनयोरिति भौवादिकः॥ ॥२६॥

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः। धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती॥६॥
दस्रा। हि। विश्वं। आनुषक्। मक्षुऽभिः। परिऽदीयथः। धियंऽजिन्वा। मधुऽवर्णा। शुभः। पती इति॥६॥

दस्रा दस्रौ सर्वैर्दर्शनीयौ। यद्वा॥ दसु उपक्षये॥ शत्रूणामुपक्षपयितारावश्विनौ। कीदृशौ। धियंजिन्वा धियंजिन्वौ। जिविः प्रीणनार्थः। कर्माणि प्रीणयंतौ मधुवर्णा मधुवर्णौ सर्वेषां मादनशीलशरीरकांती। ये युवयो रूपं पश्यंति ते तत्रैव हृष्टा भवंतीत्यर्थः। तादृशौ शुभस्पती उदकस्य पालयितारौ तादृशौ युवां मक्षुभिः शीघ्रगमनैरश्वैरानुषगनुषक्तं यथा भवति तथा विश्वमृत्विग्भिर्हविर्भिश्च व्याप्तं। हिरवधारणे। अस्मदीयं यज्ञमेव प्रति परिदीयथः। दीयतिर्गतिकर्मा। परित आगच्छतं॥

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह। मघवाना सुवीरावनपच्युता॥७॥
उप। नः। यातं। अश्विना। राया। विश्वऽपुषा। सह। मघऽवाना। सुऽवीरौ। अनपऽच्युता॥७॥

हे अश्विनाश्विनौ विश्वपुषा विश्वस्य सर्वस्य पोषकेण राया धनेन सह नोऽस्मदीयं यज्ञमुप यातं। उपा-गच्छतं। यज्ञमागत्य धनमस्मभ्यं प्रयच्छतमिति भावः। किमनयोर्धनमस्तीत्यत आह। मघवाना मघवानौ मंहनीयधनवंतौ सुवीरौ शोभनसामर्थ्योपेतौ। यद्वा। वीराः समर्थाः शत्रवः। तद्वंतौ। तथाप्यनपच्युता तैरपच्यावनीयौ न भवतः। तौ यज्ञं प्रत्यागच्छतं॥

आ मे अस्य प्रतीव्य१मिंद्रनासत्या गतं। देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा॥८॥
आ। मे। अस्य। प्रतीव्यं। इंद्रनासत्या। गतं। देवा। देवेभिः। अद्य। सचनःऽतमा॥८॥

हे इंद्रनासत्येंद्राश्विनौ सचनस्तमा॥ षच समवाये। कृत्यल्युट इति कर्मणि ल्युट्॥ अतिशयेन सर्वैः समवेतव्यौ सेव्यमानौ युवां प्रतीव्यं॥ वी गत्यादिषु। अधिकरण औणादिकः क्विप्॥ प्रतिशब्दस्य वीप्सार्थो ऽस्ति। पुनःपुनर्वियंति भक्षयंति हवींषि देवा अत्रेति प्रतीवीर्यज्ञः। तमस्य पुरोवर्तिनो मे मम संबंधिनं यज्ञमद्यास्मिन्दिने देवेभिर्देवैः सार्धमा गतं। आगच्छतं। यद्वा। मे ममास्य क्रियमाणस्य स्तोत्रस्य प्रतीव्यं प्रतिगतं यथा भवति तथाभिमुख्येनायातं॥

वयं हि वां हवामह उक्षण्यंतो व्यश्ववत्। सुमतिभिरुप विप्राविहा गतं ॥९॥
वयं। हि। वां। हवामहे। उक्षण्यंतः। व्यश्वऽवत्। सुमतिऽभिः। उप। विप्रौ। इह। आ। गतं ॥९॥

उक्षण्यंतो धनादिसेक्तारावात्मन इच्छंतो वयं वां हि धनादीनां प्रदातारौ युवामेव हवामहे। तदर्थमाह्वयामः। तत्र दृष्टांतः। व्यश्ववत्। यथास्माकं पिता युवामेव स्तुत्वा धनमलभत तद्वत्। हे विप्रौ मेधाविनावश्विनौ सुमतिभिरस्माभिः क्रियमाणैः कल्याणैः स्तोत्रैः सह। यद्वा। सुमतिभिः शोभनाभिरनुग्रहबुद्धिभिः सह। इहास्मिन्यागदिन उपा गतं। उपागच्छतं ॥

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवं। नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥१०॥
अश्विना। सु। ऋषे। स्तुहि। कुवित्। ते। श्रवतः। हवं। नेदीयसः। कूळयातः। पणीन्। उत ॥१०॥

हे ऋषे विश्वमनः अश्विनाश्विनौ देवौ सु ष्टुहि। शोभनं स्तुहि। ततस्तावश्विनौ ते स्तोतुस्तव हवमाह्वानं कुवित्। कुविदिति बहुनाम। बहुवारं श्रवतः। शृणुतां॥ श्रु श्रवणे। लेट्यडागमः॥ एवं त्वया स्तुतावश्विनौ नेदीयसोऽंतिकतमाञ्छत्रून् कूळयातः। हिंस्तां। उतापि च पणीनेतन्नामकानंगिरोगवामपनेतॄनसुरानपि हिंस्तां॥ कुडि दाहे। ण्यंतस्य लेट्यडागमः॥ ॥२७॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः। सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११॥
वैयश्वस्य। श्रुतं। नरा। उतो इति। मे। अस्य। वेदथः। सऽजोषसा। वरुणः। मित्रः। अर्यमा ॥११॥

हे नरा नेतारावश्विनौ वैयश्वस्य व्यश्वपुत्रस्य विश्वमनसो ममाह्वानं श्रुतं। शृणुतं। उतापि च मे मदीयमस्य तदाह्वानं वेदथः। आत्मायत्ततया जानीथः। अथ वरुणो मित्रो मित्रावरुणौ च सजोषसा संगतावर्यमैतन्नामको देवश्च मदीयमाह्वानं श्रुत्वा मह्यं धनादिकं प्रयच्छंतु ॥

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः। अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतं ॥१२॥
युवाऽदत्तस्य। धिष्ण्या। युवाऽनीतस्य। सूरिऽभिः। अहःऽअहः। वृषणा। मह्यं। शिक्षतं ॥१२॥

हे धिष्ण्या धिष्ण्यौ धिषणार्हौ स्तुत्यौ वृषणौ कामानां सेक्तारावश्विनौ सूरिभिः॥ सुपां सुपो भवंतीति चतुर्थ्यास्तृतीया॥ सूरिभ्यः स्तोतृभ्यो युवादत्तस्य युवाभ्यां यत्स्तोतृभ्यो दीयते तत् तथा युवानीतस्य युवाभ्यां यत्स्तोतृभ्यो नीयते तस्य धनादिकमहरहरहन्यहनि मह्यं विश्वमनसे स्तोत्रं कुर्वाणाय युवां शिक्षतं। प्रयच्छतं॥

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव। सपर्यंता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥
यः। वां। यज्ञेभिः। आऽवृतः। अधिऽवस्त्रा। वधूःऽइव। सपर्यंता। शुभे। चक्राते इति। अश्विना ॥१३॥

अथ पूर्वोऽर्धर्चः परोक्षकृतः। यो मनुष्यो वां युवयोर्यज्ञेभिर्यजनैः पूजनैः यद्वा युष्मद्विषयैर्यागैरावृतः परिवृतो भवति। तत्र दृष्टांतः। अधिवस्त्रोपरिनिहितवस्त्रा वधूरन्येन वस्त्रेण यथाच्छादिता भवति तथावृतो

यदा भवति तदा सपर्यंताभीष्टप्रदानेन तं परिचरंतावश्विनाश्विनौ भवंतौ तं मनुष्यं शुभे चक्राते । मंगले धने कृतवंतौ । तं धनादियुक्तमकार्ष्टामित्यर्थः । यो युवाभ्यां हवींषि प्रयच्छति तं धनादियुक्तं कुरुतमित्यर्थः ॥

योवामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यं । वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४॥

यः । वां । उरुव्यचःऽतमं । चिकेतति । नृऽपाय्यं । वर्तिः । अश्विना । परि । यातं । अस्मयू इत्यस्मऽयू ॥१४॥

हे अश्विनौ उरुव्यचस्तममतिशयेन ग्रहेषु भूतं व्याप्तं नृपाय्यं नेतृभ्यां युवाभ्यां पातव्यं सोमं यो मनुष्यो वां युवाभ्यां तं सोमं दातुं चिकेतति भृशं जानाति तस्य वर्तिः । वर्ततेऽत्रेति वर्तिर्गृहं । अस्मयू अस्मान् । पूजार्थं बहुवचनं । विश्वमनसं मां कामयमानौ युवां परि यातं । सोमपानार्थं तस्य गृहं प्रत्यायातं ॥ चिकेतति । कित ज्ञान इत्यस्य यङ्लुगंतस्य लेट्यडागमः ॥

अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यं । विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥१५॥

अस्मभ्यं । सु । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू । यातं । वर्तिः । नृऽपाय्यं । विषुद्रुहाऽइव । यज्ञं । ऊहथुः । गिरा ॥१५॥

हे वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनौ अस्मभ्यमस्मदर्थं नृपाय्यं नेतृभ्यां पातव्यं सोमं प्रति वर्तिरस्मदीयं गृहं प्रति सु यातं । युवां सुष्ठायातं । गिरा स्तुतिलक्षणया वाचा युवां यज्ञमूहथुः । मनुष्येषु यज्ञसमाप्तिं प्रापयथः । तत्र दृष्टांतः । विषुद्रुहेव ॥ द्रुह जिघांसायां ॥ विश्वान्हिनस्ति शत्रूनिति विषुद्रुहः शरः । तेन यथा व्याधो मृगमभिलषितं देशं प्रापयति तद्वत् स्तुत्या यज्ञमवैकल्येन समाप्तिं प्रापयथ इत्यर्थः ॥ ॥२८॥

प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ गायत्रे छंदसि वाहिष्ठो वां हवानामिति चतस्रः । सूचितं च । वाहिष्ठो वां हवानामिति चतस्र उदीराथामा मे हवमिति गायत्रं । आ० ४. १५. । इति ॥

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१६॥

वाहिष्ठः । वां । हवानां । स्तोमः । दूतः । हुवत् । नरा । युवाभ्यां । भूतु । अश्विना ॥१६॥

हे नरा नरौ सर्वस्य नेतारावश्विनौ हवानां स्तोतॄणां स्तोत्राणां मध्ये स्तोमो वाहिष्ठो युवामतिशयेन व्याप्नुवन् मदीयः स्तोमो दूतो दूतभूतः सन् हुवत् । आह्वयतु । सोऽयं मदीयः स्तोमो युवाभ्यां प्रियकरो भूतु । भवतु ॥

यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥१७॥

यत् । अदः । दिवः । अर्णवे । इषः । वा । मदथः । गृहे । श्रुतं । इत् । मे । अमर्त्या ॥१७॥

हे अश्विनौ दिवो द्युलोकस्यादः ॥ सुपां सुलुगिति सप्तम्याः सः ॥ अमुष्मिन्नर्णवेऽपां स्थाने यद्यदि मदथः माद्यथः । वापि चेषो युवामिच्छतो यजमानस्य गृहे यदि माद्यथः । एवं चेत् हे अमर्त्या मरणधर्मरहिताव-मनुष्यौ वाश्विनौ मे मदीयं स्तोत्रं श्रुतमित् । युवां शृणुतमेव । ममैव स्तोत्रं श्रुत्वा युवां माद्यतमित्यर्थः । यद्वा । अदः स्तोत्रमिति संबध्यते ॥

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनां । सिंधुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८॥

उत । स्या । श्वेतऽयावरी । वाहिष्ठा । वां । नदीनां । सिंधुः । हिरण्यऽवर्तनिः ॥१८॥

विश्वमना ऋषिः श्वेतयावरीनाम्न्यो नद्यास्तीरेऽश्विनावस्तौत् । अनया नद्यपि स्तुतवतीत्याह । उतापि

च श्वेतयावरी । श्वेतजला यातीति श्वेतयावरी । कीदृशी । सिंधुः स्यंदमाना हिरण्यवर्तनिर्हिरण्मयस्तीयमार्गा हिरण्मयोभयकूला । सैषा श्वेतयावरीनामिका नदीनामन्यासां नदीनां मध्ये वां युवां वाहिष्ठा स्तुत्यातिशयेनागंत्री भवति । एषापि युवां स्तौतीत्यर्थः । यद्वा । एषा नदी युवयो रथस्य वाहिष्ठा वोढृतमा सती प्रियकरी भवति । यस्मादहमस्यास्तीरे युवामस्तुवमिति ॥

स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना ॥१९॥

स्मत् । एतया । सुऽकीर्त्या । अश्विना । श्वेतया । धिया । वहेथे इति । शुभ्रऽयावाना ॥१९॥

हे शुभ्रयावाना शोभनशीलगमनवंतौ हे अश्विनाश्विनौ सुकीर्त्या शोभनस्तुत्या श्वेतया श्वेतजलया धिया धारयित्र्या हिरण्मयकूलवत्योभयकूलस्थितानां प्राणिनां धनदानेन पोषयित्र्यैतया नद्या स्मत्सुमच्छोभनं वहेथे । युवां स्तुतिं प्राप्नुथः । एषा युवामस्तौदित्यर्थः ॥

युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।

आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि ॥२०॥

युक्ष्व । हि । त्वं । रथऽसहा । युवस्व । पोष्या । वसो इति ।

आत् । नः । वायो इति । मधु । पिब । अस्माकं । सवना । आ । गहि ॥२०॥

एतदाद्या वायव्यः । हे वायो रथसहा रथसहौ रथवहनसमर्थावश्वौ । हिरवधारणे । त्वमेव युक्ष्व । संयोजय । हे वसो वासयितः शत्रूणां पोष्या पोष्यौ कंठेषु करलतास्फालनैराश्वास्य पोषणीयौ तावश्वौ युवस्व । संग्रामेषु शत्रुवधार्थं मिश्रय । यद्वा । अस्मद्यज्ञेषु संमिश्रय । ताभ्यां युक्तः सन् यज्ञं प्रत्यागच्छेत्यर्थः । हे वायो आदनंतरं नोऽस्मदीयं मधु मदकरं सोमं त्वं पिब । अत एवास्माकं यज्ञेषु सवना त्रिषु सवनेष्वा गहि । सोमपानार्थमागच्छ ॥ ॥२९॥

वायव्ये पशौ वपायास्तव वायविति षा वानुवाक्या । सूत्रितं च । प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा तव वायवृतस्पते । आ० ३. ८. । इति ॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्या वृणीमहे ॥२१॥

तव । वायो इति । ऋतःपते । त्वष्टुः । जामातः । अद्भुत । अवांसि । आ । वृणीमहे ॥२१॥

हे ऋतस्पत ऋतपते यज्ञानां पते ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायां सुक् । का० ७. १. ५१. ४. । इति सुगागमः ॥ त्वष्टुर्जामातर्ब्रह्मणो जामातः । एषा कथेतिहासादिभिरवगंतव्या । तादृशाद्भुत महन् विचित्रकर्मन् हे वायो तव त्वदीयान्यवांसि पालनान्या वृणीमहे । वयमस्मिन्पशुयागे संभजामहे ॥

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे । सुतावंतो वायुं द्युम्ना जनासः ॥२२॥

त्वष्टुः । जामातरं । वयं । ईशानं । रायः । ईमहे । सुतऽवंतः । वायुं । द्युम्ना । जनासः ॥२२॥

इमे जनासो जना वयं त्वष्टुर्ब्रह्मणो जामातरमीशानं सर्वस्येश्वरं एतादृशं वायुं सुतवंतोऽभिषुतसोमा रायो धनमीमहे । याचामहे । तेन दत्तेन वयं द्युम्ना धनवंतः स्यामेति शेषः ॥

वायव्यतृचे वायो याहि शिवा दिव इत्यादिके द्वे ऋचौ द्वितीयातृतीये । सूत्रितं च । वायो याहि शिवा दिव इति द्वे । आ० ७. १०. । इति ॥

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यं। वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥२३॥
वायो इति। याहि। शिव। आ। दिवः। वहस्व। सु। सुऽअश्व्यं। वहस्व। महः।
पृथुऽपक्षसा। रथे ॥२३॥

हे वायो दिवो द्युलोकस्य शिव ॥ सुपां सुलुगिति द्वितीयाया लुक् ॥ शिवं कल्याणमा याहि। आप्रापय। सर्वज्योतिषां त्वदाधारत्वात्तेषामाधारो भूत्वा द्युलोके तानि स्थापयेति प्रार्थयते। ततस्त्वं स्वश्व्यं। अश्वानां संघोऽश्व्यः। शोभनाश्वसंघं रथं सु सुष्ठु वहस्व। सर्वतो दिक्षु प्रापय। इदानीं तेभ्योऽपि समर्थावश्वावावह। महो महांस्त्वं पृथुपक्षसा पृथुपार्श्वद्वययुक्तावश्वौ रथे स्वकीये वहस्व। शत्रुहननार्थं संयोजय ॥

वायव्ये पशौ पुरोडाशहविषोस्त्वां हि सुप्सरस्तममिति द्वे अनुवाक्ये। सूचितं च। त्वां हि सुप्सरस्तममिति द्वे कुविदंग नमसा ये वृधासः। आ० ३. ८.। इति ॥

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे। ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥२४॥
त्वां। हि। सुप्सरःऽतमं। नृऽसदनेषु। हूमहे। ग्रावाणं। न। अश्वऽपृष्ठं। मंहना ॥२४॥

हे वायो सुप्सरस्तमं। सुप्स इति रूपनाम ॥ रो मत्वर्थीयः ॥ अतिशयेन शोभनरूपवंतं मंहना स्वकीयेन महत्त्वेनाश्वपृष्ठं सर्वतो व्याप्तपृष्ठं। पृष्ठशब्दः सर्वांगं लक्षयति। व्याप्तसर्वांगमित्यर्थः। त्वां। हिरवधारणे। त्वामेव नृषदनेषु नृसदनेषु। नरोऽध्वरस्य नेतार ऋत्विजोऽत्र सीदंतीति नृषदना यज्ञाः। तेषु हूमहे। वयमाह्वयामः। कथमिव। ग्रावाणं न। यथा सोमाभिषवार्थं ग्रावाणं स्तुतिभिराह्वयंति तद्वत्त्वां स्तुतिभिराह्वयामः ॥

शुनासीरीये स त्वं नो देवेत्येषा वायोरनुवाक्या। सूचितं च। स त्वं नो देव मनसेशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्। आ० २. २०.। इति ॥

स त्वं नो देव मनसा वायो मंदानो अग्रियः। कृधि वाजाँ अपो धियः ॥२५॥
सः। त्वं। नः। देव। मनसा। वायो इति। मंदानः। अग्रियः। कृधि। वाजान्।
अपः। धियः ॥२५॥

हे देव द्योतमान यद्वा स्तोतव्य वायो अग्रियो देवानां मध्ये मुख्योऽग्रतो गंतासि। तादृशस्त्वं मनसा मंदानो मंदमानः स्वयमेव मोदमानः सन्नोऽस्माकं वाजानन्नान्यपो मेघभेदनेनोदकानि च उभयस्मिंस्त्वया प्रदत्ते सति धियोऽग्निहोत्रादिकर्माणि च कृधि। कुरु। कारयेत्यर्थः ॥ ॥३०॥

अग्निरुक्थ इति द्वाविंशत्यृचं सप्तमं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। अग्निरुक्थे द्व्यधिका मनुर्वैवस्वतो वैश्वदेवं ह प्रागाथमिति। विवस्वतः पुत्रो मनुर्ऋषिः। प्रथमातृतीयाद्ययुजो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थ्यादियुजः सतोबृहत्यः। इदमादीनां चतुर्णां सूक्तानां विश्वे देवा देवता ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यं ॥१॥
अग्निः। उक्थे। पुरःऽहितः। ग्रावाणः। बर्हिः। अध्वरे।
ऋचा। यामि। मरुतः। ब्रह्मणः। पतिं। देवान्। अवः। वरेण्यं ॥१॥

मनुः प्रार्थयते। उक्थे स्तोत्रशस्त्रात्मकेऽध्वरे हिंसारहितेऽस्मिन्यज्ञेऽग्निः पुरोहितो यज्ञार्थं पुरत उत्तर-

वेद्यामृत्विग्भिर्निहितोऽभूत् । तथा ग्रावाणश्च सोमाभिषवार्थं पुरतो निहिताः । बर्हिश्च पुरतो निहितमासादितं । एवं सामग्र्यां सत्यां मरुत एकोनपंचाशत्संख्याकान् ब्रह्मणस्पतिं स्तोत्रस्य पालयितारमेतन्नामकं देवं देवानिंद्रादींश्च एतान् सर्वान्देवान्वरेण्यं वरणीयं भजनीयमवो रक्षणमृचा सूक्तरूपया स्तुत्या यामि। मनुरहं याचामि ॥ याचतेर्लटि रूपं । वर्णलोपश्छांदसः ॥

आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥२॥
आ । पशुं । गासि । पृथिवीं । वनस्पतीन् । उषसा । नक्तं । ओषधीः ।
विश्वे । च । नः । वसवः । विश्वऽवेदसः । धीनां । भूत । प्रऽअवितारः ॥२॥

पूर्वार्धर्चेऽग्निः संबोध्यते पश्वादिशब्दसद्भावात् । हे अग्ने नोऽस्मदीये यज्ञे पशुमग्नीषोमीयं पशुं प्रत्या गासि । आगच्छसि ॥ गाङ् गतौ । व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ तथा पृथिवीमिदं देवसदनं प्रति किंच वनस्पतीन् मथनसाधनानरणिरूपान्वनस्पतीन्प्रति तथोषासा होतव्यत्वेनोषःकालं तथा नक्तं यष्टव्यतया रात्रिं च प्रति किंचौषधीः ॥ उष दाहेऽत्र मादनकर्मा ॥ ओषंति मादयंत्यनेनेत्योषः सोमः । स धीयते निधीयते येष्विति त्योषधयो ग्रावाणः । तान्प्रत्यागच्छसि । यद्वा । ओषधयः फलपाकांता लताः । ताः प्रत्यायाहि । अथवा हे स्तोतः पश्वादीना गासि । समंतात्स्तुहि ॥ कै गै शब्दे इति धातुः ॥ ततो हे वसवो वासयितारो विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञाना वा हे विश्वे सर्वेऽपि देवाः नोऽस्मदीयानां कर्मणां प्रावितारो भूत । अनेनाग्निना सह यूयं प्रकर्षेण रक्षका भवत ॥

प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥३॥
प्र । सु । नः । एतु । अध्वरः । अग्ना । देवेषु । पूर्व्यः ।
आदित्येषु । प्र । वरुणे । धृतऽव्रते । मरुत्ऽसु । विश्वऽभानुषु ॥३॥

पूर्व्यः पुरातनः । पूर्व्यान् पुरातनानिंद्रादीन् देवान्प्रति क्रियमाणत्वाद्यज्ञोऽपि पूर्व्य इत्युच्यते । तादृशो मुख्यो नोऽस्मदीयोऽध्वरो यज्ञोऽग्ना ॥ सुपां सुलुगिति सप्तम्या डादेशः ॥ अग्नौ । अग्निर्देवानां मुख्यत्वात्प्रथममभिहितः । तस्मिन्नग्नौ सर्वेष्वन्येषु देवेषु च सु सुष्ठु प्रैतु । प्रकर्षेण गच्छतु । देवान् विशिनष्टि । आदित्येष्वदितेः पुत्रेष्विंद्रादिषु धृतव्रते धृतकर्मणि वरुणे च विश्वभानुषु सर्वतो व्याप्ततेजस्केषु मरुत्सु च प्रैतु ॥

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यंता नोऽवृकं छर्दिः ॥४॥
विश्वे । हि । स्म । मनवे । विश्वऽवेदसः । भुवन् । वृधे । रिशादसः ।
अरिष्टेभिः । पायुऽभिः । विश्वऽवेदसः । यंत । नः । अवृकं । छर्दिः ॥४॥

विश्ववेदसः सर्वतो व्याप्तधनाः । बहुधना इत्यर्थः । तादृशा रिशादसो रिशतां हिंसतां शत्रूणामसितार उपक्षपयितारो वा विश्वे हि ष्म सर्वे खलु देवा मनवे । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । मनोर्वृधे वर्धनाय भुवन्। भवंतु। स्तोत्रे मनुष्याय धनं दत्त्वा तं वर्धयंत्वित्याशास्ते । ततो हे विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञा वा देवाः अरिष्टेभिः परैरहिंसितैः पायुभिः पालनैः सहावृकं । वृकः स्तेनः । तद्रहितं । बाधारहितमित्यर्थः । तादृशं छर्दिर्गृहं नोऽस्मभ्यं यंत । प्रयच्छत । शत्रून्हत्वा गृहेष्वस्माभिः कर्माणि कारयतेत्यर्थः ॥ यंतेति यमेर्लोटि छांदसो विकरणस्य लुक् । तस्य तबादेशः । तेनानुनासिकलोपाभावः ॥

आ नो॑ अ॒द्य सम॑नसो॒ गंता॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः ।
ऋ॒चा गि॒रा मरु॑तो॒ देव्यदि॑ते॒ सद॑ने॒ पस्त्ये॑ महि ॥५॥
आ । नः॒ । अ॒द्य । सऽम॑नसः । गंत॑ । विश्वे॑ । स॒ऽजोष॑सः ।
ऋ॒चा । गि॒रा । मरु॑तः । देवि॑ । अदि॑ते । सद॑ने । पस्त्ये॑ । म॒हि॒ ॥५॥

समनसः सर्वेषु स्तोत्रेषु समानमनस्का विश्वे सर्वे देवा यूयं सजोषसः परस्परं संगताः संतो गिरा । शुश्रूषुतया प्राप्तव्ययेत्यर्थः । तयर्चा सहाद्यास्मिन्यागदिने नो यष्टॄनस्माना गंत । आगच्छत । अनंतरं हे मरुतो देवि द्योतमाने महि महति देवानां मातृत्वान्महत्त्वयुक्ते हे अदितेऽदीन एतन्नामिके देवि सदने स्थाने पस्त्येऽस्मदीये गृहे स्तोतव्यतयोपविशत ॥ मरुत इत्यादेर्वाक्यभेदादनिघातः । उत्तरत्र पूर्वस्यामंत्रितस्याविद्यमानवत्त्वेन वाक्यादित्वादनिघातः ॥ ॥३१॥

अ॒भि प्रि॒या मरु॑तो॒ या वो॒ अश्व्या॑ ह॒व्या मि॑त्र प्रया॒थन॑ ।
आ ब॒र्हिरिंद्रो॒ वरु॑णस्तु॒रा नर॑ आ॒दि॒त्यासः॑ सदंतु नः ॥६॥
अ॒भि । प्रि॒या । म॒रु॒तः॒ । या । वः॒ । अश्व्या॑ । ह॒व्या । मि॒त्र॒ । प्र॒ऽया॒थन॑ ।
आ । ब॒र्हिः । इंद्रः॑ । वरु॑णः । तु॒राः । नरः॑ । आ॒दि॒त्यासः॑ । स॒दं॒तु॒ । नः॒ ॥६॥

हे मरुतः प्रिया प्रियाणि या यानि वो युष्माकमश्व्याश्व्यानि प्रियानश्वसंघानभि प्रयाथन । अस्मद्यज्ञं प्रति प्रापयत । यूयमश्वैर्युक्ताः संत आगच्छतेत्यर्थः । अथ हे मित्र । मित्रशब्देनान्ये वरुणादयोऽप्युच्यंते । हे मित्रादयो देवाः हव्या हव्यानि हवनयोग्यानि हवींषि स्वीकर्तुमागच्छतेत्यर्थः । स्तूयमाना आगच्छत ॥ प्रपूर्वाद्यातेर्लोटि तप्तनप्तनथनाश्चेति थनादेशः ॥ आगत्य चेंद्रो वरुण इंद्रावरुणौ तुराः संग्रामे शत्रुवधार्थं त्वरमाणा नरो नेतार आदित्यासोऽदितेः पुत्रा मरुदादयो देवाश्च नोऽस्मदीये यज्ञे बर्हिर्बर्हिष्यासादित आ सदंतु । आसीदंतु । प्रविशंतु ॥ सदेः सीदादेशाभावश्छांदसः ॥

व॒यं वो॑ वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आनु॒षक् ।
सु॒तसो॑मासो वरुण हवामहे मनु॒ष्वदि॒द्धाग्न॑यः ॥७॥
व॒यं । वः॒ । वृ॒क्तऽब॑र्हिषः । हि॒तऽप्र॑यसः । आ॒नु॒षक् ।
सु॒तऽसो॑मासः । व॒रु॒ण॒ । ह॒वा॒म॒हे॒ । म॒नु॒ष्वत् । इ॒द्धऽअ॑ग्नयः ॥७॥

हे वरुण वरुणादयो हे देवाः वृक्तबर्हिष ऋत्विजो वयमानुषक् स्रुगादिष्वनुषक्तं यथा भवति तथा हितप्रयसः । प्रीणातीति प्रयोऽन्नं । तेषु निहितहविष्काः संतो वो युष्मान् हवामहे । एतानि हवींष्यादातुमाह्वयामः । कीदृशाः । सुतसोमासोऽभिषुतसोमा इद्धाग्नय आहुतिभिः समिद्धाग्नयो वयमाह्वयामः । तत्र दृष्टांतः । मनुष्वत् । मनुर्यथा यज्ञे युष्मानाजुहाव तद्वत् ॥

आ प्र या॑त॒ मरु॑तो॒ विष्णो॒ अश्वि॑ना॒ पूष॒न्माकी॑नया धि॒या ।
इंद्र॒ आ या॑तु प्रथ॒मः स॑नि॒ष्युभि॒र्वृषा॒ यो वृ॑त्र॒हा गृ॒णे ॥८॥
आ । प्र । या॒त॒ । मरु॑तः । विष्णो॒ इति॑ । अश्वि॑ना । पूष॑न् । माकी॑नया । धि॒या ।
इंद्रः॑ । आ । या॒तु॒ । प्र॒थ॒मः । स॒नि॒ष्युऽभिः॑ । वृषा॑ । यः । वृ॒त्र॒ऽहा । गृ॒णे ॥८॥

हे विश्वे देवाः प्र यात । प्रकर्षेणास्मदीयकर्माण्यागच्छत । हे मरुतो हे विष्णो स्वबलेन सर्वतो व्याप्तेतन्नामक देव हे अश्विनाश्विनौ पूषन् । स्तोतृन्धनादिना पोषयतीति पूषा । एतन्नामक देव मरुदादयो हे देवाः माकीनया ॥ अस्मच्छब्दाद्युष्मदस्मदोः । पा॰ ४. ३. १. । इति खञ् शैषिकः । एकवचने तवकममकाविति ममकादेशः । वर्णलोपश्छांदसः ॥ मया क्रियमाणया धिया स्तुत्या सहास्मद्यज्ञं प्रत्यागच्छत ॥ मरुदादेरामंत्रितस्य वाक्यभेदादनिघातः ॥ किंच प्रथमो देवानां मुख्यः स इंद्रश्चा यातु । वृषा कामानां सेक्ता य इंद्रः सनिष्ठुभिः । सनिः संभजनं । तदात्मन इच्छद्भिः स्तोतृभिर्वृत्रहापामावरकस्य वृत्रासुरस्य हंतेति गृणे स्तूयते ॥ गृ शब्द इत्यस्य कर्मणि लिटि छांदसो विकरणः ॥

वि नो॑ दे॒वासो॑ अद्रु॒होऽच्छि॑द्रं॒ शर्म॑ यच्छत ।
न यद्दू॒राद्व॑सवो॒ नू चि॒दंति॑तो॒ वरू॑थमाद॒धर्ष॑ति ॥९॥
वि । नः॒ । दे॒वा॒सः॒ । अ॒द्रु॒हः॒ । अच्छि॑द्रं । शर्म॑ । य॒च्छ॒त॒ ।
न । यत् । दू॒रात् । व॒स॒वः॒ । नु । चि॒त् । अंति॑तः । वरू॑थं । आ॒ऽद॒धर्ष॑ति ॥९॥

हे अद्रुहः स्तोतॄणामद्रोग्धारः । यद्वा ॥ द्रुहेरौणादिकः कर्मणि क्विप् ॥ शत्रुभिरहिंस्याः । हे देवासो मरुदादयो देवाः अच्छिद्रं बाधकरहितं साधीयो वा शर्म । शृणाति दुःखादिकमिति शर्म गृहं । तन्नोऽस्मभ्यं वि यच्छत । हे वसवः शत्रूणां वासयितारो मरुदादयः दूराद्दूरदेशादंतितोऽंतिकदेशाद्वा कश्चिदागत्य नू चित्कदाचिदपि वरूथं वरणीयं संभजनीयं यन्नृहं नादधर्षति आधर्षणं हिंसनं न करोति तन्नृहं प्रयच्छतेति समन्वयः ॥ धृष प्रसहन इत्यस्य विभाषितणिच्त्वात् यदा णिच् नास्ति तदा रूपं ॥

अस्ति॒ हि वः॑ सजा॒त्यं॑ रिशादसो॒ देवा॑सो॒ अस्त्याप्यं॑ ।
प्र णः॒ पूर्व॑स्मै सुवि॒ताय॑ वोचत म॒क्षू सु॒म्नाय॒ नव्य॑से ॥१०॥
अस्ति॑ । हि । व॒ः । स॒ऽजा॒त्यं॑ । रि॒शा॒द॒सः॒ । देवा॑सः । अस्ति॑ । आप्यं॑ ।
प्र । न॒ः । पूर्व॑स्मै । सु॒वि॒ताय॑ । वो॒च॒त॒ । म॒क्षु । सु॒म्नाय॑ । नव्य॑से ॥१०॥

हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो देवासो देवा द्योतमाना मरुदादयः वो युष्माकं सजात्यमस्ति । परस्परं समानजातिभावोऽस्ति खलु । किंचाप्यं । आपिर्बंधुः । तस्य भाव आप्यं । स्तोतृषु स्तुत्यलक्षणेन संबंधाद्वैवस्वतेन मनुना मया स्तोत्रा सह युष्माकं बंधुभावोऽस्ति खलु । ततः पूर्वस्मै प्रथमभाविने सुविताय । सुष्ठीयते सर्वैरागम्यत इति सुवितोऽभ्युदयः । तस्मै नव्यसे नवीयसे नवतराय सुम्नाय च उभयं मक्षु शीघ्रं नोऽस्माकं प्र वोचत । प्रकर्षेण ब्रूत । अभ्युदयधनानि प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ ॥३२॥

इ॒दा हि व॒ उप॑स्तुतिमि॒दा वा॒मस्य॑ भ॒क्तये॑ ।
उप॑ वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृ॒क्ष्यन्या॑मिव ॥११॥
इ॒दा । हि । व॒ः । उप॑ऽस्तुतिं । इ॒दा । वा॒मस्य॑ । भ॒क्तये॑ ।
उप॑ । व॒ः । वि॒श्व॒ऽवे॒द॒सः॒ । न॒म॒स्युः । आ । असृ॑क्षि । अन्यां॑ऽइव ॥११॥

हे विश्ववेदसः सर्वधना हे देवाः नमस्युरन्नमिच्छन् मनुरहं वो युष्मद्विषयामुपस्तुतिमन्यामिवादृष्टपूर्वामिव स्थितां । कैश्चिदप्यदृष्टामित्यर्थः । तादृशीमुपस्तुतिमिदा हि । हिरवधारणे । इदानीमेवोपासृक्षि । उपासृजामि । करोमीत्यर्थः । किमर्थं । वो युष्मत्संबंधिनो वामस्य वननीयस्येदेदानीमेव भक्तये संभजनाय । लाभायेत्यर्थः ॥ असृक्षीति सृजेर्लुङि रूपं । पादादित्वादनिघातः ॥

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥१२॥
उत् । ऊं इति । स्यः । वः । सविता । सुऽप्रनीतयः । अस्थात् । ऊर्ध्वः । वरेण्यः ।
नि । द्विऽपादः । चतुःऽपादः । अर्थिनः । अविश्रन् । पतयिष्णवः ॥१२॥

हे सुप्रणीतयः । शोभनप्रणीतिः स्तुतिः । शोभनप्रणयनाः शोभनस्तुतयो मरुतः वो युष्माकं मध्य ऊर्ध्व ऊर्ध्वं गंता वरेण्यः सर्वैर्वरणीयः संभजनीयः स सविता सर्वस्य स्वकर्मणि प्रेरक एतन्नामकः स देवो यदोदस्थात स्वतेजसोन्नतोऽभूत् तदार्थिनो द्विपादो पादद्वययुक्ताः पुरुषाश्चतुष्पादः पादचतुष्टययुक्ता अश्वादयः पतयिष्णवः पतनशीलाः पक्षिणश्च न्यविश्रन् । स्वस्वकार्येषु निविशंते । सूर्ये उदिते केचन पुरुषा अग्निहोत्रादिकं कुर्वंति केचन देवताविषयं स्तोत्रं कुर्वंति । पश्वादयस्तृणादिभक्षणार्थं सर्वत्र संचरंति ॥ न्यविश्रन् । निपूर्वाद्विशतेर्लङि व्यत्ययेन परस्मैपदं । बहुलं छंदसीति रुडागमः ॥

पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रे देवंदेवमिति वैश्वदेवस्तृचः । सूचितं च । देवंदेवं बृहदु गायिषे वचः । आ° ७. १२. । इति ॥

देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये ।
देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणंतो देव्या धिया ॥१३॥
देवंऽदेवं । वः । अवसे । देवंऽदेवं । अभिष्टये ।
देवंऽदेवं । हुवेम । वाजऽसातये । गृणंतः । देव्या । धिया ॥१३॥

वयं देव्या द्योतमानया धिया स्तुत्या गृणंतः स्तुवंतः संतो वो युष्माकं मध्ये देवं देवं दीप्यमानं देवमवसे कर्मरक्षणायाह्वयाम । अनुक्रमेणाह । अभिष्टयेऽभिलषितप्राप्त्यर्थं च देवं देवं वयमाह्वयाम । ततो वाजसातयेऽन्नलाभाय हुवेम । ह्वयाम ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवंतु वरिवोविदः ॥१४॥
देवासः । हि । स्म । मनवे । सऽमन्यवः । विश्वे । साकं । सऽरातयः ।
ते । नः । अद्य । ते । अपरं । तुचे । तु । नः । भवंतु । वरिवःऽविदः ॥१४॥

समन्यवः समानमनसः यद्वा संग्रामेषु शत्रुहननार्थं समानक्रोधयुक्ता विश्वे सर्व एव देवासो हि ष्म मरुदादयो देवाः खलु मनव एतन्नामकायर्षये मह्यं साकं सह युगपदेव सरातयो धनादिदानेन सहिता भवंतु । पुनरपि प्रार्थयते । ते देवा नोऽस्माकमद्यास्मिन्दिनेऽपरं च किं बहुना सर्वेषु दिवसेषु धनदातारो भवंतु । न केवलमस्माकमेव किंतु तुचे । तुगित्यपत्यनाम ॥ तुजि पिजि हिंसादाननिकेतनेषु ॥ तोजयति हिनस्ति पितुर्दुःखादिकमिति तुक् पुत्रः । तस्मै नोऽस्माकं पुत्राय वरिवोविदो वरणीयस्य धनस्य लंभयितारो भवंतु ॥

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनां ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५॥
प्र । वः । शंसामि । अद्रुहः । संऽस्थे । उपऽस्तुतीनां ।
न । तं । धूर्तिः । वरुण । मित्र । मर्त्यं । यः । वः । धामऽभ्यः । अविधत् ॥१५॥

हे अद्रुहोऽद्रोग्धारोऽहिंस्या वा मरुदादयः उपस्तुतीनामुपस्तोत्राणां संस्थे तासां यज्ञे क्रियमाणत्वाद्-आत्संस्थानभूतेऽस्मिन्यज्ञे वो युष्मान् प्र शंसामि। प्रकर्षेण स्तौमि। हे वरुण मित्र मित्रावरुणौ तं मर्त्यं मनुष्यं धूर्तिः ॥ धुर्वी हिंसार्थः ॥ शत्रुभ्यो हिंसा तं न बाधते यो मनुष्यो वो युष्माकं धामभ्यस्तेजोभ्यः। धीयते ऽस्मिन्निति धाम शरीरं वा। तेभ्योऽविधत् ॥ विध विधाने ॥ हवींषि विदधाति प्रयच्छति। एतेन तेजसामपि हविर्भक्षणमस्तीति ज्ञायते ॥

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥१६॥
प्र। सः। क्षयं। तिरते। वि। महीः। इषः। यः। वः। वराय। दाशति।
प्र। प्रऽजाभिः। जायते। धर्मणः। परि। अरिष्टः। सर्वः। एधते ॥१६॥

हे मरुदादयः स मनुष्यः क्षयं। क्षियंति निवसंत्यत्रेति क्षयो गृहं। तत्स मनुष्यः प्र तिरते। प्रकर्षेण वर्धयति। तिरतिर्वृद्धिकर्मा। स एव महीर्महतीरिषोऽन्नानि च वि वर्धयति यो मनुष्यो वराय वरणीयाय धनाय तदर्थं वो युष्मभ्यं दाशति हवींषि प्रयच्छति। धनादिभिर्वर्धयतीत्यन्वयः। किंच धर्मणः। ध्रियत ऋत्विग्भिरिति धर्म कर्म। युष्मद्विषयात्कर्मणः सकाशात्स मनुष्यः प्रजाभिः पुत्रपौत्रादिभिः परि परितः सर्वतः प्र जायते। प्रकर्षेणाविर्भवति। आत्मा वै पुत्रनामासि। शत॰ १४. ९. ४. २६.। इति श्रुतेः। ततोऽरिष्टो ऽन्यैरहिंसितः सर्वो युष्माकं हविष्प्रदानात्सकलो जन एधते। धनादिभिर्वर्धते ॥ ॥३३॥

ऋते स विंदते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायंते सजोषसः ॥१७॥
ऋते। सः। विंदते। युधः। सुऽगेभिः। याति। अध्वनः।
अर्यमा। मित्रः। वरुणः। सऽरातयः। यं। त्रायंते। सऽजोषसः ॥१७॥

सोऽर्यमादीनां हविर्दाता मनुष्यो युधः ॥ युध संप्रहारे। भावे क्विप् ॥ युद्धादृते विनापि विंदते। धनानि लभते। किंच सुगेभिः शोभनगमनैः सुष्ठु गंतृभिर्वाश्वैः सहाध्वनो मार्गान्। गंतव्यान्देशानित्यर्थः। तान् याति। गच्छति। यं जनमर्यमा सततं गच्छन् मित्रः स्तोतॄणां यष्टॄणां च धनप्रदानेन मित्रभूतो वरुणो निवारयिता शत्रूणां यद्वा वरणीयः संभजनीय एतन्नामकाः सरातयः समानदानास्त्रयो देवाः सजोषसः परस्परं संगताः संतो यं हव्यप्रदातारं त्रायंते स्वरक्षणैः पालयंति स धनादीनि विंदतीत्यन्वयः ॥

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यंचनं दुर्गे चिदा सुसरणं।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधंती वि नश्यतु ॥१८॥
अज्रे। चित्। अस्मै। कृणुथ। निऽअंचनं। दुःऽगे। चित्। आ। सुऽसरणं।
एषा। चित्। अस्मात्। अशनिः। परः। नु। सा। अस्रेधंती। वि। नश्यतु ॥१८॥

हे देवाः अज्रे चित् ॥ ज्रि अभिभवे ॥ परैरनभिभवनीयेऽपि परपुरे न्यंचनं नितरां गमनमस्मै मनवे कृणुथ। यूयं कुरुत। यद्वा। अज्र ऋजुगमने प्रस्थे गमनं कुरुत। तथा दुर्गे चिद्गंतव्येऽपि स्थले सुसरणं ॥ सृ गतौ ॥ शोभनगमनमा समंतात्कुरुत। एवं सति सैषाशनिः शत्रूणां तदेतदायुधमस्मात्सर्वतो गंतुर्मनोर्नु क्षिप्रं परः परस्ताद्भवेत्। पश्चात्साशनिरस्रेधंती कांश्चिदप्यहिंसती वि नश्यतु। विनष्टा भवेत् ॥

यद॒द्य सूर्ये॑ उद्य॒ति प्रिय॑क्षत्रा ऋ॒तं द॒ध ।
यन्नि॒म्रुचि॑ प्र॒बुधि॑ विश्ववेदसो॒ यद्वा॑ म॒ध्यंदि॑ने दि॒वः ॥१९॥
यत् । अ॒द्य । सूर्ये॑ । उ॒त्ऽय॒ति । प्रिय॑ऽक्षत्राः । ऋ॒तं । द॒ध ।
यत् । नि॒ऽम्रुचि॑ । प्र॒ऽबुधि॑ । वि॒श्व॒ऽवे॒द॒सः॒ । यत् । वा॒ । म॒ध्यंदि॑ने । दि॒वः ॥१९॥

हे प्रियक्षत्राः प्रीणयितृबला देवाः सूर्ये सर्वस्य स्वस्वकर्मणि प्रेरके सवितर्युद्यत्युद्गच्छति सत्यद्यास्मिन्दिने यद्यदा ऋतं कल्याणभूतं गृहं दध धारयत ॥ दधातेर्लिटि मध्यमबहुवचने रूपं ॥ यद्यदा हे विश्ववेदसः सर्वधना देवाः निम्रुचि । म्रुचिर्गत्यर्थः । सूर्यस्य निम्रोचने नितरां गमने । सायमित्यर्थः । तस्मिन् धारयथ । यद्वा प्रबुधि तस्य प्रबोधने प्रातःकाले । यद्वा दिवः सूर्यतेजसा दीप्यमानस्याह्नो मध्यंदिने मध्ये धनं मनवे धत्तेत्युत्तरत्र संबंधः ॥

यद्वा॑भिपि॒त्वे अ॑सुरा ऋ॒तं य॒ते छ॒र्दिर्ये॒म वि दा॒शुषे॑ ।
व॒यं तद्वो॑ वसवो विश्ववेदस॒ उप॑ स्थेयाम॒ मध्य॒ आ ॥२०॥
यत् । वा॒ । अ॒भि॒ऽपि॒त्वे । अ॒सु॒राः॒ । ऋ॒तं । य॒ते । छ॒र्दिः । ये॒म । वि । दा॒शुषे॑ ।
व॒यं । तत् । वः॒ । व॒स॒वः॒ । वि॒श्व॒ऽवे॒द॒सः॒ । उप॑ । स्थे॒या॒म॒ । मध्ये॑ । आ ॥२०॥

हे असुराः प्राज्ञाः संग्राम आप्तानां क्षेप्तारो वा देवाः यद्वाभिपित्वेऽस्मदस्मत्प्रति युष्माकमभिप्राप्तावृतं सत्यभूतं यज्ञं यते ॥ इणः शतरि रूपं ॥ गच्छते दाशुषे हवींषि दत्तवते यजमानाय च्छर्दिः ॥ छर्दिर्दीप्तिदेवनयोः ॥ दीप्यतेऽनेनेति च्छर्दिस्तेजः । यद्वा । छर्दति दीव्यंतेऽत्रेति च्छर्दिर्गृहं । तद्गृहं तेजो वा वि येम प्रयच्छथ । यद्येवं यूयं कुरुथ तर्हि वयं हे वसवः स्तोतॄणां धनादिभिराच्छादयितारः यद्वा शत्रूणां विवासयितारो विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वज्ञाना वा हे देवाः वो युष्मत्संबंधि तत्कल्याणं गृहं । षष्ठ्यर्थे द्वितीया । भवद्भिः प्रत्तस्य गृहस्य मध्य उप स्थेयाम । उपतिष्ठेम । युष्मान्हविर्भिः पूजयेम ॥ तिष्ठतेराशीर्लिङि लिङ्याशिष्यङित्यङ्प्रत्ययः ॥

यद॒द्य सूर॒ उदि॑ते॒ यन्म॒ध्यंदि॑न आ॒तुचि॑ ।
वा॒मं ध॒त्थ मन॑वे विश्ववेदसो॒ जुह्वा॑नाय॒ प्रचे॑तसे ॥२१॥
यत् । अ॒द्य । सूरे॑ । उत्ऽइ॑ते । यत् । म॒ध्यंदि॑ने । आ॒ऽतुचि॑ ।
वा॒मं । ध॒त्थ । मन॑वे । वि॒श्व॒ऽवे॒द॒सः॒ । जुह्वा॑नाय । प्रऽचे॑तसे ॥२१॥

हे विश्ववेदसः सर्वतो व्याप्तधना हे देवाः यद्यदाद्येदानीं । यद्वा सूर्य उदिते सति । यद्यदा मध्यंदिने दिवसस्य मध्ये । यद्वातुचि । आतुचिर्गमनार्थः । सूर्यस्य निम्रोचने । सायमित्यर्थः । जुह्वानायाग्नौ हवींषि जुह्वते अत एव प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानाय मनव एतन्नामकायर्षये मह्यं वामं वननीयं धनं धत्थ दत्थ तद्वृणीमह इत्युत्तरत्र संबंधः ॥

व॒यं तद्वः॑ सम्राज॒ आ वृ॑णीमहे पु॒त्रो न ब॑हु॒पाय्य॑म् ।
अ॒श्याम॒ तदा॑दित्या॒ जुह्व॑तो ह॒विर्येन॒ वस्यो॑ऽन॒शाम॑है ॥२२॥
व॒यं । तत् । वः॒ । सम्ऽरा॒जः॒ । आ । वृ॒णी॒म॒हे॒ । पु॒त्रः । न । ब॒हु॒ऽपाय्य॑म् ।
अ॒श्याम॑ । तत् । आ॒दि॒त्याः॒ । जुह्व॑तः । ह॒विः । येन॑ । वस्यः॑ । अ॒न॒शाम॑है ॥२२॥

हे सम्राजः सम्यग्दीप्यमाना देवाः पुत्रो न ॥ एकवचनं छांदसं ॥ युष्माकं पुत्रा इव स्थिताः पुत्रा यथा पितृभिः पोष्याः तद्वद्युष्माभिः पोष्या वयं । बहुपाय्यं बहुभिर्भोज्यं वो युष्मत्संबंधि तद्धनमश्याम । प्राप्नुयाम । येन धनेन वस्यो वसीयोऽतिशयेन वसुमत्त्वमनशामहै अश्नवामहै प्राप्नुमः ॥ अश्नोतेर्लोटि व्यत्ययेन श्नम्प्रत्ययः ॥ ॥ ३४ ॥

ये त्रिंशतीति पंचर्चमष्टमं सूक्तं । अत्रानुक्रांतं । ये त्रिंशति पंचोपांत्या पुरउष्णिगिति । मनुर्ऋषिः । प्राग्वत्सप्रीयपरिभाषया गायत्री छंदः । उपांत्या पुरउष्णिक् । पूर्ववद्विश्वे देवे देवता ॥ तृतीये छंदोमे वैश्वदेवशस्त्रे ये त्रिंशतीत्येतत्सूक्तं वैश्वदेवनिविद्धानं । सूचितं च । ये त्रिंशतीति वैश्वदेवं । आ॰ ८. ११. । इति ॥

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥
ये । त्रिंशति । त्रयः । परः । देवासः । बर्हिः । आ । असदन् । विदन् । अह । द्विता । असनन् ॥ १ ॥

मनुराह । त्रिंशति त्रिंशत्संख्यायाः परः परस्तात्त्रयः । त्रयस्त्रिंशद्देवता इत्यर्थः । ये देवासो देवा बर्हिरस्मदीययज्ञसंबंधिनि बर्हिषि हविःस्वीकरणार्थमासदन् आसीदंतु अथानंतरं विदन् ते देवा अस्मान्हविषां प्रदातॄनिति जानंतु । ततो द्विता द्विधा द्विप्रकारमसनन् । अस्मभ्यं धनं पश्वादिकं च प्रयच्छंतु । यद्वा । द्विता द्वैधं । अनेन पौनःपुन्यं लक्ष्यते । पुनःपुनरस्मभ्यं धनादिकं ददत्वित्यर्थः ॥

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः । पत्नीवंतो वषट्कृताः ॥ २ ॥
वरुणः । मित्रः । अर्यमा । स्मद्रातिऽसाचः । अग्नयः । पत्नीऽवंतः । वषट्ऽकृताः ॥ २ ॥

वरुणो वरणीयः संभजनीयो मित्रः स्तोतॄणां यष्टॄणां च धनादिदानेन मित्रभूतोऽर्यमा स्तोत्रकारिणे धनं प्रापयन् यद्वा सततं गच्छन् एतन्नामकास्त्रयो देवाः स्मद्रातिषाचः । स्मत् सुमच्छोभना रातिर्हविष्प्रदानं येषामस्तीति स्मद्रातयो यजमानाः । तान् सचंते धनादिप्रदानेन सेवंत इति तथोक्ताः । यद्वा । कल्याणं यथा भवति तथा हविषां दातॄन् सचंत इति । ते तादृशाः पत्नीवंतो देवपत्नीसहिता अग्नयोऽंगनशीला नानाविधा अग्नयो वषट्कृताः । मया सोमस्याग्ने वीहि वौषडित्यादिना स्वाहाकृताः । सुकृता इत्यर्थः ॥

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् । पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥
ते । नः । गोपाः । अपाच्याः । ते । उदक् । ते । इत्था । न्यक् । पुरस्तात् । सर्वया । विशा ॥ ३ ॥

ते वरुणादयो देवाः सर्वया सर्वेण विशानुचरवर्गेण सहापाच्याः । अपाची प्रतीची । ततो नोऽस्माकं गोपा गोपायितारो भवंतु । त एव उदगुदीच्याः ॥ अंचेर्लुगिति पंचम्यर्थे विहितस्यास्तातिर्लुक् ॥ ततोऽप्यस्माकं रक्षका भवंतु । इत्थेति शब्देनोर्ध्वा दिशं दक्षिणां च निर्दिशति । इत्यमनेन पूर्वोक्तेन प्रकारेणोर्ध्वाया दक्षिणस्याश्च दिशस्ते देवा अस्माकं पालयितारो भवंतु । तथा न्यग्नीच्या दिशः ॥ अत्रापि पूर्ववदस्तातिर्लुक् ॥ अधस्तादेवाप्यस्माकं त्रातारो भवंतु । किंच पुरस्तात्प्राच्या दिशश्च ते देवा अस्माकं गोपायितारो भवंतु ॥

यथा वशंति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत् । अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥
यथा । वशंति । देवाः । तथा । इत् । असत् । तत् । एषां । नकिः । आ । मिनत् । अरावा ।
चन । मर्त्यः ॥ ४ ॥

देवा द्योतमानाः सर्वे देवा यथा वशंति यथा कामयंते ॥ वश कांतौ । संप्रसारणाच्चेति पूर्वरूपस्य छंदसि विकल्पितत्वाद्यणादेशः ॥ तथैवाथोशंति तथैवासत् । तच्चवत्येव । तदेवाह । एषां देवानां तत्कामनं नकिर्न कश्चिदपि मिनत् । हिनस्ति ॥ मीङ् हिंसायां । लेटि रूपं । मीनातेर्निगम इति ह्रस्वत्वं ॥ कथं देवानामभिलषितं तथा भवतीति चेत् तदाह । अरावा । यदि देवाः कंचिदप्यदातारं मनुष्यं कामयेरन् तदारा-

वादाता । चनेत्यप्यर्थे । अदातापि मर्त्यो मनुष्य उशद्यो देवेभ्यो हवींषि प्रयच्छति । तस्मात्तेषां यत्कामनं तत्तथा भवत्येवेत्यर्थः ॥

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषां । सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥५॥

सप्तानां । सप्त । ऋष्टयः । सप्त । द्युम्नानि । एषां । सप्तो इति । अधि । श्रियः । धिरे ॥५॥

अत्र पुरातनी कथा । इंद्रसमानं पुत्रमिच्छंत्या अदितेर्गर्भस्य केनचित्कारणेनेंद्रेण सप्तधा भिन्नत्वात्स गर्भः सप्तगणात्मकोऽभवत् । ततो मरुतः संपन्नाः । सप्तगणा वै मरुतः । तै० सं० २. २. ११. १. । इति श्रुतेः । एषा कथेदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः । ऋ० १. ११४. ६. । इत्यस्मिन्वर्गे सप्रपंचेनाभ्यधायि । तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः । सप्तानां मरुतां गणानां सप्त सप्तसंख्याका ऋष्टय आयुधविशेषा विभिन्नाः संति । तथा सप्त सप्तसंख्याकानि द्युम्नानि द्योतमानानि कुंडलादीन्याभरणानि । द्युम्नान्यन्नानि वा । एषां गणानां विभिन्नानि संति । ततः सप्त मरुतां गणाः सप्तो सप्तैव सप्तविधाः श्रियः सकला दीप्तीरधि धिरे । परस्परमधिकं दधिरे ॥ ॥३५॥

बभ्रुरेक इति दशर्चं नवमं सूक्तं । मरीचिपुत्रः कश्यपो वैवस्वतो मनुर्वा ऋषिः । तथा चानुक्रम्यते । बभ्रुर्दश कश्यपो वा मारीचो द्वैपदमिति । दशापि द्विपदा विंशत्यक्षरा विराजः । पूर्ववद्विश्वे देवा देवता ॥ तृतीये छंदोमे वैश्वदेवसूक्तात्पूर्वमेव द्वैपदं सूक्तं शंसनीयं । सूत्र्यते हि । बभ्रुरेक इति द्विपदासूक्तानि पुरस्ताद्वैश्वदेवसूक्तानां । आ० ८. ७. । इति ॥

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवांज्यंक्ते हिरण्ययं ॥१॥

बभ्रुः । एकः । विषुणः । सूनरः । युवा । अंजि । अंक्ते । हिरण्ययं ॥१॥

अत्र दशानामृचां किंचित्पदं लिंगात्पृथग्देवतं । अत्र प्रथमायां बभ्रुरित्यनेन सोमोऽभिधीयते । सौम्यं बभ्रुमा लभेत । तै० सं० २. १. ३. ३. । इत्यादिषु दृष्टत्वात् । बभ्रुर्बभ्रुवर्णः शबलतादिषु परिपक्कः । यद्वा ॥ डुभृञ् धारणपोषणयोः । कुर्भश्च । उ० १. २३. । इति कुप्रत्ययः ॥ सर्वस्य सुधामयैः किरणैस्तावदुन्नते चंद्रमसि दुःखोपशमनानि पुष्टानि खलु । तादृशो विषुणो विष्वगंचनः सूनरः सुष्ठु रात्रीणां नेता । रात्रयश्चंद्रनेतृकाः खलु । एतादृशो युवा प्रतिदिवसमाविर्भूतत्वात्तरुण एको देवः सोमो हिरण्ययं हिरण्मयमंजि । अभिव्यज्यते प्रकाश्यतेऽनेनेत्यंज्याभरणं । अभिव्यक्तिसाधनं कुंडलमुकुटादिकं स्वशरीरमंक्ते । अभिव्यंजयति ॥

योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽंतर्देवेषु मेधिरः ॥२॥

योनिं । एकः । आ । ससाद । द्योतनः । अंतः । देवेषु । मेधिरः ॥२॥

अत्र योनिमिति लिंगादग्निरुच्यते । अग्नये गृहपतय इत्यादिषु दृष्टत्वात् । देवेषु देवानामंतर्मध्ये द्योतनः स्वतेजसा दीप्यमानो मेधिरो मेधावी । अथवा मेधाकांक्षिणां स्तोतॄणां मेधादातृत्वेन मेधायुक्तः । एवंविध एकोऽग्निर्योनिं स्थानभूतमाहवनीयादिकमा ससाद । हविःस्वीकरणार्थमासीददति ॥

वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमंतर्देवेषु निध्रुविः ॥३॥

वाशीं । एकः । बिभर्ति । हस्ते । आयसीं । अंतः । देवेषु । निऽध्रुविः ॥३॥

देवेष्वंतर्देवानां मध्ये द्योतमानो निध्रुविर्निश्चले स्थाने वर्तमानः । यद्वा । नितरां गमनमस्यास्तीति निध्रुविः सर्वदा गच्छन् । अथवा संग्रामेषु शत्रूणां पुरतोऽतिशयेन स्थैर्यवान् । एतादृश एकस्त्वष्टृनामको देव आयसीमयोमयधारां वाशीं ॥ वाशृ शब्दे ॥ शब्दयत्याक्रंदयति शत्रूननयेति वाशी तक्षणसाधनं कुठारः । तं स्वकीये हस्ते बिभर्ति । धारयति ॥

वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥४॥

वज्रं । एकः । बिभर्ति । हस्ते । आऽहितं । तेन । वृत्राणि । जिघ्नते ॥४॥

अत्र वज्रलिंगादिंद्रो देवता। एक इंद्र आहितं स्वकीयहस्ते निहितं वज्रमेतन्नामकमायुधं बिभर्ति। धत्ते। स एवेंद्रस्तेन निहितेन वज्रेण वृत्राण्यावरकाणि रक्षांसि पापानि वा जिघ्नते। भृशं हंति ॥

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥५॥

तिग्मं। एकः। बिभर्ति। हस्ते। आयुधं। शुचिः। उग्रः। जलाषऽभेषजः ॥५॥

अत्र जलाषभेषज इत्यनेन रुद्रोऽभिधीयते। शुचिः ॥ शुच दीप्तौ ॥ सर्वतः स्वतेजसा दीप्यमानः। यद्वा ॥ शुच शोके ॥ शत्रूणां शोचयिता दुःखयिता। अत एवोग्र उद्गूर्णबलो जलाषभेषजो रोगापनयनेन सुखकरभेषज्यवान्। यद्वा। स्तोतॄणां दुःखरूपसंसारोच्छेदेन सुखकारिभिषग्रूपः। प्रथमो दैव्यो भिषगित्यादिश्रुतिभिरस्य भिषक्त्वं श्रूयते। तादृश एको रुद्रस्तिग्मं तीक्ष्णधारमायुधं। आयुध्यति संप्रहरति शत्रूननेनेत्यायुधं पिनाकः। तं स्वकीये हस्ते बिभर्ति ॥

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनां ॥६॥

पथः। एकः। पीपाय। तस्करः। यथा। एषः। वेद। निऽधीनां ॥६॥

पथ इति लिंगेन पूषा निगद्यते। सं पूषन्नध्वनस्तिर। ऋ॰ १. ४२. १.। इत्यादिषु दृष्टत्वात्। एकः पूषनामको देवः पथो मार्गान् पीपाय। प्यायतिर्वर्धनकर्माप्यत्र रक्षणार्थः। येऽग्निहोत्रादि कर्म कुर्वंति तेषां स्वर्गमार्गं ये दुष्कृतं कर्म कुर्वंति तेषां यातनामार्गं च रक्षति। उभयेषां मार्गविपर्ययो यथा न भवति तथा पालयतीत्यर्थः। एष सोऽयं पूषा निधीनां पृथिव्यां निहितानि धनानि वेद। वेत्ति। ज्ञात्वा स्तोतॄणां तानि ददातीत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। तस्करो यथा। यथा चोरः पथि गच्छतां पुरुषाणां धनहरणार्थं मार्गं रक्षति तथा च स चोरो गृहे निहितानि ज्ञात्वा तदाहृत्य स्वसहायेभ्यो यथा तानि ददाति तद्वत् ॥

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदंति ॥७॥

त्रीणि। एकः। उरुऽगायः। वि। चक्रमे। यत्र। देवासः। मदंति ॥७॥

उरुगायो वि चक्रम इति पदलिंगाद्विष्णुरुच्यते। उरुगाय उरुभिर्बहुभिर्गातव्यः। यद्वा। बहुषु देशेषु गंता बहुकीर्तिर्वा। सर्वाञ्छत्रून् स्वसामर्थ्येन शब्दयत्याक्रंदयतीति वोरुगायः। एतादृश एकोऽसहायो विष्णुस्त्रीणि पदानि भुवनानि वि चक्रमे। साधु पादेन विक्रांतवान् ॥ वेः पादविहरणे। पा॰ १. ३. ४१.। इति क्रमतेरात्मनेपदं ॥ यत्र येषु लोकेषु देवास इंद्रादयो देवा मदंति यजमानदत्तैर्हविर्भिर्माद्यंति तानि वि चक्रम इत्यन्वयः ॥

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥८॥

विऽभिः। द्वा। चरतः। एकया। सह। प्र। प्रवासाऽइव। वसतः ॥८॥

एकया सहेति लिंगादश्विनावभिधीयेते। द्वा द्वौ द्वित्वसंख्योपेतावश्विनौ विभिः ॥ वी गत्यादिषु। क्विप्। छांदसो ह्रस्वः ॥ गमनसाधनैरश्वैश्चरतः। संचरेते। किंचेमावश्विनावेकया सूर्याख्यया ताभ्यां स्वयंवृतया स्त्रिया सह प्र वसतः। प्रवासं सर्वत्र गमनं कुरुतः। प्रवासे दृष्टांतः। प्रवासेव। यथा प्रवासिनौ द्वौ पुरुषावेकया स्त्रिया सह प्रवसतस्तद्वत् ॥

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥९॥

सदः। द्वा। चक्राते इति। उपऽमा। दिवि। संऽराजा। सर्पिरासुती इति सर्पिःऽआसुती ॥९॥

सम्राजाविति लिंगेन मित्रावरुणावभिधीयेते। उपमोपमौ परस्परं स्वकांत्योपमानभूतौ। यद्वा। उपमीयत आभ्यां सर्वमित्युपमौ सर्वस्य। एतावेव सम्राजा सम्राजौ सम्यग्दीप्यमानौ सर्पिरासुती। सर्पिर्घृतमाभ्यामासूयत इति सर्पिरासुती। घृतहविष्कौ द्वा द्वौ मित्रावरुणौ दिवि द्युलोके सदः। सीदंत्यत्रेति सदः स्थानं। तदा-क्राते। अकार्ष्टां ॥

अर्चंत एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥
अर्चंतः। एके। महि। साम। मन्वत। तेन। सूर्यं। अरोचयन् ॥१०॥

एकेऽत्रयो महि महत्साम विवृत्पंचदशादि मन्वत। अमन्वत। तदेवार्चंतः पूजयंत एतादृशा अत्रयस्ते-नोक्तेन साम्ना सूर्यमरोचयन्। अदीपयन्। त एवात्र देवता ॥ ॥३६॥

नहि व इति चतुर्ऋचं दशमं सूक्तं। आद्या गायत्री द्वितीया पुरउष्णिक् तृतीया बृहती चतुर्थ्यनुष्टुप्। मनुर्वैवस्वत ऋषिः। पूर्ववद्विश्वे देवा देवता। तथा चानुक्रांतं। नहि वश्चतुष्कं पुरउष्णिग्बृहत्यनुष्टुबंतमिति ॥ विनियोगस्तु लिंगादवगंतव्यः ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः। विश्वे सतोमहांत इत् ॥१॥
नहि। वः। अस्ति। अर्भकः। देवासः। न। कुमारकः। विश्वे। सतःऽमहांतः। इत् ॥१॥

हे देवासो देवाः वो युष्माकं मध्येऽर्भको नह्यस्ति। शिशुर्नास्ति खलु। तथा न कुमारको युष्माकं मध्ये कुमारोऽपि नास्ति। किंतु सर्वे यूयं सवयसो नित्यतरुणा भवथ। एतदेव प्रतिपादयति। विश्वे सर्वे देवा यूयं सतोमहांत इत्। सर्वस्माद्विद्यमानात्पृथिव्यामपि ये महांतस्ते सतोमहांत इत्युच्यंते। तस्माद्युष्माकमर्भ-कोऽपि कुमारोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च। मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२॥
इति। स्तुतासः। असथ। रिशादसः। ये। स्थ। त्रयः। च। त्रिंशत्। च। मनोः। देवाः। यज्ञियासः ॥२॥

हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो हे मनोर्यज्ञियासो मनुनामकस्य मम यज्ञार्हा हे देवाः ये यूयं त्रयश्च त्रिसंख्याकास्त्रिंशच्च त्रिंशत्संख्याकास्त्रयस्त्रिंशद्देवताः स्थ भवथ अभूत ते यूयमितीत्यमनेन प्रकारेण स्तुतासोऽसथ। मया मनुना स्तुता भवथ ॥ असतेर्लेटि च्छांदसो लुगभावः ॥ यद्वा। असथेति कांत्यर्थः। इत्थं स्तुता यूयं हवींषि कामयध्वं ॥

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥३॥
ते। नः। त्राध्वं। ते। अवत। ते। ऊं इति। नः। अधि। वोचत।
मा। नः। पथः। पित्र्यात्। मानवात्। अधि। दूरं। नैष्ट। पराऽवतः ॥३॥

हे देवाः ते यूयं नोऽस्मांस्त्राध्वं। बाधकेभ्यो रक्षोभ्यस्त्रायध्वं। ते यूयमवत। धनादिप्रदानैरस्मान्रक्षत। त एव देवा नोऽस्मानधि वोचत। अधिकं भवंतः कर्मकारिणो धनादिमंतश्च भवंत्विति यूयं ब्रूत। किंच हे देवाः मानवात्। मनुः सर्वेषां पिता। तत आगतात्पित्र्यात् पिता मनुर्यं मार्गं चक्रे तस्मात्पथो मार्गान्नोऽस्मान्मा नैष्ट। मा नयत। अपनयनं मा कुरुतेत्यर्थः। सर्वदा ब्रह्मचर्याग्निहोत्रादिकर्माणि येन मार्गेण भवंति तमेवा-स्मान्नयत। किंतु दूरं य एतद्व्यतिरिक्तो विप्रकृष्टमार्गोऽस्ति तस्मादधि। अधिकमित्यर्थः। अस्मानपनयत ॥

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥४॥
ये । देवासः । इह । स्थन । विश्वे । वैश्वानराः । उत ।
अस्मभ्यं । शर्म । सऽप्रथः । गवे । अश्वाय । यच्छत ॥४॥

हे देवासो देवाः उतापि च वैश्वानराः । विश्वे सर्वे नरः कर्मनेतारोऽध्वर्य्वादयो यस्य स विश्वानरो यज्ञः । तस्मिन् सोमादिहवींषि स्वीकर्तुं भवाः प्रादुर्भूताः ॥ भवार्थेऽणप्रत्ययः ॥ यद्वा । विश्वानरोऽग्निः । देवानां तन्मुखत्वात्तस्य संबंधिनः । विश्वे सर्वे ये देवा यूयमिहास्मिन्नस्मदीये यज्ञे स्थन हवींष्यादातुं भवथ ततः सप्रथः ॥ प्रथ प्रख्याने ॥ सर्वतः प्रसिद्धं सर्वत्र पृथुतमं वा शर्म । सर्वं शृणाति हिनस्ति दुःखमिति शर्म सुखं । तदस्मभ्यं प्रयच्छत । तथा गवेऽस्मदीयेभ्यो यज्ञसाधनभूतेभ्यो गोभ्योऽश्वाय शर्म सुखं प्रदत्त ॥ ॥३७॥ ॥४॥

पंचमेऽनुवाके द्वादश सूक्तानि । तत्र यो यजातीत्यष्टादशर्चं प्रथमं सूक्तं । वैवस्वतो मनुर्ऋषिः । नवमीचतुर्दश्यावनुष्टुभौ शिष्टाः पंचदश्याद्याश्चतस्रः पंक्तयः । दशमो पादनिचृत् । त्रयः सप्तकाः पादनिचृत् । अनु० ४. ४. । इति तल्लक्षणात् । शिष्टा एकादश प्रागुक्तपरिभाषया गायत्र्यः । आद्यासु चतसृषु यज्ञस्ततो यजमानप्रशंसा च श्रूयते । अतस्तद्देवताकाः । या दंपती इत्याद्यासु पंचम्यादिषु दंपती प्रशस्येते । अतस्तद्देवताकाः । अवशिष्टासु नवसु दंपत्योराशिषः प्रतिपाद्यंते । अतस्ता एव देवताः । तथा चानुक्रम्यते । यो यजाति द्व्यूनावैवस्वतो यजमानप्रशंसा च येत्यादिपंच दंपत्योः शिष्टास्तदाशिषोऽनुष्टुप् चतुष्पंक्त्यंतं नवम्यनुष्टुब्दशमो पादनिचृदिति ॥

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिंद्रस्य चाकनत् ॥१॥
यः । यजाति । यजाते । इत् । सुनवत् । च । पचाति । च । ब्रह्म । इत् । इंद्रस्य । चाकनत् ॥१॥

यो यजमानः सकृद्यजाति यागं करोति हविर्भिर्देवान्पूजयति स देवेभ्यो लब्धधनादिकः सन् यजात इत् । पुनरभीष्टप्राप्तये देवेभ्यो हवींषि प्रयच्छत्येव । तथा स एव यजमानः सुनवच्च । सोमाभिषवं करोति च । स एव पचाति च । पशुपुरोडाशादिकं पचति च ॥ सर्वत्र यजादिषु लेट्यडागमाः ॥ स यजमान इंद्रस्य ब्रह्म ब्रह्माणि । इदवधारणे । इंद्रसंबंधीनि स्तोत्राण्येव चाकनत् । पुनःपुनः कामयते ॥ कनतेः कांत्यर्थाद्यङ्लुकभ्यासत्वं छांदसं । ततो लेट्यडागमः ॥ अत्र यागे यजमानो धनादि लभत इति यज्ञप्रशंसा । स एव दृष्टफलः सन् सोमाभिषवादीन्करोतीति यजमानप्रशंसा ॥

पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरं । पादित्तं शक्रो अंहसः ॥२॥
पुरोळाशं । यः । अस्मै । सोमं । ररते । आऽशिरं । पात् । इत् । तं । शक्रः । अंहसः ॥२॥

यो यजमानोऽस्मा इंद्राय पशुपुरोळाशं तथाशिरं तृतीयसवने गोक्षीरेणाभिश्रितं सोमं ररते प्रयच्छति ॥ रातेर्लेटि शपः श्लुः । अडागमः ॥ शक्रः समर्थः स इंद्रस्तं यष्टारमंहसः पापात्तद्रूपाद्रक्षसो वा पात् । इदवधारणे । अपादेव । रक्षत्येव ॥ पातेर्लुङि रूपं ॥

तस्य द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत् । विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥३॥
तस्य । द्युऽमान् । असत् । रथः । देवऽजूतः । सः । शूशुवत् । विश्वा । वन्वन् । अमित्रिया ॥३॥

तस्य देवान्पूजयतो यजमानस्य देवजूतो देवैरिंद्रादिभिः प्रेरितो द्युमान् दीप्तिमान् रथो रंहणशीलः स्यंदनो देवानां हविष्प्रदानरूपेण यज्ञेनासत् । भवति । आगच्छति । ततस्तेन रथेनामित्रियामित्रियाञ्छत्रुभिः कृतान् विश्वा सर्वान् बाधान् वन्वन् । वनोतिर्हिंसाकर्मेति यास्कः । हिंसन् स एव शूशुवत् । पुत्रादिभिर्धनैश्च

सम्राजाविति लिंगेन मित्रावरुणावभिधीयेते। उपमोपमौ परस्परं स्वकांत्योपमानभूतौ। यद्वा। उपमीयत आभ्यां सर्वमित्युपमी सर्वस्य। एतावेव सम्राजा सम्राजौ सम्यग्दीप्यमानौ सर्पिरासुती। सर्पिर्घृतमाभ्यामासूयत इति सर्पिरासुती। घृतहविष्कौ द्वा द्वौ मित्रावरुणौ दिवि द्युलोके सदः। सीदंत्यत्रेति सदः स्थानं। तच्च क्राति। अक्राष्टां ॥

अर्चंत एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥
अर्चंतः। एके। महि। साम। मन्वत। तेन। सूर्यं। अरोचयन् ॥१०॥

एकेऽत्रयो महि महत्साम त्रिवृत्पंचदशादि मन्वत। अमन्वत। तदेवार्चंतः पूजयंत एतादृशा अत्रयस्ते-नोक्तेन साम्ना सूर्यमरोचयन्। अदीपयन्। त एवात्र देवता ॥ ॥३६॥

नहि व इति चतुर्ऋचं दशमं सूक्तं। आद्या गायत्री द्वितीया पुरउष्णिक् तृतीया बृहती चतुर्थ्यनुष्टुप्। मनुर्वैवस्वत ऋषिः। पूर्ववद्विश्वे देवा देवता। तथा चानुक्रांतं। नहि वश्चतुष्कं पुरउष्णिग्बृहत्यनुष्टुबंतमिति ॥ विनियोगस्तु लिंगादवगंतव्यः ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः। विश्वे सतोमहांत इत् ॥१॥
नहि। वः। अस्ति। अर्भकः। देवासः। न। कुमारकः। विश्वे। सतःऽमहांतः। इत् ॥१॥

हे देवासो देवाः वो युष्माकं मध्येऽर्भको नह्यस्ति। शिशुर्नास्ति खलु। तथा न कुमारको युष्माकं मध्ये कुमारोऽपि नास्ति। किंतु सर्वे यूयं सवयसो नित्यतरुणा भवथ। एतदेव प्रतिपादयति। विश्वे सर्वे देवा यूयं सतोमहांत इत्। सर्वस्माद्विद्यमानात्पृथिव्यामपि ये महांतस्ते सतोमहांत इत्युच्यंते। तस्माद्युष्माकमर्भ-कोऽपि कुमारोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च। मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२॥
इति। स्तुतासः। असथ। रिशादसः। ये। स्थ। त्रयः। च। त्रिंशत्। च। मनोः। देवाः। यज्ञियासः ॥२॥

हे रिशादसो रिशतां हिंसतामसितारो हे मनोर्यज्ञियासो मनुनामकस्य मम यज्ञार्हा हे देवाः ये यूयं त्रयश्च त्रिसंख्याकास्त्रिंशच्च त्रिंशत्संख्याकास्त्रयस्त्रिंशद्देवताः स्थ भवथ अभूत ते यूयमितीत्यमनेन प्रकारेण स्तुतासोऽसथ। मया मनुना स्तुता भवथ ॥ असतेर्लेटि च्छांदसो लुगभावः ॥ यद्वा। असथेति कांत्यर्थः। इत्थं स्तुता यूयं हवींषि कामयध्वं ॥

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥३॥
ते। नः। त्राध्वं। ते। अवत। ते। ऊं इति। नः। अधि। वोचत।
मा। नः। पथः। पित्र्यात्। मानवात्। अधि। दूरं। नैष्ट। पराऽवतः ॥३॥

हे देवाः ते यूयं नोऽस्मांस्त्राध्वं। बाधकेभ्यो रक्षोभ्यस्त्रायध्वं। ते यूयमवत। धनादिप्रदानैरस्मान्रक्षत। त एव देवा नोऽस्मानधि वोचत। अधिकं भवंतः कर्मकारिणो धनादिमंतश्च भवंत्विति यूयं ब्रूत। किंच हे देवाः मानवात्। मनुः सर्वेषां पिता। तत आगतात्पित्र्यात् पिता मनुर्यं मार्गं चक्रे तस्मात्पथो मार्गान्नोऽस्मान्मा नैष्ट। मा नयत। अपनयनं मा कुरुतेत्यर्थः। सर्वदा ब्रह्मचर्यामिहोत्रादिकर्माणि येन मार्गेण भवंति तमेवा-स्मान्नयत। किंतु दूरं य एतद्व्यतिरिक्तो विप्रकृष्टमार्गोऽस्ति तस्मादधि। अधिकमित्यर्थः। अस्मानपनयत ॥

पुत्रिणा पुत्रवंतौ तत्रापि कुमारिणा षोडशवर्षदेशीयपुत्रवंतौ हिरण्यपेशसा हिरण्मयैराभरणैरलंकृतरू-पावुभौभौ ता तौ दंपती विश्वं सर्वमायुरायुष्यं व्यश्नुतः । व्याप्नुतः । यज्ञेन तयोः पुत्रादिकं धनमायुश्च संभवतीत्यर्थः ॥

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यंतामृताय कं। समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥९॥

वीतिऽहोत्रा। कृतद्वसू इति कृतत्ऽवसू। दशस्यंता। अमृताय। कं। सं। ऊधः। रोमशं। हतः। देवेषु। कृणुतः। दुवः ॥९॥

वीतिहोत्रा वीतिहोत्रौ । वीतिः प्रियकरो होत्रा यज्ञो ययोस्तौ । अनेन यज्ञेन तयोः सुखादिकं संभवति । तादृशौ । यद्वा । वीतिः कांत्यर्थः । होत्रेति वाङ्नाम । अस्मद्विषयां स्तुतिं कुर्वतमिति पृथक्पृथग्देवैः काम्यमानस्तुती । अत एव कं सुखप्रदं हवीरूपमन्नं दशस्यंता देवेभ्यः प्रयच्छंतौ कृतद्वसू ॥ तकारोपजनश्छांदसः ॥ याचमानकृतधनौ। पात्रेषूपयुक्तधनावित्यर्थः। एवंविधौ दंपती अमृतायामरणाय संतानाभिवृद्धये रोमशं रोमवंतं वृषणमूधो योनिं च सं हतः । संयोजयत इति । मैथुनमनूद्यते । ततः सपुत्रादिकौ तौ देवेषु दुवः स्तुत्यन्नदानरूपां परिचर्यां कृणुतः । कुरुतः ॥ पंचभिर्दंपती अस्तूयेतां ॥

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनां। आ विष्णोः सचाभुवः ॥१०॥

आ। शर्म। पर्वतानां। वृणीमहे। नदीनां। आ। विष्णोः। सचाऽभुवः ॥१०॥

एतदादिषु दंपत्योराशिषः । यष्टारो वयं पर्वतानां फलपुष्पसहितलताभिर्युक्तानां यच्छर्म सुखं तत्तेषां स्थैर्यलक्षणं सुखं वा नदीनां चोभयकूलवासिभिर्मुनिभिर्मनुष्यैर्वा जपाद्यनुष्ठाने कृते यत्सुखं तासां भवति तत्सुखं एकत्र स्थित्वा सकलपदार्थभोक्तृत्वलक्षणमनुष्ठानलक्षणं सुखमा वृणीमहे । संभजामहे । सचाभुवो देवैः सह भवतो देवसहितस्य विष्णोरपि शत्रुहननलक्षणं यत्सुखं तदपि वयमा वृणीमहे । बाधाभावाद्वविप्रदानेन देवैः सह वर्तामह इत्यर्थः ॥ ॥३९॥

एतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुरध्वा स्वस्तये ॥११॥

आ। एतु। पूषा। रयिः। भगः। स्वस्ति। सर्वऽधातमः। उरुः। अध्वा। स्वस्तये ॥११॥

रयिर्धनानां दाता भगो भजनीयः सर्वैः सर्वधातमः सर्वेषां धारयितृतमः सर्वेषां धनादिभिः पोषयितृतमः पूषेतन्नामको देवः स्वस्ति क्षेमेणैतु । अस्मान्प्रति गच्छतु । ततो मार्गरक्षके पूषण्यागते सत्युरुर्विस्तीर्णोऽध्वा मार्गः स्वस्तयेऽस्माकमविनाशाय भवतु ॥

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा । आदित्यानामनेह इत् ॥१२॥

अरमतिः। अनर्वणः। विश्वः। देवस्य। मनसा। आदित्यानां। अनेहः। इत् ॥१२॥

देवानां मध्ये पूषणमाह । अनर्वणः । अर्वा गंतव्यः । शत्रुभिरगंतव्यस्याप्रत्यृतस्य देवस्य द्योतमानस्य पूष्णो विश्वः सर्वः स्तोतृजनो मनसा श्रद्धया भक्त्यैवारमतिरलंमतिः पर्याप्तस्तुतिर्भवति । तथा ह्यादित्यानामदितेः पुत्राणां देवानां दानमनेह इदपापमेव खलु । तस्मादन्नादिप्राप्तये स्तोतृजनः पूषणं स्तौतीत्यर्थः ॥

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः संति गोपाः । सुगा ऋतस्य पंथाः ॥१३॥

यथा। नः। मित्रः। अर्यमा। वरुणः। संति। गोपाः। सुऽगाः। ऋतस्य। पंथाः ॥१३॥

मित्रोऽर्यमा वरुणः एते त्रयो देवा नोऽस्माकं गोपा गोपयितारो यथा संति भवंति यैर्मार्गैर्वयमेतैः पालयितव्या भवाम त ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य पंथाः पंथानः सुगा एषां सुगमना भवंतु । तैरागत्यास्मान्यज्ञमार्गे स्थापयंत्वित्यर्थः ॥

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनां। सपर्यंतः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसं ॥१४॥
अग्निं। वः। पूर्व्यं। गिरा। देवं। ईळे। वसूनां। सपर्यंतः। पुरुऽप्रियं। मित्रं। न। क्षेत्रऽसाधसं ॥१४॥

हे देवाः वो युष्माकं पूर्व्यं मुख्यं पुरतोगंतारं वा देवं स्वभासा दीप्यमानमग्निं वसूनां प्राप्तये गिरा स्तुतिलक्षणया वाचेळे। अहं स्तौमि। किंच सपर्यंतो युष्मान्परिचरंतो मनुष्याः पुरुप्रियं बहुविधप्रियं बहूनामभिमतदानेन प्रीणयितारं वा क्षेत्रसाधसं। क्षियंति निवसंति कर्मकरणार्थमत्रेति क्षेत्रो यज्ञः। तस्य साधकं। साधने दृष्टांतः। मित्रं न। यथा मित्रं सुहृदन्यस्य क्षेत्रं केदारादिकं साधयति तद्वद्यज्ञसाधकमग्निं वसुप्राप्तये स्तुवंति ॥

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित्।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१५॥
मक्षु। देवऽवतः। रथः। शूरः। वा। पृत्ऽसु। कासु। चित्।
देवानां। यः। इत्। मनः। यजमानः। इयक्षति। अभि। इत्। अयज्वनः। भुवत् ॥१५॥

देववतः। देवा यष्टव्यतया यस्य संति स देववान्। तस्य रथो देवैर्दत्तो मक्षु शीघ्रं दुर्गमं मार्गमपि प्रविशति। सर्वत्राप्रतिहतगतिरित्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। वेतिशब्दोऽत्रोपमानवाची। यथा शूरो योद्धा कासु चित्पृत्सु पृतनासु तद्वत्। यो देवानां। इदवधारणे। मन एवेयक्षति स्तुतिभिः पूजयितुमिच्छति। यद्वा। देवानां मन इयक्षति हविर्भिर्यष्टुमिच्छति। स यजमानोऽयज्वनो यागमकुर्वतो जनानभि भुवत्। स्वसामर्थ्येनाभिभवत्येव ॥ इयक्षति। यज पूजायां। यज देवपूजादिषु। उभयोरभ्यासस्य संप्रसारणं छांदसं। पूर्वस्य स्कोः संयोगाद्योरिति ककारलोपः ॥

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१६॥
न। यजमान। रिष्यसि। न। सुन्वान। न। देवयो इति देवऽयो।
देवानां। यः। इत्। मनः। यजमानः। इयक्षति। अभि। इत्। अयज्वनः। भुवत् ॥१६॥

हे यजमान यो भवान् देवानां मन इयक्षति स त्वं न रिष्यसि। विनष्टो न भवसि। किंतु पुत्रपौत्रादिभिर्वर्धसे। हे सुन्वान सोमाभिषवं कुर्वन् यः सुन्वंस्तेषां मन इयक्षति स त्वमपि न रिष्यसि। हे देवयो देवान् कामयमान यो देवानियक्षति तादृशस्त्वमपि न रिष्यसि। किंतु धनादिभिर्वर्धसे। देवानां मनो यो यजमानो यष्टुमिच्छति स यागमकुर्वतो जनानभिभवति ॥

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१७॥
नकिः। तं। कर्मणा। नशत्। न। प्र। योषत्। न। योषति।
देवानां। यः। इत्। मनः। यजमानः। इयक्षति। अभि। इत्। अयज्वनः। भुवत् ॥१७॥

यो यजमानो देवानां मनो यष्टुमिच्छति तं नकिर्न कश्चिदपि नशत्। स्वकीयेन कर्मणा न व्याप्नोति। नशतिर्व्याप्तिकर्मा। किंच स यष्टा न प्र योषत्। स्वस्मात्स्थानान्न विभक्तः पृथक्कृतो न भवति। किंच न

योषति। पुत्रादिभिर्धनादिभिश्च न विभक्तो भवति ॥ यु मिश्रणामिश्रणयोरित्यस्योभयत्र लेव्यडागमः ॥ शिष्टं व्याख्यातं ॥

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यं ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१८॥
असत्। अत्र। सुऽवीर्यं। उत। त्यत्। आशुऽअश्व्यं।
देवानां। यः। इत्। मनः। यजमानः। इयक्षति। अभि। इत्। अयज्वनः। भुवत् ॥१८॥

यो यजमानो देवानां मनो यष्टुमिच्छति अत्रास्मिन्यजमाने सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रादिकमसत्। भवत्येव। उतापि चाश्वश्व्यमाशुगमनाश्वसंघयुक्तं त्यत्तद्धनादिकं तस्मिन्यजमाने भवति। देवानां मनो यो जनो हविर्भिर्यष्टुमिच्छति यद्वा पूजयितुमिच्छति स जनोऽयज्वनः सर्वानभिभवत्येव ॥ ॥४०॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ षष्ठस्य तृतीयोऽध्याय आरभ्यते ॥ प्र कृतानीति त्रिंशदृचं द्वितीयं सूक्तं। तत्रेयमनुक्रमणिका। प्र कृतानि त्रिंशन्मेधातिथिरिति। काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। परं गायत्रं प्राग्वत्सप्रेरिति परिभाषया गायत्री छंदः। अनादेशपरिभाषयेंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्केवल्ये गायत्रतृचाशीतावितत्सूक्तं। तथैव पंचमारण्यके शौनकेन सूचितं। प्र कृतान्यृजीषिण आ घा ये अग्निमिंधते। ऐ॰ आ॰ ५. २. ३.। इति ॥ अतिरात्रे प्रथमे पर्याये मैत्रावरुणशस्त्रे प्र कृतानीति तृचोऽनुरूपः। सूत्रितं च। प्र व इंद्राय मादनं प्र कृतान्यृजीषिणः। आ॰ ६. ४.। इति ॥ तस्मिन्नेव शस्त्रे प्रति श्रुतायेत्याद्याः पंचदशर्चः। सूत्र्यते हि। प्रति श्रुताय वो धृषदिति पंचदश। आ॰ ६. ४.। इति ॥ दशमेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छावाकवादे पत्नीयजमानस्थाने प्रति श्रुतायेति तृचः। सूत्रितं च। प्रति श्रुताय वो धृषदिति तृचौ। आ॰ ८. १२.। इति ॥ अहीनांतर्गतस्यातिरात्रस्य प्रथमे पर्याये होतुः पन्यदिदुप गायतेत्यनुरूपः ॥

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इंद्रस्य गाथया। मदे सोमस्य वोचत ॥१॥
प्र। कृतानि। ऋजीषिणः। कण्वाः। इंद्रस्य। गाथया। मदे। सोमस्य। वोचत ॥१॥

हे कण्वाः ऋजीषिण ऋजीषवतः सोमस्य कृतानि कर्माणींद्रस्य गाथयेंद्रस्य वाचा मदेऽस्य मदे संजाते सति प्र वोचत। प्रब्रूत ॥

यः सृबिंदमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवं। वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥२॥
यः। सृबिंदं। अनर्शनिं। पिप्रुं। दासं। अहीशुवं। वधीत्। उग्रः। रिणन्। अपः ॥२॥

य इंद्र उग्र उद्गूर्णस्तेजस्वी वा सोऽप उदकानि रिणन् प्रेरयन् सृबिंदनामकं शत्रुमनर्शनिमनर्शनिनामकं पिप्रुं पिप्रुनामकं च दासं चाहीशुवं च शत्रुं वधीत्। अवधीत्। जघान ॥

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं गि॒रा दे॒वमी॑ळे॒ वसू॑नां। स॒प॒र्यंतः॑ पुरुप्रि॒यं मि॒त्रं न क्षे॑त्र॒साध॑सं ॥१४॥
अ॒ग्निं। वः॒। पू॒र्व्यं। गि॒रा। दे॒वं। ई॒ळे॒। वसू॑नां। स॒प॒र्यंतः॑। पु॒रु॒ऽप्रि॒यं। मि॒त्रं। न।
क्षे॒त्र॒ऽसाध॑सं ॥१४॥

हे देवाः वो युष्माकं पूर्व्यं मुख्यं पुरतोगंतारं वा देवं स्वभासा दीप्यमानमग्निं वसूनां प्राप्तये गिरा स्तुतिलक्षणया वाचेळे। अहं स्तौमि। किंच सपर्यंतो युष्मान्परिचरंतो मनुष्याः पुरुप्रियं बहुविधप्रियं बहूनामभिमतदानेन प्रीणयितारं वा क्षेत्रसाधसं। क्षियंति निवसंति कर्मकरणार्थमत्रेति क्षेत्रो यज्ञः। तस्य साधकं। साधने दृष्टांतः। मित्रं न। यथा मित्रं सुहृदन्यस्य क्षेत्रं केदारादिकं साधयति तद्वद्यज्ञसाधकमग्निं वसुप्राप्तये स्तुवंति ॥

म॒क्षू दे॒ववं॑तो॒ रथः॒ शूरो॑ वा पृ॒त्सु कासु॑ चित्।
दे॒वानां॒ य इन्मनो॒ यज॑मान॒ इय॑क्षत्य॒भीदय॑ज्वनो भुवत् ॥१५॥
म॒क्षु। दे॒वऽवतः। रथः॑। शूरः॑। वा॒। पृ॒त्ऽसु। कासु॑। चि॒त्।
दे॒वानां॑। यः। इत्। मनः॑। यज॑मानः। इय॑क्षति। अ॒भि। इत्। अय॑ज्वनः। भु॒वत् ॥१५॥

देववतः। देवा यष्टव्यतया यस्य संति स देववान्। तस्य रथो देवैर्दत्तो मक्षु शीघ्रं दुर्गमं मार्गमपि प्रविशति। सर्वत्राप्रतिहतगतिरित्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। वेतिशब्दोऽत्रोपमानवाची। यथा शूरो योद्धा कासु चित्पृत्सु पृतनासु तद्वत्। यो देवानां। इदवधारणे। मन एवेयक्षति स्तुतिभिः पूजयितुमिच्छति। यद्वा। देवानां मन इयक्षति हविर्भिर्यष्टुमिच्छति। स यजमानोऽयज्वनो यागमकुर्वतो जनानभि भुवत्। स्वसामर्थ्येनाभिभवत्येव ॥ इयक्षति। यक्ष पूजायां। यज देवपूजादिषु। उभयोरभ्यासस्य संप्रसारणं छांदसं। पूर्वस्य स्कोः संयोगाद्योरिति ककारलोपः ॥

न य॑जमान रिष्यसि॒ न सु॑न्वान॒ न दे॑वयो।
दे॒वानां॒ य इन्मनो॒ यज॑मान॒ इय॑क्षत्य॒भीदय॑ज्वनो भुवत् ॥१६॥
न। य॒ज॒मा॒न॒। रि॒ष्य॒सि॒। न। सु॒न्वा॒न॒। न। दे॒व॒यो॒ इति॑ देवऽयो।
दे॒वानां॑। यः। इत्। मनः॑। यज॑मानः। इय॑क्षति। अ॒भि। इत्। अय॑ज्वनः। भु॒वत् ॥१६॥

हे यजमान यो भवान् देवानां मन इयक्षति स त्वं न रिष्यसि। विनष्टो न भवसि। किंतु पुत्रपौत्रादिभिर्वर्धसे। हे सुन्वान सोमाभिषवं कुर्वन् यः सुन्वंस्तेषां मन इयक्षति स त्वमपि न रिष्यसि। हे देवयो देवान् कामयमान यो देवानियक्षति तादृशस्त्वमपि न रिष्यसि। किंतु धनादिभिर्वर्धसे। देवानां मनो यो यजमानो यष्टुमिच्छति स यागमकुर्वतो जनानभिभवति ॥

नकि॒ष्टं कर्म॑णा नश॒न्न प्र यो॑ष॒न्न यो॑षति।
दे॒वानां॒ य इन्मनो॒ यज॑मान॒ इय॑क्षत्य॒भीदय॑ज्वनो भुवत् ॥१७॥
नकिः॑। तं। कर्म॑णा। न॒श॒त्। न। प्र। यो॒ष॒त्। न। यो॒ष॒ति॒।
दे॒वानां॑। यः। इत्। मनः॑। यज॑मानः। इय॑क्षति। अ॒भि। इत्। अय॑ज्वनः। भु॒वत् ॥१७॥

यो यजमानो देवानां मनो यष्टुमिच्छति तं नकिर्न कश्चिदपि नशत्। स्वकीयेन कर्मणा न व्याप्नोति। नशतिर्व्याप्तिकर्मा। किंच स यष्टा न प्र योषत्। स्वस्मात्स्थानान्न विभक्तः पृथक्कृतो न भवति। किंच न

बृहदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये। साधु कृण्वंतमवसे ॥१०॥
बृहत्ऽउक्थं। हवामहे। सृप्रऽकरस्नं। ऊतये। साधु। कृण्वंतं। अवसे ॥१०॥

ऊतये लोकस्य रचणाय सृप्रकरस्नं प्रसृतबाहुं। करस्नौ बाहू कर्मणां प्रस्नातारौ। नि॰ ६. १७.। इति यास्कवचनात्। अवसे लोकस्य पालनाय साधु कृण्वंतं साधु कुर्वंतं बृहदुक्थं महदुक्थमिंद्रं हवामहे। ह्वयामः। तथा च यास्कः। बृहदुक्थो महदुक्थो वक्तव्यमस्मा उक्थं। नि॰ ६. ४.। इति ॥ ॥२॥

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा। जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥११॥
यः। संऽस्थे। चित्। शतऽक्रतुः। आत्। ईं। कृणोति। वृत्रऽहा। जरितृऽभ्यः।
पुरुऽवसुः ॥११॥

यः प्रसिद्ध इंद्रः संस्थे संग्रामे शतक्रतुर्बहुकर्मा भवति अपि चादनंतरमीमिदं शत्रुवधादिकं कृणोति करोति चिदेव अयमिंद्रो वृत्रहा शत्रूणां हंता भवति। किंच जरितृभ्यः स्तोतृणामर्थे पुरूवसुर्बहुधनो भवति। न स्वार्थमित्यर्थः ॥

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अंतराभरः। इंद्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥
सः। नः। शक्रः। चित्। आ। शकत्। दानऽवान्। अंतरऽआभरः। इंद्रः। विश्वाभिः।
ऊतिऽभिः ॥१२॥

शक्रः शक्तः स इंद्रो नश्चिदस्मानप्या शकत्। शक्तान् करोतु। अपि चेंद्रो दानवान् विश्वाभिः सर्वैरूतिभिः पालनैरंतराभरोऽंतराहरश्छिद्राणामापूरकः। छिद्रापिधायीत्यर्थः ॥

यो रायो३ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तमिंद्रमभि गायत ॥१३॥
यः। रायः। अवनिः। महान्। सुऽपारः। सुन्वतः। सखा। तं। इंद्रं। अभि। गायत ॥१३॥

य इंद्रो रायो धनस्यावनिः पालको महान् सर्वोत्तमः सुपारः शोभनपारणश्च भवति। यश्च सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य सखा प्रियो भवति। तमिंद्रमभि गायत। अभिष्टुत ॥

आयंतारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितं। भूरेरीशानमोजसा ॥१४॥
आऽयंतारं। महि। स्थिरं। पृतनासु। श्रवःऽजितं। भूरेः। ईशानं। ओजसा ॥१४॥

आयंतारमागंतारं महि महांतं पृतनासु संग्रामेषु स्थिरमचलं श्रवोजितं श्रवसो जेतारमोजसा बलेन भूरेर्बहोर्धनस्येशानमीश्वरमभिगायत ॥

नकिरस्य शचीनां नियंता सूनृतानां। नकिर्वक्ता न दादिति ॥१५॥
नकिः। अस्य। शचीनां। निऽयंता। सूनृतानां। नकिः। वक्ता। न। दात्। इति ॥१५॥

अस्येंद्रस्य सूनृतानां शोभनानां शचीनां कर्मणां। धीः शचीति कर्मनामसु पाठात्। नकिर्न कश्चिन्नियंता नियामकः। अयमिंद्रो न दादिति न प्रयच्छतीति नकिर्वक्ता न कश्चिद्वदति। किंतु सर्वोऽपि जनोऽयं प्रदातीत्येव ब्रवीतीत्यर्थः ॥ ॥३॥

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वतां । न सोमो अप्रता पपे ॥१६॥

न । नूनं । ब्रह्मणां । ऋणं । प्राशूनां । अस्ति । सुन्वतां । न । सोमः । अप्रता । पपे ॥१६॥

प्राशूनां । ये सोमं प्राश्नुवंति ते प्राशवः । तेषां सोमं सुन्वतां ब्रह्मणां ब्राह्मणानामृणं देवर्णं न नूनमस्ति । न खलु विद्यते । तथा च श्रूयते । एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी । तै० सं० ६. ३. १०. ५. । इति । किंचाप्रताविस्तीर्णधनेन सोमो न पपे । न पीयते । प्रभूतधनेनैव सोमः पीयत इत्यर्थः ॥

पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥१७॥

पन्यें । इत् । उप । गायत । पन्यें । उक्थानि । शंसत । ब्रह्म । कृणोत । पन्यें । इत् ॥१७॥

हे उपगातारः पन्य इत् स्तुत्य एवेंद्र उप गायत । उपगानं कुरुत । किंच पन्य एवेंद्र उकथानि स्तोत्राणि शंसत । हे स्तोतार इति शेषः । पन्य इत् स्तुत्य एवेंद्रे ब्रह्माण्यन्यानि स्तोत्राणि कृणोत । कुरुत ॥

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इंद्रो यो यज्वनो वृधः ॥१८॥

पन्यः । आ । दर्दिरत् । शता । सहस्रा । वाजी । अवृतः । इंद्रः । यः । यज्वनः । वृधः ॥१८॥

यो वाजी बलवाञ्छता वीराणां शतानि सहस्रा सहस्राणि चा दर्दिरत् आभिमुख्येन दारयति सोऽयमिंद्रः शत्रुभिरवृतः पन्यः स्तुत्यो भवति । यज्वनो विधिनेष्टवतो यजमानस्य वृधो वर्धयिता च भवति ॥

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इंद्र पिब सुतानां ॥१९॥

वि । सु । चर । स्वधाः । अनु । कृष्टीनां । अनु । आऽहुवः । इंद्र । पिब । सुतानां ॥१९॥

हे इंद्र आहुव आह्वातव्यस्त्वं कृष्टीनां मनुष्याणां स्वधा हवींष्यनु सु सुष्ठु वि चर । द्वितीयोऽनु पूरणः । सुतानामभिषुतान् सोमांश्च पिब ॥

पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा । उतायमिंद्र यस्तव ॥२०॥

पिब । स्वऽधैनवानां । उत । यः । तुग्र्ये । सचा । उत । अयं । इंद्र । यः । तव ॥२०॥

हे इंद्र स्वधैनवानां स्वधैनवान् स्वभूतपयसो धेनोः संबंधिनः सोमान् । धेन्वा क्रीतानित्यर्थः । तथा च श्रूयते । धेन्वा क्रीणातीति । उतापि च यः सोमस्तुग्र्य उदके । बुसं तुग्र्यमित्युदकनामसु पाठात् । सचा संसृष्टः तमपि सोमं पिब । उतापि च यः सोमस्तव त्वदीयस्त्वामुद्दिश्य गृहीतः सोऽयं त्वया पातव्य इति शेषः ॥　॥४॥

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिब ॥२१॥

अति । इहि । मन्युऽसाविनं । सुसुऽवांसं । उपऽअरणे । इमं । रातं । सुतं । पिब ॥२१॥

हे इंद्र मन्युषाविणं क्रोधेन सोमं सुन्वंतमतीहि । अतिगच्छ । तथोपारणे । ब्राह्मणा उपेत्य यस्मिन्देशे न रमंते स उपारणः । तस्मिन्देशे सुषुवांसं सुन्वंतमतीहि । इमं रातं ब्राह्मणोपद्रवरहिते देशेऽस्माभिर्दत्तमिमं सुतं सोमं पिब ॥

इहि तिस्रः परावत इहि पंच जनाँ अति । धेना इंद्रावचाकशत् ॥२२॥

इहि । तिस्रः । पराऽवतः । इहि । पंच । जनान् । अति । धेनाः । इंद्र । अवऽचाकशत् ॥२२॥

हे इंद्र धेना अस्मदीयाः स्तुतीरवचाकशद्यो॓ऽपश्यत् स त्वं परावतो दूरात्। आरे परावत इति दूरनामसु पाठात्। तिस्रोऽग्रपृष्ठपार्श्वदिश इहि। गच्छ। अनेनायतः पुष्ठतः पार्श्वतश्चेंद्रस्यागमनमाशास्ते। अपि च पंच जनान् मनुष्यानतीहि। अतिगच्छ। यद्वा। गंधर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि च पंच जनाः। तानतीहीत्यर्थः। तथा च यास्कः। गंधर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इत्यौपमन्यवः। नि॰ ३. ८.। इति ॥

सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छंतु मे गिरः। निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२३॥
सूर्यः। रश्मिं। यथा। सृज। आ। त्वा। यच्छंतु। मे। गिरः। निम्नं। आपः। न। सध्र्यक् ॥२३॥

हे इंद्र सूर्यो यथा रश्मिं रश्मीन्किरणानश्वप्रग्रहान्वा विसृजति तथा मह्यं धनं विसृज। अपि च मे मदीया गिरः स्तुतयः सध्र्यक् सह त्वामा यच्छंतु। निम्नमापो न। यथा निम्नदेशमापः सह परिगृह्णंति तद्वदित्यर्थः ॥

अध्वर्यवा तु हि षिंच सोमं वीराय शिप्रिणे। भरा सुतस्य पीतये ॥२४॥
अध्वर्यो इति। आ। तु। हि। सिंच। सोमं। वीराय। शिप्रिणे। भर। सुतस्य। पीतये ॥२४॥

हे अध्वर्यवः शिप्रिणे हनूमते वीराय शूरायेंद्राय सोमं तु हि क्षिप्रमेवा सिंच। सुतस्य सुतं सोमं पीतये पानाय च भर। आहर च ॥

य उद्नः फलिगं भिनन्न्य१क्सिंधूँरवासृजत्। यो गोषु पक्वं धारयत् ॥२५॥
यः। उद्नः। फलिऽगं। भिनत्। न्यक्। सिंधून्। अवऽअसृजत्। यः। गोषु। पक्वं। धारयत् ॥२५॥

य उद्न उदकार्थं फलिगं मेघं। रैवतः फलिग इति मेघनामसु पाठात्। भिनत् अभिनत्। सिंधूनपश्चांतरिक्षान्न्यगर्वागवासृजत्। यश्च गोषु पक्वं पयो धारयत् अधारयत्। स इंद्र इत्यर्थः ॥ ॥५॥

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवं। हिमेनाविध्यदर्बुदं ॥२६॥
अहन्। वृत्रं। ऋचीषमः। और्णऽवाभं। अहीशुवं। हिमेन। अविध्यत्। अर्बुदं ॥२६॥

ऋचीषम ऋचा दीप्त्या सम इंद्रो वृत्रं वृत्रनामकं शत्रुमहन्। जघान। तथौर्णवाभमौर्णवाभनामकमहीशुवमहीशुवनामकं च शत्रुमहन्। तथा हिमेन तुषारेणोदकेन वार्बुदं मेघमविध्यत् ॥

प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७॥
प्र। वः। उग्राय। निःऽतुरे। अषाळ्हाय। प्रऽसक्षिणे। देवत्तं। ब्रह्म। गायत ॥२७॥

हे उद्गातारः वो यूयमुग्रायोद्गूर्णाय निष्टुरे शत्रून्निस्तारतेऽषाळ्हाय शत्रूणामभिभवित्रे प्रसक्षिणे प्रसहनशीलायेंद्राय देवत्तं देवप्रसादलब्धं ब्रह्म स्तोत्रं प्र गायत ॥

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अंधसः। इंद्रो देवेषु चेतति ॥२८॥
यः। विश्वानि। अभि। व्रता। सोमस्य। मदे। अंधसः। इंद्रः। देवेषु। चेतति ॥२८॥

अंधसोऽद्यमानस्य सोमस्य मदे संजाते विश्वानि सर्वाणि व्रता व्रतानि कर्माणि य इंद्रो देवेष्वभि चेतति ज्ञापयति तस्मा इंद्राय देवत्तं ब्रह्म गायतेत्यर्थः ॥

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितं ॥२९॥

इह । त्या । सधऽमाद्या । हरी इति । हिरण्यऽकेश्या । वोळ्हां । अभि । प्रयः । हितं ॥२९॥

इह यज्ञे त्या तौ प्रसिद्धौ सधमाद्या सह माद्यंतौ हिरण्यकेश्या हिरण्यकेशौ हरी अश्वौ हितं हितकरं प्रयः सोमरूपमन्नमभ्यभिलक्ष्य वोळ्हां । इंद्रं वहतां । प्रापयतामिति ॥

अर्वांचं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥३०॥

अर्वांचं । त्वा । पुरुऽस्तुत । प्रियमेधऽस्तुता । हरी इति । सोमऽपेयाय । वक्षतः ॥३०॥

हे पुरुष्टुतेंद्र त्वा त्वां प्रियमेधस्तुता हरी अश्वौ सोमपेयाय सोमपानायार्वाचमस्मदभिमुखं वक्षतः । वहतः ॥ ॥६॥

वयं घ त्वेत्येकोनविंशत्यृचं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य मेध्यातिथेरार्षं बृहतीछंदस्कं । षोडश्याद्यास्तिस्रो गायत्र्य एकोनविंश्यनुष्टुप् । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । वयं घैकोना मेध्यातिथिर्बार्हतं त्रिगायत्र्यनुष्टुबंतमिति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावादितः पंचदशर्चः । तथैव पंचमारण्यके शौनकेन सूत्र्यते । वयं घ त्वा सुतावंत इति पंचदश मो षु त्वा वाघतश्चनेत्येतस्य द्विपदां चोद्धरति । ऐ॰ आ॰ ५. २. ४. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे वयं घ त्वेति तृचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । तथा च सूत्रं । वयं घ त्वा सुतावंतः क ईं वेद सुते सचा । आ॰ ७. ४. । इति ॥ स्वरसाम्न्ययमेव तृचोऽनुरूपः । सूत्रितं च । वयं घ त्वा सुतावंत इति तिस्रो बृहत्यः । आ॰ ८. ५. । इति ॥ तस्मिन्नेव शस्त्रे क ईं वेदेति वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्रमुक्तमेव ॥

वयं घ त्वा सुतावंत आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥१॥

वयं । घ । त्वा । सुतऽवंतः । आपः । न । वृक्तऽबर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रऽस्रवणेषु । वृत्रऽहन् । परि । स्तोतारः । आसते ॥१॥

हे वृत्रहन्निंद्र त्वा त्वां वयं घ वयं खलु सुतवंतः सोममभिषुतवंत आपो नाप इव प्रवणमभिगच्छामः । पवित्रस्य सोमानां प्रस्रवणेषु वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषः स्तोतारश्च त्वां पर्युपासते ॥

स्वरंति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इंद्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥

स्वरंति । त्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।
कदा । सुतं । तृषाणः । ओकः । आ । गमः । इंद्र । स्वब्दीऽइव । वंसगः ॥२॥

हे वसो वासयितरिंद्र त्वा त्वां सुतेऽभिषुते सोमे निरेके निर्गमन उक्थिनो नरो नेतारः स्वरंति । शब्दायंते । अपि चेंद्रः सुतं सोमं प्रति तृषाणस्तृष्यन् स्वब्दीव स्वभूतशब्द इव वंसगो वननीयगमनो वृषभः शब्दं कुर्वन् कदौकः स्थानमागमत् ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणं ।
पिशंगरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमंतमीमहे ॥३॥

कण्वेभिः । धृष्णो इति । आ । धृषत् । वाजं । दर्षि । सहस्रिणं ।
पिशंगऽरूपं । मघऽवन् । विऽचर्षणे । मक्षु । गोऽमंतं । ईमहे ॥३॥

हे धृष्णो धर्षकेंद्र कण्वेभिः कण्वानुद्दिश्य ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं वाजमा दर्षि । देहि । हे मघवन्धनवन् विचर्षणे विद्रष्टरिंद्र धृषद्धृष्टं पिशंगरूपं गोमंतं च वाजं मक्षु शीघ्रमीमहे । याचामहे । त्वामिति शेषः ॥

पाहि गायांधसो मद इंद्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥४॥
पाहि । गाय । अंधसः । मदे । इंद्राय । मेध्यऽअतिथे ।
यः । संऽमिश्लः । हर्योः । यः । सुते । सचा । वज्री । रथः । हिरण्ययः ॥४॥

हे मेध्यातिथे पाहि । सोमं पिब । अंधसः पीतस्य सोमस्य मदे तस्मा इंद्राय गाय । स्तोत्रं पठ च । य इंद्रो हर्योरश्वयोः संमिश्लः स्वरथे संमिश्लयिता । यश्च सुते सोमे सचा सहायः । य इंद्रो वज्री । यस्य रथो हिरण्ययो हिरण्मयः ॥

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इंद्रो यः पूर्भिदारितः ॥५॥
यः । सुऽसव्यः । सुऽदक्षिणः । इनः । यः । सुऽक्रतुः । गृणे ।
यः । आऽकरः । सहस्रा । यः । शतऽमघः । इंद्रः । यः । पूःऽभित् । आरितः ॥५॥

यः सुषव्यः शोभनसव्यहस्तः । यश्च सुदक्षिणः । यश्चेन ईश्वरः । नियुत्वानिन इतीश्वरनामसु पाठात् । यश्चापि सुक्रतुः सुप्रज्ञः । सहस्रा सहस्राणां बहूनां यश्चाकरः कर्ता । यश्चापि शतमघो बहुधनः । यश्च पूर्भित् पुरां भेत्ता । यश्चारितः प्रत्यृतः स्तोमान् । तथा च यास्कः । य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः प्रत्यृतः स्तोमान् । नि॰ ५. १५. । इति । स इंद्रो गृणे । अस्माभिः स्तूयते च ॥ ॥७॥

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥६॥
यः । धृषितः । यः । अवृतः । यः । अस्ति । श्मश्रुषु । श्रितः ।
विभूतऽद्युम्नः । च्यवनः । पुरुऽस्तुतः । क्रत्वा । गौःऽइव । शाकिनः ॥६॥

यो धृषितः शत्रूणां धर्षयिता । यश्चावृतः शत्रुभिरपरिवृतः । यश्चापि श्मश्रुषु युद्धेषु । अश्वः अयंत्यस्मिन्निति व्युत्पत्तेः श्मश्रु युद्धमिति वृद्धा वदंति । श्रितोऽस्ति भवति । यश्चापि विभूतद्युम्नः प्रभूतधनः । यश्च च्यवनः सोमानां च्यावयिता । यश्चापि पुरुष्टुतो बहुस्तुतः । स इंद्रः क्रत्वा कर्मणा शाकिनः शक्तस्य यजमानस्य गौरिव यथा गौः पयसो दोग्ध्री तथा कामानां दोग्धा भवति ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबंतं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मंदानः शिप्र्यंधसः ॥७॥

कः । ईं । वेद । सुते । सचा । पिबंतं । कत् । वयः । दधे ।
अयं । यः । पुरः । विऽभिनत्ति । ओजसा । मंदानः । शिप्री । अंधसः ॥७॥

सुतेऽभिषुते सोमे सचर्त्विजा सह सोमं पिबंतमीमेनमिंद्रं को वेद । वेत्ति । न कोऽपि वेत्तीत्यर्थः । कत् किं वा वयोऽन्नं दधे । धारयति । योऽयमिंद्रः शिप्री हनूमानंधसः सोमेन मंदानो मंदमान ओजसा बलेन पुरो विभिनत्ति ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥८॥
दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुऽत्रा । चरथं । दधे ।
नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि । ओजसा ॥८॥

मृगः शत्रूणामन्वेषको वारणो गजो दाना मदजलानीव पुरुत्रा बहुषु यज्ञेषु चरथं चरणशीलं मदं दधे । इंद्रो धारयति । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे इंद्र त्वा त्वां नकिर्नि यमत् । न कश्चिन्नियच्छति । सुते सोम आ गमः । आगच्छ । महान् हि त्वमोजसा बलेन सर्वतश्चरसि ॥

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेंद्रो योषत्या गमत् ॥९॥
यः । उग्रः । सन् । अनिःऽस्तृतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।
यदि । स्तोतुः । मघऽवा । शृणवत् । हवं । न । इंद्रः । योषति । आ । गमत् ॥९॥

य उग्र उद्गूर्ण ओजस्वी वा सन् भवन्ननिष्टृतः शत्रुभिरनिस्तीर्णः स्थिरोऽचलो रणाय युद्धाय संस्कृतः शस्त्रैरलंकृतः सोमैर्वा संस्कृतः स इंद्रो मघवा धनवान् यदि स्तोतुर्हवमाह्वानं शृणवत् शृणोति तर्ह्यन्यत्र न योषति । न गच्छति । किंत्वा गमत् । तत्रैवागच्छति ॥

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१०॥
सत्यं । इत्था । वृषा । इत् । असि । वृषऽजूतिः । नः । अवृतः ।
वृषा । हि । उग्र । शृण्विषे । पराऽवति । वृषो इति । अर्वाऽवति । श्रुतः ॥१०॥

हे उग्रोद्गूर्णेंद्र त्वं सत्यमित्थेत्थं वृषेत्कामानां वर्षक एवासि । वृषजूतिर्वृषभिरश्वाकृष्टो नोऽस्माकमवृतः शत्रुभिरपरिवृतश्चासि । वृषा हि सेचक एव शृण्विषे । श्रूयसे । परावति दूरेऽपि वृषैवार्वावति समीपेऽपि वृषा सेचक एव श्रुतः । वृषैवाश्रूयथाः ॥ ॥८॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥११॥
वृषणः । ते । अभीशवः । वृषा । कशा । हिरण्ययी ।
वृषा । रथः । मघऽवन् । वृषणा । हरी इति । वृषा । त्वं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥११॥

हे मघवन् ते तवाभीशवो रश्मयोऽश्वरशना वृषणो वर्षितारः। हिरण्ययी हिरण्मयी कशापि वृषा। रथोऽपि वृषा वर्षिता। हरी अश्वावपि वृषणा वृषणौ वर्षितारौ। हे शतक्रतो बज्रप्रेंद्र त्वं च वृषा वर्षिता॥

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणां ॥१२॥
वृषा। सोता। सुनोतु। ते। वृषन्। ऋजीपिन्। आ। भर।
वृषा। दधन्वे। वृषणं। नदीषु। आ। तुभ्यं। स्थातः। हरीणां ॥१२॥

हे वृषन् वर्षितरिंद्र ते तव सोताभिषवकर्ता वृषा वर्षिता सन् सुनोतु। सोममभिषुणोतु। हे ऋजीपिन्नृजुगमनेंद्र आ भर। धनमस्मभ्यमाहर। हरीणामश्वानामाभिमुख्येन हे स्थातरिंद्र तुभ्यं नदीषूदकेषु वृषणं वर्षितारं सोमं वृषा वर्षिता दधन्वे। धारितवानभिषवार्थं॥

एंद्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यं।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३॥
आ। इंद्र। याहि। पीतये। मधु। शविष्ठ। सोम्यं।
न। अयं। अच्छ। मघऽवा। शृणवत्। गिरः। ब्रह्म। उक्था। च। सुऽक्रतुः ॥१३॥

हे शविष्ठ बलवत्तमेंद्र सोम्यं सोमात्मकं मध्वमृतं पीतये पानाया याहि। आगच्छ। किमर्थमागमनमित्यत आह। यत आगमनमंतरेण मघवा धनवान् सुक्रतुः सुकर्मा शोभनप्रज्ञो वायमिंद्रो गिरः स्तुतीर्ब्रह्म स्तोत्राण्युक्थानि च नाच्छ शृणवत् नाभिशृणोति। अत आगमनमित्यर्थः॥

वहंतु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥१४॥
वहंतु। त्वा। रथेऽस्थां। आ। हरयः। रथऽयुजः।
तिरः। चित्। अर्यं। सवनानि। वृत्रऽहन्। अन्येषां। या। शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥१४॥

हे वृत्रहञ्छतक्रतो बज्रप्रज्ञ रथेष्ठां रथस्थामर्यमीश्वरं त्वा त्वां रथयुजो रथे युक्ता हरयोऽश्वा अन्येषां या यानि सवनानि संति तानि तिरस्तिरस्कुर्वंतः सवनान्यस्मदीयानि सवनान्या वहंतु॥

अस्माकमद्यांतमं स्तोमं धिष्व महामह।
अस्माकं ते सवना संतु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥१५॥
अस्माकं। अद्य। अंतमं। स्तोमं। धिष्व। महाऽमह।
अस्माकं। ते। सवना। संतु। शंऽतमा। मदाय। द्युक्ष। सोमऽपाः ॥१५॥

हे महामह महतामपि महन् महापूज्य वाद्यांतममंतिकतममस्माकं मेधातिथीनां स्तोमं धिष्व। धारय। हे द्युक्ष दीप्त सोमपाः सोमस्य पातरिंद्र ते तव मदाय मदार्थं सवना सवनान्यस्माकं शंतमा शंतमानि संतु। भवंतु॥ ॥९॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति। यो अस्मान्वीर आनयत् ॥१६॥
नहि। सः। तव। नो इति। मम। शास्त्रे। अन्यस्य। रण्यति। यः। अस्मान्। वीरः।
आ। अनयत् ॥१६॥

यो वीरः शूरोऽस्मानानयत् स इंद्रस्तव शास्त्रे शासने नहि रण्यति। न रमते। ममापि शास्त्रे शासने नो रण्यति। अन्यस्यापि शासने न रण्यति। किंतु रक्षण एव रमत इत्यर्थः॥

इंद्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुं ॥१७॥
इंद्रः। चित्। घ। तत्। अब्रवीत्। स्त्रियाः। अशास्यं। मनः। उतो इति। अह।
क्रतुं। रघुं ॥१७॥

यो मेध्यातिथेर्धनप्रदाता प्लायोगिरासंगः स पुमान् भूत्वा स्त्र्यभवत्। तदा यदिंद्र उवाच तदिदमाह। तथा चाहुः। प्लायोगिश्चासंगो यः स्त्री भूत्वा पुमानभूत् स मेध्यातिथये दानं दत्त्वेति। इंद्रश्चिदिंद्रः खलु तदब्रवीत्। स्त्रिया मनश्चित्तमशास्यं पुरुषेणाशिष्यं शासितुमशक्यं प्रबलत्वादिति। उतो अपि च स्त्रियाः क्रतुं प्रज्ञां रघुं लघुमाह॥

सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथं। एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥१८॥
सप्ती इति। चित्। घ। मदऽच्युता। मिथुना। वहतः। रथं। एव। इत्। धूः। वृष्णः।
उत्ऽतरा ॥१८॥

सप्ती चिदिंद्रस्याश्वावपि खलु मदच्युता सोमं प्रति गंताराविंद्रस्यैव रथं मिथुनौ वहतः। एवेदेवमेव वृष्ण इंद्रस्य रथो धूरुत्तराश्वयोरुत्तरा भवति॥

अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९॥
अधः। पश्यस्व। मा। उपरि। संऽतरां। पादकौ। हर।
मा। ते। कशऽप्लकौ। दृशन्। स्त्री। हि। ब्रह्मा। बभूविथ ॥१९॥

एवमंतरिक्षादागच्छन्रथस्थ इंद्रः स्त्रियं संतं स्वस्मात्पुंस्त्वमिच्छंतं प्लायोगिं यदुवाच तदाह। हे प्लायोगे त्वं स्त्री सत्यधः पश्यस्व। एष स्त्रीणां धर्मः। उपरि मा पश्यस्व। उपरिदर्शनं स्त्रीणां धर्मो न भवति हि। पादकौ पादावपि संतरां संश्लिष्टौ यथा भवतस्तथा हर। यथा पुरुषो विश्लिष्टपादनिधानो भवति तथा त्वया स्त्रिया न कर्तव्यमित्यर्थः। अपि च ते कशप्लकौ। कशस्य प्लकस्य कशप्लकौ। कशतिराहननकर्मा। कशप्लकावुभे अंगे मा दृशन्। पुरुषा न पश्यंतु। तयोरदर्शनं वाससः सुष्ठु परिधानेन भवति। अतः सुष्ठु वाससा परिधानं कुरु। स्त्रियो ह्या गुल्फादभिसंवीता भवंतीत्यर्थः। हि यस्मात्कारणाद्ब्रह्मा सन् स्त्री बभूविथ॥ ॥१०॥

एंद्र याहीत्यष्टादशर्चं चतुर्थं सूक्तं काण्वस्य नीपातिथेरार्षमानुष्टुभं। षोडश्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः। वसुरोचिषोऽंगिरोगोत्राः सहस्रसंख्याका आ यदिंद्र इत्यादीनां तासां तिसृणामृषयः। इंद्रो देवता। तथा चानुक्रमणं। एंद्र याहि द्यूना नीपातिथिरानुष्टुभं तृचोऽंत्यो गायत्र्यस्तं सहस्रं वसुरोचिषोऽंगिरसोऽपश्यन्निति॥ विनियोगो लैंगिकः॥

एंद्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिं ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥
आ । इंद्र । याहि । हरिऽभिः । उप । कण्वस्य । सुऽस्तुतिं ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१॥

हे इंद्र कण्वस्य सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं हरिभिरश्वैरुप याहि । दिवो द्युलोकं । द्वितीयार्थे षष्ठी । अमुष्यामुष्मिन्निंद्रे शासतः शासति ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ तत्र वयं सुखमास्महे । हे दिवावसो दीप्तहविष्केंद्र दिवं स्वर्गं यय । यूयं गच्छत । बहुवचनं पूजार्थं । यद्वा । हे दिवावसो दिवो द्युनामकममुष्यामुं लोकं शासनं कुर्वंतो यूयं दिवं स्वर्गं यय । गच्छत । अत्र बहुवचनं पूजार्थमित्यर्थः ॥

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥
आ । त्वा । ग्रावा । वदन् । इह । सोमी । घोषेण । यच्छतु ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥२॥

हे इंद्र त्वा त्वामिह यज्ञे ग्रावा सोमाभिषवपाषाणः सोमी सोमवान् वदञ्छब्दं कुर्वन् घोषेण ध्वनिना सह आ यच्छतु । सिद्धमन्यत् ॥

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥
अत्र । वि । नेमिः । एषां । उरां । न । धूनुते । वृकः ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥३॥

अत्रास्मिन्यज्ञ एषामभिषवग्राव्णां नेमिः सोमलता वि धूनुते । विशेषेण कंपयति । उरां मेषीं वृको न वृक इव । सिद्धमन्यत् ॥

आ त्वा कण्वा इहावसे हवंते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥४॥
आ । त्वा । कण्वाः । इह । अवसे । हवंते । वाजऽसातये ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥४॥

हे इंद्र त्वा त्वामिह यज्ञे कण्वा अवसे रक्षणाय वाजसातयेऽन्नस्य प्राप्त्यर्थं चा हवंते । आभिमुख्येन ह्वयंति । सिद्धमन्यत् ॥

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यं ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥५॥
दधामि । ते । सुतानां । वृष्णे । न । पूर्वऽपाय्यं ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥५॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान्वीर आनयत् ॥१६॥
नहि । सः । तव । नो इति । मम । शास्त्रे । अन्यस्य । रण्यति । यः । अस्मान् । वीरः ।
आ । अनयत् ॥१६॥

यो वीरः शूरोऽस्मानानयत् स इंद्रस्तव शास्त्रे शासने नहि रण्यति । न रमते । ममापि शास्त्रे शासने नो रण्यति । अन्यस्यापि शासने न रण्यति । किंतु रचण एव रमत इत्यर्थः ॥

इंद्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुं ॥१७॥
इंद्रः । चित् । घ । तत् । अब्रवीत् । स्त्रियाः । अशास्यं । मनः । उतो इति । अह ।
क्रतुं । रघुं ॥१७॥

यो मेध्यातिथेर्धनप्रदाता प्लायोगिरासंगः स पुमान् भूत्वा स्त्र्यभवत् । तदा यदिंद्र उवाच तदिदमाह । तथा चाहुः । प्लायोगिश्चासंगो यः स्त्री भूत्वा पुमानभूत् स मेध्यातिथये दानं दत्त्वेति । इंद्रश्चिदिंद्रः खलु तदब्रवीत् । स्त्रिया मनश्चित्तमशास्यं पुरुषेणाशिष्यं शासितुमशक्यं प्रबलत्वादिति । उतो अपि च स्त्रियाः क्रतुं प्रज्ञां रघुं लघुमाह ॥

सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथं । एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥१८॥
सप्ती इति । चित् । घ । मदऽच्युता । मिथुना । वहतः । रथं । एव । इत् । धूः । वृष्णः ।
उत्ऽतरा ॥१८॥

सप्ती चिदिंद्रस्याश्वावपि खलु मदच्युता सोमं प्रति गंताराविंद्रस्यैव रथं मिथुनौ वहतः । एवेदेवमेव वृष्ण इंद्रस्य रथो धूरुत्तराश्वयोरुत्तरा भवति ॥

अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९॥
अधः । पश्यस्व । मा । उपरि । संऽतरां । पादकौ । हर ।
मा । ते । कशऽप्लकौ । दृशन् । स्त्री । हि । ब्रह्मा । बभूविथ ॥१९॥

एवमंतरिक्षादागच्छन्रथस्थ इंद्रः स्त्रियं संतं स्वस्मात्पुंस्त्वमिच्छंतं प्लायोगिं यदुवाच तदाह । हे प्लायोगे त्वं स्त्री सत्यधः पश्यस्व । एष स्त्रीणां धर्मः । उपरि मा पश्यस्व । उपरिदर्शनं स्त्रीणां धर्मो न भवति हि । पादकौ पादावपि संतरां संश्लिष्टौ यथा भवतस्तथा हर । यथा पुरुषो विश्लिष्टपादनिधानो भवति तथा त्वया स्त्रिया न कर्तव्यमित्यर्थः । अपि च ते कशप्लकौ । कशस्य प्लकस्य कशप्लकौ । कशतिराहननकर्मा । कशप्लकावुभे अंगे मा दृशन् । पुरुषा न पश्यंतु । तयोरदर्शनं वाससः सुष्ठु परिधानेन भवति । अतः सुष्ठु वाससा परिधानं कुरु । स्त्रियो ह्या गुल्फादभिसंवीता भवंतीत्यर्थः । हि यस्मात्कारणाद्ब्रह्मा सन् स्त्री बभूविथ ॥ ॥१०॥

ऐंद्र याहीत्यष्टादशर्चं चतुर्थं सूक्तं काण्वस्य नीपातिथेरार्षमानुष्टुभं । षोडश्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः । वसुरोचिषोऽंगिरोगोत्राः सहस्रसंख्याका आ यदिंद्रश्चेत्यादीनां तासां तिसृणामृषयः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रमणं । ऐंद्र याहि द्व्यूना नीपातिथिरानुष्टुभं तृचोऽंत्यो गायत्र्यस्तं सहस्रं वसुरोचिषोऽंगिरसोऽपश्यन्निति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

आ । याहि । अर्यः । आ । परि । स्वाहा । सोमस्य । पीतये ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१०॥

हे अर्येश्वर त्वमा परि सर्वत आ याहि । आगच्छ । पीतये तव पानार्थं सोमस्य सोमं स्वाहा करोमि । सिद्धमन्यत् ॥ ॥१२॥

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११॥
आ । नः । याहि । उपऽश्रुति । उक्थेषु । रणय । इह ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥११॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माकमिह यज्ञ उक्थेषु शस्त्रेषु पठ्यमानेषूपश्रुत्युपश्रुतौ समीपमा याहि । आगच्छ । अस्मान्रणय च । सिद्धमन्यत् ॥

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२॥
सऽरूपैः । आ । सु । नः । गहि । संऽभृतैः । संभृतऽअश्वः ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१२॥

हे इंद्र संभृताश्वः पुष्टाश्वस्त्वं सु संभृतैः सरूपैः समानरूपैरश्वैर्नोऽस्माना गहि । आगच्छ । सिद्धमन्यत् ॥

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३॥
आ । याहि । पर्वतेभ्यः । समुद्रस्य । अधि । विष्टपः ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१३॥

हे इंद्र त्वं पर्वतेभ्य आ याहि । आगच्छ । समुद्रस्यांतरिक्षस्य विष्टपो विष्टपात्स्थानाधायाहीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४॥
आ । नः । गव्यानि । अश्व्या । सहस्रा । शूर । दर्दृहि ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१४॥

हे शूरेंद्र त्वं नोऽस्मभ्यं सहस्रा सहस्राणि सहस्रसंख्यानि गव्यानि गोहितानि गोरूपाणि वाश्व्यान्यश्वहितान्यश्वात्मकानि वा दर्दृहि । आविवृणु । सिद्धमन्यत् ॥

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५॥

आ । नः । सहस्रऽशः । भर । अयुतानि । शतानि । च ।
दिवः । अमुष्य । शासतः । दिवं । यय । दिवावसो इति दिवाऽवसो ॥१५॥

हे इंद्र नोऽस्मभ्यं सहस्रशः सहस्रधायुतानि शतानि चाभीष्टानि वसून्या भर । आहर । सिद्धमन्यत् ॥

आ यदिंद्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुं ॥१६॥
आ । यत् । इंद्रः । च । दद्वहे इति । सहस्रं । वसुऽरोचिषः । ओजिष्ठं । अश्व्यं । पशुं ॥१६॥

वसुरोचिषो वसुदीप्तयो वयं सहस्रमस्माकं नेतेंद्रश्चौजिष्ठं बलवत्तरमश्व्यमश्वात्मकं पशुं च यद्यदा दद्वहे पारावतादादद्महे । उत्तरत्र संबंधः ॥

य ऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजंते सूर्या इव ॥१७॥
ये । ऋज्राः । वातऽरंहसः । अरुषासः । रघुऽस्यदः । भ्राजंते । सूर्याःऽइव ॥१७॥

तदा य ऋज्रा ऋजुगामिनो वातरंहसो वायुसदृशवेगा अरुषास आरोचमाना रघुष्यदो लघु स्यंदमाना अश्वाः सूर्या इव यथा सूर्यस्तथा भ्राजंते ॥

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥१८॥
पारावतस्य । रातिषु । द्रवत्ऽचक्रेषु । आशुषु । तिष्ठं । वनस्य । मध्ये । आ ॥१८॥

तेषु पारावतस्य रातिषु देयेषु द्रवच्चक्रेषु द्रवद्रथचक्रेष्वाशुष्वश्वेषु । तार्क्ष्य आशुरित्यश्वनामसु पाठात् । प्रतिगृहीतेषु सत्सु वनस्य मध्य आ तिष्ठमिति वसुरोचिषां सहस्रं वदति ॥ ॥१३॥

अग्निनेंद्रेणेति चतुर्विंशत्यृचं पंचमं सूक्तं श्यावाश्वस्यात्रेयस्यार्षं । अत्रानुक्रमणिका । अग्निना चतुर्विंशतिः श्यावाश्व आश्विनमौपरिष्टाज्ज्योतिषं पंक्तिमहाबृहतीपंक्त्यंतमिति । उपरिष्टाज्ज्योतिश्छंदः चतुर्थपादस्याष्टाक्षरत्वात् । यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः । अनु० ९. ८. । इति तल्लक्षणं । द्वाविंशी पंक्तिः । त्रयोविंशी महाबृहती चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहती । अनु० ९. ९. । इत्युक्तलक्षणोपेतत्वात् । चतुर्विंशी पंक्तिः । अश्विनौ देवता ॥ अश्विनोर्यामे होतुरतिरिक्तोकथ्येऽग्निनेंद्रेणेत्येतत्सूक्तं । सूत्रितं च । अग्निनेंद्रेणा भात्यग्निः । आ० ९. ११. । इति ॥

अग्निनेंद्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥१॥
अग्निना । इंद्रेण । वरुणेन । विष्णुना । आदित्यैः । रुद्रैः । वसुऽभिः । सचाऽभुवा ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । पिबतं । अश्विना ॥१॥

हे अश्विनाश्विनौ अग्निनेंद्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिश्च सचाभुवा सहभूतावुषसा सूर्येण च सजोषसा संगतौ युवां सोमं पिबतं ॥

विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥२॥
विश्वाभिः । धीभिः । भुवनेन । वाजिना । दिवा । पृथिव्या । अद्रिऽभिः । सचाऽभुवा ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । पिबतं । अश्विना ॥२॥

हे वाजिना बलिनावश्विनौ विश्वाभिः सर्वाभिर्धीभिः प्रज्ञाभिर्भुवनेनाखिलेन भूतजातेन च दिवा द्युलोकेन च पृथिव्या चाद्भिश्च सचाभुवा सहभूतावुषसा सूर्येण च संगतौ युवां सोमं पिबतं ॥

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥३॥

विश्वैः । देवैः । त्रिऽभिः । एकादशैः । इह । अत्ऽभिः । मरुत्ऽभिः । भृगुऽभिः । सचाऽभुवा ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । पिबतं । अश्विना ॥३॥

हे अश्विनौ विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैस्त्रयस्त्रिंशैरिह यज्ञेऽद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिश्च सचाभुवा सहभूतावुषसा सूर्येण च संगतौ युवां सोमं पिबतं ॥

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥४॥

जुषेथां । यज्ञं । बोधतं । हवस्य । मे । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अव । गच्छतं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आ । इषं । नः । वोळ्हं । अश्विना ॥४॥

हे अश्विनौ यज्ञं जुषेथां । सेवेथां । मे मम हवस्य हवं बोधतं । जानीतं । इह यज्ञे विश्वा सर्वाणि सवनान्यव गच्छतं । प्राप्नुतं । इषमन्नं न आ वोळ्हं । प्रापयतं ॥

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥५॥

स्तोमं । जुषेथां । युवशाऽइव । कन्यनां । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अव । गच्छतं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आ । इषं । नः । वोळ्हं । अश्विना ॥५॥

हे अश्विनौ देवौ युवामिहास्मिन्यज्ञे स्तोमं जुषेथां । सेवेथां । युवशेव यथा युवानौ कन्यनां कन्यानामाह्वानं सेवेते । तद्वदित्यर्थः । इह यज्ञे विश्वा विश्वानि सवनान्यव गच्छतं । प्राप्नुतं । सिद्धमन्यत् ॥

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥६॥

गिरः । जुषेथां । अध्वरं । जुषेथां । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अव । गच्छतं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आ । इषं । नः । वोळ्हं । अश्विना ॥६॥

हे देवावश्विनौ नोऽस्माकं गिरः स्तुतीर्जुषेथां । सेवेथां । तथाध्वरं यज्ञं च जुषेथां । इह यज्ञे विश्वानि सवनान्यव गच्छतं । प्राप्नुतं ॥ ॥१४॥

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७॥

हारिद्रवाऽइव । पतथः । वना । इत् । उप । सोमं । सुतं । महिषाऽइव । अव । गच्छथः ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । त्रिः । वर्तिः । यातं । अश्विना ॥ ७ ॥

हे अश्विनौ युवां सुतमभिषुतं सोममुप पतथो हारिद्रवाविव यथा हारिद्रवौ पक्षिणौ वना वनान्युदकानि वा । वनमित्युदकनामसु पाठात् । उपपततः । तद्वदित्यर्थः । महिषाविव यथा पिपासितौ महिषावुदकान्युपगच्छतः तथा सुतं सोममव गच्छथः । उषसा सूर्येण च संगतौ त्रिर्वर्तिस्त्रिमार्गं यातं च ॥

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥
हंसौऽइव । पतथः । अध्वगौऽइव । सोमं । सुतं । महिषाऽइव । अव । गच्छथः ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । त्रिः । वर्तिः । यातं । अश्विना ॥ ८ ॥

हे अश्विनौ युवां हंसाविव यथा हंसावध्वगाविव यथा च पथिकावुदकं गच्छतः तथा वेगेन सुतं सोमं पतथः । सिद्धमन्यत् ॥

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥
श्येनौऽइव । पतथः । हव्यऽदातये । सोमं । सुतं । महिषाऽइव । अव । गच्छथः ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । त्रिः । वर्तिः । यातं । अश्विना ॥ ९ ॥

हे अश्विनौ युवां श्येनाविव यथा श्येनौ गगणं गच्छतः तथा वेगेन सुतं सोमं हव्यदातये यजमानार्थं पतथः । गच्छथः । सिद्धमन्यत् ॥

पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥
पिबतं । च । तृप्णुतं । च । आ । च । गच्छतं । प्रऽजां । च । धत्तं । द्रविणं । च । धत्तं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । ऊर्जं । नः । धत्तं । अश्विना ॥ १० ॥

हे अश्विनौ युवां सोमं पिबतं च । तृप्णुतं च । तृप्यतं च । पानार्थं तृप्त्यर्थं चा गच्छतं । सोमं पीत्वा तृप्तौ संतौ युवामस्मभ्यं प्रजां च धत्तं । धारयतं । द्रविणं धनं च धत्तं । उषसा सूर्येण च संगतौ नोऽस्मभ्यमूर्जं बलं च धत्तं ॥

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥
जयतं । च । प्र । स्तुतं । च । प्र । च । अवतं । प्रऽजां । च । धत्तं । द्रविणं । च । धत्तं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । ऊर्जं । नः । धत्तं । अश्विना ॥ ११ ॥

हे अश्विनौ युवां जयतं । शत्रूंश्च जयतं । प्र स्तुतं स्तोतॄंश्च प्र चावतमस्मांश्च प्ररक्षतं । अन्यत्सिद्धं ॥

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१२॥
हतं । च । शत्रून् । यततं । च । मित्रिणः । प्रऽजां । च । धत्तं । द्रविणं । च । धत्तं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । ऊर्जं । नः । धत्तं । अश्विना ॥१२॥

हे अश्विनौ युवां शत्रूंश्च हतं । उतापि च यततं मित्रिणः । मैत्रीयुक्तांश्च गच्छतं । सिद्धमन्यत् ॥ ॥१५॥

मित्रावरुणवंता उत धर्मवंता मरुत्वंता जरितुर्गच्छथो हवं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१३॥
मित्रावरुणऽवंतौ । उत । धर्मऽवंता । मरुत्वंता । जरितुः । गच्छथः । हवं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आदित्यैः । यातं । अश्विना ॥१३॥

उतापि च हे अश्विनौ युवां मित्रावरुणवंता मित्रावरुणयुक्तौ धर्मवंतौ धर्मयुक्तौ च मरुत्वंता मरुद्भिर्युक्तौ च जरितुः स्तोतुर्हवमाह्वानं गच्छथः । आगच्छतं । उषसा सूर्येण चादित्यैश्च यातं । गच्छतं ॥

अंगिरस्वंता उत विष्णुवंता मरुत्वंता जरितुर्गच्छथो हवं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१४॥
अंगिरस्वंतौ । उत । विष्णुऽवंता । मरुत्वंता । जरितुः । गच्छथः । हवं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आदित्यैः । यातं । अश्विना ॥१४॥

उतापि च हे अश्विनौ युवामंगिरस्वंतावंगिरोभिर्युक्तौ विष्णुवंता विष्णुना च सहितौ मरुद्भिश्च सहितौ स्तोतुराह्वानं गच्छतं । सिद्धमन्यत् ॥

ऋभुमंता वृषणा वाजवंता मरुत्वंता जरितुर्गच्छथो हवं ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१५॥
ऋभुऽमंता । वृषणा । वाजऽवंता । मरुत्वंता । जरितुः । गच्छथः । हवं ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । आदित्यैः । यातं । अश्विना ॥१५॥

हे अश्विनावृभुमंता ऋभुसहितौ वृषणा कामानां वर्षितारौ वाजवंतौ वाजयुक्तौ मरुत्वंतौ च स्तोतुराह्वानं गच्छतं । ऋभुमंता वाजवंतेति ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां व्यपदेशः । सिद्धमन्यत् ॥

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१६॥
ब्रह्म । जिन्वतं । उत । जिन्वतं । धियः । हतं । रक्षांसि । सेधतं । अमीवाः ।
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । सोमं । सुन्वतः । अश्विना ॥१६॥

हे अश्विनौ युवां ब्रह्म ब्राह्मणं जिन्वतं । प्रीणयतं । उतापि च धियः कर्माणि जिन्वतं । हतं च रक्षांसि । अमीवा राक्षसांश्च सेधतं । उषसा सूर्येण च संगतौ सुन्वतो यजमानस्य सोमं पिबतमित्यर्थः ॥

हारिद्र॒वाऽइ॑व। प॒त॒थः। वना॑। इत्। उप॑। सोम॑म्। सु॒तम्। म॒हि॒षाऽइ॑व। अव॑। ग॒च्छ॒थः।
स॒ऽजोष॑सौ। उ॒षसा॑। सूर्ये॑ण। च॒। त्रिः। व॒र्तिः। या॒त॒म्। अ॒श्वि॒ना ॥७॥

हे अश्विनौ युवां सुतमभिषुतं सोममुप पतथो हारिद्रवाविव यथा हारिद्रवौ पक्षिणौ वना वनान्युदकानि वा। वनमित्युदकनामसु पाठात्। उपपततः। तद्वदित्यर्थः। महिषाविव यथा पिपासितौ महिषावुदकान्युपगच्छतः तथा सुतं सोममव गच्छथः। उषसा सूर्येण च संगतौ त्रिर्वर्तिस्त्रिर्मार्गं यातं च ॥

हं॒सावि॑व पतथो अध्व॒गावि॑व॒ सोमं॑ सु॒तं म॑हि॒षेवाव॑ गच्छथः।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ त्रिर्व॒र्तिर्या॑तमश्विना ॥८॥
हं॒सौऽइ॑व। प॒त॒थः। अ॒ध्व॒गौऽइ॑व। सोम॑म्। सु॒तम्। म॒हि॒षाऽइ॑व। अव॑। ग॒च्छ॒थः।
स॒ऽजोष॑सौ। उ॒षसा॑। सूर्ये॑ण। च॒। त्रिः। व॒र्तिः। या॒त॒म्। अ॒श्वि॒ना ॥८॥

हे अश्विनौ युवां हंसाविव यथा हंसावध्वगाविव यथा च पथिकावुदकं गच्छतः तथा वेगेन सुतं सोमं पतथः। सिद्धमन्यत् ॥

श्ये॒नावि॑व पतथो ह॒व्यदा॑तये॒ सोमं॑ सु॒तं म॑हि॒षेवाव॑ गच्छथः।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ त्रिर्व॒र्तिर्या॑तमश्विना ॥९॥
श्ये॒नौऽइ॑व। प॒त॒थः। ह॒व्यऽदा॑तये। सोम॑म्। सु॒तम्। म॒हि॒षाऽइ॑व। अव॑। ग॒च्छ॒थः।
स॒ऽजोष॑सौ। उ॒षसा॑। सूर्ये॑ण। च॒। त्रिः। व॒र्तिः। या॒त॒म्। अ॒श्वि॒ना ॥९॥

हे अश्विनौ युवां श्येनाविव यथा श्येनौ गगणं गच्छतः तथा वेगेन सुतं सोमं हव्यदातये यजमानार्थं पतथः। गच्छथः। सिद्धमन्यत् ॥

पिब॑तं च तृ॒प्णु॒तं चा च॑ गच्छतं प्र॒जां च॑ ध॒त्तं द्रवि॑णं च धत्तम्।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चोर्जं॑ नो धत्तमश्विना ॥१०॥
पिब॑तम्। च॒। तृ॒प्णु॒तम्। च॒। आ। च॒। ग॒च्छ॒त॒म्। प्र॒ऽजाम्। च॒। ध॒त्तम्। द्रवि॑णम्। च॒। ध॒त्त॒म्।
स॒ऽजोष॑सौ। उ॒षसा॑। सूर्ये॑ण। च॒। ऊर्ज॑म्। नः॒। ध॒त्त॒म्। अ॒श्वि॒ना ॥१०॥

हे अश्विनौ युवां सोमं पिबतं च। तृप्णुतं च। तृप्यतं च। पानार्थं तृप्त्यर्थं चा गच्छतं। सोमं पीत्वा तृप्तौ संतौ युवामस्मभ्यं प्रजां च धत्तं। धारयतं। द्रविणं धनं च धत्तं। उषसा सूर्येण च संगतौ नोऽस्मभ्यमूर्जं बलं च धत्तं ॥

जय॑तं च॒ प्र स्तु॒तं च॒ प्र चा॑वतं प्र॒जां च॑ ध॒त्तं द्रवि॑णं च धत्तम्।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चोर्जं॑ नो धत्तमश्विना ॥११॥
जय॑तम्। च॒। प्र। स्तु॒तम्। च॒। प्र। च॒। अ॒व॒त॒म्। प्र॒ऽजाम्। च॒। ध॒त्तम्। द्रवि॑णम्। च॒। ध॒त्त॒म्।
स॒ऽजोष॑सौ। उ॒षसा॑। सूर्ये॑ण। च॒। ऊर्ज॑म्। नः॒। ध॒त्त॒म्। अ॒श्वि॒ना ॥११॥

हे अश्विनौ युवां जयतं। शत्रूंश्च जयतं। प्र स्तुतं स्तोतॄंश्च प्र चावतमस्मांश्च प्ररक्षतं। अन्यत्सिद्धं ॥

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥
अर्वाक् । रथं । नि । यच्छतं । पिबतं । सोम्यं । मधु ।
आ । यातं । अश्विना । आ । गतं । अवस्युः । वां । अहं । हुवे । धत्तं । रत्नानि । दाशुषे ॥२२॥

हे अश्विनौ वां स्वीयं रथमर्वागस्मदभिमुखं नि यच्छतं । सोम्यं सोममयं मध्वमृतं च पिबतं । यज्ञमा यातं च । सोमं प्रत्या गतं । आगच्छतं च । अवस्यू रक्षणकामोऽहं श्यावाश्वो वां हुवे । ह्वयामि । दाशुषे हवींषि प्रयच्छते मह्यं रत्नानि धत्तं । धारयतं ॥

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३॥
नमःऽवाके । प्रऽस्थिते । अध्वरे । नरा । विवक्षणस्य । पीतये ।
आ । यातं । अश्विना । आ । गतं । अवस्युः । वां । अहं । हुवे । धत्तं । रत्नानि । दाशुषे ॥२३॥

हे अश्विनौ नरा नेतारौ युवां विवक्षणस्य हवनशीलस्य मम प्रस्थिते नमोवाके । नमस्काराय प्रोच्यते स नमोवाकः । तस्मिन्नध्वरे यज्ञे । तथा च ब्राह्मणं । उभयं सह वा एतद्यज्ञ एव यत्सूक्तवाकश्च नमोवाकश्च । शत॰ १. ९. १. ४. । इति । पीतये सोमपानाया यातं । सिद्धमन्यत् ॥

स्वाहाकृतस्य तृंपतं सुतस्य देवावंधसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२४॥
स्वाहाऽकृतस्य । तृंपतं । सुतस्य । देवौ । अंधसः ।
आ । यातं । अश्विना । आ । गतं । अवस्युः । वां । अहं । हुवे । धत्तं । रत्नानि । दाशुषे ॥२४॥

हे अश्विनौ देवौ युवां सुतस्याभिषुतस्य स्वाहाकृतस्य हुतस्यांधसः सोमस्य तृंपतं । सिद्धमन्यत् ॥ ॥१७॥

अवितासीति सप्तर्चं षष्ठं सूक्तमात्रेयस्य श्यावाश्वस्यार्षं । अत्रेयमनुक्रमणिका । अविता सप्त शाक्करं महापंक्त्यंतमिति । षट्पंचाशदक्षरा शक्करी छंदः । श्यावाश्वस्येति सप्तमी महापंक्तिः षळष्टका वा महापंक्तिः । अनु॰ १०. ३. । इति लक्षणसद्भावात् ॥ दशरात्रे पंचमेऽहनि मरुत्वतीय इदं सूक्तं । सूत्रितं च । अवितासीत्या हि । आ॰ ७. १२. । इति ॥

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते ॥१॥
अविता । असि । सुन्वतः । वृक्तऽबर्हिषः । पिब । सोमं । मदाय । कं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।
यं । ते । भागं । अधारयन् । विश्वाः । सेहानः । पृतनाः । उरु । ज्रयः । सं । अप्सुऽजित् । मरुत्वान् । इंद्र । सत्ऽपते ॥१॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्निंद्र सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषो यजमानस्याविता रक्षि-

तासि। भवसि। मदाय मदार्थं सोमं पिब। हे सत्पते सतां पत इंद्र ते तुभ्यं यं सोमस्य भागमधारयन् सर्वे देवा अकल्पयन्। तथा च यजुर्ब्राह्मणं। स एतं माहेंद्रमुद्धारमुदहरत वृत्रं हत्वान्यासु देवतास्वधि। तै० सं० ६. ५. ५. ३.। इति। तं भागं विश्वाः पृतनाः शत्रूणां सर्वाः सेना उरु बहु ज्रयो वेगं च सं सेहानः सम्यगभिभवन्नप्सुजिदप्सु जेता च सन् पिब॥

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते॥२॥
प्र। अव। स्तोतारं। मघऽवन्। अव। त्वां। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते॥२॥

हे मघवन् स्तोतारं प्राव। प्ररक्ष। त्वां चाव। सोमपानेन रक्ष। सिद्धमन्यत्॥

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते॥३॥
ऊर्जा। देवान्। अवसि। ओजसा। त्वां। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते॥३॥

हे इंद्र त्वं देवानूर्जान्नेन हविषावसि। रक्षसि। त्वामप्योजसा बलेनावसि। सिद्धमन्यत्॥

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते॥४॥
जनिता। दिवः। जनिता। पृथिव्याः। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते॥४॥

हे इंद्र त्वं दिवो द्युलोकस्य जनिता जनकोऽसि। पृथिव्याश्च जनितासि। सिद्धमन्यत्॥

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते॥५॥
जनिता। अश्वानां। जनिता। गवां। असि। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते॥५॥

हे इंद्र त्वमश्वानां जनिता जनकोऽसि। गवां च जनितासि। सिद्धमन्यत्॥

अचीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते॥६॥
अचीणां। स्तोमं। अद्रिऽवः। महः। कृधि। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्।
मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते॥६॥

हे अद्रिवोऽद्रिमन् अचीणां स्तोमं महस्कृधि। पूजितं कुरु। सिद्धमन्यत्॥

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इंद्र ब्रह्माणि वर्धयन्॥७॥
श्यावऽअश्वस्य। सुन्वतः। तथा। शृणु। यथा। अशृणोः। अत्रेः। कर्माणि। कृण्वतः।
प्र। त्रसदस्युं। आविथ। त्वं। एकः। इत्। नृऽसह्ये। इंद्र। ब्रह्माणि। वर्धयन्॥७॥

हे इंद्र त्वं सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतः श्यावाश्वस्य मम स्तुतिं कर्माणि कृण्वतः कुर्वतोऽत्रेर्यथाशृणोः अश्रौषीः तथा शृणु। अपि च त्वमेक इदेक एव नृषाह्ये युद्धे ब्रह्माणि स्तोत्राणि कामैर्वर्धयंस्त्रसदस्युं प्राविथ॥ ॥१८॥

प्रेदं ब्रह्मेति सप्तर्चं सप्तमं सूक्तमात्रेयस्य श्यावाश्वस्यार्षं। आद्या द्वापंचाशदक्षरातिजगती। शिष्टाः षडृचः षडष्टका महापंक्तयः। इंद्रो देवता। तथा चानुक्रांतं। प्रेदं महापांक्तमाद्यातिजगतीति॥ महाव्रते निष्केवल्य एतत्सूक्तं। तथा च सूत्रं। प्रेदं ब्रह्मेंद्रो मदाय। आ० ७. १२.। इति॥

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इंद्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥१॥
प्र। इदं। ब्रह्म। वृत्रऽतूर्येषु। आविथ। प्र। सुन्वतः। शचीऽपते। इंद्र। विश्वाभिः। ऊतिऽभिः।
माध्यंदिनस्य। सवनस्य। वृत्रऽहन्। अनेद्य। पिब। सोमस्य। वज्रिऽवः॥१॥

हे शचीपत इंद्र त्वं वृत्रतूर्येषु संग्रामेष्विदं ब्रह्मेमान् ब्राह्मणान्विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभी रक्षाभिः प्राविथ। प्ररक्ष। सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानांश्च प्राविथ। अपि च हे अनेद्यानिंद्य वज्रिवो वज्रिन् वृत्रहन्निंद्र माध्यंदिनस्य सवनस्य संबंधिनं सोमस्य सोमं पिब॥

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इंद्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥२॥
सेहानः। उग्र। पृतनाः। अभि। द्रुहः। शचीऽपते। इंद्र। विश्वाभिः। ऊतिऽभिः।
माध्यंदिनस्य। सवनस्य। वृत्रऽहन्। अनेद्य। पिब। सोमस्य। वज्रिऽवः॥२॥

हे शचीपते कर्मपत उग्रोद्गूर्णेंद्र अभि द्रुहो द्रोग्धीः पृतनाः सेनाः सेहानोऽभिभवन् सर्वैः पालनैर्ब्राह्मणान् प्राविथेत्यर्थः। सिद्धमन्यत्॥

तासि। भवसि। मदाय मदार्थं सोमं पिब। हे सत्पते सतां पत इंद्र ते तुभ्यं यं सोमस्य भागमधारयन् सर्वे देवा अकल्पयन्। तथा च यजुर्ब्राह्मणं। स एतं माहेंद्रमुद्धारमुदहरत वृत्रं हत्वान्यासु देवतास्वधि। तै॰ सं॰ ६. ५. ५. ३.। इति। तं भागं विश्वाः पृतनाः शत्रूणां सर्वाः सेना उरु बहु ज्रयो वेगं च सं सेहानः सम्यगभिभवन्नप्सुजिदप्सु जेता च सन् पिब ॥

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते ॥२॥
प्र। अव। स्तोतारं। मघऽवन्। अव। त्वां। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते ॥२॥

हे मघवन् स्तोतारं प्राव। प्ररक्ष। त्वां चाव। सोमपानेन रक्ष। सिद्धमन्यत् ॥

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते ॥३॥
ऊर्जा। देवान्। अवसि। ओजसा। त्वां। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते ॥३॥

हे इंद्र त्वं देवानूर्जान्नेन हविषावसि। रक्षसि। त्वामप्योजसा बलेनावसि। सिद्धमन्यत् ॥

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते ॥४॥
जनिता। दिवः। जनिता। पृथिव्याः। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते ॥४॥

हे इंद्र त्वं दिवो द्युलोकस्य जनिता जनकोऽसि। पृथिव्याश्च जनितासि। सिद्धमन्यत् ॥

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इंद्र सत्पते ॥५॥
जनिता। अश्वानां। जनिता। गवां। असि। पिब। सोमं। मदाय। कं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
यं। ते। भागं। अधारयन्। विश्वाः। सेहानः। पृतनाः। उरु। ज्रयः। सं। अप्सुऽजित्। मरुत्वान्। इंद्र। सत्ऽपते ॥५॥

यज्ञस्य हीति दशर्चमष्टमं सूक्तं श्यावाश्वस्यार्षं प्राग्वत्सप्रपरिभाषया गायत्रमिंद्राग्निदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । यज्ञस्य दशैंद्राग्नमिति ॥ पृष्ठ्याभिप्लवषडहयोः प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्र आवापार्थमेतत्सूक्तं । सूत्रितं च । यज्ञस्य हि स्थ इत्यच्छावाकस्य । आ० ७. ५. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवने यज्ञस्य हि स्थ इति षळहस्तोत्रियसंज्ञकस्तृचः । सूत्रितं च । इंद्राग्नी युवामिमे यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजेत्यच्छावाकस्य । आ० ७. २. । इति ॥ अग्निष्टोमे प्रातःसवनेऽच्छावाकस्य प्रातर्यावभिरिति प्रातःसवनीयस्य प्रस्थितयाज्या । सूत्रितं च । प्रातर्यावभिरिति यजति । आ० ५. ७. । इति ॥ चातुर्विंशिके प्रातःसवनेऽच्छावाकशस्त्रे श्यावाश्वस्येत्ययं पर्यासस्तृचः । अन्यत्राप्यहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहःसु । सूत्र्यते हि । श्यावाश्वस्य सुन्वत इति तृचाः पर्यासाः । आ० ७. २. । इति ॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इंद्राग्नी तस्य बोधतं ॥१॥

यज्ञस्य । हि । स्थः । ऋत्विजा । सस्नी इति । वाजेषु । कर्मऽसु । इंद्राग्नी इति । तस्य । बोधतं ॥१॥

हे इंद्राग्नी सस्नी शुद्धौ युवां यज्ञस्यर्त्विजा ऋत्विजौ स्थः । भवथः । वाजेषु कर्मसु युद्धेषु वोपतिष्ठंताविंद्राग्नी तस्य तं मां तस्य मम स्तुतिं वा बोधतं । जानीतं ॥

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इंद्राग्नी तस्य बोधतं ॥२॥

तोशासा । रथऽयावाना । वृत्रऽहना । अपराऽजिता । इंद्राग्नी इति । तस्य । बोधतं ॥२॥

हे इंद्राग्नी तोशासा शत्रून् हिंसंतौ रथयावाना रथेन गच्छंतौ वृत्रहणा वृत्रस्य हंताराववपराजिता केनाप्यपराजितौ तस्य तं मां बोधतं ॥

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इंद्राग्नी तस्य बोधतं ॥३॥

इदं । वां । मदिरं । मधु । अधुक्षन् । अद्रिऽभिः । नरः । इंद्राग्नी इति । तस्य । बोधतं ॥३॥

हे इंद्राग्नी वां युवामुद्दिश्य नरो यज्ञस्य नेतारोऽद्रिभिर्ग्रावभिर्मदिरं मदकरं मधु सोमात्मकममृतमधुक्षन् । अपूरयन् । सिद्धमन्यत् ॥

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इंद्राग्नी आ गतं नरा ॥४॥

जुषेथां । यज्ञं । इष्टये । सुतं । सोमं । सधस्तुती इति सधऽस्तुती । इंद्राग्नी इति । आ । गतं । नरा ॥४॥

हे सधस्तुती सहभूतस्तुती नरा नेताराविंद्राग्नी यज्ञं जुषेथां । सेवेथां । इष्टये यागाय सुतमभिषुतं सोमं चा गतं । आगच्छतं ॥

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इंद्राग्नी आ गतं नरा ॥५॥

इमा । जुषेथां । सवना । येभिः । हव्यानि । ऊहथुः । इंद्राग्नी इति । आ । गतं । नरा ॥५॥

हे इंद्राग्नी नरा नेतारौ युवां येभिर्यैः सवनैर्हव्यान्यूहथुः वहथः तानीमेमानि सवना सवनानि जुषेथां । सेवेथां । आ गतं च ॥

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इंद्राग्नी आ गतं नरा ॥६॥

इमां । गायत्रऽवर्तनिं । जुषेथां । सुऽस्तुतिं । मम । इंद्राग्नी इति । आ । गतं । नरा ॥६॥

हे इंद्राग्नी नरौ युवां मम गायत्रवर्तनिं गायत्रमार्गामिमां सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं जुषेथां। सेवेथां। आ गतं च ॥ ॥२०॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू। इंद्राग्नी सोमपीतये ॥७॥
प्रातर्यावऽभिः। आ। गतं। देवेभिः। जेन्यावसू इति। इंद्राग्नी इति। सोमऽपीतये ॥७॥

हे जेन्यावसू जेतव्यशत्रुधनाविंद्राग्नी प्रातर्यावभिर्देवैः सह सोमपीतये सोमस्य पानाया गतं। आगच्छतं॥

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवं। इंद्राग्नी सोमपीतये ॥८॥
श्यावऽअश्वस्य। सुन्वतः। अत्रीणां। शृणुतं। हवं। इंद्राग्नी इति। सोमऽपीतये ॥८॥

हे इंद्राग्नी युवां सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य श्यावाश्वस्य ममात्रीणामृत्विजां हवं ह्वानं सोमस्य पानाय शृणुतं॥

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवंत मेधिराः। इंद्राग्नी सोमपीतये ॥९॥
एव। वां। अह्वे। ऊतये। यथा। अहुवंत। मेधिराः। इंद्राग्नी इति। सोमऽपीतये ॥९॥

हे इंद्राग्नी वां युवां यथा मेधिराः प्राज्ञा अहुवंत आह्वतवंतः एवमहमूतये रक्षणाय सोमस्य पीतये चाह्वे। ह्वयामि॥

आहं सरस्वतीवतोरिंद्राग्न्योरवो वृणे। याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥१०॥
आ। अहं। सरस्वतीऽवतोः। इंद्राग्न्योः। अवः। वृणे। याभ्यां। गायत्रं। ऋच्यते ॥१०॥

याभ्यां ययोरिंद्राग्न्योरर्थं गायत्रं सामर्च्यते स्तूयते तयोः सरस्वतीवतोः स्तुतिमतोरिंद्राग्न्योः संबंध्यवो रक्षणमहमा वृणे॥ ॥२१॥

अग्निमस्तोषीति दशर्चं नवमं सूक्तं काण्वस्य नाभाकस्यार्षं। षडष्टका महापंक्तिश्छंदः। अग्निर्देवता। अनुक्रांतं च। अग्निमस्तोषि नाभाक आग्नेयं महापांक्तं ह्येति॥ विनियोगो लैंगिकः॥

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै।
अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविरंतश्चरति दूत्यं१ नभंतामन्यके समे ॥१॥
अग्निं। अस्तोषि। ऋग्मियं। अग्निं। ईळा। यजध्यै।
अग्निः। देवान्। अनक्तु। नः। उभे इति। हि। विदथे इति। कविः। अंतरिति। चरति। दूत्यं। नभंतां। अन्यके। समे ॥१॥

ऋग्मियमृगर्हमग्निमस्तोषि। स्तौमि। अपि चाग्निं यजध्यै यष्टुमीळा स्तुत्या स्तौमीत्यर्थः। अपि चाग्निर्नोऽस्माकं विदथे यज्ञे देवान् हविर्भिरनक्तु। कविः क्रांतदर्श्यग्निरुभे द्यावापृथिव्यावंतर्दूत्यं हविर्वहनादिलक्षणं दूतकर्म चरति। अन्यके शत्रवोऽपि समे सर्वे नभंतां। नभतिर्हिंसाकर्मा। अग्निना हिंस्यंतां॥

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषां।
न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो युच्छंत्वामुरो नभंतामन्यके समे ॥२॥

नि । अग्ने । नव्यसा । वचः । तनूषु । शंसं । एषां ।
नि । अरातीः । रराव्णां । विश्वाः । अर्यः । अरातीः । इतः । युच्छंतु । आऽमुरः ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥२॥

हे अग्ने तनूष्वस्माकमंगेषु नव्यसा नवतरेण वचो वचसा स्तोत्रैरेषां शत्रूणां शंसं शंसनं नि दहेत्यर्थः । रराव्णां हविः प्रयच्छतामरातीः शत्रूंश्च निदह । अपि च विश्वाः सर्वेऽर्योऽभिगच्छंत आमुर आमूढा अरातीः शत्रव इतो युच्छंतु । गच्छंतु । सिद्धमन्यत् ॥

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभंतामन्यके समे ॥३॥
अग्ने । मन्मानि । तुभ्यं । कं । घृतं । न । जुह्वे । आसनि ।
सः । देवेषु । प्र । चिकिद्धि । त्वं । हि । असि । पूर्व्यः । शिवः । दूतः । विवस्वतः ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥३॥

हे अग्ने तुभ्यं त्वदर्थमासन्यास्ये कं घृतं न यथा सुखकरं घृतं जुह्वत्यन्ये तद्वदहमपि तवास्ये मन्मानि मननीयानि स्तोत्राणि जुह्वे । जुहोमि । स त्वं देवेषु देवानां मध्ये प्र चिकिद्धि । अस्मदीयाः स्तुतीर्जानीहि । अपि च त्वं पूर्व्यः प्रत्नोऽसि । शिवः सुखकरश्चासि । विवस्वतो दूतश्चासि । सिद्धमन्यत् ॥

तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभंतामन्यके समे ॥४॥
तत्ऽतत् । अग्निः । वयः । दधे । यथाऽयथा । कृपण्यति ।
ऊर्जाऽआहुतिः । वसूनां । शं । च । योः । च । मयः । दधे । विश्वस्यै । देवऽहूत्यै ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥४॥

यथा यथा यद्यदन्नं कृपण्यति स्तोतृभिर्याच्यते तत्तद्वयोऽग्निर्दधे । स्तोतृभ्यः प्रयच्छति । अपि चोर्जाहुतिरन्नेनाहूयमानोऽग्निर्वसूनां हविषां वासकानां यजमानानां शं शांतिनिमित्तं योर्विषययोगजनितं च मयः सुखं दधे । करोति । विश्वस्यै देवहूत्यै सर्वस्यै देवानां ह्वानाय च भवति । यः कश्चनापि देवो यदि हूयते अग्निरेव सर्वं करोतीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥

स चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीव्यं१ नभंतामन्यके समे ॥५॥
सः । चिकेत । सहीयसा । अग्निः । चित्रेण । कर्मणा ।
सः । होता । शश्वतीनां । दक्षिणाभिः । अभिऽवृतः । इनोति । च । प्रतीव्यं । नभंतां ।
अन्यके । समे ॥५॥

सोऽग्निः सहीयसाभिभावुकेन चित्रेण नानाविधेन कर्मणा व्यापारेण चिकेत । ज्ञायते । सोऽग्निः शश्वतीनां बह्वीनां देवतानां होता ह्वाता दक्षिणाभिः पशुभिश्चाभीवृतः प्रतीव्यं प्रत्येतव्यं शत्रुमिनोति च । गच्छति च । सिद्धमन्यत् ॥ ॥२२॥

अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यं ।
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते स्वाहुतो नवीयसा नभंतामन्यके समे ॥६॥
अग्निः । जाता । देवानां । अग्निः । वेद । मर्तानां । अपीच्यं ।
अग्निः । सः । द्रविणःऽदाः । अग्निः । द्वारा । वि । ऊर्णुते । सुऽआहुतः । नवीयसा ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥६॥

देवानां जाता जातानि जन्मान्यग्निर्वेत्ति । मर्तानां मनुष्याणां चापीच्यं गुह्यमग्निर्वेद । वेत्ति । सोऽग्निर्द्रविणोदा धनस्य दाता । नवीयसा नवतरेण हविषा स्वाहुतः सम्यग्घुतोऽग्निर्द्वारा धनस्य द्वाराणि व्यूर्णुते च । सिद्धमन्यत् ॥

अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति देवो देवेषु यज्ञियो नभंतामन्यके समे ॥७॥
अग्निः । देवेषु । संऽवसुः । सः । विक्षु । यज्ञियासु । आ ।
सः । मुदा । काव्या । पुरु । विश्वं । भूमऽइव । पुष्यति । देवः । देवेषु । यज्ञियः ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥७॥

देवेषु मध्येऽग्निः संवसुः । संवसति । सोऽग्निर्यज्ञियासु यज्ञार्हासु विक्षु प्रजास्वपि संवसुः । किंच सोऽग्निः पुरु बहूनि काव्या कर्माणि भूमेव यथा भूमिर्विश्वं तथा मुदा मोदेन पुष्यति । देवेषु मध्ये देवोऽग्निर्यज्ञियो यज्ञार्हश्च भवति । सिद्धमन्यत् ॥

यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिंधुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मंधातुर्दस्युहंतममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं नभंतामन्यके समे ॥८॥
यः । अग्निः । सप्तऽमानुषः । श्रितः । विश्वेषु । सिंधुषु ।
तं । आ । अगन्म । त्रिऽपस्त्यं । मंधातुः । दस्युहन्ऽतमं । अग्निं । यज्ञेषु । पूर्व्यं ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥८॥

योऽग्निः सप्तमानुषो विश्वेषु सर्वेषु सिंधुषु नदीषु श्रितस्त्रिपस्त्यं त्रिस्थानं मंधातुर्यौवनाश्वस्य मांधातुर्दस्युहंतमं दस्यूनां हंतारं यज्ञेषु पूर्व्यं मुख्यं तमग्निं वयमागन्म । सिद्धमन्यत् ॥

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभंतामन्यके समे ॥९॥
अग्निः । त्रीणि । त्रिऽधातूनि । आ । क्षेति । विदथा । कविः ।
सः । त्रीन् । एकादशान् । इह । यक्षत् । च । पिप्रयत् । च । नः । विप्रः । दूतः ।
परिऽकृतः । नभंतां । अन्यके । समे ॥९॥

कविः क्रांतदर्श्यग्निस्त्रीणि त्रिधातूनि त्रिबंधनादीनि पृथिव्यादीनि विदथा वेदनीयानि स्थानान्या क्षेति ।

आवसति। अपि च सोऽग्निर्दूतो देवानां विप्रः प्राज्ञः परिष्कृतोऽलंकृतश्च सन्निह यज्ञे त्रीनेकादशांस्त्रयस्त्रिंशद्देवान्यक्षत्। यजतु। नोऽस्मान् पिप्रयश्च। कामैः पूरयतु च। सिद्धमन्यत्॥

त्वं नो॑ अग्न आ॒यु॒षु॒ त्वं दे॒वेषु॑ पूर्व्य॒ वस्व॒ एक॑ इरज्यसि।
त्वामाप॑ः परि॒स्रुत॑ः परि॑ यंति॒ स्वसे॑तवो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥१०॥
त्वं। नः॒। अ॒ग्ने॒। आ॒यु॒षु॑। त्वं। दे॒वेषु॑। पूर्व्य॒। वस्वः॑। एकः॑। इ॒र॒ज्य॒सि॒।
त्वां। आपः॑। प॒रि॒ऽस्रुतः॑। परि॑। यं॒ति॒। स्वऽसे॑तवः। नभ॑न्तां। अ॒न्य॒के॒। स॒मे॒॥१०॥

हे पूर्व्याग्ने त्वमेक एवायुषु मनुष्येषु। द्रुह्यव आयव इति मनुष्यनामसु पाठात्। नोऽस्माकं वस्वो धनस्येरज्यसि। ईशिषे। देवेष्वपि त्वमेक एव वस्व इरज्यसि। अपि च त्वां स्वसेतवः स्वभूतसेतवः परिस्रुतः परिस्रवंत्य आपः परि यंति। परिगच्छंति। सिद्धमन्यत्॥ ॥२३॥

इंद्राग्नी युवमिति द्वादशर्चं दशमं सूक्तं नाभाकस्यार्षं। द्वितीया षट्पंचाशदक्षरा शक्वरी द्वादशी त्रिष्टुप् शिष्टा महापंक्तयः। इंद्राग्नी देवता। तथा चानुक्रांतं। इंद्राग्नी द्वादशैंद्राग्नं त्रिष्टुबंतं द्वितीया शक्वरीति॥ महाव्रते निष्केवल्य ऊरुभाग एव सूक्तं। तथा च पंचमारण्यके सूत्रितं। ऊरू इंद्राग्नी युवं सु नः। ऐ० आ० ५. ३. १.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि तृतीयसवने मैत्रावरुणो यदि महावालभिदं शंसेत्तदानीं माध्यंदिनसवने होत्रकाः स्वशस्त्र आरंभणीयाभ्य ऊर्ध्वं नाभाकतृचावावपेरन्। तत्र ता हि मध्यमित्यच्छावाकस्य नाभाकतृचः। सूत्रितं च। ता हि मध्यं भराणामित्यच्छावाकः। आ० ७. २.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिनः पूर्वीष्ट इंद्रेति नाभाकतृचः। सूत्रितं च। पूर्वीष्ट इंद्रोपमातय इति ब्राह्मणाच्छंसी। आ० ७. २.। इति॥

इंद्रा॑ग्नी यु॒वं सु नः॒ सह॑न्ता॒ दास॑थो र॒यिं।
येन॑ दृ॒ळ्हा स॒मत्स्वा वी॒ळु चि॑त्साहिषी॒मह्य॒ग्निर्वने॑व॒ वात॒ इन्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥१॥
इंद्रा॑ग्नी॒ इति॑। यु॒वं। सु। नः॒। सह॑न्ता। दास॑थः। र॒यिं।
येन॑। दृ॒ळ्हा। स॒मत्ऽसु॑। आ। वी॒ळु। चि॒त्। स॒हि॒षी॒महि॑। अ॒ग्निः। वना॑ऽइव।
वाते॑। इत्। नभ॑न्तां। अ॒न्य॒के। स॒मे॒॥१॥

हे इंद्राग्नी सहंता शत्रूनभिभवंतौ युवं युवां नोऽस्मभ्यं रयिं धनं सुष्ठु दासथः। दत्तं। तं रयिं विशिनष्टि। येन रयिणा समत्सु चित् संग्रामे दृढा चिद्दृढानि स्थिराण्यपि वीळु शत्रुबलान्यग्निर्वनेव यथाग्निर्वनानि वात इद्वातेनैवाभिभवति तथा सहीषिमहि अभिभवाम। सिद्धमन्यत्॥

न॒हि वां॑ व॒व्रया॑महेऽथेंद्र॒मिद्य॑जामहे॒ शवि॑ष्ठं नृ॒णां नरं॑।
स नः॑ क॒दा चि॒दर्व॑ता॒ गम॒दा वाज॑सातये॒ गम॒दा मे॒धसा॑तये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥२॥
न॒हि। वां॒। व॒व्रया॑महे। अथ॑। इंद्रं॑। इत्। य॒जा॒म॒हे॒। शवि॑ष्ठं। नृ॒णां। नरं॑।
सः। नः॒। क॒दा। चि॒त्। अर्व॑ता। गम॑त्। आ। वाज॑ऽसातये। गम॑त्। आ।
मे॒धऽसा॑तये। नभ॑न्तां। अ॒न्य॒के। स॒मे॒॥२॥

हे इंद्राग्नी वां युवां न वव्रयामहे। वयं धनं न याचामहे। अथ ह्यपि तर्हि शविष्ठमतिशयेन बलवंतं

नृणां नरं नेतॄणामपि नेतारमिंद्रमिदिंद्रमेव यजामहे । स इंद्रो नोऽस्माननर्वताश्वेन कदा चिद्वाजसातये ऽन्नलाभाया गमत् । आगच्छति । कदाचिन्मेधसातये यज्ञभजनाया गमत् । सिद्धमन्यत् ॥

ता हि मध्यं भराणामिंद्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभंतामन्यके समे ॥३॥
ता । हि । मध्यं । भराणां । इंद्राग्नी इति । अधिऽक्षितः ।
तौ । ऊं इति । कविऽत्वना । कवी इति । पृच्छ्यमाना । सखिऽयते । सं । धीतं ।
अश्नुतं । नरा । नभंतां । अन्यके । समे ॥३॥

ता तौ प्रसिद्धाविंद्राग्नी भराणां संग्रामाणां मध्यमधिक्षितः । अधिनिवसतो हि । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे नरा नेतारौ कवित्वना कवित्वेन कवी क्रांतकर्माणौ पृच्छ्यमाना कविजनैः पृच्छ्यमानौ ता उ तावेव युवां सखीयते सखित्वमिच्छते यजमानाय धीतं तत्कृतं कर्म समश्नुतं । सिद्धमन्यत् ॥

अभ्यर्च नभाकवदिंद्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्यु१पस्थे बिभृतो वसु नभंतामन्यके समे ॥४॥
अभि । अर्च । नभाकऽवत् । इंद्राग्नी इति । यजसा । गिरा ।
ययोः । विश्वं । इदं । जगत् । इयं । द्यौः । पृथिवी । मही । उपऽस्थे । बिभृतः । वसु ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥४॥

हे नाभाक नभाकवदिंद्राग्नी यजसा यागेन गिरा स्तुत्या चाभ्यर्च । अभिपूजय । ययोरिंद्राग्न्योर्विश्वं सर्वमिदं जगत्तिष्ठति । ययोश्चोपस्थ इयं द्यौर्मही महती पृथिवी च द्यावापृथिव्यावुभे वसु धनं बिभृतः धारयतः । सिद्धमन्यत् ॥

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिंद्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इंद्र ईशान ओजसा नभंतामन्यके समे ॥५॥
प्र । ब्रह्माणि । नभाकऽवत् । इंद्राग्निऽभ्यां । इरज्यत ।
या । सप्तऽबुध्नं । अर्णवं । जिह्मऽबारं । अपऽऊर्णुतः । इंद्रः । ईशानः । ओजसा ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥५॥

ब्रह्माणि स्तोत्राणींद्राग्निभ्यां नभाकवत्प्रेरज्यत । नाभाकः प्रेरयति । या याविंद्राग्नी सप्तबुध्नं सप्तमूलं जिह्मबारं पिहितद्वारमर्णवमपोर्णुतः तेजोभिराच्छादयतः तयोर्मध्य ओजसा बलेनेंद्र ईशान ईश्वरो भवति । सिद्धमन्यत् ॥

अपि वृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दंभय ।
वयं तदस्य संभृतं वस्विंद्रेण वि भजेमहि नभंतामन्यके समे ॥६॥
अपि । वृश्च । पुराणऽवत् । व्रततेःऽइव । गुष्पितं । ओजः । दासस्य । दंभय ।
वयं । तत् । अस्य । संऽभृतं । वसु । इंद्रेण । वि । भजेमहि । नभंतां । अन्यके । समे ॥६॥

अपि च हे इंद्र पुराणवत्प्रत्नो यथा व्रततेरिव यथा वक्ष्या गुष्पितं निर्गतां शाखां वृश्चति तथा शत्रूणां वृश्च। छेदय। तदेवाह। दासस्य दासनामकस्य शत्रोरोजो बलं दंभय। नाशय। अथ परोक्षस्तुतिः। वयं नाभाका अस्य दासस्य संभृतं वस्विंद्रेण हेतुना वि भजेमहि। सिद्धमन्यत् ॥ ॥२४॥

यदिंद्राग्नी जना इमे विह्वयंते तना गिरा।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभंतामन्यके समे ॥७॥
यत्। इंद्राग्नी इति। जनाः। इमे। विऽह्वयंते। तना। गिरा।
अस्माकेभिः। नृऽभिः। वयं। ससह्याम। पृतन्यतः। वनुयाम। वनुष्यतः। नभंतां। अन्यके। समे ॥७॥

यद्य इमे जनास्तना धनेन गिरा स्तुत्या चेंद्राग्नी विह्वयंते विशेषेण ह्वयंति तेषु मध्ये वयं नाभाकाः पृतन्यतः पृतनामिच्छंतोऽस्माकेभिरस्माकीनैर्नृभिर्मनुष्यैः ससह्याम। शत्रूनभिभवेम। वनुष्यतः स्तुतिमिच्छंतः शत्रून्वनुयाम च। सिद्धमन्यत् ॥

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः।
इंद्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यंति सिंधवो यान्सीं बंधादमुंचतां नभंतामन्यके समे ॥८॥
या। नु। श्वेतौ। अवः। दिवः। उत्ऽचरातः। उप। द्युऽभिः।
इंद्राग्न्योः। अनु। व्रतं। उहानाः। यंति। सिंधवः। यान्। सीं। बंधात्। अमुंचतां। नभंतां। अन्यके। समे ॥८॥

या नु याविंद्राग्नी श्वेतौ श्वेतवर्णौ। सत्त्वगुणोपेतावित्यर्थः। अवोऽधस्ताद्द्युभिर्दीप्तिभिर्दिव उपोच्चरातः उच्चरतः तयोरिंद्राग्न्योरुहाना हविर्वहंतो यजमाना व्रतं कर्मानु यंति। अपि सीमिमाविंद्राग्नी यान्प्रसिद्धान् सिंधवः सिंधून् बंधाद्बंधनादमुंचतां। सिद्धमन्यत् ॥

पूर्वीष्ट इंद्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधंत नो धियो नभंतामन्यके समे ॥९॥
पूर्वीः। ते। इंद्र। उपऽमातयः। पूर्वीः। उत। प्रऽशस्तयः। सूनो इति। हिन्वस्य। हरिऽवः।
वस्वः। वीरस्य। आऽपृचः। याः। नु। साधंत। नः। धियः। नभंतां। अन्यके। समे ॥९॥

हे हरिवो वज्रिन् सूनो प्रेरयितरिंद्र हिन्वस्य प्रीणयितुर्वस्वो दीपकस्य वीरस्यापृचो धनान्युपयच्छतस्ते तव ता उपमातय उपमानानि पूर्वीर्बहूनि। उतापि च प्रशस्तयः पूर्वीः। या नो धियः प्रज्ञां साधंत असाधयन्। सिद्धमन्यत् ॥

तं शिंशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियं।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्यांडानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभंतामन्यके समे ॥१०॥
तं। शिशीत। सुवृक्तिऽभिः। त्वेषं। सत्वानं। ऋग्मियं।
उतो इति। नु। चित्। यः। ओजसा। शुष्णस्य। आंडानि। भेदति। जेषत्। स्वःऽवतीः। अपः। नभंतां। अन्यके। समे ॥१०॥

हे स्तोतारः त्वेषं दीप्तं सत्वानं संभक्तारं धनानामृग्मियमृगर्हमृग्भिः स्तोतव्यं तमिंद्रं सुवृक्तिभिः स्तुतिभिः शिशीत। संस्कुरुत। उतो नु चिदपि च य इंद्र ओजसा बलेन शुष्णस्य शुष्णनामकस्यासुरस्यांडान्यंडजातान्यपत्यानि भेदति अभिनत् स स्वर्वतीर्दिव्यान्यपः सलिलानि जेषत्। जयतु। सिद्धमन्यत्॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियं।
उतो नु चिद्य ओहत आंडा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभंतामन्यके समे ॥११॥
तं। शिशीत। सुऽअध्वरं। सत्यं। सत्वानं। ऋत्वियं।
उतो इति। नु। चित्। यः। ओहते। आंडा। शुष्णस्य। भेदति। अजैः। स्वःऽवतीः।
अपः। नभंतां। अन्यके। समे ॥११॥

हे स्तोतारः स्वध्वरं सुयज्ञं सत्यमविनाशं सत्वानं संभक्तारमृत्वियमृतौ यष्टव्यं तमिंद्रं शिशीत। स्तुतिभिः संस्कुरुत। अथ प्रत्यक्षस्तुतिः। उतो नु चिदपि च य इंद्र ओहते यज्ञं प्रति गच्छति शुष्णस्यांडांडान्यंडजातानि च भेदति भिनत्ति स त्वं स्वर्वतीर्दिव्यान्यपः सलिलान्यजैः। अजैषीः। सिद्धमन्यत्॥

एवेंद्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मंधातृवदंगिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणां ॥१२॥
एव। इंद्राग्निऽभ्यां। पितृऽवत्। नवीयः। मंधातृऽवत्। अंगिरस्वत्। अवाचि।
त्रिऽधातुना। शर्मणा। पातं। अस्मान्। वयं। स्याम। पतयः। रयीणां ॥१२॥

एवैवं याभ्यामिंद्राग्निभ्यां पितृवन्नाभाकवन्मंधातृवद्यौवनाश्वमांधातृवच्चांगिरस्वदंगिरोवच्च नवीयो नवतरमवाचि नाभाकेन मया पाठिताविंद्राग्नी त्रिधातुना त्रिपर्वणा शर्मणा गृहेण नोऽस्मान्नाभाकान्पातं। रक्षतं। वयं रयीणां धनानां पतयः स्वामिनः स्याम। भवेम॥ ॥२५॥

अस्मा ऊ ष्विति दशर्चमेकादशं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। अस्मा ऊ षु दश वारुणं त्विति। नाभाक ऋषिरनुवृत्तत्वात्। महापांक्तं हीत्युक्तत्वादिदमपि महापांक्तं। इदमादिके द्वे सूक्ते वरुणदेवत्ये॥ विनियोगो लैंगिकः॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने मैत्रावरुणशस्त्र आरंभणीयाया ऊर्ध्वं स क्षप इत्ययं नाभाकतृचः। सूत्रितं च। स क्षपः परि षस्वज इति मैत्रावरुणः। आ॰ ७. २.। इति॥ यः ककुभ इत्येतत्प्रभृतिको वा नाभाकतृचः। सूत्रितं च। यः ककुभो निधारय इति वा। आ॰ ७. २.। इति॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभंतामन्यके समे ॥१॥
अस्मै। ऊं इति। सु। प्रऽभूतये। वरुणाय। मरुत्ऽभ्यः। अर्च। विदुःऽतरेभ्यः।
यः। धीता। मानुषाणां। पश्वः। गाःऽइव। रक्षति। नभंतां। अन्यके। समे ॥१॥

हे स्तोतः सु प्रभूतये प्रकृष्टधनायास्मै वरुणाय विदुष्टरेभ्यो विद्वत्तरेभ्यो मरुद्भ्यश्चार्च। स्तुहि। यो वरुणो धीता कर्मणा मानुषाणां मनुष्याणां पश्वः पशून् गा इव रक्षति। सिद्धमन्यत्॥

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिंधूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभंतामन्यके समे ॥२॥

तं । ऊं इति । सु । सऽमना । गिरा । पितॄणां । च । मन्मऽभिः ।
नाभाकस्य । प्रशंस्तिऽभिः । यः । सिंधूनां । उप । उत्ऽअये । सप्तऽस्वसा । सः ।
मध्यमः । नभंतां । अन्यके । समे ॥२॥

तमु तमेव वरुणं समना समानया गिरा स्तुत्या स्वभिष्टौमि । पितॄणां मन्मभिः स्तोमैश्चाभिष्टौमि । नाभाकस्यर्षेः प्रशस्तिभिः स्तोत्रैश्चाभिष्टौमि । सिंधूनां स्यंदमानानां नदीनामुप समीप य उदये उद्गच्छति यश्च सप्तस्वसा स मध्यम इति वाग्भिर्निरुच्यते । अन्यके दुर्धियः शत्रवः समे सर्वे नभंतां । मा भूवन् ॥ तथा च यास्कः । तं स्वभिष्टौमि समानया गिरा गीत्या स्तुत्या पितॄणां च मननीयैः स्तोमैर्नाभाकस्य प्रशस्तिभिः । ऋषिर्नाभाको बभूव । यः स्यंदमानानामासामपामुपोदये सप्तस्वसारमेनमाह वाग्भिः स मध्यम इति निरुच्यतेऽथैष एव भवति । नभंतामन्यके समे मा भूवन्नन्यके सर्वे ये नो द्विषंति दुर्धियः पापधियः पापसंकल्पाः । नि॰ १०. ५. । इति ॥

स क्षपः परि षस्वजे न्युस्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभंतामन्यके समे ॥३॥
सः । क्षपः । परि । सस्वजे । नि । उस्रः । मायया । दधे । सः । विश्वं । परि । दर्शतः ।
तस्य । वेनीः । अनु । व्रतं । उषः । तिस्रः । अवर्धयन् । नभंतां । अन्यके । समे ॥३॥

स वरुणः क्षपो रात्रीः परि षस्वजे । परिष्वजते । अपि च दर्शतो दर्शनीयः स वरुण उस्र उत्सरणशीलः सन् विश्वं मायया कर्मणा परि परितो नि दधे । निदधाति । किंच तस्य वरुणस्य व्रतं कर्म वेनीः कामयमानाः प्रजास्तिस्र उषस्त्रिषु प्रातर्माध्यंदिनं सायं चान्ववर्धयन् । अनुवर्धयंति । सिद्धमन्यत् ॥

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभंतामन्यके समे ॥४॥
यः । ककुभः । निऽधारयः । पृथिव्यां । अधि । दर्शतः ।
सः । माता । पूर्व्यं । पदं । तत् । वरुणस्य । सप्त्यं । सः । हि । गोपाःऽइव । इर्यः ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥४॥

यो वरुणः पृथिव्यामधि पृथिव्या उपरि दर्शतो दर्शनीयः सन् ककुभो दिशो निधारयः निधारयति स वरुणो माता निर्माता । पूर्व्यं प्रत्नं पदं स्वर्गाख्यं स्थानं सप्त्यमस्माभिश्च सर्पणीयं तद्वरुणस्य स्वकृतं । अपि च स हि स एवेर्य ईश्वरः सन् गोपा इव गोपाल इव पशूनामस्माकं रक्षिता । सिद्धमन्यत् ॥

यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या ।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभंतामन्यके समे ॥५॥
यः । धर्ता । भुवनानां । यः । उस्राणां । अपीच्या । वेद । नामानि । गुह्या ।
सः । कविः । काव्या । पुरु । रूपं । द्यौःऽइव । पुष्यति । नभंतां । अन्यके । समे ॥५॥

यो वरुणो भुवनानां धर्ता धारयिता यश्चोस्राणां देवाधिष्ठानभूतानां रश्मीनामपीच्यापीच्यान्यंत-

हितानि गुह्या गुह्यानि गुहायां निहितानि नामानि वेद जानाति स वरुणः कविः प्राज्ञः सन् काव्या काव्यानि कविकर्माणि पुरु बहूनि रूपं द्यौरिव पुष्यति । सिद्धमन्यत् ॥ ॥२६॥

यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभंतामन्यके समे ॥६॥
यस्मिन् । विश्वानि । काव्या । चक्रे । नाभिःऽइव । श्रिता ।
त्रितं । जूती । सपर्यत । व्रजे । गावः । न । संऽयुजे । युजे । अश्वान् । अयुक्षत । नभंतां ।
अन्यके । समे ॥६॥

यस्मिन्वरुणे विश्वानि सर्वाणि काव्या काव्यानि कविकर्माणि चक्रे नाभिरिव यथा रथस्य चक्रे नाभिस्तथा श्रिता श्रितानि तं त्रितं त्रिस्थानं वरुणं जूती जूत्या क्षिप्रं सपर्यत । हे मदीया जनाः परिचरत । किमर्थमित्यत आह । व्रजे गोष्ठे गावो न यथा गाः संयुजे संयोगार्थं सह स्थापयितुं युजे युंजंति तथास्माकमभियोगायाश्वानयुक्षत । सपत्ना युंजंति । अतस्तदुपद्रवपरिहाराय वरुणं परिचरतेत्यर्थः ॥

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषां ।
परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभंतामन्यके समे ॥७॥
यः । आसु । अत्कः । आऽशये । विश्वा । जातानि । एषां ।
परि । धामानि । मर्मृशत् । वरुणस्य । पुरः । गये । विश्वे । देवाः । अनु । व्रतं । नभंतां ।
अन्यके । समे ॥७॥

---त्परिमृशतो वरुणस्य पुरो गये रथस्य पुरस्ताद्भवति तस्य वरुणस्य पुरस्ताद्विश्वे सर्वे देवा व्रतं कर्मानुगच्छंतीत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभंतामन्यके समे ॥८॥
सः । समुद्रः । अपीच्यः । तुरः । द्यांऽइव । रोहति । नि । यत् । आसु । यजुः । दधे ।
सः । मायाः । अर्चिना । पदा । अस्तृणात् । नाकं । आ । अरुहत् । नभंतां ।
अन्यके । समे ॥८॥

यस्मादापः समुद्रवंति स वरुणः समुद्रोऽपीच्योऽंतर्हितस्तुरः क्षिप्रो द्यामिव यथादित्यो द्यां रोहति तथा नाकं रोहति । अपि च यद्यो वरुण आसु दिक्षु यजुः प्रजाभ्यो दानं नि दधे निदधाति स वरुणो माया असुराणां माया अर्चिनार्चिष्मता पदा स्थानेन । तेजसेत्यर्थः । आस्तृणात् । समंताद्धिनस्ति । नाकं स्वर्गमारुहत् । आरोहति । सिद्धमन्यत् ॥

यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति नभंतामन्यके समे ॥९॥

यस्य । श्वेता । विऽचक्षणा । तिस्रः । भूमीः । अधिऽक्षितः ।
त्रिः । उत्ऽतराणि । पप्रुः । वरुणस्य । ध्रुवं । सदः । सः । सप्तानां । इरज्यति ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥ ९ ॥

यस्य वरुणस्याधिक्षितोऽंतरिक्षेऽधि वसतः श्वेता श्वेतानि विचक्षणा तेजांसि तिस्रो भूमीस्त्रिरुत्तराणि तिसृणामधिस्थितानि भुवनानि पप्रुः प्रथयंति । तथा च मंत्रवर्णः । तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून् । ऋ० २. २७. ८. । इति । तस्य वरुणस्य सदः स्थानं ध्रुवमचलमिति । किंच स वरुणः सप्तानां सिंधूनामिरज्यति । ईश्वरो भवति । सिद्धमन्यत् ॥

यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कंभेन वि रोदसी अजो न द्यामधारयन्नभंतामन्यके समे ॥ १० ॥
यः । श्वेतान् । अधिऽनिर्निजः । चक्रे । कृष्णान् । अनु । व्रता ।
सः । धाम । पूर्व्यं । ममे । यः । स्कंभेन । वि । रोदसी इति । अजः । न । द्यां । अधारयत् ।
नभंतां । अन्यके । समे ॥ १० ॥

यो वरुणो निर्णिज आत्मीयान्रश्मीन्दिवा श्वेतानधि चक्रे अधिकरोति तथा रात्रौ कृष्णांश्चक्रे स वरुणोऽनु व्रता कर्माणि लक्षीकृत्योभयविधकर्मानुगुणं पूर्व्यं धामांतरिक्षं दिवं वा ममे । निर्ममे । अपि च यः स्कंभेनांतरिक्षेणाजो न यथादित्यो द्यां धारयति तथा रोदसी द्यावापृथिव्यावधारयत् विधारयति स वरुण इत्यर्थः । सिद्धमन्यत् ॥ ॥ २७ ॥

अस्तभ्नादिति षड्टचं द्वादशं सूक्तं । अर्चनाना ऋषिः काण्वो नाभाको वा ऋषिः । उत्तरे त्वर्चनानाः । आद्यस्तृचस्त्रैष्टुभो वरुणदेवत्यो द्वितीयस्तृच आनुष्टुभोऽश्विदेवताकः । तथा चानुक्रांतं । अस्तभ्नात् षळर्चनाना वा त्रैष्टुभमंत्यं वा तृचमाश्विनमानुष्टुभमपश्यदिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ वारुणे पशौ हविषो याज्यास्तभ्नादिति । सूत्रितं च । अस्तभ्नाद्द्यामसुरो विश्ववेदा इत्येकादशिनाः । आ० ३. ७. । इति ॥ अग्नीषोमप्रणयनेऽप्येषोत्तरा परिधानीया । तथा सूत्रितं । अस्तभ्नाद्द्यामसुरो विश्ववेदा इति परिदध्यादुत्तरया वा । आ० ४. १०. । इति ॥ एवा वंदस्वेत्येषा वारुणे पशौ हविषोऽनुवाक्या । सूत्रितं च । एवा वंदस्व वरुणं बृहंतं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वंदमान इति द्वे । आ० ३. ७. ॥ सोमप्रवहण इमां धियमित्येषा परिधानीया । सूत्रितं च । इमां धियं शिक्षमाणस्य देवेति निहिते परिदध्यात् । आ० ४. ४. । इति ॥

अस्तभ्नाद्द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ १ ॥
अस्तभ्नात् । द्यां । असुरः । विश्वऽवेदाः । अमिमीत । वरिमाणं । पृथिव्याः ।
आ । असीदत् । विश्वा । भुवनानि । संऽराट् । विश्वा । इत् । तानि । वरुणस्य ।
व्रतानि ॥ १ ॥

विश्ववेदा विश्वधनोऽसुरो बलवान्वरुणो द्यामस्तभ्नात् । तथा पृथिव्याश्च वरिमाणं परिमाणममिमीत । चक्रे । एवं निर्मितानि विश्वा सर्वाणि भुवनानि सम्राड्भूत्वासीदच्च । अध्यतिष्ठच्च । वरुणस्य तान्येतानि व्रतानि कर्माणि विश्वेद्विश्वान्येव । अतो वर्णयितुमशक्यानीत्यर्थः ॥

एवा वंदस्व वरुणं बृहंतं नमस्या धीरममृतस्य गोपां ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥
एव । वंदस्व । वरुणं । बृहंतं । नमस्य । धीरं । अमृतस्य । गोपां ।
सः । नः । शर्म । त्रिऽवरूथं । वि । यंसत् । पातं । नः । द्यावापृथिवी इति । उपऽस्थे ॥२॥

हे स्तोतः बृहंतं महांतं वरुणमेवैवं वंदस्व । स्तुहि । अमृतस्य गोपां गोपयितारं धीरं प्राज्ञं वरुणं नमस्य । नमस्कुरु च । स वरुणो नोऽस्मभ्यं त्रिवरूथं त्रिस्थानं शर्म गृहं वि यंसत् । प्रयच्छतु । उपस्थ उपस्थाने वर्तमानान्नोऽस्मान्द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ पातं । रक्षतं ॥

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥३॥
इमां । धियं । शिक्षमाणस्य । देव । क्रतुं । दक्षं । वरुण । सं । शिशाधि ।
यया । अति । विश्वा । दुःऽइता । तरेम । सुऽतर्माणं । अधि । नावं । रुहेम ॥३॥

हे देव द्योतमान वरुण इमां धियमिदं कर्म शिक्षमाणस्यानुतिष्ठतो मम क्रतुं प्रज्ञानं दक्षं च सं शिशाधि । तीक्ष्णीकुरु । यया नावा यज्ञरूपया विश्वा सर्वाणि दुरिता दुरितान्यति तरेम तां सुतर्माणं सुष्ठु तारयित्रीं यज्ञरूपां नावमधि रुहेम । वयमारुहेम । दुःखसागरतरणे हेतुत्वाद्यज्ञो नौरित्यत्र व्यपदिश्यते ॥

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभंतामन्यके समे ॥४॥
आ । वां । ग्रावाणः । अश्विना । धीभिः । विप्राः । अचुच्यवुः ।
नासत्या । सोमऽपीतये । नभंतां । अन्यके । समे ॥४॥

हे नासत्या सत्यौ सत्यप्रणेतारौ वा । तथा च यास्कः । सत्यावेव नासत्यावित्यौर्णवाभः सत्यस्य प्रणेतारौ । नि° ६. १३. । इति । अश्विनाश्विनौ वां युवां सोमपीतये सोमस्य पानाय विप्राः प्राज्ञा ऋत्विजो ग्रावाणः सोमाभिषवपाषाणाश्च धीभिः कर्मभिः स्वस्वव्यापारैरचुच्यवुः । अभिगच्छंति । सिद्धमन्यत् ॥

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभंतामन्यके समे ॥५॥
यथा । वां । अत्रिः । अश्विना । गीःऽभिः । विप्रः । अजोहवीत् ।
नासत्या । सोमऽपीतये । नभंतां । अन्यके । समे ॥५॥

हे नासत्यावश्विनौ वां युवां विप्रः प्राज्ञोऽत्रिर्यथा गीर्भिः स्तुतिभिः सोमपीतयेऽजोहवीत् तथाहमपि जोहवीमि ॥

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवंत मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभंतामन्यके समे ॥६॥

एव । वां । अह्ने । ऊतये । यथा । अहुवंत । मेधिराः ।
नासत्या । सोमऽपीतये । नभंतां । अन्यके । समे ॥ ६॥

इयं व्याख्यातचरा ॥ ॥२८॥ ॥५॥

षष्ठेऽनुवाके षट् सूक्तानि । तत्रेमे विप्रस्येति त्रयस्त्रिंशदृचं प्रथमं सूक्तमांगिरसस्य विरूपस्यार्षं गायत्रमग्निदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । इमे त्रयस्त्रिंशद्विरूप आंगिरस आग्नेयं त्विति ॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चैतदादिके द्वे सूक्ते । सूचितं च । इमे विप्रस्येति सूक्ते । आ० ४. १३. । इति ॥ कारीर्यवभृथेष्ट्योः प्रथमाज्यभागस्याप्स्वग्न इत्यनुवाक्या । तथा सूचितं । अप्सुमंतावाज्यभागावप्स्वग्ने सधिष्टव । आ० २. १३. । इति ॥ आग्नीध्रस्य प्रातःसवने प्रस्थितयाज्या । श्रूयते च । उक्षान्नाय वशान्नायेत्याग्नीध्रो यजति । ऐ० ब्रा० ६. १०. । इति ॥ अग्निवतीष्टौ त्वं ह्यग्न इत्येषा याज्या । सूचितं च । त्वं ह्यग्ने अग्निनाग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवाः । आ० ३. १३. । इति ॥ अग्निमंथनेऽप्येषा । सूचितं च । त्वं ह्यग्ने अग्निना तं मर्जयंत सुक्रतुं । आ० २. १६. । इति ॥ अग्नये कामायाष्टाकपालेष्टौ तुभ्यं ता अंगिरस्तमेत्येषानुवाक्या । सूचितं च । तुभ्यं ता अंगिरस्तमाश्याम तं काममग्ने तवोतीति कामाय । आ० २. १०. । इति ॥ अन्वाहिताग्नेः प्रयाणे समारोपणपक्षेऽनयैकाहुतिः कर्तव्या । तथा सूचितं । तुभ्यं ता अंगिरस्तमेति याज्याहुतिं हुत्वा समारोपयेत् । आ० ३. १०. । इति ॥ वैद्युताग्निनाग्नीनां संसर्गेऽग्नयेऽप्सुमतीष्टिः । तत्र यदग्ने दिविजा इति याज्या । यदग्ने दिविजा अस्यग्निर्होता न्यसीदद्यजीयान् । आ० ३. १३. । इति ॥

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते ॥ १॥
इमे । विप्रस्य । वेधसः । अग्नेः । अस्तृतऽयज्वनः । गिरः । स्तोमासः । ईरते ॥ १॥

इमेऽस्मदीयाः स्तोमासः स्तोतारो विप्रस्य मेधाविनो वेधसो विधातुरस्तृतयज्वनोऽहिंसितयजमानस्याग्नेर्गिरः स्तुतीरीरते । प्रेरयंति ॥

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिं ॥ २॥
अस्मै । ते । प्रतिऽहर्यते । जातऽवेदः । विऽचर्षणे । अग्ने । जनामि । सुऽस्तुतिं ॥ २॥

हे जातवेदो जातधन विचर्षणे विद्रष्टरग्ने अस्मै प्रतिहर्यते प्रयच्छते ते तुभ्यं सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं जनामि । आंगिरसोऽहं जनयामि ॥

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः । दद्भिर्वनानि बप्सति ॥ ३॥
आरोकाःऽइव । घ । इत् । अह । तिग्माः । अग्ने । तव । त्विषः । दत्ऽभिः । वनानि ।
बप्सति ॥ ३॥

हे अग्ने तव तिग्मास्तीक्ष्णास्त्विषो दीप्तय आरोका इवारोचमानाः पशव इव दद्भिर्दंतैर्वनान्यरण्यानि बप्सति । भक्षयंति । घेदहेति त्रयं पूरकं ॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतंते वृथगग्नयः ॥ ४॥
हरयः । धूमऽकेतवः । वातऽजूताः । उप । द्यवि । यतंते । वृथक् । अग्नयः ॥ ४॥

हरयो हरणशीला वातजूता वातप्रेरिता धूमकेतवो धूमध्वजा अग्नय उप द्यव्यंतरिक्षे वृथक् पृथग्यतंते । गच्छंति । पृथगित्यनेन सममव्ययं वृथगिति । पृथगित्येव वाजसनेयिनः पठंति । वा० सं० ३३. २. ॥

एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः ॥५॥

एते । त्ये । वृथक् । अग्नयः । इद्धासः । सं । अदृक्षत । उषसांऽइव । केतवः ॥५॥

एते त्य एतेऽग्नयो वृथक् पृथगिद्धासोऽग्निहोतृभिः समिद्धाः संत उषसामिव केतव उषसां प्रज्ञापका इव समदृक्षत । सम्यग्दृश्यंते ॥ ॥२९॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥६॥

कृष्णा । रजांसि । पत्सुतः । प्रऽयाने । जातऽवेदसः । अग्निः । यत् । रोधति । क्षमि ॥६॥

जातवेदसोऽग्नेः प्रयाणे पत्सुतः पत्तो रजांसि पांसवः कृष्णानि भवंति । कदेत्यत आह । क्षमि क्षमायां यद्यदाग्नी रोधति शुष्कान्वनस्पतीन्निरुणद्धि ॥

धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति । पुनर्यन्तरुणीरपि ॥७॥

धासिं । कृण्वानः । ओषधीः । बप्सत् । अग्निः । न । वायति । पुनः । यन् । तरुणीः । अपि ॥७॥

अग्निरोषधीर्धासिमन्नं । धुद्धासीत्यन्ननामसु पाठात् । कृण्वानः कुर्वन् बप्सन्नक्षयन्न वायति । न श्राम्यति । पुनश्च तरुणीरोषधीरपि यन् गच्छन् भवति । भक्षयितुमिति शेषः ॥

जिह्वाभिरह नंनमदर्चिषा जंजणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥८॥

जिह्वाभिः । अह । नंनमत् । अर्चिषा । जंजणाऽभवन् । अग्निः । वनेषु । रोचते ॥८॥

अग्निर्जिह्वाभिरह ज्वालाभिरेव नंनमद्वनस्पतीनत्यंतं नमयन्नर्चिषा तेजसा जंजणाभवञ्ज्वलन् । जंजणाभवन् मल्मलाभवन्निति ज्वलतिकर्मसु पाठात् । वनेष्वरण्येषु रोचते । प्रकाशते ॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥९॥

अप्ऽसु । अग्ने । सधिः । तव । सः । ओषधीः । अनु । रुध्यसे । गर्भे । सन् । जायसे ।
पुनरिति ॥९॥

हे अग्ने यस्य तवाप्सु सधिः प्रवेशस्थानं स त्वमोषधीरनु रुध्यसे । अनुरुणत्सि । पुनश्च तासां भूमिष्ठानां गर्भे सन् भवञ्जायसे । प्रादुर्भवसि ॥

उदग्ने तव तद्घृतादर्ची रोचत आहुतं । निंसानं जुह्वो३ मुखे ॥१०॥

उत् । अग्ने । तव । तत् । घृतात् । अर्चिः । रोचते । आऽहुतं । निंसानं । जुह्वः । मुखे ॥१०॥

हे अग्ने तव घृतादाहुतं जुह्वो होमसाधनभूतायाः स्रुचो मुखे निंसानं लिहानं तदर्चिरुद्रोचते । प्रकाशते ॥ ॥३०॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥११॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे । स्तोमैः । विधेम । अग्नये ॥११॥

उक्षान्नाय । उक्षान्नमदनीयं हविर्यस्यासावुक्षान्नः । तस्मै वशान्नाय । वशान्नं यस्यासौ वशान्नः । तस्मै सोमपृष्ठाय सोमघृतपृष्ठाय वेधसे विधात्रे कामानामग्नये स्तोमैर्विधेम । परिचरेम ॥

उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे ॥ १२ ॥

उत । त्वा । नमसा । वयं । होतः । वरेण्यक्रतो इति वरेण्यऽक्रतो । अग्ने । समित्ऽभिः । ईमहे ॥ १२ ॥

उतापि च हे होतर्देवानां ह्वातर्वरेण्यक्रतो वरणीयप्रज्ञाग्ने त्वा त्वां वयमांगिरसा नमसान्नेन हविषा समिद्भिश्चेमहे । याचामहे ॥

उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अंगिरस्वद्धवामहे ॥ १३ ॥

उत । त्वा । भृगुऽवत् । शुचे । मनुष्वत् । अग्ने । आऽहुत । अंगिरस्वत् । हवामहे ॥ १३ ॥

हे शुचे स्वभावतः शुद्धाहुताग्ने त्वा त्वां भृगुवद्यथा भृगुस्तथा मनुष्वद्यथा च मनुस्तथांगिरोवच्च हवामहे ॥

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥ १४ ॥

त्वं । हि । अग्ने । अग्निना । विप्रः । विप्रेण । सन् । सता । सखा । सख्या । संऽइध्यसे ॥ १४ ॥

हे अग्ने विप्रो मेधावी सन् विद्यमानः सखा च त्वं विप्रेण सता सख्याग्निना समिध्यसे । तथा च ब्राह्मणं । त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सतेति विप्र इतरो विप्र इतरः सन्नितरः सन्नितरः सखा सख्या समिध्यस इत्येष ह वा अस्य स्वः सखा । ऐ॰ ब्रा॰ १. १६. । इति ॥

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणं । अग्ने वीरवतीमिषं ॥ १५ ॥

सः । त्वं । विप्राय । दाशुषे । रयिं । देहि । सहस्रिणं । अग्ने । वीरऽवतीं । इषं ॥ १५ ॥

हे अग्ने स प्रसिद्धस्त्वं विप्राय मेधाविने दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय सहस्रिणं सहस्रसंख्याकमपरिमितं रयिं धनं वीरवतीं पुत्रपौत्रादिसहितमिषमन्नं च देहि ॥ ॥ ३१ ॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

अग्ने । भ्रातरिति । सहःऽकृत । रोहित्ऽअश्व । शुचिऽव्रत । इमं । स्तोमं । जुषस्व । मे ॥ १६ ॥

हे अग्ने भ्रातर्भ्रातृवद्यजमानानां मित्रभूत सहस्कृत सहसा बलेन कृत रोहिदश्व लोहितवर्णाश्व शुचिव्रत शुद्धकर्मन्नग्ने मे आंगिरसस्य ममेमं स्तोमं जुषस्व । सेवस्व ॥

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

उत । त्वा । अग्ने । मम । स्तुतः । वाश्राय । प्रतिऽहर्यते । गोऽस्थं । गावःऽइव । आशत ॥ १७ ॥

उतापि च हे अग्ने त्वा त्वां ममांगिरसस्य स्तुतः स्तुतयो वाश्राय वाशनशीलाय वत्साय प्रतिहर्यते पयः कामयमानाय दोग्धुं गोष्ठं गाव इव यथा गावः प्रविशंति तथाशत । प्राप्नुवंति ॥

तुभ्यं ता अंगिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

तुभ्यं । ताः । अंगिरःऽतम । विश्वाः । सुऽक्षितयः । पृथक् । अग्ने । कामाय । येमिरे ॥ १८ ॥

हे अंगिरस्तमांगिरसां श्रेष्ठाग्ने तुभ्यं विश्वाः सर्वास्ताः प्रसिद्धाः सुक्षितयः प्रजाः कामायात्मनः कामसिद्ध्यर्थं पृथग्येमिरे। नियच्छंति॥

अ॒ग्निं धी॒भिर्म॑नी॒षिणो॒ मेधि॑रासो विप॒श्चितः॑। अ॒द्म॒सद्या॑य हिन्विरे॥१९॥

अ॒ग्निं। धी॒भिः। म॒नी॒षिणः॑। मेधि॑रासः। विपः॑ऽचितः॑। अ॒द्म॒ऽसद्या॑य। हि॒न्वि॒रे॒॥१९॥

मनीषिणो मनस ईश्वरा मेधिरासो मेधाविनो विपश्चितः प्राज्ञा यजमाना धीभिः कर्मभिरद्मसद्यायान्नस्य भजनायाग्निं हिन्विरे। प्रीणयंति॥

तं त्वामज्मे॑षु वा॒जिनं॑ तन्वा॒ना अ॑ग्ने अध्व॒रं। वह्निं॒ होता॑रमीळते॥२०॥

तं। त्वां। अज्मे॑षु। वा॒जिनं॑। त॒न्वा॒नाः। अ॒ग्ने॒। अ॒ध्व॒रं। वह्निं॑। होता॑रं। ई॒ळ॒ते॒॥२०॥

हे अग्ने वाजिनं बलिनं वह्निं हविषां वोढारं होतारं देवानामाह्वातारं तं प्रसिद्धं त्वामज्मेषु गृहेष्वध्वरं यज्ञं तन्वाना विस्तारयंतो यजमाना ईळते। स्तुवंति॥ ॥३२॥

पु॒रु॒त्रा हि स॒दृङ्ङसि॒ विशो॒ विश्वा॒ अनु॑ प्र॒भुः। स॒मत्सु॑ त्वा हवामहे॥२१॥

पु॒रु॒ऽत्रा। हि। स॒ऽदृङ्। असि॑। विशः॑। विश्वाः॑। अनु॑। प्र॒ऽभुः। स॒मत्ऽसु॑। त्वा॒। ह॒वा॒म॒हे॒॥२१॥

हे अग्ने त्वं हि यतः प्रभु प्रभुः॥ सुलोपश्छांदसः॥ पुरुत्रा बहुषु प्रदेशेषु विश्वाः सर्वा विशः प्रजा अनु सदृङ् समानदर्शसि अतस्त्वा त्वां समत्सु संग्रामेषु हवामहे। ह्वयामः॥

तमी॑ळिष्व॒ य आहु॑तो॒ऽग्निर्वि॒भ्राज॑ते घृ॒तैः। इ॒मं नः॑ शृणव॒द्धवं॑॥२२॥

तं। ई॒ळि॒ष्व॒। यः। आऽहु॑तः। अ॒ग्निः। वि॒ऽभ्राज॑ते। घृ॒तैः। इ॒मं। नः॒। शृ॒ण॒व॒त्। हवं॑॥२२॥

योऽग्निर्घृतैः सहाहुतो विभ्राजते यश्च नोऽस्माकमिमं हवमाह्वानं शृणवत् शृणोति तमग्निमीळिष्व। स्तुहि॥

तं त्वा॑ व॒यं ह॑वामहे शृ॒ण्वंतं॑ जा॒तवे॑दसं। अग्ने॒ घ्नंत॒मप॒ द्विषः॑॥२३॥

तं। त्वा॒। व॒यं। ह॒वा॒म॒हे॒। शृ॒ण्वंतं॑। जा॒तऽवे॑दसं। अग्ने॑। घ्नंतं॑। अप॑। द्विषः॑॥२३॥

हे अग्ने जातवेदसं जातधनं जातप्रज्ञं वा द्विषः शत्रूनप घ्नंतं हिंसंतं शृण्वंतमस्मदीयमाह्वानं शृण्वंतं च त्वां वयमांगिरसा हवामहे॥

वि॒शां राजा॑नम॒द्भुत॒मध्य॑क्षं॒ धर्म॑णामि॒मं। अ॒ग्निमी॑ळे॒ स उ॑ श्रवत्॥२४॥

वि॒शां। राजा॑नं। अ॒द्भुतं॑। अधि॑ऽअक्षं। धर्म॑णां। इ॒मं। अ॒ग्निं। ई॒ळे॒। सः। ऊं॒ इति॑।
श्र॒व॒त्॥२४॥

विशां प्रजानां राजानमीश्वरमद्भुतं महांतं धर्मणां कर्मणामध्यक्षमनुसंधातारमिममग्निमीळे। स्तौमि। स उ स एवाग्निः श्रवत्। अस्मदीयां स्तुतिं शृणोतु॥

अ॒ग्निं वि॒श्वायु॑वेपसं॒ मर्यं॒ न वा॒जिनं॑ हि॒तं। सप्तिं॒ न वा॑जयामसि॥२५॥

अ॒ग्निं। वि॒श्वायु॑ऽवेपसं। मर्यं॑। न। वा॒जिनं॑। हि॒तं। सप्तिं॑। न। वा॒ज॒या॒म॒सि॒॥२५॥

विश्वायुवेपसं सर्वगतबलमग्निं वाजिनं बलिनं मर्यं न मनुष्यमिव हितं सप्तिं नाश्वमिव वाजयामसि। स्तुतिभिर्हविर्भिश्च बलिनं कुर्मः ॥ ॥३३॥

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा। अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥२६॥

घ्नन्। मृध्राणि। अप। द्विषः। दहन्। रक्षांसि। विश्वहा। अग्ने। तिग्मेन। दीदिहि ॥२६॥

हे अग्ने त्वं मृध्राणि हिंसकान् द्विषो द्वेष्टॄनप घ्नन् हिंसन् विश्वहा सर्वदा रक्षांसि च दहंस्तिग्मेन तीक्ष्णेन तेजसा दीदिहि। दीप्यस्व ॥

यं त्वा जनास इंधते मनुष्वदंगिरस्तम। अग्ने स बोधि मे वचः ॥२७॥

यं। त्वा। जनासः। इंधते। मनुष्वत्। अंगिरःऽतम। अग्ने। सः। बोधि। मे। वचः ॥२७॥

हे अंगिरस्तमाग्ने यं त्वा त्वां जनासो जना मनुष्वद्यथा मनुस्तथेंधते दीपयंति स त्वं मे मदीयं वचः स्तुतिं बोधि। बुध्यस्व ॥

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत। तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥२८॥

यत्। अग्ने। दिविऽजाः। असि। अप्सुऽजाः। वा। सहःऽकृत। तं। त्वा। गीःऽभिः। हवामहे ॥२८॥

हे अग्ने यद्यस्त्वं दिविजा दिविभवोऽसि भवसि अप्सुजा वांतरिक्षजातश्च भवसि सहस्कृतः सहसा बलेन कृतश्चासि तं त्वा त्वामग्निं गीर्भिः स्तुतिभिर्हवामहे। ह्वयामः ॥

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। धासिं हिन्वंत्यत्तवे ॥२९॥

तुभ्यं। घ। इत्। ते। जनाः। इमे। विश्वाः। सुऽक्षितयः। पृथक्। धासिं। हिन्वंति। अत्तवे ॥२९॥

हे अग्ने तुभ्यं घ त्वदर्थमेव त इमे मया दृश्यमाना जना विश्वाः सर्वाः सुक्षितयः प्रजाश्च धासिमन्नं हविरत्तवेऽदनाय पृथग्घिन्वंति। प्रेरयंति ॥

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः। तरंतः स्याम दुर्गहा ॥३०॥

ते। घ। इत्। अग्ने। सुऽआध्यः। अहा। विश्वा। नृऽचक्षसः। तरंतः। स्याम। दुःऽगहा ॥३०॥

हे अग्ने ते घेत्त्वदर्थमेव खलु वयं स्वाध्यः सुकर्माणः संतो विश्वा विश्वान्यहाहानि नृचक्षसो द्रष्टारश्च दुर्गहा दुःखेन गाहयितव्यानि तरंतः स्याम। भवेम ॥ ॥३४॥

अग्निं मंद्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषं। हृद्भिर्मंद्रेभिरीमहे ॥३१॥

अग्निं। मंद्रं। पुरुऽप्रियं। शीरं। पावकऽशोचिषं। हृत्ऽभिः। मंद्रेभिः। ईमहे ॥३१॥

मंद्रं मादनं पुरुप्रियं बहुप्रियं शीरं यज्ञेषु शयनशीलं पावकशोचिषं पावकदीप्तिमग्निं हृद्भिर्मनोहरैर्मंद्रैर्मादनैः स्तोत्रैरीमहे। याचामहे ॥

स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ॥३२॥
सः । त्वं । अग्ने । विभाऽवसुः । सृजन् । सूर्यः । न । रश्मिऽभिः । शर्धन् । तमांसि ।
जिघ्नसे ॥३२॥

हे अग्ने विभावसुर्दीप्तिरोचनः स प्रसिद्धस्त्वं सृजन्नुद्यन् सूर्यो न यथा सूर्यस्तथा रश्मिभिः शर्धन् बलं कुर्वंस्तमांसि जिघ्नसे । नाशयसि ॥

तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु ॥३३॥
तत् । ते । सहस्वः । ईमहे । दात्रं । यत् । न । उपऽदस्यति । त्वत् । अग्ने । वार्यं । वसु ॥३३॥

हे सहस्वो बलवन्नग्ने ते तव यद्वसु नोपदस्यति नोपक्षीयते तद्दात्रं दातव्यं वार्यं वरणीयं च वसु धनं त्वत्त्वत्त ईमहे । याचामहे ॥ ॥३५॥

समिधाग्निमिति त्रिंशदृचं द्वितीयं सूक्तमांगिरसस्य विरूपस्यार्षं प्राग्वत्सप्रपरिभाषया गायत्रमाग्नेयं । तथा चानुक्रम्यते । समिधाग्निं त्रिंशदिति ॥ प्रातरनुवाके गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं विनियुक्तं ॥ महाव्रते समिधाग्निमित्याद्यास्तस्रः सामिधेन्यः । तथा च पंचमारण्यके सूत्रितं । समिधाग्निमिति चतस्रो वैश्वकर्मण ऋषभः । ऐ॰ आ॰ ५. १. १. । इति ॥ आतिथ्यायां समिधाग्निमित्येषा प्रथमाज्यभागस्यानुवाक्या । सूत्रितं च । समिधाग्निं दुवस्यता प्यायस्व समेतु ते । आ॰ ४. ५. । इति ॥ अमावास्यायां प्रथमाज्यभागस्यानुवाक्या । सूत्रितं च । वृधन्वंतावमावास्यायामग्निः प्रत्नेन मन्मना । आ॰ १. ५. । इति ॥ दर्शपूर्णमासयोराग्नेयस्यानुवाक्याग्निर्मूर्धेत्येषा । सूत्रितं च । अग्निर्मूर्धा भुवो यज्ञस्य । आ॰ १. ६. । इति ॥ मूर्धन्वद्गुणस्याग्नेरप्येषैवानुवाक्या । सूत्रितं च । नित्ये मूर्धन्व इति ॥ पवमानेष्टिषु द्वितीयस्यामिष्टावग्नेः शुचेरनुवाक्याग्निः शुचिव्रततम इत्येषा । सूत्रितं च । अग्निः शुचिव्रततम उदग्ने शुचयस्तव । आ॰ २. १. । इति ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिं । आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥१॥
सम्ऽइधा । अग्निं । दुवस्यत । घृतैः । बोधयत । अतिथिं । आ । अस्मिन् । हव्या ।
जुहोतन ॥१॥

हे ऋत्विजः अतिथिमतिथिवत्प्रियमग्निं समिधा दुवस्यत । परिचरत । घृतैर्दीप्तिसाधनैराज्यैर्बोधयत च । अस्मिन्त्समिद्धेऽग्नौ हव्या हवींष्या जुहोतन । आजुहुत च ॥

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना । प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥२॥
अग्ने । स्तोमं । जुषस्व । मे । वर्धस्व । अनेन । मन्मना । प्रति । सुऽउक्तानि । हर्य । नः ॥२॥

हे अग्ने मे आंगिरसस्य मम स्तोमं स्तोत्रं जुषस्व । सेवस्व । अनेन मन्मना मननीयेन स्तोत्रेण वर्धस्व च । नोऽस्माकं सूक्तानि प्रति हर्य । कामय च ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ॥३॥
अग्निं । दूतं । पुरः । दधे । हव्यऽवाहं । उप । ब्रुवे । देवान् । आ । सादयात् । इह ॥३॥

दूतं देवानां हव्यवाहं हविषां वोढारं चाग्निं पुरो दधे । पुरस्करोमि । उप ब्रुवे । उपस्तौमि च । सोऽग्निरिह यज्ञे देवाना सादयत् । आसादयतु ॥

उत्ते बृहंतो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥४॥
उत् । ते । बृहंतः । अर्चयः । सम्ऽइधानस्य । दीदिऽवः । अग्ने । शुक्रासः । ईरते ॥४॥

हे दीदिवो दीप्ताग्ने समिधानस्य समिध्यमानस्य ते तव बृहंतो महांतः शुक्रासो ज्वलंतोऽर्चयो दीप्तय उदीरते ॥

उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यंतु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥५॥
उप । त्वा । जुह्वः । मम । घृताचीः । यंतु । हर्यत । अग्ने । हव्या । जुषस्व । नः ॥५॥

हे हर्यत कामयमानाग्ने मम मदीया घृताचीर्घृतमंचंत्यो जुह्वः स्रुचस्त्वा त्वामुप यंतु । नोऽस्माकं हव्या हव्यानि जुषस्व । सेवस्व च ॥ ॥३६॥

मंद्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुं । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥६॥
मंद्रं । होतारं । ऋत्विजं । चित्रऽभानुं । विभाऽवसुं । अग्निं । ईळे । सः । ऊं इति । श्रवत् ॥६॥

मंद्रं मादनं होतारं देवानामाह्वातारमृत्विजमृतौ यष्टव्यं चित्रभानुं चित्रदीप्तिं विभावसुं दीप्तिधनमग्निमीळे । स्तौमि । सोऽग्निः श्रवत् । अस्मदीयां स्तुतिं शृणोत्वेव ॥

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुं । अध्वराणामभिश्रियं ॥७॥
प्रत्नं । होतारं । ईड्यं । जुष्टं । अग्निं । कविऽक्रतुं । अध्वराणां । अभिऽश्रियं ॥७॥

प्रत्नं पुराणं होतारं देवानामाह्वातारमीड्यं स्तुत्यं जुष्टं प्रीतं सेवितं वा कविक्रतुं क्रांतकर्माणमध्वराणां यज्ञानामभिश्रियमभिश्रयितारमीड्यमग्निमीळे । स्तौमि ॥

जुषाणो अंगिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् । अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥८॥
जुषाणः । अंगिरःऽतम । इमा । हव्यानि । आनुषक् । अग्ने । यज्ञं । नय । ऋतुऽथा ॥८॥

हे अंगिरस्तमांगिरसां श्रेष्ठाग्ने इमान्यस्मदीयानि हव्यानि हवींष्यानुषगनुषक्तं यथा भवति तथा जुषाणः सेवमानो भव । ऋतुथा काले काले यज्ञं च नय ॥

समिधान उ संत्य शुक्रशोच इहा वह । चिकित्वान्दैव्यं जनं ॥९॥
सम्ऽइधानः । ऊं इति । संत्य । शुक्रऽशोचे । इह । आ । वह । चिकित्वान् । दैव्यं । जनं ॥९॥

हे संत्य भजनशील शुक्रशोचे ज्वलदीप्ते त्वं समिधान उ समिध्यमान एव दैव्यं देवसंबंधिनं जनं चिकित्वाञ्जानन्निह यज्ञ आ वह ॥

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुं । यज्ञानां केतुमीमहे ॥१०॥
विप्रं । होतारं । अद्रुहं । धूमऽकेतुं । विभाऽवसुं । यज्ञानां । केतुं । ईमहे ॥१०॥

विप्रं मेधाविनं होतारं देवानामाह्वातारमद्रुहमद्रोग्धारं धूमकेतुं धूमध्वजं विभावसुं दीप्तिधनं यज्ञानां केतुं पताकस्थानीयमग्निमीमहे । अभीष्टं याचामहे ॥ ॥३७॥

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः । भिंधि द्वेषः सहस्कृत ॥११॥

अग्ने । नि । पाहि । नः । त्वं । प्रति । स्म । देव । रिषतः । भिंधि । द्वेषः । सहःऽकृत ॥११॥

हे सहस्कृत बलेन कृत देव दीप्ताग्ने रिषतो हिंसकान्नोऽस्मान् प्रति नि पाहि । प्रतिरक्ष । स्मेति पूरणः । द्वेषो द्विषः शत्रूंश्च भिंधि । विदारय ॥

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुंभानस्तन्वं१ स्वां । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१२॥

अग्निः । प्रत्नेन । मन्मना । शुंभानः । तन्वं । स्वां । कविः । विप्रेण । ववृधे ॥१२॥

कविः क्रांतकर्माग्निः प्रत्नेन पुराणेन मन्मना मननीयेन स्तोत्रेण स्वां स्वकीयां तन्वं तनुमंगं शुंभानः शोभयन् विप्रेण मेधाविना स्तोत्रा वावृधे । प्रवृद्धो भवति ॥

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषं । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥१३॥

ऊर्जः । नपातं । आ । हुवे । अग्निं । पावकऽशोचिषं । अस्मिन् । यज्ञे । सुऽअध्वरे ॥१३॥

ऊर्जोऽन्नस्य नपातं पुत्रं पावकशोचिषं शोधकदीप्तिमग्निं स्वध्वरेऽसुरैरत्यंतमहिंस्येऽस्मिन्यज्ञ आ हुवे । आह्वयामि ॥

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥१४॥

सः । नः । मित्रऽमहः । त्वं । अग्ने । शुक्रेण । शोचिषा । देवैः । आ । सत्सि । बर्हिषि ॥१४॥

हे मित्रमहो मित्राणां पूजनीयाग्ने स त्वं शुक्रेण ज्वलता शोचिषा तेजसा देवैः सह बर्हिषि यज्ञ आ सत्सि । आसीद ॥

यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति । तस्मा इद्दीदयद्वसु ॥१५॥

यः । अग्निं । तन्वः । दमे । देवं । मर्तः । सपर्यति । तस्मै । इत् । दीदयत् । वसु ॥१५॥

यो मर्तो मनुष्यो दमे गृहेऽग्निं देवं तन्वो धनस्य प्राप्त्यर्थमिति शेषः । भोजनं तनेति धननामसु पाठात् । सपर्यति परिचरति तस्मा इत्तस्मा एव वसु धनं दीदयत् । सोऽग्निः प्रयच्छति ॥ ॥३८॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयं । अपां रेतांसि जिन्वति ॥१६॥

अग्निः । मूर्धा । दिवः । ककुत् । पतिः । पृथिव्याः । अयं । अपां । रेतांसि । जिन्वति ॥१६॥

मूर्धा देवानां श्रेष्ठो दिवो द्युलोकस्य ककुदुच्छ्रितः पृथिव्याश्च पतिरयमग्निरपां रेतांसि स्थावरजंगमात्मकानि भूतानि जिन्वति । प्रीणयति ॥

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजंत ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ॥१७॥

उत् । अग्ने । शुचयः । तव । शुक्राः । भ्राजंतः । ईरते । तव । ज्योतींषि । अर्चयः ॥१७॥

हे अग्ने ते तव शुचयो निर्मलाः शुक्राः शुक्लवर्णा भ्राजंतो दीप्यमाना अर्चयः प्रभास्तव ज्योतींषि तेजांस्युदीरते । प्रेरयंति ॥

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥१८॥

ईशिषे । वार्यस्य । हि । दात्रस्य । अग्ने । स्वःऽपतिः । स्तोता । स्यां । तव । शर्मणि ॥१८॥

हे अग्ने स्वर्पतिः स्वर्गस्य स्वामी त्वं वार्यस्य वरणीयस्य दाव्नस्य दातव्यस्य धनस्येशिषे । ईश्वरोऽसि । शर्मणि सुखे निमित्ते तव स्तोता स्यां । भवेयं ॥

त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वंति चित्तिभिः । त्वां वर्धंतु नो गिरः ॥१९॥

त्वां । अग्ने । मनीषिणः । त्वां । हिन्वंति । चित्तिऽभिः । त्वां । वर्धंतु । नः । गिरः ॥१९॥

हे अग्ने त्वां मनीषिणो मनस ईश्वराः स्तोतारः स्तुतिभिः स्तुवंतीति शेषः । किंच त्वामेव चित्तिभिः कर्मभिर्हिन्वंति । प्रीणयंति । नोऽस्माकं गिरः स्तुतयस्त्वामेव वर्धंतु । वर्धयंतु ॥

अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥२०॥

अदब्धस्य । स्वधाऽवतः । दूतस्य । रेभतः । सदा । अग्नेः । सख्यं । वृणीमहे ॥२०॥

हे अग्ने अदब्धस्य केनाप्यहिंसितस्य स्वधावतो बलवतो दूतस्य देवानां रेभतो देवान् स्तुवतस्तव सख्यं सदा वयं वृणीमहे ॥ ॥३९॥

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥२१॥

अग्निः । शुचिव्रतऽतमः । शुचिः । विप्रः । शुचिः । कविः । शुचिः । रोचते । आऽहुतः ॥२१॥

शुचिव्रततमोऽतिशयेन शुद्धकर्मा शुचिः शुद्ध एव विप्रो मेधावी शुचिः शुद्धः सन्नेव कविः क्रांतकर्मा शुचिरेवाहुतोऽग्नी रोचते । प्रकाशते ॥

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धंतु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥२२॥

उत । त्वा । धीतयः । मम । गिरः । वर्धंतु । विश्वहा । अग्ने । सख्यस्य । बोधि । नः ॥२२॥

उतापि च हे अग्ने त्वा त्वां मम धीतयः कर्माणि गिरः स्तुतयश्च विश्वहा सर्वदा वर्धंतु । वर्धयंतु । नोऽस्माकं सख्यस्य सख्यं सखिकर्म स्तुत्यादिकं बोधि । बुध्यस्व ॥

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहं । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥२३॥

यत् । अग्ने । स्यां । अहं । त्वं । त्वं । वा । घ । स्याः । अहं । स्युः । ते । सत्याः । इह । आऽशिषः ॥२३॥

हे अग्ने यद्यद्यहं त्वं बहुधनः स्यां भवेयं त्वं वा घ त्वं वा खल्वहं दरिद्रः स्तोता स्याः भवेः ततस्तवाशिष आशासनानीहास्मद्विषये सत्याः सत्यानि स्युः । भवेयुः ॥

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥२४॥

वसुः । वसुऽपतिः । हि । कं । असि । अग्ने । विभाऽवसुः । स्याम । ते । सुऽमतौ । अपि ॥२४॥

हे अग्ने त्वं विभावसुर्दीप्तिधनो वसुपतिर्धनपतिर्वसुर्वासयिता चासि भवसि हि यस्मात् अतो वयमपि ते तव सुमतावनुग्रहबुद्धौ स्याम । भवेम ॥

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिंधवः । गिरो वाश्रास ईरते ॥२५॥

अग्ने । धृतऽव्रताय । ते । समुद्रायऽइव । सिंधवः । गिरः । वाश्रासः । ईरते ॥२५॥

हे अग्ने धृतव्रताय धृतकर्मणे ते तुभ्यं वाश्रासो वाशनशीला गिरो मम स्तुतयः सिंधवो नद्यः समुद्रायेव यथा समुद्राय तथेरते । प्रवर्तंते ॥ ॥४०॥

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसं। अग्निं शुंभामि मन्मभिः ॥२६॥
युवानं। विश्पतिं। कविं। विश्वऽअदं। पुरुऽवेपसं। अग्निं। शुंभामि। मन्मऽभिः॥२६॥

युवानं नित्यतरुणं विश्पतिं विशां पतिं कविं क्रांतकर्माणं विश्वादं सर्वस्य हविषोऽत्तारं पुरुवेपसं बहुकर्माणं। वेशो वेप इति कर्मनामसु पाठात्। अग्निं मन्मभिर्मननीयैः स्तोत्रैः शुंभामि। शोभयामि ॥

यज्ञानां रथ्यें वयं तिग्मजंभाय वीळवें। स्तोमैरिषेमाग्नयें ॥२७॥
यज्ञानां। रथ्ये। वयं। तिग्मऽजंभाय। वीळवें। स्तोमैः। इषेम। अग्नयें ॥२७॥

यज्ञानां रथ्ये नेत्रे तिग्मजंभाय तीक्ष्णज्वालाय वीळवे बलवतेऽग्नये स्तोमैः स्तोत्रैर्वयमांगिरसा इषेम। स्तुतिं कर्तुमिच्छेम ॥

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु संत्य। तस्मैं पावक मृळय ॥२८॥
अयं। अग्ने। त्वे इति। अपि। जरिता। भूतु। संत्य। तस्मैं। पावक। मृळय ॥२८॥

हे पावक शोधक संत्य भजनीयाग्ने त्वे अपि त्वय्ययमस्मदीयो जनो जरिता स्तोता भूतु। भवतु। तस्मै जरित्रे मृळय। सुखमुत्पादय। तं सुखय वा ॥

धीरो ह्यस्यद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा। अग्ने दीदयसि द्यवि ॥२९॥
धीरः। हि। असि। अद्मऽसत्। विप्रः। न। जागृविः। सदा। अग्ने। दीदयसि। द्यवि ॥२९॥

हे अग्ने त्वं धीरोऽसि हि। भवसि खलु। अद्मसद्धविषि सीदन्विप्रो न मेधावीव जागृविः प्रजानां हितकरणे जागरणशीलोऽसि। सदा द्यवंतरिक्षे दीदयसि। दीप्यसि च ॥

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे। प्र ण आयुर्वसो तिर ॥३०॥
पुरा। अग्ने। दुःऽइतेभ्यः। पुरा। मृध्रेभ्यः। कवे। प्र। नः। आयुः। वसो इति। तिर ॥३०॥

हे वसो वासक कवे क्रांतकर्मन्नग्ने दुरितेभ्यः पापेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यो हिंसकेभ्यश्च पुरा। यदा दुरितानि शत्रवश्चास्मान् हिंसितुमुद्युंजते ततः प्रागेवेत्यर्थः। नोऽस्माकमायुः प्र तिर। वर्धय ॥ ॥४१॥

आ घा य इति द्विचत्वारिंशदृचं तृतीयं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। आ घ द्विचत्वारिंशत्त्रिशोक आद्याग्नेंद्री। अनुक्तगोत्रत्वात्काण्वस्त्रिशोक ऋषिः। परं गायत्रं प्राक्त्वत्प्रेरिति परिभाषया गायत्री छंदः। अनुक्तत्वादिंद्रो देवता। आद्यायास्त्वग्निरिंद्रश्च ॥ महाव्रते निष्केवल्ये गायत्रतृचाशीतावेतत्सूक्तं। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं। आ घा ये अग्निमिंधत आ तू न इंद्र क्षुमंतमिति सूक्ते। ऐ० आ० ५.२.३.। इति ॥ तृतीये पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र आदितः सप्तदशर्चः। तथैवातिरात्र इति खंडे सूत्र्यते। आ घा ये अग्निमिंधत इति सप्तदश। आ० ६.४.। इति ॥ आग्रयण आग्नेंद्रस्य हविष आ घा य इत्येषानुवाक्या। सूत्रितं च। आ घा ये अग्निमिंधते सुकर्माणः सुरुचो देवयंत इति स्तोत्रं। आ० २.९.। इति ॥ मैत्रावरुणातिरिक्तोक्थ्ये स्तोत्रमिंद्रायेत्याद्याः षडृचो विकल्पेन स्तोत्रियानुरूपाः। सूत्रितं च। तद्वो गाय सुते सचा स्तोत्रमिंद्राय गायत। आ० ९.११.। इति ॥ द्वितीये पर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनोऽभि त्वा वृषभेति स्तोत्रियस्तृचः। सूत्रितं च। अभि त्वा वृषभा सुतेऽभि प्र गोपतिं गिरा। आ० ६.४.। इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातःसवने भिंधि विश्वा इति ब्राह्मणाच्छंसिनः षळहस्तोत्रियः। तथा च सूत्रितं। भिंधि विश्वा अप द्विष इति ब्राह्मणाच्छंसिनः। आ० ७.२.। इति ॥

आ घा ये अग्निमिंधते स्तृणंति बर्हिरानुषक् । येषामिंद्रो युवा सखा ॥१॥
आ । घ । ये । अग्निं । इंधते । स्तृणंति । बर्हिः । आनुषक् । येषां । इंद्रः । युवा । सखा ॥१॥

य ऋषय आ घाभिमुख्येन खल्वग्निमिंधते दीपयंति येषां च युवा नित्यतरुण इंद्रः सखा भवति त आनुषगानुपूर्व्येण बर्हिः स्तृणंति ॥

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिंद्रो युवा सखा ॥२॥
बृहन् । इत् । इध्मः । एषां । भूरि । शस्तं । पृथुः । स्वरुः । येषां । इंद्रः । युवा । सखा ॥२॥

एषामृषीणामिध्मो बृहन्निन्महान् खलु भूरि बहु च शस्तं स्तोत्रं स्वरुश्च पृथुर्महान् । सिद्धमन्यत् ॥

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिंद्रो युवा सखा ॥३॥
अयुद्धः । इत् । युधा । वृतं । शूरः । आ । अजति । सत्वऽभिः । येषां । इंद्रः । युवा । सखा ॥३॥

तेष्वंतर्भूतः कश्चिदयुद्ध इत्प्रागयोद्धैव सन् युधा वृतं योद्धृभिर्भटैरावृतं शत्रुं सत्वभिरात्मीयैर्बलैः शूरः सन्नाजति । गमयति ॥

आ बुंदं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरं । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥४॥
आ । बुंदं । वृत्रऽहा । ददे । जातः । पृच्छत् । वि । मातरं । के । उग्राः । के । ह । शृण्विरे ॥४॥

जात उत्पन्नो वृत्रहेंद्रो बुंदमिषुं । तथा च यास्कः । बुंद इषुर्भवति । नि० ६. ३२. । इति । आ ददे । आदाय चेषुमुग्रा उद्गूर्णबलाः के के च शृण्विरे वीर्येण विश्रुता इति स्वमातरं वि पृच्छत् । अप्राक्षीत् ॥

प्रति त्वा शवसी वदद्गिरावप्सो न योधिषत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥५॥
प्रति । त्वा । शवसी । वदत् । गिरौ । अप्सः । न । योधिषत् । यः । ते । शत्रुऽत्वं ।
आऽचके ॥५॥

हे इंद्र त्वा त्वां शवसी बलवती माता प्रति वदत् । प्रत्यवोचत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके कामयते स गिरौ पर्वतेऽप्सो न दर्शनीयो गज इव योधिषत् । योधयति ॥ ॥४२॥

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद्वीळयासि वीळु तत् ॥६॥
उत । त्वं । मघऽवन् । शृणु । यः । ते । वष्टि । ववक्षि । तत् । यत् । वीळयासि । वीळु । तत् ॥६॥

उतापि च हे मघवन् त्वं शृण्वस्मदीयां स्तुतिं । ते त्वत्तो यद्वष्टि कामयते स्तोता तद्ववक्षि । तस्मै तद्वहसि । किंच त्वं यद्वीळयासि दृढीकरोषि तद्वीळु तद्दृढमेव सर्वत्र भवति ॥

यदाजिं यात्याजिकृदिंद्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनां ॥७॥
यत् । आजिं । याति । आजिऽकृत् । इंद्रः । स्वश्वऽयुः । उप । रथिऽतमः । रथिनां ॥७॥

यद्यदाजिकृद्युद्धकृदिंद्रः स्वश्वयुः कल्याणमश्वमिच्छन्नाजिं युद्धमुप याति तदा रथीतमोऽतिशयेन रथी भवति । रथीनां सर्वान्रथिनश्च जयतीति शेषः ॥

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ॥८॥
वि । सु । विश्वाः । अभिऽयुजः । वज्रिन् । विष्वक् । यथा । वृह । भव । नः । सुश्रवःऽतमः ॥८॥

हे वज्रिन् त्वं विश्वाः सर्वा अभियुजोऽभियोक्त्रीः प्रजा यथा विष्वग्भवंति तथा सु सुष्ठु वि वृह । नोऽस्माकं सुश्रवस्तमः शोभनान्नवत्तमश्च भव ॥

अस्माकं सु रथं पुर इंद्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वंति धूर्तयः ॥९॥
अस्माकं । सु । रथं । पुरः । इंद्रः । कृणोतु । सातये । न । यं । धूर्वंति । धूर्तयः ॥९॥

यमिंद्रं धूर्तयो हिंसका न धूर्वंति न हिंसंति स इंद्रोऽस्माकं सातयेऽभीष्टलाभाय सु रथं कल्याणं रथं पुरः कृणोतु । पुरस्करोतु ॥

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिंद्र गोमतः ॥१०॥
वृज्याम । ते । परि । द्विषः । अरं । ते । शक्र । दावने । गमेम । इत् । इंद्र । गोऽमतः ॥१०॥

हे शक्रेंद्र याचमाना वयं ते तव द्विषो द्वेष्टॄन् परि वृज्याम । नोपगच्छेम । किंतु ते तव गोमतः पशुमतो दावनेऽभीष्टदानायारं पर्याप्तं गमेमेत् । गच्छेमैव ॥ ॥४३॥

शनैश्चिद्यंतो अद्रिवोऽश्वावंतः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ॥११॥
शनैः । चित् । यंतः । अद्रिऽवः । अश्वऽवंतः । शतऽग्विनः । विवक्षणाः । अनेहसः ॥११॥

हे अद्रिवो वज्रिन् वयं शनैर्मंदं मंदं यंतो गच्छंतोऽश्वावंतोऽश्ववंतः शतग्विनो बहुधना विवक्षणा वोढव्यं वहंतोऽनेहस उपद्रवरहिताश्च संतो गमेमेदिति संबंधः ॥

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते ॥१२॥
ऊर्ध्वा । हि । ते । दिवेऽदिवे । सहस्रा । सूनृता । शता । जरितृऽभ्यः । विऽमंहते ॥१२॥

हे इंद्र ते तव जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः सहस्रा सहस्राणि शता शतानि चोर्ध्वोर्ध्वानि मुख्यानि सूनृता सूनृतानि साधनानि दिवे दिवेऽन्वहं विमंहते । यजमानः प्रयच्छति । मंहतिर्दानकर्मा ॥

विद्म हि त्वा धनंजयमिंद्र दृळ्हा चिदारुजं । आदारिणं यथा गयं ॥१३॥
विद्म । हि । त्वा । धनंऽजयं । इंद्र । दृळ्हा । चित् । आऽरुजं । आऽदारिणं । यथा । गयं ॥१३॥

हे इंद्र त्वा त्वां धनंजयं धनानां जेतारं दृढा चिद्दृढानामपि शत्रूणामारुजमाभिमुख्येन भंक्तारमादारिणमादर्तारं च यथा गयं गृहमिवोपद्रवेभ्यो रक्षकं च विद्म । जानीम ॥

ककुहं चित्त्वा कवे मंदंतु धृष्णविंदवः । आ त्वा पणिं यदीमहे ॥१४॥
ककुहं । चित् । त्वा । कवे । मंदंतु । धृष्णो इति । इंदवः । आ । त्वा । पणिं । यत् । ईमहे ॥१४॥

हे कवे क्रांतकर्मन् धृष्णो धर्षकेंद्र यद्यदा पणिं पणमानं त्वा त्वामा आभिमुख्येनेमहे अभीष्टं याचामहे तदा ककुहमुच्छ्रितं त्वा त्वामिंदवश्चित् सोमा अपि मंदंतु । मादयंतु ॥

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ॥१५॥

यः । ते । रेवान् । अदाशुरिः । प्रऽममर्ष । मघत्तये । तस्य । नः । वेदः । आ । भर ॥१५॥

हे इंद्र मघत्तये धनदानाय ते तुभ्यं यः पुमान्रेवान् धनवान् सन्नदाशुरिरदानशीलः प्रममर्ष अभ्यसूयति तस्य पुंसो वेदो धनं नोऽस्मभ्यमा भर । आहर ॥ ॥४४॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इंद्र सोमिनः । पुष्टावंतो यथा पशुं ॥१६॥

इमे । ऊं इति । त्वा । वि । चक्षते । सखायः । इंद्र । सोमिनः । पुष्टऽवंतः । यथा । पशुं ॥१६॥

हे इंद्र त्वा त्वां सोमिनोऽभिषुतसोमाः सखाय इम उ इम एव खल्वस्मदीया जनाः पुष्टावंतः संभृतघासा यथा पशुं पशुमिव वि चक्षते । विपश्यंति ॥

उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं संतमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७॥

उत । त्वा । अबधिरं । वयं । श्रुत्ऽकर्णं । संतं । ऊतये । दूरात् । इह । हवामहे ॥१७॥

उतापि च हे इंद्र अबधिरमनुपहतश्रोत्रेंद्रियं अत एव श्रुत्कर्णं श्रवणपरकर्णं संतं त्वा त्वां वयं त्रिशोका इह यज्ञ ऊतये रक्षणाय दूराद्धवामहे । ह्वयामः ॥

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अंतमः ॥१८॥

यत् । शुश्रूयाः । इमं । हवं । दुःऽमर्षं । चक्रियाः । उत । भवेः । आपिः । नः । अंतमः ॥१८॥

हे इंद्र यद्यदीममस्मदीयं हवमाह्वानं शुश्रूयाः शृणुयाः तर्हि दुर्मर्षं शत्रूणां दुःसहं बलं चक्रियाः । कुर्याः । उतापि च नोऽस्माकमंतमोऽंतिकतम आपिर्बंधुर्भवेः ॥

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिंद्र बोधि नः ॥१९॥

यत् । चित् । हि । ते । अपि । व्यथिः । जगन्वांसः । अमन्महि । गोऽदाः । इत् । इंद्र । बोधि । नः ॥१९॥

अपि चिदपि च हे इंद्र ते तुभ्यं यद्यदा हि व्यथिर्दारिद्र्येण व्यथिता जगन्वांसो गंतारो वयममन्महि विद्महे तदा नोऽस्माकं गोदा इत्त्वं दातैव भवामीति बोधि । बुध्यस्व ॥

आ त्वा रंभं न जिव्रयो ररभ्मा शवसस्पते । उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥२०॥

आ । त्वा । रंभं । न । जिव्रयः । ररभ्म । शवसः । पते । उश्मसि । त्वा । सधऽस्थे । आ ॥२०॥

हे शवसस्पते बलस्य पते त्वा त्वां वयं जिव्रयो जीर्णा वृद्धा रंभं न दंडमिव ररभ्म । रभामहे । तथा च यास्कः । आरभामहे त्वा जीर्णा इव दंडं । नि० ३. २१. । इति । अपि च त्वा त्वां सधस्थे यज्ञ उश्मसि । कामयामहे ॥ ॥४५॥

स्तोत्रमिंद्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने । नकिर्यं वृण्वते युधि ॥२१॥

स्तोत्रं । इंद्राय । गायत । पुरुऽनृम्णाय । सत्वने । नकिः । यं । वृण्वते । युधि ॥२१॥

यमिंद्रं युधि युद्धे नकिर्वृण्वते केऽपि न वारयंति तस्मै सत्वने दानशीलाय पुरुनृम्णाय बहुधनायेंद्राय स्तोत्रं गायत । पठत ॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृंपा व्यंश्नुही मदं ॥२२॥

अभि । त्वा । वृषभ । सुते । सुतं । सृजामि । पीतये । तृंप । वि । अश्नुहि । मदं ॥२२॥

हे वृषभेंद्र त्वा त्वां सुते सोमेऽभिषुते सति सुतमभिषुतं सोमं पीतये पानायाभि सृजामि । तृंप । तृप्य । मदं मदकरं व्यश्नुहि च ॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दंभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२३॥

मा । त्वा । मूराः । अविष्यवः । मा । उपऽहस्वानः । आ । दभन् । माकीं । ब्रह्मऽद्विषः । वनः ॥२३॥

हे इंद्र त्वा त्वां मूरा मूरका मूढा मनुष्या अविष्यवः पालनकामा मा दभन् । मा हिंसंतु । उपहस्वान उपहसनपराश्च मा भवंतु । ब्रह्मद्विषो ब्राह्मणानां द्वेष्टॄन् माकीं वनः । मा भजेथाः ॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मंदंतु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥२४॥

इह । त्वा । गोऽपरीणसा । महे । मंदंतु । राधसे । सरः । गौरः । यथा । पिब ॥२४॥

हे इंद्र त्वा त्वामिह यज्ञे गोपरीणसा गव्येन पयसा संमिश्रितेन सोमेन महे महते राधसे धनाय मंदंतु । मनुष्या मादयंतु । त्वं च तं सोमं यथा गौरो मृगः सरः पिबति तथा पिब ॥

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे । ता संसत्सु प्र वोचत ॥२५॥

या । वृत्रऽहा । पराऽवति । सना । नवा । च । चुच्युवे । ता । संसत्ऽसु । प्र । वोचत ॥२५॥

वृत्रहेंद्रः परावति दूरे या यानि सना सनातनानि नवा नवानि नूतनानि च धनानि चुच्युवे प्रेरितवान् तानि धनानि संसत्सु यज्ञेषु सभासु वा प्र वोचत । प्रब्रूत विद्वज्जनः ॥ ॥४६॥

अपिबत्कद्रुवः सुतमिंद्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यं ॥२६॥

अपिबत् । कद्रुवः । सुतं । इंद्रः । सहस्रऽबाह्वे । अत्र । अदेदिष्ट । पौंस्यं ॥२६॥

इंद्रः कद्रुवः कद्रुनामकस्यर्षेः संबंधिनं सुतमभिषुतं सोममपिबत् । पीतवान् । सहस्रबाह्वे सहस्रबाहोः शत्रूंश्चाहन्निति शेषः । अत्रास्मिन्नवसरे पौंस्यमिंद्रस्य वीर्यमदेदिष्ट । अदीप्यत ॥

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यं । व्यानट् तुर्वणे शमि ॥२७॥

सत्यं । तत् । तुर्वशे । यदौ । विदानः । अह्नवाय्यं । वि । आनट् । तुर्वणे । शमि ॥२७॥

तुर्वशे राज्ञि यदौ च यदुनामके च राज्ञि तत्प्रसिद्धं यागादिलक्षणं शमि कर्म । शची शमीति कर्मनामसु पाठात् । सत्यं परमार्थं विदानो जानंस्तयोः प्रीत्यर्थमह्नवाय्यमह्नवाय्यनामकं तयोः शत्रुं तुर्वणे संग्रामे व्यानट् । व्याप्तवान् ॥

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषं ॥२८॥

तरणिं । वः । जनानां । त्रदं । वाजस्य । गोऽमतः । समानं । ऊं इति । प्र । शंसिषं ॥२८॥

हे अस्मदीयाः पुरुषाः वो युष्माकं जनानां पुत्रपौत्रादीनां तरणिं तारकं यद्वं शत्रूणां तर्दयितारं गोमतः पशुमतोऽन्नस्य दातारं चेंद्रं समानमु साधारणमेव प्र शंसिषं। स्तौमि ॥

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधं। इंद्रं सोमे सचा सुते ॥२९॥
ऋभुक्षणं। न। वर्तवे। उक्थेषु। तुग्र्यऽवृधं। इंद्रं। सोमे। सचा। सुते ॥२९॥

ऋभुक्षणं महांतं तुग्र्यावृधमुदकस्य वर्धयितारं। तुग्र्या बुर्बुरमित्युदकनामसु पाठात्। इंद्रं सोमे सचा स्तोत्रेण सह सुतेऽभिषुते सत्युक्थेषु शस्त्रेषु वर्तवे धनं वरितुं प्रशंसामीति शेषः। नेति संप्रत्यर्थे ॥

यः कृंतदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुं। गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥३०॥
यः। कृंतत्। इत्। वि। योन्यं। त्रिऽशोकाय। गिरिं। पृथुं। गोभ्यः। गातुं। निःऽएतवे ॥३०॥

य इव एवेंद्रो योन्यमुदकनिर्गमनद्वारं पृथुं विस्तीर्णं गिरिं मेघं। गिरिर्व्रज इति मेघनामसु पाठात्। त्रिशोकाय त्रिशोकनामर्षयर्थं वि कृंतत् व्यच्छिनत् स गोभ्यो गमनवद्भ्य उदकेभ्यो निरेतवे निर्गमनाय गातुं भूमिं। भूमिर्गातुरिति तन्नामसु पाठात्। मार्गमित्यर्थः। करोतीति शेषः ॥ ॥४७॥

यद्दधिषे मनस्यसि मंदानः प्रेदियक्षसि। मा तत्करिंद्र मृळय ॥३१॥
यत्। दधिषे। मनस्यसि। मंदानः। प्र। इत्। इयक्षसि। मा। तत्। कः। इंद्र। मृळय ॥३१॥

हे इंद्र मंदानो मोदमानस्त्वं यच्छुभं वसु दधिषे धारयसि यच्च मनस्यसि पूजयसि यदपि च प्रेदियक्षसि प्रयच्छस्येव तत्सर्वं मा कः। किं नाकार्षीः। अस्माकं कृतवानेव। किंचास्मान्मृळय। सुखय ॥

दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि। जिगात्विंद्र ते मनः ॥३२॥
दभ्रं। चित्। हि। त्वाऽवतः। कृतं। शृण्वे। अधि। क्षमि। जिगातु। इंद्र। ते। मनः ॥३२॥

हे इंद्र त्वावतस्त्वत्सदृशस्य दभ्रं चिदल्पमपि कृतं कर्माधि क्षमि क्षमायां॥ अधीति सप्तम्यर्थानुवादः॥ शृण्वे। विश्रुतं भवति हि। तथा सति ते तव मनो जिगातु। मयि गच्छतु ॥

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः। यदिंद्र मृळयासि नः ॥३३॥
तव। इत्। ऊं इति। ताः। सुऽकीर्तयः। असन्। उत। प्रऽशस्तयः। यत्। इंद्र।
मृळयासि। नः ॥३३॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्मान्यद्याभिर्मृळयासि सुखयसि ताः सुकीर्तयः शोभनाख्यातयस्तवेत्तवैवासन्। भवेयुः। उतापि च ताः प्रशस्तयः स्तुतयश्च तवैव भवेयुः ॥

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु। वधीर्मा शूर भूरिषु ॥३४॥
मा। नः। एकस्मिन्। आगसि। मा। द्वयोः। उत। त्रिषु। वधीः। मा। शूर। भूरिषु ॥३४॥

हे शूरेंद्र नोऽस्मानेकस्मिन्नागस्यपराधे मा वधीः। मा हिंसीः। द्वयोरागसोरपि मा वधीः। उतापि च त्रिष्वागःस्वपि मा हिंसीः। भूरिष्वसंख्यातेष्वागःसु मा च वधीः ॥

बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभंगिणः। दस्मादहमृतीषहः ॥३५॥
बिभय। हि। त्वाऽवतः। उग्रात्। अभिऽप्रभंगिनः। दस्मात्। अहं। ऋतिऽसहः ॥३५॥

हे इंद्र त्वावतस्त्वत्सदृशादुग्रादुद्गूर्णादभिप्रभंगिणः शत्रूणामभिप्रहर्तुर्दस्मात्पापानामुपक्षपयितुश्चेतीषहः शत्रुकृतां हिंसां सहतोऽहं बिभय हि ॥ ॥४८॥

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद्भूतु ते मनः ॥३६॥

मा । सख्युः । शूनं । आ । विदे । मा । पुत्रस्य । प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो । आऽवृत्वत् । भूतु । ते । मनः ॥३६॥

हे प्रभूवसो प्रभूतधनेंद्र ते तव सख्युः शूनं वृद्धं मा विदे । मावेदयामि । पुत्रस्यापि शूनं मा विदे । तव मनोऽस्मास्वावृत्वदावर्तनवद्भूतु । भवतु । पुनःपुनः सुखं करोत्वित्यर्थः ॥

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥३७॥

कः । नु । मर्याः । अमिथितः । सखा । सखायं । अब्रवीत् । जहा । कः । अस्मत् । ईषते ॥३७॥

को नु कः खलु हे मर्या मनुष्याः अमिथितः । मेथतिराक्रोशकर्मा । अनाकृष्ट इंद्रादन्यः सखा सखायं प्रति जहा अहं कं जघान कः को वास्मदस्मत्तो भीत ईषते पलायत इत्यब्रवीत् । वदति । इंद्र एवैतादृशस्य वचनस्य वक्तेत्यभिप्रायः । तथा च यास्कः । मेथतिराक्रोशकर्मा । अपापकं जघान कमहं जातु कोऽस्मद्भीतः पलायते । नि० ४. २. । इति । मा न एकस्मिन्नागसीत्यादिकया श्रुत्वा नूनमृषिमिंद्र आजहारेत्यचर्षिर्विस्मयत इति ॥

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥३८॥

एवारे । वृषभ । सुते । असिन्वन् । भूरि । आवयः । श्वघ्नीऽइव । निऽवता । चरन् ॥३८॥

हे वृषभ कामानां वर्षकेंद्र एवारे । एवारो नाम कश्चित् । तस्मिन् सुतेऽभिषुते सोमे सति भूरि बहूनि धनान्यसिन्वन्न बध्नञ्छ्वघ्नी । श्वघ्नी कितवः । तथा च यास्कः । श्वघ्नी कितवो भवति स्वं हंति ˉˉˉ । नि० ५. २२. । ˉˉˉ ॥

आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥३९॥

आ । ते । एता । वचःऽयुजा । हरी इति । गृभ्णे । सुमत्ऽरथा । यत् । ईं । ब्रह्मऽभ्यः । इत् । ददः ॥३९॥

ते तव सुमद्रथा कल्याणरथौ वचोयुजा मंत्रेण युज्यमानावेतैतौ हरी अश्वावा गृभ्णे । अस्मदभिमुखं यातुं हस्ताभ्यामाकर्षामीत्यर्थः । यद्यस्मात्त्वं ब्रह्मभ्य इद्ब्राह्मणेभ्य एवेमिदं धनं ददः ददासि ॥

भिंधि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४०॥

भिंधि । विश्वाः । अप । द्विषः । परि । बाधः । जहि । मृधः । वसु । स्पार्हं । तत् । आ । भर ॥४०॥

हे इंद्र त्वं विश्वाः सर्वा द्विषो द्वेष्ट्रीः शत्रुसेना अप भिंधि । विदारय । बाधो हिंसित्रीर्मृधः संग्रामान् । मृधो मृध इति संग्रामनामसु पाठात् । परि जहि । हिंधि । अतस्तासां स्पार्हं स्पृहणीयं तत्प्रसिद्धं वस्वा भर । अस्मभ्यमाहर ॥

यद्वीळाविंद्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतं। वसु स्पार्हं तदा भर ॥४१॥

यत्। वीळौ। इंद्र। यत्। स्थिरे। यत्। पर्शाने। पराऽभृतं। वसु। स्पार्हं। तत्। आ। भर ॥४१॥

हे इंद्र त्वया च वीळौ दृढे परैः कंपयितुमशक्ये यद्धनं पराभृतं विन्यस्तं यच्च स्थिरे स्वयमचले पराभृतं यच्चापि पर्शाने विमर्शनक्षमे पराभृतं तत्स्पार्हं वस्वा भर ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर ॥४२॥

यस्य। ते। विश्वऽमानुषः। भूरेः। दत्तस्य। वेदति। वसु। स्पार्हं। तत्। आ। भर ॥४२॥

हे इंद्र ते त्वया ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ दत्तस्य दत्तं भूरेर्बहु यस्य यद्धनं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ विश्वमानुषः सर्वो मनुष्यो वेदति जानाति तत्स्पार्हं स्पृहणीयं वस्वा भर ॥ ॥४९॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

षष्ठे तृतीयमध्यायं व्याख्याय श्रीमतीसुतः। श्रीसायणार्यः संगृह्य चतुर्थं व्याकरोत्यथ ॥

तत्र त्वावत इति त्रयस्त्रिंशदृचं चतुर्थं सूक्तमश्वपुत्रस्य वशाख्यस्यार्षं। प्राग्वत्सप्रपरिभाषयाद्यास्तस्रो गायत्र्यः। तत्राद्या पादनिचृत् त्रयः सप्तकाः पादनिचृत्। अनु० ४. ४.। इत्युक्तलक्षणोपेतत्वात्। दधानो गोमदश्ववदित्येषा पंचमी ककुबष्टकद्वादशाष्टकैः पादैरुपेतत्वात्। मध्यमश्चेत्ककुप्। अनु० ५. ३.। इति हि तल्लक्षणं। तमिंद्रमिति षष्ठी गायत्री। तस्मिन् हि संतीति सप्तमी बृहती। यस्ते मद इत्यष्टम्यनुष्टुप्। यो दुष्टर इति नवमी सतोबृहती। अयुजौ जागतौ सतोबृहती। अनु० ८. ४.। इति ह्युक्तं। गव्यो षु ण इति दशमी गायत्री। नहि ते शूरेत्येकादशी बृहती। य ऋष्व इति द्वादशी विपरीता सतोबृहती प्रथमतृतीययोरष्टाक्षरा द्वितीयचतुर्थयोर्द्वादशाक्षरा च। युजौ चेद्विपरीता। अनु० ८. ५.। इत्युक्तत्वात्। स नो वाजेष्विति त्रयोदशी चतुर्विंशत्यक्षरा द्विपदा। अभि वो वीरमिति चतुर्दशी पिपीलिकमध्या बृहती। त्रयोदशिनोर्मध्येऽष्टकः पिपीलिकमध्या। अनु० ७. ७.। इत्युक्तत्वात्। ददी रेक्ण इति पंचदशी ककुम्न्यंकुशिरा त्रैष्टुभजागतचतुष्काः ककुम्न्यंकुशिरा। अनु० ५. ४.। इत्युक्तत्वात्। विश्वेषामिति षोडशी विराट्। महः सु व इति सप्तदशी जगती। ये पातयंत इत्यष्टादश्युपरिष्टाद्बृहती चतुर्थपादस्य द्वादशाक्षरत्वात्। प्रभंगमित्येकोनविंशी बृहती। सनितः सुसनितरिति विंशी विषमपदा बृहती नवकाश्चैकादशश्चाष्टिनो विषमपदा। अनु० ७. ८.। इत्युक्तत्वात्। आ स एतु षष्टिं सहस्रेत्येकविंशीद्वाविंश्यौ पंक्ती। दश श्यावा इति त्रयोविंशी गायत्री। दानास इति चतुर्विंशी पंक्तिः। पंचविंशीसप्तविंश्यौ बृहत्यौ। षड्विंश्यष्टाविंश्यौ सतोबृहत्यौ। एकोनत्रिंशी गायत्री। गावो न यूथमिति त्रिंशी विंशत्यक्षरा द्विपदा विराट्। एकत्रिंश्युष्णिक्। द्वात्रिंशी पंक्तिः। त्रयस्त्रिंशी गायत्री। आ स एत्वित्यादिभिस्तस्भिः कनीतपुत्रस्य पृथुश्रवसो दानं स्तूयते। अतस्तद्देवताकाः। आ नो वायवित्यादीनां चतसृणां द्वात्रिंश्याश्च वायुर्देवता। शिष्टा अनादेशपरिभाषयेंद्रदेवताकाः ॥ एतत्सर्वमनुक्रमण्यामुक्तं। त्वावतस्त्रयस्त्रिंशद्वशोऽश्व्य आ स आदि कानीतस्य पृथुश्रवसो दानस्तुतिराद्या पादनिचृत् पंचम्यादि ककुब्गायत्री बृहत्यनुष्टुप् सतोबृहती गायत्री विपरीतोत्तरः प्रगाथो द्विपदा चतुर्विंशिका बृहती पिपीलिकमध्या ककुम्न्यंकुशिरा विराड्जगत्युपरिष्टाद्बृहतीबृहत्यौ विषमपदोत्तरे पंक्ती गायत्री पंक्तिः प्रगाथौ च वायव्यौ गायत्री द्विपदोष्णिक् पंक्तिर्वायव्या गायत्रीति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये सनितः सुसनितरित्यंतमेव सूक्तं। तथा च पंचमारण्यके शौनकेन सूचितं। त्वावतः पुरूवसविति वशः सनितः सुसनितरित्येतदंतः। ऐ० आ० ५. २. ५.। इति ॥

त्वावतः पुरूवसो वयमिंद्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणां ॥१॥

त्वाऽवतः । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । वयं । इंद्र । प्रनेतरिति प्रऽनेतः । स्मसि । स्थातः । हरीणां ॥१॥

हे पुरूवसो बहुधनेंद्र प्रणेतः कर्मणां पारं प्रकर्षेण प्रापयितरिंद्र त्वावतस्त्वत्सदृशस्य । इंद्रसमानस्यान्यस्याभावात्त्वेत्यर्थः । तव स्वभूता वयं स्मसि । स्मः । हे हरीणामेतत्संज्ञकानामश्वानां स्थातरधिष्ठातः ॥

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषां । विद्म दातारं रयीणां ॥२॥

त्वां । हि । सत्यं । अद्रिऽवः । विद्म । दातारं । इषां । विद्म । दातारं । रयीणां ॥२॥

हे अद्रिवः । अत्ति शत्रुमित्यद्रिर्वज्रः । तद्वन्निंद्र त्वां सत्यं निश्चयमिषामन्नानां दातारं विद्म । जानीमः । तथा रयीणां धनानां दातारं विद्म ॥

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणंति कारवः ॥३॥

आ । यस्य । ते । महिमानं । शतंऽऊते । शतक्रतो इति शतक्रतो । गीःऽभिः । गृणंति । कारवः ॥३॥

हे शतमूतेऽपरिमितरक्षण हे शतक्रतो बहुकर्मयुक्तेंद्र यस्य ते महिमानं माहात्म्यं कारवः स्तोतारो गीर्भिः स्तुतिभिर्गृणंति स्तुवंति स्वाभीष्टाय ॥

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पांत्यद्रुहः ॥४॥

सुऽनीथः । घ । सः । मर्त्यः । यं । मरुतः । यं । अर्यमा । मित्रः । पांति । अद्रुहः ॥४॥

स मर्त्यो मनुष्यो यजमानः सुनीथः सुयज्ञः सुनयनो वा भवति । घेति प्रसिद्धौ । स इत्युक्ते कमित्याह । यं यजमानं मरुतो देवाः पांति रक्षंत्यद्रुहोऽद्रोहकर्तारः । तथा यमर्यमा पाति । यं च मित्रः पाति । स एवं भवतीति ॥

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते । सदा राया पुरुस्पृहा ॥५॥

दधानः । गोऽमत् । अश्वऽवत् । सुऽवीर्यं । आदित्यऽजूतः । एधते । सदा । राया । पुरुऽस्पृहा ॥५॥

आदित्यजूत आदित्यप्रेरित आदित्यानुगृहीतो यजमानो गोमद्गोभिरुपेतमश्ववदश्वैरुपेतं सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रं दधानो धारयन्नेधते वर्धते सदा सर्वदा । किंच पुरुस्पृहा बहुभिः स्पृहणीयेन राया धनेन सदैधते ॥ ॥१॥

तमिंद्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वं । ईशानं राय ईमहे ॥६॥

तं । इंद्रं । दानं । ईमहे । शवसानं । अभीर्वं । ईशानं । रायः । ईमहे ॥६॥

तं प्रसिद्धमिंद्रं दानं देयं रायो धनमीमहे । याचामहे । कीदृशमिंद्रं । शवसानं बलमाचरंतमभीर्वमभीरुमीशानं सर्वस्य स्वामिनं ॥

तस्मिन्हि संत्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहंतु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतं ॥७॥
तस्मिन् । हि । संति । ऊतयः । विश्वाः । अभीरवः । सचा ।
तं । आ । वहंतु । सप्तयः । पुरुऽवसुं । मदाय । हरयः । सुतं ॥७॥

तस्मिन्निंद्र ऊतयो गंत्र्यो विश्वाः सर्वा अभीरवोऽकातराः सचा सहायभूता मरुद्रूपाः सेनाः संति । भवंति । अथवा तस्मिन् सर्वा रक्षणाः सह संभवंति । तमिंद्रं सप्तयः सर्पणशीला हरयोऽश्वाः पुरूवसुं बहुधनं । बहुधनप्रदमित्यर्थः । तं मदाय सुतमभिसुतमभिषुतं सोमं प्रत्या वहंतु । आगमयंतु ॥

यस्ते मदो वरेण्यो य इंद्र वृत्रहंतमः । य आददिः स्व१र्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥८॥
यः । ते । मदः । वरेण्यः । यः । इंद्र । वृत्रहन्ऽतमः । यः । आऽददिः । स्वः । नृऽभिः ।
यः । पृतनासु । दुस्तरः ॥८॥

पूर्वमंत्रे मदाय हरय इत्युक्तं स मदः स्तूयते । हे इंद्र ते तव यो मदो वरेण्यो वरणीयः । यश्च मदः संग्रामे वृत्रहंतमः शत्रूणामतिशयेन हंता । यश्चाददिरादाता स्वः स्वरणं धनं नृभिर्नृभ्यः शत्रुभ्यः । यश्च पृतनासु संग्रामेषु दुष्टरोऽनभिभाव्यः । तस्मै मदाय हरयो वहंत्विति ॥

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥९॥
यः । दुस्तरः । विश्वऽवार । श्रवाय्यः । वाजेषु । अस्ति । तरुता ।
सः । नः । शविष्ठ । सवना । आ । वसो इति । गहि । गमेम । गोऽमति । व्रजे ॥९॥

हे विश्ववार विश्वैर्वरणीयेंद्र वाजेषु युद्धेषु यस्तव दुष्टरो दुःखेन तरीतुं शक्यस्तरुता शत्रूणां तारकोऽस्ति भवति हे वसो वासक हे शविष्ठातिशयेन बलवन्निंद्र स त्वं नः सवनास्माकं सवनान्या गहि । आगच्छ । वयं च गोमति व्रजे गोमंतं व्रजं गमेम । गच्छेम ॥

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥१०॥
गव्यो इति । सु । नः । यथा । पुरा । अश्वऽया । उत । रथऽया । वरिवस्य । महाऽमह ॥१०॥

हे महामह महाधनेंद्र गव्या ॥ गव्या उ इति निपातानिपातद्वयसमुदायस्यादिवद्भावेन निपातवद्भावात्प्रकृतिभावः ॥ अस्माकं गवामिच्छयास्माकं गा दातुं यथा पुरा पूर्वं यथास्माकं गवादिदानाय वरिवस्यसि तद्वदद्यापि सु सुष्ठु वरिवस्य । परिचर । आगच्छेत्यर्थः । न केवलं गवेच्छया किंत्वश्वयाश्वप्रदानेच्छया । उतापि च रथया रथेच्छया च वरिवस्येति ॥ ॥२॥

नहि ते शूर राधसोऽतं विंदामि सचा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥११॥
नहि । ते । शूर । राधसः । अंतं । विंदामि । सचा ।
दशस्य । नः । मघऽवन् । नु । चित् । अद्रिऽवः । धियः । वाजेभिः । आविथ ॥११॥

हे शूर विक्रांतेंद्र ते तव राधसो धनस्यांतमियत्तां सत्रा सत्यं नहि विंदामि । न लभे । यस्मादेवं तस्मात् हे मघवन् धनवन् हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र णोऽस्माकं नू चित् क्षिप्रमेव दशस्य । देहि तद्धनं । किंच वाजेभिर्वाजैरन्नैर्धियोऽस्मदीयानि कर्माण्याविथ । रक्ष ॥

य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगेंद्रं हवंते तविषं यतस्रुचः ॥१२॥

यः । ऋष्वः । श्रवयत्ऽसखा । विश्वा । इत् । सः । वेद । जनिम । पुरुऽस्तुतः ।
तं । विश्वे । मानुषा । युगा । इंद्रं । हवंते । तविषं । यतऽस्रुचः ॥१२॥

य इंद्र ऋष्वो दर्शनीयः श्रावयत्सखा । श्रावयंतः सखाय ऋत्विजो यस्य स तादृशः श्रावयत्सखा । पुरुष्टुतो बहुभिर्यजमानैः स्तुतो य इंद्रः स विश्वेत् सर्वाण्यपि जनिमा जन्मानि प्राणिनां वेद । जानाति । तं तविषं बलवंतमिंद्रं विश्वे सर्वेऽप्यध्वर्य्वादयो यतस्रुचः स्वीकृतहविष्काः संतो मानुषा मनुष्यसंबंधिनो युगा युगानि कालान् सर्वेषु कालेषु हवंते । आह्वयंति । स्तुवंति ॥

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता । मघवा वृत्रहा भुवत् ॥१३॥

सः । नः । वाजेषु । अविता । पुरुऽवसुः । पुरःऽस्थाता । मघऽवा । वृत्रऽहा । भुवत् ॥१३॥

एषा द्विपदा जगती ॥ स पुरूवसुर्बहुधनो मघवा धनवान् वृत्रहा शत्रूणां हंतेंद्रो नोऽस्माकं वाजेषु संग्रामेष्वविता रक्षिता पुरःस्थाता तदर्थं पुरतो वर्तमानो भुवत् । भवतु ॥

अभि वो वीरमंधसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसं ।
इंद्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥१४॥

अभि । वः । वीरं । अंधसः । मदेषु । गाय । गिरा । महा । विऽचेतसं ।
इंद्रं । नाम । श्रुत्यं । शाकिनं । वचः । यथा ॥१४॥

हे उद्गात्रादयः वः । यूयमित्यर्थः । अथवा हे यजमानाः वो युष्माकं हितायांधसः सोमस्य मदेषूत्पाद्यमानेषु सत्सु वीरं शत्रूणामीरयितारं नाम शत्रूणां नामकं विचेतसं विशिष्टप्रज्ञं श्रुत्यं सर्वत्र श्रोतव्यं शाकिनं शक्तं ईदृशमिंद्रं महा महत्या गिरा स्तुत्या वचो वाग्युष्मदीया यथा येन प्रकारेण प्रवर्तते गायत्र्या त्रिष्टुभा वा तथा गाय । गायत । स्तुतिं कुरुत ॥

ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनं । नूनमथ ॥१५॥

ददिः । रेक्णः । तन्वे । ददिः । वसु । ददिः । वाजेषु । पुरुऽहूत । वाजिनं । नूनं ।
अथ ॥१५॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूतेंद्र त्वं तन्वे मह्यं शरीराय रेक्णो धनं ददिर्दाता भव । कदेति उच्यते । नूनं क्षिप्रमथेदानीमेव । एवं प्रतिवाक्यं योज्यं । तथा वसु धनं पुत्रादिभ्यो ददिर्दाता भव । तथा वाजेषु संग्रामेषु वाजिनमन्नवंतं रयिं ददिर्दाता भवेति ॥ अत्र सर्वेष्वपि वाक्येषु ददिरित्यस्य लिङ्गावान्न लोकाव्ययेति षष्ठीप्रतिषेधः ॥ ॥३॥

विश्वेषामिरज्यंतं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः । कृपयतो नूनमत्यथ ॥१६॥
विश्वेषां । इरज्यंतं । वसूनां । ससह्वांसं । चित् । अस्य । वर्पसः । कृपऽयतः । नूनं ।
अति । अथ ॥१६॥

हे इंद्र त्वां विश्वेषां सर्वेषां वसूनां धनानामिरज्यंतमीशानमस्य वर्पसो वारकस्य कृपयतो युद्धं कल्पयतः शत्रोः सासह्वांसमभिभवितारं स्तुवंत इति शेषः । स त्वं नूनं चिप्रमद्यापीदानीमपि धनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥१७॥
महः । सु । वः । अरं । इषे । स्तवामहे । मीळ्हुषे । अरंऽगमाय । जग्मये ।
यज्ञेभिः । गीःऽभिः । विश्वऽमनुषां । मरुतां । इयक्षसि । गाये । त्वा । नमसा । गिरा ॥१७॥

हे इंद्र महो महतो वः । तवेत्यर्थः ॥ व्यत्ययेन बहुवचनं ॥ अरं गमनमस्मद्विषयमिच्छामि ॥ अर्तेररमिति रूपं ॥ तदर्थं मीळ्हुषे सेक्त्रेऽरंगमाय संपूर्णगमनाय जग्मये गमनशीलाय यज्ञं प्रति एवंभूताय देवाय स्तवामहे । त्वां स्तुम इत्यर्थः । केन साधनेनेति तदुच्यते । यज्ञेभिर्यजनसाधनैर्हविर्भिर्यज्ञैरेव वा गीर्भिः स्तुतिभिः । हे देव विश्वमनुषां विश्वेषां मनुष्याणां यष्टॄणामियक्षसि । एतैरिज्यसे । मरुतां संबंधी त्वं । किंच त्वा त्वां नमसा नमस्कारेण गिरा स्तुत्या च गाये । स्तुवे ॥

ये पातयंते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषां ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥१८॥
ये । पातयंते । अज्मऽभिः । गिरीणां । स्नुऽभिः । एषां ।
यज्ञं । महिऽस्वनीनां । सुम्नं । तुविऽस्वनीनां । प्र । अध्वरे ॥१८॥

ये मरुतो गिरीणां मेघानां स्नुभिः प्रस्रवद्भिरज्मभिर्बलैर्बलकरैरुदकैः सह पातयंते पतंति गच्छंति एषां मरुतां महिष्वणीनां प्रभूतध्वनीनां यज्ञं कर्म इति शेषः । कृत्वा च तुविष्वणीनां बहुध्वनीनां सुम्नं सुखं तैः कृतमध्वरे यज्ञे प्र प्राप्नुयाम । अथवा । चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । प्रभूतस्वनेभ्यः सुम्नमुक्तलक्षणं हविः प्र प्राप्नुयामाध्वरे यज्ञे ॥

प्रभंगं दुर्मतीनामिंद्र शविष्ठा भर ।
रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥१९॥
प्रऽभंगं । दुःऽमतीनां । इंद्र । शविष्ठ । आ । भर ।
रयिं । अस्मभ्यं । युज्यं । चोदयत्ऽमते । ज्येष्ठं । चोदयत्ऽमते ॥१९॥

दुर्मतीनां दुष्टमनस्कानां वृत्रादीनां प्रभंगं प्रकर्षेण भंजकं त्वां याचामह इति शेषः । हे इंद्र शविष्ठातिशयेन बलवन् स्तुतस्त्वमस्मभ्यं रयिं धनं युज्यं योग्यमस्माकमुचितं धनमा भर । आहर । हे चोदयन्मते । चोदयंती धनं प्रेरयंती मतिर्यस्य स तथोक्तः । हे तादृश देव । किंच हे चोदयन्मत उक्तार्थ ज्येष्ठं धनमा भर ॥

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहंतं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यं ॥२०॥

सनितरिति । सुऽसनितः । उग्र । चित्र । चेतिष्ठ । सूनृत ।
प्रऽसहा । सम्ऽराट् । सहुरिं । सहन्तं । भुज्युं । वाजेषु । पूर्व्यं ॥२०॥

हे सनितः संभक्तर्दातर्वोग्रोद्गूर्णबल चित्र चायनीय चेतिष्ठात्यंतं चेतयितः सूनृत सुसत्य प्रासहा प्रसह्य हे सम्राट् सर्वस्य स्वामिन् सम्यग्राजमान वा त्वं सहुरिं सहनशीलं भुज्युं भोजयितारं पूर्व्यं प्रवृद्धं । मुख्यमित्यर्थः । ईदृशं धनं वाजेषु संग्रामेष्वाभरेति शेषः ॥ ॥४॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥२१॥
आ । सः । एतु । यः । ईवत् । आ । अदेवः । पूर्तं । आऽददे ।
यथा । चित् । वशः । अश्व्यः । पृथुऽश्रवसि । कानीते । अस्याः । विऽउषि । आऽददे ॥२१॥

अत्र शौनकः । वशायाश्व्याय यत्प्रादात्कानीतस्तु पृथुश्रवाः । तदत्र स्तूयते दानमा स एत्वेवमादिभिः ।बृ॰ ६. ८८७.॥ एतु आगच्छतु स योऽदेवो देवादन्यो मनुष्यो वश ईवद्गमनवद्गवादिलक्षणं पूर्तं पूर्णमाददे आदत्ते । स्वीकृतवानित्यर्थः । देवश्चेन्मायया प्यागंतुमर्हति । अतः प्रकाशेनैवागच्छत्वित्यर्थः । कथमस्य धनावाप्तिप्रसंग आगमनप्रसंगश्चेति तदुच्यते । यथा चित् । चिदिति पूरणः । येन कारणेन यस्माद्वा वश एतत्संज्ञकोऽश्व्योऽश्वपुत्रः पृथुश्रवस्येतन्नामके राज्ञि कानीते कनीतपुत्रे कन्यायाः पुत्रेऽस्या उषसो व्युषि व्युष्टावाददे आदत्ते तेन कारणेन तस्माद्वा कारणादायात्विति । एवमश्व्यो बंधुवर्गो वा ब्रूते ॥

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्रानां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥
षष्टिं । सहस्रा । अश्व्यस्य । अयुता । असनं । उष्ट्रानां । विंशतिं । शता ।
दश । श्यावीनां । शता । दश । त्रिऽअरुषीणां । दश । गवां । सहस्रा ॥२२॥

स वश आगत्य ब्रूते । अश्व्यस्याश्वसंबंधिनः षष्टिं सहस्रा सहस्राण्ययुतायुतानि चासनं । अभजं । उष्ट्राणां विंशतिं शता शतानि चासनं । श्यावीनां श्याववर्णानां वडवानां दश शता शतानि चासनं । त्र्यरुषीणां त्रीण्यारोचमानानि शुभ्राणि ककुत्पृष्ठपार्श्वादिस्थानानि यासां तादृशीनां गवां दश सहस्रा सहस्राण्यभजं ॥

दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः । मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥२३॥
दश । श्यावाः । ऋधत्ऽरयः । वीतऽवारासः । आशवः । मथ्राः । नेमिं । नि । ववृतुः ॥२३॥

दश दशसंख्याकाः श्यावाः श्याववर्णा आशवोऽश्वा नेमिं रथनेमिं नि वावृतुः । निवर्तयंति । रथं वहंतीत्यर्थः । ईदृशास्त ऋधद्रयः प्रवृद्धवेगा वीतवारासः क्रांतबलाः प्राप्तबला वाशवो मथ्रा मथनशीलाः ॥

दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥
दानासः । पृथुऽश्रवसः । कानीतस्य । सुऽराधसः ।
रथं । हिरण्ययं । ददत् । मंहिष्ठः । सूरिः । अभूत् । वर्षिष्ठं । अकृत । श्रवः ॥२४॥

पूर्वमंत्रैः प्रतिपादितानि धनानि बंधूनां पितुर्वा पुरस्तान्निर्दिशन्नाशास्ते। पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः शोभनधनस्य। यतस्तस्य धनं दानाय कल्पितं अतः स सुराधाः। तस्य दानासो दाना दत्तानि धनानीमानि। स च पृथुश्रवाः पूर्वमुक्तानि हिरण्ययं हिरण्मयं रथं च ददत् प्रयच्छन् मंहिष्ठोऽतिशयेन दाता सूरिः सर्वस्य प्रेरकः प्राज्ञो वाभूत्। भवति। भवतु वा। वर्षिष्ठमतिशयेन प्रवृद्धं श्रवः कीर्तिमकृत। करोति। करोतु वा॥

आ नो वायविलेषा पंचमेऽहनि प्रउगशस्त्रे वायव्यतृचे तृतीया। आ नो वायो महे तने इत्येका रथेन पृथुपाजसा। आ॰ ७.१२.। इति हि सूचितं॥

आ नो॑ वायो म॒हे तने॑ या॒हि म॒खाय॒ पाज॑से।
व॒यं हि ते॑ चकृ॒मा भूरि॑ दा॒वने॑ स॒द्यश्चि॒न्महि॑ दा॒वने॑ ॥२५॥
आ। नः॒। वा॒यो॒ इति॑। म॒हे। तने॑। या॒हि। म॒खाय॑। पाज॑से।
व॒यं। हि। ते॒। च॒कृ॒म। भूरि॑। दा॒वने॑। स॒द्यः। चि॒त्। महि॑। दा॒वने॑ ॥२५॥

हे वायो त्वं नोऽस्मान् प्रत्या याहि। आगच्छ। किमर्थं। महे महते तने धनाय मखाय महनीयाय पाजसे बलाय च। उभयं प्रदातुमित्यर्थः। किमत्रास्तीति चेत् उच्यते। वयं हि वयं खलु ते भूरि दावने प्रभूतधनदात्रे चकृम स्तुतिं हविर्वा। सद्यश्चित्तदानीमेव तवागमनानंतरमेव चकृम महि महतो धनस्य दावने दात्रे॥ ॥५॥

यो अश्वे॑भि॒र्वह॑ते॒ वस्त॑ उ॒स्रास्त्रिः स॒प्त स॑प्तती॒नां।
ए॒भिः सोमे॑भिः सोम॒सुद्भिः॑ सोमपा दा॒नाय॑ शुक्रपूतपाः ॥२६॥
यः। अश्वे॑भिः। वह॑ते। वस्ते॑। उ॒स्राः। त्रिः। स॒प्त। स॒प्त॒ती॒नां।
ए॒भिः। सोमे॑भिः। सो॒म॒सुत्ऽभिः॑। सो॒म॒ऽपाः॒। दा॒नाय॑। शु॒क्र॒पू॒त॒ऽपाः॒ ॥२६॥

यः पृथुश्रवा अश्वेभिरश्वैर्वहते गृहं वस्ते चोस्रा गाः। ताभिश्च गच्छतीत्यर्थः। त्रिः सप्तेति तासां गवां संख्योक्ता। सा संख्या विशेष्यते। सप्ततीनां त्रिः सप्त। उक्तसंख्याकाभिर्गोभिरश्वैश्च यो गच्छति स पृथुश्रवा एभिः सोमेभिः सोमैः सोमसुद्भिः सोममभिषुण्वद्भिश्च हे सोमपाः। सोमस्य पातरिति वायोः संबोधनं। हे शुक्रपूतपा दीप्तपूतस्य च सोमस्य पातर्वायो दानाय तुभ्यं सोमं दातुं सोमैर्युक्तो भवतीति शेषः॥

यो म॑ इ॒मं चि॑दु॒ त्मनाम॑न्दच्चि॒त्रं दा॒वने॑।
अ॒र॒ट्वे अक्षे॒ नहु॑षे सु॒कृत्व॑नि सु॒कृत्त॑राय सु॒क्रतुः॑ ॥२७॥
यः। मे॒। इ॒मं। चि॒त्। ऊं॒ इति॑। त्मना॑। अम॑न्दत्। चि॒त्रं। दा॒वने॑।
अ॒र॒ट्वे। अक्षे॑। नहु॑षे। सु॒ऽकृत्व॑नि। सु॒कृत्ऽत॑राय। सु॒ऽक्रतुः॑ ॥२७॥

यः पृथुश्रवा मे मह्यमिमं पुरतोवर्तमानं चित्रं चायनीयं गवाश्वादिकं दावने दानाय त्मनात्मना स्वबुद्ध्यैवामंदत अमंदत अमादयत। स च सुक्रतुः शोभनकर्मा राजा सुकृत्तराय सुकृतकर्तृत्वायारट्वेऽक्षे नहुषे सुकृत्वनि च। एते तस्य राज्ञोऽध्यक्षाः। तेष्वन्वशात् अक्षी गवादिकान् संयोजयतेति। यद्वा। अरट्वादयोऽन्ये राजानः। तेषु मध्ये सुकृत्तरायामंददिति॥

उचथ्ये३ वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥२८॥
उचथ्ये । वपुषि । यः । स्वऽराट् । उत । वायो इति । घृतऽस्नाः ।
अश्वऽइषितं । रजःऽइषितं । शुनाऽइषितं । प्र । अज्मं । तत् । इदं । नु । तत् ॥२८॥

उचथ्ये वक्तव्ये स्तुत्ये वपुषि शरीरे यः स्वराट् स्वयं राजते । यद्वा । उचथ्यो वपुश्चोभौ राजानौ । तयोरपि यः स्वराट् स्वाराज्यं करोति अतिशयेन वर्तते । हे वायो यश्च घृतस्ना घृतवच्छुद्धः स राजाश्वेषितमश्वैः प्रापितं रजेषितं । रजःशब्देनोष्ट्रो गर्दभो वोच्यते । तेनाप्यानीतं शुनेषितं चाज्मान्नं प्रादात् । तदन्नमश्वाद्यानीतमिदं पुरतो दृश्यते । तत्तवैवानुग्रहादित्यर्थः । अथवैकस्तच्छब्दः पूरणः । अश्वाद्यानीतं यदस्ति तदिदं खल्विति ॥

अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनं । अश्वानामिन्न वृष्णां ॥२९॥
अध । प्रियं । इषिराय । षष्टिं । सहस्रा । असनं । अश्वानां । इत् । न । वृष्णां ॥२९॥

अधाधुनेषिराय धनादिप्रेरयित्रे राज्ञे प्रियं प्रद्वेयमश्वानामिव वृष्णां सेक्तॄणां गवां सहस्रा सहस्राणां षष्टिं षष्टिसहस्रसंख्याकं प्रियभूतमसनं । अभजं ॥

गावो न यूथमुप यंति वध्रय उप मा यंति वध्रयः ॥३०॥
गावः । न । यूथं । उप । यंति । वध्रयः । उप । मा । आ । यंति । वध्रयः ॥३०॥

गावो न गाव इव ता यथा संगवे यूथमुप यंति उपगच्छंति तद्वद्वध्रयश्छिन्नमुष्का वृषभाः पृथुश्रवसा दत्ता मा मामुप यंति । समीपं प्राप्नुवंति । मा मां वध्रय उपा यंतीति पुनरुक्तिरादरार्था ॥

अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् । अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥३१॥
अध । यत् । चारथे । गणे । शतं । उष्ट्रान् । अचिक्रदत् । अध । श्वित्नेषु । विंशतिं ।
शता ॥३१॥

अधाथ यद्यदा चारथे । चरथं चरणं गमनं । तत्संबंधिनि चार्यमाणे । वनाय प्रेर्यमाण इत्यर्थः । तादृशे गण उष्ट्रसंघ उष्ट्राञ्छतमुष्ट्राणां शतमचिक्रदत् अस्मभ्यं प्रदानायाजुहाव । अधापि चास्मदर्थमेव श्वित्नेषु श्वेतवर्णेषु गोयूथेषु विंशतिं च शता शतानि च अथवा शतानां विंशतिमचिक्रदत् ॥

शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।
ते ते वायविमे जना मदंतींद्रगोपा मदंति देवगोपाः ॥३२॥
शतं । दासे । बल्बूथे । विप्रः । तरुक्षे । आ । ददे ।
ते । ते । वायो इति । इमे । जनाः । मदंति । इंद्रऽगोपाः । मदंति । देवऽगोपाः ॥३२॥

अयं विप्रो मेधावी वशो जनोऽहं बल्बूथ एतन्नामके दासे तरुक्षे गवाश्वादीनां तारके गवाद्यधिकृते राज्ञास्माकं प्रदिष्टधनदातर्या ददे । किं दानं । गवाश्वादीनां शतं । शतशब्दोऽपरिमितवचनः । हे वायो ते तव स्वभूतास्ते स्तोतार इमे जनाः । वयमित्यर्थः । आत्मन एव परोक्षत्वेन वादः । त्वयानुगृहीतत्वादिंद्रगोपाः ।

इंद्रो गोपायिता येषां ते तथोक्ताः । इंद्रेण रक्षिता मदंति । तथा देवगोपा मदंति । इंद्रं देवांश्च राज्ञो लब्धेन धनेन यजंतो मदंतीत्यर्थः ॥

अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यं । अधिरुक्मा वि नीयते ॥३३॥

अध । स्या । योषणा । मही । प्रतीची । वशं । अश्व्यं । अधिऽरुक्मा । वि । नीयते ॥३३॥

अधाधुना स्या सा योषणा योषा राज्ञा प्रदत्ता मही महती पूज्या प्रतीच्यस्मदभिमुख्यश्व्यमश्वपुत्रं वशं मां प्रति साधिरुक्माभरणा सती वि नीयते । तां कन्यां मां प्रत्यानयंतीत्यर्थः । अत्र वायव्यास्वृक्षु यत्र वायुर्न स्तूयते परं दानप्रशंसैव तासु सर्वासु हे वायो त्वदनुग्रहादेवमिति योज्यं वायुपरत्वमवगंतव्यं ॥ ॥६॥

महि व इत्यष्टादशर्चं पंचमं सूक्तमाप्त्यस्य त्रितस्यार्षं । षडष्टका महापंक्तिश्छंदः । आद्यास्त्रयोदशर्च आदित्यदेवताकाः । यद्य गोष्वित्याद्याः पंचर्च उषोदेवताका आदित्यदेवताकाश्च । तथा चानुक्रमणिका । महि वो ह्यूना त्रित आप्त्य आदित्येभ्योऽंत्याः पंचोषसेऽपि महापांक्तमिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१॥

महि । वः । महतां । अवः । वरुण । मित्र । दाशुषे ।
यं । आदित्याः । अभि । द्रुहः । रक्षथ । न । ईं । अघं । नशत् । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥१॥

हे वरुण हे मित्र । एतद्द्वयमर्यम्णोऽप्युपलक्षणं । हे वरुणादयः महतां वो युष्माकमवो रक्षणं महि महत् । कस्मै । दाशुषे हविर्दात्रे यजमानाय क्रियमाणं । किंच हे आदित्याः यं यजमानं द्रुहो द्रोग्धुः सकाशादभि रक्षथ ईमेनं यजमानमघं पापं न नशत् । न प्राप्नोति । कुत एवमिति तत्रोच्यते । वो युष्माकमूतयो रक्षणान्यनेहसोऽपापान्यनुपद्रवाणि च । ऊतयो युष्माकं रक्षणानि सुऊतयः शोभनरक्षणानि । पुनरुक्तिरादरार्था ॥

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिं ।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥२॥

विद । देवाः । अघानां । आदित्यासः । अपऽआकृतिं ।
पक्षा । वयः । यथा । उपरि । वि । अस्मे इति । शर्म । यच्छत । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥२॥

हे देवा आदित्यास आदित्याः यूयमघानां दुःखानामपाकृतिमपाकरणं परिहारप्रकारं विद । जानीथ । यस्मादेवं तस्माद्वयः पक्षिणो यथा पक्षा पक्षावुपरि स्वशिशुकानामुपरि कुर्वंति सुखाय तद्वदस्मे अध्यस्मासु शर्म सुखं यच्छत । कुरुत ॥ अधीति सप्तम्यर्थानुवादी ॥ अस्मे अस्माकमुपरीति वा ॥

व्य१स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यंतन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥३॥

वि । अस्मे इति । अधि । शर्म । तत् । पक्षा । वयः । न । यंतन ।
विश्वानि । विश्वऽवेदसः । वरूथ्या । मनामहे । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।
वः । ऊतयः ॥३॥

हे आदित्याः यूयमस्मे अध्यस्मासु तत् । युष्मास्वेवासाधारणं यच्छर्मास्ति तदित्यर्थः । तद्वि यंतन । विशेषेण प्रापयत । हे विश्ववेदसः सर्वधनाः युष्मान् विश्वानि सर्वाणि वरूथ्या । वरूथं गृहं । तदुचितानि धनानि मनामहे । याचामहे ॥

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥४॥
यस्मै । अरासत । क्षयं । जीवातुं । च । प्रऽचेतसः ।
मनोः । विश्वस्य । घ । इत् । इमे । आदित्याः । रायः । ईशते । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥४॥

यस्मै मनुष्याय क्षयं निवासं जीवातुं जीवनसाधनमन्नं च प्रचेतसः प्रकृष्टमतयोऽरासत प्रयच्छंति तस्मै यजमानाय तदर्थमिम आदित्या विश्वस्य घेत् सर्वस्याप्ययष्टुर्मनोर्मनुष्यस्य धनिकस्य रायो धनस्येशते । स्वामिनो भवंत्यपहृत्य यजमानाय प्रदातुं ॥

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिंद्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥५॥
परि । नः । वृणजन् । अघा । दुःऽगानि । रथ्यः । यथा ।
स्याम । इत् । इंद्रस्य । शर्मणि । आदित्यानां । उत । अवसि । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥५॥

परि वृणजन् परिवर्जयंतु नोऽस्माकमघानि पापानि । तत्र दृष्टांतः । दुर्गाणि दुर्गमनान् प्रदेशानवटाधिष्ण्यादिकान् यथा परिवर्जयंति तद्वत् । इंद्रस्य शर्मणि स्याम । भवेम वयं । उतापि चादित्यानामवसि रक्षणे च स्याम ॥ ॥७॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥६॥
परिऽह्वृता । इत् । अना । जनः । युष्माऽदत्तस्य । वायति ।
देवाः । अदभ्रं । आश । वः । यं । आदित्याः । अहेतन । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥६॥

परिह्वृतेत् परिपीडितेनैव तपोनियमादिनाना प्राणयुक्तो जनो युष्मादत्तस्य युष्माभिर्दत्तं धनं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ वायति । गच्छति । हे देवा हे आशवः शीघ्रगमनाः यूयं यं यजमानमहेतन प्राप्नुथः स जनोऽदभ्रमनल्पं धनं वायति प्राप्नोतीति संबंधः ॥

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥७॥
न। तं। तिग्मं। चन। त्यजः। न। द्रासत्। अभि। तं। गुरु।
यस्मै। ऊं इति। शर्म। सऽप्रथः। आदित्यासः। अराध्वं। अनेहसः। वः। ऊतयः।
सुऽऊतयः। वः। ऊतयः ॥७॥

तं मनुष्यं तिग्मं चन तीक्ष्णमेव संतं त्यजः। क्रोधनामैतत्। अत्र क्रोधात्प्रयुज्यमानमायुधमुच्यते। न द्रासत् ॥ द्रा कुत्सायां गतौ ॥ कुत्सितं नागच्छति। न हिनस्तीत्यर्थः। तथा तं जनं गुरु प्रवृद्धमपरिहारार्हं दुःखं न द्रासत्। न गच्छति। हे आदित्यास आदित्याः सप्रथः समानप्रथनाः सर्वतः पृथुभूता वा यूयं यस्मा उ यस्मै यजमानाय। उशब्दः पूरणः। शर्म सुखमराध्वं अदत्त तं न द्रासदिति ॥

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यंत इव वर्मसु।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥८॥
युष्मे इति। देवाः। अपि। स्मसि। युध्यंतःऽइव। वर्मऽसु।
यूयं। महः। नः। एनसः। यूयं। अर्भात्। उरुष्यत। अनेहसः। वः। ऊतयः। सुऽऊतयः।
वः। ऊतयः ॥८॥

हे देवा आदित्याः युष्मे युष्मासु वयमपि स्मसि। अपि भवेम। युष्माभिरपिहिताः स्मेत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। युध्यंतः शूरा वर्मसु कवचेषु यथा भवंति तद्वत्। यूयं नोऽस्मान् महो महत एनसः पापादुरुष्यत। रक्षत। तथा यूयमस्मानर्भादल्पादप्येनस उरुष्यत ॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु।
माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥९॥
अदितिः। नः। उरुष्यतु। अदितिः। शर्म। यच्छतु।
माता। मित्रस्य। रेवतः। अर्यम्णः। वरुणस्य। च। अनेहसः। वः। ऊतयः। सुऽऊतयः।
वः। ऊतयः ॥९॥

नोऽस्मानदितिरखंडनीया देवमातोरुष्यतु। रक्षतु। तथादितिः शर्म सुखं यच्छतु। अदितिर्विशेष्यते। या माता निर्मात्री। कस्य। मित्रस्य रेवतो धनवतोऽर्यम्णो वरुणस्य च। सा न उरुष्यत्विति ॥

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरं।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यंतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१०॥
यत्। देवाः। शर्म। शरणं। यत्। भद्रं। यत्। अनातुरं।
त्रिऽधातु। यत्। वरूथ्यं। तत्। अस्मासु। वि। यंतन। अनेहसः। वः। ऊतयः।
सुऽऊतयः। वः। ऊतयः ॥१०॥

हे देवा आदित्याः यच्छर्म सुखं शरणं शरणीयं। यद्भद्रं सर्वैर्भजनीयं। यदनातुरं रोगरहितं। यत्त्रिधातु त्रिगुणं। यद्वरूथ्यं। वरूथं गृहं। तदर्हं। तदुक्तगुणकं शर्मास्मासु वि यंतन। वियच्छत ॥ ॥८॥

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः।
सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥११॥
आदित्याः। अव। हि। ख्यत। अधि। कूलात्ऽइव। स्पशः।
सुऽतीर्थं। अर्वतः। यथा। अनु। नः। नेषथ। सुऽगं। अनेहसः। वः। ऊतयः।
सुऽऊतयः। वः। ऊतयः ॥११॥

हे आदित्याः यूयमव हि ख्यत। अव हि पश्यताधस्तात्स्थितानस्मान्। तत्र दृष्टांतः। कूलादधि कूले स्पशः स्पष्टाः। स्थिता इत्यर्थः। यथा कूलस्थः पुरुषोऽधोगतमुदकं जिघृक्षुस्तत्रस्थं मनुष्यं वा विलोकयितुमवाक्पश्यति तद्वत्। तथा कृत्वा सुतीर्थं शोभनावतारप्रदेशमर्वतोऽश्वान्यथा प्रापयंत्यश्वरक्षकाः तद्वन्नोऽस्मान् सुगं सुपंथानमनु नेषथ। अनुनयथ ॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१२॥
न। इह। भद्रं। रक्षस्विने। न। अवऽयै। न। उपऽयै। उत।
गवे। च। भद्रं। धेनवे। वीराय। च। श्रवस्यते। अनेहसः। वः। ऊतयः। सुऽऊतयः।
वः। ऊतयः ॥१२॥

हे आदित्याः इह भूमौ भद्रं कल्याणं सुखं रक्षस्विने। रक्षो बलं। बलवतेऽस्मद्विद्विष्टे न भवत्विति शेषः। अवया अस्मान् हिंसितुमवगच्छते न भवतु भद्रं। तथोपया उपगच्छते न भवतु। तर्हि कस्य भवत्विति उच्यते। गवे च भद्रं युष्मदीयं भवतु। चशब्दो वक्ष्यमाणधेन्वाद्यपेक्षः। किंच धेनवे नवप्रसूतिकायै भद्रं भवतु। वीरायास्मत्पुत्रादिकाय भद्रं भवतु। कीदृशाय वीराय। श्रवस्यतेऽन्नमिच्छते। अथवोत्तरार्धेऽपि नेत्यनुवर्तते। अस्मद्विरोधिनो गवादिकाय भद्रं न भवत्विति तस्यार्थः ॥

यदाविर्यदपीच्यं१ देवासो अस्ति दुष्कृतं।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥
यत्। आविः। यत्। अपीच्यं। देवासः। अस्ति। दुःऽकृतं।
त्रिते। तत्। विश्वं। आप्त्ये। आरे। अस्मत्। दधातन। अनेहसः। वः। ऊतयः।
सुऽऊतयः। वः। ऊतयः ॥१३॥

हे देवासो देवा आदित्याः यदाविर्यत्पापमाविर्भूतमस्ति। दुष्कृतं यच्चापीच्यमंतर्हितमस्ति। अपीच्यमित्यंतर्हितनाम। तद्विश्वं तदुभयमाप्त्ये त्रिते मयि मा भूत्। किंत्वस्मदारे दूरे दधातन। स्थापयत ॥

यच्च गोष्वित्यादिसूक्तशेषेण दुःस्वप्नं दृष्ट्वादित्यमुपतिष्ठेत्। तथा च स्वप्नममनोज्ञं दृष्ट्वेत्युपक्रम्य यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यमिति पंचभिरादित्यमुपतिष्ठेत्। आ० गृ० ३. ६. ६.। इति सूचितं ॥

यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

यत् । च । गोषु । दुःऽस्वप्न्यं । यत् । च । अस्मे इति । दुहितः । दिवः ।
त्रिताय । तत् । विभाऽवरि । आप्त्याय । परा । वह । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥१४॥

हे दिवो दुहितरुष उषोदेवते यच्च गोष्वस्मदीयासु दुष्ष्वप्न्यमनर्थसूचकं दृष्टं ॥ स्वार्थिको यत् ॥ किंच यच्च दुष्ष्वप्न्यमस्मे अस्मासु दृष्टं । गोपीडानिमित्तकमस्माकं पीडानिमित्तकं च यद्दुःस्वप्नं पश्याम इत्यर्थः । तत्सर्वं हे विभावरि । उषोनामैतत् । हे व्युच्छनवति देवि आप्त्याय त्रिताय परा वह । दूरे परिहर ॥

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१५॥
निष्कं । वा । घ । कृणवते । स्रजं । वा । दुहितः । दिवः ।
त्रिते । दुःऽस्वप्न्यं । सर्वं । आप्त्ये । परि । दद्मसि । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।
वः । ऊतयः ॥१५॥

हे दिवो दुहितरुषः निष्कं वा घाभरणविशेषं वा कृणवते कुर्वते स्वर्णकाराय यद्दुष्ष्वप्न्यं दृष्टं । स्वर्णकारेण निर्माणसमये दृष्टमित्यर्थः । घेति पूरणः । वाशब्दश्चार्थे । वाथवा स्रजं माल्यं कृणवते । कुर्वाण इत्यर्थः । तस्मिन्नपि मालाकारे मालानिर्माणसमये यद्दुष्ष्वप्न्यं दृष्टं तदुभयविषयं दुःस्वप्न्यमाप्त्येऽपां पुत्रे त्रिते वर्तमानं परि दद्मसि । उपरि दद्मः । वयं त्रिताः परित्यजामेत्यर्थः । अथवा । त्रिते मयि यद्दुष्ष्वप्न्यं दृष्टं तत्स्वर्णकाराय मालाकाराय वा परि दद्मसि । अस्मत्तोऽपि निष्कृष्य तयोरुपरि स्थापयामः ॥ ॥९॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१६॥
तत्ऽअन्नाय । तत्ऽअपसे । तं । भागं । उपऽसेदुषे ।
त्रिताय । च । द्विताय । च । उषः । दुःऽस्वप्न्यं । वह । अनेहसः । वः । ऊतयः ।
सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ॥१६॥

तदन्नाय । यदेव जागरावस्थायां भोज्यत्वेन प्रसिद्धं मधुपायसादि स्वप्नेऽपि तदेवान्नं यस्य सः । तादृशाय । प्रत्यक्षभोजनवत् स्वप्नेऽपि भोक्त्र इत्यर्थः । तथा तदपसे । यदेवापः कर्म निंदितं जाग्रदवस्थायां क्रियते तदेव कर्म स्वप्ने यस्य स तत्कर्मा । तादृशाय देवाय तं भागं दुःस्वप्नस्यांशमुपसेदुषे प्राप्नुवते त्रिताय द्विताय च हे उषो देवि दुष्ष्वप्न्यमन्नकर्मविषयं वह । अन्यत्र प्रापय । स्वप्ने दृष्टं मधुभोजनादिकं जाग्रदवस्थानुरूपवत्सुखकरं भवत्वित्यर्थः ॥

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१७॥
यथा । कलां । यथा । शफं । यथा । ऋणं । संऽनयामसि ।
एव । दुःऽस्वप्न्यं । सर्वं । आप्त्ये । सं । नयामसि । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः ।
वः । ऊतयः ॥१७॥

संज्ञापितं पशुं दानार्थं संस्कुर्वंतो यथा येन प्रकारेण कलां शफमिति संदायान्यत्र संनयंति। अथापरो यथाशब्दः पूरणः। अथवा। यथा कलां हृदयाद्यवयवमवदानार्हं संनयंति यथा च शफं शफोपलक्षितमनवदानार्हं शफास्थ्यादिकं संनयंति। यथा वा ऋणं शनैः संनयंति एवैवं दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये वर्तमानं सं नयामसि। संनयामः। अपसारयामः॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयं।
उषो यस्माद्दुष्ष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१८॥
अजैष्म। अद्य। असनाम। च। अभूम। अनागसः। वयं।
उषः। यस्मात्। दुःऽस्वप्न्यात्। अभैष्म। अप। तत्। उच्छतु। अनेहसः। वः। ऊतयः।
सुऽऊतयः। वः। ऊतयः ॥१८॥

वयं त्रिता अद्याजैष्म। जयेम। असनाम च। संभजेम च सुस्वप्नं सुखं वा। अनागसोऽपापा अभूम। भवेम। हे उषः यस्माद्दुष्ष्वप्न्यादभैष्म भीताः स्म तत्पापमपोच्छतु। अपगच्छतु॥ ॥१०॥

स्वादोरभक्षीति पंचदशर्चं षष्ठं सूक्तं काण्वस्य प्रगाथस्यार्षं सोमदेवताकं त्रैष्टुभं। पंचमी जगती। सोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। स्वादोः पंचोना प्रगाथः सौम्यं त्रैष्टुभं पंचमी जगतीति॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवंतो अभि संचरंति ॥१॥
स्वादोः। अभक्षि। वयसः। सुऽमेधाः। सुऽआध्यः। वरिवोवित्ऽतरस्य।
विश्वे। यं। देवाः। उत। मर्त्यासः। मधु। ब्रुवंतः। अभि। संऽचरंति ॥१॥

अहं प्रगाथः सुमेधाः शोभनप्रज्ञः स्वाध्यः स्वाध्ययनः सुकर्मा वरिवोवित्तरस्यातिशयेन पूजां लभमानस्य स्वादोः सुष्ठ्वदनीयस्य स्वादुभूतस्य वयसोऽन्नस्य॥ एताः कर्मणि षष्ठ्यः॥ उक्तलक्षणं वयोऽन्नं सोमाख्यमभक्षि। भक्षयेय। यं यदन्नं विश्वे देवाः सर्वेऽपींद्रादय उतापि च मर्त्यासो मर्त्या मनुष्या मधु ब्रुवंतो मनोहरमेतदिति शब्दायंतोऽभि संचरंति अभिसंगच्छंते प्राप्नुवंति तदन्नमभक्षीति॥

अग्नीषोमप्रणयनेऽंतश्चेत्येषा। तथा च सूत्रितं। अंतश्च प्रागा अदितिर्भवासि श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं। आ॰ ४. १०.। इति॥

अंतश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य।
इंदविंद्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥
अंतरिति। च। प्र। अगाः। अदितिः। भवासि। अवऽयाता। हरसः। दैव्यस्य।
इंदो इति। इंद्रस्य। सख्यं। जुषाणः। श्रौष्टीऽइव। धुरं। अनु। राये। ऋध्याः ॥२॥

हे सोम त्वमंतश्च प्रागाः। हृदयस्य यागागारस्य वांतर्गच्छसि। गत्वा चादितिरदीनस्त्वं दैव्यस्य हरसः क्रोधस्यावयाता पृथक्कर्ता भवासि। भवसि। हर इति क्रोधनाम। हे इंदो सोम त्वमिंद्रस्य सख्यं जुषाणः सेवमानः श्रौष्टी। श्रुष्टीति क्षिप्रनाम। तत्संबंधी श्रौष्टी। क्षिप्रगाम्यश्वो धुरमिव रायेऽस्माकं धनलाभायान्वृध्याः। अनुगच्छसि। अथवाश्वो यथा धुरं वृत्त्वाभिमतदेशं प्रापयति तद्वदस्मान्प्रापय। अनुपूर्व ऋधिर्गत्यर्थः॥

अपाम सोममित्यादिके द्वे सोमपानोत्तरकालीनाख्याभिमर्शने हृदयाभिमर्शने च क्रमेण विनियुक्ते। तथा च सूत्रितं। अपाम सोमममृता अभूम शं नो भव हृद आ पीत इंदविति मुखहृदये अभिमृशेरन्निति ॥

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥
अपाम। सोमं। अमृताः। अभूम। अगन्म। ज्योतिः। अविदाम। देवान्।
किं। नूनं। अस्मान्। कृणवत्। अरातिः। किं। ऊं इति। धूर्तिः। अमृत। मर्त्यस्य ॥३॥

हे अमृतामरण सोम त्वामपाम। पानं करवाम। कुर्मः। ततोऽमृता अभूम। भवेम। यस्मात्त्वममृतः अतस्तव पानाद्वयमप्यमृताः स्याम। पश्चाज्ज्योतिर्द्योतमानं स्वर्गमगन्म। अविदाम ज्ञातवंतो देवान्। तथाभूतानस्मान्नूनमिदानीमरातिः शत्रुः किं कृणवत्। कुर्यात्। किमु किं वा मर्त्यस्येदानीं मनुष्यभूतस्य मम धूर्तिर्हिंसकः किं कृणवत्। कुर्यात् ॥

शं नो भव हृद आ पीत इंदो पितेव सोम सूनवे सुशेवः।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥
शं। नः। भव। हृदे। आ। पीतः। इंदो इति। पिताऽइव। सोम। सूनवे। सुऽशेवः।
सखाऽइव। सख्ये। उरुऽशंस। धीरः। प्र। नः। आयुः। जीवसे। सोम। तारीः ॥४॥

हे इंदो सोम अस्माभिः पीतस्त्वं नोऽस्माकं हृदे हृदयाय शं सुखमा भव। सुखभवने दृष्टांतद्वयं। पिता सूनवे स्वात्मजाय यथा सुखाय भवति यथा वा सखाहितान्निवर्त्य हिते स्थापयिता सखायं स्वसख्ये यथा सुशेवः सुसुखो भवति। शेवमिति सुखनाम। तद्वत्त्वमपि भव। किंच हे उरुशंस बहुभिर्बहुधा वा शंसनीय बहुकीर्ते सोम धीरो धीमांस्त्वं नोऽस्माकं जीवसे जीवनायायुरायुष्यं प्र तारीः। प्रवर्धय ॥

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु।
ते मा रक्षंतु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयंत्विंदवः ॥५॥
इमे। मा। पीताः। यशसः। उरुष्यवः। रथं। न। गावः। सं। अनाह। पर्वऽसु।
ते। मा। रक्षंतु। विऽस्रसः। चरित्रात्। उत। मा। स्रामात्। यवयंतु। इंदवः ॥५॥

इमे पीता यशसो यशस्करा उरुष्यवोऽस्माकं रक्षाकामाः सोमा गावो गोविकारभूता वध्यो रथं न रथमिव ता यथा रथं विस्रस्तं पर्वसु समनाह संदधते तद्वन्मां पीताः सोमाः पर्वसु संनह्यंतु। किंच ते सोमा मा मां विस्रसो विस्रस्ताच्चरित्राच्चरणादनुष्ठानाद्रक्षंतु। सोमः पीतश्चेत्कर्म ह्यविस्रस्तं भवति। उतापि च मा मां स्रामाद्व्याधेः सकाशादिंदवः पीता यवयंतु। पृथक्कुर्वंतु ॥ ॥११॥

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥
अग्निं। न। मा। मथितं। सं। दिदीपः। प्र। चक्षय। कृणुहि। वस्यसः। नः।
अथ। हि। ते। मदे। आ। सोम। मन्ये। रेवान्ऽइव। प्र। चर। पुष्टिं। अच्छ ॥६॥

हे सोम पीतस्त्वं मा मां मथितमग्निं नाभिमिव सं दिदीपः। संदीपय। प्र चक्षय च चक्षुषः संधुक्षणेन। नोऽस्मान् वस्यसोऽतिशयेन वसुमतः कृणुहि। कुरु। अथाधुना हि खलु ते त्वां हे सोम मदे मदाय मन्ये। स्तौमि। तथा सति रेवानिव धनवानिह। इवेति संप्रत्यर्थे। पुष्टिमस्मत्पोषमच्छ प्र चर। अभिगच्छ॥

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः।
सोम राजन्प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि॥७॥
इषिरेण। ते। मनसा। सुतस्य। भक्षीमहि। पित्र्यस्यऽइव। रायः।
सोम। राजन्। प्र। नः। आयूंषि। तारीः। अहानिऽइव। सूर्यः। वासराणि॥७॥

इषिरेणेच्छावता मनसा सुतस्य ते सुतमभिषुतं त्वां भक्षीमहि। पित्र्यस्य पितृसंबंधिनो धनस्येव धनमिव। पित्र्यं धनं यथैषणेन मनसोपभुंजते तद्वत्। भक्षित हे सोम राजन् स्वामिन् नोऽस्माकमायूंषि प्र तारीः। प्रवर्धय। वासराणि जगद्वासकान्यहानि सूर्य इव। अत्रैषणेन वैषणेन वार्षणेन वा। नि० ४.७.। इत्यादि-निरुक्तं ज्ञातव्यं॥

सोम राजन्मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या३स्तस्य विद्धि।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिंदो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः॥८॥
सोम। राजन्। मृळय। नः। स्वस्ति। तव। स्मसि। व्रत्याः। तस्य। विद्धि।
अलर्ति। दक्षः। उत। मन्युः। इंदो इति। मा। नः। अर्यः। अनुऽकामं। परा। दाः॥८॥

हे सोम राजन् नोऽस्मान् स्वस्त्यविनाशाय मृळय। सुखय च। व्रत्या व्रतिनो वयं तव स्मसि। स्वभूताः स्म। तस्य तं स्वकीयं तव विद्धि। जानीहि। अथवा तव त्वमित्यर्थः। त्वं जानीहि। किंच हे इंदो दक्षः प्रवृद्धो ऽस्मच्छत्रुरलर्ति। गच्छति। उतापि च मन्युः क्रोधः क्रुद्धो वालर्ति। तादृशस्योभयविधस्यार्योऽरेरनुकामं यथा-कामं नोऽस्मान्मा परा दाः। परादेहि॥

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः॥९॥
त्वं। हि। नः। तन्वः। सोम। गोपाः। गात्रेऽगात्रे। निऽससत्थ। नृऽचक्षाः।
यत्। ते। वयं। प्रऽमिनाम। व्रतानि। सः। नः। मृळ। सुऽसखा। देव। वस्यः॥९॥

हे सोम देव त्वं नोऽस्माकं तन्वस्तनोरंगस्य गोपा हि रक्षिता खलु। अतो गात्रे गात्रे सर्वेष्वंगेषु नृचक्षा नृणां कर्मनेतॄणां द्रष्टा त्वं निषसत्थ। निषीदसि। यद्यद्यपि ते तव व्रतानि कर्माणि वयं प्रमिनाम हिंस्मः तथापि हे देव स त्वं वस्यः श्रेष्ठान्नोऽस्मान् सुषखा शोभनसखा सन् मृळ। सुखय॥

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इंद्रं प्रतिरमेम्यायुः॥१०॥
ऋदूदरेण। सख्या। सचेय। यः। मा। न। रिष्येत्। हरिऽअश्व। पीतः।
अयं। यः। सोमः। नि। अधायि। अस्मे इति। तस्मै। इंद्रं। प्रऽतिरं। एमि। आयुः॥१०॥

अहं प्रगाथ ऋदूदरेणोदराबाधकेन सोमेन सख्या सचेय। संगच्छेय। संगतो भवामि। ऋदूदरः सोमो मृदूदरः। नि० ६.४.। इति यास्कः। यः सोमः पीतः सन् मा मां न रिष्येत् न हिंस्येत् हे हर्यश्वेंद्र। सौम्ये सूक्त इंद्रस्य कीर्तनं सोमस्येंद्रस्वामिकत्वान्न विरुद्धं। योऽयं सोमोऽस्मे अस्मासु न्यधायि निहितोऽभूत् तस्मै सोमाय प्रतिरमायुर्जठरे चिरकालावस्थानमिंद्रमेमि। याचे॥ ॥१२॥

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरंत आयुः॥११॥
अप। त्याः। अस्थुः। अनिराः। अमीवाः। निः। अत्रसन्। तमिषीचीः। अभैषुः।
आ। सोमः। अस्मान्। अरुहत्। विऽहायाः। अगन्म। यत्र। प्रऽतिरंते। आयुः॥११॥

त्यास्ता अनिराः प्रेरयितुमशक्या अमीवा बलवत्यः पीडा अपास्थुः। अपगच्छंतु। यास्तमिषीचीर्बलवत्यो ऽस्मान्निर्नितरामत्रसन् प्राप्नुवन् कंपयंति तथाभैषुः। अपगमे कारणमाह। यस्मात्सोमो विहाया महान् सन्नस्मानारुहत् आगमत् प्राप्तवान् अतोऽपास्थुरिति भावः। यत्र यस्मिन् सोमे पीत आयुरायुष्यं प्रतिरंते वर्धयंति मनुष्यास्तं सोममगन्मेति॥

यो न इंदुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम॥१२॥
यः। नः। इंदुः। पितरः। हृत्ऽसु। पीतः। अमर्त्यः। मर्त्यान्। आऽविवेश।
तस्मै। सोमाय। हविषा। विधेम। मृळीके। अस्य। सुऽमतौ। स्याम॥१२॥

हे पितरः य इंदुर्हृत्सु पीतः सन्नमर्त्यो मृतिरहितः सन्नाविवेश मर्त्यान्नोऽस्मान् तस्मै सोमाय हविषा विधेम। परिचरेम। अस्य सोमस्य मृळीके सुखे सुमतौ चानुग्रहबुद्धौ च स्याम। भवेम॥

महापितृयज्ञे सोमाय पितृमते पुरोडाशमित्यत्र त्वं सोमेति याज्या। सूत्रितं च। त्वं सोम पितृभिः संविदानो बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्। आ० २.१९.। इति॥ तृतीयसवने सोमस्य चरोरपीयं याज्या। त्वं सोम पितृभिः संविदान इति सौम्यस्य। आ० ५.१९.। इति हि सूत्रितं॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततंथ।
तस्मै त इंदो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणां॥१३॥
त्वं। सोम। पितृऽभिः। संऽविदानः। अनु। द्यावापृथिवी इति। आ। ततंथ।
तस्मै। ते। इंदो इति। हविषा। विधेम। वयं। स्याम। पतयः। रयीणां॥१३॥

हे सोम त्वं पितृभिः सह संविदानः संगच्छमानो द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यावन्वा ततंथ। क्रमेण विस्तारयसि। तस्मै सोमाय हविषा विधेम। परिचरेम। वयं रयीणां धनानां पतयः स्याम। भवेम॥

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥१४॥
त्रातारः। देवाः। अधि। वोचत। नः। मा। नः। निऽद्रा। ईशत। मा। उत। जल्पिः।
वयं। सोमस्य। विश्वह। प्रियासः। सुऽवीरासः। विदथं। आ। वदेम॥१४॥

हे त्रातारो रक्षितारो हे देवाः नोऽस्मानधि वोचत । अधिवचनं कुरुत । किंच नोऽस्मान्निद्राः स्वप्ना मेशत । ईश्वरा मा भुवन् बाधितुं । उतापि च जल्पिर्निंदकोऽस्मान्मा निंदतु । वयं सोमस्य प्रियासः प्रियाः स्याम विश्वह सर्वेष्वप्यहःसु । सर्वदेत्यर्थः । सुवीरासः शोभनपुत्राः संतो विदथं स्तोत्रमा वदेम । आभिमुख्येन वदेम । अथवा । सुपुत्रा विदथं गृहमा वदेम । आवदनं पुत्रपौत्राणां धनेनोपच्छंदनं ॥

त्वं नः सोम विश्वत इति सौम्ये पशौ हविषोऽनुवाक्या । सूत्रितं च । त्वं नः सोम विश्वतो वयोधा या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां । आ० ३.७. । इति ॥

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं न इंद ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥१५॥
त्वं । नः । सोम । विश्वतः । वयःऽधाः । त्वं । स्वःऽवित् । आ । विश । नृऽचक्षाः ।
त्वं । नः । इंदो इति । ऊतिऽभिः । सऽजोषाः । पाहि । पश्चातात् । उत । वा । पुरस्तात् ॥१५॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं विश्वतः सर्वाभ्यो दिग्भ्यो वयोधा अन्नदाता । तथा त्वं स्वर्वित् स्वर्गलंभको नृचक्षाः सर्वमनुष्यद्रष्टा त्वमा विश । हे इंदो त्वं सजोषाः सह प्रीयमाणः सन्नूतिभिः सह । अथवोतयो गंतारो मरुतः । तैः सहितः सन् पश्चातात् पश्चादुत वा पुरस्ताच्च पाहि ॥ ॥१३॥ ॥६॥

॥ अथ वालखिल्यं ॥

॥ प्रथमं सूक्तं ॥

अभि प्र वः सुराधसमिंद्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥
अभि । प्र । वः । सुऽराधसं । इंद्रं । अर्च । यथा । विदे ।
यः । जरितृऽभ्यः । मघऽवा । पुरुऽवसुः । सहस्रेणऽइव । शिक्षति ॥१॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हंति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥
शतानीकाऽइव । प्र । जिगाति । धृष्णुऽया । हंति । वृत्राणि । दाशुषे ।
गिरेःऽइव । प्र । रसाः । अस्य । पिन्विरे । दत्राणि । पुरुऽभोजसः ॥२॥

आ त्वा सुतास इंदवो मदा ये इंद्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणंति शूर राधसे ॥३॥

आ । त्वा । सुतासः । इंदवः । मदाः । ये । इंद्र । गिर्वणः ।
आपः । न । वज्रिन् । अनु । ओक्यं । सरः । पृणंति । शूर । राधसे ॥३॥

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मंदसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥४॥
अनेहसं । प्रऽतरणं । विवक्षणं । मध्वः । स्वादिष्ठं । ईं । पिब ।
आ । यथा । मंदसानः । किरासि । नः । प्र । क्षुद्राऽइव । त्मना । धृषत् ॥४॥

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्स्वदयंति धेनव इंद्र कण्वेषु रातयः ॥५॥
आ । नः । स्तोमं । उप । द्रवत् । हियानः । अश्वः । न । सोतृऽभिः ।
यं । ते । स्वधाऽवन् । स्वदयंति । धेनवः । इंद्र । कण्वेषु । रातयः ॥५॥ ॥१४॥

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुं ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिंचते क्षरंतींद्र धीतयः ॥६॥
उग्रं । न । वीरं । नमसा । उप । सेदिम । विऽभूतिं । अक्षितऽवसुं ।
उद्रीऽइव । वज्रिन् । अवतः । न । सिंचते । क्षरंति । इंद्र । धीतयः ॥६॥

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥७॥
यत् । ह । नूनं । यत् । वा । यज्ञे । यत् । वा । पृथिव्यां । अधि ।
अतः । नः । यज्ञं । आशुऽभिः । महेऽमते । उग्रः । उग्रेभिः । आ । गहि ॥७॥

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥८॥
अजिरासः । हरयः । ये । ते । आशवः । वाताःऽइव । प्रऽसक्षिणः ।
येभिः । अपत्यं । मनुषः । परिऽईयसे । येभिः । विश्वं । स्वः । दृशे ॥८॥

एतावतस्त ईमह इंद्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९॥
एतावतः । ते । ईमहे । इंद्र । सुम्नस्य । गोऽमतः ।
यथा । प्र । आवः । मघऽवन् । मेध्यऽअतिथिं । यथा । नीपऽअतिथिं । धने ॥९॥

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनींद्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥
यथा । कण्वे । मघऽवन् । त्रसदस्यवि । यथा । पक्थे । दशऽव्रजे ।
यथा । गोऽशर्ये । असनोः । ऋजिश्वनि । इंद्र । गोऽमत् । हिरण्यऽवत् ॥१०॥ ॥१५॥

॥ अथ द्वितीयं सूक्तं ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥१॥
प्र । सु । श्रुतं । सुऽराधसं । अर्च । शक्रं । अभिष्टये ।
यः । सुन्वते । स्तुवते । काम्यं । वसु । सहस्रेणऽइव । मंहते ॥१॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इंद्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमंदिषुः ॥२॥
शतऽअनीकाः । हेतयः । अस्य । दुस्तराः । इंद्रस्य । संऽइषः । महीः ।
गिरिः । न । भुज्मा । मघवत्ऽसु । पिन्वते । यत् । ईं । सुताः । अमंदिषुः ॥२॥

यदीं सुतास इंदवोऽभि प्रियममंदिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥३॥
यत् । ईं । सुतासः । इंदवः । अभि । प्रियं । अमंदिषुः ।
आपः । न । धायि । सवनं । मे । आ । वसो इति । दुघाःऽइव । उप । दाशुषे ॥३॥

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरंति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इंदव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥४॥
अनेहसं । वः । हवमानं । ऊतये । मध्वः । क्षरंति । धीतयः ।
आ । त्वा । वसो इति । हवमानासः । इंदवः । उप । स्तोत्रेषु । दधिरे ॥४॥

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्स्वदंति गूर्तयः पौरे छंदयसे हवं ॥५॥
आ । नः । सोमे । सुऽअध्वरे । इयानः । अत्यः । न । तोशते ।
यं । ते । स्वदाऽवन् । स्वदंति । गूर्तयः । पौरे । छंदयसे । हवं ॥५॥ ॥१६॥

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥६॥
प्र । वीरं । उग्रं । विविचिं । धनऽस्पृतं । विऽभूतिं । राधसः । महः ।
उद्रीऽइव । वज्रिन् । अवतः । वसुऽत्वना । सदा । पीपेथ । दाशुषे ॥६॥

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इंद्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥७॥
यत् । ह । नूनं । पराऽवति । यत् । वा । पृथिव्यां । दिवि ।
युजानः । इंद्र । हरिऽभिः । महेऽमते । ऋष्वः । ऋष्वेभिः । आ । गहि ॥७॥

रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥८॥
रथिरासः । हरयः । ये । ते । अस्रिधः । ओजः । वातस्य । पिप्रति ।
येभिः । नि । दस्युं । मनुषः । निऽघोषयः । येभिः । स्व१रिति स्वः । परिऽईयसे ॥८॥

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥९॥
एतावतः । ते । वसो इति । विद्याम । शूर । नव्यसः ।
यथा । प्र । आवः । एतशं । कृत्व्ये । धने । यथा । वशं । दशऽव्रजे ॥९॥

यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियं ॥१०॥
यथा । कण्वे । मघऽवन् । मेधे । अध्वरे । दीर्घऽनीथे । दमूनसि ।
यथा । गोऽशर्ये । असिसासः । अद्रिऽवः । मयि । गोत्रं । हरिऽश्रियं ॥१०॥ ॥१९॥

॥ अथ तृतीयं सूक्तं ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिंद्रापिबः सुतं ।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१॥
यथा । मनौ । सांऽवरणौ । सोमं । इंद्र । अपिबः । सुतं ।
नीपऽअतिथौ । मघऽवन् । मेध्यऽअतिथौ । पुष्टिऽगौ । श्रुष्टिऽगौ । सचा ॥१॥

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितं ।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२॥
पार्षद्वाणः । प्रस्कण्वं । सं । असादयत् । शयानं । जिव्रिं । उद्धितं ।
सहस्राणि । असिसासत् । गवां । ऋषिः । त्वाऽऊतः । दस्यवे । वृकः ॥२॥

य उक्थेभिर्न विंधते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इंद्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यंतं न भोजसे ॥३॥
यः । उक्थेभिः । न । विंधते । चिकित् । यः । ऋषिऽचोदनः ।
इंद्रं । तं । अच्छ । वद । नव्यस्या । मती । अरिष्यंतं । न । भोजसे ॥३॥

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्वि१मा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यं ॥४॥
यस्मै । अर्कं । सप्तऽशीर्षाणं । आनृचुः । त्रिऽधातुं । उत्ऽतमे । पदे ।
सः । तु । इमा । विश्वा । भुवनानि । चिक्रदत् । आत् । इत् । जनिष्ट । पौंस्यं ॥४॥

यो नो दाता वसूनामिंद्रं तं हूमहे वयं ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥५॥
यः । नः । दाता । वसूनां । इंद्रं । तं । हूमहे । वयं ।
विद्म । हि । अस्य । सुऽमतिं । नवीयसीं । गमेम । गोऽमति । व्रजे ॥५॥ ॥१८॥

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निंद्र गिर्वणः सुतावंतो हवामहे ॥६॥
यस्मै । त्वं । वसो इति । दानाय । शिक्षसि । सः । रायः । पोषं । अश्नुते ।
तं । त्वा । वयं । मघऽवन् । इंद्र । गिर्वणः । सुतऽवंतः । हवामहे ॥६॥

कदा चन स्तरीरसि नेंद्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७॥
कदा । चन । स्तरीः । असि । न । इंद्र । सश्चसि । दाशुषे ।
उपऽउप । इत् । नु । मघऽवन् । भूयः । इत् । नु । ते । दानं । देवस्य । पृच्यते ॥७॥

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तंभीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८॥
प्र । यः । ननक्षे । अभि । ओजसा । क्रिविं । वधैः । शुष्णं । निऽघोषयन् ।
यदा । इत् । अस्तंभीत् । प्रथयन् । अमूं । दिवं । आत् । इत् । जनिष्ट । पार्थिवः ॥८॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥९॥
यस्य । अयं । विश्वः । आर्यः । दासः । शेवधिऽपाः । अरिः ।
तिरः । चित् । अर्ये । रुशमे । पवीरवि । तुभ्यं । इत् । सः । अज्यते । रयिः ॥९॥

तुरण्यवो मधुमंतं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इंदवः ॥१०॥
तुरण्यवः । मधुऽमंतं । घृतऽश्चुतं । विप्रासः । अर्कं । आनृचुः ।
अस्मे इति । रयिः । पप्रथे । वृष्ण्यं । शवः । अस्मे इति । सुवानासः । इंदवः ॥१०॥ ॥१९॥

॥ अथ चतुर्थं सूक्तं ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतं ।
यथा त्रिते छंद इंद्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥१॥
यथा । मनौ । विवस्वति । सोमं । शक्र । अपिबः । सुतं ।
यथा । त्रिते । छंदः । इंद्र । जुजोषसि । आयौ । मादयसे । सचा ॥१॥

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनींद्र सुवाने अमंदथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥२॥
पृषध्रे । मेध्ये । मातरिश्वनि । इंद्र । सुवाने । अमंदथाः ।
यथा । सोमं । दशऽशिप्रे । दशऽओण्ये । स्यूमऽरश्मौ । ऋजूनसि ॥२॥

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥३॥
यः । उक्था । केवला । दधे । यः । सोमं । धृषिता । अपिबत् ।
यस्मै । विष्णुः । त्रीणि । पदा । विऽचक्रमे । उप । मित्रस्य । धर्मऽभिः ॥३॥

यस्य त्वमिंद्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥४॥
यस्य । त्वं । इंद्र । स्तोमेषु । चाकनः । वाजे । वाजिन् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।
तं । त्वा । वयं । सुदुघांऽइव । गोऽदुहः । जुहूमसि । श्रवस्यवः ॥४॥

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५॥
यः । नः । दाता । सः । नः । पिता । महान् । उग्रः । ईशानऽकृत् ।
अयामन् । उग्रः । मघऽवा । पुरुऽवसुः । गोः । अश्वस्य । प्र । दातु । नः ॥५॥ ॥२०॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिंद्रं हवामहे ॥६॥
यस्मै । त्वं । वसो इति । दानाय । मंहसे । सः । रायः । पोषं । इन्वति ।
वसुऽयवः । वसुऽपतिं । शतऽक्रतुं । स्तोमैः । इंद्रं । हवामहे ॥६॥

कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इंद्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥७॥
कदा । चन । प्र । युच्छसि । उभे इति । नि । पासि । जन्मनी इति ।
तुरीय । आदित्य । हवनं । ते । इंद्रियं । आ । तस्थौ । अमृतं । दिवि ॥७॥

यस्मै त्वं मघवन्निंद्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवं ॥८॥
यस्मै । त्वं । मघऽवन् । इंद्र । गिर्वणः । शिक्षो इति । शिक्षसि । दाशुषे ।
अस्माकं । गिरः । उत । सुऽस्तुतिं । वसो इति । कण्वऽवत् । शृणुधि । हवं ॥८॥

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेंद्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९॥
अस्तावि । मन्म । पूर्व्यं । ब्रह्म । इंद्राय । वोचत ।
पूर्वीः । ऋतस्य । बृहतीः । अनूषत । स्तोतुः । मेधाः । असृक्षत ॥९॥

समिंद्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यं ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इंद्रममंदिषुः ॥१०॥
सं । इंद्रः । रायः । बृहतीः । अधूनुत । सं । क्षोणी इति । सं । ऊं इति । सूर्यं ।
सं । शुक्रासः । शुचयः । सं । गोऽआशिरः । सोमाः । इंद्रं । अमंदिषुः ॥१०॥ ॥२१॥

॥ अथ पंचमं सूक्तं ॥

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणां ।
पूर्भित्तमं मघवन्निंद्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥१॥
उपऽमं । त्वा । मघोनां । ज्येष्ठं । च । वृषभाणां ।
पूर्भित्ऽतमं । मघऽवन् । इंद्र । गोऽविदं । ईशानं । रायः । ईमहे ॥१॥

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयंतो हवामहे ॥२॥
यः । आयुं । कुत्सं । अतिथिऽग्वं । अर्दयः । ववृधानः । दिवेऽदिवे ।
तं । त्वा । वयं । हरिऽअश्वं । शतऽक्रतुं । वाजऽयंतः । हवामहे ॥२॥

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिंचंत्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतींदवः ॥३॥
आ । नः । विश्वेषां । रसं । मध्वः । सिंचंतु । अद्रयः ।
ये । पराऽवति । सुन्विरे । जनेषु । आ । ये । अर्वाऽवति । इंदवः ॥३॥

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वंत्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृंपसि ॥४॥
विश्वा । द्वेषांसि । जहि । च । अव । च । आ । कृधि । विश्वे । सन्वंतु । आ । वसु ।
शीष्टेषु । चित् । ते । मदिरासः । अंशवः । यत्र । सोमस्य । तृंपसि ॥४॥ ॥२२॥

इंद्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५॥
इंद्र । नेदीयः । आ । इत् । इहि । मितऽमेधाभिः । ऊतिऽभिः ।
आ । शंऽतम । शंऽतमाभिः । अभिष्टिऽभिः । आ । सुऽआपे । स्वापिऽभिः ॥५॥

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगं ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥६॥
आजिऽतुरं । सत्ऽपतिं । विश्वऽचर्षणिं । कृधि । प्रऽजासु । आऽभगं ।
प्र । सु । तिर । शचीभिः । ये । ते । उक्थिनः । क्रतुं । पुनते । आनुषक् ॥६॥

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥७॥
यः । ते । साधिष्ठः । अवसे । ते । स्याम । भरेषु । ते ।
वयं । होत्राभिः । उत । देवहूतिऽभिः । ससऽवांसः । मनामहे ॥७॥

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनां ॥८॥
अहं । हि । ते । हरिऽवः । ब्रह्म । वाजऽयुः । आजिं । यामि । सदा । ऊतिऽभिः ।
त्वां । इत् । एव । तं । अमे । सं । अश्वऽयुः । गव्युः । अग्रे । मथीनां ॥८॥ ॥२३॥

॥ अथ षष्ठं सूक्तं ॥

एतत्त इंद्र वीर्यं गीर्भिर्गृणंति कारवः ।
ते स्तोभंत ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१॥
एतत् । ते । इंद्र । वीर्यं । गीःऽभिः । गृणंति । कारवः ।
ते । स्तोभंतः । ऊर्जं । आवन् । घृतऽश्चुतं । पौरासः । नक्षन् । धीतिऽभिः ॥१॥

नक्षंत इंद्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मंदसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इंद्र मत्स्व ॥२॥
नक्षंते । इंद्रं । अवसे । सुऽकृत्यया । येषां । सुतेषु । मंदसे ।
यथा । संऽवर्ते । अमदः । यथा । कृशे । एव । अस्मे इति । इंद्र । मत्स्व ॥२॥

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गंतनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वंतु मरुतो हवं ॥३॥
आ । नः । विश्वे । सऽजोषसः । देवासः । गंतन । उप । नः ।
वसवः । रुद्राः । अवसे । नः । आ । गमन् । शृण्वंतु । मरुतः । हवं ॥३॥

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवंतु सप्त सिंधवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवं ॥४॥
पूषा । विष्णुः । हवनं । मे । सरस्वती । अवंतु । सप्त । सिंधवः ।
आपः । वातः । पर्वतासः । वनस्पतिः । शृणोतु । पृथिवी । हवं ॥४॥ ॥२४॥

यदिंद्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥५॥
यत् । इंद्र । राधः । अस्ति । ते । माघोनं । मघवत्ऽतम ।
तेन । नः । बोधि । सधऽमाद्यः । वृधे । भगः । दानाय । वृत्रऽहन् ॥५॥

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥६॥
आजिऽपते । नृऽपते । त्वं । इत् । हि । नः । वाजे । आ । वक्षि । सुक्रतो इति सुऽक्रतो ।
वीती । होत्राभिः । उत । देववीतिऽभिः । ससऽवांसः । वि । शृण्विरे ॥६॥

संति ह्यर्य आशिष इंद्र आयुर्जनानां ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषं ॥७॥
संति । हि । अर्ये । आऽशिषः । इंद्रे । आयुः । जनानां ।
अस्मान् । नक्षस्व । मघऽवन् । उप । अवसे । धुक्षस्व । पिप्युषीं । इषं ॥७॥

वयं त इंद्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८॥
वयं । ते । इंद्र । स्तोमेभिः । विधेम । त्वं । अस्माकं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।
महि । स्थूरं । शशयं । राधः । अह्रयं । प्रस्कण्वाय । नि । तोशय ॥८॥ ॥२५॥

॥ अथ सप्तमं सूक्तं ॥

भूरीदिंद्रस्य वीर्यं१ व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥
भूरि । इत् । इंद्रस्य । वीर्यं । वि । अख्यं । अभि । आ । अयति । राधः । ते । दस्यवे । वृक ॥१॥

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचंते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥२॥
शतं । श्वेतासः । उक्षणः । दिवि । तारः । न । रोचंते । मह्ना । दिवं । न । तस्तभुः ॥२॥

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्मीणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतं ॥३॥
शतं । वेणून् । शतं । शुनः । शतं । चर्मीणि । म्लातानि ।
शतं । मे । बल्बजऽस्तुकाः । अरुषीणां । चतुःऽशतं ॥३॥

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरंतः । अश्वासो न चंक्रमत ॥४॥
सुऽदेवाः । स्थ । काण्वायनाः । वयःऽवयः । विऽचरंतः । अश्वासः । न । चंक्रमत ॥४॥

आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥५॥
आत् । इत् । साप्तस्य । चर्किरन् । आ । अनूनस्य । महि । श्रवः ।
श्यावीः । अतिऽध्वसन् । पथः । चक्षुषा । चन । संऽनशे ॥५॥ ॥२६॥

॥ अथाष्टमं सूक्तं ॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयं । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥
प्रति । ते । दस्यवे । वृक । राधः । अदर्शि । अह्रयं । द्यौः । न । प्रथिना । शवः ॥१॥

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत ॥२॥
दश । मह्यं । पौतऽक्रतः । सहस्रा । दस्यवे । वृकः । नित्यात् । रायः । अमंहत ॥२॥

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनां । शतं दासाँ अति स्रजः ॥३॥
शतं । मे । गर्दभानां । शतं । ऊर्णाऽवतीनां । शतं । दासान् । अति । स्रजः ॥३॥

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिन्न यूथ्यां ॥४॥
तत्रो इति । अपि । प्र । अनीयत । पूतऽक्रतायै । विऽअक्ता । अश्वानां । इत् । न । यूथ्यां ॥४॥

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥५॥
अचेति । अग्निः । चिकितुः । हव्यऽवाट् । सः । सुमत्ऽरथः ।
अग्निः । शुक्रेण । शोचिषा । बृहत् । सूरः । अरोचत । दिवि । सूर्यः । अरोचत ॥५॥ ॥२७॥

॥ अथ नवमं सूक्तं ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥१॥
युवं । देवा । क्रतुना । पूर्व्येण । युक्ता । रथेन । तविषं । यजत्रा ।
आ । अगच्छतं । नासत्या । शचीभिः । इदं । तृतीयं । सवनं । पिबाथः ॥१॥

युवां देवास्त्रयं एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥२॥
युवां । देवाः । त्रयः । एकादशासः । सत्याः । सत्यस्य । ददृशे । पुरस्तात् ।
अस्माकं । यज्ञं । सवनं । जुषाणा । पातं । सोमं । अश्विना । दीद्यग्नी इति दीदिऽअग्नी ॥२॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥३॥
पनाय्यं । तत् । अश्विना । कृतं । वां । वृषभः । दिवः । रजसः । पृथिव्याः ।
सहस्रं । शंसाः । उत । ये । गोऽइष्टौ । सर्वान् । इत् । तान् । उप । यात । पिबध्यै ॥३॥

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातं ।
पिबतं सोमं मधुमंतमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥
अयं । वां । भागः । निऽहितः । यजत्रा । इमाः । गिरः । नासत्या । उप । यातं ।
पिबतं । सोमं । मधुऽमंतं । अस्मे इति । प्र । दाश्वांसं । अवतं । शचीभिः ॥४॥ ॥२८॥

॥ अथ दशमं सूक्तं ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयंतः सचेतसो यज्ञमिमं वहंति ।
यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥१॥
यं । ऋत्विजः । बहुधा । कल्पयंतः । सऽचेतसः । यज्ञं । इमं । वहंति ।
यः । अनूचानः । ब्राह्मणः । युक्तः । आसीत् । का । स्वित् । तत्र । यजमानस्य । संऽवित् ॥१॥

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वं ॥२॥

एकः । एव । अग्निः । बहुधा । सम्ऽइद्धः । एकः । सूर्यः । विश्वं । अनु । प्रऽभूतः ।
एका । एव । उषाः । सर्वं । इदं । वि । भाति । एकं । वै । इदं । वि । बभूव । सर्वं ॥२॥

ज्योतिष्मंतं केतुमंतं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारं ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥३॥
ज्योतिष्मंतं । केतुऽमंतं । त्रिऽचक्रं । सुऽखं । रथं । सुऽसदं । भूरिऽवारं ।
चित्रऽमघा । यस्य । योगे । अधिऽजज्ञे । तं । वां । हुवे । अति । रिक्तं । पिबध्यै ॥३॥ ॥२९॥

॥ अथैकादशं सूक्तं ॥

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इंद्रावरुणा प्र महे सुतेषु वां ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१॥
इमानि । वां । भागऽधेयानि । सिस्रते । इंद्रावरुणा । प्र । महे । सुतेषु । वां ।
यज्ञेऽयज्ञे । ह । सवना । भुरण्यथः । यत् । सुन्वते । यजमानाय । शिक्षथः ॥१॥

निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिंद्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥
निःऽसिध्वरीः । ओषधीः । आपः । आस्तां । इंद्रावरुणा । महिमानं । आशत ।
या । सिस्रतुः । रजसः । पारे । अध्वनः । ययोः । शत्रुः । नकिः । अदेवः । ओहते ॥२॥

सत्यं तदिंद्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥३॥
सत्यं । तत् । इंद्रावरुणा । कृशस्य । वां । मध्वः । ऊर्मिं । दुहते । सप्त । वाणीः ।
ताभिः । दाश्वांसं । अवतं । शुभः । पती इति । यः । वां । अदब्धः । अभि । पाति । चित्तिऽभिः ॥३॥

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिंद्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतं ॥४॥
घृतऽप्रुषः । सौम्याः । जीरऽदानवः । सप्त । स्वसारः । सदने । ऋतस्य ।
याः । ह । वां । इंद्रावरुणा । घृतऽश्चुतः । ताभिः । धत्तं । यजमानाय । शिक्षतं ॥४॥ ॥३०॥

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिंद्रियं ।
अस्मान्त्स्विंद्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥५॥

अवोचाम। महते। सौभगाय। सत्यं। त्वेषाभ्यां। महिमानं। इंद्रियं।
अस्मान्।सु।इंद्रावरुणा।घृतऽश्चुतः।त्रिऽभिः।साप्तेभिः।अवतं।शुभः।पती इति॥५॥

इंद्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजंत धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यं॥६॥
इंद्रावरुणा। यत्। ऋषिऽभ्यः। मनीषां। वाचः। मतिं। श्रुतं। अदत्तं। अग्रे।
यानि। स्थानानि। असृजंत। धीराः। यज्ञं। तन्वानाः। तपसा। अभि। अपश्यं॥६॥

इंद्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तं।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः॥७॥
इंद्रावरुणा। सौमनसं। अदृप्तं। रायः। पोषं। यजमानेषु। धत्तं।
प्रऽजां। पुष्टिं। भूतिं। अस्मासु। धत्तं। दीर्घायुऽत्वाय। प्र। तिरतं। नः। आयुः॥७॥ ॥३१॥

॥ इति वालखिल्यं समाप्तं॥

सप्तमेऽनुवाके दश सूक्तानि। तत्राग्न आ याहीति विंशत्यृचं प्रथमं सूक्तं प्रगाथपुत्रस्य भर्गस्यार्षमाग्नेयं। प्रथमातृतीयाद्ययुजो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थ्यादियुजः सतोबृहत्यः। तथा चानुक्रांतं। अग्न आ विंशतिर्भर्गः प्रागाथ आग्नेयं प्रागाथं त्विति॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। तथा च सूत्रितं। अयमग्निरग्न आ याहि। आ० ४. १३.। इति॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे॥१॥
अग्ने। आ। याहि। अग्निऽभिः। होतारं। त्वा। वृणीमहे।
आ। त्वां। अनक्तु। प्रऽयता। हविष्मती। यजिष्ठं। बर्हिः। आऽसदे॥१॥

हे अग्ने अग्निभिर्यष्टव्यैः सह आ याहि। आगच्छ। तदर्थं होतारं देवानामाह्वातारं त्वा त्वां वृणीमहे। त्वा त्वामागतं प्रयताध्वर्युहस्ताभ्यां नियता हविष्मती घृतवती यजिष्ठं त्वां बर्हिर्बर्हिष्यासद आसाद्य सर्वतोऽनक्तु॥

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अंगिरः स्रुचश्चरंत्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं॥२॥
अच्छ। हि। त्वा। सहसः। सूनो इति। अंगिरः। स्रुचः। चरंति। अध्वरे।
ऊर्जः। नपातं। घृतऽकेशं। ईमहे। अग्निं। यज्ञेषु। पूर्व्यं॥२॥

हे सहसः सूनो बलस्य पुत्र। बलेन मथ्यमानत्वात्। हे अंगिरोऽंगिरसां मध्य एक। अथवांगतिर्गतिकर्मा। सर्वत्र संगत। त्वा त्वामध्वरे यागेऽच्छाभिप्राप्तुं स्रुचश्चरंति। गच्छंति। अत ऊर्जोऽन्नस्य नपातं न पातयितारं रक्षकं बलस्य नप्तारं वा घृतकेशं प्रदीप्तकलशस्थानीयज्वालं पूर्व्यं पुरातनं पूरकं वाग्निं यज्ञेष्वस्मदीयेष्वीमहे। स्तौमि ॥

अग्ने॑ क॒विर्वे॒धा अ॒सि॒ होता॑ पाव॒क यक्ष्यः॑ ।
मं॒द्रो यजि॑ष्ठो अध्व॒रेष्वीड्यो॒ विप्रे॑भिः शुक्र॒ मन्म॑भिः ॥३॥
अग्ने॑ । क॒विः । वे॒धाः । अ॒सि॒ । होता॑ । पा॒व॒क॒ । यक्ष्यः॑ ।
मं॒द्रः । यजि॑ष्ठः । अ॒ध्व॒रेषु॑ । ईड्यः॑ । विप्रे॑भिः । शु॒क्र॒ । मन्म॑ऽभिः ॥३॥

हे अग्ने कविर्मेधावी त्वं वेधा विधातासि फलानां। हे पावक होता देवानामाह्वाता होमनिष्पादको वा यक्ष्यो यष्टव्योऽसि। हे शुक्र दीप्त मंद्रो मोदनीयो यजिष्ठो यष्टृतमस्त्वमध्वरेषु यज्ञेषु विप्रेभिर्मेधाविभिर्ऋत्विग्भिर्मन्मभिर्मननीयैः स्तोत्रैरीड्यः स्तुत्योऽसि ॥

अद्रो॑घ॒मा व॑होश॒तो य॑विष्ठ्य दे॒वाँ अ॑जस्र वी॒तये॑ ।
अ॒भि प्रयाँ॑सि॒ सुधि॑ता॒ व॑सो॒ ग॒हि॒ मंद॑स्व धी॒तिभि॑र्हि॒तः ॥४॥
अद्रो॑घं । आ । व॒ह॒ । उ॒श॒तः । य॒वि॒ष्ठ्य॒ । दे॒वान् । अ॒ज॒स्र॒ । वी॒तये॑ ।
अ॒भि । प्रयाँ॑सि । सु॒ऽधि॑ता । आ । व॒सो॒ इति॑ । ग॒हि॒ । मंद॑स्व । धी॒ति॑ऽभिः । हि॒तः ॥४॥

अद्रोघमद्रोग्धारं मां प्रति हे यविष्ठ्य युवतमाजस्र नित्य आ वह। आनय। कान्। उशतोऽस्मदर्थं कामयमानान्देवान्। किमर्थं। वीतये हविर्भक्षणाय। हे वसो वासकाग्ने सुधिता सुनिहितानि प्रयांस्यन्नान्यभि गहि। अभिगच्छ। आगत्य च धीतिभिः स्तुतिभिर्हितो निहितः सन्मंदस्व। यद्वा। धीतिभिर्मंदस्वेति संबंधः ॥

त्वमित्स॒प्रथा॑ अ॒स्यग्ने॑ त्रा॒तर्ऋ॒तस्क॒विः ।
त्वां विप्रा॑सः समिधान दीदिव॒ आ वि॑वासंति वे॒धसः॑ ॥५॥
त्वं । इत् । स॒ऽप्रथाः॑ । अ॒सि॒ । अग्ने॑ । त्रा॒तः॒ । ऋ॒तः । क॒विः ।
त्वां । विप्रा॑सः । स॒म्ऽइ॒धा॒न॒ । दी॒दि॒ऽवः॒ । आ । वि॒वा॒सं॒ति॒ । वे॒धसः॑ ॥५॥

हे अग्ने त्राता रक्षक ऋतः सत्यभूतः कविः क्रांतप्रज्ञस्त्वमित्त्वमेव सप्रथाः सर्वतः पृथुरसि। भवसि। हे समिधान समिध्यमान हे दीदिवो दीप्त त्वां विप्रासो विप्रा मेधाविनो वेधसो विधातारः स्तोतारो विवासंति। परिचरंति ॥ ॥३२॥

शोचा॑ शोचिष्ठ दीदि॒हि वि॒शे मयो॒ रास्व॑ स्तो॒त्रे म॒हाँ अ॑सि ।
दे॒वानां॒ शर्म॑न्मम॑ संतु सू॒रयः॑ शत्रू॒षाहः॑ स्व॒ग्नयः॑ ॥६॥
शोच॑ । शोचि॒ष्ठ॒ । दी॒दि॒हि॒ । वि॒शे । मयः॑ । रास्व॑ । स्तो॒त्रे । म॒हान् । अ॒सि॒ ।
दे॒वाना॑ं । शर्म॑न् । मम॑ । सं॒तु॒ । सू॒रयः॑ । श॒त्रु॒ऽसहः॑ । सु॒ऽअ॒ग्नयः॑ ॥६॥

हे शोचिष्ठातिशयेन शोचयितरग्ने शोच। दीप्यस्व। दीदिहि। दीपयास्मान्। विशे प्रजायै स्तोत्रे मयः सुखं रास्व। देहि। त्वं महानसि। देवानां संबंधिनि शर्मञ्छर्मणि सुखे मम सूरयः स्तोतारो मेधाविनो ऽस्माकं पुत्रादयो वा संतु। भवंतु। शत्रुषाहः शत्रूणामभिभवितारः स्वग्नयः शोभनाग्नयश्च संतु॥

यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने संजूर्वसि क्षमि।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति॥७॥
यथा। चित्। वृद्धं। अतसं। अग्ने। संऽजूर्वसि। क्षमि।
एव। दह। मित्रऽमहः। यः। अस्मऽध्रुक्। दुःऽमन्मा। कः। च। वेनति॥७॥

हे अग्ने क्षमि क्षमायां वर्तमानं वृद्धमतसं शुष्कं काष्ठं यथा येन प्रकारेण संजूर्वसि। जूर्वतिर्हिंसाकर्मा। सम्यग्दहसीत्यर्थः। एवैवं दह हे मित्रमहो मित्राणामस्माकं पूजक तेजो वा। कं। योऽस्मध्रुगस्माकं द्रोग्धा कश्च कश्चिदुर्मन्मा दुर्मतिर्वेनति कामयतेऽस्माद्रोग्धुं तं दहेति॥

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः॥८॥
मा। नः। मर्ताय। रिपवे। रक्षस्विने। मा। अघऽशंसाय। रीरधः।
अस्रेधत्ऽभिः। तरणिऽभिः। यविष्ठ्य। शिवेभिः। पाहि। पायुऽभिः॥८॥

नोऽस्मान्मर्ताय मरणधर्माय रिपवे शत्रवे हिंसित्रे रक्षस्विने बलवते मा रीरधः। वशमानय। तथाघशंसाय पापशंसकाय मा रीरधः। हे यविष्ठ्य युवतम अस्रेधद्भिरहिंसकैस्तरणिभिस्तारकैः शिवेभिः सुखकरैः पायुभिः पालनैर्नोऽस्मान्पाहि। रक्ष॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥९॥
पाहि। नः। अग्ने। एकया। पाहि। उत। द्वितीयया।
पाहि। गीःऽभिः। तिसृऽभिः। ऊर्जां। पते। पाहि। चतसृऽभिः। वसो इति॥९॥

हे अग्ने नोऽस्मानेकयर्चा गिरा पाहि। रक्ष। उतापि च द्वितीययर्चा पाहि। पालय। पाहि तिसृभिर्गीर्भिरूर्जामन्नानां बलानां वा पते स्वामिन्। तथा पाहि चतसृभिर्गीर्भिर्हे वसो वासकाग्ने॥

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे॥१०॥
पाहि। विश्वस्मात्। रक्षसः। अराव्णः। प्र। स्म। वाजेषु। नः। अव।
त्वां। इत्। हि। नेदिष्ठं। देवऽतातये। आपिं। नक्षामहे। वृधे॥१०॥

हे अग्ने विश्वस्मात्सर्वस्माद्रक्षसोऽराव्णोऽदातुः सकाशात्पाहि। रक्षास्मान्। वाजेषु संग्रामेषु नोऽस्मान्प्राव। प्रकर्षेण रक्ष। स्मेति पूरणः। हि यस्मान्नेदिष्ठमासन्नमापिं बंधुभूतं त्वामित्त्वामेव देवतातये यज्ञाय यज्ञसिद्ध्यर्थं वृधे वर्धनाय नक्षामहे व्याप्नुमः। नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा॥ ॥३३॥

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यं ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरं ॥११॥
आ । नः । अग्ने । वयःऽवृधं । रयिं । पावक । शंस्यं ।
रास्व । च । नः । उपऽमाते । पुरुऽस्पृहं । सुऽनीती । स्वयशःऽतरं ॥११॥

हे अग्ने पावक शोधक वयोवृधमन्नस्य वर्धकं शंस्यं शंसनीयं रयिं धनं नोऽस्मभ्यमा हरेति शेषः । आहृत्य च हे उपमाते । उपास्मत्समीपे माति नो धनमित्युपमातिः । हे तादृशाग्ने नोऽस्मभ्यं सुनीती सुनीत्या शोभननयनेन पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं स्वयशस्तरमत्यंतं स्वभूतकीर्तिं धनं रास्व च । देहि ॥

येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरंतो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥१२॥
येन । वंसाम । पृतनासु । शर्धतः । तरंतः । अर्यः । आऽदिशः ।
सः । त्वं । नः । वर्ध । प्रयसा । शचीवसो इति शचीऽवसो । जिन्व । धियः । वसुऽविदः ॥१२॥

येन धनेन पृतनासु संग्रामेषु शर्धतो वेगं कुर्वतोऽर्योऽरीञ्छत्रूनादिश आदेष्टॄञ्छस्त्रप्रक्षेप्तॄंस्तरंतो वंसाम हिंसाम तद्धनं देहि । हे शचीवसो प्रज्ञया वासयितः कर्म धनं वा स प्रसिद्धस्त्वं नोऽस्मान्वर्ध । वर्धय । प्रीणय । प्रयसान्नेन त्वं वा वर्ध । अस्मदीयेन प्रयसा हविषा वसुविदो वसूनां लंभकानि धियः कर्माण्यस्मदीयानि जिन्व । प्रीणय ॥

शिशानो वृषभो यथाग्निः शृंगे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजंभः सहसो यहुः ॥१३॥
शिशानः । वृषभः । यथा । अग्निः । शृंगे इति । दविध्वत् ।
तिग्माः । अस्य । हनवः । न । प्रतिऽधृषे । सुऽजंभः । सहसः । यहुः ॥१३॥

अयमग्निः शृंगे शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् वृषभो यथा दविध्वत् कंपयति शिरः एवं शृंगस्थानीया ज्वालाः शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् दविध्वत् । कंपयति शिरः । अस्याग्नेर्हनवो न हनव इव हनुस्थानीया ज्वालास्तिग्मा न प्रतिधृषे । प्रतिधर्षितुमशक्याः । योऽग्निः सुजंभः सुदंष्ट्रः सहसो यहुः सहसः पुत्रोऽस्य हनव इत्यर्थः ॥

नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जंभासो यद्वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु ॥१४॥
नहि । ते । अग्ने । वृषभ । प्रतिऽधृषे । जंभासः । यत् । विऽतिष्ठसे ।
सः । त्वं । नः । होतरिति । सुऽहुतं । हविः । कृधि । वंस्व । नः । वार्या । पुरु ॥१४॥

हे वृषभ वर्षक ते तव जंभासो जंभा दंतस्थानीया ज्वाला नहि प्रतिधृषे प्रतिधर्षितुं न शक्याः । यद्यस्माद्वितिष्ठसे विविधं गच्छसि । प्रवर्धस इत्यर्थः । हे होतर्होमनिष्पादक स त्वं हविरस्मद्दत्तं सुहुतं कृधि । कुरु । नोऽस्मभ्यं वार्या वरणीयानि पुरु बहूनि वंस्व । देहि ॥

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इंधते ।
अतंद्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥
शेषे । वनेषु । मात्रोः । सं । त्वा । मर्तासः । इंधते ।
अतंद्रः । हव्या । वहसि । हविःऽकृतः । आत् । इत् । देवेषु । राजसि ॥१५॥

हे अग्ने वनेषु वर्तमानयोर्मात्रोररण्योः शेषे । स्वपिषि । वर्तसे । त्वा त्वां तथाभूतं मर्तासो मनुष्या अध्वर्य्वादयो मथनेनोत्पाद्य समिंधते । पश्चात्प्रवृद्धस्त्वमतंद्रोऽनलसः सन् हविष्कृतो यजमानस्य हव्या हवींषि वहसि देवान्प्रति । आदिदनंतरमेव देवेषु मध्ये राजसि । दीप्यसे ॥ ॥३४॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयं ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥१६॥
सप्त । होतारः । तं । इत् । ईळते । त्वा । अग्ने । सुऽत्यजं । अह्रयं ।
भिनत्सि । अद्रिं । तपसा । वि । शोचिषा । प्र । अग्ने । तिष्ठ । जनान् । अति ॥१६॥

हे अग्ने तमित्तमेव त्वा त्वां सप्त होतारो होत्रका ईळते । स्तुवंति । कीदृशं त्वां । सुत्यजं सुत्यागं । अभिमतप्रदमित्यर्थः । अह्रयमक्षीणं प्रवृद्धं । किंचाद्रिं मेघं तपसा तापकेन शोचिषा तेजसा । तपसा शोचिषा चेति वा योज्यं । वि भिनत्सि । हे अग्ने जनानस्मानत्यतीत्य प्र तिष्ठ प्रगच्छ हविरादाय देवान्प्रति । अथवास्मद्विरोधिजनानतिक्रम्य प्र तिष्ठ ॥

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनां ॥१७॥
अग्निंऽअग्निं । वः । अध्रिऽगुं । हुवेम । वृक्तऽबर्हिषः ।
अग्निं । हितऽप्रयसः । शश्वतीषु । आ । होतारं । चर्षणीनां ॥१७॥

अग्निमग्निं । वीप्सादरार्था । अग्निमेव हे यजमाना वो युष्मदर्थं हुवेम । आह्वयाम । अथवा । हे देवा वो युष्मदर्थमिति वा व्याख्येयं । कीदृशा वयं । वृक्तबर्हिषश्छिन्नदर्भाः । कीदृशमग्निं । अध्रिगुमधृतगमनं सर्वदा गृहे वर्तमानमग्निं । हितप्रयसो निहितहविष्का वयमा हुवेमेति शेषः । कीदृशमग्निं । शश्वतीषु बह्वीषु भूमिषु वर्तमानं होतारं होमनिष्पादकं । किमर्थं । चर्षणीनां मनुष्याणामर्थाय । अग्नौ तृप्ते सति वृष्टिलाभात्प्राण्युपकारसिद्धं प्राण्यर्थत्वं । अथवा मनुष्याणां यजमानानां होतारं होमसाधकं ॥

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥१८॥
केतेन । शर्मन् । सचते । सुऽसामनि । अग्ने । तुभ्यं । चिकित्वना ।
इषण्यया । नः । पुरुऽरूपं । आ । भर । वाजं । नेदिष्ठं । ऊतये ॥१८॥

हे अग्ने तुभ्यं चिकित्वना चिकितुषा अनेन होत्रादिना सह यजमानः केतेन प्रज्ञापकेन स्तोत्रेण यजत इति शेषः । कुत्रेति तदुच्यते । सुषामणि शोभनरथंतरादिसामोपेते शर्मञ्छर्मणि सुखसाधने यज्ञे । अतो हे अग्ने इषण्ययेच्छया स्वीयया नोऽस्मभ्यं पुरुरूपं नानारूपं नेदिष्ठमंतिके सर्वदा वर्तमानं वाजमन्नमूतये रक्षणाय भर । आहर ॥

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥१९॥
अग्ने । जरितः । विश्पतिः । तेपानः । देव । रक्षसः ।
अप्रोषिऽवान् । गृहऽपतिः । महान् । असि । दिवः । पायुः । दुरोणऽयुः ॥१९॥

हे अग्ने देव जरितः स्तोतः । स्तुत्येत्यर्थः । विश्पतिः प्रजानां पालको रक्षसो राक्षसानां तेपानः संतापको ऽसि । अप्रोषिवान्यजमानगृहमत्यजन् । तदेवाह । गृहपतिर्यजमानगृहस्य पालकश्च त्वं महानतिशयेन पूज्यो ऽसि । दिवो द्युलोकस्य पायुः पाता दुरोणयुर्यजमानगृहस्य मिश्रयिता । सर्वदा वर्तमान इत्यर्थः । तादृशस्त्वं महानसीत्यन्वयः ॥

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावतां ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२०॥
मा । नः । रक्षः । आ । वेशीत् । आघृणीवसो इत्याघृणिऽवसो । मा । यातुः । यातुऽमावतां ।
परःऽगव्यूति । अनिरां । अप । क्षुधं । अग्ने । सेध । रक्षस्विनः ॥२०॥

हे आघृणीवसो दीप्तधनाग्ने नोऽस्मान्रक्षो राक्षसादिः । रक्षो रक्षितव्यमस्मात् । नि० ४. १८. । इति यास्कः । मा वेशीत् । सर्वतो न प्रविशतु । तथा यातुमावतां । यातुर्यातना पीडा । तद्वतां यातुधानानां यातुः पीडा मा वेशीत् । हे अग्ने अनिरां । इरान्नं । अन्नाभावं दारिद्र्यं क्षुधं क्षपयितारं रक्षस्विनो बलवंति रक्षांसि च परोगव्यूति क्रोशद्वयाद्देशात्परस्तात् । एतदुपलक्षणं । अत्यंतं दूरदेशेऽप सेध । परिहर । अनिरा क्षुद्बाध्यानि रक्षांसि च न पीडयंत्विति ॥ ॥३५॥

उभयं शृणवदित्यष्टादशर्चं द्वितीयं सूक्तं प्रागाथस्य भर्गस्यार्षं । अत्रानुक्रमणिका । उभयं द्व्यूनेति । पूर्वसूक्ते प्रागाथं त्वित्युक्तत्वादिदमपि प्रागाथं । अत्रायुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः । अनुक्तत्वादिंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावेतत्सूक्तं सप्तम्यष्टमीवर्जं । तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं शौनकेन । उभयं शृणवच्च न इति सप्तमीं चाष्टमीं चोद्धरति । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि निष्केवल्य उभयमिति बृहत्साम प्रगाथः । तथा च सूत्रितं । उभयं शृणवच्च न आ वृषस्व पुरूवसो । आ० ७. ४. । इति ॥ एवमन्यत्रापि यस्मिन्नहनि पृष्ठस्तोत्रे बृहत्साम क्रियते तस्मिन्नहनि निष्केवल्येऽयं प्रगाथः ॥

उभयँ शृणवच्च न इंद्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१॥
उभयँ । शृणवत् । च । नः । इंद्रः । अर्वाक् । इदं । वचः ।
सत्राच्या । मघऽवा । सोमऽपीतये । धिया । शविष्ठः । आ । गमत् ॥१॥

उभयं स्तोत्रात्मकं शस्त्रात्मकं चोभयविधमिदं वचोऽर्वागस्मदभिमुखमिंद्रः शृणवत् । शृणोतु । श्रुत्वा च सत्राच्यास्माकं सहांचंत्या धिया युक्तः सन् मघवा शविष्ठोऽतिशयेन बलवान्ना गमत् आगच्छतु सोमपीतये सोमपानाय ॥

तं हि स्वराजँ वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥

तं । हि । स्वऽराजं । वृषभं । तं । ओजसे । धिषणे इति । निःऽततक्षतुः ।
उत । उपऽमानां । प्रथमः । नि । सीदसि । सोमंऽकामं । हि । ते । मनः ॥२॥

तं हि तं खल्विंद्रं स्वराजं स्वयमेव राजमानं धिषणे द्यावापृथिव्यौ वृषभं जगदुपकारकाया वृष्टेर्वर्षकं निष्टतक्षतुः । संचस्करतुः । तं तमेवेंद्रमोजसे बलाय निष्टतक्षतुः । उत यस्मादेवं तस्मात् हे इंद्र उपमानामुपमानभूतानामन्येषां देवानां मध्ये प्रथमो मुख्यः सन्नि षीदसि वेद्यां । सोमकामं हि खलु ते मनः ॥

पूर्वोक्तेऽच्छावाकशस्त्र आ वृषस्वेति प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्रमुक्तं ॥

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येंद्रांधसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिं ॥३॥
आ । वृषस्व । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । सुतस्य । इंद्र । अंधसः ।
विद्म । हि । त्वा । हरिऽवः । पृत्ऽसु । ससहिं । अधृष्टं । चित् । दधृष्वणिं ॥३॥

हे पुरूवसो बहुधनेंद्र त्वमा वृषस्व । आसिंचस्व । किं । सुतस्यांधसः सुतमंधः सोमं जठरे । हे हरिवो हरिभ्यां तद्वन्निंद्र त्वा त्वां विद्म हि । जानीमः खलु । कीदृशं । पृत्सु संग्रामेषु सासहिमभिभवितारं शत्रूणामधृष्टं चित्कैरप्यधर्षणीयं दधृष्वणिमन्येषां धर्षकं ॥

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिंद्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यंतो अद्रिवः ॥४॥
अप्रामिऽसत्य । मघऽवन् । तथा । इत् । असत् । इंद्र । क्रत्वा । यथा । वशः ।
सनेम । वाजं । तव । शिप्रिन् । अवसा । मक्षु । चित् । यंतः । अद्रिऽवः ॥४॥

हे अप्रामिसत्याहिंसितसत्य हे मघवन्निंद्र तथेदसत् । तथैव भवति । हे इंद्र क्रत्वा कर्मणा प्रज्ञानेन यथा येन प्रकारेण वशः कामयेः । हे शिप्रिन् अवसा रक्षणेन निमित्तेन वाजमन्नं सनेम संभजेम वयं तव त्वदनुग्रहात् । कीदृशा वयं । मक्षु चिच्छीघ्रमेव यंतः शत्रून्गच्छंतोऽभिभवंतः । हे अद्रिवः । अद्रिर्वज्रः । तद्वन्निंद्रेति ॥

शग्ध्यू३ षु शचीपत इंद्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥५॥
शग्धि । ऊं इति । सु । शचीऽपते । इंद्र । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।
भगं । न । हि । त्वा । यशसं । वसुऽविदं । अनु । शूर । चरामसि ॥५॥

हे शचीपत इंद्र शग्धि । देह्यभिमतं । विश्वाभिः सर्वाभिरूतिभिर्मरुद्भिः सह । हे शूर भगं न भाग्यमिव यशसं यशस्विनं वसुविदं धनस्य लंभकं त्वा त्वामनु चरामसि । अनुचरामः । परिचरामेत्यर्थः ॥ ॥३६॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥६॥
पौरः । अश्वस्य । पुरुऽकृत् । गवां । असि । उत्सः । देव । हिरण्ययः ।
नकिः । हि । दानं । परिऽमर्धिषत् । त्वे इति । यत्ऽयत् । यामि । तत् । आ । भर ॥६॥

हे इंद्र त्वमश्वस्य पौरः पूरयितासि। भवसि। तथा गवां पुरुक्षृद्बहुकर्तासि। हे देव हिरण्ययो हिरण्मयशरीरस्त्वमुत्स उत्ससदृशोऽसि। हे इंद्र त्वे त्वयि वर्तमानं दानमस्मद्विषयं देयं धनं वा नकिः परिमर्धिषत्। न कश्चिद्धिनस्ति। अतो यद्यद्यामि याचे तदा भर। आहर मह्यं ॥

यद्यग्निष्टोमे बृहत्साम तदानीं निष्केवल्ये प्रगाथोऽनुरूपः। सूत्रितं च। त्वं ह्येहि चेरव इति प्रगाथा एते भवंति। आ॰ ५. १५.। इति ॥ महाव्रते निष्केवल्य उत्तरपक्षेऽयं प्रगाथः। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं। त्वामिद्धि हवामहे त्वं ह्येहि चेरव इति बृहतः स्तोत्रियानुरूपौ प्रगाथौ। ऐ॰ आ॰ ५. २. २.। इति ॥

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिंद्राश्वमिष्टये ॥७॥
त्वं। हि। आ। इहि। चेरवे। विदाः। भगं। वसुत्तये।
उत्। ववृषस्व। मघऽवन्। गोऽइष्टये। उत्। इंद्र। अश्वंऽइष्टये ॥७॥

हे इंद्र त्वं हि त्वं खलु। सामर्थ्याद्दातेति गम्यते। अत एहि। आगच्छ। आगत्य चास्मभ्यं भगं भजनीयं धनं विदाः। लभस्व। दत्स्व। किमर्थं। वसुत्तयेऽस्माकं वसुदानाय। हे मघवन् गविष्टये गा इच्छते मह्यमुद्ववृषस्व। उत्सिंचस्व गामिति शेषः। तथा हे इंद्र अश्वमिष्टयेऽश्वैषणवते मह्यमश्वानुद्ववृषस्व। उत्सिंचस्व। देहि ॥

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इंद्रं गायंतोऽवसे ॥८॥
त्वं। पुरु। सहस्राणि। शतानि। च। यूथा। दानाय। मंहसे।
आ। पुरंऽदरं। चकृम। विप्रऽवचसः। इंद्रं। गायंतः। अवसे ॥८॥

हे इंद्र त्वं पुरु पुरूणि बहूनि सहस्राणि शतानि च यूथा गवादियूथानि दानाय यजमानविषयाय मंहसे। अनुमन्यसे। यद्वा। दानाय दात्रे यजमानाय मंहसे। प्रयच्छसि। मंहतिर्दानकर्मा। अथ परोक्षेण ब्रवीति। पुरंदरं शत्रुपुराणां दारयितारमिंद्रमवसे रक्षणाय प्रीतये वा गायंतः स्तुवंतो विप्रवचसो विविधप्रशस्तवचना वयमा आगंतारमभिमुखं वा चकृम। कुर्मः ॥

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेंद्र ते वचः।
स प्र ममंदत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥९॥
अविप्रः। वा। यत्। अविधत्। विप्रः। वा। इंद्र। ते। वचः।
सः। प्र। ममंदत्। त्वाऽया। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। प्राचामन्यो इति प्राचाऽमन्यो।
अहंऽसन ॥९॥

हे इंद्र ते तव वचः स्तोत्रं यद्योऽविप्रो वामेधाव्यस्तुतिकुशलो वा विप्रो मेधावी स्तुतिकुशलो वाविधत् कुर्यात्। त्वां स्तौतीत्यर्थः। स स्तोता त्वाया त्वयोक्तया साधनेन प्र ममंदत्। प्रकर्षेण मोदते। हे शतक्रतो बहुकर्मन् हे प्राचामन्यो प्राचीनक्रोध। अप्रतिहतक्रोधेत्यर्थः। न हींद्रक्रोधं प्रतिहंति कश्चित्। हे अहंसन। संग्रामेऽहमित्यात्मनो महत्त्वं प्रकाशयन्यः शत्रुं संभजते स तथोक्तः। तादृशेंद्र ॥

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरंदरो यदि मे शृणवद्धवं ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिंद्रं हवामहे ॥१०॥
उग्रऽबाहुः । म्रक्षऽकृत्वा । पुरंऽदरः । यदि । मे । शृणवत् । हवं ।
वसुऽयवः । वसुऽपतिं । शतऽक्रतुं । स्तोमैः । इंद्रं । हवामहे ॥१०॥

उग्रबाहुरुद्गूर्णभुजो म्रक्षकृत्वा वधकर्ता शत्रूणां पुरंदरः पुराणां दारयितेंद्रो यदि मे हवं शृणवत् शृणुयात् तर्हि वसूयवो वसुकामा वयं वसुपतिं बहुधनस्वामिनं शतक्रतुमपरिमितप्रज्ञमिंद्रं स्तोमैः स्तोत्रैर्हवामहे । आह्वयामः ॥ ॥३७॥

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्विंद्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥११॥
न । पापासः । मनामहे । न । अरायासः । न । जल्हवः ।
यत् । इत् । नु । इंद्रं । वृषणं । सचा । सुते । सखायं । कृणवामहै ॥११॥

वयमिंद्रं पापासः पापा अकृतपुण्या ब्रह्मचर्यव्रतादिरहिता न मनामहे । न मन्यामहे । तथारायासो ऽराया अधना वाहविष्का वा न मनामहे । न जल्हवोऽज्वलना अनग्नयो न मनामहे । कृतव्रतनियमादिपुण्या दानवंतोऽग्निसहितास्त्वं स्तुम इत्यृषिरात्मानमाह । यदिद्यस्मादेव कारणान्विदानीं वृषणं वर्षकमिंद्रं सुते सोमेऽभिषुते सचा सहिताः सखायं कृणवामहै कुर्मः तस्मात्पापादिरहिता मनामहे । पापादिविशिष्टानामिंद्रसाहाय्यकरणासंभवात् । अत्र न पापा मन्यामहे । नि॰ ६. २५. । इत्यादिनिरुक्तं द्रष्टव्यं ॥

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यं ।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥१२॥
उग्रं । युयुज्म । पृतनासु । ससहिं । ऋणऽकातिं । अदाभ्यं ।
वेद । भृमं । चित् । सनिता । रथिऽतमः । वाजिनं । यं । इत् । ऊं इति । नशत् ॥१२॥

उग्रमुद्गूर्णबलमिंद्रं युयुज्म । योजयामः । कीदृशमिंद्रं । पृतनासु संग्रामेषु सासहिं शत्रूणामभिभवितारमृणकातिमृणभूतस्तुतिं । यस्मै स्तुतिर्ऋणवदवश्यं क्रियते तं तादृशं । अथवा ऋणवदवश्यफलप्रदस्तुतिकं । अदाभ्यं केनाप्यहिंस्यं । य इंद्रो भृमं चिद्बहुष्वश्वेषु भ्रमणशीलमेव वाजिनं बलवंतमश्वं रथीतमो रथस्वामी वेद वेत्ति गृह्णाति तद्वत् सनितेंद्रो वाजिनं हविष्मंतं यमिद्यमेव जनं बहूनां यजमानानां मध्ये नशत् व्याप्नोति तमिंद्रमिति । ते वयमिति वा योज्यं । वयं युयुज्मेति पक्षे व्यत्ययेन बहुवचनं ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकस्य यत इंद्रेति वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः । सूत्रितं च । यत इंद्र भयामहे यथा गौरो अपा कृतं । आ॰ ७. ४. । इति ॥ दुःस्वप्नदर्शनेऽप्येतदादिसूक्तशेषो जप्यः । आ॰ गृ॰ ३. ११. २. ॥

यत इंद्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१३॥
यतः । इंद्र । भयामहे । ततः । नः । अभयं । कृधि ।
मघऽवन् । शग्धि । तव । तत् । नः । ऊतिऽभिः । वि । द्विषः । वि । मृधः । जहि ॥१३॥

हे इंद्र यतो हिंसकाद्भयामहे वयं ततो नोऽस्मभ्यमभयं कृधि। कुरु। हे मघवन् शग्धि शक्तो भवसि नोऽस्मभ्यमभयं कर्तुं तव तत्तदूतिभी रक्षणै रक्षकैः पुरुषैः। किंच वि जहि द्विषोऽस्मद्द्वेष्टृन्। वि जहि मृधो ऽस्मद्धिंसकान्॥

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निंद्र गिर्वणः सुतावंतो हवामहे॥१४॥
त्वं। हि। राधःपते। राधसः। महः। क्षयस्य। असि। विधतः।
तं। त्वा। वयं। मघऽवन्। इंद्र। गिर्वणः। सुतऽवंतः। हवामहे॥१४॥

हे राधस्पते धनस्वामिन् त्वं हि त्वं खलु महो महतो राधसो धनस्य क्षयस्य च गृहस्य च वर्धयितासि हि खलु। सामर्थ्यादेवं लभ्यते। कस्य राधसो गृहस्य च वर्धक इति उच्यते। विधतः परिचरतो यजमानस्य। तं तादृशं त्वा त्वां वयं हे मघवन्निंद्र गिर्वणो गीर्भिर्वननीय सुतावंतोऽभिषुतसोमा हवामहे। आह्वयाम॥

इंद्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः॥१५॥
इंद्रः। स्पट्। उत। वृत्रऽहा। परःऽपाः। नः। वरेण्यः।
सः। नः। रक्षिषत्। चरमं। सः। मध्यमं। सः। पश्चात्। पातु। नः। पुरः॥१५॥

अयमिंद्रः स्पट् सर्वस्य ज्ञाता। स्पशतिर्ज्ञानकर्मा। उतायं वृत्रहा वृत्रहंता परस्पाः परपालयिता नोऽस्माकं वरेण्यो वरणीयः। स इंद्रो नोऽस्माकं। पुत्रमिति शेषः। रक्षिषत्। रक्षतु। चरमं पुत्रं तथा स रक्षिषत्। स मध्यमं पुत्रं रक्षिषत्। स नोऽस्मान् पश्चाद्रक्षिषत्। नः पुरः पुरस्ताद्रक्षिषत्॥ ॥३८॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इंद्र नि पाहि विश्वतः।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः॥१६॥
त्वं। नः। पश्चात्। अधरात्। उत्तरात्। पुरः। इंद्र। नि। पाहि। विश्वतः।
आरे। अस्मत्। कृणुहि। दैव्यं। भयं। आरे। हेतीः। अदेवीः॥१६॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्मान्पश्चात्पश्चाद्भागात्पुरः पूर्वभागादधरादधोभागात्। एतदुपरिभागस्योपलक्षणं। उत्तरादुत्तरभागात्। एतद्दक्षिणस्याप्युपलक्षणं। किं बहुना विश्वतः सर्वस्मात्प्रदेशान्नि पाहि। हे इंद्र दैव्यं भयमस्मदस्मत्त आरे दूरे कृणुहि। कुरु। तथादेवीरासुराणि हेतीरायुधान्यारे कृणुहि॥

अद्याद्या श्वःश्व इंद्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥१७॥
अद्यऽअद्य। श्वःऽश्वः। इंद्र। त्रास्व। परे। च। नः।
विश्वा। च। नः। जरितॄन्। सत्ऽपते। अहा। दिवा। नक्तं। च। रक्षिषः॥१७॥

अद्याद्य यदद्यशब्दवाच्यमहरस्ति तत्र सर्वत्र एवं श्वःश्वस्त्रास्व। रक्ष। तथा परे च परस्मिंस्तृतीयेऽहनि च त्रास्व। हे सत्पते सतां पालक विश्वा सर्वाण्यप्यहाहानि सर्वेष्वप्यहःसु नोऽस्माञ्जरितॄन्रक्षिषः। रक्षसि। तथा दिवा नक्तं च रक्षिषः। रक्षसि रक्ष वा॥

प्रभंगी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कं ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८॥
प्रऽभंगी । शूरः । मघऽवा । तुविऽमघः । संऽमिश्लः । वीर्याय । कं ।
उभा । ते । बाहू इति । वृषणा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । नि । या । वज्रं ।
मिमिक्षतुः ॥१८॥

अयं मघवेंद्रः प्रभंगी प्रभंजनशीलः शूरस्तुवीमघः प्रभूतधनः संमिश्लः सम्यङ्मिश्रयिता । किमर्थं । वीर्याय शत्रूणां वीर्यकरणाय । कमिति पादपूरणः । एवंमहानुभावो भवति । अथ प्रत्यक्षवादः । हे इंद्र त उभोभावपि बाहू वृषणा वर्षकौ कामानां हे शतक्रतो बहुप्रज्ञ या यौ वज्रमायुधं नि मिमिक्षतुः परिगृह्णीतः ॥ ॥ ३९ ॥

प्रो अस्मा इति द्वादशर्चं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य प्रगाथस्यार्षं । पंचपदा पंक्तिः । सप्तम्याद्यास्तिस्रो बृहत्यः । इंद्रो देवता । अत्रानुक्रमणिका । प्रो अस्मै द्वादश प्रगाथः पांक्तं सप्तम्याद्यास्तु तिस्रो बृहत्य इति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिंद्रस्य माहिनं वयो वर्धंति सोमिनो भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥१॥
प्रो इति । अस्मै । उपऽस्तुतिं । भरत । यत् । जुजोषति ।
उक्थैः । इंद्रस्य । माहिनं । वयः । वर्धंति । सोमिनः । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥१॥

अस्मा इंद्रायोपस्तुतिमुपेत्य क्रियमाणां स्तुतिं प्रो भरत । प्रकर्षेण संपादयत हे ऋत्विजः । यद्यद्ययमिंद्रो जुजोषति सेवते तर्हि भरतेति । सोमिनः सोमप्रियस्येंद्रस्य स्वभूतं माहिनं महद्वयोऽन्नं सोमलक्षणमुक्थैः शस्त्रैर्वर्धंति । वर्धयंति । भद्राः स्तुत्यानि खल्विंद्रस्य रातयो दानानि ॥

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥२॥
अयुजः । असमः । नृऽभिः । एकः । कृष्टीः । अयास्यः ।
पूर्वीः । अति । प्र । ववृधे । विश्वा । जातानि । ओजसा । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥२॥

अयुजोऽसहायोऽसमोऽसदृशोऽन्यैर्नृभिर्देवैरेको मुख्योऽयास्य उपक्षपयितुमशक्यः पूर्वीः कृष्टीः पूर्वतन्यः प्रजा अति प्र ववृधे । अतिप्रवर्धते । किंच विश्वा सर्वाणि जातानीदानीमुत्पन्नान्योजसा बलेनाति प्र वावृधे । भद्रा हींद्रस्य रातयः । अथवा । अयमृषिरयुजोऽसहायोऽन्यैरसदृश एक एव सन् पूर्वीः प्रजा जातानि सर्वाण्यप्यतिक्रम्य वर्धते । शिष्टं समानं ॥

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिंद्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥३॥
अहितेन । चित् । अर्वता । जीरऽदानुः । सिसासति ।
प्रऽवाच्यं । इंद्र । तत् । तव । वीर्याणि । करिष्यतः । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ॥३॥

अयं जीरदानुः क्षिप्रप्रदान इंद्रोऽहितेनायोजितेनाप्रेरितेन चिदर्वतारणवताश्वेन सिषासति। संभक्तुमिच्छति। तस्मात्ते इंद्र वीर्याणि सामर्थ्यानि करिष्यतस्तव महत्त्वं प्रवाच्यं। स्तुत्यमित्यर्थः॥

आ याहि कृणवाम त इंद्र ब्रह्माणि वर्धना।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इंद्रस्य रातयः॥४॥
आ। याहि। कृणवाम। ते। इंद्र। ब्रह्माणि। वर्धना।
येभिः। शविष्ठ। चाकनः। भद्रं। इह। श्रवस्यते। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥४॥

हे इंद्र आ याहि। आगच्छ। ते कृणवाम। किं। ब्रह्माणि परिवृढानि स्तुतिलक्षणानि कर्माणि। कीदृशानि। वर्धनोत्साहवर्धकानि। येभिर्यैः कर्मभिर्हे शविष्ठातिशयेन बलवन्निंद्र चाकनः कामयसे। किं। भद्रं कर्तुं। कस्मै। श्रवस्यतेऽन्नमिच्छते स्तोत्रे॥

धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषींद्र यत्त्वं।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इंद्रस्य रातयः॥५॥
धृषतः। चित्। धृषत्। मनः। कृणोषि। इंद्र। यत्। त्वं।
तीव्रैः। सोमैः। सपर्यतः। नमःऽभिः। प्रतिऽभूषतः। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥५॥

हे इंद्र धृषतश्चिद्धृष्टादपि धृषद्धृष्टं मनः कृणोषि। अत्यंतं धृष्टं करोषि। यद्यस्मात्त्वं तीव्रैर्मदजनकैः सोमैः सपर्यतो पूजयतो नमोभिर्नमस्कारैश्च प्रतिभूषतोऽलंकुर्वतो यजमानस्याभिमतं दित्ससीति शेषः॥

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इंद्रस्य रातयः॥६॥
अव। चष्टे। ऋचीषमः। अवतान्ऽइव। मानुषः।
जुष्ट्वी। दक्षस्य। सोमिनः। सखायं। कृणुते। युजं। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥६॥

अयमिंद्र ऋचीषम ऋचा स्तुत्या समस्तथा परिच्छिन्नः सन्नव चष्टे। पश्यत्यनुग्रहेणास्मान्। तत्र दृष्टांतः। मानुषो मनुष्योऽवतानवटान् कूपादिप्रदेशानिव। दृष्ट्वा च जुष्ट्वी प्रीतोऽयं दक्षस्य प्रवृद्धस्य सोमिनो यजमानस्य युजं युज्यमात्मानं सखायं कृणुते। करोति। तस्याभिमतं साधयतीत्यर्थः। अथवा। तृषितो मनुष्यो जलपूर्णानवटानिव स्तुतः सन् पश्यति सोमं पातुं। पश्चादभिषुतं तं युज्यमानं सोमं जुष्ट्वी सेवित्वा दक्षस्य सोमिनः सखायं कुरुते॥ ॥४०॥

विश्वे त इंद्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इंद्रस्य रातयः॥७॥
विश्वे। ते। इंद्र। वीर्यं। देवाः। अनु। क्रतुं। ददुः।
भुवः। विश्वस्य। गोऽपतिः। पुरुऽस्तुत। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥७॥

हे इंद्र ते तव वीर्यं सामर्थ्यं क्रतुं प्रज्ञां चान्वनुसृत्य विश्वे सर्वे देवा ददुः। दधुः। धारयंति वीर्यं प्रज्ञां च। तव बलेन प्रज्ञया च तेऽपि बलिनः प्रज्ञावंतश्च भवंतीत्यर्थः। तादृशस्त्वं गोपतिः प्रसिद्धानां गवामुद-

कानां स्तुतिवचसो वा पतिर्भुवः। भवसि। विश्वस्येत्येतत्पदांतर्गतस्यापि गोशब्दस्य विशेषः। हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुतेंद्र भवसीति समन्वयः॥

गृणे तदिंद्र ते शव उपमं देवतातये।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इंद्रस्य रातयः॥८॥
गृणे। तत्। इंद्र। ते। शवः। उपऽमं। देवऽतातये।
यत्। हंसि। वृत्रं। ओजसा। शचीऽपते। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥८॥

हे इंद्र ते तव तच्छवो बलमुपममंतिकं देवतातये यजमानाय यज्ञार्थं वा गृणे। स्तुवे। यद्यस्माद्धे शचीपते वृत्रमोजसा बलेन हंसि तस्मात्ते शवो गृणे॥

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा।
विदे तदिंद्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इंद्रस्य रातयः॥९॥
समनाऽइव। वपुष्यतः। कृणवत्। मानुषा। युगा।
विदे। तत्। इंद्रः। चेतनं। अध। श्रुतः। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥९॥

समनेव समानमनस्का योषिदिव सा यथा वपुष्यतो वपुरिच्छतः पुरुषान् कृणवत् करोति स्ववशान् एवमयमिंद्रो मानुषा मनुष्यान् युगा युगानि कालान् संवत्सरायनर्तुमासादीन्विदे। लंभयति। तद्युगनिर्माणात्मकं कर्मेंद्रश्चेतनं सर्वस्य प्रज्ञापकं कृतवानिति शेषः। अधाथैवं कृत्वा श्रुतः सर्वत्र ख्यातोऽभूत्॥

उज्जातमिंद्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुं।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इंद्रस्य रातयः॥१०॥
उत्। जातं। इंद्र। ते। शवः। उत्। त्वां। उत्। तव। क्रतुं।
भूरिगो इति भूरिऽगो। भूरि। ववृधुः। मघऽवन्। तव। शर्मणि। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥१०॥

हे इंद्र उत्। अयं व्यवहितेनापि वावृधुरित्यनेन संबध्यते। उद्वर्धयंति सोमेन। किं। ते शवो बलं। न केवलं बलं किंतु त्वामुद्वर्धयंति स्तुत्यादिना। पश्चात्तव क्रतुं प्रज्ञां स्वानुकूलामुद्वर्धयंति। भूरीत्येतत्प्रत्याख्यातं संबध्यते। अतिप्रभूतमुद्वर्धयंतीत्यर्थः। क एवं कुर्वंतीति उच्यते। हे भूरिगो बहुपशो हे मघवन्धनवन्निंद्र तव शर्मणि त्वदीये सुखे ये वर्तंते ते च कुर्वंतीति॥

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इंद्रस्य रातयः॥११॥
अहं। च। त्वं। च। वृत्रऽहन्। सं। युज्याव। सनिऽभ्यः। आ।
अरातिऽवा। चित्। अद्रिऽवः। अनु। नौ। शूर। मंसते। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः॥११॥

हे वृत्रहन्निंद्र त्वं चाहं च सं युज्याव। संगतौ भवाव। कियदवधीति उच्यते। सनिभ्य आ यावता कालेन धनानि लभ्यंते तावत्कालं। नौ संगतयोरावयोर्हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र अरातीवादानोऽपि जनस्त्वहत्तधनस्यानु मंसते। अनुमतिं करोति॥

सत्यमित्था उ तं वयमिंद्रं स्तवाम नानृतं।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इंद्रस्य रातयः ॥१२॥
सत्यं। इत्। वै। ऊं इति। तं। वयं। इंद्रं। स्तवाम। न। अनृतं।
महान्। असुन्वतः। वधः। भूरि। ज्योतींषि। सुन्वतः। भद्राः। इंद्रस्य। रातयः ॥१२॥

वयं प्रगाथास्तमिंद्रं सत्यमित्सत्यमेव स्तवाम। नानृतमसत्यं न स्तवाम। अस्माभिरुक्ता गुणाः सत्या एव संतु नानृता इत्यर्थः। स्तुत्यस्येंद्रस्य संबंध्यसुन्वतोऽयष्टुर्वधो महान्प्रभूतो भवति। भूरि ज्योतींषि बहून्सोमान्सुन्वतोऽभिषवं कुर्वतो यजमानस्येंद्रकृतोऽनुग्रहो महान्भवतीत्यर्थः॥ ॥४१॥

स पूर्व्य इति द्वादशर्चं चतुर्थं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। स पूर्व्यो गायत्रमाद्या चतुर्थ्यादिद्वे सप्तमी चानुष्टुभो गायत्र्यंत्या दैवी त्रिष्टुबिति। प्रथमाचतुर्थीपंचमीसप्तम्यस्तिस्रोऽनुष्टुभोऽस्मे रुद्रा इत्यंत्या त्रिष्टुबवशिष्टा गायत्र्यः। अंत्याया देवा देवता शिष्टा ऐंद्र्यः॥ षष्ठेऽहनि मरुत्वतीयस्याद्यस्तृचः प्रतिपत्। सूत्रितं च। स पूर्व्यो महानां त्रय इंद्रस्य सोमा इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ। आ° ८. १.। इति॥

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१॥
सः। पूर्व्यः। महानां। वेनः। क्रतुऽभिः। आनजे।
यस्य। द्वारा। मनुः। पिता। देवेषु। धियः। आनजे ॥१॥

स पूर्व्यो मुख्यो महानां पूज्यानां यजमानानां क्रतुभिः कर्मभिर्निमित्तभूतैर्वेनः कांतस्तेषां हविः कामयमान आनजे। आगच्छति। यस्येंद्रस्य द्वारा द्वाराणि प्राप्त्युपायानि धियः कर्माणि देवेष्वेतेषु मध्ये पिता सर्वेषां पालको मनुरानजे प्राप। आनजिः प्राप्तिकर्मा॥

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः। उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥२॥
दिवः। मानं। न। उत्। सदन्। सोमऽपृष्ठासः। अद्रयः। उक्था। ब्रह्म। च। शंस्या ॥२॥

दिवो द्युलोकस्य मानं निर्मातारमिंद्रं नोत्सदन्। नोत्सृजंतु। के। सोमपृष्ठासः सोमस्प्रष्टारः सोमाभिषवकर्तारोऽद्रयो ग्रावाणः। किंचोक्थोक्थानि शस्त्राणि ब्रह्म च ब्रह्माणि स्तोत्राणि शंस्या शंसनीयानि भवंतीति शेषः। यद्वा। यानि स्तोत्राणि शस्त्राणि च संति तानींद्रं नोत्सृजंत्विति समन्वयः॥

स विद्वाँ अंगिरोभ्य इंद्रो गा अवृणोदप। स्तुषे तदस्य पौंस्यं ॥३॥
सः। विद्वान्। अंगिरःऽभ्यः। इंद्रः। गाः। अवृणोत्। अप। स्तुषे। तत्। अस्य। पौंस्यं ॥३॥

स विद्वानुपायज्ञ इंद्रोऽंगिरोभ्यस्तेषामर्थाय गाः पणिभिरपहृताः पिहिता अपावृणोत्। अपवारितवान्। तत्तादृशमस्य पौंस्यं पुंस्त्वं सामर्थ्यं स्तुषे। स्तौमि॥

स प्रत्नथा कविवृध इंद्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गंत्ववसे ॥४॥
सः। प्रत्नऽथा। कविऽवृधः। इंद्रः। वाकस्य। वक्षणिः।
शिवः। अर्कस्य। होमनि। अस्मऽत्रा। गंतु। अवसे ॥४॥

स इंद्रः प्रत्नथा प्रत्नवत्पूर्वस्मिन्काले यथा तद्वदिदानीमपि कविवृधो मेधाविनां स्तोतॄणां वर्धयिता वाकस्य स्तोतुर्वचनैर्वोढा शिवः सुखकरोऽर्कस्य । अर्कमन्नमर्चनीयत्वादर्चनसाधनत्वाद्वा । तादृशस्य सोमस्य होमनि होमे सोऽस्मत्रास्मासु निमित्तभूतेष्ववसे रक्षणाय गच्छतु ॥

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषतेंद्र गोत्रस्य दावने ॥५॥
आत् । ऊं इति । नु । ते । अनु । क्रतुं । स्वाहा । वरस्य । यज्यवः ।
श्वात्रं । अर्काः । अनूषत । इंद्र । गोत्रस्य । दावने ॥५॥

आदु अनंतरमेव त्वद्य हे इंद्र ते तव क्रतुं कर्मानु क्रमेण । अनूषतेति संबंधः । अनुक्रमेण स्तुवंति । के । स्वाहा वरस्य स्वाहादेव्याः पतेरग्नेर्यज्यवो यष्टारः । त्वदर्थमग्नौ यागं कुर्वंत इत्यर्थः । तादृशा अर्का अर्चयितारः स्तोतारः । श्वात्रमिति क्षिप्रनाम । अन्यदेवतास्तुतिरूपविलंबमकृत्वातिशीघ्रमतिदीर्घं स्तुवंतीत्यभिप्रायः । किमर्थं स्तुवंतीति उच्यते । गोत्रस्य दावने धनस्य दानाय ॥

इंद्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ॥६॥
इंद्रे । विश्वानि । वीर्या । कृतानि । कर्त्वानि । च । यं । अर्काः । अध्वरं । विदुः ॥६॥

अस्मिन्निंद्रे विश्वानि सर्वाणि वीर्या वीर्याणि सामर्थ्यानि कृतानि कर्त्वानि च कर्तव्यानि च वर्तंत इति शेषः । यमिंद्रमर्काः स्तोतारोऽध्वरमहिंसकं विदुः जानंति तस्मिन्निंद्र इति ॥ ॥४२॥

पंचमेऽहनि मरुत्वतीये यत्पांचजन्ययेति तृचः प्रतिपत् । सूत्रितं च । यत्पांचजन्यया विशेंद्र इत्सोमपा एक इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ॰ ७. १२. । इति ॥

यत्पांचजन्यया विशेंद्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽ३र्यो मानस्य स क्षयः ॥७॥
यत् । पांचऽजन्यया । विशा । इंद्रे । घोषाः । असृक्षत ।
अस्तृणात् । बर्हणा । विपः । अर्यः । मानस्य । सः । क्षयः ॥७॥

यद्यदा पांचजन्यया । निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णाः पंच जनाः । तत्रभवया विशा प्रजयेंद्रे घोषाः स्तुतयोऽसृक्षत सृज्यंते तदानीमयमिंद्रोऽस्तृणात् हिनस्ति शत्रून् बर्हणा स्वमहत्त्वेन । अनन्यसहायेनेत्यर्थः । तादृशः सोऽयं इंद्रो विपो मेधाविनः स्तोतुर्मम मानस्य पूजायाः सत्कारस्य क्षयो निवासो भवति ॥

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिं ॥८॥
इयं । ऊं इति । ते । अनुऽस्तुतिः । चकृषे । तानि । पौंस्या । प्र । आवः । चक्रस्य । वर्तनिं ॥८॥

इयमिदानींक्रियमाणानुष्टुतिरनुकूला स्तुतिस्ते तव स्वभूता । कुतस्त इति उच्यते । तानि प्रसिद्धानि वृत्रवधादीनि पौंस्या पुंस्त्वानि यतश्चकृषे । अतस्त इत्यर्थः । हे इंद्र चक्रस्य रथाधारस्य वर्तनिं मार्गं प्रावः । प्रारक्षः । अथास्मद्यज्ञगमनाय रक्षःकृता चक्रमार्गबाधा यथा न भवति तथा रक्षसीत्यर्थः ॥

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥९॥
अस्य । वृष्णः । विऽओदने । उरु । क्रमिष्ट । जीवसे । यवं । न । पश्वः । आ । ददे ॥९॥

अस्य वृष्णो वर्षितुरिंद्रस्य व्योदने विविधेऽन्ने लब्धे सति जीवसे जीवनायोव विस्तीर्णं क्रमिष्ट पदनिधानं करोति सर्वो लोकः। अथवेंद्रस्य स्वभूतेऽन्ने लब्धे लब्धव्ये वा सति पदन्यासं करोति। तथा कृत्वा यवं न पश्वो यवं पशव इव सर्वो जन आ ददे आदत्ते स्तुतादस्मात् ॥

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः। स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०॥

तत्। दधानाः। अवस्यवः। युष्माभिः। दक्षऽपितरः। स्याम। मरुत्वतः। वृधे ॥१०॥

तत्स्तोत्रं दधाना धारयंतोऽवस्यवो रक्षाकामा वयं हे ऋत्विजः युष्माभिः। सहिता इति वा योज्यं। तादृशा दक्षपितरः। दक्षोऽन्नं। तस्य पितरः पालकाः स्वामिनः स्याम। किमर्थं। मरुत्वतो मरुद्भिस्तद्वत इंद्रस्य वृधे वर्धनाय यागाय ॥

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः। जेषामेंद्र त्वया युजा ॥११॥

बट्। ऋत्वियाय। धाम्ने। ऋक्वऽभिः। शूर। नोनुमः। जेषाम। इंद्र। त्वया। युजा ॥११॥

बट् सत्यमृत्वियायर्तौ भवाय। ऋतुशब्दो यागकालोपलक्षकः। यागकाले प्रादुर्भूताय धाम्ने कल्याणतेजसे तुभ्यं हे शूरेंद्र ऋक्वभिर्मंत्रैर्नोनुमः। अतिशयेन स्तुमः। हे इंद्र स्तुतेन त्वया युजा सहायभूतेन जेषाम जयेम शत्रून् ॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।

यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इंद्रज्येष्ठा अस्माँ अवंतु देवाः ॥१२॥

अस्मे इति। रुद्राः। मेहना। पर्वतासः। वृत्रऽहत्ये। भरऽहूतौ। सऽजोषाः।

यः। शंसते। स्तुवते। धायि। पज्रः। इंद्रऽज्येष्ठाः। अस्मान्। अवंतु। देवाः ॥१२॥

अस्मे अस्मान्रुद्रा मेहनोदकसेचनयुक्ताः पर्वतासो मेघाश्च वृत्रहत्ये वृत्रहननसाधने भरहूतौ संग्रामाह्वाने सजोषा अस्मत्समानप्रीतिश्च य इंद्रः शंसते शस्त्रं पठते स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते च यजमानाय पज्रो बलवान् वेगवान्वा धायि गच्छति स इंद्रश्चेम इंद्रज्येष्ठा देवा अस्मानवंतु। रक्षंतु। अस्मानिति पूरणः। अथवैवं योज्यं। रुद्रा रुद्रपुत्रा मेहना सेचनेन युक्ताः पर्वताः पर्वतसदृशाः पूरणवंतः प्रीणनवंतो वा। पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वेति निरुक्तं।१.२०.। वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः सजोषसः सहायभूता मरुतो देवा इंद्रज्येष्ठा उक्तलक्षण इंद्रश्चास्मानवंत्विति ॥ ॥४३॥

उत्त्वा मंदंत्विति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तं प्रगाथस्यार्षं। प्राग्वत्सप्रपरिभाषया गायत्रमैंद्रं। उत्त्वेत्यनुक्रमणिका ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

उत्त्वा मंदंतु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

उत्। त्वा। मंदंतु। स्तोमाः। कृणुष्व। राधः। अद्रिऽवः। अव। ब्रह्मऽद्विषः। जहि ॥१॥

हे इंद्र त्वा त्वां स्तोमाः स्तुतय उदुत्कृष्टं मंदंतु। मादयंतु। कृणुष्व कुरु राधोऽन्नं हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र अस्मभ्यं। किंच ब्रह्मद्विषो ब्राह्मणद्वेष्टॄनव जहि ॥

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि। नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदा। पणीन्। अराधसः। नि। बाधस्व। महान्। असि। नहि। त्वा। कः। चन। प्रति ॥२॥

पणीँरुध्यानराधसो यष्टव्यधनरहितान् केवलधनान् पदा पादेनातिक्रम्य नि नितरां बाधस्व। त्वा त्वां तव कश्चन कश्चिदपि देवोऽसुरो मनुष्यो वा प्रति प्रतिनिधिः सदृशो नह्यस्ति खलु ॥

त्वमी॑शिषे सु॒ताना॒मिंद्र॒ त्वमसु॑तानां। त्वं राजा॒ जना॑नां ॥३॥

त्वं। ई॒शि॒षे॒। सु॒ताना॑। इंद्र॑। त्वं। असु॑तानां। त्वं। राजा॑। जना॑नां ॥३॥

हे इंद्र त्वं सुतानामभिषुतानां सोमानामीशिषे। ईश्वरो भवसि। तथा त्वमसुतानां वस्याकारे वर्तमानानां चेशिषे। त्वं जनानां सर्वेषां राजा भवसि ॥

एहि॒ प्रेहि॒ क्षयो॑ दि॒व्या३॒॑घोष॑ञ्चर्षणी॒नां। ओभे पृ॑णासि॒ रोद॑सी ॥४॥

आ। इ॒हि॒। प्र। इ॒हि॒। क्षयः॑। दि॒वि। आ॒ऽघोष॑न्। च॒र्ष॒णी॒नां। आ। उ॒भे इति॑। पृ॒णा॒सि॒। रोद॑सी॒ इति॑ ॥४॥

हे इंद्र एहि। आगच्छ। तथा प्रेहि। प्रगच्छ। दिवि द्युलोकात्। किं। क्षयो निवासं। किं कुर्वन्। आघोषञ्छब्दं कुर्वन्। किमर्थं। चर्षणीनां मनुष्याणामर्थाय। अथवा। हविः स्वीकृत्य प्रेहि। सुखेन गच्छ। दिवमाघोषन् यजमानं स्तुवन्। उभे रोदसी द्यावापृथिव्यावा पृणासि। आपूरयसि तेजसा वृष्ट्या वा ॥

त्यं चि॒त्पर्व॑तं गि॒रिं श॒तव॑तं सह॒स्रिणं॑। वि स्तो॒तृभ्यो॑ रुरोजिथ ॥५॥

त्यं। चि॒त्। पर्व॑तं। गि॒रिं। श॒तऽव॑तं। स॒ह॒स्रिणं॑। वि। स्तो॒तृऽभ्यः॑। रु॒रो॒जि॒थ॒ ॥५॥

हे इंद्र त्वं त्यं चित्तं। चिदिति पूरणः। पर्वतं पर्ववंतं गिरिं मेघं। उभयोर्मेघनामत्वादेको योगरूढो द्रष्टव्यः। शतवंतं शतोदकवंतं तथा सहस्रिणमपरिमितवृष्टिं मेघं स्तोतृभ्योऽर्थाय वि रुरोजिथ। विरुज वज्रेण ॥

व॒यमु॑ त्वा॒ दिवा॑ सु॒ते व॒यं नक्तं॑ हवामहे। अ॒स्माकं॒ काम॒मा पृ॑ण ॥६॥

व॒यं। ऊं इति॑। त्वा॒। दिवा॑। सु॒ते। व॒यं। नक्तं॑। ह॒वा॒म॒हे॒। अ॒स्माकं॑। कामं॑। आ। पृ॒ण॒ ॥६॥

हे इंद्र वयं त्वा त्वां दिवाहनि सुते सोमेऽभिषुते हवामहे। आह्वयामः। तथा वयं नक्तं हवामहे। आहूत आगत्यास्माकं काममा पृण। आपूरय ॥ ॥४४॥

क्व१॒॑ स्य वृ॑ष॒भो युवा॑ तुवि॒ग्रीवो॒ अना॑नतः। ब्र॒ह्मा कस्तं स॑पर्यति ॥७॥

क्व॑। स्यः। वृ॒ष॒भः। युवा॑। तु॒वि॒ऽग्री॒वः। अना॑नतः। ब्र॒ह्मा। कः। तं। स॒प॒र्य॒ति॒ ॥७॥

स्य स वृषभो वर्षिता युवा नित्यतरुणस्तुविग्रीवो विस्तीर्णकंधरोऽनानतः कदाचिदप्यनवनत इंद्रः क्व कुत्र वर्तत इति को जानातीत्यर्थः। को ब्रह्मा स्तोता त्वा त्वां सपर्यति। पूजयति ॥

कस्य॑ स्वि॒त्सव॑नं॒ वृषा॑ जुजु॒ष्वाँ अव॑ गच्छति। इंद्रं॒ क उ॑ स्वि॒दा च॑के ॥८॥

कस्य॑। स्वि॒त्। सव॑नं। वृषा॑। जु॒जु॒ष्वान्। अव॑। ग॒च्छ॒ति॒। इंद्रं॑। कः। ऊं इति॑। स्वि॒त्। आ। च॒के॒ ॥८॥

कस्य स्वित्सवनं। स्विदिति विचिकित्सायां। वृषा वर्षितेंद्रो जुजुष्वान् प्रीयमाणोऽव गच्छति। क उ को वा यजमान इंद्रमा चके। जानाति स्तोतुं। स्विदिति पूरणः ॥

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या । उक्थे क उ स्विदंतमः ॥९॥

कं । ते । दानाः । असक्षत । वृत्रऽहन् । कं । सुऽवीर्या । उक्थे । कः । ऊँ इति । स्वित् । अंतमः ॥९॥

ते त्वां दाना यजमानैर्दत्ता असचत । सेवंते । हे वृत्रहन् वृत्रस्य हंतरिंद्र कं कीदृशं त्वामुक्थे शस्त्रे सुवीर्या शोभनवीर्याणि स्तोत्राण्यसचत । क उ स्विदंतमो वांतिकतमो भवति युद्धे ॥

द्वितीये पर्याये होतुः शस्त्रेऽयं ते मानुष इति तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । अयं ते मानुषे जन उद्वेदभि । आ० ६. ४. । इति ॥

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१०॥

अयं । ते । मानुषे । जने । सोमः । पूरुषु । सूयते । तस्य । आ । इहि । प्र । द्रव । पिब ॥१०॥

अयं सोमस्ते त्वदर्थं तव स्वभूतो वा पूरुषु मनुष्येषु मध्ये मानुषे जने मयि सूयते । अथवा पूरुनामसु राजसु सूयते । तस्य । तमित्यर्थः । तमेहि । आगच्छ । आगत्य च प्र द्रव ग्रहसमीपं । तथा कृत्वा पिब तं सोमं ॥

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आर्जीकीये मदिंतमः ॥११॥

अयं । ते । शर्यणाऽवति । सुऽसोमायां । अधि । प्रियः । आर्जीकीये । मदिन्ऽतमः ॥११॥

अयमस्माभिरभिषुतः सोमस्ते त्वां मदिंतमो मादयितृतमः । अयमधिश्रित आश्रितः । कुत्रेति तदुच्यते । शर्यणावति कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धभवे शरतृणोपेते सरसि । तत्सरः कुत्र वर्तत इति उच्यते । सुषोमायामेतन्नामिकायां नद्यां । सा च कुत्र वर्तत इति तदुच्यते । आर्जीकीय एतन्नामके देशे । एवमुक्तप्रकारेणात्यंतदूरदेशे वर्तते यः सोमः स एवायं । अभिषुतं पिबेत्युत्तरत्रान्वयः ॥

तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिंद्र द्रवा पिब ॥१२॥

तं । अद्य । राधसे । महे । चारुं । मदाय । घृष्वये । आ । इहि । ईं । इंद्र । द्रव । पिब ॥१२॥

तं पूर्वमंत्र उपवर्णितं चारुं चरणशीलं सोमं महे महते राधसेऽस्माकं धनाय तव घृष्वये शत्रूणां घर्षणशीलाय मदाय पिब । हे इंद्र तदर्थं द्रव । गच्छ शीघ्रं सोमपात्रं प्रति । तदर्थमीमिदानीमेहि । आगच्छ ॥ ॥४५॥

यदिंद्र प्रागिति द्वादशर्चं षष्ठं सूक्तं प्रगाथस्यार्षं गायत्रमैंद्रं । यदिंद्रेत्यनुक्रांतं ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

यदिंद्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाशुभिः ॥१॥

यत् । इंद्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । हूयसे । नृऽभिः । आ । याहि । तूयं । आशुऽभिः ॥१॥

हे इंद्र त्वं नृभिः कर्मनेतृभिरस्मदीयैरध्वर्य्वादिभिः प्राग्वापागुदग्वा न्यग्वा यतः कुतश्चिद्धूयसेऽतस्तूयं तूर्णमाशुभिराशुगामिभिरश्वैरा याहि । आगच्छ ॥

यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अंधसः ॥२॥

यत् । वा । प्रऽस्रवणे । दिवः । मादयासे । स्वःऽनरे । यत् । वा । समुद्रे । अंधसः ॥२॥

यद्वाथवा दिवो द्युलोकस्य प्रस्रवणेऽमृतनिष्यंदनस्थाने मादयासे माद्यसि । यद्वा स्वर्णरे स्वर्गनयने वा

भूलोकेऽन्यस्य यागदेशे मादयसि । यद्वांधसः । अंधोऽन्नं । तेन तत्कारणमुदकं लक्ष्यते । तस्य समुद्रे समुंदनापादानभूतेऽंतरिक्षे मादयसि । तत्र तत्र वर्तमानमपि त्वा हवे इत्युत्तरत्र संबंधः ॥

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इंद्र सोमस्य पीतये ॥३॥

आ । त्वा । गीःऽभिः । महां । उरुं । हुवे । गांऽइव । भोजसे । इंद्र । सोमस्य । पीतये ॥३॥

हे इंद्र त्वा त्वां गीर्भिः स्तुतिभिर्हुवे । आह्वयामि । कीदृशं त्वां । महां महांतमुरुं प्रभूतं । किमर्थं । सोमस्य पीतये पानाय । ह्वाने दृष्टांतः । भोजसे भोगाय गामिव ॥

आ ते इंद्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहंतु बिभ्रतः ॥४॥

आ । ते । इंद्र । महिमानं । हरयः । देव । ते । महः । रथे । वहंतु । बिभ्रतः ॥४॥

हे इंद्र ते तव महिमानं माहात्म्यं रथे बिभ्रतो धारयंतो हरयोऽश्वा आ वहंतु । तथा हे देव ते महस्तेजो रथे बिभ्रतोऽश्वा आ वहंतु । अत्र महिम्नो महसश्च पृथगावहनासंभवात्ताभ्यां विशिष्टं वहंत्वित्यर्थः । अथवा महिमानं बिभ्रतस्ते त्वां रथे वहंतु महो बिभ्रतश्च त्वां वहंत्विति योज्यं ॥

इंद्र गृणीष उं स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ॥५॥

इंद्र । गृणीषे । ऊं इति । स्तुषे । महान् । उग्रः । ईशानऽकृत् । आ । इहि । नः । सुतं । पिब ॥५॥

हे इंद्र त्वं गृणीषे । उच्यसे । इदं देहीदं कुर्विति । तथा स्तुष उ । स्तूयसे च । उ इति चार्थे । कीदृशस्त्वं । महान् गुणैः प्रवृद्ध उग्र उद्गूर्णबल ईशानकृदैश्वर्यकर्ता । तादृशस्त्वमेहि । आगच्छ । आगत्य च नः सुतं सोमं पिब ॥

सुतावंतस्त्वा वयं प्रयस्वंतो हवामहे । इदं नो बर्हिरासदे ॥६॥

सुतऽवंतः । त्वा । वयं । प्रयस्वंतः । हवामहे । इदं । नः । बर्हिः । आऽसदे ॥६॥

सुतावंतोऽभिषुतसोमवंतः प्रयस्वंतश्चरुपुरोडाशाद्यन्नवंतश्च वयं त्वा त्वां हवामहे । आह्वयामः । किमर्थं । इदं नोऽस्मदीयं बर्हिर्बर्हिषि यज्ञे बर्हिषि वासदे आसादनाय ॥ ॥४६॥

यच्चिद्धि शश्वतामसींद्र साधारणस्त्वं । तं त्वा वयं हवामहे ॥७॥

यत् । चित् । हि । शश्वतां । असि । इंद्र । साधारणः । त्वं । तं । त्वा । वयं । हवामहे ॥७॥

हे इंद्र त्वं यच्चिद्धि यस्मात्खलु शश्वतां बहूनां यजमानानां साधारणोऽसि । चिदिति पूरणः । हीति प्रसिद्धौ । तं तादृशं साधारणं त्वा त्वां वयं हवामहे । आह्वयामः । इतरेभ्यः पूर्वमिति भावः ॥

प्रातःसवन इदं ते सोम्यमिति होतुः प्रस्थितयाज्या । सूत्रितं च । इदं ते सोम्यं मधु मित्रं वयं हवामहे । आ॰ ५.५. । इति ॥

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इंद्र तत्पिब ॥८॥

इदं । ते । सोम्यं । मधु । अधुक्षन् । अद्रिऽभिः । नरः । जुषाणः । इंद्र । तत् । पिब ॥८॥

हे इंद्र ते त्वदर्थमिदं सोम्यं सोमसंबंधि मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्ग्रावभिरभिषवसाधनैर्नरोऽस्मदीया अध्वर्य्वादयः । हे इंद्र तन्मधु जुषाणः प्रीयमाणः पिब ॥

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥९॥

विश्वान् । अर्यः । विपःऽचितः । अति । ख्यः । तूयं । आ । गहि । अस्मे इति । धेहि ।
श्रवः । बृहत् ॥९॥

हे इंद्र अर्यः स्वामी त्वं विश्वान्विपश्चितः स्तोतॄनति ख्यः । अतिक्रम्य पश्य । तदर्थं तूयं क्षिप्रमा गहि । आगत्य चास्मे अस्मासु बृहच्छ्रवोऽन्नं यशो वा धेहि ॥

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनां । मा देवा मघवा रिषत् ॥१०॥

दाता । मे । पृषतीनां । राजा । हिरण्यऽवीनां । मा । देवाः । मघऽवा । रिषत् ॥१०॥

हिरण्यवीनां हिरण्यवीतानां पृषतीनां राजेंद्रो मे दाता भवतु । हे देवाः मघवेंद्रो मा रिषत् । रिष्टो मा भवतु ॥

सहस्रे पृषतीनामधि श्चंद्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥

सहस्रे । पृषतीनां । अधि । चंद्रं । बृहत् । पृथु । शुक्रं । हिरण्यं । आ । ददे ॥११॥

अहं पृषतीनां गवां सहस्रेऽध्युपरि धारितं बृहन्महत्पृथु विस्तृतं चंद्रमाह्लादकं शुक्रं निर्मलं हिरण्यमा ददे । स्वीकरोमींद्रेणानीतं ॥

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत ॥१२॥

नपातः । दुःऽगहस्य । मे । सहस्रेण । सुऽराधसः । श्रवः । देवेषु । अक्रत ॥१२॥

नपातोऽरक्षितस्य दुर्गहस्य दुःखं गाहमानस्य मे संबंधिनो जनाः सहस्रेणापरिमितेनेंद्रदत्तेन गवादिधनेन सुराधसः सुधनाः संतो देवेषु प्रीतेषु । इंद्रे प्रीत इत्यर्थः । श्रवोऽन्नं यशो वाक्रत । अलभंतेत्यर्थः ॥ ॥४७॥

तरोभिर्व इति पंचदशर्चं सप्तमं सूक्तं प्रगाथपुत्रस्य कलेरार्षं । प्रथमातृतीयाद्ययुजो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थ्यादियुजः सतोबृहत्यः पंचदशी त्वनुष्टुप् । तथा चानुक्रमणिका । तरोभिः पंचोना कलिः प्रागाथः प्रागाथमंत्यानुष्टुबिति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावेतत्सूक्तं । तथा च पंचमारण्यके सूत्रितं । तरोभिर्वो विदद्वसुमित्युत्तमामुद्धरति । ऐ॰ आ॰ ५. २. ४. । इति ॥ अग्निष्टोमेऽच्छावाकशस्त्रेऽयं प्रगाथः स्तोत्रियः । तथा च सूत्रितं । तरोभिर्वो विदद्वसुं तरणिरित्सिषासतीति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ॰ ५. १६. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहन्ययमेव प्रगाथः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । तरोभिर्वो विदद्वसुं तरणिरित्सिषासति । आ॰ ७. ४. । इति ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिंद्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायंतः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणं ॥१॥

तरःऽभिः । वः । विदत्ऽवसुं । इंद्रं । सऽबाधः । ऊतये ।
बृहत् । गायंतः । सुतऽसोमे । अध्वरे । हुवे । भरं । न । कारिणं ॥१॥

हे ऋत्विजः वो यूयं तरोभिर्वेगैरश्वैरुपेतं वेगैरेव वा विदद्वसुं वेदयद्वसुं धनावेदकमिंद्रं सबाधो बाधासहिता ऊतये रक्षणाय बृहत्सामैतत्संज्ञं गायंतः संतः परिचरतेति शेषः । कुत्रेति तदुच्यते । सुतसोमे सुतसोमकेऽध्वरे यज्ञे सोमयागे । अहं च तमिंद्रं हुवे । आह्वयामि । कमिव । भरं भर्तारं कुटुंबपोषकं कारिणं हितकरणशीलं यथा स्वहितकरणायाह्वयंति पुत्रादयस्तद्वत्तथाभूतमिंद्रं हुव इति ॥

न यं दुध्रा वरंते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमंधसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यं ॥२॥
न । यं । दुध्राः । वरंते । न । स्थिराः । मुरः । मदे । सुऽशिप्रं । अंधसः ।
यः । आऽदृत्य । शशमानाय । सुन्वते । दाता । जरित्रे । उक्थ्यं ॥२॥

यं सुशिप्रमिंद्रं दुध्रा दुर्धरा असुरादयो न वरंते न वारयंति संग्रामे। तथा स्थिरा देवा न वरंते। किंच मुरो मरणस्वभावा मनुष्या न वरंते। अंधसोऽन्नस्य सोमस्य मदे मदाय सोमपानजनितायादृत्य यः शशमानाय शंसमानाय सुन्वतेऽभिषवं कुर्वते जरित्रे स्तोत्रे च दाता भवति। किं। उक्थ्यं स्तुत्यं धनं। स रेजयतीत्युत्तरत्र संबंधः ॥

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिंद्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥३॥
यः । शक्रः । मृक्षः । अश्व्यः । यः । वा । कीजः । हिरण्ययः ।
सः । ऊर्वस्य । रेजयति । अपऽवृतिं । इंद्रः । गव्यस्य । वृत्रऽहा ॥३॥

यः शक्र इंद्रः स्तोतॄणां मृक्षः शोधकः परिचरणीयो वा। यश्चाश्व्यः। अश्वकुशलोऽश्व्यः। अथवाश्व्य इति स्वार्थिको यत्। मृक्षोऽश्वः प्रक्षालितोऽश्व इव वर्तते। यो वा कीजः। कीज इत्यद्भुतमाह। किमस्य कथं जात इति व - - -। यश्च हिरण्ययो हिरण्मयशरीरः स एवमाश्चर्यभूत इंद्रो वृत्रहा गव्यस्य गोसमूहस्य। कीदृशस्य। ऊर्वस्य बहुलस्यापावृतिमपवरणीयं रेजयति। कंपयतीत्यर्थः ॥

निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिंद्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥४॥
निऽखातं । चित् । यः । पुरुऽसंभृतं । वसु । उत् । इत् । वपति । दाशुषे ।
वज्री । सुऽशिप्रः । हरिऽअश्वः । इत् । करत् । इंद्रः । क्रत्वा । यथा । वशत् ॥४॥

निखातं चिद्भूमौ खात्वा स्थापितमपि संभृतं संगृहीतं यागदानादिकं कुर्वदृशं पुरु बहु वसु धनमुद्वपति उद्वपत्येव दाशुषे यजमानाय। एवं यो देवः करोति स वज्री सुशिप्रः सुहनुर्हर्यश्व इन्हरितवर्णाश्वयुक्त इंद्र एव करोति। केनोपाधिना। क्रत्वा कर्मणा यागेनोपाधिना। यथा वशत् येन प्रकारेण कामयते तथा स एव करोति ॥

यद्वावंथ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणां ।
वयं तत्त इंद्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥५॥
यत् । ववंथ । पुरुऽस्तुत । पुरा । चित् । शूर । नृणां ।
वयं । तत् । ते । इंद्र । सं । भरामसि । यज्ञं । उक्थं । तुरं । वचः ॥५॥

हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुतेंद्र शूर विक्रांत नृणां नेतॄणां स्तोतॄणां सकाशात् पुरा। चिदित्युपमार्थे। तथेदानीमपि यद्ववंथ अचीकमथाः तदेव वयं तुरं तूर्णं ते तुभ्यमिंद्र सं भरामसि। संभरामः। किं तदिति उच्यते। यज्ञं यागयोग्यं हविरुक्थं शस्त्रं वचो वाच्यं। तव प्रियतमं हविः स्तोत्रं च संभराम इत्यर्थः ॥ ॥४८॥

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥६॥
सचा । सोमेषु । पुरुऽहूत । वज्रिऽवः । मदाय । द्युक्ष । सोमऽपाः ।
त्वं । इत् । हि । ब्रह्मऽकृते । काम्यं । वसु । देष्ठः । सुन्वते । भुवः ॥६॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूत हे वज्रिवो वज्रवन् द्युक्ष द्युमन् सोमपाः सोमस्य पातः त्वं सोमेष्वभिषुतेषु मदाय सचा सह भवेति शेषः। त्वमित्त्वमेव ब्रह्मकृते स्तोत्रकर्त्रे सुन्वते च काम्यं कमनीयं वसु धनं देष्ठो दातृतमो भुवः। भवसि ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्रे वयमेनमिति वैकल्पिकोऽनुरूपः। तथा च सूचितं। वयमेनमिदा ह्यो यो राजा चर्षणीनां। आ० ७.४.। इति ॥

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणं ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥७॥
वयं । एनं । इदा । ह्यः । अपीपेम । इह । वज्रिणं ।
तस्मै । ऊं इति । अद्य । समना । सुतं । भर । आ । नूनं । भूषत । श्रुते ॥७॥

वयं यजमाना एनमिंद्रं वज्रिणमिदेदानीं ह्यश्चेहाचापीपेम आप्याययाम सोमेन। तस्मा उ तस्मा एवाद्याच समना संग्रामार्थं सुतमभिषुतं सोमं भर हरत हे अध्वर्य्वादयः। नूनमिदानीं श्रुते स्तोत्रे श्रुते सत्या भूषत। आभवतु। आगच्छतु ॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहींद्र प्र चित्रया धिया ॥८॥
वृकः । चित् । अस्य । वारणः । उराऽमथिः । आ । वयुनेषु । भूषति ।
सः । इमं । नः । स्तोमं । जुजुषाणः । आ । गहि । इंद्र । प्र । चित्रया । धिया ॥८॥

वृकश्चित्स्तेनोऽपि वारणो वारयिता सर्वस्य सन्नप्युरामथिः शत्रूणां मार्गे गच्छतां मथिता सन्नप्यस्येंद्रस्य वयुनेषु मार्गेषु प्रज्ञानेषु वा भूषति। आनुकूल्यमेव भजते। अतीवहिंस्रोऽपींद्रस्यानुकूलो भवतीत्यर्थः। यद्वा ॥ स्येति कर्मणि षष्ठी ॥ अमुमिंद्रमुक्तरूपो वृकोऽपि वयुनेषु स्तोत्रेष्वा भूषति। स त्वमिमं नः स्तोमं जुजुषाणः प्रीयमाण आ गहि। आगच्छ। हे इंद्र चित्रया धिया कर्मणा स्तुतिलक्षणेन निमित्तेन प्र प्रकर्षेण गहि। शीघ्रमागच्छ ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्र एव कदू न्विति ककुत्प्रगाथः। कदू न्वस्याकृतमिति ककुभः प्रगाथाः। आ० ७.४.। इति हि सूचितं ॥

कदू न्व१स्याकृतमिंद्रस्यास्ति पौंस्यं ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥९॥
कत् । ऊं इति । नु । अस्य । अकृतं । इंद्रस्य । अस्ति । पौंस्यं ।
केनो इति । नु । कं । श्रोमतेन । न । शुश्रुवे । जनुषः । परि । वृत्रऽहा ॥९॥

अस्येंद्रस्य कदू नु किं तु खलु पौंस्यं पौरुषमकृतमनाचारितमस्ति । सर्वमपि वृत्रवधादिकमनेन कृतमेव इतः परं न किंच पौंस्यं कृत्यमस्तीत्यर्थः । लोके स्वल्पमपि यः पुंस्त्वं कुर्यात्स तेन स्तूयतेऽयं तु न स्तुत एतदुच्यते । केनो नु कं केन खलु श्रोमतेन श्रवणीयेन पुंस्त्वेन न शुश्रुवे । न श्रूयते । किं कतिपयैरेवाहोभिः कृतेन नेत्याह । अयं वृत्रहा वृत्रस्यातिप्रबलस्य हंतायं जनुषः परि जन्मप्रभृति क्रियमाणैः सामर्थ्यैः श्रूयते । वृत्रहत्वं तत्पुंस्त्वप्रदर्शनाद्योतनाय । यथा वृत्रहननं सर्वैः श्रूयते तद्वदन्यान्यपीति भावः ॥

कदू म॒हीरधृ॑ष्टा अस्य॒ तवि॑षीः॒ कदु॑ वृत्र॒घ्नो अस्तृ॑तं ।
इंद्रो॒ विश्वा॑न्बेकनाटाँ॑ अहर्दृश॑ उ॒त क्रत्वा॑ प॒णीँर॒भि ॥१०॥

कत् । ऊं॒ इति॑ । म॒हीः । अधृ॑ष्टाः । अ॒स्य॒ । तवि॑षीः । कत् । ऊं॒ इति॑ । वृ॒त्र॒ऽघ्नः । अस्तृ॑तं ।
इंद्रः॑ । विश्वा॑न् । बे॒क॒ऽना॒टान् । अ॒ह॒ःऽदृशः॑ । उ॒त । क्रत्वा॑ । प॒णीन् । अ॒भि ॥१०॥

कदू कदा खल्वस्येंद्रस्य तविषीर्बलान्यधृष्टा अधृष्टान्यधर्षकाण्यासन् । कदु कदा नु खलु वृत्रघ्नो वृत्रहंतुरिंद्रस्य हंतव्यमस्तृतमहिंसितमभवत् । न कदाचिदित्य------व्ययंहं अभवदित्यर्थः । अथवास्य महांति बलानि सेनालक्षणानि कदाप्यधृष्टान्यन्यबलैरहिंसितानि तथा वृत्रघ्नो शारीरं बलमस्तृतमन्यैरहिंस्यं । ईदृशेन द्विविधेन बलेनेंद्रो विश्वान् सर्वान्बेकनाटान् । अनेन कुसीदिनो वृद्धिजीविनो वार्धुषिका उच्यंते । कथं तद्व्युत्पत्तिः । बे इत्यपभ्रंशो द्विशब्दार्थे । एकं कार्षापणमृणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्य---नयेन दर्शयंति ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयंतीति बेकनाटाः । तानहर्दृशः । अहःशब्देन तदुत्पादक आदित्योऽभिधेयो भवति । तं पश्यंतीत्यहर्दृशः । ननु सर्वे सूर्यं पश्यंति कोऽत्रातिशय इति उच्यते । इहैव जन्मनि सूर्यं पश्यंति न जन्मांतरे । लुब्धका अयष्टारोंऽधे तमसि मज्जंति । अथवा लौकिकान्येवाहानि पश्यंति न पारलौकिकान्यदृष्टानि । दृष्टप्रधाना हि नास्तिकाः । अतो---शान् पणीन् पणिसदृशान्क्षुद्रकल्पान् । उतशब्द एवार्थे । क्रत्वोत कर्मणैव ताडनादिव्यापारेणैवाभि भवतीति शेषः । यद्वा । पणीनुत पणीनेवाभिभवति न यष्टारं । पणीनां निंदा स्मर्यते । गोरक्षकानापणिकांस्तथा कारुकुशीलवान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् । मनु० ८. १०२. । इति ॥ ॥४९॥

व॒यं घा॑ ते॒ अपू॑र्व्येंद्र॒ ब्रह्मा॑णि वृत्रहन् ।
पु॒रु॒तमा॑सः पुरुहूत वज्रिवो भृ॒तिं न प्र भ॑रामसि ॥११॥

व॒यं । घ॒ । ते॒ । अपू॑र्व्या । इंद्र॑ । ब्रह्मा॑णि । वृ॒त्र॒ऽह॒न् ।
पु॒रु॒ऽत॒मासः॑ । पु॒रु॒ऽहू॒त॒ । व॒ज्रि॒ऽव॒ः । भृ॒तिं । न । प्र । भ॒रा॒म॒सि॒ ॥११॥

हे इंद्र वयं घ खलु ते तवापूर्व्या नूतनानि ब्रह्माणि परिवृढानि स्तोत्राणि प्र भरामसि संभरामः पुरुतमासो बहुतमा वयमृत्विग्यजमानरूपेण वृत्रहन् वृत्रस्य हंतः पुरुहूत बहुभिराहूत हे वज्रिवो वज्रयुक्तेंद्र । किमिव । भृतिं न भृतिमिव । तं यथा नियमेन प्रयच्छंति तद्वत् । नियमेन प्रदानतात्पर्याद्भृतिदृष्टांतत्वमविरुद्धं ॥

पू॒र्वीश्चि॒द्धि त्वे तु॑विकूर्मिन्ना॒शसो॒ हवं॑त इंद्रो॒तयः॑ ।
ति॒रश्चि॑द॒र्यः सव॒ना वसो॑ गहि॒ शवि॑ष्ठ श्रुधि मे॒ हवं॑ ॥१२॥

पू॒र्वीः । चि॒त् । हि । त्वे इति॑ । तु॒वि॒ऽकू॒र्मि॒न् । आ॒ऽशसः॑ । हवं॑ते । इंद्र॑ । ऊ॒तयः॑ ।
ति॒रः । चि॒त् । अ॒र्यः । सव॑ना । आ । व॒सो॒ इति॑ । ग॒हि॒ । शवि॑ष्ठ । श्रु॒धि । मे॒ । हवं॑ ॥१२॥

हे तुविकूर्मिन् बहुकर्मन्निंद्र त्वे त्वयि पूर्वीर्बह्व्याशस आशंसनानि स्थितानि तथोतयो रक्षाश्च त्वय्यव-

स्थिता त्वच्यं हवंत आह्वयंति स्तोतारोऽन्ये। अतोऽर्योऽरेः सवना सवनानि तिरश्चित्तिरस्कृत्यारीन्वा तिरस्कृत्यास्मत्सवनान्यभिलक्ष्य हे वसो वासकेंद्र आ गहि। आगच्छ। अतो हे शविष्ठातिशयेन बलवन् मे हवं श्रुधि। शृणु॥

वयं घा ते त्वे इद्विंद्र विप्रा अपि ष्मसि।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता॥१३॥
वयं। घ। ते। त्वे इति। इत्। ऊं इति। इंद्र। विप्राः। अपि। स्मसि।
नहि। त्वत्। अन्यः। पुरुऽहूत। कः। चन। मघऽवन्। अस्ति। मर्डिता॥१३॥

हे इंद्र वयं घ वयं खलु ते तव स्वभूताः। अतस्त्वे इत्त्वय्येव विप्रा मेधाविनः स्तोतारोऽपि स्मसि। अपिः संभावनायां। त्वदधीनाः स्मेत्यर्थः। अन्यान्विहायेंद्र एव वर्तते। तस्मिन्कोऽतिशय इति आह। हे पुरुहूत त्वदन्यः कश्चन हे मघवन् मर्डिता सुखयिता नास्ति॥

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित्॥१४॥
त्वं। नः। अस्याः। अमतेः। उत। क्षुधः। अभिऽशस्तेः। अव। स्पृधि।
त्वं। नः। ऊती। तव। चित्रया। धिया। शिक्ष। शचिष्ठ। गातुऽवित्॥१४॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्मानस्या अमतेर्दारिद्र्यात्मिकाया उतापि च क्षुधोऽभिशस्तेर्निंदायाश्च सकाशादव स्पृधि। अवमोचय। किंच त्वं नोऽस्मभ्यं तवोत्यूत्या चित्रया धिया विचित्रेण कर्मणा शिक्ष। देह्यभिमतं। हे शचिष्ठ गातुविन्मार्गज्ञ उपायज्ञस्त्वं॥

सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति॥१५॥
सोमः। इत्। वः। सुतः। अस्तु। कलयः। मा। बिभीतन।
अप। इत्। एषः। ध्वस्मा। अयति। स्वयं। घ। एषः। अप। अयति॥१५॥

सोमः सुतोऽभिषुतो वो युष्माकं संबंध्यस्त्वित्। भवत्वेवेंद्राय। हे कलयः। कलिमहर्षेर्ज्ञातयः पुत्राश्चात्र संबोध्यंते। यूयं मा बिभीतन। भीता मा भवत। भीत्यभावे कारणमाह। एष ध्वस्मा ध्वंसको राक्षसादिरपायति। अपगच्छत्येवेंद्रसामर्थ्यात्। स्वयं घ स्वयमेवैषोऽपायति। उ इति पूरणः। पुनरुक्तिर्दार्ढ्यार्था॥ ॥५०॥

त्यान्न्वित्येकविंशत्यृचमष्टमं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। त्यान्नु सैका मत्स्यः सांमदो मैत्रावरुणिर्मान्यो वा बहवो वा मत्स्या जालनद्धा आदित्यानस्तुवन्। संमदाख्यस्य महामीनस्य पुत्रो मत्स्यो यद्वा मित्रावरुणयोः पुत्रो मान्योऽथवा बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः संतो बंधनमोक्षायादित्यानस्तुवन्। अतस्त एवर्षयः। परं गायत्रं प्राग्वत्सप्रेरिति परिभाषया गायत्री छंदः। आदित्या देवता॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः॥

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे। सुमृळीकाँ अभिष्टये॥१॥
त्यान्। नु। क्षत्रियान्। अवः। आदित्यान्। याचिषामहे। सुऽमृळीकान्। अभिष्टये॥१॥

त्यांस्तानादित्यान् क्षत्रियाञ्जात्या क्षत्रियानवो रक्षणं याचिषामहे। याचामहे। कीदृशान्। सुमृळीकान्

सुष्ठु सुखयितृन्। किमर्थं। अभिष्टयेऽभिगमनायाभिमताय वा। मत्स्यपक्षे जालनिर्गमनं प्रार्थितमितरपक्षेऽभिमतमिति विवेकः॥

मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा। आदित्यासो यथा विदुः॥२॥

मित्रः। नः। अति। अंहतिं। वरुणः। पर्षत्। अर्यमा। आदित्यासः। यथा। विदुः॥२॥

मित्रो वरुणोऽर्यमादित्यास आदित्या नोऽस्मानंहतिमति पर्षत्। अतिनयंतु। ते यथा विदुः येन प्रकारेण दुःसहं जानंति तथाति पर्षदिति। इतरपक्षेऽंहतिं पापमति पर्षदिति॥

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे। आदित्यानामरंकृते॥३॥

तेषां। हि। चित्रं। उक्थ्यं। वरूथं। अस्ति। दाशुषे। आदित्यानां। अरंऽकृते॥३॥

तेषामादित्यानां हि खलु चित्रं चायनीयमुक्थ्यं स्तुत्यं वरूथं धनमस्ति दाशुषे हविर्दात्रेऽरंकृतेऽरंकर्त्रे पर्याप्तकारिणे यजमानाय दातव्यं धनमस्तीति॥

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन्। अवांस्या वृणीमहे॥४॥

महि। वः। महतां। अवः। वरुण। मित्र। अर्यमन्। अवांसि। आ। वृणीमहे॥४॥

हे वरुणादयः महतां वोऽवो रक्षणं महि महद्दाशुषे हविर्दात्रे करणीयमस्ति। अतोऽवांसि रक्षणान्या वृणीमहे॥

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्। कद्ध स्थ हवनश्रुतः॥५॥

जीवान्। नः। अभि। धेतन। आदित्यासः। पुरा। हथात्। कत्। ह। स्थ। हवनऽश्रुतः॥५॥

हे आदित्यास आदित्याः नोऽस्मानिदानीं जीवाञ्जीवतः सतोऽभि धेतन। अभिधावत। अभिधावनं कुरुत। पुरा हथाद्धननान्मृतेः पूर्वं। क्वेत्थ स्थ। भवथ। हे हवनश्रुत आह्वानश्रोतारः। आह्वानं श्रुत्वा शीघ्रमागच्छतेति॥ ॥५१॥

यद्वः श्रांताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः। तेना नो अधि वोचत॥६॥

यत्। वः। श्रांताय। सुन्वते। वरूथं। अस्ति। यत्। छर्दिः। तेन। नः। अधि। वोचत॥६॥

श्रांताय कर्मणः सुन्वतेऽभिषुण्वते यजमानाय दातव्यं यद्वरूथं वरणीयं धनं वो युष्माकमस्ति यच्च छर्दिः सुखवासयोग्यं गृहमस्ति तेन द्वयेनास्मान्प्रीणयित्वा नोऽस्मानधि वोचत। अधिवचनं कुरुत॥

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः। आदित्या अद्भुतैनसः॥७॥

अस्ति। देवाः। अंहोः। उरु। अस्ति। रत्नं। अनागसः। आदित्याः। अद्भुतऽएनसः॥७॥

हे देवाः अंहोर्हंतुः पापशीलस्योर्वस्ति। महत्पापमस्ति। अनागसोऽपापस्य रत्नं रमणीयं सुकृतं श्रेयोऽस्ति। ततो हे आदित्या अद्भुतैनसोऽभूतपापाः। अतोऽस्मदभिमतं कुरुतेति भावः॥

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि। इंद्र इद्धि श्रुतो वशी॥८॥

मा। नः। सेतुः। सिसेत्। अयं। महे। वृणक्तु। नः। परि। इंद्रः। इत्। हि। श्रुतः। वशी॥८॥

नोऽस्मान् सेतुबंधको जालो मा सिषेत्। मा बध्नातु। नोऽस्मानहे महते कर्मणे परि वृणक्तु। परिवर्जयतु जालात्। कः। इंद्र इदिंद्र एव श्रुतो विश्रुतो वशी सर्वस्य वशीकर्ता। स परि वृणक्तु॥

मा नो॑ मृ॒चा रि॒पू॒णां वृ॑जि॒नाना॑मविष्यवः। देवा॑ अ॒भि प्र मृ॑क्षत ॥९॥

मा। नः॒। मृ॒चा। रि॒पू॒णां। वृ॒जि॒नानां॑। अ॒वि॒ष्य॒वः॒। देवाः॑। अ॒भि। प्र। मृ॒क्षत॒ ॥९॥

हे अविष्यवो रक्षितुमिच्छंतो देवाः नोऽस्मान्वृजिनानां हिंसकानां रिपूणां मृचा। मृचिर्हिंसाकर्मा। यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा। आ० गृ० १. १७. १५.। इत्यादिषु तथा दृष्टत्वात्। हिंसकेन जालेन माभि प्र मृक्षत। अभिमर्शनमुपरि जालस्य प्रेरणं मा कुरुत। यद्वा। मृचा जालेन प्राप्ता बाधा नोऽस्माकं मा भवतु। हे देवाः यूयं च परिमार्जयत। परिहरत॥

आधाने पवमानेष्टिषूत त्वामदित इत्यनुवाक्या। सूत्रितं च। उत त्वामदिते महि महीमू षु मातरं। आ० २. १.। इति॥ आदित्यपशौ वपाया अनुवाक्येयमेव। सूत्रितं च। उत त्वामदिते मह्यनेहो न उरुव्रजे। आ० ३. ८.। इति॥

उ॒त त्वाम॑दिते म॒ह्य॒हं दे॒व्युप॑ ब्रुवे। सु॒मृ॒ळी॒काम॒भिष्ट॑ये ॥१०॥

उ॒त। त्वां। अ॒दि॒ते॒। म॒हि॒। अ॒हं। दे॒वि॒। उप॑। ब्रु॒वे॒। सु॒ऽमृ॒ळी॒कां। अ॒भिष्ट॑ये ॥१०॥

हे महि महत्यदिते देवमातर्देवि त्वामहं मत्स्यप्रमुखोऽहमुप ब्रुवे। उपेत्य स्तौमि। कीदृशीं। सुमृळीकां सुष्ठु सुखयित्रीं। किमर्थं। अभिष्टयेऽभिमताय॥ ॥ ५२॥

पर्षि॑ दी॒ने ग॑भी॒र आँ उग्र॑पुत्रे जिघांसतः। माकि॑स्तो॒कस्य॑ नो रिषत् ॥११॥

पर्षि॑। दी॒ने। ग॒भी॒रे। आ। उग्र॑ऽपुत्रे। जिघां॑सतः। माकिः॑। तो॒कस्य॑। नः॒। रि॒षत् ॥११॥

हे अदिते आ पर्षि। सर्वतः पालयसि। दीने क्षीणे गभीर उदके। उदकनामैतत् गंभीरं गहनमिति तन्नामसु पाठात्। उग्रपुत्रे। उग्रूर्णाः पुत्रा यस्मिन् तत्। तस्मिन्नुदके जिघांसतो हिंसतो जालं तोकस्यास्माकं तनयस्य तनयं माकी रिषत्। मैव हिंसां करोतु॥

आदित्यस्य पशावनेहो न इति पुरोडाशस्यानुवाक्या। सूत्रं च। अनेहो न उरुव्रजेऽदितिर्ह्यजनिष्ट। आ० ३. ८.। इति॥

अ॒ने॒हो न॑ उरुव्रज उरू॑चि॒ वि प्रस॑र्तवे। कृ॒धि तो॒काय॑ जी॒वसे॑ ॥१२॥

अ॒ने॒हः। नः॒। उ॒रु॒ऽव्र॒जे॒। उरू॑चि। वि। प्र॒ऽसर्त॑वे। कृ॒धि। तो॒काय॑। जी॒वसे॑ ॥१२॥

अनेहोऽपापान्नोऽस्मान् हे उरुव्रजे विस्तीर्णगमने। दूरमियमदितिर्भूमिरूपा गता भवत्यतिविस्तृतत्वात्। अथवोरुगमने धीरे हे उरूचि उरुत्वं वि प्रसर्तवेऽभिसरणाय कृधि। कुरु। करी। तोकाय पुत्राय मत्स्याय जीवसे जीवनाय। यथा जीवनापृत्यान्नचितुं तथोरुत्वं कुर्विति॥

ये मू॒र्धानः॑ क्षिती॒नामद॑ब्धासः॒ स्वय॑शसः। व्र॒ता रक्ष॑न्ते अ॒द्रुहः॑ ॥१३॥

ये। मू॒र्धानः॑। क्षि॒ती॒नां। अद॑ब्धासः। स्वऽय॑शसः। व्र॒ता। रक्ष॑न्ते। अ॒द्रुहः॑ ॥१३॥

ये मूर्धानः सर्वेषां मूर्धस्थानीया उत्कृष्टंतः क्षितीनां मनुष्याणामदब्धासोऽहिंसकाः स्वयशसः स्वायत्तकीर्तयो व्रता व्रतान्यस्मदीयानि कर्माणि रक्षंते पालयंतेऽद्रुहोऽद्रोग्धारः संतः॥

ते न॑ आ॒स्नो वृका॑णा॒मादि॑त्यासो मु॒मोच॑त । स्ते॒नं ब॒द्धमि॑वादिते ॥१४॥

ते । नः॒ । आ॒स्नः । वृका॑णां । आदि॑त्यासः । मु॒मोच॑त । स्ते॒नं । ब॒द्धंऽइ॑व । अ॒दि॒ते॒ ॥१४॥

हे आदित्यास आदित्याः ते यूयं नोऽस्मान्वृकाणां हिंसकानामदातॄणां वास्न आस्यात्सकाशान्मुमोचत। विमोचत। विमोचनं कुरुत स्तेनं बद्धमिव। हे अदिते त्वं च मोचयास्मानिति ॥

अपो॒ षु ण॑ इ॒यं शरु॒रादि॑त्या॒ अप॑ दुर्म॒तिः । अ॒स्मदे॒त्वज॑घ्नुषी ॥१५॥

अपो॒ इति॑ । सु । नः॒ । इ॒यं । शरुः॑ । आदि॑त्याः । अप॑ । दुः॒ऽम॒तिः । अ॒स्मत् । ए॒तु॒ । अज॑घ्नुषी ॥१५॥

हे आदित्याः इयं शरुर्हिंसिका प्रसितिर्जालिकप्रेरिताजघ्नुष्यहिंसंती सत्यस्मदस्मत्तः सु सुष्ठपो एतु। अपगच्छत्वेव। तथा दुर्मतिर्दुष्टा मतिरप्यजघ्नुष्यस्मत्तोऽपगच्छतु ॥ ॥५३॥

शश्व॒द्धि वः॑ सुदानव॒ आदि॑त्या ऊ॒तिभि॑र्व॒यं। पु॒रा नू॒नं बु॑भु॒ज्महे॑ ॥१६॥

शश्व॑त्। हि। वः॒।सु॒ऽदा॒न॒वः॒।आदि॑त्याः।ऊ॒तिऽभिः॑।व॒यं। पु॒रा। नू॒नं। बु॒भु॒ज्महे॑॥१६॥

हे सुदानवः सुदाना हे आदित्याः वो युष्माकमूतिभी रक्षाभिर्वयं पुरा नूनमिदानीमपि शश्वत्सर्वदा बुभुज्महे। यद्वा। शश्वद्बहून्भोगान्भुंज्महे ॥

शश्वं॑त॒ हि प्र॑चेतसः प्रति॒यंतं॑ चि॒देन॑सः । देवाः॑ कृणु॒थ जी॒वसे॑ ॥१७॥

शश्वं॑तं । हि । प्र॒ऽचे॒त॒सः॒ । प्र॒ति॒ऽयंतं॑ । चि॒त् । एन॑सः । देवाः॑ । कृ॒णु॒थ । जी॒वसे॑ ॥१७॥

हे प्रचेतसः प्रकृष्टमाया हे देवाः शश्वंतं बहुमपि प्रतियंतं चित् प्रतिगच्छंतमपि शत्रुमेनसः पापस्य कर्तारं। अथवैनसः पापकृतः॥ व्यत्ययेन बहुवचनं॥ पापकर्तारं जीवसे जीवनायास्माकं कृणुथ। कुरुत। अस्मत्तो वियुक्तमिति शेषः ॥

तत्सु नो॒ नव्यं॒ सन्य॑स॒ आदि॑त्या॒ यन्मुमो॑चति । ब॒ंधाद्ब॒द्धमि॑वादिते ॥१८॥

तत् । सु । नः॒ । नव्यं॑ । सन्य॑से । आदि॑त्याः । यत् । मुमो॑चति । ब॒ंधात् । ब॒द्धंऽइ॑व । अ॒दि॒ते॒ ॥१८॥

तद्बंधकं नोऽस्माकं सु सुष्ठु नव्यं स्तुत्यं सन्यसे संभजनाय भवतु। अस्माकं मोचनेन स्तुत्यं भवत्वित्यर्थः। हे आदित्या अदितेः पुत्रा हे अदिते त्वदनुग्रहाद्यन्मुमोचति मुंचत्यस्मान् बंधनसाधनं पूर्वं यत्प्रतिबंधकत्वादासीत् तदेव युष्मदनुग्रहादस्मान्मुंचतु। यद्वा। युष्माकं यद्रक्षणमस्मान्मुंचति तत्सुष्ठु स्तुत्यं संभजनाय भवत्विति योज्यं ॥

नास्माक॑मस्ति॒ तत्तर॒ आदि॑त्यासो अति॒ष्कदे॑ । यू॒यम॒स्मभ्यं॑ मृळत ॥१९॥

न । अ॒स्माकं॑ । अ॒स्ति॒ । तत् । तरः॑ । आदि॑त्यासः । अ॒ति॒ऽस्कदे॑ । यू॒यं । अ॒स्मभ्यं॑ । मृ॒ळ॒त॒ ॥१९॥

हे आदित्यास आदित्याः युष्मत्कर्तृकस्तत्तरो वेगोऽस्माकं नास्ति यो वेगो बंधकाज्जालादतिष्कदेऽस्माकमतिष्कंदनाय प्रभवति। अतो यूयमस्मभ्यं मृळत। तत्तादृशं तरः कुरुतेत्यर्थः ॥

मा नो॑ हे॒तिर्वि॒वस्व॑त॒ आदि॑त्याः कृ॒त्रिमा॒ शरुः॑ । पु॒रा नु ज॒रसो॑ वधीत् ॥२०॥
मा । नः॒ । हे॒तिः । वि॒वस्व॑तः । आदि॑त्याः । कृ॒त्रिमा॑ । शरुः॑ । पु॒रा । नु । ज॒रसः॑ । व॒धी॒त् ॥२०॥

हे आदित्याः नोऽस्मान्विवस्वतो विवस्वत्पुत्रस्य यमस्य । पुत्रे पितृशब्दः । तस्य हेतिरायुधभूता कृत्रिमा क्रियया निष्पन्ना शरुर्हिंसिका प्रसितिः पुरा पूर्वं न्विदानीं । सर्वदेत्यर्थः । जरस इदानीं जीर्णात्मा वधीत् । मा हिंस्यात् ॥

वि षु द्वेषो॒ व्यं॑ह॒तिमादि॑त्यासो॒ वि संहि॑तं । विष्व॒ग्वि वृ॑हता॒ रपः॑ ॥२१॥
वि । सु । द्वेषः॑ । वि । अं॒ह॒तिं । आदि॑त्यासः । वि । सम्ऽहि॑तं । विष्व॑क् । वि । वृ॒ह॒त॒ । रपः॑ ॥२१॥

हे आदित्यास आदित्याः द्वेषो द्वेष्टृन् सु सुष्ठु वि वृहत । उन्मूलयत । नाशयतेत्यर्थः । तथांहतिं पातकं पापं वि वृहत ॥ हंतेरंह च । उ० ४. ६२. । इत्यतिप्रत्ययः ॥ तथा संहितं जालं वि वृहत । तथा रपः पापं सर्वं विष्वग्विषूचीनं वि वृहत । रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः । नि० ४. २१. । इति यास्कः ॥ ॥५४॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥
षष्ठे चतुर्थमध्यायं श्रीमायणसुतः सुधीः । व्याख्याय सायणाचार्यः पंचमं व्याकरोत्यथ ॥

तत्र त्वा रथमित्येकोनविंशत्यृचं नवमं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । आ त्वैकोना प्रियमेध आद्यावनुष्टुम्मु-ख्यास्तृचाश्चत्वारोंऽत्याः षळृक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिरिति । आंगिरसः प्रियमेध ऋषिः । प्रथमाचतुर्थीसप्रमोद-श्यौऽनुष्टुभः शिष्टाः परं गायत्रमिति परिभाषया गायत्र्यः । अंततः षट्स्वृक्ष्वृक्षाश्वमेधयोर्दानं स्तूयते । अतस्तास्तद्देवताकाः । शिष्टा अनुक्तपरिभाषयैंद्यः ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ आद्यस्तृचो मरुत्वतीयस्य प्रतिपत् । तथा च सूचितं । आ त्वा रथं यथोतय इदं वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ० ५. १४. । इति ॥ महाव्रतादिष्वपि यत्र तृचांतरं न विधीयते तत्र सर्वत्रायमेव प्रतिपद्भवति ॥

आ त्वा॒ रथं॒ यथो॒तये॑ सु॒म्नाय॑ वर्तयामसि । तु॒वि॒कू॒र्मिमृ॑ती॒षह॒मिंद्र॒ शवि॑ष्ठ॒ सत्प॑ते ॥१॥
आ । त्वा॒ । रथं॑ । यथा॑ । ऊ॒तये॑ । सु॒म्नाय॑ । व॒र्त॒या॒म॒सि॒ । तु॒वि॒ऽकू॒र्मिं । ऋ॒ति॒ऽसहं॑ ।
इंद्र॑ । शवि॑ष्ठ । सत्ऽप॑ते ॥१॥

हे इंद्र त्वा त्वामा वर्तयामसि । आवर्तयामः । किमर्थं । ऊतयेऽस्माकं रक्षणाय सुम्नाय सुखाय च । किमिव । रथं यथा । रथं यथोतये सुखाय चावर्तयंति तद्वत् । कीदृशं त्वां । तुविकूर्मिं बहुकर्माणमृतीषहं हिंसकानामभिभवितारं । हे इंद्र शविष्ठातिशयेन बलवन् हे सत्पते सतां पालक त्वामिति समन्वयः ॥

तुवि॑शुष्म॒ तुवि॑क्रतो॒ शची॑वो॒ विश्व॑या मते । आ प॑प्राथ महित्व॒ना ॥२॥
तुवि॑ऽशुष्म । तुवि॑क्रतो॒ इति॒ तुवि॑ऽक्रतो । शची॑ऽवः । विश्व॑या । म॒ते॒ । आ । प॒प्रा॒थ॒ ।
म॒हि॒ऽत्व॒ना ॥२॥

हे तुविशुष्म प्रभूतबल हे तुविक्रतो बहुकर्मन् । अथवा बहुप्रज्ञ कर्मणः पृथगभिधानात् । हे शचीवो बहुकर्मोपेत मते पूजनीयेंद्र विश्वया विश्वव्याप्तेन महित्वना महत्त्वेन पप्राथ । आपूरितवानसि । अविशेषाद्विश्वमित्यर्थः ॥

यस्य॑ ते महि॒ना म॒हः परि॑ ज्मा॒यन्त॑मी॒यतुः॑ । हस्ता॒ वज्रं॑ हिर॒ण्यय॑म् ॥३॥

यस्य॑ । ते॒ । म॒हि॒ना । म॒हः । परि॑ । ज्मा॒यन्त॑म् । ई॒यतुः॑ । हस्ता॑ । वज्र॑म् । हि॒र॒ण्यय॑म् ॥३॥

महो महतो यस्य ते तव । यच्छब्दः प्रकृतपरामर्शकः । प्रकृतं तूक्तमृग्द्वयं । तच्चत्पुविकुर्मिमृतीषहमित्यायुक्तलक्षणस्य तवेत्यर्थः । महिना महत्त्वेन हस्ता तव हस्ता हस्तौ ज्मायंतं पृथिव्यां सर्वतो व्याप्नुवंतं हिरण्ययं हिरण्मयं वज्रमीयतुः परिगृह्णीतः । सर्वदास्माकं भयनिवारणायेति भावः ॥

पृष्ठ्याभिप्लवषडहयोर्द्वितीयेऽहनि विश्वानरस्येति प्रतिपत्तृचः । सूचितं च । विश्वानरस्य वस्पतिमिंद्र इत्सोमपा एक इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । आ॰ ७. ६. । इति ॥

वि॒श्वान॑रस्य व॒स्पति॒मना॑नतस्य॒ शव॑सः । एवै॑श्च चर्षणी॒नामू॒ती हु॑वे॒ रथा॑नाम् ॥४॥

वि॒श्वान॑रस्य । वः॒ । पति॑म् । अना॑नतस्य । शव॑सः । एवैः॑ । च॒ । च॒र्ष॒णी॒नाम् । ऊ॒ती ।
हु॒वे॒ । रथा॑नाम् ॥४॥

विश्वानरस्य विश्वान्शत्रून्प्रत्यृतस्यानानतस्य शत्रूणामप्रह्वस्य शवसो बलस्य पतिं स्वामिनमिंद्रं वा । अत्रेंद्रसंबंधिनो मरुतोऽपि संकीर्त्यंते । हे मरुतः वः । युष्माकमित्यर्थः । यद्यपि मरुत्संशब्दनं नास्ति तथापि व इति सामर्थ्याल्लभ्यते । युष्माकं चर्षणीनामिंद्रस्य सेनारूपाणां वो युष्माकं गमनैरिति सामानाधिकरण्यं । युष्माकं रथानां चोत्यूतिभिर्गमनैश्च सह हुवे । आह्वयामि । गंतृभी रथैर्गंतृभिर्मरुद्भिश्च सहेंद्रं हुव इत्यर्थः । यद्वा । हे यजमानाः युष्मदीयाः सैनिकाः सरथा यदा प्रविशंति युद्धाय संग्रामं तदानीं तेषां साहाय्यायेंद्रं हुव इत्यर्थः ॥

अ॒भिष्ट॑ये स॒दावृ॑धं॒ स्व॑र्मीळ्हेषु॒ यं नरः॑ । नाना॒ हव॑न्त ऊ॒तये॑ ॥५॥

अ॒भिष्ट॑ये । स॒दाऽवृ॑धम् । स्वः॑ऽमीळ्हेषु । यम् । नरः॑ । नाना॑ । हव॑न्ते । ऊ॒तये॑ ॥५॥

हे यजमानाः युष्माकमभिष्टये साहाय्यार्थमभिगमनायाभिष्टये वा सदावृधं सर्वदा वर्धयंतं सेवकान् स्वयं सर्वदा वर्धमानं वा हुव इति शेषः । यं स्वर्मीळ्हेषु संग्रामेषु नरो नेतारो मनुष्या नाना बहुप्रकारं हवंते आह्वयंत्यूतये रक्षार्थं तं हुव इति शेषः ॥ ॥१॥

प॒रोमा॑त्र॒मृची॑षम॒मिन्द्र॑मु॒ग्रं सु॒राध॑सम् । ईशा॑नं चि॒द्वसू॑नाम् ॥६॥

प॒रःऽमा॑त्रम् । ऋ॒ची॑षमम् । इन्द्र॑म् । उ॒ग्रम् । सु॒ऽराध॑सम् । ईशा॑नम् । चि॒त् । वसू॑नाम् ॥६॥

परोमात्रं । परा मात्रा यस्य तादृशं । अथवा मीयत इति मात्रं दूरदेशः । ततः परस्ताद्वर्तमानमपरिमितस्वरूपं । तथाप्यृचीषममृचा स्तुत्या समं । यद्यप्यपरिच्छिन्नः तथापि स्तुतिर्यावन्मात्रं विषयीकरोति । तत्सम इत्यर्थः । तदेवाह । इंद्रं परमैश्वर्ययोगत्वादिच्छानुकूलस्वरूपमुग्रमुद्गूर्णबलं सुराधसं । राध इति धननाम । शोभनधनं शोभनान्नं वेशानं चिदीश्वरं च । केषां । वसूनामस्मभ्यं प्रदेयानां गवादिधनानां । एवंमहानुभावमिंद्रं हुव इति शेषः ॥

तृतीयेऽहनि मरुत्वतीये तंतमिदिति प्रतिपत्तृचः । सूचितं च । तंतमिद्राधसे मह वय इंद्रस्य सोमाः । आ॰ ७. १०. । इति ॥

तंतमिद्राधसे मह इंद्रं चोदामि पीतये। यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७॥
तंऽतं। इत्। राधसे। महे। इंद्रं। चोदामि। पीतये। यः। पूर्व्यां। अनुऽस्तुतिं।
ईशे। कृष्टीनां। नृतुः ॥७॥

तं तमित्तमेवेंद्रं। सर्वेष्वपि यागकालेषु तमेवेंद्रमित्यर्थः। तं प्रति चोदामि प्रेरयामि स्तुतिं पीतये सोमपानाय। ततः को लाभ इति उच्यते। महे महते राधसे धनाय प्रभूतधनलाभार्थं। यो नृतुः फलस्य नेता देवः पूर्व्यां पूर्वे भवां यज्ञमुखस्थामनुष्टुतिमनुक्रमेण क्रियमाणां स्तुतिं कृष्टीनां मनुष्याणामृत्विजां संबंधिनीमीशे ईष्टे श्रोतुं तं चोदामीति संबंधः॥

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः। नकिः शवांसि ते नशत् ॥८॥
न। यस्य। ते। शवसान। सख्यं। आनंश। मर्त्यः। नकिः। शवांसि। ते। नशत् ॥८॥

हे शवसान बलवन्निंद्र यस्य ते तव सख्यं मर्त्यो मरणधर्मा मनुष्यो नानंश न व्याप्नोति ते शवांसि बलान्यपि नकिर्नैव नशत्। व्याप्नोति॥

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनं। जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥९॥
त्वाऽऊतासः। त्वा। युजा। अप्ऽसु। सूर्ये। महत्। धनं। जयेम। पृत्ऽसु। वज्रिऽवः ॥९॥

हे इंद्र त्वोतासस्त्वया रक्षितास्त्वा त्वया युजा सहायेनाप्सु स्नातुं सूर्यं द्रष्टुं च। स्नानादिव्यवहारं कर्तुं सूर्ये उदिते सति गमनादिव्यवहारं कर्तुमित्यर्थः। तदर्थं पृत्सु संग्रामेषु हे वज्रिवो वज्रिन्निंद्र महद्धनं जयेम। शत्रून् संग्रामे जित्वा तेषां धनं लभेमेत्यर्थः॥

चतुर्थेऽहनि मरुत्वतीये तं त्वा यज्ञेभिरिति तृचः प्रतिपत्। सूत्रितं च। तं त्वा यज्ञेभिरीमह इदं वसो सुतमंध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ। आ० ७. ११. । इति॥

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम। इंद्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यं ॥१०॥
तं। त्वा। यज्ञेभिः। ईमहे। तं। गीःऽभिः। गिर्वणःऽतम। इंद्र। यथा। चित्। आविथ।
वाजेषु। पुरुऽमाय्यं ॥१०॥

तं स्तुत्यत्वेन प्रसिद्धं त्वा त्वां यज्ञेभिर्यागसाधनैः सोमादिभिरीमहे। याचामहे। तमेवेंद्रं गीर्भिः स्तुतिभिरीमहे। हे गिर्वणस्तम गीर्भिः स्तुतिभिर्वननीयतमेंद्र तं त्वामिति समन्वयः। हे इंद्र त्वं यथा चिदाविथ येन प्रकारेण ररक्षिथ मां। चिदिति पूरणः। कुत्रेति उच्यते। वाजेषु संग्रामेषु। कीदृशं मां। पुरुमाय्यं बहुप्रज्ञं। बहुस्तुतिमित्यर्थः॥ ॥२॥

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः। यज्ञो वितंतसाय्यः ॥११॥
यस्य। ते। स्वादु। सख्यं। स्वाद्वी। प्रऽनीतिः। अद्रिऽवः। यज्ञः। वितंतसाय्यः ॥११॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र यस्य स्तुत्यत्वेन प्रसिद्धस्य ते तव सख्यं स्वादुतीवानुभवार्हं। किंच ते प्रणीतिः प्रणयनं धनादीनां स्वाद्वी स्वादु सुहर्षकं। तथोभे त्वद्विषयो यज्ञश्च वितंतसाय्यो विशेषेण तननीयः॥

उरु णस्तन्वे३ तने उरु क्षयाय नस्कृधि। उरु णो यंधि जीवसे ॥१२॥
उरु। नः। तन्वे। तने। उरु। क्षयाय। नः। कृधि। उरु। नः। यंधि। जीवसे ॥१२॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्माकं तन्व आत्मजायोरु प्रभूतं कृधि। कुरु। सामर्थ्याद्धनं सुखं वेति गम्यते। तथा तने तत्पुत्रायोरु कृधि। तथा क्षयाय निवासायोरु कृधि। नोऽस्माकं जीवसे जीवनाय यंधि। प्रयच्छाभिमतं॥

उरुं नृभ्यं उरुं गवं उरुं रथाय पंथां। देववीतिं मनामहे ॥१३॥

उरुं। नृऽभ्यः। उरुं। गवें। उरुं। रथाय। पंथां। देवऽवीतिं। मनामहे ॥१३॥

हे इंद्र नृभ्योऽस्मदीयेभ्यो भृत्येभ्य उरु हितं मनामहे। तथा गवे। एतदुपलक्षणं। गवाश्वादिकाय तथा रथाय पंथां पंथानं मार्गं। अथवा नृप्रभृतीनां संचाराय शोभनं मार्गं मनामहे। तथा देववीतिं यज्ञं मनामहे॥

उपं मा षड्द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या। तिष्ठंति स्वादुरातयः ॥१४॥

उपं। मा। षट्। द्वाऽद्वा। नरः। सोमस्य। हर्ष्या। तिष्ठंति। स्वादुऽरातयः ॥१४॥

एतदाद्याः षड्च ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिरूपाः। यद्यपि बृहद्देवतानुक्रमण्यामृक्षाश्वमेधयोरत्र पंच दानप्रशंसका इत्युक्तं तथाप्युप मा षडित्यस्या राजदानस्तुतिशेषत्वादविरोधः। अनयैवाशयानुक्रमण्यामंत्याः षळृच ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिरित्युक्तं॥ मा मां प्रियमेधं यज्ञे प्रसर्पंतः षडेतत्संख्याका नरो नेतारो राजानः सोमस्य पीतस्य हर्ष्या हर्षेण स्वादुरातयः सुष्ठूपभोगार्हदानाः संतो द्वा द्वा द्वौ द्वौ पितृपुत्ररूपेण युग्मौ भूत्वा मामुप तिष्ठंति। तेषां युग्मानां नाम तूत्तरत्र स्पष्टीक्रियते॥

ऋज्राविंद्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि। आश्वमेधस्य रोहिता ॥१५॥

ऋज्रौ। इंद्रोते। आ। ददे। हरी इति। ऋक्षस्य। सूनवि। आश्वऽमेधस्य। रोहिता ॥१५॥

इंद्रोत एतन्नामक आतिथिग्वेऽतिथिग्वनाम्नो राज्ञः पुत्रे। अतिथिग्वाय शंबरं। ऋ॰ १. ५१. ६.। इत्यतिथिग्वाय शंस्यं। ऋ॰ ६. २६. ३.। इत्यादिष्वतिथिग्वः प्रसिद्धः। तत्पुत्र इंद्रोत ऋज्रावृजुगामिनावश्वावा ददे। स्वीकृतवानस्मि। तथर्क्षस्य सूनवृक्षनाम्नो पुत्रेऽन्यस्मिन्राजनि हरी हरितवर्णावश्वावा ददे। तथाश्वमेधस्याश्वमेधपुत्रे राजनि रोहिता रोहितवर्णावश्वावा ददे। नन्वनुक्रमण्यामुभयोरेव दानप्रशंसारूपत्वमुक्तमत्र कथं त्रयाणां दानकीर्तनमिति नैष दोषः। ऋक्षाश्वमेधपुत्रयोरेव यागेऽस्मिन्प्रवृत्तेस्तयोरेव दानं। प्रस्तुत्य इंद्रोतस्तु स्वपित्रा सह तयोर्यज्ञादिदृक्षयागत्य तयोर्दानं दृष्ट्वा स्वपित्रा प्रेरितो दत्तवानश्वौ। अतस्तद्दानं प्रासंगिकमिति। एवमृक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतित्वं न व्याहन्यते। पितृपुत्रयोरभेदात्तयोः पक्षकर्तृत्वाच्चेंद्रोतदानस्य प्रासंगिकत्वं षळश्वानित्यत्र विस्पष्टयिष्यते॥ ॥३॥

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे। आश्वमेधे सुपेशसः ॥१६॥

सुऽरथान्। आतिथिऽग्वे। सुऽअभीशून्। आर्क्षे। आश्वऽमेधे। सुऽपेशसः ॥१६॥

आतिथिग्व इंद्रोते सुरथाञ्छोभनरथोपेतानश्वानाददे। आर्क्ष ऋक्षपुत्रे स्वभीशूनश्वानाददे। आश्वमेधेऽश्वमेधपुत्रे सुपेशसः सुरूपानश्वाञ्छोभनालंकारानाददे॥

षळश्वाँ आतिथिग्व इंद्रोते वधूमंतः। सचा पूतक्रतौ सनं ॥१७॥

षट्। अश्वान्। आतिथिऽग्वे। इंद्रोते। वधूऽमंतः। सचा। पूतऽक्रतौ। सनं ॥१७॥

आतिथिग्व इंद्रोते पूतक्रतौ शुद्धप्रज्ञे शुद्धकर्मोपेते वा तस्मिन्वधूमतो वधूभिर्वडवाभिस्तद्वतः षडश्वान् सचर्क्षाश्वमेधयोः पुत्राभ्यां दत्तेनाश्वादिधनेन सचा सह सनं। लब्धवानस्मि। एतत्साहित्यवचनमिंद्रोतदानस्य प्रासंगिकत्वे लिंगं॥

ऐषु चेतद्वृषण्वत्यंतर्ऋज्रेष्वरुषी। स्वभीशुः कशावती ॥१८॥

आ। एषु। चेतत्। वृषण्ऽवती। अंतः। ऋज्रेषु। अरुषी। सुऽअभीशुः। कशाऽवती ॥१८॥

एष्वृज्रेष्वृजुगामिष्वश्वेष्वंतर्मध्य आ चेतत्। आज्ञायते। का। वृषण्वती वर्षकैः पुमश्वैस्तद्वत्यरुष्यारोचमाना स्वभीशुः शोभनप्रग्रहा कशावती दृप्ता वडवा ज्ञायते ॥

न युष्मे वाजबंधवो निनित्सुश्चन मर्त्यः। अवद्यमधि दीधरत् ॥१९॥

न। युष्मे इति। वाजऽबंधवः। निनित्सुः। चन। मर्त्यः। अवद्यं। अधि। दीधरत् ॥१९॥

हे वाजबंधवोऽन्नबंधवोऽन्नप्रदाः। एवं पुत्राणां पितृपुत्ररूपाणां षण्णां वा संबोधनं। हे राजानः युष्मे युष्मासु निनित्सुश्चन निंदकोऽपि मर्त्यो मनुष्योऽवद्यं निंदां नाधि दीधरत्। नान्वधारयत्। नारोपयति युष्मासु। अतोऽनिंद्या यूयमिति दातॄणां स्तुतिः ॥ ॥४॥

प्रप्र व इत्यष्टादशर्चं दशमं सूक्तं प्रियमेधस्यांगिरसस्यार्षं। द्वितीया नदं व इत्येषा चतुःसप्तकोष्णिक् चतुर्थ्याद्यास्तिस्रो गायत्र्य एकादशीषोडश्यौ पंक्ती शिष्टा दशानुष्टुभः। अपादिंद्र इत्यर्धर्चो वैश्वदेवो वरुण इदिहेत्याद्यासु येऽर्धर्चा वरुणदेवताकाः शिष्टा ऐंद्र्यः। तथा चानुक्रांतं। प्रप्र द्व्यूनानुष्टुभं द्विबृहत्यंतं द्वितीयोष्णिक् चतुर्थ्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः षोळश्येकादश्यौ पंक्ती अपाद्वैश्वदेवोऽर्धर्चस्त्रयो वारुणा इति ॥ आद्यस्तृचः षोडशिशस्त्र आनुष्टुभः। सूचितं च। प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषमर्चत प्रार्चत। आ° ६. २.। इति ॥

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मंदद्वीरायेंदवे। धिया वो मेधसातये पुरंध्या विवासति ॥१॥

प्रऽप्र। वः। त्रिऽस्तुभं। इषं। मंदत्ऽवीराय। इंदवे। धिया। वः। मेधऽसातये। पुरंऽध्या। आ। विवासति ॥१॥

हे अध्वर्य्वादयः वो यूयं। प्रथमार्थे द्वितीया। त्रिष्टुभं स्तोभत्रयोपेतमिषमन्नं प्रप्र। अपरः प्रशब्दः पूरणः। प्रभरतेति शेषः। उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः। कस्मै। मंदद्वीराय। यो वीरान् हर्षयति स मंदद्वीरः। तस्मा इंदव इंद्राय ॥ इंदतेरैश्वर्यकर्मण इदं रूपं। अथवा फलैर्वृष्टिभिर्वोनत्तीतींदुरिंद्रः ॥ तस्मै। स चेंद्रो वो युष्मान्मेधसातये यज्ञसंभजनाय पुरंध्या बहुप्रज्ञया धिया कर्मणा विवासति। अभिमतफलयोजनेन सत्करोतीत्यर्थः ॥

महाव्रते निष्केवल्ये नदं व इत्येषा विहरणीया। तथैव पंचमारण्यके सूचितं च। नदं व ओदतीनामित्येतयैतानि व्यतिषजति। ऐ° आ° ५. १. ६.। इति ॥

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनां। पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥२॥

नदं। वः। ओदतीनां। नदं। योयुवतीनां। पतिं। वः। अघ्न्यानां। धेनूनां। इषुध्यसि ॥२॥

ओदतीनां। ओदत्य उषसः ओदती भास्वतीति तन्नामसु पाठात्। तासां नदं। उत्पादकमित्यर्थः। इंद्रेण ह्युषस उत्पद्यंत इंद्रस्यैव सूर्यत्वात् विवस्वदिंद्र सुगम्येति हि द्वादशादित्यमध्य इंद्रः पठितः। तादृशमिंद्रं हे यजमानाः वो युष्मदर्थं। आह्वयतेत्यर्थः। तथा योयुवतीनां सर्वत्र मिश्रयंतीनां नदीनां नदं शब्दयितारं वो युष्मदर्थमाह्वयामि। अघ्न्यानामहंतव्यानां गवां पतिमाह्वये। अथ प्रत्यक्षकृता। हे यजमान त्वं धेनूनां क्षीरादिना प्रीणयित्रीणां गवामिषुध्यसि। अन्नमिच्छसि ॥

अग्निहोत्रे पूर्वाहुतौ हुतायां ता अस्येत्यनयोत्तरामाहुतिं कांक्षमाणस्तिष्ठेत्। तथा च सूचितं। ता अस्य सूददोहस इति पूर्वामाहुतिमुपोत्थायोत्तरां कांक्षेत। आ° २. ३.। इति ॥ महाव्रते निष्केवल्येऽप्येषा। तथैव पंचमारण्यके सूचितं। ता अस्य सूददोहस इत्येतदादिः सूददोहाः सूददोहाः। ऐ° आ° ५. १. ६.। इति ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणंति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥३॥
ताः । अस्य । सूदऽदोहसः । सोमं । श्रीणंति । पृश्नयः ।
जन्मन् । देवानां । विशः । त्रिषु । आ । रोचने । दिवः ॥३॥

ताः प्रसिद्धाः सूददोहसः । सूद इति कूपनाम । तत्सदृशदोहनाः पृश्नयः पृश्निवर्णा गावोऽस्येंद्रस्य सोमं श्रीणंति । मिश्रयंत्याशिरेण । कदा । त्रिषु त्रिष्वपि सवनेषु । गावो विशेष्यंते । देवानां जन्मञ्जन्मस्थाने । दिवीत्यर्थः । दिव आदित्यस्या रोचन आरोचमाने । अनेन द्यौर्विशेष्यते । तस्मिन् स्थाने विशो निविशंत्यः । यज्ञार्थोपयुक्तानां गवां द्युप्राप्तिः प्रसिद्धा ॥

द्वितीये पर्याये मैत्रावरुणशस्त्रेऽभि प्र गोपतिमिति तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । अभि त्वा वृषभा सुतेऽभि प्र गोपतिं गिरा । आ° ६. ४. । इति ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेंद्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिं ॥४॥
अभि । प्र । गोऽपतिं । गिरा । इंद्रं । अर्च । यथा । विदे । सूनुं । सत्यस्य । सत्ऽपतिं ॥४॥

गोपतिं गवां स्वामिनमिंद्रमभि प्रार्च । प्रकर्षेण पूजय स्तुत्या । यथा विदे स यथा स्वात्मानं स्तुतप्रकारं जानाति यथा वा यागं प्रति गंतव्यमिति जानाति तथा वेति । कीदृशमिंद्रं । सत्यस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा सूनुं पुत्रं । तत्रानुरक्तत्वात्सूनुरित्युपचर्यते । सत्पतिं सतां यजमानानां पालकं ॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५॥
आ । हरयः । ससृज्रिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि । यत्र । अभि । संऽनवामहे ॥५॥

हरयो हरितवर्णा अश्वा अरुषीरारोचमाना अधि बर्हिषि । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । बर्हिष्यासृत आ ससृज्रिरे । आसृजंतु । यत्र यस्मिन्बर्हिषि स्थितमिंद्रमभि संनवामहे अभिसंस्तुमः ॥ ॥५॥

इंद्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥
इंद्राय । गावः । आऽशिरं । दुदुह्रे । वज्रिणे । मधु । यत् । सीं । उपऽह्वरे । विदत् ॥६॥

इंद्राय गाव आशिरमाश्रयणसाधनं पयआदिकं मधु मदकरं दुदुह्रे । दुहते । कीदृशाय । वज्रिणे वज्रयुक्तायेंद्राय । यद्यदोपह्वरे समीपे वर्तमानं मधु सोमरसं सीं सर्वतो विदत् लभते तदा ॥

षोडशिशस्त्रस्योद्यद्ब्रध्नस्येत्येषांत्या । सूचितं च । उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपमित्येषा परिधानीया । आ° ६. २. । इति ॥

उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिंद्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥७॥
उत् । यत् । ब्रध्नस्य । विष्टपं । गृहं । इंद्रः । च । गन्वहि ।
मध्वः । पीत्वा । सचेवहि । त्रिः । सप्त । सख्युः । पदे ॥७॥

यद्यदा ब्रध्नस्य विष्टपं सूर्यस्य स्थानं गृहमिंद्रश्चाहं चोभावुद्गन्वहि उद्गच्छावः तदानीं मध्वो मधुरं

सोमरसं पीत्वा सचेवहि। संहृष्टौ भवेव। कुत्र। सख्युः सर्वेषां सखिभूतस्यादित्यस्य। त्रिः सप्तेत्यनेन देवलोकानामुत्तममेकविंशं स्थानमुच्यते। आदित्यस्यैकविंशत्वात्। तथा च ब्राह्मणं। द्वादश मासाः पंचर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश इति। तादृश एकविंशस्थाने सचेवहीति॥

पूर्वोक्त एव शस्त्रेऽर्चतेति द्वितीय आनुष्टुभस्तृचः। सूत्रितं च। प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषमर्चत प्रार्चत। आ° ६. २.। इति॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चंतु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत॥८॥
अर्चत। प्र। अर्चत। प्रियऽमेधासः। अर्चत। अर्चंतु। पुत्रकाः। उत। पुरं। न। धृष्णु। अर्चत॥८॥

हे अध्वर्य्वादयः यूयमिंद्रमर्चत। पूजयत स्तुत्या। प्रार्चत। प्रकर्षेणार्चतेंद्रमेव। हे प्रियमेधासः प्रियमेधसंबंधिनस्तन्नोत्राः यूयमर्चतेंद्रं। पुत्रकाः पुत्रा अप्यर्चंत्विंद्रं। उतापि च पुरं न धृष्णु यथा पुरं धर्षणशीलमर्चंति तादृशमिंद्रमर्चत॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिंगा परि चनिष्कददिंद्राय ब्रह्मोद्यतं॥९॥
अव। स्वराति। गर्गरः। गोधा। परि। सनिस्वनत्।
पिंगा। परि। चनिस्कदत्। इंद्राय। ब्रह्म। उत्ऽयतं॥९॥

गर्गरो गर्गरध्वनियुक्तो वाद्यविशेषो युद्धेऽव स्वराति। भयं शब्दयति। गोधा हस्तघ्नः परि परितः सनिष्वणत्। स्वनति भृशं। पिंगा पिंगवर्णा ज्यापि परि चनिष्कदत्। परिस्कंदते। यस्मादेवं युद्धः संनद्धोऽत इंद्राय ब्रह्म परिवृढं कर्म स्तुतिलक्षणमुद्यतं भवत्विति शेषः॥

आ यत्पतंत्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरं गृभायत सोममिंद्राय पातवे॥१०॥
आ। यत्। पतंति। एन्यः। सुऽदुघाः। अनपऽस्फुरः। अपऽस्फुरं। गृभायत। सोमं। इंद्राय। पातवे॥१०॥

यद्यदेन्य एतवर्णाः शुभ्रवर्णा नद्य आ पतंति आगच्छंति सर्वतः प्रवहंति। कीदृश्यः। सुदुघाः सुदोहा अनपस्फुरः। अपस्फुरोऽपस्फुरा अपवृद्धाः। अतादृश्योऽनपस्फुरः। अत्यंतं प्रवृद्धा इत्यर्थः। यद्वा। सुदुघाः प्रवृद्धा एतवर्णा गावो यदा पयआद्यर्थाया पतंति तदापस्फुरं। अत्रापशब्दो धात्वर्थानुवादी। अत्यंतप्रवृद्धं सोममिंद्राय पातवे पातुं गृभायत। ग्रहणं कुरुत। अथवानपस्फुर इत्यत्राप्यपशब्दोऽनुवादी धात्वर्थस्य। तथा सत्ययमर्थः। यदैन्यो नद्योऽनपस्फुरोऽप्रवृद्धोदका आ पतंति वृष्टिरल्पा यदा भवति तदा सोममिंद्रार्थं संपादयतेति॥ ॥६॥

अपादिंद्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥११॥
अपात्। इंद्रः। अपात्। अग्निः। विश्वे। देवाः। अमत्सत।
वरुणः। इत्। इह। क्षयत्। तं। आपः। अभि। अनूषत। वत्सं। संशिश्वरीःऽइव॥११॥

इंद्रोऽपात्। अपिबत्सोमं। अग्निरप्यपिबत्। विश्वे देवा अप्यमत्सत। तृप्ता अभवन् सोमपानेन। वरुण इद्वरुणोऽपीहास्मिन्यागगृहे क्षयत्। निवसतु सोमपानार्थं। निवसंतं तमापोऽप्यभ्यनूषत। उदकान्यापनशीलाः स्तुतयो वाभ्यष्टुवन्। किमिव। वत्सं स्वीयं संशिश्वरीः संशिश्वर्यः संगच्छमाना गाव इव। ता यथा धावंत्यो हंभारवं कुर्वंति तद्वत्॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिंधवः। अनुक्षरंति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव॥१२॥

सुऽदेवः। असि। वरुण। यस्य। ते। सप्त। सिंधवः। अनुऽक्षरंति। काकुदं। सूर्म्यं। सुषिरांऽइव॥१२॥

हे वरुण जलाभिमानिन्देव त्वं सुदेवोऽसि यस्य सुदेवस्य ते तव काकुदं तालुं समुद्राख्यं सप्त सिंधवो गंगाद्याः सप्त नद्योऽनुक्षरंति जिह्वायां सर्वदा स्रवंति॥

षोडशिशस्त्रे यो व्यतीनिति तृतीय आनुष्टुभस्तृचः। सूत्रितं च। यो व्यतीँरफाणयदिति तृचा आनुष्टुभाः। आ० ६.२.। इति॥

यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत॥१३॥

यः। व्यतीन्। अफाणयत्। सुऽयुक्तान्। उप। दाशुषे। तक्वः। नेता। तत्। इत्। वपुः। उपऽमा। यः। अमुच्यत॥१३॥

य इंद्रो व्यतीन्विविधगमनान् सुयुक्तान् सुष्ठु रथे संबद्धानश्वान्दाशुषे हविर्दात्रे यजमानाय गंतुं प्राप्तुमुपाफाणयत् उपगमयति। फणतिर्गतिकर्मा। यदेवं करोति तदित्तदानीमेव तक्वः। तकतिर्गतिकर्मा। यज्ञागमनशीलो नेतोदकस्य फलस्य वा नायक इंद्रो वपुरुदकमुत्पादयतीति शेषः। य इंद्र उपमोपमानभूतोऽमुच्यत अन्यैर्वृष्टिवारकैरसुरादिभिर्मुक्तो भवति॥

अतीदु शक्र ओहत इंद्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा॥१४॥

अति। इत्। ऊं इति। शक्रः। ओहते। इंद्रः। विश्वाः। अति। द्विषः।
भिनत्। कनीनः। ओदनं। पच्यमानं। परः। गिरा॥१४॥

अयमिंद्रः शक्रः शक्तः सन्नतीदोहते। अतिक्रम्य गच्छत्येव संग्रामे निरोधकाञ्शत्रून्। तदेवाह। अयमिंद्रो विश्वा द्विषो द्वेष्टॄञ्शत्रूनत्यतिक्रम्य गच्छति। कनीनः कमनीयः परो मेघानां परस्ताद्वर्तमान इंद्र ओदनं। मेघनामैतत्। मेघं भिनत्। अभिनत्। भिनत्ति वृष्ट्यर्थं। कीदृशं। गिरा माध्यमिकया वाचा स्तनितलक्षणया पच्यमानं। वज्रनिर्घोषेण ताड्यमानमित्यर्थः॥

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथं।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुं॥१५॥

अर्भकः। न। कुमारकः। अधि। तिष्ठत्। नवं। रथं।
सः। पक्षत्। महिषं। मृगं। पित्रे। मात्रे। विभुऽक्रतुं॥१५॥

अयमिंद्रोऽर्भको नाल्पशरीरः कुमारकः कुमार इव नवं स्तुत्यं रथमधि तिष्ठत्। अधितिष्ठति। स इंद्रो

महिषं महांतं मृगं मृगवदितस्ततो धावंतं सर्वैर्मृग्यं वा विभुक्रतुं बज्रकर्माणं मेघं पषत्। पचति। वृष्ट्यभिमुखं करोतीत्यर्थः ॥

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययं।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसं ॥१६॥
आ। तु। सुऽशिप्र। दंऽपते। रथं। तिष्ठ। हिरण्ययं।
अध। द्युक्षं। सचेवहि। सहस्रऽपादं। अरुषं। स्वस्तिऽगां। अनेहसं ॥१६॥

हे सुशिप्र सुहनो हे दंपते गृहस्वामिन्। अत्र गृहो रथः। तस्य स्वामिन् तु त्वं तावद्रथमा तिष्ठ। हविःस्वीकरणानंतरं पश्चादहं रथमारोहामीति भावः। कीदृशं। हिरण्ययं हिरण्मयं। अध तवारोहणानंतरमहमप्यारुह्योभौ सचेवहि। संगच्छेवहि। संगतौ भवेव। पुनः कीदृशं। द्युक्षं दीप्तं रथं सहस्रपादं बहुपादमरुषमारोचमानं स्वस्तिगां कुशलगमनमनेहसमपापं ॥

पूर्वाह्णे प्रवर्ग्ये तं घेमित्थेत्येषा। सूत्रितं च। तं घेमित्था नमस्विन इति प्रागाथीं पूर्वाह्णे। आ° ४.७.। इति ॥

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयंति दावने ॥१७॥
तं। घ। ईं। इत्था। नमस्विनः। उप। स्वऽराजं। आसते।
अर्थं। चित्। अस्य। सुऽधितं। यत्। एतवे। आऽवर्तयंति। दावने ॥१७॥

तं घ तं खल्वीमेनमिंद्रमित्थेत्थमनेन प्रकारेण नमस्विनोऽन्नवंतः स्तुतिवंतो वाध्वर्य्वादयः स्वराजं स्वयं राजमानं वोपासते। सेवंते। तथा कृत्वार्थं चिदरणीयं धनं सुधितं सुष्ठु स्थापितमस्येंद्रस्य संबंधिनं प्राप्नुवंतीति शेषः। कदेति आह। यद्यदैतवेऽस्येंद्रस्य गमनाय स्वयं प्राप्तुं वा दावने हविर्दानायावर्तयंति स्तुतयः तदेत्यर्थः। अथवाश्वा वावर्तयंति तदेत्यर्थः ॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषां।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१८॥
अनु। प्रत्नस्य। ओकसः। प्रियऽमेधासः। एषां।
पूर्वां। अनु। प्रऽयतिं। वृक्तऽबर्हिषः। हितऽप्रयसः। आशत ॥१८॥

अनया स्तुतिमुपसंहरति। एषां देवानामिंद्रादीनां प्रत्नस्य पुराणस्यौकसः स्थानस्य पुराणं स्थानं प्रियमेधासः प्रियमेधा अन्वाशत। अनुप्राप्ताः। कीदृशाः प्रियमेधाः। पूर्वां मुख्यां प्रयतिं प्रदानमनु लक्षीकृत्य वृक्तबर्हिषः स्तीर्णदर्भा हितप्रयस आसादितसोमादिहविष्काः ॥ ॥७॥ ॥७॥

अष्टमेऽनुवाक एकादश सूक्तानि। तत्र यो राजेति पंचदशर्चं प्रथमं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। यो राजा पंचोना पुरुहन्मा बार्हतं त्रिप्रगाथाद्युष्णिगनुष्टुप्पुरउष्णिगंतमिति। पुरुहन्मा ऋषिः। स च क्वचित्कथंचिदविशेषितं। अनु° २.३.। इति परिभाषयांगिरसः। आद्यातृतीयापंचम्यो बृहत्यः। द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः। सप्तम्याद्याः षड्बृहत्यः। त्रयोदश्युष्णिक्। चतुर्दश्यनुष्टुप्। पंचदशी पुरउष्णिगाद्यद्वादशका द्व्यष्टका। आद्यश्चेत्पुरउष्णिक्। अनु° ५.२.। इति हि तल्लक्षणं। इंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावादित एकादशर्चः। तथा च पंचमारण्यके सूत्रितं। यो राजा चर्षणीनामित्येकादश। ऐ° आ° ५.२.४.। इति ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१॥
यः । राजा । चर्षणीनां । याता । रथेभिः । अध्रिऽगुः ।
विश्वासां । तरुता । पृतनानां । ज्येष्ठः । यः । वृत्रऽहा । गृणे ॥१॥

य इंद्रश्चर्षणीनां मनुष्याणां राजा स्वामी रथैर्याता गंता चाध्रिगुरधृतगमनोऽन्यैर्विश्वासां पृतनानां सेनानां तरुता तारकः। यश्च ज्येष्ठो गुणैर्ज्यायान्। यश्च वृत्रहा वृत्रं हतवान्। तं महाभागमिंद्रं गृणे। स्तौमि ॥

इंद्रं तं शुंभ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥२॥
इंद्रं । तं । शुंभ । पुरुऽहन्मन् । अवसे । यस्य । द्विता । विऽधर्तरि ।
हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः ॥२॥

हे पुरुहन्मन्नृषे त्वं तमिंद्रं शुंभ। हविष्प्रदानादिनालंकुरु। किमर्थं। अवसे रक्षणाय। एवमात्मा स्वात्मानं संबोध्य ब्रवीति। यस्य तव विधर्तरि विधारक इंद्रे द्विता द्वित्वमस्त्यौग्र्यमनौग्र्यं। तव शत्रून्हंतुमुग्रत्वं त्वदनुग्रहायानौग्र्यं चेति द्वैतमस्ति। तदौग्र्यचिह्नं दर्शयति। हस्ताय कराय हननाय शत्रूणां दर्शतो दर्शनीयो महो महान्वज्रः प्रति धायि प्रतिनिहितो भवति दिवे प्रकाशाय दिवसाय वा अथवा दिवि दृश्यमानः सूर्य इव ॥

तस्मिन्नेव शस्त्रे नकिष्टमिति प्रगाथो वैकल्पिकः स्तोत्रियः। सूत्रितं च। नकिष्टं कर्मणा नशन्न त्वा बृहंतो अद्रयः। आ० ७. ४.। इति ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधं ।
इंद्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसं ॥३॥
नकिः । तं । कर्मणा । नशत् । यः । चकार । सदाऽवृधं ।
इंद्रं । न । यज्ञैः । विश्वऽगूर्तं । ऋभ्वसं । अधृष्टं । धृष्णुऽओजसं ॥३॥

तं जनमन्यो मर्षको जनः कर्मणा हननादिव्यापारेण नकिर्नशत्। नैव व्याप्नोति। य इंद्रं चकार इंद्रमेवानुकूलं यज्ञैः साधनैः। कीदृशमिंद्रं। सदावृधं सदा वर्धकं विश्वगूर्तं सर्वैः स्तुत्यमृभ्वसं महांतमधृष्टमन्यैर्धृष्ण्वोजसं धर्षकबलं ॥

अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥४॥
अषाळ्हं । उग्रं । पृतनासु । ससहिं । यस्मिन् । महीः । उरुऽज्रयः ।
सं । धेनवः । जायमाने । अनोनवुः । द्यावः । क्षामः । अनोनवुः ॥४॥

अषाळ्हमसोढमुग्रमुद्गूर्णबलं पृतनासु शत्रुसेनासु सासहिमभिभवितारं स्तौमीत्यर्थः। यस्मिन्निंद्रे जायमाने महीर्महत्य उरुज्रयो बहुवेगा धेनवो हविरादिना प्रीणयित्र्यः प्रजा गाव एव वा समनोनवुः समस्तुवन्। न

केवलं धेनव एव अपि तु द्यावो द्युलोकाः क्षामः पृथिव्यश्च समनोनवुः । तत्रत्याः सर्वे प्राणिनो नमंत इत्यर्थः । त्रिवृतो लोका इति श्रुतेर्बहुवचनं ॥

तृतीयेऽहनि निष्केवल्ये वैरूपसामपक्षे यद्याव इति प्रगाथः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । यद्याव इंद्र ते शतं यदिंद्र यावतस्त्वमिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । आ० ७.१०. । इति ॥

यद्द्याव॑ इंद्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥५॥
यत् । द्याव॑ः । इं॒द्र॒ । ते॒ । श॒तं । श॒तं । भूमीः॑ । उ॒त । स्युरिति॒ स्युः ।
न । त्वा॒ । व॒ज्रि॒न् । स॒हस्रं॑ । सूर्याः॑ । अनु॑ । न । जा॒तं । अ॒ष्ट॒ । रोद॑सी॒ इति॑ ॥५॥

हे इंद्र ते तव प्रतिमानार्थं यद्यदि द्यावो द्युलोकाः स्युः तथापि नाप्नुवंति । उतापि च भूमीर्भूम्यस्ते तव मूर्तिप्रतिबिंबाय शतं स्युः तथापि नाप्नुवंति । हे वज्रिन् ते त्वां सहस्रं सूर्या अगणिता अपि सूर्या नानुभवंति । न प्रकाशयंतीत्यर्थः । न तत्र सूर्यो भाति । क० उ० ५.१५. । इति श्रुतेः । किं बहुना । जातं पूर्वमुत्पन्नं किंचन नाष्ट । नाप्नुते । तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ नाप्नुवाते । सर्वेभ्योऽतिरिच्यस इत्यर्थः । ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानंतरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः । छां० उ० ३.१४.३. । इति श्रुतेः ॥ ॥ ८ ॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न्विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न्गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभि॑ः ॥६॥
आ । प॒प्रा॒थ॒ । म॒हि॒ना । वृष्ण्या॑ । वृ॒ष॒न् । विश्वा॑ । श॒वि॒ष्ठ॒ । शव॑सा ।
अ॒स्मान् । अ॒व॒ । म॒घ॒ऽव॒न् । गोऽम॑ति । व्र॒जे । व॒ज्रि॒न् । चि॒त्राभि॑ः । ऊ॒तिऽभि॑ः ॥६॥

हे वृषन्नभिमतवर्षकेंद्र त्वमा पप्राथ । आपूरयसि । व्याप्नोषि । कानि । विश्वा सर्वाणि वृष्ण्या वर्षकाणि बलानि शत्रुसंबंधीनि । केन साधनेन । महिना महता शवसा बलेन स्वीयेन । अथवा वृष्ण्येत्येतच्छवोविशेषणं । तथा सत्यभिमतवर्षकेण महता बलेनास्मदीयानि बलानि पूरयसीत्यर्थः । अथ तथा सत्यास्मान् गोमति बहुभिर्गोभिर्युक्ते व्रजे शत्रुसंबंधिनि निमित्ते सत्यस्मानव हे वज्रिन्वज्रयुक्तेंद्र । कैः साधनैः । चित्राभिर्नानाविधैरूतिभी रक्षणैरिति ॥

न सीम॑देव आप॒दिषं॑ दीर्घायो॒ मर्त्य॑ः ।
एत॑ग्वा चि॒द्य एत॑शा युयो॒जते॒ हरी॒ इंद्रो॑ युयो॒जते॑ ॥७॥
न । सीं॒ । अदे॑वः । आप॑त् । इषं॑ । दी॒र्घा॒यो॒ इति॑ दीर्घऽआयो । मर्त्य॑ः ।
एत॑ऽग्वा । चि॒त् । यः । एत॑शा । यु॒योज॑ते । हरी॒ इति॑ । इंद्र॑ः । यु॒योज॑ते ॥७॥

हे दीर्घायो नित्येंद्र सोऽदेव इंद्राख्यदेवरहितो मर्त्यो मरणधर्मा मनुष्यः सीं सर्वमिषमन्नं नापत् । न प्राप्नोति । यो मर्त्योऽस्मिंद्र एतग्वा चित् । एतवर्णाविवाश्वौ भवतोऽभिमतदेशगमनाय । एतशौ तशावश्वौ युयोजते योजयति रथे यज्ञं गंतुं । यस्मिंद्रो हरी युयोजते तन्न यः स्तौति । स न प्राप्नोतीति समन्वयः ॥

तं वो॑ म॒हो म॒हाय्य॒मिंद्रं॑ दा॒नाय॑ स॒क्षणि॑ं ।
यो गा॒धेषु॒ य आर॑णेषु॒ हव्यो॒ वाजे॒ष्वस्ति॒ हव्य॑ः ॥८॥

तं । वः । महः । महाय्यं । इंद्रं । दानाय । सक्षणिं ।
यः । गाधेषु । यः । आऽअरणेषु । हव्यः । वाजेषु । अस्ति । हव्यः ॥ ८ ॥

हे ऋत्विजः महो महांतो वो यूयं तं महाय्यं पूज्यमिंद्रं दानाय सक्षणिं सचमानं परिचरतेति शेषः । य इंद्रो गाधेषूदकेषु हव्योऽस्ति आह्वातव्यो भवति । यश्चारणेषु गंतव्येषु निम्नेषूदकेषु स्थलेषु वा हव्योऽस्ति । तथा वाजेषु संग्रामेषु जयाय हव्यो ह्वातव्योऽस्ति भवति ॥

उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिंद्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥
उत् । ऊं इति । सु । नः । वसो इति । महे । मृशस्व । शूर । राधसे ।
उत् । ऊं इति । सु । मह्यै । मघऽवन् । मघत्तये । उत् । इंद्र । श्रवसे । महे ॥ ९ ॥

हे वसो वासयितः शूरेंद्र त्वं नोऽस्मान् सु सुष्ठु मृशस्व । उन्मृशस्वेव । उत्थापय । किमर्थं । महे महते राधसेऽन्नाय । तथा हे शूर मघवन्निंद्र उन्मृशस्व मह्यै महते मघत्तये धनदानाय । तथोन्मृशस्वेंद्र महे महत्यै श्रवसे कीर्त्यै ॥

त्वं न इंद्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृंपसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥ १० ॥
त्वं । नः । इंद्र । ऋतऽयुः । त्वाऽनिदः । नि । तृंपसि ।
मध्ये । वसिष्व । तुविऽनृम्ण । ऊर्वोः । नि । दासं । शिश्नथः । हथैः ॥ १० ॥

हे इंद्र ऋतयुर्यज्ञकामस्त्वं नोऽस्मांस्त्वानिदः । त्वां यो निंदति सः । अयजनमेव निंदा तव । तस्मादयष्टुः सकाशान्नि नितरां तृंपसि । प्रीणयसि । तस्य धनमपहृत्येति भावः । एवं संतर्प्य हे तुविनृम्ण प्रभूतधन स त्वं तवोर्वोर्मध्येऽस्मान्वसिष्व । ऊरुभ्यामाच्छादय रक्षार्थं । दासमुपक्षपयितारमस्मद्द्वेषिणं पापं वा हथैर्हननैर्नि शिश्नथः । मारयसि । अथवा त्वद्विरोधिनं दासमसुरं नि शिश्नथो हननैः ॥ ॥ ९ ॥

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुं ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥
अन्यऽव्रतं । अमानुषं । अयज्वानं । अदेवऽयुं ।
अव । स्वः । सखा । दुधुवीत । पर्वतः । सुऽघ्नाय । दस्युं । पर्वतः ॥ ११ ॥

हे इंद्र अन्यव्रतं व्यतिरिक्तकर्माणं अत एवामानुषं मानुषाणामिंद्रयाजिनामप्रियमयज्वानमयष्टारमदेवयुमदेवकर्मिणं पापिनं स्वः स्वर्गादव दुधुवीत । अवचालयेदित्यर्थः । कः । सखा पर्वतस्तव सखिभूतः पर्वत ऋषिः । यद्यप्यन्यं देवमिष्ट्वा स्वर्गं प्राप्नोति सः तथापि पातयत्वृषिः । न केवलं धूननमात्रं अपि तु सुघ्नाय सुष्ठु हंत्रे मृत्यवे दस्युमुक्तलक्षणं पर्वतः प्रेरयतीति शेषः । अत इंद्रमेवावश्यं यजध्वमिति शेषः ॥

त्वं न इंद्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।
धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥ १२ ॥

त्वं । नः । इंद्र । आसां । हस्ते । शविष्ठ । दावने ।
धानानां । न । सं । गृभाय । अस्मऽयुः । द्विः । सं । गृभाय । अस्मऽयुः ॥१२॥

हे शविष्ठ बलवन्निंद्र त्वं नोऽस्मभ्यं दावने प्रदानायासां गवां ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ एता गा हस्ते गृभाय । गृहाण । यद्वयो दृष्टांतः । धानानां न । धाना भ्रष्टयवाः ॥ अत्रापि कर्मणि षष्ठी ॥ धाना यथा संगृह्णाति तद्वद्गृहाण । कीदृशस्त्वं । अस्मयुरस्मान्कामयमानः । गृहीत्वा चास्मयुः सन् द्विः सं गृभाय । पुनर्द्विवारं संगृहाण ॥

सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य । उपस्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्रयः ॥१३॥
सखायः । क्रतुं । इच्छत । कथा । राधाम । शरस्य । उपऽस्तुतिं । भोजः । सूरिः । यः ।
अह्रयः ॥१३॥

हे सखाय ऋत्विजोऽध्वर्य्वादयः क्रतुं कर्मेंद्रसंबंधिनमिच्छत कर्तुं । हे सखायः शरस्य ॥ शॄ हिंसायां ॥ हिंसकस्येंद्रस्य कथा कथं राधाम । साधयाम । किं । उपस्तुतिं स्तोत्रं । य इंद्रो भोजः शत्रूणां भोजयिता सूरिः प्रेरकोऽह्रयोऽनवनतः शत्रूणामिति ॥

भूरिभिः समह ऋषिभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।
यदित्थमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥१४॥
भूरिऽभिः । समह । ऋषिऽभिः । बर्हिष्मत्ऽभिः । स्तविष्यसे ।
यत् । इत्थं । एकंऽएकं । इत् । शर । वत्सान् । पराऽददः ॥१४॥

हे इंद्र समह समानपूज । सर्वैः पूज्येत्यर्थः । भूरिभिर्बहुभिर्ऋषिभिरतींद्रियार्थदर्शिभिर्ऋत्विग्भिर्बर्हिष्मद्भिर्यागवद्भिः स्तविष्यसे । स्तूयसे । यद्य इंद्र इत्थमेकमेकमिदेकमेकमेव बहून्वत्सान् स्तोतृभ्यः पराददः प्रयच्छसि । हे शर हिंसक शत्रोः । अत्र वत्सशब्दो वत्समातॄणां गवामुपलक्षकः । गाः प्रयच्छसीति ॥

कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् । अजां सूरिर्न धातवे ॥१५॥
कर्णऽगृह्य । मघऽवा । शौरऽदेव्यः । वत्सं । नः । त्रिऽभ्यः । आ । अनयत् । अजां ।
सूरिः । न । धातवे ॥१५॥

अयं मघवेंद्रस्त्रिभ्यो हिंसकेभ्यः सकाशाच्छौरदेव्यः । दीव्यंति क्रीडंत इति देवा योद्धारः । शूराश्च ते देवाश्च शूरदेवाः । तेषां हितं शौरदेवं युद्धं । तत्संबंधिन्यो गाः । युद्धे शत्रून्हत्वा तत्संबंधिन्य इत्यर्थः । ता वत्सं न । नेति चार्थे । वत्ससहिता अस्मभ्यं कर्णगृह्य कर्णे गृहीत्वानयत् । आनयतु । सूरिर्न प्रेरकः स्वामीव धातवे पानायाजां यथा स आनयति गृहीत्वा तद्वदिति ॥ ॥१०॥

त्वं नो अग्न इति पंचदशर्चं द्वितीयं सूक्तं । सुदीतिपुरुमीळ्हावृषी तयोरन्यतरो वा । आदौ नव गायत्र्यो दशमीद्वादशीचतुर्दश्यो बृहत्य एकादशीत्रयोदशीपंचदश्यः सतोबृहत्यः । अग्निर्देवता । तथा चानुक्रांतं । त्वं नः सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतर आग्नेयं तु त्रिप्रगाथांतमिति ॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्र आदितो नवर्चः । तथा च सूत्रितं । त्वं नो अग्ने महोभिरिति नव । आ॰ ४. १३. । इति ॥

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥१॥
त्वं । नः । अग्ने । महःऽभिः । पाहि । विश्वस्याः । अरातेः । उत । द्विषः । मर्त्यस्य ॥१॥

हे अग्ने त्वं नोऽस्मान्महोभिः पूजाभिर्महद्भिर्धनैर्वा पाहि । रक्ष । विश्वस्या बहुविधादरातेरदातुः सकाशात् अदानाद्वा पाहि । त्वमेव महद्धनं दत्त्वादातुरदानाद्वा सकाशाद्रक्षेत्यर्थः । यद्वा । महोभिर्युक्तस्त्वमिति योज्यं । उतापि च द्विषो द्वेष्टुर्मर्त्यस्य मर्त्यात्सकाशात्पाहि । अस्मभ्यं बलं दत्त्वेति भावः । अथवा मर्त्यस्य द्विषो द्वेषाद्रक्षेति संबंधः । अरातेरित्यस्यादानादिति पक्षे तत्रापि मर्त्यस्यादानादिति संबंधनीयं ॥

नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् ॥२॥

नहि । मन्युः । पौरुषेयः । ईशे । हि । वः । प्रियऽजात । त्वं । इत् । असि । क्षपाऽवान् ॥२॥

हे प्रियजाताग्ने वस्तव पौरुषेयः पुरुषसंबंधी मन्युः क्रोधो नेशे नेष्टे बाधितुं । अस्मदादिभी रक्षितत्वादिति भावः । दिवाचराः खलु पुरुषाः अतो दिवा तव हानिर्नास्तीति भावः । अथ रात्रिंचरा रक्षःप्रभृतयः । तेभ्योऽपि पीडा नास्तीत्युच्यते । त्वमित्त्वमेव खलु क्षपावान्रात्रिमानसि । रात्रौ ह्यग्निर्विशेषेण तेजस्वी भवति ॥

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारं ॥३॥

सः । नः । विश्वेभिः । देवेभिः । ऊर्जः । नपात् । भद्रऽशोचे । रयिं । देहि । विश्वऽवारं ॥३॥

हे अग्ने स स्तुत्यस्त्वं नोऽस्मभ्यं वस्वो वसु धनमुप मासि । प्रयच्छसि । हे ऊर्जो नपाद्बलस्य नप्तर्न पातयितर्वा हे भद्रशोचे स्तुत्यप्रकाशन । देवादरार्थं पुनराह । रयिं धनं विश्ववारं सर्वैर्वरणीयं धनं देहि । अथवा यद्वसूप मास्यस्मभ्यं दातुं तद्धनं गृहादिलक्षणं तच्च रयिं दानार्हं गोहिरण्यादिकं च देहीत्यपुनरुक्तिः ॥

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवंत रायः । यं त्रायसे दाश्वांसं ॥४॥

न । तं । अग्ने । अरातयः । मर्तं । युवंत । रायः । यं । त्रायसे । दाश्वांसं ॥४॥

हे अग्ने तं स्तोतारमरातयोऽदानशीला द्वेषिणो रायो रयिमंतो न युवंत । न पृथक्कुर्वंति । रायो धनाद्वा न युवंत । यं दाश्वांसं हविर्दातारं त्रायसे पालयसे ॥

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गंता ॥५॥

यं । त्वं । विप्र । मेधऽसातौ । अग्ने । हिनोषि । धनाय । सः । तव । ऊती । गोषु । गंता ॥५॥

हे अग्ने विप्र त्वं यं मर्त्यं मेधसातौ यज्ञस्य संभजने हिनोषि प्रेरयसि धनाय गवादिधनलाभाय स यजमानस्तवोत्यूत्या रक्षणेन यागेषु गंता भवति । गोमान् भवतीत्यर्थः ॥ ॥११॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६॥

त्वं । रयिं । पुरुऽवीरं । अग्ने । दाशुषे । मर्ताय । प्र । नः । नय । वस्यः । अच्छ ॥६॥

हे अग्ने त्वं दाशुषे हविर्दत्तवते मर्त्याय यजमानाय रयिं धनं पुरुवीरं बहुभिर्वीरैर्युक्तं प्रयच्छसि । अतो नोऽस्मानपि वस्यो वसीयो धनमच्छाभिप्राप्तुं प्र णय । प्रापय ॥

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये३ मर्ताय ॥७॥

उरुष्य । नः । मा । परा । दाः । अघऽयते । जातऽवेदः । दुःऽआध्ये । मर्ताय ॥७॥

हे जातवेदो जातविद्य जातधन वाग्ने नोऽस्मानुरुष्य । रक्ष । उरुष्यती रक्षाकर्मेति यास्कः । नि० ५.२३. । मा परा दाः । मा परादेह्यस्मान् । कस्मा इति स उच्यते । अघायतेऽघं पापमिच्छते दुराध्ये दुराध्यानाय दुर्विचिंतकाय हिंसाबुद्धये मर्ताय मनुष्याय ॥

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनां ॥८॥
अग्ने। माकिः। ते। देवस्य। रातिं। अदेवः। युयोत। त्वं। ईशिषे। वसूनां ॥८॥

हे अग्ने देवस्य द्योतमानस्य ते तव रातिं दानं दत्तं धनं वा कश्चिददेवो मर्त्यादिर्माकिर्युयोत। मैव पृथक्करोतु। त्वमेवेशिषे। कस्य। वसूनां धनानामीश्वरो भवसि दातुं। अनेनाग्निप्रणीयाया रातेः सद्भाव उक्तो भवति ॥

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य। सखे वसो जरितृभ्यः ॥९॥
सः। नः। वस्वः। उप। मासि। ऊर्जः। नपात्। माहिनस्य। सखे। वसो इति। जरितृऽभ्यः ॥९॥

हे ऊर्जो नपाद्बलस्यान्नस्य पुत्र। बलेन मथ्यमानत्वादाज्यलक्षणेनान्नेन प्रवर्धमानादूर्जोनपात्त्वं। हे सखे सखिवद्धितकारिन्वसो वासकाग्ने स स्तुत्यत्वेनैव प्रसिद्धस्त्वं जरितृभ्यो गरितृभ्यः स्तोतृभ्यो नोऽस्मभ्यं माहिनस्य वस्वः। माहिन इति महन्नाम। महद्धनमुप मासि। समीपे मासि। निर्मासि। प्रयच्छसीत्यर्थः ॥

प्रातरनुवाके बार्हते छंदस्यच्छा न इत्याद्याः षडृचः। तथा च सूचितं। अच्छा नः शीरशोचिषमिति षट्। आ॰ ४. १३.। इति ॥ दशमेऽहनि प्रातःसवनेऽच्छा वो अग्निमिति तृचस्य स्थानेऽच्छा न इति तृचोऽच्छावाकवादः। सूचितं च। अच्छा नः शीरशोचिषं प्रति श्रुताय वो धृषदिति तृचौ। आ॰ ८. १२.। इति ॥

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यंतु दर्शतं।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१०॥
अच्छ। नः। शीरऽशोचिषं। गिरः। यंतु। दर्शतं।
अच्छ। यज्ञासः। नमसा। पुरुऽवसुं। पुरुऽप्रशस्तं। ऊतये ॥१०॥

अच्छाभिमुखं यंतु गच्छंतु नोऽस्माकं गिरः स्तुतयः। कं। शीरशोचिषमशनशीलज्वालं दर्शतं सर्वैर्दर्शनीयमग्निं। तथा यज्ञासो यज्ञाश्चास्मदीया नमसा हविषाज्यादिलक्षणेनाच्छाभिमुखं यंतु। गच्छंतु। कीदृशं। पुरुवसुं प्रभूतधनं पुरुप्रशस्तं बहुस्तुतं। किमर्थं। ऊतयेऽस्माकं रक्षणाय ॥ ॥१२॥

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणां।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मंद्रतमो विशि ॥११॥
अग्निं। सूनुं। सहसः। जातऽवेदसं। दानाय। वार्याणां।
द्विता। यः। भूत्। अमृतः। मर्त्येषु। आ। होता। मंद्रऽतमः। विशि ॥११॥

अग्निं सहसः सूनुं बलस्य पुत्रं जातवेदसं जातधनं वार्याणां वरणीयानां गवादिधनानां दानाय गिरोऽच्छ यंत्वित्यनुवर्तते। योऽग्निरमृतोऽमरणधर्मा देवेषु भवति स मर्त्येष्वा। आकारस्त्वार्थे। मनुष्येषु चाभूत् अभवदित्येवं द्विता द्वेधं भवति। देवेष्वमृतत्वमस्य प्रसिद्धं मनुष्येषु कीदृशोऽभूदिति उच्यते। विशि विक्षु यजमानरूपासु प्रजासु होमनिष्पादको मंद्रतमो मादयितृतमश्च भवति। अच्छ यंत्विति समन्वयः। अथवा। योऽमृतो द्विता द्वित्वं द्वेधं द्विप्रकारोऽभूत्। कथं। मर्त्येषु सामान्येन दाहपाकादिसाधनोऽभवदित्येतत्प्रसिद्धं विशि यजमानरूपायां तु होता मंद्रतमोऽभवदित्येवं द्वित्वं ॥

अग्निं वो देवयज्ययाग्निं प्रयत्यध्वरे ।
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षैत्राय साधसे ॥१२॥
अग्निं । वः । देवऽयज्यया । अग्निं । प्रऽयति । अध्वरे ।
अग्निं । धीषु । प्रथमं । अग्निं । अर्वति । अग्निं । क्षैत्राय । साधसे ॥१२॥

हे यजमानाः युष्माकं देवयज्यया देवयागेन निमित्तेन देवयागार्थमग्निं स्तौमीति शेषः । तथाग्निमध्वरे यागे प्रयति प्रकर्षेण गच्छति प्रवृत्ते सति स्तौमि प्रथममितरदेवेभ्यः । तथाग्निमर्वत्यागते भ्रातृव्ये स्तौमि यज्ञविघ्नपरिहारार्थं । तथा क्षैत्राय क्षेत्राय क्षेत्रसंबंधिने साधसे साधनाय क्षेत्रलाभाय स्तौमि । यज्ञांते क्षेत्रलाभरूपाय फलाय च स्तौमि । एवमादौ मध्येऽंते च सर्वदा स्तौमीत्यर्थः ॥

अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणां ।
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं संतं तनूपां ॥१३॥
अग्निः । इषां । सख्ये । ददातु । नः । ईशे । यः । वार्याणां ।
अग्निं । तोके । तनये । शश्वत् । ईमहे । वसुं । संतं । तनूऽपां ॥१३॥

अग्निर्देवः सख्ये समानख्यानाय नो मह्यं । सख्युः कर्म सख्यं । तस्मिन्वा । नोऽस्मभ्यमिषामिषोऽन्नानि ददातु । योऽग्निर्वार्याणां धनानामीशे ईष्टे स ददात्विति । तमेवाग्निं तोके पुत्रार्थं तनये तत्पुत्रार्थं च शश्वद्बहु धनमन्नं वेमहे । याचामहे । वार्याणामीश इत्युक्तत्वादेवं लभ्यते । कीदृशमग्निं । वसुं वासकं संतं सर्वदा वर्तमानं तनूपामंगानां पालयितारं ॥

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषं ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥१४॥
अग्निं । ईळिष्व । अवसे । गाथाभिः । शीरऽशोचिषं ।
अग्निं । राये । पुरुऽमीळ्ह । श्रुतं । नरः । अग्निं । सुऽदीतये । छर्दिः ॥१४॥

हे पुरुमीळ्ह त्वमग्निमवस आवयो रक्षणायेळिष्व । स्तुहि गाथाभिः । गाथेति वाङ्नाम । मंत्ररूपाभिर्वाग्भिः । कीदृशं । शीरशोचिषं शयनस्वभावरोचिष्कं । तथा राय ईळिष्व । श्रुतमेनं नरोऽन्येऽपि यजमानाः स्तुवंति स्वार्थं । तस्मात्सुदीतये मह्यमग्निं छर्दिर्गृहं याचस्वेत्येवं सुदीतिः पुरुमीळ्हं ब्रूते ॥

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्यग्निं शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुर्ऋषूणां ॥१५॥
अग्निं । द्वेषः । योतवै । नः । गृणीमसि । अग्निं । शं । योः । च । दातवे ।
विश्वासु । विक्षु । अविताऽइव । हव्यः । भुवत् । वस्तुः । ऋषूणां ॥१५॥

अग्निं द्वेषो द्वेष्टॄन्योतवै पृथक्कर्तुं गृणीमसि । गृणीमः । स्तुमः । तथाग्निं शं सुखं योश्च भयानाममिश्रणं च दातवे दातुं । अथवा शं सुखस्य योर्मिश्रणाय च गृणीमसि । अस्मिन्पक्षे द्वेषो योतवा इत्यनेन सह समुच्चयार्थश्चशब्दः । सोऽग्निर्विश्वासु सर्वासु विक्षु प्रजास्ववितेव रक्षिता राजेवर्षूणामृषीणामस्माकं वस्तुर्वासको देवो

हव्यो भुवत्। भवतु। अथवा। सर्वासु विक्षु यजमानरूपासु प्रजासु मध्य ऋषूणामृषीणां सूक्तद्रष्टृणामस्माकमेव हव्यो भवतु वसुः सर्वस्य वासको देवः॥ ॥१३॥

हविष्कृणुध्वमित्यष्टादशर्चं तृतीयं सूक्तं। अत्रानुक्रमणिका। हविर्न्यूना हर्यतः प्रागाथो हविषां स्तुतिर्वेति। प्रगाथपुत्रो हर्यत ऋषिः। परं गायत्रं प्राग्वत्सप्रेरिति परिभाषया गायत्री छंदः। आग्नेयं त्वित्युक्तत्वादग्निर्देवता यद्वा हविषां स्तूयमानत्वात्तद्देवताकं वा॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः॥

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः। विद्वाँ अस्य प्रशासनं ॥१॥

हविः। कृणुध्वं। आ। गमत्। अध्वर्युः। वनते। पुनरिति। विद्वान्। अस्य। प्रऽशासनं ॥१॥

हे अध्वर्युसंबंधिनो हविष्कर्तारः यूयं हविः कृणुध्वं। कुरुध्वं शीघ्रं। यत आ गमत् आजगामायमग्निः अतः कृणुध्वं। अध्वर्युः पुनर्वनते। संभजते। किं। सामर्थ्यादध्वरमिति गम्यते। कीदृशोऽध्वर्युः। अस्य हविषः प्रशासनं प्रदानं विद्वान्॥

नि तिग्ममभ्यं१शुं सीदद्धोता मनावधि। जुषाणो अस्य सख्यं ॥२॥

नि। तिग्मं। अभि। अंशुं। सीदत्। होता। मनौ। अधि। जुषाणः। अस्य। सख्यं ॥२॥

होतर्त्विक् तिग्मं तीक्ष्णमंशुं तमग्निं नि षीदत्। निषीदति। कीदृशो होता। अस्याग्नेः सख्यं मनावधि यजमाने जुषाणः॥ अधीति सप्तम्यर्थानुवादी॥

अंतरिच्छंति तं जने रुद्रं परो मनीषया। गृभ्णंति जिह्वया ससं ॥३॥

अंतः। इच्छंति। तं। जने। रुद्रं। परः। मनीषया। गृभ्णंति। जिह्वया। ससं ॥३॥

तं रुद्रं। रुद्दुःखं। तस्य द्रावयितारं। अथवा रुत् स्तुतिः। तया गंतव्यं। स्तुत्यमित्यर्थः। तादृशमग्निं जने यजमानार्थं मनीषया स्वप्रज्ञानेन परः परस्तात्पुरोदेश इच्छंति स्थापयितुं। त एव पश्चात्ससं स्वपंतमग्निं जिह्वया॥ जन्ये जनकशब्दः॥ जिह्वाप्रभवया स्तुत्या गृभ्णंति। गृह्णंत्यंगुलिभिः। अत्र यास्कः। स्वप्नमेतन्मध्यमं ज्योतिरनित्यदर्शनं। नि० ५. ३.। इति॥

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनं। दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४॥

जामि। अतीतपे। धनुः। वयःऽधाः। अरुहत्। वनं। दृषदं। जिह्वया। आ। अवधीत् ॥४॥

वयोधा अन्नस्य दाताग्निर्मध्यमस्थानो जामि प्रवृद्धं सर्वमतिरिच्य वर्तमानं। जाम्यतिरेकनामेति यास्कः। नि० ४. २०.। धनुर्धन्वांतरिक्षमतीतपे। अतितपति। अथवाग्नेर्जामि गमनशीलं धनुरतितपते स्वविरोधिनं। स च वयोधा अन्नस्य दाताग्निर्वनमुदकमरुहत्। आरोहति विमोकाय। तदर्थं जिह्वया ज्वालया दृषदं मेघमवधीत्। हंति। दावाग्निपक्षे वनं तरुसमूहं हंति। जिह्वया दृषदं कठिनमपि पाषाणं भिनत्तीति॥

चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विंदते। वेति स्तोतव अंब्यं ॥५॥

चरन्। वत्सः। रुशन्। इह। निऽदातारं। न। विंदते। वेति। स्तोतवे। अंब्यं ॥५॥

वत्सः। वत्सवच्चापलेन धावनाद्वत्स इत्युपचर्यते। अथवा वत्स इव संचरन्। इवशब्दो लुप्यते। रुशच्छ्वेतो भवन्निहास्मिँल्लोके निदातारं निरोधकं न विंदते। न लभते। किंतु स्तोतवे स्तोतुमंब्यं स्तोतारं स्वयं वेति। कामयते। अथवात्र वैद्युतोऽग्निरुच्यते। वैद्युतोऽयं रुशंश्चरंश्चेहांतरिक्षे वत्सः सर्वदा वसन् वत्सस्थानीयो वा सन्निदातारं निरोधकं न विंदते। किंतु स्तोतुमंब्यं माध्यमिकां वाचं वेति॥ ॥१४॥

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत्। दामा रथस्य ददृशे ॥६॥
उतो इति। नु। अस्य। यत्। महत्। अश्वऽवत्। योजनं। बृहत्। दामा। रथस्य। ददृशे ॥६॥

उतो अपि च नु क्षिप्रमस्यास्यादित्यस्य यन्महन्माहात्म्ययुक्तमश्वावत्संवृद्धाश्ववद्बृहन्महत्स्थूलं योजनं दृश्यते। तदेवाह। रथस्य दामा ददृशे दृश्यते। अंतरिक्षे रथेऽश्वान्नियोजयतीत्यर्थः। तदा दुहंतीत्युत्तरत्र संबंधः॥

अभिष्टवे घर्मदोहे दुहंति सप्तेत्येषा। सूचितं च। दुहंति सप्तैकां समिद्धो अग्निरश्विना। आ० ४.७.। इति॥ ग्रावस्तोत्रेऽप्येषा। सूचितं च। दुहंति सप्तैकामधुक्षत्पिप्युषीमिषं। आ० ५.१२.। इति॥

दुहंति सप्तैकामुप द्वा पंच सृजतः। तीर्थे सिंधोरधि स्वरे ॥७॥
दुहंति। सप्त। एकां। उप। द्वा। पंच। सृजतः। तीर्थे। सिंधोः। अधि। स्वरे ॥७॥

सप्तर्त्विज एकां घर्मं दुहंति। तेषां मध्ये द्वा द्वौ प्रतिप्रस्थातारावध्वर्यू पंचान्यानुप सृजतः। प्रयोजयतः। के ते पंच त उच्यंते। यजमानं ब्राह्मणं होतारमाग्नीध्रं प्रस्तोतारमिति। कुत्रेति उच्यते। सिंधोः कस्याश्चित्सरस्वत्यादिप्रख्यातायाः नद्यास्तीर्थे। यत्रायमृषिर्यजति तत्र। स्वरेऽधि॥ स्वरतिः शब्दकर्मा। अधीति सप्तम्यर्थानुवादी॥ स्वरोपेते शब्दवति। यत्तीर्थमृत्विजां ओँ श्रावयेत्यादिशब्दैः शब्दवद्भवति तस्मिन्नित्यर्थः॥

प्रवर्ग्येऽभिष्टवे ग्राव्णोऽभिष्टवे वा दशभिरित्येषा। सूत्रितं च। आ दशभिर्विवस्वतो दुहंति सप्तैकां। आ० ४.७. आ० ५.१२.। इति॥

आ दशभिर्विवस्वत इंद्रः कोशमचुच्यवीत्। खेदया त्रिवृता दिवः ॥८॥
आ। दशऽभिः। विवस्वतः। इंद्रः। कोशं। अचुच्यवीत्। खेदया। त्रिऽवृता। दिवः ॥८॥

विवस्वतः परिचरतो यजमानस्य दशभिरंगुलीभिर्याचितः सन्निंद्रः कोशं। मेघनामैतत्। उदकसेचकं मेघं दिवोंऽतरिक्षसंबंधिनं तत्सकाशादाचुच्यवीत्। व्यदारयदित्यर्थः। केन साधनेनेति तदुच्यते। त्रिवृता त्रिप्रकारवर्तनवता खेदया रश्मिना। यद्वा। अत्रेंद्रशब्देनाग्निरादित्यो वा गृह्यते। खेदया त्रिवृतेति लिंगात्॥

परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी। मध्वा होतारो अंजते ॥९॥
परि। त्रिऽधातुः। अध्वरं। जूर्णिः। एति। नवीयसी। मध्वा। होतारः। अंजते ॥९॥

अयमग्निस्त्रिधातुर्लोहितशुक्लकृष्णभेदेन त्रिवर्णो जूर्णिर्जवो वेगवान्नवीयसी नवीयस्या ज्वालयाध्वरं प्रवर्ग्यमेति। गच्छति। होतारो होमनिष्पादका अध्वर्य्वादयो मध्वाज्यादिना पर्यंजते। अथवाग्निस्त्रिस्त्रिप्रकारा क्षिप्रा जवतरा ज्वाला पर्येति महावीरं। तं मध्वांजत इति॥

सिंचंति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानं। नीचीनबारमक्षितं ॥१०॥
सिंचंति। नमसा। अवतं। उच्चाऽचक्रं। परिऽज्मानं। नीचीनऽबारं। अक्षितं ॥१०॥

नमसा नमनेनावतं महावीरमुच्चाचक्रमुपरिस्थितचक्रं परिज्मानं परिणत्याभं नीचीनबारं नीचीनद्वारमचितमक्षीणं ईदृशं क्षीराद्यवशेषयुक्तमाहवनीयस्योपरि नमनेन सिंचंति। जुह्वति। महावीरेण ह्याहवनीये हूयते॥ ॥१५॥

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु। अवतस्य विसर्जने ॥११॥
अभिऽआरं। इत्। अद्रयः। निऽसिक्तं। पुष्करे। मधु। अवतस्य। विऽसर्जने ॥११॥

अद्रय आद्रियमाणा अध्वर्य्वादयोऽभ्यारमिदभिगम्यैव निषिक्तमतिरिक्तं मधु पुष्करे वपुष्करे प्रवृद्ध

उपयमनीपात्रे सिंचंति। अग्निहोत्रार्थमवतस्य महावीरस्य विसर्जने विसर्जनसमये होमानंतरं खलु महावीरमासंध्यमासादयंति ॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥१२॥

गावः। उप। अवत। अवतं। मही इति। यज्ञस्य। रप्सुदा। उभा। कर्णा। हिरण्यया ॥१२॥

हे गावो घर्मदुघाः यूयमवतं महावीरं प्रत्युपावत। उपागच्छत। यस्माद्यज्ञस्य घर्मयागस्य साधनभूते रप्सुदा। रप्सुदारप्सुदे आरिप्सोः फलप्रदे। लिप्स्वोरश्विनोर्दातव्ये वा। यद्वा रपणं शब्दनं। रप् मंत्रः। तेन सुष्ठु दातव्ये। अथवा षूद क्षरणे। रपा मंत्रेण क्षारणीये दोहनीये। ईदृशे गवाजयोः पयसी मही महती बहुले अपेक्षिते अत उपावतं। गौरजाया अप्युपलक्षकः अजापयसोऽपि महावीरे सेचनीयत्वात्। अपि चास्य महावीरस्योभोभौ कर्णा कर्णस्थानीयौ द्वौ रुक्मौ हिरण्यया हिरण्मयौ सुवर्णरजतमयावित्यर्थः ॥

प्रवर्ग्येऽजापयसि महावीर आनीयमान आ सुत इत्येषा। सूत्रितं च। आ सुते सिंचत श्रियमित्याजे। आ० ४.७.। इति ॥

आ सुते सिंचत श्रियं रोदस्योरभिश्रियं। रसा दधीत वृषभं ॥१३॥

आ। सुते। सिंचत। श्रियं। रोदस्योः। अभिऽश्रियं। रसा। दधीत। वृषभं ॥१३॥

सुते दुग्धे गोपयसि श्रियं श्रयणमाजं पय आ सिंचत। सिंचत हे अध्वर्यवः। कीदृशमाजं। रोदस्योः॥ कर्मणि षष्ठ्येषा ॥ द्यावापृथिव्यावभिश्रियमभिश्रयंतं। अग्निसंयोगात्तावत्पर्यंतं प्रवृद्धमित्यर्थः। अथवा तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके। नि० १२.१.। इति निरुक्तत्वादश्विनोरभिश्रियमित्यर्थः। सेचनानंतरं रसा रस आजे पयसि वृषभं वर्षकमग्निं दधीत। स्थापयत। अजाया आग्नेयीत्वात् क्षीरस्याप्यग्निसंयोजनमुचितं। आग्नेयी वा एषा यदजेति ब्राह्मणं ॥

ते जानत स्वमोक्यं सं वत्सासो न मातृभिः। मिथो नसंत जामिभिः ॥१४॥

ते। जानत। स्वं। ओक्यं। सं। वत्सासः। न। मातृऽभिः। मिथः। नसंत। जामिऽभिः ॥१४॥

ते ता गावो जानत। ज्ञातवत्यः। अथवा सामान्याकारेण त इति पुंनिर्देशः। किं। स्वं स्वकीयमोक्यं निवासं महावीरं। तत्र दोग्धुमगमन्नित्यर्थः। तदेवाह। वत्सासो वत्सा मातृभिर्न जननीभिः सह यथा संगच्छंति तद्वज्जामिभिर्बंधुभिः सहिता गावो मिथः प्रत्येकं सं नसंत। संगच्छंते महावीरं ॥

उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि। इंद्रे अग्ना नमः स्वः ॥१५॥

उप। स्रक्वेषु। बप्सतः। कृण्वते। धरुणं। दिवि। इंद्रे। अग्ना। नमः। स्वरिति स्वः ॥१५॥

महावीरस्य स्रक्वेषु बप्सतो ज्वालया भक्षयतोऽग्नेरन्नं धरुणमिंद्रे अग्नेति वक्ष्यमाणत्वादिंद्राग्न्योर्धारकमाजं दिव्यंतरिक्ष उप कृण्वते। उपकुर्वते। यदाग्निर्महावीरं दहति तदा तस्योपर्युभयविधं क्षीरमासेचयंतीत्यर्थः। एवं महावीर आसिच्येंद्रेऽग्नावग्नौ च स्वः सर्वं गव्यमाजं च नमोऽन्नं। अथवा स्वरंतरिक्षे। योजयंतीति शेषः ॥ ॥१६॥

प्रवर्ग्ये घर्मदुहि दुग्धायामधुक्षदित्येषा। सूत्रितं च। दुग्धायामधुक्षत्पिप्युषीं। आ० ४.७.। इति ॥ ग्रावस्तोत्रेऽप्येषा। अधुक्षत्पिप्युषीमिषमा कलशेषु धावति। आ० ५.१२.। इति सूत्रितत्वात् ॥

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥१६॥

अधुक्षत्। पिप्युषीं। इषं। ऊर्जं। सप्तऽपदीं। अरिः। सूर्यस्य। सप्त। रश्मिऽभिः ॥१६॥

अरिररणशीलो वायुः सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः साधनैः पिप्युषीमाप्याययदिषमन्नमूर्जं रसं च सप्तपदीं सर्पणस्वभावपादां माध्यमिकां वाचं घर्मधुग्रूपेणावस्थितामधुक्षत्। दुग्धवान्। यद्यप्यध्वर्युः पात्रेण गां दुग्धे तथाप्येवं भावनया सांगं भवति। माध्यमिकाया वाचो मधुधुक्त्वं हिंकृण्वती गौरमीमेत्। ऋ॰ १.१६४.२७.२८.। इत्यादिषु प्रसिद्धं ॥

सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषजं ॥१७॥

सोमस्य। मित्रावरुणा। उत्ऽइता। सूरे। आ। ददे। तत्। आतुरस्य। भेषजं ॥१७॥

हे मित्रावरुणौ सूरे सूर्य उदितोदिते सोमस्य सोममा ददे। स्वीकरोति। तत्र हेतुमाह। तत्स्वीकाररूपं कर्मातुरस्यास्मदादेर्भेषजमौषधं। हितकरमित्यर्थः ॥

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यं। परि द्यां जिह्वयातनत् ॥१८॥

उतो इति। नु। अस्य। यत्। पदं। हर्यतस्य। निऽधान्यं। परि। द्यां। जिह्वया। अतनत् ॥१८॥

पवमाने सोम उतो अपि चास्य सोमदातुर्हर्यतस्य प्रदानं कामयमानस्य मम यत्पदं निधान्यं हविषां निधानार्हमुत्तरवेदिलक्षणं तत्र स्थित्वाग्निर्द्यां परि परितो जिह्वया ज्वालयातनत्। व्याप्नोत्॥ ॥१७॥

उदीराथामित्यष्टादशर्चं चतुर्थं सूक्तमात्रेयस्य गोपवनस्य सप्तवध्रेर्वार्षं गायत्रमाश्विनं। तथा चानुक्रमणिका। उदीराथां गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वाश्विनमिति॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। उदीराथामा मे हवमिति गायत्रं। आ॰ ४. १५.। इति सूत्रितत्वात्॥

उदीराथामृतायते युंजाथामश्विना रथं। अंति षद्भूतु वामवः ॥१॥

उत्। ईराथां। ऋतऽयते। युंजाथां। अश्विना। रथं। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥१॥

हे अश्विनाश्विनौ ऋतायते यज्ञमिच्छते मह्यं मदर्थमुदीराथां। उद्गच्छतं। तदर्थं हवमाह्वानं यज्ञं वा प्राप्तुं युंजाथां। योजयतमश्वै रथं। वां युवयोरवो रक्षणमंत्यस्मदंतिके सद्वर्तमानं भूतु। भवतु॥

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना। अंति षद्भूतु वामवः ॥२॥

निऽमिषः। चित्। जवीयसा। रथेन। आ। यातं। अश्विना। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥२॥

निमिषश्चिन्निमेषादपि जवीयसातिशयवेगेन रथेना यातं। आगच्छतमस्मद्यज्ञं हे अश्विना। शिष्टमुक्तं॥

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना। अंति षद्भूतु वामवः ॥३॥

उप। स्तृणीतं। अत्रये। हिमेन। घर्मं। अश्विना। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥३॥

अत्रये महर्षयेऽसुरैरग्नौ प्रक्षिप्ताय तस्य हितार्थं घर्ममग्निदाहकं हिमेनोदकेनोप स्तृणीतं। उपस्तीर्णवंतौ। हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां। ऋ॰ १. ११६. ८.। इति निगमः॥

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः। अंति षद्भूतु वामवः ॥४॥

कुह। स्थः। कुह। जग्मथुः। कुह। श्येनाऽइव। पेतथुः। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥४॥

हे अश्विनौ युवां कुह क्व स्थः। भवथः। इदानीं कुह क्व कुत्र जग्मथुः। गच्छथः स्वेच्छया। कुह क्व वा श्येनेव श्येनाविव शीघ्रपतनौ संतौ पेतथुः। पतथः। एवमचिंत्यस्वभावौ कृपया संनिहितौ भवतमिति शेषः। तादृशयोरवोऽंतिके भवतु ॥

यद्द्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवं। अंति षद्भूतु वामवः ॥५॥

यत्। अद्य। कर्हि। कर्हि। चित्। शुश्रुयातं। इमं। हवं। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥५॥

यद्यस्मान्न निर्धार्यतेऽतोऽद्यास्मिन्काले कर्हि कस्मिन्नपि देशे कर्हि कस्मिन्नपि काल इमं हवमस्मदीयमाह्वानं शुश्रूयातं। शृणुयातं ॥ ॥१८॥

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यं। अंति षद्भूतु वामवः ॥६॥

अश्विना। यामऽहूतमा। नेदिष्ठं। यामि। आप्यं। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥६॥

यामहूतमातिशयेन काले ह्वातव्यावश्विनाश्विनौ यामि। नेदिष्ठमंतिकतममाप्यं बांधवं च यामि तयोः ॥

अवंतमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना। अंति षद्भूतु वामवः ॥७॥

अवंतं। अत्रये। गृहं। कृणुतं। युवं। अश्विना। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥७॥

हे अश्विना युवं युवामत्रयेऽग्न्यागारे दह्यमानायावंतं रक्षंतं गृहं कृणुतं। कृतवंतौ। तादृशयोर्वामवो भवतु ॥ अवंतमिति व्यत्ययेन पुँल्लिंगता ॥

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये। अंति षद्भूतु वामवः ॥८॥

वरेथे इति। अग्निं। आऽतपः। वदते। वल्गु। अत्रये। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥८॥

हे अश्विनौ वल्गु मनोहरं वदते स्तुवतेऽत्रय आतप आतपादौष्ण्यादग्निं वरेथे। आवारयतं ॥

प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत। अंति षद्भूतु वामवः ॥९॥

प्र। सप्तऽवध्रिः। आऽशसा। धारां। अग्नेः। अशायत। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥९॥

सप्तवध्रिर्महर्षिर्हे अश्विनौ युवयोराशसाशंसनेन स्तुत्या मंजूषाया निर्गत्याग्नेर्धारां तस्यां मंजूषायां प्राशायत। आशाययत्। स्वनिरोधिकां तां दग्धवानित्यर्थः। सप्तवध्रेः पेटिकांतःप्रवेशोऽश्विनोरनुग्रहान्निर्गमश्च वि जिहीष्व वनस्पते। ऋ० ५. ७८. ५.। इत्यत्र स्पष्टमुक्तं ॥

इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवं। अंति षद्भूतु वामवः ॥१०॥

इह। आ। गतं। वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू। शृणुतं। मे। इमं। हवं। अंति। सत्।
भूतु। वां। अवः ॥१०॥

हे वृषण्वसू वर्षणधनावश्विनौ इहास्मिन्यज्ञ आ गतं। आगच्छतं। तदर्थं मे ममेमं हवं शृणुतं ॥ ॥१९॥

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते। अंति षद्भूतु वामवः ॥११॥

किं। इदं। वां। पुराणऽवत्। जरतोःऽइव। शस्यते। अंति। सत्। भूतु। वां। अवः ॥११॥

हे अश्विनौ वां युवयोरर्थमागमनाय पुराणवत् पुराणयोरतिवृद्धयोरिव । तदेवाह । जरतोरिव शस्यते। पुनःपुनरागच्छतमिति शस्यते । किमिदं । यथा लोके वृद्धो जीर्णो बहुवारमाहूतोऽपि नागच्छति तद्वद्युवामपीत्यर्थः । एवमनागमाद्ब्रवीति ॥

समानं वां सजात्यं समानो बंधुरश्विना । अंति षद्भूतु वामवः ॥१२॥
समानं । वां । सऽजात्यं । समानः । बंधुः । अश्विना । अंति । सत् । भूतु । वां । अवः ॥१२॥

हे अश्विनाश्विनौ वां युवयोः परस्परं सजात्यं समानजातित्वं समानमेकमेव । उभयोरप्यश्वरूपाया सूर्यपत्न्या उत्पत्तेः सजात्यं । तथा युवयोर्बंधुर्बंधकः स्तुवः समान एक एव । अथवर्षिरहं समान एक एव बंधुः ॥

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अंति षद्भूतु वामवः ॥१३॥
यः । वां । रजांसि । अश्विना । रथः । विऽयाति । रोदसी इति । अंति । सत् । भूतु ।
वां । अवः ॥१३॥

वां युवयोर्यो रथोऽस्ति स रथो रजांसि लोकान्रोदसी द्यावापृथिव्यौ च वियाति । विशेषेण गच्छति । अतस्तेन रथेन शीघ्रमागच्छतमिति शेषः ॥

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतं । अंति षद्भूतु वामवः ॥१४॥
आ । नः । गव्येभिः । अश्व्यैः । सहस्रैः । उप । गच्छतं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवः ॥१४॥

हे अश्विनौ नोऽस्मान् सहस्रैरपरिमितैर्गव्येभिर्गोसमूहैरश्व्यैरश्वसमूहैश्चोप गच्छतं ॥

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतं । अंति षद्भूतु वामवः ॥१५॥
मा । नः । गव्येभिः । अश्व्यैः । सहस्रेभिः । अति । ख्यतं । अंति । सत् । भूतु । वां । अवः ॥१५॥

हे अश्विनौ गव्येभिर्गोसमूहैरश्व्यैरश्वसमूहैः सहस्रेभिः सहस्रसंख्याकैर्मास्मानति ख्यतं । अतीति प्रतीत्यस्मिन्नर्थे । मा निवारयतमित्यर्थः ॥

अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अंति षद्भूतु वामवः ॥१६॥
अरुणऽप्सुः । उषाः । अभूत् । अकः । ज्योतिः । ऋतऽवरी । अंति । सत् । भूतु ।
वां । अवः ॥१६॥

हे अश्विनौ उषा अरुणप्सुः शुभ्रवर्णाभूत् । भवति । न केवलं स्वयं । ज्योतिस्तेजोऽकः करोत्यंति सर्वत ऋतावर्यृतवत्युषाः ॥

अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव । अंति षद्भूतु वामवः ॥१७॥
अश्विना । सु । विऽचाकशत् । वृक्षं । परशुमान्ऽइव । अंति । सत् । भूतु । वां । अवः ॥१७॥

सु विचाकशदत्यंतं दीप्यमानः सूर्योऽग्निर्वा वृक्षं परशुमानिव स यथा प्रकाशयति तद्वत्तमो निशारयतीति शेषः । दृष्टांतसामर्थ्यादेव लभ्यते । यस्मादेवं तस्मादश्विनाश्विनावाह्वय इति शेषः ॥

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा । अंति षद्भूतु वामवः ॥१८॥
पुरं । न । धृष्णो इति । आ । रुज । कृष्णया । बाधितः । विशा । अंति । सत् । भूतु । वां । अवः ॥१८॥

हे धृष्णो धर्षक सप्तवध्रे त्वं कृष्णयाकर्षया विशा प्रवेशयंत्या पेटिकया बाधितस्त्वं ततो निर्गत्य तामेवा रुज । पीडयाश्विनोरनुग्रहात् । एवं स्वयं स्वात्मानं प्रेष्यति । अथवा गोपवनः सप्तवध्रिमेवं ब्रवीति । वां युवयोरवो रक्षणं गमनं वा समीपे । तत्र त्रिषु वर्गेष्वंति षदित्युत्तरोऽर्धर्चोऽन्वितपदाध्याहारेण योज्यः ॥ ॥२०॥

विशोविशो व इति पंचदशर्चं पंचमं सूक्तं । अत्रेयमनुक्रमणिका । विशोविशो वः पंचोनाग्नेयं त्वनुष्टुम्मुखा-स्तृचाश्चत्वारोऽंत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभ आर्क्षस्य श्रुतर्वणो दानस्तुतिरिति । अनुवृत्तेर्गोपवन ऋषिः । आदितस्त्रिषु तृचेषु सर्वाः प्रथमा अनुष्टुभो द्वितीयातृतीये प्राग्वत्सप्रपरिभाषया गायत्र्यौ त्रयोदश्याद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः । अस्योत्तरस्य चाग्निर्देवता । अंत्यास्तिस्रः श्रुतर्वनाम्नो राज्ञो दानस्तुतिः ॥ व्योमविश्वदेवस्तुत्पंचशारदीयेष्विदं सूक्तमाज्यशस्त्रं । सूत्रितं च । विशोविशो वो अतिथिमित्याज्यं । आ० ९. ८. । इति ॥

विशोविंशो वो अतिथिं वाजयंतः पुरुप्रियं ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥
विशःऽविंशः । वः । अतिथिं । वाजऽयंतः । पुरुऽप्रियं ।
अग्निं । वः । दुर्यं । वचः । स्तुषे । शूषस्य । मन्मऽभिः ॥१॥

हे अन्य ऋत्विजो यजमानाश्च वो यूयं वाजयंतोऽन्नमिच्छंतो विशो विशः सर्वस्याः प्रजाया अतिथिं पूज्यं पुरुप्रियं बहुप्रियमग्निं स्तुत्या परिचरतेति शेषः । अहं च वो युष्मदर्थं दुर्यं गृहा हितं वचो नु स्तुषे शूषस्य सुखस्य लाभाय । कैः साधनैः । मन्मभिर्मननीयैः स्तोत्रैः ॥

यं जनासो हविष्मंतो मित्रं न सर्पिरासुतिं । प्रशंसंति प्रशस्तिभिः ॥२॥
यं । जनासः । हविष्मंतः । मित्रं । न । सर्पिःऽआसुतिं । प्रऽशंसंति । प्रशस्तिऽभिः ॥२॥

यमग्निं जनासो जना यजमाना हविष्मंतः संतो मित्रं न मित्रमिवादित्यमिव सखायमिव वा सर्पिरासुतिं सर्पिरासूयते हूयते यस्मिन् तादृशं प्रशंसंति स्तुवंति प्रशस्तिभिः स्तुतिभिः स्तुव इति शेषः ॥

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥
पन्यांसं । जातऽवेदसं । यः । देवऽताति । उत्ऽयता । हव्यानि । ऐरयत् । दिवि ॥३॥

पन्यांसमतिशयेन स्तोतारं साधु कृतमिति यजमानं स्तुवंतं जातवेदसं जातधनं जातविद्यं वा स्तुव इति शेषः । योऽग्निर्देवताति देवतातौ यज्ञ उद्यतोद्यतानि हव्यानि हवींषि दिव्यैरयत् प्रेरयति दिवि देवेभ्यः ॥

आगन्म वृत्रहंतमं ज्येष्ठमग्निमानवं । यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥४॥
आ । अगन्म । वृत्रहन्ऽतमं । ज्येष्ठं । अग्निं । आनवं । यस्य । श्रुतर्वा । बृहन् । आर्क्षः । अनीके । एधते ॥४॥

वृत्रहंतमं पापानामतिशयेन हंतारं ज्येष्ठं प्रशस्यमानवं मनुष्यसंबंधिनं तेषां हितकारिणमग्निमागन्म । आगता वयं ॥ पूजार्थं बहुवचनं ॥ यस्याग्नेरनीके ज्वालासंघे बृहन्महानार्क्ष ऋक्षपुत्रः श्रुतर्वा नाम राजैधते वर्धते । कर्म करोतीत्यर्थः । तमग्निमागमेति समन्वयः । एवं श्रुतर्वाणं भिक्षयागतो गोपवनोऽग्निं स्तौति ॥

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतं । घृताहवनमीड्यं ॥५॥

अमृतं । जातऽवेदसं । तिरः । तमांसि । दर्शतं । घृतऽआहवनं । ईड्यं ॥५॥

स एवागत्य स्तौति । अमृतममरणं जातवेदसं जाततेजआयुपलक्षणधनं तमांसि तिरो दर्शतं । दर्शयंत-मित्यर्थः । घृताहवनं । घृतमाह्वयते यत्र तं । ईड्यं स्तुत्यं । ईदृशमागमेति संबंधः ॥ ॥२१॥

सबाधो यं जना इमेऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः ॥६॥

सऽबाधः । यं । जनाः । इमे । अग्निं । हव्येभिः । ईळते । जुह्वानासः । यतऽस्रुचः ॥६॥

इमे सबाधो बाधसहिता अध्वर्य्वादयो यमग्निं हव्येभिर्हविर्भिरीळते स्तुवंति । कीदृशा जनाः । जुह्वानासो यागं कुर्वाणा यतस्रुचस्तदर्थं धृतस्रुग्दंडाः । तमागमेति समन्वयः ॥

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मंद्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥७॥

इयं । ते । नव्यसी । मतिः । अग्ने । अधायि । अस्मत् । आ ।
मंद्र । सुऽजात । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । अमूर । दस्म । अतिथे ॥७॥

हे अग्ने इयमिदानीं क्रियमाणा नव्यसी नवतरा स्तुतिस्ते तव स्वभूतास्मदस्मास्वधायि । धृताभूत् । वयं तव स्तुतिं कुर्म इत्यर्थः । हे मंद्र मोदमान सुजात शोभनजनन सुक्रतो शोभनकर्मन्नमूरामूढ दस्म दर्शनीयातिथेऽतिथिवत्पूज्येत्यग्नेर्विशेषणानि ॥

सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥८॥

सा । ते । अग्ने । शंऽतमा । चनिष्ठा । भवतु । प्रिया । तया । वर्धस्व । सुऽस्तुतः ॥८॥

हे अग्ने सास्माभिः क्रियमाणा स्तुतिः शंतमात्यंतं सुखकरा चनिष्ठातिशयेनान्नवती ते तव प्रिया भवतु । तया स्तुत्या सुष्टुतः सुष्ठु स्तुतः सन् वर्धस्व । प्रवृद्धो भव ॥

सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥९॥

सा । द्युम्नैः । द्युम्निनी । बृहत् । उपऽउप । श्रवसि । श्रवः । दधीत । वृत्रऽतूर्ये ॥९॥

सास्माभिः क्रियमाणा स्तुतिर्द्युम्नैर्द्योतमानैरन्नैरस्मभ्यं प्रदेयैर्द्युम्निन्यन्नवती श्रवसि पूर्वस्मिन्विद्यमानेऽन्ने पुनरपि बृहन्महच्छ्रवोऽन्नमुपोप दधीत । पुनरुपरिधारयतु । कुत्रेति उच्यते । वृत्रतूर्ये संग्रामे । शत्रोः संबंधीति यावत् ॥

अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिंद्रं न सत्पतिं । यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥१०॥

अश्वं । इत् । गां । रथऽप्रां । त्वेषं । इंद्रं । न । सत्ऽपतिं । यस्य । श्रवांसि । तूर्वथ ।
पन्यंऽपन्यं । च । कृष्टयः ॥१०॥

गां गंतारमश्वमित् । इच्छब्द इवार्थे । अश्वमिव । तं यथा स्तुवंते तथेत्यर्थः । रथप्रां रथानामस्मदीयानां पूरयितारं धनैः तथा त्वेषं दीप्तमग्निं सत्पतिं सतां पालकमिंद्रं नेंद्रमिवेमं कृष्टयो मनुष्याः परिचरंतीति शेषः । यस्याग्नेर्बलेन श्रवांस्यन्नानि शत्रुसंबंधीनि तूर्वथ तथा पन्यं पन्यं च यद्यत्स्तुत्यं धनमस्ति तदपि तूर्वथ हिंस्थ ॥ ॥२२॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अंगिरः। स पावक श्रुधी हवं ॥११॥
यं। त्वा। गोपवनः। गिरा। चनिष्ठत्। अग्ने। अंगिरः। सः। पावक। श्रुधि। हवं ॥११॥

हे अग्ने यं त्वा त्वां गोपवन ऋषिर्गिरा स्तुत्या चनिष्ठत् अतिशयेनान्नप्रदातारमकरोत् स तादृशाग्नेऽंगिरः सर्वत्र गंतरंगिरसां मध्य एक वा पावक शोधक हवं गोपवनस्य श्रुधि। शृणु ॥

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये। स बोधि वृत्रतूर्ये ॥१२॥
यं। त्वा। जनासः। ईळते। सऽबाधः। वाजऽसातये। सः। बोधि। वृत्रऽतूर्ये ॥१२॥

हे अग्ने यं त्वा त्वां जनासो जनाः स्तोतारो वा वाजसातयेऽन्नस्य लाभाय सबाधो निर्बंधरूपबाधोपेताः संत ईळते स्तुवंति स त्वं वृत्रतूर्ये वैरिनाशनाय पापक्षयाय वा बोधि। बुध्यस्व। अथवा वृत्रस्य तूर्ये संग्रामे बोधि ॥

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णां ॥१३॥
अहं। हुवानः। आर्क्षे। श्रुतर्वणि। मदऽच्युति।
शर्धांसिऽइव। स्तुकाऽविनां। मृक्षा। शीर्षा। चतुर्णां ॥१३॥

अहमृषिर्हुवानो हूयमानो यद्वादिदृचार्थे श्रुतर्वण्येतन्नाम्नि राजनि मदच्युति शत्रूणां मदस्य च्यावयितरि स्तुकाविनां। स्तुकाविन ऊर्णायवः। स्तुकः केशसंघातः। तद्वतां शर्धांसीवोच्छ्रितानि लोमानीव तानि यथा स्पृशंति तद्वद्वृक्षा वृक्षाणि। वृक्ष्यंत इति वृक्षाः केशाः। तद्वंति वृक्षाणि शीर्षा शीर्षाणि शिरांसि। केषां। चतुर्णां श्रुतर्वणा प्रदत्तानामश्वानां शिरांस्युन्मृजामीति शेषः। अथवा वृक्षा वृक्षेण। प्रक्षालनसाधनत्वाद्वृक्षो हस्तः। तेनोन्मृजामि ॥

मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यं ॥१४॥
मां। चत्वारः। आशवः। शविष्ठस्य। द्रवित्नवः।
सुऽरथासः। अभि। प्रयः। वक्षन्। वयः। न। तुग्र्यं ॥१४॥

मां शविष्ठस्यातिशयेनान्नवतः श्रुतर्वणो राज्ञः संबंधिनश्चत्वार आशवोऽश्वा द्रवित्नवो गमनशीलाः सुरथासः शोभनरथा अश्वाः प्रयोऽन्नं शत्रूणां प्रत्यभि वक्षन्। अभिवहंति। वयो न तुग्र्यं भुज्युं यथाश्विभ्यां प्रेरिताश्वतस्रो नावः स्वगृहं प्रापयन् तद्वदिति ॥

सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशं।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥१५॥
सत्यं। इत्। त्वा। महेऽनदि। परुष्णि। अव। देदिशं।
न। ईं। आपः। अश्वऽदातरः। शविष्ठात्। अस्ति। मर्त्यः ॥१५॥

हे महेनदि परुष्ण्येतन्नामिके त्वा त्वां सत्यमित् सत्यमेवाव देदिशं। आदिशामि। वदामि। नद्याकारेण

संबोध्यापः संबोधयति। हे आपः ईमस्माच्छविष्ठाद्बलवत्तमाच्छ्रुतर्वणोऽधिकः कश्चिदश्वदातरोऽश्वानां दातृतमो मर्त्यो नास्ति। परुष्ण्यास्तीरे राज्ञोऽश्वमेधप्रतिग्रहात्तां संबोध्य ब्रूते॥ ॥२३॥

युक्ष्वा हीति षोडशर्चं षष्ठं सूक्तमांगिरसस्य विरूपस्यार्षं गायत्रमाग्नेयं। तथा चानुक्रमणिका। युक्ष्वा हि षोळश विरूप इति॥ दशरात्रे तृतीयेऽहनीदं सूक्तमाज्यशस्त्रं। सूचितं च। तृतीये युक्ष्वा हीत्याज्यं। आ० ७. १०.। इति॥ प्रातरनुवाकेऽप्याग्नेये गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। सूचितं च। युक्ष्वा हि प्रेष्ठं वः। आ० ४. १३.। इति॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्यः सदः॥१॥
युक्ष्व। हि। देवऽहूतमान्। अश्वान्। अग्ने। रथीःऽइव। नि। होता। पूर्व्यः। सदः॥१॥

हे अग्ने देवह्वतमान् देवानामाह्वातृतमानश्वान्युक्ष्व। योजय रथे। रथीरिव यथा रथी स्वाश्वानिष्टदेशगमनाय योजयति तद्वत्। तथा कृत्वा होता त्वं पूर्व्यो मुख्यः सन्नि षदः। उपविश च॥

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः। श्रद्विश्वा वार्या कृधि॥२॥
उत। नः। देव। देवान्। अच्छ। वोचः। विदुःऽतरः। श्रत्। विश्वा। वार्या। कृधि॥२॥

हे देवाग्ने उतापि च नोऽस्मान् देवानच्छा वोचः। अभिब्रूयाः। सम्यगनुष्ठितवंत इति। तथा विदुष्टरो विद्वत्तमान्वोचः। तथा कृत्वा विश्वा सर्वाणि वार्या वरणीयानि धनानि देवसंबंधीनि श्रत् सत्यानि कृधि। कुर्वस्माकं। अथवास्मदीयानि सर्वाणि वरणीयानि हवींषि श्रत् सत्यानि कुरु। देवान् प्रापयेत्यर्थः॥

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत। ऋतावा यज्ञियो भुवः॥३॥
त्वं। ह। यत्। यविष्ठ्य। सहसः। सूनो इति। आऽहुत। ऋतऽवा। यज्ञियः। भुवः॥३॥

हे अग्ने यविष्ठ्य युवतम सहसः सूनो बलस्य पुत्राहुत सर्वतो हुताहुत वा त्वं यद्यदा ह खल्वृतावा सत्यवान् यज्ञियो यज्ञार्हश्च भुवः भवसि तदा वार्याणि श्रत्कुर्विति संबंधः॥

दर्शपूर्णमासयोराग्नेयस्यायमग्निरिति वैकल्पिकी याज्या। सूचितं च। अयमग्निः सहस्रिण इति वेदं विष्णुर्वि चक्रमे। आ० १. ६.। इति॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणां॥४॥
अयं। अग्निः। सहस्रिणः। वाजस्य। शतिनः। पतिः। मूर्धा। कविः। रयीणां॥४॥

अयमग्निः शतिनः सहस्रिणश्चोक्तसंख्योपेतस्य वाजस्यान्नस्य पतिः स्वामी मूर्धा शिरोवदुन्नतः श्रेष्ठः कविर्मेधावी रयीणां धनानामपि पतिरिति शेषः। तदुभयं प्रयच्छत्वित्यर्थः॥

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः। नेदीयो यज्ञमंगिरः॥५॥
तं। नेमिं। ऋभवः। यथा। आ। नमस्व। सहूतिऽभिः। नेदीयः। यज्ञं। अंगिरः॥५॥

हे अंगिरः त्वं सहूतिभिः समानाह्वानैरन्यैर्देवैः सह नेदीयोऽतिकतमं यज्ञमा नमस्व। आनमय। ऋभवो नेमिं रथमिव॥ ॥२४॥

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिं॥६॥
तस्मै। नूनं। अभिऽद्यवे। वाचा। विऽरूप। नित्यया। वृष्णे। चोदस्व। सुऽस्तुतिं॥६॥

हे विरूप नानारूपैतन्नामक महर्षे त्वं तस्मै प्रसिद्धायाभिवेऽभिगततृष्णये वृष्णे वर्षकायाग्नये नित्ययोत्पत्तिरहितया वाचा मंत्ररूपया सुष्टुतिं नूनमिदानीं चोदस्व । स्तुहीत्येवमृषिः स्वात्मानं ब्रवीति यजमानो वा होतारं विरूपं ॥

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥७॥

कं । ऊं इति । स्वित् । अस्य । सेनया । अग्नेः । अपाकऽचक्षसः । पणिं । गोषु । स्तरामहे ॥७॥

अस्याग्नेरपाकचक्षसोऽनल्पचक्षसोऽग्नेः सेनया ज्वालारूपया गोषु निमित्तेषु कमु ष्वित् कं खलु पणिं स्तरामहे । स्तरणं हिंसनं । इदानीं बलिनमभिभवेमेत्यर्थः ॥

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥८॥

मा । नः । देवानां । विशः । प्रस्नातीःऽइव । उस्राः । कृशं । न । हासुः । अघ्न्याः ॥८॥

देवानां सर्वेषां विशः प्रजाभूतान्परिचारकान्नोऽस्मान्मा हासीत् । अपिर्मा परित्यजतु । प्रस्नातीरुस्रा इव पयः क्षरंतीर्गाव इव । ता यथा न मुंचंति । उभयमपि न परित्यजत्वित्यर्थः । किमिव । कृशमल्पं स्ववत्समघ्न्या गावो यथा न हासुः न परित्यजंति तद्वत् ॥

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥९॥

मा । नः । समस्य । दुःऽध्यः । परिऽद्वेषसः । अंहतिः । ऊर्मिः । न । नावं । आ । वधीत् ॥९॥

समस्य सर्वस्य परिद्वेषसः परितो द्विषतो दूढ्यः पापबुद्धेरंहतिर्हननं मा वधीत् । मा हिंस्यात् । नावमूर्मिः समुद्रतरंग इव । स यथा तां पीडयति तद्वन्मा वधीदित्यर्थः । अत्र मा नः सर्वस्य दुर्धियः । नि° ५. २३. । इत्यादि निरुक्तं द्रष्टव्यं ॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणंति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१०॥

नमः । ते । अग्ने । ओजसे । गृणंति । देव । कृष्टयः । अमैः । अमित्रं । अर्दय ॥१०॥

हे अग्ने देव तुभ्यं नमो गृणंति । नमस्कारशब्दमुच्चारयंति । किमर्थं । ओजसे बलाय । के । कृष्टयो मनुष्या यजमानाः । अतोऽहमपि गृणामीत्यर्थः । तथामैर्बलैरमित्रं शत्रुमर्दय । नाशय ॥ ॥२५॥

याम्येणाग्निना वैतानिकस्य संसर्गेऽग्नये संवर्गायेष्टिः कार्या । तत्र कुवित्सु न इत्यनुवाक्या मा नो अस्मिन्निति याज्या । सूचितं च । कुवित्सु नो गविष्टये मा नो अस्मिन्महाधने । आ° ३. १३. । इति ॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिं । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥११॥

कुवित् । सु । नः । गोऽइष्टये । अग्ने । संऽवेषिषः । रयिं । उरुऽकृत् । उरु । नः । कृधि ॥११॥

हे अग्ने त्वं नोऽस्माकं गविष्टये गवामेषणाय कुविद्बहु रयिं धनं संवेषिषः । संप्रापय । उरुकृत्त्वं नोऽस्मानुरु कृधि । कुरु ॥

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥१२॥

मा । नः । अस्मिन् । महाऽधने । परा । वर्क् । भारऽभृत् । यथा । संऽवर्गं । सं । रयिं । जय ॥१२॥

नोऽस्मानस्मिन्महाधने संग्रामे मा परा वर्क् । मा परित्याक्षीः । भारभृद्यथा । भारवाही यथा भारमंते परित्यजति तद्वत् । संवर्गं शत्रुभ्यः सहाच्छिद्यमानं रयिं धनं सं जयास्मदर्थं ॥

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥१३॥

अन्यं । अस्मत् । भिये । इयं । अग्ने । सिसक्तु । दुच्छुना । वर्ध । नः । अमऽवत् । शवः ॥१३॥

हे अग्ने त्वदीयेयं दुच्छुना बाधकसंहतिरस्मदन्यमस्तोतारं भिये भयाय सिषक्तु । सेवतां । त्वं च नोऽस्माकममवद्बलोपेतं शवो वेगं वर्ध । वर्धय संग्रामे ॥

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥१४॥

यस्य । अजुषत् । नमस्विनः । शमीं । अदुःऽमखस्य । वा । तं । घ । इत् । अग्निः । वृधा । अवति ॥१४॥

यस्य नमस्विनो नमस्कारवतोऽदुर्मखस्य वादुष्टयागस्य वा शमीं कर्माजुषत् असेवत तं घेत्तमेव यजमानं संग्रामेऽग्निर्वृधावति । विशेषेण गच्छति । अतो नमोयुक्ता अदुर्मखाश्च भवेमेति ॥

परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव ॥१५॥

परस्याः । अधि । संऽवतः । अवरान् । अभि । आ । तर । यत्र । अहं । अस्मि । तान् । अव ॥१५॥

हे अग्ने परस्या अन्यायाः संवतः सेनाया अवरानन्यानस्मदीयानभ्यभिमुखमा सर्वतस्तर । तारय । वैरिसेना अस्मन्नैटैः पराभावयेत्यर्थः । यत्र येष्वस्मदीयपरिजनमध्येऽहमस्मि स्वामी तानव । रक्ष ॥

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥१६॥

विद्म । हि । ते । पुरा । वयं । अग्ने । पितुः । यथा । अवसः । अध । ते । सुम्नं । ईमहे ॥१६॥

हे अग्ने पितुः पालकस्य ते तवावसोऽवो रक्षणं पुरा यथा तथेदानीमपीति विद्म । अध तत्ते तव सुम्नं सुखमीमहे । याचामहे । अथवा पितुर्यथेति दृष्टांतः । पितुः पालनं पुत्रो यथा वेत्ति तथेत्यर्थः ॥ ॥२६॥

इमं नु मायिनमिति द्वादशर्चं सप्तमं सूक्तं । कुरुसुतिर्नाम काण्व ऋषिः । गायत्री छंदः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । इमं नु द्वादश कुरुसुतिः काण्व इति ॥ व्यूळ्हे दशरात्रे चतुर्थेऽहनि मरुत्वतीय आद्यस्तृचः । सूत्रितं च । इमं नु मायिनं हुव त्यमु वः सत्रासाहं । आ॰ ८. ८. । इति ॥

इमं नु मायिनं हुव इंद्रमीशानमोजसा । मरुत्वंतं न वृंजसे ॥१॥

इमं । नु । मायिनं । हुवे । इंद्रं । ईशानं । ओजसा । मरुत्वंतं । न । वृंजसे ॥१॥

इमं मायिनं प्रज्ञावंतमोजसा स्वबलेनेशानं सर्वस्य स्वामिनं मरुत्वंतं न । नेति संप्रत्यर्थे । मरुद्भिर्युक्तमिदानीमिंद्रं वृंजसे शत्रूणां छेदनाय हुवे । आह्वयामि ॥

अयमिंद्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥२॥

अयं । इंद्रः । मरुत्ऽसखा । वि । वृत्रस्य । अभिनत् । शिरः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥२॥

अयमिंद्रो मरुत्सखा मरुद्युक्तो वृत्रस्य व्यभिनत् व्यच्छिनच्छिरो वज्रेण शतपर्वणा शतसंधिना ॥

वावृधानो मरुत्सखेंद्रो वि वृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥३॥

ववृधानः। मरुत्ऽसखा। इंद्रः। वि। वृत्रं। ऐरयत्। सृजन्। समुद्रियाः। अपः ॥३॥

अयमिंद्रो वावृधानो वर्धमानो मरुत्सखा मरुत्सहायो वृत्रं मेघं व्यैरयत्। विदारितवान्। किं कुर्वन्। समुद्रियाः। समुद्रमंतरिक्षं। तत्संबंधिन्य अप अपस्सृजन् ॥

षष्ठेऽहनि मरुत्वतीयेऽयं ह येनेति मरुत्वन्निविद्धानीयः। सूचितं च। अयं ह येन वा इदमुप नो हरिभिः सुतं। आ० ८. ८.। इति ॥

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितं। इंद्रेण सोमपीतये ॥४॥

अयं। ह। येन। वै। इदं। स्वः। मरुत्वता। जितं। इंद्रेण। सोमऽपीतये ॥४॥

अयं ह खल्विंद्रो येन वै येन खलु मरुत्वता मरुद्भिर्युक्तेनेंद्रेणेदं स्वः स्वर्गाख्यं स्थानमिदं स्वः सर्वं कर्म वा यद्विदं सर्वं जगज्जितं। किमर्थं। सोमपीतये सोमपानाय ॥

मरुत्वंतमृजीषिणमोजस्वंतं विरप्शिनं। इंद्रं गीर्भिर्हवामहे ॥५॥

मरुत्वंतं। ऋजीषिणं। ओजस्वंतं। विऽरप्शिनं। इंद्रं। गीःऽभिः। हवामहे ॥५॥

मरुत्वंतं मरुद्भिस्तद्वंतमृजीषिणं। अभिषुतशेष ऋजीषः। स च तृतीयसवने पुनः सूयते। तद्वंतमोजस्वंतं। ओजो नामाष्टमी दशा। शरीरवृद्ध्युपेतमित्यर्थः। विरप्शिनं। महन्नामैतत्। महांतं एवंमहानुभावमिंद्रं गीर्भिः स्तुतिभिर्हवामहे। आह्वयामः ॥

इंद्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वंतं हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये ॥६॥

इंद्रं। प्रत्नेन। मन्मना। मरुत्वंतं। हवामहे। अस्य। सोमस्य। पीतये ॥६॥

मरुत्वंतमिंद्रं प्रत्नेन पुराणेन मन्मना मननीयेन स्तोत्रेण हवामहेऽस्य सोमस्य पीतये पानाय ॥ ॥२७॥

पंचमेऽहनि मरुत्वतीये मरुत्वाँ इंद्र मीढ्व इति तृचो निविद्धानीयः। सूचितं च। मरुत्वाँ इंद्र मीढ्वस्तमिंद्रं वाजयामसि। आ० ८. ८.। इति ॥

मरुत्वाँ इंद्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो। अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥७॥

मरुत्वान्। इंद्र। मीढ्वः। पिब। सोमं। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। अस्मिन्। यज्ञे। पुरुऽस्तुत ॥७॥

हे मीढ्वः फलस्य वृष्टेर्वा सेक्तः शतक्रतो बहुकर्मेंद्र त्वं मरुत्वान् सोमं पिबास्मिन्यज्ञे हे पुरुष्टुत बहुभिराहूत ॥

तुभ्येदिंद्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः। हृदा हूयंत उक्थिनः ॥८॥

तुभ्यं। इत्। इंद्र। मरुत्वते। सुताः। सोमासः। अद्रिऽवः। हृदा। हूयंते। उक्थिनः ॥८॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र मरुत्वते तुभ्येत्तुभ्यमेव सोमासः सुताः। अभिषुताः। ते चोक्थिनः शस्त्रवंतो हृदा मनसा भक्त्या हूयंते त्वदर्थं ॥

पिबेदिंद्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु। वज्रं शिशान ओजसा ॥९॥

पिब। इत्। इंद्र। मरुत्ऽसखा। सुतं। सोमं। दिविष्टिषु। वज्रं। शिशानः। ओजसा ॥९॥

हे इंद्र मरुत्सखा त्वं सुतमभिषुतं सोमं पिब । किमर्थं । दिविष्टिष्वस्माकमह्नामभिगमनेषु दिवः स्वर्गस्य वेषणेषु निमित्तेषु । पीत्वा चौजसा बलेन सोमपानजनितेन वज्रं शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् । शत्रूञ्जहीति भावः ॥

चतुर्विंशेऽहनि प्रातःसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्र उत्तिष्ठन्निति तृचः षळहस्तोत्रियः । सूत्रितं च । उत्तिष्ठन्नोजसा सह भिंधि विश्वा अप द्विषः । आ० ७. २. । इति ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिंद्र चमू सुतं ॥१०॥
उत्ऽतिष्ठन् । ओजसा । सह । पीत्वी । शिप्रे इति । अवेपयः । सोमं । इंद्र । चमू इति । सुतं ॥१०॥

हे इंद्र त्वं पीत्वी पीत्वौजसा बलेन सहोत्तिष्ठञ्छिप्रे हनू अवेपयः । अकंपयः । मदाविशादिति भावः । किं पीत्वा । चमू चम्वोरधिषवणफलकयोः सुतं सोमं ॥

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेतां । इंद्र यद्दस्युहाभवः ॥११॥
अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । क्रक्षमाणं । अकृपेतां । इंद्र । यत् । दस्युऽहा । अभवः ॥११॥

हे इंद्र क्रक्षमाणं शत्रून्विलिखंतं त्वा त्वामुभे रोदसी उभे अपि द्यावापृथिव्यावन्वकृपेतां । अनुकल्पयेतां । यद्यदा दस्युहाभवः भवसि तदा ॥

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशं । इंद्रात्परि तन्वं ममे ॥१२॥
वाचं । अष्टाऽपदीं । अहं । नवऽस्रक्तिं । ऋतऽस्पृशं । इंद्रात् । परि । तन्वं । ममे ॥१२॥

अष्टापदीं । अष्टाभिर्दिग्भिर्विदिग्भिः साष्टापदी । नवस्रक्तिमुपरि स्थितेनादित्येन नवस्रक्तिं । आसु दिक्षु व्याप्तामित्यर्थः । ऋतस्पृशं यज्ञस्पृशं वाचं स्तुतिमहं परिपूर्णादिंद्रात्तन्वं तनूं न्यूनां सतीं परि ममे । अन्यूनेयत्तां करोमीत्यर्थः । कार्त्स्न्येन स्वरूपं स्तुत्या विषयीकर्तुमशक्यत्वादिति भावः ॥ ॥२८॥

जज्ञान इत्येकादशर्चमष्टमं सूक्तं काण्वस्य कुरुसुतेरार्षं । आद्या नव गायत्र्यो दशमी बृहत्येकादशी सतोबृहती । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । जज्ञान एकादश प्रगाथांतमिति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये जज्ञानो नु शतक्रतुरित्येषा । तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं । जज्ञानो नु शतक्रतुरित्येका । ऐ० आ० ५. २. ३. । इति ॥

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरं । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥१॥
जज्ञानः । नु । शतऽक्रतुः । वि । पृच्छत् । इति । मातरं । के । उग्राः । के । ह । शृण्विरे ॥१॥

अयमिंद्रो जज्ञानो नु जायमान एव शतक्रतुर्बहुकर्मेतीत्थं मातरं स्वजननीं विपृच्छति । किमिति । के उग्रा उद्गूर्णबला लोके । के ह शृण्विरे । श्रूयंते गुणैः । के विश्रुता इत्यर्थः ॥

आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवं । ते पुत्र संतु निष्टुरः ॥२॥
आत् । ईं । शवसी । अब्रवीत् । और्णऽवाभं । अहीशुवं । ते । पुत्र । संतु । निःऽतुरः ॥२॥

इंद्रेण पृष्टा शवसी मातानंतरमेवैतमिंद्रमब्रवीत् । किमिति उच्यते । और्णवाभमहीशुवमेतन्नामानावसुरौ तिष्ठतः । तावुक्तावन्ये च तादृशा हे पुत्र तव निष्टुरो निस्तारणीयाः संत्विति ॥

समिन्द्रान्वृत्रहाखिदत्खे अराँ इव खेदया। प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥३॥
सं। इत्। तान्। वृत्रऽहा। अखिदत्। खे। अरान्ऽइव। खेदया। प्रऽवृद्धः। दस्युऽहा। अभवत् ॥३॥

ताञ्जनन्योक्तान् वृत्रहेंद्रः समित्सहैवाखिदत्। खिदनं नामाकर्षणं। खे रथचक्रस्य नाभावरांश्चक्रांगभूताञ्छंकून् खेदया रज्ज्वेव। तया तान्यथा संखिदंति तद्वत्। तथा हत्वा दस्युहा शत्रुघातींद्रः प्रवृद्धोऽभवत् ॥

एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतं। इंद्रः सोमस्य काणुका ॥४॥
एकया। प्रतिऽधा। अपिबत्। साकं। सरांसि। त्रिंशतं। इंद्रः। सोमस्य। काणुका ॥४॥

अयमिंद्र एकयैकेन प्रतिधा प्रतिधानेन साकमेकधैव त्रिंशतमपि। उक्थपात्राणीत्यर्थः। कीदृशानि। सरांसि सोमस्य पूर्णानि सोमरसेन पूर्णानि काणुका कांतानि क्रांतानि वा सोमेन हतानि वा सोमपूर्णान्यपिबत्। पीतवान् माध्यंदिनसवने। याज्ञिकप्रसिद्धैवं। नैरुक्तप्रसिद्ध्या तु कालाभिमानींद्रः। त्रिंशदपरपक्षस्याहोरात्रास्त्रिंशत्पूर्वपक्षस्य च संति। तानिकरूपमनुभवतीति। एतत्सर्वमेकेन प्रतिधानेनापिबत्। नि० ५.११.। इत्यादि निरुक्ते तद्व्याख्याने च स्पष्टमुक्तं। तदत्र द्रष्टव्यं ॥

अभि गंधर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा। इंद्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥५॥
अभि। गंधर्वं। अतृणत्। अबुध्नेषु। रजःऽसु। आ। इंद्रः। ब्रह्मऽभ्यः। इत्। वृधे ॥५॥

अयमिंद्रो गंधर्वं। गामुदकं धारयतीति गंधर्वो मेघः। तमभ्यातृणत्। सर्वतो हिंसितवान्। कुत्र। अबुध्नेषु पदनिधानयोग्यस्थानरहितेषु रजःसु लोकेषु। अंतरिक्षप्रदेशेष्वित्यर्थः। किमर्थं। ब्रह्मभ्य इद्ब्राह्मणेभ्य एव वृधे वर्धनाय ॥ ॥२९॥

निराविध्यद्गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनं। इंद्रो बुंदं स्वाततं ॥६॥
निः। अविध्यत्। गिरिऽभ्यः। आ। धारयत्। पक्वं। ओदनं। इंद्रः। बुंदं। सुऽआततं ॥६॥

अयमिंद्रो गिरिभ्यो मेघेभ्यः सकाशादुदकं निर्गमयितुं निराविध्यत्। संप्राहरत्तानेव मेघान्। किं कुर्वन्। पक्वं परिपक्वमोदनं कुर्वन्मनुष्याणामर्थाय। केन साधनेनेति तदुच्यते। बुंदमिषुं स्वाततं सुष्ठु सर्वतो विस्तृतमादायेति शेषः ॥

शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत्। यमिंद्र चकृषे युजं ॥७॥
शतऽब्रध्नः। इषुः। तव। सहस्रऽपर्णः। एकः। इत्। यं। इंद्र। चकृषे। युजं ॥७॥

हे इंद्र तवेषुः शतब्रध्नः शताग्रः सहस्रपर्णः सहस्रसंख्याकैः पत्रैः संवृतः शीघ्रगमनाय। अपरिमितगमनो वा। स चैक इदेक एव। यं चेषुं युजं सहायं चकृषे करोषि युद्धाय ॥

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे। सद्यो जात ऋभुष्ठिर ॥८॥
तेन। स्तोतृऽभ्यः। आ। भर। नृऽभ्यः। नारिऽभ्यः। अत्तवे। सद्यः। जातः। ऋभुऽस्थिर ॥८॥

तेनेषुणा स्तोतृभ्योऽस्मभ्यं नृभ्यो मनुष्येभ्यः। पुत्रेभ्य इत्यर्थः। तथा नारिभ्यः स्त्रीभ्यश्चात्तवेऽदनाय पर्याप्तं

धनमा भर । आहर । सद्यस्तदानीमेव जातोऽस्माभिर्दत्तेन सोमेन प्रवृद्धः सन् हे ऋभुष्ठिर । उरुः प्रभूतः स्थिरश्च संग्रामे स तथोक्तः । हे तादृशेंद्र त्वमा भरेति समन्वयः ॥

एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा । हृदा वीड्वधारयः ॥९॥

एता । च्यौत्नानि । ते । कृता । वर्षिष्ठानि । परीणसा । हृदा । वीळु । अधारयः ॥९॥

हे इंद्र ते त्वयैतैतानि पुरतः सर्वैर्दृश्यमानानि वर्षिष्ठान्यतिशयेन प्रवृद्धानि परीणसा परितो नतानि अत एव च्यौत्नानीति भावः । भूमेः कीलवद्धारणाय कृता कृतानि । पर्वतास्त्वया कृता इत्यर्थः । या यानि हृदा बुद्ध्या वीळु स्थिराण्यधारयः । बुद्ध्या कर्तव्यानीति यान्यधारयः तानीमानीति ॥

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिंद्र एमुषं ॥१०॥

विश्वा । इत् । ता । विष्णुः । आ । अभरत् । उरुऽक्रमः । त्वाऽईषितः ।
शतं । महिषान् । क्षीरऽपाकं । ओदनं । वराहं । इंद्रः । एमुषं ॥१०॥

अस्या ऋचो निरुक्तैतिहासिकमतभेदेन द्विधा योजना । नैरुक्तपक्षे तावत् । हे इंद्र ता तानि यानि त्वया स्रष्टव्यान्युदकानि संति तानि विष्णुर्व्यापनशील आदित्य आभरत् । आभरति । लोकाय प्रयच्छतीत्यर्थः । कीदृशो विष्णुः । उरुक्रमो बहुगतिः । किं स्वविरोधिनेति आह । त्वेषितस्त्वया प्रेरितः । न केवलमुदकान्येव अपि च शतं महिषाञ्छतसंख्याकान्पशून् । महिषशब्दो गवादेरप्युपलक्षकः । अथवा शतशब्दोऽपरिमितवचने महिष इति महन्नाम । असंख्यातान्महतो यज्ञान्यजमानेभ्य आभरत् । ददातीत्यर्थः । किंच क्षीरपाकं क्षीरपक्वमोदनं पायसं । एतच्चरुपुरोडाशादेरुपलक्षकं । तद्यजमानेभ्य आभरत् । अथवा सर्वार्थं वृष्टिप्रदानद्वारौदनं प्राहरत् । किंचेंद्रो वराहं जलपूर्णं मेघं हंतीति शेषः । कीदृशं तं । एमुषं ॥ आ इत्यस्य स्थाने छांदस एकारः ॥ आमुषमुदकस्य मोषकमित्यर्थः । निरुक्तपक्ष एवं ॥ ऐतिहासिकपक्षे चरकब्राह्मण इतिहास आम्नायते । विष्णुर्यज्ञः । स देवेभ्य आत्मानमंतरधात् । तमन्यदेवता नाविदन्निंद्रस्त्ववेत् । स इंद्रमब्रवीत्को भवानिति । तमिंद्रः प्रत्यब्रवीदहं दुर्गाणामसुराणां च हंता भवांस्तु क इति । सोऽब्रवीदहं दुर्गादाहर्ता त्वं तु यदि दुर्गाणामसुराणां हंता ततोऽयं वराहो वाममुष एकविंशत्याः पुरां पारेऽश्ममयीनां वसति तस्मिन्नसुराणां वसु वाममस्ति तमिमं जहीति । तस्येंद्रस्ताः पुरो भित्त्वा हृदयमविध्यत् । अधि तत्र यदासीत्तद्विष्णुराहरदिति सोऽयमितिहासोऽस्येदु मातुः सवनेषु । ऋ॰ १. ६१. ७. । विश्वेत्ता विष्णुरित्याभ्यां प्रतिपादितः । तयोर्मध्येऽस्येदु मातुरित्यत्र विष्णुना हे इंद्र त्वं दुर्गाणां हंतेत्यात्मानं कथयसि तर्हि वाममुषं वराहमसुरं जहीत्युक्तार्थो विध्यद्वराहमिति पादेन प्रतिपादितः । इंद्रेण च विष्णो त्वं दुर्गादाहर्तेति ब्रूषे मया पुराणि जितान्यसुरश्च घातितस्तस्य वामं वस्वानयेत्युक्तो विष्णुमूर्तिस्तस्य वराहासुरस्य धनं मुमोष । सोऽर्थो मुषायद्विष्णुः पचतमिति पादेन सूचितः । स किं पुनर्मुषितवानिति तदत्रोच्यते विश्वेत्तेति । हे इंद्र त्वेषितस्त्वया प्रेरितो विष्णुर्यज्ञरूपी त्वेषितस्त्वं दुर्गादाहर्ता किल तर्हि त्वं तस्य धनान्याहरेति त्वया प्रेरितः सन्नुरुक्रमो भूत्वा विश्वेत्ता यानि त्वयाहर्तव्यानीत्युक्तानि यानि च तत्र स्थितानि सर्वाण्याभरत् । आभरतु । कानि तानीति । शतं महिषानपरिमितान्प्रशस्तान्पदार्थान् तेषां वाहनरूपान् महिषान्वा क्षीरपाकमोदनं च पक्वमात्रमेवौदनं चाभरत् । विध्यद्वराहमित्यत्रोक्तोऽर्थश्च चरमपादेनोच्यते । इंद्रस्तु वराहं वराहारं स्वीकृतासुरसर्वस्वं वराहरूपिणं वैमुषमेमुषनामानमथवैमुषं धनानामामोषकं वराहमसुरं हृदयेऽविध्यदिति शेषः ॥

तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुंदो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥११॥

तुविऽक्षं । ते । सुऽकृतं । सुऽमयं । धनुः । साधुः । बुंदः । हिरण्ययः ।
उभा । ते । बाहू इति । रण्या । सुऽसंस्कृता । ऋदुऽपे । चित् । ऋदुऽवृधा ॥११॥

एषा निरुक्ते एकमपि पदं विहाय यास्केन व्याख्याता । तदेव लिख्यते । तुविक्षं बहुविक्षेपं महाविक्षेपं वा ते सुकृतं सुमयं सुसुखं धनुः साधयिता ते बुंदो हिरण्मयः । उभौ ते बाहू रण्यौ रमणीयौ सांग्राम्यौ वर्द्धपे अर्दनपातिनौ गमनपातिनौ मर्मण्यर्दनवेधिनौ गमनवेधिनौ वा । नि० ६. ३३. । इति ॥ ॥ ३० ॥

पुरोळाशं न इति दशर्चं नवमं सूक्तं काण्वस्य कुरुसुतेरार्षं । आद्या नव गायत्र्यो दशमी बृहती । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । पुरोळाशं दश बृहत्यंतमिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ महाव्रते निष्केवल्ये गायत्रतृचाशीतावाद्यास्तिस्र ऋचः । तथा च सूचितं । पुरोळाशं नो अंधस इति तिस्रः । ऐ० आ० ५. २. ३. । इति ॥

पुरोळाशं नो अंधस इंद्र सहस्रमा भर । शता च शूर गोनां ॥१॥
पुरोळाशं । नः । अंधसः । इंद्र । सहस्रं । आ । भर । शता । च । शूर । गोनां ॥१॥

हे शूरेंद्र पुरोळाशं पुरो दीयमानमेतत्संज्ञकमंधसोऽन्नं स्वीकृत्य गोनां गवां सहस्रं शता शतानि च नोऽस्मभ्यमा भर । आहर । अथवा नोऽस्मभ्यं पुरतो दीयमानमंधसोऽंधो व्यंजनं सहस्रं सहस्रसंख्याकं गोसहस्रं चाहरेति योज्यं ॥

आ नो भर व्यंजनं गामश्वमभ्यंजनं । सचा मना हिरण्यया ॥२॥
आ । नः । भर । विऽअंजनं । गां । अश्वं । अभिऽअंजनं । सचा । मना । हिरण्यया ॥२॥

हे इंद्र त्वं नोऽस्मभ्यं व्यंजनं गामश्वमभ्यंजनं तैलं चा भर । मना मननीयानि हिरण्यया हिरण्मयान्युपकरणानि सचा सहाभरेति ॥

उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर । त्वं हि शृण्विषे वसो ॥३॥
उत । नः । कर्णऽशोभना । पुरूणि । धृष्णो इति । आ । भर । त्वं । हि । शृण्विषे । वसो इति ॥३॥

उतापि च नोऽस्मभ्यं कर्णशोभना कर्णाभरणानि पुरूणि बहून्या भर । हे धृष्णो धर्षकेंद्र वसो वासयितरिंद्र त्वं हि खलु शृण्विषे । श्रूयसे । किमिति । उदारोऽयमिंद्र इति ॥

नकीं वृधीक इंद्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥४॥
नकीं । वृधीकः । इंद्र । ते । न । सुऽसाः । न । सुऽदाः । उत । न । अन्यः । त्वत् । शूर । वाघतः ॥४॥

हे इंद्र ते त्वत्तोऽन्यः कश्चिद्वृधीको वर्धयिता नकीं नैव । तथा सुषाः सुष्ठु संभक्ता संग्रामादौ त्वत्तोऽन्यो न । उतापि च सुदाः सुदाता न । तथा हे शूर त्वत्त्वत्तोऽन्यो वाघतः । ऋत्विग्नामैतत् । ऋत्विजो यजमानस्य नेता नान्योऽस्ति त्वामृते ॥

नकीमिंद्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति पश्यति ॥५॥
नकीं । इंद्रः । निऽकर्तवे । न । शक्रः । परिऽशक्तवे । विश्वं । शृणोति । पश्यति ॥५॥

अयमिंद्रो निकर्तवे निकर्तुं नकीं नैव शक्यः। तथा शक्रः शक्तोऽयं परिशस्तवे परिभावाय न शक्यत इति। स तु विश्वं शृणोति पश्यति च ॥ ॥३१॥

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते। पुरा निदश्चिकीषते ॥६॥

सः। मन्युं। मर्त्यानां। अदब्धः। नि। चिकीषते। पुरा। निदः। चिकीषते ॥६॥

स इंद्रो मन्युं क्रोधं। केषां। मर्त्यानां। अदब्धः केनाप्यहिंसितः सन्नि चिकीषते। निकरोति। किं मन्युं प्राप्यैव नेत्याह। निदो निंदायाः पुरा पूर्वमेव चिकीषते। यदा तं निंदितुमिच्छति कश्चित्ततः पूर्वमेव तं निकरोतीत्यर्थः ॥

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः। वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥७॥

क्रत्वः। इत्। पूर्णं। उदरं। तुरस्य। अस्ति। विधतः। वृत्रऽघ्नः। सोमऽपाव्नः ॥७॥

तुरस्य त्वरमाणस्य वृत्रघ्नो वृत्रं हतवतः सोमपाव्नः सोमपातुरुदरं क्रत्व इत् कर्मणैव पूर्णमस्ति। भवति। कस्य कर्मणेति उच्यते। विधतः परिचरतो यजमानस्य। यतः परिचरणाभावे तस्य कुक्षिपूर्त्यभावोऽतस्तत्पूर्तये परिचरतेति शेषः ॥

त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा। सुदात्वपरिह्वृता ॥८॥

त्वे इति। वसूनि। संऽगता। विश्वा। च। सोम। सौभगा। सुऽदातु। अपरिऽह्वृता ॥८॥

हे इंद्र त्वे त्वयि वसूनि धनान्यस्मदिष्टानि संगता संगतानि। तथा हे सोम सोमवन्निंद्र त्वयि विश्वा सर्वाणि सौभगा सौभाग्यानि संगतानि। तथा सुदातु सुदानान्यपरिह्वृताकुटिलानि। अतस्तानि कुर्वीति भावः। यद्वा। इंद्रः सोमं पीत्वा सोम इत्यभिहितः सोमश्रुतेः ॥

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः। त्वामश्वयुरेषते ॥९॥

त्वां। इत्। यवऽयुः। मम। कामः। गव्युः। हिरण्यऽयुः। त्वां। अश्वऽयुः। आ। ईषते ॥९॥

त्वामित्त्वामेवेषते। किं। मम कामः। स कीदृशः। यवयुर्यवेच्छुः सन्नेषते। तथा गव्युः सन्नेषते। तथा हिरण्ययुश्च सन्नेषते। तथाश्वयुश्च सन्नेषते। तं काममाभिच्छं कुर्वीति भावः ॥

तवेदिंद्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे।

दिनस्य वा मघवन्त्संभृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥१०॥

तव। इत्। इंद्र। अहं। आऽशसा। हस्ते। दात्रं। चन। आ। ददे।

दिनस्य। वा। मघऽवन्। संऽभृतस्य। वा। पूर्धि। यवस्य। काशिना ॥१०॥

हे इंद्र तवेत्तवैवाशसाशंसनेन त्वमस्मदीयं क्षेत्रं यवसमृद्धं करोषीत्याशंसनेन हस्ते दात्रं चन लवनसाधनं दात्रमप्या ददे। स्वीकरोमि। किमनेन प्रयासेन। दिनस्य वा पूर्वमेव छिन्नस्य वा यवस्य संभृतस्य वा पूर्वमेव छित्त्वा निष्कृतस्य राशीकृतस्य वा यवस्य काशिना मुष्टिना पूर्धि। पूरय। आशंसनं देहि च ॥ ॥३२॥

अयं क्रतुरिति नवर्चं दशमं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। अयं क्रतुर्नव क्रतुर्भार्गवः सौम्यमंत्यानुष्टुबिति। भार्गवः क्रतुर्ऋषिः। नवम्यनुष्टुप्। अष्टौ गायत्र्यः। सोमो देवता ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः । ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥१॥
अयं । कृत्नुः । अगृभीतः । विश्वऽजित् । उत्ऽभित् । इत् । सोमः । ऋषिः । विप्रः ।
काव्येन ॥१॥

अयं सोमः कृत्नुः कर्ता सर्वस्यागृभीतोऽन्यैरगृहीतो विश्वजित्सर्वस्य जेतोद्भित्फलस्योद्भेदकः । अथवा विश्वजिदुद्भिदौ सोमयागौ । तयोर्निष्पादकत्वात्तद्रूपः । ऋषिर्ज्ञानवान्विप्रो मेधावी विप्रवत्पूज्यो विशेषेण पूरको वा । एवंमहानुभावः सोमः काव्येन स्तोत्रेण स्तुत्यो भवतीति शेषः ॥

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरं । प्रेमंधः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥२॥
अभि । ऊर्णोति । यत् । नग्नं । भिषक्ति । विश्वं । यत् । तुरं । प्र । ईं । अंधः । ख्यत् ।
निः । श्रोणः । भूत् ॥२॥

अयं सोमो यन्नग्नमस्ति तदभ्यूर्णोति । आच्छादयति । यन्नग्नमिव विफलं वर्तते तदाच्छादयति फलेन । अथवा वस्त्रं जनयन्नाच्छादयति । तथा यत्तुरमातुरं रुग्णं विश्वं तद्भिषक्ति । भिषज्यति । यज्ञद्वारा स्वर्गसाधनेनौषधरूपेण च शरीरसिद्धिसाधनत्वा । अंधः संनद्धोऽपि प्र ख्यत् । पश्यति । श्रोणोऽपि पंगुरपि निर्भूत् । निर्भवति । निर्गच्छति ॥

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यंतासि वरूथं ॥३॥
त्वं । सोम । तनूकृत्ऽभ्यः । द्वेषःऽभ्यः । अन्यऽकृतेभ्यः । उरु । यंता । असि । वरूथं ॥३॥

हे सोम त्वं तनूकृद्भ्यः कृशीकुर्वद्भ्यः । अथवांगानां विच्छेदकेभ्योऽन्यकृतेभ्यो द्वेषोभ्यः । शत्रुकृतेभ्योऽप्रियेभ्यः । कृत्येभ्य इत्यर्थः । वरूथं वरकं रक्षणमुरु यंतासि । भवसि स्तोतृणां । अन्यकृतानि हि रक्षांसीति ब्राह्मणं ॥

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् । यावीरघस्य चिद्द्वेषः ॥४॥
त्वं । चित्ती । तव । दक्षैः । दिवः । आ । पृथिव्याः । ऋजीषिन् । यावीः । अघस्य ।
चित् । द्वेषः ॥४॥

हे ऋजीषिन् तृतीयसवनगतेनर्जीषेण तद्वन् सोम त्वं तव चित्ती चित्त्या प्रज्ञया दक्षैर्बलैश्च दिव आ । आ इति चार्थे । पृथिव्या आ पृथिव्याश्च सकाशादघस्य चिदस्माकमाहंतुरपि द्वेषः शत्रोः कृत्यां यावीः । पृथक्कुरु ॥

अर्थिनो यंति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिं । ववृज्युस्तृष्यतः कामं ॥५॥
अर्थिनः । यंति । च । इत् । अर्थं । गच्छान् । इत् । ददुषः । रातिं । ववृज्युः । तृष्यतः । कामं ॥५॥

अर्थिनो धनानि कामयमाना यंति चेत् । यंति चार्थं प्रति । गत्वा च ददुषो दातू रातिं दानं गच्छानित् । गच्छंति च । गतेषु मध्ये यं हे सोम त्वमनुगृह्णासि तस्य तृष्यतो भिक्षमाणस्य कामं ववृज्युः । पुनः कामानावर्जयंति । तावत्पर्यंतं पूरयंतीत्यर्थः ॥ ॥३३॥

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णं ॥६॥
विदत् । यत् । पूर्व्यं । नष्टं । उत् । ईं । ऋतऽयुं । ईरयत् । प्र । ईं । आयुः । तारीत् । अतीर्णं ॥६॥

यद्यदा पूर्व्यं पुराणं नष्टं स्वकीयं धनं विदत् लभते नष्टधन ईमेनमृतायुं नष्टधनलाभार्थं यज्ञकाममुदीरयत्। प्रेरयति। धनं साधयतीत्यर्थः ॥

सुशेवो॑ नो मृळ॒याकु॒रदृ॑प्तक्रतुरवा॒तः। भवा॑ नः सोम॒ शं हृ॒दे ॥७॥

सु॒ऽशेवः॑। नः॒। मृ॒ळ॒याकुः॑। अदृ॑प्तऽक्रतुः। अ॒वा॒तः। भव॑। नः॒। सो॒म॒। शं। हृ॒दे ॥७॥

हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्माकं हृदे हृदये वर्तमानः सुशेवः ‒ ‒। अपरो नः पूरणः ॥

मा नः॑ सोम॒ सं वी॑विजो॒ मा वि बी॑भिषथा राजन्। मा नो॒ हार्दि॑ त्वि॒षा व॑धीः ॥८॥

मा। नः॒। सो॒म॒। सं। वी॒वि॒जः॒। मा। वि। बी॒भि॒ष॒थाः॒। रा॒ज॒न्। मा। नः॒। हार्दि॑। त्वि॒षा। व॒धीः॒ ॥८॥

हे सोम पीतस्त्वं नोऽस्मान्मा सं वीविजः। चलितांगान्मा कार्षीः। हे राजन् सोम अस्मान्मा वि बीभिषथाः। भीतान्मा कुरु। नोऽस्माकं हार्दि हृदयं त्विषा दीप्त्या मा वधीः ॥

अव॒ यत्स्वे स॒धस्थे॑ दे॒वानां॑ दुर्म॒तीरीक्षे॑। राज॒न्नप॒ द्विषः॑ सेध॒ मीढ्वो॒ अप॒ स्रिधः॑ सेध ॥९॥

अव॑। यत्। स्वे। स॒धऽस्थे॑। दे॒वानां॑। दुः॒ऽम॒तीः। ईक्षे॑। राज॑न्। अप॑। द्विषः॑। से॒ध॒। मीढ्वः॑। अप॑। स्रिधः॑। से॒ध॒ ॥९॥

स्वे सधस्थे स्वकीये सहस्थाने गृहे देवानां दुर्मतीर्दुर्मतयो न प्रविशंत्विति। यद्यदावेक्षे अहं त्वं वेक्षसे तदा हे राजन् द्विषोऽस्मद्द्वेष्टॄनप सेध। हे मीढ्वः सोमरसस्य सेक्तः स्रिधो हिंसकानप सेध। भिंधीत्यर्थः ॥ ॥३४॥

न ह्यन्यमिति दशर्चमेकादशं सूक्तं। अत्रेयमनुक्रमणिका। न ह्यन्यं दशैकद्यूर्नौधसो गायत्रेंऽत्या दैवी त्रिष्टुबिति। एकद्यूर्नामा नोधसः पुत्र ऋषिः। अंत्या त्रिष्टुप् सा च देवदेवत्या शिष्टा गायत्र्य ऐंद्र्यः ॥ द्वितीये पर्याये मैत्रावरुणशस्त्र आदितोऽष्टर्चः। सूत्रितं च। न ह्यन्यं बळाकरमित्यष्टौ। आ॰ ६. ४.। इति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये गायत्रतृचाशीतावाद्या विनियुक्ता। तथा च पंचमारण्यके शौनकः। न ह्यन्यं बळाकरमित्येतां प्रत्यवदधाति। ऐ॰ आ॰ ५. २. ३.। इति ॥

न॒ह्य१॒॑न्यं ब॒ळाक॑रं म॒र्डि॒तारं॑ शतक्रतो। त्वं न॑ इंद्र मृळय ॥१॥

न॒हि। अ॒न्यं। ब॒ळा। अक॑रं। म॒र्डि॒तारं॑। श॒त॒क्र॒तो॒ इति॑ शतऽक्रतो। त्वं। नः॒। इं॒द्र॒। मृ॒ळ॒य॒ ॥१॥

हे शतक्रतो त्वत्तोऽन्यं मर्डितारं सुखयितारं बळा बट् ‒ तन्नाकरं। न करोमि। तस्माद्धे इंद्र त्वं नोऽस्मान्मृळय ॥

यो नः॒ शश्व॑त्पु॒राऽवि॒थामृ॑ध्रो॒ वाज॑सातये। स त्वं न॑ इंद्र मृळय ॥२॥

यः। नः॒। शश्व॑त्। पु॒रा। आवि॑थ। अमृ॑ध्रः। वाज॑ऽसातये। सः। त्वं। नः॒। इं॒द्र॒। मृ॒ळ॒य॒ ॥२॥

(योऽमृध्रोऽहिंसको नोऽस्मान्वाजसातये पुरा पूर्वमाविथ रक्षितवान् हे इंद्र स त्वं नोऽस्मान्शश्वत्सदा मृळय। सुखय ॥)

किमंग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुवित्स्विंद्र णः शकः ॥३॥

किं । अंग । रध्रऽचोदनः । सुन्वानस्य । अविता । इत् । असि । कुवित् । सु । इंद्र । नः । शकः ॥३॥

हे इंद्र त्वं रध्रचोदनः । रध्रं राधकं चोदयतीति रध्रचोदनः । तादृशस्त्वं सुन्वानस्यावितेदसि । रक्षक एव भवसि । अतो नोऽस्माकं कुविद्बहु सु सुष्ठु शकः । अशकः । शक्तो भव । बहु धनं कुर्वित्यर्थः । अस्मान्वा बहु कुर्विति ॥

इंद्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्संतमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ॥४॥

इंद्र । प्र । नः । रथं । अव । पश्चात् । चित् । संतं । अद्रिऽवः । पुरस्तात् । एनं । मे । कृधि ॥४॥

हे इंद्र नो रथं प्राव । प्ररक्ष । कीदृशं रथं । पश्चाच्चित्संतं । चिदप्यर्थे । अस्मत्समानरथानां पश्चाद्भूतमप्येनं मे रथं हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र पुरस्ताद्वर्तमानं कृधि । कुरु ॥

हंतो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु श्रवः ॥५॥

हंतो इति । नु । किं । आससे । प्रथमं । नः । रथं । कृधि । उपऽमं । वाजऽयु । श्रवः ॥५॥

हंतेत्येतदादि मुख्यशब्दामंत्रितेन समानं । हे हंतेंद्र न्विदानीं किं त्वं तूष्णीमाससे । तत्र किं करोमीति चेत् उच्यते । नो रथं प्रथमं सर्वेषां मुख्यं कृधि । कुरु । वाजयुरस्माकमन्नमिच्छच्छ्रवोऽन्नं हविर्लक्षणमुपमं । अंतिकनामैतत् । तवांतिकभूतं वर्तत इति शेषः । यस्मादेवं तस्माद्रथमस्मदीयं प्रथमं कृधीति ॥ ॥३५॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥६॥

अव । नः । वाजऽयुं । रथं । सुऽकरं । ते । किं । इत् । परि । अस्मान् । सु । जिग्युषः । कृधि ॥६॥

हे इंद्र नो वाजयुमन्नेच्छुं रथमव । रक्ष संग्रामे । ते तव किमित् किमपि सर्वकर्तव्यजातं परि परितः सुकरं सुखेन कर्तव्यं । तव कर्तुमशक्यं न किंचिदस्ति । यस्मादेवं तस्मात्सु जिग्युषः सुष्ठु जेतॄन् कुरु संग्रामे ॥

इंद्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतं । इयं धीर्ऋत्वियावती ॥७॥

इंद्र । दृह्यस्व । पूः । असि । भद्रा । ते । एति । निःऽकृतं । इयं । धीः । ऋत्वियऽवती ॥७॥

हे इंद्र त्वं दृह्यस्व । दृढो भव संग्रामे । त्वं पूरसि । पूरयसि । यथा पुरमविचलितं तद्वत्त्वमसि । अथवा । अस्मदीये यज्ञे दृढो भव । त्वं पुनरन्ययज्ञजिगमिषुर्मा भूः । त्वं पूः पूरकः कामानामसि । किमत्र विद्यत इति चेत् उच्यते । निष्कृतं निष्कर्तारं ते त्वां भद्रा कल्याणीयं धीः स्तुतिः क्रिया वर्त्वियावती । ऋतुशब्दः कालोपलक्षकः । स्वकालोपेता सत्येति । गच्छति । यद्वा । ते निष्कृतं स्थानमेति ॥

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनं । अपावृक्ता अरत्नयः ॥८॥

मा । सीं । अवद्ये । आ । भाक् । उर्वी । काष्ठा । हितं । धनं । अपऽआवृक्ताः । अरत्नयः ॥८॥

मास्मान् सीं सर्वतोऽवद्ये निंदा भाक् । माभजतु । प्राप्नोतु न कुतश्चित् । पापरहितान्कुर्वित्यर्थः । किंचोर्वी काष्ठा बह्वंतराल आज्यंतः । आज्यंतोऽपि काष्ठोच्यते क्रांत्वा स्थिता भवति । नि० २.१५ । इति यास्कः । तत्र हितं निहितं शत्रुसंबंधि धनमस्माकं भवत्वित्यर्थः । अरत्नयोऽरममाणाः शत्रवोऽपावृक्ताः संत्विति शेषः ॥

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि। आदित्पतिर्न ओहसे ॥९॥

तुरीयं। नाम। यज्ञियं। यदा। करः। तत्। उश्मसि। आत्। इत्। पतिः। नः। ओहसे ॥९॥

हे इंद्र त्वं यज्ञियं यज्ञसंबंधि तुरीयं चतुर्थं नाम यदा करः करोषि तदुश्मसि। कामयामहे। आदिदनंतरमेव नामकामानंतरमेव पतिः पालकस्त्वं नोऽस्मानोहसे। वहसि। प्रापयसि। नक्षत्रनाम गुह्यं नाम प्रकाशं नामेति त्रीणि नामानि सोमयाजीति तुरीयं नाम तच्च यज्ञियं ॥

अवीवृधद्वो अमृता अमंदीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१०॥

अवीवृधत्। वः। अमृताः। अमंदीत्। एकऽद्यूः। देवाः। उत। याः। च। देवीः।
तस्मै। ऊं इति। राधः। कृणुत। प्रऽशस्तं। प्रातः। मक्षु। धियाऽवसुः। जगम्यात् ॥१०॥

इयं वैश्वदेवी। हे देवा हे अमृता अमरणा वो युष्मानयमवीवृधत् वर्धयति स्तुत्यामंदीत् तर्पयति सोमेनैकद्यूर्नामर्षिरहं। उतापि च हे देवीर्देव्यो देवपत्न्यः याश्च यूयं स्थ युष्मानप्यवीवृधदमंदीच्च। तस्मै राधो धनं प्रशस्तं प्रवृद्धं कृणुत। कुरुत। उ इति पूरण एवकारार्थो वा। प्रातः प्रातरेव मक्षु क्षिप्रं धियावसुः कर्मधन इंद्रो जगम्यात्। आगच्छतु। इंद्रस्य देवस्वामित्वादाधिक्यद्योतनाय पुनरभिधानं ॥ ॥३६॥ ॥८॥

नवमेऽनुवाके त्रयोदश सूक्तानि। तत्रा तू न इंद्रेति नवर्चं प्रथमं सूक्तं कण्वपुत्रस्य कुसीदिन आर्षं गायत्रमैंद्रं। तथा चानुक्रम्यते। आ तू नो नव कुसीदी काण्व इति॥ महाव्रते निष्केवल्ये गायत्रतृचाशीतावेतदादिके द्वे सूक्ते। तथैव पंचमारण्यके सूत्रितं च शौनकेन। आ तू न इंद्र क्षुमंतमिति सूक्ते सूददोहाः। ऐ० आ० ५. २. ३.। इति ॥ द्वितीये पर्याये मैत्रावरुणे शस्त्र आद्यस्तृचः। सूत्रितं च। आ तू न इंद्र क्षुमंतमा प्र द्रव परावतः। आ० ६. ४.। इति ॥

आ तू न इंद्र क्षुमंतं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥

आ। तु। नः। इंद्र। क्षुऽमंतं। चित्रं। ग्राभं। सं। गृभाय। महाऽहस्ती। दक्षिणेन ॥१॥

हे इंद्र महाहस्ती महाहस्तवांस्त्वं तु तदानीमेवास्मभ्यं दातुं नोऽस्मदर्थं क्षुमंतं शब्दवंतं। स्तुत्यमित्यर्थः। चित्रं चायनीयं ग्राभं ग्राहकं ग्रहणार्हं वा धनं दक्षिणेन हस्तेना सं गृभाय। आभिमुख्येन संगृहाण ॥

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघं। तुविमात्रमवोभिः ॥२॥

विद्म। हि। त्वा। तुविऽकूर्मिं। तुविऽदेष्णं। तुविऽमघं। तुविऽमात्रं। अवःऽभिः ॥२॥

हे इंद्र त्वा त्वां विद्म हि। जानीमः खलु। कीदृशमिति। तुविकूर्मिं बहुकर्माणं तुविदेष्णं बहुप्रदेयं तुविमघं बहुधनं तुतिमात्रं बहुप्रमाणमवोभिर्युक्तं ॥

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्संतं। भीमं न गां वारयंते ॥३॥

नहि। त्वा। शूर। देवाः। न। मर्तासः। दित्संतं। भीमं। न। गां। वारयंते ॥३॥

हे शूरेंद्र त्वा त्वां दित्संतं दातुमिच्छंतं देवा नहि वारयंते। न निवारयंति। तथा मर्तासो मर्त्या अपि न वारयंते। भीमं न गां भयजनकं वृषभं यवसे प्रवृत्तमिव। तं यथा वारयितुं न शक्नुवंति तद्वत् ॥

प्रथमे पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र एतो न्विंद्रमिति तृचः। तथा च सूत्रितं। एतो न्विंद्रं स्तवामेशानं मा नो अस्मिन्मघवन्। आ० ६. ४.। इति ॥

एतो न्विंद्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजं। न राधसा मर्धिषन्नः ॥४॥
एतो इति। नु। इंद्रं। स्तवाम। ईशानं। वस्वः। स्वऽराजं। न। राधसा। मर्धिषत्। नः ॥४॥

हे अस्मदीया जनाः एतो। आगच्छतैव नु क्षिप्रं। किं कर्तुं। स्तवामेंद्रं। कीदृशं तं। वस्वो वसुनो धनस्येशानं स्वामिनं स्वराजं स्वयमेव राजमानं स्वर्गे राजमानं वा। नोऽस्मानिंद्रेणानुगृहीतान्राधसा धनेनान्यो धनी न मर्धिषत्। न बाधतां। आढ्यानामस्मत्समानानामप्याढ्यत्वाय स्तवामेत्यर्थः ॥

प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानं। अभि राधसा जुगुरत् ॥५॥
प्र। स्तोषत्। उप। गासिषत्। श्रवत्। साम। गीयमानं। अभि। राधसा। जुगुरत् ॥५॥

पूर्वमंत्रे स्तवामेत्युक्तं। तदेव स्तोत्रमिंद्रः प्र स्तोषत्। प्रस्तुत्वा च गासिषत्। उपगानं च करोतु। तदर्थं गीयमानं साम स्तोत्रं श्रवत्। शृणोतु। राधसा धनेन च युक्तोऽस्मानभि जुगुरत्। अभिगृणातु ॥ ॥३७॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश। इंद्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥६॥
आ। नः। भर। दक्षिणेन। अभि। सव्येन। प्र। मृश। इंद्र। मा। नः। वसोः। निः। भाक् ॥६॥

हे इंद्र नोऽस्मभ्यमा भर। आहृत्य दक्षिणेन सव्येन च हस्तेनोभाभ्यां हस्ताभ्यामभि प्र मृश। प्रयच्छेत्यर्थः। नोऽस्मान्वसोर्धनान्मा निर्भाक्। मा निर्भाक्षीः ॥

द्वितीये पर्यायेऽच्छावाकशस्त्र उप क्रमस्वेति तृचः। सूचितं च। उप क्रमस्वा भर धृषता तदस्मै नव्यं। आ॰ ६. ४.। इति ॥

उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानां। अदाशूष्टरस्य वेदः ॥७॥
उप। क्रमस्व। आ। भर। धृषता। धृष्णो इति। जनानां। अदाशूःऽतरस्य। वेदः ॥७॥

हे इंद्र त्वमुप क्रमस्व। धनं प्रत्युपगच्छ। प्रवृत्तो भव वा दातुं। हे धृष्णो धर्षक शत्रूणां धृषता धृष्टेन चेतसा युक्तः सन्ना भर। आहर च। कस्य धनमाहरेति उच्यते। जनानां मध्येऽदाशूष्टरस्यात्यंतमदातृतमस्य वेदो धनं ॥

इंद्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः। अस्माभिः सु तं सनुहि ॥८॥
इंद्र। यः। ऊं इति। नु। ते। अस्ति। वाजः। विप्रेभिः। सनित्वः। अस्माभिः। सु। तं। सनुहि ॥८॥

हे इंद्र यो वाजोऽन्नं विप्रेभिर्मेधाविभिः सनित्वः संभजनीयस्ते तवास्ति तं वाजमस्माभिर्याचितः सन्नस्मभ्यं वा सु सुष्ठु सनुहि। देहि ॥

सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चंद्राः। वशैश्च मक्षू जरंते ॥९॥
सद्यःऽजुवः। ते। वाजाः। अस्मभ्यं। विश्वऽचंद्राः। वशैः। च। मक्षु। जरंते ॥९॥

हे इंद्र ते तव वाजा अस्मभ्यं सद्योजुवः शीघ्रं गंतारो भवंतु। कीदृशास्ते। विश्वचंद्राः सर्वहिरण्योपेता बहूनामाह्लादका वा। अस्मदीयाश्च जना वर्धैः कामैरनेकैर्युक्ता मक्षु शीघ्रं जरंते। स्तुवंति ॥ ॥३८॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके पंचमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

आ प्र द्रवेति नवर्चं द्वितीयं सूक्तं। तथा चानुक्रम्यते। आ प्र द्रवेति। ऋषिश्चान्यस्मादिति परिभाषया काण्वः कुसीदीऋषिः। प्राग्वत्सप्रीयपरिभाषया गायत्री छंदः। अनादेशपरिभाषयेंद्रो देवता ॥ महाव्रते निष्केवल्ये सूक्तविनियोग उक्तः ॥ द्वितीये रात्रिपर्याये मैत्रावरुणशस्त्र आ प्र द्रवेति तृचोऽनुरूपः। सूचितं च। आ प्र द्रव परावतो नह्यन्यं बळाकरमित्यष्टौ। आ० ६. ४.। इति ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन्। मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥१॥

आ। प्र। द्रव। पराऽवतः। अर्वाऽवतः। च। वृत्रऽहन्। मध्वः। प्रति। प्रऽभर्मणि ॥१॥

हे वृत्रहन्नपामावरकस्य वृत्रासुरस्य हंतर्हे इंद्र प्रभर्मणि। प्रकृष्टानि भर्माणि भरणानि पशुग्रहादिसंपादनानि यस्मिन् स प्रभर्मा यज्ञः। यद्वा। प्रकृष्टाः कर्मणि कुशला भर्माणो देवानां हविष्प्रदानेन पोषका ऋत्विजो यस्मिन्निति स तथोक्तः। एतादृशे यज्ञे मध्वो मदकरान्सोमान्प्रति परावतो विप्रकृष्टाद्दूरस्थाद्देशादप्यर्वावतश्च समीपस्थाद्देशादप्याभिमुख्येन प्र द्रव। त्वं त्वरयागच्छ ॥ मध्व इति वा छंदसीति पूर्वसवर्णदीर्घाभावः ॥

तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः। पिबा दधृग्यथोचिषे ॥२॥

तीव्राः। सोमासः। आ। गहि। सुतासः। मादयिष्णवः। पिब। दधृक्। यथा। ओचिषे ॥२॥

हे इंद्र तीव्रास्तीव्रमदाः। क्षिप्रं मदकारिण इत्यर्थः। मादयिष्णवो मादनशीला मादनकारिणो वेमे सोमासः सोमाः सुतासस्त्वदर्थमभिषुताः। तस्मादा गहि। अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छ। आगत्य च तान् पिब। सोमपाने कारणमाह। त्वं यथा दधृग्धृष्टस्तत्प्रीतौ प्रगल्भः संस्तानूचिषे समवैषि सेवसे। ततस्तान्यथाकामं पिबेत्यर्थः ॥ दधृगिति ञिधृषा प्रागल्भ्य इत्यस्मादृत्विग्दधृगित्यादिना क्विन्प्रत्ययांतो निपात्यते। ऊचिषे। उच समवाये। छांदसे लिटि रूपं ॥

इषा मंदस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे। भुवत्त इंद्र शं हृदे ॥३॥

इषा। मंदस्व। आत्। ऊं इति। ते। अरं। वराय। मन्यवे। भुवत्। ते। इंद्र। शं। हृदे ॥३॥

हे इंद्र इषा सोमलक्षणेनान्नेन मंदस्व। मोदस्व। हृष्टो भव। उ इत्यवधारणे। आदनंतरमेव ते तव वराय शत्रुनिवारकाय मन्यवे क्रोधाय स सोमोऽरमलं पर्याप्तो भवतु। क्रोधशमने समर्थो भवतु। यदा सोमं पिबति तदा मन्युं त्यजतीत्यर्थः। किंच ते तव हृदे हृदये स सोमः शं शंकरः सुखकरो भुवत्। भवतु ॥

तृतीये पर्याय आ त्वशत्रवित्यशुरूपतृचः । सूचितं च । आ त्वेता नि षीदता त्वशत्रवा गहि । आ० ६.४. । इति ॥

आ त्वंशत्रवा गंहि न्यु१क्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ॥४॥
आ । तु । अशत्रो इति । आ । गहि । नि । उक्थानि । च । हूयसे । उपऽमे । रोचने । दिवः ॥४॥

हे अशत्रो सपत्नरहित । अस्य बहुविधबलत्वादृणाभिमुखं गंतारः शत्रवो न संतीत्यर्थः । तादृशेंद्र तु क्षिप्रमा गहि । आयाहि । अस्मदर्थं प्रत्यागच्छ । यतो दिवः स्वतेजसा दीप्यमानाद्युलोकात् । तत्रस्थैर्देवैरित्यर्थः । रोचनेऽग्निभिर्दीप्यमाने लोके चोपमे समीपे । स्तोतारः स्तोत्रशस्त्रात्मकं शब्दं कुर्वंत्यत्रेत्युपमो यज्ञः । तस्मिन्नस्मदीये यज्ञे चोक्थानि त्रिवृत्पंचदशादिलक्षणानि स्तोत्राणि प्रति नि ह्वयसे त्वं स्तोतव्यतया नितरामाह्वयसे । यस्मादेवं तस्मादागच्छेति समन्वयः ॥

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कं । प्र सोमं इंद्र हूयते ॥५॥
तुभ्यं । अयं । अद्रिऽभिः । सुतः । गोभिः । श्रीतः । मदाय । कं । प्र । सोमः । इंद्र । हूयते ॥५॥

हे इंद्र अद्रिभिरभिषवसाधनैर्ग्रावभिरयं सोमस्तुभ्यं त्वदर्थं सुतोऽभिषुतः । ततो दशापवित्रेण पूत्वा गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिः श्रीतः सोऽस्माभिः परावत एव संस्कृतः सोमस्तव मदाय मदार्थं कं सुखेन प्र हूयते । अग्नौ स्वाहा क्रियते । तस्मादागत्य सोमं पिब ॥　॥१॥

इंद्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥६॥
इंद्र । श्रुधि । सु । मे । हवं । अस्मे इति । सुतस्य । गोऽमतः । वि । पीतिं । तृप्तिं । अश्नुहि ॥६॥

हे इंद्र मे मदीयं हवं त्वद्विषयमाह्वानं सु सुष्ठु श्रुधि । शृणु । तथास्मे अस्माभिः सुतस्याभिषुतस्य गोमतो गव्यक्षीरवतः । क्षीरेण मिश्रितस्येत्यर्थः । तादृशस्य सोमस्य पीतिं पानं व्यश्नुहि । विविधं प्राप्नुहि । तत्पानेन विविधां तृप्तिं च गच्छ ॥ अशू व्याप्तौ । व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥

तृतीये पर्याय एवाच्छावाकशस्त्रे य इंद्र चमसेष्विति तृचः । सूचितं च । य इंद्र चमसेष्वा सोमः प्र वः सतां । आ० ६.४. । इति ॥

य इंद्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥७॥
यः । इंद्र । चमसेषु । आ । सोमः । चमूषु । ते । सुतः । पिब । इत् । अस्य । त्वं । ईशिषे ॥७॥

हे इंद्र ते त्वदर्थं सुतोऽभिषुतो यः सोमश्चमसेष्वेतन्नामकेषु पात्रेषु तथा चमूषु । चमंति यजंत्यत्रेति चम्वो ग्रहाः । तेषु चा सर्वतोऽस्ति अस्य तमेतं सोमं पिबेत् । इदवधारणे । पिबैव । कथमस्य सोमपानयोग्यता तत्राह । हे इंद्र त्वमीशिषे । तस्य त्वमेवेश्वरो भवसि खलु । यत एवं ततः पिबेति समन्वयः ॥ ईश ऐश्वर्ये । लटीशः से । पा० ७.२.७७. । इतीडागमः ॥

यो अप्सु चंद्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥
यः । अप्ऽसु । चंद्रमाःऽइव । सोमः । चमूषु । ददृशे । पिब । इत् । अस्य । त्वं । ईशिषे ॥८॥

हे इंद्र यो गृहीतः सोमश्चमूषु ग्रहेषु ददृशे अंतर्दृश्यते । तत्र दृष्टांतः । चंद्रमा इव यथा चंद्रमा अप्स्वंत-

रिक्षे निर्मलतया दृश्यते तद्वत्। यद्वा। अप्सूदकेषु चंद्रमाः प्रतिबिंबतया नानाविधो दृश्यते तथाष्टग्रहेष्वनेकरूपः सन् दृश्यते। तमेतं सोमं पिबेव। यतस्त्वमेवेशिषे खलु॥

यं ते॑ श्ये॒नः प॒दाभ॑रत्ति॒रो रजां॒स्यस्पृ॑तं। पिबेद॑स्य॒ त्वमी॑शिषे ॥९॥

यं। ते॒। श्ये॒नः। प॒दा। आ। अ॒भ॑रत्। ति॒रः। रजां॑सि। अस्पृ॑तं। पिब॑। इत्। अ॒स्य॒। त्वं। ई॒शि॒षे॒ ॥९॥

हे इंद्र श्येनः शंसनीयः पक्षी। पक्षिरूपधारिणी गायत्रीत्यर्थः। स पक्षी रजांस्यंतरिक्षादिलोकस्थितान् सोमपालान् गंधर्वांस्तिरस्तिरःकुर्वन्नस्पृतं शत्रुभिरस्पृष्टं संतं यं सोमं ते त्वदर्थं पदा पद्भ्यामाभरत्। पदेति सवनद्वयाभिप्रायं। सवनद्वय आहृतं सोमं त्वं पिब। गायत्री पक्षिरूपं धारयित्वा पद्भ्यां सोममाहरदित्यत्रार्थे यजुर्ब्राह्मणं। पद्भ्यां द्वे सवने समगृह्णान्मुखेनैकं तस्माद्द्वे सवने शुक्रवती प्रातःसवनं च माध्यंदिनं च। तै॰ सं॰ ६. १. ६. ४.। इति। तं पिबेव। त्वमेव तस्येश्वरो भवसि॥ ॥२॥

देवानामिति नवर्चं तृतीयं सूक्तं काण्वस्य कुसीदिन आर्षं गायत्रं वैश्वदेवं। तथा चानुक्रम्यते। देवानां वैश्वदेवमिति॥ दशरात्रेऽष्टमेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं सूक्तं वैश्वदेवनिविद्धानं। सूत्रितं च। देवानामिद्व इति वैश्वदेवं। आ॰ ८. १०.। इति॥

दे॒वाना॒मिदवो॑ म॒हत्तदा वृ॑णीमहे व॒यं। वृष्णा॑म॒स्मभ्य॑मू॒तये॑ ॥१॥

दे॒वानां॑। इत्। अवः॑। म॒हत्। तत्। आ। वृ॒णी॒म॒हे॒। व॒यं। वृष्णां॑। अ॒स्मभ्यं॑। ऊ॒तये॑ ॥१॥

हे देवाः देवानां स्वतेजसा सर्वतो दीप्यमानानां। इदेवार्थे। युष्माकमेव महद्व्याप्तं मंहनीयं वावः पालनं यद्विद्यते तद्वृष्णां कामानां वर्षितॄणां युष्माकं स्वभूतं तद्रक्षणं यजमाना वयमा वृणीमहे। समंतात्संभजामहे। किमर्थं। अस्मभ्यमूतये। पूर्वमस्मभ्यमस्मदर्थमिति साधारण्येनोक्त्वा तद्विशिनष्टि। ऊतय इति। अस्माकं पालनायेति॥

ते नः॑ संतु यु॒जः सदा॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा। वृ॒धास॑श्च॒ प्रचे॑तसः ॥२॥

ते। नः॒। सं॒तु॒। यु॒जः॑। सदा॑। वरु॑णः। मि॒त्रः। अ॒र्य॒ऽमा। वृ॒धासः॑। च॒। प्रऽचे॑तसः ॥२॥

ते देवा वरुणः शत्रूणां निवारको मित्रः सर्वेषां मित्रभूतोऽर्यमा सततं गच्छन् एतन्नामकास्ते त्रयो देवाः सदा सर्वदा सर्वेष्वहःसु नोऽस्माकं युजः सहायाः संतु। भवंतु। अग्निहोत्रादिकर्मणींद्रादिदेवाः सहागमनादियज्ञपरिसमापनांतेषु साहाय्यं कुर्वंत्वित्यर्थः। ततः प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः। यद्वा। चेतः स्तोत्रं। शोभनस्तुतयः। ते देवा वृधासो वर्धकाश्चास्माकं धनादिदानेन वर्धयितारश्च संतु॥

अति॑ नो वि॒ष्पिता॑ पु॒रु नौ॒भिर॒पो न प॑र्षथ। यू॒यमृ॒तस्य॑ रथ्यः ॥३॥

अति॑। नः॒। वि॒ष्पिता॑। पु॒रु। नौ॒भिः। अ॒पः। न। प॒र्ष॒थ॒। यू॒यं। ऋ॒तस्य॑। र॒थ्यः॒ ॥३॥

ऋतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा हे रथ्यो नेतारो देवाः। यद्वा। ऋतस्येति संबंधि --- त्वात्कर्तास्थिप्यते। यज्ञस्य साधका हे रथ्यो रथवंतो देवाः विष्पिता विष्पितानि विप्राप्तानि विततानि पुरु॥ सुपो लुक्॥ पुरूणि बहूनि शत्रुबलानि कर्माणि नोऽस्मानति पर्षथ। पारं समाप्तिं रक्षणैर्गमयत। तत्र दृष्टांतः। नौभिरपो न। यथा नाविकोऽप उदकानि नौभिर्जनांस्तीरं प्रति प्रापयति तद्वत्॥

वा॒मं नो॑ अस्त्वर्यमन्वा॒मं व॑रुण॒ शंस्यं॑। वा॒मं ह्या॑वृ॒णीम॑हे ॥४॥

वा॒मं। नः॒। अ॒स्तु॒। अ॒र्य॒म॒न्। वा॒मं। व॒रु॒ण॒। शंस्यं॑। वा॒मं। हि। आ॒ऽवृ॒णीम॑हे ॥४॥

हे अर्यमन् देव वामं वननीयं संभजनीयं धनं नोऽस्माकमस्तु । भवतु । हे वरुण शंस्यं सर्वैः शंसनीयं स्तुत्यं वामं धनमस्माकमस्तु । कुतः । हिशब्दो हेतौ । यस्मात्कारणादयं वामं धनं युष्मानावृणीमहे । याचामह इत्यर्थः । तस्मान्नोऽस्त्वित्याशास्ते ॥

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः । नेमादित्या अघस्य यत् ॥५॥

वामस्य । हि । प्रऽचेतसः । ईशानासः । रिशादसः । न । ईं । आदित्याः । अघस्य । यत् ॥५॥

हे प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः शोभनस्तुतयो वा हे रिशादसो रिशतां हिंसतां शत्रूणामसितारः क्षेप्तारो देवाः यूयं वामस्य वननीयस्य धनस्येशानास ईशानाः । हिरवधारणे । ईशाना एव स्वामिन एव भवथ । तस्माद्युष्मान्याचाम इत्यर्थः ॥ ईशानाः । ईश ऐश्वर्ये । अनुदात्तेत् । तास्यनुदात्तेदिति स्वरेणाद्युदात्तता भवति । न संबुद्धिः ॥ ततो हे आदित्या अदितेः पुत्रा देवाः ईमेनं याचमानं मां तद्धनं प्राप्नोतु यद्धनमघस्य पापस्य संबंधि विद्यते ॥ ॥३॥

वयमिद्वः सुदानवः क्षियंतो यांतो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ॥६॥

वयं । इत् । वः । सुऽदानवः । क्षियंतः । यांतः । अध्वन् । आ । देवाः । वृधाय । हूमहे ॥६॥

हे सुदानवः शोभनदाना हे देवाः क्षियंतो गृहेष्वग्निहोत्रार्थं निवसंतोऽध्वन् ॥ सुपो लुक् ॥ अध्वनि समिदाहरणार्थं यांतो गच्छंतोऽपि वयमिद्वो युष्मानेव वृधाय हविर्भिर्वर्धनाय हूमहे । आह्वयामः । यद्वा । वयं गृहेषु गृहान्निर्गमनकाले मार्गेषु च वृधायास्माकं धनादिभिर्वर्धनायाह्वयामः ॥

अधि न इंद्रैषां विष्णो सजात्यानां । इता मरुतो अश्विना ॥७॥

अधि । नः । इंद्र । एषां । विष्णो इति । सऽजात्यानां । इत । मरुतः । अश्विना ॥७॥

हे इंद्र विष्णो मरुतो हे अश्विनावश्विनौ हे इंद्रादयो देवाः सजात्यानां । समानायां जातौ भवाः सजात्या भ्रातृमित्रादयः । तेषां मध्ये नोऽस्मानधीत । यूयं स्तुत्यतयाधिगच्छत ॥

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥८॥

प्र । भ्रातृऽत्वं । सुऽदानवः । अध । द्विता । समान्या । मातुः । गर्भे । भरामहे ॥८॥

हे सुदानवः शोभनदाना आदित्याः अधाथास्मत्प्रत्यागमनानंतरं वयं समान्या समान्येन ॥ सुपो ड्यादेशः ॥ पूर्वं सर्वेषां देवानां सांहत्येन ततो द्विता द्विधा द्विप्रकारेण च मातुरदितेर्गर्भे संजातं यद्युष्माकं भ्रातृत्वं विद्यते तदिदानीं वयं प्र भरामहे । प्रभरणमुच्चारणं प्रकाशनं वा । उच्चारयामः प्रकाशयामो वा । सर्वेषां देवानां द्वंद्वशो जननं तैत्तिरीयके स्पष्टमभिहितं । अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचदित्युपक्रम्य तस्यै पूषा चार्यमा चाजायेतां । तै० सं० ६. ५. ६. । इत्यादिना ॥

यूयं हि ष्ठा सुदानव इंद्रज्येष्ठा अभिद्यवः । अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥९॥

यूयं । हि । स्थ । सुऽदानवः । इंद्रऽज्येष्ठाः । अभिऽद्यवः । अध । चित् । वः । उत । ब्रुवे ॥९॥

पूर्वोऽर्धर्चः सिद्धः । हे सुदानवः शोभनदाना देवा इंद्रज्येष्ठाः । इंद्रो ज्येष्ठो मुख्यो येषां ते तथोक्ताः । सर्वदेवा इंद्रनेतृका इत्यर्थः । तादृशा अभिद्यवोऽभिगतदीप्तयो यूयं हि स्थ । अस्मद्यज्ञे भवथ खलु । हि प्रसिद्धौ । अध चिदथानंतरमेव वो युष्मानहं ब्रुवे । स्तौमि । उतापि च पुनःपुनः स्तौमीत्यर्थः ॥ ॥४॥

प्रेष्ठं व इति नवर्चं चतुर्थं सूक्तं कवेः पुत्रस्योशनस आर्षं गायत्रमाग्नेयं । तथानुक्रम्यते । प्रेष्ठमुशना काव्य आग्नेयमिति ॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं । सूचितं च । युत्त्वा हि प्रेष्ठं वः

। आ० ४. १३. । इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु मैत्रावरुणे प्रेष्ठं व इति तृचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । प्रेष्ठं वो अतिथिं श्रेष्ठं यविष्ठ भारत । आ० ७. ८. । इति ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियं । अग्निं रथं न वेद्यं ॥१॥

प्रेष्ठं । वः । अतिथिं । स्तुषे । मित्रंऽइव । प्रियं । अग्निं । रथं । न । वेद्यं ॥१॥

हे यजमानाः प्रेष्ठं युष्माकं धनदानेन प्रियतममतिथिं युष्माभिरतिथिवत्पूज्यं । यद्वा ॥ अत सातत्यगमने । ऋतन्यंजीत्यादिनातेरिथिन् ॥ सततं देवानां हविः प्रदातुं गच्छंतं । मित्रमिव सखायमिव प्रियं स्तोतुः प्रीणनकरं रथं न रथमिव वेद्यं । वेदो धनं । धनहितं लाभहेतुं । यथा रथी रथेन धनं लभते तद्वत् स्तोतारोऽनेन धनं लभंते । तादृशं धनलाभकारणमग्निं वो युष्मत्कर्मसिद्ध्यर्थं स्तुषे । काव्य उशनाः स्तौमि ॥

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥२॥

कविंऽइव । प्रऽचेतसं । यं । देवासः । अध । द्विता । नि । मर्त्येषु । आऽदधुः ॥२॥

अधापि च देवासो देवा इंद्रादयो यमग्निं मर्त्येषु मनुष्येषु द्विता द्विधा न्यादधुः गार्हपत्याहवनीयात्मकत्वेन द्विधा निहितवंतः । तत्र दृष्टांतः । कविमिव प्रचेतसं प्रकृष्टज्ञानं कविं क्रांतकर्माणं पुरुषं यथा द्विधा कार्यद्वयेऽन्यो नियोजयति तद्वत् । यद्वा । दिवि पृथिव्यां च निहितवंतः । भूमौ तु हविराहरणार्थं दिवि तु हविष्प्रदानार्थमिति द्वैधं विधानं कृतवंत इत्यर्थः ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥

त्वं । यविष्ठ । दाशुषः । नॄन् । पाहि । शृणुधि । गिरः । रक्ष । तोकं । उत । त्मना ॥३॥

हे यविष्ठ युवतम । यद्वा ॥ यौतिस्तृजंतस्येष्ठनि रूपं ॥ देवानां हविषां मिश्रयितृतमाग्ने त्वं दाशुषो हविर्दत्तवतो नॄन् कर्मणां नेतॄन्यजमानान् पाहि । धनादिदानेन रक्ष ॥ नॄँः पाहीत्यत्र संहितायां नॄन्पे । पा० ८. ३. १०. । इति नकारस्य रुत्वं । अत्रानुनासिकः । पा० ८. ३. २. । इति पूर्वस्यानुनासिकः ॥ किंच गिरस्त्वद्विषयाः स्तुतीः शृणुधि । अवहितः सञ्छृणु ॥ श्रु श्रवणे । श्रुशृणुपॄ इत्यादिना हेर्ध्यादेशः ॥ उतापि च त्मनात्मनैव स्वयमेव तोकमस्मदीयं तनयं पुत्रं रक्ष । पालय । आत्मनेति सर्वत्र संबध्यते । आत्मना स्वयमेव रक्ष । त्वदन्यं पालयितारं न विंदामः । त्वमेवास्मदीयं स्तोत्रं शृणु ॥

कया ते अग्ने अंगिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिं । वराय देव मन्यवे ॥४॥

कया । ते । अग्ने । अंगिरः । ऊर्जः । नपात् । उपऽस्तुतिं । वराय । देव । मन्यवे ॥४॥

हे अंगिरोऽंगिरसां वरिष्ठ । यद्वा । अंगति सर्वत्र गच्छतीत्यंगिराः । तादृश हे ऊर्जो नपात् । नपादित्यपत्यनाम । अन्नस्य पुत्र । हविर्भिर्वर्धमानत्वात् । यद्वा । नपादिति नप्ता । हविर्लक्षणस्यान्नस्य नप्तः । अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिरिति । वृष्टेरोषधय ओषधीभ्योऽग्निरित्यन्नस्य नप्ता । हे देव द्योतमानाग्ने वराय सर्वैर्वरणीयाय मन्यवे शत्रूनतिमन्यमानाय ते तुभ्यं कया कीदृश्या वाचोपस्तुतिमुपस्तोत्रमहं भरेयं । त्वं महान् खल्वहमल्पः । तदर्थं स्तुतिं कुर्यामित्यृषिरग्निं प्रति वदति ॥

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥५॥

दाशेम । कस्य । मनसा । यज्ञस्य । सहसः । यहो इति । कत् । ऊं इति । वोचे । इदं । नमः ॥५॥

ऋषिरग्निं प्रति ब्रूते। हे सहसो यहो। यह्वरित्यपत्यनाम। बलेन निष्पाद्यमानत्वाद्बलस्य पुत्र हे अग्ने कस्य कीदृशस्य यज्ञस्य यज्ञवतो यजनीयदेववतो यजमानस्य मनसा युक्ताः संतो हवींषि तुभ्यं वयं दाशेम। प्रयच्छेम ॥ पूजायां बहुवचनं ॥ किंच तुभ्यमिदं नमो हविर्नमस्कारं वा कत् कदा वोचे। अहं वदामि। उ इति प्रश्ने। ऋषिः कदा यक्ष्यामि कदा स्तोष्यामीत्यग्निं पृच्छति ॥ वोचे। वच्यादेशस्य लुङ्यात्मनेपद उत्तमैकवचने रूपं ॥ ॥५॥

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः। वाजद्रविणसो गिरः ॥६॥

अध। त्वं। हि। नः। करः। विश्वाः। अस्मभ्यं। सुऽक्षितीः। वाजऽद्रविणसः। गिरः ॥६॥

हे अग्ने अधानंतरं त्वं। हिरवधारणे। त्वमेवास्मभ्यं करः। कुरु। देहीत्यर्थः ॥ करोतेर्लेट्यडागमः ॥ किमित्यपेक्षायामाह। नोऽस्मदीया गिरस्त्वद्विषया विश्वाः सर्वाः स्तुतीरेवं कुरु यथा सुक्षितीः। क्षियंति निवसंत्यत्रेति क्षितयो गृहाः। शोभननिवासाः। यद्वा। क्षितयो मनुष्याः। कल्याणपुत्रपौत्रादियुक्ताः। तथा वाजद्रविणसोऽन्नयुक्तधनवतीः। अथवा वाजो दीप्तिः। सर्वतो दीप्तधनाश्च कुरु। त्वमस्माभिः स्तुतः सन् गृहपुत्रान्नधनादीनि देहीत्यर्थः ॥

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते। गोषाता यस्य ते गिरः ॥७॥

कस्य। नूनं। परीणसः। धियः। जिन्वसि। दंऽपते। गोऽसाता। यस्य। ते। गिरः ॥७॥

हे दंपते। यदा गार्हपत्ये वर्तसे तदा जायापतिस्वरूपोऽसि। तस्माद्दंपतिशब्देनाग्निरभिधीयते। तथाविध हे अग्ने नूनमिदानीं कस्य कीदृशस्य जनस्य परीणसो बहूनि धियः कर्माणि जिन्वसि। प्रीणयसि। यस्य ते तव संबंधिन्यो गिरः स्तुतयो गोषाता गोसातौ गवां लाभे भवंति खलु। तस्मात्त्वं कुत्र तिष्ठसि। अस्माकमिदानीं गवेच्छा प्रवर्तते। यद्वा। हे अग्ने त्वमिदानीं कस्य कर्माणि प्रीणयसि। न कस्यापीत्यर्थः। अस्माकमेव कर्माणि प्रीणयेति भावः ॥

अग्निमंथने तं मर्जयंत सुक्रतुमित्येषा। सूत्रितं च। तं मर्जयंत सुक्रतुं यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः। आ० २.१६.। इति ॥

तं मर्जयंत सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु। स्वेषु क्षयेषु वाजिनं ॥८॥

तं। मर्जयंत। सुऽक्रतुं। पुरःऽयावानं। आजिषु। स्वेषु। क्षयेषु। वाजिनं ॥८॥

सुक्रतुं शोभनप्रज्ञं सुकर्माणं वाजिषु संग्रामेषु पुरोयावानं शत्रुहननार्थं पुरत एव गंतारं वाजिनं बलवंतं तादृशमग्निं यजमानाः स्वेष्वात्मीयेषु क्षयेषु गृहेषु मर्जयंत। निर्मथितमग्निमलंकुर्वंति। परिचरंतीति यावत् ॥

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नंति हंति यः। अग्ने सुवीर एधते ॥९॥

क्षेति। क्षेमेभिः। साधुऽभिः। नकिः। यं। घ्नंति। हंति। यः। अग्ने। सुऽवीरः। एधते ॥९॥

हे अग्ने यो मनुष्यः साधुभिः साधयद्भिः क्षेमेभिः पालनैः सह क्षेति स्वगृहे निवसति। तथा यं जनं नकिः न केचन घ्नंति न हिंसंति। य एव हंति शत्रून् स्वयमेव हंति। स मनुष्यस्तव स्तोता खलु। अन्यथा तस्यैतावन्न घटते। ततः स स्तोता सुवीरः शोभनपुत्रादियुक्तः सन्नेधते। आत्मीयगृहेषु धनादिभिर्वर्धते ॥ ॥६॥

आ मे हवमिति नवर्चं पंचमं सूक्तं। कृष्णो नामांगिरस ऋषिः। गायत्री छंदः। एतदादीनि त्रीणि सूक्तान्यश्विदेवत्यानि। तथा चानुक्रांतं। आ मे कृष्ण आश्विनं हीति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ गायत्रे छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। सूत्रितं च। उदीराथामा मे हवं। आ० ४.१५.। इति ॥

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवं । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
आ । मे । हवं । नासत्या । अश्विना । गच्छतं । युवं । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ १ ॥

हे नासत्या । असत्यमनयोर्नास्तीति नासत्यौ । तादृशौ हे अश्विनाश्विनौ युवं युवां मे मदीयं हवमाह्वानं श्रुत्वा । यद्वा । हवं । हूयतेऽनेनेति हवो यज्ञः ॥ केवलस्याधिकरणेऽप् छांदसः ॥ मदीयं यज्ञं प्रति मध्वो मदकरस्य सोमस्य पीतये पानाय तदर्थमा गच्छतं ॥

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवं । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
इमं । मे । स्तोमं । अश्विना । इमं । मे । शृणुतं । हवं । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ २ ॥

हे अश्विनाश्विनौ मे मदीयमिमं स्तोमं स्तोत्रं किंच मे मदीयमिममिदमागमनविषयं हवमाह्वानं च शृणुतं ॥

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
अयं । वां । कृष्णः । अश्विना । हवते । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ३ ॥

हे वाजिनीवसू अन्नयुक्तधनौ ॥ अत्रेनिरनुवादार्थः ॥ यद्वा । वाजो वजनं क्रिया । तद्वती वाजिनी । तद्युक्तधनवंतौ हे अश्विनाश्विनौ अयं कृष्णो नाम मंत्रद्रष्टर्षिर्वां युवां हवते । स्तुतिभिराह्वयति । किमर्थं । मध्वः सोमस्य पीतय इति ॥

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥
शृणुतं । जरितुः । हवं । कृष्णस्य । स्तुवतः । नरा । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ४ ॥

हे नरा नरौ सर्वस्य नेतारावश्विनौ जरितुः ॥ तच्छीलार्थे तृन् । व्यत्ययेनांतोदात्तत्वं ॥ जरितुः स्तवनशीलस्य स्तुवतः स्तोत्रं कुर्वतः कृष्णस्यैतन्नामकस्यर्षेः संबंधि हवं युष्मद्विषयमाह्वानं शृणुतं । यद्वा । जरितुरन्यदेवानां स्तोतुः स्तुवत इदानीं युवयोः स्तोत्रकारिणस्तस्य हवं शृणुतं । शिष्टं गतं ॥

छर्दिर्यंतमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
छर्दिः । यंतं । अदाभ्यं । विप्राय । स्तुवते । नरा । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ५ ॥

हे नरा नेतारावश्विनौ विप्राय मेधाविने अत एव स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कृष्णायर्षयेऽदाभ्यं ॥ दभेश्चेति ण्यत्प्रत्ययः ॥ परैरहिंस्यं छर्दिर्गृहं यंतं । प्रयच्छतं । किमर्थं । सोमपानाय । स्तोत्रे गृहे दीयमाने सति तदा स सोमं युवाभ्यां प्रयच्छति ॥ ॥ ७ ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
गच्छतं । दाशुषः । गृहं । इत्था । स्तुवतः । अश्विना । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ६ ॥

हे अश्विनाश्विनौ इत्थेत्यमनेन प्रकारेण स्तुवतो युवयोः स्तोत्रं कुर्वतो दाशुषो हवींषि दत्तवतो यजमानस्य गृहं प्रति गच्छतं । युवामागच्छतं । किमर्थं । मध्वः सोमस्य पीतय इति ॥

युंजाथां रासभं रथे वीड्वंगे वृषण्वसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥७॥
युंजाथां । रासभं । रथे । वीळुऽअंगे । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥७॥

हे वृषण्वसू वर्षणशीलधनवंतावश्विनौ युवां वीड्वंगे । वीळुर्दृढः । दृढांगोपेते स्वरथे रासभं शब्दायमानमेतन्नामकमश्वं युंजाथां । संयोजयतं । किमर्थं । मध्वः सोमस्य पीतय इति । रासभावश्विनोरिति रासभाविवाश्विनो रथस्य वाहनौ ॥

त्रिवंधुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥८॥
त्रिऽवंधुरेण । त्रिऽवृता । रथेन । आ । यातं । अश्विना । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥८॥

हे अश्विनाश्विनौ त्रिवंधुरेण त्रिफलकासंघटितेन त्रिवृता त्रिकोणेन । यद्वा । त्रिवृता । त्रीणि कवचादिभिरावरणानि यस्य स तथोक्तः । तेन रथेनास्मद्यज्ञं प्रत्या यातं । युवामागच्छतं च । शिष्टं गतं ॥

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवं । मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥
नु । मे । गिरः । नासत्या । अश्विना । प्र । अवतं । युवं । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥९॥

हे नासत्यासत्यरहितौ हे अश्विनाश्विनौ मे मदीया गिरः स्तुतिलक्षणा वाचः प्रति युवं युवां नु क्षिप्रं प्रावतं । प्रकर्षेणागच्छतं । यद्वा । मे गिरः प्रावतं । आत्मीयतया प्ररक्षतं । किमर्थं । मध्वो मदकरस्य सोमस्य पीतये पानाय तदर्थं । सर्वे देवाः स्तुतिभिराहूताः संतो यज्ञं प्रत्यागच्छंतीति गच्छतं रक्षतं चेति युक्तं भवति ॥ ॥ ८ ॥

उभा हि दस्रेति पंचर्चं षष्ठं सूक्तं । विश्वको नाम कृष्णस्य पुत्रः कृष्ण एव वर्षिः । जगती छंदः । अश्विनौ देवता । तथानुक्रम्यते । उभा हि पंच विश्वको वा कार्ष्णिर्जागतमिति ॥ विनियोगो लिंगादवगंतव्यः ॥

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥१॥
उभा । हि । दस्रा । भिषजा । मयःऽभुवा । उभा । दक्षस्य । वचसः । बभूवथुः ।
ता । वां । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥१॥

हे अश्विनौ दस्रा दर्शनीयौ । यद्वा ॥ दसु उपक्षये ॥ सर्वेषां शत्रूणामुपक्षपयितारौ । भिषजा देवानां वैद्यौ यद्वा भीतीनां त्रासयितारौ । यदा नरोऽश्विनौ स्तुवंति तदा तौ तेषां भीतिमपनयत इत्यर्थः ॥ पृषोदरादित्वाद्रूपसिद्धिः ॥ तादृशौ अत एव मयोभुवा मयसः सुखस्य भावयितारावुभा परस्परं द्वित्वसंख्यापूरकावुभोभौ द्वौ युवां दक्षस्यैतन्नामकस्य प्रजापतेर्वचसः स्तुतेः संबंधिनौ बभूवथुः । हि प्रसिद्धौ । पुरा युवां दक्षेणास्ताविषाथां खलु । ता तादृशौ प्रशस्तौ वां युवां विश्वक एतन्नामक ऋषिस्तनूकृथे । तनोति कुलमिति तनूः पुत्रः । तस्य विष्णाप्वो निमित्तं हवते । स्तुतिभिराह्वयति । तस्मान्नोऽस्माकं सख्या सख्यानि यष्टृयष्टव्यतया जातानि सखित्वानि मा वि यौष्टं । मा पृथक्कुरुतं ॥ यौतेर्लुङि सिचि रूपं ॥ किंच युवां मुमोचतं । अस्मानागंतुं रथे स्थित्वाश्वप्रग्रहान्मुंचतं ॥ मुंचतेर्लोटि बहुलं छंदसीति शपः श्लुः । अडागमः ॥ अत्र विष्णापूनामानं पुत्रमुद्दिश्य तस्य पिता विश्वको युवामाह्वयतीत्यात्मानमाह । यद्वा । विश्वकस्य पिता कृष्णो नामर्षिर्मम पुत्रो विश्वकः पुत्रार्थं युवामधिह्वयतीति वदति ॥

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥२॥
कथा । नूनं । वां । विऽमनाः । उप । स्तवत् । युवं । धियं । ददथुः । वस्यःऽइष्टये ।
ता । वां । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥२॥

हे अश्विनौ विमना एतन्नामक ऋषिर्नूनं पुरा कथा युवामुप स्तवत् । कथमुपास्तौत् । तेन स्तुतौ युवं युवां वस्यइष्टये । वस्यो वसीयः प्रशस्तं धनं । तस्याभिलषितस्येष्टयेऽभिगमनाय यद्वा वसिष्ठधनस्येष्टये प्राप्तये धियं बुद्धिं विमनसे ददथुः । अदधाथां खलु ॥ वस्य इति वसुमच्छब्दादीयसुनि विन्मतोर्लुगिति लुक् । ईयसुन ईकारलोपश्छांदसः ॥ तादृशौ युवां विश्वको हवत इति गतं ॥

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥३॥
युवं । हि । स्म । पुरुऽभुजा । इमं । एधतुं । विष्णाप्वे । ददथुः । वस्यःऽइष्टये ।
ता । वां । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥३॥

हे पुरुभुजा पुरुभुजौ पुरूणां बहूनां धनादिदानेन भोजयितारौ । यद्वा । बहूनां स्तोतॄणां पालयितारावश्विनौ युवं । हि ष्मेत्यवधारणे । युवामेवेममेधतुं ॥ एधतेरेधिवहोश्चतुः ।उ० १. ७९.। इति चतुप्रत्ययः । चित्त्वादंतोदात्तः ॥ इमां धनादिवृद्धिं विष्णाप्वे । विष्णोः सर्वेषां देवानां मुख्यत्वात् तद्ग्रहणे सर्वे देवा गृहीता भवंति । विष्ण्वादीन्कर्मणा व्याप्नोतीति विष्णापूः ॥ पृषोदरादिः ॥ यद्वा । विष्णुं सर्वग्रहेषु व्याप्तं सोमं दशापवित्रेण पुनातीति । तस्य चतुर्थी विष्णाप्व इति । एतन्नामके मम पुत्रे पौत्रे वा । पुत्राय पौत्राय वा । इमां धनादिवृद्धिं ददथुः । अदत्तं । किमर्थं । वस्यइष्टये वसीयसः प्रशस्तधनस्येष्टय इच्छां पूरयितुं ॥ क्रियार्थोपपदस्य ।पा० २. ३. १४.। इति चतुर्थी ॥ ता वामिति पूर्ववद्व्याख्येयं ॥

उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्संतमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥४॥
उत । त्यं । वीरं । धनऽसां । ऋजीषिणं । दूरे । चित् । संतं । अवसे । हवामहे ।
यस्य । स्वादिष्ठा । सुऽमतिः । पितुः । यथा । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥४॥

हे अश्विनौ उतापि च वीरं कर्मणि समर्थं धनसां धनानां संभक्तारमृजीषिणं । ऋजीष उपार्जितोऽभिषुतः सोमः । तद्वंतं दूरे चिद्दूर एव संतं भवंतं विनष्टमिव त्यं तं विष्णाप्वमवसेऽस्माकं रक्षणाय हवामहे । आह्वयामः । पुत्रो हि पितरं रक्षते । किंच यस्य पुत्रस्य पौत्रस्य वा सुमतिः शोभना स्तुतिः स्वादिष्ठा स्वादुतमा । अतिशयेन देवानां स्वादुकारिणीत्यर्थः । तत्र दृष्टांतः । पितुर्यथा पितुर्विश्वकस्य स्तुतिर्यथा देवानां प्रीतिकरी तद्वत् । तस्मात्तमाह्वयाम इति शेषः । मेति गतार्थः ॥

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृंगमुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतं ॥५॥
ऋतेन । देवः । सविता । शंऽआयते । ऋतस्य । शृंगं । उर्विया । वि । पप्रथे ।
ऋतं । ससाह । महि । चित् । पृतन्यतः । मा । नः । वि । यौष्टं । सख्या । मुमोचतं ॥५॥

ऋषिः सत्यप्रशंसां करोति। हे अश्विनौ देवो द्योतमानः सविता सर्वस्य स्वस्वकर्मणि प्रेरक एतन्नामको देव ऋतेन सत्येन शमायते। सायंकाले स्वकिरणसमूहं शमयति। ततोऽनंतरं स एव सविता ऋतस्य सत्यस्य शृंगमयमुर्विया विस्तीर्णं यथा भवति तथा प्रातःकाले वि पप्रथे। विशेषेण प्रथयति। सर्वतो विस्तारयति। किंच पृतन्यतः पृतनामिच्छतः संयुयुत्सोः शत्रोर्महि चिन्महदपि बलमृतं सत्यं स्वयमेवाभिभवति। इत्यमृतं प्रशस्तमभूत्। तस्माद्युवामपि तैर्नतैन नोऽस्माकं सख्यानि मा वि यौष्टं। अत्रागंतुमस्वरश्रमोऽमुंचतमिति॥ ॥९॥

द्युम्नी वामिति षडृचं सप्तमं सूक्तं। तथा चानुक्रम्यते। द्युम्नी षड्वासिष्ठो वा द्युम्नीकः प्रियमेधो वा प्रागाथं हेति। वसिष्ठपुत्रो द्युम्नीक ऋषिरांगिरसः प्रियमेधो वा। उभयत्र वाशब्दाद्यदोभावपि न स्यातां तदा प्रकृत आंगिरसः कृष्ण एव ऋषिः। अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः। अश्विनौ देवता॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तं। सूत्रितं च। द्युम्नी वां यत्स्थ इति बार्हतं। आ० ४.१५.। इति॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतं।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥१॥
द्युम्नी। वां। स्तोमः। अश्विना। क्रिविः। न। सेके। आ। गतं।
मध्वः। सुतस्य। सः। दिवि। प्रियः। नरा। पातं। गौरौऽइव। इरिणे ॥१॥

हे अश्विनाश्विनौ अयमनुपक्षीणस्तोत्रो द्युम्नीक एतन्नामक ऋषिर्वां युवयोः स्तोमः स्तोता भवति। युष्मत्स्तुतौ कृतायां स्तोत्राणि नाल्पीभवंति किंतु पुनर्वर्धंत इत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। क्रिविर्न। क्रिविरिति कूपनाम। कूपो यथा सेक उदकसेचने वृष्टौ भवंत्यां नाल्पोदको भवति तद्वत्। यद्वा। वां युवयोः स्तोमो युष्मद्विषया स्तुतिर्द्युम्न्यन्नवतो खलु। स्तोत्रे कृते तस्मा अन्नादिकं प्रयच्छथ इत्यर्थः। तस्माद्युवामस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छतं। स्तोत्राणि श्रोतुमागच्छतं। हे नरा नरौ नेताराववश्विनौ सोऽयं स्तोता दिवि द्योतमानेऽस्मिन्यज्ञे सुतस्याभिषुतस्य मध्वो मदकरस्य सोमस्य प्रियः स्तोत्रकारित्वेन प्रियतमो भवति। ततस्तेन सुतं सोमं पातं युवां। तत्र दृष्टांतः। गौराविव यथा तृषितौ गौरावेतन्नामकौ मृगाविरिणे तटाकादिषूदकपानार्थं शीघ्रमागच्छतस्तद्वत्॥

पिबतं घर्मं मधुमंतमश्विना बर्हिः सीदतं नरा।
ता मंदसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥२॥
पिबतं। घर्मं। मधुऽमंतं। अश्विना। आ। बर्हिः। सीदतं। नरा।
ता। मंदसाना। मनुषः। दुरोणे। आ। नि। पातं। वेदसा। वयः ॥२॥

हे अश्विनाश्विनौ मधुमंतं मदवंतं। मदकारिणमित्यर्थः। तादृशं रसवंतं वा घर्मं॥ घृ क्षरणदीप्त्योः॥ पात्रेषु क्षरंतं सोमं पिबतं। यद्वा। मधुमंतं। मधुर्मदकरः सोमः। तद्वंतं घर्मं महावीरपात्रगतं क्षीरं पिबतं सोमं चेति। न तु साहचर्येण तदसंभवात्। हे नरा नरौ नेतारौ सर्वस्य हे अश्विनौ बर्हिर्बर्हिषि यज्ञ आ सीदतं। उपविशतं। यद्वा। पूर्वं द्वितीयं पादं व्याख्याय प्रथमपादो व्याख्येयः। उपसदनानंतरं सोमपानं युक्तमिति। किंच मनुषो मनुष्यस्य दुरोणे गृहभूतेऽस्मिन्देवयजने मंदसाना सोमपानेन मोदमानौ ता तौ पूर्वोक्तलक्षणौ युवां वेदसा पुरोडाशादिलक्षणेन हविषा सह वयः सोमरूपमन्नमागत्य नि पातं। निपिबतं। यद्वा। वेदसा धनेन सह वयोऽस्माकमायुर्नि पातं। नितरां रक्षतं॥

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥३॥

आ । वां । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । प्रियऽमेधाः । अहूषत ।
ता । वर्तिः । यातं । उप । वृक्तऽबर्हिषः । जुष्टं । यज्ञं । दिविष्टिषु ॥३॥

हे अश्विनौ प्रियमेधाः । मेधो यज्ञः । प्रियतमयज्ञा यजमानाः । यद्वा । प्रियमेधा एतन्नामक ऋषिः ॥ पूजायां बहुवचनं ॥ यष्टार ऋषिर्वा विश्वाभिरूतिभिः सर्वैः पालनैः सह । अथवावति याञ्चाकर्म । सर्वैरभिलषितयाचनैः सहिता अहूषत । आह्वासिषुः । आह्वासीत् । आत्मना पालनहेतुत्वेन । यद्वाभिलषितदानाय वामाह्वयंति । ततो युवां वृक्तबर्हिष आस्तरणार्थं छिन्नबर्हिषो यष्टुः संबंधि जुष्टं सर्वैर्देवैः सेवितं पर्याप्तं वा यज्ञं यजनीयं हविः प्रति दिविष्टिषु दिवसानामह्नामागमनेषु प्रातःकालेषु यज्ञेषु वा वर्तिः । वर्ततेऽत्रेति वर्तिर्गृहं । तदुपा यातं । हविःस्वीकरणार्थं युवामागच्छतं ॥

पिबतं सोमं मधुमंतमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गंतं गौराविवेरिणं ॥४॥
पिबतं । सोमं । मधुऽमंतं । अश्विना । आ । बर्हिः । सीदतं । सुऽमत् ।
ता । ववृधानौ । उप । सुऽस्तुतिं । दिवः । गंतं । गौरौऽइव । इरिणं ॥४॥

हे अश्विनावश्विनौ मधुमंतं रसवंतं मदवंतं वा सोमं युवां पिबतं । ततो बर्हिर्बर्हिषि यज्ञे सुमच्छोभनमा सीदतं । पश्चाद्वावृधानौ सोमपानेन वृद्धौ ता तौ युवां दिवो द्युलोकात्सुष्टुतिमस्माभिः क्रियमाणां स्तुतिमुप गंतं । उपगच्छतं । तत्र दृष्टांतः । गौराविव यथा गौरमृगावन्यस्माद्देशादिरिणं तटाकादिकं प्रति जलपानार्थमागच्छतस्तद्वत् ॥

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥
आ । नूनं । यातं । अश्विना । अश्वेभिः । प्रुषितप्सुऽभिः ।
दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । शुभः । पती इति । पातं । सोमं ।
ऋतऽवृधा ॥५॥

हे अश्विनावश्विनौ युवां प्रुषितप्सुभिः ॥ प्सु इति रूपनाम । प्रुष स्नेहनसेचनपूरणेषु ॥ स्निग्धरूपैः । दीप्तरूपैरित्यर्थः । तादृशैः शीघ्रगामिभिरश्वैः सह नूनमिदानीमा यातं । अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छतं । हे दस्रा दर्शनीयावुपक्षपयितारौ वा हे हिरण्यवर्तनी । वर्ततेऽनेति वर्तनी रथः । हिरण्मयरथौ हे शुभस्पती उदकस्य कल्याणस्य वा पालयितारौ हे ऋतावृधा सत्यस्य यज्ञस्य वा वर्धयितारौ हे अश्विनौ युवां शीघ्रमागत्य सोमं पातं । पिबतं ॥

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतं ॥६॥
वयं । हि । वां । हवामहे । विपन्यवः । विप्रासः । वाजऽसातये ।
ता । वल्गू इति । दस्रा । पुरुऽदंससा । धिया । अश्विना । श्रुष्टी । आ । गतं ॥६॥

हे अश्विनौ विपन्यवः स्तोतारः अत एव विप्रासो विप्रा मेधाविनो वयं वाजसातयेऽन्नलाभाय वां ।

हिरवधारणे। युवामेव हवामहे। स्तुतिभिराह्वयामः। ततो वल्गू। वल्गनं कुशलगमनं। कुशलगमनशीलौ पुरुदंससा बहुकर्माणौ तौ युवां धियास्मदीयया स्तुत्याहूतौ संतौ श्रुष्टी। श्रुष्टीति क्षिप्रनाम। क्षिप्रमस्मभ्यं धनादिदानाया गतं। आगच्छतं॥ ॥१०॥

तं वो दस्ममिति षड्टचमष्टमं सूक्तं गौतमस्य नोधस आर्षं। तथा चानुक्रम्यते। तं वो दस्मं नोधा इति। प्रागाथं हेत्युक्तत्वादेतदादिसूक्तत्रयं प्रागाथं। इंद्रो देवता॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावेतत्सूक्तं। तथा च पंचमारण्यके सूत्रितं। तं वो दस्ममृतीषहमा नो विश्वासु हव्यः। ऐ० आ० ५. २. ४.। इति॥ अग्निष्टोमे माध्यंदिनसवनेऽच्छावाकशस्त्रे तं वो दस्ममिति प्रगाथः स्तोत्रियः। सूत्रितं च। तं वो दस्ममृतीषहं तत्त्वा यामि सुवीर्यमिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ। आ० ५. १६.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने सवने ब्राह्मणाच्छंसिनो वैकल्पिकः स्तोत्रियोऽयमेव प्रगाथः। आ० ७. ४.॥ विषुवत्यपि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे तं वो दस्ममृतीषहमिति नौधसस्य योनिः शंसनीया। तं वो दस्ममृतीषहमभि प्र वः सुराधसं। आ० ८. ६.। इति॥

तं वो॑ द॒स्मम्‌ृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मंदा॒नमंध॑सः।
अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इंद्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥१॥
तं। वः॒। द॒स्मं। ऋ॒ति॒ऽसहं॑। वसोः॑। मं॒दा॒नं। अंध॑सः।
अ॒भि। व॒त्सं। न। स्वस॑रेषु। धे॒नवः॑। इंद्रं॑। गीः॒ऽभिः। न॒वा॒म॒हे॒ ॥१॥

नोधा इंद्रं स्तौति। हे ऋत्विग्यजमानाः दस्मं दर्शनीयमृतीषहं। ऋतयो बाधकाः शत्रवः। तेषामभिभवितारं। पुनः कीदृशं। वसोर्वासयितुर्दुःखस्य निवासयितुः। यद्वा। वसोः पात्रे निवसतः। तादृशस्यांधसः सोमलक्षणस्यान्नस्य पानेन मंदानं मंदमानं मोदमानं वो यष्टृयष्टव्यत्वेन युष्मत्संबंधिनं तं तादृशमिंद्रं गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिरभि नवामहे॥ नू स्तवने नु शब्दे॥ अभिष्टुमः। कुत्रेति। स्वसरेषु। अत्र यास्कः। स्वसराण्यहानि स्वयंसारीण्यपि वा स्वरादित्यो भवति स एनानि सारयति। नि० ५. ४.। इति। सूर्यनेतृकेषु दिवसेषु वयमभिष्टुमः। तत्र दृष्टांतः। वत्सं न यथा धेनवो नवप्रसूतिका धेनवः स्वसरेषु। सुष्ठ्वस्यंते प्रेर्यंते गावो यत्रेति स्वसराणि गोष्ठानि। तेषु वत्समभिलक्ष्य शब्दयंति तद्वत्॥

द्यु॒क्षं सु॒दानुं॒ तवि॑षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पु॑रु॒भोज॑सं।
क्षु॒मंतं॒ वाजं॑ श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒क्षू गोमं॑तमीमहे ॥२॥
द्यु॒क्षं। सु॒ऽदानुं॑। तवि॑षीभिः। आऽवृ॑तं। गि॒रिं। न। पु॒रु॒ऽभोज॑सं।
क्षु॒ऽमंतं॑। वाजं॑। श॒तिनं॑। स॒ह॒स्रिणं॑। म॒क्षु। गोऽमं॑तं। ई॒म॒हे॒ ॥२॥

द्युक्षं दीप्तीनां निवासस्थानं। अतिशयेन दीप्तमित्यर्थः। यद्वा। द्युक्षं दिवि द्युलोके क्षियंतं निवसंतं। सुदानुं शोभनदानं तविषीभिर्बलैरावृतमाच्छादितं। आवरणे दृष्टांतः। गिरिं न तविषीभिर्बलयुक्तैर्मेघैरावृतं शिलोच्चयमिव स्थितं। पुनः कीदृशं। पुरुभोजसं सोमादिहविष्प्रदानेन बहुभिर्यजमानैर्भोजयितव्यं यद्वा बहूनां पालयितारमिंद्रं क्षुमंतं॥ टुक्षु शब्दे॥ शब्दवंतं। अनेन पुत्रादिकं लक्ष्यते। स्तोत्रादीनि कुर्वाणं शतिनं सहस्रिणं शतसहस्रसंख्याकधनयुक्तं गोमंतं गवादियुक्तं वाजमन्नं मक्षु शीघ्रमीमहे। याचामहे। यद्वा। पूर्वार्धो वाजविशेषणत्वेन वा योजनीयः। प्रदीप्तं शोभनयोग्यं बलादियुक्तं बहुभिः पुत्रमित्रादिभिर्भोक्तव्यं शब्दादियुक्तमन्नमिंद्रं याचामह इति॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिनो न त्वा बृहंत इति वैकल्पिकोऽनुरूपः। सूत्रितं च॥ न त्वा बृहंतो अद्रय उभयं शृणवच्च नः। आ० ७. ४.। इति॥

न त्वा बृहंतो अद्रयो वरंत इंद्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥
न । त्वा । बृहंतः । अद्रयः । वरंते । इंद्र । वीळवः ।
यत् । दित्ससि । स्तुवते । माऽवते । वसु । नकिः । तत् । आ । मिनाति । ते ॥३॥

हे इंद्र बृहंतो बलेन महांतः अत एव वीळवः सर्वतो दृढा अप्यद्रयः पर्वतास्त्वा त्वां न वरंते। बलेन निवारयंति। अनिवारणमेवोत्तरार्धेन विवृणोति। स्तुवते त्वद्विषयं स्तोत्रं कुर्वते मावते मत्सदृशाय मादृशाय स्तोत्रे यद्वसु यद्धनं दित्ससि त्वं दातुमिच्छसि तव देयं तद्धनं नकिर्न कश्चिदा मिनाति। आभिमुख्येन हिनस्ति॥ मीञ् हिंसायां। मीनातेर्निगम इति ह्रस्वः। मावते। युष्मदस्मद्भ्यां सादृश्य उपसंख्यानमिति वतुप्॥

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥४॥
योद्धा । असि । क्रत्वा । शवसा । उत । दंसना । विश्वा । जाता । अभि । मज्मना ।
आ । त्वा । अयं । अर्कः । ऊतये । ववर्तति । यं । गोतमाः । अजीजनन् ॥४॥

हे इंद्र क्रत्वा वृत्रहननादिकर्मणापि वा प्रज्ञानेन शवसात्मीयेन बलेन योद्धा शत्रूणां संप्रहारकोऽसि। उतापि च त्वं दंसना स्वकीयेन कर्मणा मज्मना॥ मज मुजि शब्दार्थाः। मजमुजी चेति मजतिः शब्दार्थः॥ शत्रूणामाक्रोशनसमर्थेन बलेन विश्वा जाता सर्वाणि भूतजातान्यभिभवसि। उक्तार्थस्य विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना। ऋ० ८. १००. ४.। इत्यादिष्विंद्रेणैवोक्तत्वात्। एतादृशं त्वा त्वामर्कः॥ अर्च पूजायां॥ अर्चनीयोऽयं मंत्रः यद्वार्को देवानामर्चकः पूजकोऽयं स्तोतोतये स्वरक्षणाया ववर्तति। आवर्तयति। आत्माभिमुख्ये करोतीत्यर्थः॥ वर्ततेर्लेटि बहुलं श्लुरडागमश्च॥ यं त्वां गोतमा गोतमपुत्रा नोधःप्रभृतयोऽजीजनन् स्वयज्ञे प्रादुरवीभवन्। तं त्वामयं मंत्रः स्तोता वावर्तयति॥

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अंतेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इंद्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥५॥
प्र । हि । रिरिक्षे । ओजसा । दिवः । अंतेभ्यः । परि ।
न । त्वा । विव्याच । रजः । इंद्र । पार्थिवं । अनु । स्वधां । ववक्षिथ ॥५॥

हे इंद्र दिवो द्युलोकस्य पर्यंतेभ्य ओजसा। हिरवधारणे। स्वबलेनैव प्र रिरिचे। प्रकर्षेणातिरिक्तो भवसि॥ रिचेर्लेटि बहुलं छंदसीति श्लुः। प्रत्ययस्वरः॥ किंच हे इंद्र पार्थिवं पृथिव्यां भवो रजो लोकस्त्वा त्वां महता स्वशरीरेण न विव्याच। न व्याप्नोति। द्यावापृथिवीभ्यामपि स्वतः स त्वं बलेन समर्थो भवसीत्यर्थः। एवंभूतः सन्नस्माकं स्वधामन्नमुदकं वानु ववक्षिथ। अनुवोढुमिच्छ॥ वहेः सनंतस्य च्छांदसे लिटि रूपं। मंत्रत्वादामभावः॥

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥६॥
नकिः । परिष्टिः । मघऽवन् । मघस्य । ते । यत् । दाशुषे । दशस्यसि ।
अस्माकं । बोधि । उचथस्य । चोदिता । मंहिष्ठः । वाजऽसातये ॥६॥

हे मघवन्धनवन्निंद्र ते तव मघस्य मंहनीयस्य धनस्य परिष्टिः परिबाधको निरोद्धा नकिर्न कश्चिदस्ति। यद्यदा दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय दशस्यसि धनं प्रयच्छसि तदा तस्य निरोधको नास्तीत्यर्थः। तथा सति चोदिता धनानां चोदयिता स्तोतृभ्यः प्रेरयिता अत एव मंहिष्ठो दातृतमो मंहनीयो वा स त्वमस्माकं संबंध्युचथस्य स्तोत्रं वाजसातयेऽन्नलाभाय तदर्थं क्रियमाणमिति बोधि। बुध्यस्व। स्तोत्रेण स्तुतः सन्न-स्मभ्यमन्नादिकं प्रयच्छेति शेषः॥ बोधि। बुध अवबोधने। भौवादिकः। लोटि छांदसः शपो लुक्। ध्यादेशः॥ ॥११॥

बृहदिंद्रायेति सप्तर्चं नवमं सूक्तं। नृमेधपुरुमेधावृषी। तौ चानुक्तत्वादांगिरसौ। आदितो द्वौ प्रगाथौ पंचमीषष्ठ्यावनुष्टुभौ सप्तमी बृहती। तथा चानुक्रम्यते। बृहदिंद्राय सप्त नृमेधपुरुमेधौ त्र्यनुष्टुब्बृहत्यंतमिति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि मरुत्वतीये प्राकृतान्मरुत्वतीयात्प्रगाथादूर्ध्वं द्वौ मरुत्वतीयौ प्रगाथौ शंसनीयौ। बृहदिं-द्राय गायतेत्ययमाद्यः प्रगाथः पृष्ठ्याभिप्लवषडहयोर्द्वितीयेऽहन्ययं प्रगाथः। सूत्रितं च। बृहदिंद्राय गायत नकिः सुदासो रथमिति मरुत्वतीय ऊर्ध्वं नित्यात्। आ० ७. ३.। इति॥

बृहदिंद्राय गायत मरुतो वृत्रहंतमं।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥१॥
बृहत्। इंद्राय। गायत। मरुतः। वृत्रहन्ऽतमं।
येन। ज्योतिः। अजनयन्। ऋतऽवृधः। देवं। देवाय। जागृवि ॥१॥

हे मरुतः॥ रु शब्दे॥ मितं रुवंतीति मरुतः। हे मितभाषिणः स्तोतारः वृत्रहंतममतिशयेन पापविनाशनं बृहत्सामिंद्रायेंद्रार्थं गायत। अस्मदीययज्ञे गानं कुरुत। ऋतावृधः सत्यस्य यज्ञस्य वा वर्धका विश्वे देवा देवाय द्योतमानायेंद्राय देवं देवनशीलं --- जागृवि सर्वेषां जागरणशीलं ज्योतिः सूर्यं येन साम्नाजनयन् इंद्रार्थमुदपादयन् तत्साम गायतेति॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेंद्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥२॥
अप। अधमत्। अभिऽशस्तीः। अशस्तिऽहा। अथ। इंद्रः। द्युम्नी। आ। अभवत्।
देवाः। ते। इंद्र। सख्याय। येमिरे। बृहद्भानो इति बृहत्ऽभानो। मरुत्ऽगण ॥२॥

अशस्तिहा स्तोत्रशंसनरहितानां शत्रूणां हंतेंद्रोऽभिशस्तीः॥ शसु हिंसायां॥ अभितो हिंसा येषां ते। तादृशान्। यद्वा। अभिशस्तीः शत्रुकृता हिंसाः। अपाधमत्। अपागमयत्। अथ शत्रुहननानंतरमिंद्रो द्युम्नी सर्वत्र द्योतमानयशोयुक्तः। यद्वा। तेषां धनापहरणेन धनादिमान्। आभवत्। सर्वतः प्रसिद्धोऽभवत्। अथोत्तरोऽर्धः प्रत्यक्षकृतः। हे बृहद्भानो बृंहणशीलतेजस्क महादीप्ते वा मरुद्गण। मरुतां सप्त गणा यस्य संति स तथोक्तः। तादृश हे इंद्र देवा द्योतमानाः सर्वे देवाः सख्यायात्मनः सखिभावाय ते त्वां येमिरे। नियच्छंति॥

अग्निष्टोमे मरुत्वतीये प्र व इंद्रायेत्ययं मरुत्वतीयः प्रगाथः। सूत्रितं च। प्र व इंद्राय बृहत इति मरुत्व-तीयः प्रगाथः। आ० ५. १४.। इति॥

प्र व इंद्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥३॥

प्र । वः । इंद्राय । बृहते । मरुतः । ब्रह्म । अर्चत ।
वृत्रं । हनति । वृत्रऽहा । शतऽक्रतुः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥३॥

हे मरुतो मितराविणः स्तोतारः बृहते महते वः स्तुत्यस्तोतृत्वलक्षणेन संबंधेन युष्मदीयायेंद्राय ब्रह्म सामलक्षणं स्तोत्रं प्रार्चत । प्रोच्चारयत । ततो वृत्रहा वृत्रस्य पापस्य वा हंता शतक्रतुः शतविधकर्मा बहुविधप्रज्ञो वेंद्रो शतपर्वणा शतसंख्याकधारेण वज्रेणैतन्नामकेनायुधेन वृत्रमपामावरकं वृत्राख्यमसुरं हनति । युष्माभिरभिष्टुतः सन् हंतु ॥ हंतेर्लेट्यडागमः ॥

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।
अर्षंत्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥४॥
अभि । प्र । भर । धृषता । धृषत्ऽमनः । श्रवः । चित् । ते । असत् । बृहत् ।
अर्षंतु । आपः । जवसा । वि । मातरः । हनः । वृत्रं । जय । स्व१रिति स्वः ॥४॥

हे धृषन्मनः शत्रूणां धर्षणशीलमनस्केंद्र ते तवैव बृहन्महदतिप्रभूतं श्रवोऽन्नमसत् । अस्ति । तदन्नं धृषता धृष्टेन मनसा युक्तः सन्नस्मभ्यमभि प्र भर । आभिमुख्येन प्रकर्षेण संपादय । देहीत्यर्थः । हे इंद्र मातरोऽस्माकमुत्पादनहेतुत्वान्मातृभूताः । कथमपां मातृत्वं । अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधय इत्यादिश्रुतेः । तादृश्य आपो जवसा वेगेन व्यर्षंतु । विविधं भूमिं प्रति गच्छंतु । कथमापो गच्छंतीति चेत् तदाह । वृत्रमपामावरितारं शत्रुं मेघं हनः । जहि । ताडय । ततो मेघभेदनेनोदकानि विगच्छंतु । पुनरपि स्वः सर्वं भूतजातं जय ॥

प्रथमे स्वरसाम्नि निष्केवल्ये यज्जायथा अपूर्व्येति स्तोत्रियः । तथा सूत्र्यते । तेषां स्तोत्रिया यज्जायथा अपूर्व्य । आ॰ ८.५. । इति ॥

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्यां ॥५॥
यत् । जायथाः । अपूर्व्य । मघऽवन् । वृत्रऽहत्याय । तत् । पृथिवीं । अप्रथयः । तत् ।
अस्तभ्नाः । उत । द्यां ॥५॥

हे अपूर्व्य स्वतो व्यतिरिक्तेन पूर्व्येण वर्जित हे मघवन् मंहनीयधनवन्निंद्र वृत्रहत्याय वृत्रासुरहननाय यद्यदा त्वं जायथाः उत्पन्नः प्रादुर्भूतोऽसि तत्तदानीमेव पृथिवीं प्रथमानामप्रथयः । प्रसिद्धां दृढामकरोः । उतापि च तत्तदानीमेव द्यां द्युलोकमंतरिक्षेणास्तभ्नाः । निरुद्धामकार्षीः । एतादृशं वीर्यं त्वदन्यस्य न संभवतीत्यर्थं द्योतयितुमपूर्व्येति पदं ॥

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः । तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जंत्वं ॥६॥
तत् । ते । यज्ञः । अजायत । तत् । अर्कः । उत । हस्कृतिः । तत् । विश्वं । अभिऽभूः ।
असि । यत् । जातं । यत् । च । जंत्वं ॥६॥

हे इंद्र यद्यदा त्वमजायथाः तत्तदानीं ते त्वदर्थो यज्ञोऽग्निष्टोमादिरजायत । सोमपानार्थमभूत् । उतापि च तदानीं हस्कृतिः ॥ हसे हसने ॥ हासकारी प्रीत्यर्थं क्रियमाणो हर्षस्य सूचकोऽर्कोऽर्चनीयो मंत्रोऽप्यजायत । किंच तदा यज्जातं भूतजातं यच्च जंत्वं ॥ कृत्यार्थे त्वन्प्रत्ययः ॥ जनितव्यं यद्विश्वमस्ति तत्सर्वमभिभूरसि । त्वमहिम्नाभिभूतवानसि ॥

आमासु पक्कमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥७॥
आमासु । पक्कं । ऐरयः । आ । सूर्यं । रोहयः । दिवि ।
घर्मं । न । सामन् । तपत । सुवृक्तिऽभिः । जुष्टं । गिर्वणसे । बृहत् ॥७॥

हे इंद्र आमास्वपक्कासु गोषु पक्कं पय ऐरयः । प्रैरयश्च । तथा मंत्रः । आमासु चिद्दधिषे पक्कमंतः । ऋ॰ १. ६२. ९. । इति । किंच दिवि द्युलोके सूर्यमा रोहयश्च । पूर्वं पणयो नामासुरा अंगिरसां गा अपहृत्यांधकारावृते कस्मिंश्चित्पर्वते ताः स्थापितवंतः । ततोऽंगिरस इंद्रं स्तुत्वा गाः पुनरस्मभ्यमाहरेति तैरुक्त इंद्रो गवां स्थानं तमसावृतं दृष्ट्वा तत्र गोदर्शनाय द्युलोके सर्वप्रकाशकं सूर्यमारोहितवान् स्थापितवानसि ॥ चादिलोपे विभाषेति पूर्वस्यैरय इत्यस्य न निघातः ॥ अथ परोक्षकृतोऽर्धर्चः । हे स्तोतारः सुवृक्तिभिः शोभनाभिः स्तुतिभिस्तपत । इंद्रं तीक्ष्णीकुरुत । इंद्रं स्तुतिभिः प्रवर्धयतेत्यर्थः । तत्र दृष्टांतः । घर्मं न यथा घर्मं दीपनशीलं प्रवर्ग्यं सामन् ॥ सुपां सुलुगिति तृतीयाया लुक् ॥ सामभिर्यथा तपंति तद्वत् । ततो गिर्वणसे गीर्भिर्वननीयायेंद्राय जुष्टं प्रीतिकरं पर्याप्तं वा बृहत्साम गायत ॥ ॥१२॥

आ नो विश्वास्विति षडृचं दशमं सूक्तं । नृमेधपुरुमेधावृषी । विषमसंख्याका बृहत्यः समसंख्याकाः सतोबृहत्यः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । आ नो विश्वासु षडिति ॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावेतत्सूक्तं । सूत्र्यते हि पंचमारण्यके । आ नो विश्वासु हव्यो या इंद्र भुज आभरः । ऐ॰ आ॰ ५. २. ४. । इति ॥

आ नो विश्वासु हव्य इंद्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥१॥
आ । नः । विश्वासु । हव्यः । इंद्रः । समत्ऽसु । भूषतु ।
उप । ब्रह्माणि । सवनानि । वृत्रऽहा । परमऽज्याः । ऋचीषमः ॥१॥

ऋषिरनयेंद्र एवं करोत्वित्याशास्ते । विश्वासु सर्वासु समत्स्वसुरयुद्धेषु हव्यः सर्वैर्देवैरात्मरक्षणार्थमाह्वातव्यः एतादृश इंद्रो नोऽस्माकं ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवीरूपाण्यन्नानि वोपा भूषतु । उदकमनुभावयतु । सेवतामित्यर्थः । यद्वा । एतान्यलंकरोतु । तदागमनेन स्तोत्राणि हवींषि वालंकृतानि भवंति । तथा सवनानि प्रातःसवनादीनि त्रीणि सवनानि च भूषतु । कीदृश इंद्रः । वृत्रहा वृत्रस्यासुरस्य पापस्य वा हंता परमज्याः । युद्धेषु शत्रुहननार्थं परमाविनश्वरी ज्या मौर्वी यस्य स तथोक्तः । यद्वा । परमाम्बलेन प्रकृष्टाञ्शत्रूञ्जिनाति हिनस्तीति परमज्याः । ऋचीषमः स्तुत्या समः स्तुतिभिरभिमुखीकरणीयः । एतादृगिंद्रः स्तोत्राणि भूषत्विति ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥
त्वं । दाता । प्रथमः । राधसां । असि । असि । सत्यः । ईशानऽकृत् ।
तुविऽद्युम्नस्य । युज्या । आ । वृणीमहे । पुत्रस्य । शवसः । महः ॥२॥

हे इंद्र प्रथमः सर्वेषां मुख्यस्त्वं राधसां धनानां दातासि । यद्वा । धनदातॄणां मध्ये त्वं प्रथम आदिमो भवसि । तथेशानकृत्त्वं स्तोतॄनीशानानैश्वर्ययुक्तान् कुर्वंस्त्वं सत्यः सत्यकर्मासि । यथार्थकर्मा भवसीत्यर्थः । यस्मादेवं तस्माद्वयं तुविद्युम्नस्य बहुधनवतो बह्वन्नस्य वा शवसो बलस्य पुत्रस्य शत्रुवधार्थं बलकारणत्वेनोत्पन्नत्वात्तत्पुत्रस्य अत एव महो महतस्तव युज्या योग्यानि धनान्या वृणीमहे । संभजामहे ॥

ब्रह्मा त इंद्र गिर्वणः क्रियंते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेंद्र या ते अमन्महि ॥३॥
ब्रह्म । ते । इंद्र । गिर्वणः । क्रियंते । अनतिऽअद्भुता ।
इमा । जुषस्व । हरिऽअश्व । योजना । इंद्र । या । ते । अमन्महि ॥३॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीयेंद्र अनतिद्भुता । सर्वानतिक्रम्य न भवंति । इंद्रगुणव्यापकानि । यथार्थभूतानीत्यर्थः । तादृशानि यानि ब्रह्माणि स्तोत्राणि ते त्वदर्थमस्माभिः क्रियंते हे हर्यश्व हरिताश्ववन् हे इंद्र योजनानि तव सम्यग्योजनशीलानि तानीमानि स्तोत्राणि जुषस्व । सेवस्व । किंच हे इंद्र ते त्वदर्थं या यानि स्तोत्राण्यमन्महि वयमुच्चरामः तानि सर्वाणि सेवस्व ॥

त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृंजसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाचं रयिमा कृधि ॥४॥
त्वं । हि । सत्यः । मघऽवन् । अनानतः । वृत्रा । भूरि । निऽऋंजसे ।
सः । त्वं । शविष्ठ । वज्रऽहस्त । दाशुषे । अर्वाचं । रयिं । आ । कृधि ॥४॥

हे मघवन् धनवन्निंद्र सत्यः सत्यकर्मा त्वमेवानानतः केषामप्यप्रह्वः सन् भूरि भूरीणि वृत्राणि रक्षांसि न्यृंजसे । तानि प्रह्वीभावयसि । न्यक्करोषीत्यर्थः । हिरवधारणे । हे शविष्ठ बलेन वृद्धतम हे वज्रहस्त । वज्रो हस्ते यस्य स तथोक्तः । हे इंद्र स तादृशस्त्वं दाशुषे तुभ्यं हविर्दत्तवते यजमानाय रयिं धनादिकमर्वाचमर्वाचीनमभिमुखं यथा गच्छति तथा तमा कृधि । समंतात्कुरु ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे त्वमिंद्र यशा असीति प्रगाथो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्र्यते च । त्वमिंद्र यशा असींद्र क्रतुं न आ भर । आ॰ ७.४. । इति ॥

त्वमिंद्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥५॥
त्वं । इंद्र । यशाः । असि । ऋजीषी । शवसः । पते ।
त्वं । वृत्राणि । हंसि । अप्रतीनि । एकः । इत् । अनुत्ता । चर्षणिऽधृता ॥५॥

हे शवसस्पते बलस्य पालयितर्हे इंद्र ऋजीषी । ऋजीष उपार्जितोऽभिषुतः सोमः । तद्वांस्त्वं यशा यशस्व्यसि । कथमस्य यशस्वित्वं तदाह । अप्रतीनि बलिभिरप्यप्रतिगतानि अत एवानुत्तान्यैर्नोत्तुमशक्यानि वृत्राणि रक्षांसि त्वमेक इदसहाय एव चर्षणीधृतासुरादिहननद्वारेण मनुष्याणां धारकेण वज्रेण हंसि । संप्रहरसि । अत एवास्य यशस्वित्वं ॥

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इंद्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥६॥
तं । ऊं इति । त्वा । नूनं । असुर । प्रऽचेतसं । राधः । भागंऽइव । ईमहे ।
महीऽइव । कृत्तिः । शरणा । ते । इंद्र । प्र । ते । सुम्ना । नः । अश्नवन् ॥६॥

हे असुर बलवन् प्राणवन् हे इंद्र य उक्तगुणोऽस्ति तं प्रचेतसं प्रकृष्टज्ञानं त्वा । उ इत्यवधारणे । पितृव-

त्वोषकं त्वामेव राधो धर्मादिसाधनं धनं नूनमिदानीमीमहे । वयं याचामहे । तत्र दृष्टांतः । भागमिव । यथा कश्चित्पितृभागभूतं धनं याचते तद्वदिंद्रो यजमानेभ्यः स्तोतृभ्यश्च धनं प्रयच्छत्येव । तस्माद्भागभूतं धनं यष्टारो वयं याचामहे । हे इंद्र महीव छत्तिः । छत्तिर्यशो वान्नं वा ॥ छती छेदने । करणे क्तिन् । छंतत्य-नेनेति ॥ ईदृशी छत्तिरिव ते तव शरणा शरणं गृहमंतरिक्षे द्युलोके महद्वर्तते । अत्र यास्कः । छत्तिः छंततेर्यशो वान्नं वा महीव छत्तिः शरणा त इंद्र सुमहत्त इंद्र शरणमंतरिक्षे छत्तिरिवेति । नि॰ ५. २२. । किंच ते तव स्वभूतानि सुम्ना सुम्नानि पुत्रादिविषयसुखानि च नोऽस्मान्प्राश्नवन् । प्रकर्षेणाश्नुवंतां । व्याप्नुवंतु ॥ अश्नो-तेर्लेट्यडागमः ॥ ॥ १३ ॥

कन्या वारिति सप्तर्चमेकादशं सूक्तं । अत्रेः पुत्र्यपालाख्या त्वग्दोषपरिहारायानेन सूक्तेनेंद्रं स्तुतवती । अतः सैवर्षिः । प्रथमाद्वितीये पंक्तौ शिष्टाः पंचानुष्टुभः । इंद्रो देवता । तथा चानुक्रांतं । कन्या वाः सप्तात्रेय्य-पालेतिहास ऐंद्र आनुष्टुभं द्विपंक्त्यादीति ॥ विनियोगो लैंगिकः ॥ अत्रेतिहासमाचक्षते । पुरा किलात्रिसुतापाला ब्रह्मवादिनी केनचित्कारणेन त्वग्दोषदुष्टा सत्यत एव दुर्भगेति भर्त्रा परित्यक्ता पितुराश्रमे त्वग्दोषपरिहाराय चिरकालमिंद्रमधिकृत्य तपस्तेपे । सा कदाचिदिंद्रस्य सोमः प्रियकरो भवति तमिंद्राय दास्यामीति बुद्ध्या नदीतीरं प्रत्यागमत् । सा तत्र स्नात्वा पथि सोममप्यलभत । तमादाय गृहं प्रत्यागच्छंती मार्ग एव तं चखाद । तद्भक्षणकाले दंतघर्षणजातं शब्दं ग्राव्णां सोमाभिषवध्वनिमिति मत्वा तदानीमेवेंद्रः समागमत् । आगत्य तामुवाच । किमत्र ग्रावाणोऽभिषुण्वंतीति । सा प्रत्यूचे । अत्र कन्या स्नानार्थमागत्य सोमं दृष्ट्वा तं भक्षयति तद्भक्षणजो ध्वनिरेव न तु ग्राव्णां सोमाभिषवध्वनिरिति । तथा प्रत्युक्त इंद्रः पराङावर्तत । गच्छंतमिंद्रं सा पुनरब्रवीत् । किमर्थं निवर्तसे त्वं तु सोमपानाय गृहं गृहं प्रतिगच्छसि । इदानीमत्रापि मम दंष्ट्राभ्यामभिषुतं सोमं पिब धानादींश्च भक्षयेति । सैवेंद्रमनाद्रियमाणा सती पुनरप्याह । अत्रागतं त्वामिंद्र इति न जानामि त्वयि गृहमागते बहुमानं करिष्यामीतींद्रमुक्त्वात्र समागत इंद्र एव नान्य इति निश्चित्य स्वास्ये निहितं सोममाह । हे सोम त्वमागतायेंद्राय पूर्वं शनैस्ततः शनकैः क्षिप्रं परिस्रवेति । तत इंद्रस्तां कामयित्वा तस्या आस्य एव दंष्ट्राभिषुतं सोममपात् । तत इंद्रेण सोमे पीते सति त्वग्दोषादहं भर्त्रा परित्यक्ता सतीदानीमिंद्रेण संगतेत्यपालायामुक्तायामिंद्रस्तां व्याजहार । किं कामयसे तदहं करिष्यामीत्युक्ते सा वरमचीकमत । मम पितुः शिरो रोमवर्जितं तस्योषरं क्षेत्रं फलादिरहितं मम गुह्यस्थानमप्यरोमशमेतानि रोमफलादियुक्तं कुर्वित्युक्तायां तत्पितृशिरःस्थितं खलतिमपहाय क्षेत्रं च फलादियुक्तं कृत्वैतस्यास्त्वग्दोषपरिहाराय स्वकीयरथच्छिद्रे शकटस्य युगस्य च छिद्रे एतां त्रिवारं निश्चकर्ष । तस्याः पूर्वापहृता या त्वक् शल्यको द्वितीया गोधा तृतीया कृकला-सोऽभूत् । तत इंद्रस्तामप्यपालां सूर्यसदृशत्वचमकरोदित्यैतिहासिकी कथा । एतच्च शाट्यायनब्राह्मणे स्पष्टमुक्तं । तद्ब्राह्मणं तत्तदृग्व्याख्यानसमये दर्शयिष्यते । एषोऽर्थः कन्या वारित्यादिष्वृक्षु प्रतिपाद्यते ॥

कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरंत्यब्रवीदिंद्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥
कन्या । वाः । अवऽयती । सोमं । अपि । स्रुता । अविदत् ।
अस्तं । भरंती । अब्रवीत् । इंद्राय । सुनवै । त्वा । शक्राय । सुनवै । त्वा ॥ १ ॥

वाःउदकं प्रत्यवायती स्नानार्थमभ्यवगच्छंती कन्यापाला नाम स्त्री स्रुता स्रुतौ मार्गे सोममप्यविदत् । अलभत ॥ विद्लृ लाभे । लुङि रूपं ॥ तं सोममस्तं गृहं प्रति भरंत्याहरंती सा सोममब्रवीत् । हे सोम त्वा त्वामिंद्राय सुनवै । मम दंतैरेवाभिषुणवै । पुनर्हे सोम त्वा त्वां शक्राय समर्थायेंद्राय सुनवै । इदानीमेवा-भिषवं करवै । सोमभक्षणकाले दंतध्वनिं ग्रावध्वनिमिति मत्वेंद्रस्तामगमत् । एषोऽर्थः शाट्यायनब्राह्मणे स्पष्टमभिहितः । सा तीर्थमभ्यवयंती सोमांशुमविंदत्तं समखादत्तस्यै ह ग्रावाण इव दंता ऊदुः । स इंद्र आद्रवत् ग्रावाणो वै वदंतीति । सा तमभिव्याजहार कन्या वारवायती सोममपि स्रुताविददित्यसौ त इदं ग्रावाण इव दंता वदंतीति विदित्वेंद्रः पराङावर्तत । तमब्रवीदसौ य एषि वीरक इत्यादिनेति ॥

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जंभसुतं पिब धानावंतं करंभिणमपूपवंतमुक्थिनं ॥२॥
असौ । यः । एषि । वीरकः । गृहंऽगृहं । विऽचाकशत् ।
इमं । जंभऽसुतं । पिब । धानाऽवंतं । करंभिणं । अपूपऽवंतं । उक्थिनं ॥२॥

सा शक्रमब्रवीत् । हे इंद्र वीरको वीरः समर्थस्त्वं योऽसौ त्वं विचाकशत् ॥ काशृ दीप्तौ । यङ्लुकि शतरि रूपं । धातोर्ह्रस्वश्छांदसः ॥ अत्यर्थं दीप्यमानः सन् गृहं गृहं यजमानगृहं प्रति सोमपानाय त्वमेषि । गच्छसि । अतस्त्वमत्रापि जंभसुतं मम दंतैरभिषुतमिमं सोमं पिब । कीदृशं । धानावंतं । धाना भ्रष्टयवाः । तद्वंतं करंभिणं सक्तुमंतमपूपवंतं पुरोडाशादिसहितमुक्थिनं स्तोत्रादियुक्तमेतादृशं सोममन्नैव पिबेति । सा सोमेन सह धानादीनावेदयत् स्तोत्रं चाकार्षीदित्यर्थः ॥

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेंद्रायेंदो परि स्रव ॥३॥
आ । चन । त्वा । चिकित्सामः । अधि । चन । त्वा । न । इमसि ।
शनैःऽइव । शनकैःऽइव । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥३॥

पुनरपि सा तमनादृत्याह । हे इंद्र । चनेति निपातसमुदायोऽवधारणार्थे । त्वा त्वामा चिकित्सामः । ज्ञातुमिच्छाम एव । इह मार्ग एवागतं त्वा त्वां नाधीमसि । नाधिगच्छामः । अत्रापि चनेत्यवधारणे । मम गृहमागच्छंतं त्वामिंद्र इति न जानीम एवेत्यपाला तमिंद्रमुक्त्वा स्वास्ये स्थितं सोमं प्रत्याह । हे इंदो क्षरणशील सोम अस्मा आगतायेंद्राय तदर्थं पूर्वं शनैर्मंदं मंदं ततः शनकैरिव ॥ कुत्सितार्थेऽकच् ॥ कुत्सितं शनैः शनकैः । क्षिप्रमित्यर्थः । क्षिप्रमेव त्वं परि स्रव । मदीयदंष्ट्राभिरभिषूयमाणः सन् परितः क्षरेति । तथा यज्ञेष्वपि ग्रावभिरभिषूयमाणः सोमः प्रथमं शनैः परिस्रवति ततः शनकैः क्षिप्रमिति तदभिप्रायेणोक्तं । तत इंद्र एतद्वाक्यं श्रुत्वा तदानीमेवमभिषुतं सोमं यज्ञस्थानीयादपालामुखादेवाधासीत् । उक्तार्थः शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभ्यधायि । अनादृियमाणेव तमब्रवीदा चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसीति । पुरा मां सर्वयर्चापाला स्तौतीत्युपपर्यावर्तत शनैरिव शनकैरिवेंद्रायेंदो परि स्रवेति ह वा अस्यै मुखात्सोमं निरधयत्सोमपीथ इह वा अस्य भवति य एवं विद्वान् स्त्रीमुपजिघ्रतीति ॥

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिंद्रेण संगमामहै ॥४॥
कुवित् । शकत् । कुवित् । करत् । कुवित् । नः । वस्यसः । करत् ।
कुवित् । पतिऽद्विषः । यतीः । इंद्रेण । संऽगमामहै ॥४॥

सोमं पीतवानिंद्रोऽस्मानेवं करोत्वित्याह । स इंद्रः कुविद्बहुवारमस्मान्शकत् । शक्तान् समर्थान्करोतु । किंच कुविद्बहु चास्मभ्यं करत् । करोतु । किंच स एवेंद्रो नोऽस्मान्कुविद्बहुशस्त्वो वस्यसो वसीयसोऽतिशयेन वसुमतः करोतु ॥ करोतेः शक्नोतेश्च लेट्यडागमः ॥ इदानीमात्रेय्यहमेवं करिष्यामीति वदति । पूर्वं कुविद्बहु पतिद्विषस्त्वग्दोषात्पतिभिर्भर्तृभिर्बहुवारं द्विष्टा अत एव यतीः पतिभ्यः सकाशादितो गच्छंत्यो वयं कैश्चिदप्यगृह्यमानाः सत्यः संप्रतींद्रेण सह संगमामहै । संगच्छामहै । सर्वत्र पूजार्थे बहुवचनं । संगमशब्देनेंद्रोऽपालामचकमतेति ॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानींद्र वि रोहय।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥५॥
इमानि। त्रीणि। विष्टपा। तानि। इंद्र। वि। रोहय।
शिरः। ततस्य। उर्वरां। आत्। इदं। मे। उप। उदरे ॥५॥

इंद्रेण किं कामयसे तद्दास्यामीत्युक्ता सा वरमनया प्रार्थयते। हे इंद्र इमानि त्रीणि विष्टपानि स्थानानि संति। तानि त्रीणि स्थानानि वि रोहय। उत्पादय। कानि तानि। ततस्य मम पितू रोमवर्जितं शिरः। खलतिमित्यर्थः। तच्चापगमय। रोमशं कुर्वित्यर्थः। उर्वरां तस्योषरं क्षेत्रं सर्वसस्याढ्यं कुरु। आदनंतरं मे ममोपोदर उपोदरस्य समीपे यदिदं स्थानं। गुह्यमित्यर्थः। तच्च त्वग्दोषे सत्यसंजातरोमकं। तदपि त्वग्दोषपरिहारेण रोमयुक्तं कुरु। एतानि त्रीणि स्थानानि। एषोऽर्थः शाट्यायनके प्रपंचेनोक्तः। तामब्रवीदपाले किं कामयसीति। साब्रवीदिमानि त्रीणि विष्टपेति खलतिर्हास्य पिता स तं हाखलतिं चकारोर्वरा हास्य न जज्ञे सो जज्ञ उपस्थे हास्यै रोमाणि नासुस्तान्यु ह जज्ञिर इत्यस्योत्तरा भूयसे निवर्चनायासौ च या न इति॥

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१ मम।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥६॥
असौ। च। या। नः। उर्वरा। आत्। इमां। तन्वं। मम।
अथो इति। ततस्य। यत्। शिरः। सर्वा। ता। रोमशा। कृधि ॥६॥

उक्तमेवार्थमनया विवृणोति। नोऽस्माकं पितुर्यासा उर्वरा यदिदमूषरं क्षेत्रमस्ति। आदनंतरं ममेमां तन्वमिदं त्वग्दोषदुष्टं गुह्यस्थानं। अथो अथापि च ततस्य तातस्य यच्छिरो रोमवर्जितमस्ति। एतानि सर्वा सर्वाणि तानीमानि त्रीणि स्थानानि रोमशा रोमशानि कृधि। कुरु॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिंद्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचं ॥७॥
खे। रथस्य। खे। अनसः। खे। युगस्य। शतक्रतो इति शतऽक्रतो।
अपालां। इंद्र। त्रिः। पूत्वी। अकृणोः। सूर्यऽत्वचं ॥७॥

अनयापालां सूर्यसदृशप्रभामकरोदित्याह। हे शतक्रतो हे शतसंख्याकयज्ञ बहुविधप्रज्ञ वा हे इंद्र रथस्य स्वकीयस्य खे पृथुतरे छिद्रे तथानसः शकटस्य खे तदपेक्षयाल्पे छिद्रे युगस्य खे चाल्पतरे सूक्ष्मे छिद्रे रथशकटयुगानां छिद्रेषु त्वग्दोषपरिहाराय त्रिस्त्रिवारं निष्कर्षणेन पूत्वी शोधयित्वा ततोऽपालामेतन्नामिकामत्रिसुतां ब्रह्मवादिनीं सूर्यत्वचं सूर्यसमानत्वचमकृणोः। अकरोः। कल्याणतमरूपभाजमकरोरित्यर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभिहितः। तां खे रथस्यात्यबृहत्सा गोधाभवत्तां खेऽनसोऽत्यबृहत्सा संश्लिष्टकाभवत्तदेषाभ्यनूच्यते खे रथस्य खेऽनस इति। तस्यै ह यत्कल्याणतमं रूपाणां तद्रूपमासेति त्वग्दोषापनयनायावादिद्वारेष्वतिकर्षणमिति। यस्त्वग्दोषदूषितः सन्नेतत्सूक्तं पठति तस्य त्वग्दोषमपगमय्य सूर्यसदृशकांतिमिंद्रः करोतीति सूक्तं प्रशस्यते॥ ॥१४॥

पांतमा व इति त्रयस्त्रिंशदृचं द्वादशं सूक्तमांगिरसस्य श्रुतकक्षस्य सुकक्षस्य वार्षमैंद्रं। आद्यानुष्टुप् शिष्टा गायत्र्यः। तथानुक्रम्यते। पांतं त्रयस्त्रिंशच्छ्रुतकक्षः सुकक्षो वाद्यानुष्टुबिति॥ महाव्रते गायत्रतृचाशीतौ प्रथमावर्जमिदं सूक्तमुत्तरं च। पंचमारण्यके सूत्रितं च। पुरुहूतं पुरुष्टुतमिति शेषः। ऐ० आ० ५. २. ३.। इति॥

प्रथमे रात्रिपर्याये होतुः शस्त्र आद्यौ तृचौ स्तोत्रियानुरूपौ। सूत्रितं च। पांतमा वो अंधसोऽपादु शिप्र्यंधसः ।आ० ६. ४.। इति ॥

पांतमा वो अंधस इंद्रमभि प्र गायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनां ॥१॥

पांतं। आ। वः। अंधसः। इंद्रं। अभि। प्र। गायत। विश्वऽसहं। शतऽक्रतुं। मंहिष्ठं। चर्षणीनां ॥१॥

हे ऋत्विजः वो युष्मदीयमंधसः सोमलक्षणमन्नमा पांतमाभिमुख्येन पिबंतं ॥ पा पाने। छांदसः शपो लुक्। सर्वे विधयश्छंदसि विकल्प्यंत इति न लोकाव्ययेति षष्ठीप्रतिषेधाभावः। ततोऽंधस इत्यस्य कर्तृकर्मणो-रिति षष्ठी ॥ सोममाभिमुख्येन पिबंतमेतादृशमिंद्रं प्र गायत। प्रकर्षेणाभिष्टुत। कीदृशं। विश्वसहं सर्वेषां शत्रूणामभिभवितारं सर्वेषां भूतजातानां वा अत एव शतक्रतुं बहुविधप्रज्ञानं बहुविधकर्माणं वा चर्षणीनां मनुष्याणां मंहिष्ठं धनस्य दातृतमं। यद्वा। यजमानानां यष्टव्यत्वेन पूजनीयमिंद्रं गायतेति समन्वयः ॥

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतं। इंद्र इति ब्रवीतन ॥२॥

पुरुऽहूतं। पुरुऽस्तुतं। गाथान्यं। सनऽश्रुतं। इंद्रः। इति। ब्रवीतन ॥२॥

हे ऋत्विग्यजमानाः पुरुहूतं यज्ञेषु बहुभिराहूतं पुरुष्टुतं बहुभिः स्तोत्रशस्त्रादिभिः स्तुतं अत एव गाथान्यं गाथायोग्यं गातव्यं सनश्रुतं सनातनतया प्रसिद्धं एवंविधं देवमिंद्र इति यूयं ब्रवीतन। ब्रूयात॥ ब्रूञ् व्यक्तायां वाचीत्यस्य लोटि व्यत्ययेन ध्वमस्तनबादेशः। अत एव गुणः ॥

इंद्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३॥

इंद्रः। इत्। नः। महानां। दाता। वाजानां। नृतुः। महान्। अभिऽज्ञु। आ। यमत् ॥३॥

इंद्र इत्पूर्वोक्तलक्षण इंद्र एव नोऽस्मभ्यं महानां महतां वाजानामन्नानां। यद्वा। महानां ॥ वर्णव्यत्ययः ॥ मघानां धनानां वाजानामन्नानां च। दाता भवतु। कीदृशः। नृतुः ॥ नृतिशृध्योः कूः ।उ० १. ९३.। इति कूप्रत्ययः। ह्रस्वश्छांदसः ॥ सर्वस्य नर्तयिता। यद्वा ॥ नॄ नये। औणादिकस्तुप्रत्ययः। धातोर्ह्रस्वश्छांदसः ॥ स्तोतृभ्यो गवादिनेता। अत एव महान् स इंद्रोऽभिज्ञ्वभिगतजानुकमस्मभ्यमा यमत्। आयच्छतु। ददातु। यद्वा। स इंद्रोऽभिज्ञ्वस्मदभिमुखमागच्छन्धनं स्वहस्तयोः परिगृह्यास्मान्नयतु। धनं यत्वास्मभ्यं दद्यात्वित्यर्थः ॥

अपादु शिप्र्यंधसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः। इंदोरिंद्रो यवाशिरः ॥४॥

अपात्। ऊं इति। शिप्री। अंधसः। सुऽदक्षस्य। प्रऽहोषिणः। इंदोः। इंद्रः। यवऽआशिरः ॥४॥

शिप्री। शिप्रे हनू नासिके वा। शोभनहनुः। यद्वा। शिप्राः शीर्षण्याः। सुशिरस्त्राणः। स इंद्र एव प्रहो-षिणः प्रकर्षेण देवान्हविर्भिर्जुह्वतः सुदक्षस्यैतन्नामकस्यर्षेः संबंधि यवाशिरः ॥ श्रीङ् पाके। आङ्पूर्वस्यापस्पृधे-थामानृचुरित्यादिना धातोः शिरादेशः ॥ यवैरामिश्रितं यवैः सह पक्वमिंदोः सर्वतः पात्रेषु क्षरदंधसः सोमल-क्षणमन्नमपात्। अपिबत्। यद्वा। अस्य सोमस्य भागमिंद्रार्थं परिकल्पितं सोमांशमपिबत्। उ इत्यवधारणे ॥

तम्वभि प्रार्चतेंद्रं सोमस्य पीतये। तदिद्ध्यस्य वर्धनं ॥५॥

तं। ऊं इति। अभि। प्र। अर्चत। इंद्रं। सोमस्य। पीतये। तत्। इत्। हि। अस्य। वर्धनं ॥५॥

हे ऋत्विजः तमु तमेवेंद्रमभ्याभिमुख्येन प्रार्चत । प्रकर्षेण स्तुत । किमर्थं । सोमस्य पीतयेऽभ्यागत्य सोमपानाय । किमर्थं सोमपानायेति विशेष्यते तदाह । तदित्थं सोमपानमेवास्येंद्रस्य वर्धनं वर्धकं भवति खलु । तस्मात्सोमपानजहर्षाय प्रार्चत ॥ ॥१५॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ॥६॥

अस्य । पीत्वा । मदानां । देवः । देवस्य । ओजसा । विश्वा । अभि । भुवना । भुवत् ॥६॥

देवो द्योतमान इंद्रोऽस्मास्माभिर्दीयमानस्य सोमस्य मदानां मदकरान्रसान् पीत्वा पानं कृत्वा । यद्वा । अस्येतं सोमं पीत्वा तथा मदानां मदसाधनादीनि भक्षयित्वा । देवस्य गृहेषु शोभमानस्य यद्वा देवनशीलस्य देवैः काम्यमानस्य सोमस्य पानजातेनौजसा बलेन विश्वा भुवना सर्वाणि भुवनानि भूतजातान्यभि भुवत् । अभिभवति । सोमस्य ता मद इंद्रश्चकार । ऋ॰ २.१५.२. । इत्यादिषु सोमपानमदे सर्वाणि वृत्रहननादिकर्माणि चकारेत्येवमत्रापि सर्वाणि भूतानि भुवनादीनि कर्माण्यकार्षीदिति ॥

प्रथमे पर्याये होतुः शस्त्रे त्यमु वः सत्रासाहमित्यादिसूक्तशेषः । सूचितं च । त्यमु वः सत्रासाहमिति सूक्तशेषोऽभि त्वं मेषं । आ॰ ६.४. । इति ॥ अप्तोर्यामेऽच्छावाकातिरिक्तोक्थे त्यमु वः सत्रासाहमिति तृचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । त्यमु वः सत्रासाहं सत्रा ते अनु कृष्टय इति वा स्तोत्रियानुरूपौ । आ॰ ९.११. । इति ॥ व्यूळ्हस्य दशरात्रस्य चतुर्थेऽहनि निष्केवल्य एष एव तृचो निविद्धानीयः । सूचितं च । इमं नु मायिनं हुवे त्यमु वः सत्रासाहं । आ॰ ८.८. । इति ॥

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतं । आ च्यावयस्यूतये ॥७॥

त्यं । ऊं इति । वः । सत्राऽसहं । विश्वासु । गीर्षु । आऽयतं । आ । च्यवयसि । ऊतये ॥७॥

यजमानः स्तोतारं संबोध्याह । हे स्तोतः सत्रासाहं । सत्राशब्दो बहुवाची । बहूनामभिभवितारं । यद्वा । शत्रून् स्वबलेन संगत्य जेतारं । वो युष्मदीयेषु विश्वासु गीर्षु सर्वेषु स्तोत्रेष्वायतं विस्तृतं । सर्वत्रेंद्र एव स्तूयते । तस्मात्तेषु विततं त्वं । उ इत्यवधारणे । तमेवेंद्रमूतयेऽस्मद्रक्षणाया च्यावयसि ॥ च्युङ् प्लुङ् गतौ ॥ त्वदीयैः स्तोत्रैर्यज्ञं प्रत्याभिमुख्येनागमय ॥

युध्मं संतमनर्वाणं सोमपामनपच्युतं । नरमवार्यक्रतुं ॥८॥

युध्मं । संतं । अनर्वाणं । सोमऽपां । अनपऽच्युतं । नरं । अवार्यऽक्रतुं ॥८॥

एवंगुणोपेतमिंद्रमागमयेत्याह । युध्मं शत्रूणां संप्रहारकं संतं अत एवानर्वाणमन्यैरप्रत्यृतमनभिगतं तस्मादनपच्युतं संग्रामेषु शत्रुभिरहिंसितं सोमपां सोमस्य पातारमस्य सोमस्य मदे सत्यवार्यक्रतुं भटैरनिवारणीयकर्माणं नरं सर्वस्य नेतारं । एतादृग्गुणोपेतमिंद्रमागमयेति पूर्वेण सह संबंधः ॥

शिक्षा ण इंद्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥९॥

शिक्ष । नः । इंद्र । रायः । आ । पुरु । विद्वान् । ऋचीषम । अव । नः । पार्ये । धने ॥९॥

हे ऋचीषम स्तुत्या सम । यद्वा ॥ ईष गतिहिंसादर्शनेषु । अस्मादमप्रत्ययः ॥ सर्वैर्गंतव्य दर्शनीय वा । उक्तगुणोपेत हे इंद्र विद्वान् सर्वविषयज्ञानवांस्त्वं शत्रुभ्य आहृत्य रायो धनानि नोऽस्मभ्यं पुरु बहुवारं शिक्ष । प्रयच्छ । यद्वा । पुर्विति रायो विशेषणं । बहूनि धनानि प्रयच्छ । किंच पार्ये । पाराः शत्रवः । तत्रभवे धन आजिहीर्षिते शत्रुधने नोऽस्मानव । रक्ष । शत्रून् हत्वा तद्धनेनास्मान् पालयेत्यर्थः ॥

अतश्चिदिंद्र ण उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥१०॥

अतः । चित् । इंद्र । नः । उप । आ । याहि । शतऽवाजया । इषा । सहस्रऽवाजया ॥१०॥

हे इंद्र अतश्चिदस्माद्द्युलोकादेव यद्वास्माच्छ्रुत्स्थानात् शतवाजया शतसंख्याकबलयुक्तेन तथा सहस्रवाजया। वाजोऽन्नं। सहस्रसंख्यान्नवता बहुबलान्निनेषान्नरसेन युक्तः सन्नोऽस्मानुपा याहि। अधिकमाभिमुख्येनागच्छ ॥ ॥१६॥

अयाम धीवंतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे। जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥११॥

अयाम। धीऽवंतः। धियः। अर्वत्ऽभिः। शक्र। गोऽदरे। जयेम। पृत्ऽसु। वज्रिऽवः ॥११॥

हे शक्र समर्थेंद्र धीवतः ॥ छंदसीर इति मतुपो वत्वं ॥ कर्मकरणात्कर्मवंतो वयं धियो युद्धजयार्थं कर्माण्ययाम। गच्छाम। ततो गोदरे ॥ दॄ विदारणे। अच इरितीप्रत्ययः ॥ गवां पर्वतानां दारयितर्हे वज्रिवो वज्रवन्। यद्वा। वजनं गमनं वज्रः। तद्वान् कुलिशः। तद्वन्निंद्र पृत्सु संग्रामेष्वर्वद्भिः सर्वतो गंतृभिस्त्वया दत्तैरश्वैर्जयेम। वयं तवादातृञ्जेष्यामः ॥

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा। उक्थेषु रणयामसि ॥१२॥

वयं। ऊं इति। त्वा। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। गावः। न। यवसेषु। आ। उक्थेषु। रणयामसि ॥१२॥

हे शतक्रतो बहुप्रज्ञान बहुकर्मन्विंद्र त्वा सर्वतः। उ इत्यवधारणे। त्वामेवोक्थेषु स्तोत्रशस्त्रादिकेषु वयं रणयामसि ॥ इदंतो मसिः ॥ आरणयामः। शब्दयामः। रमयाम इत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। गावो न यथा गोपालो यवसेषु तृणविशेषेषु गावो गाः पशुना समंताद्रमयति तद्वत् ॥ गाव इति सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वादौत्त्वाभावः ॥

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो। अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥१३॥

विश्वा। हि। मर्त्यऽत्वना। अनुऽकामा। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। अगन्म। वज्रिन्। आऽशसः ॥१३॥

हे शतक्रतो बहुप्रज्ञेंद्र मर्त्यत्वना मर्त्यत्वानि ॥ सुपां सुलुगिति विभक्तेराजादेशः। संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्दीर्घाभावः ॥ विश्वा हि विश्वान्येव मर्त्यत्वान्यनुकामा कामानभिलाषाननुगतानि। कामोपेतानीत्यर्थः। मनुष्याश्चैतानि कामयंत इत्यर्थः। तथा सति हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र वयमप्याशस आशंसनानि धनादिकामामगन्म। अवगच्छामः ॥ गमेर्लेटि बहुलं छंदसीति शपो लुक्। म्वोश्चेति मकारस्य नकारः ॥

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन्कामकातयः। न त्वामिंद्राति रिच्यते ॥१४॥

त्वे इति। सु। पुत्र। शवसः। अवृत्रन्। कामऽकातयः। न। त्वां। इंद्र। अति। रिच्यते ॥१४॥

हे शवसस्पुत्र बलनिमित्तमुत्पन्नत्वाद्बलस्य पुत्रेंद्र कामकातयः ॥ कै गै रै शब्दे ॥ कामपराः कातयः शब्दा येषां भवंति ते तथोक्ताः। तादृशा मनुष्यास्त्वे त्वयि स्ववृत्रन्। स्वस्वकामाभिपूरणार्थं सुष्ठु वर्तंते। तस्मान्मर्त्यत्वानि कामोपेतानीत्युत्पन्नं ॥ वृतु वर्तने। लङि च्छांदसो विकरणस्य लुक्। बहुलं छंदसीति रुडागमः ॥ यत एवं ततो हे इंद्र त्वां कश्चिदपि देवो नाति रिच्यते। बलेन धनेन वातिरिक्तः समर्थो नास्ति ॥

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा। धियाविड्ढि पुरंध्या ॥१५॥

सः। नः। वृषन्। सनिष्ठया। सं। घोरया। द्रवित्न्वा। धिया। अविड्ढि। पुरंऽध्या ॥१५॥

हे वृषन् कामानां वर्षितरिंद्र स पूर्वोक्तलक्षणस्त्वं सनिष्ठया ॥ षणु दाने ॥ धनादेर्दातृतमया घोरया सपत्नानां भयकारिण्या अत एव द्रवित्न्वा द्रावयित्र्या शत्रूणां पलायित्र्या ॥ द्रवतेरित्नुच्प्रत्ययः ॥ पुरंध्या बहूनां धारयित्र्या धिया तादृशेन कर्मणा नोऽस्मान् समविड्ढि । समंतात्पालय ॥ अवतेर्लोटि बहुलं छंदसीति शपो लुक् । बहुलवद्भावात्सिप इडागमः ॥ अस्मान्धनदानादिना रक्षेत्यर्थः ॥ ॥१७॥

यस्ते॑ नू॒नं श॑तक्रत॒विंद्र॑ द्यु॒म्नित॑मो॒ मदः॑ । तेन॑ नू॒नं मदे॑ मदेः ॥१६॥

यः । ते॒ । नू॒नम् । श॒त॒क्र॒तो॒ इति॑ शतऽक्रतो । इंद्र॑ । द्यु॒म्निऽत॑मः । मदः॑ । तेन॑ । नू॒नम् । मदे॑ । म॒देः॒ इति॑ मदेः ॥१६॥

अथ सोमः स्तूयते । हे शतक्रतो शतविधप्रज्ञान हे इंद्र द्युम्नितमो यशस्वितमो यो मदः । माद्यत्यनेनेति मदः सोमः । यः सोमो नूनं पुरा ते त्वदर्थमस्माभिरभिषुतोऽस्ति तेनास्माभिः प्रदीयमानेन सोमेन नूनमिदानीं मदे तत्पानेन मदे तव संजाते सत्यस्मानपि मदेः । धनादिदानेन त्वं मादय ॥ मदी हर्षे ॥ अत्रांतर्णीतण्यर्थः । बहुलमिति शप् ॥

यस्ते॑ चि॒त्रश्र॑वस्तमो॒ य इं॑द्र वृत्र॒हंत॑मः । य ओ॑जो॒दात॑मो॒ मदः॑ ॥१७॥

यः । ते॒ । चि॒त्रश्र॑वःऽतमः । यः । इं॒द्र॒ । वृ॒त्र॒हन्ऽत॑मः । यः । ओजः॑ऽदात॑मः । मदः॑ ॥१७॥

हे इंद्र चित्रश्रवस्तमोऽतिशयेन नानाविधकीर्तिर्यो मदः सोमस्ते त्वदर्थमस्माभिरभिषुतः । यः सोमो वृत्रहंतमोऽतिशयेन पापानां हंता । किंच यः सोम ओजोदातमोऽतिशयेन बलस्य दाता । तेनास्माभिर्दीयमानेन सोमेन त्वं माद्येरिति पूर्वेण संबंधः ॥

वि॒द्मा हि यस्ते॑ अद्रिव॒स्त्वाद॑त्तः सत्य सोमपाः । विश्वा॑सु दस्म कृ॒ष्टिषु॑ ॥१८॥

वि॒द्म । हि । यः । ते॒ । अ॒द्रि॒ऽवः॒ । त्वाऽद॑त्तः । स॒त्य॒ । सो॒म॒ऽपाः॒ । विश्वा॑सु । द॒स्म॒ । कृ॒ष्टिषु॑ ॥१८॥

हे अद्रिवः । अद्रिर्वज्रः । तद्वन् हे सत्य यथार्थकर्मन् सोमपाः सोमस्य पातर्दस्म दर्शनीय यद्वा शत्रूणामुपक्षपयितरिंद्र विश्वासु कृष्टिषु सर्वेषु सोमस्य दातृषु यजमानेषु त्वादत्तस्त्वया दत्तस्ते त्वदीयो यो रयिरस्ति तं विद्म हि । यष्टारो वयमपि जानीम एव । यद्वा । हे इंद्र सर्वेषु यष्टृषु मध्ये वयं ते त्वदीयमेव नान्यदीयमिति तं सोमं जानीम एव यः सोमस्त्वादत्तोऽस्माभिस्त्वदर्थं दीयते ॥ अत्र त्वादेशश्छांदसः ॥

प्रथमे पर्यायेऽच्छावाकस्येंद्राय मद्वने सुतमिति स्तोत्रियः । सूत्रितं च । इंद्राय मद्वने सुतमिंद्रमिन्नाथिनो बृहत् । आ॰ ६.४. । इति ॥

इंद्रा॑य॒ मद्व॑ने सु॒तं परि॑ ष्टोभंतु नो॒ गिरः॑ । अ॒र्कम॑र्चंतु का॒रवः॑ ॥१९॥

इंद्रा॑य । मद्व॑ने । सु॒तम् । परि॑ । स्तो॒भं॒तु॒ । नः॒ । गिरः॑ । अ॒र्कम् । अ॒र्चं॒तु॒ । का॒रवः॑ ॥१९॥

मद्वने ॥ माद्यतेः क्वनिप् ॥ मदनशीलायेंद्राय तदर्थं सुतमभिषुतं सोमं नोऽस्मदीया गिरः स्तुतिलक्षणा वाचः परि ष्टोभंतु । स्तोभतिः स्तुतिकर्मा । परितः सोमं स्तुवंतु । ततः कारवः स्तुतिकारिणः स्तोतारश्चार्कं सर्वैरर्चनीयं सोममर्चंतु । पूजयंतु ॥

यस्मि॑न्विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॒ रणं॑ति स॒प्त सं॒सदः॑ । इंद्रं॑ सु॒ते ह॑वामहे ॥२०॥

यस्मि॑न् । विश्वाः॑ । अधि॑ । श्रियः॑ । रणं॑ति । स॒प्त । सं॒ऽसदः॑ । इंद्र॑म् । सु॒ते । ह॒वा॒म॒हे॒ ॥२०॥

यस्मिन्निंद्रे विश्वाः सर्वाः श्रियः कांतयोऽध्यधिकं भवंति । अतिशयेन तेजस्वीत्यर्थः । किंच सप्त सप्तसंख्याकाः संसदः । सम्यग्यज्ञेषु कर्मकरणार्थं सीदंतीति संसदो होत्रकाः । यस्मिन्रणंति सोमप्रदानार्थं रमंते । यद्वा । यं शब्दयंति स्तुवंति । तं पूर्वोक्तलक्षणमिंद्रं सुते सोमेऽभिषुते सति हवामहे । वयं सोमपानायाह्वयामः ॥ ॥१८॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धंतु नो गिरः ॥२१॥

त्रिऽकद्रुकेषु । चेतनं । देवासः । यज्ञं । अत्नत । तं । इत् । वर्धंतु । नः । गिरः ॥२१॥

हे देवासो देवाः त्रिकद्रुकेष्वाभिप्लविकेष्वहःसु । ज्योतिर्गौरायुरिति त्रिकद्रुकाः । तेषु चेतनं ॥ चिती संज्ञाने ॥ चेतंति आमंत्रयनेन स्वर्गादिकमिति चेतनः । ज्ञानसाधनं यज्ञमत्नत । अतन्वत । स्वैः स्वैः कर्मभिः पालनैश्च विस्तारितवंतः ॥ तनु विस्तारे । लङि बहुलं छंदसीति विकरणस्य लुक् । तनिपत्योश्छंदसीत्युपधालोपः ॥ तमित्तमेवास्मदीयं यज्ञं नोऽस्माकं गिरः स्तुतिलक्षणा वाचो वर्धंतु । वर्धयंतु ॥

आ त्वा विशंत्विंदवः समुद्रमिव सिंधवः । न त्वामिंद्राति रिच्यते ॥२२॥

आ । त्वा । विशंतु । इंदवः । समुद्रंऽइव । सिंधवः । न । त्वां । इंद्र । अति । रिच्यते ॥२२॥

हे इंद्र इंदवः स्रवंतोऽस्माभिर्दीयमानाः सोमास्त्वा त्वामा विशंतु । सर्वतः प्रविशंतु । तत्र दृष्टांतः । समुद्रमिव सिंधवः स्यंदमाना नद्यो यथा समुद्रं जलाशयं सर्वतः प्रविशंति तद्वत् । यत एवं तस्मात् हे इंद्र त्वां कश्चिदपि देवो बलेन धनेन वा नाति रिच्यते । नातिरिक्तोऽस्ति । सामर्थ्यवांस्त्वत्तोऽधिको नास्तीत्यर्थः ॥

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इंद्र जठरेषु ते ॥२३॥

विव्यक्थ । महिना । वृषन् । भक्षं । सोमस्य । जागृवे । यः । इंद्र । जठरेषु । ते ॥२३॥

हे वृषन् कामानां वर्षितर्हे जागृवे जागरणशीलेंद्र त्वं तस्य सोमस्य भक्षं पानं प्रति महिना स्वमहिम्ना विव्यक्थ । सर्वतो व्याप्तवानसि ॥ व्यचेर्लिटि थल्यभ्यासस्योभयेषां । पा० ६. १. १७. । इति संप्रसारणं ॥ हे इंद्र यः सोमस्ते जठरेषूदरेषु प्रविशति तस्य पानं व्याप्तवानसीति शेषः ॥

अरं त इंद्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इंदवः ॥२४॥

अरं । ते । इंद्र । कुक्षये । सोमः । भवतु । वृत्रऽहन् । अरं । धामऽभ्यः । इंदवः ॥२४॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्यापामावरकस्यासुरस्य पापस्य वा हंतर्हे इंद्र सोमोऽस्माभिर्दीयमानस्ते तव कुक्षयेऽरमलं पर्याप्तो भवतु । किंचेंदवः सर्वतः क्षरणशीलाः सोमास्तव धामभ्यो नानाविधेभ्यः शरीरेभ्यस्तव तेजोभ्यो वारमलं पर्याप्ता भवंतु । अनेन तेजसा हविर्भाक्त्वमस्तीति सूचितं । अस्मदीयाः सोमा एव तव कुक्षये देहेभ्योऽपि पर्याप्ता भवंतु नान्यदीया इति भावः ॥

अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिंद्रस्य धाम्ने ॥२५॥

अरं । अश्वाय । गायति । श्रुतऽकक्षः । अरं । गवे । अरं । इंद्रस्य । धाम्ने ॥२५॥

श्रुतकक्षो नामर्षिर्गवाश्वादिंद्रं स्तौति । अयं श्रुतकक्ष एतन्नामक ऋषिरश्वार्थेंद्रेण दीयमानायाश्वायैतदर्थमरमलं गायति । इंद्रविषयं स्तोत्रं करोति । तथा गवेऽरमलं गायति । इंद्रस्येंद्रकर्तृकाय धाम्ने गृहाय तदर्थं चारं पर्याप्तं स्तौति । यदश्वादिकमिंद्रः प्रयच्छति तस्मै गायतीति । यद्वा ॥ इंद्रस्येति कर्मणि षष्ठी ॥ गवादिलाभार्थमिंद्रं स्तौति ॥

अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विंद्र भूषसि । अरं ते शक्र दावने ॥२६॥
अरं । हि । स्म । सुतेषु । नः । सोमेषु । इंद्र । भूषसि । अरं । ते । शक्र । दावने ॥२६॥

हे इंद्र सुतेष्वभिषुतेषु णोऽस्मदीयेषु सोमेषु । हि ष्मेत्यवधारणे । त्वमेव तेषां पानेऽलं पर्याप्तो भूषसि । भवसि । यद्वा । सोमेष्वभिषुतेषु सत्सु णोऽस्माकं पर्याप्तं धनं भूषसि ॥ भू प्राप्तौ ॥ त्वं प्रापय । तथा भवति हे शक्र समर्थेंद्र दावने धनादिकस्य दात्रे ते तुभ्यमस्माभिर्दीयमानाः सोमा अरमलं पर्याप्ता भवंतु ॥ ॥१९॥

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षंत नो गिरः । अरं गमाम ते वयं ॥२७॥
पराकात्तात् । चित् । अद्रिऽवः । त्वां । नक्षंत । नः । गिरः । अरं । गमाम । ते । वयं ॥२७॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र णोऽस्मदीया गिर इतो निर्गताः स्तुतयः पराकात्तात् । चिदप्यर्थः । अतिदूरादपि त्वां नक्षंत । व्याप्नुवंतु । किमुत समीपात्त्वामश्नुवंतामिति ॥ नक्षतिर्व्याप्तिकर्मणो नशतेर्वा लेटि सिपि रूपं ॥ एवं सति स्तोतारो वयं ते त्वदीयं धनमरमलं पर्याप्तं गमाम । त्वत्तो गच्छाम ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिन एवा ह्यसि वीरयुरिति वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । एवा ह्यसि वीरयुरेवा ह्यस्य सूनृता । आ० ७. ८. । इति ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥२८॥
एव । हि । असि । वीरऽयुः । एव । शूरः । उत । स्थिरः । एव । ते । राध्यं । मनः ॥२८॥

हे इंद्र त्वं वीरयुर्वीरान्युद्धकर्मणि समर्थान् हंतुं कामयमान एवासि । भवसि खलु । हि प्रसिद्धौ । अत एव त्वं शूरः सामर्थ्यवानेव भवसि । उतापि च स्थिरः संग्रामे धैर्यवान् भवसि । एकत्र स्थित्वैव शत्रून् संप्रहरसीत्यर्थः । एवं सति ते तव मनो राध्यं स्तुतिभिराराधनीयमेव यतोऽनेन मनसा त्वं शत्रुवधं संग्रामे धैर्यादिकं च करोषीति । तव मन एव सर्वैः स्तुत्यमित्यर्थः ॥

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिंद्र मे सचा ॥२९॥
एव । रातिः । तुविऽमघ । विश्वेभिः । धायि । धातृऽभिः । अध । चित् । इंद्र । मे । सचा ॥२९॥

हे तुविमघ । तुविरिति बहुनाम । बहुधनवन्निंद्र विश्वेभिर्विश्वैर्धातृभिः कर्माधारकैः । यद्वा । देवानां हविर्दानेन पोषयितृभिः सर्वैर्यजमानैस्तव रातिर्गवाश्वधनादिदानं धायि । तैर्धार्यत एव ॥ दधातेर्लुङि कर्मणि रूपं ॥ चिदेवार्थे । अधात एव हे इंद्रैवंविधं त्वं मे यष्टुर्ममापि सचा धनादिदानेन कर्मसहायो भव ॥

मो षु ब्रह्मेव तंद्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३०॥
मो इति । सु । ब्रह्माऽइव । तंद्रयुः । भुवः । वाजानां । पते । मत्स्व । सुतस्य । गोऽमतः ॥३०॥

हे वाजानां पतेऽन्नानां पते बलानां वा हे इंद्र तंद्रयुर्निष्कारणं निवृत्तकर्मवत्त्वादालस्ययुक्तो ब्रह्मेव ब्राह्मण इव । अथापि तद्वदर्थे भाष्यते । नि० ६. ३१. । इति यास्कोक्तमनुसृत्य तंद्रयुक्त इत्युक्तं । अथवा यागादिकर्मपरित्यागेनालस्यमिच्छन्नास्तिको ब्राह्मण इव त्वं मो षु भुवः । सुष्ठु मा भवः । सर्वदास्मत्कर्मान्वितो भवेत्याशासनं । तदेवाह । सुतस्याभिषुतस्य ततो गोमतो गव्येन क्षीरेण दध्ना वा मिश्रणवतः सोमस्य पानेन मत्स्व । माद्य । हृष्टो भव ॥

मा नं इंद्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् । त्वा युजा वनेम तत् ॥३१॥
मा । नः । इंद्र । अभि । आऽदिशः । सूरः । अक्तुषु । आ । यमन् । त्वा । युजा । वनेम । तत् ॥३१॥

हे इंद्र आदिश आदेष्टारः समंतादायुधान्यतिविसृजंतः सूरः ॥ सृ गतौ ॥ सर्वत्र सरणशीला राक्षसा अक्तुषु रात्रिषु दिवापि नोऽस्माकं माभ्या यमन् । आभिमुख्येन मा नियंतारो भवंतु । यद्यागताश्चेत् तदा तद्रक्षःकुलं त्वा त्वया युजा सहायेन वयं वनेम । हिंसाम ॥ श्नथ क्नथ क्रथ क्लथ हिंसार्था वनु चेत्यत्र पठितत्वाद्धिंसार्थः ॥

त्वयेदिंद्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः । त्वमस्माकं तव स्मसि ॥३२॥
त्वया । इत् । इंद्र । युजा । वयं । प्रति । ब्रुवीमहि । स्पृधः । त्वं । अस्माकं । तव । स्मसि ॥३२॥

हे इंद्र त्वयेत् । इदवधारणे । त्वयैव युजा सहायेन स्पृधः स्पर्धमानाञ्छत्रून्वयं प्रति ब्रुवीमहि । निराकुर्वीमहि । प्रतिवचनं निराकरणं । उत्तरार्धेनेंद्रसाहाय्यमेव प्रतिपादयति । हे इंद्र त्वमस्माकं भवसि । स्तुत्यस्तोतृयष्टृयष्टव्यतया त्वमस्माकं भवसि वयं तव स्मसि । भवामः । तथारण्यकं । त्वमिदं सर्वं भवसि तव वयं स्मः । त्वमस्माकमसीति तस्मात्त्वया सहायेन शत्रून्हन्यामेति ॥

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इंद्र कारवः ॥३३॥
त्वां । इत् । हि । त्वाऽयवः । अनुऽनोनुवतः । चरान् । सखायः । इंद्र । कारवः ॥३३॥

हे इंद्र कर्मोपद्रवपरिहारादनंतरं त्वायवस्त्वां धनादिदानार्थं कामयमानाः अत एवानुनोनुवतः ॥ नौतेर्यङ्लुगंतस्य शतरि रूपं ॥ अनुक्रमेण पुनःपुनः स्तुतिं कुर्वंतः तस्मात्तव सखायः सखिभूताः कारवः स्तोतारस्त्वामित् । इदवधारणे । त्वामेव चरान् । स्तुतिभिः परिचरंतु खलु ॥ हीति प्रसिद्ध्यर्थः । चरतेर्लेट्यडागमः । हियोगादनिघातः ॥ ॥२०॥

उद्घेति चतुस्त्रिंशदृचं त्रयोदशं सूक्तं सुकक्षस्यार्षं गायत्रमैंद्रं । अंत्या त्विंद्रर्भुदेवताका । तथा चानुक्रांतं । उद्घ चतुस्त्रिंशत्सुकक्षोऽंत्यैंद्रार्भवीति ॥ द्वितीये पर्याये होतुः शस्त्र उत्तमावर्जमेतत्सूक्तं । सूचितं च । उद्घेदभीत्युत्तमामुद्धरेत् । आ॰ ६. ४. । इति ॥ महाव्रतेऽप्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सहोक्तः ॥ ज्योतिष्टोमे ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्र आद्यस्तृचः । सूचितं च । उद्घेदभीति तिस्र इंद्र क्रतुविदं सुतमिति याज्या । आ॰ ५. १०. । इति ॥ तथाप्तोर्यामे मैत्रावरुणातिरिक्तोक्थ्येऽयं तृचोऽनुरूपः । सूचितं च । यदद्य कच्च वृत्रहन्नुद्घेदभि श्रुतामघमा नो विश्वाभिः । आ॰ ९. ११. । इति ॥

उद्घेदभि श्रुतामंघं वृषभं नर्यापसं । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥
उत् । घ । इत् । अभि । श्रुतऽमंघं । वृषभं । नर्यऽअपसं । अस्तारं । एषि । सूर्य ॥१॥

सुकक्ष इंद्रगुणानाह । हे सूर्य । द्वादशसु भानुष्विंद्रोऽपि सूर्यात्मना पठितः । तस्मात्सूर्यात्मक सुवीर्य हे इंद्र श्रुतमघं सर्वदा देयत्वेन विख्यातधनं अत एव वृषभं याचमानानां धनस्य वर्षितारं नर्यापसं । नरहितं नर्यं । नरहितकर्माणमस्तारं दानशौंडमौदार्यवंतं एतादृशानुभावमभित उदेषि । इदवधारणे । त्वमेव तस्य यष्टुः सूर्यात्मनोन्नतोऽसि । घेति प्रसिद्धौ ॥

नव यो नंवतिं पुरो बिभेदं बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावंधीत् ॥२॥
नवं । यः । नवतिं । पुरंः । बिभेदं । बाहुऽओंजसा । अहिं । च । वृत्रऽहा । अवधीत् ॥२॥

य इंद्रो नव नवतिं नवनवतिसंख्याका एकोनशतसंख्याकाः शंबरस्य पुरः पुरीर्बाह्वोजसा स्वबाहुबलेनैव बिभेद् दिवोदासाय भिनत्ति स्म । तथा च मंत्रः । दिवोदासाय नवतिं च नवेंद्रः पुरो व्यैरच्छंबरस्य । ऋ० २. १९. ६. । इति । स वृत्रहा वृत्रासुरस्य हंता स इंद्रोऽहिं च केनाप्यहंतव्यं मेघमपामावरकं वृत्रं वावधीत् । स इंद्रोऽस्माकं धनं ददात्वित्युत्तरेण संबंधः ॥

स न इंद्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

सः । नः । इंद्रः । शिवः । सखा । अश्वऽवत् । गोऽमत् । यवऽमत् । उरुधाराऽइव । दोहते ॥३॥

स पूर्वोक्तलक्षणः शिवः कल्याणतमः सखा यष्टृयष्टव्यस्तोतृस्तुत्यलक्षणेन संबंधेनास्माकं मित्रभूतः एतादृश इंद्रोऽश्ववदश्वयुक्तं गोमत् पश्वादिसहितं यवमत् ॥ अयवादिभ्यः । पा० ८. २. ९. । इति वप्रतिषेधान्मतुपो वत्वाभावः ॥ यव इति धान्यविशेषः । धान्ययुक्तं धनं नोऽस्मभ्यं दोहते । दोग्धु । ददातु । तत्र दृष्टांतः । उरुधारेव प्रभूतपयोधारा यद्वा बहूनां पोषयित्री गौर्यथा वत्सस्य पयो दोग्धि तथा प्रभूतं धनमस्माकं दोग्धु । ददातु ॥ दुहेर्लेट्यडागमः ॥

अप्तोर्यामे मैत्रावरुणातिरिक्तोक्थ्ये यदद्येति तृचः स्तोत्रियः । सूक्तं तु पूर्वेण तृचेन सहोदाहृतं ॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिंद्र ते वशे ॥४॥

यत् । अद्य । कत् । च । वृत्रऽहन् । उत्ऽअगाः । अभि । सूर्य । सर्वं । तत् । इंद्र । ते । वशे ॥४॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्यापामावरकस्य मेघस्य हंतर्हे सूर्य सूर्यात्मकेंद्र अद्यास्मिन्दिने यत्कच्च यत्किंचित्पदार्थजातमभ्यभिमुखीकृत्योदगाः ॥ इण् गतौ । उत्पूर्वः । तस्य लुङि गादेशः ॥ स्वतेजसोद्गतः प्रादुर्भूतोऽसि तदा तत्सर्वं स्थावरजंगमात्मकं जगत्ते तव वशे भवति । त्वदधीनं भवति । उदिते सूर्ये त्वदर्थं प्राक्कर्म कुर्वंति जुह्वति च ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्सत्यमित्तव ॥५॥

यत् । वा । प्रऽवृद्ध । सत्ऽपते । न । मरै । इति । मन्यसे । उतो इति । तत् । सत्यं । इत् । तव ॥५॥

वाशब्दः समुच्चये । अपि च हे प्रवृद्ध स्वबलेन प्रवर्धमान सत्पते सतां पते स्वप्रकाशाधिक्येन सतां नक्षत्राणां पते हे इंद्र न मरा इति मनुष्यवद्वार्धक्येनाहं न म्रिय इति यदादि मन्यसे बुध्यसे ॥ मृङ् प्राणत्यागे । लेट्यडागमः । वैतोऽन्यत्रेत्यैकारः ॥ उतो अपि च तव तन्न म्रिय इति मननं सत्यमित्यथार्थमेव । इंद्रो न म्रियत इत्यर्थे मंत्रांतरं । नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिः । ऋ० १०. ८६. ११. । इति ॥ ॥२१॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इंद्र गच्छसि ॥६॥

ये । सोमासः । पराऽवति । ये । अर्वाऽवति । सुन्विरे । सर्वान् । तान् । इंद्र । गच्छसि ॥६॥

हे इंद्र ये सोमासः सोमाः परावति विप्रकृष्टेऽतिदूरदेशे ये सोमा अर्वावत्यंतिकतमे देशे च सुन्विरे ॥ छंदसि द्विर्वचनस्य विकल्पितत्वादत्र द्विर्वचनाभावः ॥ ये सोमा ऋत्विग्भिरभिषूयंते सर्वान् दूरे समीपे चाभिषूयमाणांस्तान् सोमान् गच्छसि । तत्पानार्थं युगपत्प्राप्नोषि । अनेनेंद्रस्य सर्वगतत्वं सूचितं च ॥

अप्तोर्यामे ब्राह्मणाच्छंसिनोऽतिरिक्तोक्थ्ये तमिंद्रं वाजयामसीति स्तोत्रियस्तृचः । सूत्रितं च । तमिंद्रं वाजयामसि महाँ इंद्रो य ओजसा । आ० ९. ११. । इति ॥ व्यूळ्हस्य दशरात्रस्य पंचमेऽहनि निष्केवल्येऽयमेव तृचो निविद्धानीयः । सूत्रितं च व्यूळ्हेदिति खंडे । महत्वाँ इंद्र मीढ्वस्तमिंद्रं वाजयामसि । आ० ८. ८. । इति ॥

तमिंद्रं वाजयामसि महे वृत्राय हंतवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥७॥

तं । इंद्रं । वाजयामसि । महे । वृत्राय । हंतवे । सः । वृषा । वृषभः । भुवत् ॥७॥

यजमाना आहुः । तं पूर्वोक्तलक्षणमिंद्रं वाजयामसि । वाजयामः । सोमेन स्तुतिभिर्वा वाजवंतं बलवंतं कुर्मः । किमर्थं । महे महते वृत्रायापामावरकं वृत्रासुरं हंतवे हंतुं । सोमपानेन मत्तः स्तुतिभिर्वा स्तुतः सन् वृषा धनानां सेक्ता दाता स इंद्रो वृषभोऽस्माकं स्तोतॄणां सोमस्य दातॄणां धनादिसेचको दाता भुवत् । भवतु ॥

इंद्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥८॥

इंद्रः । सः । दामने । कृतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः । द्युम्नी । श्लोकी । सः । सोम्यः ॥८॥

स इंद्रो दामने स्तोतृभ्यो धनादिदानायैव कृतः । प्रजापतिना सृष्टः । किंचौजिष्ठ ओजस्वितमः स एवेंद्रः मदे । माद्यंत्यनेनेति मदः सोमः । तस्मिंश्च प्रजापतिना सृष्टिकाले हितः । सोमपानार्थं च निहित इत्यर्थः । द्युम्नी । द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति । यशस्व्यन्नवान्वात एव श्लोकी । श्लोकः स्तुतिः । तद्वान् स इंद्रः सोम्यः सोमार्हो भवति ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥९॥

गिरा । वज्रः । न । संऽभृतः । सऽबलः । अनपऽच्युतः । ववक्षे । ऋष्वः । अस्तृतः ॥९॥

गिरा स्तुतिलक्षणया वाचा स्तोतृभिः संभृत उत्पादितस्तीक्ष्णीकृतः । तत्र दृष्टांतः । वज्रो न । वज्र आयुधं । तत्कर्तृभिर्निशितधारो यथा भवति तीक्ष्णीक्रियते तद्वत् स्तोतृभिः स्तुत्या संभृतः अत एव सबलो बलसहितः तस्मादनपच्युतः परैरप्रच्युतः । अनभिगत इत्यर्थः । तादृश ऋष्वो महान् दीप्यमानो वास्तृतो युद्धे शत्रुभिरहिंसित इंद्रो ववक्षे । स्तोतृभ्यो धनादिकं वोढुमिच्छति ॥

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इंद्र गिर्वणः । त्वं च मघवन्वशः ॥१०॥

दुःऽगे । चित् । नः । सुऽगं । कृधि । गृणानः । इंद्र । गिर्वणः । त्वं । च । मघऽवन् । वशः ॥१०॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीयेंद्र गृणानः स्तोतृभिः स्तूयमानस्त्वं नोऽस्माकं दुर्गे चिद्दुर्गमेऽपि मार्गे सुगं सुगमं पंथानं कृधि । तथा कुरु । हे मघवन्धनवन्निंद्र त्वं । चशब्दश्चेदर्थे । यदि वशः सोमपानार्थं तत्प्रदातॄनस्मान्कामयेथाः तदा पंथानं शोभनगमनं कुरुष्व ॥ वष्टेर्लेट्यडागमः । चशब्दयोगादनिघातः ॥ ॥२२॥

यस्य ते नू चिदादिशं न मिनंति स्वराज्यं । न देवो नाध्रिगुर्जनः ॥११॥

यस्य । ते । नु । चित् । आऽदिशं । न । मिनंति । स्वऽराज्यं । न । देवः । न । अध्रिऽगुः । जनः ॥११॥

हे इंद्र यस्य ते तवादिशं । आदिशति नयति सर्वत्रानयतीत्यादिशं बलं ॥ औणादिकः करणे प्रत्ययः ॥ यद्वा । आदेश एवादिगाज्ञा ॥ भावे क्विप् ॥ त्वदीयामाज्ञां नु चिदिदानीं पुरा च न मिनंति केचिदपि न हिंसंति । किंच स्वराज्यं तव स्वभूतं राज्यं च । यद्वा । स्वशब्देन स्वर्गोऽभिधीयते । स्वर्गस्वामित्वं च । न हिंसंति । हिंसकानाह । न देवो त्वदन्यो देवोऽपि च तथाप्यध्रिगुरधृतगमनः संग्रामे त्वरमाणो वीरोऽपि न च जनः प्रादुर्भूतो मनुष्योऽपि । एते न मिनंतीत्यर्थः ॥

अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदसी ॥१२॥
अध । ते । अप्रतिऽस्कुतं । देवी इति । शुष्मं । सपर्यतः । उभे इति । सुऽशिप्र । रोदसी इति ॥१२॥

हे सुशिप्र सुहनो शोभनशिरस्त्राणेंद्र अधापि च देवी देव्यौ स्वतेजसा दीप्यमाने उभे रोदसी द्यावापृथिव्यावप्रतिष्कुतं ॥ स्कु इति सौत्रो धातुः स्तंभने वर्तते ॥ शत्रुभिरप्रतिरोधनीयं शुष्मं परबलशोषकं बलं सपर्यतः । पूजयतः । त्वदधीने एव भवतः ॥

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१३॥
त्वं । एतत् । अधारयः । कृष्णासु । रोहिणीषु । च । परुष्णीषु । रुशत् । पयः ॥१३॥

अस्य सामर्थ्यमेवोपपादयति । हे इंद्र कृष्णासु कृष्णवर्णासु गोषु तथा रोहिणीषु ॥ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ।पा॰ ४. १. ३९.। इति ङीप् ॥ रोहितवर्णासु च गोषु रुशत् ॥ रोचतेर्दीप्तिकर्मणः ॥ दीप्यमानं श्वेतमेतत्परिदृश्यमानं पयः क्षीरं त्वमधारयः । धारयसि । तस्मात्त्वद्बलं पूजयत इति समन्वयः ॥

वि यदहेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य ताँ अमः ॥१४॥
वि । यत् । अहेः । अध । त्विषः । विश्वे । देवासः । अक्रमुः । विदत् । मृगस्य । तान् । अमः ॥१४॥

अधापि चाहेर्हंतव्यस्य वृत्रासुरस्य त्विषस्तेजोरूपादुच्छ्वासाद्भीताः यद्वा तस्य प्रभावेन परिगमिता विश्वे सर्वे देवासो देवा यद्यदा व्यक्रमुः विविधं पादविहरणमकुर्वन् । स्वस्थानं परित्यज्यान्यं देशमगच्छन्नित्यर्थः । तदानीं मृगस्य । एवं तान् भीषयितुं वृत्रो मृगरूपोऽभवत् । तद्रूपस्य संबंध्यमः सर्वतो गमनशीलं बलं तज्जातं भयं वा तान् सर्वान्देवान्विदत् । अविंदत् । प्राप्नोदित्यर्थः । तस्यासुरस्येंद्रो निवारको हंताभवदित्युत्तरेण संबंधः ॥

आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यं । अजातशत्रुरस्तृतः ॥१५॥
आत् । ऊं इति । मे । निऽवरः । भुवत् । वृत्रऽहा । अदिष्ट । पौंस्यं । अजातऽशत्रुः । अस्तृतः ॥१५॥

आत् । उ इत्यवधारणे । देवानां भीत्या सर्वतो गमनानंतरमेव मे स्तोतृस्तुत्यलक्षणेन संबंधेन मम संबंध्ययमिंद्रो निवरो वृत्रासुरस्य निवारयिता हंता भुवत् । अभवत् । ततो वृत्रहा वृत्रस्य हंतेंद्रः पौंस्यं ॥ पुंसः कर्म पौंस्यं । यद्वा । स्त्रीपुंसाभ्यां ।पा॰ ४. १. ८७.। इति भवार्थे स्नञ् । नकारस्य यकारो वर्णव्यत्ययेन । पुंसींद्रे भवं ॥ यद्वा । बलनामैतत् । स्वबलं । अदिष्ट । तस्य राज्ये दिशति । निदधाति । तद्राज्यं स्ववशमकरोदित्यर्थः । ततःप्रभृतींद्रोऽजातशत्रुरनुत्पन्नशत्रुरस्तृतः संग्रामे परैरहिंसितश्चाभवत् ॥ ॥२३॥

श्रुतं वो वृत्रहंतमं प्र शर्धं चर्षणीनां । आ शुषे राधसे महे ॥१६॥
श्रुतं । वः । वृत्रहन्ऽतमं । प्र । शर्धं । चर्षणीनां । आ । शुषे । राधसे । महे ॥१६॥

हे ऋत्विग्यष्टारः श्रुतं बलवत्तया प्रसिद्धं अत एव वृत्रहंतममतिशयेन वृत्रहंतारं शर्धं बलभूतं वेगवंतं वा एतादृशमिंद्रं चर्षणीनां मनुष्याणां वो युष्माकमाशुषे ॥ अश्नोतेर्लेट्युत्तम इटि सिप् । व्यत्ययेनोप्रत्ययः । बहुलं छंदसीत्यडागमः ॥ तमिंद्रं स्तुतिभिः प्रीणयित्वा युष्मभ्यं प्रकर्षेणाश्नवै । प्रयच्छामीत्यर्थः । किमर्थं । महे महते राधसे धनाय धनं युष्मभ्यं दातुं ॥

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभवः ॥१७॥

अया । धिया । च । गव्यऽया । पुरुऽनामन् । पुरुऽस्तुत । यत् । सोमेऽसोमे । आ । अभवः ॥१७॥

हे पुरुनामन् बहुविधशक्रवृत्रहादिनामोपेत । यद्वा । बहुस्तुतिमन् । नामयंति स्तुत्यं देवं वशं नयंतीति नाम स्तोत्रं । अत एव पुरुष्टुत बहुभिरभिष्टुतेंद्र सोमे सोमेऽस्मदीयेषु सोमेषु त्वं यदाभवः तेषां पानार्थं समंतादभवः तदा वयमयानया । कीदृश्या । गव्यया गा आत्मन इच्छंत्या धियानया बुद्ध्या युक्ता भवेम । सोमं पीतवति त्वयि वयं गवादियुक्ता भवेमेत्यर्थः ॥

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषं ॥१८॥

बोधित्ऽमनाः । इत् । अस्तु । नः । वृत्रऽहा । भूरिऽआसुतिः । शृणोतु । शक्रः । आऽशिषं ॥१८॥

अयं परोक्षकृतः । वृत्रहा वृत्रहंता भूर्यासुतिः । बहुषु देशेष्विंद्रार्थं सोम आसूयतेऽभिषूयत इति तादृशः । यद्वा । बहूनि सोमादिहवींषींद्रार्थमासूयंते ह्रयंत इति तादृशः । बोधिन्मनाः ॥ बुध अवगमने । औणादिक इतिप्रत्ययः ॥ यस्य मनः स्तोतॄणामभिमतं बुध्यते जानातीति तथोक्तः । इदवधारणे । नोऽस्माकं बोधिन्मना एवास्तु । सर्वदास्मदभीप्सितानि जानात्विवेत्यर्थः । यद्वा । एतादृश इंद्रो नोऽस्माकं यज्ञे भवत्विति । ततः शक्रः संग्रामे शत्रुहननसमर्थ इंद्र आशिषमस्मदीयां स्तुतिमाशासनं वा शृणोतु ॥

ज्योतिष्टोमे चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने मैत्रावरुणस्य कया त्वं न ऊत्येति तृचोऽनुरूपः । सूत्रितं च । होत्रकाणां कया नश्चित्र आ भुवत् कया त्वं न ऊत्या । आ॰ ७. ४. । इति ॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मंदसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१९॥

कया । त्वं । नः । ऊत्या । अभि । प्र । मंदसे । वृषन् । कया । स्तोतृऽभ्यः । आ । भर ॥१९॥

हे वृषन् कामानां वर्षितरिंद्र कया केनोत्या ॥ अव रक्षणादिषु गत्यर्थे । ऊतियूत्यादिना निपातितः ॥ केनाभिगमनेन नोऽस्मानभ्यभितः प्र मंदसे । प्रकर्षेण मादयसि । अस्मदीयं यज्ञं प्रति सोमपानार्थमागमनेन वा त्वदीयस्तुतिश्रवणार्थमागमनेन वा कदास्मान् प्रमादयसीति । किंच कया केनाभिगमनेन स्तोतृभ्योऽस्मभ्यं धनमा भराबिभर्षीतींद्रं स्तोता पृच्छति ॥

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत् । वृत्रहा सोमपीतये ॥२०॥

कस्य । वृषा । सुते । सचा । नियुत्वान् । वृषभः । रणत् । वृत्रऽहा । सोमऽपीतये ॥२०॥

वृषेंद्रः कस्य यजमानस्य सचा सुत ऋग्भिः सहाभिषुते सोमे । अनेन तद्वान्यज्ञो लक्ष्यते । कस्य यज्ञे सोमपीतये सोमपानाय तदर्थं रणत् । रमते । कीदृशः । नियुत्वान् । नितरां युवंति मिश्रयंति स्वबलेन शत्रूनिति नियुतो मरुतः । तद्वान् । यद्वा । नियुत इति वायोर्वाहनाश्वाः । स वायुः कदाचित्संग्राम इंद्राय स्वाश्वानदात् । तद्वान् । वृषभो धनानामपां वा वर्षको वृत्रहा वृत्रस्य हंतेंद्रः कस्य यज्ञे रमते । इदानीं नोऽस्मदीयं यागं प्रत्यागच्छतु । यद्वा । कस्याध्वरे रमते । न कुत्रापि । किंत्वस्मद्यज्ञ एव सोमपानार्थं संक्रीडते ॥ ॥२४॥

अभी षु णस्त्वं रयिं मंदसानः सहस्रिणं । प्रयंता बोधि दाशुषे ॥२१॥

अभि । सु । नः । त्वं । रयिं । मंदसानः । सहस्रिणं । प्रऽयंता । बोधि । दाशुषे ॥२१॥

हे इंद्र त्वं मंदसानोऽस्माभिर्दत्तेन सोमेन मोदमानः सन् सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं धनं गोऽश्वाद्यं सु सुष्ठ्वाभर । तदेवाह । त्वं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय प्रयंता धनादेः प्रदाता कर्मणो नियंता वा भवासीति बोधि । बुध्यस्व ॥ बुध अवगमने । भौवादिकः । लोटि छांदसो विकरणस्य लुक् । हेर्धिः । धित्वे धकारलोपश्छांदसः ॥

पत्नी॑वंतः सु॒ता इ॒म उ॒शंतो॑ यंति वी॒तये॑ । अ॒पां जग्मि॑र्निचुंपु॒णः ॥२२॥
पत्नी॑ऽवंतः । सु॒ताः । इ॒मे । उ॒शंतः॑ । यं॒ति॒ । वी॒तये॑ । अ॒पां । जग्मिः॑ । नि॒ऽचुं॒पु॒णः ॥२२॥

पत्नीवंतः । सोमसेकार्थं पत्न्यः पालयित्र्य आपो वसतीवर्य एकधनाश्च । तद्वंतः सुता अस्माभिरभिषुता इमे गृहस्थाश्रमसस्थाश्च सोमा उशंत आत्मनः पानं कामयमानाः संतो यंति । इंद्रं गच्छंति । किमर्थं । वीतये आत्मनः पानाय । किंच निचुंपुणः । निचांतपृणः । नि० ५.१७. । इति यास्कः ॥ चमु अदने । निचांतो भक्षितः पृणः प्रीणयिता । यद्वा । निचमनेन प्रीणातीति भक्षणेन तर्पयतीति निचुंपुणः । अभिषुतस्य सोमस्याप्सु प्रक्षेपासंभवात्सामर्थ्यादृजीषरूपः सोमो गृह्यते । तादृशः सोमोऽपां जग्मिः ॥ अपामिति न लोकाव्ययेति षष्ठीप्रतिषेधाभावश्छांदसः ॥ अप इत्यर्थः । यद्वा । अपां मध्यं वापः प्रति वा जग्मिर्गमनशीलः साधुगंता वा । सोमश्चेंद्रं गच्छति । स ह्यवभृथकाल ऋजीषमप्सु प्रास्यंतीति वचनादप्स्वृजीषरूपः प्रक्षिप्यते । तदाह्नापां जग्मिरिति ॥

इ॒ष्टा होत्रा॑ असृक्ष॒तेंद्रं॑ वृ॒धासो॑ अध्व॒रे । अच्छा॑वभृ॒थमोज॑सा ॥२३॥
इ॒ष्टाः । होत्राः॑ । अ॒सृ॒क्ष॒त॒ । इंद्रं॑ । वृ॒धासः॑ । अ॒ध्व॒रे । अच्छ॑ । अ॒व॒ऽभृ॒थं । ओज॑सा ॥२३॥

अपां जग्मिरिति सामर्थ्यादवभृथदिन एव----र-वि-जः कुर्वंतीत्युक्तं । तत्प्रसंगादाह । अध्वरेऽस्मदीये यज्ञे वृधासो हविर्भिरिंद्रं वर्धयंत इष्टा इष्टवंतो यागं कृतवंतः सप्तसंख्याका होत्रा होत्रका अवभृथमच्छाभिमुख्येन ओजसा स्वतेजसा सहिता इंद्रमसृक्षत । विसृजंति । यावदवभृथं सप्तहोत्रका यजंतीति ॥

इ॒ह त्या स॑ध॒माद्या॒ हरी॒ हिर॑ण्यकेश्या । वो॒ळ्हाम॒भि प्रयो॑ हि॒तं ॥२४॥
इ॒ह । त्या । स॒ध॒ऽमाद्या॑ । हरी॒ इति॑ । हिर॑ण्यऽकेश्या । वो॒ळ्हां । अ॒भि । प्रयः॑ । हि॒तं ॥२४॥

एषा व्याख्याता । ऋ० ८.३२.२९. । अत्रापि वाक्यार्थो विधीयते । सधमाद्याविंद्रेण सह हविर्भिस्तर्पयितव्यौ यद्वा संग्रामे सह मादयंतौ हिरण्यकेश्या हिरण्मयस्कंधगतकेशवंतौ त्या तौ प्रसिद्धौ हरी हरितवर्णावितन्नामकावश्वाविहास्मिन्यज्ञे हितं--वादिषु निहितं हितकरं वा प्रयो हवीरूपमन्नमभिलक्ष्य वोळ्हां । इंद्रं वहतां । प्रापयतामिति ॥

तुभ्यं॒ सोमाः॑ सु॒ता इ॒मे स्ती॒र्णं ब॒र्हिर्वि॑भावसो । स्तो॒तृभ्य॒ इंद्र॒मा व॑ह ॥२५॥
तुभ्यं॑ । सोमाः॑ । सु॒ताः । इ॒मे । स्ती॒र्णं । ब॒र्हिः । वि॒भा॒व॒सो॒ इति॑ विभाऽवसो ।
स्तो॒तृऽभ्यः॑ । इंद्रं॑ । आ । व॒ह ॥२५॥

हे विभावसो विशेषेण भासमानवसुमन् । यद्वा । विशिष्टा भा विभाः प्रकृष्टदीप्तयः । निवसत्यत्रेति विभावसुरग्निः । हे तादृशाग्ने तुभ्यं त्वदर्थमिमे सोमाः सुता अभिषुताः । तथा बर्हिः स्तीर्णं । तस्मात्स्तोतृभ्योऽस्मभ्यमस्मदर्थमिंद्रं सोमपानार्थमा वह । आह्वय । यज्ञं प्रति प्रापयेत्यर्थः ॥ ॥२५॥

आ ते॒ दक्षं॒ वि रो॑च॒ना दध॒द्रत्ना॒ वि दा॒शुषे॑ । स्तो॒तृभ्य॒ इंद्र॑मर्चत ॥२६॥
आ । ते॒ । दक्षं॑ । वि । रो॒च॒ना । दध॑त् । रत्ना॑ । वि । दा॒शुषे॑ । स्तो॒तृऽभ्यः॑ । इंद्रं॑ । अ॒र्च॒त॒ ॥२६॥

ऋषिर्ऋत्विग्यजमानान् प्रत्याह । हे यष्टः दाशुष इंद्राय हविर्दत्तवते ते तुभ्यं रोचना रोचनं दीप्यमानं दक्षं बलमाभिमुख्येन वि दधत् । इंद्रो विदधातु । यद्वा । रोचनमिति स्वर्गः । देवतेजसा दीप्तं रोचननामानं लोकं विदधातु । तथा रत्ना रत्नानि च तुभ्यं करोतु ॥ डुधाञ् धारणपोषणयोः । लेटि घोर्लोपो लेटि वा । पा॰ ७. ३. ७०. । इत्याकारलोपः । अडागमः ॥ हे स्तोतारः स्तोतृभ्य इंद्रविषयस्तोत्रकारिभ्यो युष्मभ्यं च बलरत्नादिकमिंद्रः कुरुतां । तस्मात्तमिंद्रं यूयमर्चत । हविर्भिः स्तुतिभिश्च पूजयत ॥

आ ते दधामींद्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो । स्तोतृभ्य इंद्र मृळय ॥२७॥

आ । ते । दधामि । इंद्रियं । उक्था । विश्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । स्तोतृऽभ्यः ।
इंद्र । मृळय ॥२७॥

हे शतक्रतो इंद्र ते तवेंद्रियं वीर्यवंतं सोमं विश्वोक्था सर्वाणि स्तोत्राण्या दधामि । संपादयामि । हे इंद्र त्वं स्तोतृभ्यो मृळय । सुखय ॥

भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिंद्र मृळयासि नः ॥२८॥

भद्रंऽभद्रं । नः । आ । भर । इषं । ऊर्जं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । यत् । इंद्र ।
मृळयासि । नः ॥२८॥

हे शतक्रतो शतविधकर्मन् शतप्रज्ञ वेंद्र भद्रं भद्रं कल्याणतममथ सुखोत्पादकं वा धनं नोऽस्मभ्यमा भर । आसंपादय । देहि । तथेषमन्नमूर्जमन्नरसं यद्वा बलवदन्नं च देहि । नोऽस्मान्यद्यदि मृळयासि सुखयसि तर्हि तद्धनादिकं देहीति ॥ मृड सुखने । ण्यंतस्य लेट्यडागमः ॥

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिंद्र मृळयासि नः ॥२९॥

सः । नः । विश्वानि । आ । भर । सुवितानि । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । यत् । इंद्र ।
मृळयासि । नः ॥२९॥

हे शतक्रतो इंद्र स पूर्वोक्तलक्षणस्त्वं विश्वानि सर्वाणि सुवितानि । सुष्ठीयते प्राप्यते येष्विति सुवितानि मंगलानि ॥ सुपूर्वादेतेः क्ते प्रत्यय उवङादेशः ॥ सर्वानभ्युदयान्नोऽस्मभ्यमाहर । हे इंद्र यदि नोऽस्मान् सुखयसि तर्हि धनादिसहितानभ्युदयान्देहीति ॥

त्वामिद्वृत्रहंतम सुतावंतो हवामहे । यदिंद्र मृळयासि नः ॥३०॥

त्वां । इत् । वृत्रहन्ऽतम । सुतऽवंतः । हवामहे । यत् । इंद्र । मृळयासि । नः ॥३०॥

हे वृत्रहंतमातिशयेन वृत्रस्यापामावरकस्य हंतरिंद्र सुतवंतोऽभिषुतसोमवंतो वयं । इदवधारणे । त्वामित्त्वामेव हवामहे । अस्मद्यज्ञमागत्य सोमपानायाह्वयामः । हे इंद्र नोऽस्मान्यदि सुखयसि तर्ह्याह्वयाम इति ॥ ॥२६॥

व्यूळ्हस्य दशरात्रस्य षष्ठेऽहनि निष्केवल्य उप नो हरिभिरिति तृचो निविद्धानीयः । सूत्रितं च । अयं ह येन वा इदमुप नो हरिभिः सुतं । आ॰ ८. ८. । इति ॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मंदानां पते । उप नो हरिभिः सुतं ॥३१॥

उप । नः । हरिऽभिः । सुतं । याहि । मदानां । पते । उप । नः । हरिऽभिः । सुतं ॥३१॥

हे मदानां पते। माद्यंतेऽनेनेति मदाः सोमाः ॥ मदोऽनुपसर्ग इति करणेऽप्प्रत्ययः ॥ सोमानां स्वामिन्निंद्र हरिभिरा शतेन हरिभिः । ऋ॰ २.१८.६.। इत्यादिषु बहुनामश्वानां श्रुतेऽत्रापि शतसहस्रसंख्याकैरश्वैः सह नोऽस्माकं यज्ञे सुतमभिषुतं सोममुप याहि। तत्पानार्थं शीघ्रमायाहि। पुनरुप न इत्यादरार्थं ॥

द्विता यो वृ॑त्रहंत॑मो वि॒द इंद्रः॑ श॒तक्र॑तुः। उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तं ॥३२॥

द्विता। यः। वृ॒त्र॒हन्ऽत॑मः। वि॒दे। इंद्रः॑। श॒तऽक्र॑तुः। उप॑। नः॒। हरि॑ऽभिः। सु॒तं ॥३२॥

वृत्रहंतमोऽतिशयेन वृत्रस्य हंता शतक्रतुर्नानाविधकर्मा य इंद्रो द्विता द्विधा विदे वृत्रवधादावुग्रकर्मा जगद्रक्षणकाले शांतकर्मेति द्विप्रकारेण सर्वैर्ज्ञायते ॥ विद ज्ञाने। कर्मणि विहितस्य तप्रत्ययस्य लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः ॥ स त्वं हरिभिः सह सुतं सोममुपयाहि ॥

त्वं हि वृ॑त्रहन्नेषां पा॒ता सोमा॑ना॒मसि॑। उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तं ॥३३॥

त्वं। हि। वृ॒त्र॒ऽह॒न्। ए॒षां॒। पा॒ता। सोमा॑नां। असि॑। उप॑। नः॒। हरि॑ऽभिः। सु॒तं ॥३३॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य पापस्य वा हंतरिंद्र। हिशब्दो हेत्वर्थे। यस्मात्त्वमेषामस्मदीयानां सोमानां पाता पानकर्तासि भवसि ॥ एषामितीदमोऽन्वादेशेऽशादेशोऽनुदात्तश्च ॥ अतस्त्वमश्वैः सह सोमं पातुमुपयाहि। आगच्छ ॥

व्यूळ्हस्य दशरात्रस्य नवमेऽहनि वैश्वदेवेऽभिप्लवतृचस्येंद्र इषे ददातु नस्ते नो रत्नानि धत्तनेति द्वे ऋचावार्भव्यौ। सूचितं च। इंद्र इषे ददातु नस्ते नो रत्नानि धत्तनेत्येका द्वे च। आ॰ ८.११.। इति ॥

इंद्र॑ इ॒षे द॑दातु न ऋभु॒क्षण॑मृ॒भुं र॒यिं। वा॒जी द॑दातु वा॒जिनं॑ ॥३४॥

इंद्रः॑। इ॒षे। द॒दा॒तु॒। नः॒। ऋ॒भु॒क्षणं॑। ऋ॒भुं। र॒यिं। वा॒जी। द॒दा॒तु॒। वा॒जिनं॑ ॥३४॥

इंद्र एवास्माभिः स्तुत इष्टः सन्नृभुक्षणं ॥ वा षपूर्वस्येति दीर्घाभावः ॥ यागादिकर्मकरणेन महांतं सर्वेषां भ्रातॄणां श्रेष्ठं वा। अथवा तृतीयसवने प्रजापतिसवित्रोर्मध्ये सोमपातृत्वान्महांतं। रयिं दातारमृभुं सोमपानेनामर्त्यत्वं प्राप्तं तादृशमेतन्नामकं देवं नोऽस्मभ्यमिषेऽन्नार्थं ददातु। प्रयच्छतु। तथा वाजी बलवानिंद्रो वाजिनं बलवंतमन्नवंतं वा वाजनामानं कनीयांसं भ्रातरं चास्माकमन्नलाभाय ददातु ॥ ॥२७॥ ॥९॥

दशमेऽनुवाके दश सूक्तानि। तत्र गौर्धयतीति द्वादशर्चमाद्यं सूक्तमांगिरसस्य बिंदुनाम्नः पूतदक्षनाम्नो वार्षं गायत्रं मरुद्देवताकं। तथा चानुक्रम्यते। गौर्धयति द्वादश बिंदुः पूतदक्षो वा मारुतमिति ॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः ॥ प्रातःसवने सोमातिरिक्त एकं शस्त्रमुपजायते। तत्राद्यस्तृचोऽनुरूपः। सूत्रितं च। अस्ति सोमो अयं सुतो गौर्धयति मरुतामिति स्तोत्रियानुरूपौ। आ॰ ६.७.। इति ॥

गौर्ध॑यति म॒रुतां॑ श्रव॒स्युर्मा॒ता म॒घोनां॑। यु॒क्ता वह्नी॒ रथा॑नां ॥१॥

गौः। ध॒य॒ति॒। म॒रुतां॑। श्र॒व॒स्युः। मा॒ता। म॒घोनां॑। यु॒क्ता। वह्निः॑। रथा॑नां ॥१॥

मघोनां धनवतां मरुतां माता निर्मात्री गौः पृश्निरूपा। पृश्नियै वै पयसो मरुतो जाता इति श्रुतिः। यद्वा। गौर्माध्यमिकी वाक्। तत्रैव मध्यमस्थाने मरुतामपि वर्तनात्तेषां तत्पुत्रत्वमुपचर्यते। धयति। सोमं पिबति पाययति वा स्वपुत्रान्मरुतः। किमिच्छंती। श्रवस्युरन्नं कामयमाना। कीदृशी। रथानां मारुतानां वह्निः पृषतीभिर्वडवाभिर्वोढ्री संयोजयित्री सा युक्ता सर्वत्र समंतात्पूज्या भवति ॥

यस्यां॑ दे॒वा उ॒पस्थे॑ व्र॒ता विश्वे॑ धा॒रयं॑ते। सू॒र्या॒मासा॑ दृ॒शे कं ॥२॥

यस्याः॑। दे॒वाः। उ॒पऽस्थे॑। व्र॒ता। विश्वे॑। धा॒रयं॑ते। सू॒र्या॒मासा॑। दृ॒शे। कं ॥२॥

गौः सर्वदेवमयीत्याह । यद्वा मरुतां मातुर्गोरुपस्थे वर्तमाना विश्वे सर्वे देवा व्रता व्रतानि स्वस्वकर्माणि धारयंते बिभ्रति । इयमेवास्माकं स्वपयोमिश्रितस्य सोमस्य दात्रीति सर्वे तत्समीपे तिष्ठंतीत्यर्थः । किंच सूर्यामासा ॥ माति स्वकलाभिस्तिथीनिति मासश्चंद्रमाः । देवताद्वंद्वे चेत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥ सूर्याचंद्रमसौ दृशे दर्शनाय सर्वलोकप्रकाशनाय च यस्या गोः समीपे कं सुखेन वर्तमानौ भवतः । सेयं गौः सोमं धयतीति पूर्वेण समन्वयः ॥

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणंति कारवः । मरुतः सोमपीतये ॥३॥

तत् । सु । नः । विश्वे । अर्यः । आ । सदा । गृणंति । कारवः । मरुतः । सोमऽपीतये ॥३॥

अर्यः स्तोत्रकरणार्थमितस्ततो गंतारो नोऽस्मदीया विश्वे सर्वे कारवः स्तोतारस्तन्मरुतां बलं सदा सर्वदा गृणंति । आभिमुख्येन स्तुतिभिः स्तुवंति । किमर्थं । सोमपीतयेऽस्माभिर्दीयमानं सोमं पातुं । मरुत एतन्नामका देवा अस्माभिराह्वातव्याः खलु । ततः पुरस्तात्तद्बलं स्तुवंतीत्यर्थः ॥

पूर्वत्राभिहित एव शस्त्रेऽस्ति सोम इति स्तोत्रियतृचः । सूक्तं तु पूर्वेण सहोदाहृतं ॥

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबंत्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥४॥

अस्ति । सोमः । अयं । सुतः । पिबंति । अस्य । मरुतः । उत । स्वऽराजः । अश्विना ॥४॥

अयं पुरोवर्ती सोमः सुतो मरुदर्थमस्माभिरभिषुतोऽस्ति । विद्यते । तस्मादस्य । अन्वादेशे । एनं सुतं सोमं स्वराजः स्वयं दीप्यमानाः । स्वतेजसा नान्यदीयेनेत्यर्थः । तादृशा मरुतः पिबंति । उतापि चाश्विनाश्विनौ च सोमं पिबतः ॥

पिबंति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥५॥

पिबंति । मित्रः । अर्यमा । तना । पूतस्य । वरुणः । त्रिऽसधस्थस्य । जाऽवतः ॥५॥

न केवलं मरुत एव सोमपातारः किंत्वितेऽपीत्याह । मित्रः सर्वेषां स्वस्वकर्मणि प्रवर्तकत्वात्सखिभूतोऽर्यमा च वरुणो दुःखादीनां शत्रूणां वा वरिता निवारकः । एतन्नामकास्त्रयो देवास्तना । ततमूर्णास्तुकेनेति तनं दशापवित्रं ॥ सुपां सुलुगिति तृतीयाया आकारादेशः । तनाद्युदात्तः ॥ तना पूतस्य शोधितं त्रिसधस्थस्य । सह तिष्ठंत्यत्रेति सधस्थं स्थानं । द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदात्मानि त्रीणि स्थानानि यस्य तत्तथोक्तं तादृशं जावतः स्तुत्यजनवंतमिमं सोमं पिबंति । द्वितीयार्थे षष्ठ्यः ॥

उतो न्वस्य जोषमाँ इंद्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥६॥

उतो इति । नु । अस्य । जोषं । आ । इंद्रः । सुतस्य । गोऽमतः । प्रातः । होताऽइव । मत्सति ॥६॥

उतो अपि चेंद्रः सुतस्यास्माभिरभिषुतस्य गोमतो गव्यैर्मिश्रणवतोऽस्य । अन्वादेशः । पूर्ववद्दशापवित्रेण पूतस्य सोमस्य जोषं पानरूपां सेवां प्रातः प्रातःसवने नु क्षिप्रमा मत्सति ॥ मदि स्तुत्यादिषु ॥ आभिमुख्येन स्तौति । यद्वा । सोममेवाकामयते । तत्र दृष्टांतः । होतेव यथा होता प्रातःसवने देवानभिष्टौति देवान् स्तोतुं वाभिवांछति ॥ ॥२८॥

कदत्विषंत सूरयस्तिर आप इव स्निधः । अर्षंति पूतदक्षसः ॥७॥

कत् । अत्विषंत । सूरयः । तिरः । आपःऽइव । स्निधः । अर्षंति । पूतऽदक्षसः ॥७॥

ऋषिर्मरुतो बहुवारं स्तुत्वेदानीमात्मानं वितर्कयति । सूरयः प्राज्ञा आप इवोदकानीव तिरो यथोद-

कानि तिर्यग्गच्छंति तद्वत्तिरश्चीनगतयः संतः कत्कदात्विषंत ॥ त्विष दीप्तौ ॥ अंतरिक्षे कदा दीप्यंते । किंच स्रिधः शत्रूणां शोषका हंतारस्त इमे मरुतः पूतदक्षसः शुद्धबलाः संतः कदा वार्धंति । अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छंति ॥

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दस्मवर्चसां ॥८॥

कत् । वः । अद्य । महानां । देवानां । अवः । वृणे । त्मना । च । दस्मऽवर्चसां ॥८॥

हे मरुतः महानां मंहनीयानां महतां वा त्मना चात्मनैवालंकरणैर्विनापि दस्मवर्चसां दर्शनीयतेजस्कानां अत एव देवानां द्योतमानानां वो युष्माकमवः पालनं कत् कदाहं वृणे । संभजे ॥ वृङ् संभक्तौ । क्रैयादिकः ॥

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः । मरुतः सोमपीतये ॥९॥

आ । ये । विश्वा । पार्थिवानि । पप्रथन् । रोचना । दिवः । मरुतः । सोमऽपीतये ॥९॥

ये मरुतः विश्वा विश्वानि पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि भूतजातानि दिवो द्युलोकस्य रोचना रोचमानानि ज्योतींषि च आ पप्रथन् सर्वत्र विस्तारितान्यकार्षुः ॥ प्रथ प्रख्याने । ण्यंतस्य चङ्यत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशां । पा॰ ७. ४. ९५. । इत्यभ्यासस्यादादेशः । चङ्यन्यतरस्यामिति स्वरेण मध्योदात्तः ॥ तादृशान्मरुतो देवान् सोमपीतये सोमपानायाहमाह्वयामि ॥

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥

त्यान् । नु । पूतऽदक्षसः । दिवः । वः । मरुतः । हुवे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१०॥

हे मरुतो मितराविण एतन्नामका देवाः पूतदक्षसः परिशुद्धबलान् दिवः स्वतेजसा दीप्यमानान् । यद्वा । दिवो द्युलोकस्थितान् । त्यांस्तान् प्रसिद्धान्वो युष्मान्नु क्षिप्रं हुवे । आह्वयामि । किमर्थं । अस्यास्मदीयस्य सोमस्य पीतये पानाय ॥

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥

त्यान् । नु । ये । वि । रोदसी इति । तस्तभुः । मरुतः । हुवे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥११॥

ये मरुतो रोदसी द्यावापृथिव्यौ वि तस्तभुः स्वबलेनैवात्यर्थं स्तब्धे चक्रुः । ते रोदसी स्वाधीने अकार्षुरित्यर्थः । त्यांस्तान् सर्वतः प्रतिष्ठान्नु क्षिप्रमहं हुवे । आह्वयामि । किमर्थं । अस्येत्यादि ॥

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥

त्यं । नु । मारुतं । गणं । गिरिऽस्थां । वृषणं । हुवे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१२॥

त्यं तं सर्वत्र विस्तृतं गिरिष्ठां गिरिषु मेघेषु पर्वतेषु वा तिष्ठंतं वृषणमुदकानां कामानां वा वर्षितारं मारुतं मरुत्संबंधिनं गणं संघं हुवे । बिंदुरहमाह्वयामि । किं प्रयोजनं । अस्यास्मदीयस्य सोमस्य पीतये पानाय ॥ ॥२९॥

आ त्वेति नवर्चं द्वितीयं सूक्तमानुष्टुभमैंद्रं । तिरश्चीर्नामांगिरस ऋषिः । तथा चानुक्रम्यते । आ त्वा नव तिरश्चीरानुष्टुभमिति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवनेऽच्छावाकस्या त्वा गिर इति तृचो वैकल्पिकोऽनुरूपः । सूत्र्यते हि । गायंति त्वा गायत्रिण आ त्वा गिरो रथीरिव । आ॰ ७. ८. । इति ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषतेंद्र वत्सं न मातरः ॥१॥

आ । त्वा । गिरः । रथीःऽइव । अस्थुः । सुतेषु । गिर्वणः ।
अभि । त्वा । सं । अनूषत । इंद्र । वत्सं । न । मातरः ॥१॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीयेंद्र सुतेषु सोमेष्वभिषुतेषु सत्सु गिरोऽस्माकं स्तुतिलक्षणा वाचस्त्वा त्वामास्थुः । आभिमुख्येन शीघ्रं तिष्ठंति । तत्र दृष्टांतः । रथीरिव यथा रथवान्रथेन गच्छन्वीरः प्राप्यं देशं क्षिप्रं गच्छति तद्वदस्माभिरभिगंतव्यं त्वां स्तुतयोऽभिगच्छंति । किंच हे इंद्र अस्मदीया गिरस्त्वा त्वामभिलक्ष्य समनूषत । सम्यक् शब्दायंते । स्तुवंतीत्यर्थः ॥ नू स्तवने । कुटादिः । तस्य लुङि रूपं ॥ तत्र दृष्टांतः । वत्सं न मातरः । यथा मातरो गावो वत्समभिलक्ष्य हंभारवादिशब्दं कुर्वंति तद्वत् ॥

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इंद्र गिर्वणः ।
पिबा त्व१स्यांधस इंद्र विश्वासु ते हितं ॥२॥
आ । त्वा । शुक्राः । अचुच्यवुः । सुतासः । इंद्र । गिर्वणः ।
पिब । तु । अस्य । अंधसः । इंद्र । विश्वासु । ते । हितं ॥२॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीय हे इंद्र शुक्रा ग्रहेषु पात्रेषु च दीप्यमानाः सुतासोऽस्माभिरभिषुताः सोमास्त्वा त्वामाचुच्यवुः । आगच्छंतु ॥ च्युङ् ज्युङ् गतौ । लङि बहुलं छंदसीति शपः श्लुः ॥ ततस्त्वमस्माभिर्दीयमानस्यांधसः सोमस्य भवदीयं भागं तु क्षिप्रं पिब । तदेवोपपादयति । हे इंद्र विश्वासु सर्वासु दिक्षु ते त्वदर्थं सोमपुरोडाशादिहविर्हितं भवति ॥

पिबा सोमं मदाय कमिंद्र श्येनाभृतं सुतं ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥३॥
पिब । सोमं । मदाय । कं । इंद्र । श्येनऽआभृतं । सुतं ।
त्वं । हि । शश्वतीनां । पतिः । राजा । विशां । असि ॥३॥

हे इंद्र त्वं श्येनाभृतं ॥ हृग्रहोर्भश्छंदसीति हकारस्य भकारः ॥ द्युलोकाच्छ्येनरूपया गायत्र्याहृतं सुतमभिषुतं सोमं मदाय हर्षाय पिब । कमिति पूरणः सुखार्थो वा । सुखेन सोमं पिब । हिशब्दो हेतौ । हि यस्मात्त्वं शश्वतीनां बह्वीनां विशां मरुद्गणानां सर्वेषां देवगणानां च पतिः पालयिता स्वाम्यसि भवसि तथा राजा स्वतेजसा दीप्यमानश्चासि । अतस्त्वं पूर्वं सोमं पिबेति ॥

आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवनेऽच्छावाकस्य श्रुधी हवं तिरश्च्या इति वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूत्रितं च । श्रुधी हवं तिरश्च्या आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं । आ॰ ७. ८. । इति ॥

श्रुधी हवं तिरश्च्या इंद्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥४॥
श्रुधि । हवं । तिरश्च्याः । इंद्र । यः । त्वा । सपर्यति ।
सुऽवीर्यस्य । गोऽमतः । रायः । पूर्धि । महान् । असि ॥४॥

हे इंद्र यस्त्वा त्वां सपर्यति ॥ सपरशब्दः कंड्वादिः ॥ हविर्भिः परिचरति तादृशस्य तिरश्च्या एतन्नामकस्यर्षेर्मम हवं स्तुतिभिस्त्वद्विषयमाह्वानं श्रुधि । शृणु । श्रुत्वा च हे इंद्र त्वं सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतस्य । यद्वा ।

वीरे पुत्रे भवं वीर्यं। सुपुत्रस्य। गोमतो गवादिपशुमतो रायो धनस्य दानेन पूर्धि। अस्मान्पूरय। एतत्सामर्थ्यं कुत इत्यत आह। त्वं महान् गुणाधिको देवानां श्रेष्ठश्चासि। भवसि खलु॥

इंद्र॒ यस्ते॒ नवी॑यसीं॒ गिरं॑ मं॒द्राम॒जीज॑नत्।
चि॒कि॒त्विन्म॑नसं॒ धियं॑ प्र॒त्नामृ॒तस्य॑ पि॒प्युषी॑म्॥५॥
इंद्र॑। यः। ते॒। नवी॑यसीम्। गिर॑म्। मं॒द्राम्। अ॒जीज॑नत्।
चि॒कि॒त्वित्ऽम॑नसम्। धिय॑म्। प्र॒त्नाम्। ऋ॒तस्य॑। पि॒प्युषी॑म्॥५॥

हे इंद्र यो यजमानो नवीयसीं नवतरां पुनःपुनःक्रियमाणतया मंद्रां मदकरीं गिरं स्तुतिलक्षणां वाचं ते त्वदर्थमजीजनत् उदपीपदत्। अकार्षीदित्यर्थः। तस्मै स्तोत्रे त्वं प्रत्नां पुरातनमृतस्य सत्यस्य संबंधि। यद्वा। तृतीयार्थे षष्ठी। सत्येन पिप्युषीं प्रवृद्धं॥ लिड्यङोश्चेति प्यायतेः पीभावः॥ तादृशं चिकित्विन्मनसं॥ कित ज्ञाने। क्वसौ रूपं। अकारस्यैकारश्छांदसः॥ चिकित्वांसि ज्ञातानि सर्वेषां हृदयानि यथेति। अमायया क्रियमाणं यत्तव रक्षणं सर्वेषां हृदयं प्रज्ञापयतीति तदतींद्रियार्थदर्शकं धियं रक्षणाख्यं तस्मै कुरु॥ ॥३०॥

तमु॑ ष्टवाम॒ यं गिर॒ इंद्र॑मु॒क्थानि॑ वावृ॒धुः।
पु॒रूण्य॑स्य॒ पौंस्या॒ सिषा॑संतो वनामहे॥६॥
तम्। ऊं॒ इति॑। स्तवा॒म॒। यम्। गिरः॑। इंद्र॑म्। उ॒क्थानि॑। व॒वृ॒धुः।
पु॒रूणि॑। अ॒स्य॒। पौंस्या॑। सिसा॑संतः। व॒ना॒म॒हे॒॥६॥

ऋषयः परस्परमाहुः। तं पूर्वोक्तलक्षणं। उ इत्यवधारणे। तमेवेंद्रं स्तवाम। स्तुतिभिः स्तुमः। यमिंद्रं गिरोऽस्माकं स्तुतय उक्थानि शस्त्राणि च वावृधुः प्रावर्धयन् तं स्तुमः। ततो वयमस्येंद्रस्य पुरूणि बहूनि पौंस्या वीर्याणि सिसासंतः॥ षण संभक्तौ। सनीऽवभावपक्ष आत्वे कृते सनोतेरन इति सांहितिकं षत्वं॥ तानि वीर्याणि संभक्तुमिच्छंतो वनामहे। तमिंद्रं स्तुतिभिः संभजामहे॥

एतो॒ न्विंद्रं॒ स्तवा॑म शु॒द्धं शु॒द्धेन॒ साम्ना॑।
शु॒द्धैरु॒क्थैर्वा॑वृ॒ध्वांसं॑ शु॒द्ध आ॒शीर्वा॑न्ममत्तु॥७॥
एतो॒ इति॑। नु। इंद्र॑म्। स्तवा॑म। शु॒द्धम्। शु॒द्धेन॑। साम्ना॑।
शु॒द्धैः। उ॒क्थैः। व॒वृ॒ध्वांस॑म्। शु॒द्धः। आ॒शीःऽवा॑न्। म॒म॒त्तु॒॥७॥

अत्रेतिहासमाचक्षते। पुरा किलेंद्रो वृत्रादिकानसुरान्हत्वा ब्रह्महत्यादिदोषेणात्मानमपरिशुद्धमित्यमन्यत। ततस्तद्दोषपरिहारायेंद्र ऋषीनवोचत्। अपूतं मां युष्मदीयेन साम्ना शुद्धं कुरुतेति। ततस्ते च शुद्ध्युत्पादकेन साम्ना शस्त्रैश्च परिशुद्धमकार्षुः। पश्चात्पूतायेंद्राययागादिकर्माणि सोमादीनि हवींषि प्रादुरिति। एषोऽर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे प्रतिपादितः। इंद्रो वासुरान्हत्वापूत इवामेध्योऽमन्यत। सोऽकामयत शुद्धमेव मा संतं शुद्धेन साम्ना स्तुयुरिति। स ऋषीनब्रवीत् स्तुत मेति। तत ऋषयः सामापश्यन्। तेनास्तुवन्नेतो न्विंद्रमिति। ततो वा इंद्रः पूतः शुद्धो मेध्योऽभवदिति॥ तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः। ऋषयः परस्परं ब्रुवंति। नु क्षिप्र-मेतो। गच्छतैव। आगत्य च शुद्धेन शुद्ध्युत्पादकेन साम्ना तथा शुद्धैः शुद्धिहेतुभिरुक्थैः शस्त्रैश्चेंद्रं शुद्धमपापिनं कृत्वा स्तवाम। स्तुयाम। ततः सामशस्त्रैश्च वावृध्वांसं पापराहित्येन वर्धमानं तमिममिंद्रं शुद्धो दशापवित्रे-णाशीर्वानाश्रयणवान् गव्यादिभिः॥ छंदसीर इति मतुपो वत्वं॥ तादृशः सोमो ममत्तु। इंद्रं मादयतु॥ मादयतेश्छांदसः श्लुः॥

इंद्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥८॥
इंद्र । शुद्धः । नः । आ । गहि । शुद्धः । शुद्धाभिः । ऊतिऽभिः ।
शुद्धः । रयिं । नि । धारय । शुद्धः । ममद्धि । सोम्यः ॥८॥

हे इंद्र शुद्धोऽस्मदीयैः सामभिः शस्त्रैश्च परिशुद्धस्त्वं नोऽस्माना गहि । आगच्छ । शुद्धाभिरूतिभिः । ऊतयो मरुतः । अवंति सर्वत्र गच्छंतीति वा । तेऽपि सामभिः शस्त्रैः परिपूताः । तैर्मरुद्भिः सह शुद्धः पापरहितस्त्वमा गहि । आगत्य च शुद्धस्त्वं रयिं धनमस्मासु नि धारय । नितरां स्थापय । किंच शुद्धस्त्वं च सोम्यः सोमार्हो भूत्वा ममद्धि । सोमेन माद्य ॥ मदी हर्षे । लोटि बहुलं छंदसीति शपः श्लुः ॥

इंद्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥९॥
इंद्र । शुद्धः । हि । नः । रयिं । शुद्धः । रत्नानि । दाशुषे ।
शुद्धः । वृत्राणि । जिघ्नसे । शुद्धः । वाजं । सिसाससि ॥९॥

हे इंद्र शुद्धः । हिरवधारणे । शुद्ध एव त्वं रयिं धनं नोऽस्मभ्यं प्रयच्छ । तथा शुद्धस्त्वं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनादीनि च देहि । ततः शुद्धः पापरहितस्त्वं वृत्राण्यपामावरकान् कर्मविघ्नकारिणः शत्रून् पापानि वा जिघ्नसे । हंसि । ततः शुद्धः शत्रुहननदोषपरिहारायास्मदीयैः सामभिः शस्त्रैः परिशुद्धस्त्वं वाजमन्नमस्मभ्यं सिसाससि । प्रदातुमिच्छसि । यदा यदा शत्रूनहं हन्यां तदा तदा शुद्ध्युत्पादकैः सामभिः शस्त्रैश्च यूयं मां परिशुद्धं कुरुतेत्यस्मभ्यमन्नं दातुमिच्छसीत्यर्थः ॥ ॥३१॥

अस्मा इत्येकविंशत्यृचं तृतीयं सूक्तं । अत्रानुक्रम्यते । अस्मै सैका द्युतानो वा मारुतस्त्रैष्टुभं चतुर्थी विराळिष्यामीति मारुतः पादः ऐंद्राबार्हस्पत्येति । द्युतानाख्यो मरुतां पुत्र ऋषिस्तिरश्चीर्नामांगिरसो वा । चतुर्थी विराट् । शिष्टास्त्रिष्टुभः । इंद्रो देवता । इष्यामि वो मरुत इति पादो मरुद्देवत्यः । अध द्रप्स इत्येषा त्विंद्राबृहस्पतिदेवताका ॥ सूक्तविनियोगो लिंगादवगंतव्यः ॥

अस्मा उषास आतिरंत याममिंद्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिंधवः सुपाराः ॥१॥
अस्मै । उषसः । आ । अतिरंत । यामं । इंद्राय । नक्तं । ऊर्म्याः । सुऽवाचः ।
अस्मै । आपः । मातरः । सप्त । तस्थुः । नृऽभ्यः । तराय । सिंधवः । सुऽपाराः ॥१॥

इंद्रसामर्थ्याज्ज्ञीता उषस उषःकाला अस्मै पूर्वोक्तगुणोपेतायेंद्राय यामं स्वस्वगमनमातिरंत । तिरतिर्वर्धनकर्मा । समंतादवर्धयंत । यथा पूर्वमुषंति तथेदानीमप्यस्मा उन्नता अभवन् । तथोर्म्याः ॥ रात्रिनामैतत् । ऋ गतिप्रापणयोः । अर्तेरूच । उ० ४. ४४. । इति मिप्रत्ययः । भवे छंदसीति यत् ॥ सर्वैरभिगंतव्याः । रात्रौ हि सर्वे स्वनिवासं गच्छंति । स्वनिलयप्राप्तिहेतुभूता रात्रयः । नक्तमपररात्रिकाले सुवाचः शोभनवाचो भवंति । तस्मिन् काले हि सर्वे वेदाध्ययनादीनि कुर्वंति । तस्मात्कल्याणवाचोऽभवन् । इंद्रेऽनुशासति वेदाद्यनुमाने निरता अभवन् । तथापः ॥ आप्लृ व्याप्तौ ॥ सर्वतो व्याप्ता मातरो जगतां निर्मात्र्यः सप्त सप्तसंख्याकाः सिंधवः स्यंदमाना गंगाद्या नद्यः । यद्वा । सर्पणशीलाः सिंधवः सरितः । तासामावरकस्याहेर्हननोत्पादित्वादस्मा इंद्राय नृभ्यस्तराय मनुष्याणां सुखेन तरणार्थं सुपाराः शोभनपाराः सुखेन तर्तुं योग्या अभवन्नित्यर्थः ॥

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणां।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥२॥
अतिऽविद्धा। विथुरेण। चित्। अस्त्रा। त्रिः। सप्त। सानु। संऽहिता। गिरीणां।
न। तत्। देवः। न। मर्त्यः। तुतुर्यात्। यानि। प्रऽवृद्धः। वृषभः। चकार ॥२॥

विथुरेण ॥ वर्णव्यत्ययः ॥ चिदप्यर्थे। विधुरेणासहायेनाप्यस्त्रा ॥ असु क्षेपणे। ताच्छीलिकस्तृन् ॥ शत्रुक्षेपणशीलेनेंद्रेण। यद्वा। अस्त्रास्त्रेण वज्रेण। त्रिः सप्तैकविंशतिसंख्यानि संहिता संहितान्येकत्र संघीभूतानि गिरीणां सप्तानां पर्वतानां सानु सानून्यतिविद्धानि। अतीत्य ताडितानि। तेन मुक्तो वज्रपातस्तानि भित्त्वागमदित्यर्थः। अत्र तैत्तिरीयकं ब्राह्मणं। दर्भपिंजूलमुद्धृत्य सप्त गिरीन् भित्त्वा तमहन्नित्यादि। तै० सं० ६. २. ४. ३.। तस्येंद्रस्य तत्तानि सानुभेदनादीनि कर्माणि देव इंद्राद्व्यतिरिक्तो देवो मर्त्यो मनुष्यो वा न तुतुर्यात्। न तरेत्। तथा कर्तुं न शक्नोतीत्यर्थः ॥ तॄ प्लवनतरणयोः। लिङि छांदसः शपः श्लुः। बहुलं छंदसीत्युत्वं। यद्वा। तुर त्वरणे जौहोत्यादिकः ॥ प्रवृद्धः सोमपानेन बलेन वा प्रवृद्धो वृषभः कामानामुदकानां वा वर्षक इंद्रो यानि कर्माणि चकार कृतवान् तानि देवो मनुष्यो वा न तथा कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः ॥

इंद्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इंद्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः।
शीर्षन्निंद्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषंत श्रुत्या उपाके ॥३॥
इंद्रस्य। वज्रः। आयसः। निऽमिश्लः। इंद्रस्य। बाह्वोः। भूयिष्ठं। ओजः।
शीर्षन्। इंद्रस्य। क्रतवः। निरेके। आसन्। आ। ईषंत। श्रुत्यै। उपाके ॥३॥

उक्तगुणस्येंद्रस्य वज्र आयसोऽयसा निर्मितः। अयोमय इत्यर्थः। स वज्र इंद्रेण स्वहस्ते निमिश्लः संमिश्रोऽत्यंतं संबद्धः कृतः। अत एवेंद्रस्य बाह्वोर्भुजयोर्भूयिष्ठं बहुतममोजो वीर्यमस्ति। तथा निरेके ॥ निपूर्वाद्रिच्यतेर्वा निष्पूर्वादेतेर्वेति संदेहादनवग्रहः ॥ निर्गमने यदा युद्धार्थमिंद्रो निर्गच्छति तदानीमिंद्रस्य शीर्षञ्छिरसि क्रतवः कर्माणि शिरस्त्राणनिधानादीनि। यद्वा। शिर इति गलप्रभृत्यूर्ध्वमंगमुच्यते। तत्रत्याभ्यामक्षिभ्यां दर्शनप्रेरणादीनि कर्माणि भवंति। तथासन् ॥ आस्यस्यासन्नादेशः ॥ आस्ये च यानि कर्माणि युद्धार्थं वाजिनो गजान् संनाहयतेत्यादीनि भवंति। किंच श्रुत्यै संग्रामाय निर्गच्छतोऽनुशासत इंद्रस्य वाक्यश्रवणार्थं सर्व उपजीविनो भृत्या उपाकेऽंतिक एषंत। अयमिंद्रोऽस्मान् कुत्र कुत्र कार्ये नियोक्ष्यतीत्येतेन मनसा तदंतिके समंतादागच्छंति ॥ ईष गतिहिंसादर्शनेषु भौवादिकः ॥

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानां।
मन्ये त्वा सत्वनामिंद्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनां ॥४॥
मन्ये। त्वा। यज्ञियं। यज्ञियानां। मन्ये। त्वा। च्यवनं। अच्युतानां।
मन्ये। त्वा। सत्वनां। इंद्र। केतुं। मन्ये। त्वा। वृषभं। चर्षणीनां ॥४॥

एतदादयः प्रत्यक्षाः। हे इंद्र त्वा त्वां यज्ञियानां यज्ञार्हाणां देवानामपि यज्ञियं पुरस्तादेव यज्ञार्हमिति मन्ये। अवबुध्ये। तथा त्वा त्वामच्युतानां च्युतिरहितानामपि पर्वतानां च्यवनं च्यावयितारं वज्रेण विभेदकमिति मन्ये। जानामि। यद्वा। अच्युतानां बलेन च्यावयितुमशक्यानां बलिनां वीराणामपि स्वबलेन विद्रावयितारमिति जाने। किंच हे इंद्र सत्वनां ॥ षण संभक्तौ। क्वनिप् ॥ संभजमानानां भटानां केतुमुच्छ्रितमिति मन्ये। यद्वा। सत्वनां स्तुतिभिर्हविर्भिर्वा संभक्तॄणां यष्टॄणां केतुमात्मनः प्रज्ञापकं तेषां पूजनीयमिति वा मन्ये। तथा त्वा त्वां चर्षणीनां मनुष्याणां वृषभमभिमतफलवर्षकमिति मन्ये। जानामि ॥

आ यद्वज्रं बाह्वोरिंद्र धत्से मदच्युतमहये हंतवा उं ।
प्र पर्वता अनवंत प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षंत इंद्रं ॥५॥

आ । यत् । वज्रं । बाह्वोः । इंद्र । धत्से । मदऽच्युतं । अहये । हंतवै । ऊं इति ।
प्र । पर्वताः । अनवंत । प्र । गावः । प्र । ब्रह्माणः । अभिऽनक्षंतः । इंद्रं ॥५॥

हे इंद्र बाह्वोर्वज्रमायुधं । कीदृशं । मदच्युतं शत्रूणां मदस्य च्यावयितारं यद्यदा धत्से आदधासि । किमर्थं । अहयेऽहिनामानमसुरं मेघं वा हंतवै । उ इत्यवधारणे । हंतुमेव । किंच यदा वेंद्रेणाहिनामकेऽसुरे हते सति पर्वता जगदापूरका मेघाः प्राणवंत ॥ णु शब्दे ॥ प्रकर्षेणाशब्दयन् । यदा वा गावस्तत्स्थान्युदकानि च प्रकर्षेण ध्वनिमकुर्वन् । उदकान्यध्वनयन्नित्यत्र याजुषो निगमः । यददः संप्रयतीरहावनदता हते तस्मादा नद्यो नाम स्थ । अथ॰ ३. १३. १. तै॰ सं॰ ५. ६. १. २. । इति । तुरीयः पादः परोक्षः । तदानीमभिनक्षंत अभित इंद्रं स्तुतिभिर्हविर्भिर्गच्छंतो ब्रह्माणो ब्राह्मणा इंद्रं पर्यचरन् । यद्वा । ब्रह्माणः ॥ बृह वृद्धौ ॥ प्रवृद्धाः पर्वतादय इंद्रमस्तुवन्निति ॥ ॥३२॥

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इंद्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥६॥

तं । ऊं इति । स्तवाम । यः । इमा । जजान । विश्वा । जातानि । अवराणि । अस्मात् ।
इंद्रेण । मित्रं । दिधिषेम । गीःऽभिः । उपो इति । नमःऽभिः । वृषभं । विशेम ॥६॥

परस्परं स्तोतार आहुः । तमु तमेवेंद्रं वयं संहत्य स्तवाम । स्तोत्रं करवाम । य इंद्र इमेमानि भूतानि जजान जनयामास । तस्मादस्मादिंद्रादेव विश्वा विश्वानि सर्वाणि वस्तुजातानि सर्वाणि जगंति वावराण्यवरकालीनानि पश्चाद्भवानि भवंति । तेनानेनेंद्रेण वयं गीर्भिः स्तुतिभिर्मित्रं । लुप्तभावप्रत्ययेन निर्देशः । मैत्रीं दिधिषेम ॥ धिष धारण इति धातुं केचिद्वदंति ॥ यद्वा । मित्रं ॥ छांदसमेकवचनं ॥ वयमिंद्रेण सह मित्राणि सुहृदो भवेमेति गीर्भिरिंद्रं शब्दयेम ॥ धिष शब्दे । जौहोत्यादिकः । अत्र व्यत्ययेन द्विविकरणता सुत्र शत्र ॥ ततो नमोभिः क्रियमाणैर्नमस्कारैर्दीयमानैर्हविर्भिर्वा वृषभं कामानां वर्षकमिंद्रमुपो विशेम । अस्मदभिमुखमेव कुर्याम ॥

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिंद्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥७॥

वृत्रस्य । त्वा । श्वसथात् । ईषमाणाः । विश्वे । देवाः । अजहुः । ये । सखायः ।
मरुत्ऽभिः । इंद्र । सख्यं । ते । अस्तु । अथ । इमाः । विश्वाः । पृतनाः । जयासि ॥७॥

हे इंद्र तव ये विश्वे देवाः प्राक् सखायः संग्रामे सखित्वं कुर्यामेति मित्राण्यभवन् ते सर्वे देवा वृत्रस्य वृत्रासुरस्य श्वसथात् ॥ श्वसेरौणादिकोऽथप्रत्ययः ॥ सर्वानागच्छतो दृष्ट्वा तेषां भीत्युत्पादनाय वृत्रासुरः श्वासमकार्षीत् । श्वासाद्भीताः संतः अत एवेषमाणाः सर्वतः पलायमानास्त्वा त्वामजहुः । संग्रामे त्यक्तवंतः । एवं सति हे इंद्र मरुद्भिः सह सख्यं सखिभावस्ते तवास्तु । ये मरुतस्त्वां न परित्यजंति तैः सहेति । अथानंतरमिमा विश्वाः पृतनाः शत्रुसेना जयासि । स्वबलेनाभिभवसि । अनेन वृत्रघ्नं तमिंद्रमाह । अथेंद्रो वै वृत्रं हनिष्यन्नित्यादि ब्राह्मणमनुसंधेयं । ऐ॰ ब्रा॰ ३. २०. ॥

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥८॥

चि॑ः । ष॒ष्टिः । त्वा॒ । म॒रुत॑ः । व॒वृ॒धा॒नाः । उ॒स्राःऽइ॑व । रा॒शय॑ः । य॒ज्ञिया॑सः ।
उप॑ । त्वा॒ । आ । इ॒मः॒ । कृ॒धि । नः॒ । भा॒ग॒ऽधेय॑म् । शुष्म॑म् । ते॒ । ए॒ना । ह॒विषा॑ । वि॒धे॒म ॥८॥

प्रसंगादेतावंतो मरुतः सहाया अभवन्नित्याह । हे इंद्र त्रिस्त्रयः ॥ जसः सुपां सुलुगिति सुः ॥ षष्टिस्त्र्युत्तरसंख्याका मरुतः । ते च तैत्तिरीयक ईदृङ्चान्यादृङ्चेत्यादिना । तै० सं० ४. ६. ५. ५. । नवसु गणेषु सप्त सप्त निपादिताः । तत्रादितः पंच गणाः संहितायामाम्नायंते । स्वतवांश्च प्रघासी च सांतपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी चोज्जेषी । वा० सं० १७. ८५. । इति खैलिकः षष्ठो गणः । ततो धुनिश्च ध्वांतश्चेत्याद्यास्त्रयोऽरण्येऽनुवाक्याः । तै० आ० ४. २४. । इत्थं त्रयःषष्टिसंख्याका उस्रा इव राशयो गाव इव संघीभूतास्ते त्वां वावृधानाः स्वबलेन वर्धितवंतः । ते मरुतो यज्ञियासो यज्ञार्हा अभवन् । तं मरुत्सहायमिंद्रं त्वा त्वां वयमेमः । उपगच्छामः । ततस्त्वं नोऽस्मभ्यं भागधेयं भजनीयं धनं कृधि । कुरु । पश्चाद्वयमप्येनेनेन सोमलक्षणेन हविषा ते तुभ्यं शुष्मं शत्रूणां शोषकं बलं विधेम ॥ विध विधाने ॥ विदध्मः । कुर्म इत्यर्थः ॥

ति॒ग्ममायु॑धं म॒रुता॒मनी॑कं॒ कस्त॑ इंद्र॒ प्रति॒ वज्रं॑ दधर्ष ।
अ॒ना॒यु॒धासो॒ असु॑रा अ॒दे॒वाश्च॒क्रेण॒ ताँ अप॑ वप ऋजीषिन् ॥९॥
ति॒ग्मम् । आयु॑धम् । म॒रुता॑म् । अनी॑कम् । कः । ते॒ । इ॒न्द्र॒ । प्रति॑ । वज्र॑म् । द॒ध॒र्ष॒ ।
अ॒ना॒यु॒धास॑ः । असु॑राः । अ॒दे॒वाः । च॒क्रेण॑ । तान् । अप॑ । व॒प॒ । ऋ॒जी॒षि॒न् ॥९॥

हे इंद्र ते तव स्वभूतं तिग्मं तीक्ष्णमायुधं । आयुध्यतेऽनेनेत्यायुधं धनुः । तत्र मरुतां त्रयःषष्टिसंख्यानां त्वत्सहायानामनीकं संघं ते त्वदीयं वज्रं च कः को वा देवो मनुष्यो वा प्रति दधर्ष । प्रतिकूलमभिभवति । अभिभावुको नास्तीत्यर्थः ॥ धृष प्रसहने । आ धृषाद्वा । धा० ३४. । इति विभाषितणिच् । तदभावे लिटि रूपं ॥ अत एवानायुधासो धनुराद्यायुधवर्जिता अदेवा देववर्जिता देवद्विषो येऽसुराः संति हे ऋजीषिन् । अपार्जितोऽभिषुतः सोम ऋजीषं । तद्वन्निंद्र तानसुरांश्चक्रेण चक्रसमानवीर्येण चक्ररूपेण वज्रेण वाप वप । अपगतान् कुरु । अपनुदेत्यर्थः ॥

म॒ह उ॒ग्राय॑ त॒वसे॑ सु॒वृ॒क्तिं प्रेर॑य शि॒वत॑माय प॒श्वः ।
गिर्वा॑हसे॒ गिर॒ इंद्रा॑य पू॒र्वीर्धे॒हि त॒न्वे॑ कु॒विदं॒ग वेद॑त् ॥१०॥
म॒हे । उ॒ग्राय॑ । त॒वसे॑ । सु॒ऽवृ॒क्तिम् । प्र । ई॒र॒य॒ । शि॒वऽत॑माय । प॒श्वः ।
गिर्वा॑हसे । गिर॑ः । इन्द्रा॑य । पू॒र्वीः । धे॒हि॒ । त॒न्वे॑ । कु॒वित् । अ॒ङ्ग । वेद॑त् ॥१०॥

हे स्तोतः महे महते गुणैरुग्राय बलेनोद्गूर्णाय तवसे ॥ तु इति धातुर्वृद्ध्यर्थः ॥ प्रवृद्धाय शिवतमाय कल्याणतमायेंद्राय सुवृक्तिं शोभनां स्तुतिं प्रेरय । चोदय । कुरु । किमर्थं । पश्वः पशोः । द्विपाच्चतुष्पाच्च । पशोर्ममास्मदीयाय गवे वा । यद्वा पशोरतींद्रियार्थं द्रष्टुर्मम धनादिकं दातुं गवे सुखादिकं प्रदातुमिंद्राय स्तुतिं प्रेरय । एतदेवाह । हे स्तोतः गिर्वाहसे गीर्भिः स्तुतिभिरुह्यमानायेंद्राय पूर्वीर्बह्वीर्गिरः स्तुतीर्धेहि । कुरु । ततः स इंद्रस्तन्वे । तनोति कुलमिति तनूस्तनयः । तस्मै पुत्राय स्वशरीरायात्मने वा कुवित् । बहुनामैतत् । बहु धनमंग क्षिप्रं वेदत् । लंभयतु । ददातु ॥ विद्लृ लाभे । लेट्यडागमः । कुविच्छब्दयोगादनिघातः ॥ ॥ ३३ ॥

उ॒क्थवा॑हसे वि॒भ्वे॑ म॒नी॒षां द्रुणा॒ न पा॒रमी॑रया न॒दीना॑म् ।
नि स्पृ॑श धि॒या त॒न्वि॑ श्रु॒तस्य॒ जुष्ट॑तरस्य कु॒विदं॒ग वेद॑त् ॥११॥

उक्थऽवाहसे। विऽभ्वे। मनीषां। द्रुणा। न। पारं। ईरय। नदीनां।
नि। स्पृश। धिया। तन्वि। श्रुतस्य। जुष्टऽतरस्य। कुवित्। अंग। वेदत् ॥ ११ ॥

हे स्तोतः उक्थवाहस उक्थैः स्तोत्रशस्त्रादिभिरुह्यमानाय अत एव विभ्वे महते यद्वा शत्रूणामभिभवित्र इंद्रायेंद्रार्थं मनीषां मनस ईशां स्तुतिमीरय। प्रेरय। तत्र दृष्टांतः। द्रुणा न यथा नाविको नदीनां नदमानानां सरितां पारं तीरं प्रति पथिकं द्रुणा नावा प्रापयति तद्वदिंद्रं प्रति स्तुतिं गमयेति। किंच नि स्पृश नितरां धनं स्पर्शय गमय तन्व्यात्मनि पुत्रे वा। कीदृशं। श्रुतस्य सर्वत्र विश्रुतस्य प्रसिद्धस्य जुष्टतरस्यात्यर्थं प्रीणयितुरिंद्रस्य स्वभूतं। धनं धिया त्वदीयया स्तुत्या कर्मणा वात्मानं गमय। ततस्त्वयाभिष्टुत इंद्रः कुविद्बहु धनं क्षिप्रं वेदत्। लंभयतु। ददातु ॥

तद्विविड्ढि यत्त इंद्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदंग वेदत् ॥ १२ ॥
तत्। विविड्ढि। यत्। ते। इंद्रः। जुजोषत्। स्तुहि। सुऽस्तुतिं। नमसा। आ। विवास।
उप। भूष। जरितः। मा। रुवण्यः। श्रवय। वाचं। कुवित्। अंग। वेदत् ॥ १२ ॥

हे ऋत्विक् तत् सोमादिहविः स्तोत्रं वा विविड्ढि। व्यापय। तानींद्रार्थं कुर्वित्यर्थः। ते तव स्वभूतं यद्धविः स्तोत्रं वेंद्रो जुजोषत् स्वीकुर्यात् तत्कुरु ॥ जुषी प्रीतिसेवनयोः। लेटि शपः श्लुः। अडागमः। छांदसत्वान्नाभ्यस्तस्येति गुणप्रतिषेधाभावः ॥ हे स्तोतः सुष्टुतिं सुस्तुतिं। शोभमाना स्तुतिर्यस्य स तथोक्तः। तादृशमिंद्रं स्तुहि। तथा नमसा स्तोत्रेण हविषा वा आ विवास। इंद्रमाभिमुख्येन परिचर ॥ विवासतिः परिचरणकर्मा। लोटि रूपं ॥ हे जरितः स्तोतः उप भूष ॥ भूष अलंकारे ॥ अलंकृतो भव। मा रुवण्यः। धनाभावान्मा ध्वनयः। मा रोदीरित्यर्थः। धनागमने कारणमाह। हे स्तोतः वाचं स्तुतिमिंद्रं श्रावय। ज्ञापय। ततस्त्वया स्तुत इंद्रस्तुभ्यं कुविद्बहु धनं क्षिप्रं प्रयच्छतु ॥

पृष्ठ्यषडहगतेषूक्थ्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रेऽव द्रप्स इति तृचः। सूत्रितं च। अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति तिस्रोऽच्छा म इंद्रमिति नित्यमैकाहिकं। आ॰ ८. ३.। इति ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिंद्रः शच्या धमंतमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ १३ ॥
अव। द्रप्सः। अंशुऽमतीं। अतिष्ठत्। इयानः। कृष्णः। दशऽभिः। सहस्रैः।
आवत्। तं। इंद्रः। शच्या। धमंतं। अप। स्नेहितीः। नृऽमनाः। अधत्त ॥ १३ ॥

अत्रेतिहासमाचक्षते किल। कृष्णो नामासुरो दशसहस्रसंख्यैरसुरैः परिवृतः सन्नंशुमतीनामधेयाया नद्यास्तीरेऽतिष्ठत्। तत्र तं कृष्णमुदकमध्ये स्थितमिंद्रो बृहस्पतिना सहागच्छत्। आगत्य तं कृष्णं तस्यानुचरांश्च बृहस्पतिसहायो जघानेति ॥ केचिदन्यथा वदंति। तेषां कथा हेतुः। द्रप्स इत्युदककणोऽभिधीयते स तु सोमो द्रप्सश्चस्कंद। ऋ॰ १०. १७. ११.। इत्यादिषु सोमपरत्वेनोक्तत्वात्। एतत्पदमाश्रित्याहुः ॥ अपक्रम्य तु देवेभ्यः सोमो वृत्रभयार्दितः। नदीमंशुमतीं नामाभ्यतिष्ठत्कुरून्प्रति ॥ तं बृहस्पतिनैकेन सोऽभ्ययाद्वृत्रहा सह। योत्स्यमानं सुसंहृष्टैर्मरुद्भिर्विविधायुधैः ॥ दृष्ट्वा तानायतः सोमः स्वबलेन व्यवस्थितः। मन्वानो वृत्रमायांतं जिघांसुमरिसेनया ॥ व्यवस्थितं धनुष्मंतं तमुवाच बृहस्पतिः। मरुत्पतिरयं सोम प्रेहि देवान्पुनर्विभो ॥ सोऽब्रवीन्नेति तं शक्र ओजसैव बलाद्बली। इयाय देवानादाय तं पपुर्विधिवत्सुराः ॥ जघ्नुः पीत्वा च दैत्यानां समरे नवतीर्नव। तदव द्रप्स इत्यस्मिन् तृचे सर्वं निगद्यते ॥ बृ॰ ६. १९८–१२५. ॥ एतदनार्षत्वे नादरणीयं भवति ॥ एषोऽर्थः क्रमेणर्क्षु वक्ष्यते। तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः। द्रप्सः। द्रुतं सरति गच्छतीति द्रप्सः ॥

पृषोदरादिः ॥ द्रुतं गच्छन् दशभिः सहस्रैर्दशसहस्रसंख्यैरसुरैरियानः कृष्ण एतन्नामकोऽसुरोंऽशुमतीं नाम नदीमवातिष्ठत् । अवतिष्ठते । ततः शच्या कर्मणा प्रज्ञानेन वा धमंतमुदस्यांतरुच्छ्वसंतं यद्वा अगच्छीतिकरं शब्दं कुर्वंतं तं कृष्णमसुरमिंद्रो मरुद्भिः सहावत् । प्राप्नोत् । पश्चात्तं कृष्णमसुरं तस्यानुचरांश्च हतवानिति वदति । नृमणा नृषु मनो यस्य सः । यद्वा । कर्मनेतृष्वृत्विक्ष्वेकविधं मनो यस्य स तथोक्तः । तादृशः सन् स्नेहितीः । स्नेहतिर्वधकर्मसु पठितः । सर्वस्य हिंसित्रीस्तस्य सेना अपाधत्त । अपधानं हननं । अवधीदित्यर्थः । अप स्नोहितिं नृमणा अधद्रा इति च्छंदोगाः पठंति । सा० सं० १. ४. १. ४. १. । तस्यानुचरान् हत्वा तं द्रुतं गच्छंतमसुरमपाधत्त । हतवान् ॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरंतमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४॥
द्रप्सं । अपश्यं । विषुणे । चरंतं । उपऽह्वरे । नद्यः । अंशुऽमत्याः ।
नभः । न । कृष्णं । अवतस्थिऽवांसं । इष्यामि । वः । वृषणः । युध्यत । आजौ ॥१४॥

तुरीयपादो मारुतः । मरुतः प्रति यद्वाक्यमिंद्र उवाच तदत्र कीर्त्यते । हे मरुतः द्रप्सं द्रुतगामिनं कृष्णमहमपश्यं । अदर्शं । कुत्र वर्तमानं । विषुणे विष्वगंचने सर्वतो विस्तृते देशे । यद्वा । विषुणो विषमः । विषमे परैरदृश्ये गुहारूपे देशे । चरंतं परितो गच्छंतं । किंचांशुमत्या एतन्नामिकाया नद्यो नद्या उपह्वरेऽत्यंतं गूढस्थाने नभो न नभसि यथादित्यो दीप्यते तद्वत्तत्र दीप्यमानमवतस्थिवांसमुदकस्यांतरवस्थितं कृष्णमेतन्नामकमसुरमपश्यं । तस्मिन्दृष्टे सति हे वृषणः कामानामुदकानां वा सेक्तारो मरुतः वो युष्मान् युद्धार्थमिष्यामि । अहमिच्छामि । ततो यूयं तमिमं कृष्णमाजौ । अजंति गच्छंत्यत्र योद्धार आयुधानि प्रक्षिपयंतीति वाजिः संग्रामः । तस्मिन्युध्यत । संहरत । वाक्यभेदादनिघातः । केचिदिष्यामि वो मरुत इति पठंति । तत्र हे मरुतः वो युष्मानिच्छामीत्यर्थो भवति ॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्या३चरंतीर्बृहस्पतिना युजेंद्रः ससाहे ॥१५॥
अध । द्रप्सः । अंशुऽमत्याः । उपऽस्थे । अधारयत् । तन्वं । तित्विषाणः ।
विशः । अदेवीः । अभि । आऽचरंतीः । बृहस्पतिना । युजा । इंद्रः । ससहे ॥१५॥

अधाथ द्रप्सो द्रुतगामी कृष्णोंऽशुमत्या नद्या उपस्थे समीपे तित्विषाणो दीप्यमानः संस्तन्वमात्मीयं शरीरमधारयत् । परैरहिंस्यत्वेन बिभर्ति । यद्वा । बलप्राप्त्यर्थं स्वशरीरमाहारादिभिरपोषयत् । तत्रेंद्रो गत्वा बृहस्पतिनैतन्नामकेन देवेन युजा सहायेनादेवीरद्योतमानाः । कृष्णरूपा इत्यर्थः । यद्वा । पापयुक्तत्वादस्तुत्याः । आचरंतीरागच्छंतीर्विशोऽसुरसेना अभि ससहे । जघान । तमवधीदित्यर्थः प्रसंगादवगम्यते ॥ ॥३४॥

त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिंद्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविंदो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१६॥
त्वं । ह । त्यत् । सप्तऽभ्यः । जायमानः । अशत्रुऽभ्यः । अभवः । शत्रुः । इंद्र ।
गूळ्हे इति । द्यावापृथिवी इति । अनु । अविंदः । विभुमत्ऽभ्यः । भुवनेभ्यः ।
रणं । धाः ॥१६॥

हे इंद्र त्वं खलु त्यत्तत्कर्म कृतवानसि। किं तत् उच्यते। जायमानस्त्वं प्रादुर्भवन्नेवाशत्रुभ्यः शत्रुरहितेभ्यः सप्तभ्यः कृष्णवृत्रनमुचिशंबरादिसप्तभ्यो बलवद्भ्यः शत्रुभ्यः तदर्थं शत्रुरभवः। यद्वा। सप्तभ्यः। सप्तैवांगिरसः। सप्तभ्योऽंगिरोभ्यो गवानयनार्थं प्रादुर्भवन्नेवाशत्रुभ्यो बलवद्भ्यः पणिभ्यः शत्रुरभवः। किंच हे इंद्र त्वं गूळ्हे तमसा गूढे संवृते द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ सूर्यात्मना ते प्रकाशानुक्रमेणाविंदः। अलभथाः। तथा विभुमद्भ्यो महत्त्वयुक्तेभ्यो भुवनेभ्यो लोकेभ्यो रणं रमणं धाः। धारयसि। विदधासीत्यर्थः॥

त्वं ह॒ त्यद॑प्रतिमा॒नमोजो॒ वज्रे॑ण वज्रिन्धृषि॒तो ज॑घंथ।
त्वं शुष्ण॒स्यावा॑तिरो॒ वध॑त्रैस्त्वं गा इं॑द्र॒ शच्येद॑विंदः॥१७॥
त्वं। ह॒। त्यत्। अ॒प्रति॒ऽमा॒नं। ओज॑ः। वज्रे॑ण। व॒ज्रि॒न्। धृ॒षि॒तः। ज॒घं॒थ॒।
त्वं। शुष्ण॑स्य। अव॑। अ॒ति॒रः॒। वध॑त्रैः। त्वं। गाः। इं॒द्र॒। शच्या॑। इत्। अ॒विं॒दः॒॥१७॥

हे इंद्र त्वं ह त्वं खलु त्यदेतत्कर्माकार्षीः। किं तत् अभिधीयते। हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र धृषितो धृष्टः संग्रामेषु शत्रुहनने कुशलः सन्। यद्वा। धृष्टो धीरः सन्नप्रतिमानं। प्रतिमानमुपमा। निरुपमं। अस्य सदृशमन्यदीयं वीर्यं नास्तीत्यर्थः। तादृशं शुष्णस्यौजो बलं वज्रेणायुधेन जघंथ। हतवानसि॥ अभ्यासाच्चेति हंतेर्घत्वं॥ पूर्वं शुष्णस्य बलं विनाश्येदानीं शुष्णमपि हतवानित्याह। त्वं वधत्रैर्हननसाधनैरायुधैः शुष्णस्य॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति संप्रदानसंज्ञा। चतुर्थ्यर्थे बहुलमिति षष्ठी॥ शुष्णमवातिरः। कुत्साय राजर्षयेऽवाङ्मुखं कृत्वावधीः। तथा च निगमः। कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः। ऋ॰ ४. १६. १२.। इति। तथा हे इंद्र त्वं शच्या स्वकीयया प्रज्ञया कर्मणा वा गाः शत्रून्हत्वा तेषां गा अविंदः। अलभथाः। यद्वा। अंगिरसां गाः पणीन् संप्रहृत्य लब्धवानसि॥

त्वं ह॒ त्यद्वृ॑षभ चर्षणी॒नां घ॒नो वृ॒त्राणां॑ त॒वि॒षो ब॑भूथ।
त्वं सिंधूँ॑रसृजस्तस्त॒भा॒नान् त्वम॒पो अ॑जयो दा॒सप॑त्नीः॥१८॥
त्वं। ह॒। त्यत्। वृ॒ष॒भ॒। च॒र्ष॒णी॒नां। घ॒नः। वृ॒त्राणां॑। त॒वि॒षः। ब॒भू॒थ॒।
त्वं। सिंधू॑न्। अ॒सृ॒ज॒ः। त॒स्त॒भा॒नान्। त्वं। अ॒पः। अ॒ज॒यः॒। दा॒स॒ऽप॑त्नीः॥१८॥

त्वं खलु तत्कर्म कृतवानसि। किं तत्। हे वृषभ कामानां वर्षितरिंद्र चर्षणीनां यष्टॄणां मनुष्याणां भावितानां वृत्राणामुपद्रवाणां घनो हंता॥ अमूर्त्यर्थेऽपि छंदोविषयत्वान्निपातनं॥ तादृशस्त्वं तविषः प्रवृद्धो बलवान्वा बभूथ। बभूविथ॥ बभूथा ततंथेतीडभावो निपात्यते॥ ततस्त्वं तस्तभानानसुरैर्विरुध्यमानाः सिंधून् गंगाद्याः सप्त नदीः सरणायासृजः। पश्चात्त्वं दासपत्नीः। दासा उपक्षपयितारः शत्रवः। ते पतयः स्वामिनो यासां ताः॥ नित्यं सपत्न्यादिषु। पा॰ ४. १. ३५.। इत्यत्र दासाच्चेत्युपसंख्यानाद्ङीप्॥ असुरस्वामिका अपोऽजयः। जितवानसि। तानसुराञ्जित्वोदकानि च प्रासृज इत्यर्थः॥

स सु॒क्रतू॒ रणि॑ता॒ यः सु॒तेष्वनु॑त्तमन्यु॒र्यो अहे॑व रे॒वान्।
य एक॒ इन्नर्यपां॑सि॒ कर्ता॒ स वृ॑त्र॒हा प्रतीद॒न्यमा॑हुः॥१९॥
सः। सु॒ऽक्रतुः॑। रणि॑ता। यः। सु॒तेषु॑। अनु॑त्तऽमन्युः। यः। अहा॑ऽइव। रे॒वान्।
यः। एकः॑। इत्। नरि॑। अपां॑सि। कर्ता॑। सः। वृ॒त्र॒ऽहा। प्रति॑। इत्। अ॒न्यं। आ॒हुः॒॥१९॥

अथ परोक्षकृताः। स इंद्रः सुक्रतुः शोभनप्रज्ञः शोभनकर्मा भवति यः सुतेष्वभिषुतेषु सोमेषु रणिता तत्पानार्थं रमणशीलः किंचानुत्तमन्युः परैरनुन्नक्रोधः शत्रुभिर्नोत्तुमशक्यः तादृशो य इंद्रो रेवान्धनवान्।

तत्र दृष्टांतः। अहेव यथाहाहानि दिवसा धनवंतः। दिवसेषु हि धनानि प्रादुर्भवंति न रात्रिषु। तद्वत्। तथा य इंद्र एक इदसहाय एव नरि कर्मनेतरि मनुष्येऽपांसि कर्माणि कर्ता कर्तृशीलो भवति॥ ताच्छीलिकस्तृन्। अत एव षष्ठीप्रतिषेधः॥ स पूर्वोक्तगुणोपेत इंद्रो वृत्रहा। अपामावरकस्यासुरस्योपद्रवस्य वा हंतृत्वाद्वृत्रहेति सर्वैः श्रूयते। तमेवेंद्रमन्यं प्रति। इदवधारणे। अन्यं प्रत्येवाजः। इंद्रः सर्वमन्यं शत्रुसंघं प्रति भवति। अभिभवत्येवेति वदंति॥

स वृ॑त्र॒हेंद्र॑श्चर्षणी॒धृत्तं सु॑ष्टु॒त्या हव्यं॑ हुवेम।
स प्रा॑वि॒ता म॒घवा॑ नोऽधिव॒क्ता स वाज॑स्य श्रव॒स्य॑स्य दा॒ता॥२०॥
सः। वृ॒त्रऽहा। इंद्रः॑। च॒र्ष॒णि॒ऽधृत्। तं। सु॒ऽस्तु॒त्या। हव्यं॑। हु॒वे॒म।
सः। प्र॒ऽअ॒वि॒ता। म॒घऽवा॑। नः॒। अ॒धि॒ऽव॒क्ता। सः। वाज॑स्य। श्र॒व॒स्य॑स्य। दा॒ता॥२०॥

स वृत्रहा वृत्रस्य हंता स इंद्रश्चर्षणिधृन्मनुष्याणां धनादिदानेन पोषको भवति। तमिंद्रं वयं सुष्टुत्या शोभनया स्तुत्या हुवेम। अस्मद्यज्ञेष्वाह्वयामः। किमर्थं यूयमाह्वयथेति चेत् कारणं ब्रूमः। स इंद्रः प्राविता प्रकर्षेणास्माकं रक्षिता भवति। किंच मघवा धनवानिंद्रो नोऽस्माकमधिवक्ताधिकं वक्ता बहुमानेन वक्ता भवति। यद्वा। धनदानेनास्मानधिकं वक्तुमर्हति॥ अर्हे कृत्यतृचश्च। पा॰ ३. ३. १६९.। इति तृच्॥ किंच स एवेंद्रः श्रवस्यस्य श्रवसः कीर्तेर्निमित्तस्य वाजस्यान्नस्य। यद्वा। श्रवसोऽन्नस्य हिताय वाजस्य बलस्य। दाता भवति खलु। तस्मादेवंगुणमिंद्रं वयमाह्वयामः॥

स वृ॑त्र॒हेंद्र॑ ऋ॒भु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ बभूव।
कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः॥२१॥
सः। वृ॒त्रऽहा। इंद्रः॑। ऋ॒भु॒क्षाः। स॒द्यः। ज॒ज्ञा॒नः। हव्यः॑। ब॒भू॒व।
कृ॒ण्वन्। अपां॑सि। नर्या॑। पु॒रूणि॑। सोमः॑। न। पी॒तः। हव्यः॑। सखि॑ऽभ्यः॥२१॥

ऋभुक्षाः स महान्। यद्वा। ऋभुशब्देनर्भ्वादयस्त्रयो गृह्यंते। ऋभुभिः सह क्षियति निवसतीति तादृशः। वृत्रहा स इंद्रः सद्यस्तदानीमेव जज्ञानः प्रादुर्भवन्हव्यः सर्वैः स्तोतृभिर्यष्टृभिराह्वातव्यो बभूव। किंच नर्या नर्याणि। नरा मनुष्याः कर्मनेतारः। तेभ्यो हितानि पुरूणि बहून्यपांसि कर्माणि कृण्वन् कुर्वन् सखिभ्यो हविष्प्रदानेनोपकारत्वान्मित्रेभ्य ऋत्विग्भ्यो हव्य आह्वातव्यो हवनयोग्यो वाभूत्। तत्र दृष्टांतः। सोमो न यथा पीतः सोमो यष्टृभ्यः स्वर्गादिफलानि कुर्वन्देवैराह्वातव्यो भवति तद्वत्॥ ॥३५॥

या इंद्रेति पंचदशर्चं चतुर्थं सूक्तं काश्यपस्य रेभस्यार्षमैंद्रं। दशम्यतिजगती द्वापंचाशदक्षरा। एकादशीद्वादश्यावुपरिष्टाद्बृहत्यौ त्र्यष्टकांतद्वादशकवत्यौ। त्रयोदश्यतिजगती। चतुर्दशी त्रिष्टुप्। पंचदशी जगती। शिष्टा बृहत्यः। तथा चानुक्रम्यते। या इंद्र पंचोना रेभः काश्यपो बार्हतमतिजगत्युपरिष्टाद्बृहत्यावतिजगती त्रिष्टुब्जगतीत्यंतत इति॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः॥ महाव्रते निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतौ या इंद्रेत्यादि नवर्चः। तथैव पंचमारण्यके सूत्र्यते। या इंद्र भुज आभर इति नव सूददोहाः। ऐ॰ आ॰ ५. २. ४.। इति॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिनो वैकल्पिकानुरूपतृचस्य या इंद्रेत्यादिके द्वे द्वितीयातृतीये। सूत्र्यते च। तमिंद्रं जोहवीमि या इंद्र भुज आभर इत्येका द्वे वा। आ॰ ७. ४.। इति॥

या इं॑द्र॒ भुज॒ आभ॑रः॒ स्व॑र्वाँ॒ असु॑रेभ्यः।
स्तो॒तार॒मिन्म॑घवन्नस्य वर्धय॒ ये च॒ त्वे वृ॒क्तब॑र्हिषः॥१॥

याः । इंद्र । भुजः । आ । अभरः । स्वःऽवान् । असुरेभ्यः ।
स्तोतारं । इत् । मघऽवन् । अस्य । वर्धय । ये । च । त्वे इति । वृक्तऽबर्हिषः ॥१॥

ऋषिरिंद्रं प्रार्थयते । हे इंद्र स्वर्वान् सुखवान् स्वर्गवान्वा । अथवा स्वःशब्दः सर्वपर्यायः । सर्वं भूतजातं । आत्मन एवोत्पन्नत्वात्तद्वान् । एवंगुणस्त्वं या यानि भुजो भोक्तव्यानि धनान्यसुरेभ्यो बलवद्भ्यो राक्षसेभ्य आभरः आहरः तान् हत्वाहृतवानसि ॥ हृग्रहोरिति भकारादेशः ॥ अत एव हे मघवन् धनवन्निंद्र अस्य ॥ अन्वादेशेऽशादेशः ॥ एतस्याहृतस्य धनस्य दानेन स्तोतारमित्तव स्तोत्रकारिणमेव वर्धय । वृद्धिमंतं कुरु । ये चान्ये यष्टारस्त्वदर्थं वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषो भवंति अतस्तांश्च धनेन वर्धय ॥

यमिंद्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययं ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ ॥२॥
यं । इंद्र । दधिषे । त्वं । अश्वं । गां । भागं । अव्ययं ।
यजमाने । सुन्वति । दक्षिणाऽवति । तस्मिन् । तं । धेहि । मा । पणौ ॥२॥

हे इंद्र त्वं यमश्वं गमनसाधनान् हरीन् गामग्निहोत्रकर्मणि पयःप्रदानेनोपकारिका गा अव्ययं व्ययरहितमविनश्वरं भागं भजनीयं धनं । सर्वत्रैकत्वमविवक्षितं । एताञ्शत्रुभ्य आहृत्य दधिषे बिभर्षि तं सर्वं सुन्वति सोमाभिषवं कुर्वति दक्षिणावति यश्च ऋत्विग्भ्यो दक्षिणादेयत्वेन तद्वति यजमाने यागं कुर्वाणे तस्मिंस्त्वं धेहि । सर्वत्र धनादिदानं मा कुर्वित्याह । मा पणौ ॥ पण व्यवहारे ॥ द्रव्यव्यवहारादयष्टा जनः पणिः । तस्मिन्नेतत्सर्वं मा देहि ॥

य इंद्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः ।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥३॥
यः । इंद्र । सस्ति । अव्रतः । अनुऽस्वापं । अदेवऽयुः ।
स्वैः । सः । एवैः । मुमुरत् । पोष्यं । रयिं । सनुतः । धेहि । तं । ततः ॥३॥

हे इंद्र अदेवयुर्देवान् युष्मानकामयमानोऽव्रतो व्रतरहितः कर्मरहितो भूत्वानुस्वापमनुवृत्तस्वप्नं यथा भवति तथा यः सस्ति स्वपिति ॥ षस स्वापे । आदादिकः ॥ स जनः स्वैरात्मीयैरेवैर्गमनैरेव पोष्यं पोषणीयं रयिं स्वीयं धनं मुमुरत् । मारयतु । विनाशयतु । अमार्गैर्द्यूतादिभिस्तस्य धनं नश्यतु न तु देवानां हविष्प्रदानेनेति । ततस्त्वं तमयष्टारं जनं । सनुतरित्यंतर्हितनाम । सुगुप्तरंतर्हिते कर्मरहिते कस्मिंश्चिद्देशे धेहि । स्थापय ॥

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिंद्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥४॥
यत् । शक्र । असि । पराऽवति । यत् । अर्वाऽवति । वृत्रऽहन् ।
अतः । त्वा । गीःऽभिः । द्युऽगत् । इंद्र । केशिऽभिः । सुतऽवान् । आ । विवासति ॥४॥

हे शक्र शत्रुहननसमर्थेंद्र यद्यदा परावति विप्रकृष्टेऽतिदूरे द्युलोके देशेऽसि विद्यसे हे वृत्रहन् वृत्रस्य हंतरिंद्र यद्यदार्वावत्यर्वाचीने तस्मादधस्तात्स्थिते तदपेक्षया समीपे देशेंऽतरिक्षे भवसि तस्मादपि अतोऽस्माद्भूलोकाद्वा द्युगत् ॥ गम्लृ गतौ । क्विपि गमः क्वावित्यनुनासिकलोपः । तुक् । सुपां सुलुगिति लुक् ॥ द्युलोकं प्रति गच्छद्भिः स्वभासा सर्वतो गच्छद्भिः केशिभिः केशवद्भिर्हरिभिरिव स्थिताभिर्गीर्भिः स्तुतिभिस्त्वा त्वां सुतवानभिषुतसोमवान्यजमान आ विवासति । आत्मीयं यज्ञं प्रत्यागमयति स्वामेतैः स्तोत्रैः परिचरतीति वा ॥

यद्वासि॑ रोच॒ने दि॒वः स॑मु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑ ।
यत्पार्थि॑वे॒ सद॑ने वृत्रहंतम॒ यद॒ंतरि॑क्ष॒ आ ग॑हि ॥५॥
यत् । वा॒ । असि॑ । रो॒च॒ने । दि॒वः । स॒मु॒द्रस्य॑ । अधि॑ । वि॒ष्टपि॑ ।
यत् । पार्थि॑वे । सद॑ने । वृ॒त्र॒ह॒न्ऽत॒म॒ । यत् । अ॒ंतरि॑क्षे । आ । ग॒हि॒ ॥५॥

हे इंद्र यद्वा यदि वा दिवो द्युलोकस्य रोचने दीपनशीले स्थाने भवसि । यद्वा समुद्रस्य मध्येऽध्यधिगते विष्टपि विष्टपे तत्संबद्धे कस्मिंश्चित्स्थाने भवसि । हे वृत्रहंतमातिशयेन वृत्रस्यासुरस्य पापस्य वा हंतरिंद्र यद्यदि वा पार्थिवे पृथिव्यां भवे सदने स्थाने निवसे । यदि वांतरिक्षे तस्मिँल्लोके वर्तसे । यत्रकुत्र भवसि तथाप्यस्मदीयं यज्ञं प्रत्या गहि । आगच्छ ॥ ॥३६॥

स नः॒ सोमे॑षु सोमपाः सु॒तेषु॑ शवसस्पते ।
मा॒दय॑स्व॒ राध॑सा सू॒नृता॑वतें॒द्र रा॒या परी॑णसा ॥६॥
सः । नः॒ । सोमे॑षु । सो॒म॒ऽपाः॒ । सु॒तेषु॑ । श॒व॒सः॒ । प॒ते॒ ।
मा॒दय॑स्व । राध॑सा । सू॒नृता॑ऽवता । इंद्र॑ । रा॒या । परी॑णसा ॥६॥

हे सोमपाः सोमस्य पातः हे शवसस्पते बलस्य पालयितरिंद्र स पूर्वोक्तलक्षणस्त्वं सुतेष्वस्माभिरभिषुतेषु सोमेषु नोऽस्मान्राधसा बलसाधनेनान्नेन सूनृतावतानृतरहितत्वोपेतेन । यद्वा । सूनृतेति वाङ्नाम । शोभनवाक्ययुक्तेन । अनेन पुत्रादिकं लक्ष्यते । पुत्रोपेतेनान्नेन । परीणसा । बहुनामैतत् । बहुना राया धनेन च नोऽस्मान्मादयस्व । मोदय । सोमस्य प्रदातृभ्योऽस्मभ्यमन्नपुत्रधनादिकं देहीत्यर्थः ॥

मा न॑ इंद्र॒ परा॑ वृण॒ग्भवा॑ नः सध॒माद्यः॑ ।
त्वं न॑ ऊ॒ती त्वमिन्न॒ आप्यं॒ मा न॑ इंद्र॒ परा॑ वृणक् ॥७॥
मा । नः॒ । इ॒ंद्र॒ । परा॑ । वृ॒ण॒क् । भव॑ । नः॒ । स॒ध॒ऽमाद्यः॑ ।
त्वं । नः॒ । ऊ॒ती । त्वं । इत् । नः॒ । आप्यं॑ । मा । नः॒ । इ॒ंद्र॒ । परा॑ । वृ॒ण॒क् ॥७॥

हे इंद्र नो हविषां प्रदातॄनस्मान्मा परा वृणक् । मा परित्याक्षीः ॥ वृजी वर्जने । रौधादिकः । लङि रूपं ॥ तदेवाह । त्वं नोऽस्माकं सोमेन सधमाद्यः सधमादनशीलो भव । किंच हे इंद्र नोऽस्मांस्त्वमेवोत्यूत्यां स्थापय । यद्वा । ऊती ॥ व्यत्ययेन कर्तरि क्तिचि वा निपातितः ॥ त्वमेवास्माकं रक्षिता खलु । तथा त्वमित् । इदवधारणे । त्वमेवास्माकमाप्यं ज्ञातेयं । त्वमेव बंधुरित्यर्थः । अत एव मा न इंद्र परा वृणगित्येष गतार्थः ॥

अ॒स्मे इ॑ंद्र॒ सचा॑ सु॒ते नि ष॑दा पी॒तये॒ मधु॑ ।
कृ॒धी ज॑रि॒त्रे म॑घव॒न्नवो॑ म॒हद॒स्मे इ॑ंद्र॒ सचा॑ सु॒ते ॥८॥
अ॒स्मे इति॑ । इ॒ंद्र॒ । सचा॑ । सु॒ते । नि । स॒द॒ । पी॒तये॑ । मधु॑ ।
कृ॒धि । ज॒रि॒त्रे । म॒घ॒ऽव॒न् । अवः॑ । म॒हत् । अ॒स्मे इति॑ । इ॒ंद्र॒ । सचा॑ । सु॒ते ॥८॥

हे इंद्र अस्मे अस्माभिः सचा सह सुतेऽभिषुते सोमे नि षद । अस्मदीये यज्ञे निषीद । किमर्थं । मधु पीतये मधुनः ॥ सुपां सुलुगिति ङसो लुक् ॥ मदकरस्य सोमस्य पीतये पानार्थं । किंच हे मघवन् धनवन्निंद्र महदवो रक्षणं जरित्रे कृधि । कुरु । कस्मिन् सति । अस्मे इंद्र सचा सुत इति व्याख्यातः पादः ॥

न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥९॥
न । त्वा । देवासः । आशत । न । मर्त्यासः । अद्रिऽवः ।
विश्वा । जातानि । शवसा । अभिऽभूः । असि । न । त्वा । देवासः । आशत ॥९॥

हे अद्रिवो वज्रवन्निंद्र त्वा त्वां देवासस्त्वदन्ये सर्वे देवा नाशत । स्वकर्मणा स्वबलेन वा न व्याप्नुवंति । न मर्त्यासो मर्त्या मनुष्याश्च न व्याप्नुवंति । कुत एव तदवसीयते । तदाह । विश्वा विश्वानि सर्वाणि जातानि भूतजातानि शवसा स्वबलेनैवाभिभूरसि । अभिभावुकोऽसि भवसि । तस्मान्न त्वा देवास आशतेति गतार्थः ॥

चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिनो विश्वाः पृतना इति वैकल्पिकः स्तोत्रियः । सूचितं च । विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं तमिंद्रं जोहवीमि । आ॰ ७. ४. । इति ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिंद्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनं ॥१०॥
विश्वाः । पृतनाः । अभिऽभूतरं । नरं । सऽजूः । ततक्षुः । इंद्रं । जजनुः । च । राजसे ।
क्रत्वा । वरिष्ठं । वरे । आऽमुरिं । उत । उग्रं । ओजिष्ठं । तवसं । तरस्विनं ॥१०॥

विश्वाः सर्वा व्याप्ता वा पृतनाः ॥ पृङ् व्यायामे ॥ व्याप्रियंत इति पृतनाः सेनाः । सजूः परस्परं संगताः सत्योऽभिभूतरं शत्रूणामत्यर्थमभिभवितारं नरं सर्वस्य नेतारमिंद्रं ततक्षुः । आयुधादिभिस्तीक्ष्णीकुर्वंति । आयुधवंतमश्ववंतं च चक्रुरित्यर्थः । यद्वा । पृतना इति संग्रामाः । व्याप्रियंतेऽत्रेति पृतनाः संग्रामाः । सर्वानेव संग्रामानभिभावुकमिंद्रं स्तोतारोऽन्योन्यं संगताः स्तुतिभिस्तीक्ष्णमकुर्वन् । स्तुते सति बलवान्भवतीति । यद्वा । यष्टारो हविष्प्रदानेन वीर्यवंतं कुर्वंतीति । किंच स्तोतारो राजसे ॥ राजतेस्तुमर्थेऽसेप्रत्ययः ॥ आत्मनो विराजनार्थं प्रकाशनार्थं सूर्यात्मानमिंद्रं जजनुः । जनयामासुः । स्तोत्रं यज्ञे प्रादुरभावयन्नित्यर्थः । उतापि च क्रत्वा स्वीयवृत्रवधादिकर्मणैव वरिष्ठमुरुतममामुरिं शत्रूणामाभिमुख्येन मारयितारमिंद्रं वरे वरणीये धने स्तोतारश्चक्रुः । आत्मनां धनलाभार्थं स्तुवंतीत्यर्थः । कीदृशं । उग्रमुद्गूर्णबलं अत एवौजिष्ठमोजस्वितमं तवसं प्रवृद्धं तरस्विनं संग्रामे शत्रुवधार्थं वेगवंतमिंद्रं धनार्थं स्तुवंति ॥ ॥३७॥

समीं रेभासो अस्वरन्निंद्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥११॥
सं । ईं । रेभासः । अस्वरन् । इंद्रं । सोमस्य । पीतये ।
स्वःऽपतिं । यत् । ईं । वृधे । धृतऽव्रतः । हि । ओजसा । सं । ऊतिऽभिः ॥११॥

रेभासः ॥ रेभृ शब्दे ॥ शब्दयितारः स्तोतारः । यद्वा । रेभासः कश्यपपुत्रा रेभास एतन्नामका ऋषयः । ईमेनमिंद्रं समस्वरन् । सम्यगशब्दयन् । समस्तुवन् । किमर्थं । सोमस्य पीतये सोमपानाय । किंच स्वर्पतिं स्वर्गस्य पालयितारं धनस्य स्वामिनं वेमेनमिंद्रं यद्यदा वृधे हविर्भिर्वर्धनाय संस्तुवंति तदा धृतव्रतो धृतकर्मेंद्र ओजसा बलेन स्तोतृभिरूतिभिर्मरुद्भिः पालनैश्च सह संगच्छते । स्तुतिभिर्बलं मरुद्भिः पालनं चेंद्रस्य भवतीत्यर्थः ॥

नेमिं नमंति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥१२॥

नेमिं । नमंति । चक्षसा । मेषं । विप्राः । अभिऽस्वरां ।
सुऽदीतयः । वः । अद्रुहः । अपि । कर्णे । तरस्विनः । सं । ऋक्वऽभिः ॥१२॥

नेमिं । अरान्यथा नेमिर्व्याप्नोति तद्वत्सर्वं व्याप्नुवंतं । तादृशं नमनशीलमिंद्रं चक्षसा दर्शनमात्रेणैव नमंति । काश्यपा रेभाः स्तोतारो वा नमस्कुर्वंति । ततो विप्रा मेधाविनो मेषं । इंद्रो मेषो भूत्वा मेधातिथिं स्वर्गमनयत् । तस्मान्मेधातिथेर्मेषभूतमिंद्रमभिस्वराभिस्वरणेन स्तोत्रेण प्रणमंति । इदानीं यजमानः स्तोतृनाह । अपि च सुदीतयः शोभनदीप्तयोऽद्रुहः कस्याप्यद्रोग्धारो वो यूयं ॥ छांदसो वसादेशः ॥ तरस्विनः कर्मसु स्तोत्रेषु वा त्वरायुक्ताः संत इंद्रस्य कर्णे श्रोत्रसमीप ऋक्वभिरर्चनायुक्तैर्मंत्रैः । यद्वा । ऋचो बह्व्यो येषु संति तैः शस्त्रादिभिः । संस्तुत । इंद्रो यथा युष्मदीयानि स्तोत्रशस्त्रादीनि शृणोति तथा सम्यगभिष्टुतेत्यर्थः ॥

पूर्वोक्त एव शस्त्रे वैकल्पिकस्यानुरूपतृचस्य तमिंद्रमित्याद्याः । सूत्रमुदाहृतं ॥

तमिंद्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१३॥
तं । इंद्रं । जोहवीमि । मघऽवानं । उग्रं । सत्रा । दधानं । अप्रतिऽस्कुतं । शवांसि ।
मंहिष्ठः । गीःऽभिः । आ । च । यज्ञियः । ववर्तत् । राये । नः । विश्वा । सुऽपथा ।
कृणोतु । वज्री ॥१३॥

तं पूर्वोक्तगुणोपेतमिंद्रं जोहवीमि । यष्टाहं पुनराह्वयामि ॥ ह्वयतेरभ्यस्तस्य चेति संप्रसारणं ॥ कीदृशं । मघवानं मंहनीयधनवंतमुग्रमुद्गूर्णबलं सत्रा सत्यं यथार्थमेव शवांसि बलानि दधानं अत एवाप्रतिष्कुतं शत्रुभिरप्रतिरोधनीयमाह्वयामि । किंच मंहिष्ठः पूज्यतमो दातृतमो वा यज्ञियो यज्ञार्ह इंद्रो गीर्भिरस्मदीयाभिः स्तुतिभिरा ववर्तत्त । यज्ञेष्वाभिमुख्येन वर्ततां च ॥ वर्ततेर्ण्यंतस्य चङि रूपं । चवायोगे प्रथमेति न निघातः । चङ्यन्यतरस्यामिति स्वरः ॥ ततो वज्री वज्रवानिंद्रो नोऽस्माकं राये धनाय विश्वा विश्वानि सर्वाण्येव सुपथा सुमार्गाणि कृणोतु च । करोतु । धनं सर्वदिक्स्थमस्मान्प्राप्नोत्वित्यर्थः ॥

त्वं पुर इंद्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४॥
त्वं । पुरः । इंद्र । चिकित् । एनाः । वि । ओजसा । शविष्ठ । शक्र । नाशयध्यै ।
त्वत् । विश्वानि । भुवनानि । वज्रिन् । द्यावा । रेजेते इति । पृथिवी इति । च । भीषा ॥१४॥

हे शविष्ठ बलवत्तम अत एव हे शक्र शत्रुहननसमर्थ हे इंद्र त्वमेनाः ॥ अन्वादेशे ॥ एतानि पुरः शंबरस्य पुराण्योजसा स्वीयेनैव तेजसा वि नाशयध्यै विनाशयितुं चिकित्ज्ञाता भवसि ॥ नशेर्ण्यंतात्कध्यैप्रत्ययः ॥ पुनरपि सामर्थ्यं प्रशंसति । हे वज्रिन्वज्रवन्निंद्र विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि त्वत्त्वत्तो भीत्या कंपंते । तथा द्यावापृथिवी ॥ दिवो द्यावेति द्यावादेशः । आद्युदात्तश्च । पृथिवी ङीषंतत्वेनांतोदात्तः । देवताद्वंद्वे चेत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वं । विप्रकर्षस्तु छांदसः ॥ द्यावापृथिवी च भीषा त्वत्तो भीत्या रेजेते । कंपेते । अरेजेतां रोदसी । ऋ० १. ३१. ३. । इति निगमः । सर्वं त्वदधीना इत्यर्थः ॥

तन्म ऋतमिंद्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इंद्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥१५॥

तत्। मा। ऋतं। इंद्र। शूर। चित्र। पातु। अपः। न। वज्रिन्। दुःऽइता। अति। पर्षि। भूरि।
कदा। नः। इंद्र। रायः। आ। दशस्येः। विश्वऽप्स्न्यस्य। स्पृहयाय्यस्य। राजन् ॥१५॥

हे शूर बलवंश्चित्र चायनीय विविधरूप वा। इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। ऋ॰ ६. ४७. १८.। इत्यादिषु दृष्टत्वात्। बहुविधरूप हे इंद्र तत् प्रशस्तं त्वदीयमृतं सत्यं मा मां पातु। सर्वतो रक्षतु। किंच हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र भूरि ॥ सुपो लुक् ॥ भूरीणि बहूनि दुरिता दुरितानि पापान्यति पर्षि। अतीत्य पारय। तत्र दृष्टांतः। अपो न यथा नाविक उदकानि मनुष्यान्पारयति तद्वदस्मान्पापानि पारय। हे राजन् दीप्यमान हे इंद्र विश्वप्स्न्यस्य ॥ प्स इति रूपनाम। रूपे साधु प्स्न्यं। नकारोपजनश्छांदसः ॥ बहुरूपं तत् स्पृहयाय्यस्य सर्वैः स्पृहणीयं रायः ॥ क्रियाग्रहणमिति संप्रदानसंज्ञा। चतुर्थ्यर्थे बहुलमिति षष्ठी ॥ तद्धनं नोऽस्मभ्यमा आभिमुख्येन कदा दशस्येः। कस्मिन्काले प्रयच्छेः। तदा तव स्वभूतं सत्यं मा रक्षतु। मह्यं धनं दत्त्वा कर्माणि च मयानुष्ठाप्य मां पापरहितं कुर्वित्यर्थः ॥ ॥३८॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ षष्ठस्य सप्तमोऽध्याय आरभ्यते। तत्रेंद्रायेति द्वादशर्चं पंचमं सूक्तमांगिरसस्य नृमेधस्यार्षमैंद्रं। सप्तमी दशम्येकादश्यौ च तिस्रः ककुभो मध्यमपादस्य द्वादशाक्षरत्वात्। मध्यमश्चेत्ककुप्। अनु॰ ५. ३.। इति हि तल्लक्षणं। नवमीद्वादश्यौ पुरउष्णिहौ। प्रथमपादस्य द्वादशाक्षरत्वात्। आद्यश्चेत्पुरउष्णिक्। अनु॰ ५. २.। इति हि तल्लक्षणं। शिष्टा उष्णिहः। तथा चानुक्रम्यते। इंद्राय द्वादश नृमेध औष्णिहं सप्तम्युपांत्ये च ककुभोऽंत्या-नवम्यौ पुरउष्णिहाविति ॥ महाव्रते औष्णिहतृचाशीताविदं सूक्तं। तथैव पंचमारण्यके सूचितं। इंद्राय साम गायत सखाय आ शिषामहि। ऐ॰ आ॰ ५. २. ५.। इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने ब्राह्मणाच्छंसिन इंद्राय साम गायतेति वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः। सूत्रितं च। इंद्राय साम गायत सखाय आ शिषामहि। आ॰ ७. ८.। इति ॥ पूर्वोक्तस्यैव ब्राह्मणाच्छंसिन आभिप्लविकेषूक्थ्येष्विंद्र नो गधीति वैकल्पिकः स्तोत्रियः। सूत्रितं च। एंद्र नो गधेदु मध्वो मदिंतरं। आ॰ ७. ८.। इति ॥ उक्थ्ये तृतीयसवनेऽच्छावाकस्याधा हींद्रेति स्तोत्रियस्तृचः। सूत्रितं च। अधा हींद्र गिर्वण इयं त इंद्र गिर्वणः। आ॰ ६. १.। इति ॥ पूर्वोक्त एव शस्त्रे त्वं न इंद्रा भरेति तृचो वैकल्पिकः स्तोत्रियः। सूत्रितं च। त्वं न इंद्रा भर वयमु त्वामपूर्व्य यो न इदमिदं पुरा। आ॰ ७. ८.। इति ॥

इंद्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥
इंद्राय। साम। गायत। विप्राय। बृहते। बृहत्। धर्मऽकृते। विपःऽचिते। पनस्यवे ॥१॥

हे उद्गातारः विप्राय मेधाविने बृहते महते धर्मकृते कर्मणः कर्त्रे विपश्चिते विदुषे पनस्यवे स्तुतिमिच्छते इंद्राय बृहद्बृहन्नामकं साम गायत। पठत ॥

त्वमिंद्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥२॥
त्वं। इंद्र। अभिऽभूः। असि। त्वं। सूर्यं। अरोचयः। विश्वऽकर्मा। विश्वऽदेवः।
महान्। असि ॥२॥

हे इंद्र त्वमभिभूः शत्रूणामभिभवितासि । भवसि । किंच त्वं सूर्यमादित्यमरोचयः । तेजोभिरदीपयः । किंच विश्वकर्मा विश्वस्य कर्तासि विश्वदेवः सर्वदेवश्चासि । तथा च यजुर्ब्राह्मणं । अपि वा अन्वन्या देवता इंद्रमन्वन्या इति । अतो महान् सर्वाधिकोऽसि ॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे ॥३॥
विऽभ्राजन् । ज्योतिषा । स्वः । अगच्छः । रोचनं । दिवः । देवाः । ते । इंद्र । सख्याय । येमिरे ॥३॥

हे इंद्र त्वं ज्योतिषा तेजसा दिव आदित्यस्य रोचनं प्रकाशकमधिकरणत्वेन स्वः स्वर्गं विभ्राजन् प्रकाशयन्नगच्छः । प्राप्नोः । किंच देवाः सर्वे ते तव सख्याय मित्रत्वाय येमिरे । स्वं स्वमात्मानं नियमितवंतः । अस्माकमिंद्रः सखा यथा स्यादिति सर्वे देवा यत्नमकार्षुरित्यर्थः ॥

एंद्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥४॥
आ । इंद्र । नः । गधि । प्रियः । सत्राऽजित् । अगोह्यः । गिरिः । न । विश्वतः । पृथुः । पतिः । दिवः ॥४॥

हे इंद्र प्रियः प्रियतमः सत्राजिन्महतां जेतागोह्यः केनापि गूहितुमशक्यो गिरिर्न पर्वत इव विश्वतः सर्वतः पृथुः पृथुतमो दिवः स्वर्गस्य पतिरीश्वरस्त्वं नोऽस्माना गधि । आगच्छ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इंद्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥५॥
अभि । हि । सत्य । सोमऽपाः । उभे इति । बभूथ । रोदसी इति । इंद्र । असि । सुन्वतः । वृधः । पतिः । दिवः ॥५॥

हे सत्य सोमपाः सोमस्य पातरिंद्र यस्त्वमुभे रोदसी द्यावापृथिव्यावभि बभूथ सामर्थ्येनाभिभवसि स त्वं सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य वृधो वर्धकोऽसि । दिवः स्वर्गस्यापि पतिरीश्वरोऽसि ॥

त्वं हि शश्वतीनामिंद्र दर्ता पुरामसि । हंता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥६॥
त्वं । हि । शश्वतीनां । इंद्र । दर्ता । पुरां । असि । हंता । दस्योः । मनोः । वृधः । पतिः । दिवः ॥६॥

हे इंद्र शश्वतीनां बह्वीनां पुरां शत्रुनगरीणां दर्तासि । दारयिता भवसि । किंच दस्योरुपक्षपयितुरसुरस्य हंतासि । घातको भवसि । मनोर्मनुष्यस्य यागादिकं कुर्वतो वृधो वर्धकश्चासि । दिवः स्वर्गस्यापि पतिरीश्वरोऽसि ॥ ॥१॥

अधा हींद्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे । उदेव यंत उदभिः ॥७॥
अध । हि । इंद्र । गिर्वणः । उप । त्वा । कामान् । महः । ससृज्महे । उदाऽइव । यंतः । उदऽभिः ॥७॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीयेंद्र अधा हि संप्रति हि त्वा त्वां महो महतः कामान्कमनीयान् सोमानुप ससृज्महे । उपसृजामः । प्रापयाम इत्यर्थः । तत्र दृष्टांतमाह । उदेव यथोदकेन यंतो गच्छंत उदभिरंजलिनोत्क्षिप्तोदकैः समीपस्थान्पुरुषान् क्रीडार्थं संसृजंति तद्वदित्यर्थः ॥

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धंति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥८॥

वाः । न । त्वा । यव्याभिः । वर्धंति । शूर । ब्रह्माणि । ववृध्वांसं । चित् । अद्रिऽवः । दिवेऽदिवे ॥८॥

हे अद्रिवो वज्रिञ्छूरेंद्र वार्ण यथोदकमुदकस्थानं यव्याभिर्नदीभिः । अवनयो यव्या इति नदीनामसु पाठात् । वर्धंति वर्धयंति तथा ब्रह्माणि स्तोत्रैर्ववृध्वांसं चित् यथा निरुदकं देशं नदीभिस्तथा न किंतु प्रवृद्धमेव त्वां दिवेदिवेऽन्वहं वर्धयंति । स्तोतारो वर्धयंति ॥

युंजंति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इंद्रवाहा वचोयुजा ॥९॥

युंजंति । हरी इति । इषिरस्य । गाथया । उरौ । रथे । उरुऽयुगे । इंद्रऽवाहा । वचःऽयुजा ॥९॥

इषिरस्य गमनशीलस्येंद्रस्योरुयुगे महायुग उरौ महति रथ इंद्रवाहेंद्रस्य वाहनभूतौ वचोयुजा वचनमात्रेणैव युज्यमानौ हरी अश्वौ गाथया स्तोत्रेण स्तोतारो युंजंति । योजयंति ॥

त्वं न इंद्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहं ॥१०॥

त्वं । नः । इंद्र । आ । भर । ओजः । नृम्णं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । विऽचर्षणे । आ । वीरं । पृतनाऽसहं ॥१०॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन् विचर्षणे विद्रष्टरिंद्र त्वं नोऽस्मभ्यमोजो बलं नृम्णं धनं । नयो नृम्णमिति धननामसु पाठात् । आ भर । आहर । वीरं वीर्योपेतं पृतनाषहं सेनासहं सेनामभिभवितारं त्वामा याचामह इति शेषः ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥११॥

त्वं । हि । नः । पिता । वसो इति । त्वं । माता । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । बभूविथ । अध । ते । सुम्नं । ईमहे ॥११॥

हे वसो वासयितः शतक्रतो बहुकर्मन्निंद्र त्वं नोऽस्माकं पिता पितृवत्पालको बभूविथ । भव । त्वं माता मातृवद्धारकश्च बभूविथ । अधाथ च वयं ते तव स्वभूतं सुम्नं सुखमीमहे । याचामहे ॥

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयंतमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यं ॥१२॥

त्वां । शुष्मिन् । पुरुऽहूत । वाजऽयंतं । उप । ब्रुवे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । सः । नः । रास्व । सुऽवीर्यं ॥१२॥

हे शुष्मिन्बलवन् पुरुहूत बहुभिर्यजमानैराहूत शतक्रतो बहुकर्मन्निंद्र वाजयंतं बलमिच्छंतं त्वामुप ब्रुवे । उपस्तौमि । स त्वं नोऽस्मभ्यं सुवीर्यं धनं रास्व । देहि ॥ ॥२॥

त्वामिदा ह्य इत्यष्टर्चं षष्ठं सूक्तं नृमेधस्यार्षं । अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः । तथा चानुक्रांतं । त्वामिदाष्टौ प्रागाथमिति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने सवनेऽच्छावाकस्य त्वामिदा ह्यः । आ० ७. ४. । इति ॥ महाव्रतेऽपि निष्केवल्ये बार्हततृचाशीतावयं प्रगाथः । तथैव पंचमारण्यके सूचितं । त्वामिदा ह्यो नर इत्येतं प्रगाथं प्रत्यवदधाति । ऐ० आ० ५. २. ४. । इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने सवने ब्राह्मणाच्छंसिनः आयंत

इवेति वैकल्पिकः स्तोत्रियः प्रगाथः। सूत्रितं च। आयंत इव सूर्यं बण्महाँ असि सूर्य। आ॰ ७. ४.। इति ॥ चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यंदिने त्वमिंद्र प्रतूर्तिषु त्वमिंद्र यशा असि। आ॰ ७. ४.। इति ॥ तस्मिन्नेवाहनि निष्केवल्ये वैराजयोनिभूतोऽयं प्रगाथः शंसनीयः। सूत्रितं च। तयोरक्रियमाणस्य योनिं शंसेद्वैरूपवैराजशाक्वररैवतानां च। आ॰ ७. ३.। इति ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
स इंद्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१॥
त्वां। इदा। ह्यः। नरः। अपीप्यन्। वज्रिन्। भूर्णयः।
सः। इंद्र। स्तोमऽवाहसां। इह। श्रुधि। उप। स्वसरं। आ। गहि ॥१॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निंद्र यं त्वां भूर्णयो हविर्भिर्भरणशीला नरः कर्मणां नेतारो यजमाना इदाद्य ह्यश्चापीप्यन् सोममपाययन् स त्वं स्तोमवाहसां स्तोत्रवाहकानामस्माकं स्तोत्रमिह यज्ञे श्रुधि। शृणु। स्वसरं च गृहं च। दुर्याः स्वसराणीति गृहनामसु पाठात्। उपा गहि। उपागच्छ ॥

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषंति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विंद्र गिर्वणः ॥२॥
मत्स्व। सुऽशिप्र। हरिऽवः। तत्। ईमहे। त्वे इति। आ। भूषंति। वेधसः।
तव। श्रवांसि। उपऽमानि। उक्थ्या। सुतेषु। इंद्र। गिर्वणः ॥२॥

हे सुशिप्र शोभनहनो शोभनोष्णीषिन्वा हरिवोऽश्ववन् गिर्वणो गोर्भिर्वननीयेंद्र त्वे त्वयि वेधसः परिचारका आ भूषंति। आभवंति। मत्स्व सोमेन मादयात्मानं। किंच तत्त्वां वयमीमहे। याचामहे। किं याच्यमित्यत्राह। सुतेषु सोमेष्वभिषुतेषु सत्सु तव श्रवांस्यन्नान्युपमान्युपमानभूतान्युक्थ्या प्रशंस्यानि च संत्विति ॥

आयंत इव सूर्यं विश्वेदिंद्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥३॥
आयंतःऽइव। सूर्यं। विश्वा। इत्। इंद्रस्य। भक्षत।
वसूनि। जाते। जनमाने। ओजसा। प्रति। भागं। न। दीधिम ॥३॥

हे अस्मदीया जनाः आयंत इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यं भजंते तथेंद्रस्य विश्वेद्विश्वान्येव धनानि भक्षत। भजत। स च यानि वसूनि धनानि जात उत्पन्ने जनमाने जनिष्यमाणे चौजसा बलेन करोति भागं न पित्र्यं भागमिव तानि धनानि प्रति दीधिम। प्रतिधारयामेति। यद्वा। आयंत इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यमुपतिष्ठंते तथेंद्रस्य विश्वा विश्वानि विभक्तुमिच्छंतः समाश्रिता मरुत इंद्रमुपतिष्ठंत इति शेषः। उपस्थाय च मरुतो वसून्युदकलक्षणानि धनानि जाते जाताय जनमाने जनिष्यमाणाय च मनुष्याय चौजसा बलेन भक्षत। विभजंते। तत्र चास्माकं यो भागस्तं भागं। नेति संप्रत्यर्थे। प्रतीत्येषोऽन्वित्येतस्य स्थाने। अनु दीधिम। वयमनुध्यायाम। तथा च यास्कः। समाश्रिताः सूर्यमुपतिष्ठंते। अपि वोपमार्थे स्यात्सूर्यमिवेंद्रमुपतिष्ठंत इति। सर्वाणींद्रस्य धनानि विभक्ष्यमाणाः। स यथा धनानि विभजति जाते च जनिष्यमाणे च तं वयं भागमनुध्यायाम। नि॰ ६. ८.। इति ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इंद्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥४॥

अनर्शऽरातिं । वसुऽदां । उप । स्तुहि । भद्राः । इंद्रस्य । रातयः ।
सः । अस्य । कामं । विधतः । न । रोषति । मनः । दानाय । चोदयन् ॥४॥

हे स्तोतारः अनर्शरातिमपापकदानं । अपापिष्ठस्य दातारमित्यर्थः । तथा च यास्कः । अनर्शरातिमनश्लीलदानमश्लीलं पापकं । नि॰ ६.२३. । इति । वसुदां धनस्य दातारमिंद्रमुप स्तुहि । यत इंद्रस्य रातयो दानानि भद्राः कल्याणानि । महदैश्वर्यकारीणीत्यर्थः । यतश्च स इंद्रः स्वकीयं मनो दानायाभीष्टप्रदानाय चोदयन् प्रेरयन् विधतः परिचरतोऽस्य स्तोतुः काममिच्छां न रोषति न हिनस्ति ॥

त्वमिंद्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥५॥
त्वं । इंद्र । प्रऽतूर्तिषु । अभि । विश्वाः । असि । स्पृधः ।
अशस्तिऽहा । जनिता । विश्वऽतूः । असि । त्वं । तूर्य । तरुष्यतः ॥५॥

हे इंद्र त्वं प्रतूर्तिषु संग्रामेषु विश्वाः सर्वाः स्पृधो युद्धकारिणीः शत्रुसेना अभ्यसि । अभिभवसि । किंच हे तूर्य शत्रूणां बाधकेंद्र त्वमशस्तिहा दैव्यानामशस्तीनां हंतासि । जनितासुरेभ्योऽशस्तीनां जनयिता चासि । विश्वतूः सर्वस्य शत्रुवर्गस्य हिंसिता चासि । तरुष्यतो बाधकांश्च बाधमानोऽसि ॥

अनु ते शुष्मं तुरयंतमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयंत मन्यवे वृत्रं यदिंद्र तूर्वसि ॥६॥
अनु । ते । शुष्मं । तुरयंतं । ईयतुः । क्षोणी इति । शिशुं । न । मातरा ।
विश्वाः । ते । स्पृधः । श्नथयंत । मन्यवे । वृत्रं । यत् । इंद्र । तूर्वसि ॥६॥

हे इंद्र ते तव शुष्मं बलं तुरयंतं हिंसंतं शत्रुं क्षोणी द्यावापृथिव्यौ मातरा मातरौ शिशुं न शिशुमिवान्वीयतुः । अनुगच्छतः । गमनमात्रे दृष्टांतः । किंच हे इंद्र त्वं यद्यस्माद्वृत्रं शत्रुं तूर्वसि हंसि अतस्ते तव मन्यवे क्रोधाय विश्वाः सर्वाः स्पृधः संग्रामकारिण्यः सेनाः श्नथयंत । श्नथिताः खिन्ना भवंति ॥

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितं ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधं ॥७॥
इतः । ऊती । वः । अजरं । प्रऽहेतारं । अप्रऽहितं ।
आशुं । जेतारं । हेतारं । रथिऽतमं । अतूर्तं । तुग्र्यऽवृधं ॥७॥

हे अस्मदीयजनाः वो यूयमजरं जरारहितं प्रहेतारं शत्रूणां प्रेरकमप्रहितं केनाप्यप्रेषितमाशुं वेगवंतं जेतारं शत्रूणां हेतारं गंतारं रथीतमं रथिनां श्रेष्ठमतूर्तं केनाप्यहिंसितं तुग्र्यावृधमुदकस्य वर्धयितारमिंद्रमूत्यूत्यै रक्षणायेतः कुरुत । पुरस्कुरुत इति यावत् ॥

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुं ।
समानमिंद्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवं ॥८॥

इष्कर्तारं । अनिःऽकृतं । सहःऽकृतं । शतम्ऽऊतिं । शतऽक्रतुं ।
समानं । इंद्रं । अवसे । हवामहे । वसवानं । वसुऽजुवं ॥८॥

इष्कर्तारं शत्रूणां संस्कर्तारमनिष्कृतं स्वयमन्यैरसंस्कृतं सहस्कृतं बलेन कृतं शतमूतिं बहुरक्षणं शतक्रतुं बहुप्रज्ञं बहुकर्माणं वा समानं बहूनां साधारणं वसवानं धनान्याच्छादयंतं वसूजुवं यजमानेभ्यो वसूनां प्रेरयितारमिंद्रमवसे रक्षणाय वयं हवामहे। हृयामः ॥ ॥३॥

अयं त इति द्वादशर्चं सप्तमं सूक्तं भृगुगोत्रस्य नेमस्यार्षं। अयमस्मि जरितरिति तृचेनेंद्रो नेमसमीपमेत्य स्वकीयं माहात्म्यमवोचत् अतस्तस्य तृचस्य स एवर्षिः। यस्य वाक्यं स ऋषिः। अनु० २.४.। इति न्यायात्। षष्ठी जगती। सप्तम्याद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः। शिष्टास्त्रिष्टुभः। इंद्रो देवता। यद्वाग्वदंती देवीं वाचमित्येते वाग्देवत्ये शिष्टा ऐंद्र्यः। तथा चानुक्रांतं। अयं द्वादश नेमो भार्गवस्त्रैष्टुभं षष्ठी जगती परास्तिस्रोऽनुष्टुभोऽयमिति तृचेनेंद्र आत्मानमस्तौदुपांत्ये वाच्याविति॥ वाग्देवत्ये पशौ यद्वाग्वदंतीति वपाया अनुवाक्या। सूत्रितं च। यद्वाग्वदंत्यविचेतनानि पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति। आ० ३.८.। इति॥ पूर्वोक्त एव पशौ देवीं वाचमिति हविषो याज्या। सूत्रितं च। देवीं वाचमजनयंत देवा जनीयंतो न्वग्रव इति तिस्रः। आ० ३.८.। इति॥ प्रयाणसमये वयसाममनोज्ञा वाचः श्रुत्वैतां जपेत्। सूत्रितं च। कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इति सूक्ते जपेद्देवीं वाचमजनयंत देवा इति च। आ० गृ० ३.१०.९.। इति॥

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यंति पश्चात्।
यदा मह्यं दीधरो भागमिंद्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥१॥
अयं। ते। एमि। तन्वा। पुरस्तात्। विश्वे। देवाः। अभि। मा। यंति। पश्चात्।
यदा। मह्यं। दीधरः। भागं। इंद्र। आत्। इत्। मया। कृणवः। वीर्याणि ॥१॥

हे इंद्र ते तव पुरस्तादग्रतस्तन्वा पुत्रेण सहायमहमेमि। शत्रूनभिभवितुं गच्छामि। तवाग्रतो गच्छंतं मां विश्वे देवास्त्वया सह पश्चादभि यंति। अभिगच्छंति। यदा त्वं मह्यं भार्गवाय नेमाय भागं शत्रुषु स्थितं भागं दीधरः धारयसि आदिदनंतरमेव मया सह मच्छत्रूञ्जेतुं वीर्याणि पौरुषाणि कृणवः। कुरु। यदि शत्रुषु स्थितं धनं मह्यं दित्ससि तर्हि शत्रुजयार्थं गच्छतः सपुत्रस्य मम साहाय्यं कुर्विति भावः॥

दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जंघनाव भूरि ॥२॥
दधामि। ते। मधुनः। भक्षं। अग्रे। हितः। ते। भागः। सुतः। अस्तु। सोमः।
असः। च। त्वं। दक्षिणतः। सखा। मे। अध। वृत्राणि। जंघनाव। भूरि ॥२॥

हे इंद्र ते तुभ्यं मधुनो मदकरस्य सोमस्य भक्षमग्रे प्रथमं दधामि। धारयामि। सुतोऽभिषुतो भागो भजनीयः सोमस्ते तव हृदये हितो निहितोऽस्तु। भवतु। अपि च त्वं मे मम दक्षिणतो दक्षिणपार्श्वे सखा सन्नसः। स्थितो भव। अधाथ भूरि बहूनि वृत्राण्यस्मदीयाञ्छत्रूञ्जंघनाव। त्वमहं चोभावावां हन्वः॥

प्र सु स्तोमं भरत वाजयंत इंद्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति।
नेंद्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥३॥
प्र। सु। स्तोमं। भरत। वाजऽयंतः। इंद्राय। सत्यं। यदि। सत्यं। अस्ति।
न। इंद्रः। अस्ति। इति। नेमः। ऊं इति। त्वः। आह। कः। ईं। ददर्श। कं। अभि। स्तवाम ॥३॥

हे जनाः वाजयंतः संग्राममिच्छंतो यूयं। पौंस्ये वाज इति संग्रामनामसु पाठात्। इंद्राय सत्यं सत्यभूतं स्तोमं सु सुष्ठु प्र भरत। इंद्रोऽस्तीत्येतद्यदि सत्यमस्ति भवति। इंद्रास्तित्वे कः संदेहः। तत्राह। नेम उ भार्गवो नेम एवेंद्रो नाम त्वः कश्चिन्नास्तीत्याह। तत्र कारणं दर्शयति। क ईमेनमिंद्रं ददर्श। अद्राक्षीत्। न को ऽप्यपश्यत्। अतः कं वयमभि ष्टवाम। अभिष्टुमः। तस्मादिंद्रो नाम कश्चिद्विद्यत इति वादमात्रं न तु तत्सत्यमित्यर्थः॥

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयंत्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि॥४॥
अयं। अस्मि। जरितरिति। पश्य। मा। इह। विश्वा। जातानि। अभि। अस्मि। मह्ना।
ऋतस्य। मा। प्रऽदिशः। वर्धयंति। आऽदर्दिरः। भुवना। दर्दरीमि॥४॥

एवं नेमस्यर्षेर्वचनमाकर्ण्येंद्रस्तस्य समीपमाजगाम। आगत्य चात्मानमनेन तृचेन स्तौति। हे जरितः स्तोतः अयमहमस्मि। इह तव समीपे स्थितं मा मां पश्य। विश्वा सर्वाणि जातानि भुवनानि मह्ना महत्त्वेनाभ्यस्मि। अहमभिभवामि। किंच मामृतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा प्रदिशः प्रदेष्टारो विद्वांसः स्तोत्रैर्वर्धयंति। अपि चादर्दिर आदरणशीलोऽहं भुवना भुवनानि शत्रुभूतानि दर्दरीमि। भृशं विदारयामि॥

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमंतः सखायः॥५॥
आ। यत्। मा। वेनाः। अरुहन्। ऋतस्य। एकं। आसीनं। हर्यतस्य। पृष्ठे।
मनः। चित्। मे। हृदे। आ। प्रति। अवोचत्। अचिक्रदन्। शिशुऽमंतः। सखायः॥५॥

यद्यदा य ऋतस्य यज्ञस्य यज्ञं॥ कर्मणि षष्ठी॥ वेनाः कामयमाना हर्यतस्य कांतस्यांतरिक्षस्य पृष्ठ आसीनमुपविष्टमेकं मा मामारुहन् तदानीं तेषां भवतामारोहं मनश्चिन्मन एव मे मम हृदे हृदयाय प्रत्यवोचत्। अब्रवीत्। अज्ञासिषं च तदाह्वानं शिशुमंतः पुत्रयुक्ताः सखायः प्रिया अमी अचिक्रदन् मां क्रंदंतीति॥

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निंद्र सुन्वते।
पारावतं यत्पुरुसंभृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबंधवे॥६॥
विश्वा। इत्। ता। ते। सवनेषु। प्रऽवाच्या। या। चकर्थ। मघऽवन्। इंद्र। सुन्वते।
पारावतं। यत्। पुरुऽसंभृतं। वसु। अपऽअवृणोः। शरभाय। ऋषिऽबंधवे॥६॥

स्वसमीपमागतमिंद्रं दृष्ट्वा संतुष्ट ऋषिरिंद्रस्य विविधानि कर्माणि दानं च विश्वेत्ता त इत्यनेन तृचेन स्तौति। हे मघवन्निंद्र त्वं सवनेषु यज्ञेषु सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय या यानि कर्माणि चकर्थ अकरोः ते तव ता तानि कर्माणि प्रवाच्या प्रवक्तव्यानि विश्वेदनंतान्येव। किंच त्वं पारावतं परावन्नामकस्य कस्यचिच्छत्रोः स्वभूतं यद्धनमस्ति तदृषिबंधवे शरभाय शरभनाम्न ऋषयेऽपावृणोः। अपवृतवानसि। पुरुसंभृतं यथा बहुसंभृतं भवति॥ ॥४॥

प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत्।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिंद्रो अपीपतत्॥७॥

प्र । नूनं । धावत । पृथक् । न । इह । यः । वः । अवावरीत् ।
नि । सीं । वृत्रस्य । मर्मणि । वज्रं । इंद्रः । अपीपतत् ॥७॥

यः शत्रुर्नूनमिदानीं प्र धावत प्रधावति पृथगिह पृथङ्ङ् तिष्ठति च वो युष्मान्नावावरीत् न विवारयति च तस्य वृत्रस्य शत्रोर्मर्मणि मर्मस्थान इंद्रो वज्रं कुलिशं न्यपीपतत् । नितरामपातयत् ॥

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरं ।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥८॥
मनःऽजवाः । अयमानः । आयसीं । अतरत् । पुरं ।
दिवं । सुऽपर्णः । गत्वाय । सोमं । वज्रिणे । आ । अभरत् ॥८॥

सुपर्णो गरुत्मान् मनोजवा मनोवेगोऽयमानो गच्छन्नायसीं हिरण्मयीं पुरं नगरीमतरत् । अतारीत् । ततो दिवं स्वर्गं गत्वाय गत्वा वज्रिण इंद्राय सोममाभरत् । आहरच्च ॥

समुद्रे अंतः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः । भरंत्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिं ॥९॥
समुद्रे । अंतरिति । शयते । उद्ना । वज्रः । अभिऽवृतः । भरंति । अस्मै । संऽयतः
पुरःऽप्रस्रवणाः । बलिं ॥९॥

यो वज्रः समुद्रेऽंतः समुद्रस्य मध्ये शयते शेते यश्चोद्नोदकेनाभिवृतोऽस्मै वज्राय संयतः संग्रामस्य । समन संयत इति संग्रामनामसु पाठात् ॥ पुरःप्रस्रवणाः पुरस्तान्नच्छंतः शत्रवो बलिमुपहारं भरंति । धारयंति । तस्य च्छेद्या भवंतीत्यर्थः ॥

यद्वाग्वदंत्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मंद्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥१०॥
यत् । वाक् । वदंती । अविऽचेतनानि । राष्ट्री । देवानां । निऽससाद । मंद्रा ।
चतस्रः । ऊर्जं । दुदुहे । पयांसि । क्व । स्वित् । अस्याः । परमं । जगाम ॥१०॥

राष्ट्री राजनशीला देवानां मंद्रा मादयित्री वा यद्यदा वागविचेतनानि विज्ञानरहितानप्रज्ञातार्थान्वदंती प्रज्ञापयंती निषसाद यज्ञे निषीदति तदा चतस्रो दिशः प्रत्यूर्जमन्नं पयांसि तत्कारणभूतान्युदकानि दुदुहे । अस्या माध्यमिकाया वाचः स्वभूतं यत्परमं श्रेष्ठं तत्क्व जगाम । क्व गच्छतीति न दृश्यत इत्यर्थः । तथा च यास्कः । यद्वाग्वदंत्यविचेतनान्यविज्ञातानि राष्ट्री देवानां निषसाद मंद्रा मदना चतस्रोऽनु दिश ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगामेति यत्पृथिवीं गच्छतीति वा यदादित्यरश्मयो हरंतीति वा । नि॰ ११. २८. । इति ॥

देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदंति ।
सा नो मंद्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥११॥
देवीं । वाचं । अजनयंत । देवाः । तां । विश्वऽरूपाः । पशवः । वदंति ।
सा । नः । मंद्रा । इषं । ऊर्जं । दुहाना । धेनुः । वाक् । अस्मान् । उप । सुऽस्तुता ।
आ । एतु ॥११॥

एषा माध्यमिका वाक् सर्वप्राण्यंतर्गता धर्माभिवादिनी भवतीति विभूतिमुपदर्शयति। यां देवीं द्योतमानां माध्यमिकां वाचं देवा माध्यमिका अजनयंत जनयंति तां वाचं विश्वरूपाः सर्वरूपा व्यक्तवाचोऽव्यक्तवाचश्च पशवो वदंति। तत्पूर्वकत्वाद्वाक्प्रवृत्तेः। सा वाग्देवी मंद्रा मदना स्तुत्या हर्षयित्री वा वृष्टिप्रदानेनास्मभ्यमिषमन्नमूर्जं पयोघृतादिरूपं रसं च दुहाना क्षरंती धेनुर्धेनुभूता सुष्टुतास्माभिः स्तुतास्मान्निमानुपैतु। उपगच्छतु। वर्षणायोद्युक्तेत्यर्थः। तथा च यास्कः। देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदंति व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च सा नो मदनान्नं च रसं च दुहाना धेनुर्वागस्मानुपैतु सुष्टुता। नि० ११. २९.। इति॥

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिंधूनिंद्रस्य यंतु प्रसवे विसृष्टाः॥१२॥

सखे। विष्णो इति। विऽतरं। वि। क्रमस्व। द्यौः। देहि। लोकं। वज्राय। विऽस्कभे।
हनाव। वृत्रं। रिणचाव। सिंधून्। इंद्रस्य। यंतु। प्रऽसवे। विऽसृष्टाः॥१२॥

हे सखे विष्णो त्वं वितरमत्यंतं वि क्रमस्व। विक्रमं कुरु। हे द्यौः त्वं वज्राय वज्रस्य विष्कभे विष्कंभनाय लोकमवकाशं देहि। प्रयच्छ। हे विष्णो त्वं चाहं चोभावावां वृत्रमसुरं हनाव। हन्वः। सिंधून् वृत्रावष्टब्धा नदीश्च रिणचाव। गमयावः। तेऽमी विसृष्टाः सिंधव इंद्रस्य प्रसवे यंतु। प्रेरणे गच्छंतु। तमिममर्थं संगृह्य श्लोकैः शौनको दर्शयति। त्रींल्लोकानभिवृत्यैतान्वृत्रस्तस्थौ स्वया त्विषा। तं नाशकद्धंतुमिंद्रो विष्णुमभ्येत्य सोऽब्रवीत्॥ वृत्रं हनिष्ये तिष्ठस्व विक्रम्याद्य ममांतिके। उद्यतस्य तु वज्रस्य द्यौर्ददातु ममांतरं॥ तथेति विष्णुस्तच्चक्रे द्यौश्चास्य विवरं ददौ। तदेतदखिलं प्रोक्तं सखे विष्णो इति त्वृचा। बृ० ६. ९३१-९३३.। इति॥　॥५॥

ऋधगिति षोडशर्चमष्टमं सूक्तं। अत्रानुक्रम्यते। ऋधक् षोडश जमदग्निर्भार्गवो मैत्रावरुणं प्रागाथं त्रिष्टुबंतं तृतीयादि गायत्री सतोबृहती स्तोत्रं राजस्वृक्सपादादित्याश्विन्यौ वायव्ये सौर्यौ बृहत्युषस्या सूर्यप्रभास्तुतिर्वा पावमानी गव्ये इति। भृगुगोत्रो जमदग्निर्ऋषिः। चतुर्दश्याद्यास्तिस्रस्त्रिष्टुभः। त्रयोदशी बृहती शिष्टानामयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः। तृतीया गायत्री। स्तोत्रं राजसु गायतेति पादेन सहिता ते हिन्विर इत्यादित्यदेवताका। आ मे वचांसीति द्वे अश्विदेवताके। आ नो यज्ञं दिविस्पृशमिति द्वे वायुदेवत्ये। बण्महाँ असि सूर्येति द्वे सूर्यदेवत्ये। इयं या नीचीत्येषोषोदेवत्या। यद्वा। सूर्यप्रभानया स्तूयते। अतः सैव देवता। प्रजा ह तिस्र इत्येषा पवमानदेवताका। माता रुद्राणामिति द्वे गोदेवत्ये। शिष्टाः पंचर्चौ मैत्रावरुण्यः॥ सूक्तविनियोगो लैंगिकः॥ संग्रामार्थं राज्ञः संनहने प्र यो वां मित्रावरुणेति द्वे राजानं वाचयेत्। सूत्रितं च। अभीवर्तं वाचयति प्र यो वां मित्रावरुणेति च द्वे। आ० गृ० ३. १२. १२.। इति॥ पृष्ठ्यस्य पंचमेऽहनि प्रउगे वायव्यतृचस्या नो यज्ञमित्यादिके द्वे ऋचावाद्ये। सूत्रितं च। आ नो यज्ञं दिविस्पृशमिति द्वे आ नो वायो महे तन इत्येका। आ० ७. १२.। इति॥ आश्विनं शंसिष्यन्होता बण्महाँ असि सूर्येति द्वाभ्यामग्निं जुहुयात्। सूत्रितं च। बण्महाँ असि सूर्येति द्वाभ्यामिंद्रं वो विश्वतस्परीति च। आ० ६. ५.। इति॥ माध्यंदिनसवने सोमातिरेक एकं शस्त्रमुपजायते। तत्र बण्महाँ असीति प्रगाथः स्तोत्रियः। सूत्रितं च। बण्महाँ असि सूर्योदु त्यद्दर्शतं वपुरिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ। आ० ६. ७.। इति॥ अयमेव प्रगाथस्त्रातुर्विंशिके माध्यंदिनो ब्राह्मणाच्छंसिनो वैकल्पिकोऽनुरूपः। सूत्रितं च। आयंत इव सूर्यं बण्महाँ असि सूर्य। आ० ७. ४.। इति॥ मधुपर्के गामुत्सृज्य माता रुद्राणामिति जपेत्। सूत्रितं च। माता रुद्राणां दुहिता वसूनामिति जपित्वोमुत्सृजतेत्युत्स्रक्ष्यन्। आ० गृ० १. २४. २५.। इति॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये॥१॥

ऋधक् । इत्था । सः । मर्त्यः । शशमे । देवऽतातये ।
यः । नूनं । मित्रावरुणौ । अभिष्टये । आऽचक्रे । हव्यऽदातये ॥१॥

यो मनुष्यो नूनं क्षिप्रं हव्यदातये हविषां प्रदात्रे यजमानाय मित्रावरुणावभिष्टयेऽभिमतसिद्ध्यर्थमाचक्रेऽभिमुखौ करोति स मर्त्यो मनुष्य ऋधक् सत्यमित्थेत्थं देवतातये यज्ञार्थं शशमे । हविः संस्करोति ॥

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥२॥
वर्षिष्ठऽक्षत्रौ । उरुऽचक्षसा । नरा । राजाना । दीर्घश्रुत्ऽतमा ।
ता । बाहुता । न । दंसना । रथर्यतः । साकं । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः ॥२॥

वर्षिष्ठक्षत्रातिशयेन वृद्धबलावुरुचक्षसा महादर्शनौ नरा नेतारौ कर्मणां राजाना दीप्यमानौ दीर्घश्रुत्तमातिशयेन विद्वांसौ ता तौ मित्रावरुणौ बाहुता न भुजाविव सूर्यस्य रश्मिभिः किरणैः साकं सह दंसना दंसनानि कर्माणि । अग्नो दंस इति कर्मनामसु पाठात् । रथर्यतः । प्राप्नुतः । यथा बाहू सह कर्म प्राप्नुतः तथा मित्रावरुणौ सह यज्ञं प्राप्नुत इत्यर्थः ॥

प्र यो वां मित्रावरुणाजिरो दूतो अद्रवत् । अयःशीर्षा मदेरघुः ॥३॥
प्र । यः । वां । मित्रावरुणा । अजिरः । दूतः । अद्रवत् । अयःऽशीर्षा । मदेऽरघुः ॥३॥

हे मित्रावरुणौ वां युवामजिरो गमनशीलो यो यजमानः प्राद्रवत् अभिगच्छति स देवानां दूतो भवति । अयःशीर्षा हिरण्यालंकृतशिरस्कश्च भवति । मदेरघुर्मदकरे धने गंता च भवति ॥

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतं ॥४॥
न । यः । संऽपृच्छे । न । पुनः । हवीतवे । न । संऽवादाय । रमते ।
तस्मात् । नः । अद्य । संऽऋतेः । उरुष्यतं । बाहुऽभ्यां । नः । उरुष्यतं ॥४॥

यः शत्रुः संपृच्छे संप्रश्नाय न रमते न क्रीडते न च पुनःपुनर्हवीतवे हवनाय रमते न च संवादाय रमते तस्माच्छत्रोः समृतेः संग्रामान्नोऽस्मानद्योरुष्यतं हे मित्रावरुणौ युवां रक्षतं । किंच तस्य शत्रोर्बाहुभ्यां नोऽस्मानुरुष्यतं । रक्षतं ॥

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं१ वरुणे छंद्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥५॥
प्र । मित्राय । प्र । अर्यम्णे । सचथ्यं । ऋतवसो इत्यृतऽवसो ।
वरूथ्यं । वरुणे । छंद्यं । वचः । स्तोत्रं । राजऽसु । गायत ॥५॥

हे ऋतवसो यज्ञधन मित्राय सचथ्यं सेवार्हं वरूथ्यं यज्ञगृहे भवं च स्तोत्रं प्र गायत । प्रकर्षेण गायत । अर्यम्णे च प्र गायत । वरुणे छंद्यं प्रीणनसाधनं चैतादृशं वचः प्र गायत । प्रगायतेति बहुवचनं पूजार्थं । एतदेव दर्शयति । राजसु मित्रादिषु राजसु स्तोत्रं गायत । पठत । मित्रादींस्त्रीन्राज्ञः स्तुतेति समुदायार्थः ॥ ॥६॥

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणां ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥६॥
ते । हिन्विरे । अरुणं । जेन्यं । वसु । एकं । पुत्रं । तिसृणां ।
ते । धामानि । अमृताः । मर्त्यानां । अदब्धाः । अभि । चक्षते ॥६॥

अरुणमरुणवर्णं जेन्यं जयसाधनं वसु वासकं तिसृणां पृथिव्यादीनामेकं पुत्रं ते देवा हिन्विरे । प्रेरयंति त्रैलोक्यस्य तमोनिवारणाय । किंचादब्धाः केनाप्यहिंसिता अमृता मरणरहितास्ते देवा मर्त्यानां मनुष्याणां धामानि स्थानान्यभि चक्षते । अभिपश्यंति ॥

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥७॥
आ । मे । वचांसि । उत्ऽयता । द्युमत्ऽतमानि । कर्त्वा ।
उभा । यातं । नासत्या । सऽजोषसा । प्रति । हव्यानि । वीतये ॥७॥

हे नासत्या नासत्यौ सत्यस्य प्रणेतारौ सजोषसा संगतावुभौ युवां मे जमदग्नेर्ममोद्यतोद्यतानि द्युमत्तमानि दीप्ततमानि वचांसि स्तोत्ररूपाणि वाक्यानि कर्त्वा कर्माणि चा यातं । किंच हव्यानि हवींषि वीतये भक्षणाय प्रति गच्छतं ॥

रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरंताविंत नरा गृणाना जमदग्निना ॥८॥
रातिं । यत् । वां । अरक्षसं । हवामहे । युवाभ्यां । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
प्राचीं । होत्रां । प्रऽतिरंतौ । इतं । नरा । गृणाना । जमत्ऽअग्निना ॥८॥

हे वाजिनीवसू अन्नधनावश्विनौ वां युवयोः संबंधि यदरक्षसं रक्षोवर्जितं दानमस्ति तद्यदा हवामहे । एतदेव विशदयति । युवाभ्यां क्रियमाणां रातिं दानं हवामह इति । तदानीं प्राचीं प्राङ्मुखां होत्रां स्तुतिं प्रतिरंतौ वर्धयंतौ नरा नेतारौ जमदग्निनर्षिणा गृणानौ स्तूयमानौ च संताविंत । आगच्छतं ॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अंतः पवित्र उपरि श्रीणानो३ऽयं शुक्रो अयामि ते ॥९॥
आ । नः । यज्ञं । दिविऽस्पृशं । वायो इति । याहि । सुमन्मऽभिः ।
अंतरिति । पवित्रे । उपरि । श्रीणानः । अयं । शुक्रः । अयामि । ते ॥९॥

हे वायो त्वं नोऽस्माकं दिविस्पृशं तं यज्ञमा याहि । किमर्थमागमनमित्यत्राह । सुमन्मभिः सुष्टुतिभिरंतः पवित्रे पवित्रस्य मध्य उपरि श्रीणानः श्रयमाणो सिषिच्यमानोऽयं शुक्रः सोमस्ते तुभ्यमयामि । नियत आसीदिति ॥

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरं ॥१०॥

वेति॑ । अ॒ध्व॒र्युः । प॒थिऽभिः॑ । रजि॑ष्ठैः । प्रति॑ । ह॒व्यानि॑ । वी॒तये॑ ।
अध॑ । नि॒यु॒त्वः॒ । उ॒भय॑स्य । नः॒ । पि॒ब॒ । शुचि॑म् । सोम॑म् । गोऽआ॑शिरम् ॥१०॥

हे नियुत्वो नियुत्संज्ञकाश्ववन्वायो अध्वर्युर्हविर्धानाद्रजिष्ठैर्ऋजुतमैः पथिभिर्मार्गैर्वेति । गच्छति । वीतये भक्षणाय तव भक्षणानि हव्यानि हवींषि च प्रति नयतीति शेषः । अधाथ नोऽस्माकं संबंधिनमुभयस्योभयविधं सोमं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ पिब । उभयविधत्वं दर्शयति । शुचिं शुद्धं सोमं गवाशिरं गव्येन पयसा मिश्रितं चेति ॥ ॥ ७ ॥

बण्म॒हाँ अ॑सि सूर्य॒ बळा॑दित्य म॒हाँ अ॑सि ।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ अ॑सि ॥११॥
बट् । म॒हान् । अ॒सि॒ । सू॒र्य॒ । बट् । आ॒दि॒त्य॒ । म॒हान् । अ॒सि॒ ।
म॒हः । ते॒ । स॒तः । म॒हि॒मा । प॒न॒स्य॒ते॒ । अ॒द्धा । दे॒व॒ । म॒हान् । अ॒सि॒ ॥११॥

हे सूर्य त्वं महांस्तेजसाधिकोऽसि । बट् सत्यं । नैतन्मिथ्येत्यर्थः । हे आदित्यादितेः पुत्र त्वं महान् बलेनाप्यधिकोऽसि । बट् सत्यं । महो महतः सतो भवतस्ते महिमा महत्त्वं पनस्यते । स्तोतृभिः स्तूयते । हे देव द्योतनादिगुणयुक्त सूर्य त्वं महान् वीर्येणाप्यधिकोऽसि । भवसि । अद्धा सत्यमेव । अत्र न संशय इत्यर्थः । बट् सत्रेति सत्यनामसु पाठात् ॥

बट् सू॑र्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ अ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ अ॑सि ।
म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्यः॑ पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥१२॥
बट् । सू॒र्य॒ । श्रव॑सा । म॒हान् । अ॒सि॒ । स॒त्रा । दे॒व॒ । म॒हान् । अ॒सि॒ ।
म॒ह्ना । दे॒वाना॑म् । अ॒सु॒र्यः॑ । पु॒रःऽहि॑तः । वि॒ऽभु । ज्योतिः॑ । अदा॑भ्यम् ॥१२॥

हे सूर्य त्वं श्रवसा श्रवणेन महान् सर्वाधिकोऽसि बट् सत्यं । हे देव द्योतमान सूर्य त्वं देवानां मध्ये मह्ना महत्त्वेन महानधिकोऽसि सत्रा सत्यमेव । असुर्योऽसुराणां हंता चासि । किंच त्वं देवानां पुरोहितो हितोपदेष्टासि । किंच तज्ज्योतिस्तेजो विभु महददाभ्यं केनाप्यहिंस्यं च ॥

इ॒यं या नीच्य॒र्किणी॑ रू॒पा रोहि॑ण्या कृ॒ता ।
चि॒त्रेव॒ प्रत्य॑दर्श्याय॒त्य१॒॑न्तर्द॒शसु॑ बा॒हुषु॑ ॥१३॥
इ॒यम् । या । नीची॑ । अ॒र्किणी॑ । रू॒पा । रोहि॑ण्या । कृ॒ता ।
चि॒त्राऽइ॑व । प्रति॑ । अ॒द॒र्शि॒ । आ॒ऽय॒ती । अ॒न्तः । द॒शऽसु॑ । बा॒हुषु॑ ॥१३॥

अस्यामृच्युषसः स्तुतिः सूर्यप्रभाया वा । येयं नीच्यवाङ्मुख्यर्किणी स्तुतिमती रूपा रूपवती रोहिण्या प्रकाशयुक्ता कृतोषाः सूर्यप्रभा वोत्पादिता सांतर्ब्रह्मांडस्य मध्ये बाहुषु बाहुस्थानीयासु दशसु दशसंख्याकासु दिक्ष्वायत्यागच्छती चित्रेव चित्रा गौरिव प्रत्यदर्शि । सर्वैरदृश्यत ॥

प्र॒जा ह॑ ति॒स्रो अ॑त्या॒यमी॑यु॒र्न्य१॒॑न्या अ॒र्कम॒भितो॑ विविश्रे ।
बृ॒हद्ध॑ तस्थौ॒ भुव॑नेष्व॒न्तः पव॑मानो ह॒रित॒ आ वि॑वेश ॥१४॥

प्रऽजाः । ह । तिस्रः । अतिऽआयं । ईयुः । नि । अन्याः । अर्कं । अभितः । विविश्रे ।
बृहत् । ह । तस्थौ । भुवनेषु । अंतरिति । पवमानः । हरितः । आ । विवेश ॥१४॥

यास्तिस्रः प्रजा अत्यायमीयुः अत्यायमायन् अन्यास्ता इमाः प्रजा अर्कमर्चनीयममिमभितो विविश्रे । अभितो निविष्टास्ततो न पराबभूवुः । भुवनेष्वंतर्मध्ये बृहन्महानसावादित्यः । प्रजापतिरित्येके । तस्थौ । प्रकाशयन्नतिष्ठत् । हरितो दिशः पवमानो वायुरा विवेश । आविष्टः । तथा चैतरेयब्राह्मणं । प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या वै ता इमाः प्रजास्तिस्रो अत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वंगावगधाश्चेरपादाः । न्यन्या अर्कमभितो विविश्र इति ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निविष्टा इममेवाग्निं बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वंतरित्यद उ एव बृहद्भुवनेष्वंतरसावादित्यः पवमानो हरित आ विवेशेति वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्टः । ऐ॰ आ॰ २. १. १. । इति । वाजसनेयिनोऽप्यामनंति । स तपोऽतप्यत स प्रजा असृजत ता अस्य प्रजाः सृष्टाः पराबभूवुस्तानीमानि वयांसीत्युपक्रम्य प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या अमूः प्रजा अत्यायन् न्यन्या अर्कमभितो विविश्र इत्यग्निर्वा अर्कस्तमिमाः प्रजा अभितो निविष्टास्ता इमाः पराभूताः । बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वंतरिति प्रजापतिमेवैतदभ्यनूक्तं पवमानो हरित आ विवेशेति दिशो वै हरितस्ता अयं पवमान आविष्टः । शत॰ २. ५. १. १–५. । इति ॥

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥
माता । रुद्राणां । दुहिता । वसूनां । स्वसा । आदित्यानां । अमृतस्य । नाभिः ।
प्र । नु । वोचं । चिकितुषे । जनाय । मा । गां । अनागां । अदितिं । वधिष्ट ॥१५॥

अस्मिन् तृचे गौः स्तूयते । या गौ रुद्राणां मरुतां माता जननी वसूनां दुहिता पुत्र्यादित्यानां स्वसा भगिन्यमृतस्य पयसो नाभिरावासस्थानं तामनागामनागसमदितिमदीनां गां गोरूपां देवीं मा वधिष्ट हे जनाः मा हिंसिष्टेति चिकितुषे चेतनावते जनाय न्विदानीं प्र वोचं । अहं प्रावोचमिति शुश्रूषमाणेभ्य उपदेशः ॥

वचोविदं वाचमुदीरयंतीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानां ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥
वचःऽविदं । वाचं । उत्ऽईरयंतीं । विश्वाभिः । धीभिः । उपऽतिष्ठमानां ।
देवीं । देवेभ्यः । परि । आऽईयुषीं । गां । आ । मा । अवृक्त । मर्त्यः । दभ्रऽचेताः ॥१६॥

वचोविदं वचसो लंभयित्रीं वाचमुदीरयंतीं पयः पीत्वा पश्चाद्वाचमुदीरयंतीं । क्षुधितो हि जनो न वाचमुदीरयति भुक्त्वा पश्चादुदीरयति । विश्वाभिः सर्वाभिर्धीभिर्वाग्भिरुपतिष्ठमानां देवीं द्योतमानां देवेभ्यो देवार्थं मा मामेयुषीमवगच्छंतीं गां दभ्रचेता अल्पबुद्धिर्मर्त्यो मनुष्यः पर्यावृक्त । परिवर्जयति ॥ ॥८॥

त्वमग्न इति द्वाविंशत्यृचं नवमं सूक्तं गायत्रमाग्नेयं । भृगुगोत्रः प्रयोगो नामर्षिः । बार्हस्पत्यः पावकविशेषेण विशिष्टोऽग्न्याख्यो वा । यद्वा । सहोनाम्नः पुत्रौ गृहपतियविष्ठसंज्ञकौ द्वावग्नी । तौ सहेदं सूक्तमपश्यतां । तस्मादस्य तावृषी । अथवा तयोरन्यतरः । तथा चानुक्रांतं । त्वमग्ने द्व्यधिका भार्गवः प्रयोगो बार्हस्पत्यो वाग्निः पावकः सहसः सुतयोर्वाग्न्योर्गृहपतियविष्ठयोर्वान्यतर आग्नेयं त्विति ॥ प्रातरनुवाकस्याग्नेये क्रतौ गायत्रे छंदस्यादितोऽष्टादशर्चः । सूत्रितं च । त्वमग्ने बृहद्वय इत्यष्टादशार्चतस्त्वेति सूक्ते । आ॰ ४. १३. । इति ॥ देवसुवां हविःष्वग्नेर्गृहपतेरनुवाक्या त्वमग्ने बृहद्वय इत्येषा । सूत्रितं च । त्वमग्ने बृहद्वयो हव्यवाळग्निरजरः पिता नः । आ॰ ४. ११. । इति ॥ अन्वारंभणीयायामग्नेर्भगिनोऽनुवाक्या आ सवं सवितुरित्येषा । सूत्रितं च । आ सवं

सवितुर्यथा स नो राधांस्या भर । आ० २. ८. । इति ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु तृतीयसवने मैत्रावरुणस्याग्निं वो वृधंतमिति वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः । सूत्रितं च । अग्निं वो वृधंतमग्ने यं यज्ञमध्वरं । आ० ७. ८. । इति ॥ दशमेऽहनीमं नो यज्ञमिति स्तोकसूक्तस्य द्वितीयस्य स्थानेऽग्ने घृतस्येत्येषा । सूत्रितं च । स्तोकसूक्तस्य द्वितीयतृतीययोः स्थानेऽग्ने घृतस्य धीतिभिरुभे सुश्चंद्र सर्पिष इत्येते । आ० ८. १२. । इति ॥

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥१॥

त्वं । अग्ने । बृहत् । वयः । दधासि । देव । दाशुषे । कविः । गृहऽपतिः । युवा ॥१॥

हे देव द्योतमानाग्ने कविः क्रांतकर्मा गृहपतिर्गृहपालको युवा नित्यं तरुणस्त्वं दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय बृहद्वयो महदन्नं दधासि । प्रयच्छसीत्यर्थः ॥

स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा । चिकिद्विभानवा वह ॥२॥

सः । नः । ईळानया । सह । देवान् । अग्ने । दुवस्युवा । चिकित् । विभानो इति विऽभानो । आ । वह ॥२॥

हे विभानो विशिष्टदीप्तेऽग्ने चिकिज्ज्ञाता सन्नोऽस्माकं दुवस्युवा परिचरणशीलयेळानया स्तुवत्या वाचा सह देवाना वह ॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य । अभि ष्मो वाजसातये ॥३॥

त्वया । ह । स्वित् । युजा । वयं । चोदिष्ठेन । यविष्ठ्य । अभि । स्मः । वाजऽसातये ॥३॥

हे यविष्ठ्य युवतमाग्ने चोदिष्ठेनातिशयेन धनानां प्रेरयित्रा त्वया युजा स्विन्न सहायेनैव वयं भार्गवः प्रयोगो बार्हस्पत्याः पावका अग्नयो वा वाजसातयेऽन्नलाभायाभि ष्मः । शत्रूनभिभवेम ॥

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससं ॥४॥

और्वभृगुऽवत् । शुचिं । अप्नवानऽवत् । आ । हुवे । अग्निं । समुद्रऽवाससं ॥४॥

समुद्रवाससं समुद्रमध्यवर्तिनं वाडवं शुचिं शुद्धमग्निमौर्वभृगुवद्यथौर्वभृगुरप्नवानवद्यथाप्नवानस्तथा हुवे । आह्वयाम्यहं ॥

हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रंद्यं सहः । अग्निं समुद्रवाससं ॥५॥

हुवे । वातऽस्वनं । कविं । पर्जन्यऽक्रंद्यं । सहः । अग्निं । समुद्रऽवाससं ॥५॥

वातस्वनं वातसदृशध्वनिं कविं क्रांतकर्माणं पर्जन्यक्रंद्यं पर्जन्यसदृशक्रंदनं सहः सहस्विनं वाडवमग्निं हुवे । यामि । अन्यन्नतं ॥ ॥९॥

आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससं ॥६॥

आ । सवं । सवितुः । यथा । भगस्यऽइव । भुजिं । हुवे । अग्निं । समुद्रऽवाससं ॥६॥

सवितुः प्रेरकस्य देवस्य सवं यथा प्रसवमिव भगस्येव भुजिं भगाख्यस्य देवस्य भोगमिव च समुद्रवासमग्निं हुवे । आह्वयामि ॥

अग्निं वो वृधंतमध्वराणां पुरुतमं । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥७॥

अग्निं । वः । वृधंतं । अध्वराणां । पुरुऽतमं । अच्छ । नप्त्रे । सहस्वते ॥७॥

अध्वराणामहिंसानां बलिनां नप्त्रे बंधुं सहस्वते बलवंतं ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ वृधंतं ज्वालाभिर्वर्धमानं पुरुतममतिशयेन बहुमग्निमृत्विजो वो यूयमच्छ । अभिगच्छत ॥

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥८॥

अयं । यथा । नः । आऽभुवत् । त्वष्टा । रूपाऽइव । तक्ष्या । अस्य । क्रत्वा । यशस्वतः ॥८॥

अयमग्निर्नोऽस्मांस्तक्ष्या विकर्तव्यानि रूपेव त्वष्टा रूपाणि वर्धकिरिव यथा येन प्रकारेणाभुवत् आभवति तथैनमग्निमभिगच्छतेत्यर्थः । किंच वयमस्याग्नेः क्रत्वा प्रज्ञानेन युक्ता यशस्वतो यशस्वंतो भवेमेति शेषः ॥

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥९॥

अयं । विश्वाः । अभि । श्रियः । अग्निः । देवेषु । पत्यते । आ । वाजैः । उप । नः । गमत् ॥९॥

मनुष्याणां विश्वाः सर्वाः श्रियः संपदो देवेषु देवानां मध्ये योऽयमग्निरभि पत्यते अभिगच्छति सोऽग्निर्नोऽस्मानपि वाजैरन्नैरुपा गमत् । उपागच्छतु ॥

विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमं । अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं ॥१०॥

विश्वेषां । इह । स्तुहि । होतॄणां । यशःऽतमं । अग्निं । यज्ञेषु । पूर्व्यं ॥१०॥

विश्वेषां सर्वेषां होतॄणां मध्ये यशस्तमं यशस्वितमं यज्ञेषु पूर्व्यं मुख्यमग्निमिहास्मदीये यज्ञे हे स्तोतः स्तुहि ॥ ॥१०॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ॥११॥

शीरं । पावकऽशोचिषं । ज्येष्ठः । यः । दमेषु । आ । दीदाय । दीर्घश्रुत्ऽतमः ॥११॥

ज्येष्ठो देवानां मुख्यो दीर्घश्रुत्तमोऽतिशयेन विद्वानग्निर्दमेषु यज्वनां गृहेष्वा दीदाय । आदीप्यते । तं शीरमनुशायिनं । तथा च यास्कः । अनुशायिनमिति वाशिनमिति वा । नि॰ ४. १४. । इति । पावकशोचिषं पावकदीप्तिं स्तुहीत्यर्थः ॥

तमर्वंतं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणं । मित्रं न यातयज्जनं ॥१२॥

तं । अर्वंतं । न । सानसिं । गृणीहि । विप्र । शुष्मिणं । मित्रं । न । यातयत्ऽजनं ॥१२॥

हे विप्र मेधाविन् स्तोतः अर्वंतं नाश्वमिव सानसिं संभजनीयं शुष्मिणं बलिनं मित्रं न सखायमिव यातयज्जनं हतशत्रुजनं तमग्निं गृणीहि । स्तुहि ॥

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥१३॥

उप । त्वा । जामयः । गिरः । देदिशतीः । हविःऽकृतः । वायोः । अनीके । अस्थिरन् ॥१३॥

हे अग्ने हविष्कृतो यजमानार्थं गिरः स्तुतयो जामयः स्वसार इव देदिशतीस्तव गुणान्दिशंत्यस्त्वा त्वामुपतिष्ठंते । वायोरनीके समीपे त्वां समेधयंत्योऽस्थिरन् । अतिष्ठंश्च ॥

यस्यं त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनं। आपश्चिन्नि दधा पदं ॥१४॥

यस्यं। त्रिऽधातुं। अवृतं। बर्हिः। तस्थौ। असंऽदिनं। आपः। चित्। नि। दध। पदं ॥१४॥

यस्याग्नेस्त्रिधातु त्रिरवृतमनावृतं चासंदिनमबद्धं च। स्तरणकाले हि बर्हिरबद्धं भवति। बर्हिस्तस्थौ आसनार्थं तिष्ठति तस्मिन्नग्नावापश्चिदापोऽपि पदं नि दध। निदधति। आंतरिक्ष्या माध्यमिके पदं निदधतीत्यर्थः ॥

पदं देवस्यं मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः। भद्रा सूर्यं इवोपदृक् ॥१५॥

पदं। देवस्यं। मीळ्हुषः। अनाधृष्टाभिः। ऊतिऽभिः। भद्रा। सूर्यःऽइव। उपऽदृक् ॥१५॥

मीळ्हुषः कामानां सेक्तुर्देवस्य द्योतमानस्याग्नेः पदं स्थानमनाधृष्टाभिः शत्रुभिरनाधृष्टाभिरूतिभी रक्षाभिर्भजनीयं भवतीत्यर्थः। तथैवास्योपदृगुपदृष्टिरपि सूर्य इव यथा सूर्यस्तद्वद्भद्रा मनुष्यैर्भजनीया भवति ॥ ॥११॥

अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१६॥

अग्ने। घृतस्यं। धीतिऽभिः। तेपानः। देव। शोचिषा। आ। देवान्। वक्षि। यक्षि। च ॥१६॥

हे देव द्योतमानाग्ने घृतस्य दीप्तिसाधनस्याज्यस्य धीतिभिर्निधानैस्तेपानस्तपञ्छोचिषा ज्वालया देवान् प्रत्या वक्षि। आवह। यक्षि। यज च ॥

तं त्वाजनंत मातरः कविं देवासो अंगिरः। हव्यवाहममर्त्यं ॥१७॥

तं। त्वा। अजनंत। मातरः। कविं। देवासः। अंगिरः। हव्यऽवाहं। अमर्त्यं ॥१७॥

हे अंगिरोऽग्ने कविं क्रांतकर्माणममर्त्यं मरणरहितं हव्यवाहं हविषां वोढारं तं प्रसिद्धं त्वा त्वां देवासो देवा मातर इवाजनंत। जनयंति ॥

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यं। हव्यवाहं नि षेदिरे ॥१८॥

प्रऽचेतसं। त्वा। कवे। अग्ने। दूतं। वरेण्यं। हव्यऽवाहं। नि। सेदिरे ॥१८॥

हे कवे क्रांतकर्मन्नग्ने प्रचेतसं प्रकृष्टबुद्धिं वरेण्यं वरणीयं दूतं देवानां हव्यवाहं हविषां वोढारं त्वा त्वां नि षेदिरे। देवा निषीदंति ॥

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति। अथैतादृग्भरामि ते ॥१९॥

नहि। मे। अस्ति। अघ्न्या। न। स्वऽधितिः। वनन्ऽवति। अथ। एतादृक्। भरामि। ते ॥१९॥

हे अग्ने मे मम भार्गवस्य प्रयोगस्थैर्षेरघ्न्या गौः। अघ्न्योस्रेति गोनामसु पाठात्। नह्यस्ति न विद्यते यस्याः पयसाज्येन च त्वां यजेय। किंच स्वधितिर्नहि वनन्वति काष्ठानि हंति यैः काष्ठैस्त्वां समिंधीय। अथैतादृगग्निहोत्रार्थं पयसो दोग्ध्रीं गामिंधनसाधनानि चैतत्सर्वं ते तुभ्यमहं भरामि ॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥२०॥

यत् । अग्ने । कानि । कानि । चित् । आ । ते । दारूणि । दध्मसि । ता । जुषस्व । यविष्ठ्य ॥२०॥

पूर्वस्यामृच्युक्तस्यैवार्थस्य विवरणमत्र । हे यविष्ठ्य युवतमाग्ने तुभ्यं यद्यदा कानि कानि चिद्यानि कान्यपि दारूणि काष्ठान्या दध्मसि आधारयामि तदा ता तान्यपरशुवृक्णान्यपि जुषस्व । सेवस्व । तथा च यजुर्ब्राह्मणं । न ह स्म वै पुराग्निरपरशुवृक्णं दहति तदस्मै प्रयोग एवर्षिरस्वदयद्यदग्ने यानि कानि चेति समिधमादधात्य-परशुवृक्णमेवास्मै स्वदयति सर्वमस्मै स्वदते । तै॰ सं॰ ५. १. १०. १. । इति ॥

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं ॥२१॥

यत् । अत्ति । उपऽजिह्विका । यत् । वम्रः । अतिऽसर्पति । सर्वं । तत् । अस्तु । ते । घृतं ॥२१॥

हे अग्ने यत्काष्ठादिकमुपजिह्विका । उपजिघ्रतीत्युपजिह्विका । अत्ति भक्षयति । यच्च काष्ठादिकं वम्रः । वमत्युदकमिति वम्रः । उपजिह्विकावम्रशब्दौ यद्यपि पर्यायौ तथापि पृथगुपादानाद्वम्रशब्दस्तद्विशेषे पर्य-वस्यति । सोऽप्यतिसर्पति अतिगच्छति । तत्सर्वं ते तव घृतं घृतसदृशमस्तु । यथा घृतं तव प्रियकरं भवति तथा प्रियकरं भवत्वित्यर्थः ॥

अग्निमिंधानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमीधे विवस्वभिः ॥२२॥

अग्निं । इंधानः । मनसा । धियं । सचेत । मर्त्यः । अग्निं । ईधे । विवस्वऽभिः ॥२२॥

मर्त्यो मनुष्योऽग्निमिंधानः काष्ठैः प्रज्वलयन् मनसैव श्रद्दधानो धियं कर्म सचेत । कालै भजेत । विवस्व-भिर्ऋत्विग्भिश्चाग्निमेवेधे । प्रज्वलति ॥ ॥१२॥

अदर्शीति चतुर्दशर्चं दशमं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षं । अत्रानुक्रम्यते । अदर्शि षळूना सोभरिर्बार्हतं पंचम्याद्ययुजः सतोबृहत्योऽष्टम्यादि युजः ककुब्गायत्री ककुबनुष्टुबंत्याग्निमारुतीति । पंचमीसप्तमीनवम्येकाद-शीत्रयोदश्यः पंच सतोबृहत्यः । अष्टमीद्वादश्यौ ककुभौ दशमो गायत्री चतुर्दश्यनुष्टुप् शिष्टा बृहत्यः । आग्नेयं त्वित्युक्तत्वादग्निर्देवता । अंत्यायास्त्वग्निर्मरुतश्च ॥ प्रातरनुवाकस्याग्नेये क्रतौ बार्हते छंदस्यादितः सप्तर्चः । सूत्रितं च । अदर्शि गातुवित्तम इति सप्तेति बार्हतं । आ॰ ४. १३. ॥ आभिप्लविकेषूक्थ्येषु मैत्रावरुणस्य वैकल्पिकः स्तोत्रियस्तृचः । सूत्रितं च । मा चिदग्ने याहि मरुत्सखा यत्ते राजन्नम इति ॥

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षंत नो गिरः ॥१॥

अदर्शि । गातुवित्ऽतमः । यस्मिन् । व्रतानि । आऽदधुः ।
उपो इति । सु । जातं । आर्यस्य । वर्धनं । अग्निं । नक्षंत । नः । गिरः ॥१॥

यस्मिन्नग्नौ व्रतानि कर्माण्यादधुः यजमाना आदधन् गातुवित्तमोऽतिशयेन मार्गाणां ज्ञाता सोऽग्निर-दर्शि । प्रादुरभूत् । किंच सु जातं सम्यक्प्रादुर्भूतमस्यार्यस्योत्तमवर्णस्य वर्धनं वर्धयितारमग्निं नोऽस्माकं गिरः स्तुतिरूपा वाच उपो नक्षंत । उपगच्छंत्येव ॥ नक्ष गताविति धातुः ॥

प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥

प्र । दैवःऽदासः । अग्निः । देवान् । अच्छ । न । मज्मना ।

अनु । मातरं । पृथिवीं । वि । ववृते । तस्थौ । नाकस्य । सानवि ॥२॥

दैवोदासो दिवोदासेनाहूयमानोऽग्निर्मातरं । सर्वस्य लोकस्य धारणवत्त्वात्पृथिवी माता । तां पृथिवीमच्छ प्रति देवांस्तस्य दिवोदासस्य यज्ञे देवाननु प्रति हविर्वोढुं न प्र वि वावृते । यस्मादेनमग्निं दिवोदासो मज्मना बलेनाजुहाव तस्मादयमग्निर्नाकस्य स्वर्गस्य सानवि समुच्छ्रिते देशे स्वायतन एव तस्थौ । अतिष्ठत् ॥

यस्माद्रेजंत कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥३॥

यस्मात् । रेजंत । कृष्टयः । चर्कृत्यानि । कृण्वतः ।

सहस्रऽसां । मेधसातौऽइव । त्मना । अग्निं । धीभिः । सपर्यत ॥३॥

यस्मात्कारणाच्चर्कृत्यानि कर्तव्यानि कर्माणि कृण्वतः कुर्वाणान्मनुष्यान् कृष्टय इतरे मनुष्या रेजंते कंपंते तस्मादिदानीं हे जनाः यूयं सहस्रसां गवां धनानां च सहस्रस्य दातारमग्निं मेधसातौ यज्ञे धीभिः कर्तव्यैः कर्मभिस्त्मनात्मनैव सपर्यत । परिचरत ॥

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणं ॥४॥

प्र । यं । राये । निनीषसि । मर्तः । यः । ते । वसो इति । दाशत् ।

सः । वीरं । धत्ते । अग्ने । उक्थऽशंसिनं । त्मना । सहस्रऽपोषिणं ॥४॥

हे वसो वासकाग्ने त्वं यं तव स्तोतारं राये धनार्थं प्र निनीषसि प्रनेतुमिच्छसि यश्च मर्तो मनुष्यस्ते तुभ्यं दाशत् हवींषि प्रयच्छति स मनुष्य उक्थशंसिनमुक्थानां शंसितारं त्मनात्मनैव सहस्रपोषिणं बहुधनं वीरं पुत्रं धत्ते । धारयति ॥

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥५॥

सः । दृळ्हे । चित् । अभि । तृणत्ति । वाजं । अर्वता । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः ।

त्वे इति । देवऽत्रा । सदा । पुरुवसो इति पुरुऽवसो । विश्वा । वामानि । धीमहि ॥५॥

हे पुरूवसो बहुधनाग्ने यस्तुभ्यं हवींषि प्रयच्छति स यजमानो दृळ्हे चिद्दृढेऽपि शत्रुपुरे स्थितं वाजमन्नमर्वताश्वेनाभि तृणत्ति । हिनस्ति । यथा स यजमानोऽक्षित्यक्षीणं श्रवोऽन्नं धत्ते धारयति । तथा च सति तुभ्यं हविषां प्रदातारो वयमपि देवत्रा देवे त्वे त्वयि स्थिता विश्वा सर्वाणि वामानि वननीयानि धनानि सदा सर्वदा धीमहि । धारयामः ॥ ॥१३॥

यो विश्वा दयते वसु होता मंद्रो जनानां ।

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यंत्यग्नये ॥६॥

यः । विश्वा । दयते । वसु । होता । मंद्रः । जनानां ।
मधोः । न । पात्रा । प्रथमानि । अस्मै । प्र । स्तोमाः । यंति । अग्नये ॥६॥

होता देवानामाह्वाता मंद्रो मोदमानो योऽग्निर्विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि जनानां जनेभ्यो दयते प्रयच्छति तस्मा अस्मा अग्नये मधोर्न मदकरस्य सोमस्येव प्रथमानि मुख्यानि पात्राणि स्तोमाः प्र यंति । प्रगच्छंति ॥

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यंते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनां ॥७॥
अश्वं । न । गीःऽभिः । रथ्यं । सुऽदानवः । मर्मृज्यंते । देवऽयवः ।
उभे इति । तोके इति । तनये । दस्म । विश्पते । पर्षि । राधः । मघोनां ॥७॥

हे दस्म दर्शनीय विश्पते विशां पतेऽग्ने यं त्वां सुदानवः शोभनदाना देवयवो देवानात्मन इच्छंतो यजमाना रथ्यं रथस्य वोढारमश्वं नाश्वमिव गीर्भिः स्तुतिभिर्मर्मृज्यंते परिचरंति स त्वमस्माकं यजमानानां तोके पुत्रे तनये पौत्रे चोभे उभयस्मिन्मघोनां धनवतां रायो धनं पर्षि । प्रयच्छ ॥

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋतावे बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥८॥
प्र । मंहिष्ठाय । गायत । ऋतऽव्ने । बृहते । शुक्रऽशोचिषे । उपऽस्तुतासः । अग्नये ॥८॥

हे यूयमुपस्तुतास उपस्तोतारः मंहिष्ठाय दातृतमायर्तावे यज्ञवते सत्यवते वा बृहते महते शुक्रशोचिषे दीप्ततेजसेऽग्नये स्तोत्रं पठत ॥

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥९॥
आ । वंसते । मघऽवा । वीरऽवत् । यशः । संऽइद्धः । द्युम्नी । आऽहुतः ।
कुवित् । नः । अस्य । सुऽमतिः । नवीयसी । अच्छ । वाजेभिः । आऽगमत् ॥९॥

मघवा धनवान् द्युम्न्यन्नवान् यशस्वी वा । तथा च यास्कः । द्युम्नं द्योततिर्यशो वान्नं वा । नि॰ ५. ५. । इति । यशो यशस्करमन्नमा वंसते । यजमानेभ्य आ प्रयच्छति । अस्याग्नेर्नवीयसी नवतरा सुमतिरनुग्रहबुद्धिर्नोऽस्मानच्छ प्रति वाजेभिरन्नैः सह कुविद्बहुवारं । सलिलं कुविदिति बहुनामसु पाठात् । आगमत् । आगच्छतु ॥

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिं । अग्निं रथानां यमं ॥१०॥
प्रेष्ठं । ऊं इति । प्रियाणां । स्तुहि । आऽसाव । अतिथिं । अग्निं । रथानां । यमं ॥१०॥

हे आसाव स्तोतः प्रियाणां प्रेष्ठं प्रियतममतिथिमभ्यागतं रथानां यमं यंतारमग्निमेव स्तुहि ॥ ॥१४॥

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥११॥

उत्ऽइंता । यः । निऽदिंता । वेदिंता । वसुं । आ । यज्ञियः । ववर्तति ।
दुस्तराः । यस्यं । प्रवणे । न । ऊर्मयः । धिया । वाजं । सिसांसतः ॥११॥

वेदिता वेत्ता यज्ञियो यज्ञार्हो योऽग्निरुदितोदितान्युन्नतानि निदिता निदितानि श्रुतानि च वसु वसूनि धनान्या ववर्तति आवर्तयति । धिया कर्मणा वाजं संग्रामं सिषासतः संभक्तुमिच्छतो यस्य चाग्नेर्ज्वालाः प्रवणे नोर्मयः प्रवणाभिमुखाः समुद्रस्य तरंगा इव दुष्टरास्तर्तुमशक्याः । तमग्निं हे स्तोतः स्तुहीत्यर्थः ॥

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः ॥१२॥
मा । नः । हृणीतां । अतिथिः । वसुः । अग्निः । पुरुऽप्रशस्तः । एषः । यः । सुऽहोता ।
सुऽअध्वरः ॥१२॥

वसुर्वासकोऽतिथिरतिथिवत्प्रियः पुरुप्रशस्तो बहुभिः स्तुतः सुहोता सुष्ठु देवानामाह्वाता स्वध्वरः सुयज्ञश्च योऽग्निः स एषोऽग्निर्नोऽस्मभ्यं मा हृणीतां । केनापि न रुध्यतां । केनाप्यनवरुद्धः सन्नग्निरस्मभ्यमभीष्टं प्रयच्छत्वित्यर्थः ॥

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।
कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥१३॥
मो इति । ते । रिषन् । ये । अच्छोक्तिऽभिः । वसो इति । अग्ने । केभिः । चित् । एवैः ।
कीरिः । चित् । हि । त्वां । ईट्टे । दूत्याय । रातऽहव्यः । सुऽअध्वरः ॥१३॥

हे वसो वासकाग्ने त्वां ये मनुष्या अच्छोक्तिभिरभिष्टुतिभिः केभिः कैः सुखकरैरेवैश्चिदभिगमनैरपि ते स्तोतारो मो रिषन् । मैव हिंसंतां । रातहव्यो दत्तहविष्कः कीरिश्चित् स्तोतापि दूत्याय हविर्वहनादिलक्षणाय दूतकर्मणि त्वामीट्टे हि । स्तौति खलु ॥

आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥
आ । अग्ने । याहि । मरुत्ऽसखा । रुद्रेभिः । सोमऽपीतये ।
सोभर्याः । उप । सुऽस्तुतिं । मादयस्व । स्वःऽनरे ॥१४॥

हे अग्ने मरुत्सखा मरुतां प्रियस्त्वं स्वर्णरेऽस्माकं यजनलक्षणे कर्मणि सोमपीतये सोमपानाय रुद्रेभी रुद्रैर्मरुद्भिः सहा याहि । आगच्छ । सोभर्याः सोभरेर्मम सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं चोपागच्छ । मादयस्व । स्तुतिं श्रुत्वा सोमं पीत्वात्मानं मादय च ॥ ॥१५॥

॥ इत्यष्टमे मंडले दशमोऽनुवाकः समाप्तं चाष्टमं मंडलं ॥

॥ अथ नवमं मंडलं ॥

नवमे मंडले सप्तानुवाकाः। तत्र प्रथमेऽनुवाके चतुर्विंशतिसंख्याकानि सूक्तानि। तत्र स्वादिष्ठयेति दशर्चं प्रथमं सूक्तं। अत्रानुक्रम्यते। स्वादिष्ठया दश मधुच्छंदा इति। वैश्वामित्रो मधुच्छंदा ऋषिः। प्राग्वत्सप्रीयपरिभाषया गायत्री छंदः। नवमं मंडलं पावमानं सौम्यमिति वचनात् पवमानगुणविशिष्टः सोमो देवता॥ ग्रावस्तोत्रेऽर्बुदसूक्तस्य प्रागुत्तमाया इदमादिकं सर्वं पावमानं विकल्पेनावपनीयं। सूचितं च। प्रैते वदंत्वित्यर्बुदं प्रागुत्तमाया आ व ऋंजसे प्र वो ग्रावाण इति सूक्तयोरंतरोपरिष्टात्पुरस्ताद्वा पावमानीरोप्य यथार्थमा वा ग्रहग्रहणात्। आ॰ ५. १२.। इति॥ उपाकर्मणि मंडलादिग्रहण आद्या। सूत्रं पूर्वमेवोदाहृतं॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इंद्राय पातवे सुतः॥१॥

स्वादिष्ठया। मदिष्ठया। पवस्व। सोम। धारया। इंद्राय। पातवे। सुतः॥१॥

हे सोम इंद्राय पातवे पातुं सुतोऽभिषुतस्त्वं स्वादिष्ठया स्वादुतमया मदिष्ठयातिशयेन मादयित्र्या धारया पवस्व। चर॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतं। द्रुणा सधस्थमासदत्॥२॥

रक्षःऽहा। विश्वऽचर्षणिः। अभि। योनिं। अयःऽहतं। द्रुणा। सधऽस्थं। आ। असदत्॥२॥

रक्षोहा रक्षसां हंता विश्वचर्षणिर्विश्वस्य द्रष्टा सोमोऽयोहतं हिरण्येन हतं। तथा च ब्राह्मणं। हिरण्यपाणिरभिषुणोतीति। द्रुणा द्रोणकलशेनाधिषवणफलकाभ्यां वा सधस्थं सहस्थानं योनिमभिषवस्थानमभ्यासदत्। अभ्यासीदति॥

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहंतमः। पर्षि राधो मघोनां॥३॥

वरिवःऽधातमः। भव। मंहिष्ठः। वृत्रहन्ऽतमः। पर्षि। राधः। मघोनां॥३॥

हे सोम त्वं वरिवोधातमोऽतिशयेन धनानां दाता भव। वेदो वरिव इति धननामसु पाठात्। मंहिष्ठो दातृतमश्च भव। सर्वदातृत्वमत्रोच्यत इत्यपुनरुक्तिः। वृत्रहंतमोऽतिशयेन शत्रूणां हंता भव। किंच मघोनां धनवतां शत्रूणां राधो धनं च पर्षि। अस्मभ्यं प्रयच्छ॥

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमंधसा। अभि वाजमुत श्रवः॥४॥

अभि। अर्ष। महानां। देवानां। वीतिं। अंधसा। अभि। वाजं। उत। श्रवः॥४॥

हे सोम त्वं महानां महतां देवानां वीतिं यज्ञमंधसा धानाद्यन्नेन सहाभ्यर्ष। अभिगच्छ। उतापि चाभिगच्छंस्त्वं वाजं बलं श्रवोऽन्नं चाभिगमयास्मानित्यर्थः॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे। इंदो त्वे न आशसः॥५॥

त्वां। अच्छ। चरामसि। तत्। इत्। अर्थं। दिवेऽदिवे। इंदो इति। त्वे इति। नः। आऽशसः॥५॥

हे इंदो यागेषु क्रियमाण सोम त्वामच्छ त्वां प्रति चरामसि। वयं चरामः। दिवेदिवे प्रतिदिनमस्माकं

तदित्तदेव तत्परिचरणमेवार्थं कार्यं नान्यत्कार्यमस्ति । गोऽस्माकमाशस आशंसनान्यपि त्वे त्वय्येव नान्यत्र ॥ ॥१६॥

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥६॥
पुनाति । ते । परिऽस्रुतं । सोमं । सूर्यस्य । दुहिता । वारेण । शश्वता । तना ॥६॥

हे सोम ते तव परिस्रुतं चरंतं सोमं सोमरसं सूर्यस्य दुहिता श्रद्धा देवी वारेण वालेन शश्वता शाश्वतेन तना विस्तृतेन पुनाति । तथा च वाजसनेयिन आमनंति । श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता श्रद्धा ह्येनं पुनातीति ॥

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णंति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥७॥
तं । ईं । अण्वीः । सऽमर्ये । आ । गृभ्णंति । योषणः । दश । स्वसारः । पार्ये । दिवि ॥७॥

समर्ये समनुष्ये यज्ञे पार्ये दिवि सौत्येऽहनि योषणः स्त्रियः स्वसारः स्वयं सरंत्यो दशसंख्याका अण्वी-रण्व्योऽंगुलयः । अण्वोऽण्व्य इत्यंगुलिनामसु पाठात् । तमीं तमेतं सोममा गृभ्णंति । आगृह्णंति ॥

तमीं हिन्वंत्यग्रुवो धमंति बाकुरं दृतिं । त्रिधातु वारणं मधु ॥८॥
तं । ईं । हिन्वंति । अग्रुवः । धमंति । बाकुरं । दृतिं । त्रिऽधातु । वारणं । मधु ॥८॥

तमीमेनं सोममग्रुवोऽंगुलयो हिन्वंति । अभिषवदेशं प्रति प्रेरयंति । प्रेरयित्वा च बाकुरं भासमानं दृतिं दृतिसदृशांशुमेनं सोमं धमंति । अभिषुण्वंति । यद्यपि धमतिरभिषवकर्मा न भवति तथाप्यौचित्यादत्राभिषवपरो भविष्यति । तदेतत्सोमात्मकं मधु वस्तु त्रिधातु त्रिस्थानं । द्रोणकलश आधवनीयः पूतभृदिति त्रिधातवः । वारणं शत्रूणां वारकं च भवति ॥

अभीडममघ्न्या उत श्रीणंति धेनवः शिशुं । सोममिंद्राय पातवे ॥९॥
अभि । इमं । अघ्न्याः । उत । श्रीणंति । धेनवः । शिशुं । सोमं । इंद्राय । पातवे ॥९॥

उतापि चेममेनं शिशुं बालं सोममघ्न्या अहंतव्या धेनवो गाव इंद्राय पातवे पातुमभि श्रीणंति । स्वकीयेन पयसा संस्कुर्वंतीत्यर्थः ॥

अस्येदिंद्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते ॥१०॥
अस्य । इत् । इंद्रः । मदेषु । आ । विश्वा । वृत्राणि । जिघ्नते । शूरः । मघा । च । मंहते ॥१०॥

शूरो वीर इंद्रोऽस्येदस्य सोमस्यैव मदेषु विश्वा विश्वानि वृत्राणि शत्रूना जिघ्नते । आहंति । मघा मघानि धनानि च मंहते । यजमानेभ्यः प्रयच्छति ॥ ॥१७॥

पवस्वेति दशर्चं द्वितीयं सूक्तं काण्वस्य मेधातिथेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । पवस्व मेधातिथिरिति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इंद्रमिंदो वृषा विश ॥१॥
पवस्व । देवऽवीः । अति । पवित्रं । सोम । रंह्या । इंद्रं । इंदो इति । वृषा । आ । विश ॥१॥

हे सोम देववीर्देवकामस्त्वं रंह्या वेगेन पवित्रं यथा भवति तथाति पवस्व । अतिचर । किंच हे इंदो वृषा सेचकस्त्वमिंद्रमा विश । प्रविश ॥

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेंदो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥

आ । वच्यस्व । महि । प्सरः । वृषा । इंदो इति । द्युम्नवत्ऽतमः । आ । योनिं ।
धर्णसिः । सदः ॥२॥

हे इंदो सोम महि महान्वृषा कामानां वर्षको द्युम्नवत्तमो यशस्वितमो धर्णसिर्धर्ता त्वं प्सरः पानीयमंध आ वच्यस्व । अस्मान्प्रत्यागमय । योनिं स्वकीयं स्थानमा सदः । आसीद च ॥

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३॥

अधुक्षत । प्रियं । मधु । धारा । सुतस्य । वेधसः । अपः । वसिष्ट । सुऽक्रतुः ॥३॥

सुतस्याभिषुतस्य वेधसोऽभिलषितस्य विधातुर्यस्य सोमस्य धारा प्रियं प्रीतिकरं मध्वमृतमधुक्षत दुग्धे स सुक्रतुः सुकर्मा सोमोऽपो वसतीवरीर्वसिष्ट । आच्छादयति ॥

महांतं त्वा महीरन्वापो अर्षंति सिंधवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

महांतं । त्वा । महीः । अनु । आपः । अर्षंति । सिंधवः । यत् । गोभिः । वासयिष्यसे ॥४॥

हे सोम त्वं यद्यदा यत्र गोभिर्गोविकारैः पयोभिर्वासयिष्यसे आच्छादयिष्यसे तत्तदा महांतं त्वामनु प्रति सिंधवः स्यंदमाना महीर्महत्य आपोऽर्षंति । गच्छंति ॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टंभो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

समुद्रः । अप्ऽसु । ममृजे । विष्टंभः । धरुणः । दिवः । सोमः । पवित्रे । अस्मऽयुः ॥५॥

समुद्रः । समुद्रवंत्यस्माद्रसा इति समुद्रः । विष्टंभो दिवः स्वर्गस्य धरुणो धारकश्चास्मयुरस्मत्कामः सोमोऽप्सूदकेषु ममृजे । मृज्यते । पवित्रेऽभिषिच्यत इत्यर्थः ॥ ॥१८॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥६॥

अचिक्रदत् । वृषा । हरिः । महान् । मित्रः । न । दर्शतः । सं । सूर्येण । रोचते ॥६॥

वृषा कामानां वर्षको हरिर्हरितवर्णो महान् सर्वोत्तमो मित्रो न यथा सखा तद्वद्दर्शतो दर्शनीयो योऽयं सोमोऽचिक्रदत् शब्दं करोति सोऽयं सोमः सूर्येण सह रोचते । दिवि प्रकाशते ॥

गिरस्त इंद ओजसा मर्मृज्यंते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुंभसे ॥७॥

गिरः । ते । इंदो इति । ओजसा । मर्मृज्यंते । अपस्युवः । याभिः । मदाय । शुंभसे ॥७॥

हे इंदो ते तवौजसा बलेनापस्युवः कर्मेच्छासंबंधिन्यस्ता गिरः स्तुतयो मर्मृज्यंते शोध्यंते याभिर्गीर्भिस्त्वं मदाय चरञ्शुंभसे अलंक्रियसे ॥

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥८॥

तं । त्वा । मदाय । घृष्वये । ऊं इति । लोकऽकृत्नुं । ईमहे । तव । प्रऽशस्तयः । महीः ॥८॥

हे सोम यस्य तव प्रशस्तयः प्रशंसा महीर्महत्यो घृष्वय उ त्वत्प्रसादाच्छत्रूणां घर्षणशीलाय यजमानायैव लोककृत्नुमुत्तमस्य लोकस्य कर्तारं तं त्वां सोमं मदायेमहे । वयं याचामहे ॥

अस्मभ्यमिंदविंद्रयुर्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥९॥

अस्मभ्यं । इंदो इति । इंद्रऽयुः । मध्वः । पवस्व । धारया । पर्जन्यः । वृष्टिमान्ऽइव ॥९॥

हे इंदो सोम इंद्रयुरिंद्रकामस्त्वं मध्वो मदकरस्यामृतस्य धारया पर्जन्यो वृष्टिमानिव यथा वर्षवान्पर्जन्यो मेघस्तथास्मभ्यं मेधातिथिभ्यः पवस्व । चर ॥

गोषा इंदो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥१०॥

गोऽसाः । इंदो इति । नृऽसाः । असि । अश्वऽसाः । वाजऽसाः । उत । आत्मा । यज्ञस्य । पूर्व्यः ॥१०॥

हे इंदो यज्ञस्य पूर्व्यः प्रत्न आत्मात्मभूतस्त्वं गोषा अस्मभ्यं गवां दातासि । भवसि । नृषाः पुत्राणां दाता चासि । अश्वसा अश्वानां दाता चासि । उतापि च वाजसा अन्नानां दाता चासि ॥ ॥१९॥

एष देव इति दशर्चं तृतीयं सूक्तमाजीगर्तेः शुनःशेपस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । अनुक्रांतं च । एष शुनःशेप इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदं ॥१॥

एषः । देवः । अमर्त्यः । पर्णवीःऽइव । दीयति । अभि । द्रोणानि । आऽसदं ॥१॥

देवो द्योतमानोऽमर्त्यो मरणरहित एष सोमो द्रोणानि द्रोणकलशान्यभ्यभिलक्ष्यासदमासदनार्थं पर्णवीरिव यथा पक्षी तथा वेगेन दीयति । गच्छति ॥

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥२॥

एषः । देवः । विपा । कृतः । अति । ह्वरांसि । धावति । पवमानः । अदाभ्यः ॥२॥

विपांगुल्या । अथर्यो विप इत्यंगुलिनामसु पाठात् । कृतोऽभिषुत एष सोमो देवः पवमानः क्षरन्नदाभ्यः केनाप्यहिंसितश्च सन् ह्वरांसि शत्रूनति धावति । हंतुमभिगच्छति ॥

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥३॥

एषः । देवः । विपन्युऽभिः । पवमानः । ऋतयुऽभिः । हरिः । वाजाय । मृज्यते ॥३॥

पवमानः क्षरन्नेष सोमो देवो विपन्युभिः स्तोतृभिर्ऋतायुभिर्यज्ञकामैर्हरिरश्व इव वाजाय संग्रामार्थं मृज्यते । स्तुतिभिरलंक्रियते ॥

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥४॥

एषः । विश्वानि । वार्या । शूरः । यन्ऽइव । सत्वऽभिः । पवमानः । सिसासति ॥४॥

पवमानः क्षरञ्छूरो वीर एष सोमो देवो विश्वानि सर्वाणि वार्या वरणीयानि धनानि सत्वभिर्बलैर्यन्निव गच्छन्निव सिषासति । अस्मदर्थं संभक्तुमिच्छति ॥

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुं ॥५॥

एषः । देवः । रथर्यति । पवमानः । दशस्यति । आविः । कृणोति । वग्वनुं ॥५॥

पवमानः चरन्नेष सोमो देवो रथर्यति। अस्मदीयं यागं प्रत्यागमनाय रथं कामयते। दशस्यति। आगत्य चास्मभ्यमभिलषितं प्रयच्छति। वग्वनुं शब्दमाविष्कृणोति। अभिषूयमाणः प्रकटयति॥ ॥२०॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते। दधद्रत्नानि दाशुषे॥६॥

एषः। विप्रैः। अभिऽस्तुतः। अपः। देवः। वि। गाहते। दधत्। रत्नानि। दाशुषे॥६॥

विप्रैर्मेधाविभिः स्तोतृभिरभिष्टुतः परितः स्तुत एष सोमो देवो दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि दधद्धारयन्प्रयच्छन्नपो वसतीवरीर्वि गाहते। प्रविशति॥

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया। पवमानः कनिक्रदत्॥७॥

एषः। दिवं। वि। धावति। तिरः। रजांसि। धारया। पवमानः। कनिक्रदत्॥७॥

धारया पवमानः चरन्नेष सोमः कनिक्रदद्भिषूयमाणः शब्दं कुर्वन्रजांसि लोकांस्तिरस्तिरस्कुर्वन्व्यागाद्दिवं स्वर्गं वि धावति। गच्छति॥

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः। पवमानः स्वध्वरः॥८॥

एषः। दिवं। वि। आ। असरत्। तिरः। रजांसि। अस्पृतः। पवमानः। सुऽअध्वरः॥८॥

पवमानः चरन्नेष सोमः स्वध्वरः सुयज्ञोऽस्पृतः केनाप्यहिंसितश्च सन्रजांसि लोकांस्तिरस्तिरस्कुर्वन्यज्ञाद्दिवं प्रति व्यासरत्। विसरति। गच्छति॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति॥९॥

एषः। प्रत्नेन। जन्मना। देवः। देवेभ्यः। सुतः। हरिः। पवित्रे। अर्षति॥९॥

हरिर्हरितवर्णो देवो द्योतमान एष सोमः प्रत्नेन पुराणेन जन्मना जननेन देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिषुतः सन् पवित्रे स्थातुमर्षति। गच्छति॥

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः। धारया पवते सुतः॥१०॥

एषः। ऊं इति। स्यः। पुरुऽव्रतः। जज्ञानः। जनयन्। इषः। धारया। पवते। सुतः॥१०॥

स्य एष उ सोम एव पुरुव्रतो बहुकर्मा जज्ञानो जायमान एवेषोऽन्नानि जनयन्नुत्पादयन् सुतोऽभिषुतः सन धारया पवते। चरति॥ ॥२१॥

सना चेति दशर्चं चतुर्थं सूक्तमांगिरसकुलस्य हिरण्यस्तूपस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। अनुक्रांतं च। सन हिरण्यस्तूप इति॥ उक्तो विनियोगः॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः। अथा नो वस्यसस्कृधि॥१॥

सन। च। सोम। जेषि। च। पवमान। महि। श्रवः। अथ। नः। वस्यसः। कृधि॥१॥

हे महि श्रवो महदन्नं पवमान सोम सन। अस्मद्यागे यजनीयान्देवान्भज। जेषि च। यागविध्वंसकारिणो राक्षसांश्च जय। अथ देवान्प्राप्य राक्षसांश्च जित्वानंतरं नोऽस्मान्वस्यसः श्रेयसः कृधि। कुरु। श्रेयोऽस्मभ्यं देहीत्यर्थः॥

सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि॥२॥

सन। ज्योतिः। सन। स्वः। विश्वा। च। सोम। सौभगा। अथ। नः। वस्यसः। कृधि॥२॥

हे सोम त्वं ज्योतिस्तेजः सन । अस्मभ्यं प्रयच्छ । अपि च स्वः स्वर्गं सन । अस्मभ्यं देहि । विश्वा विश्वानि सौभगा सौभाग्यानि च सन । सिद्धमन्यत् ॥

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

सन । दक्षं । उत । क्रतुं । अप । सोम । मृधः । जहि । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥३॥

हे सोम त्वं दक्षं बलं सन । अस्मभ्यं देहि । उतापि च क्रतुं प्रज्ञानं सन । मृधो हिंसकाञ्छत्रूंश्चाप जहि । मारय । सिद्धमन्यत् ॥

पवीतारः पुनीतन सोममिंद्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

पवितारः । पुनीतन । सोमं । इंद्राय । पातवे । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥४॥

हे पवीतारः सोमाभिषवकर्तारः यूयमिंद्राय पातवे पातुं सोमं पुनीतन । अभिषुणुत । सिद्धमन्यत् ॥

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

त्वं । सूर्ये । नः । आ । भज । तव । क्रत्वा । तव । ऊतिऽभिः । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥५॥

हे सोम त्वं तव क्रत्वा तवोतिभिस्त्वत्कर्तृकेण कर्मणा त्वत्कर्तृकाभी रक्षाभिश्च नोऽस्मान् सूर्ये आ भज । प्रापय । सिद्धमन्यत् ॥ ॥२२॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यं । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

तव । क्रत्वा । तव । ऊतिऽभिः । ज्योक् । पश्येम । सूर्यं । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥६॥

हे सोम तव क्रत्वा प्रज्ञानेन तवोतिभी रक्षाभिश्च ज्योक् चिरं पश्येम सूर्यं । पश्याम । द्रक्ष्यामः । सिद्धमन्यत् ॥

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिं । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

अभि । अर्ष । सुऽआयुध । सोम । द्विऽबर्हसं । रयिं । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥७॥

हे स्वायुध शोभनायुध सोम त्वं द्विबर्हसं द्वयोर्द्यावापृथिव्योः स्थानयोः परिवृढं रयिं धनमभ्यर्ष । अस्मानभिगमय । सिद्धमन्यत् ॥

अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

अभि । अर्ष । अनपऽच्युतः । रयिं । समत्ऽसु । ससहिः । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥८॥

हे सोम समत्सु संग्रामेष्वनपच्युतः शत्रुभिरनाहतः सासहिः शत्रूणामभिभविता त्वं रयिं धनमभ्यर्ष । अस्मानभिगमय । सिद्धमन्यत् ॥

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

त्वां । यज्ञैः । अवीवृधन् । पवमान । विऽधर्मणि । अथ । नः । वस्यसः । कृधि ॥९॥

हे पवमान सोम यजमानानां विधारणाय प्रवृत्तं त्वां यज्ञैर्विधर्मणात्मविधारणार्थमवीवृधन् । यजमाना वर्धयंति । सिद्धमन्यत् ॥

रयिं नश्चित्रमश्विनमिंदो विश्वायुमा भर। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥
रयिं। नः। चित्रं। अश्विनं। इंदो इति। विश्वऽआयुं। आ। भर। अथ। नः। वस्यसः। कृधि ॥१०॥

हे इंदो यागेषु क्लिद्यमान सोम त्वं चित्रं नानाविधमश्विनमश्ववंतं च विश्वायुं सर्वगामिनं रयिं नोऽस्मभ्यमा भर। आहर। सिद्धमन्यत् ॥ ॥२३॥

समिद्ध इत्येकादशर्चं पंचमं सूक्तं काश्यपस्यासितस्य देवलस्य वार्षं। अष्टम्याद्यास्तस्रोऽनुष्टुभः शिष्टाः सप्त गायत्र्यः। नराशंसवर्जिताः समिदादयः क्रमेण प्रत्यृचं देवताः। तथा चानुक्रांतं। समिद्ध एकादश काश्यपोऽसितो देवलो वा विंशतिः सूक्तान्याद्यमाप्रियस्त्वतुरनुष्टुबंतमिति ॥ काश्यपस्य पावमानमिदमाप्रीसूक्तं। सूचितं च। समिद्धो अद्येति सर्वेषां यथर्षि वा। आ॰ ३. २.। इति ॥

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति। प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥१॥
संऽइद्धः। विश्वतः। पतिः। पवमानः। वि। राजति। प्रीणन्। वृषा। कनिक्रदत् ॥१॥

आप्रीवत्सोमस्तुतिरत्र। समिद्धः सम्यग्दीप्तो विश्वतस्पतिः सर्वतः स्वामी वृषा कामानां वर्षिता पवमानः सोमः कनिक्रदद्भिषूयमाणः शब्दं कुर्वन्प्रीणन्देवान्प्रीणयन्वि राजति। यागेषु प्रकाशते ॥

तनूनपात्पवमानः शृंगे शिशानो अर्षति। अंतरिक्षेण रारजत् ॥२॥
तनूऽनपात्। पवमानः। शृंगे इति। शिशानः। अर्षति। अंतरिक्षेण। रारजत् ॥२॥

तनूनपात्पवमानः सोमः। तनूनपादत्र सोमो भवति। तथा च श्रूयते। अद्भ्योंऽशवो जायंते ततः सोमो जायत इति। शृंगे दीप्ति उन्नतप्रदेशे। हृणिः शृंगाणीति ज्वलन्नामसु पाठात्। शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन्नंतरिक्षेण रारजदर्षति। द्रोणकलशं प्रति गच्छति। तथा चाम्नायते। द्वाभ्यां धाराभ्यामाग्रयणं गृह्णातीति ॥

ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान्। मधोर्धाराभिरोजसा ॥३॥
ईळेन्यः। पवमानः। रयिः। वि। राजति। द्युऽमान्। मधोः। धाराभिः। ओजसा ॥३॥

ईळेन्यः स्तुत्यः पवमानः सोमो रयिरभीष्टस्य दाता द्युमान्दीप्तिमांश्च सन्मधोरुदकस्य धाराभिः सह चरन्नोजसा बलेन वि राजति। प्रकाशते ॥

बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन्हरिः। देवेषु देव ईयते ॥४॥
बर्हिः। प्राचीनं। ओजसा। पवमानः। स्तृणन्। हरिः। देवेषु। देवः। ईयते ॥४॥

हरिर्हरितवर्णो देवो द्योतमानः सोमः पवमानो देवेषु यज्ञेषु बर्हिः प्राचीनं प्राचीनाग्रं स्तृणन्स्तारयन्नोजसा बलेनेयते। गच्छति ॥

उदातैर्जिहते बृहद्द्वारो देवीर्हिरण्ययीः। पवमानेन सुष्टुताः ॥५॥
उत्। आतैः। जिहते। बृहत्। द्वारः। देवीः। हिरण्ययीः। पवमानेन। सुऽस्तुताः ॥५॥

हिरण्ययीर्हिरण्मय्यो द्वारो देवीर्द्वारो देव्यः पवमानेन सोमेन सह सुष्टुताः स्तोतृभिः सम्यक् स्तुताः सत्यो बृहद्बृहतीभ्यो महतीभ्य आतैराताभ्यो दिग्भ्यः। आता आशा इति दिङ्नामसु पाठात्। उज्जिहते। उद्गच्छंति ॥ ॥२४॥

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥६॥
सुशिल्पे इति सुऽशिल्पे । बृहती इति । मही इति । पवमानः । वृषण्यति । नक्तोषसा ।
न । दर्शते इति ॥६॥

सुशिल्पे सुरूपे बृहती परिवृढे मही महत्यौ न संप्रति दर्शते दर्शनीये नक्तोषासा नक्तोषासौ पवमानः सोमो वृषण्यति । कामयते ॥

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इंद्रो वृषा ॥७॥
उभा । देवा । नृऽचक्षसा । होतारा । दैव्या । हुवे । पवमानः । इंद्रः । वृषा ॥७॥

नृचक्षसा मनुष्याणां द्रष्टारौ दैव्या दैव्यौ देवसंबंधिनौ होतारा होतारावुभोभौ देवा देवौ हुवे । आह्वयामि यज्ञे । पवमानः सोम इंद्रो दीप्तः । तथा च यास्कः । इंद्र इरां दृणातीति वेरां दारयत इति वेरां धारयतीति वेंधे भूतानीति वा तद्यदेनं प्राणैः समैंधत तदिंद्रस्येंद्रत्वमिति विज्ञायते । नि॰ १०. ८. । इति । वृषा कामानां वर्षिता च भवतीति ॥

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।
इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥८॥
भारती । पवमानस्य । सरस्वती । इळा । मही ।
इमं । नः । यज्ञं । आ । गमन् । तिस्रः । देवीः । सुऽपेशसः ॥८॥

भारती भारत्याख्या सरस्वती सरस्वत्याख्या च मही महतीळाख्या च तिस्रः सुपेशसः सुरूपा देवीर्देव्यो नोऽस्माकं पवमानस्य सोमस्य संबंधिनमिमं यज्ञं प्रत्या गमन् । आगच्छंतु ॥

त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे ।
इंदुरिंद्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥९॥
त्वष्टारं । अग्रऽजां । गोपां । पुरःऽयावानं । आ । हुवे ।
इंदुः । इंद्रः । वृषा । हरिः । पवमानः । प्रजाऽपतिः ॥९॥

अग्रजामग्रे जातं गोपां प्रजानां पालयितारं पुरोयावानं देवानां पुरस्ताद्गंतारं त्वष्टारं देवमा हुवे । आह्वयामि यज्ञे । हरिर्हरितवर्णः पवमान इंदुः सोम इंद्रो देवानामीश्वरो वृषा कामानां वर्षिता च प्रजापतिः प्रजानां पालयिता च भवतीति ॥

वनस्पतिं पवमान मध्वा समंग्धि धारया ।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययं ॥१०॥
वनस्पतिं । पवमान । मध्वा । सं । अंग्धि । धारया ।
सहस्रऽवल्शं । हरितं । भ्राजमानं । हिरण्ययं ॥१०॥

हे पवमान सोम हरितं हरितवर्णं हिरण्ययं कदाचिद्धिरण्मयवर्णं च भ्राजमानं दीप्यमानं सहस्रवल्शं सहस्रशाखं वनस्पतिं देवं धारया धारामयेण मध्वा मधुना समंग्धि । अंग्धि । संस्कुर्वित्यर्थः ॥

विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिंद्रः सजोषसः ॥११॥
विश्वे । देवाः । स्वाहाऽकृतिं । पवमानस्य । आ । गत ।
वायुः । बृहस्पतिः । सूर्यः । अग्निः । इंद्रः । सऽजोषसः ॥११॥

हे विश्वे देवाः वायुर्बृहस्पतिश्च सूर्यश्चाग्निश्चेंद्रश्च सर्वे यूयं सजोषसः संगताः संतः पवमानस्य सोमस्य स्वाहाकृतिं स्वाहाकारं प्रत्या गत । प्रत्यागच्छत ॥ ॥२५॥

मंद्रयेति नवर्चं षष्ठं सूक्तं काश्यपस्यासितस्य देवलस्य वार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं ॥

मंद्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥१॥
मंद्रया । सोम । धारया । वृषा । पवस्व । देवऽयुः । अव्यः । वारेषु । अस्मऽयुः ॥१॥

हे सोम वृषा कामानां वर्षिता देवयुर्देवकामोऽस्मयुरस्मत्कामश्चाव्योऽवेर्वारेषु वालेषु दशापवित्रे मंद्रया मदकरया धारया पवस्व । क्षर ॥

अभि त्यं मद्यं मदमिंदविंद्र इति क्षर । अभि वाजिनो अर्वतः ॥२॥
अभि । त्यं । मद्यं । मदं । इंदो इति । इंद्रः । इति । क्षर । अभि । वाजिनः । अर्वतः ॥२॥

हे इंदो सोम त्वमिंद्र ईश्वर इति कृत्वा त्यं तं मद्यं मदकरं मदं रसमभि क्षर । वर्ष । वाजिनो बलवतोऽर्वतोऽश्वांश्चास्मदर्थमभि क्षरेत्यर्थः ॥

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ । अभि वाजमुत श्रवः ॥३॥
अभि । त्यं । पूर्व्यं । मदं । सुवानः । अर्ष । पवित्रे । आ । अभि । वाजं । उत । श्रवः ॥३॥

हे सोम सुवानोऽभिषूयमाणस्त्वं पूर्व्यं प्रत्नं त्यं तं प्रसिद्धं मदं मदकरं रसं पवित्र आ समंतादभ्यर्ष । अभिगमय । वाजं बलमस्मानभ्यर्ष । उतापि च श्रवोऽन्नमभ्यर्ष ॥

अनु द्रप्सास इंदव आपो न प्रवतासरन् । पुनाना इंद्रमाशत ॥४॥
अनु । द्रप्सासः । इंदवः । आपः । न । प्रऽवता । असरन् । पुनानाः । इंद्रं । आशत ॥४॥

द्रप्सासो द्रुतगतयः पुनानाः क्षरंत इंदवः सोमाः प्रवता प्रवणेन मार्गेणापो नाप इवेंद्रमन्वसरन् । अनुगच्छंति । आशत । व्याप्नुवंति च ॥

यमत्यमिव वाजिनं मृजंति योषणो दश । वने क्रीळंतमत्यविं ॥५॥
यं । अत्यंऽइव । वाजिनं । मृजंति । योषणः । दश । वने । क्रीळंतं । अतिऽअविं ॥५॥

अत्यविं दशापवित्रमतिक्रम्य वनेऽरण्ये क्रीळंतं वर्तमानं यं सोमं दश दशसंख्याका योषणः स्त्रियः अंगुलय इत्यर्थः । तथा च निगमांतरं । तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णंति योषणो दश । ऋ॰ ९. १. ७. । इति वाजिनं बलिनमत्यमिवाश्वमिव मृजंति परिचरंति । उत्तरया सहान्वयः ॥ ॥२६॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥६॥
तं । गोभिः । वृषणं । रसं । मदाय । देवऽवीतये । सुतं । भराय । सं । सृज ॥६॥

वृषणं कामानां वर्षितारं देववीतये देवानां पानाय मदाय सुतमभिषुतं तं रसं भराय संग्रामाय गोभिः पयोभिः सं सृज। संयोजय ॥

देवो देवाय धारयेंद्राय पवते सुतः। पयो यदस्य पीपयत् ॥७॥

देवः। देवाय। धारया। इंद्राय। पवते। सुतः। पयः। यत्। अस्य। पीपयत् ॥७॥

देवाय द्योतमानायेंद्राय सुतोऽभिषुतो देवो द्योतमानः सोमो धारया पवते। क्षरति। यद्यस्मादस्य सोमस्य पयः पीपयत् इंद्रमाप्यायितवत्। तस्माद्धारया पवत इत्यर्थः ॥

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः। प्रत्नं नि पाति काव्यं ॥८॥

आत्मा। यज्ञस्य। रंह्या। सुस्वानः। पवते। सुतः। प्रत्नं। नि। पाति। काव्यं ॥८॥

यज्ञस्यात्मात्मभूतः सुतोऽभिषुतः सोमः सुष्वाणो यजमानेभ्यः कामान्प्रेरयन् रंह्या वेगेन पवते। क्षरति। प्रत्नं पुरातनं काव्यमात्मनः कवित्वं च नि पाति। अभिरक्षति ॥

एवा पुनान इंद्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये। गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥९॥

एव। पुनानः। इंद्रऽयुः। मदं। मदिष्ठ। वीतये। गुहा। चित्। दधिषे। गिरः ॥९॥

हे मदिष्ठातिशयेन मदकर सोम इंद्रयुरिंद्रकामस्त्वं वीतय इंद्रस्य पानायैवेवं मदं पुनानः क्षरन्गुहा गुहायां। यज्ञशालायामित्यर्थः। गिरश्चिच्छब्दानपि दधिषे। अभिषववेलायामुपरवेषु धारयसि। करोषीत्यर्थः ॥ ॥२७॥

असृग्रमिति नवर्चं सप्तमं सूक्तं। असृग्रमित्यनुक्रांतं। असितो देवलो वर्षिः। तौ च काश्यपगोत्रजौ। गायत्रं छंदः। सोमः पवमानो देवता ॥ उक्तो विनियोगः ॥

असृग्रमिंदवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः। विदाना अस्य योजनं ॥१॥

असृग्रं। इंदवः। पथा। धर्मन्। ऋतस्य। सुऽश्रियः। विदानाः। अस्य। योजनं ॥१॥

सुश्रियः शोभनश्रयणा अस्येंद्रस्य योजनं संबंधं विदाना जानंत इंदवः सोमा धर्मन् कर्मण्यृतस्य यज्ञस्य पथा मार्गेणासृग्रं। सृज्यंते ॥

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते। हविर्हविष्षु वंद्यः ॥२॥

प्र। धारा। मध्वः। अग्रियः। महीः। अपः। वि। गाहते। हविः। हविष्षु। वंद्यः ॥२॥

हविष्षु हविषां मध्ये वंद्यः स्तुत्यो हविर्हविरात्मको यः सोमो महीर्महतीरपो वसतीवरीर्वि गाहते तस्य मध्वः सोमस्याग्रियो मुख्या धाराः प्र पतंतीत्यर्थः ॥

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने। सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

प्र। युजः। वाचः। अग्रियः। वृषा। अव। चक्रदत्। वने। सद्म। अभि। सत्यः। अध्वरः ॥३॥

एतदेव दर्शयति। वृषा कामानां वर्षकः सत्यः सत्यभूतोऽध्वरो हिंसावर्जितोऽग्रियो मुख्यः सोमः सद्म यज्ञगृहमभि प्रति वन उदके युजो युक्ता वाचः प्राव चक्रदत्। अवक्रंदति। शब्दान्करोतीत्यर्थः ॥

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति। स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥

परि। यत्। काव्या। कविः। नृम्णा। वसानः। अर्षति। स्वः। वाजी। सिसासति ॥४॥

कविः क्रांतकर्मा सोमो नृम्णा नृम्णानि धनानि वसान आच्छादयन्स्तोतॄणां काव्या काव्यानि कविकर्माणि स्तोत्राणि यद्यदा पर्यर्षति परिगच्छति तदा स्वः स्वर्गे वाजी बलवानन्नवानिंद्रः सिषासति । यागं प्रत्यागंतुं स्वकीयं बलं संभक्तुमिच्छति ॥

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वंति वेधसः ॥५॥

पवमानः । अभि । स्पृधः । विशः । राजाऽइव । सीदति । यत् । ईं । ऋण्वंति । वेधसः ॥५॥

यद्यदेमेनं सोमं वेधसः कर्मणां कर्तार ऋण्वंति प्रेरयंति तदा पवमानः क्षरन्नेष सोमः स्पृधः स्पर्धमानान्यागविघ्नकारिणो राक्षसान्विशः स्पर्धमानाम्मनुष्यान् राजेव यथा राजा तद्वदभि षीदति । नाशयितुमभिगच्छति ॥ ॥२८॥

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

अव्यः । वारे । परि । प्रियः । हरिः । वनेषु । सीदति । रेभः । वनुष्यते । मती ॥६॥

हरिर्हरितवर्णः प्रियो देवानां प्रियतम एव सोमो वनेषूदकेषु संपृक्तोऽव्योऽवेर्वारे वालोपेते परि षीदति । किंच रेभोऽभिषववेलायामुपरवेषु शब्दं कुर्वन्मती मत्या स्तुत्या वनुष्यते । सेव्यते ॥

स वायुमिंद्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ॥७॥

सः । वायुं । इंद्रं । अश्विना । साकं । मदेन । गच्छति । रण । यः । अस्य । धर्मऽभिः ॥७॥

यो यजमानोऽस्य सोमस्य धर्मभिः कर्मभिः क्रयणाभिषवादिभी रण रमते स यजमानो वायुमिंद्रं चाश्विनाश्विनौ च मदेन साकं सह गच्छति । प्राप्नोति ॥

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवंत ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

आ । मित्रावरुणा । भगं । मध्वः । पवंते । ऊर्मयः । विदानाः । अस्य । शक्मऽभिः ॥८॥

येषां यजमानानां मध्वः सोमस्योर्मयस्तरंगा मित्रावरुणा मित्रावरुणौ देवौ भगं भगाख्यं देवं च प्रति पवंते क्षरंति ते यजमाना अस्य सोमस्येमं सोमं विदाना जानंतः शक्मभिः सुखैः संगच्छंत इति शेषः ॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सं जितं ॥९॥

अस्मभ्यं । रोदसी इति । रयिं । मध्वः । वाजस्य । सातये । श्रवः । वसूनि । सं । जितं ॥९॥

हे रोदसी द्यावापृथिव्यौ युवां मध्वो देवानां मोदयितुर्वाजस्य सोमात्मकस्यान्नस्य सातये लाभायास्मभ्यं काश्यपासितेभ्यः काश्यपदेवलेभ्यो वा रयिं धनं श्रवोऽन्नं च वसूनि वासकान्यन्यान्यपि पश्वादीनि धनानि सं जितं । संजयतं । प्रयच्छतमित्यर्थः ॥ ॥२९॥

एते सोमा इति नवर्चमष्टमं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । अनुक्रांतं च । एते सोमा इति ॥ उक्तः सूक्तविनियोगः ॥ ग्रावस्तोत्रे गाणगारिमतेनाभिरूपकरणे सोमे मृज्यमाने मृजंति त्वेत्येषा । सूत्रितं च । अथापरमभिरूपं कुर्यादिति गाणगारिरा प्यायस्व समेतु त इति तिस्रो मृजंति त्वा दश क्षिपः । आ० ५. १२. । इति ॥

एते सोमा अभि प्रियमिंद्रस्य काममक्षरन् । वर्धंतो अस्य वीर्यं ॥१॥

एते । सोमाः । अभि । प्रियं । इंद्रस्य । कामं । अक्षरन् । वर्धंतः । अस्य । वीर्यं ॥१॥

एत अभिषुता इमे सोमा अस्येंद्रस्य वीर्यं शक्तिं वर्धतो वर्धयंत इंद्रस्य कामं काम्यं प्रियं प्रीतिकरं रसमभ्यक्षरन्। अभिपवंते। अभ्यवर्षन्॥

पुनानासश्चमूषदो गच्छंतो वायुमश्विना। ते नो धांतु सुवीर्यं ॥२॥
पुनानासः। चमूऽसदः। गच्छंतः। वायुं। अश्विना। ते। नः। धांतु। सुऽवीर्यं ॥२॥

ते प्रसिद्धाः सोमाः पुनानासः पुनाना अभिषूयमाणाश्चमूषदश्चमसेषु सीदंतो वायुमश्विनाश्विनौ च गच्छंतः प्राप्नुवंतो नोऽस्मभ्यं सुवीर्यं शोभनवीर्यं धांतु। धारयंतु। प्रयच्छंत्वित्यर्थः॥

इंद्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय। ऋतस्य योनिमासदं ॥३॥
इंद्रस्य। सोम। राधसे। पुनानः। हार्दि। चोदय। ऋतस्य। योनिं। आऽसदं ॥३॥

हे सोम पुनानोऽभिषूयमाणो हार्दमभिलषितस्त्वमिंद्रस्य राधसे संराधनायर्तस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमासदं यथेंद्र आसीदति तथेंद्रं चोदय। प्रेरय॥

मृजंति त्वा दश क्षिपो हिन्वंति सप्त धीतयः। अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥
मृजंति। त्वा। दश। क्षिपः। हिन्वंति। सप्त। धीतयः। अनु। विप्राः। अमादिषुः ॥४॥

हे सोम त्वा त्वां दश दशसंख्याकाः क्षिपोऽंगुलयः। क्षिपः क्षिप इत्यंगुलिनामसु पाठात्। मृजंति। परिचरंति। सप्त सप्तसंख्याका धीतयो होत्रकाश्च त्वा त्वां हिन्वंति। स्वस्वव्यापारैः प्रीणयंति। विप्रा मेधाविनश्च त्वामन्वमादिषुः। अनुमादयंति॥

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः। सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥
देवेभ्यः। त्वा। मदाय। कं। सृजानं। अति। मेष्यः। सं। गोभिः। वासयामसि ॥५॥

हे सोम मेष्योऽवेर्लोमानि कमुदकं चात्यभि सृजानं त्वा त्वां देवेभ्यो देवानां॥ विभक्तिव्यत्ययः॥ मदाय मदार्थं गोभिर्गोविकारैः पयोभिः सं वासयामसि। संवासयामः॥ ॥३०॥

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः। परि गव्यान्यव्यत ॥६॥
पुनानः। कलशेषु। आ। वस्त्राणि। अरुषः। हरिः। परि। गव्यानि। अव्यत ॥६॥

पुनानः पूयमानः कलशेषु कुंभेषु निषिच्यमानोऽरुष आरोचमानो हरिर्हरितवर्णः सोमो गव्यानि दध्यादीनि वस्त्राणि वासांसीव पर्यव्यत। पर्याच्छादयति॥

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः। इंदो सखायमा विश ॥७॥
मघोनः। आ। पवस्व। नः। जहि। विश्वाः। अप। द्विषः। इंदो इति। सखायं।
आ। विश ॥७॥

हे इंदो सोम मघोनो धनवतो नोऽस्मान्प्रति पवस्व। क्षर। विश्वा विश्वान्द्विषो द्वेष्टॄनप जहि। मारय च। सखायं प्रियमिंद्रमा विश। आप्नुहि च॥

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि। सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८॥
वृष्टिं। दिवः। परि। स्रव। द्युम्नं। पृथिव्याः। अधि। सहः। नः। सोम। पृत्ऽसु। धाः ॥८॥

हे सोम त्वं दिवो द्युलोकाद्वृष्टिं वर्षं परि स्रव। वर्ष। पृथिव्या अधि पृथिव्यां। अधिः सप्तम्यर्थानुवादः। द्युम्नमन्नं चोत्पादयेति शेषः। नोऽस्माकं सहो बलं च पृत्सु संग्रामेषु धाः। धेहि॥

नृचक्षसं त्वा वयमिंद्रपीतं स्वर्विदं। भक्षीमहि प्रजामिषं ॥९॥
नृऽचक्षसं। त्वा। वयं। इंद्रऽपीतं। स्वःऽविदं। भक्षीमहि। प्रऽजां। इषं ॥९॥

हे सोम नृचक्षसं नृणां द्रष्टारं स्वर्विदं सर्वज्ञमिंद्रपीतमिंद्रेण पीतं त्वा त्वां पिबंतो वयं काश्यपासिताः काश्यपदेवला वा प्रजां पुत्रादिकामिषमन्नं च भक्षीमहि। भजेमहि॥ ॥३१॥

परि प्रियेति नवर्चं नवमं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। परि प्रियेत्यनुक्रांतं॥ उक्तो विनियोगः॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। सुवानो याति कविक्रतुः ॥१॥
परि। प्रिया। दिवः। कविः। वयांसि। नप्त्योः। हितः। सुवानः। याति। कविऽक्रतुः ॥१॥

कविर्मेधावी कविक्रतुः क्रांतप्रज्ञः क्रांतकर्मा वा सोमो नप्त्योरधिषवणफलकयोर्हितो निहितः सुवानोऽभिषूयमाणो दिवो द्युलोकस्य परि प्रियातिप्रियाणि वयांसि ग्राव्णः। तथा च मंत्रवर्णः। वयांसि श्येना अतिथयः पर्वतानां ककुभ इति। याति। गच्छति॥

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे। वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२॥
प्रऽप्र। क्षयाय। पन्यसे। जनाय। जुष्टः। अद्रुहे। वीती। अर्ष। चनिष्ठया ॥२॥

हे सोम प्रप्रात्यंतं क्षयाय तव निवासभूतायाद्रुहेऽद्रोग्ध्रे च पन्यसे स्तोत्रे जनाय मनुष्याय वीती वीत्यै भक्षणाय जुष्टः पर्याप्तस्त्वं चनिष्ठयान्नवत्तमया धारयार्ष। यागं प्रति गच्छ॥

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्। महान्मही ऋतावृधा ॥३॥
सः। सूनुः। मातरा। शुचिः। जातः। जाते इति। अरोचयत्। महान्। मही इति। ऋतऽवृधा ॥३॥

जात उत्पन्नः शुचिर्विशुद्धो महान्महविस्तमः स सोमाख्यः सूनुः पुत्रो मही महत्यावृतावृधा यज्ञस्य वर्धयित्र्यौ जाते विश्वस्य जनयित्र्यौ मातरात्मनो मातरौ द्यावापृथिव्यावरोचयत्। रोचयति। दीपयति॥

स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः। या एकमक्षि वावृधुः ॥४॥
सः। सप्त। धीतिऽभिः। हितः। नद्यः। अजिन्वत्। अद्रुहः। याः। एकं। अक्षि। ववृधुः ॥४॥

या नद्यो यमेकं मुख्यं सोममक्षयीणं ववृधुः वर्धयंति स सोमो धीतिभिरंगुलिभिः। रशना धीतय इत्यंगुलिनामसु पाठात्। हितो निहितः सन्नद्रुहो द्रोहवर्जिताः सप्त सप्तसंख्याका नद्यो नदीरजिन्वत्। प्रीणयति॥

ता अभि संतमस्तृतं महे युवानमा दधुः। इंदुमिंद्र तव व्रते ॥५॥
ताः। अभि। संतं। अस्तृतं। महे। युवानं। आ। दधुः। इंदुं। इंद्र। तव। व्रते ॥५॥

हे इंद्र तव त्वदीये व्रते कर्मणि ता अंगुल्यः। पूर्वत्र धीतिभिरित्यंगुलीनामुपात्तत्वात्तच्छब्देन परामर्शः। संतं विद्यमानमस्तृतमहिंसितं युवानं नित्यतरुणमिंदुं सोमं महे महतेऽभिषवादिलक्षणाय कर्मणेऽभ्या दधुः॥ ॥३२॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥
अभि । वह्निः । अमर्त्यः । सप्त । पश्यति । वावहिः । क्रिविः । देवीः । अतर्पयत् ॥६॥

यो वह्निर्यज्ञस्य धुरो वोढामर्त्यो मरणरहितो वावहिर्देवानां तृप्तेरत्यंतं वोढा च सोमः सप्त नदीः पश्यति सोऽयं क्रिविः कूपरूपेण पूर्णोऽवस्थितः सन्देवीर्नदीरतर्पयत् । तर्पयति ॥

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जंघनः ॥७॥
अव । कल्पेषु । नः । पुमः । तमांसि । सोम । योध्या । तानि । पुनान । जंघनः ॥७॥

हे पुमः पुमन्सोम कल्पेषु कल्पनीयेष्वहःसु नोऽस्मानव । रक्ष । अपि च पुनान हे पवमान सोम त्वं योध्या योधनीयानि तमांसि रक्षांसि यानि तानि जंघनः । नाशय ॥

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८॥
नु । नव्यसे । नवीयसे । सुऽउक्ताय । साधय । पथः । प्रत्नऽवत् । रोचय । रुचः ॥८॥

हे सोम नव्यसे नव्याय नूतनाय नवीयसे स्तुत्यायास्माकं सूक्ताय पथो मार्गान्नु क्षिप्रं साधय । अभिगच्छ । अपि च प्रत्नवद्यथापूर्वं रुचः स्वदीप्ती रोचय । प्रकाशय ॥

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ॥९॥
पवमान । महि । श्रवः । गां । अश्वं । रासि । वीरऽवत् । सन । मेधां । सन ।
स्व१रिति स्वः ॥९॥

हे पवमान सोम यस्त्वं वीरवत्पुत्रवन्महि महच्छ्रवोऽन्नं गां चाश्वं च रासि अस्मभ्यं प्रयच्छसि स त्वं मेधां सन । अस्मभ्यं प्रयच्छ । अपि च स्वर्यदस्मदभिलषितं तत्सर्वं सन । देहि ॥ ॥३३॥

प्र स्वानास इति नवर्चं दशमं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र स्वानास इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वंतो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥१॥
प्र । स्वानासः । रथाःऽइव । अर्वंतः । न । श्रवस्यवः । सोमासः । राये । अक्रमुः ॥१॥

प्र स्वानासोऽभिषववेलायामुपरवेषु शब्दं कुर्वंतः सोमासः सोमा रथा इव यथा शब्दं कुर्वंतो रथा अर्वंतो न यथा शब्दं कुर्वंतोऽश्वाः तथा श्रवस्यवः शत्रुभ्योऽन्नमिच्छंतो राये यजमानानां धनायाक्रमुः । आगच्छन् ॥

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥२॥
हिन्वानासः । रथाःऽइव । दधन्विरे । गभस्त्योः । भरासः । कारिणांऽइव ॥२॥

सोमा रथा इव यथा रथास्तथा हिन्वानासो हिन्वाना यागदेशं प्रति गच्छंतो भरासो भराः कारिणामिव यथा भारवाहिनां बाह्वोर्धीयंते तथा गभस्त्योर्ऋत्विजां बाह्वोः । गभस्ती बाहू इति बाहुनामसु पाठात् । दधन्विरे । धीयंते ॥

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरंजते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥३॥
राजानः । न । प्रशस्तिऽभिः । सोमासः । गोभिः । अंजते । यज्ञः । न । सप्त । धातृऽभिः ॥३॥

सोमासः सोमाः प्रशस्तिभिः प्रशस्ताभिः स्तुतिरूपाभिर्वाग्भी राजानो न यथा राजानः सप्त धातृभिः सप्त होत्राभिर्यज्ञो न यथा च यज्ञस्तथा गोभिर्गोविकारैः पयोभिरंजते। अज्यंते। संस्क्रियंत इत्यर्थः॥

परि सुवानास इंदवो मदाय बर्हणा गिरा। सुता अर्षंति धारया॥४॥
परि। सुवानासः। इंदवः। मदाय। बर्हणा। गिरा। सुताः। अर्षंति। धारया॥४॥

सुवानासः सुवाना अभिषूयमाणा इंदवः सोमा बर्हणा महत्या गिरा स्तुतिरूपया वाचा सुता अभिषुताः संतो मदाय मदार्थं धारया पर्यर्षंति। परितो गच्छंति॥

आपानासो विवस्वतो जनंत उषसो भगं। सूरा अण्वं वि तन्वते॥५॥
आपानासः। विवस्वतः। जनंतः। उषसः। भगं। सूराः। अण्वं। वि। तन्वते॥५॥

विवस्वत इंद्रस्यापानास आपानभूता उषसो भगं जनंतो जनयंतः सूराः सरंतः सोमा अण्वं वि तन्वते। अभिषववेलायामुपरवेषु शब्दं कुर्वंति॥ ॥३४॥

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वंति कारवः। वृष्णो हरस आयवः॥६॥
अप। द्वारा। मतीनां। प्रत्नाः। ऋण्वंति। कारवः। वृष्णः। हरसे। आयवः॥६॥

मतीनां स्तुतीनां कारवः कर्तार ऋत्विजः प्रत्नाः पुराणा वृष्णः सेचकस्य सोमस्य हरस आहरस आहर्तारस्त्वायवो मनुष्या द्वारा यज्ञस्य द्वाराण्यपर्ण्वंति॥

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः। पदमेकस्य पिप्रतः॥७॥
संऽईचीनासः। आसते। होतारः। सप्तऽजामयः। पदं। एकस्य। पिप्रतः॥७॥

समीचीनासः समीचीना जामयो जामिसदृशा एकस्य सोमस्य पदं स्थानं पिप्रतः पूरयंतः सप्त होतारः सप्त होत्रका आसते। यज्ञ उपविशंति॥

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा। कवेरपत्यमा दुहे॥८॥
नाभा। नाभिं। नः। आ। ददे। चक्षुः। चित्। सूर्ये। सचा। कवेः। अपत्यं। आ। दुहे॥८॥

नाभिं यज्ञस्य नाभिभूतं सोमं नोऽस्माकं नाभा नाभावहमा ददे। पिबामीत्यर्थः। पीतसोमानामस्माकं चक्षुश्चिच्चक्षुरपि सूर्ये सचा संगतं भवति। किंच कवेः क्रांतकर्मणः सोमस्यापत्यमंशुमा दुहे। आपूरयामि॥

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितं। सूरः पश्यति चक्षसा॥९॥
अभि। प्रिया। दिवः। पदं। अध्वर्युऽभिः। गुहा। हितं। सूरः। पश्यति। चक्षसा॥९॥

सूरः सुवीर्य इंद्रश्चक्षसा चक्षुषा दिवो दीप्तस्यात्मनः प्रिया प्रियं पदमध्वर्युभिर्गुहा गुहायां हृदये हितं निहितं पीतं सोममप्यभि पश्यति॥ ॥३५॥

उपास्मा इति नवर्चमेकादशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। उपास्मा इत्यनुक्रांतं॥ उक्तः सूक्तविनियोगः॥ अभिष्टवे घर्मदुघावत्सेऽपनीयमाने नमसेदुपेत्येषा। सूत्रितं च। नमसेदुप सीदत संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु। आ० ४.७.। इति॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेंदवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

उप । अस्मै । गायत । नरः । पवमानाय । इंदवे । अभि । देवान् । इयक्षते ॥१॥

हे नरो नेतार ऋत्विजः यज्ञस्य देवानिंद्रादीनभीयक्षत आभिमुख्येन यष्टुमिच्छते पवमानाय क्षरतेऽस्मा अभिषूयमाणायेंदवे सोमायोप गायत । उपगानं कुरुत ॥

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२॥

अभि । ते । मधुना । पयः । अथर्वाणः । अशिश्रयुः । देवं । देवाय । देवऽयु ॥२॥

हे सोम ते तव देवं देवनशीलं देवयुं देवयुं देवकामं रसं देवाय देवनशीलायेंद्राय मधुना पयो गव्येन पयसाथर्वाण ऋषयोऽभ्यशिश्रयुः । अभ्यश्रीणन् । समस्कुर्वन्नित्यर्थः ॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

सः । नः । पवस्व । शं । गवे । शं । जनाय । शं । अर्वते । शं । राजन् । ओषधीभ्यः ॥३॥

हे राजन्दीप्यमान सोम स प्रसिद्धस्त्वं नोऽस्माकं गवे शं सुखं पवस्व । क्षर । जनाय पुत्रादये च शं पवस्व । अर्वतेऽश्वाय च शं पवस्व । ओषधीभ्यश्च शं पवस्व ॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥४॥

बभ्रवे । नु । स्वऽतवसे । अरुणाय । दिविऽस्पृशे । सोमाय । गाथं । अर्चत ॥४॥

हे स्तोतारः बभ्रवे बभ्रुवर्णाय स्वतवसे स्वबलायारुणाय कदाचिदरुणवर्णाय दिविस्पृशे दिवं स्पृशते सोमाय नु क्षिप्रं गाथं स्तुतिरूपां वाचमर्चत । उच्चारयतेत्यर्थः ॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥५॥

हस्तऽच्युतेभिः । अद्रिऽभिः । सुतं । सोमं । पुनीतन । मधौ । आ । धावत । मधु ॥५॥

हे ऋत्विजः हस्तच्युतेभिर्हस्तप्रच्युतैरद्रिभिरभिषवग्रावभिः सुतमभिषुतं सोमं पुनीतन । पवित्रे पावयत । अपि च मधौ मदकरे सोमे मधु गव्यं पय आ धावत । प्रक्षिपत ॥ ॥३६॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इंदुमिंद्रे दधातन ॥६॥

नमसा । इत् । उप । सीदत । दध्ना । इत् । अभि । श्रीणीतन । इंदुं । इंद्रे । दधातन ॥६॥

हे ऋत्विजः नमसेन्नमस्कारेणैवोप सीदत । सोममुपगच्छत । दध्नेद्दध्नैवाभि श्रीणीतन । अभिश्रीणीत च । इंद्र इंदुं सोमं दधातन । धत्त च ॥

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७॥

अमित्रऽहा । विऽचर्षणिः । पवस्व । सोम । शं । गवे । देवेभ्यः । अनुकामऽकृत् ॥७॥

हे सोम अमित्रहामित्राणां हंता विचर्षणिर्विद्रष्टा देवेभ्योऽनुकामकृदभीष्टस्य कर्ता त्वं गवेऽस्माकं गवे शं सुखं पवस्व । क्षर ॥

इंद्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥८॥

इंद्राय । सोम । पातवे । मदाय । परि । सिच्यसे । मनःऽचित् । मनसः । पतिः ॥८॥

हे सोम मनश्चिन्मनसो ज्ञाता मनसस्पतिरीश्वरस्त्वमिंद्रायेंद्रस्य पातवे पानाय मदाय च परि षिच्यसे। परितः पात्रेषु सिच्यसे ॥

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः। इंदविंद्रेण नो युजा ॥९॥

पवमान। सुऽवीर्यं। रयिं। सोम। रिरीहि। नः। इंदो इति। इंद्रेण। नः। युजा ॥९॥

हे इंदो क्लिद्यमान पवमान सोम त्वं सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं रयिं धनं नोऽस्माकं संबंधिनेंद्रेण युजा सहायेन नोऽस्मभ्यं रिरीहि। देहि ॥ ॥३७॥

सोमा असृग्रमिति नवर्चं द्वादशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। सोमा असृग्रमित्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

सोमा असृग्रमिंदवः सुता ऋतस्य सादने। इंद्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

सोमाः। असृग्रं। इंदवः। सुताः। ऋतस्य। सदने। इंद्राय। मधुमत्ऽतमाः ॥१॥

सुता अभिषुता मधुमत्तमा अतिशयेन मधुमंत इंदवः सोमा ऋतस्य यज्ञस्य सादने गृहे इंद्रायेंद्रार्थमसृग्रं। सृज्यंते ॥

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः। इंद्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

अभि। विप्राः। अनूषत। गावः। वत्सं। न। मातरः। इंद्रं। सोमस्य। पीतये ॥२॥

विप्रा मेधाविनः सोमस्य पीतये पानायेंद्रं मातरो जनयित्र्यो गावो वत्सं न यथा वत्सं प्रति तद्वदभ्यनूषत। अभिशब्दयंति ॥

मदच्युत्क्षेति सादने सिंधोरूर्मा विपश्चित्। सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

मदऽच्युत्। क्षेति। सदने। सिंधोः। ऊर्मा। विपःऽचित्। सोमः। गौरी इति। अधि। श्रितः ॥३॥

मदच्युन्मदकरस्य रसस्य च्यावयिता सोमः सादने ॥ संहितायां दीर्घश्छांदसः ॥ स्थाने क्षेति। निवसति। एतदेव विवृणोति। सिंधोर्नद्या ऊर्मावूर्मौ तरंगे। वसतीवरीष्वित्यर्थः। विपश्चिद्विद्वान्सोमो गौरी अधि गौर्यामधि। अधीति सप्तम्यर्थानुवादः। माध्यमिकायां वाचि। गौरी गांधर्वीति वाङ्नामसु पाठात्। श्रितः। मिश्रयति ॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते। सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

दिवः। नाभा। विऽचक्षणः। अव्यः। वारे। महीयते। सोमः। यः। सुऽक्रतुः। कविः ॥४॥

यः सुक्रतुः सुप्रज्ञः कविः क्रांतकर्मा विचक्षणो विद्रष्टा स सोमो दिवोऽंतरिक्षस्य नाभा नाभौ नाभिभूतेऽव्योऽवेर्वारे वाले महीयते। पूज्यते। पूयमानः स्तूयत इत्यर्थः ॥

यः सोमः कलशेष्वाँ अंतः पवित्र आहितः। तमिंदुः परि षस्वजे ॥५॥

यः। सोमः। कलशेषु। आ। अंतरिति। पवित्रे। आऽहितः। तं। इंदुः। परि। सस्वजे ॥५॥

यः सोमः कलशेषु कुंभेष्वा आस्ते यश्च पवित्रे पवित्रस्यांतर्मध्य आहितो निहितः तं स्वांशभूतं सोममिंदुः सोमो देवः परि षस्वजे। प्रविशति ॥ ॥३८॥

प्र वाचमिंदुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतं ॥ ६ ॥
प्र । वाचं । इंदुः । इष्यति । समुद्रस्य । अधि । विष्टपि । जिन्वन् । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥ ६ ॥

इंदुः सोमो मधुश्चुतं मधुनश्च्यावकं कोशं मेघं । असुरः कोश इति मेघनामसु पाठात् । जिन्वन्प्रीणयन्स-मुद्रस्यांतरिक्षस्याधि विष्टपि विष्टब्धे स्थाने वाचं प्रेष्यति । प्रेरयति । पवित्रे पूयमानः शब्दं करोतीत्यर्थः ॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामंतः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥
नित्यऽस्तोत्रः । वनस्पतिः । धीनां । अंतः । सबःऽदुघः । हिन्वानः । मानुषा । युगा ॥ ७ ॥

नित्यस्तोत्रः संततस्तोत्रः सबर्दुघोऽमृतस्य दोग्धा वनस्पतिर्वनानां पालयिता सोमो मानुषा मानुषाणि युगा युगान्यहोनिकाहात्मकानि हिन्वानः प्रीणयन्धीनां कर्मणामंतर्मध्ये निवसतीत्यर्थः ॥

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥
अभि । प्रिया । दिवः । पदा । सोमः । हिन्वानः । अर्षति । विप्रस्य । धारया । कविः ॥ ८ ॥

कविः क्रांतकर्मा सोमो दिवोऽंतरिक्षाद्धिन्वानः प्रेर्यमाणो विप्रस्य मेधाविनः स्वस्य धारया प्रिया प्रियाणि पदानि स्थानान्यभ्यर्षति । अभिगच्छति ॥

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसं । अस्मे इंदो स्वाभुवं ॥ ९ ॥
आ । पवमान । धारय । रयिं । सहस्रऽवर्चसं । अस्मे इति । इंदो इति । सुऽआभुवं ॥ ९ ॥

हे पवमानेंदो सोम त्वं सहस्रवर्चसं बहुदीप्तिं स्वाभुवं शोभनभवनं रयिं धनमस्मे अस्मासु धारय । प्रक्षिपेत्यर्थः ॥ ॥ ३९ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥
षष्ठस्य सप्तमोऽध्यायः संग्रहात्संप्रदर्शितः । अथाष्टमः सुमतिना संगमेन प्रदर्श्यते ॥

तत्र सोमः पुनान इति नवर्चं त्रयोदशं सूक्तं । असितो देवलो वर्षिः । सोमो देवता । पवमानगुणः सोमो विज्ञेयः काश्यपावृषी इति विद्यादनुक्तेऽपि लाघवाया दृळ्हच्युतात् । सोम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिंद्रस्य निष्कृतं ॥ १ ॥
सोमः । पुनानः । अर्षति । सहस्रऽधारः । अतिऽअविः । वायोः । इंद्रस्य । निःऽकृतं ॥ १ ॥

अयं पुनानः पावकः सोमोऽर्षति । गच्छति । कीदृशोऽयं पवमानः । सहस्रधारोऽपरिमितधारोऽत्यविः । अत्राविशब्देन तल्लोमान्युच्यंते । अविलोमभिर्निष्पादितं दशापवित्रमित्यर्थः । तदतिक्रम्य गच्छतीत्यत्यविः ।

किमर्थं। वायोरिंद्रस्य च पानायेति शेषः। किं प्रति। निष्कृतं। निरित्येष समित्येतस्मिन्नर्थे। संस्कृतं पात्रं प्रति ॥

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत। सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

पवमानं। अवस्यवः। विप्रं। अभि। प्र। गायत। सुस्वानं। देवऽवीतये ॥२॥

हे अवस्यवो रक्षणकामा उद्गात्रादयः यूयं पवमानं शोधकं विप्रं विशेषेण देवानां प्रीणयितारं विप्रवच्छुद्धं वा। अथवा। विप्र इति मेधाविनाम। मेधाविनं। देववीतये देवपानाय सुष्वाणं सूयमानमभि प्र गायत। आभिमुख्येन प्रकर्षेण स्तुत ॥

पवंते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः। गृणाना देववीतये ॥३॥

पवंते। वाजऽसातये। सोमाः। सहस्रऽपाजसः। गृणानाः। देवऽवीतये ॥३॥

पवंते क्षरंति सोमाः। किमर्थं। वाजसातयेऽन्नस्य लाभाय। कीदृशाः। सहस्रपाजसो बहुबलाः। पातॄणां बलप्रदा इत्यर्थः। गृणानाः ॥ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॥ स्तूयमानाः। पुनः किमर्थं। देववीतये। देवानां वीतिर्गतिः प्राप्तिर्भक्षणं वा यस्मिन्स देववीतिर्यज्ञः। तदर्थं। यज्ञसिद्धिः साक्षात्प्रयोजनं तद्द्वारा वाजलाभ इति ॥

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः। द्युमदिंदो सुवीर्यं ॥४॥

उत। नः। वाजऽसातये। पवस्व। बृहतीः। इषः। द्युऽमत्। इंदो इति। सुऽवीर्यं ॥४॥

उतापि च नोऽस्माकं वाजसातयेऽन्नलाभाय हे इंदो सोम बृहतीरिषो महती रसधारा द्युमद्दीप्तिमत्सुवीर्यं शोभनसामर्थ्यं च पवस्व। क्षर। शोभनसामर्थ्योपेता धाराः पवस्वेत्यर्थः। अथवा वाजसातये संग्रामाय बृहतीरिषो द्युमत्सुवीर्यं संपादयितुं पवस्वेति योज्यं ॥

ते नः सहस्रिणं रयिं पवंतामा सुवीर्यं। सुवाना देवास इंदवः ॥५॥

ते। नः। सहस्रिणं। रयिं। पवंतां। आ। सुऽवीर्यं। सुवानाः। देवासः। इंदवः ॥५॥

त इंदवः सोमा नोऽस्माकं सहस्रिणं सहस्रसंख्योपेतं रयिं धनं सुवीर्यं चा पवंतां। कीदृशास्ते। सुवानाः सूयमाना देवासो द्योतनादिगुणयुक्ताः ॥ ॥१॥

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये। वि वारमव्यमाशवः ॥६॥

अत्याः। हियानाः। न। हेतृऽभिः। असृग्रं। वाजऽसातये। वि। वारं। अव्यं। आशवः ॥६॥

वाजसातये संग्रामाय हियानाः प्रेर्यमाणा अत्या नाश्वा इव ते यथा प्रेरकैः प्रेर्यमाणाः संग्रामाय शीघ्रं धावंति तद्वद्धेतृभिः प्रेरकैः प्रेर्यमाणा आशवः शीघ्रगामिनः सोमा वाजसातयेऽन्नलाभायाव्यं वारं दशापवित्रं व्यसृग्रं। व्यतिसृज्यंते ॥

वाश्रा अर्षंतींदवोऽभि वत्सं न धेनवः। दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥

वाश्राः। अर्षंति। इंदवः। अभि। वत्सं। न। धेनवः। दधन्विरे। गभस्त्योः ॥७॥

वाश्राः शब्दयंत इंदवः सोमा अभ्यर्षंति अभिगच्छंति पात्रं प्रति वाश्राः शब्दकारिण्यो धेनवो न। ता यथा शब्दयंत्यो वत्सं प्रत्यागच्छंति तद्वत्। त एव गभस्त्योर्बाह्वोर्दधन्विरे। ध्रियंते च ॥

जुष्ट इंद्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८॥
जुष्टः । इंद्राय । मत्सरः । पवमान । कनिक्रदत् । विश्वाः । अप । द्विषः । जहि ॥ ८॥

इंद्राय जुष्टः प्रियः पर्याप्तो मत्सरः सोमो भवतीति शेषः । मत्सरः सोमो मंदतेस्तृप्तिकर्मण इति निरुक्तं ।२.५.। हे पवमान त्वं कनिक्रदच्छब्दयन्विश्वा द्विषः सर्वानस्माकं द्वेष्टृनप जहि ॥

अपघ्नंतो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९॥
अपऽघ्नंतः । अराव्णः । पवमानाः । स्वःऽदृशः । योनौ । ऋतस्य । सीदत ॥ ९॥

हे पवमानाः अराव्णोऽदातॄनयजमानानपघ्नंतो हिंसंतः स्वर्दृशः सर्वस्य द्रष्टारश्च यूयमृतस्य योनौ यज्ञस्य स्थाने सीदत । अथवा सोमपानार्थमुक्तलक्षणा देवाः ऋतस्य योनौ सीदतेति योज्यं ॥ ॥ २॥

परि प्रेत्यष्टर्चं चतुर्दशं सूक्तं । ऋष्यादि पूर्ववत् । परि प्रासिष्यदित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिंधोरूर्मावधि श्रितः । कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहं ॥ १॥
परि । प्र । असिस्यदत् । कविः । सिंधोः । ऊर्मौ । अधि । श्रितः । कारं । बिभ्रत् । पुरुऽस्पृहं ॥ १॥

परि प्रासिष्यदत् परिप्रस्यंदते कविर्मेधावी सोमः सिंधोरूर्मौ तरंगे वसतीवर्युदकरसेऽधि श्रित आश्रितः । पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं कारं शब्दं बिभ्रद्धारयन्परिस्यंदत इति संबंधः ॥

गिरा यदी सबंधवः पंच व्राता अपस्यवः । परिष्कृण्वंति धर्णसिं ॥ २॥
गिरा । यदि । सऽबंधवः । पंच । व्राताः । अपस्यवः । परिऽकृण्वंति । धर्णसिं ॥ २॥

सबंधवः समानबंधनाः पंच व्राताः पंच जना मनुष्या यजमाना अपस्यवः कर्मेच्छवो यद्यदेमेनं धर्णसिं धारकं सोमं गिरा स्तुत्या परिष्कृण्वंति अलंकुर्वंति । अस्योत्तरत्रान्वयः ॥

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत । यदी गोभिर्वसायते ॥ ३॥
आत् । अस्य । शुष्मिणः । रसे । विश्वे । देवाः । अमत्सत । यदि । गोभिः । वसायते ॥ ३॥

आत्परिष्करणानंतरमेव शुष्मिणो बलवतोऽस्य सोमस्य रसे विश्वे देवा अमत्सत । अमाद्यंत । यदि यदा गोभिर्गोविकारैः । विकारे प्रकृतिशब्दः । क्षीरादिभिर्वसायते आच्छाद्यते ॥

निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा । अत्रा सं जिघ्नते युजा ॥ ४॥
निःऽरिणानः । वि । धावति । जहत् । शर्याणि । तान्वा । अत्र । सं । जिघ्नते । युजा ॥ ४॥

अयं सोमो निरिणानो दशापवित्रादधो गच्छन्वि धावति । विविधं धावति । - - - - यदा तान्वा । तनु दशापवित्रवस्त्रं । तत्संबंधीनि शर्याणि द्वाराणि जहत् अधः सरति । अत्रास्मिन्यज्ञे युजा सखिभूतेनेंद्रेण सह सं जिघ्नते । संगतो भवति । वस्त्रसुषिराद्विनिर्गत्य दशापवित्रादधः सत्पात्रं विविधं गच्छन् होमद्वारेणेंद्रेण संगतो भवतीत्यर्थः ॥

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा । गाः कृण्वानो न निर्णिजं ॥ ५॥
नप्तीभिः । यः । विवस्वतः । शुभ्रः । न । ममृजे । युवा । गाः । कृण्वानः । न । निःऽनिजं ॥ ५॥

यः सोमो विवस्वतः परिचरणवतो यजमानस्य नप्तीभिः पौत्रस्थानीयाभिः । तस्य हस्तः पुत्रोऽंगुलयः

पात्रस्थानीया इत्यभिप्रायः । मामृजे मृज्यते शुभ्रो न दीप्तोऽश्वो युवेव । यथाप्रवृद्धोऽश्वो मृज्यते स्वपरिचारकैस्तद्वत्स एव युवा मिश्रणशीलः सोमो निर्णिजं । निर्णिगिति रूपनाम । स्वकीयं रूपं गा न क्षरणाणो गोविकारांश्च कुर्वाणो भवतीति शेषः ॥ ॥३॥

अति॑ श्रि॒ती ति॑र॒श्चता॑ ग॒व्या जि॑गा॒त्यण्व्या॑ । व॒ग्नुमि॑यर्ति॒ यं वि॒दे ॥६॥

अति॑ । श्रि॒ती । ति॒र॒श्चता॑ । ग॒व्या । जि॒गा॒ति॒ । अण्व्या॑ । व॒ग्नुं । इ॒य॒र्ति॒ । यं । वि॒दे ॥६॥

अण्व्यांगुल्याभिषूयमाणः सोमो गव्या गव्यानि श्रिती श्रित्यै श्रयणार्थं तिरश्चता तिरश्चीनमति जिगाति । अंशुमतिक्रम्य गच्छति । तथांगुल्याभिषूयमाणो वग्नुं शब्दमियर्ति । प्रेरयति ॥

अ॒भि क्षिपः॒ सम॑ग्मत म॒र्जय॑न्तीरि॒षस्पति॑म् । पृ॒ष्ठा गृ॑भ्णत वा॒जिनः॑ ॥७॥

अ॒भि । क्षिपः॑ । सं । अ॒ग्म॒त॒ । म॒र्जय॑न्तीः । इ॒षः । पति॑म् । पृ॒ष्ठा । गृ॒भ्ण॒त॒ । वा॒जिनः॑ ॥७॥

क्षिपोऽंगुलयो मर्जयंतीरभिमृशंत्य इषस्पतिमन्नानां स्वामिनं सोममभि समग्मत । अभिसंगच्छंते । संगत्य च वाजिनो बलवतः सोमस्य पृष्ठा पृष्ठानि गृभ्णत । गृह्णंत्यभिषवांगुलयः ॥

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑श॒द्विश्वा॑नि सोम॒ पार्थि॑वा । वसू॑नि याह्यस्म॒युः ॥८॥

परि॑ । दि॒व्यानि॑ । मर्मृ॑शत् । विश्वा॑नि । सोम॒ । पार्थि॑वा । वसू॑नि । या॒हि॒ । अ॒स्म॒ऽयुः ॥८॥

हे सोम दिव्यानि पार्थिवानि च विश्वानि सर्वाणि वसूनि धनानि परि मर्मृशत्परिमृशन्परिगृह्णन्नस्मयुरस्मान्कामयमानो याहि । आगच्छ । एवमभिषुण्वन्नसं संबोध्य ब्रूते ॥ ॥४॥

एष धियेत्यष्टर्चं पंचदशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । एष धियेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

ए॒ष धि॒या या॒त्यण्व्या॒ शूरो॒ रथे॑भिरा॒शुभिः॑ । गच्छ॒न्निन्द्र॑स्य नि॒ष्कृत॑म् ॥१॥

ए॒षः । धि॒या । या॒ति॒ । अण्व्या॑ । शूरः॑ । रथे॑भिः । आ॒शुऽभिः॑ । गच्छ॑न् । इन्द्र॑स्य । निः॒ऽकृत॑म् ॥१॥

एष सोमः शूरो विक्रांतोऽण्व्यांगुल्याभिषुतो धिया कर्मणा याति । गच्छति । कं देशं प्रति । उच्यते । इंद्रस्य निष्कृतं स्थानं दिवं प्रति रथेभी रथैराशुभिः शीघ्रगामिभिर्गच्छन्निंद्रेण रथेऽवस्थाप्य स्वस्थाननयनाय । अंगुल्याभिषूयमाणः सन् होमद्वाराग्निं निष्पीडनद्वारा पात्रं वा गच्छतीत्यर्थः ॥

ए॒ष पु॒रू धि॑याय॒ते बृ॑ह॒ते दे॒वता॑तये । यत्रा॒मृता॑स॒ आस॑ते ॥२॥

ए॒षः । पु॒रु । धि॒या॒ऽय॒ते॒ । बृ॒ह॒ते । दे॒वऽता॑तये । यत्र॑ । अ॒मृता॑सः । आस॑ते ॥२॥

एष सोमः पुरु बहुलं धियायते । धियं कर्मेच्छति ॥ धीशब्दाद्यकारोपजनः । यद्वा । द्वितीयार्थे तृतीया छांदसश्चालुक् ॥ कस्मै । बृहते महते देवतातये यज्ञाय । यत्र यस्मिन्यज्ञेऽमृतासोऽमृता देवा आसते वसंति तदर्थं ॥

ए॒ष हि॒तो वि नी॑यते॒ऽन्तः शु॒भ्राव॑ता प॒था । यदी॑ तु॒ञ्जन्ति॒ भूर्ण॑यः ॥३॥

ए॒षः । हि॒तः । वि । नी॒य॒ते॒ । अ॒न्तः । शु॒भ्रऽव॑ता । प॒था । यदि॑ । तु॒ञ्जन्ति॑ । भूर्ण॑यः ॥३॥

एष सोमो हितो निहितो हविर्धाने वि नीयते तस्मात्स्थानादाहवनीयं प्रति । अंतस्तयोर्मध्यदेशे

शुभ्रावता शोभावता पथा मार्गेण यदि यदा तुंजंति प्रयच्छंति देवेभ्यो भूर्णयो भरणशीला अध्वर्य्वादयः। तदा वि नीयत इति समन्वयः॥

एष शृंगाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा। नृम्णा दधान ओजसा ॥४॥
एषः। शृंगाणि। दोधुवत्। शिशीते। यूथ्यः। वृषा। नृम्णा। दधानः। ओजसा ॥४॥

एष सोमः शृंगाणि शृंगवदुन्नतानंशूनभिषवकाले दोधुवत्। धूनोति। यूथ्यो यूथार्हो यूथपतिर्वृषा वृषभो यथा शिशीते तीक्ष्णे शृंगे धूनोति तद्वत्। कीदृश एषः। ओजसा बलेन नृम्णा नृम्णानि धनानि दधानो ऽस्मदर्थं धारयन्॥

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः। पतिः सिंधूनां भवन् ॥५॥
एषः। रुक्मिऽभिः। ईयते। वाजी। शुभ्रेभिः। अंशुऽभिः। पतिः। सिंधूनां। भवन् ॥५॥

एष सोमो रुक्मिभिरध्वर्य्वादिभिः सहेयते। गच्छति। कीदृश एषः। वाजी वेजनवाञ्शुभ्रेभिः शुभ्रैर्दीप्तैरंशुभिर्विशिष्टः। अथवा रुक्मिभिरित्येतदप्यंशुविशेषणं। सिंधूनां स्यंदमानानां रसानां पतिर्भवन् स ईयत इति॥

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति। अव शादेषु गच्छति ॥६॥
एषः। वसूनि। पिब्दना। परुषा। ययिऽवान्। अति। अव। शादेषु। गच्छति ॥६॥

एष सोमो वसून्याच्छादकानि पिब्दना पिब्दनानि पीडितानि रक्षांसि परुषा पर्वणात्यतिक्रम्य ययिवान्गच्छञ्शादेषु शातनीयेषु रक्षःस्वव गच्छति॥

एतं मृजंति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः। प्रचक्राणं महीरिषः ॥७॥
एतं। मृजंति। मर्ज्यं। उप। द्रोणेषु। आयवः। प्रऽचक्राणं। महीः। इषः ॥७॥

आयवो मनुष्या ऋत्विज एतं सोमं मर्ज्यं मार्जनीयमुप मृजंति। निष्पीडयंतीत्यर्थः। कुत्र। द्रोणेषु द्रोणकलशेषु। कीदृशं। महीरिषो महांत्यन्नानि प्रचक्राणं कुर्वाणं। प्रभूतरसस्राविणमित्यर्थः॥

ग्रावस्तोत्रे गाणगारिमतेनाभिरूपकरणे मृज्यमाने सोम एतमु त्यमित्येषा। सूत्रितं च। एतमु त्यं दश क्षिपो मृज्यमानः सुहस्त्या। आ० ५. १२। इति॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजंति सप्त धीतयः। स्वायुधं मदिंतमं ॥८॥
एतं। ऊं इति। त्यं। दश। क्षिपः। मृजंति। सप्त। धीतयः। सुऽआयुधं। मदिन्ऽतमं ॥८॥

त्यं तमेतमेव सोमं दश क्षिपो दशांगुलयो मृजंति। परिचरंति। सप्त धीतयः सप्तर्त्विजश्च। ऋत्विजो ऽंगुलिभिर्मृजंतीत्यर्थः। कीदृशमेतं। स्वायुधं शोभनायुधं मदिंतमं मादयितृतमं। रक्षोहननसामर्थ्यप्रदर्शनाय स्वायुधशब्दश्रवणं॥ ॥५॥

प्र ते सोतार इत्यष्टर्चं षोडशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। प्र त इत्यनुक्रांतं॥ गतो विनियोगः॥

प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये। सर्गो न तक्त्येतशः ॥१॥
प्र। ते। सोतारः। ओण्योः। रसं। मदाय। घृष्वये। सर्गः। न। तक्ति। एतशः ॥१॥

हे सोम ते तव रसं सोतारः सोमाभिषवकर्तार ओण्यो रसं। लुप्तोपममेतत्। द्यावापृथिव्यो रसमुदकमिव। अथवौण्योर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये तयोः संबंधिनं वा रसं। प्र स्रावयंतीति शेषः। किमर्थं। घृष्वये

शत्रुघर्षणशीलाय मदायेंद्रस्य मदाय। अभिषवजनितः सोमः सर्गः सृष्ट एतशो नाश्व इव तक्ति। गच्छति पात्रं प्रति ॥

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमंधसा। गोषामण्वेषु सश्चिम ॥२॥

क्रत्वा। दक्षस्य। रथ्यं। अपः। वसानं। अंधसा। गोऽसां। अण्वेषु। सश्चिम ॥२॥

वयमभिषोतारो दक्षस्य बलस्य रथ्यं नेतारमप उदकानि रसान्वसानमाच्छादयंतमंधसा अयणान्नेन सहितं गोषां गवां सोतारं एवमुक्तलक्षणं सोमं क्रत्वा कर्मणाण्वेष्वंगुलीषु सश्चिम। संयोजयामः ॥

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज। पुनीहींद्राय पातवे ॥३॥

अनप्तं। अप्ऽसु। दुस्तरं। सोमं। पवित्रे। आ। सृज। पुनीहि। इंद्राय। पातवे ॥३॥

अनप्तं शत्रुभिरनाप्तमप्स्वांतरिक्ष्यासु। वर्तमानमिति शेषः। दुष्टरमन्यैरनभिभाव्यं। न हि सोमं कश्चिदप्यतितरति। ईदृशं सोमं पवित्रे दशापवित्र आ सृज। प्रक्षिप हे अध्वर्यो। तत्रोच्यते। इंद्रायेंद्रस्य पातवे पातुं पुनीहि ॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति। क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४॥

प्र। पुनानस्य। चेतसा। सोमः। पवित्रे। अर्षति। क्रत्वा। सधऽस्थं। आ। असदत् ॥४॥

चेतसा स्तुत्या पुनानस्य पूयमानस्यांशीभूतः सोमः पवित्रे दशापवित्रेऽर्षति। गच्छति। अथ पश्चात् क्रत्वा कर्मणा प्रज्ञानेन वा सधस्थं सहस्थानं द्रोणकलश आसदत्। आसीदति ॥

प्र त्वा नमोभिरिंदव इंद्र सोमा असृक्षत। महे भराय कारिणः ॥५॥

प्र। त्वा। नमःऽभिः। इंदवः। इंद्र। सोमाः। असृक्षत। महे। भराय। कारिणः ॥५॥

हे इंद्र त्वा त्वां नमोभिर्नमस्कारोपलक्षितैः स्तोत्रैरथवान्नैः सहेंदवः सोमाः प्रासृक्षत। प्राप्नुवंति। किमर्थं। महे महते भराय संग्रामाय। कीदृशाः। कारिणो बलकरणशीलाः ॥

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः। शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६॥

पुनानः। रूपे। अव्यये। विश्वाः। अर्षन्। अभि। श्रियः। शूरः। न। गोषु। तिष्ठति ॥६॥

अव्ययेऽविमये रूपे रूप्यमाणे वस्त्रे पुनानः पूयमानो विश्वाः सर्वाः श्रियः शोभा अभ्यर्षन्नभिगच्छन्गोषु निमित्तासु शूरो न शूर इव स यथा संग्रामे तिष्ठति तद्वद्दर्शा तिष्ठति पात्रे ॥

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः। वृथा पवित्रे अर्षति ॥७॥

दिवः। न। सानु। पिप्युषी। धारा। सुतस्य। वेधसः। वृथा। पवित्रे। अर्षति ॥७॥

दिवो न द्युलोकादंतरिक्षादिव सानु समुच्छ्रितमुदकं तद्यथाधो निपतति तद्वद्वेधसो विधातुर्बलस्य कर्तुः सुतस्याभिषुतस्य सोमस्य पिप्युष्याप्याययंती धारा वृथानायासेनैव पवित्रे दशापवित्रेऽर्षति। गच्छति ॥

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु। अव्यो वारं वि धावसि ॥८॥

त्वं। सोम। विपःऽचितं। तना। पुनानः। आयुषु। अव्यः। वारं। वि। धावसि ॥८॥

हे सोम त्वं विपश्चितं स्तोतारमायुषु मनुष्येषु मध्ये रक्षसि । अथवा । तृतीयार्थे द्वितीया । विपश्चिताध्वर्युणा । तना वस्त्रेण पुनानः पूयमानः । अथवा । विपश्चितमिंद्रं प्रीणयितुं तना पुनानः सन् । अव्यो वारमवेर्वालं वि धावसि । विविधं गच्छसि ॥ ॥ ६ ॥

प्र निम्नेनेवेत्यष्टर्चं सप्तदशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र निम्नेनेवेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र निम्नेनेव सिंधवो घ्नंतो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः ॥१॥

प्र । निम्नेनऽइव । सिंधवः । घ्नंतः । वृत्राणि । भूर्णयः । सोमाः । असृग्रं । आशवः ॥१॥

निम्नेन प्रवणेन देशेन सिंधवो नद्य इव तथा वृत्राणि शत्रून् घ्नंतो भूर्णयः चिप्रगमना आशवो व्याप्ताः सोमाः प्रासृग्रं । प्रगच्छंति द्रोणकलशं प्रति ॥

अभि सुवानास इंदवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इंद्रं सोमासो अक्षरन् ॥२॥

अभि । सुवानासः । इंदवः । वृष्टयः । पृथिवींऽइव । इंद्रं । सोमासः । अक्षरन् ॥२॥

सुवानासः सूयमाना इंदवो द्रवद्रूपाः सोमासः सोमा इंद्रं प्रीणयितुमभ्यक्षरन् । किमिव । वृष्टयः पृथिवीमिव ॥

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३॥

अतिऽऊर्मिः । मत्सरः । मदः । सोमः । पवित्रे । अर्षति । विऽघ्नन् । रक्षांसि । देवऽयुः ॥३॥

अत्यूर्मिः । अतिक्रांता ऊर्मयो यस्मात्सोऽत्यूर्मिः । अतिप्रवृद्ध इत्यर्थः । मत्सरो मादनशीलो मदो मदात्मकः सोमः पवित्रेऽर्षति । गच्छति । किं कुर्वन् । रक्षांसि विघ्नन् घातयन्देवयुर्देवान्कामयमानोऽर्षतीति संबंधः ॥

पवित्रेष्ट्यां द्वितीयाज्यभागस्या कलशेष्विति याज्या । सूत्रितं च । आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यत इत्येका । आ॰ ५. १२. । इति ॥

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

आ । कलशेषु । धावति । पवित्रे । परि । सिच्यते । उक्थैः । यज्ञेषु । वर्धते ॥४॥

अयं सोमः कलशेष्वा धावति । तदर्थं पवित्रे परि षिच्यतेऽध्वर्युभिः । उक्थैः स्तोत्रैर्यज्ञेषु निमित्तेषु वर्धते । प्रवृद्धो भवति ॥

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवं । इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥५॥

अति । त्री । सोम । रोचना । रोहन् । न । भ्राजसे । दिवं । इष्णन् । सूर्यं । न । चोदयः ॥५॥

हे सोम त्वं त्री रोचना त्रीणि रोचनानि त्रीँल्लोकानत्यतिक्रम्य रोहन्नुपरिस्थं दिवं द्युलोकं भ्राजसे । प्रकाशयसि । तथेष्णन्गच्छन्सूर्यं न सूर्यं च चोदयः । चोदयसि । प्रेरयसि । नशब्दश्चार्थे ॥

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियं ॥६॥

अभि । विप्राः । अनूषत । मूर्धन् । यज्ञस्य । कारवः । दधानाः । चक्षसि । प्रियं ॥६॥

अभ्यनूषत अभिष्टुवंति विप्रा मेधाविनः स्तोतारः । कुत्र । यज्ञस्य मूर्धन्मूर्धनि । शिरोवदुत्तमेऽभिषवदिवस

इत्यर्थः। कीदृशास्ते। कारवः कर्तारः परिचर्यायाः यागानुष्ठातारो वा। पवसि द्रष्टरि सोमे प्रियं दधाना अभ्यनूषतेति समन्वयः॥

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः। मृजंति देवतातये ॥७॥

तं। ऊं इति। त्वा। वाजिनं। नरः। धीभिः। विप्राः। अवस्यवः। मृजंति। देवऽतातये ॥७॥

हे सोम तमु तमेव त्वा त्वां वाजिनमन्नवंतं गमनवंतं वा नरो नेतारो विप्रा मेधाविनोऽध्वर्य्वादयो धीभिः कर्मभिर्मृजंति। शोधयंति। देवतातये यज्ञार्थं। किमिच्छवः। अवस्यवोऽन्नमिच्छवः॥

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः। चारुर्ऋताय पीतये ॥८॥

मधोः। धारां। अनु। क्षर। तीव्रः। सधऽस्थं। आ। असदः। चारुः। ऋताय। पीतये ॥८॥

हे सोम त्वं मधोर्मधुररसस्य धारामनु क्षर प्रवहन्। तीव्रस्तीव्ररसः सन्सधस्थं सहस्थानमभिषवस्थानं पवित्रं वासदः। सीद। चारुश्चरणशीलः सन्नृताय यज्ञार्थं पीतये देवानां पानाय॥ ॥७॥

परि सुवान इति सप्तर्चमष्टादशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। परि सुवानः सप्तेत्यनुक्रांतं॥ गतो विनियोगः॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः। मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

परि। सुवानः। गिरिऽस्थाः। पवित्रे। सोमः। अक्षारिति। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥१॥

अयं सोमः पवित्रे पर्यक्षाः। परिक्षरति। सुवानः सूयमानो गिरिष्ठा गिरिस्थायी। ग्रावसु वर्तमान इत्यर्थः। स त्वं मदेषु मादकेषु सोतृषु सर्वधा असि। सर्वस्य धाता दाता वा भवसि॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमंधसः। मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

त्वं। विप्रः। त्वं। कविः। मधु। प्र। जातं। अंधसः। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥२॥

हे सोम त्वं विप्रो विविधं प्रीणयिता विप्रसदृशो वा त्वं च कविर्मेधावी। अतस्त्वमंधसोऽन्नाज्जातं मधु मधुररसं प्रयच्छसीति शेषः॥

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत। मदेषु सर्वधा असि ॥३॥

तव। विश्वे। सऽजोषसः। देवासः। पीतिं। आशत। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥३॥

हे सोम तव पीतिं पानं विश्वे देवासो देवाः सजोषसः समानप्रीतयः संत आशत। प्राप्नुवन्॥

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे। मदेषु सर्वधा असि ॥४॥

आ। यः। विश्वानि। वार्या। वसूनि। हस्तयोः। दधे। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥४॥

यः सोमो विश्वानि वार्या वरणीयानि वसूनि धनानि स्तोतुर्हस्तयोरा दधे करोति। प्रयच्छतीत्यर्थः। मदेषु सर्वधा असीति। अथवा स शुष्मीत्युत्तरसंबंधः॥

य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते। मदेषु सर्वधा असि ॥५॥

यः। इमे इति। रोदसी इति। मही इति। सं। मातराऽइव। दोहते। मदेषु।
सर्वऽधाः। असि ॥५॥

यः सोम इमे मही महत्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यौ सं दोहते। उभयोः सारं परिगृह्णातीत्यर्थः। मातरेव यथा द्वे मातरावेको वत्सो दोहते तद्वत् ॥

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति। मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥
परि। यः। रोदसी इति। उभे इति। सद्यः। वाजेभिः। अर्षति। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥ ६ ॥

यः सोम उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ सद्यस्तदानीमेव वाजेभिरन्नैः पर्यर्षति परिगच्छति। सोमाहुत्या द्यावापृथिव्यावन्नवत्यौ करोतीत्यर्थः ॥

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत्। मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥
सः। शुष्मी। कलशेषु। आ। पुनानः। अचिक्रदत्। मदेषु। सर्वऽधाः। असि ॥ ७ ॥

उक्तरीत्या महान्स सोमः शुष्मी बलवान्पुनानः पूयमानः सन्नाचिक्रदत्। शब्दं करोति। अत्र सर्वत्र यथोचितमुत्तरपादो नेयः ॥ ॥ ८ ॥

यत्सोमेति सप्तर्चमेकोनविंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। यत्सोमेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु। तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥
यत्। सोम। चित्रं। उक्थ्यं। दिव्यं। पार्थिवं। वसु। तत्। नः। पुनानः। आ। भर ॥ १ ॥

हे सोम यच्चित्रं चायनीयमुक्थ्यं स्तुत्यं दिव्यं दिवि भवं पार्थिवं पृथिवीसंबद्धं च वसु धनमस्ति तन्नोऽस्मभ्यं पुनानः पूयमानः सन्ना भर। आहर ॥

युवं हि स्थः स्वर्पती इंद्रश्च सोम गोपती। ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
युवं। हि। स्थः। स्वर्पती इति स्वःऽपती। इंद्रः। च। सोम। गोपती इति गोऽपती। ईशाना। पिप्यतं। धियः ॥ २ ॥

हे सोम त्वमिंद्रश्च युवं हि युवां खलु स्वर्पती सर्वस्य स्वामिनौ स्थः। भवथः। तथा गोपती गवां पालकावीशानेश्वरौ संतौ धियोऽस्मदीयानि कर्माणि पिप्यतं। प्याययतं ॥

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि। हरिः सन्योनिमासदत् ॥ ३ ॥
वृषा। पुनानः। आयुषु। स्तनयन्। अधि। बर्हिषि। हरिः। सन्। योनिं। आ। असदत् ॥ ३ ॥

वृषा कामानां वर्षकः सोम आयुषु मनुष्येष्वध्वर्य्वादिषु पुनानः सन् स्तनयञ्छब्दं कुर्वन्नधि बर्हिषि। अधीति सप्तम्यर्थानुवादी। आस्तीर्णे दर्भे हरिर्हरितवर्णः सन्योनिं स्वकीयं स्थानमासदत्। आसीदति ॥

अवावशंत धीतयो वृषभस्याधि रेतसि। सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥
अवावशंत। धीतयः। वृषभस्य। अधि। रेतसि। सूनोः। वत्सस्य। मातरः ॥ ४ ॥

धीतयो धीयमानाः सोमाख्येन वत्सेन पीयमाना वसतीवर्यः ॥ क्तिन् व्यत्ययेनांतोदात्तः ॥ अधि रेतसि

स्वकीये सरि वृषभस्य वर्षकस्य सोमस्य । सोममित्यर्थः । अवावशंत । पुनः कामयंते । सोममाप्याययितुं कामयंत इत्यर्थः । तदेवाह । सूनोः स्वपुत्रस्थानीयस्य वत्सस्य सोमस्य मातरो निर्मात्र्यः प्रवृद्धिकामा मातृस्थानीया अवावशंतेति समन्वयः ॥

कुविद्वृषण्यंतीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । याः शुक्रं दुहते पयः ॥५॥

कुवित् । वृषण्यंतीभ्यः । पुनानः । गर्भं । आऽदधत् । याः । शुक्रं । दुहते । पयः ॥५॥

वृषण्यंतीभ्यो वृषणं सोममात्मन इच्छंतीभ्यो वसतीवरीभ्यः पुनानः पूयमानो मिश्रयमाणो गर्भं स्वगर्भस्थानीयं रसं कुविद्बहु प्रभूतमादधत् । करोति । या आपः शुक्रं दीप्तं पयो दुहते स्ववत्साय सोमाय ताभ्यो गर्भमादधत् ॥

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिं ॥६॥

उप । शिक्ष । अपऽतस्थुषः । भियसं । आ । धेहि । शत्रुषु । पवमान । विदाः । रयिं ॥६॥

हे पवमान सोम उप शिक्ष । त्वं समीपे कुरु । कान् । अपतस्थुषोऽपक्रम्य स्थितान् । अस्मदभिमतानित्यर्थः । शत्रुष्वस्मद्विरोधिषु भियसं भयमा धेहि । कुरु । जनय । अस्माकं तेषां शत्रूणां रयिं धनं विदाः । विंदसि ॥

नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर । दूरे वा सतो अंति वा ॥७॥

नि । शत्रोः । सोम । वृष्ण्यं । नि । शुष्मं । नि । वयः । तिर । दूरे । वा । सतः । अंति । वा ॥७॥

हे अभिषूयमाण सोम त्वं शत्रोर्वृष्ण्यं वर्षकं बलं नि तिर । निपूर्वस्तिरतिर्नाशार्थः । नाशय । तथा शत्रोः शुष्मं शोषकं तेजो नि तिर । तस्यैव वयोऽन्नं च नि तिर । कीदृशस्य शत्रोः । दूरे वा सतोऽस्मत्तो दूरे वर्तमानस्यांति वा सतोऽंतिके वर्तमानस्य वा ॥ ॥९॥

प्र कविरिति सप्तर्चं विंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र कविरित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥

प्र । कविः । देवऽवीतये । अव्यः । वारेभिः । अर्षति । सह्वान् । विश्वाः । अभि । स्पृधः ॥१॥

कविर्मेधावी सोमो देववीतये देवानां पानायाव्योऽवेर्वारेभिर्वारैर्दशापवित्रेण प्रार्षति । प्रकर्षेण गच्छति । साह्वाञ्शत्रूणां सोढा सोमो विश्वाः स्पृधः सर्वान्संग्रामान्हिंसकान्वाभि भवतीति शेषः ॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमंतमिन्वति । पवमानः सहस्रिणं ॥२॥

सः । हि । स्म । जरितृऽभ्यः । आ । वाजं । गोऽमंतं । इन्वति । पवमानः । सहस्रिणं ॥२॥

स हि ष्म स खलु पवमानः सोमो जरितृभ्यः स्तोतृभ्यो गोमंतं बहुभिर्गोभिर्युक्तं सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं वाजमन्नमाभिमुख्यमिन्वति । व्याप्नोति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥

परि । विश्वानि । चेतसा । मृशसे । पवसे । मती । सः । नः । सोम । श्रवः । विदः ॥३॥

हे सोम त्वं चेतसा स्वीयेनास्मदनुकूलेन चित्तेन विश्वानि सर्वाणि धनानि परि मृशसे । प्रयच्छसीत्यर्थः । मती मत्यास्मत्स्तुत्या पवसे । क्षरसि रसं । स त्वं हे सोम नोऽस्मभ्यं श्रवोऽन्नं विदः । देहि ॥

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिं। इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

अभि। अर्ष। बृहत्। यशः। मघवत्ऽभ्यः। ध्रुवं। रयिं। इषं। स्तोतृऽभ्यः। आ। भर ॥४॥

हे सोम बृहद्यशो महतीं कीर्तिमभ्यर्ष। अभिगमय। मघवद्भ्यो हविष्मद्भ्योऽस्मभ्यं ध्रुवं रयिं धनं चाभ्यर्ष। किंचेषमन्नं स्तोतृभ्योऽस्मभ्यमा भर। आहर ॥

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ। पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

त्वं। राजाऽइव। सुऽव्रतः। गिरः। सोम। आ। विवेशिथ। पुनानः। वह्ने। अद्भुत ॥५॥

हे सोम सुव्रतः सुकर्मा पुनानस्त्वं राजेव गिरोऽस्मदीयाः स्तुतीरा विवेशिथ। आविशसि। हे वह्ने वोढरद्भुत महन्सोम ॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः। सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

सः। वह्निः। अप्ऽसु। दुस्तरः। मृज्यमानः। गभस्त्योः। सोमः। चमूषु। सीदति ॥६॥

स सोमो वह्निर्वोढा यज्ञादेरप्स्वंतरिक्षे वर्तमानो दुष्टरो दुःखेनान्यैस्तरणीयो मृज्यमानः शोध्यमानो गभस्त्योर्हस्तयोरेवंभूतः सन्स चमूषु पात्रेषु सीदति ॥

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यं ॥७॥

क्रीळुः। मखः। न। मंहयुः। पवित्रं। सोम। गच्छसि। दधत्। स्तोत्रे। सुऽवीर्यं ॥७॥

हे सोम क्रीळुः क्रीडनशीलस्त्वं मंहयुः। मंहतिर्दानकर्मा। दानेच्छुर्मखो न दानमिव पवित्रं गच्छसि। किं कुर्वन्। स्तोत्रे स्तुतिकर्त्रे सुवीर्यं शोभनवीर्यं दधत्प्रयच्छन् ॥ ॥१०॥

एते धावंतीति सप्तर्चमेकविंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। एते धावंतीत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

एते धावंतींदवः सोमा इंद्राय घृष्वयः। मत्सरासः स्वर्विदः ॥१॥

एते। धावंति। इंदवः। सोमाः। इंद्राय। घृष्वयः। मत्सरासः। स्वःऽविदः ॥१॥

एते सोमा इंद्राय धावंति। गच्छंति। कीदृशा एते। इंदवः क्लेदयितारो दीप्ता वा घृष्वयो घर्षणशीला मत्सरासो मादयितारः स्वर्विदः स्वर्लोकस्य लंभयितारः ॥

प्रवृण्वंतो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः। स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥२॥

प्रऽवृण्वंतः। अभिऽयुजः। सुस्वये। वरिवःऽविदः। स्वयं। स्तोत्रे। वयःऽकृतः ॥२॥

प्रवृण्वंतः सुवानं प्रकर्षेण संभजंतः तथाभियुजोऽभियोजयितारः सुष्वये सुष्ठभिषवकर्त्रे वरिवोविदः। वरिव इति धननाम। तस्य लंभयितारः स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतोऽन्नस्य कर्तारः। एते धावंतीति संबंधः ॥

वृथा क्रीळंत इंदवः सधस्थमभ्येकमित्। सिंधोरूर्मा व्यक्षरन् ॥३॥

वृथा। क्रीळंतः। इंदवः। सधऽस्थं। अभि। एकं। इत्। सिंधोः। ऊर्मा। वि। अक्षरन् ॥३॥

वृथानायासेन क्रीळंत इंदवः सोमा एकमिदेकमेव सधस्थं सहस्थानं द्रोणकलशं वाभ्यक्षरन्निति शेषः। सिंधोरूर्मा वसतीवरीषु व्यक्षरन् ॥

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ॥४॥

एते । विश्वानि । वार्या । पवमानासः । आशत । हिताः । न । सप्तयः । रथे ॥४॥

एते सोमाः पवमानासः पूयमाना विश्वानि वार्या वार्याणि वरणीयानि धनान्याशत । व्याप्नुवन् । रथे हिताः स्थापिता न सप्तयोऽश्वा इव । ते यथा रथमभिमतं देशं प्राप्नुवंति तद्वद्धनमस्माकं प्रायच्छन्नित्यर्थः ॥

आस्मिन्पिशंगमिंदवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ॥५॥

आ । अस्मिन् । पिशंगं । इंदवः । दधात । वेनं । आऽदिशे । यः । अस्मभ्यं । अरावा ॥५॥

हे इंदवः सोमाः अस्मिन्यजमाने पिशंगं बहुरूपं मणिमुक्ताहिरण्यादिभेदेन नानारूपं वेनं कामयंतं बहुविधं काममादिशेऽस्मभ्यमादेशनाया दधात । आयच्छत । यो यजमानोऽस्मभ्यमरावा ----- प्रयच्छति प्राप्तकाम एव खल्वृत्विग्भ्यः प्रयच्छति ॥

ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥६॥

ऋभुः । न । रथ्यं । नवं । दधात । केतं । आऽदिशे । शुक्राः । पवध्वं । अर्णसा ॥६॥

ऋभुर्नोरु भासमानो रथस्वामीव स यथा रथ्यं रथस्य नेतारं नवं स्तुत्यं कुशलं सारथिनमत्र आधत्ते तद्वदस्मदीयेऽस्मिन्नादिशे स्वामिनि केतं प्रज्ञानं दधात । स्थापयत । हे सोमाः योऽस्मभ्यं प्रयच्छति तस्मिन्नित्यर्थः । हे सोमाः अर्णसोदकेन शुक्रा दीप्ताः संतः पवध्वं । क्षरध्वं ॥

एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिं ॥७॥

एते । ऊं इति । त्ये । अवीवशन् । काष्ठां । वाजिनः । अक्रत । सतः । प्र । असाविषुः । मतिं ॥७॥

त्ये त एत उ एत एव सोमा अवीवशन् । कामयंते यज्ञं । कांत्वा च वाजिनो बलवंतोऽन्नवंतो वा सोमाः काष्ठामक्रत । निवासस्थानमकुर्वन् । द्रोणकलशादुन्नता ग्रहानित्यर्थः । सतो यजमानस्य स्तोतुर्वा मतिं बुद्धिं स्तुतिं वा प्रासाविषुः । प्रेरयन् ॥ ॥११॥

एते सोमास इति सप्तर्चं द्वाविंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । एते सोमास इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः । सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥१॥

एते । सोमासः । आशवः । रथाःऽइव । प्र । वाजिनः । सर्गाः । सृष्टाः । अहेषत ॥१॥

एते पूयमानाः सोमासः सोमाः सृष्टा अध्वर्युणाशवो दशापवित्रादधोगमने शीघ्राः प्राहेषत । प्रहेषंते । शीघ्रगमने दृष्टांतद्वयं । आवौ सृष्टाः शीघ्रा रथा इव तथोक्तलक्षणा वाजिन इव वेजनवंतोऽश्वा इव ॥

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥

एते । वाताःऽइव । उरवः । पर्जन्यस्यऽइव । वृष्टयः । अग्नेःऽइव । भ्रमाः । वृथा ॥२॥

एते सोमा उरवो महांतो वाता इव वायव इव वृथानायासेन व्याप्नुवन्नित्युत्तरत्र संबंधनीयं । अथवाध्याहारेण निःसरंतीति योज्यं । तथा पर्जन्यस्य वृष्टय इव वर्षा यथा तथैव । किंचाग्नेर्भ्रमा भ्रमणा ज्वालासंचारा इव ॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । विपा व्यानशुर्धियः ॥३॥

एते । पूताः । विपःऽचितः । सोमासः । दधिऽआशिरः । विपा । वि । आनशुः । धियः ॥३॥

एते सोमासः सोमाः पूताः शुद्धा विपश्चितः प्राज्ञा दध्याशिरो दध्याश्रयणा विपा प्रज्ञानेन धियो ऽस्मदीयानि कर्माणि व्यानशुः । व्याप्नुवंति ॥

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः । इयक्षंतः पथो रजः ॥४॥

एते । मृष्टाः । अमर्त्याः । ससृऽवांसः । न । शश्रमुः । इयक्षंतः । पथः । रजः ॥४॥

एते सोमा मृष्टा दशापवित्रेण शोधिता अमर्त्या अमरणधर्माणः सस्र्वांसो हविर्धानात्सरंतः पथो मार्गान्रजो लोकांश्चेयक्षंतो गंतुमिच्छंतो न शश्रमुः । न श्राम्यंति ॥

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयंतो व्यानशुः । उतेदमुत्तमं रजः ॥५॥

एते । पृष्ठानि । रोदसोः । विऽप्रयंतः । वि । आनशुः । उत । इदं । उत्ऽतमं । रजः ॥५॥

एते सोमा रोदसोर्द्यावापृथिव्योः पृष्ठानि विप्रयंतो विविधं गच्छंतो व्यानशुः । व्याप्नुवंति । उतापि चेद-मुत्तमं रजो द्युलोकं व्यानशुः । आक्रतिद्वारेणेति भावः । रोदसोरित्यत्रांतरिक्षोऽभिप्रेतः ॥

तंतुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत । उतेदमुत्तमाय्यं ॥६॥

तंतुं । तन्वानं । उत्ऽतमं । अनु । प्रऽवतः । आशत । उत । इदं । उत्तमाय्यं ॥६॥

तंतुं यज्ञं तन्वानमुत्तममुत्कृष्टं सोममन्वाशत प्रवतो नद्यः । उतापि चेदं कर्मानेन सोमेनोत्तमाय्यमुत्तमी-कृतं । अथवा । तंतुं तन्वानं सोमं प्रवतोऽधःस्थिताः सर्वा अन्वाशत । उतेदमुत्तमाय्यं रजः । द्युलोक इत्यर्थः । सोऽप्यन्वश्नुते पृथिव्यां चांतरिक्षे च । उत्तमीकृतमुत्तमाय्यं ॥

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तंतुमचिक्रदः ॥७॥

त्वं । सोम । पणिऽभ्यः । आ । वसु । गव्यानि । धारयः । ततं । तंतुं । अचिक्रदः ॥७॥

हे सोम त्वं पणिभ्योऽसुरेभ्यो लुब्धकेभ्यो वा सकाशाद्गव्यानि गोहितानि वसु वसूनि गोयूथानि वसूनि चेति वाहृत्य धारयः । धारयसि । तथा तंतुं यज्ञं प्रति ततं विस्तृतं यथा भवति तथाचिक्रदः । शब्दम-कार्षीः ॥ ॥१२॥

सोमा असृग्रमिति सप्तर्चं त्रयोविंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । सोमा असृग्रमित्यनुक्रांतं ॥ गतो वि-नियोगः ॥

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

सोमाः । असृग्रं । आशवः । मधोः । मदस्य । धारया । अभि । विश्वानि । काव्या ॥१॥

आशवः शीघ्राः सोमा असृग्रं । असृग्रन् । सृज्यंते । मधोर्मधुरस्य मदस्य मदकरस्य धारयासृग्रमिति संबंधः । किं प्रति उच्यते । अभि लक्षीकृत्य विश्वानि सर्वाणि काव्या काव्यानि स्तोत्राणि प्रति । स्तोत्रसमय इत्यर्थः ॥

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनंत सूर्यं ॥२॥

अनु । प्रत्नासः । आयवः । पदं । नवीयः । अक्रमुः । रुचे । जनंत । सूर्यं ॥२॥

प्रत्नासः पुराणाः केचिदायवः शीघ्रगमना अश्वा नवीयो नवतरं पदमन्वक्रमुः । अनुक्रमंते । रूपकव्याहारेण सोमाः सूयंते । रुचे दीप्त्यै सूर्यं जनंत । कुर्वंति । दीप्तं कुर्वंतीत्यर्थः । सोमप्यायनेन हि चंद्रो रोचते ॥

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयं । कृधि प्रजावतीरिषः ॥३॥

आ । पवमान । नः । भर । अर्यः । अदाशुषः । गयं । कृधि । प्रजाऽवतीः । इषः ॥३॥

हे पवमान सोम त्वं नोऽस्मभ्यमर्योऽरिरदाशुषोऽप्रयच्छतो गयं गृहं गृहोपलक्षितं धनमा भर । आहर । तथास्मभ्यं प्रजावतीरिषश्च कृधि । कुरु ॥

अभि सोमास आयवः पवंते मद्यं मदं । अभि कोशं मधुश्चुतं ॥४॥

अभि । सोमासः । आयवः । पवंते । मद्यं । मदं । अभि । कोशं । मधुऽश्चुतं ॥४॥

आयवो गंतारः सोमासः सोमा मद्यं मदकरं रसमभि पवंते । चरंति । तथा मधुश्चुतं मधुस्राविणं कोशं । रसाधारेण कोशशब्देन तत्रामिश्रितो रसो लक्ष्यते । तमभि पवंत इति शेषः ॥

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इंद्रियं रसं । सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५॥

सोमः । अर्षति । धर्णसिः । दधानः । इंद्रियं । रसं । सुऽवीरः । अभिशस्तिऽपाः ॥५॥

सोमोऽर्षति । गच्छति । कीदृशः सः । धर्णसिर्धारको जगतां तथेंद्रियमिंद्रियवर्धकं रसं दधानो धारयन्सुवीरः सुवीर्योऽभिशस्तिपा अभिशस्तेः पाता । अभितो हिंसा ततो रक्षक इत्यर्थः । सोमपानं ब्रह्महत्यादिनिंदामनुमार्ष्टीति प्रसिद्धं ॥

इंद्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः । इंदो वाजं सिषाससि ॥६॥

इंद्राय । सोम । पवसे । देवेभ्यः । सधऽमाद्यः । इंदो इति । वाजं । सिसासति ॥६॥

हे सोम सधमाद्यः । सधमादो यज्ञः । तदर्हस्त्वमिंद्राय देवेभ्यश्चान्येभ्यः पवसे । चरसि । हे तादृशेंदो सोम अस्मभ्यं वाजमन्नं सिषासति । दातुमिच्छसि ॥

अस्य पीत्वा मदानामिंद्रो वृत्राण्यप्रति । जघान जघनच्च नु ॥७॥

अस्य । पीत्वा । मदानां । इंद्रः । वृत्राणि । अप्रति । जघान । जघनत् । च । नु ॥७॥

मदानां मदकराणां मध्येऽतिशयेन मदकरमस्यामुं सोमं पीत्वा वृत्राणि शत्रूनप्रतिगतः सन्निंद्रो जघान । हतवान् । नु क्षिप्रं जघनच्च । हंतु चेदानीमपि ॥ ॥१३॥

प्र सोमास इति सप्तर्चं चतुर्विंशं सूक्तं । असितो देवलो वर्षिर्गायत्री छंदः सोमो देवता । प्र सोमास इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इंदवः । श्रीणाना अप्सु मृंजत ॥१॥

प्र । सोमासः । अधन्विषुः । पवमानासः । इंदवः । श्रीणानाः । अप्ऽसु । मृंजत ॥१॥

सोमासः सोमाः पवमानासः पूयमाना इंदवो दीप्ताः प्राधन्विषुः । धन्वतिर्गतिकर्मा । प्रगच्छंति । किंच श्रीणाना गोभिः श्रयमाणा अप्सु वसतीवरीषु च मृंजत । मृज्यंते ॥

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इंद्रमाशत ॥२॥

अभि । गावः । अधन्विषुः । आपः । न । प्रऽवता । यतीः । पुनानाः । इंद्रं । आशत ॥२॥

गावो गमनशीला इंद्वोऽभ्यधन्विषुः। अभिगच्छंति दशापवित्रं। किमिव। प्रवता प्रवणवता देशेन यतीर्गच्छंत्य आपो नाप इव। पश्चात्पुनाना इंद्रं प्रीणयितुमाशत। व्याप्नुवन्। आहुतिप्रणाड्येंद्रमेव वा व्याप्नुवन्॥

प्र पवमान धन्वसि सोमेंद्राय पातवे। नृभिर्यतो वि नीयसे॥३॥

प्र। पवमान। धन्वसि। सोम। इंद्राय। पातवे। नृऽभिः। यतः। वि। नीयसे॥३॥

हे पवमान सोम इंद्रायेंद्रस्य पातवे पानाय प्र धन्वसि। प्रगच्छस्याहवनीयं प्रति हविर्धानात्। तदेवाह। नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिर्यतो विनीतो वि नीयसे हविर्धानात्। अथवा। पवमान प्र धन्वसि पात्रं प्रतींद्रपानाय तदर्थं हविर्धानाद्वि नीयसे॥

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे। सस्निर्यो अनुमाद्यः॥४॥

त्वं। सोम। नृऽमादनः। पवस्व। चर्षणिऽसहे। सस्निः। यः। अनुऽमाद्यः॥४॥

हे सोम त्वं नृमादनो नृणां मादयिता त्वं चर्षणीसहे। चर्षणयो मनुष्या द्वेष्टारः। तेषां समभिभवित्र इंद्राय पवस्व। क्षर। यस्त्वं सस्निः शुद्धोऽनुमाद्यः स्तुत्यः स पवस्वेति समन्वयः॥

इंदो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि। अरमिंद्रस्य धाम्ने॥५॥

इंदो इति। यत्। अद्रिऽभिः। सुतः। पवित्रं। परिऽधावसि। अरं। इंद्रस्य। धाम्ने॥५॥

हे इंदो त्वं यद्यदाद्रिभिर्ग्रावभिः सुतोऽभिषुतः पवित्रं दशापवित्रं परिधावसि परिगच्छसि तदेंद्रस्य धाम्ने स्थानायाधारकायोदराय वारं पर्याप्तो भवसि॥

पवस्व वृत्रहंतमोक्थेभिरनुमाद्यः। शुचिः पावको अद्भुतः॥६॥

पवस्व। वृत्रहन्ऽतम। उक्थेभिः। अनुऽमाद्यः। शुचिः। पावकः। अद्भुतः॥६॥

हे वृत्रहंतम शत्रूणामतिशयेन हंतरिंद्र त्वं पवस्व। क्षर। कीदृशस्त्वं। उक्थेभिः शस्त्रैरनुमाद्यः स्तुत्यः शुचिः शुद्धः पावकोऽन्यस्य शोधकोऽद्भुतो महान्। एवंमहानुभावः पवस्व॥

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः। देवावीरघशंसहा॥७॥

शुचिः। पावकः। उच्यते। सोमः। सुतस्य। मध्वः। देवऽअवीः। अघशंसऽहा॥७॥

सुतस्याभिषुतस्य मध्वो मदकरस्य वक्ष्यात्मकः सोमो रसरूपः शुचिः स्वयं शुद्धः पावकः शोधकश्चोच्यते। तथा देवावीर्देवानामविता तर्पयिताघशंसहा। अघं पापं शंसंतीत्यघशंसा असुराः। तेषां हंतेति चोच्यते॥ ॥१४॥ ॥१॥

द्वितीयेऽनुवाके षड्विंशत्सूक्तानि। तत्र पवस्वेति षडृचं प्रथमं सूक्तं दृळ्हच्युतनाम्नोऽगस्त्यपुत्रस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। अनुक्रांतं च। पवस्व षड् दृळ्हच्युत आगस्त्य इति॥ गतो विनियोगः॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे। मरुद्भ्यो वायवे मदः॥१॥

पवस्व। दक्षऽसाधनः। देवेभ्यः। पीतये। हरे। मरुत्ऽभ्यः। वायवे। मदः॥१॥

हे हरे हरितवर्ण पापहर्तर्वा सोम दक्षसाधनः। दक्षो बलं। तस्य साधको मदो मदकरस्त्वं पवस्व। क्षर। देवेभ्य इंद्रादिभ्यः पीतये पानाय। तथा मरुद्भ्यो वायवे च पीतये पवस्व॥

पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्। धर्मणा वायुमा विश ॥२॥

पवमान। धिया। हितः। अभि। योनिं। कनिक्रदत्। धर्मणा। वायुं। आ। विश ॥२॥

हे पवमान सोम धिया कर्मणाध्वर्य्वादिपरिणाङ्गुल्या वा हितो धृतः सन्कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्योनिं स्थानं ग्रहं वाभि विशेति शेषः। तदेवाह। धर्मणा वायुं। वायुसंबंधि पात्रमित्यर्थः। तदा विश। प्रविश ॥

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः। वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

सं। देवैः। शोभते। वृषा। कविः। योनौ। अधि। प्रियः। वृत्रऽहा। देवऽवीतमः ॥३॥

अयं सोमः सं शोभते देवैः सह योनौ स्थाने स्वीयेऽधिष्ठितो वृषा कामानां वर्षकः कविः क्रांतप्रज्ञः प्रियः प्रियभूतः सर्वेषां यद्वा प्रीणयिता वृत्रहा वृत्रस्य हंता देववीतमोऽतिशयेन देवान्कामयमानः एवंमहानुभावः सोमः सं शोभते ॥

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः। यत्रामृतास आसते ॥४॥

विश्वा। रूपाणि। आऽविशन्। पुनानः। याति। हर्यतः। यत्र। अमृतासः। आसते ॥४॥

विश्वा सर्वाणि रूपाण्याविशन्पुनानः पूयमानो हर्यतः कमनीयः ॥ हर्य गतिकांत्योः ॥ ईदृशो याति। गच्छति। यत्रामृतासोऽमृता देवा आसते तिष्ठंति तं देशं याति ॥

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक्। इंद्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥५॥

अरुषः। जनयन्। गिरः। सोमः। पवते। आयुषक्। इंद्रं। गच्छन्। कविऽक्रतुः ॥५॥

अरुष आरोचमानः सोमो गिरः शब्दाञ्जनयन्पवते। क्षरति। किं कुर्वन्। आयुषगनुषक्तमिंद्रं गच्छन्व्याप्नुवन् कविक्रतुः क्रांतप्रज्ञः ॥

आ पवस्व मदिंतम पवित्रं धारया कवे। अर्कस्य योनिमासदं ॥६॥

आ। पवस्व। मदिन्ऽतम। पवित्रं। धारया। कवे। अर्कस्य। योनिं। आऽसदं ॥६॥

हे मदिंतम मादयितृतम कवे क्रांतप्रज्ञ सोम त्वं पवित्रमतिक्रम्य धारया पवस्व। किमर्थं। अर्कस्यार्चनीयस्येंद्रस्य योनिं स्थानमासदं प्राप्तुं ॥ ॥१५॥

तममृक्षंतेति षडृचं द्वितीयं सूक्तं दृळ्हच्युतपुत्रस्येध्मवाहनाम्न आर्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। अनुक्रांतं च। तममृक्षंतेध्मवाहो दार्ढच्युत इति ॥ गतो विनियोगः ॥

तममृक्षंत वाजिनमुपस्थे अदितेरधि। विप्रासो अण्व्या धिया ॥१॥

तं। अमृक्षंत। वाजिनं। उपऽस्थे। अदितेः। अधि। विप्रासः। अण्व्या। धिया ॥१॥

तं वाजिनमश्वमश्ववदाशुं। व्याप्तमित्यर्थः। अदितेः पृथिव्या उपस्थ उत्संगे। अधीति सप्तम्यर्थानुवादी। अमृक्षंत। शोधितवंतः। के। विप्रासो मेधाविनोऽध्वर्य्वादयः। केन साधनेन। अण्व्याङ्गुल्या धिया प्रज्ञया स्तुत्या वामृक्षंत। अथवाण्व्या सूक्ष्मया धियाङ्गुल्येति विशेष्यविशेषणभावः ॥

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितं। इंदुं धर्तारमा दिवः ॥२॥

तं। गावः। अभि। अनूषत। सहस्रऽधारं। अक्षितं। इंदुं। धर्तारं। आ। दिवः ॥२॥

तं सोमं गावो गंत्र्यः स्तुतयोऽभ्यनूषत । अस्तुवन् । कीदृशं तं । सहस्रधारं बहुधारमक्षितमक्षीणमिंदुं दीप्तं दिवो द्युलोकस्य धर्तारं सर्वतो धारकं । सोमाधारत्वाद्युलोकवासिनां संस्थानस्य ॥

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि । धर्णसिं भूरिधायसं ॥३॥

तं । वेधां । मेधया । अह्यन् । पवमानं । अधि । द्यवि । धर्णसिं । भूरिऽधायसं ॥३॥

वेधां विधातारं पवमानं तं मेधया प्रज्ञयाह्यन् । प्रहिण्वंति । किं प्रति । अधि द्यवि द्युलोकं प्रति । पुनः कीदृशं । धर्णसिं सर्वस्य धारकं भूरिधायसं बहूनां कर्तारं ॥

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः । पतिं वाचो अदाभ्यं ॥४॥

तं । अह्यन् । भुरिजोः । धिया । संऽवसानं । विवस्वतः । पतिं । वाचः । अदाभ्यं ॥४॥

तं सोमं विवस्वतः परिचरत ऋत्विजो भूरिजोर्बाह्वोर्धियांगुल्याह्यन् । प्राहिण्वन् । कीदृशं तं । संवसानं वसंतं पात्रे वाचः स्तुतेः पतिं स्वामिनमदाभ्यमदंभनीयं ॥

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । हर्यतं भूरिचक्षसं ॥५॥

तं । सानौ । अधि । जामयः । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । हर्यतं । भूरिऽचक्षसं ॥५॥

तं सोमं हरिं हरितवर्णं सानावधि समुच्छ्रिते देशे । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । जामयोऽंगुलयो हिन्वंति । प्रेरयंति । अधिषुण्वंत्यद्रिभिर्ग्रावभिः । कीदृशं । हर्यतं कमनीयं भूरिचक्षसं बहुद्रष्टारं ॥

तं त्वा हिन्वंति वेधसः पवमान गिरावृधं । इंदविंद्राय मत्सरं ॥६॥

तं । त्वा । हिन्वंति । वेधसः । पवमान । गिराऽवृधं । इंदो इति । इंद्राय । मत्सरं ॥६॥

हे पवमान सोम उक्तगुणविशिष्टं त्वा त्वां हिन्वंति । प्रेरयंति । कस्मै । इंद्राय । के । वेधसो विधातार ऋत्विजः । कीदृशं त्वां । गिरावृधं स्तुत्या वर्धमानमिंदुं दीप्तं सद्रूपं वा मत्सरं मदकरं ॥ ॥१६॥

एष कविरिति षड्टचं तृतीयं सूक्तं नृमेधनाम्न आंगिरसस्यार्षं गायत्रं सौम्यं । एष कविर्नृमेध इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१॥

एषः । कविः । अभिऽस्तुतः । पवित्रे । अधि । तोशते । पुनानः । घ्नन् । अप । स्रिधः ॥१॥

एष सोमः कविर्मेधाव्यभिष्टुतोऽभितः स्तुतः पवित्रेऽधि दशापवित्रमतीत्य तोशते । यद्यपि तोशतिर्वधकर्मा तथापि हनने गतिसद्भावादत्र गतिमात्रे वर्तते । गच्छतीत्यर्थः । अथवा । पवित्रेऽधि कृष्णाजिने तोशते । हन्यते । पीड्यत इत्यर्थः । किं कुर्वन् । पुनानः पूयमानः स्रिधः शत्रूनप घ्नन्नपगमयन् ॥

एष इंद्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

एषः । इंद्राय । वायवे । स्वःऽजित् । परि । सिच्यते । पवित्रे । दक्षऽसाधनः ॥२॥

एष सोमः स्वर्जित्स्वर्गस्य सर्वस्य वा जेतेंद्राय वायवे च पवित्रे परि षिच्यते । कीदृश एषः । दक्षसाधनो बलकारी ॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

एषः । नृऽभिः । वि । नीयते । दिवः । मूर्धा । वृषा । सुतः । सोमः । वनेषु । विश्वऽवित् ॥३॥

एष सोमो नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिर्वि नीयते। विविधं नीयते। एष कीदृशः। दिवो द्युलोकस्य मूर्धा शिरोवत्प्रधानभूतो वृषाभिमतवर्षकः सुतोऽभिषुतः। कुत्र नीयते। वनेषु वननीयेषु पात्रेषु वनसंभूतद्रुमविकारेषु वा पात्रेषु। विश्ववित्सर्वज्ञ एष इति समन्वयः ॥

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः। इंदुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

एषः। गव्युः। अचिक्रदत्। पवमानः। हिरण्यऽयुः। इंदुः। सत्राऽजित्। अस्तृतः ॥४॥

एष सोमः पवमानः पूयमानोऽचिक्रदत्। शब्दं करोति। कथंभूतः सन्। गव्युरस्माकं गा इच्छन् हिरण्ययुर्धनमिच्छन्निंदुर्दीप्तः सन्सत्राजिन्महतः शत्रोरसुरादेर्जेतास्तृतः स्वयमन्यैरहिंस्यश्च सन् ॥

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि। पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

एषः। सूर्येण। हासते। पवमानः। अधि। द्यवि। पवित्रे। मत्सरः। मदः ॥५॥

एष पवमानः पूयमानः सोमः सूर्येण देवेनाधि द्यवि द्युलोकेऽंतरिक्षे पवित्रे हासते। परित्यज्यते। मत्सरो मदकरो मदः सोमः। यद्यप्यध्वर्युहस्ताद्दशापवित्रे परित्यज्यते सोमः तथाप्यंतरिक्षे सूर्येण पवित्रे त्यज्यत इति भावना वीर्यवत्त्वाय। सत्स्वप्यन्यदेवेषु सोमस्रावणे सूर्यस्य कः प्रसंग इति न वाच्यं सूर्यरश्मिभिरेव सोमस्याप्यायनात् ॥

एष शुष्म्यसिष्यददंतरिक्षे वृषा हरिः। पुनान इंदुरिंद्रमा ॥६॥

एषः। शुष्मी। असिस्यदत्। अंतरिक्षे। वृषा। हरिः। पुनानः। इंदुः। इंद्रं। आ ॥६॥

एष शुष्मी बलवान्सोमोऽंतरिक्षे दशापवित्रेऽसिष्यदत्। स्यंदते। कीदृश एषः। वृषा वर्षको हरिर्हरितवर्णः पुनानः पूयमान इंदुर्दीप्तश्चेंद्रमा। इंद्रं चाभिगच्छतीति शेषः। आ इति चार्थे ॥ ॥१७॥

एष वाजीति षडृचं चतुर्थं सूक्तं प्रियमेधस्यार्षं गायत्रं सौम्यं। एष वाजी प्रियमेध इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः। अव्यो वारं वि धावति ॥१॥

एषः। वाजी। हितः। नृऽभिः। विश्वऽवित्। मनसः। पतिः। अव्यः। वारं। वि। धावति ॥१॥

एष सोमो वाजी गमनशीलो हितोऽध्वर्युणा पात्रे निहितो विश्ववित्सर्वज्ञो मनसः स्तोत्रस्य पतिः स्वामी। अथवा सोमस्य मनोभिमानित्वान्मनसः स्वामित्वं चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशदिति श्रुतेः। तादृशोऽसावव्यो वारमवेर्वालं दशापवित्रं वि धावति। विविधं गच्छति ॥

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः। विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

एषः। पवित्रे। अक्षरत्। सोमः। देवेभ्यः। सुतः। विश्वा। धामानि। आऽविशन् ॥२॥

एष सोमो देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिषुतः सन्पवित्रेऽक्षरत्। स्रवति। विश्वा सर्वाणि धामानि देवशरीराण्याविशन्प्रविशन्। प्रवेष्टुमित्यर्थः ॥

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः। वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

एषः। देवः। शुभायते। अधि। योनौ। अमर्त्यः। वृत्रऽहा। देवऽवीतमः ॥३॥

एष सोमो देवः शुभायते। शोभते। कुत्र। अधि योनौ स्वीये स्थाने। कीदृश एषः। अमर्त्योऽमरणधर्मा वृत्रहा शत्रुहंता देववीतमो विशेषेण देवानां कामयिता ॥

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥४॥
एषः । वृषा । कनिक्रदत् । दशऽभिः । जामिऽभिः । यतः । अभि । द्रोणानि । धावति ॥४॥

एष वृषा वर्षिता कामानां कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्दशभिर्जामिभिरंगुलीभिर्यतो धृतो द्रोणानि द्रुममयाणि पात्राण्यभि धावति । अभिगच्छति ॥

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५॥
एषः । सूर्यं । अरोचयत् । पवमानः । विऽचर्षणिः । विश्वा । धामानि । विश्वऽवित् ॥५॥

एष सोमः सूर्यमरोचयत् । रोचयति स्वरसेन । पवमानः पूयमानो विचर्षणिः सर्वस्य द्रष्टा विश्ववित्स-र्ववित् । न केवलं सूर्यं किंतु विश्वा सर्वाणि धामानि तेजःस्थानानि रोचयति ॥

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥६॥
एषः । शुष्मी । अदाभ्यः । सोमः । पुनानः । अर्षति । देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥६॥

एष सोमः शुष्मी बलवानदाभ्योऽदंभनीयः पुनानः पूयमानोऽर्षति । गच्छति । देवावीर्देवानामविताघ-शंसहा । अघान्यशंसंतीत्यघशंसाः । तेषां हंता ॥ ॥१८॥

प्रास्येति षड्टचं पंचमं सूक्तं नृमेधस्यांगिरसस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । अनुक्रम्यते च । प्रास्य नृमेध इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥
प्र । अस्य । धाराः । अक्षरन् । वृष्णः । सुतस्य । ओजसा । देवान् । अनु । प्रऽभूषतः ॥१॥

अस्य सोमस्य वृष्णो वर्षकस्य सुतस्याभिषुतस्य देवाननु प्रभूषतः प्रभवितुमिच्छत ओजसा स्ववीर्येण धाराः प्राक्षरन् । प्रकर्षेण क्षरंति ॥

सप्तिं मृजंति वेधसो गृणंतः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यं ॥२॥
सप्तिं । मृजंति । वेधसः । गृणंतः । कारवः । गिरा । ज्योतिः । जज्ञानं । उक्थ्यं ॥२॥

सप्तिमश्वस्थानीयं सर्पणस्वभावं वा सोमं मृजंति । शोधयंति । के । गृणंतः स्तुवंतो वेधसो विधातारः कारवः कर्मकर्तारोऽध्वर्य्वादयो गिरा स्तुत्या साधनेन । कीदृशं सप्तिं । ज्योतिर्दीप्यमानं सोमं जज्ञानं जाय-मानं । प्रवृद्धमित्यर्थः । अथवा ज्योतिर्जायमानं अयं वै ज्योतिर्यत्सोम इति श्रुतेः । उक्थ्यं स्तुत्यं ॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यं ॥३॥
सुऽसहा । सोम । तानि । ते । पुनानाय । प्रभूवसो इति प्रभुऽवसो । वर्ध । समुद्रं । उक्थ्यं ॥३॥

हे सोम प्रभूवसो प्रभूतधन पुनानाय पूयमानस्य ते तव तानि तेजांसि सुषहा शोभनाभिभावुकानि । यस्मादेवं तस्मात्समुद्रं समुद्रसदृशं द्रोणकलशमुक्थ्यं स्तुत्यं तं वर्ध । वर्धय । पूरय रसेन ॥

विश्वा वसूनि संजयन्पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥४॥
विश्वा । वसूनि । संऽजयन् । पवस्व । सोम । धारया । इनु । द्वेषांसि । सध्र्यक् ॥४॥

हे सोम विश्वा सर्वाणि वसून्यस्मदर्थं संजयन्पवस्व । क्षर धारया । द्वेषांसि द्वेष्याणि सर्वाणि सध्र्यक्सहैवेनु । प्रेरय दूरदेशं प्रति ॥

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ॥५॥

रक्ष । सु । नः । अररुषः । स्वनात् । समस्य । कस्य । चित् । निदः । यत्र । मुमुच्महे ॥५॥

हे सोम नोऽस्मान्सु सुष्ठु रक्ष । पालय । कस्मात् । अररुषोऽदातुः स्वनाच्छब्दान्निंदारूपात् । किमेकस्यादानशीलस्य । न । समस्य सर्वस्य योऽस्ति तस्य सर्वस्य कस्यचित् । कंचनामुंचन्नित्यर्थः । न केवलमदातुः स्वनात् । किं तर्हि । कस्य चित्कस्यापि निदो निंदकाद्रक्ष । यत्र मुमुच्महे यस्मिन्रक्षणे सति वयं मुक्ता भवेम तेन रक्षणेन रक्षयेति ॥

एंदो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमंतं शुष्ममा भर ॥६॥

आ । इंदो इति । पार्थिवं । रयिं । दिव्यं । पवस्व । धारया । द्युऽमंतं । शुष्मं । आ । भर ॥६॥

हे इंदो क्लिद्यमान सोम त्वं धारया पवस्व । सर्वतः क्षर । पार्थिवं दिव्यं च रयिं धनं द्युमंतं दीप्तिमंतं शुष्मं बलं चा भर । आहरास्मभ्यं ॥ ॥१९॥

प्र धारा इति षड़ृचं षष्ठं सूक्तं बिंदुनाम्न आंगिरसस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । प्र धारा बिंदुरित्यनुक्रमणिका ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ॥१॥

प्र । धाराः । अस्य । शुष्मिणः । वृथा । पवित्रे । अक्षरन् । पुनानः । वाचं । इष्यति ॥१॥

शुष्मिणो बलवतोऽस्य सोमस्य धाराः पवित्रे दशापवित्रे वृथाप्रयत्नेनाक्षरन् । स्रवंति । तदानीं पुनानः पूयमानः सोमो वाचं स्तुतिं स्वीयं ध्वनिं वेष्यति । प्रेरयति ॥

इंदुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिंद्रियं ॥२॥

इंदुः । हियानः । सोतृऽभिः । मृज्यमानः । कनिक्रदत् । इयर्ति । वग्नुं । इंद्रियं ॥२॥

अयमिंदुर्दीप्तः सोमो हियानः प्रेर्यमाणो व्याप्रियमाणः । कैः । सोतृभिर्ऋत्विग्भिः । पश्चाद्दशापवित्रे मृज्यमानः शोध्यमानः कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्निंद्रियमिंद्रस्य संबंधिनमिंद्रियमपि ˉ करं वग्नुं शब्दमियर्ति । प्रेरयति ग्रहणसमये ॥

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवंतं पुरुस्पृहं । पवस्व सोम धारया ॥३॥

आ । नः । शुष्मं । नृऽसह्यं । वीरऽवंतं । पुरुऽस्पृहं । पवस्व । सोम । धारया ॥३॥

हे सोम त्वं धारया पवस्व । किं । शुष्मं बलं । कीदृशं । नृषाह्यं नृणामस्मद्विरोधिनामभिभावुकं वीरवंतं पुत्रोपेतं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं शुष्ममा पवस्व । एतस्य लाभाय पवस्वेत्यर्थः । रसस्रावे सति होमद्वारा तत्सिद्धेः शुष्मं पवस्वेत्युपचर्यते ॥

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदं ॥४॥

प्र । सोमः । अति । धारया । पवमानः । असिस्यदत् । अभि । द्रोणानि । आऽसदं ॥४॥

अयं पवमानः सोमो धारयात्यतिक्रम्य दशापवित्रं प्रासिष्यदत् । प्रस्यंदते । किमर्थं । द्रोणानि द्रोणकलशादीन्यासदमासादनाय ॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदविंद्राय पीतये ॥५॥

अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥५॥

हे इंदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभिषवग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥६॥

सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥६॥

हे ऋत्विजः यूयं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिंद्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय सुनोत । सुनुत । पुनः कीदृशं । चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्माकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं सुनुतेति ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ॥२०॥

प्र सोमास इति षडृचं सप्तमं सूक्तं राहूगणस्य गोतमस्यार्षं सौम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्य१ः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वंति चेतनं ॥१॥

प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वंति । चेतनं ॥१॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छंति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वंति । कुर्वंत्यस्माकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेंदो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२॥

दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इंदो इति । द्युम्नऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥२॥

हे इंदो वाजानामन्नानां पतिः स्वामी त्वं दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य द्युम्नवर्धनो द्योतमानस्य हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्माकं लोकद्वये यद्द्युम्नमस्ति तस्य वर्धयिता भवास्मभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षंति सिंधवः । सोम वर्धंति ते महः ॥३॥

तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः । सोम । वर्धंति । ते । महः ॥३॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवंति । तथा सिंधवः स्यंदमाना नद्यस्तुभ्यमर्षंति । गच्छंति । अभिषूयमाणस्य तवाप्यायनार्थमेवं कुर्वंतीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धंति । वर्धयंति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं । भवा वाजस्य संगथे ॥४॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

हे सोम त्वं वायुभिरद्भिश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्ण्यं वर्षयोग्यं बलं समेतु । संगच्छतां । संगथे संग्रामे वाजस्यान्नस्य प्रापको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

हे बभ्रो बभ्रुवर्ण सोम तुभ्यं त्वदर्थं गावो घृतं पयश्चाचितमक्षीणं दुदुह्रे । दुह्रते । वर्षिष्ठे प्रवृद्धेऽधि सानवि समुच्छ्रिते प्रदेशे स्थिताय तुभ्यं ॥

स्वायुधस्यं ते सतो भुवनस्य पते वयं । इंदो सखित्वमुंश्मसि ॥६॥

सुऽआयुधस्यं । ते । सतः । भुवनस्य । पते । वयं । इंदो इति । सखिऽत्वं । उश्मसि ॥६॥

हे भुवनस्य भूतजातस्य पते स्वामिन्पालक सोम । सोमस्य जगदाप्यायिकत्वं तत्स्वामित्वं । हे इंदो सोम वयमनुष्ठातारः स्वायुधस्य ते तव सतः सखित्वमुश्मसि । कामयामहे ॥ ॥२१॥

प्र सोमास इति षडृचमष्टमं सूक्तमाचेयस्य श्यावाश्वस्यार्षं गायत्रं सौम्यं । अनुक्रम्यते च । प्र सोमासः श्यावाश्व इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः । सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

प्र । सोमासः । मदऽच्युतः । श्रवसे । नः । मघोनः । सुताः । विदथे । अक्रमुः ॥१॥

सोमासः सोमा मदच्युतो मदस्राविणः सुता अभिषुताः संतो विदथे यज्ञे मघोनो हविष्मतो मम श्रवसे ऽन्नाय कीर्तये वा प्राक्रमुः । प्रगच्छंति ॥

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदुमिंद्राय पीतये ॥२॥

आत् । ईं । त्रितस्य । योषणः । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इंद्राय । पीतये ॥२॥

आदपि चेमेनं हरिं हरितवर्णं सोमं त्रितस्यर्षेर्योषणोऽंगुलयोऽद्रिभिर्ग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंदुं दीप्तं सोममिंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिं । अत्यो न गोभिरज्यते ॥३॥

आत् । ईं । हंसः । यथा । गणं । विश्वस्य । अवीवशत् । मतिं । अत्यः । न । गोभिः । अज्यते ॥३॥

आदपि चेमयं सोमो हंसो यथा गणं जनसंघं स्वगतिविशेषेण स्वनेन वा प्रविशति तद्वद्विश्वस्य सर्वस्य स्तोतृजनस्य मतिं स्तुतिं बुद्धिं वावीवशत् । वशं नयति । स च सोमोऽत्यो नाश्व इव गोभिर्गव्यैरुदकैर्वाज्यते । सिच्यते । स्निग्धीक्रियते ॥

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥४॥

उभे इति । सोम । अवऽचाकशत् । मृगः । न । तक्तः । अर्षसि । सीदन् । ऋतस्य । योनिं । आ ॥४॥

हे सोम उभे द्यावापृथिव्याववचाकशत् । पश्यतिकर्मैदं । पश्यन्मृगो न मृग इव तक्तो गव्यैः पयआदिभिर्मिश्रितः सन् । दध्ना तनक्ति । तै॰ सं॰ २. ५. ३. ५. । इत्यादौ तथा दृष्टत्वात् । अर्षसि । गच्छसि च । किं कुर्वन् । ऋतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमा सीदन्नाश्रयन् । यज्ञसाधनाय गच्छसीत्यर्थः ॥

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियं । अगन्नाजिं यथा हितं ॥५॥

अभि । गावः । अनूषत । योषा । जारंऽइव । प्रियं । अगन् । आजिं । यथा । हितं ॥५॥

हे सोम त्वां गावः शब्दा अभ्यनूषत । अभिष्टुवंति । योषा प्रियं जारमिव । सा यथा तं स्तौति तद्वत् । स

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदविंद्राय पीतये ॥५॥

अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥५॥

हे इंदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभिषवग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥६॥

सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥६॥

हे ऋत्विजः यूयं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिंद्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय सुनोत । सुनुत । पुनः कीदृशं । चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्माकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं सुनुतेति ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ॥२०॥

प्र सोमास इति षडृचं सप्तमं सूक्तं राहूगणस्य गोतमस्यार्षं सौम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वंति चेतनं ॥१॥

प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वंति । चेतनं ॥१॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छंति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वंति । कुर्वंत्यस्माकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेंदो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२॥

दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इंदो इति । द्युम्नऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥२॥

हे इंदो वाजानामन्नानां पतिः स्वामी त्वं दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य द्युम्नवर्धनो द्योतमानस्य हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्माकं लोकद्वये यद्द्युम्नमस्ति तस्य वर्धयिता भवास्मभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षंति सिंधवः । सोम वर्धंति ते महः ॥३॥

तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः । सोम । वर्धंति । ते । महः ॥३॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवंति । तथा सिंधवः स्यंदमाना नद्यस्तुभ्यमर्षंति । गच्छंति । अभिषूयमाणस्य तवाप्यायनार्थमेवं कुर्वंतीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धंति । वर्धयंति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं । भवा वाजस्य संगथे ॥४॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

हे सोम त्वं वायुभिरग्निश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्ण्यं वर्षयोग्यं बलं समेतु । संगच्छतां । संगथे संग्रामे वाजस्यान्नस्य प्रापको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

ब्राह्मीर्ब्राह्मणप्रेरिता यह्वीर्महत्यः । यह्वीरिति महन्नाम । ऋतस्य यज्ञस्य मातरो निर्मात्र्यः स्तुतयोऽभ्यनूषत । स्तुवंति । किं । दिवो द्युदेवतायाः शिशुं शिशुस्थानीयं सोमं । तमेव मर्मृज्यंते । मृजंति । तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीदित्यादिश्रुतेर्द्युशिशुत्वं तस्य ॥

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥६॥

रायः । समुद्रान् । चतुरः । अस्मभ्यं । सोम । विश्वतः । आ । पवस्व । सहस्रिणः ॥६॥

रायो धनस्य संबंधिनश्चतुरः समुद्रान् । धनपूर्णानित्यर्थः । तादृशान्समुद्रानस्मभ्यमर्थाय हे सोम विश्वतः सर्वत आ पवस्व । तथा सहस्रिणोऽपरिमितान्कामाना पवस्व । आयच्छ । चतुःसमुद्रस्थधनविशेषप्राप्तिसाध्यगतभूमिस्वामित्वमंतरेणासंभवाच्चतुःसमुद्रमुद्रितभूमंडलस्वामित्वमेवाशास्ते यजमानः ॥ ॥२३॥

प्र सुवान इति षड्टचं दशमं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र सुवान इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सुवानो धारया तनेंदुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥१॥

प्र । सुवानः । धारया । तना । इंदुः । हिन्वानः । अर्षति । रुजत् । दृळ्हा । वि । ओजसा ॥१॥

इंदुः सोमः सुवानः सूयमानो हिन्वानोऽध्वर्युणा प्रेर्यमाणो धारया तना पवित्रं प्रार्षति । गच्छति । अथ प्रत्यक्षेणोच्यते । दृळ्हा दृढान्यपि शत्रुपुराण्योजसा बलेन वि रुजत् । विरुजति । विस्रंसयति ॥

सुत इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥२॥

सुतः । इंद्राय । वायवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । सोमः । अर्षति । विष्णवे ॥२॥

अयं सुतोऽभिषुतः सोम इंद्राद्यर्थमर्षति । गच्छति ॥

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वंति सोममद्रिभिः । दुहंति शक्मना पयः ॥३॥

वृषाणं । वृषऽभिः । यतं । सुन्वंति । सोमं । अद्रिऽभिः । दुहंति । शक्मना । पयः ॥३॥

वृषाणं रससेक्तारं यतं नियतं सोमं वृषभी रसस्य वर्षकैरद्रिभिर्ग्रावभिः सुन्वंति । शक्मना कर्मणा दुहंत्यध्वर्य्वादयः पयः सोमरसं । सोमं पयो दुहंतीति द्विकर्मकोऽयं ॥

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिंद्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥४॥

भुवत् । त्रितस्य । मर्ज्यः । भुवत् । इंद्राय । मत्सरः । सं । रूपैः । अज्यते । हरिः ॥४॥

त्रितस्याप्यां पुत्रस्य सूक्तद्रष्टुर्ऋषेः सोऽयं मत्सरो मदकरः सोमो मर्ज्यो भुवत् । शुद्धो भवति । तस्य यागार्थं शेषपानार्थं च । तथेंद्रायेंद्रपानाय मर्ज्यो भुवत् । रूपै रूपकैश्च क्षीरादिभिर्हरिर्हरितवर्णः सोमः समज्यते ॥

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥५॥

अभि । ईं । ऋतस्य । विष्टपं । दुहते । पृश्निऽमातरः । चारु । प्रियऽतमं । हविः ॥५॥

ईमेनं सोममृतस्य विष्टपं स्थानं । यज्ञाश्रयमित्यर्थः । तादृशं पृश्निमातरो मरुतोऽभि दुहते । किं । प्रियतममिंद्रादीनां हविर्होमसाधनं चारु मनोहरं । मरुत्प्रेरितवृष्ट्या सोमवृद्धेस्तद्दोग्धृत्वं ॥

समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥६॥

सं । एनं । अह्रुताः । इमाः । गिरः । अर्षंति । सऽस्रुतः । धेनूः । वाश्रः । अवीवशत् ॥६॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदविंद्राय पीतये ॥५॥
अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥५॥

हे इंदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभिषवग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥६॥
सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥६॥

हे ऋत्विजः यूयं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिंद्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय सुनोत । सुनुत । पुनः कीदृशं । चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्माकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं सुनुतेति ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ॥२०॥

प्र सोमास इति षडृचं सप्तमं सूक्तं राहूगणस्य गोतमस्यार्षं सौम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वंति चेतनं ॥१॥
प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वंति । चेतनं ॥१॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छंति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वंति । कुर्वंत्यस्माकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेंदो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२॥
दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इंदो इति । द्युम्नऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥२॥

हे इंदो वाजानामन्नानां पतिः स्वामी त्वं दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य द्युम्नवर्धनो द्योतमानस्य हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्माकं लोकद्वये यद्द्युम्नमस्ति तस्य वर्धयिता भवास्मभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षंति सिंधवः । सोम वर्धंति ते महः ॥३॥
तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः । सोम । वर्धंति । ते । महः ॥३॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवंति । तथा सिंधवः स्यंदमाना नद्यस्तुभ्यमर्षंति । गच्छंति । अभिषूयमाणस्य तवाप्यायनायैवं कुर्वंतीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धंति । वर्धयंति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं । भवा वाजस्य संगथे ॥४॥
आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

हे सोम त्वं वायुभिरद्भिश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्ण्यं वर्षयोग्यं बलं समेतु । संगच्छतां । संगथे संग्रामे वाजस्यान्नस्य प्रापको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥
तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

विश्वः सर्वो जनो मनुष्यो यजमानो यस्य सोमस्य व्रते कर्मणि दाधार धारयति मन इति शेषः। कीदृशस्य। धर्मणः कर्मणः पतेः पालकस्य पुनानस्य पूयमानस्य प्रभूवसोः प्रभूतधनस्य ॥ ॥२५॥

असर्जीति षडृचं द्वादशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। असर्जीत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः। कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥१॥

असर्जि। रथ्यः। यथा। पवित्रे। चम्वोः। सुतः। कार्ष्मन्। वाजी। नि। अक्रमीत् ॥१॥

रथ्यो यथा रथसंबंधश्च इव स यथा विसृज्यते तद्वच्चम्वोरभिषवणफलकयोः सुतोऽभिषुतः सोमोऽसर्जि। सृष्टोऽभूत्पवित्रे। तथाभूतो वाजो वेजनवान्सोमाख्योऽश्वः कार्ष्मन्। कार्ष्म युद्धमितरेतरकर्षणात्। अत्र देवानामाकर्षणवति यज्ञाख्ये संग्रामे न्यक्रमीत्। नितरां क्रामयति ॥

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति। अभि कोशं मधुश्चुतं ॥२॥

सः। वह्निः। सोम। जागृविः। पवस्व। देवऽवीः। अति। अभि। कोशं। मधुऽश्चुतं ॥२॥

हे सोम स वह्निर्वाहको जागृविर्जागरूको देववीर्देवकामस्त्वं मधुश्चुतं मधुस्रावि कोशं दशापवित्रमतिक्रम्याभि पवस्व। द्रोणकलशं प्रति चर ॥

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय। क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३॥

सः। नः। ज्योतींषि। पूर्व्य। पवमान। वि। रोचय। क्रत्वे। दक्षाय। नः। हिनु ॥३॥

हे पूर्व्य पुराण पवमान सोम नोऽस्माकं ज्योतींषि दिव्यानि स्थानानि वि रोचय। प्रकाशय। किंच क्रत्वे कर्मणे यागाय दक्षाय बलाय च बलप्रदाय यागाय वा नोऽस्मान्हिनु। प्रेरय ॥

शुंभमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः। पवते वारे अव्यये ॥४॥

शुंभमानः। ऋतयुऽभिः। मृज्यमानः। गभस्त्योः। पवते। वारे। अव्यये ॥४॥

ऋतायुभिर्यज्ञकामैर्ऋत्विग्भिः शुंभमानोऽलंक्रियमाणस्तेषामेव गभस्त्योर्हस्तयोर्मृज्यमानः सोमोऽव्यये ऽविमये वारे वाले दशापवित्रे पवते। पूयते ॥

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा। पवतामांतरिक्ष्या ॥५॥

सः। विश्वा। दाशुषे। वसु। सोमः। दिव्यानि। पार्थिवा। पवतां। आ। अंतरिक्ष्या ॥५॥

सोऽभिषूयमाणः सोमो दाशुषे हविर्दात्रे विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि पवतां। प्रयच्छतु। विश्वानीत्युक्तस्य विवरणं शिष्टं। दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पृथिवीसंबद्धान्यंतरिक्ष्यांतरिक्षे भवानि च पवतां ॥

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि। वीरयुः शवसस्पते ॥६॥

आ। दिवः। पृष्ठं। अश्वऽयुः। गव्यऽयुः। सोम। रोहसि। वीरऽयुः। शवसः। पते ॥६॥

हे सोम त्वं स्तोतॄणामश्वयुरश्वमिच्छन्गव्ययुर्गा इच्छन्वीरयुः पुत्रानिच्छन्दिवः पृष्ठं द्युलोकमा रोहस्याक्रमसि। तद्वारा हे शवसस्पतेऽन्नस्य पालक ॥ ॥२६॥

स सुत इति षडृचं त्रयोदशं सूक्तं रहूगणस्यार्षं गायत्रं सौम्यं। अनुक्रम्यते च। स सुतो रहूगण इति ॥ गतो विनियोगः ॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंद्विंद्राय पीतये ॥५॥

अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥५॥

हे इंदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभिषवग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥६॥

सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥६॥

हे ऋत्विजः यूयं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिंद्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय सुनोत । सुनुत । पुनः कीदृशं । चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्माकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं सुनुतेति ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ॥२०॥

प्र सोमास इति षडृचं सप्तमं सूक्तं राहूगणस्य गोतमस्यार्षं सौम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्य१ः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वंति चेतनं ॥१॥

प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वंति । चेतनं ॥१॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छंति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वंति । कुर्वंत्यस्माकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेंदो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२॥

दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इंदो इति । द्युम्नऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥२॥

हे इंदो वाजानामन्नानां पतिः स्वामी त्वं दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य द्युम्नवर्धनो द्योतमानस्य हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्माकं लोकद्वये यद्द्युम्नमस्ति तस्य वर्धयिता भवास्मभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षंति सिंधवः । सोम वर्धंति ते महः ॥३॥

तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः । सोम । वर्धंति । ते । महः ॥३॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवंति । तथा सिंधवः स्यंदमाना नद्यस्तुभ्यमर्षंति । गच्छंति । अभिषूयमाणस्य तवाप्यायनार्थमेवं कुर्वंतीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धंति । वर्धयंति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं । भवा वाजस्य संगथे ॥४॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

हे सोम त्वं वायुभिरद्भिश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्ण्यं वर्षयोग्यं बलं समेतु । संगच्छतां । संगथे संग्रामे वाजस्यान्नस्य प्रापको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदुमिंद्राय पीतये ॥२॥

एतं । त्रितस्य । योषणः । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इंद्राय । पीतये ॥२॥

एतमिंदुं क्रियमाणं हरिं हरितवर्णं सोमं त्रितस्यर्षेर्योषणोऽंगुलयोऽद्रिभिर्हिन्वंतींद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यंते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुंभते ॥३॥

एतं । त्यं । हरितः । दश । मर्मृज्यंते । अपस्युवः । याभिः । मदाय । शुंभते ॥३॥

एतं त्यं तं सोममध्वर्योर्दश हरितो हरणस्वभावा अंगुलयोऽपस्युवः कर्मेच्छवः सत्यो मर्मृज्यंते । शोधयंति । याभिरिंद्रस्य मदाय शुंभते दीप्यते । शोध्यत इत्यर्थः । तमेतमिति संबंधः ॥

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छंजारो न योषितं ॥४॥

एषः । स्यः । मानुषीषु । आ । श्येनः । न । विक्षु । सीदति । गच्छन् । जारः । न ।
योषितं ॥४॥

स्य स एष सोमो मानुषीषु विक्षु प्रजासु यजमानरूपास्वनुग्रहेणा सीदति श्येनो न श्येन इव । पुनः क इव । योषितं गच्छन्नभिगच्छञ्जारो न जार इव । स यथा संकेतितस्तस्याः कामपूरणाय गूढो गच्छति तद्वदित्यर्थः ॥

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इंदुर्वारमाविशत् ॥५॥

एषः । स्यः । मद्यः । रसः । अव । चष्टे । दिवः । शिशुः । यः । इंदुः । वारं । आ । अविशत् ॥५॥

स्य स एष मद्यो मदनिमित्तो रसोऽव चष्टे । सर्वमवपश्यति । दिवः शिशुर्द्युपुत्रः । तत्रोत्पत्तेः पुत्रत्वमस्य । य इंदुर्दीप्तः सोमो वारं दशापवित्रमाविशत् आविशति स एष इति ॥

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रंदन्योनिमभि प्रियं ॥६॥

एषः । स्यः । पीतये । सुतः । हरिः । अर्षति । धर्णसिः । क्रंदन् । योनिं । अभि । प्रियं ॥६॥

एष स्य स सोमः पीतये पानाय सुतोऽभिषुतो हरिर्हरितवर्णो धर्णसिर्धारकः प्रियं स्वप्रियभूतं योनिं स्थानं द्रोणकलशं क्रंदञ्शब्दयन्नभ्यर्षति । गच्छति ॥ ॥२८॥

आशुरर्षेति षडृचं पंचदशं सूक्तमांगिरसस्य बृहन्मतेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । आशुरर्ष बृहन्मति-रित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रवन् ॥१॥

आशुः । अर्ष । बृहत्ऽमते । परि । प्रियेण । धाम्ना । यत्र । देवाः । इति । ब्रवन् ॥१॥

हे बृहन्मते महामते सोम प्रियेण देवानां प्रियतमेन धाम्ना शरीरेण धारयाशुः शीघ्रः सन्पर्यर्ष । परि-गच्छ । यत्र देवा इंद्रादयो वर्तंत इति ब्रवन् ब्रुवन्नुच्चारयन् । तां दिशं गच्छामीति ब्रुवन्नित्यर्थः ॥

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥

परिऽकृण्वन् । अनिःऽकृतं । जनाय । यातयन् । इषः । वृष्टिं । दिवः । परि । स्रव ॥२॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदविंद्राय पीतये ॥५॥

अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥५॥

हे इंदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभिषवग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥६॥

सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥६॥

हे ऋत्विजः यूयं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिंद्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय सुनोत । सुनुत । पुनः कीदृशं । चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्माकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं सुनुतेति ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ॥२०॥

प्र सोमास इति षडृचं सप्तमं सूक्तं राहूगणस्य गोतमस्यार्षं सौम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वंति चेतनं ॥१॥

प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वंति । चेतनं ॥१॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छंति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वंति । कुर्वंत्यस्माकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेंदो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२॥

दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इंदो इति । द्युम्नऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥२॥

हे इंदो वाजानामन्नानां पतिः स्वामी त्वं दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य द्युम्नवर्धनो द्योतमानस्य हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्माकं लोकद्वये यद्द्युम्नमस्ति तस्य वर्धयिता भवास्मभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षंति सिंधवः । सोम वर्धंति ते महः ॥३॥

तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः । सोम । वर्धंति । ते । महः ॥३॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवंति । तथा सिंधवः स्यंदमाना नद्यस्तुभ्यमर्षंति । गच्छंति । अभिषूयमाणस्य तवाप्यायनार्थमेवं कुर्वंतीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धंति । वर्धयंति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं । भवा वाजस्य संगथे ॥४॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

हे सोम त्वं वायुभिरद्भिश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्ण्यं वर्षयोग्यं बलं समेतु । संगच्छतां । संगथे संग्रामे वाजस्यान्नस्य प्रापको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

नू नो रयिं महामिंदोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणं ॥ ३ ॥

नु । नः । रयिं । महां । इंदो इति । अस्मभ्यं । सोम । विश्वतः । आ । पवस्व । सहस्रिणं ॥ ३ ॥

हे सोम अभिषुतस्त्वं हे इंदो नोऽस्मभ्यं नु क्षिप्रं महां महांतं सहस्रिणमसंख्यातं रयिं धनं विश्वत आ पवस्व । सर्वतः परिस्रव ॥

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानींदवा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥

विश्वा । सोम । पवमान । द्युम्नानि । इंदो इति । आ । भर । विदाः । सहस्रिणीः । इषः ॥ ४ ॥

हे सोम पवमान पूयमानेंदो दीप्त त्वं विश्वा सर्वाणि बहुविधानि द्युम्नानि द्रविणान्या भर । आहर । विदा लंभय च सहस्रिणीः सहस्रसंख्याकानीषोऽन्नानि ॥

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यं । जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥

सः । नः । पुनानः । आ । भर । रयिं । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं । जरितुः । वर्धय । गिरः ॥ ५ ॥

हे सोम स त्वं नोऽस्मभ्यं स्तोत्रे स्तोतृभ्यः पुनानः पूयमानोऽभिषूयमाण आ भर । आहर । किं । रयिं धनं । कीदृशं । सुवीर्यं सुपुत्रं । किंच जरितुः स्तोतुर्गिरः स्तुतीर्वर्धय ॥

पुनान इंदवा भर सोम द्विबर्हसं रयिं । वृषन्निंदो न उक्थ्यं ॥ ६ ॥

पुनानः । इंदो इति । आ । भर । सोम । द्विऽबर्हसं । रयिं । वृषन् । इंदो इति । नः । उक्थ्यं ॥ ६ ॥

हे इंदो सोम पुनानः पूयमानस्त्वमा भर । आहर । किं । रयिं धनं । कीदृशं धनं । द्विबर्हसं द्वयोर्द्यावापृथिव्याख्ययोः स्थानयोः परिवृद्धं । तदेवाह । हे इंदो वृषन्वर्षक नोऽस्मभ्यमुक्थ्यं स्तुत्यं धनमा भर ॥ ॥ ३० ॥

प्र ये गाव इति षडृचं सप्तदशं सूक्तं काण्वस्य मेधातिथेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्र ये गावो मेधातिथिरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नंतः कृष्णामप त्वचं ॥ १ ॥

प्र । ये । गावः । न । भूर्णयः । त्वेषाः । अयासः । अक्रमुः । घ्नंतः । कृष्णां । अप । त्वचं ॥ १ ॥

येऽभिषुताः सोमा गावो गोदकानीव तानि यथा तूर्णमधः पतंति तद्वत् । एवं वोपमीयते । यथा गावः स्वगोष्ठं प्रत्याशु गच्छंति तद्वत् । अथवा गावः स्तुतिवाचः । ता यथा स्तुत्यं प्रति क्षिप्रं प्राप्नुवंति तद्वत् । भूर्णयः क्षिप्रास्त्वेषा दीप्ता अयासोऽया गमनशीलाः कृष्णां त्वचं । कृष्णा त्वग्यषां । तमप घ्नंतो निघ्नंतः । त्वचिः संवरणकर्मा । ईदृग्भूताः सोमाः प्राक्रमुः । तान्स्तुतेति शेषः ॥

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यं । साह्वांसो दस्युमव्रतं ॥ २ ॥

सुवितस्य । मनामहे । अति । सेतुं । दुःऽआव्यं । सह्वांसः । दस्युं । अव्रतं ॥ २ ॥

सुवितस्य । शोभनं प्राप्तः सुवितः । शोभनस्य सोमस्य सेतुं रक्षोविषयं बंधनं दुराव्यं दुष्टमतिं च रक्षसां बंधनं तेषां हननबुद्धिं च सोमकर्तृका मनामहे । स्तुमः । कथं स्तुम इति तदुच्यते । अव्रतमकर्माणं दस्युं शत्रुं साह्वांसोऽभिभवंतः ॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदविंद्राय पीतये ॥५॥
अप्ऽसु । त्वा । मधुमत्ऽतमं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदो इति । इंद्राय । पीतये ॥५॥

हे इंदो सोम अप्सु वसतीवरीषूदकेषु मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वामद्रिभिरभिषवग्रावभिर्हिन्वंति । प्रेरयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरं ॥६॥
सुनोत । मधुमत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । चारुं । शर्धाय । मत्सरं ॥६॥

हे ऋत्विजः यूयं मधुमत्तमं मधुररसोपेतं सोममिंद्राय वज्रिणे वज्रयुक्ताय सुनोत । सुनुत । पुनः कीदृशं । चारुं चरणीयं मत्सरं मदकरं शर्धायास्माकं बलायेंद्रस्य पानाय च सोमं सुनुतेति ब्रूते यजमानः स्वीयान् ॥ ॥२०॥

प्र सोमास इति षडृचं सप्तमं सूक्तं राहूगणस्य गोतमस्यार्षं सौम्यं । प्र सोमासो गोतम इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र सोमासः स्वाध्य१ः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वंति चेतनं ॥१॥
प्र । सोमासः । सुऽआध्यः । पवमानासः । अक्रमुः । रयिं । कृण्वंति । चेतनं ॥१॥

प्राक्रमुः । प्रगच्छंति कलशं प्रति । के । सोमासः सोमाः । कीदृशाः । स्वाध्यः सुध्यानाः सुकर्माणो वा पवमानासः पूयमानाः । ते च चेतनं प्रज्ञापनं रयिं धनं कृण्वंति । कुर्वंत्यस्माकं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेंदो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२॥
दिवः । पृथिव्याः । अधि । भव । इंदो इति । द्युम्नऽवर्धनः । भव । वाजानां । पतिः ॥२॥

हे इंदो वाजानामन्नानां पतिः स्वामी त्वं दिवो द्युलोकस्य पृथिव्या भूलोकस्य द्युम्नवर्धनो द्योतमानस्य हिरण्यादिलक्षणधनस्य वर्धयिता भव । अस्माकं लोकद्वये यद्द्युम्नमस्ति तस्य वर्धयिता भवास्मभ्यमित्यर्थः ॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षंति सिंधवः । सोम वर्धंति ते महः ॥३॥
तुभ्यं । वाताः । अभिऽप्रियः । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः । सोम । वर्धंति । ते । महः ॥३॥

हे सोम तुभ्यं त्वदर्थं वाता वायवोऽभिप्रियोऽभितर्पयितारो भवंति । तथा सिंधवः स्यंदमाना नद्यस्तुभ्यमर्षंति । गच्छंति । अभिषूयमाणस्य तवाप्यायनार्थमेवं कुर्वंतीत्यर्थः । त उभयेऽमी ते तव महो महत्त्वं वर्धंति । वर्धयंति ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं । भवा वाजस्य संगथे ॥४॥
आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥४॥

हे सोम त्वं वायुभिरद्भिश्चा प्यायस्व । प्रवृद्धो भव । ते त्वां विश्वतो वृष्ण्यं वर्षयोग्यं बलं समेतु । संगच्छतां । संगथे संग्रामे वाजस्यान्नस्य प्रापको भव ॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितं । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥
तुभ्यं । गावः । घृतं । पयः । बभ्रो इति । दुदुह्रे । अक्षितं । वर्षिष्ठे । अधि । सानवि ॥५॥

वावृधानाय तूर्वये पवंते वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ॥३॥

ववृधानाय । तूर्वये । पवंते । वाजऽसातये । सोमाः । सहस्रऽपाजसः ॥३॥

वावृधानाय वर्धमानाय तूर्वये क्षिप्राय वाजसातये संग्रामायान्नलाभाय वा पवंते पूयंते सोमाः सहस्रपाजसोऽपरिमितबलाः । असंख्यातवेगा इत्यर्थः ॥

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते । क्रंदन्देवाँ अजीजनत् ॥४॥

दुहानः । प्रत्नं । इत् । पयः । पवित्रे । परि । सिच्यते । क्रंदन् । देवान् । अजीजनत् ॥४॥

प्रत्नमित्पुराणमेव पयो रसं दुहानो दधानः सोमः पवित्रे परि षिच्यते । किंच क्रंदञ्शब्दं कुर्वन्देवानजीजनत् । जनयति स्वसमीपे । यत्र सोमोऽभिषूयते तत्र देवा नियतं प्रादुर्भवंति । अतो जनयतीत्युपचर्यते ॥

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ॥५॥

अभि । विश्वानि । वार्या । अभि । देवान् । ऋतऽवृधः । सोमः । पुनानः । अर्षति ॥५॥

अयं सोमः पुनानः पूयमानो विश्वानि वार्या वरणीयानि धनान्यभ्यर्षति । तथर्तावृधो यज्ञवर्धकान्देवानभ्यर्षति ॥

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ॥६॥

गोऽमत् । नः । सोम । वीरऽवत् । अश्वऽवत् । वाजऽवत् । सुतः । पवस्व । बृहतीः । इषः ॥६॥

हे सोम सुतस्त्वं नोऽस्मभ्यं गोमद्गोभिर्युक्तं वीरवद्वीरैर्भिर्वीरैरुपेतमश्वावदश्वैर्युक्तं वाजवद्वाजैर्बलैः संग्रामैर्वोपेतं धनं बृहतीरिषः प्रभूतान्यन्नानि पवस्व । प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ॥३२॥

यो अत्य इवेति षडृचमेकोनविंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । यो अत्य इवेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥१॥

यः । अत्यःऽइव । मृज्यते । गोभिः । मदाय । हर्यतः । तं । गीःऽभिः । वासयामसि ॥१॥

यः सोमोऽत्य इवातनशीलोऽश्व इव गोभिर्वसतीवरीभिरद्भिर्गोविकारैः पयआदिभिर्वा मृज्यते मिश्र्यते । किमर्थं । मदाय देवानां । कीदृशः । यो हर्यतः कांतः । तं सोमं गीर्भिः स्तुतिभिर्वासयामसि । वासयामः ॥

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुंभंति पूर्वथा । इंदुमिंद्राय पीतये ॥२॥

तं । नः । विश्वाः । अवस्युवः । गिरः । शुंभंति । पूर्वऽथा । इंदुं । इंद्राय । पीतये ॥२॥

तमिंदुं सोमं नोऽस्माकं विश्वाः सर्वा अवस्युवः । अवो रक्षणं । तदिच्छंत्यो गिरः स्तुतयः पूर्वथा पूर्वमिव पूर्वं यथा तथैवेदानीमपि शुंभंति । दीपयंति । किमर्थं । इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय ॥

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥३॥

पुनानः । याति । हर्यतः । सोमः । गीःऽभिः । परिऽकृतः । विप्रस्य । मेध्यऽअतिथेः ॥३॥

पुनानः पूयमानो हर्यतः कमनीयः सोमो गोर्भिः परिष्कृतः स्तुतिभिरलंकृतो याति कलशं प्रति। किमर्थं। विप्रस्य मेधाविनो मेध्यातिथेर्मम यागार्थं। यद्वा। मम गीर्भिरिति संबंधः॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियं। इंदो सहस्रवर्चसं ॥४॥

पवमान। विदाः। रयिं। अस्मभ्यं। सोम। सुऽश्रियं। इंदो इति। सहस्रऽवर्चसं ॥४॥

हे पवमानेंदो सोम अस्मभ्यं सुश्रियं शोभनया श्रिया युक्तं सहस्रवर्चसं बहुदीप्तिं रयिं धनं विदाः। देहीत्यर्थः॥

इंदुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रंति पवित्र आ। यदक्षारति देवयुः ॥५॥

इंदुः। अत्यः। न। वाजऽसृत्। कनिक्रंति। पवित्रे। आ। यत्। अक्षाः। अति। देवऽयुः ॥५॥

अयमिंदुर्वाजसृत्संग्रामसरणोऽत्यो नाश्व इव पवित्र आ पवित्रे कनिक्रंति। शब्दं करोति। यद्यदाक्षाः क्षरति॥ क्षर संचलन इत्यस्माच्छांदसे लुङि तिपि सिच्। बहुलं छंदसीतीडभावः। इडभावे च रात्सस्येति सलोपः॥ देवयुर्देवकामः सन् तदा शब्दं करोति॥

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे। सोम रास्व सुवीर्यं ॥६॥

पवस्व। वाजऽसातये। विप्रस्य। गृणतः। वृधे। सोम। रास्व। सुऽवीर्यं ॥६॥

हे सोम पवस्व। क्षर। किमर्थं। वाजसातयेऽन्नलाभाय। तथा गृणतः स्तुवतो विप्रस्य मम मेध्यातिथेर्वृधे वर्धनाय च। हे सोम सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रं च रास्व। देहि॥ ॥३३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः॥

॥ समाप्तं च षष्ठाष्टकं॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ कल्याणं भूयात् ॥

ओं

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

अथ सप्तमाष्टकस्य प्रथमाध्याय आरभ्यते ॥ प्र ण इति षडृचं विंशं सूक्तमांगिरसस्यायास्यस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्र णोऽयास्य इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र ण इंदो महे तनं ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥१॥

प्र । नः । इंदो इति । महे । तने । ऊर्मिं । न । बिभ्रत् । अर्षसि । अभि । देवान् । अयास्यः ॥१॥

हे इंदो सोम त्वं नोऽस्माकं महे महते तने धनाय प्रार्षसि । प्रगच्छसि । न संप्रति । अयास्यस्त्वायमृषिस्त्वोर्मिं तरंगं बिभ्रद्धारयन्देवानभि गच्छति यष्टुं ॥

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति । विप्रस्य धारया कविः ॥२॥

मती । जुष्टः । धिया । हितः । सोमः । हिन्वे । पराऽवति । विप्रस्य । धारया । कविः ॥२॥

कविः क्रांतकर्मा सोमो विप्रस्य मेधाविनः स्तोतुर्मती मत्या स्तुत्या जुष्टः सेवितो धिया कर्मणा हितो यज्ञे निहितः परावति पवित्राद्दूरदेशे धारया हिन्वे । प्रेर्यते ॥

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ॥३॥

अयं । देवेषु । जागृविः । सुतः । एति । पवित्रे । आ । सोमः । याति । विऽचर्षणिः ॥३॥

जागृविर्जागरणशीलोऽयं सोमो देवेषु देवार्थं सुतोऽभिषुत ऐति । समंतान्गच्छति । अपि च विचर्षणिर्विद्रष्टा सोमः पवित्रे याति । पावनाय गच्छति ॥

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरं । बर्हिष्माँ आ विवासति ॥४॥

सः । नः । पवस्व । वाजऽयुः । चक्राणः । चारुं । अध्वरं । बर्हिष्मान् । आ । विवासति ॥४॥

हे सोम यं त्वां बर्हिष्मानृत्विगा विवासति परिचरति स त्वं नोऽस्मदर्थं वाजयुरन्नमिच्छन्नध्वरं हिंसारहितं यागं चारुं कल्याणं चक्राणः कुर्वन्पवस्व । चर ॥

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वा यमत् ॥५॥

सः । नः । भगाय । वायवे । विप्रऽवीरः । सदाऽवृधः । सोमः । देवेषु । आ । यमत् ॥५॥

स पवमानः सोमो वायवे वायुदेवार्थं भगाय भगदेवार्थं च विप्रवीरो विप्रैर्मेधाविभिः स्तुत्वा प्रेरितः सदावृधो नित्यवृद्धो भवन्नोऽस्मभ्यं देवेषु स्थितं धनमा यमत्। आ प्रयच्छतु ॥

स नो॑ अ॒द्य वसु॑त्तये क्रतु॒विद्गा॑तु॒वित्त॑मः । वाजं॑ जेषि॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥ ६ ॥

सः। नः॒। अ॒द्य। वसु॑त्तये। क्र॒तु॒ऽवित्। गा॒तु॒वित्ऽत॑मः। वाजं॑। जेषि॒। श्रवः॑। बृ॒हत् ॥ ६ ॥

हे सोम क्रतुवित् क्रतूनां कर्मणां लंभको गातुवित्तमः पुण्यलोकानामतिशयेन मार्गस्य ज्ञाता त्वमद्यास्मिन्नहनि नोऽस्माकं वसुत्तये धनलाभाय बृहन्महच्छ्रवोऽन्नं वाजं बलं च जेषि। जय ॥ ॥ १ ॥

स पवस्वेति षडृचमेकविंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। स पवस्वेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

स प॑वस्व॒ मदा॑य॒ कं नृ॒चक्षा॑ दे॒ववी॑तये । इंद॒विंद्रा॑य पी॒तये॑ ॥ १ ॥

सः। प॒व॒स्व॒। मदा॑य। कं। नृ॒ऽचक्षाः॑। दे॒वऽवी॑तये। इंदो॒ इति॑। इंद्रा॑य। पी॒तये॑ ॥ १ ॥

हे इंदो सोम नृचक्षा नृणां नेतॄणां द्रष्टा स त्वं देववीतये यज्ञायेंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय च मदाय मदार्थं च कं सुखं यथा भवति तथा पवस्व। क्षर ॥

स नो॑ अर्षा॒भि दू॒त्यं१॒॑ त्वमिंद्रा॑य तोशसे । दे॒वान्त्सखि॑भ्य॒ आ वरं॑ ॥ २ ॥

सः। नः॒। अ॒र्ष॒। अ॒भि। दू॒त्यं॑। त्वं। इंद्रा॑य। तो॒श॒से॒। दे॒वान्। सखि॑ऽभ्यः। आ। वरं॑ ॥ २ ॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं दूत्यं दूतस्य कर्मार्ष। अभिगच्छ। अपि च यस्त्वमिंद्रायेंद्रार्थं तोशसे पीयसे स त्वं सखिभ्यः प्रियेभ्योऽस्मभ्यं वरं श्रेष्ठं धनं देवाना पवस्वेत्यर्थः ॥

उ॒त त्वाम॑रु॒णं व॒यं गोभि॑रं॒ज्मो॒ मदा॑य॒ कं । वि नो॑ रा॒ये दुरो॑ वृधि ॥ ३ ॥

उ॒त। त्वां। अ॒रु॒णं। व॒यं। गोभिः॑। अं॒ज्मः॑। मदा॑य। कं। वि। नः॒। रा॒ये। दुरः॑। वृ॒धि॒ ॥ ३ ॥

उतापि च हे सोम यमरुणमरुणवर्णं त्वां मदाय मदार्थं वयमांगिरसाद्याख्या गोभिर्गोविकारैः पयोभिरंज्मः वासयामः संस्कुर्मः। कमिति पूरणं। स त्वं नोऽस्माकं राये धनाय दुरो द्वाराणि वि वृधि। विवृतानि कुरु ॥

अत्यू॑ प॒वित्र॑मक्रमीद्वा॒जी धुरं॒ न याम॑नि । इंदु॑र्दे॒वेषु॑ पत्यते ॥ ४ ॥

अति॑। ऊं॒ इति॑। प॒वित्रं॑। अ॒क्र॒मी॒त्। वा॒जी। धुरं॑। न। याम॑नि। इंदुः॑।
दे॒वेषु॑। प॒त्य॒ते॒ ॥ ४ ॥

इंदुः सोमो वाज्यश्वो यामनि गमने धुरं न रथस्य धुरं यथा तथा पवित्रमत्यक्रमीत्। अतिगच्छति। देवेषु देवानां मध्ये पत्यते। गच्छति च ॥

समी॒ सखा॑यो अस्वर॒न्वने॒ क्रीळं॑तमत्य॑विं । इंदुं॒ नावा॑ अनूषत ॥ ५ ॥

सं। ई॒मिति॑। सखा॑यः। अ॒स्व॒र॒न्। वने॑। क्रीळं॑तं। अति॑ऽअविं। इंदुं॑। ना॒वाः॑।
अ॒नू॒ष॒त॒ ॥ ५ ॥

अत्यविमतिक्रांतं दशापवित्रं वन उदके क्रीडंतं संक्रीडमानमीमेनमिंदुं सोमं सखायः प्रियस्तोतारः समस्वरन्। संस्तुवंति। नावा वाचोऽभ्यनूषत। अस्तुवन्। नौरक्षरमिति वाङ्नामसु पाठात् ॥

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इंदो स्तोत्रे सुवीर्यं ॥६॥
तया । पवस्व । धारया । यया । पीतः । विऽचक्षसे । इंदो इति । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं ॥६॥

हे इंदो त्वं यया धारया पीतः सन्विचक्षसे विचक्षणाय स्तोत्रे स्तोतॄणां कर्त्रे पुरुषाय सुवीर्यं शोभनवीर्यं प्रयच्छसीति शेषः । तया धारया पवस्व । क्षर ॥ ॥२॥

असृग्रन्निति षडृचं द्वाविंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । असृग्रन्नित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्या इव । क्षरंतः पर्वतावृधः ॥१॥
असृग्रन् । देवऽवीतये । अत्यासः । कृत्व्याःऽइव । क्षरंतः । पर्वतऽवृधः ॥१॥

पर्वतावृधः पर्वतैरभिषवग्रावभिर्वृद्धाः पर्वतेषु वा जाताः क्षरंतः सोमा देववीतये यज्ञायात्यासोऽश्वाः कृत्व्या इव यथा कर्मण्या अश्वाः तद्वदसृग्रन् । सृज्यंते ॥

परिष्कृतास इंदवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥२॥
परिऽकृतासः । इंदवः । योषाऽइव । पित्र्यऽवती । वायुं । सोमाः । असृक्षत ॥२॥

इंदवो यागेषु क्रियमानाः सोमाः परिष्कृतासः परिष्कृता अलंकृताः संतः पित्र्यावती पितृमती योषेवालंकृता कन्यका यथा वरं प्रति गच्छति तद्वद्वायुं प्रत्यसृक्षत । गच्छंति ॥

एते सोमास इंदवः प्रयस्वंतश्चमू सुताः । इंद्रं वर्धंति कर्मभिः ॥३॥
एते । सोमासः । इंदवः । प्रयस्वंतः । चमू इति । सुताः । इंद्रं । वर्धंति । कर्मऽभिः ॥३॥

इंदवो दीप्ताः प्रयस्वंतोऽन्नवंत एतेऽस्मिन्कर्मणि वर्तमाना अमी सोमासः सोमाश्चमू चम्वोरधिषवणफलकयोः सुता अभिषुताः संतः कर्मभिर्यागैरिंद्रं वर्धंति । प्रवर्धयंति । प्रीणयंतीत्यर्थः ॥

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मंथिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरं ॥४॥
आ । धावत । सुऽहस्त्यः । शुक्रा । गृभ्णीत । मंथिना । गोभिः । श्रीणीत । मत्सरं ॥४॥

हे सुहस्त्यः शोभनहस्ता ऋत्विजः आ धावत । मां संप्रत्यागच्छत । मंथिना सह शुक्रा शुक्रं च गृभ्णीत । गृह्णीत सोमं । मत्सरं सोमं गोभिर्गोविकारैः पयोभिः श्रीणीत । संस्कुरुत च ॥

स पवस्व धनंजय प्रयंता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥५॥
सः । पवस्व । धनंऽजय । प्रऽयंता । राधसः । महः । अस्मभ्यं । सोम । गातुऽवित् ॥५॥

हे धनंजय शत्रुसंबंधिनां धनानां जेतः सोम गातुविदभीष्टमार्गस्य लंभकोऽस्मभ्यं महो महतो राधसो धनस्य प्रयंता प्रदाता च यः स त्वं पवस्व । क्षर ॥

एतं मृजंति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः । इंद्राय मत्सरं मदं ॥६॥
एतं । मृजंति । मर्ज्यं । पवमानं । दश । क्षिपः । इंद्राय । मत्सरं । मदं ॥६॥

मर्ज्यं मार्जनीयं शोध्यं पवमानं क्षरंतं मत्सरं मदकरमेतमिमं मदं सोमं दशसंख्याकाः क्षिपोऽंगुलयः । क्षिपः क्षिप इत्यंगुलिनामसु पाठात् । इंद्रार्थं मृजंति । पवित्रे शोधयंति ॥ ॥३॥

अया सोम इति पंचर्चं त्रयोविंशं सूक्तं भृगुपुत्रस्य कवेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। अया सोमः पंच कविर्भार्गव इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मंदान उद्वृषायते ॥१॥

अया। सोमः। सुऽकृत्यया। महः। चित्। अभि। अवर्धत। मंदानः। उत्। वृषऽयते ॥१॥

सोमोऽयामनया सुकृत्यया शोभनयाभिषवादिलक्षणया क्रियया महश्चिन्महतो देवान् प्रत्यभ्यवर्धत। प्रवृद्धोऽभूत्। मंदानो मोदमान उद्वृषायते। वृषवदाचरति। यथा मोदमानो वृषभः शब्दं करोति तथाभिषववेलायामुपरवेषु शब्दं करोतीत्यर्थः ॥

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतंते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२॥

कृतानि। इत्। अस्य। कर्त्वा। चेतंते। दस्युऽतर्हणा। ऋणा। च। धृष्णुः। चयते ॥२॥

कृतान्यस्य यस्यैतस्य सोमस्य दस्युतर्हणा दस्यूनामसुराणां कर्त्वा कर्माणि स इदस्माभिरेव सोऽयं धृष्णुर्धृष्टः सोमो यजमानानामृणा चर्णान्यपि चयते। कामप्रदानेन चातयति ॥

आत्सोमं इंद्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥३॥

आत्। सोमः। इंद्रियः। रसः। वज्रः। सहस्रऽसाः। भुवत्। उक्थं। यत्। अस्य। जायते ॥३॥

यद्यदास्येंद्रस्योक्थं शस्त्रं जायते प्रादुर्भवति तदादनंतरमेवेंद्रिय इंद्रस्य प्रियकरो रसो बलवान्वज्रो वज्रसदृशः केनाप्यहिंस्यः सोमः सहस्रसा अस्मभ्यमपरिमितस्य धनस्य दाता भवति ॥

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति । यदी मर्मृज्यते धियः ॥४॥

स्वयं। कविः। विऽधर्तरि। विप्राय। रत्नं। इच्छति। यदि। मर्मृज्यते। धियः ॥४॥

यदि कविः क्रांतकर्मायं सोमो धियो धीभिः ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ धीतिभिः। अंगुलीभिरित्यर्थः। मर्मृज्यते शोध्यते तर्हि स्वयं स्वयमेव विप्राय मेधाविने विधर्तरि कामानां विधातरींद्रे रत्नं रमणीयं धनमिच्छति। इंद्रेण धनं दापयितुमिच्छतीत्यर्थः ॥

सिषासतू रयीणां वाजेष्ववंतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥५॥

सिसासतुः। रयीणां। वाजेषु। अर्वतांऽइव। भरेषु। जिग्युषां। असि ॥५॥

हे सोम त्वं भरेषु संग्रामेषु जिग्युषां शत्रुं जयतां रयीणां धनानां सिषासतुः संभक्तुमिच्छुरसि। भवसि। शत्रुंजयद्भ्यो धनानि प्रयच्छसीत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। वाजेषु संग्रामेष्वर्वतामिवाश्वानामिव। यथा संग्रामं प्रविशद्भ्योऽश्वेभ्यो घासं प्रयच्छंति तद्वदित्यर्थः ॥ ॥४॥

तं त्वेति पंचर्चं चतुर्विंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। तं त्वेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥

तं। त्वा। नृम्णानि। बिभ्रतं। सधऽस्थेषु। महः। दिवः। चारुं। सुऽकृत्यया। ईमहे ॥१॥

महो दिवो महतो द्युलोकस्य सधस्थेषु सहस्थानेषु स्थितं नृम्णानि धनानि बिभ्रतमस्मदर्थं धारयंतं चारुं कल्याणं तं पवमानं त्वा त्वां सुकृत्यया शोभनया क्रिययेमहे। धनानि याचामहे ॥

संवृ॑क्तधृष्णुमु॒क्थ्यं॑ म॒हाम॑हिव्रतं॒ मदं॑ । श॒तं पुरो॑ रुरु॒क्षणिं॑ ॥२॥

संवृ॑क्तऽधृष्णुं । उ॒क्थ्यं॑ । म॒हाऽम॑हिव्रतं । मदं॑ । श॒तं । पुरः॑ । रु॒रु॒क्षणिं॑ ॥२॥

हे सोम संवृक्तधृष्णुं । संवृक्ताः संछिन्ना धृष्णवो धर्षणशीलाः शत्रवो येनासौ संवृक्तधृष्णुः । तमुक्थ्यमुक्थार्हं प्रशस्यं महामहिव्रतं महनीयबहुकर्माणं मदं मदकरं शतं बहूनि पुरः शत्रूणां पुराणि रुरुक्षणिं विनाशयंतं त्वां धनानीमह इति संबंधः ॥

अत॑स्त्वा र॒यिम॒भि राजा॑नं सुक्रतो दि॒वः । सु॒प॒र्णो अ॑व्य॒थिर्भ॑रत् ॥३॥

अतः॑ । त्वा॒ । र॒यिं । अ॒भि । राजा॑नं । सु॒क्र॒तो॒ इति॑ सुऽक्रतो । दि॒वः । सु॒ऽप॒र्णः । अ॒व्य॒थिः । भ॒र॒त् ॥३॥

हे पवमान सोम रयिमभि धनं प्रति राजानं त्वा त्वामतो दिवोऽमुष्माद्युलोकात्सुक्रतुः सुप्रज्ञोऽव्यथिर्व्यथारहितः सुपर्णः श्येनो भरत् । आहरत् । तथा च निगमांतरं । आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ । ऋ॰ ४.२६.७. । इति ॥

विश्व॑स्मा॒ इत्स्व॑र्दृ॒शे साधा॑रणं रज॒स्तुरं॑ । गो॒पामृ॒तस्य॒ विर्भ॑रत् ॥४॥

विश्व॑स्मै । इ॒त् । स्वः॑ । दृ॒शे । साधा॑रणं । र॒जः॒ऽतुरं॑ । गो॒पां । ऋ॒तस्य॑ । विः । भ॒र॒त् ॥४॥

रजस्तुरमुदकस्य प्रेरकमृतस्य यज्ञस्य गोपां गोपायितारं विश्वस्मै सर्वस्मै स्वर्दृशे सर्वदृशे देवाय साधारणमित्समानमेव संतं सोमं विः पक्षी श्येनो भरत् । स्वर्गादाहरत् ॥

अधा॑ हिन्वा॒न इँ॑द्रियं ज्यायो॑ महि॒त्वमा॑नशे । अ॒भि॒ष्टि॒कृद्विच॑र्षणिः ॥५॥

अध॑ । हि॒न्वा॒नः । इ॒न्द्रि॒यं । ज्याय॑ः । म॒हि॒ऽत्वं । आ॒न॒शे॒ । अ॒भि॒ष्टि॒ऽकृत् । विऽच॑र्षणिः ॥५॥

अधाथ विचर्षणिः कर्मणां विद्रष्टाभिष्टिकृद्यजमानानामभीष्टस्य फलस्य कर्ता सोम इंद्रियं स्वकीयं बलं हिन्वानः प्रेरयञ्ज्यायः प्रशस्यतरं महित्वं महत्त्वमानशे । प्राप्नोति ॥ ॥५॥

पवस्वेति पंचर्चं पंचविंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । पवस्वेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

पव॑स्व वृ॒ष्टिमा सु नो॒ऽपामू॒र्मिं दि॒वस्परि॑ । अ॒य॒क्ष्मा बृ॒ह॒तीरिषः॑ ॥१॥

पव॑स्व । वृ॒ष्टिं । आ । सु । नः॒ । अ॒पां । ऊ॒र्मिं । दि॒वः । परि॑ । अ॒य॒क्ष्माः । बृ॒ह॒तीः । इषः॑ ॥१॥

हे सोम त्वं दिवो द्युलोकाद्वृष्टिं नोऽस्माकमा पवस्व । समंतात्क्षर । एतदेव दर्शयति । अपामुदकानामूर्मिं तरंगं दिवः पर्या पवस्व । अपि चायक्ष्मा यक्ष्मरहितान्यनामयानि बृहतीर्महांतीरिषोऽन्नान्या पवस्व ॥

तया॑ पवस्व॒ धार॑या॒ यया॒ गाव॑ इ॒हागम॑न् । जन्या॑स॒ उप॑ नो गृ॒हं ॥२॥

तया॑ । प॒व॒स्व॒ । धार॑या । यया॑ । गाव॑ः । इ॒ह । आ॒ऽगम॑न् । जन्या॑सः । उप॑ । न॒ः । गृ॒हं ॥२॥

हे सोम त्वं तया तादृश्या धारया पवस्व । क्षर । कीदृश्येत्यत्राह । यया यादृश्या त्वदीयया धारया जन्यासो जन्याः शत्रुजनपद्भवा गाव इहास्मिँल्लोके नोऽस्माकं संबंधि गृहमुपागमन् उपागच्छंति ॥

घृ॒तं प॑वस्व॒ धार॑या य॒ज्ञेषु॑ देव॒वीत॑मः । अ॒स्मभ्यं॑ वृ॒ष्टिमा प॑व ॥३॥

घृ॒तं । प॒व॒स्व॒ । धार॑या । य॒ज्ञेषु॑ । दे॒व॒ऽवीत॑मः । अ॒स्मभ्यं॑ । वृ॒ष्टिं । आ । प॒व॒ ॥३॥

हे सोम यज्ञेषु देववीतमोऽत्यंतं देवकामस्त्वमस्मभ्यं भार्गवेभ्यः कविभ्यो घृतमुदकं। वनं घृतमित्युदकनामसु पाठात्। धारया संपातेन पवस्व। क्षर। वृष्टिं वर्ष वा पव। पवस्व ॥

स नं ऊर्जे व्य१व्ययं पवित्रं धाव धारया। देवासः शृणवन्हि कं ॥४॥

सः। नः। ऊर्जे। वि। अव्ययं। पवित्रं। धाव। धारया। देवासः। शृणवन्। हि। कं ॥४॥

हे सोम सुतोऽभिषुतस्त्वं नोऽस्माकमूर्जेऽन्नायाव्ययमविमयं पवित्रं धारया संपातेन वि धाव। प्राप्नुहि। देवासो देवा अपि हि कं शृणवन्। गमनवेलायामुत्पन्नं तव शब्दं शृण्वंतु ॥

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजंघनत्। प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥५॥

पवमानः। असिस्यदत्। रक्षांसि। अपऽजंघनत्। प्रत्नऽवत्। रोचयन्। रुचः ॥५॥

रक्षांसि राक्षसानपजंघनदपघ्नन्रुच आत्मीया दीप्तीः प्रत्नवत्पुराणवद्रोचयन्दीपयन्पवमानः सोमोऽसिष्यदत्। स्यंदते ॥ ॥६॥

उत्त इति पंचर्चं षड्विंशं सूक्तमांगिरसस्योचथ्यस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। उत्ते शुष्मास उचथ्य इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

उत्ते शुष्मास ईरते सिंधोरूर्मेरिव स्वनः। वाणस्य चोदया पविं ॥१॥

उत्। ते। शुष्मासः। ईरते। सिंधोः। ऊर्मेःऽइव। स्वनः। वाणस्य। चोदय। पविं ॥१॥

हे सोम ते तव शुष्मासः शुष्मा वेगा उदीरते। उद्गच्छंति। तत्र दृष्टांतः। सिंधोः समुद्रस्योर्मेरिव यथा तरंगात्स्वनो ध्वनिरुद्गच्छति तद्वदित्यर्थः। स त्वं वाणस्य विकृष्टस्य वाणस्य नालस्य वा वादित्रविशेषस्य पविं शब्दं। पविः भारतीति वाङ्नामसु पाठात्। चोदय। प्रेरय। वेगेन स्यंदमानस्त्वं विकृष्टवाणशब्दसदृशं शब्दं कुर्वित्यर्थः ॥

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः। यदव्य एषि सानवि ॥२॥

प्रऽसवे। ते। उत्। ईरते। तिस्रः। वाचः। मखस्युवः। यत्। अव्ये। एषि। सानवि ॥२॥

हे सोम ते तव प्रसवे सति मखस्युवो यज्ञमिच्छवो यजमानस्य तिस्रो वाचः ऋग्यजुःसामात्मकानि त्रीणि वाक्यान्युदीरते। उद्गच्छंति। कदेत्यत आह। यद्यदा सानवि समुच्छ्रितेऽव्येऽविमये पवित्र एषि त्वं गच्छसि ॥

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः। पवमानं मधुश्चुतं ॥३॥

अव्यः। वारे। परि। प्रियं। हरिं। हिन्वंति। अद्रिऽभिः। पवमानं। मधुऽश्चुतं ॥३॥

प्रियं देवानां प्रीतिकरं हरिं हरितवर्णमद्रिभिर्ग्रावभिरभिषुतं मधुश्चुतं मधुनो रसस्य च्यावयितारं पवमानं सोममव्योऽवेर्वारे वाले परि हिन्वंति। ऋत्विजः परिप्रेरयंति ॥

आ पवस्व मदिंतम पवित्रं धारया कवे। अर्कस्य योनिमासदं ॥४॥

आ। पवस्व। मदिन्ऽतम। पवित्रं। धारया। कवे। अर्कस्य। योनिं। आऽसदं ॥४॥

हे मदिंतम मादयितृतम कवे क्रांतकर्मन्सोम अर्कस्यार्चनीयस्येंद्रस्य योनिमुदरं स्थानमासदं प्राप्तुं पवित्रमतीत्य धारया संपातेन पवस्व। आभिमुख्येन क्षर। यद्यप्येषा पूर्वस्मिन्नध्याये व्याख्याता तथापि मंदमतीनां विस्मरणशंकया पुनर्व्याख्याता ॥

स पवस्व मदिंतम गोभिरंजानो अक्तुभिः । इंदविंद्राय पीतये ॥५॥

सः । पवस्व । मदिन्ऽतम । गोभिः । अंजानः । अक्तुऽभिः । इंदो इति । इंद्राय ।
पीतये ॥५॥

हे मदिंतम मादयितृतमेंदो सोम अक्तुभिरंजनसाधनभूतैर्गोभिर्गोविकारैः पयोभिरंजानोऽज्यमानः संस्क्रियमाणः स त्वमिंद्रायेंद्रस्य पीतये पानाय पवस्व । क्षर ॥ ॥७॥

अध्वर्यो इति पंचर्चं सप्तविंशं सूक्तमांगिरसस्योचथ्यस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । अध्वर्यो इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहींद्राय पातवे ॥१॥

अध्वर्यो इति । अद्रिऽभिः । सुतं । सोमं । पवित्रे । आ । सृज । पुनीहि । इंद्राय ।
पातवे ॥१॥

हे अध्वर्यो अद्रिभिर्ग्रावभिः सुतमभिषुतं सोमं पवित्र आ सृज । एतदेव दर्शयति । इंद्रायेंद्रस्य पातवे पानाय पुनीहि । पावय ॥

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिंद्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमं ॥२॥

दिवः । पीयूषं । उत्ऽतमं । सोमं । इंद्राय । वज्रिणे । सुनोत । मधुमत्ऽतमं ॥२॥

हे अध्वर्यवः यूयं मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं दिवो द्युलोकस्य पीयूषममृतमुत्तमं श्रेष्ठं सोमं वज्रिणे वज्रवत इंद्राय सुनोत । अभिषुणुत ॥

तव त्य इंदो अंधसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥३॥

तव । त्ये । इंदो इति । अंधसः । देवाः । मधोः । वि । अश्नते । पवमानस्य । मरुतः ॥३॥

हे इंदो सोम तव संबंधिनं मधोर्मदकरस्य पवमानस्य पूयमानमंधसोऽन्नं ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ त्ये त इमे देवा इंद्रादयो मरुतश्च व्यश्नते । व्याप्नुवते । व्याप्नुवंतीत्यर्थः ॥

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये । वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥४॥

त्वं । हि । सोम । वर्धयन् । सुतः । मदाय । भूर्णये । वृषन् । स्तोतारं । ऊतये ॥४॥

हे सोम सुतोऽभिषुतस्त्वं वर्धयन्देवान्प्रवृद्धान्कुर्वन्वृषन्कामान्वर्षन् भूर्णये क्षिप्राय मदायोतये रक्षणाय च स्तोतारमभिगच्छसीत्यर्थः ॥

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ॥५॥

अभि । अर्ष । विऽचक्षण । पवित्रं । धारया । सुतः । अभि । वाजं । उत । श्रवः ॥५॥

हे विचक्षण सोम सुतोऽभिषुतस्त्वं पवित्रमभि प्रति धारयार्ष । गच्छ । उतापि चास्माकं वाजमन्नं श्रवः कीर्तिं चाभि क्षरेत्यर्थः ॥ ॥८॥

परि द्युक्ष इति पंचर्चमष्टाविंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । परि द्युक्ष इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अंधसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥१॥

परि । द्युक्षः । सनत्ऽरयिः । भरत् । वाजं । नः । अंधसा । सुवानः । अर्ष । पवित्रे । आ ॥१॥

द्युक्षो दीप्तः सनद्रयिर्दीयमानधनः सोमो नोऽस्माकं वाजं बलमंधसान्नेन सह परि भरत् । परिभरतु । प्रयच्छतु । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः । हे सोम सुवानोऽभिषूयमाणस्त्वं पवित्र आर्ष । चर ॥

तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात्तना ॥२॥

तव । प्रत्नेभिः । अध्वऽभिः । अव्यः । वारे । परि । प्रियः । सहस्रऽधारः । यात् । तना ॥२॥

हे सोम तव संबंधी प्रियो देवानां प्रीतिकरः सहस्रधारो बहुधारस्तना विस्तृतसारो रसः प्रत्नेभिः पुराणैरध्वभिर्मार्गैरव्योऽवेर्वारे वाले दशापवित्रे परि यात् । परिगच्छति ॥

चरुर्न यस्तमींखयेंदो न दानमींखय । वधैर्वधस्नवींखय ॥३॥

चरुः । न । यः । तं । ईंखय । इंदो इति । न । दानं । ईंखय । वधैः । वधस्नो इति वधऽस्नो । ईंखय ॥३॥

हे सोम चरुर्न चरुरिव यः पूर्णोदनो भवति तमींखय । अस्मान्प्रापय । अपि च हे इंदो नेदानीं दानं देयमींखय । हे वधस्नो प्रहारिण प्रस्रवणशील सोम वधैर्ग्राव्णां प्रहारैरींखय ॥

नि शुष्ममिंदवेषां पुरुहूत जनानां । यो अस्माँ आदिदेशति ॥४॥

नि । शुष्मं । इंदो इति । एषां । पुरुऽहूत । जनानां । यः । अस्मान् । आऽदिदेशति ॥४॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूतेंदो सोम त्वं यः शुष्मो येषां शत्रुजनानां बलमस्मानादिदेशति बाधार्थमाह्वयति एषां शत्रुजनानां तं शुष्मं बलं नि न्यक् कुर्विति शेषः ॥

शतं न इंद ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनां । पवस्व मंहयद्रयिः ॥५॥

शतं । नः । इंदो इति । ऊतिऽभिः । सहस्रं । वा । शुचीनां । पवस्व । मंहयत्ऽरयिः ॥५॥

हे इंदो सोम मंहयद्रयिः प्रदीयमानधनस्त्वं नोऽस्माकमूतिभिरूतिभ्यः ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ रक्षार्थं शुचीनां शुद्धानां तवांशभूतानां सोमानां शतं सहस्रं वा पवस्व । क्षर ॥ ॥९॥

उत्त इति चतुर्ऋचमेकोनत्रिंशं सूक्तं काश्यपस्यावत्सारस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । उत्ते चतुष्कमवत्सार इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिंदंतो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

उत् । ते । शुष्मासः । अस्थुः । रक्षः । भिंदंतः । अद्रिऽवः । नुदस्व । याः । परिऽस्पृधः ॥१॥

हे अद्रिवो ग्राववन्सोम ते तव शुष्मासः शुष्मा वेगा रक्षो राक्षसान्भिंदंतो विदारयंत उदस्थुः । उत्तिष्ठंति । याः स्पृधः स्पर्धमानाः शत्रुसेना अस्मान्प्रतिबाधंते तास्त्वं नुदस्व । प्रेरय । बाधस्वेत्यर्थः ॥

अया निजघ्निरोजसा रथसंगे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥

अया । निऽजघ्निः । ओजसा । रथऽसंगे । धने । हिते । स्तवै । अबिभ्युषा । हृदा ॥२॥

हे सोम त्वमयानेन छतेनौजसा बलेन निजघ्निः शत्रून्हंतुं शीलवान्। तं त्वामबिभ्युषाभीतेन हृदा मनसा युक्तोऽहं रथसंगेऽस्माकं रथानां संगे हिते शत्रुषु निहिते धने च निमित्ते स्तवै। स्तौमि ॥

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या। रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

अस्य। व्रतानि। न। आऽधृषे। पवमानस्य। दुःऽध्या। रुज। यः। त्वा। पृतन्यति ॥३॥

हे सोम पवमानस्य क्षरतो यस्यास्य तव व्रतानि कर्माणि दूढ्या दुर्बुद्धिना राक्षसेन नाधृष आधर्षयितुमशक्यानि स त्वं त्वां यो दुर्बुद्धिः शत्रुः पृतन्यति योद्धुमिच्छति तं रुज। बाधस्व ॥

तं हिन्वंति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनं। इंदुमिंद्राय मत्सरं ॥४॥

तं। हिन्वंति। मदऽच्युतं। हरिं। नदीषु। वाजिनं। इंदुं। इंद्राय। मत्सरं ॥४॥

मदच्युतं मदस्य च्यावयितारं हरिं हरितवर्णं वाजिनं बलिनं मत्सरं मदकरं तमिंदुं सोमं नदीषु वसतीवरीष्विंद्रायेंद्रार्थं हिन्वंति। ऋत्विजः प्रेरयंति ॥ ॥१०॥

अस्य प्रत्नामिति चतुर्ऋचं त्रिंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। अस्य प्रत्नामित्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिं ॥१॥

अस्य। प्रत्नां। अनु। द्युतं। शुक्रं। दुदुह्रे। अह्रयः। पयः। सहस्रऽसां। ऋषिं ॥१॥

अस्य सोमस्य प्रत्नां पुराणां द्युतं द्योतमानां तनुमनु शुक्रं दीप्तं सहस्रसामभिलषितस्यापरिमितस्य कर्मफलस्य दातारं पयः पातव्यं रसमह्रयः कवयो दुदुह्रे। दुहंति ॥

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति। सप्त प्रवत आ दिवं ॥२॥

अयं। सूर्यःऽइव। उपऽदृक्। अयं। सरांसि। धावति। सप्त। प्रऽवतः। आ। दिवं ॥२॥

अयं सोमः सूर्य इव यथा सूर्यः सर्वस्य लोकस्योपद्रष्टा तद्वत्कर्मणामुपदृगुपद्रष्टा। अपि चायं सोमः सरांसि। त्रिंशदुक्थपात्राणीति केचिद्वर्णयंति। अपरे तु त्रिंशदहोरात्राणि सरांसीति। तानि धावति। गच्छति। तथा च यास्कः। तत्रैतद्याज्ञिका वेदयंते त्रिंशदुक्थपात्राणि माध्यंदिने सवन एकदेवतानि तान्येतस्मिन्काल एकेन प्रतिधानेन पिबंति तान्यत्र सरांस्युच्यंते। त्रिंशदपरपक्षस्याहोरात्रास्त्रिंशत्पूर्वपक्षस्येति नैरुक्ताः। नि॰ ५. ११.। इति। अपि चायं सोमो दिवमधिकृत्य सप्त प्रवतः सप्त नदीरा तिष्ठति ॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि। सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

अयं। विश्वानि। तिष्ठति। पुनानः। भुवना। उपरि। सोमः। देवः। न। सूर्यः ॥३॥

पुनानः पूयमानोऽयं सोमो विश्वानि सर्वाणि भुवना भुवनानि सर्वेषां भुवनानामुपरि तिष्ठति। तत्र दृष्टांतमाह। देवो न सूर्यः। यथा सूर्यो देवः सर्वेषां भुवनानामुपरि तिष्ठति तद्वदयं सोमोऽपीत्यर्थः ॥

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः। पुनान इंदविंद्रयुः ॥४॥

परि। नः। देवऽवीतये। वाजान्। अर्षसि। गोऽमतः। पुनानः। इंदो इति। इंद्रऽयुः ॥४॥

हे इंदो सोम इंद्रयुरिंद्रकामः पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माकं देववीतये यज्ञाय गोमतो गोयुक्तानि वाजानन्नानि पर्यर्षसि। परितः क्षरेत्यर्थः ॥ ॥११॥

यवंयवं न इति चतुर्ऋचमेकविंशं सूक्तं काश्यपस्यावत्सारस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। यवंयवमित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

यवंयवं नो अंधसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव। सोम विश्वा च सौभगा ॥१॥
यवंऽयवं। नः। अंधसा। पुष्टंऽपुष्टं। परि। स्रव। सोम। विश्वा। च। सौभगा ॥१॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं पुष्टंपुष्टं बहुलं यवंयवं पुनःपुनर्युतं रसमंधसान्नात्मना परि स्रव। धारया क्षर ॥ अत्र प्रार्थयितुस्तृष्णयात्यंतं पीडितत्वादाबाधे च। पा॰ ८. १. १०.। इति द्विर्भावः। पीडा प्रयोक्तृधर्मो नाभिधेयधर्म इत्युक्तं ॥ अपि च विश्वा विश्वानि सौभगानि धनानि परि स्रव ॥

इंदो यथा तव स्तवो यथा ते जातमंधसः। नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥
इंदो इति। यथा। तव। स्तवः। यथा। ते। जातं। अंधसः। नि। बर्हिषि। प्रिये। सदः ॥२॥

हे इंदो सोम अंधसोऽन्नरूपस्य तव संबंधी स्तवः स्तवनं स्तोत्रं तथा ते तव जातं जन्म यथा प्रादुर्भूतमस्ति तथा त्वं प्रिये प्रीणयितरि बर्हिष्यस्मद्यागे नि षदः। निषण्णो भव ॥

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमांधसा। मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥
उत। नः। गोऽवित्। अश्वऽवित्। पवस्व। सोम। अंधसा। मक्षुऽतमेभिः। अहऽभिः ॥३॥

उतापि च हे सोम नोऽस्माकं गोविद्गोप्रदोऽश्वविदश्वप्रदश्च त्वं मक्षूतमेभिर्मक्षुतमैरतिशयेन शीघ्रैरहभिरहोभिर्हेतुभिरंधसान्नेन पवस्व। धारया क्षर ॥

यो जिनाति न जीयते हंति शत्रुमभीत्य। स पवस्व सहस्रजित् ॥४॥
यः। जिनाति। न। जीयते। हंति। शत्रुं। अभिऽइत्य। सः। पवस्व। सहस्रऽजित् ॥४॥

हे सहस्रजित्संख्यानां शत्रूणां जेतः सोम यो भवाञ्जिनाति शत्रून्हंति न जीयते स्वयं शत्रुभिर्न जीयते। न हन्यत इत्यर्थः। शत्रुमभीत्य शत्रुं स्वयमभ्येत्य हंति न च स्वयं शत्रुभिरभिभूयते स त्वं पवस्व। क्षर ॥ ॥१२॥

परि सोम इति चतुर्ऋचं द्वाविंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। परि सोम इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥
परि। सोमः। ऋतं। बृहत्। आशुः। पवित्रे। अर्षति। विऽघ्नन्। रक्षांसि। देवऽयुः ॥१॥

आशुः क्षिप्रकारी देवयुर्देवकामः सोमः पवित्रे स्थित्वा रक्षांसि राक्षसान्विघ्नन्निघ्नन्बृहन्महदृतमन्नं पर्यर्षति। परिगमयति। अस्मभ्यं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः। इंद्रस्य सख्यमाविशन् ॥२॥
यत्। सोमः। वाजं। अर्षति। शतं। धाराः। अपस्युवः। इंद्रस्य। सख्यं। आऽविशन् ॥२॥

यद्यदापस्युवः कर्मकामाः शतं शतसंख्याका धाराः सोमस्य धारा इंद्रस्य सख्यं सखित्वमाविशन् प्राप्नुवंति तदा सोमो वाजमन्नमर्षति। गमयति। अस्मभ्यं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत। मृज्यसे सोम सातये ॥३॥
अभि। त्वा। योषणः। दश। जारं। न। कन्या। अनूषत। मृज्यसे। सोम। सातये ॥३॥

हे सोम त्वा त्वां या दशसंख्याका योषणोऽंगुलयः कन्या पितृमती कन्यका जारं न यथा प्रियमभिशब्दायते तद्वदभ्यनूषत अभिशब्दायंते ताभिः सातयेऽस्माकं धनस्य लाभाय मृज्यसे । इंद्रार्थं शोध्यसे ॥

त्वमिंद्राय विष्णवे स्वादुरिंदो परि स्रव । नॄन्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥४॥

त्वं । इंद्राय । विष्णवे । स्वादुः । इंदो इति । परि । स्रव । नॄन् । स्तोतॄन् । पाहि । अंहसः ॥४॥

हे इंदो सोम स्वादुः प्रियरसस्त्वमिंद्रार्थं विष्णवे विष्ण्वर्थं च परि स्रव । परिक्षर । नॄन्कर्मणां नेतॄन्स्तोतॄन्स्वद्विषयाणां स्तुतीनां कर्तॄनंहसो दुरितात्पाहि । रक्ष च ॥ ॥१३॥

प्र ते धारा इति चतुर्ऋचं त्रयस्त्रिंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र ते धारा इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यंति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणं ॥१॥

प्र । ते । धाराः । असश्चतः । दिवः । न । यंति । वृष्टयः । अच्छ । वाजं । सहस्रिणं ॥१॥

हे सोम ते तवासश्चतः संगरहिता धाराः सहस्रिणमपरिमितसंख्याकं वाजमन्नमच्छ नोऽस्मदर्थं प्र यंति । प्रगच्छंति । तत्र दृष्टांतः । दिवो न वृष्टयः । यथा द्युलोकाद्वर्षधारा निःसंगाः प्रजानामपरिमितमन्नं प्रयच्छंति तद्वदित्यर्थः ॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुंजान आयुधा ॥२॥

अभि । प्रियाणि । काव्या । विश्वा । चक्षाणः । अर्षति । हरिः । तुंजानः । आयुधा ॥२॥

हरिर्हरितवर्णः सोमो विश्वा विश्वानि प्रियाणि देवानां प्रीतिकराणि काव्या काव्यानि कर्माणि चक्षाणः पश्यन्नायुधा स्वकीयान्यायुधानि तुंजानो राक्षसान्प्रति प्रेरयंश्चाभ्यर्षति । यागं प्रति गच्छति ॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

सः । मर्मृजानः । आयुऽभिः । इभः । राजाऽइव । सुऽव्रतः । श्येनः । न । वंसु । सीदति ॥३॥

सुव्रतः सुकर्मा स सोम आयुभिर्मनुष्यैर्ऋत्विग्भिर्मर्मृजानः शोध्यमान इभो गतभयो राजेव यथा राजा श्येनो न यथा च श्येनस्तथा वंसूदकेषु वसतीवरीषु सीदति ॥

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इंदवा भर ॥४॥

सः । नः । विश्वा । दिवः । वसु । उतो इति । पृथिव्याः । अधि । पुनानः । इंदो इति । आ । भर ॥४॥

हे इंदो सोम पुनानः पवमानस्त्वं दिवोऽधि दिवि स्थितान्युतो अपि च पृथिव्या अधि पृथिव्यां स्थितानि । अधीति सप्तम्यर्थानुवादः । विश्वा विश्वानि वसु वसूनि नोऽस्मभ्यमा भर । आहर ॥ ॥१४॥

तरत्स इति चतुर्ऋचं चतुस्त्रिंशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । तरत्स इत्यनुक्रांतं ॥ उक्तो विनियोगः ॥

तरत्स मंदी धावति धारा सुतस्यांधसः । तरत्स मंदी धावति ॥१॥

तरत् । सः । मंदी । धावति । धारा । सुतस्य । अंधसः । तरत् । सः । मंदी । धावति ॥१॥

मंदी देवानां हर्षकरः स सोमस्तरत्स्तोतॄन्पाप्मनः सकाशात्तारयन्धावति । पवते । तदेव दर्शयति । सुतस्याभिषुतस्यांधसो देवानामन्नात्मकस्य सोमस्य धारा धावतीति । पुनरपि तदेवाहात्यंतादरार्थं तरत्स मंदी धावतीति । यद्वा । अस्या ऋचो यास्कोक्तोऽर्थो द्रष्टव्यः । तद्यथा । तरति स पापं सर्वं मंदी यः

स्रौति धावति गच्छत्यूर्ध्वां गतिं। धारा सुतस्यांधसो धारयाभिषुतस्य सोमस्य मंत्रपूतस्य वाचा स्तुतस्य। नि० १३.६.। इति ॥

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः। तरत्स मंदी धावति ॥२॥
उस्रा। वेद। वसूनां। मर्तस्य। देवी। अवसः। तरत्। सः। मंदी। धावति ॥२॥

वसूनां धनानामुस्रोत्सरणशीला प्रदात्री देवी द्योतमाना स्तूयमाना वा यस्य सोमस्य धारा मर्तस्य मनुष्यं यजमानमवसो रक्षितुं वेद जानाति। सिद्धमन्यत् ॥

ध्वस्रयोः पुरुषंत्योरा सहस्राणि दद्महे। तरत्स मंदी धावति ॥३॥
ध्वस्रयोः। पुरुऽसंत्योः। आ। सहस्राणि। दद्महे। तरत्। सः। मंदी। धावति ॥३॥

ध्वस्रयोः पुरुषंत्योः। ध्वस्रः कश्चिद्राजा पुरुषंतिः कश्चित्। तयोरुभयोः ॥ अत्रेतरेतरयोगविवक्षया द्विवचनं द्रष्टव्यं ॥ सहस्राणि धनानां सहस्राण्या दद्महे। वयं प्रतिगृह्णीमः। तदस्माभिः प्रतिगृहीतं धनमुत्तममस्त्वित्यृषिः सोमं प्रार्थयत इति सोमस्य स्तुतिः। सिद्धमन्यत्। यथावत्सार एतयोर्धनानि प्रतिजग्राह एवं तरंतपुरुमीळ्हौ प्रतिजगृहतुः। तथा च शाट्यायनकं। अथ ह वै तरंतपुरुमीळ्हौ वैददश्वी ध्वस्रयोः पुरुषंत्योर्वस्रु प्रतिगृह्य गरगिराविव मेनाते तौ ह स्वांगुल्या सातं प्रतिममृशाते तावकामयेतामसातं नाविवेदं सातं स्यादात्तमिवैव न प्रतिगृहीतमिति तावेतच्चतुर्ऋचमपश्यतां तेन प्रस्तुतां ततो वै तयोरसातं सातमभवदात्तमिवैव न प्रतिगृहीतं स यः प्रतिगृह्य कामयेतेत्यादि ॥

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे। तरत्स मंदी धावति ॥४॥
आ। ययोः। त्रिंशतं। तना। सहस्राणि। च। दद्महे। तरत्। सः। मंदी। धावति ॥४॥

ययोर्ध्वस्रपुरुषंत्योस्त्रिंशतं त्रीणि शतानि सहस्राणि तना वस्त्राण्या दद्महे वयं प्रतिगृह्णीमः तयोरस्माभिः प्रतिगृहीतं तत्सर्वमप्रतिगृहीतमस्त्विति सोममृषिः प्रार्थयत इति सोमस्यैव स्तुतिः। सिद्धमन्यत् ॥ ॥१५॥

पवस्वेति चतुर्ऋचं पंचत्रिंशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। पवस्वेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित्। प्रजावद्रत्नमा भर ॥१॥
पवस्व। गोऽजित्। अश्वऽजित्। विश्वऽजित्। सोम। रण्यऽजित्। प्रजाऽवत्।
रत्नं। आ। भर ॥१॥

हे सोम गोजिच्छत्रूणां गवां जेताश्वजिदश्वानामपि जेता विश्वजिद्विश्वस्य जगतो जेता रण्यजिद्रमणीयस्य धनस्यापि जेता त्वं पवस्व। धारया क्षर। अपि चास्मभ्यं प्रजावत्पुत्राद्युपेतं रत्नं रमणीयं धनमा भर। आहर ॥

पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः। पवस्व धिषणाभ्यः ॥२॥
पवस्व। अत्ऽभ्यः। अदाभ्यः। पवस्व। ओषधीभ्यः। पवस्व। धिषणाभ्यः ॥२॥

हे सोम त्वमद्भ्यो वसतीवरीभ्योऽदाभ्योऽंशुभ्यश्च पवस्व। क्षर। अपि चौषधीभ्यः पवस्व। क्षर। किंच धिषणाभ्यो ग्रावभ्यः पवस्व। क्षर ॥

त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर। कविः सीद नि बर्हिषि ॥३॥
त्वं। सोम। पवमानः। विश्वानि। दुःऽइता। तर। कविः। सीद। नि। बर्हिषि ॥३॥

हे सोम पवमानः पूयमानः कविः क्रांतकर्मा त्वं विश्वानि सर्वाणि दुरितानि राक्षसैः कृतान्युपद्रवाणि तर। निराकुरु। अस्मिन्बर्हिषि नि षीद च ॥

पव॑मान स्व॒र्विदो॒ जाय॑मानोऽभवो म॒हान्। इंदो॒ विश्वाँ॑ अ॒भीद॑सि ॥४॥

पव॑मान। स्वः॑। वि॒दः॒। जाय॑मानः। अ॒भ॒वः॒। म॒हान्। इंदो॒ इति॑। विश्वा॑न्। अ॒भि। इत्। अ॒सि ॥४॥

हे पवमान सोम त्वं स्वः सर्वं विदः। यजमानाय प्रयच्छ। अपि च जायमानः प्रादुर्भवन्नेव महान् पूजनीयोऽभवः। असि। किंच हे इंदो सोम त्वं विश्वानेव सर्वानेव शत्रूनभ्यसि। तेजसाभिभवसि ॥ ॥१६॥

प्र गायत्रेणेति चतुर्ऋचं षड्विंशं सूक्तं काश्यपस्यावत्सारस्यार्षं। तृतीया पुरउष्णिगाद्यद्वादशकाद्यष्टका। शिष्टा गायत्र्यः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। प्र गायत्रेणोपांत्या पुरउष्णिगिति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

प्र गा॑य॒त्रेण॑ गायत॒ पव॑मानं॒ विच॑र्षणिं। इंदुं॑ स॒हस्र॑चक्षसं ॥१॥

प्र। गा॒य॒त्रेण॑। गा॒य॒त॒। पव॑मानं। वि॒ऽच॑र्षणिं। इंदुं॑। स॒हस्र॑ऽचक्षसं ॥१॥

विचर्षणिं विद्रष्टारं सहस्रचक्षसं बहुदर्शनं पवमानं पूयमानमिंदुं सोमं गायत्रेण गायत्रनामधेयेन साम्ना प्र गायत। हे स्तोतारः गानं कुरुत। स्तुतेत्यर्थः ॥

तं त्वा॑ स॒हस्र॑चक्षसमथो॑ स॒हस्र॑भर्णसं। अति॒ वार॑मपाविषुः ॥२॥

तं। त्वा॒। स॒हस्र॑ऽचक्षसं। अथो॒ इति॑। स॒हस्र॑ऽभर्णसं। अति॑। वार॑ं। अ॒पा॒वि॒षुः॒ ॥२॥

हे सोम सहस्रचक्षसं बहुदर्शनं अथो अपि च सहस्रभर्णसं बहुभरणं तमभिषुतं त्वा त्वां वारं वालं दशापवित्रमत्यपाविषुः। ऋत्विजः पावयंति ॥

अति॒ वारा॒न्पव॑मानो अ॒सिष्यद॒त्कल॒शाँ अ॒भि धा॑वति। इंद्र॑स्य॒ हार्द्या॑वि॒शन् ॥३॥

अति॑। वारा॑न्। पव॑मानः। अ॒सि॒स्य॒द॒त्। क॒ल॒शा॑न्। अ॒भि। धा॒व॒ति॒। इंद्र॑स्य। हार्दि॑। आ॒ऽवि॒शन् ॥३॥

पवमानः पूयमानः सोमो वारानवेर्वालानत्यतिक्रम्यासिष्यदत्। स्यंदते। अपि चेंद्रस्य हार्दि हृदयमाविशन् कलशान् द्रोणान्यभि धावति। अभिगच्छति ॥

इंद्र॑स्य सोम॒ राध॑से॒ शं प॑वस्व विचर्षणे। प्र॒जाव॒द्रेत॒ आ भ॑र ॥४॥

इंद्र॑स्य। सोम॒। राध॑से। शं। प॒व॒स्व॒। वि॒ऽच॒र्ष॒णे॒। प्र॒जाऽव॑त्। रेतः॑। आ। भ॒र॒ ॥४॥

हे विचर्षणे विद्रष्टः त्वमिंद्रस्य राधसे राधनाय संसिद्ध्यै शं सुखकरं रसं पवस्व। क्षर। अपि चास्मभ्यं प्रजावत्पुत्राद्युपेतं रेत उदकमन्नं वा भर। आहर। प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ॥१७॥ ॥२॥

तृतीयेऽनुवाके सप्त सूक्तानि। तत्राद्या वीतीति त्रिंशदृचं प्रथमं सूक्तं। अमहीयुर्नामांगिरस ऋषिः। गायत्री छंदः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। अया वीती त्रिंशदमहीयुरिति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इंदो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥
अया । वीती । परि । स्रव । यः । ते । इंदो इति । मदेषु । आ । अवऽअहन् । नवतीः । नव ॥१॥

हे इंदो सोम अयानेन रसेन वीती वीत्या इंद्रस्य भक्षणाय परि स्रव । परिक्षर । कीदृशेन रसेनेत्यत आह । ते तव यो रसो मदेषु संग्रामेषु नवतीर्नवेति नवनवतिसंख्याकाश्च शत्रुपुरीरवाहन् जघान । अमुं सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निंद्र उक्तलक्षणाः शत्रुपुरीर्जघानेति कृत्वा रसो जघानेत्युपचारः ॥

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरं । अध त्यं तुर्वशं यदुं ॥२॥
पुरः । सद्यः । इत्थाऽधिये । दिवःऽदासाय । शंबरं । अध । त्यं । तुर्वशं । यदुं ॥२॥

सद्य एकस्मिन्नेवाह्नि पुरः शत्रूणां पुराणि सोमरसोऽवाहन् । इत्थाधिये सत्यकर्मणे दिवोदासाय राज्ञे शंबरं शत्रुपुराणां स्वामिनमधाथ त्यं तं तुर्वशनामकं राजानं दिवोदासशत्रुं यदुं यदुनामकं राजानं च वशमानयच्च । अत्रापि सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निंद्रः सर्वमेतदकार्षीदिति सोमरसे कर्तृत्वमुपचर्यते ॥

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिंदो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥
परि । नः । अश्वं । अश्वऽवित् । गोऽमत् । इंदो इति । हिरण्यऽवत् । क्षर । सहस्रिणीः । इषः ॥३॥

हे इंदो सोम अश्वविदश्वस्य लंभकस्त्वं नोऽस्माकमश्वं गोमद्गोयुक्तं हिरण्यवद्धिरण्योपेतं धनं च परि क्षर । अपि च सहस्रिणीर्बह्वीरिषोऽन्नानि क्षर ॥

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युंदतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥
पवमानस्य । ते । वयं । पवित्रं । अभिऽउंदतः । सखिऽत्वं । आ । वृणीमहे ॥४॥

हे सोम पवित्रमभ्युंदतः पवित्रमभिक्लेदयतः पवमानस्य क्षरतश्च ते तव सखित्वं सख्यं वयममहीयव आंगिरसा आ वृणीमहे । प्रार्थयामहे ॥

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरंति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ॥५॥
ये । ते । पवित्रं । ऊर्मयः । अभिऽक्षरंति । धारया । तेभिः । नः । सोम । मृळय ॥५॥

हे सोम ते तव य ऊर्मयस्तरंगाः पवित्रं धारया क्षरंति तेभिस्तैरूर्मिभिर्नोऽस्मान् मृळय । सुखय ॥ ॥१८॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषं । ईशानः सोम विश्वतः ॥६॥
सः । नः । पुनानः । आ । भर । रयिं । वीरऽवतीं । इषं । ईशानः । सोम । विश्वतः ॥६॥

हे सोम विश्वतः सर्वस्य जगत ईशान ईश्वरः सोऽभिषुतः पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्मभ्यं रयिं धनं वीरवतीं पुत्राद्युपेतमिषमन्नं चा भर । आहर ॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजंति सिंधुमातरं । समादित्येभिरख्यत ॥७॥
एतं । ऊं इति । त्यं । दश । क्षिपः । मृजंति । सिंधुऽमातरं । सं । आदित्येभिः । अख्यत ॥७॥

सिंधुमातरं यस्य सोमस्य सिंधवो नद्यो मातरो भवंति तं तमेतमिमं सोमं दश क्षिपो दशसंख्याका अंगुलयो मृजंति । शोधयंति । अपि च सोऽयं सोम आदित्येभिरादित्यैः समख्यत । संगच्छते ॥

समिंद्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥८॥
सं । इंद्रेण । उत । वायुना । सुतः । एति । पवित्रे । आ । सं । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः ॥८॥

सुतोऽभिषुतः सोमः पवित्र इंद्रेण समेति । संगच्छति । उतापि च वायुना समेति । सूर्यस्य रश्मिभिर्मयूखैरपि समेति ॥

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥९॥
सः । नः । भगाय । वायवे । पूष्णे । पवस्व । मधुऽमान् । चारुः । मित्रे । वरुणे । च ॥९॥

हे सोम मधुमान् मधुररसश्चारुः कल्याणस्वरूपश्च सोऽभिषुतस्त्वं नोऽस्माकं यज्ञे भगाय भगाख्याय देवाय वायवे च पूष्णे च मित्रे मित्राय देवाय वरुणे वरुणाय च पवस्व । चर ॥

उच्चा ते जातमंधसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥
उच्चा । ते । जातं । अंधसः । दिवि । सत् । भूमिः । आ । ददे । उग्रं । शर्म । महि । श्रवः ॥१०॥

हे सोम ते तव संबंधिनोऽंधसो रसस्योच्चोपरि जातं जन्म । अपि च दिवि द्युलोके सद्विद्यमानं स्वतस्तत्र संबंध्युग्रमुद्गूर्णं शर्म सुखं महि महच्छ्रवोऽन्नं च भूमिरा ददे ॥ भूम्या दद इति पदत्रयमामनंति । विसर्जनीयलोपः सांहितिकः ॥ भूमिर्भौमा जना मादृशाः । भूमिष्ठैरादीयत इत्यर्थः ॥ ॥१९॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणां । सिषासंतो वनामहे ॥११॥
एना । विश्वानि । अर्यः । आ । द्युम्नानि । मानुषाणां । सिसासंतः । वनामहे ॥११॥

एनेनानेन सोमेन मानुषाणां मनुष्याणां विश्वा विश्वानि द्युम्नान्यन्नान्यार्योऽभिगच्छंतः सिषासंतः संभक्तुमिच्छंतश्च वयं वनामहे । संभजामहे ॥

स न इंद्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥१२॥
सः । नः । इंद्राय । यज्यवे । वरुणाय । मरुत्ऽभ्यः । वरिवःऽवित् । परि । स्रव ॥१२॥

हे सोम वरिवोविद्धनस्य लंभकः पवमानस्त्वं नोऽस्माकं यज्यवे यष्टव्यायेंद्राय वरुणाय च मरुद्भ्यश्च परि स्रव । धारया चर ॥

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतं । इंदुं देवा अयासिषुः ॥१३॥
उपो इति । सु । जातं । अप्ऽतुरं । गोभिः । भंगं । परिऽकृतं । इंदुं । देवाः । अयासिषुः ॥१३॥

सु जातं सम्यक्प्रादुर्भूतमप्तुरं वसतीवरीभिः प्रेरितं भंगं शत्रूणां भंजकं गोभिर्गोविकारैः पयोभिः परिष्कृतमलंकृतं संस्कृतमिंदुं सोमं देवा इंद्रादय उपायासिषुः । उपागच्छंति ॥

तमिद्वर्धंतु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इंद्रस्य हृदंसनिः ॥१४॥
तं । इत् । वर्धंतु । नः । गिरः । वत्सं । संशिश्वरीःऽइव । यः । इंद्रस्य । हृदंऽसनिः ॥१४॥

यः सोम इंद्रस्य हृदंसनिर्हृदयस्य संभक्ता भवति तमित्तमेव सोमं नोऽस्माकं गिरः स्तुतिरूपा वाचः संवर्धंतु । सम्यग्वर्धयंतु । तत्र दृष्टांतः । वत्सं बालं शिश्वरीरिव । यथा शिश्वर्यो बहुपयस्का मातरो वत्सं वर्धयंति तद्वदित्यर्थः ॥

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषं । वर्धा समुद्रमुक्थ्यं ॥१५॥
अर्ष । नः । सोम । शं । गवे । धुक्षस्व । पिप्युषीं । इषं । वर्ध । समुद्रं । उक्थ्यं ॥१५॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं गवे शं सुखमर्ष । चर । अपि च पिप्युषीं प्रवृद्धमिषमन्नं धुक्षस्व । पूरय । किंचोक्थ्यं प्रशस्यं समुद्रमुदकं वर्ध । वर्धय ॥ ॥२०॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुं । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१६॥
पवमानः । अजीजनत् । दिवः । चित्रं । न । तन्यतुं । ज्योतिः । वैश्वानरं । बृहत् ॥१६॥

पवमानः सोमो बृहन्महद्वैश्वानरं वैश्वानराख्यं ज्योतिस्तेजो दिवो द्युलोकस्य चित्रं तन्यतुं नाशनिमिवाजीजनत् । अजनयत् ॥

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥१७॥
पवमानस्य । ते । रसः । मदः । राजन् । अदुच्छुनः । वि । वारं । अव्यं । अर्षति ॥१७॥

हे राजन्दीप्यमान सोम पवमानस्य चरतस्ते तवादुच्छुनो रक्षोवर्जितो मदो मदकरो रसोऽव्यमविमयं वारं वालं दशापवित्रमर्षति । अभिगच्छति ॥

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥१८॥
पवमान । रसः । तव । दक्षः । वि । राजति । द्युऽमान् । ज्योतिः । विश्वं । स्वः । दृशे ॥१८॥

हे पवमान सोम तव त्वदीयो दक्षो वृद्धो द्युमान्दीप्तिमान्रसो वि राजति । प्रकाशते । न केवलं स्वयमेव प्रकाशते किंतु विश्वं व्याप्तं स्वः सर्वं ज्योतिस्तेजश्च दृशे द्रष्टुं करोतीति शेषः ॥

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वांधसा । देवावीरघशंसहा ॥१९॥
यः । ते । मदः । वरेण्यः । तेन । पवस्व । अंधसा । देवऽअवीः । अघशंसऽहा ॥१९॥

हे सोम ते तव देवावीर्देवकामोऽघशंसहा राक्षसानां हंता वरेण्यः सर्वैर्वरणीयो मदो मदकरो यो रसो विद्यते तेन रसेनांधसादनीयेन पवस्व । चर ॥

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि ॥२०॥
जघ्निः । वृत्रं । अमित्रियं । सस्निः । वाजं । दिवेऽदिवे । गोऽसाः । ऊं इति ।
अश्वऽसाः । असि ॥२०॥

हे सोम त्वममित्रियममित्रभवं वृत्रं शत्रुं जघ्निर्हंतासि । भवसि । किंच दिवेदिवे प्रतिदिनं वाजं संग्रामं सस्निः संभक्तासि । किंच गोषा गवां दातासि । अश्वसा अश्वानां दाता चासि ॥ ॥२१॥

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥२१॥
संऽमिश्लः । अरुषः । भव । सुऽउपस्थाभिः । न । धेनुऽभिः । सीदन् । श्येनः । न ।
योनिं । आ ॥२१॥

हे सोम त्वं सूपस्थाभिः शोभनोपस्थानाभिर्धेनुभिर्गोभिः । गोविकारैः पयोभिरित्यर्थः । संमिश्लः संमिश्रितः

श्येनो न यथा श्येनः शीघ्रमागत्य स्थानमासीदति तद्वद्योनिं स्वकीयं स्थानमा सीदन्। न संप्रत्यर्थे। इदानी-मश्रेष आरोचमानो भव ॥

स पवस्व य आविथेंद्रं वृत्राय हंतवे। वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

सः। पवस्व। यः। आविथ। इंद्रं। वृत्राय। हंतवे। वव्रिऽवांसं। महीः। अपः ॥२२॥

हे सोम यस्त्वं महीर्महतीरपो महांत्युदकानि वव्रिवांसं निरुंधानं वृत्राय वृत्रं हंतवे हंतुमिंद्रमाविथ अरक्षः स त्वं पवस्व। धारया क्षर। सोमं पीत्वा मत्तः सन्निंद्रो महांत्युदकानि निरुंधानं वृत्रं जघानेत्यर्थः ॥

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः। पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३॥

सुऽवीरासः। वयं। धना। जयेम। सोम। मीढ्वः। पुनानः। वर्ध। नः। गिरः ॥२३॥

सुवीरासः सुवीराः कल्याणपुत्रा वयममहीयव आंगिरसा धना शत्रूणां धनानि जयेम। शत्रूञ्जित्वा तदीयानि धनानि स्वीकुर्यामेत्यर्थः। हे मीढ्वः सेक्तः सोम पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माकं गिरः स्तुतिरूपा वाचश्च वर्ध। वर्धय ॥

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वंत आमुरः। सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥

त्वाऽऊतासः। तव। अवसा। स्याम। वन्वंतः। आऽमुरः। सोम। व्रतेषु। जागृहि ॥२४॥

हे सोम तव त्वदीयेनावसा रक्षणेन त्वोतासस्त्वया रक्षिताः संतो वन्वंतः शत्रून्भजमाना आमुरस्तेषाम-भिमारकाः स्याम। भवेम। व्रतेष्वस्माकं कर्मसु जागृहि। प्रबुद्धो भव ॥

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः। गच्छन्निंद्रस्य निष्कृतं ॥२५॥

अपऽघ्नन्। पवते। मृधः। अप। सोमः। अराव्णः। गच्छन्। इंद्रस्य। निःऽकृतं ॥२५॥

सोमो मृधो हिंसकाञ्छत्रूनपघ्नन्मारयन्नराव्णः शक्तौ सत्यां धनानामदातॄंश्चापघ्नन्निंद्रस्य निष्कृतं स्थानं गच्छन् प्राप्नुवन् पवते। धारया चरति ॥ ॥२२॥

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः। रास्वेंदो वीरवद्यशः ॥२६॥

महः। नः। रायः। आ। भर। पवमान। जहि। मृधः। रास्व। इंदो इति। वीरऽवत्। यशः ॥२६॥

हे पवमानेंदो सोम नोऽस्माकं महो महांति रायो धनान्या भर। आहर। मृधो हिंसकाञ्छत्रूंश्च जहि। मारय। वीरवत्पुत्राद्युपेतां यशः कीर्तिं च रास्व। अस्मभ्यं देहि ॥

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्संतमा मिनन्। यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७॥

न। त्वा। शतं। चन। ह्रुतः। राधः। दित्संतं। आ। मिनन्। यत्। पुनानः। मखस्यसे ॥२७॥

हे सोम राधो धनमा दित्संतमादातुमिच्छंतं त्वा त्वां शतं चन बहवोऽपि ह्रुतो हिंसकाः शत्रवो न मिनन्। न हिंसंति। कदेत्यत्राह। यद्यदा पुनानः पूयमानस्त्वं मखस्यसे अस्मभ्यं धनं दातुमिच्छसि ॥

पवस्वेंदो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि ॥२८॥

पवस्व। इंदो इति। वृषा। सुतः। कृधि। नः। यशसः। जने। विश्वाः। अप। द्विषः। जहि ॥२८॥

हे इंदो सोम सुतोऽभिषुतो वृषा सेक्ता त्वं पवस्व। धारया क्षर। जने जनपदेषु नोऽस्मान्यशसो यशस्विनः कृधि। कुरु। विश्वाः सर्वान् द्विषो द्वेष्टॄञ्छत्रूनप जहि। मारय च ॥

अस्मे ते सख्ये वयं तवेंदो द्युम्न उत्तमे। सासह्याम पृतन्यतः ॥२९॥

अस्मे। ते। सख्ये। वयं। तव। इंदो इति। द्युम्ने। उत्ऽतमे। ससह्याम। पृतन्यतः ॥२९॥

हे इंदो सोम अस्मास्मिन्यागे वर्तमानस्य ते तव सख्ये सखित्वे सति वयममहीयव आंगिरसास्तव त्वदीय उत्तमे श्रेष्ठे द्युम्नेऽन्ने तृप्तिं प्राप्ताः। तथा च यास्कः। द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा। नि० ५.५.। इति। पृतन्यतो युद्धमिच्छतः शत्रून् ससह्याम। अभिभवेम ॥

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि संति धूर्वणे। रक्षा समस्य नो निदः ॥३०॥

या। ते। भीमानि। आयुधा। तिग्मानि। संति। धूर्वणे। रक्ष। समस्य। नः। निदः ॥३०॥

हे सोम ते तव या यानि भीमानि शत्रूणां भयंकराणि तिग्मानि तीक्ष्णान्यायुधायुधानि धूर्वणे शत्रुवधार्थं संति तैरायुधैः समस्य सर्वस्य शत्रोर्निदो निंदाया नोऽस्मान्रक्ष। पालय ॥ ॥२३॥

एते असृग्रमिति त्रिंशदृचं द्वितीयं सूक्तं भार्गवस्य जमदग्नेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। एते असृग्रं जमदग्निरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

एते असृग्रमिंदवस्तिरः पवित्रमाशवः। विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

एते। असृग्रं। इंदवः। तिरः। पवित्रं। आशवः। विश्वानि। अभि। सौभगा ॥१॥

आशवः शीघ्रा एते पवमाना इंदवः सोमा विश्वानि सर्वाणि सौभगा सौभगानि धनान्यभिलक्ष्य पवित्रं तिरोऽसृग्रम्। ऋत्विग्भिः सृज्यंते ॥

विघ्नंतो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः। तना कृण्वंतो अर्वते ॥२॥

विऽघ्नंतः। दुःऽइता। पुरु। सुऽगा। तोकाय। वाजिनः। तना। कृण्वंतः। अर्वते ॥२॥

वाजिनो बलवंतः सोमाः पुरु बहूनि दुरिता दुरितानि विघ्नंतो विशेषेण नाशयंतस्तोकायास्माकं पुत्रायार्वतेऽश्वाय च सुगा सुखानि तना धनानि च कृण्वंतः कुर्वंतः तिरः पवित्रं सृज्यंत इति संबंधः ॥

कृण्वंतो वरिवो गवेऽभ्यर्षंति सुष्टुतिं। इळामस्मभ्यं संयतं ॥३॥

कृण्वंतः। वरिवः। गवे। अभि। अर्षंति। सुऽस्तुतिं। इळां। अस्मभ्यं। संऽयतं ॥३॥

अस्माकं गवेऽस्मभ्यं च संयतं यदस्मान् संयच्छति तद्वरिवो धनमिळामन्नं च कृण्वंतः कुर्वंतः सोमाः सुष्टुतिमस्मदीयां शोभनां स्तुतिमभ्यर्षंति। आभिमुख्येन गच्छंति ॥

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः। श्येनो न योनिमासदत् ॥४॥

असावि। अंशुः। मदाय। अप्ऽसु। दक्षः। गिरिऽस्थाः। श्येनः। न। योनिं।
आ। असदत् ॥४॥

गिरिष्ठाः पर्वते जातोंऽशुः सोमो मदाय मदार्थमसावि। अभिषुतः। अप्सु वसतीवरीषु दक्षः प्रवृद्धश्च भवति। किंच श्येनो न यथा श्येनो वेगेनागत्य स्थानमासीदति तद्वदयं सोमो योनिं स्वकीयं स्थानमासदत्। आसीदति ॥

शुभ्रमंधो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदंति गावः पयोभिः ॥५॥

शुभ्रं । अंधः । देवऽवातं । अप्ऽसु । धूतः । नृऽभिः । सुतः । स्वदंति । गावः । पयःऽभिः ॥५॥

यद्देववातं देवैः प्रार्थितं शुभ्रं शोभनमंधोऽन्नं गावः पशवः पयोभिराशिरैः स्वदंति स्वादयंति सोऽयं सोमो नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिः सुतोऽभिषुतः सन्नप्सु वसतीवरीषु धूतः शोधितो भवति ॥ ॥२४॥

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय । मध्वो रसं सधमादे ॥६॥

आत् । ईं । अश्वं । न । हेतारः । अशूशुभन् । अमृताय । मध्वः । रसं । सधऽमादे ॥६॥

आदनंतरं हेतारः प्रेरका ऋत्विजः सधमादे यज्ञ ईमेनं मध्वो मदकरस्य सोमस्य रसममृतायामरणायाश्वं नाश्वमिवाशूशुभन् । शोभयंति ॥

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिंद ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥७॥

याः । ते । धाराः । मधुऽश्चुतः । असृग्रं । इंदो इति । ऊतये । ताभिः । पवित्रं । आ । असदः ॥७॥

हे इंदो सोम ते तव मधुश्चुतो मधुररसस्य श्चोतयित्र्यो या धारा ऊतये रक्षणायासृग्रं असृज्यंत ताभिर्धाराभिस्त्वं पवित्रमासदः । आसीद ॥

सो अर्षेंद्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन्योना वनेष्वा ॥८॥

सः । अर्ष । इंद्राय । पीतये । तिरः । रोमाणि । अव्यया । सीदन् । योना । वनेषु । आ ॥८॥

हे सोम सोऽभिषुतस्त्वमव्ययाव्ययान्यविमयानि रोमाणि वालानि तिरस्तिरस्कुर्वन् वनेषु पात्रेषु योना योनौ स्थान आ सीदन्निंद्रायेंद्रस्य पीतये पानायार्ष । क्षर ॥

त्वमिंदो परि स्रव स्वादिष्ठो अंगिरोभ्यः । वरिवोविद्घृतं पयः ॥९॥

त्वं । इंदो इति । परि । स्रव । स्वादिष्ठः । अंगिरःऽभ्यः । वरिवःऽवित् । घृतं । पयः ॥९॥

हे इंदो सोम स्वादिष्ठः स्वादुतमो वरिवोविदस्मदभिलषितस्य धनस्य लंभकश्च त्वमंगिरोभ्योऽंगिरसामर्थाय घृतमाज्यं पयश्च परि स्रव । परिक्षर ॥

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१०॥

अयं । विऽचर्षणिः । हितः । पवमानः । सः । चेतति । हिन्वानः । आप्यं । बृहत् ॥१०॥

विचर्षणिर्विद्रष्टा हितः पात्रेषु निहितः पवमानोऽयं सोम आप्यमप्सु भवं बृहन्महदन्नं हिन्वानः प्रेरयन् स चेतति । सर्वैः स ज्ञायते ॥ ॥२५॥

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद्वसूनि दाशुषे ॥११॥

एषः । वृषा । वृषऽव्रतः । पवमानः । अशस्तिऽहा । करत् । वसूनि । दाशुषे ॥११॥

वृषा कामानां सेक्ता वृषव्रतो वृषकर्माशस्तिहा राक्षसानां हंता पवमान एष सोमो दाशुषे हविषां दात्रे यजमानाय वसूनि धनानि करत् । करोति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमंतमश्विनं । पुरुश्चंद्रं पुरुस्पृहं ॥१२॥

आ । पवस्व । सहस्रिणं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । पुरुऽचंद्रं । पुरुऽस्पृहं ॥१२॥

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यमर्षंति सिंधवः ॥२७॥
तुभ्यं । इमा । भुवना । कवे । महिम्ने । सोम । तस्थिरे । तुभ्यं । अर्षंति । सिंधवः ॥२७॥

हे कवे क्रांतकर्मन् सोम तुभ्यं तव महिम्न इमेमानि भुवना भुवनानि तस्थिरे । तिष्ठंति । त्वामेव पुरस्कुर्वंतीत्यर्थः । अपि च सिंधवो नद्यस्तुभ्यमेवार्षंति । गच्छंति । त्वदाज्ञामेवानुपालयंतीत्यर्थः ॥

प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यंत्यसश्चतः । अभि शुक्रामुपस्तिरं ॥२८॥
प्र । ते । दिवः । न । वृष्टयः । धाराः । यंति । असश्चतः । अभि । शुक्रां । उपऽस्तिरं ॥२८॥

हे सोम ते तवासश्चतोऽसंगा धारा दिवोऽंतरिक्षाद्वृष्टयो न वर्षाणीव शुक्रां शुक्लवर्णां शुक्लवर्णैरविलोमभिर्निर्मितमुपस्तिरमुपस्तीर्यमाणं पवित्रमभि प्रति प्र यंति ॥

इंद्रायेंदुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनं । ईशानं वीतिराधसं ॥२९॥
इंद्राय । इंदुं । पुनीतन । उग्रं । दक्षाय । साधनं । ईशानं । वीतिऽराधसं ॥२९॥

हे ऋत्विजः उग्रमुद्गूर्णं दक्षाय बलस्य साधनं करणमीशानं धनानामीश्वरं वीतिराधसं दत्तधनमिंदुं सोममिंद्रायेंद्रार्थं पुनीतन । पुनीत ॥

पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यं ॥३०॥
पवमानः । ऋतः । कविः । सोमः । पवित्रं । आ । असदत् । दधत् । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं ॥३०॥

ऋतः सत्यभूतः कविः क्रांतकर्मा पवमानः सोमोऽस्मदीये स्तोत्रे सुवीर्यं शोभनवीर्यं दधत् प्रयच्छन् पवित्रमासदत् । आसीदति ॥ ॥२९॥

आ पवस्वेति त्रिंशदृचं तृतीयं सूक्तं काश्यपस्य निध्रुवेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । आ पवस्व निध्रुविः काश्यप इति ॥ गतो विनियोगः ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यं । अस्मे श्रवांसि धारय ॥१॥
आ । पवस्व । सहस्रिणं । रयिं । सोम । सुऽवीर्यं । अस्मे इति । श्रवांसि । धारय ॥१॥

हे सोम त्वं सहस्रिणं बहुसंख्याकं सुवीर्यं शोभनवीर्यं रयिं धनमा पवस्व । आभिमुख्येन क्षर । अपि चास्मे अस्मासु श्रवांस्यन्नानि धारय । स्थापय ॥

इषमूर्जं च पिन्वस इंद्राय मत्सरिंतमः । चमूष्वा नि षीदसि ॥२॥
इषं । ऊर्जं । च । पिन्वसे । इंद्राय । मत्सरिन्ऽतमः । चमूषु । आ । नि । सीदसि ॥२॥

हे सोम मत्सरिंतमोऽतिशयेन मदयितृतमस्त्वमिंद्रायेंद्रार्थमिषमन्नमूर्जं रसं च पिन्वसे । क्षरसि । अपि च चमूषु चमसेष्वा नि षीदसि । तिष्ठसि ॥

सुत इंद्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् । मधुमाँ अस्तु वायवे ॥३॥
सुतः । इंद्राय । विष्णवे । सोमः । कलशे । अक्षरत् । मधुऽमान् । अस्तु । वायवे ॥३॥

इंद्रायेंद्रार्थं विष्णवे विष्ण्वर्थं च वायवे वाय्वर्थं च सुतोऽभिषुतो यः सोमः कलशे द्रोणकलशेऽक्षरत क्षरति सोऽयं सोमो मधुमान् मधुररसवानस्तु । भवतु ॥

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः । सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥

एते । असृग्रं । आशवः । अति । ह्वरांसि । बभ्रवः । सोमाः । ऋतस्य । धारया ॥४॥

बभ्रवो बभ्रुवर्णा आशवः शीघ्रा एत इमे सोमा ऋतस्योदकस्य धारयासृग्रं । सृज्यंते । ह्वरांसि रक्षांस्यभिगच्छंति च ॥

इंद्रं वर्धंतो अप्तुरः कृण्वंतो विश्वमार्यं । अपघ्नंतो अराव्णः ॥५॥

इंद्रं । वर्धंतः । अप्ऽतुरः । कृण्वंतः । विश्वं । आर्यं । अपऽघ्नंतः । अराव्णः ॥५॥

इंद्रं वर्धंतो वर्धयंतोऽप्तुर उदकस्य प्रेरका विश्वं सोममस्मदीयकर्मार्थमार्यं भद्रं कृण्वंतः कुर्वंतोऽराव्णोऽदातॄनपघ्नंतो विनाशयंतः । अभ्यर्षंतीत्युत्तरया संबंधः ॥ ॥३०॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षंति बभ्रवः । इंद्रं गच्छंत इंदवः ॥६॥

सुताः । अनु । स्वं । आ । रजः । अभि । अर्षंति । बभ्रवः । इंद्रं । गच्छंतः । इंदवः ॥६॥

बभ्रवो बभ्रुवर्णाः सुता अभिषुता इंदवः सोमा इंद्रमा गच्छंत आभिमुख्येन प्राप्नुवंतः स्वं स्वकीयं रजः स्थानमनु प्रत्यभ्यर्षंति । अभिगच्छंति ॥

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

अया । पवस्व । धारया । यया । सूर्यं । अरोचयः । हिन्वानः । मानुषीः । अपः ॥७॥

हे सोम मानुषीर्मनुष्याणां हितान्यप उदकानि हिन्वानः प्रेरयंस्त्वं यया धारया सूर्यमरोचयः प्राकाशयः तयायानया धारया पवस्व । चर ॥

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अंतरिक्षेण यातवे ॥८॥

अयुक्त । सूरः । एतशं । पवमानः । मनौ । अधि । अंतरिक्षेण । यातवे ॥८॥

पवमानः पूयमानः सोमो मनावधि । मनुर्मनुष्यः । तस्मिन्मनुष्य इत्यर्थः । अंतरिक्षेण यातवे गंतुं सूरः प्रेरकस्य सूर्यस्यैतशमश्वं । एतग्वा एतश इत्यश्वनामसु पाठात् । अयुक्त । युंक्ते ॥

उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इंदुरिंद्र इति ब्रुवन् ॥९॥

उत । त्याः । हरितः । दश । सूरः । अयुक्त । यातवे । इंदुः । इंद्रः । इति । ब्रुवन् ॥९॥

उतापि चेंदुः सोम इंद्र इति ब्रुवंस्त्यास्ता दश दशसंख्याका हरितो दिशः प्रति यातवे गंतुं सूरः सूर्यस्यैतशमयुक्त । युनक्ति ॥

परीतो वायवे सुतं गिर इंद्राय मत्सरं । अव्यो वारेषु सिंचत ॥१०॥

परि । इतः । वायवे । सुतं । गिरः । इंद्राय । मत्सरं । अव्यः । वारेषु । सिंचत ॥१०॥

हे गिरः स्तोतारः यूयं वायवे वाय्वर्थमिंद्रायेंद्रार्थं च सुतमभिषुतं मत्सरं मदकरं सोममितोऽभिषवदेशादुद्धृत्याव्योऽवेर्वारेषु वालेषु परि षिंचत ॥ ॥३१॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरं । यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥

पवमान । विदाः । रयिं । अस्मभ्यं । सोम । दुस्तरं । यः । दुःऽनशः । वनुष्यता ॥११॥

हे पवमान सोम यो रयिर्वनुष्यता हिंसकेन शत्रुणा दूणाशो नाशयितुमशक्यः तं शत्रुभिर्दुष्टरं रयिं धनमस्मभ्यं विदाः । देहि ॥

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमंतमश्विनं । अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥

अभि । अर्ष । सहस्रिणं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । अभि । वाजं । उत । श्रवः ॥१२॥

हे सोम त्वं सहस्रिणं बहुसंख्याकं गोमंतं गोभिर्युक्तमश्विनमश्ववंतं रयिं धनमभ्यर्ष । अस्मानभिगमय । उतापि च वाजं बलं श्रवोऽन्नं चास्मानभि गमय ॥

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसं ॥१३॥

सोमः । देवः । न । सूर्यः । अद्रिऽभिः । पवते । सुतः । दधानः । कलशे । रसं ॥१३॥

देवो न देव इव सूर्यो रोचमानः सोमोऽद्रिभिर्ग्रावभिः सुतोऽभिषुतः सन् कलशे द्रोणकलशे रसं दधानो धारयन् पवते । धारया क्षरति ॥

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमंतमक्षरन् ॥१४॥

एते । धामानि । आर्या । शुक्राः । ऋतस्य । धारया । वाजं । गोऽमंतं । अक्षरन् ॥१४॥

एतेऽभिषुता इमे शुक्रा दीप्ताः सोमा आर्यार्याणां श्रेष्ठानां यजमानानां धामानि गृहान्प्रति गोमंतं गोभिर्युक्तं वाजमन्नमृतस्योदकस्य धारयाक्षरन् । क्षरंति ॥

सुता इंद्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥

सुताः । इंद्राय । वज्रिणे । सोमासः । दधिऽआशिरः । पवित्रं । अति । अक्षरन् ॥१५॥

वज्रिणे वज्रवत इंद्रायेंद्रार्थं सुता अभिषुता दध्याशिरो दधिसंस्कृताः सोमासः सोमाः पवित्रमत्यतिक्रम्याक्षरन् । धारया क्षरंति ॥ ॥३२॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ॥१६॥

प्र । सोम । मधुमत्ऽतमः । राये । अर्ष । पवित्रे । आ । मदः । यः । देवऽवीतमः ॥१६॥

हे सोम ते तव यो मदो रसो मधुमत्तमोऽत्यंतं मधुमान् देववीतमोऽतिशयेन देवकामश्च तं रसं रायेऽस्माकं धनार्थं पवित्रे प्रार्ष । धारया क्षर ॥

तमीं मृजंत्यायवो हरिं नदीषु वाजिनं । इंदुमिंद्राय मत्सरं ॥१७॥

तं । ईमिति । मृजंति । आयवः । हरिं । नदीषु । वाजिनं । इंदुं । इंद्राय । मत्सरं ॥१७॥

हरिं हरितवर्णं वाजिनं बलिनं मत्सरं मदकरं तं पवमानमीमेनमिंदुं सोममायवो मनुष्या ऋत्विजो नदीषु वसतीवरीषु मृजंति । मार्जयंति ॥

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् । वाजं गोमंतमा भर ॥१८॥

आ । पवस्व । हिरण्यऽवत् । अश्वऽवत् । सोम । वीरऽवत् । वाजं । गोऽमंतं । आ । भर ॥१८॥

हे सोम त्वं हिरण्यवत्सुवर्णोपेतमश्ववदश्वयुक्तं च वीरवत्पुत्राद्युपेतं च धनमा पवस्व। अस्मान्प्रति चर। अपि च गोमंतं पशुभिरुपेतं वाजमन्नमा भर। अस्मभ्यमाहर॥

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिंचत। इंद्राय मधुमत्तमं ॥१९॥
परि। वाजे। न। वाजऽयुं। अव्यः। वारेषु। सिंचत। इंद्राय। मधुमत्ऽतमं ॥१९॥

वाजयुं युद्धकामं मधुमत्तममतिशयेन मधुमंतं सोममिंद्रायेंद्रार्थमव्योऽवेर्वारेषु वालेषु दशापवित्रे वाजे न युद्ध इव हे ऋत्विजः परि षिंचत॥

कविं मृजंति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः। वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥
कविं। मृजंति। मर्ज्यं। धीभिः। विप्राः। अवस्यवः। वृषा। कनिक्रत्। अर्षति ॥२०॥

अवस्यवो रक्षणकामा विप्रा मेधाविन ऋत्विजो धीभिरंगुलीभिर्मर्ज्यं मर्जनीयं कविं क्रांतकर्माणं यं सोमं मृजंति मार्जयंति सोऽयं वृषा सेचकः सोमः कनिक्रच्छब्दं कुर्वन्नर्षति। धारया चरति॥ ॥३३॥

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया। मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥
वृषणं। धीभिः। अप्ऽतुरं। सोमं। ऋतस्य। धारया। मती। विप्राः। सं। अस्वरन् ॥२१॥

विप्रा मेधाविन ऋत्विजो वृषणं कामानां वर्षकमप्तुरमपां प्रेरकं सोमं धीभिरंगुलीभिर्मती मत्या स्तुत्या चर्तस्योदकस्य धारया समस्वरन्। प्रेरयंति॥

पवस्व देवायुषगिंद्रं गच्छतु ते मदः। वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥
पवस्व। देव। आयुषक्। इंद्रं। गच्छतु। ते। मदः। वायुं। आ। रोह। धर्मणा ॥२२॥

हे देव द्योतमान सोम पवस्व। धारया चर। अपि च ते तव मदो मदकरो रस आयुषगनुषक्तमिंद्रं प्रति गच्छतु। अपि च त्वं वायुं धर्मणा धारकेण रसेना रोह। प्राप्नुहि॥

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यं। प्रियः समुद्रमा विश ॥२३॥
पवमान। नि। तोशसे। रयिं। सोम। श्रवाय्यं। प्रियः। समुद्रं। आ। विश ॥२३॥

हे पवमान सोम यस्त्वं श्रवाय्यं श्रवणीयं रयिं शत्रूणां धनं नि तोशसे नितरां पीडयसि स त्वं प्रियः सन् समुद्रं द्रोणकलशमा विश। प्रविश॥

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः। नुदस्वादेवयुं जनं ॥२४॥
अपऽघ्नन्। पवसे। मृधः। क्रतुऽवित्। सोम। मत्सरः। नुदस्व। अदेवऽयुं। जनं ॥२४॥

हे सोम मत्सरो मदकरो यस्त्वं मृधो हिंसकाञ्छत्रूनपघ्नन्मारयन् क्रतुविदस्मभ्यं प्रज्ञां प्रयच्छन् पवसे चरसि स त्वमदेवयुमदेवकामं जनं राक्षसवर्गं नुदस्व। प्रेरय॥

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इंदवः। अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥
पवमानाः। असृक्षत। सोमाः। शुक्रासः। इंदवः। अभि। विश्वानि। काव्या ॥२५॥

शुक्रास उज्ज्वला इंदवो दीप्ताः पवमानाः चरंतः सोमा विश्वानि काव्या काव्यानि स्तोत्राण्यभ्यसृक्षत। सृज्यंत ऋत्विग्भिः॥ ॥३४॥

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिंदवः । घ्नंतो विश्वा अप द्विषः ॥२६॥

पवमानासः । आशवः । शुभ्राः । असृग्रं । इंदवः । घ्नंतः । विश्वाः । अप । द्विषः ॥२६॥

आशवः शीघ्राः शुभ्राः शोभमानाः पवमानासः क्षरंत इंदवो दीप्ताः सोमा विश्वाः सर्वान्द्विषो द्वेष्टॄञ्छत्रूनप घ्नंतो मारयंतोऽसृग्रं । सृज्यंते ॥

पवमाना दिवस्पर्यंतरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥

पवमानाः । दिवः । परि । अंतरिक्षात् । असृक्षत । पृथिव्याः । अधि । सानवि ॥२७॥

पवमानाः सोमा दिवो द्युलोकादंतरिक्षाच्च पृथिव्या भूम्या अधि सानवि समुच्छ्रिते देशे देवयजने पर्यसृक्षत । सृज्यंते ॥

पुनानः सोम धारयेंदो विश्वा अप स्रिधः । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८॥

पुनानः । सोम । धारया । इंदो इति । विश्वाः । अप । स्रिधः । जहि । रक्षांसि ।
सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥२८॥

हे इंदो दीप्त सुक्रतो सुकर्मन् सोम धारया पुनानः पूयमानस्त्वं विश्वाः सर्वान् स्रिधो द्वेष्टॄञ्छत्रून्रक्षांसि राक्षसांश्चाप जहि । मारय ॥

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमंतं शुष्ममुत्तमं ॥२९॥

अपऽघ्नन् । सोम । रक्षसः । अभि । अर्ष । कनिक्रदत् । द्युऽमंतं । शुष्मं । उत्ऽतमं ॥२९॥

हे सोम त्वं रक्षसो रक्षांस्यपघ्नन्विनाशयन् कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् द्युमंतं दीप्तिमंतमुत्तमं श्रेष्ठं शुष्मं बलमभ्यर्ष । अस्मान्प्रति पवस्व ॥

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा । इंदो विश्वानि वार्या ॥३०॥

अस्मे इति । वसूनि । धारय । सोम । दिव्यानि । पार्थिवा । इंदो इति ।
विश्वानि । वार्या ॥३०॥

हे इंदो दीप्त सोम दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां जातानि च विश्वानि सर्वाणि वार्या वार्याणि वरणीयानि वसून्यस्मे अस्मासु धारय । प्रक्षिप ॥ ॥३५॥

वृषा सोमेति त्रिंशदृचं चतुर्थं सूक्तं मारीचस्य कश्यपस्यार्षं गायत्रं पवमानसौम्यं । तथा चानुक्रांतं । वृषा सोम कश्यप इति ॥ उक्तो विनियोगः ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥१॥

वृषा । सोम । द्युऽमान् । असि । वृषा । देव । वृषऽव्रतः । वृषा । धर्माणि । दधिषे ॥१॥

हे सोम वृषा वर्षकस्त्वं द्युमान्दीप्तिमानसि । अपि च हे देव द्योतमान सोम वृषा त्वं वृषव्रतो वर्षणशीलकर्मासि । किंच हे सोम वृषा त्वं धर्माणि देवानां मनुष्याणां च हितानि कर्माणि दधिषे । धारयसि ॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

वृष्णः । ते । वृष्ण्यं । शवः । वृषा । वनं । वृषा । मदः । सत्यं । वृषन् । वृषा । इत् । असि ॥२॥

हे वृषन् कामानां वर्षक सोम वृष्णो वर्षितुस्ते तव द्युमं बलं वृष्ण्यं वर्षणशीलं भवति । वनं तव भजनमपि वृषा वर्षणशीलं । मदस्तव रसोऽपि वृषा वर्षणशीलः । सत्यं सत्यमेव त्वं वृषेद्वर्षणशील एवासि । भवसि ॥

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इंदो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

अश्वः । न । चक्रदः । वृषा । सं । गाः । इंदो इति । सं । अर्वतः । वि । नः । राये । दुरः । वृधि ॥ ३ ॥

हे इंदो सोम वृषा त्वमश्वो नाश्व इव सं चक्रदः । संक्रंदसे । अपि च गाः पशूनर्वतोऽश्वांश्चास्मभ्यं सं । प्रयच्छसीति शेषः । किंच नोऽस्माकं राये धनाय दुरो द्वाराणि वि वृधि । विवृतानि कुरु ॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥

असृक्षत । प्र । वाजिनः । गव्या । सोमासः । अश्वऽया । शुक्रासः । वीरऽया । आशवः ॥ ४ ॥

वाजिनो बलवंतः शुक्रासः शुक्रा उज्ज्वला आशवो वेगवंतश्च सोमासः सोमा गव्या गवेच्छयाश्वयाश्वेच्छया च वीरया पुत्रेच्छया च प्रासृक्षत । ऋत्विग्भिः सृज्यंते ॥

शुंभमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवंते वारे अव्यये ॥ ५ ॥

शुंभमानाः । ऋतयुऽभिः । मृज्यमानाः । गभस्त्योः । पवंते । वारे । अव्यये ॥ ५ ॥

ऋतायुभिर्यज्ञकामैः शुंभमाना अलंक्रियमाणा गभस्त्योर्गभस्तिभ्यां बाहुभ्यां । गभस्ती बाहू इति बाहुनामसु पाठात् । मृज्यमानाः शोध्यमानाः सोमा अव्ययेऽविमये वारे वाले पवित्रे पवंते । क्षरंति ॥ ॥ ३६ ॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवंतामांतरिक्ष्या ॥ ६ ॥

ते । विश्वा । दाशुषे । वसु । सोमाः । दिव्यानि । पार्थिवा । पवंतां । आ । अंतरिक्ष्या ॥ ६ ॥

ते सोमा दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां संभूतानि चांतरिक्ष्यांतरिक्षाण्यंतरिक्षे जातानि च विश्वा विश्वानि वसु वसूनि धनानि दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय पवंतां । क्षरंतु ॥

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥

पवमानस्य । विश्वऽवित् । प्र । ते । सर्गाः । असृक्षत । सूर्यस्यऽइव । न । रश्मयः ॥ ७ ॥

हे विश्वविद्विश्वस्य द्रष्टः सोम पवमानस्य क्षरतस्ते तव सर्गाः प्रसृज्यमाना धाराः सूर्यस्येव रश्मयः सूर्यस्य किरणा इव प्रकाशमानाः । नेति संप्रत्यर्थे । इदानीं प्रासृक्षत । प्रासृज्यंत ॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥

केतुं । कृण्वन् । दिवः । परि । विश्वा । रूपा । अभि । अर्षसि । समुद्रः । सोम । पिन्वसे ॥ ८ ॥

हे सोम समुद्रः । समुद्रवंति यस्माद्रसाः स समुद्रः । स त्वं केतुं प्रज्ञानं कृण्वन्कुर्वन्नस्माकं विश्वा विश्वानि रूपाणि दिवोऽंतरिक्षादभ्यर्षसि । अभिपवसे । पिन्वसे । नानाविधानि धनानि चास्मभ्यं प्रयच्छसि ॥

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । अक्रान्देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥

हिन्वानः । वाचं । इष्यसि । पवमान । विऽधर्मणि । अक्रान् । देवः । न । सूर्यः ॥ ९ ॥

हे पवमान सोम हिन्वानः प्रेर्यमाणस्त्वं वाचं शब्दमिष्यसि। प्रेरयसि। कदेत्यत आह। यदा तव रसः सूर्यो देवो न देव इव विधर्मणि विधारके पवित्रेऽक्रान् अक्रमीत्। तदेत्यर्थः॥

इंदुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती। सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥

इंदुः। पविष्ट। चेतनः। प्रियः। कवीनां। मती। सृजत्। अश्वं। रथीःऽइव ॥१०॥

चेतनः प्रज्ञापकः प्रियो देवानां प्रीतिकर इंदुः सोमः कवीनां क्रांतकर्मणां स्तोतॄणां मती मत्या स्तुत्या पविष्ट। पवते। अश्वं हयं रथीरिव रथीवोर्मिं सृजत्। सृजति च॥ ॥३७॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत्। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥

ऊर्मिः। यः। ते। पवित्रे। आ। देवऽअवीः। परिऽअक्षरत्। सीदन्। ऋतस्य। योनिं। आ ॥११॥

हे सोम ते तव यो देवावीर्देव ऊर्मिस्तरंग ऋतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमा सीदन् पवित्रे पर्यक्षरत् परिक्षरति तमूर्मिं सृजतीति पूर्वत्र संबंधः॥

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः। इंदविंद्राय पीतये ॥१२॥

सः। नः। अर्ष। पवित्रे। आ। मदः। यः। देवऽवीतमः। इंदो इति। इंद्राय। पीतये ॥१२॥

हे इंदो यस्त्वं देववीतमोऽतिशयेन देवकामो मदो मदकरश्च भवसि स त्वं नोऽस्माकं पवित्र इंद्रायेंद्रस्य पीतये पानायार्ष। पवस्व॥

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इंदो रुचाभि गा इहि ॥१३॥

इषे। पवस्व। धारया। मृज्यमानः। मनीषिऽभिः। इंदो इति। रुचा। अभि। गाः। इहि ॥१३॥

हे इंदो सोम मनीषिभिर्ऋत्विग्भिर्मृज्यमानः शोध्यमानस्त्वमिषेऽस्माकमन्नाय धारया पवस्व। क्षर। रुचा रोचमानेनांधसा गाः पशूनभीहि। अभिगच्छ॥

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः। हरे सृजान आशिरं ॥१४॥

पुनानः। वरिवः। कृधि। ऊर्जं। जनाय। गिर्वणः। हरे। सृजानः। आऽशिरं ॥१४॥

हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीय हरे हरितवर्ण सोम आशिरं क्षीरं प्रति सृजानो विसृज्यमानः पुनानः पूयमानस्त्वं जनाय यजमानार्थं वरिवो धनमूर्जमन्नं च कृधि। कुरु॥

पुनानो देववीतय इंद्रस्य याहि निष्कृतं। द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५॥

पुनानः। देवऽवीतये। इंद्रस्य। याहि। निःऽकृतं। द्युतानः। वाजिऽभिः। यतः ॥१५॥

हे सोम द्युतानो दीप्यमानो वाजिभिर्बलिभिर्यजमानैर्यतः संगृहीतो देववीतये यज्ञार्थं पुनानः पूयमानस्त्वमिंद्रस्य निष्कृतं स्थानं याहि। गच्छ॥ ॥३८॥

प्र हिन्वानास इंदवोऽच्छा समुद्रमाशवः। धिया जूता असृक्षत ॥१६॥

प्र। हिन्वानासः। इंदवः। अच्छ। समुद्रं। आशवः। धिया। जूताः। असृक्षत ॥१६॥

आशवो वेगवंत इंदवः सोमाः समुद्रमंतरिक्षमच्छ प्रति हिन्वानासो हिन्वानाः प्रेर्यमाणा धियांगुष्याः ... कृष्टाश्च प्राक्षरत । रक्ष्यंते ॥

मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिंदवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१७॥

मर्मृजानासः । आयवः । वृथा । समुद्रं । इंदवः । अग्मन् । ऋतस्य । योनिं । आ ॥१७॥

मर्मृजानासो मर्मृज्यमाना आयवो गंतार इंदवः सोमा वृथायासं विनैव समुद्रमंतरिक्षं गच्छंति । एतदेव दर्शयति । ऋतस्योदकस्य योनिं स्थानमगमन् । गच्छंतीति ॥

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८॥

परि । नः । याहि । अस्मऽयुः । विश्वा । वसूनि । ओजसा । पाहि । नः । शर्म । वीरऽवत् ॥१८॥

हे सोम अस्मयुरस्मत्कामस्त्वं नोऽस्माकं विश्वा विश्वानि वसूनि धनान्योजसा बलेन सह परि याहि । रक्षार्थं परिगच्छ । अपि च नोऽस्माकं वीरवत्पुत्रवच्छर्म गृहं पाहि । रक्ष ॥

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥

मिमाति । वह्निः । एतशः । पदं । युजानः । ऋक्वऽभिः । प्र । यत् । समुद्रे । आऽहितः ॥१९॥

हे सोम यद्यदा यो वह्निर्वहनशील एतशोऽश्वो मिमाति शब्दं करोति ऋक्वभिर्ऋत्विग्भिः स्तोतृभिः पदं यज्ञे युजानो निदधत् स्तोत्रश्रवणार्थमागच्छति तदा स यज्ञवाहकाश्वात्मा त्वं समुद्र उदके वसतीवरीषु प्राहितो भवसि ॥

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥

आ । यत् । योनिं । हिरण्ययं । आशुः । ऋतस्य । सीदति । जहाति । अप्रऽचेतसः ॥२०॥

यद्यदाशुर्वेगवान्सोम ऋतस्य यज्ञस्य हिरण्ययं हिरण्मयं योनिं स्थानं । हिरण्यपाणिरभिषुणोतीत्युक्तं । आ सीदति तदानीमप्रचेतसो जहाति । विसृजति । अस्तोतॄणां यज्ञं नाभिगच्छति किंतु स्तोतॄणामेव यज्ञमभिगच्छतीत्यर्थः ॥ ॥ ३९ ॥

अभि वेना अनूषतेयक्षंति प्रचेतसः । मज्जंत्यविचेतसः ॥२१॥

अभि । वेनाः । अनूषत । इयक्षंति । प्रऽचेतसः । मज्जंति । अविऽचेतसः ॥२१॥

वेनाः कांताः स्तोतारोऽभ्यनूषत । सोममभिष्टुवंति । प्रचेतसः सुमतय इयक्षंति । यष्टुमिच्छंति च । अविचेतसः । विशिष्टमतयो विचेतसः । अविचेतसो विपरीतमतय इत्यर्थः । मज्जंति । निमज्जंति । ये सोमं नाभिष्टुवंति न यजंति च ते नरके पततीत्यर्थः ॥

इंद्रायेंदो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदं ॥२२॥

इंद्राय । इंदो इति । मरुत्वते । पवस्व । मधुमत्ऽतमः । ऋतस्य । योनिं । आऽसदं ॥२२॥

हे इंदो सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन मधुमांस्त्वमृतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमासदमुपवेष्टुं मरुत्वत इंद्रायेंद्रार्थं पवस्व । क्षर ॥

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वंति वेधसः । सं त्वा मृजंत्यायवः ॥२३॥

तं । त्वा । विप्राः । वचःऽविदः । परि । कृण्वंति । वेधसः । सं । त्वा । मृजंति । आयवः ॥२३॥

हे सोम तं पवमानं त्वा त्वां विप्राः प्राज्ञा वेधसः कर्मणां कर्तारो वचोविदः स्तोतारः परिष्कृण्वंति । अलंकुर्वंति । अपि च त्वा त्वामायवो मनुष्याः सं मृजंति । सम्यक् शोधयंति ॥

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबंति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥२४॥

रसं । ते । मित्रः । अर्यमा । पिबंति । वरुणः । कवे । पवमानस्य । मरुतः ॥२४॥

हे कवे क्रांतकर्मन् सोम पवमानस्य चरतस्ते तव रसं मित्रोऽर्यमा च वरुणश्च मरुतश्चेति सर्वे देवाः पिबंति ॥

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इंदो सहस्रभर्णसं ॥२५॥

त्वं । सोम । विपःऽचितं । पुनानः । वाचं । इष्यसि । इंदो इति । सहस्रऽभर्णसं ॥२५॥

हे इंदो दीप्त सोम पुनानः पूयमानस्त्वं विपश्चितं प्रज्ञया पवित्रां सहस्रभर्णसं बहुभरणां वाचमिष्यसि । प्रेरयसि ॥ ॥४०॥

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवं । पुनान इंदवा भर ॥२६॥

उतो इति । सहस्रऽभर्णसं । वाचं । सोम । मखस्युवं । पुनानः । इंदो इति । आ । भर ॥२६॥

उतो अपि च हे इंदो दीप्त सोम पुनानः पूयमानस्त्वं सहस्रभर्णसं सहस्रभरणां मखस्युवं धनकामां वाचमस्मभ्यमा भर । आहर ॥

पुनान इंदवेषां पुरुहूत जनानां । प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥

पुनानः । इंदो इति । एषां । पुरुऽहूत । जनानां । प्रियः । समुद्रं । आ । विश ॥२७॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूतेंदो सोम पुनानः पूयमानस्त्वमेषामस्मिन्यागे स्तोत्रं कुर्वतां जनानां प्रियः सन् समुद्रं द्रोणकलशमा विश । प्रविश ॥

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभंत्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥

दविद्युतत्या । रुचा । परिऽस्तोभंत्या । कृपा । सोमाः । शुक्राः । गोऽआशिरः ॥२८॥

शुक्रा उज्ज्वला दविद्युतत्या द्योतमानया रुचा दीप्त्या परिष्टोभंत्या परितः शब्दायमानया कृपा धारया च युक्ताः सोमा गवाशिरो भवंति । गव्येन पयसा मिश्रिता भवंतीत्यर्थः ॥

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदंतो वनुषो यथा ॥२९॥

हिन्वानः । हेतृऽभिः । यतः । आ । वाजं । वाजी । अक्रमीत् । सीदंतः । वनुषः । यथा ॥२९॥

वाजी बलवान् सोमो हेतृभिः प्रेरकैः स्तोतृभिर्हिन्वानः स्तोत्रैः प्रेर्यमाणो यतः संयतः सन् वाजं यागाख्यं युद्धमाक्रमीत् । आक्रामति । तत्र दृष्टांतः । यथा वनुषो हंतारो भटाः सीदंतो युद्धं प्रविशंत आक्रामंति तद्वदित्यर्थः ॥

ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः । पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥
ऋधक् । सोम । स्वस्तये । संऽजग्मानः । दिवः । कविः । पवस्व । सूर्यः । दृशे ॥३०॥

हे सोम कविः क्रांतः सूर्यः सुवीर्यस्त्वमृधगृधुवन् । तथा च यास्कः । ऋधगिति पृथग्भावस्यानुप्रवचनं भवत्यथाप्यृध्नोत्यर्थे दृश्यते । नि० ४. २५. । इति । संजग्मानः संगच्छमानः स्वस्तये दृशे दर्शनाय च दिवः पवस्व । चर ॥ ॥४१॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥

हिन्वंतीति त्रिंशदृचं पंचमं सूक्तं । वरुणपुत्रस्य भृगोरार्षं भार्गवस्य जमदग्नेर्वा गायत्रं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । हिन्वंति भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वेति ॥ गतो विनियोगः ॥

हिन्वंति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिं । महामिंदुं महीयुवः ॥१॥
हिन्वंति । सूरं । उस्रयः । स्वसारः । जामयः । पतिं । महां । इंदुं । महीयुवः ॥१॥

अत्र सर्वत्र पवमानः सोमः स्तूयते । तत्रादावृषिः सोमं प्रत्याह । मदीया अंगुलयस्त्वामभिषोतुं प्रेरयंतीति । तदुच्यते । स्वसारः । अंगुलिनामैतत् । सुष्ठु कर्मसु प्रेर्यंत ऋत्विग्भिरिति स्वसारः । जामय एकस्मात्पाणेरुत्पन्नत्वात्परस्परं बंधुभूता उस्रयः कर्मार्थं निवसंत्यः । सर्वत्र गंत्र्य इत्यर्थः । तादृश्योऽंगुलयो महीयुवस्त्वदभिषवं कामयमानाः सत्यः सूरं सुवीर्यं सोमे पीते वीर्यं भवतीति शोभनवीर्यकारणं वा सर्वेषां कर्मणि प्रेरकं वा तादृशं पतिं सर्वस्य स्थावरजंगमजातस्य स्वामिनं यस्माद्देवार्थमिज्यतेऽत एव महां देवेभ्यो दीयमानत्वेन महांतं महनीयं वेंदुं ग्रहेषु स्यंदमानं सोमं हिन्वंति । प्रेरयंति ॥ हि वर्धनगत्योः स्वादिः ॥

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥२॥
पवमान । रुचाऽरुचा । देवः । देवेभ्यः । परि । विश्वा । वसूनि । आ । विश ॥२॥

हे पवमान दशापवित्रेण पूयमान यद्वा पुनान शुद्ध सोम रुचारुचा ॥ रुच दीप्तौ ॥ सर्वेण तेजसा देवो दीप्यमानस्त्वं देवेभ्यः परि देवेभ्यः सकाशाद्विश्वा व्याप्तानि सर्वाणि बहूनि वसूनि धनान्यस्माकमा विश । प्रापय । यद्वा । देवेभ्यस्तदर्थं सर्वाणि वसूनि निवासस्थानानि ग्रहादीन्या विश । समंतात्प्रविश ॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतं ॥३॥
आ । पवमान । सुऽस्तुतिं । वृष्टिं । देवेभ्यः । दुवः । इषे । पवस्व । संऽयतं ॥३॥

हे पवमान पूयमान पुनान वा सोम सुष्टुतिं शोभनस्तुतियुक्तां वृष्टिं देवेभ्यो देवानां दुवः ॥ सुपां सुलुगिति चतुर्थ्या लुक् ॥ दुवसे परिचरणाय पवस्व । आगमय । त्वं यथा मदीयया स्तुत्या वृष्टिर्भविष्यति तथा कुर्वित्यर्थः । किंचास्माकमिषेऽन्नार्थं च संयतं सम्यगस्मान् संगच्छंतीं वृष्टिं कुरु । यद्वा । दुवः परिचर्यामभिलक्ष्य क्रियमाणां सुष्टुतिं शोभनस्तुतिरूपां वृष्टिं । बहुस्तुतिमित्यर्थः । एतां देवेभ्यः प्रापय ॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमंतं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ॥४॥
वृषा । हि । असि । भानुना । द्युऽमंतं । त्वा । हवामहे । पवमान । सुऽआध्यः ॥४॥

हे पवमान पूयमान सोम स्वाध्यः सुकर्माणो वयं भानुना रश्मिना द्युमंतं द्युतिमंतं त्वा त्वां हवामहे । आह्वयामः । हि यस्मात्त्वं वृषा कामानां वर्षयितासि ॥

आ पवस्व सुवीर्यं मंदमानः स्वायुध । इहो ष्विंदवा गहि ॥५॥
आ । पवस्व । सुऽवीर्यं । मंदमानः । सुऽआयुध । इहो इति । सु । इंदो इति । आ । गहि ॥५॥

हे स्वायुध । यद्वा स्फ्यकपालादीनि दशायुधानीत्यभिधीयंते । शोभनानि तानि यस्य स तथोक्तः । यद्वा । धनुरादीन्यायुधानि यस्य सः । तादृश हे सोम त्वं मंदमानो मोदमानः सन् । यद्वा । अंतर्णीतण्यर्थः । देवान् स्वयं मादयन् । सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रादिकमस्माकमा पवस्व । पवतिर्गत्यर्थः । आ प्रापय । किंच हे इंदो ग्रहेषु चमसेषु च चरणशील सोम इहो । इह उ पदद्वयं । उ इत्यवधारणे । इहैवास्मदीये यज्ञ एव सुष्ठु गहि । आगच्छ ॥ ॥१॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥६॥
यत् । अत्ऽभिः । परिऽसिच्यसे । मृज्यमानः । गभस्त्योः । द्रुणा । सधऽस्थं । अश्नुषे ॥६॥

हे सोम गभस्त्योः । बाहुनामैतत् । बभसति दीपयंति निर्मथंत्याभ्याममिमिति गभस्ती बाहू । तयोर्मृज्यमानस्ताभ्यां शोध्यमानः सन्नद्भिः । सोमसेचनार्थं चतुर्विधा आपः । ताभिर्वसतीवरीभिरेकधनाभिश्च यद्यदा परिषिच्यसे परितः सिच्यमानो भवसि तदानीं द्रुणा द्रुममयेन पारिप्लवेन पात्रेण गृह्यमाणः सन् सधस्थं सह तिष्ठंत्यत्रेति सधस्थं स्थानं ग्रहचमसादिकमश्नुषे । प्राप्नोषि ॥

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ॥७॥
प्र । सोमाय । व्यश्वऽवत् । पवमानाय । गायत । महे । सहस्रऽचक्षसे ॥७॥

हे स्तोतारः पवमानाय दशापवित्रेण पूयमानाय पुनानाय वा सोमाय प्र गायत । प्रकर्षेण सामगानं कुरुत । अभिष्टुत वा । कथमिव । व्यश्ववत् । यथा पूर्वं व्यश्वो नामर्षिः सोममगासीत् तद्वद्यूयमपि । कीदृशाय । महे महते देवेभ्यः स्वीक्रियमाणत्वेन गुणादिभिर्वा महत्त्वयुक्ताय सहस्रचक्षसे । प्रयोगबाहुल्यापेक्षमेतद्वचनं । सहस्रसंख्याकस्तोत्रयुक्ताय । यद्वा । नानाविधैर्देवैरनेकधा द्रष्टव्याय सोमायेति ॥

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वंत्यद्रिभिः । इंदुमिंद्राय पीतये ॥८॥
यस्य । वर्णं । मधुऽश्चुतं । हरिं । हिन्वंति । अद्रिऽभिः । इंदुं । इंद्राय । पीतये ॥८॥

हे अध्वर्य्वादयः वर्णं शत्रूणां वारकं येनासौ पीयते तेन मत्तेन ग्रावाणः संप्रहार्यंत इति शत्रुनिवारणसमर्थं मधुश्चुतं मधुररसस्य च्यावयितारं हरिं हरितवर्णमिंदुं । इंधेरेतद्रूपमन्विष्यते । सर्वतो दीप्यमानं । उन्द क्लेदन इत्यस्माद्वा । अभिषवानंतरं पात्रेषु चरणशीलं । यस्य सोमस्य तव कारणमंशुमद्रिभिर्हिन्वंति प्रेरयंति । अभिषुण्वंतीत्यर्थः । इंद्राय पीतये इंद्रस्य पानाय । तदर्थमित्यर्थः ॥

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ॥९॥
तस्य । ते । वाजिनः । वयं । विश्वा । धनानि । जिग्युषः । सखिऽत्वं । आ । वृणीमहे ॥९॥

हे सोम वाजिनः संभृतहविष्का वयं विश्वा विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा शत्रुधनानि जिग्युषो जितव-

तस्मात्तस्य पूर्वोक्तलक्षणस्य प्रसिद्धस्य वा ते तव सखित्वं सुत्यस्तोतृलक्षणं सख्यमा वृणीमहे। संभजामहे। अस्मभ्यं धनं देहीति संभजनं कुर्म इत्यर्थः ॥ जिग्युषः। जि जये। लिटि क्वसौ वस्वेकाजादिति नियमादिडभावः। सन्लिटोर्जेरित्यभ्यासादुत्तरस्य कवर्गादेशः। उसि परतो वसोः संप्रसारणं। क्वसुप्रत्ययस्वरः ॥

वृषा॑ पवस्व॒ धार॑या म॒रुत्व॑ते च मत्स॒रः। विश्वा॒ दधा॑न॒ ओज॑सा ॥१०॥

वृषा॑। प॒व॒स्व॒। धार॑या। म॒रुत्व॑ते। च॒। म॒त्स॒रः। विश्वा॑। दधा॑नः। ओज॑सा ॥१०॥

हे सोम त्वं वृषा स्तोतॄणामभिमतफलस्य वर्षकः सन् धारया त्वदीयया पवस्व। द्रोणकलशमागच्छ। पवतिर्गतिकर्मा। आगतस्त्वं यदास्माभिरिंद्राय दीयसे तदा मरुत्वते सहाया मरुतो यस्य संति तस्मा इंद्राय मत्सरो मदकरश्च भव। कीदृशः। विश्वा विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा धनान्योजसात्मीयेन बलेन युक्तः सन् स्तोतृभ्यस्तानि दधानः प्रयच्छन्। त्वं मादयिता भवेति समन्वयः ॥ ॥२॥

तं त्वा॑ ध॒र्तार॑मो॒ण्यो॒३ः पव॑मान स्व॒र्दृश॑म्। हि॒न्वे वाजे॑षु वा॒जिन॑म् ॥११॥

तं। त्वा॒। ध॒र्तार॑म्। ओ॒ण्योः॑। पव॑मान। स्वः॒ऽदृश॑म्। हि॒न्वे। वाजे॑षु। वा॒जिन॑म् ॥११॥

हे पवमान पूयमान पुनान वा हे सोम ओण्योः। द्यावापृथिवीनामैतत्। तयोर्धर्तारं धारकं अत एव स्वर्दृशं स्वर्गस्य सूर्यस्य वा द्रष्टारं सर्वैर्देवैर्द्रष्टव्यं वा वाजिनं बलवंतं पूर्वोक्तगुणप्रसिद्धं त्वा त्वां वाजेषु संग्रामेषु हिन्वे। प्रेरयामि। यद्वा। वाजेष्वन्नेषु विषयेषु हिनोमि। अन्नादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

अ॒या चि॒त्तो वि॒पान॑या॒ हरिः॑ पवस्व॒ धार॑या। युजं॒ वाजे॑षु चोदय ॥१२॥

अ॒या। चि॒त्तः। वि॒पा। अ॒नया॑। हरिः॑। प॒व॒स्व॒। धार॑या। युज॑म्। वाजे॑षु। चो॒द॒य॒ ॥१२॥

हे पवमान अया ॥ अय पय गतौ ॥ कर्मार्थमितस्ततो गच्छंतीभिरनया विपा ॥ विप प्रेरणे। हवींष्यग्नौ प्रेरयंतीति विपोऽंगुलयः। एकवचनं छांदसं। प्रत्येकविवक्षया वा ॥ एताभिर्मदीयाभिरंगुलीभिश्चित्तो ज्ञातः। निर्गतोऽभिषुतो हरिर्हरितवर्णस्त्वं धारया संततया पवस्व। द्रोणकलशं ग्रहांश्चागच्छ त्वं। किंच युजं सखायमिंद्रं वाजेषु संग्रामेषु चोदय। प्रेरय। यदास्माभिरिंद्रार्थं सोमो दीयते तदा तत्पानेन हृष्टः सञ्छत्रून् हंतीत्यर्थः ॥

आ न॑ इंदो म॒हीमि॒षं पव॑स्व वि॒श्वद॑र्शतः। अ॒स्मभ्यं॑ सोम गा॒तु॒वित् ॥१३॥

आ। नः॒। इं॒दो॒ इति॑। म॒ही॑म्। इष॑म्। पव॑स्व। वि॒श्वऽद॑र्शतः। अ॒स्मभ्य॑म्। सो॒म॒। गा॒तु॒ऽवित् ॥१३॥

हे इंदो चरणशील दीपनशील वा हे सोम विश्वदर्शतो विश्वैः सर्वैर्दर्शनीयः। यद्वा। विश्वं सर्वं वस्तुजातं दर्शते ज्ञाप्यतेऽनेनेति। स विश्वस्य प्रकाशक इत्यर्थः। तादृशस्त्वं महीमिषं महत्प्रभूतमन्नं नोऽस्मभ्यमा पवस्व। आगमय। प्रयच्छेत्यर्थः। किंच हे सोमाभिषूयमाण पवमान अस्मभ्यं गातुवित् स्वर्गमार्गस्य लंभयिता ज्ञापयिता भव ॥

आ क॒लशा॑ अनूष॒तेंदो॒ धारा॑भि॒रोज॑सा। एंद्र॑स्य पी॒तये॑ विश ॥१४॥

आ। क॒लशाः॑। अ॒नू॒ष॒त॒। इंदो॒ इति॑। धारा॑भिः। ओज॑सा। आ। इंद्र॑स्य। पी॒तये॑। वि॒श॒ ॥१४॥

हे इंदो चरणशील सोम ओजसा बलेन युक्तस्य तव धाराभिर्निरंतराभिः सहिताः कलशाः ॥ प्रयोगबाहुल्यापेक्षमेतद्बहुवचनं ॥ द्रोणकलशा आनूषत। स्तोतृभिराभिमुख्येन स्तूयंते। सोमाभिषवकाले ह्यृत्विजः स्तुवंति खलु। ततस्त्वमिंद्रस्य पीतये पानाय विश। ग्रहांश्चमसांश्च प्रविश ॥

यस्य॑ ते॒ मद्यं॒ रसं॑ ती॒व्रं दु॒हन्त्यद्रि॑भिः । स प॑वस्वाभिमाति॒हा ॥१५॥
यस्य॑ । ते॒ । मद्य॑म् । रस॑म् । ती॒व्रम् । दु॒हन्ति॑ । अद्रि॑ऽभिः । सः । प॒व॒स्व॒ । अ॒भि॒मा॒ति॒ऽहा ॥१५॥

हे सोम यस्य ते तव मद्यं मदकरं तीव्रं चिप्रं मदकारिणं रसमद्रिभिर्ग्रावभिरध्वर्य्वादयो दुहंति अभिषुण्वंति स तादृशस्त्वमभिमातिहा । अभितो मातिरभिमानं येषां ते शत्रवः । पापरूपाणां शत्रूणां हंता सन् पवस्व । सर्वतो गच्छ । येऽभिषुण्वंति ते पापरहिताः सुकृतिनो भवंतीत्यर्थः ॥ ॥३॥

राजा॑ मे॒धाभि॑रीयते॒ पव॑मानो म॒नावधि॑ । अ॒न्तरि॑क्षेण॒ यात॑वे ॥१६॥
राजा॑ । मे॒धाभिः॑ । ई॒य॒ते॒ । पव॑मानः । म॒नौ । अधि॑ । अ॒न्तरि॑क्षेण । यात॑वे ॥१६॥

मनौ मनुष्ये यागं कुर्वाणे सति । यद्वा । मनावधि । मनुर्मंतव्यो यज्ञः । तस्मिन्पवमानः पूयमानः पुनानो वा राजा । राजशब्देन सोमोऽभिधीयते । सोमं राजानमक्रीणन्नित्यादिषु दृष्टत्वात् । स राजा मेधाभिः स्तुतिभिः सहेयते । गच्छति । किमर्थं । अंतरिक्षेणाकाशमार्गेण द्रोणकलशं प्रति यातवे यातुं । द्रोणाभिगमनकाले हि स्तोतृभिः स्तूयते खलु ॥

आ न॑ इन्दो शत॒ग्विनं॒ गवां॒ पोषं॒ स्वश्व्य॑म् । वहा॒ भग॑त्तिमू॒तये॑ ॥१७॥
आ । नः॒ । इ॒न्दो॒ इति॑ । श॒त॒ऽग्विन॑म् । गवा॑म् । पोष॑म् । सु॒ऽअश्व्य॑म् । वह॑ । भग॑त्तिम् । ऊ॒तये॑ ॥१७॥

हे इंदो पात्रेषु चरणशील दीपनशील वा हे सोम शतग्विनं शतसहस्रसंख्याभिर्गोभिर्युक्तं गवां पोषं गवादीनां पुष्टिवर्धनं स्वश्व्यं शोभनाश्वसंगसहितं भगत्तिं भगदत्तिं भजनीयधनदानं चोतये रक्षणाय नोऽस्माकमा वह । प्रापय । गवादींश्च तेषां च वृद्धिं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

आ नः॑ सोम॒ सहो॒ जुवो॑ रू॒पं न वर्च॑से भर । सु॒ष्वा॒णो दे॒ववी॑तये ॥१८॥
आ । नः॒ । सो॒म॒ । सहः॑ । जुवः॑ । रू॒पम् । न । वर्च॑से । भ॒र॒ । सु॒स्वा॒नः । दे॒वऽवी॑तये ॥१८॥

हे सोम देववीतये देवपानाय देवानां कामाय वा सुष्वाणोऽभिषूयमाणोऽभिषुतो भव त्वं । सहः शत्रुभिभवनसमर्थं बलं जुवः । जु इति गत्यर्थः । शत्रून्प्रति शीघ्रगमनं च । यद्वा । सर्वतो गमनशीलं । किंच । नेति चार्थे । वर्चसे ॥ वर्च दीप्तौ ॥ दीप्त्यै सर्वत्र प्रकाशनाय रूपं च नोऽस्मभ्यमा भर । आहर । प्रयच्छ ॥

अर्षा॑ सोम द्यु॒मत्त॑मो॒ऽभि द्रोणा॑नि॒ रोरु॑वत् । सीद॑ञ्छ्ये॒नो न योनि॒मा ॥१९॥
अर्ष॑ । सो॒म॒ । द्यु॒मत्ऽत॑मः । अ॒भि । द्रोणा॑नि । रोरु॑वत् । सीद॑न् । श्ये॒नः । न ।
योनि॑म् । आ ॥१९॥

हे सोमाभिषूयमाण पवमान द्युमत्तमोऽतिशयेन दीप्तिमांस्त्वं द्रोणानि ॥ प्रयोगबाहुल्यापेक्षमेतद्बहुवचनं ॥ द्रोणानभि लक्षीकृत्य रोरुवत्पुनःपुनर्भृशं वा शब्दं कुर्वन्नर्ष । तानागच्छ । दशापवित्रमध्यान्निर्गतः सोमोऽविच्छिन्नधारया द्रोणकलशे पतञ्छब्दं करोति खलु । तत्र दृष्टांतः । श्येनो न यथा सीदन् सर्वतो गच्छञ्छ्येनः शंसनीयगतिः पक्षी योनिं स्वस्थानं कुलायं प्रति भृशं शब्दायमानः सन्नागच्छति तद्वत् ॥

अ॒प्सा इन्द्रा॑य वा॒यवे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यः॑ । सोमो॑ अर्षति॒ विष्ण॑वे ॥२०॥
अ॒प्साः । इन्द्रा॑य । वा॒यवे॑ । वरु॑णाय । म॒रुत्ऽभ्यः॑ । सोमः॑ । अ॒र्ष॒ति॒ । विष्ण॑वे ॥२०॥

अप्सा वसतीवरीनामधेयानामपां संभक्ता ॥ षण संभक्तौ । जनसनेति विट् । आत्वं विड्वनोरिति ॥ तादृशः

सोमोऽर्षति। द्रोणकलशमागच्छति। किमर्थं। इंद्राय। सर्वदेवानां प्रथम एवेंद्रः सोमं पिबति तस्मात्पूर्वमेवाभिहितः। तस्मै वायवे तत्सहायाय च। ऐंद्रवायवे हींद्रस्यानंतरं वायुः सोमं पिबति तस्मात्तदनु वायुरुक्तः। तस्मै च वरुणाय मरुद्भ्यो मितं शब्दं कुर्वद्भ्य एतन्नामकेभ्यो देवेभ्यो विष्णवे सर्वजगद्व्यापिने विष्णवे च। एतेषां पातुं सोमः स्रवतीत्यर्थः॥ ॥४॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणं ॥२१॥

इषं। तोकाय। नः। दधत्। अस्मभ्यं। सोम। विश्वतः। आ। पवस्व। सहस्रिणं ॥२१॥

हे सोम त्वं नोऽस्माकं तोकाय पुत्रायेषमन्नं दधद्विदधत्प्रयच्छन् सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं धनं विश्वतः सर्वतो दिक्ष्वस्मभ्यं चा पवस्व। आ प्रयच्छ। अस्मभ्यं पुत्राय चान्नधनादिकं प्रयच्छेत्यर्थः॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वादः शर्यणावति ॥२२॥

ये। सोमासः। पराऽवति। ये। अर्वाऽवति। सुन्विरे। ये। वा। अदः। शर्यणाऽवति ॥२२॥

एतदादिभ्यामृग्भ्यामिंद्रार्थं सर्वत्र सोमाभिषवोऽस्तीत्याह। ये सोमासः सोमाः परावति विप्रकृष्टेऽतिदूरे देशे ये वार्वावत्यंतिके देश इंद्रार्थं सुन्विरे अभिषूयंते अभ्यषूयंत ये वा शर्यणावति। कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे शर्यणावत्संज्ञकं मधुररसयुक्तं सोमवत्सरोऽस्ति। अदोऽस्मिन्सरसि सुरसा ये सोमा इंद्रायाभिषूयंते तेऽस्माकमभिमतफलं प्रयच्छंत्विति वक्ष्यमाणेन संबंधः॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानां। ये वा जनेषु पंचसु ॥२३॥

ये। आर्जीकेषु। कृत्वऽसु। ये। मध्ये। पस्त्यानां। ये। वा। जनेषु। पंचऽसु ॥२३॥

ये वा सोमा आर्जीकेषु। ऋजीकानामदूरभवा आर्जीका देशाः। तेषु तथा कृत्वसु। कृत्वान इति देशाभिधानं। तेषु कर्मवत्सु देशेषु च किंच पस्त्यानां सरस्वत्यादीनां नदीनां मध्ये समीपे च ये सोमा अभिषूयंते। ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत। ऐ० ब्रा० २. १९.। इत्यादिषु नदीतीरे यज्ञकरणस्य श्रवणात्। किंच जनेषु पंचसु। निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णाः पंच जनाः। तेषु च ये वा सोमा अभिषुताः ते सोमा अस्माकमभिमतं प्रयच्छंत्वित्युत्तरेण संबंधः॥

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवंतामा सुवीर्यं। सुवाना देवास इंदवः ॥२४॥

ते। नः। वृष्टिं। दिवः। परि। पवंतां। आ। सुऽवीर्यं। सुवानाः। देवासः। इंदवः ॥२४॥

सुवानास्तत्र चात्र चाभिषूयमाणा देवा दीपनशीलाः स्तुत्या वेंदवो ग्रहेषु चमसेषु च चरंतस्ते सोमा नोऽस्माकं दिवस्परि। परिशब्दः पंचमीद्योतकः। अंतरिक्षादादित्याद्वा वृष्टिं। अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति आदित्याज्जायते वृष्टिरिति वृष्टिकारणत्वात्। किंच सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रं च धनादिकं वा आ पवंतां। प्रापयंतु। यजमानः सोमेनाभिमतफलानि प्राप्नोति खलु॥

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना। हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥

पवते। हर्यतः। हरिः। गृणानः। जमत्ऽअग्निना। हिन्वानः। गोः। अधि। त्वचि ॥२५॥

हर्यतो देवान् कामयमानो हरिर्हरितवर्णः किंच गोस्त्वच्यधानडुहे चर्मणि हिन्वानः प्रेर्यमाणः स सोमो जमदग्निना मंत्रद्रष्ट्रर्षिणा गृणानः स्तूयमानः सन् पवते। दशापवित्रेण पूतो भवति। यद्वा। पात्राण्यभिगच्छति॥ ॥५॥

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृंजत ॥२६॥

प्र । शुक्रासः । वयःऽजुवः । हिन्वानासः । न । सप्तयः । श्रीणानाः । अप्ऽसु । मृंजत ॥२६॥

शुक्रासः शुक्रा दीप्यमाना वयोजुवोऽन्नं प्रेरयंतः । यद्यदपेक्ष्य देवेभ्यः सोमं प्रयच्छंति तत्तदपेक्षितं सोमो ददाति । ते सोमाः श्रीणाना दधिक्षीरादिभिः श्रीयमाणाः संतोऽप्सु वसतीवरीष्वेकधनासु च मृंजत । ऋत्विग्भिः प्रमृज्यंते । शोध्यंते । तत्र दृष्टांतः । हिन्वानासो न सप्तयः । अश्वनामैतत् । यथाश्वा हिन्वानासो हिन्वानाः सादिभिः प्रेर्यमाणाः संतोऽप्सु तैरेव प्रशोधिता भवंति तद्वत् ॥

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥२७॥

तं । त्वा । सुतेषु । आऽभुवः । हिन्विरे । देवऽतातये । सः । पवस्व । अनया । रुचा ॥२७॥

अथ प्रत्यक्षकृतः । हे सोम आभुवः । कर्मकरणार्थं समंताद्भवंतीत्याभुव ऋत्विजः । ते सुतेषु । सुतोऽभिषुतः सोमः । तद्वत्सु यज्ञेषु देवतातये ॥ सर्वदेवात्तातिलिति स्वार्थिकस्तातिल् ॥ इंद्रादिदेवेभ्यस्तं तादृशं प्रसिद्धं त्वा त्वां हिन्विरे । ग्रावभिः प्रेरयंति । अभिषुण्वंतीत्यर्थः । ततः सोऽभिषुतः स त्वमनया रुचा दीप्यमानया धारया द्रोणकलशं प्रति पवस्व । आगच्छ । पवतिर्गतिकर्मा । यद्वा । अनया मदीयया रुचा स्तुत्या सह कलशमागच्छ । कलशाभिगमनकाले हि सोमं स्तुवंति ॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पांतमा पुरुस्पृहं ॥२८॥

आ । ते । दक्षं । मयःऽभुवं । वह्निं । अद्य । वृणीमहे । पांतं । आ । पुरुऽस्पृहं ॥२८॥

हे सोम यष्टारो वयं ते तव स्वभूतं दक्षं बलमद्यास्मिन्यागदिन आभिमुख्येना वृणीमहे । संभजामहे । कीदृशं । मयोभुवं सुखस्य भावकं वह्निं धनादीनां प्रापकं पांतं शत्रुभ्यो रक्षकं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं काम्यमानं बलमिति ॥

आ मंद्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणं । पांतमा पुरुस्पृहं ॥२९॥

आ । मंद्रं । आ । वरेण्यं । आ । विप्रं । आ । मनीषिणं । पांतं । आ । पुरुऽस्पृहं ॥२९॥

हे सोम मंद्रं मदकरं स्तुत्यं वा त्वामा वृणीमहे । वरेण्यं सर्वैर्वरणीयं संभजनीयं च । किंच विप्रं मेधाविनं त्वा । तथा मनीषिणं । मनस ईषा मनीषा । तद्वंतं स्तुतिमंतं वा त्वामा वृणीमहे । प्रत्येकं विशेषणापेक्षया आ इत्युपसर्गः कृतः । किंच पांतं सर्वेषां रक्षकं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं च त्वां संभजामहे ॥

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पांतमा पुरुस्पृहं ॥३०॥

आ । रयिं । आ । सुऽचेतुनं । आ । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । तनूषु । आ । पांतं ।
आ । पुरुऽस्पृहं ॥३०॥

हे सुक्रतो शोभनयज्ञ सोम त्वदीयं रयिं धनं वयमा वृणीमहे । किंच सुचेतुनं ॥ चिती संज्ञाने । औणादिक उनन्प्रत्ययः ॥ सुज्ञानं च । तनूष्वस्मत्पुत्रेषु च धनं सुज्ञानं च त्वमा विधेहि । यद्वा । पुत्रार्थं वयमा वृणीमहे । तथा पांतं सर्वस्य रक्षकं पुरुस्पृहं बहुभिर्यष्टृभिः काम्यमानं त्वां संभजामहे ॥ ॥६॥

पवस्वेति त्रिंशदृचं षष्ठं सूक्तं । अत्रानुक्रम्यते । पवस्व शतं वैखानसा अष्टादशान्तुष्टुप्पराश्चिस्र आग्नेय्य इति । शतसंख्याका वैखानसाख्याः संहता ऋषयः । त्वं सोम सूर इत्येषानुष्टुप् । शिष्टा गायत्र्यः । अग्न आयूंषीत्याद्यास्तिस्रः पवमानविशिष्टाग्निदेवताकाः । अन्यासां पवमानः सोमो देवता ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥१॥
पवस्व । विश्वऽचर्षणे । अभि । विश्वानि । काव्या । सखा । सखिऽभ्यः । ईड्यः ॥१॥

हे विश्वचर्षणे सर्वव्यापित्वेन सर्वस्य द्रष्टर्हे सोम सखा स्तुत्यस्तोतृयष्टृयाज्यष्टृलक्षणेन संबंधेन सखिभूतस्त्व-मीड्यः स्तोतव्यः सन् सखिभ्यो हविष्प्रदानेनोपकारकत्वान्मित्रभूतेभ्योऽस्मभ्यं विश्वानि सर्वाणि काव्या कवेः कर्माणि काव्यानि ॥ ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् ॥ सर्वाणि स्तोत्राण्यभि लक्षीकृत्य पवस्व । आगच्छ ॥

ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥२॥
ताभ्याम् । विश्वस्य । राजसि । ये इति । पवमान । धामनी इति । प्रतीची इति ।
सोम । तस्थतुः ॥२॥

हे पवमान दशापवित्रेण पूयमान पुनान वा हे सोम ये धामनी पूर्वपक्षापरपक्षयोर्लताक्रूपस्य सोमस्य तवैकैकपर्णवृद्धिह्रासाभ्यां तव स्वभूते पूर्वादिपक्षौ । यद्वा । ये धामनी नामनी अंशुसोमात्मके । अपि प्रतीची त्वदभिमुखं गच्छंती गच्छती वा पक्षौ नामनी तस्थतुः उपजग्मतुः ताभ्यां त्वं विश्वस्य सर्वस्य लोकस्य राजसि । स्वामी भवसि । पूर्वादिपक्षाभ्यां सर्वलोकस्योपनायकत्वात्तस्य स्वामी भवसि । पृथिव्यामंशुनाम्ना मनुष्याणां सर्वेषामभीप्सितदानेन तस्य लोकस्य द्युलोके देवेभ्यः स्वसुधामयकलादानेन तेषां प्रीणयिता भवसि । देवाः खलु सोमस्यैकैकवृद्धिह्रासाभ्यां कलाः पिबंति ॥

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे ॥३॥
परि । धामानि । यानि । ते । त्वम् । सोम । असि । विश्वतः । पवमान । ऋतुऽभिः । कवे ॥३॥

हे सोम यस्मात्ते त्वदीयानि धामानि तेजांसि परितो वर्तंते अत एव हे पवमान पूयमान हे कवे क्रांतकर्मन् हे सोम त्वमृतुभिर्वसंतादिकालविशेषैः सह विश्वतः सर्वतोऽसि । भवसि । अहोरात्रौ यत्र यत्र व्याप्तौ तत्र तत्र वसंतादिकालोपाधिकः सोमस्तिष्ठति । तयोस्तदधीनत्वादित्यर्थः ॥

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या । सखा सखिभ्य ऊतये ॥४॥
पवस्व । जनयन् । इषः । अभि । विश्वानि । वार्या । सखा । सखिऽभ्यः । ऊतये ॥४॥

हे सोम सखा सखिभूतस्त्वं विश्वानि सर्वाणि वार्या वरणीयान्यस्मद्व्रतानि स्तोत्राण्यभि लक्षीकृत्य सखि-भ्योऽस्मभ्यमूतये रक्षणाय जीवनायेषोऽन्नानि जनयन् प्रयच्छन् पवस्व । आगच्छ । पवतिर्गतिकर्मा ॥

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते । पवित्रं सोम धामभिः ॥५॥
तव । शुक्रासः । अर्चयः । दिवः । पृष्ठे । वि । तन्वते । पवित्रम् । सोम । धामऽभिः ॥५॥

हे सोम शुक्रासः सर्वत्र ज्वलनशीला धामभिस्तेजोभिः सहितस्य तव स्वभूता अर्चयोऽर्चनीया रश्मयो दिवो द्योतमानस्यादित्यस्य द्युलोकस्य वा पृष्ठेऽधरभागे । पृथिव्यामित्यर्थः । पवित्रं पवमानसाधनमुदकं वि तन्वते । विशेषेण तन्वंति । विस्तारयंति । सर्वत्र कुर्वंतीत्यर्थः ॥ ॥७॥

तवेमे सप्त सिंधवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावंति धेनवः ॥६॥
तव । इमे । सप्त । सिंधवः । प्रऽशिषम् । सोम । सिस्रते । तुभ्यम् । धावंति । धेनवः ॥६॥

वृष्टिकर्तृत्वप्रसंगादाह । हे सोम इम इमास्त्वया सृष्टाः सप्त सप्तसंख्याकाः सिंधवः स्यंदमाना गंगाद्या

नद्यः। यद्वा। सप्त सर्पणशीला नद्यः। तव प्रशिषं प्रशासनमाज्ञामभि सिस्रते। अनुसरंति। त्वदाज्ञामनुसृत्य समुद्रं गच्छंतीत्यर्थः। किंच धेनवो नवप्रसूतिका देवानां हविष्प्रदानेन प्रीणयित्र्यो गावस्तुभ्यं त्वदर्थमेवाशिरं क्षीरं प्रयच्छाम इति धावंति। आगच्छंति॥

प्र सोम याहि धारया सुत इंद्राय मत्सरः। दधानो अक्षिति श्रवः॥७॥

प्र। सोम। याहि। धारया। सुतः। इंद्राय। मत्सरः। दधानः। अक्षिति। श्रवः॥७॥

हे सोमाभिषूयमाण देव मत्सर इंद्रस्य मदकरस्त्वं सुतोऽस्माभिरभिषुतः सन्निंद्रायेंद्रार्थं दशापवित्रान्निर्गतया संततया त्वदीयया धारया द्रोणकलशं प्र याहि। प्रकर्षेण प्राप्नुहि। यद्वा। हे सोम सुतोऽभिषुतस्त्वमिंद्राय मत्सरो मादयितृतमः सन् धारयासौ स्वाहाकारेण पाचात्यतया धारया सह त्वमिंद्रमुपयाहि। कीदृशः। अक्षित्यक्षीणं श्रवः। श्रव इत्यन्ननाम। दधानोऽस्मभ्यं प्रयच्छन् प्र याहीति॥

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः। विप्रमाजा विवस्वतः॥८॥

सं। ऊं इति। त्वा। धीभिः। अस्वरन्। हिन्वतीः। सप्त। जामयः। विप्रं। आजा।
विवस्वतः॥८॥

हे सोम हिन्वतीः॥ लिंगव्यत्ययः॥ हिन्वंतः स्तुतीः प्रेरयंतः सप्त सप्तसंख्याका जामय एकस्मिन्यज्ञे कर्मकरणेन परस्परं बंधुभूता होतृप्रभृतयः सप्त होत्रका विवस्वतो देवानां हविष्प्रदानेन परिचरणवतो यजमानस्याजाजौ। अजंति गच्छंत्यृत्विजोऽत्रेत्याजिर्यज्ञः। तस्मिन् विप्रं मेधाविनं पवमानं त्वा त्वामेव धीभिर्धीतिभिः स्तुतिभिः समस्वरन्। अशब्दयन्। अस्तुवन्। यद्वा। हिन्वतीर्गच्छंत्यः सप्त जामयो गंगाद्याः सप्त नद्यो धीभिः॥ वर्णलोपश्छांदसः॥ धीतिभिरंगुलीभिर्विप्रं त्वां समस्वरन्। प्रेरयंति। वसतीवरीभिरेकधनाभिश्च परिशोधनार्थं प्रेरयंतीति॥

मृजंति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि। रेभो यदज्यसे वने॥९॥

मृजंति। त्वा। सं। अग्रुवः। अव्ये। जीरौ। अधि। स्वनि। रेभः। यत्। अज्यसे। वने॥९॥

हे सोम अग्रुवः। अंगुलिनामैतत्। अजंति प्रक्षिपंति हवींष्यमाविति। यद्वा। अगेर्गत्यर्थस्य। कर्मकरणार्थमितस्ततो गच्छंतीति। अग्रुवोऽंगुलयोऽस्मदीया जीरौ पापानामभिभावुके क्षिप्रं क्षते वा स्वन्यध्यधिकं शब्दायमानेऽव्येऽविवालेन क्षते पवित्रे त्वा त्वां तदा सं मृजंति। सम्यक् शोधयंति। यद्यदा रेभः॥ रेभृ शब्दे॥ उदकमध्ये प्रक्षेपेण शब्दायमानस्त्वं वने वननीये वसतीवर्याख्य उदकेऽज्यसे अक्तः सिक्तो भवसि। तदा मृजंतीत्यन्वयः॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत। अर्वंतो न श्रवस्यवः॥१०॥

पवमानस्य। ते। कवे। वाजिन्। सर्गाः। असृक्षत। अर्वंतः। न। श्रवस्यवः॥१०॥

मार्जनप्रसंगमाह। हे कवे क्रांतप्रज्ञ हे वाजिन्नन्नवन् सोम पवमानस्य दशापवित्रेण पूयमानस्य ते तव सर्गाः। सृज्यंत इति सर्गा धाराः। कीदृशाः। श्रवस्यवः॥ छंदसि परेच्छायां क्यच्॥ यष्टॄणामन्नं कामयमानास्त्वदीया धारा असृक्षत। सृजंति। निर्गच्छंतीत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। अर्वंतो न। यथाश्वा मंदुरातो निर्गच्छंति तद्वत् पवित्रान्निःसरंतीत्यर्थः। प्रयोगापेक्षं चात्र धाराबाहुल्यं॥ ॥८॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये। अवावशंत धीतयः॥११॥

अच्छ। कोशं। मधुऽश्चुतं। असृग्रं। वारे। अव्यये। अवावशंत। धीतयः॥११॥

धारानिर्गमनप्रसंगादभिधीयते। मधुश्चुतं मधुररसस्य च्यावयितारं क्षारयितारं कोशं द्रोणकलशमच्छाभिलक्ष्याव्यये ऽविमये ऽविस्तभूते वा वारे वाले दशापवित्रे ऽसृग्रं। सोमा ऋषिभिः सृज्यंते॥ सृजेः कर्मणि लिङ्गं लिङो भवंतीति श्नो रमादेशः॥ किंच धीतयः। अंगुलिनामैतत्। धयंति पिबंत्याभिरिति। अस्मदीया अंगुलयोऽवावशंत। तान् सोमान् पुनःपुनर्मार्जनार्थं कामयंते॥

अच्छा समुद्रमिंदवोऽस्तं गावो न धेनवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा॥१२॥
अच्छं। समुद्रं। इंदवः। अस्तं। गावः। न। धेनवः। अग्मन्। ऋतस्यं। योनिं। आ॥१२॥

इंदवः चरंतः सोमाः समुद्रं सोमानामेकत्रैव संगमनस्थानं द्रोणकलशमभिगच्छंति। तत्र दृष्टांतः। धेनवः पयःप्रदानेन जनानां प्रीणयित्र्यो नवप्रसूतिका गावोऽस्तं गृहं यथाभिगच्छंति तद्वत्। किंच ते सोमा ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमाऽग्मन्। आभिमुख्येन गच्छंति॥ गमेर्लुङि सिचो लुक्युपधालोपः॥

प्र ण इंदो महे रण आपो अर्षंति सिंधवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे॥१३॥
प्र। नः। इंदो इति। महे। रणे। आपः। अर्षंति। सिंधवः। यत्। गोभिः। वासयिष्यसे॥१३॥

हे इंदो चरन् सोम नोऽस्माकं स्वभूताय रणे रणाय। रणंति स्तुवंति देवानत्रेति रणो यज्ञः॥ अधिकरणे अप्। ङेर्यः। पा॰ ७. १. १३.। इति न भवति सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वात्॥ महे महते रणाय यज्ञाय तदर्थं सिंधवः स्यंदमाना आपो वसतीवर्याख्याः सोमसेकार्थं तदार्षंति। प्रगच्छंति। यद्यदा त्वं गोभिर्गव्यैर्दधिक्षीरादिभिर्वासयिष्यसे आच्छादयसे मिश्रितो भवसि तदापो गच्छंतीति॥

अस्य ते सख्ये वयमियक्षंतस्त्वोतयः। इंदो सखित्वमुश्मसि॥१४॥
अस्यं। ते। सख्ये। वयं। इयक्षंतः। त्वाऽऊतयः। इंदो इति। सखिऽत्वं। उश्मसि॥१४॥

हे इंदो पवमान इयक्षंतो यष्टुमिच्छंतः पूजयितुमिच्छंतो वास्य प्रसिद्धस्य ते तव सख्ये सखिकर्मणि स्थिता वयं त्वोतयस्त्वदायत्तरक्षणाः संतः सखित्वं सखिभावमेवोश्मसि। उश्मः। कामयामहे॥

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे। एंद्रस्य जठरे विश॥१५॥
आ। पवस्व। गोऽइष्टये। महे। सोम। नृऽचक्षसे। आ। इंद्रस्य। जठरे। विश॥१५॥

हे सोम पवमान गविष्टयेऽगिरसां गवामन्वेष्ट्रे महे महते नृचक्षसे नृणां मनुष्याणां द्रष्ट्रे कर्मनेतॄणां फलं पश्यते वा चंद्राया पवस्व। पात्रेषु दशापवित्रेण पूतो भव। इंद्रस्य जठरे उदरे उदरभूते द्रोणकलशे वा विश। प्रविश॥ ॥९॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिंद ओजिष्ठः। युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ॥१६॥
महान्। असि। सोम। ज्येष्ठः। उग्राणां। इंदो इति। ओजिष्ठः। युध्वा। सन्।
शश्वत्। जिगेथ॥१६॥

हे सोम त्वं महानसि। यतस्त्वं देवानां प्रीणयिता खलु। त्वं ज्येष्ठः प्रशस्यतमो भवसि। किंच हे इंदो पवमान त्वमुग्राणामुद्गूर्णबलानामप्योजिष्ठ ओजस्वितमो भवसि। त्वं युध्वा सञ्छत्रुभिः सह युद्धं कुर्वन्नेव शश्वत् सर्वदा जिगेथ। तांस्तेषां धनानि च जितवानसि॥ जि जये। थलि सन्लिटोर्जेरित्यभ्यासादुत्तरस्य कवर्गादेशः॥

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः । भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥१७॥
यः । उग्रेभ्यः । चित् । ओजीयान् । शूरेभ्यः । चित् । शूरऽतरः । भूरिऽदाभ्यः । चित् । मंहीयान् ॥१७॥

यः सोम उग्रेभ्यश्चिदुद्गूर्णेभ्यो बलवद्भ्योऽप्योजीयानोजस्वितमः । किंच यः शूरेभ्यश्चिद्वीरेभ्योऽपि शूरतरोऽत्यंतसमर्थो भवति । तथा यः सोमो भूरिदाभ्यः ॥ डुदाञ् दाने । आतो मनिन्निति विच् ॥ बहुधनानां दातृभ्योऽपि मंहीयान् दातृतमो भवति । तं त्वां वृणीमह इत्युत्तरेण संबंधः ॥

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनां । वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८॥
त्वं । सोम । सूरः । आ । इषः । तोकस्य । साता । तनूनां । वृणीमहे । सख्याय । वृणीमहे । युज्याय ॥१८॥

हे सोम सूरः सुवीर्यः । यद्वा । सर्वस्य यागादिकर्मणि प्रेरकः । त्वमिषोऽन्नान्यस्माकमा धेहि । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः । किंच त्वं तोकस्य पुत्रस्य तनूनां । तन्वंति विस्तारयंति कुलमिति तन्वः पौत्राः । तेषां च साता दाता भव ॥ षणु दाने । जनसनेति विट् । जनसनेत्यात्वं ॥ वयं तं त्वां सख्याय सखिभावाय कर्मणे वा वृणीमहे । संभजामहे । तथा युज्याय ॥ युज् सहायः । तस्य भावे कर्मणि वा ष्यञ् । संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वादवृद्धिः ॥ शत्रुवधादिलक्षणसाहाय्याय च वयं वृणीमहे ॥

अग्निहोत्रे पूर्वस्यामाहुतौ हुतायामुपस्थितेन यजमानेन प्रतिदिवसं प्रतिसंवत्सरं वानेन तृचेनाग्निरुपस्थेयः । सूत्रितं च । आग्नेयीभिश्चाग्न आयूंषि पवस इति तिसृभिः संवत्सरे संवत्सरे । आ० २. ३. । इति ॥ चौलादिकर्मसु चतस्र आज्याहुतयो होतव्यास्तत्रैव तिस्रः । सूत्रितं च । तेषां पुरस्ताच्चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयादग्न आयूंषि पवस इति तिसृभिः । आ० गृ० १. ४. ३. । इति ॥ आधाने पवमानेष्टावग्नेः पवमानस्याग्न आयूंषीत्येषानुवाक्या । अग्ने पवस्वेत्येषा याज्या । सूत्रितं च । प्रथमायामग्निरग्निः पवमानोऽग्न आयूंषि पवसेऽग्ने पवस्व स्वपाः । आ० २. १. । इति ॥ पुनराधेये द्वितीयाज्यभागस्याग्न आयूंषीत्येषा वैकल्पिकानुवाक्या । सूत्रितं च । नित्यं पूर्वमनुब्राह्मणिनोऽग्न आयूंषि पवस इत्युत्तरं । आ० २. ८. । इति ॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां ॥१९॥
अग्ने । आयूंषि । पवसे । आ । सुव । ऊर्जं । इषं । च । नः । आरे । बाधस्व । दुच्छुनां ॥१९॥

हे अग्ने पवमानरूप त्वमस्माकमायूंषि जीवनानि पवसे । रक्षसि । नोऽस्माकमूर्जमन्नरसमिषमन्नं चा सुव । आभिमुख्येन प्रेरय । किंच दुच्छुनां । रक्षोनामैतत् । रक्षांस्यारेऽस्मत्तो दूर एव बाधस्व । संपीडय ॥

अग्निरृषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं ॥२०॥
अग्निः । ऋषिः । पवमानः । पांचऽजन्यः । पुरःऽहितः । तं । ईमहे । महाऽगयं ॥२०॥

पांचजन्यः । निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णाः पंचजनाः । यद्वा । गंधर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येते पंचजनाः । अथवा देवमनुष्या गंधर्वाप्सरसः सर्पाः पितर इति ब्राह्मणेऽभिहिताः पंचजनाः ॥ गंभीराञ्ञ्य इत्यत्र बहिर्देवपंचजनेभ्य इति वक्तव्यमिति वचनात् । का० ४. ३. ५८. १. । भवार्थे ञ्यप्रत्ययः ॥ तेषां तत्तदभीष्टप्रदानेन स्वभूत ऋषिः सर्वद्रष्टा पवमानस्तद्रूपोऽग्निः पुरोहितः कर्मार्थमृत्विग्भिः पुरो निहितः । तं पूर्वोक्तलक्षणं महागयं महद्भिर्देवादिभिरपि गीर्भिर्गातव्यं । महांति प्रभूतानि यज्ञगृहाणि वा यस्य स तथोक्तः । तं पवमानगुणविशिष्टमग्निमीमहे । धनादीनि याचामहे ॥ ॥१०॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यं । दधद्रयिं मयि पोषं ॥२१॥

अग्ने । पवस्व । सुऽअपाः । अस्मे इति । वर्चः । सुऽवीर्यं । दधत् । रयिं । मयि । पोषं ॥२१॥

हे अग्ने स्वपाः ॥ सोर्मनसी इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वं ॥ शोभनकर्मा त्वमस्मे अस्मासु सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं वर्चः ॥ वर्च दीप्तौ ॥ तेजः पवस्व । आगमय । तथा भवान्रयिं धनं पुत्रं वा पोषं ॥ भावे कर्मणि वा घञ् ॥ गवां पुष्टिं यद्वा गवादिकं मयि भवान्दधत् । दधातु । करोत्वित्यर्थः ॥ दधातेर्लेट्यडागमः । घोर्लोपो लेटि वा । पा० ७. ३. ७०. । इत्याकारलोपः ॥

पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिं । सूरो न विश्वदर्शतः ॥२२॥

पवमानः । अति । स्रिधः । अभि । अर्षति । सुऽस्तुतिं । सूरः । न । विश्वऽदर्शतः ॥२२॥

पवमानः सोमः स्रिधो हिंसकाञ्शत्रूनतिक्रम्य गच्छति । तथा सुष्टुतिं स्तोतॄणां शोभनां स्तुतिमभ्यर्षति । आभिमुख्येन गच्छति ॥ ऋषी गतौ तौदादिकः । बहुलं छंदसीति शप् । गुणः ॥ किंच सूरो न सूर्य इव विश्वदर्शतः सर्वस्य द्रष्टा सर्वैर्वा दर्शनीयो भवति ॥

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः । इंदुरत्यो विचक्षणः ॥२३॥

सः । मर्मृजानः । आयुऽभिः । प्रयस्वान् । प्रयसे । हितः । इंदुः । अत्यः । विऽचक्षणः ॥२३॥

आयुभिः कर्मनेतृभिर्मनुष्यैर्मर्मृजानः पुनःपुनर्मृज्यमानः शोध्यमानः स इंदुः स सोमोऽत्यो देवान्संततं गंता भवति । कीदृशः । प्रयस्वान् प्रीणनशीलान्नवान् । यद्वा । स्तोतृभ्यो देयत्वेनान्नयुक्तः । अत एव प्रयसे हवीरूपायान्नाय हितो विचक्षणः सर्वस्य प्रदर्शनकारी सर्वस्य विद्रष्टा वा सोमो देवानभिगंता भवति ॥ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अनुदात्तेतश्च हलादेरिति युच् ॥

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जंघनत् ॥२४॥

पवमानः । ऋतं । बृहत् । शुक्रं । ज्योतिः । अजीजनत् । कृष्णा । तमांसि । जंघनत् ॥२४॥

पवमान ऋतं सत्यं यथार्थभूतं बृहत्प्रभूतं सर्वदेशेषु व्यापकं शुक्रं दीप्यमानं श्वेतवर्णं ज्योतिस्तेजोऽजीजनत् । द्युलोक उदपादयत् । किं कुर्वन् । कृष्णा कृष्णवर्णानि तमांसि जंघनद्भृशं विनाशयन् ॥ हंतेर्यङ्लुकि शतरि रूपं । अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वं ॥

पवमानस्य जंघ्नतो हरेश्चंद्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥२५॥

पवमानस्य । जंघ्नतः । हरेः । चंद्राः । असृक्षत । जीराः । अजिरऽशोचिषः ॥२५॥

जंघ्नतः पुनःपुनस्तमांसि विनाशयतो हरेर्हरितवर्णस्याजिरशोचिषः सर्वत्रगमनशीलतेजसः पवमानस्य सोमस्य चंद्राः ॥ चदि आह्लादने ॥ देवानामाह्लादयित्र्यो जीराः क्षिप्रंचरणशीला धारा असृक्षत । सृजंति । पवित्रान्निर्गच्छंतीत्यर्थः ॥ ॥११॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चंद्रो मरुद्गणः ॥२६॥

पवमानः । रथिऽतमः । शुभ्रेभिः । शुभ्रशःऽतमः । हरिऽचंद्रः । मरुत्ऽगणः ॥२६॥

पवमानो देवो रथीतमोऽतिशयेन रथवान् ॥ ईद्रथिनः । पा० ८. २. १७. १. । इतीकारः ॥ तथा शुभ्रेभिः शोभायुक्तेभ्यस्तेजोभ्योऽपि शुभ्रशस्तमोऽत्यंतदीप्यमानस्य । यद्वा । निर्मलेभ्योऽपि निर्मलतमयशोयुक्तः । हरि-

चंद्रः ॥ ह्रस्वाच्चंद्रोत्तरपद इति सांहितिकः सुट् ॥ हरितवर्णदीप्तिर्हरितधारावान्वा मरुद्गणः । मरुतो यस्य गणः सहायभूताः स तथोक्तः । तादृशः सर्वांल्लोकान् स्वरश्मिभिः स्वदीप्तिभिर्व्यश्नवत् व्याप्नोत्वित्युत्तरेणान्वयः ॥

पव॑मानो॒ व्य॑श्नवद्र॒श्मिभि॑र्वाज॒सात॑मः । दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥२७॥

पव॑मानः । वि । अ॒श्न॒व॒त् । र॒श्मिऽभिः॑ । वा॒ज॒ऽसात॑मः । दध॑त् । स्तो॒त्रे । सु॒ऽवीर्य॑म् ॥२७॥

पवमानः सोमो रश्मिभिः स्वदीप्तिभिर्व्यश्नवत् । सर्वं जगद्व्याप्नोतु । कीदृशः । वाजसातमोऽतिशयेनान्नस्य दाता बलस्य संभक्ता वा । तथा स्तोत्रे पवमानस्तोत्रं कुर्वते मनवे सुवीर्यं सुवीर्योपेतं पुत्रं धनं वा दधद्विदधत् प्रयच्छन् व्याप्नोतु ॥ अश्नोतेर्लेट्यडागमः ॥

प्र सु॑वा॒न इन्दु॑रक्षाः प॒वित्र॒मत्य॒व्यय॑म् । पु॒ना॒न इन्दु॒रिन्द्र॒मा ॥२८॥

प्र । सु॒वा॒नः । इन्दुः॑ । अ॒क्षा॒रि॒ति॑ । प॒वित्र॑म् । अति॑ । अ॒व्यय॑म् । पु॒ना॒नः । इन्दुः॑ । इन्द्र॑म् । आ ॥२८॥

सुवानोऽभिषूयमाण इंदुः सोमोऽव्ययमविमयमूर्णास्तुकेन निर्मितं दशापवित्रमतीत्य प्राक्षाः । कलशं प्रतिकर्षेण चरति ॥ चरतेर्लुङि तिपि सिचि छांदस इडागमाभावः । अतो ल्रांतस्य । पा॰ ७. २. २. । इति वृद्धिः । रात्सस्येति सिचो लोपः । रेफांतं स्पष्टयितुमितिकारः । बहुलं छंदसि । पा॰ ७. ३. ९७. । इतीडभावः । हल्ङ्याब्भ्यादिना तिलोपः ॥ ततः पुनानः पवित्रेण शुद्ध इंदुः सोम इंद्रमा विशति । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

ए॒ष सोमो॒ अधि॑ त्व॒चि गवां॑ क्रीळ॒त्यद्रि॑भिः । इन्द्रं॒ मदा॑य॒ जोहु॑वत् ॥२९॥

ए॒षः । सोमः॑ । अधि॑ । त्व॒चि । गवा॑म् । क्री॒ळ॒ति॒ । अद्रि॑ऽभिः । इन्द्र॑म् । मदा॑य । जोहु॑वत् ॥२९॥

एष अंशुरूपः सोमो गवां त्वच्यानडुहचर्मणि । अधिशब्द उपर्यर्थद्योतकः । चर्मण्युपर्यद्रिभिर्ग्रावभिः सह क्रीडति । अभिषवाय संक्रीडते । एतेन तत्काल इंद्रविषयां स्तुतिं कुर्वतीत्यवगम्यते ॥

यस्य॑ ते द्यु॒म्नव॒त्पयः॒ पव॑माना॒भृ॑तं दि॒वः । तेन॑ नो मृळ जी॒वसे॑ ॥३०॥

यस्य॑ । ते॒ । द्यु॒म्नऽव॑त् । पयः॑ । पव॑मान । आऽभृ॑तम् । दि॒वः । तेन॑ । नः॒ । मृ॒ळ॒ । जी॒वसे॑ ॥३०॥

हे पवमान पूयमान हे सोम दिवो द्युलोकादाभृतं श्येनरूपया गायत्र्याहृतं द्युम्नवदन्नवद्यशोयुक्तं वा पयः सोमलक्षणमन्नं यस्य ते तव स्वभूतं विद्यते तस्मात्त्वं तेनान्नेन नोऽस्माञ्जीवसे चिरजीवनाय मृळ । मृळय । सुखय ॥ ॥१२॥

त्वं सोमासीति द्वात्रिंशदृचं सप्तमं सूक्तं । आद्यतृचस्य बार्हस्पत्यो भरद्वाज ऋषिः । द्वितीयस्य मारीचः कश्यपः । तृतीयस्य राहूगणो गोतमः । चतुर्थस्य भौमोऽत्रिः । पंचमस्य गाथिनो विश्वामित्रः । षष्ठस्य भार्गवो जमदग्निः । सप्तमस्य मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूक्तशेषस्यांगिरसः पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा समुदितावृषी । पवस्व सोम मंदयन्नित्याद्यास्तिस्रो द्विपदा गायत्र्यः । अविता नो अजाश्व इत्याद्यास्तिस्रः पवमानपूषदेवत्याः पवमानसोमदेवताका वा । यत्ते पवित्रमर्चिषीत्याद्याः पंचर्चः पवमानाग्निदेवत्याः । आसां पंचानां मध्य उभाभ्यां देव सवितरिति तृतीया पवमानसवितृदेवताका वा । चतुर्थी त्रिभिष्ट्वं देव सवितरित्येषा विकल्पेन पवमानाग्निसवितृदेवताका । पुनंतु मामित्येषा विकल्पेन वैश्वदेवी । यः पावमानीरध्येतीत्यादिके द्वे पवमानमंडलाध्येतृस्तुतिप्रतिपादिके । अतः सैव देवता । शिष्टाः सर्वाः पवमानसोमदेवताकाः । तथा चानुक्रम्यते । त्वं सोमासि द्वात्रिंशद्भरद्वाजः कश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ इति ह तृचाः सप्त ऋषयः शेषे पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा पवस्व सोम तिस्रो नित्यद्विपदा गायत्र्योऽविता नस्तिस्रः पौष्ण्यो वा यत्ते पवित्रं पंचाग्नेय्यः सावित्र्यग्निसावित्री वैश्वदेवी चासामंत्यास्त्रिष्टुभौ पुरउष्णिक् सप्तविंश्यनुष्टुबंत्ये च ते पावमान्यध्येतृस्तुती इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

त्वं सोमासि धारयुर्मंद्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

त्वं । सोम । असि । धारयुः । मंद्रः । ओजिष्ठः । अध्वरे । पवस्व । मंहयत्ऽरयिः ॥१॥

हे सोमाभिषूयमाण पवमान मंद्रो मोदयितृतम ओजिष्ठ ओजस्वितमस्त्वमध्वरे हिंसारहितेऽस्मदीये यज्ञे धारयुरभिषवणधाराकामोऽसि । भवसि । ततस्त्वं मंहयद्रयिः स्तोतृभ्यः प्रदीयमानधनः सन् पवस्व । द्रोणकलशे ग्रहादिषु दशापवित्रेण पूतो भव । यद्वा ॥ धारयुस्तद्वदर्थे भाष्यत इति मत्वर्थीयो युः ॥ स हे सोम त्वं धारावानिव ततः पवस्वेति संबंधः ॥

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिंतमः । इंद्राय सूरिरंधसा ॥२॥

त्वं । सुतः । नृऽमादनः । दधन्वान् । मत्सरिन्ऽतमः । इंद्राय । सूरिः । अंधसा ॥२॥

हे सोम नृमादनो नृणां कर्मणो नेतॄणामृत्विजां मादयिता अत एव दधन्वांस्तेभ्यो धनानि धारयन् प्रयच्छन् यद्वा यज्ञस्य धारकः सूरिः प्राज्ञः सुतोऽस्माभिरभिषुतस्त्वमंधसा हवीरूपेणान्नेन सहेंद्राय मत्सरिंतमस्तस्यातिशयेन मदकारी भव ॥ नाद्धस्येति नकारः ॥

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमंतं शुष्ममुत्तमं ॥३॥

त्वं । सुस्वानः । अद्रिऽभिः । अभि । अर्ष । कनिक्रदत् । द्युऽमंतं । शुष्मं । उत्ऽतमं ॥३॥

हे पवमान सोम अद्रिभिर्ग्रावभिः सुष्वाणः सुन्वानोऽभिषूयमाणस्त्वं कनिक्रदद्भृशं शब्दं कुर्वन्नभ्यर्ष । कलशं पात्राणि वाभिगच्छ । तथा द्युमंतं दीप्तियुक्तमुत्तमं शुष्मं शत्रूणां शोषकं बलं च प्राप्नुहि । यद्वा । एकवाक्यतया योजनीयः । सूयमानस्त्वं बलमभिगच्छेति ॥ कदि क्रदि आह्वाने । क्रदेर्यङ्लुकि नलोपोऽभ्यासस्य निगागमश्च दाधर्ति दर्धर्तीति सूत्रेण सर्वं निपात्यते । तस्माच्छतृप्रत्ययः । अभ्यस्तानामादिरिति स्वरः ॥

इंदुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया । हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥४॥

इंदुः । हिन्वानः । अर्षति । तिरः । वाराणि । अव्यया । हरिः । वाजं । अचिक्रदत् ॥४॥

हिन्वानो ग्रावभिः प्रेर्यमाणोऽभिषूयमाण इंदुः सोमोऽव्ययाविमयान्यवीनां स्वभूतानि वाराणि वालानि । पवित्राणीत्यर्थः । तानि तिरस्तिरस्कृत्य व्यवधायार्षति । गच्छति । प्रभूतं निर्गच्छतीत्यर्थः । सोऽयं हरिर्हरितवर्णः सोमो वाजमन्नमचिक्रदत् । शब्दयति । त्वया सहेंद्रमहमाह्वयामीत्यर्थः ॥

इंदो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा । वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥५॥

इंदो इति । वि । अव्यं । अर्षसि । वि । श्रवांसि । वि । सौभगा । वि । वाजान् ।
सोम । गोऽमतः ॥५॥

हे इंदो सोम अव्यमविवाले भवं पवित्रं व्यर्षसि । विविधं धाराभिर्गच्छसि । किंच श्रवांसि हवीरूपाण्यन्नानि च विगच्छसि । तथा सौभगा । सुभगस्य भावः सौभगं ॥ सुभगशब्द उद्गात्रादिषु पठ्यते । तस्योत्तरपदवृद्धिर्नेष्यते ॥ सौभगानि धनानि विविधं प्राप्नोषि । तथा हे सोम गोमतः पशुमंति वाजान् बलानि च विविधं प्राप्नुहि । तानि सर्वाण्यस्माकं प्रापयेत्यभिप्रायः ॥ ॥१३॥

आ न इंदो शतग्विनं रयिं गोमंतमश्विनं । भरा सोम सहस्रिणं ॥६॥

आ । नः । इंदो इति । शतऽग्विनं । रयिं । गोऽमंतं । अश्विनं । भर । सोम । सहस्रिणं ॥६॥

हे इंदो पात्रेषु चरन् हे सोम नोऽस्मभ्यमा भर। संपादय। देहि। किमिति उच्यते। शतग्विनं। शतं गावो यस्य स शतगुः। तद्वंतं गोमंतं प्रशस्तपशुमंतमश्विनमश्वयुक्तं सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं रयिं धनं पुत्रं वा भर॥

पवमानास इंदवस्तिरः पवित्रमाशवः। इंद्रं यामेभिराशत ॥७॥

पवमानासः। इंदवः। तिरः। पवित्रं। आशवः। इंद्रं। यामेभिः। आशत ॥७॥

पवित्रमूर्णास्तुकेन निर्मितं दशापवित्रं तिरस्तिरस्कृत्य व्यवधायकं कृत्वा पवमानासः कलशं प्रति बहुधाराः क्षरंत आशवः क्षिप्रंमदकारिणश्चमसादीन् व्याप्नुवंतो वेंदवः सोमा यामेभिः स्वीयैर्गमनैरिंद्रमाशत। व्याप्नुवंति॥

ककुहः सोम्यो रस इंदुरिंद्राय पूर्व्यः। आयुः पवत आयवे ॥८॥

ककुहः। सोम्यः। रसः। इंदुः। इंद्राय। पूर्व्यः। आयुः। पवते। आयवे ॥८॥

ककुहः। सोमः सर्वकर्मकारयितृत्वेन सर्वेषां समुच्छ्रितोऽतिशयितो भवति। सोऽयं पूर्व्यः पूर्वैः कृतोऽभिषुतः पूर्वं प्रातःकाले कृतो वायुरिंद्रमभिगंतेंदुः पात्रेषु चरन् सोम्यः॥ मये च। पा० ४. ४. १३८.। इति यप्रत्ययः॥ सोममयो रस आयवे सर्वत्र गंत्र इंद्राय पवते। कलशेषु पवित्रेण पूतो भवति। यद्वा। इंद्रार्थमभिमुखं गच्छति। पवतिर्गतिकर्मा॥

हिन्वंति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतं। अभि गिरा समस्वरन् ॥९॥

हिन्वंति। सूरं। उस्रयः। पवमानं। मधुऽश्चुतं। अभि। गिरा। सं। अस्वरन् ॥९॥

उस्रयः कर्मकरणार्थमितस्ततः संचरंत्योऽंगुलयो मधुश्चुतं मदकरस्य रसस्य च्यावयितारं सूरं सुवीर्यं सर्वस्य यागादिकर्मणि प्रेरकं पवमानं सोमं हिन्वंति। अभिषवार्थं संप्रेरयंति। ततः स्तोतारो गिरा स्तुत्या तमेनमभि समस्वरन्। सम्यगभिष्टुवंति॥

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१०॥

अविता। नः। अजऽअश्वः। पूषा। यामनिऽयामनि। आ। भक्षत्। कन्यासु। नः ॥१०॥

अजाश्वः। अजाः पूष्ण इत्युक्तत्वादजा एवाश्वा वाहनानि यस्य स तथोक्तः। स पूषैतन्नामको देवो यामनि यामनि सर्वस्मिन्गमने भीमदिव्यलक्षणे नोऽस्माकमविता पालयिता भवतु। किंच कन्यासु कमनीयास्वभिमतासु स्त्रीषु नोऽस्माना भक्षत्। आ भजतां। अस्माकं कन्याः प्रयच्छत्वित्यर्थः॥ भजः सेवार्थाल्लेटि सिप्यडागमे रूपं॥ यद्वा। अजाश्वोऽजवाहनः पूषा सर्वस्य पोषयिता सोमो यामनि यामनि। यायते प्राप्यते देवैरर्चेति याम यज्ञः। तत्र यज्ञे नोऽस्माकमविता रक्षिता भवतु। तथा कन्यासु स्त्रीष्विष्टास्वस्माना भक्षत्। प्रापयतु॥ ॥१४॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११॥

अयं। सोमः। कपर्दिने। घृतं। न। पवते। मधु। आ। भक्षत्। कन्यासु। नः ॥११॥

कपर्दिने कल्याणमुकुटवते सोमाय पूष्णे वा तदर्थमयं मादयिताभिषुतोऽस्मदीयः सोमः पवते च। गच्छति। तं प्राप्नोति। तत्र दृष्टांतः। घृतं न मधु मादकं हवीरूपं घृतं यथा सोमं पूषणं वा गच्छति तद्वत्। ततः स कन्यास्वस्मानागमयत्॥

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥

अयं। ते। आघृणे। सुतः। घृतं। न। पवते। शुचि। आ। भक्षत्। कन्यासु। नः ॥१२॥

हे आघृणे ॥ घृ क्षरणदीप्त्योः ॥ सर्वतो दीप्यमान पवमान पूषन् वा ते त्वदर्थं सुतोऽभिषुतोऽयं सोमः पवते। त्वदभिमुखमागच्छति। यद्वा। त्वदर्थं पात्रेषु पवित्रेण पूतो भवति चरति वा। तत्र दृष्टांतः। घृतं न शुचि शुद्धं घृतं यथा त्वां प्राप्नोति तद्वत्। ततस्त्वमभिलषितान्यस्माकं देहीति ॥

वाचो जंतुः कवीनां पवस्व सोम धारया। देवेषु रत्नधा असि ॥१३॥

वाचः। जंतुः। कवीनां। पवस्व। सोम। धारया। देवेषु। रत्नऽधाः। असि ॥१३॥

हे सोम कवीनां क्रांतप्रज्ञानां स्तोतॄणां वाचो जंतुः स्तुतेर्जनयिता। यद्वा। मेधाविनां मध्ये त्वमेव वाचं जनयसि। अत्यंतं वाग्मी। त्वं धारया पवस्व। द्रोणकलशं ग्रहांश्च प्राप्नुहि। तत इंद्रादिदेवेषु रत्नधा रमणशीलस्य सोमस्य निधातासि। भवसि। अथवा देवेषु स्तोत्रकारिषु कर्म कुर्वाणेषु वास्मासु रत्नस्य कनकादेर्दाता भवसि ॥

ग्रावस्तोत्रे गाणगारिमतेनाभिरूपकरणे कलशेषु सोम आसिच्यमानेऽस्य तृचस्या कलशेष्वित्यादिके द्वितीयातृतीये। सूचितं च। आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहत इति द्वे। आ० ५. १२.। इति ॥

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते। अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४॥

आ। कलशेषु। धावति। श्येनः। वर्म। वि। गाहते। अभि। द्रोणा। कनिक्रदत् ॥१४॥

ऋत्विग्भिरभिषिच्यमानः कश्चित्सोमः कलशेषु सोमाधारेषु द्रोणकलशेष्वा धावति। सर्वतो गच्छति। श्येनः। लुप्तोपममेतत्। यथा श्येनो वर्म वरणीयं कुलायं वि गाहते प्रविशति तद्वत्। कनिक्रददत्यंतं शब्दं कुर्वन् द्रोणा द्रोणकलशानभि गच्छति च। यद्वा। द्रोणाधवनीयपूतभृत्संज्ञकाभिप्रायं। एकः सिच्यमानः सोमो द्रोणं प्रति शब्दायमानः पश्चात्प्रथमं गच्छति। ततः पात्रद्वयमिति ॥

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः। श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५॥

परि। प्र। सोम। ते। रसः। असर्जि। कलशे। सुतः। श्येनः। न। तक्तः। अर्षति ॥१५॥

हे सोम कलशेषु द्रोणाभिधानेषु सुतोऽभिषुतस्ते तव रसः परि प्रासर्जि। परितो ग्रहेषु चमसेषु च प्रकृष्टो विभक्तो भवति। कथमिव। श्येनो न तक्तः। तकिर्गतिकर्मा। गमनशीलः श्येनः पक्षी यथा सर्वत्रार्षति गच्छति तद्वत्। यद्वा। यथा श्येनः सर्वतो गंता तद्वत्तक्तः पात्रेषु गतः सोमोऽर्षति। इंद्रादिदेवानागच्छत् ॥ अर्तेर्लेटि सिपि वा रूपं। पूर्वमृषी गतावित्यस्माल्लटि शपि रूपं ॥ ॥१५॥

पवस्व सोम मंदयन्निंद्राय मधुमत्तमः ॥१६॥

पवस्व। सोम। मंदयन्। इंद्राय। मधुमत्ऽतमः ॥१६॥

हे सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन मधुररसवांस्त्वं मंदयन् मादयिता भवन्। यद्वा। इंद्राय ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति संप्रदानं ॥ इंद्रं मोदमानः सन् पवस्व। इंद्रार्थमागच्छ ॥

असृग्रन्देववीतये वाजयंतो रथा इव ॥१७॥

असृग्रन्। देवऽवीतये। वाजऽयंतः। रथाःऽइव ॥१७॥

एतेऽभिषुताः सोमा वाजयंतः संतो देववीतये देवयजनायासृग्रन् । विसृज्यंते । ऋत्विग्भिः प्रदीयंते । तत्र दृष्टांतः । रथा इव वाजयंतः शत्रुधनानि बलानि वा स्वामिन इच्छंतो रथा देववीतये देवानां गमनाय यथा विसृज्यंते तद्वत् ॥

ते सुतासो मदिंतमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥१८॥

ते । सुतासः । मदिन्ऽतमाः । शुक्राः । वायुं । असृक्षत ॥१८॥

मदिंतमा अतिशयेन मादयितारः शुक्रा दीप्यमानाः सुता अभिषुतास्ते सोमा वायुं शब्दमसृक्षत । असृजन् । अकार्षुः । यद्वा । वायुमेव सोमपानार्थमसृजन् । सोमेषु सुतेषु सत्सु वायुस्तत्पानार्थमागच्छति ॥

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यं ॥१९॥

ग्राव्णा । तुन्नः । अभिऽस्तुतः । पवित्रं । सोम । गच्छसि । दधत् । स्तोत्रे । सुऽवीर्यं ॥१९॥

हे सोम त्वं ग्राव्णा तुन्नोऽभिपीडितोऽभिषुतस्त्वं स्तोतृभिरभिष्टुतः सन् पवित्रं गच्छसि । प्राप्नोषि । किं कुर्वन् । स्तोत्रे स्तोत्रकारिणे जनाय सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं धनादिकं दधद्विदधत् प्रयच्छन् ॥

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते । रक्षोहा वारमव्ययं ॥२०॥

एषः । तुन्नः । अभिऽस्तुतः । पवित्रं । अति । गाहते । रक्षःऽहा । वारं । अव्ययं ॥२०॥

तुन्नः ॥ तुद व्यथने ॥ ग्रावभिरभिव्यथितः सुतः अत एव सर्वैरभिष्टुत एषोऽस्मदीयः सोमो रक्षोहा कर्मविघ्नकारिणां राक्षसानां पापानां वा हंताभवत् । अव्ययमविमयमव्यवयवभूतं वारं वालं तेन कृतं पवित्रं दशापवित्रमत्यतिक्रम्य गाहते । द्रोणकलशं प्रविशति ॥ ॥१६॥

यदंति यच्च दूरके भयं विंदति मामिह । पवमान वि तज्जहि ॥२१॥

यत् । अंति । यत् । च । दूरके । भयं । विंदति । मां । इह । पवमान । वि । तत् । जहि ॥२१॥

हे पवमान पूयमान पुनान वा सोम यद्भयमंत्यंतिके तथा यच्च भयं दूरकेऽतिदूरे देशेऽप्यवेहास्मिन् प्रदेशेऽपि भयं मां विंदति लभते प्राप्नोति तद्भयं त्वं वि जहि । विशेषेण नाशय । यद्वा । इहेति यज्ञोऽयं लोको वा । अस्मिन् क्रियमाणे यज्ञेऽस्मिँल्लोके वा यद्भयं व्याप्नोति तन्नाशयेत्यर्थः ॥

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु नः ॥२२॥

पवमानः । सः । अद्य । नः । पवित्रेण । विऽचर्षणिः । यः । पोता । सः । पुनातु । नः ॥२२॥

स तादृशः प्रसिद्धो विचर्षणिः सर्वस्य द्रष्टा पवमानोऽद्येदानीमेव पवित्रेण पापशोधकेन तेजसा नोऽस्मान्पुनातु । पापरहितान् करोतु ॥

पवित्रेष्ट्यां प्रथमाज्यभागस्य याज्या यत्ते पवित्रमित्येषा । सूत्रितं च । यत्ते पवित्रमर्चिष्या कलशेषु धावतीति पवित्र इष्टेते । आ० २. १२. । इति ॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमंतरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥२३॥

यत् । ते । पवित्रं । अर्चिषि । अग्ने । विऽततं । अंतः । आ । ब्रह्म । तेन । पुनीहि । नः ॥२३॥

हे पवमानगुणविशिष्टाग्ने ते त्वदीयं पवित्रं शोधकं यत्त्वत्तेजोऽर्चिषि सौरवैद्युतादितेजस्यंतर्मध्य आ विततमाविस्तृतं विद्यते । यद्वा । हे अग्ने ते तव स्वभूतेऽर्चिषि तेजस्यंतर्मध्ये यत्पवित्रं शुद्ध्युत्पादकं सामर्थ्यमस्ति । तेन तादृशेन तेजसा ब्रह्म पुत्रादिवर्धनकारि नः शरीरं पुनीहि । पापरहितं पूतं कुरु ॥

यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः । ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥२४॥

यत् । ते । पवित्रं । अर्चिऽवत् । अग्ने । तेन । पुनीहि । नः । ब्रह्मऽसवैः । पुनीहि । नः ॥२४॥

हे अग्ने पवित्रं शोधकमर्चिवदर्चिर्वत् ॥ छंदसीर इति मतुपो वत्वं ॥ सौरादितेजोयुक्तं ते त्वदीयं यत्तेजो विद्यते तेन त्वोयेनैव तेजसा नोऽस्मान् पुनीहि । पूतान् कुरु । किंच ब्रह्मसवैर्ब्राह्मणकर्तृकसोमाभिषवैः । यद्वा । ब्रह्म सोमः । तस्याभिषवैः । नोऽस्मान्पुनीहि ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥२५॥

उभाभ्यां । देव । सवितरिति । पवित्रेण । सवेन । च । मां । पुनीहि । विश्वतः ॥२५॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरक हे देव द्योतमान सोम त्वं पवित्रेण पापशोधकेन त्वदीयेन तेजसा सवेन सोमाभिषवेण च एताभ्यामुभाभ्यां विश्वतः सर्वतो मां पुनीहि । पूतं कुरु ॥ ॥१७॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥

त्रिऽभिः । त्वं । देव । सवितः । वर्षिष्ठैः । सोम । धामऽभिः । अग्ने । दक्षैः । पुनीहि । नः ॥२६॥

हे देव स्तुत्य दीप्यमान वा हे सवितः सर्वस्य स्वस्वकर्मणि चोदयितर्हे सोम पवमानगुणविशिष्ट हे अग्ने त्वं वर्षिष्ठैर्वृद्धतमैः अत एव दक्षैः सामर्थ्यवद्भिस्त्रिभिर्धामभिः शरीरैरग्निवायुसूर्यात्मकैस्त्रिभिः शरीरैर्नोऽस्मान् पुनीहि । परिशुद्धान् कुरु ॥

पुनंतु मां देवजनाः पुनंतु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥२७॥

पुनंतु । मां । देवऽजनाः । पुनंतु । वसवः । धिया ।
विश्वे । देवाः । पुनीत । मा । जातऽवेदः । पुनीहि । मा ॥२७॥

देवजनाः । देवानां जनो प्रादुर्भावो येषां यज्ञेष्विति देवजना यजमानाः । यद्वा । इंद्रादिदेवगणाः । मां पुनंतु । परिपूतं कुर्वंतु । तथा वसवो वासका देवा धियात्मीयेन कर्मणा मां पुनंतु । अथवा प्रत्यक्षः । हे विश्वे देवाः सर्वे देवाः मा मां पुनीत । पूतं कुरुत । हे जातवेदः । जातानि भूतजातानि वेत्तीति यद्वा जातप्रज्ञ हे अग्ने मा मां पुनीहि ॥

प्र प्यायस्व प्र स्यंदस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः ॥२८॥

प्र । प्यायस्व । प्र । स्यंदस्व । सोम । विश्वेभिः । अंशुऽभिः । देवेभ्यः । उत्ऽतमं । हविः ॥२८॥

हे सोम प्र प्यायस्व । अस्मान्प्रकर्षेण वर्धय । यद्वा । देवान् सोमेन वर्धय । किंच विश्वेभिरंशुभिः सर्वैस्त्वदीयैरंशुभिर्देवेभ्यो देवार्थमुत्तमं प्रशस्ततमं हविः सोमरूपं प्र स्यंदस्व । कलशादीन्प्रति प्रस्रव । प्रयच्छेति यावत् ॥

अग्नीषोमप्रणयन उप प्रियमित्येषा । सूचितं च । उप प्रियं पनिप्नतमित्यर्धर्चे आरमेत् । आ॰ ४.१०. । इति ॥

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधं । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९॥

उप । प्रियं । पनिप्नतं । युवानं । आहुतिऽवृधं । अगन्म । बिभ्रतः । नमः ॥२९॥

प्रियं सर्वस्य प्रीणयितारं पनिप्नतमत्यंतं शब्दायमानं युवानं तरुणमाकृतिवृधमाकृतिभिर्वर्धनीयं पवमानं वयं नमो हविर्नमस्कारं वा बिभ्रतो धारयंतः संत उपागन्म । उपगच्छेम ॥ गमेर्लुङि मंत्रे घसेति च्लेर्लुकि सति म्वोश्चेति नकारः । पनिप्नतं । पनेः स्तुत्यर्थस्य यङ्लुकि रूपं । दाधर्ति दर्धर्तीति सूत्र इतिकरणस्य प्रदर्शनार्थत्वादत्राभ्यासस्य निगागम उपधालोपश्च निपात्यते ॥

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम । आखुं चिदेव देव सोम ॥३०॥

अलाय्यस्य । परशुः । ननाश । तं । आ । पवस्व । देव । सोम । आखुं । चित् । एव । देव । सोम ॥३०॥

अलाय्यस्य ॥ अर्तेरौणादिक आय्यप्रत्ययः । कपिलकादित्वाल्लत्वं ॥ अभिगमनशीलस्य शत्रोः परशुश्छेदकः पवमानस्त्वमेव शत्रुं ननाश । नाशयतु । अस्मानपापांस्ततो हे देव दीप्यमान सोम आ पवस्व । अस्मदाभिमुख्येन गच्छ । किंच हे देव द्योतमान स्तुत्य वा हे सोम आखुं चित् ॥ खनु अवदारणे ॥ सर्वस्याहंतारमपि तं शत्रुमेव बाधस्व नास्मानपापानिति ॥

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसं । सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥

यः । पावमानीः । अधिऽएति । ऋषिऽभिः । संऽभृतं । रसं । सर्वं । सः । पूतं । अश्नाति । स्वदितं । मातरिश्वना ॥३१॥

यो जनः पावमानीः पवमानदेवताकाः सर्वा ऋचः तद्रूपमृषिभिः सूक्तद्रष्टृभिर्मधुच्छंदःप्रभृतिभिः संभृतं संपादितं रसं वेदरसभूतं सारं सूक्तसंघमध्येति अधीते स जनः सर्वं भोज्यजातं पूतं परिशुद्धमेवाश्नाति । परिपूतं पापरहितमन्नं भक्षयति । कथमस्य पूतत्वं तत्राह । स्वस्याशनात्प्रागेव मातरिश्वना । मातर्यंतरिक्षे श्वसितीति मातरिश्वा वायुः । स च वायुः पवित्रमेव । पवित्रेण वायुना स्वदितं स्वादूकृतं परिपूतमेवान्नं पश्चात्स नरोऽश्नाति ॥

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसं । तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकं ॥३२॥

पावमानीः । यः । अधिऽएति । ऋषिऽभिः । संऽभृतं । रसं । तस्मै । सरस्वती । दुहे । क्षीरं । सर्पिः । मधु । उदकं ॥३२॥

यो ब्राह्मणः पावमानीः पवमानदेवताका ऋचः तदात्मकमृषिभिर्मधुच्छंदआदिभिः संभृतं रसं वेदसारं सूक्तसंघमध्येति अधीते तस्मै पवमानाध्ययनं कुर्वते जनाय सरस्वती सर्वत्र सरणवती वाग्देवता क्षीरं यज्ञसाधनभूतं पयः सर्पिस्तादृशं घृतं मधु मदकरमुदकं सोमं दुहे । स्वयमेव दोग्धि । एवं नरं यागादिपरं वेदशास्त्रविदं करोतीत्यर्थः ॥ दुह प्रपूरणे । कर्मकर्तरि न दुहस्नुनमां यक्चिणाविति यकः प्रतिषेधः । लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः ॥ ॥१८॥ ॥३॥

चतुर्थेऽनुवाकेऽष्टादश सूक्तानि । तत्र प्र देवमिति दशर्चं प्रथमं सूक्तं । भलंदनपुत्रस्य वत्सप्रेरार्षं पवमानसोमदेवताकं । दशमी त्रिष्टुप् शिष्टा जगत्यः । तथा चानुक्रम्यते । प्र देवं दश वत्सप्रिर्भालंदनस्त्रिष्टुबंतं हेति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र देवमच्छा मधुमंत इंदवोऽसिष्यदंत गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावंत ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१॥

प्र। देवं। अच्छ। मधुऽमंतः। इंदवः। असिस्यदंत। गावः। आ। न। धेनवः।
बर्हिऽसदः। वचनाऽवंतः। ऊधऽभिः। परिऽस्रुतं। उस्रियाः। निःऽनिजं। धिरे॥१॥

मधुमंतो मादकरससंयुक्ता इंदवः सोमा देवं द्योतमानं सोमात्मकमिंद्रमच्छ प्रति प्रासिष्यदंत। प्रस्यंदंते। ग्रहादिषु प्रचरंति॥ स्यंदतेर्ण्यंतस्य लुङि चङि रूपं॥ तत्र दृष्टांतः। गाव आ न धेनवः। पयस्विन्यः प्रीणयित्र्यो गावो यथा वत्सं प्रति प्रस्रवंति तद्वत्। किंच बर्हिषदो बर्हिषि सीदंतो वचनावंतो हंभारवादिशब्दवंत उस्रियाः। गोनामैतत्। तादृश्यो गाव ऊधभिः पयोधारकैः स्वैः स्वैरूधभिः परिस्रुतं परितःस्रवणशीलं निर्णिजं शुद्धं पयोभूतं सोमरसं धिरे। दधिरे। इंद्रार्थं धारयंति॥

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु जयो नि शर्याणि दधते देव आ वरं॥२॥
सः। रोरुवत्। अभि। पूर्वाः। अचिक्रदत्। उपऽआरुहः। श्रथयन्। स्वादते। हरिः।
तिरः। पवित्रं। परिऽयन्। उरु। जयः। नि। शर्याणि। दधते। देवः। आ। वरं॥२॥

रोरुवत् कलशादिकं प्रत्यत्यंतं शब्दं कुर्वन् स सोमः पूर्वा मुख्याः स्तोतॄणां स्तुतीरभ्यचिक्रदत्। अभिमुखमध्वनयत्। स्तुतयः साधीयस्य इति प्रतिध्वनिमंगीकारमकार्षीदित्यर्थः। किंच हरिर्हरितवर्ण उपारुहः॥ रोहतेस्ताच्छीलिकः क्विप्॥ उपारोहणशीला ऊर्ध्वं प्रादुर्भवनशीला ओषधीः श्रथयन्नग्रे विश्लेषयन् स्वादते। स्वादूकरोति। ताः फलिनीः कुर्वन् स्वादुयुक्ता विदधातीत्यर्थः। तथा पवित्रमविवालात्मकं दशापवित्रं तिरस्तिरस्कृत्य पात्राणि प्रत्यात्मनः चरणकाले पवित्रं व्यवधायकं कृत्वा परियन् परितो गच्छन् सोम उरु महांतं जयो वेगं करोति। ततः शर्याणि॥ शॄ हिंसायां॥ हिंसितव्यानि यद्वा शरेण हंतव्यानि रक्षांसि नि दधते। निक्षिपति। न्यक्करोति। हिनस्तीति यावत्। पश्चाद्देवो दीप्यमानः सोमो वरं वरणीयं धनं सोमं दातृभ्यो यजमानेभ्य आ दधते। आधारयति। प्रयच्छतीत्यर्थः॥ दधातेर्लेट्यडागमे घोर्लोपो लेटि वेत्याकारलोपः॥

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता।
मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे॥३॥
वि। यः। ममे। यम्या। संयती इति संऽयती। मदः। साकंऽवृधा। पयसा।
पिन्वत्। अक्षिता।
मही इति। अपारे इति। रजसी इति। विऽवेविदत्। अभिऽव्रजन्। अक्षितं।
पाजः। आ। ददे॥३॥

यो मदः। माद्यत्यनेनेति मदः सोमरसः। यम्या युगलभूते संयती परस्परं संगच्छमाने द्यावापृथिव्यौ वि ममे विशेषेण निर्मितवान् ततः ते साकंवृधा सहैव वर्धनशीले तथाक्षिताक्षीणे सामर्थ्यवत्यौ यथा भविष्यतः तथा स सोमः पयसा पयोरूपेण स्वीयरसेन पिन्वत्। असिंचत्। अवर्धयदिति यावत्। किंच मही महत्यौ अत एवापारे पर्यंतरहिते रजसी। द्यावापृथिवीनामैतत्। ते द्यावापृथिव्यौ विवेविदत्॥ विद ज्ञाने। यङ्लुकि शतरि रूपं। अभ्यासस्वरः॥ इयं पृथिवीयं द्यौरिति सर्वेषां विविच्य तेजसा प्रज्ञापयन्नभिव्रजन्नभितः सर्वतो गच्छन् सोमोऽक्षितमक्षीणमविनश्वरं पाजो बलमा ददे। स्वीकृतवान्। अत्यंतं बलवानभवदित्यर्थः॥

स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदं ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४॥
सः । मातरा । विऽचरन् । वाजयन् । अपः । प्र । मेधिरः । स्वधया । पिन्वते । पदं ।
अंशुः । यवेन । पिपिशे । यतः । नृऽभिः । सं । जामिऽभिः । नसते । रक्षते । शिरः ॥४॥

मेधिरः ॥ मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ । पा॰ ५. २. १०९. ३. । इतीरन्प्रत्ययो मत्वर्थीयः ॥ मेधावान् प्राज्ञः सोमो मातरा मातरौ जगतो निर्मात्र्यौ द्यावापृथिव्यौ विचरन्नंतरेणात्यंतं चरन् तथापोऽंतरिक्षस्थितान्युदकानि वाजयन् प्रेरयन् ॥ वजेर्ण्यंतस्य शतरि रूपं ॥ तादृशः स्वधया सक्तुलक्षणेनान्नेन सह पदं स्वस्थानमुत्तरवेदिरूपं प्र पिन्वते । प्रकर्षेणाप्याययति । ततो नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिर्यतः संयतोऽंशुः सोमो यवेन पिपिशे ॥ पिश अवयवे ॥ अवयवत्वेन कृतः । मिश्रित इत्यर्थः । सोमस्तु यवसक्तुभिः श्रीयते खलु । सोऽयं जामिभिरेकस्मात्पाणेरुत्पन्नाभिरंगुलीभिः सं नसते । संगच्छते च । शिरः शीर्णं भूतजातं च रक्षते च । स्वीयरसेन रक्षति । पोषयति ॥ नसतिर्गतिकर्मा । चादिलोपे विभाषेति न निघातः ॥

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह संता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतं ॥५॥
सं । दक्षेण । मनसा । जायते । कविः । ऋतस्य । गर्भः । निऽहितः । यमा । परः ।
यूना । ह । संता । प्रथमं । वि । जज्ञतुः । गुहा । हितं । जनिम । नेमं । उत्ऽयतं ॥५॥

प्रसंगात्सोमसूर्ययोराविर्भावमाह । दक्षेण प्रवृद्धेन मनसा सह सं जायते । पृथिव्याः सम्यग्जायते । तथा ऋतस्योदकस्येव गर्भो गर्भस्थानीयः । यद्वा । सत्यस्य यज्ञस्य मध्ये गर्भः शब्दनीयः स्तुत्यः । स एव सोमः परः परस्तादंतरिक्षे यमा यमेन नियमेन देवैर्निहितः सः । सूर्याद्धि वृष्टिर्भवति । तस्मात्सोमः सूर्यात्मकतयावस्थित इत्यर्थः । एवं यूना । हेत्यवधारणे । युवानावेव संतौ तौ प्रथमं जननकाले वि जज्ञतुः । अयं सोमोऽयं सूर्य इति विशेषेण ज्ञायते । तयोश्चार्धं जनिम जन्म गुहा गुहायां हितं । निहितं भवति । तयोर्नेममर्धं चोद्यतं प्रकाशितं भवति । दिवा सूर्यः प्रादुर्भवति रात्रौ चंद्रमा इति ॥ ॥१९॥

मंद्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदंधो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयंत सुवृधं नदीष्वाँ उशंतमंशुं परियंतमृग्मियं ॥६॥
मंद्रस्य । रूपं । विविदुः । मनीषिणः । श्येनः । यत् । अंधः । अभरत् । पराऽवतः ।
तं । मर्जयंत । सुऽवृधं । नदीषु । आ । उशंतं । अंशुं । परिऽयंतं । ऋग्मियं ॥६॥

मनीषिणः प्राज्ञा यष्टारो मंद्रस्य मदकरस्य रसस्य सोमस्य रूपं विविदुः । जानंति । यदंधो यत्सोमलक्षणमन्नं श्येनो गायत्रीरूपो पक्षी परावतो दूराद्द्युलोकादाभरत् आजहार ॥ हृग्रहोर्भश्छंदसीति भकारः ॥ तं तादृशं सुवृधं सुष्ठु वर्धमानं सुवर्धयितारं वांशुं सोमं नदीषु नदमानासु वसतीवर्याख्यास्वप्सु मर्जयंत । ऋत्विज आशोधयंति । अलंकुर्वंति वा । कीदृशं । उशंतं देवान् कामयमानं परियंतं परितो गच्छंतमृग्मियमृगर्हं स्तुत्यं सोममामर्जयंतीति ॥

त्वां मृजंति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितं ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥

प्र। दे॒वं। अच्छ॑। मधु॑ऽमंतः। इंद॑वः। असि॑स्यदंत। गावः॑। आ। न। धे॒नवः॑।
ब॒र्हि॒ऽसदः॑। व॒च॒ना॒ऽवंतः॑। ऊध॑ऽभिः। प॒रि॒ऽस्रुतं॑। उ॒स्रियाः॑। निः॒ऽनिजं॑। धि॒रे॒ ॥१॥

मधुमंतो मादकरससंयुक्ता इंदवः सोमा देवं द्योतमानं सोमात्मकमिंद्रमच्छ प्रति प्रासिष्यदंत। प्रस्यंदंते। ग्रहादिषु प्रचरंति ॥ स्यंदतेर्ण्यंतस्य लुङि चङि रूपं ॥ तत्र दृष्टांतः। गाव आ न धेनवः। पयस्विन्यः प्रीणयित्र्यो गावो यथा वत्सं प्रति प्रस्रवंति तद्वत्। किंच बर्हिषदो बर्हिषि सीदंतो वचनावंतो हंभारवादिशब्दवंत उस्रियाः। गोनामैतत्। तादृश्यो गाव ऊधभिः पयोधारकैः स्वैः स्वैरूधभिः परिस्रुतं परितःस्रवणशीलं निर्णिजं शुद्धं पयोभूतं सोमरसं धिरे। दधिरे। इंद्रार्थं धारयंति ॥

स रोरु॑वद॒भि पूर्वा॑ अचिक्रददु॒पा॒रुहः॑ श्र॒थय॑न्त्स्वादते॒ हरिः॑।
तिरः॑ प॒वित्रं॑ परि॒यन्नु॒रु ज्रयो॒ नि शर्या॑णि दधते॒ दे॒व आ वरं॑ ॥२॥

सः। रोरु॑वत्। अ॒भि। पूर्वाः॑। अ॒चि॒क्र॒द॒त्। उ॒प॒ऽआ॒रुहः॑। श्र॒थय॑न्। स्वा॒द॒ते॒। हरिः॑।
ति॒रः। प॒वित्रं॑। प॒रि॒ऽयन्। उ॒रु। ज्रयः॑। नि। शर्या॑णि। द॒ध॒ते॒। दे॒वः। आ। वरं॑ ॥२॥

रोरुवत् कलशादिकं प्रत्यत्यंतं शब्दं कुर्वन् स सोमः पूर्वा मुख्याः स्तोतॄणां स्तुतीरभ्यचिक्रदत्। अभिमुखमध्वनयत्। स्तुतयः साधीयस्य इति प्रतिध्वनिमंगीकारमकार्षीदित्यर्थः। किंच हरिर्हरितवर्ण उपारुहः ॥ रोहतेस्ताच्छीलिकः क्विप् ॥ उपारोहणशीला ऊर्ध्वं प्रादुर्भवनशीला ओषधीः श्रथयन्नग्रे विश्लेषयन् स्वादते। स्वादूकरोति। ताः फलिनीः कुर्वन् स्वादुयुक्ता विदधातीत्यर्थः। तथा पवित्रमविवालात्मकं दशापवित्रं तिरस्तिरस्कृत्य पात्राणि प्रत्यात्मनः चरणकाले पवित्रं व्यवधायकं कृत्वा परियन् परितो गच्छन् सोम उरु महांतं ज्रयो वेगं करोति। ततः शर्याणि ॥ शॄ हिंसायां ॥ हिंसितव्यानि यद्वा शरेण हंतव्यानि रक्षांसि नि दधते। निक्षिपति। न्यक्करोति। हिनस्तीति यावत्। पश्चाद्देवो दीप्यमानः सोमो वरं वरणीयं धनं सोमं दातृभ्यो यजमानेभ्य आ दधते। आधारयति। प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ दधातेर्लेट्यडागमे घोर्लोपो लेटि वेत्याकारलोपः ॥

वि यो म॒मे य॒म्या॑ सं॒यती॒ मदः॑ साकं॒वृधा॒ पय॑सा पिन्व॒दक्षि॑ता।
म॒ही अ॑पा॒रे रज॑सी वि॒वेवि॑दद॒भि॒व्रज॒न्नक्षि॑तं॒ पाज॒ आ द॑दे ॥३॥

वि। यः। म॒मे। य॒म्या॑। सं॒यती॒ इति॑ स॒म्ऽयती॑। मदः॑। सा॒कं॒ऽवृधा॑। पय॑सा।
    पि॒न्व॒त्। अक्षि॑ता।
म॒ही इति॑। अ॒पा॒रे इति॑। रज॑सी॒ इति॑। वि॒ऽवेवि॑दत्। अ॒भि॒ऽव्रज॑न्। अक्षि॑तं।
    पाजः॑। आ। द॒दे॒ ॥३॥

यो मदः। माद्यत्यनेनेति मदः सोमरसः। यम्या युगलभूते संयती परस्परं संगच्छमाने द्यावापृथिव्यौ वि ममे विशेषेण निर्मितवान् ततः ते साकंवृधा सहैव वर्धनशीले तथाक्षिताक्षीणे सामर्थ्यवत्यौ यथा भविष्यतः तथा स सोमः पयसा पयोरूपेण स्वीयरसेन पिन्वत्। असिंचत्। अवर्धयदिति यावत्। किंच मही महत्यौ अत एवापारे पर्यंतरहिते रजसी। द्यावापृथिवीनामैतत्। ते द्यावापृथिव्यौ विवेविदत् ॥ विद ज्ञाने। यङ्लुकि शतरि रूपं। अभ्यासस्वरः ॥ इयं पृथिवीयं द्यौरिति सर्वेषां विविच्य तेजसा प्रज्ञापयन्नभिव्रजन्नभितः सर्वतो गच्छन् सोमोऽक्षितमक्षीणमविनश्वरं पाजो बलमा ददे। स्वीकृतवान्। अत्यंतं बलवानभवदित्यर्थः ॥

इषुर्नेति दशर्चं द्वितीयं सूक्तं। आंगिरसस्य हिरण्यस्तूपस्यार्षं पवमानसोमदेवताकं। नवमीदशम्यौ त्रिष्टुभौ। शिष्टा जगत्यः। तथा चानुक्रांतं। इषुर्न हिरण्यस्तूपोऽंत्ये त्रिष्टुभाविति ॥ गतो विनियोगः ॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

इषुः। न। धन्वन्। प्रति। धीयते। मतिः। वत्सः। न। मातुः। उप। सर्जि। ऊधनि।
उरुधाराऽइव। दुहे। अग्रे। आऽयती। अस्य। व्रतेषु। अपि। सोमः। इष्यते ॥१॥

अस्मिन्पवमानरूप इंद्रे मतिर्मननीयास्मदीया स्तुतिः प्रति धीयते। अस्माभिर्निधीयते वा ॥ दधाते रूपं ॥ तत्र दृष्टांतः। इषुर्न यथेषुः शरो धन्वन् धनुषि प्रति धीयते तद्वत्। किंचोधनि सर्वस्य पोषयितृत्वेनोधःस्थानीय इंद्रे सोमो मदार्थमस्माभिरुप सर्जि। उपसृज्यते। कथमिव। मातुर्गोरूधनि पयोधारके वत्सो न वत्सो यथा पयःपानार्थं सृज्यते तद्वत्। उरुधारेव बहुविधपयोधारा गौरिवाग्रे वत्सस्य पुरत आयती गच्छंती सती पयो दुहे दुग्धे तथा सोऽयमिंद्रो वत्सभूतेभ्यः स्तोतृभ्यः पुरतो गच्छन् बहुविधान्कामान्दुग्धे। किंचास्यैतादृशस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते। यष्टृभिः प्रेर्यते खलु ॥

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मंद्राजनी चोदते अंतरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

उपो इति। मतिः। पृच्यते। सिच्यते। मधु। मंद्रऽअजनी। चोदते। अंतः। आसनि।
पवमानः। संऽतनिः। प्रघ्नतांऽइव। मधुऽमान्। द्रप्सः। परि। वारं। अर्षति ॥२॥

अस्मिन्पवमानरूप इंद्रे मतिः स्तुतिरुपो पृच्यते। उपपृच्यते। स्तोतृभिः संयोज्यते ॥ पृची संपर्के ॥ तथा मधु मदकरः सोम इंद्रार्थं सिच्यते। अद्भिर्यवसक्तुभिश्च सिक्तो भवति। ततश्च मंद्राजनी ॥ अज गतिक्षेपणयोरित्यस्य ल्युटि ङीपि रूपं ॥ मदकरस्य रसस्य प्रेरयित्री सोमधारा तस्येंद्रस्यासन्यास्येऽंतर्मध्ये चोदते। यष्टृभिः प्रेर्यते ॥ आस्यशब्दस्य पद्दन्नोमासित्यादिनासन्नित्यादेशः ॥ किंच संतनिर्ग्रहादिषु सम्यग्विस्तृतो मधुमान् मदकररसवान् पवमानः पूयमानः सोमो द्रप्सो द्रुतगमनशीलो यद्वा क्षिप्रंहननशीलः सन् वारमविवालमयं पवित्रं परितोऽर्षति। आगच्छति। तत्र दृष्टांतः। प्रघ्नतामिव प्रकर्षेण हंतॄणां योद्धॄणां संतनिः सम्यग्विसृष्टः शरो यथा शीघ्रं प्राप्यमभितो गच्छति तद्वत् ॥

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥

अव्ये। वधूऽयुः। पवते। परि। त्वचि। श्रथ्नीते। नप्तीः। अदितेः। ऋतं। यते।
हरिः। अक्रान्। यजतः। संऽयतः। मदः। नृम्णा। शिशानः। महिषः। न। शोभते ॥३॥

वधूयुः। वधूभूता वसतीवर्य एकधनासहिता आपः। तद्वान् सोमोऽव्येऽवेः स्वभूते त्वचि चर्मणि परि पवते। परितो वर्तते। पूतो भवति। किंच नप्तीर्नप्त्रीः। नप्तृशब्दश्चतुर्थापत्यवाची। सोमस्य नप्त्रीः। सोमो ह्योषधीनामग्रे रेतो निषिंचति। प्रजापते रेतो देवा देवानां रेतो वर्षं वर्षस्य रेत ओषधय इति श्रुतेः। यद्वा। नप्तृशब्दोऽपत्यवाची। तस्यापत्यानि। सोमः सुधामयैः स्वकिरणैरोषधीर्वर्धयति। तस्मादपत्यभूताः। अदितेः। पृथिवीनामैतत्। अदीनायाः पृथिव्या उत्पन्ना ओषधीर्ऋतं सत्यरूपं यज्ञं यते गच्छते यजमानाय श्रथ्नीते। अग्रभागे फलिनीः कर्तुं विश्लेषयति। किंच हरिर्हरितवर्णो यजतः सर्वैर्यष्टव्यः अत एव संयतो ग्रहादिषु संगृहीतो मदः। माद्यत्यनेनेति मदः सोमः। तादृशोऽक्रान्। क्रामति। पात्रेष्ववतिष्ठते। यद्वा। शत्रूनतिक्रामति ॥

क्रमेर्लुङि तिपि बहुलं छंदसीतीडागमाभावाद्वृद्धौ कृतायां सिज्लोपे सति हल्ङ्यादिना तिपो लोपे मो नो धातोरिति नत्वे कृते रूपं ॥ अत एव सोम नृम्णा स्वबलानि शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् अथवा शत्रुबलानि तनूकुर्वन् महिषो न । महन्नामैतत् । महानिव सर्वत्र व्याप्त इव शोभते । स्वतेजसा सर्वत्र दीप्यते । यद्वा । नः संप्रत्यर्थे । इदानीमेवंगुणयुक्तो महान् सोमः शोभत इति ॥

उ॒क्षा मि॑माति॒ प्रति॑ यंति धे॒नवो॑ दे॒वस्य॑ दे॒वीरुप॑ यंति निष्कृ॒तं ।
अत्य॑क्रमी॒दर्जु॑नं॒ वार॑मव्य॒यमत्कं॒ न नि॒क्तं परि॒ सोमो॑ अव्यत ॥४॥
उ॒क्षा । मि॒मा॒ति॒ । प्रति॑ । य॒न्ति॒ । धे॒नवः॑ । दे॒वस्य॑ । दे॒वीः । उप॑ । य॒न्ति॒ । निः॒ऽकृ॒तं ।
अति॑ । अ॒क्र॒मी॒त् । अर्जु॑नं । वारं॑ । अ॒व्ययं॑ । अत्कं॑ । न । नि॒क्तं । परि॑ । सोमः॑ । अ॒व्य॒त ॥४॥

उक्षा रेतसः सेक्ता वृषभः पुरतो मिमाति । शब्दायते ॥ माङ् माने शब्दे च ॥ तं वृषभं धेनवो गावः प्रति यंति । अनुगच्छंति । तथा देवस्य द्योतमानस्य निष्कृतं संस्कृतं स्थानं देवीर्दैव्य उप यंति । उपगच्छंति । अनेनार्धेन सोमस्तुतिश्चाभिधीयते । सोमः सन् द्रोणकलशाभिगमनकाले शब्दं करोति । तमनु धेनवः प्रीणयित्र्यः स्तुतयः परियंति । देवस्य स्थानं स्तुतयोऽभिगच्छंति । तथा सोऽयं सोमोऽर्जुनं श्वेतवर्णमव्ययमविमयमविस्वभूतं वारं वालं पवित्रमत्यक्रमीत् । अतिक्रामति । अतिक्रम्य पात्राणि गच्छतीत्यर्थः । किंच सोम अत्कं नात्मीयं कवचमिव निक्तमुज्ज्वलं श्रयणद्रव्यं पर्यव्यत । परितः संवृणोति ॥

अ॒मृ॒क्तेन॑ रु॒शता॒ वास॑सा॒ हरि॒रम॑र्त्यो नि॒र्णिजा॒नः परि॑ व्यत ।
दि॒वस्पृ॒ष्ठं ब॒र्हणा॑ नि॒र्णिजे॑ कृतोप॒स्तर॑णं च॒म्वो॑र्नभ॒स्मयं॑ ॥५॥
अमृ॑क्तेन । रु॒शता॑ । वास॑सा । हरिः॑ । अम॑र्त्यः । निः॒ऽनि॒जा॒नः । परि॑ । व्य॒त॒ ।
दि॒वः । पृ॒ष्ठं । ब॒र्हणा॑ । निः॒ऽनिजे॑ । कृ॒त॒ । उ॒प॒ऽस्तर॑णं । च॒म्वोः॑ । न॒भ॒स्मयं॑ ॥५॥

अमर्त्यो मनुष्यधर्मरहितो हरिर्हरितवर्णः सोमो निर्णिजान उदकेन शोध्यमानः सन्नमृक्तेन ॥ मृजौ शौचालंकारयोः ॥ अनिर्णिक्तेनापि रुशता स्वतः शुक्लवर्णेन पयोरूपेण वाससा परि व्यत । परित आच्छादयति । सोमे परिपूते गव्येन पयसा मिश्रीकुर्वंति खलु । तदुच्यते । ततः सोऽयं सोमो दिवो द्युलोकस्य पृष्ठं पृष्ठभागे तिष्ठंतमादित्यं बर्हणा बर्हणाय पापानामुद्यमनकारिणे पापनाशिने निर्णिजे निर्णेजनाय परिपवनाय कृत । द्युलोकेऽकार्षीत् । स हि स्वदीप्त्या सर्वं निर्णेक्ति ॥ कृत । कृणोतेर्लुङि ह्रस्वादिति सिचो लोपः ॥ तदेवाह । चम्वोः । द्यावापृथिवीनामैतत् । चमंति भक्षयंत्यत्र देवा मनुष्या इति । तयोरुपस्तरणमाच्छादनशीलं नभस्मयमादित्यमयमादित्यस्य स्वभूतं तेजश्च सर्वेषां निर्णेजनायाकार्षीत् ॥ ॥२१॥

सूर्य॑स्येव र॒श्मयो॑ द्रावयि॒त्नवो॑ मत्स॒रासः॑ प्र॒सुपः॑ सा॒कमी॑रते ।
तंतुं॑ त॒तं परि॒ सर्गा॑स आ॒शवो॒ नेंद्रा॑दृ॒ते प॑वते॒ धाम॒ किं च॒न ॥६॥
सूर्य॑स्यऽइव । र॒श्मयः॑ । द्र॒व॒यि॒त्नवः॑ । म॒त्स॒रासः॑ । प्र॒ऽसु॒पः॑ । सा॒कं । ई॒र॒ते॒ ।
तंतुं॑ । त॒तं । परि॑ । सर्गा॑सः । आ॒शवः॑ । न । इं॒द्रा॒त् । ऋ॒ते । प॒व॒ते॒ । धाम॑ । किं । च॒न ॥६॥

सूर्यस्य रश्मयः सर्वस्य प्रेरकस्य सुवीर्यस्य वादित्यस्य रश्मयः सर्वतो व्यापकाः किरणा इव द्रावयित्नवः सर्वत्रद्रवणशीला मत्सरासो मदकराः प्रसुपः शत्रूणां प्रस्वापका हंतार आशवो ग्रहेषु चमसेषु च व्याप्ताः सर्गासः सृज्यमानाः सोमास्ततं विस्तृतं तंतुं तंतुभिः कृतं वस्त्रं साकं सह युगपत् परीरते । परितो गच्छंति । ते सोमा इंद्रादृत इंद्रं वर्जयित्वान्यत्किं चन धाम देवशरीरं लक्षीकृत्य न पवते । न गच्छति ॥ एकवचनं छांदसं ॥

न गच्छंति। किंत्विंद्रस्यैव धाम प्रति गच्छंति। इंद्रस्य धाम्नो यष्टव्यत्वं च अयाळिंद्रस्य प्रिया धामानि। वा॰ सं॰ २१. ४७.। इति मंत्रवर्णादवगम्यते ॥

सिंधोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठंतु कृष्टयः ॥७॥
सिंधोःऽइव। प्रवणे। निम्ने। आशवः। वृषऽच्युताः। मदासः। गातुं। आशत।
शं। नः। निऽवेशे। द्विऽपदे। चतुःऽपदे। अस्मे इति। वाजाः। सोम। तिष्ठंतु। कृष्टयः ॥७॥

वृषच्युताः ॥ वृष हिंसासंक्लेशनदानेष्वपि ॥ वृषभिः सोमस्य दातृभिर्ऋत्विग्भिश्च्युताः परिस्रुता मदासो मदकारिणः सोमाः स्तुतिभिः प्राप्तव्य इंद्रे गातुं गमनमाशत। प्राप्नुवंति। तत्र दृष्टांतः। सिंधोरिव प्रवणे। प्रगच्छंत्युदकानि यत्रेति तत्प्रवणं। तस्मिन्निम्ने स्थले सिंधोर्नद्या आशवो व्याप्ता आपो यथा गच्छंति तद्वत्। अथ प्रत्यक्षः। हे सोम नोऽस्माकं निवेशे स्वगृहं प्रति प्रवेशने निर्गमने वा द्विपदे पुत्रादिकाय चतुष्पदे गवादिकाय पशवे शं सुखं कुरु। किंच हे सोम अस्मे अस्मासु वाजा अन्नानि कृष्टयः पुत्रादिकाः प्रजाश्च तिष्ठंतु। अन्नादिकं देहीत्यर्थः ॥

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यं।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥८॥
आ। नः। पवस्व। वसुऽमत्। हिरण्यऽवत्। अश्वऽवत्। गोऽमत्। यवऽमत्। सुऽवीर्यं।
यूयं। हि। सोम। पितरः। मम। स्थन। दिवः। मूर्धानः। प्रऽस्थिताः। वयःऽकृतः ॥८॥

हे सोम त्वं वसुमद्वसुयुक्तं हिरण्यवत्कनकादिसहितमश्ववद्गोमदश्वगोसहितं यवमत्। यवो नाम धान्यविशेषः। धान्यविशिष्टं सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं धनं नोऽस्मभ्यमा पवस्व। आप्रापय। प्रयच्छेति यावत्। किंच हे सोम यतस्त्वं मम पितॄणामंगिरसामपि पितासि ततो यूयमेव मम पितरः स्थन। भवथ। पितृबहुत्वमत्र सोमस्याभिधीयते। कीदृशाः। दिवो द्युलोकस्य मूर्धानो मूर्धवदुच्छ्रिताः। कर्मभिः स्वर्गादिकमलभंतेत्यर्थः। प्रस्थिताः सर्वदा कर्मकरणार्थं स्थिताः वयस्कृतो हवीरूपस्यान्नस्य कर्तारः। तादृशा मम पितरस्त्वं भवसि ॥

एते सोमाः पवमानास इंद्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ।
सुताः पवित्रमति यंत्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥९॥
एते। सोमाः। पवमानासः। इंद्रं। रथाःऽइव। प्र। ययुः। सातिं। अच्छ।
सुताः। पवित्रं। अति। यंति। अव्यं। हित्वी। वव्रिं। हरितः। वृष्टिं। अच्छ ॥९॥

पवमानासः पवित्रेण पूयमाना एतेऽस्मदीयाः सोमाः सातिं ॥ षण संभक्तौ। कर्मणि क्तिन् ॥ सर्वैः संभजनीयमिंद्रमच्छ प्र ययुः। प्रकर्षेण गच्छंति। तत्र दृष्टांतः। रथा इवेंद्रस्य रथा यथा सातिं ॥ षो अंतकर्मणि। ऊतियूतीत्यादिना निपातितः ॥ सीयते म्रियतेऽस्मिन्निति सातिः संग्रामः। तमच्छ तं प्रति प्रगच्छंति तद्वत्। किंच सुता ग्रावभिरभिषुताः सोमा अव्यमविवालभवं पवित्रमति यंति। अतीत्य गच्छंति। तेऽमी हरितो हरितवर्णा अश्वाः। यद्वा। हरितस्त आदित्यवाहनरूपा अश्वा भूत्वा। वव्रिं। वृणोति शरीरमिति वव्रिर्जरा ॥ आदृगमहनेति किप्रत्ययः ॥ सर्वांगव्यापिनीं जरां हित्वी हित्वा तरुणाः संतो वृष्टिमच्छ वृष्टिं गमयितुं गच्छंति ॥ हित्वी। जहातेश्च क्त्वि। पा॰ ७. ४. ४३.। इति ह्यादेशः। स्नात्व्यादयश्चेति छंदसि निपातितं ॥

इंदविंद्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चंद्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१०॥
इंदो इति । इंद्राय । बृहते । पवस्व । सुऽमृळीकः । अनवद्यः । रिशादाः ।
भर । चंद्राणि । गृणते । वसूनि । देवैः । द्यावापृथिवी इति । प्र । अवतं । नः ॥१०॥

हे इंदो सोम त्वं बृहते महत इंद्राय तदर्थं पवस्व । पात्रेषु क्षर । इंद्रं प्रत्यागच्छ वा । कीदृशः । सुमृळीक इंद्रस्य सुष्ठु सुखयिता अत एवानवद्यो गर्हारहितः रिशादा रिशतां बाधकानामसिता । एतादृशस्त्वमिंद्राय पवस्व । किंच गृणते स्तुवते मह्यं चंद्राण्याह्लादकानि वसूनि धनानि भर । प्रयच्छ । किंच हे द्यावापृथिवी युवां च पवमाने सत्यौ देवैः सुभगैर्धनैः सह नोऽस्मान् प्रावतं । प्ररक्षतं ॥ ॥२२॥

त्रिरस्मा इति दशर्चं तृतीयं सूक्तं वैश्वामित्रस्य रेणोरार्षं दशमी त्रिष्टुप् शिष्टा जगत्यः । पवमानः सोमो देवता । त्रिरस्मै रेणुरित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥
त्रिः । अस्मै । सप्त । धेनवः । दुदुह्रे । सत्यां । आऽशिरं । पूर्व्ये । विऽओमनि ।
चत्वारि । अन्या । भुवनानि । निःऽनिजे । चारूणि । चक्रे । यत् । ऋतैः । अवर्धत ॥१॥

अस्मै पवमानाय पूर्व्ये पूर्वैः कृते व्योमनि । विविधमोमावनं गमनं देवानामत्रेति व्योम यज्ञः । तस्मिन्स्थिताय । यद्वा । प्रत्ने व्योमन्यंतरिक्षे वर्तमानाय । त्रिः सप्तैकविंशतिसंख्याका धेनवः प्रीणयित्र्यो गावः सत्यां यथार्थभूतामाशिरमाश्रयणसाधनं क्षीरादि दुदुह्रे । दुहंति । यद्वा । त्रिः सप्त द्वादश मासाः पंचर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश इत्येतैः सर्वैः सह गोषु पय उत्पाद्यते तद्गावो दुहंत इति । किंचायं सोमोऽन्यान्यानि चत्वारि भुवनान्युदकानि वसतीवरीस्तिस्त्रश्चैकधना इति तानि चतुःसंख्याकानि चारूणि कल्याणान्युदकानि निर्णिजे निर्णेजनाय परिशोधनाय परिपोषणाय वा चक्रे । कदा करोति । यद्यदायमृतैर्यज्ञैरवर्धत वर्धितवान् तदा करोति ॥

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥
सः । भिक्षमाणः । अमृतस्य । चारुणः । उभे इति । द्यावा । काव्येन । वि । शश्रथे ।
तेजिष्ठाः । अपः । मंहना । परि । व्यत । यदि । देवस्य । श्रवसा । सदः । विदुः ॥२॥

स पवमानश्चारुणः कल्याणस्यामृतस्योदकस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्यर्थे बहुलं । पा॰ २. ३. ६२. । इति षष्ठी ॥ चारूदकं भिक्षमाणो यष्टृभिर्याच्यमानः सन्नुभे ॥ द्यावादेशस्य द्वंद्वे विहितत्वादत्रोत्तरपदाभावे द्वंद्वः प्रतीयते ॥ उभे द्यावापृथिव्यौ काव्येन कविकर्मणा वि शश्रथे । विवृते करोति । यज्ञनिमित्तेनोदकेन संपूरयतीत्यर्थः । किंच तेजिष्ठातिशयेन दीप्तान्यप उदकानि मंहना महत्त्वेन परि व्यत । वरणार्थं परित आच्छादयति । यदि यदर्त्विजो देवस्य द्योतमानस्य सोमस्य सदः स्थानं श्रवसा हविषा युक्ताः संतो विदुः यागार्थं जानंति लभंते तदा परित आवृणोतीति ॥ विद ज्ञाने । सिजभ्यस्तेति झेर्जुसादेशः ॥

ते अस्य संतु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

ते । अस्य । संतु । केतवः । अमृत्यवः । अदाभ्यासः । जनुषी इति । उभे इति । अनु ।
येभिः । नृम्णा । च । देव्या । च । पुनते । आत् । इत् । राजानं । मननाः । अगृभ्णत ॥३॥

अस्यैतादृशस्य सोमस्य केतवः प्रज्ञापकाः सर्वैश्चायनीया अमृत्यवो मरणधर्मरहिताः अत एवादाभ्यासः ॥ दभेश्चेति वक्तव्यमिति ण्यत् । पा॰ ३. १. १२४. ३. ॥ परैरहिंस्यास्ते तादृशा अस्य रश्मय उभे अनुषी जन्मनी स्थावरजंगमात्मके द्वे अनु लक्षीकृत्य संतु । रक्षंतु । ओषधीनामयं सोमो रेतो निषिंचति यस्मै मनुष्याणां च धाराः स्रवंति खलु । सोऽयं येभिर्यैः केतुभिर्नृम्णा नृम्णानि बलानि देव्या देवार्हाणि चान्नानि पुनते प्रेरयति आदिदभिषवानंतरमेव राजानं सोमं मनना मननीयाः स्तुतयोऽगृभ्णत । परिगृह्णंति । प्राप्नुवंतीत्यर्थः ॥ हृग्रहोरिति भकारः ॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४॥

सः । मृज्यमानः । दशऽभिः । सुकर्मऽभिः । प्र । मध्यमासु । मातृषु । प्रऽमे । सचा ।
व्रतानि । पानः । अमृतस्य । चारुणः । उभे इति । नृऽचक्षाः । अनु । पश्यते । विशौ ॥४॥

स पवमानः सुकर्मभिः शोभनकर्मयुक्ताभिर्दशभिर्दशसंख्याकाभिरंगुलीभिर्मृज्यमानः स सचाग्नौ प्रास्ताहु-तिरित्यादिक्रमेणापां सहायः प्रमे लोकान् प्रमातुं मध्यमास्वंतरिक्षस्थितास्ववतिष्ठते ॥ प्रमे । प्रपूर्वान्मातेः क्विपि ङयि आत इति योगविभागादाकारलोपः ॥ किंच नृचक्षा नृणां द्रष्टा पवमानश्चारुणः कल्याणस्यामृ-तस्योदकस्य वृष्ट्यर्थं व्रतानि यागादिकर्माणि पानो रक्षन्नुभे विशौ मनुष्यान् देवांश्चांतरिक्षेण गच्छन्ननु पश्यते । अनुपश्यति । मनुष्यानभिमतदानेन देवान् हविष्प्रदानेनेति ॥

स मर्मृजान इंद्रियाय धायस ओभे अंता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५॥

सः । मर्मृजानः । इंद्रियाय । धायसे । आ । उभे इति । अंतरिति । रोदसी इति ।
हर्षते । हितः ।
वृषा । शुष्मेण । बाधते । वि । दुःऽमतीः । आऽदेदिशानः । शर्यहाऽइव । शुरुधः ॥५॥

मर्मृजानः पवित्रेण मृज्यमानः स पवमानो धायसे जगतो धारकायेंद्रियायेंद्रस्य पर्याप्ताय बलाय तदर्थमुभे रोदसी ॥ कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ उभयोर्द्यावापृथिव्योरंतर्हितो मध्ये वर्तमानः सन्ना हर्षते । सर्वतो गच्छति । इंद्रस्य हि सोमेन बलं भवति । वृषा कामानामुदकानां वा वर्षकः सोऽयं शुष्मेण शोषकेण बलेन दुर्मतीर्दुष्टबुद्धीनसुरान् वि बाधते । विशेषेण पीडयति । किं कुर्वन् । शुरुधः ॥ शुचा रुंधति परानिति । पृषोदरादिः ॥ दुःखकारिणोऽसुरानादेदिशानः पुनःपुनराह्वयन् हंति । तत्र दृष्टांतः । शर्यहेव हननसाधनै-रिषुभिर्हंता वीरः प्रतिभटान् यथा हिनस्ति तद्वत् ॥ ॥२३॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानदद्देति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६॥

सः । मातरा । न । ददृशानः । उस्रियः । नानदत् । एति । मरुताम्ऽइव । स्वनः ।
जानन् । ऋतं । प्रथमं । यत् । स्वःऽनरं । प्रऽशस्तये । कं । अवृणीत । सुऽक्रतुः ॥ ६ ॥

स पवमानो मातरा मातरौ द्यावापृथिव्यौ ददृशानः पुनःपुनः पश्यन् ततो नानदद्भृशं शब्दं कुर्वन्नेति । सर्वत्र गच्छति । तत्र दृष्टांतः । उस्रियो न । उस्रियेति गोनाम । तस्य स्वरूपतो वत्सो यथा मातरं गां पश्यञ्छब्दं करोति तद्वत् । किंच मरुतामिव यथा मरुतां गणः स्वनः ॥ पचाद्यजंतः ॥ स्वनं कुर्वन् सर्वतो गच्छति तद्वत् । यदुदकं स्वर्णरं । स्वरिति सर्वपर्यायः । सर्वमनुष्यहितं भवति । सर्वे हि मनुष्या उदके संगच्छंते तत्कार्यत्वात् । तादृशं प्रथमं मुख्यमृतमुदकं जानन् विद्वान् सुक्रतुः शोभनकर्मा सुप्रज्ञो वा स पवमानः प्रशस्तये प्रशंसनायात्मस्तोत्रकरणाय कं मनुष्यमवृणीत । समभजत । नान्यमस्मद्व्यतिरिक्तमित्यर्थः ॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृंगे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥

रुवति । भीमः । वृषभः । तविष्यया । शृंगे इति । शिशानः । हरिणी इति । विऽचक्षणः ।
आ । योनिं । सोमः । सुऽकृतं । नि । सीदति । गव्ययी । त्वक् । भवति । निःऽनिक् ।
अव्ययी ॥ ७ ॥

भीमः शत्रूणां भयंकरो वृषभः कामानामुदकानां वा वर्षणो विचक्षणः सर्वस्य विदर्शनशीलः स पवमानस्तविष्यया ॥ तु इति वृद्ध्यर्थः । अस्मादच इः । उ० ४. १३८. । इतीप्रत्ययः । तस्मादिच्छायामर्थे क्यच् । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः । का० ७. १. ५१. ३. । इति सुगागमः ॥ आत्मनो बलेच्छया हरिणी हरितवर्णे द्वे शृंगे शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् द्रोणकलशं प्रति द्वाभ्यां धाराभ्यां स्थाल्या ग्रहणं गृह्णाति । तदुच्यते । ते धारारूपशृंगे तीक्ष्णीकुर्वन् रुवति । शब्दायते ॥ रु शब्दे । बहुलं छंदसीति शः ॥ ततः स सोमः सुकृतं सुष्ठु कृतं योनिं स्वस्थानं द्रोणकलशमा नि षीदति । समंतात्तिष्ठति । तस्य सोमस्य निर्णिङ्निर्णेक्त्री परिशोधयित्री गव्ययी गोमयी त्वग्भवति । आनडुहे हि चर्मणि सोमाभिषवः । एवमव्ययी अविमयी त्वक् निर्णेक्त्री भवति । तद्धि दशापवित्रापेक्ष्यमभिहितं ॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥

शुचिः । पुनानः । तन्वं । अरेपसं । अव्ये । हरिः । नि । अधाविष्ट । सानवि ।
जुष्टः । मित्राय । वरुणाय । वायवे । त्रिऽधातु । मधु । क्रियते । सुकर्मऽभिः ॥ ८ ॥

अरेपसं पापरहितं । यद्वा ॥ रिपि गतौ ॥ गतिरहितं । पात्रे स्थितमित्यर्थः । तादृशं तन्वमात्मीयं शरीरं पुनानः शोधयन् अत एव शुचिः पूतो दीप्यमानो वा हरिर्हरितवर्णः सोमः सानवि सानुनि समुच्छ्रितेऽव्येऽविवालकृते दशापवित्रे न्यधाविष्ट । ऋत्विग्भिर्निधीयते ॥ धूञ् कंपने । स्यसिच्सीयुट्तासिषु । पा० ६. ४. ६२. । इति कर्मणि लुङि चिण्वदिट् । णित्त्वाद्वृद्धिः ॥ ततो मित्राय वरुणाय वायव एतेभ्यो जुष्टः पर्याप्तस्त्रिधातु त्रिसंधानो वसतीवरीभिर्दध्ना पयसा संसृष्टः सोमस्त्रिधातु तादृशं मधु मदकरः सोमः सुकर्मभिः शोभनकर्मयुक्तैर्ऋत्विग्भिः क्रियते । मित्रादिदेवार्थं प्रदीयते ॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेंद्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद्दुरितातिं पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥ ९ ॥

पवस्व । सोम । देवऽवीतये । वृषा । इंद्रस्य । हार्दि । सोमऽधानं । आ । विश ।
पुरा । नः । बाधात् । दुःऽइता । अति । पारय । क्षेत्रऽवित् । हि । दिशः । आह ।
विऽपृच्छते ॥९॥

हे सोम वृषा कामानामुदकानां वा सेचकस्त्वं देववीतये देवानां पानाय पवस्व । कलशादिषु क्षर । अथ हे सोम त्वमिंद्रस्य हार्दि हृदयंगमं प्रियं सोमधानं । सोमो निधीयतेऽस्मिन्निति सोमधानं पात्रं । तदा विश । प्रविश । किंच नोऽस्माकं बाधाद्बाधनात्पीडनात्पुरा पूर्वमेव दुरितानि दुर्गमनानि रक्षांसि पारय । अतीत्य पारं गमय । अपि च क्षेत्रविन्मार्गज्ञः पुरुषो विपृच्छते विविधं पंथानं पृच्छते जनाय दिशो मार्गानाह हि । ब्रूते खलु । उक्त्वा तं यथा रक्षति तथा यज्ञमार्गवेत्ता त्वमस्मभ्यं यज्ञपथ उक्त्वास्मान्पालयेति ॥

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेंद्रस्येंदो जठरमा पवस्व ।
नावा न सिंधुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥
हितः । न । सप्तिः । अभि । वाजं । अर्ष । इंद्रस्य । इंदो इति । जठरं । आ । पवस्व ।
नावा । न । सिंधुं । अति । पर्षि । विद्वान् । शूरः । न । युध्यन् । अव । नः । निदः ।
स्परिति स्पः ॥१०॥

हे सोम ऋत्विग्भिः प्रेर्यमाणः सन् वाजं सोमनिधानं द्रोणकलशमभ्यर्ष । अभिगच्छ । तत्र दृष्टांतः । हितो न सप्तिः । अश्वो हितः प्रेर्यमाणः सन् वाजं संग्राममभिलक्ष्य यथा याति तद्वत् । ततो हे इंदो इंद्रस्य जठरं जठरभूतं द्रोणकलशं वा पवस्व । आभिमुख्येन प्रविश । किंच विद्वान् सर्वं जानंस्त्वमस्मानति पर्षि । दुरितान्यतीत्य पारय । तत्र दृष्टांतः । नावा न यथा नाविकाः सिंधुं नदीं नावा मनुष्यान् पारयंति तद्वत् । किंच हे सोम त्वं शूरो न शूरो वीर इव युध्यञ्छत्रून् संप्रहरन् निदो निंदकाच्छत्रोर्नोऽस्मानव स्पः । अवपारय । बाधान्विनाश्य पालय । यद्वा । नोऽस्माकं निदो निंदकाञ्छत्रूनव स्पः । अवाङ्मुखं जहि ॥ स्पृ हिंसायां । बहुलं छंदसीति श्नाप्रत्ययस्य लुक् । तिपि गुणे हल्ङ्यादिना तिपो लोपः ॥ ॥२४॥

आ दक्षिणेति नवर्चं चतुर्थं सूक्तं वैश्वामित्रस्यर्षभस्यार्षं पवमानसोमदेवताकं नवमी त्रिष्टुप् शिष्टा जगत्यः । तथा चानुक्रांतं । आ दक्षिणा नव ऋषभस्तौ वैश्वामित्रावितित । तावित्यनेन प्रकृतो रेणुर्ऋषभश्चोभे परामृश्येते । श्रूयते हि । अथ ह विश्वामित्रः पुत्रानामंत्रयामास मधुच्छंदाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः । ऐ॰ ब्रा॰ ७. १७. । इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥१॥
आ । दक्षिणा । सृज्यते । शुष्मी । आऽसदं । वेति । द्रुहः । रक्षसः । पाति । जागृविः ।
हरिः । ओपशं । कृणुते । नभः । पयः । उपऽस्तिरे । चम्वोः । ब्रह्म । निःऽनिजे ॥१॥

सोमस्य स्वभूते यज्ञ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा सृज्यते । अस्माभिः प्रदीयते । शुष्मी बलवान् सोम आसदमासदनं द्रोणाख्यं वेति । प्रविशति । किंच जागृविर्जागरणशीलः सोमो द्रुहो द्रोहकारिणो रक्षसो राक्षसात्पाति । स्तोतॄन्रक्षति । अपि च हरिर्हरितवर्णः सोम ओपशं । आ समंतादुपशेत इत्योपशः । सर्वस्य धारकं नभो नभस आदित्यस्य स्वभूतमुदकं कृणुते । सर्वत्र करोति । अग्नौ प्रास्ताहुतिरित्यादिक्रमेण करोतीत्यर्थः । यद्वा । नभोंऽतरिक्षं पयः पयसो धारकं करोतीति । किंचायं सोमश्चम्वोः । द्यावापृथिव्योर्नामैतत् । चमंति भक्षयंति मनुष्यदेवा अत्रेति । तयोरुपस्तिर उपस्तरणायाच्छादनाय ब्रह्म बृहदुद्यतं तमांसि विनाशयंतं यद्वा

परिवृढं सूर्यं द्युलोके करोति। तथा तमेव सूर्यं निर्णिजे पदार्थानां निर्णेजनाय परिशोधनाय च करोति। आदित्यो हि द्यावापृथिव्यौ स्वतेजसोपस्तृणाति। स हि स्वभासा सर्वं निर्णेक्ति च ॥

प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तं।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥२॥

प्र। कृष्टिहाऽइव। शूषः। एति। रोरुवत्। असुर्यं। वर्णं। नि। रिणीते। अस्य। तं।
जहाति। वव्रिं। पितुः। एति। निःऽकृतं। उपऽप्रुतं। कृणुते। निःऽनिजं। तना ॥२॥

शूषः शत्रूणां शोषको बलवान् सोमो रोरुवदत्यंतं शब्दं कुर्वन् कृष्टिहेव मनुष्याणां हंता योद्धेव प्रैति। प्रगच्छति। किंचासुर्यमसुराणां बाधकस्यात्मनो वर्णं हरितमावारकं बलं वा नि रिणीते। निर्गमयति। ततः स सोमो वव्रिं। वृणोति शरीरमिति वव्रिर्जरा। जहाति। त्यजति। कथमिति चेत् तदुच्यते। पितुरन्नं सोमो निष्कृतं संस्कृतं द्रोणकलशं दिवं वेदानीमेति। गच्छति। किंच सोमस्तनाविवालेन तते विस्तृते दशापवित्रे निर्निजं। निर्निगिति रूपनाम। आत्मीयं रूपमुपप्रुतमुपगमनशीलं कृणुते। करोति। तस्माज्जरां त्यजतीत्यर्थः ॥

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३॥

अद्रिऽभिः। सुतः। पवते। गभस्त्योः। वृषऽयते। नभसा। वेपते। मती।
सः। मोदते। नसते। साधते। गिरा। नेनिक्ते। अप्ऽसु। यजते। परीमणि ॥३॥

अद्रिभिर्ग्रावभिर्गभस्त्योर्बाह्वोर्बाहुभ्यां च सुतोऽभिषुतः स सोमः पवते। पात्राणि प्रति गच्छति। यः सोमो वृषायते वृषवदाचरति किंच यो मती स्तुत्याभिष्टुतः सन्नभसांतरिक्षेण वेपते सर्वत्र गच्छति स सोमो मोदते। हृष्टो भवति। तथा नसते। ग्रहादिषु संश्लिष्टो भवति। किंच गिरा स्तुत्या स्तुतः सन् साधते। स्तोतॄणां धनान्नादिकं साधयति। अपि चाप्सु वसतीवर्याख्यासु नेनिक्ते। शुद्धो भवति। तथा परीमणि देवै रक्ष्यमाणे यज्ञे देवानां हविष्प्रदानेन पोषके वा यज्ञे यजते। पूजितो भवति ॥

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिंचंति हर्म्यस्य सक्षणिं।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणंत्यग्रियं वरीमभिः ॥४॥

परि। द्युक्षं। सहसः। पर्वतऽवृधं। मध्वः। सिंचंति। हर्म्यस्य। सक्षणिं।
आ। यस्मिन्। गावः। सुहुतऽअदः। ऊधनि। मूर्धन्। श्रीणंति। अग्रियं। वरीमऽभिः ॥४॥

सहसः सहस्विनो मध्वो मदकराः सोमा द्युक्षं दीप्यमाने द्युलोके क्षियंतं निवसंतं पर्वतावृधं मेघानां पर्वतानां वा वर्धयितारं हर्म्यस्य शत्रुपुरस्य सक्षणिमभिभवितारमिंद्रं परि षिंचंति। तथा सुहुतादः सुहुतानां हविषां भक्षयितारो गावो मूर्धन्मूर्धनि समुच्छ्रित ऊधनि पयोधारके स्थाने स्थितमग्रियं मुख्यं पयो वरीमभिरुरुत्वैर्महत्त्वैर्यस्मिन्पवमानगुणविशिष्ट इंद्र आ श्रीणंति। आमिश्रयंति। दध्ना पयसा च सोमं श्रीणंति खलु। तदुच्यते ॥

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप जयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५॥

सं। ईमिति। रथं। न। भुरिजोः। अहेषत। दश। स्वसारः। अदितेः। उपऽस्थे। आ।
जिगात्। उप। जयति। गोः। अपीच्यं। पदं। यत्। अस्य। मतुथाः। अजीजनन् ॥५॥

भुरिजोः। बाहुनामैतत्। बिभ्रति पदार्थानाभ्यामिति। तयोर्बाह्वोर्दश दशसंख्याकाः स्वसारः सर्वत्रसरणशीला अंगुलयोऽदितेर्भूमेरुपस्थे समीपे देवयजनदेशे ईमेनं सोममाभिमुख्येन समहेषत। संप्रेरयंति ॥ हि वर्धनगत्योः। लुङि रूपं ॥ कथमिव। रथं न रथं यथांगुलयः प्रेरयंति तद्वत्। स सोमो जिगात्। पात्राणि गच्छति। किंच गोर्धेनोरपीच्यमंतर्हितं पय उप जयति। तदानीमुपगच्छति। यद्यदा मतुथा मननीयगाथावंतः स्तोतारोऽस्य सोमस्य पदं स्थानमजीजनन् जनयंति तदानीमित्यर्थः ॥ ॥२५॥

अभिष्टवे श्येनो न योनिमित्येषा। सूत्रितं च। संप्रेषितः श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं। आ॰ ४. ७.। इति ॥ अग्नीषोमप्रणयनेऽप्येषा। सूत्रितं च। अंतश्च प्रागा अदितिर्भवासि श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं। आ॰ ४. १०.। इति ॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति।
ए रिणंति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥
श्येनः। न। योनिं। सदनं। धिया। कृतं। हिरण्ययं। आऽसदं। देवः। आ। ईषति।
आ। ईमिति। रिणंति। बर्हिषि। प्रियं। गिरा। अश्वः। न। देवान्। अपि। एति। यज्ञियः ॥६॥

देवो द्योतमानः पवमानो धिया स्वकर्मणा कृतं संपादितं हिरण्ययं हिरण्मयमासदमासंद्यभिधानमेषति। अभिमुखं गच्छति ॥ ईषतिर्गत्यर्थस्य व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ तत्र दृष्टांतः। श्येनो न योनिं कुलायं यथा श्येनः पक्षी प्रविशति तद्वत्। तत ईमेनं प्रियं प्रीणयितारं सोमं गिरा स्तुत्या बर्हिषि यज्ञ आ रिणंति। स्तोतारोऽभिमुखं प्रेरयंति। स्तुवंतीत्यर्थः। अनंतरं यज्ञियो यज्ञार्हो यष्टव्योऽयं सोमोऽश्वो नाश्व इव त्वरया देवानप्येति। अभिगच्छति ॥

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥७॥
परा। विऽअक्तः। अरुषः। दिवः। कविः। वृषा। त्रिऽपृष्ठः। अनविष्ट। गाः। अभि।
सहस्रऽनीतिः। यतिः। पराऽयतिः। रेभः। न। पूर्वीः। उषसः। वि। राजति ॥७॥

अरुष आरोचमानः कविः क्रांतप्रज्ञः सोमो व्यक्तो विस्पष्टधारायुक्तः। यद्वा। वसतीवरीभिर्विशेषेण सिक्तः सन्। दिवोऽंतरिक्षात् परा पराङ्मुखमागच्छति। पवित्राद्द्रोणकलशं परागच्छतीत्यर्थः। वृषा वृषभस्त्रिपृष्ठः। त्रीणि सवनानि पृष्ठान्यस्येति त्रिपृष्ठः सोमस्य सर्वेषु विद्यमानत्वात्तस्मात्त्रिपृष्ठः सोमो गाः स्तोतृभिः क्रियमाणाः स्तुतीरभिलक्ष्यानविष्ट। शब्दायते ॥ नु शब्दे ॥ किंच सहस्रणीतिः सहस्रनयनः। प्रयोगबाहुल्यापेक्षं ग्रहेषु चमसेषु च सहस्रविधनयनत्वं। अत एव यतिः पात्रादीनि प्रत्यागंता परायतिः कलशान् प्रति परागंता भवति। सोऽयं पूर्वीर्बह्वीरुषसः ॥ कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ बह्वीषूषःकालेषु रेभो न ॥ रेभृ शब्दे ॥ शब्दायमानः स्तोतेव वि राजति। विशेषेण दीप्यते। तेषु सोमस्याभिषूयमाणत्वात् स्तोता खलु देवानां स्तुतिकरणेन राजति ॥ ०

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८॥

त्वेषं। रूपं। कृणुते। वर्णः। अस्य। सः। यत्र। अशयत्। संऽऋता। सेधति। स्रिधः।
अप्साः। याति। स्वधया। दैव्यं। जनं। सं। सुऽस्तुती। नसते। सं। गोऽअग्रया ॥८॥

अस्य ॥ अन्वादेशेऽशादेशः ॥ अस्य सोमस्य स्वभूतो वर्णः शत्रूणां निवारको रश्मिस्त्वेषं दीप्यमानं रूपं कृणुते। करोति। स रश्मिर्यत्र समृता ॥ ऋतेः क्तिनि रूपं ॥ सम्यक् प्राप्यते योद्धृभिरत्रेति संग्रामः। अस्मिन् समृतौ युद्धेऽशयत् शेते तिष्ठति ॥ शीङो लङि बहुलं छंदसीति शपो लुगभावः ॥ तत्र युद्धे स रश्मिः स्रिधः शोषकाञ्छत्रून् सेधति। निषेधति। हिनस्तीति यावत् ॥ वाक्यभेदादनिघातः ॥ किंचाप्साः ॥ सनोतेर्विच्यात्वे कृते रूपं ॥ अपामुदकानां दाता। यद्वा। वसतीवर्याख्यानामपां संभक्ता। सोऽयं स्वधया हवीरूपेणान्नेन सह दैव्यं देवानां संबंधिनं जनं प्रति याति। गच्छति। अपि च सोऽयं सुष्टुती सुस्तुत्या सं। संगच्छते। उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः। किंच स सोमो गोअग्रया गवादिमुख्यया यया वाचा स्तोतारः पशून् याचंते तया वाचा सं नसते। संगतो भवति ॥ नसतिर्गत्यर्थः। भिन्नवाक्यत्वादनिघातः ॥

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९॥

उक्षाऽइव। यूथा। परिऽयन्। अरावीत्। अधि। त्विषीः। अधित। सूर्यस्य।
दिव्यः। सुऽपर्णः। अव। चक्षत। क्षां। सोमः। परि। क्रतुना। पश्यते। जाः ॥९॥

उक्षेव वृषभ इव यूथा गोयूथानि प्रत्यागच्छञ्छब्दं करोति तद्वदयं सोमः स्तुतीः परियन्परिगच्छन्नरावीत्। शब्दायते। ततः सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य त्विषीर्दीप्तीरध्यधित। अधिदधाति। सूर्यात्मना द्युलोकेऽवतिष्ठत इत्यर्थः ॥ दधातेर्लुङि स्थाघ्वोरिच्चेतीत्वकित्त्वे ॥ किंच दिव्यो दिवि भवः सुपर्णः सुपतनः श्येनरूपया गायत्र्याहृतत्वाच्छोभनगमनः सोमः क्षां। पृथिवीनामैतत् क्षियंति निवसंत्यत्रेति। क्षां पृथिवीमव चक्षत। अवपश्यति ॥ चष्टेर्लङि बहुलं छंदसीति शपो लुगभावः ॥ ततः सोमो जा जाताः प्रजाः क्रतुना प्रज्ञानेन परि पश्यते। परितः पश्यति ॥ व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥ ॥२६॥

हरिं मृजंतीति नवर्चं पंचमं सूक्तमांगिरसस्य हरिमंतस्यार्षं पवमानसोमदेवताकं। जागतमूर्ध्वं प्रागुष्णस इति परिभाषया जागतं। तथा चानुक्रांतं। हरिं मृजंति हरिमंत इति ॥ गतो विनियोगः ॥

। अनु॰ क्र॰ ९. ६७.।

हरिं मृजंत्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१॥

हरिं। मृजंति। अरुषः। न। युज्यते। सं। धेनुऽभिः। कलशे। सोमः। अज्यते।
उत्। वाचं। ईरयति। हिन्वते। मती। पुरुऽस्तुतस्य। कति। चित्। परिऽप्रियः ॥१॥

हरिं हरितवर्णं सोममृत्विजो मृजंति। मार्जयंति ॥ मृजेरजादौ संक्रमे विभाषावृद्धिरिष्यते। म॰ १. १. ३. १०. का॰ १. १. ५.। इति तत्र वृद्धेरभावः ॥ सोऽयमरुषः ॥ ऋतेरुषच्प्रत्ययः ॥ गमनशीलोऽश्व इव युज्यते। इंद्रादिभिः संयुज्यते। किंच कलशे। कलशो द्रोणाभिधानः। स्थितः सोमो धेनुभिर्गोविकारैर्दध्यादिभिः समज्यते। समक्तः सिक्तो भवति। अपि च सोमो यदा वाचं शब्दमुदीरयति उन्नमयति। शब्दं करोतीत्यर्थः। तदा स्तोतारस्य मती ॥ सुपां सुलुगिति द्वितीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ स्तुतिं हिन्वते। प्रेरयंति ॥ हि गतौ वृद्धौ चेति स्वादिः। आत्मनेपदी ॥ ततः स्तोत्राभिष्टुतः स पुरुष्टुतस्य बहुस्तोत्रयुक्तस्य स्तोतुः परिप्रियः ॥ प्रीङ् तर्पणे। क्विप्। शसीयङादेशः। कडुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वं ॥ परितः प्रीणयितॄणि कति चित् कियंति धनानि प्रयच्छति ॥

साकं वदंति बहवो मनीषिण इंद्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदीं मृजंति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥
साकं । वदंति । बहवः । मनीषिणः । इंद्रस्य । सोमं । जठरे । यत् । आऽदुहुः ।
यदि । मृजंति । सुऽगभस्तयः । नरः । सऽनीळाभिः । दशऽभिः । काम्यं । मधु ॥२॥

मनीषिणो मनस ईशितारः प्राज्ञा बहवः स्तोतारः साकं सहैव युगपन्मंत्रान्वदंति । तदा स्तुवंति । यदिंद्रस्य जठरे द्रोणकलशे सोममादुहुः ऋत्विजो दुदुहुः तदाभिष्टुवंतीति ॥ दुहेर्लिट्युसि रूपं । द्विर्वचनस्य छंदसि विकल्पितत्वादत्र द्विर्वचनाभावः ॥ किंच यदि यदा सुगभस्तयः शोभनबाहुका नरः कर्मनेतारो मनुष्याः काम्यं काम्यमानं मधु मदकरं सोमं सनीळाभिर्दशसंख्याकाभिर्मृजंति सोममभिषुण्वंति तदा वदंतीत्यन्वयः ॥

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवं ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥३॥
अरममाणः । अति । एति । गाः । अभि । सूर्यस्य । प्रियं । दुहितुः । तिरः । रवं ।
अनु । अस्मै । जोषं । अभरत् । विनंऽगृसः । सं । द्वयीभिः । स्वसृऽभिः । क्षेति । जामिऽभिः ॥३॥

स सोमोऽरममाणोऽनुपरतः सन् । पुनःपुनर्देवानां प्रीणनाय ग्रहादीनि प्रविशन्नित्यर्थः । गा गोविकाराणाश्रयणानभिलक्ष्यात्येति । अतिक्रम्य गच्छति । ततः शब्दायमानः सोमः सूर्यस्यादित्यस्य दुहितुरुषसः प्रियं रवं शब्दं तिरः । तिरस्करोति । तस्मिन्काले सोमाभिषवध्वनिर्महान्भवतीत्यर्थः । विनंगृसः । विनं कमनीयं स्तोत्रं गृह्णातीति विनंगृसः स्तोता । जोषं ॥ जुषेर्घञि रूपं ॥ पर्याप्तं स्तोत्रं तस्मै सोमायान्वभरत् । अनुभरति । करोतीति यावत् । सोऽयं सोमो द्वयीभिर्द्वाभ्यां पाणिभ्यामुत्पन्नाभिर्जामिभिः परस्परं बंधुभिः स्वसृभिः कर्मकरणार्थमितस्ततो गच्छंतीभिरंगुलीभिः सं चेति । संगच्छते ॥ चि निवासगत्योः । छांदसो विकरणस्य लुक् ॥

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इंदुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इंद्र ते ॥४॥
नृऽधूतः । अद्रिऽसुतः । बर्हिषि । प्रियः । पतिः । गवां । प्रऽदिवः । इंदुः । ऋत्वियः ।
पुरंधिऽवान् । मनुषः । यज्ञऽसाधनः । शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इंद्र । ते ॥४॥

हे इंद्र पवमानगुणविशिष्टेंद्र ते त्वदर्थं बर्हिषि यज्ञेऽयं सोमो धिया स्वेन कर्मणा धारया वा पवते । पात्रेषु स्यंदते । कीदृशः । नृधूतः कर्मनेतृभिर्मनुष्यैः शोधितः अद्रिषुतो ग्रावभिरभिषुतः प्रियो देवानां प्रीणयिता गवां पतिः स्वामी । इंद्रो गा अलभत तस्माद्गवां स्वामी । प्रदिवः । पुराणनामैतत् । पुराण इंदुः पात्रेषु चरन् ऋत्विय ऋतौ जातः ॥ ऋतोरण् छंदसि घस् । पा॰ ५. १. १०५–१०६. । इति घस् । सित्त्वेन पदसंज्ञायां भसंज्ञानिमित्त ओर्गुणो न भवति ॥ पुरंधिवान् । पुरंधिर्बहुधीरिति यास्कः । नि॰ ६. १३. । बहुकर्मवान् मनुषो मनुष्यस्य यज्ञसाधनः शुचिर्दीप्यमानः । यद्वा । दशापवित्रेण शुद्धः । एवंगुणः सोम इंद्रार्थं पवत इति संबंधः ॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इंद्र ते ।
आप्राः क्रतून्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३रासदद्धरिः ॥५॥

नृबाहुऽभ्यां। चोदितः। धारया। सुतः। अनुऽस्वधं। पवते। सोमः। इंद्र। ते।
आ। अप्राः। क्रतून्। सं। अजैः। अध्वरे। मतीः। वेः। न। द्रुऽसत्। चम्वोः। आ।
असदत्। हरिः॥५॥

हे इंद्र पवमानगुणविशिष्ट नृबाहुभ्यां कर्मनेतॄणामृत्विजां बाहुभ्यां चोदितः प्रेरितो धारया सुतो ऽभिषुतः। यथा धारा भवति तथाभिषुत इत्यर्थः। तादृशः सोमस्ते तवानुष्वधं बलमनु बलार्थं। यद्वा। स्वधेत्यन्ननाम। अन्नार्थं पवते। आगच्छति। ततः स त्वं सोमपानेन क्रतून् कर्माण्याप्राः। आपूरयसि। किंचाध्वरे यज्ञे मतीरभिमानाञ्छत्रून् समजैः। सम्यग्जितवानसि॥ जि जये। लुङि सिपि सिचो बहुलं छंदसीतीडभावः। सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः॥ सोऽयं हरिर्हरितवर्णः सोमश्चम्वोरधिषवणफलकयोरासदत्। आसीदति। तत्र दृष्टांतः। वेर्न॥ वी गत्यादिषु। अन्येभ्योऽपि दृश्यंत इति विच्। सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः॥ यथा वेः पक्षी द्रुषत् द्रुमे सीदतीति तद्वत्॥ द्रुषत्। पूर्वपदादिति षत्वं॥ ॥२७॥

अंशुं दुहंति स्तनयंतमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समी गावो मतयो यंति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः॥६॥
अंशुं। दुहंति। स्तनयंतं। अक्षितं। कविं। कवयः। अपसः। मनीषिणः।
सं। ईमिति। गावः। मतयः। यंति। संऽयतः। ऋतस्य। योना। सदने। पुनःऽभुवः॥६॥

कवयः क्रांतप्रज्ञा अपसः कर्मवंतो मनीषिणः। मनस ईशा मनीषा बुद्धिः। तद्वंत ऋत्विजः स्तनयंतं शब्दायमानमक्षितमक्षीणं कविं क्रांतदर्शिनमंशुं सोमं दुहंति। अभिषुण्वंति। ततः पुनर्भुवः पुनर्भवनशीला गावः पशवो मतयो मननीयाः स्तुतयश्च संयतः परस्परं संगताः सत्य ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योना योनौ योनिस्थानीय उत्पत्तिभूते सदन उत्तरवेद्याख्य ईमेनं सोमं सं यंति। गच्छंति॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मौ सिंधुष्वंतरुक्षितः।
इंद्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः॥७॥
नाभा। पृथिव्याः। धरुणः। महः। दिवः। अपां। ऊर्मौ। सिंधुषु। अंतः। उक्षितः।
इंद्रस्य। वज्रः। वृषभः। विभुऽवसुः। सोमः। हृदे। पवते। चारु। मत्सरः॥७॥

महो महतो दिवो द्युलोकस्य धरुणो धारकोऽयं सोमः पृथिव्या विस्तीर्णाया भूमेर्नाभा नाभौ नाभिस्थानीय उच्छ्रितप्रदेशे यदुत्तरवेदीनाभिः। ऐ॰ ब्रा॰ १. २८.। इत्याम्नानात् उत्तरवेदिस्थान ऋत्विग्भिर्निहितः सिंधुषु स्यंदमानासु नदीष्वपामुदकानामूर्मौ संघेऽतर्मध्य उक्षितः सिक्तः। अंतरिक्षस्थानमध्ये वर्तमान इत्यर्थः। तादृश इंद्रस्य वज्रो वज्रस्थानीयो वृषभः कामानां वर्षिता अत एव विभूवसुर्व्याप्तधनः सोमश्चारु कल्याणं यथा भवति तथेंद्रस्य मत्सरो मादयिता सन् हृदे मनसे सुखाय पवते। आगच्छति॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशंगं बहुलं वसीमहि॥८॥
सः। तु। पवस्व। परि। पार्थिवं। रजः। स्तोत्रे। शिक्षन्। आऽधून्वते। च। सुक्रतो इति सुऽक्रतो।
मा। नः। निः। भाक्। वसुनः। सदनऽस्पृशः। रयिं। पिशंगं। बहुलं। वसीमहि॥८॥

हे सुक्रतो शोभनकर्मन् सुप्रज्ञ वा सोम तादृशस्त्वं पार्थिवं रजो लोकं वशीकृत्य तु क्षिप्रं परि पवस्व । परितः सर्वतः चर । किं कुर्वन् । आधून्वतेऽद्राभ्ययंहे त्रिभिरंशुभिराधावनं कुर्वते । तथा भगवतापस्तंबेन सूचितं । तैरेनं चतुराधुनोति पंचकृत्वः सप्तकृत्वो वेति । तस्मै धनादिकं शिक्षन् प्रयच्छन् परि पवस्वेति समन्वयः । ततस्त्वं नोऽस्मान्वसुनो धनात्मा निर्भाक् । मा निर्भाक्षीः । कीदृशात् । सदनस्पृशः । येन भूतेन वसुना सदनानि गृहान् पुत्रादीन् स्पृशंति तादृशाद्गृहादिकस्य प्रदातुर्धनात्मा वियुजः ॥ भाक् । भज सेवायां । लुङि सिपि सिचि बहुलं छंदसीतीडागमाभावः । एकाच इतीट्प्रतिषेधः । हलंतलक्षणा वृद्धिः । पा॰ ७. २. ३. । सिपो लोपः ॥ यस्मादेवं तस्माद्वयं पिशंगं नानारूपं कनकादिना अत एव बहुलं प्रभूतं रयिं धनं वसीमहि । आच्छादयेम । बहुधनवंतो भवेमेत्यर्थः ॥ वस आच्छादने । आदादिकः । लिङि रूपं ॥

आ तू न इंदो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥९॥
आ । तु । नः । इंदो इति । शतऽदातु । अश्व्यं । सहस्रऽदातु । पशुऽमत् । हिरण्यऽवत् ।
उप । मास्व । बृहतीः । रेवतीः । इषः । अधि । स्तोत्रस्य । पवमान । नः । गहि ॥९॥

हे इंदो पवमान नोऽस्मभ्यं तु क्षिप्रं धनमायच्छ । कीदृशं । शतदातु । दातु दानं । बहुदानं अश्व्यमश्वसहितं सहस्रदातु सहस्रदानोपेतं पशुमत्पश्वादियुक्तं हिरण्यवद्धिरण्ययुक्तं च धनं देहि । तथा हे सोम बृहतीः प्रभूतानि रेवतीर्धनवंति । यद्वा । पयसो दातारः पशवः । तद्वंतीषोऽन्नानि चास्मभ्यमुप मास्व । उपनिर्मिमीष्व । कुर्विति यावत् । किंच हे पवमान नोऽस्माकमेवंभूतस्य स्तोत्रस्य श्रवणायाधि गहि । आगच्छ । क्रियार्थोपपदस्य । पा॰ २. ३. १४. । इति चतुर्थी । चतुर्थ्यर्थे बहुलं छंदसीति षष्ठी ॥ ॥ २८ ॥

स्रक्के इति नवर्चं षष्ठं सूक्तमांगिरसस्य पवित्रस्यार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । स्रक्के पवित्र इति ॥ प्रवर्ग्येऽभिष्टव एतत्सूक्तं । सूचितं च । स्रक्के द्रप्सस्यायं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भाः । आ॰ ४. ६. । इति ॥

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरंत नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥
स्रक्वे । द्रप्सस्य । धमतः । सं । अस्वरन् । ऋतस्य । योना । सं । अरंत । नाभयः ।
त्रीन् । सः । मूर्ध्नः । असुरः । चक्रे । आऽरभे । सत्यस्य । नावः । सुऽकृतं । अपीपरन् ॥१॥

स्रक्के यज्ञस्य हनुस्थानीये । स्रक्क ओष्ठप्रांतो हनुरुच्यते । अधिषवणफलके धमतोऽभिषूयमाणस्य द्रप्सस्य सोमस्यांशवः समस्वरन् । संगच्छंते । तदास्यशब्दयन्वा । ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योना योनावुत्पत्तिस्थाने नाभयः सोमरसाः समरंत । संगच्छंते ॥ ऋतेः समो गमीत्यादिनात्मनेपदं । सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेति च्लेरङ् ॥ अथासुरो बलवान् सर्वेषां प्रीणनात् प्राणदाता वा स सोमो मूर्ध्नः समुच्छ्रितांस्त्रीँल्लोकानारभ आरंभणाय मनुष्यदेवादीनां संचरणाय करोति । किंच सत्यस्य सत्यभूतस्य सोमस्य नावो नौका इव स्थितास्ततस्थाव्यः । आदित्यायनोक्थ्यध्रुवस्थाल्य इति । ताः स्थाल्यः सुकृतं सुष्ठु कर्माणि कुर्वंतं यजमानमपीपरन् । अभिमतदानेन पूजयंति वा ॥ पारयतेर्लुङि चङि सन्वल्लघुनीत्यभ्यासेत्वदीर्घौ ॥

सम्यक् सम्यंचो महिषा अहेषत सिंधोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयंतो अर्कमित्प्रियामिंद्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥
सम्यक् । सम्यंचः । महिषाः । अहेषत । सिंधोः । ऊर्मौ । अधि । वेनाः । अवीविपन् ।
मधोः । धाराभिः । जनयंतः । अर्कं । इत् । प्रियां । इंद्रस्य । तन्वं । अवीवृधन् ॥२॥

महिषाः पूज्या महांतो वर्त्विजः सम्यंचः परस्परं संगताः संतः सम्यगहेषत। सोमं सम्यक् प्रेरयंति। अभिषुण्वंतीति यावत्॥ हि गतौ वृद्धौ च। लुङि सिचि रूपं॥ ततो वेनाः। वेनतिः कांतिकर्मेण इति यास्कः। नि० १०. ३८.। स्वर्गादिफलं कामयमाना ऋत्विजः सिंधोः स्यंदमानस्योदकस्योर्मावधि संघे वसतीवर्यादिषु जलेषु सोममवीविपन्। कंपयंति। तत्र प्रेरयंतीत्यर्थः॥ वपतेर्ण्यंतस्य लुङि चङि णौ चङ्युपधाया ह्रस्व इति ह्रस्वः॥ किंचार्कमर्चनीयं स्तोत्रं जनयंतः कुर्वंतस्ते प्रियां प्रियतमामिंद्रस्य तन्वं धाम च मधोर्मदकरस्य सोमस्य धाराभिरवीवृधन्। वर्धितवंतः॥ वर्धतेर्लुङि चङि रूपं॥

पवित्रवंतः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतं।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभं॥३॥
पवित्रऽवंतः। परि। वाचं। आसते। पिता। एषां। प्रत्नः। अभि। रक्षति। व्रतं।
महः। समुद्रं। वरुणः। तिरः। दधे। धीराः। इत्। शेकुः। धरुणेषु। आऽरभं॥३॥

पवित्रवंतः पवित्रेण शोधकेन सामर्थ्येन युक्ताः सोमस्य रश्मयो वाचं सोमस्थितां माध्यमिकां वाचं पर्यासते। पर्युपविशंति। सोमोऽंतरिक्षे तिष्ठति खलु सोमो वै राजा गंधर्वेष्वासीत्। ऐ० ब्रा० १. २७.। इत्याम्नानात्। ततः प्रत्नः पुराण एषां रश्मीनां पितायं सोमस्य व्रतं प्रकाशनात्मकं कर्माभि रक्षति। अवितं करोति। किंच वरुणः सर्वस्य स्वतेजसाच्छादकः सोऽयं सोमो महो महत् समुद्रं। अंतरिक्षनामैतत्। महदंतरिक्षं तै रश्मिभिस्तिरो दधे। अंतर्हितमकरोत्। सर्वं व्याप्नोदिति यावत्। तमिमं सोमं धीराः। इदवधारणे। कर्मणि कुशलाः प्राज्ञा एवर्त्विजो धरुणेषु सर्वस्य धारकेषु वसतीवर्याख्येषूदकेष्वारभमारब्धुं शेकुः। शक्नुवंति च॥ रभेस्तुमर्थे शकि णमुल्कमुलौ। पा० ३. ४. १२.। इति कमुल्। लित्स्वरेण मध्योदात्तः॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषंति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः संति सेतवः॥४॥
सहस्रऽधारे। अव। ते। सं। अस्वरन्। दिवः। नाके। मधुऽजिह्वाः। असश्चतः।
अस्य। स्पशः। न। नि। मिषंति। भूर्णयः। पदेऽपदे। पाशिनः। संति। सेतवः॥४॥

सहस्रधारेऽव। उदकधारा यस्माद्भवंति तत्तथोक्तमंतरिक्षं। तस्मिन्वर्तमानास्ते सोमरश्मयोऽवावस्तात् स्थितां पृथिवीं वृष्ट्या संयोजयंतीत्यर्थः। किंच दिवो द्युलोकस्य नाके समुच्छ्रिते देशे वर्तमाना मधुजिह्वा मध्वग्राः। सोमतेजसाग्रेभ्यो हि मधूत्पन्नं भवति। अतो मधुजिह्वाः। असश्चतः संगतवर्जिताः पृथक्पृथग्व्यवस्थिता अस्य सोमस्य स्वभूताः स्पशः सारभूता रश्मयो भूर्णयः क्षिप्रगामिनः संतो न नि मिषंति। निमेषं न कुर्वंति। किंतु पापिनः सुष्ठतिनस्य ज्ञातुं सर्वदा जाग्रतीत्यर्थः। अथवा राजानो दुष्टान्निवारयितुं सर्वदा जागरणं कुर्वंति तद्वत्। एवं ते रश्मयः पदे पदे स्थाने स्थाने सेतवः संबद्धाः संतः पाशिनः पापकृतां बाधकाः संति। भवंति॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचंतः संदहंतो अव्रतान्।
इंद्रद्विष्टामप धमंति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि॥५॥
पितुः। मातुः। अधि। आ। ये। संऽअस्वरन्। ऋचा। शोचंतः। संऽदहंतः। अव्रतान्।
इंद्रऽद्विष्टां। अप। धमंति। मायया। त्वचं। असिक्नीं। भूमनः। दिवः। परि॥५॥

पितुर्मातुर्द्यावापृथिव्योः। द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बंधुर्मे माता पृथिवी महीयं। ऋ० १. १६४. ३३.।

इत्यादिषु द्यावापृथिव्योर्मातापितृत्वाम्नानात् । द्यावापृथिवीभ्यां ये सोमरश्मयोऽध्या समस्वरन् अधिकं प्रादुर्भूता अभवन् त ऋत्विग्भिः क्रियमाणया स्तुत्या शोचंतो दीप्यमाना अव्रतान् कर्मरहितान्यजमानान् संदहंतः सम्यग्विनाशयंतस्ते रश्मय इंद्रद्विष्टामिंद्राय द्वेषकारिणीं ॥ ते च । पा० ६. २. ४५. । इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ॥ इंद्रेण द्विष्टां वा । असिक्नीं । रात्रिनामैतत् । रात्रिवत्कृष्णरूपां त्वचं । राक्षसमित्यर्थः । मायया कर्मणा प्रज्ञया वा भूमनो विस्तृताद्भूलोकाद्दिवस्परि द्युलोकाच्चाप धमंति । अपगतं कुर्वंति । अपघ्नंतीत्यर्थः ॥ ॥२९॥

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयंत्रासो रभसस्य मंतवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पंथां न तरंति दुष्कृतः ॥६॥
प्रत्नात् । मानात् । अधि । आ । ये । सम्ऽअस्वरन् । श्लोकऽयंत्रासः । रभसस्य । मंतवः ।
अप । अनक्षासः । बधिराः । अहासत । ऋतस्य । पंथां । न । तरंति । दुःऽकृतः ॥६॥

श्लोकयंत्रासः । श्लोकाः स्तुतयः । स्तुतिनियमना रभसस्य मंतवो वेगमभिमन्यमानाः एतादृशा ये सोमरश्मयः प्रत्नात्पुराणान्मानादंतरिक्षादध्या समस्वरन् सह प्रादुर्भूता अभवन् तान्रश्मीननक्षासश्चक्षुर्वर्जिताः साधु पदार्थानामद्रष्टारो नरा बधिरा देवतास्तुतिश्रवणवर्जिताः पापकृतो नरश्चापाहासत । तान्परित्यजंति । दर्शिनः श्रवणवंतो मेधाविनस्तु न परिजहति किंतु स्तुवंति । तदेवाह । ऋतस्य सत्यस्य पंथां मार्गभूतमेषां गणं दुष्कृतः पापकृतो नरा न तरंति । नोत्तारयंति । सुकृतस्तु तरंतीत्यभिप्रायः ॥

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनंति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वंचः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥
सहस्रऽधारे । विऽतते । पवित्रे । आ । वाचं । पुनंति । कवयः । मनीषिणः ।
रुद्रासः । एषां । इषिरासः । अद्रुहः । स्पशः । सुऽअंचः । सुऽदृशः । नृऽचक्षसः ॥७॥

कवयः क्रांतकर्माणः अत एव मनीषिणः प्राज्ञा ऋत्विजः सहस्रधार अनेकधारोपेते वितते कर्मणि विस्तृते पवित्रे शुद्ध्युत्पादके सोमे वर्तमानां वाचं माध्यमिकां । सोमः खलु विश्वावसुप्रभृतिगंधर्वाश्चांतरिक्षेऽतिष्ठन् सोमो वै राजा गंधर्वेष्वासीदिति श्रवणात् तत्र वर्तमानं सोमं देवा गोपया वाचा क्रीतवंतः । तदा सोमे वाक्तिष्ठतीति शक्यते वक्तुं । तस्मात्सोमे स्थितां माध्यमिकां वाचमा पुनंति । संस्कुर्वंति । स्तुवंतीति यावत् । य उक्तगुणा मरुतां मातरं माध्यमिकां वाचं स्तुवंति तेषां रुद्रासो रुद्रपुत्रा मध्यमवाचः पुत्रा मरुतः स्पशो बाधा वशिनो भवंति । कीदृशाः । इषिरा गमनशीला अद्रुहः स्तोतॄणामद्रोग्धारः । यद्वा ॥ द्रुहेः कर्मणि क्विबौणादिकः ॥ परैरहिंस्याः । स्वंचः शोभनांचनाः अत एव सुदृशः सुदर्शना नृचक्षसो नॄणां कर्मनेतॄणां द्रष्टारः ॥

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यं१तरा दधे ।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८॥
ऋतस्य । गोपाः । न । दभाय । सुऽक्रतुः । त्री । सः । पवित्रा । हृदि । अंतः । आ । दधे ।
विद्वान् । सः । विश्वा । भुवना । अभि । पश्यति । अव । अजुष्टान् । विध्यति । कर्ते ।
अव्रतान् ॥८॥

ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य गोपा गोपायिता अत एव सुक्रतुः शोभनकर्मा सोमो न दभाय दंभाय स्तंभ-

नाय न भवति। परैर्दंभयितुं न शक्यत इत्यर्थः। किंच स सोमस्त्री ॥ शेश्छंदसि बहुलमिति लुक् ॥ त्रीणि पवित्राण्यग्निवायुसूर्यात्मकानि त्रीणि पवित्राणि हृदंतर्हृदयस्यांतरा दधे। आदधाति। स्वस्मिन् संगमयतीत्यर्थः। अपि च विद्वान् सर्वं जानानः स सोमो विश्वा भुवना सर्वाणि भुवनान्यभि पश्यति। ततः कर्ते ॥ करोतेरौणादिकस्तप्रत्ययः ॥ कर्मण्यनुष्ठानप्रियान् अत एवाव्रतानयजमानानव विध्यति। अवाङ्मुखान् कृत्वा ताडयति। हिनस्तीति यावत् ॥

ऋतस्य तंतुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित्तत्समिनक्षंत आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥

ऋतस्य। तंतुः। विऽततः। पवित्रे। आ। जिह्वायाः। अग्रे। वरुणस्य। मायया।
धीराः। चित्। तत्। सम्ऽइनक्षंतः। आशत। अत्र। कर्तं। अव। पदाति। अप्रऽभुः ॥९॥

ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य तंतुस्तनिता पवित्रेऽविवालमये दशापवित्रे विततो विस्तृतः। यद्वा। पवित्रेऽतरिक्षे विस्तृतः सोमो वरुणस्य जिह्वाया अग्रे मायया कर्मणा आ। आस्थितः। वरुणजिह्वाय आपस्तिष्ठंति। तासु सोमो वसतीति वसतीवर्याख्युदकेषु स्थित इत्यर्थः। ततो धीराश्चित् कर्मणि प्राज्ञा एव तद्वरुणजिह्वायस्थानं समिनक्षंतः। इनक्षतिर्गतिकर्मा। संव्याप्नुवंतः संत आशत। स्तुतिभिर्हविर्भिर्वा प्राप्नुवन्। यः पुनः कर्तं ॥ कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ कर्मण्यप्रभुः समर्थो न भवति सोऽयमत्रास्मिन्नेव लोकेऽव पदाति। अवस्तान्नरके पतति। नोपरि गच्छति ॥ पद गतौ। लेट्याडागमः ॥ तस्मात्सर्वैरग्निष्टोमादिकर्म कर्तव्यमित्येषोऽर्थोऽभिहितो भवति ॥ ॥३०॥

शिशुर्नेति नवर्चं सप्तमं सूक्तं दैर्घतमसस्य कक्षीवत आर्षं पवमानसोमदेवताकं। अष्टमी त्रिष्टुप् शिष्टा जगत्यः। तथा चानुक्रम्यते। शिशुर्न कक्षीवांस्त्रिष्टुबष्टमीति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

शिशुः। न। जातः। अव। चक्रदत्। वने। स्वः। यत्। वाजी। अरुषः। सिसासति।
दिवः। रेतसा। सचते। पयःऽवृधा। तं। ईमहे। सुऽमती। शर्म। सऽप्रथः ॥१॥

स पवमानः सोमो वने वननीये वसतीवर्याख्य उदके जात उत्पन्नः शिशुर्न शिशुरिवाव चक्रदत्। अवाङ्मुखं क्रंदति। तदोदकमध्ये पतञ्छब्दं करोति खलु। यद्यदा वाजी बलवानन्नवान्वारुष आरोचमानः। यद्वा। वाज्यश्व इवारुषः ॥ अर्तेरुषच् ॥ गमनशीलः। सोमः स्वः स्वर्गलोकं सिषासति संभक्तुमिच्छति ॥ सनोतेः सनीडभाव आत्वं। सनोतेरिति सांहितिकं षत्वं ॥ सोऽयं पयोवृधा गवामोषधीनां च क्षीरस्य वर्धकेन रेतसोदकेन सह दिवो द्युलोकात्सचते। पार्थिवं लोकं समवैति। तं तादृशं प्रसिद्धं सोमं सप्रथः सर्वतः पृथुतरं धनादिना युक्तं शर्म गृहं तद्वयं सुमती ॥ सुपां सुलुगिति तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ सुमत्या शोभनया स्तुत्येमहे। याचामहे ॥ ईमह इति याच्ञाकर्म। ईङ् गतौ दैवादिकः। छांदसः श्यनो लुक् ॥

दिवो यः स्कंभो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

दिवः। यः। स्कंभः। धरुणः। सुऽआततः। आऽपूर्णः। अंशुः। परिऽएति। विश्वतः।
सः। इमे इति। मही इति। रोदसी इति। यक्षत्। आऽवृता। समीचीने इति संऽईचीने। दाधार। सं। इषः। कविः ॥२॥

दिवो द्युलोकस्य स्कंभो विष्कंभयिता संरोद्धा धरुणः सर्वस्य धारकः। यद्वा। पृथिव्या धारकः। विष्टंभो दिवो धरुणः पृथिव्याः। ऋ॰ ९. ८९. ६.। इत्याम्नानात्। तादृशः स्वाततः सुष्ठु सर्वत्र विततो विसृतः अत एवापूर्णः पात्रेषु संपूर्णो योऽंशुः सोमात्मको विश्वतः सर्वतः पर्येति परिगच्छति ॥ तिङि चोदात्तवतीति गतेर्निघातः ॥ स सोम इमे रोदसी द्यावापृथिव्यावावृतासंभजनीयेन कर्मणा यक्षत्। यजतु। स्वबलेन संयोजयत्वित्यर्थः। ततः सोऽयं समीचीने परस्परं संगते द्यावापृथिव्यौ दाधार। धारयां चकार ॥ तुजादीनामित्यभ्यासस्य दीर्घः ॥ अनंतरं कविः क्रांतकर्मैषोऽन्नानि स्तोतृभ्यः सं प्रयच्छतु। उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

महि॑ प्सरः॒ सुकृ॑तं सो॒म्यं मधू॒र्वी गव्यू॑ति॒रदि॑तेर्ऋ॒तं य॒ते ।
ईशे॒ यो वृ॒ष्टेरि॒त उ॒स्रियो॒ वृषा॒पां ने॒ता य इ॒तऊ॑तिर्ऋ॒ग्मियः॑ ॥३॥
महि॑ । प्सरः॑ । सु॒ऽकृ॑तं । सो॒म्यं । मधु॑ । उ॒र्वी । गव्यू॑तिः । अदि॑तेः । ऋ॒तं । य॒ते ।
ईशे॑ । यः । वृ॒ष्टेः । इ॒तः । उ॒स्रियः॑ । वृषा॑ । अ॒पां । ने॒ता । यः । इ॒तःऽऊ॑तिः । ऋ॒ग्मियः॑ ॥३॥

ऋतं सत्यभूतं यज्ञं यते गच्छते तस्मा इंद्राय सुकृतं सुष्ठु संस्कृतं सोम्यं सोममयं महि महत् प्रभूतं मधु मधुररसं प्सरो भक्षणं पानीयं भवति ॥ प्सा भक्षणे ॥ किंच तस्माद्यज्ञं प्रत्यागच्छतामिंद्रादीनामदितेः पृथिव्या गव्यूतिर्मार्गस्थोर्वी विस्तीर्णा भवति। इंद्रः शतसहस्रसंख्याकहरिभिः सह गंतुं मार्गो विस्तीर्णोऽभवदित्यर्थः। य इंद्र इत इमं लोकं प्रत्यापतंत्या वृष्टेरीशे ईश्वरो भवति। तथोस्रियः। उस्रेति गोनाम। गोभ्यो हितोऽपामुदकानां वृषा वर्षको यज्ञस्य नेता नायक इतऊतिः। इममस्मदीयं यज्ञं प्रत्यूतिर्गमनं यस्य स तथोक्तः। इतो गच्छन् य इंद्र ऋग्मिय ऋगर्हः स्तोतव्यो भवति। तस्मा अयं सोमः पातव्यो भवतीति ॥

प्रवर्ग्येऽभिष्टव आत्मन्वन्नभ इत्येषा। सूत्रितं च। तदु प्रयक्षतममस्य कर्मात्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पयः। आ॰ ४. ७.। इति ॥

आ॒त्म॒न्वन्नभो॑ दुह्यते घृ॒तं पय॑ ऋ॒तस्य॒ नाभि॑र॒मृतं॒ वि जा॑यते ।
स॒मी॒ची॒नाः सु॒दान॑वः प्रीणंति॒ तं नरो॑ हि॒तमव॑ मेहंति॒ पेर॑वः ॥४॥
आ॒त्म॒न्ऽवत् । नभः॑ । दु॒ह्य॒ते॒ । घृ॒तं । पयः॑ । ऋ॒तस्य॑ । नाभिः॑ । अ॒मृतं॑ । वि । जा॒य॒ते॒ ।
स॒म्ऽई॒ची॒नाः । सु॒ऽदान॑वः । प्री॒णं॒ति॒ । तं । नरः॑ । हि॒तं । अव॑ । मे॒हं॒ति॒ । पेर॑वः ॥४॥

आत्मन्वत् ॥ अनो नुडिति नुडागमः ॥ आत्मवत्सारवद्घृतं पयश्च नभो नभस आदित्यरूपात्सोमो दुह्यते। किंचर्तस्य यज्ञस्य नाभिः ॥ णह बंधने। स्वमोर्नपुंसकात्। पा॰ ७. १. २३.। इति सोर्लुम भवति सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वात् ॥ नाभि यज्ञस्य बंधकममृतमुदकं च वि जायते। तस्मादेव प्रादुर्भवति। ततः सुदानवः शोभनस्तुतिहविर्दानवंतो यजमानाः समीचीनाः परस्परं संगताः संतस्तमिमं सोमं प्रीणयंति। स्तुतिभिस्तर्पयंति। अथ नरो नेतारः पेरवः ॥ पा रक्षणे। मापोरित्वे रुन्निति रुन्प्रत्ययः ॥ सर्वस्य रक्षकाः सोमरश्मयो हितं निहितमवावस्ताद्वर्तमानं पार्थिवमुदकं मेहंति। वर्षंति ॥ मिह सेचने भौवादिकः ॥ यद्वा। हितमुदकं पृथिवीं प्रति मेहंति ॥

अरा॑वीदं॒शुः सच॑मान ऊ॒र्मिणा॑ देवा॒व्यं१॒ मनु॑षे पिन्वति॒ त्वचं॑ ।
दधा॑ति॒ गर्भ॒मदि॑तेरु॒पस्थ॒ आ येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥५॥
अरा॑वीत् । अं॒शुः । सच॑मानः । ऊ॒र्मिणा॑ । दे॒व॒ऽअ॒व्यं॑ । मनु॑षे । पिन्व॑ति । त्वचं॑ ।
दधा॑ति । गर्भं॑ । अदि॑तेः । उ॒पऽस्थे॑ । आ । येन॑ । तो॒कं । च॒ । तन॑यं । च॒ । धाम॑हे ॥५॥

ऊर्मिणा वसतीवर्यादीनामुदकानां संघेन सचमानोऽंशुः सोमोऽरावीत् । शब्दं करोति । किंच स सोमो देवाव्यं ॥ अव रक्षणे । अवितृस्तृतंत्रिभ्य ईरितीप्रत्ययः ॥ देवानां पालयित्रीं त्वचमात्मनः शरीरं मनुषे मनुष्याय यजमानाय पिन्वति । सिंचति । पात्रेषु चरतीति यावत् । अपि चादितेरदीनायाः पृथिव्या उपस्थे समीप ओषधीषु तं गर्भमा दधाति । सुधामयैः किरणैर्विदधाति । येन गर्भेण वयं तोकं दुःखनाशकं पुत्रं च तनयं । तनोति कुलमिति तनयः पौत्रः । तं च धामहे । दध्महे । धारयामः ॥ दधातेर्लटि बहुलं छंदसीति शपो लुक् ॥ ॥३१॥

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये संतु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरंत्यमृतं घृतश्चुतः ॥६॥
सहस्रऽधारे । अव । ताः । असश्चतः । तृतीये । संतु । रजसि । प्रजाऽवतीः ।
चतस्रः । नाभः । निऽहिताः । अवः । दिवः । हविः । भरंति । अमृतं । घृतऽश्चुतः ॥६॥

सहस्रधारे बहूदकधारे तृतीये रजसि लोके स्वर्गे वर्तमाना असश्चतः परस्परमसक्ताः प्रजावतीरुत्पादितप्रजावत्यः सोमस्य स्वभूतास्ता अव संतु । अवस्तात्पृथिव्यां पतंतु । कास्ता इत्याह । चतस्रो नाभस्तपसो बाधिकाः सोमस्य संबंधिन्यश्चतस्रो दीप्तयः कलाः । दिवो द्युलोकादवोऽवस्तान्निहिताः सोमेन स्थापितास्ता घृतश्चुतो घृतस्योदकस्य च्यावयित्र्यः सत्यो हविः सोमादिलक्षणं भरंति । देवानां प्रयच्छंति । तथामृतं गोष्वोषधीषु च पयोरूपं सुधारूपं च भरंति । प्रक्षिपंति ॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवंधमव दर्षदुद्रिणं ॥७॥
श्वेतं । रूपं । कृणुते । यत् । सिसासति । सोमः । मीढ्वान् । असुरः । वेद । भूमनः ।
धिया । शमी । सचते । सः । ईं । अभि । प्रऽवत् । दिवः । कवंधं । अव । दर्षत् । उद्रिणं ॥७॥

श्वेतं दीप्यमानं शुक्लं रूपं कृणुते तदा करोति यद्यदा सिषासति स्वर्गं संभक्तुमिच्छति । सोमे पात्राण्यागते सति तत्तेजसानुरंजितानां तेषां श्वेतं रूपं भवति । ततो मीढ्वान् ॥ मिह सेचने । अस्मात् क्वसौ दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्चेति निपातनादभिमतरूपसिद्धिः ॥ कामानां सेक्तासुरः प्राज्ञो बलवान् वा सोमो भूमनो बहुधनानि वेद । स्तोतृभ्यो दातुं जानाति । प्रयच्छतीति यावत् । स ईं ॥ सोऽचि लोपे चेदिति सुलोपः ॥ सोऽयं धिया प्रज्ञानेन प्रवत् प्रकृष्टानि शमी ॥ द्वितीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ कर्माण्यभि सचते । अभितः समवैति । किंच दिवोऽंतरिक्षादुद्रिणमुदकवंतं कवंधं मेघं । कवंधशब्देन मेघोऽभिधीयते ॥ तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यमिति ॥ मेघमव दर्षत् । अवदारयति । विवृतद्वारं करोति । मेघं विदार्यांतरिक्षाद्वृष्टिं करोतीत्यर्थः ॥

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयंतः कक्षीवते शतहिमाय गोनां ॥८॥
अध । श्वेतं । कलशं । गोभिः । अक्तं । कार्ष्मन् । आ । वाजी । अक्रमीत् । ससऽवान् ।
आ । हिन्विरे । मनसा । देवऽयंतः । कक्षीवते । शतऽहिमाय । गोनां ॥८॥

अधाथानंतरं श्वेतं संप्रति सोमसंसर्गाच्छ्वेतवर्णं गोभिरुदकैरक्तं संपृक्तं द्रोणकलशं ससवान् संभजन् सोम आक्रमीत् । आक्रमते । कार्ष्मन् । कार्ष्मशब्दः काष्ठावचनः । आजिं धावंतो योद्धारो यां गंतुमिच्छंति तस्यां

काष्ठायां वाजी कश्चिदश्वो युद्धं भजमान आक्रमीत्। आक्रमते। सोमः काष्ठायां द्रोणकलशे पततीत्यर्थः। ततस्तस्मै सोमाय देवयंतो देवानिच्छंत ऋत्विजो मनसा हिन्विरे। स्तुतीराभिमुख्येन प्रेरयंति। तच्च शतहिमाय बहुगमनाय कक्षीवते स्तोत्रकारिण एतन्नामकायर्षये सोमो गोनां गाः पशून् प्रेरयति ॥ गोः पादांते। पा॰ ७. १. ५७.। इति नुडागमः। क्रियाग्रहणं कर्तव्यं। म॰ १. ४. ३२.। इति संप्रदानसंज्ञा। चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिंतम स्वदस्वेंद्राय पवमान पीतये ॥९॥
अत्ऽभिः। सोम। पपृचानस्य। ते। रसः। अव्यः। वारं। वि। पवमान। धावति।
सः। मृज्यमानः। कविऽभिः। मदिन्ऽतम। स्वदस्व। इंद्राय। पवमान। पीतये ॥९॥

हे पवमान पवित्रेण पूयमान हे सोम अद्भिर्वसतीवर्यादिभिरुदकैः पपृचानस्य संपृच्यमानस्य ते तव रसोऽव्योऽवेर्वारं वालं दशापवित्रं वि धावति। विविधं प्राप्नोति। ततो हे मदिंतम मादयितृतम हे पवमान सोम त्वं कविभिः क्रांतकर्मभिर्ऋत्विग्भिर्मृज्यमानः पूयमानः सन्निंद्राय पीतय इंद्रस्य पानार्थं स्वदस्व। प्रियरसो भव ॥ ॥३२॥

अभि प्रियाणीति पंचर्चमष्टमं सूक्तं। भार्गवस्य कवेरार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं। तथानुक्रम्यते। अभि प्रियाणि पंच कविरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वंचमरुहद्विचक्षणः ॥१॥
अभि। प्रियाणि। पवते। चनःऽहितः। नामानि। यह्वः। अधि। येषु। वर्धते।
आ। सूर्यस्य। बृहतः। बृहन्। अधि। रथं। विष्वंचं। अरुहत्। विऽचक्षणः ॥१॥

चनोहितः। चन इत्यन्ननाम ॥ चायतेरसुनि चन इत्यौणादिकसूत्रेण निपातितः। उ॰ ४. १९९.॥ चनसेऽन्नाय हितः यद्वा हितान्नः सोमः प्रियाणि जगतः प्रीणयितॄणि नामानि नमनशीलानि तान्युदकान्यभि पवते। अभितः करोति। येष्वंतरिक्षस्थितेषूदकेषु यह्वो महानयं सोमोऽधि वर्धते अधिकं प्रवृद्धो भवति। अपां मध्ये सोमो वसति। ततो बृहन्महान् सोमो बृहतो महतः परिवृढस्य सूर्यस्य विष्वंचं विष्वग्गमनमध्युपरि रथं विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा सन्नारुहत्। आरोहति। अप्सौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठत इति ॥

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१ नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥
ऋतस्य। जिह्वा। पवते। मधु। प्रियं। वक्ता। पतिः। धियः। अस्याः। अदाभ्यः।
दधाति। पुत्रः। पित्रोः। अपीच्यं। नाम। तृतीयं। अधि। रोचने। दिवः ॥२॥

ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य जिह्वा मुख्यत्वेन जिह्वास्थानीयः सोमः प्रियं प्रियकरं मधु मदकरं रसं पवते। क्षरति। कीदृशः। वक्ता शब्दकृत्। यद्वा। स्तोतृभिः क्रियमाणाः स्तुतयः साधीयस्य इति प्रतिश्रवणस्य कर्ता। अस्या धिय एतस्य कर्मणः पतिः पालयितादाभ्यो रक्षोभिर्हिंसितुमशक्यः। पुत्रो यजमानः पित्रोर्मातापित्रोरपीच्यमंतर्हितं यन्नाम। तौ न जानीतो नामकरणवेलायां। तस्मात्तयोरपरिज्ञायमानं तत्तृतीयं

नाम दिवो द्युलोकस्य रोचने दीप्यमाने सोमेऽभिषूयमाणे सत्यधि दधाति। अत्यंतं धारयति। नचव्याव-हारिकनाम्नी प्रभाष्य सोमयाजीति तृतीयमस्य नामेति भगवता बौधायनेनोक्तं॥

अव॑ द्युता॒नः क॒लशाँ॑ अचिक्रद॒न्नृभि॒र्येमा॒नः कोश॒ आ हि॑र॒ण्यये॑।
अ॒भीमृ॒तस्य॑ दो॒हना॑ अनूष॒ताधि॑ त्रिपृ॒ष्ठ उ॒षसो॒ वि रा॑जति ॥३॥
अव॑। द्यु॒ता॒नः। क॒लशा॑न्। अ॒चि॒क्र॒द॒त्। नृऽभिः॑। ये॒मा॒नः। कोशे॑। आ। हि॒र॒ण्यये॑।
अ॒भि। ई॒म्। ऋ॒तस्य॑। दो॒हना॑ः। अ॒नू॒ष॒त॒। अधि॑। त्रि॒ऽपृ॒ष्ठः। उ॒षसः॑। वि। रा॒ज॒ति॒ ॥३॥

द्युतानः ॥ द्युत दीप्तौ ॥ दीप्यमानो नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिर्हिरण्यये हिरण्मये कोशेऽधिषवणचर्मणि। तस्य हिरण्मयत्वं हिरण्यपाणिरभिषुणोतीति हिरण्यसंबंधात्। तादृशे कोशे येमानः ॥ छांदसे कर्मणि लिटि कानचि रूपं ॥ नियम्यमानः सोमः। तत ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य दोहना दोग्धार ऋत्विज ईमेनं सोम-मभ्यनूषत। अभिष्टुवंति। ग्रावाणो वत्सा ऋत्विजो दुहंतीति तैत्तिरीयब्राह्मण एषां दोग्धृत्वमभिहितं। सोमः कलशान्द्रोणाभिधानान्प्रत्यवाचिक्रदत्। अवक्रंदति। शब्दायते। ततस्त्रिपृष्ठः। त्रीणि सवनान्येव पृष्ठानि यस्य स तथोक्तः त्रिषु सवनेषु सोमस्य विद्यमानत्वात् ॥ त्रिचक्रादित्वादुत्तरपदांतोदात्तत्वं ॥ तादृशः सोम उषसोऽधि यागाहनि वि राजति ॥ अधिशीङ्स्थासां। पा॰ १. ४. ४६.। इति द्वितीया ॥ तेष्वहःसु विशेषेण दीप्यते। यद्वा। राजतिरंतर्णीतण्यर्थः। अहानि प्रकाशयति ॥

अद्रि॑भिः सु॒तो म॒तिभि॒श्चनो॑हितः प्ररो॒चय॒न्रोद॑सी मा॒तरा॒ शुचि॑ः।
रोमा॒ण्यव्या॑ स॒मया॒ वि धा॑वति॒ मधो॒र्धारा॒ पिन्व॑माना दि॒वेदि॑वे ॥४॥
अद्रि॑ऽभिः। सु॒तः। म॒तिऽभि॑ः। चनः॑ऽहितः। प्र॒ऽरो॒चय॑न्। रोद॑सी॒ इति॑। मा॒तरा॑। शुचि॑ः।
रोमा॑णि। अव्या॑। स॒मया॑। वि। धा॒व॒ति॒। मधो॑ः। धारा॑। पिन्व॑माना। दि॒वेऽदि॑वे ॥४॥

मतिभिः ॥ मन ज्ञाने। मंत्रे वृषेषपचमनेति क्तिन्नुदात्तः ॥ स्तुतिभिरद्रिभिर्ग्रावभिश्च सुतोऽभिषुतश्चनो-हितश्चनसेऽन्नाय हितो हितान्नो वा मातरा मातरौ जगतो निर्मात्र्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यौ प्ररोचयन् स्वतेजसा प्रकाशयन् अत एव शुचिर्दीप्यमानः एवंविधः सोमोऽव्यान्यविभवानि रोमाणि तैः कृतानि पवित्राणि समयाभितः समीपे वि धावति। विशेषेण चरति। किंच पिन्वमानाद्भिः सिच्यमाना मधोर्मदकरस्य सोमस्य धारा दिवेदिवेऽन्वहं दीर्घसत्त्रेषु पवित्राण्युभयतः पवते ॥

परि॑ सोम॒ प्र ध॑न्वा स्व॒स्तये॒ नृभि॑ः पुना॒नो अ॒भि वा॑सया॒शिर॑म्।
ये ते॒ मदा॑ आह॒नसो॒ विहा॑यस॒स्तेभि॒रिंद्रं॑ चोदय दा॒तवे॑ म॒घम् ॥५॥
परि॑। सोम॒। प्र। धन्व॒। स्व॒स्तये॑। नृऽभि॑ः। पु॒ना॒नः। अ॒भि। वा॒सय॒। आ॒ऽशिर॑म्।
ये। ते॒। मदा॑ः। आ॒ह॒नस॑ः। वि॒ऽहा॑यसः। तेभि॑ः। इंद्र॑म्। चो॒द॒य॒। दा॒तवे॑। म॒घम् ॥५॥

हे सोम स्वस्तयेऽविनाशाय परि प्र धन्व। पात्राणि परितः प्रगच्छ। धविर्गत्यर्थः। किंच नृभिः कर्मनेतृ-भिर्ऋत्विग्भिः पुनानः पूयमानस्त्वमाशिरमाश्रयणं क्षीरादिकमभि वासय। आच्छादय। संयोजयेति यावत्। आहनसः। आहननवंतो वचनवंतः। नि॰ ४. १५.। इति यास्कः। शत्रूणामाभिमुख्येन हंतारोऽभिहन्यमाना

अभिपूयमानाः स्तुतिमंतः शब्दवंतो वा विहायसः । महन्नामैतत् । महांतस्ते त्वदीया ये मदा मदहेतवो रसाः संति तेभिस्तैः सोमैरस्माभिर्दीयमानैर्मघं मंहनीयं धनमस्मभ्यं दातवे दातुमिंद्रं चोदय । प्रेरय ॥ ॥३३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः संपूर्णः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥
व्याख्यायाव्याहतप्रज्ञः सप्तमस्य द्वितीयकं । अध्यायं सायणामात्यस्तृतीयं व्याकरोत्यथ ॥

तत्र धर्तेति पंचर्चं नवमं सूक्तं भार्गवस्य कवेरार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं । धर्तेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥१॥
धर्ता । दिवः । पवते । कृत्व्यः । रसः । दक्षः । देवानां । अनुऽमाद्यः । नृऽभिः ।
हरिः । सृजानः । अत्यः । न । सत्वऽभिः । वृथा । पाजांसि । कृणुते । नदीषु । आ ॥१॥

धर्ता सर्वस्य धारकः सोमो दिवोऽतरिक्षादंतरिक्षस्थिताद्दशापवित्रात्पवते । पूयते । कीदृशः सोमः । कृत्व्यः कर्तव्यः । शोध्य इत्यर्थः । रसो रसात्मको देवानां दक्षो बलप्रदः । यद्वा । दक्षः प्रवर्धनीयो देवानामर्थाय । तथा नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिरनुमाद्योऽनुमदनीयः स्तुत्यो वा । हरिर्हरितवर्णः सत्वभिः प्राणिभिः सादिभिः सृजानः सृज्यमानोऽत्यो नाश्व इव स यथा शिक्षितो वृथानायासेन गच्छति तद्वद्वृथाप्रयत्नेन पाजांसि बलानि स्वीयान्वेगान्कृणुते । कुरुते । नदीषु वसतीवरीषु । ताभिरित्यर्थः । आ सिक्त इति शेषः । अयमभिषवसमयाभिप्रायः ॥

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व१ः सिषासन्नथिरो गविष्टिषु ।
इंद्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिंदुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥
शूरः । न । धत्ते । आयुधा । गभस्त्योः । स्व१रिति स्वः । सिसासन् । रथिरः । गोऽइष्टिषु ।
इंद्रस्य । शुष्मं । ईरयन् । अपस्युऽभिः । इंदुः । हिन्वानः । अज्यते । मनीषिऽभिः ॥२॥

अयं सोमो गभस्त्योर्हस्तयोरायुधायुधानि शूरो न शूर इव धत्ते । धारयति । स्वः स्वर्गसुखसाधनं यज्ञं वा सिषासन् संभक्तुमिच्छन् रथिरो रथवान् ॥ रथादिरच्प्रत्ययः ॥ गविष्टिषु यजमानस्य गवामेषणेषु सत्सु । यजमानार्थं गोसंभजनाय रथवानित्यर्थः । इंद्रस्य शुष्मं बलमीरयन् प्रेरयन्निंदुः सोमो देवोऽपस्युभिः कर्मेच्छुभिर्मनीषिभिर्मेधाविभिर्ऋत्विग्भिर्हिन्वानः प्रेर्यमाणोऽज्यते गोभिः ॥

इंद्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥३॥

इंद्रस्य । सोम । पवमानः । ऊर्मिणा । तविष्यमाणः । जठरेषु । आ । विश ।
प्र । नः । पिन्व । विऽद्युत् । अभ्राऽइव । रोदसी इति । धिया । न । वाजान् । उप । मासि । शश्वतः ॥३॥

हे सोम पवमानः पूयमानस्त्वं तविष्यमाणो वर्धयिष्यमाणः सन्निंद्रस्य जठरेषूर्मिणा प्रभूतया धारया आ विश । जठरप्रदेशस्य बाहुल्याद्बहुवचनं । नोऽस्मदर्थं विद्युदभ्रेवाभ्राणीव सा यथा दोग्ध्यभ्राणि तद्वत्प्र पिन्व धुक्ष्व रोदसी द्यावापृथिव्यौ । किंच धिया कर्मणा नेदानीं । नेति संप्रत्यर्थे । शश्वतः । बहुनामैतत् । बहून्वाजानन्नान्युप समीपे मासि । निर्मासि ॥

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४॥
विश्वस्य । राजा । पवते । स्वःऽदृशः । ऋतस्य । धीतिं । ऋषिषाट् । अवीवशत् ।
यः । सूर्यस्य । असिरेण । मृज्यते । पिता । मतीनां । असमष्टऽकाव्यः ॥४॥

विश्वस्य जगतो राजा स्वामी सोमः स्वर्दृशः स्वर्गद्रष्टुः सर्वद्रष्टुर्वर्तस्य सत्यभूतस्येंद्रस्य । मनुष्यवाच्यनृतशब्दप्रतियोगिकस्यर्तशब्दस्य देवार्थः । तत्राप्यौचित्येनेंद्रः परिगृह्यते । तस्य धीतिं मतिं कर्म वर्षिषाडृषीणामतींद्रियद्रष्टॄणामभिभविता । महत्त्वेन स्वयमप्यृषिश्रेष्ठत्वादिति भावः । तथा च मंत्रांतरं । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिः । ऋ० ९. ९६. ६. । इति । ईदृशः सोमोऽवीवशत् । अकामयतेंद्रस्य कर्म । यः सोमः सूर्यस्य देवस्यासिरेण क्षेपकेण रश्मिना मृज्यते । असमष्टकाव्योऽन्यैः कविभिरव्याप्तकर्मा सोमो मतीनामस्मदीयानां स्तुतीनां पिता पालकः स्वामी भवतीति शेषः । यद्वा । यो मतीनां पितासमष्टकाव्यश्च सन्मृज्यते स पवत इति संबंधः ॥

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इंद्राय पवसे मत्सरिंतमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥५॥
वृषाऽइव । यूथा । परि । कोशं । अर्षसि । अपां । उपऽस्थे । वृषभः । कनिक्रदत् ।
सः । इंद्राय । पवसे । मत्सरिन्ऽतमः । यथा । जेषाम । संऽइथे । त्वाऽऊतयः ॥५॥

हे सोम त्वं वृषेव यूथा यूथानि वृषभ इव स यथा तानि प्रविशति तद्वत् कोशं कोशवद्रसधारकं कलशं पर्यर्षसि । परिगच्छसि । कुत्रस्थः सन् । अपामुपस्थेऽंतरिक्षे । कीदृशः सन् । वृषभो वर्षिता कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् । स त्वं हे सोम इंद्रायेंद्रार्थं पवसे । पूयसे । मत्सरिंतमो मादयितृतमस्त्वं । यथा वयं जेषाम जयेम समिथे संग्रामे त्वोतयस्त्वया रक्षिताः संतः ॥ ॥१॥

एष प्र कोश इति पंचर्चं दशमं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । एष इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिंद्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षंति पयसेव धेनवः ॥१॥
एषः । प्र । कोशे । मधुऽमान् । अचिक्रदत् । इंद्रस्य । वज्रः । वपुषः । वपुःऽतरः ।
अभि । ईं । ऋतस्य । सुऽदुघाः । घृतऽश्चुतः । वाश्राः । अर्षंति । पयसाऽइव । धेनवः ॥१॥

एषोऽयं सोमो मधुमान्मधुररसः कोशे द्रोणकलशे प्राचिक्रदत् । प्रकर्षेण शब्दायते । कीदृश एषः ।

इंद्रस्य वज्रो वज्रस्थानीयः । बलकरत्वेन वज्रवत्प्रहरणसाधनत्वाद्वज्रत्वोपचारः । एष एव हि सोमो वज्र इंद्रस्य साधने । तथा वपुषो बीजानां वप्तुरन्यस्माद्वपुष्टरोऽतिशयेन वप्ता । बीजावापस्य सोमकर्तृकत्वात् सोमो वै रेतोधाः । तै॰ सं॰ २.१.१.६. । इति श्रुतेः । ईमस्यर्तस्य सत्यफलस्य सोमस्य धारा इति शेषः । ता अभ्यर्षंति । अभिगच्छंति । कीदृश्यस्ताः । सुदुघाः सुष्ठु दोग्ध्र्यः फलानां घृतश्चुत उदकस्य रसस्य वा क्षारयित्र्यो वाश्राः शब्दयंत्यः । किमिव । पयसा युक्ता वाश्रा धेनव इवेति ॥

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥
सः । पूर्व्यः । पवते । यं । दिवः । परि । श्येनः । मथायत् । इषितः । तिरः । रजः ।
सः । मध्वः । आ । युवते । वेविजानः । इत् । कृशानोः । अस्तुः । मनसा । अह । बिभ्युषा ॥२॥

स सोमः पूर्व्यः प्रत्नः पवते । पूयते । अभिषूयत इत्यर्थः । यं सोमं दिवो द्युलोकाच्छ्येन इषितः स्वमात्रा प्रेषितः सन् परि मथायत् पर्यमथ्नात् तिरस्तीर्णं तिरस्कुर्वन् । किं । रजस्तृतीयं लोकं । स एव सोमो मध्वो मधुररसं सोममा युवते । यौति । पृथक्करोति द्युलोकात् । स्वयं वेविजान इच्चलन्नधो गच्छन् कृशानोः सोमपालस्यास्तुः शरक्षेप्तुः सकाशाद्बिभ्युषा भीतेन मनसाह । मध्व आ युवत इति संबंधः । कृशानोः सोमपालत्वं ब्राह्मणे स्पष्टमुक्तं । कृशानुः सोमपालः सव्यस्य पदः । ऐ॰ ब्रा॰ ३. २६. ॥

ते नः पूर्वास उपरास इंदवो महे वाजाय धन्वंतु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३ न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३॥
ते । नः । पूर्वासः । उपरासः । इंदवः । महे । वाजाय । धन्वंतु । गोऽमते ।
ईक्षेण्यासः । अह्यः । न । चारवः । ब्रह्मऽब्रह्म । ये । जुजुषुः । हविःऽहविः ॥३॥

ते वक्ष्यमाणाः पूर्वासः पूर्वं उपरासः । उपरता अचेत्युपराः । तादृशा इंदवः सोमा महे महते गोमते गो मह्यं वाजायान्नायान्नलाभार्थं धन्वंतु । गच्छंतु । प्राप्नुवंतु । कीदृशा इंदवः । ईक्षेण्यास ईक्षणीयाः संदर्शनीया अह्यो न । अह्यः स्त्रिय आहननात् । ता इव सुवेषाः स्त्रिय इव चारवो रमणीयाः । त इत्युक्तं क इत्याह । य इंदवो ब्रह्म ब्रह्म सर्वमपि स्तावकमंत्रजातं हविर्हविः सर्वमपि हविर्जातं च जुजुषुः सेवंते ॥

अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इंदुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजं ॥४॥
अयं । नः । विद्वान् । वनवत् । वनुष्यतः । इंदुः । सत्राचा । मनसा । पुरुऽस्तुतः ।
इनस्य । यः । सदने । गर्भं । आऽदधे । गवां । उरुब्जं । अभि । अर्षति । व्रजं ॥४॥

अयमिंदुः सोमो नोऽस्मान्वनुष्यतो हंतुमिच्छतः शत्रून् विद्वाञ्जानन्हंतुं वनवत् । हंतु तान् । केन साधनेन । सत्राचा सहांचता मनसा । कीदृशः । पुरुष्टुतो बहुभिः स्तुतः । यः सोम इनस्येश्वरस्याग्नेः सदने स्थाने भूमौ वेद्यां वा वर्तमानो गर्भमादधे धारयत्यौषधीषु । यश्च गवामस्मदीयानां शत्रुभिरपहृतानामुरुब्जं प्रभूतानामपां पयसां जनकं व्रजमभ्यर्षति गच्छति । स वनवदिति ॥

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥

चक्रिः । दिवः । पवते । कृत्व्यः । रसः । महान् । अदब्धः । वरुणः । हुरुक् । यते ।
असावि । मित्रः । वृजनेषु । यज्ञियः । अत्यः । न । यूथे । वृषऽयुः । कनिक्रदत् ॥५॥

चक्रिः सर्वस्य कर्ता कृत्व्यः कर्मण्यो रसो रसात्मको महान् गुणैरधिकोऽदब्धोऽहिंस्यो हुरुक् कुटिलं यते गच्छते । इतस्ततः परिचरत इत्यर्थः । तदर्थं दिवः सकाशात्पवते । पूयते । अंतरिक्षस्थाद्दशापवित्रादित्यर्थः । किंचासौ सोमोऽसावि । सूयते । कदा । वृजिनेष्वरिष्टेषु सत्सु । तत्परिहारार्थं । कीदृशः सः । मित्रः सर्वेषां मित्रभूतो यज्ञियो यष्टव्योऽत्यो नाश्व इव यूथे वडवायूथे स यथा वृषयुः सञ्छब्दं करोति तद्वदसौ वृषभो रसस्य वर्षिता कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् असावीति ॥ ॥२॥

प्र राजा वाचमिति पंचर्चमेकादशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्र राजेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतं ॥१॥
प्र । राजा । वाचं । जनयन् । असिस्यदत् । अपः । वसानः । अभि । गाः । इयक्षति ।
गृभ्णाति । रिप्रं । अविः । अस्य । तान्वा । शुद्धः । देवानां । उप । याति । निःऽकृतं ॥१॥

राजा राजमानोऽयं सोमोऽभिषूयमाणः सन् वाचं शब्दं जनयन्नुत्पादयन्नसिष्यदत् । प्रस्यंदते । तथापो वसतीवरीर्वसान आच्छादयन् गाः स्तुतीरभीयक्षति । अभिगच्छति । इयक्षतिर्गतिकर्मसु पठितः । अस्य सोमस्य रिप्रमनुपादेयत्वेन पापरूपमभिषुतवल्लीशकलादिरूपमविरविरोमनिर्मितं दशापवित्रं तान्वा स्वीयेन वस्त्रेण गृभ्णाति । गृह्णाति शोधनसमये । पश्चाच्छुद्धो देवानां निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुप याति । उपगच्छति ॥

इंद्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः संति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥
इंद्राय । सोम । परि । सिच्यसे । नृऽभिः । नृऽचक्षाः । ऊर्मिः । कविः । अज्यसे । वने ।
पूर्वीः । हि । ते । स्रुतयः । संति । यातवे । सहस्रं । अश्वाः । हरयः । चमूऽसदः ॥२॥

हे सोम त्वमिंद्रायेंद्रार्थं नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिः परि षिच्यसे । अभिषूयसे । तथा हे सोम नृचक्षा नृणां यष्टॄणामनुग्रहेण द्रष्टोर्मिः प्रेर्यमाणः प्रवृद्धो वा कविर्मेधावी च त्वं वन उदकेऽज्यसे । प्रेर्यसे । पूर्वीर्बह्व्यो हि ते स्रुतयो मार्गाश्छिद्राणि संति यातवे यातुं । अल्पस्य सोमस्यापरिमितस्रुतिगमनासंभवात्तस्य बाहुल्यमाह । चमूषदोऽभिषवणफलकयोः सीदतः सहस्रमपरिमिता अश्वा व्याप्ता हरयो हरितवर्णा अंशवः संति । अथवा । इंद्राय परिषिच्यस इत्युक्तत्वादिंद्रप्राप्तौ मार्गसाधनयोः सद्भाव उत्तरार्धेन प्रतिपादितः । ते पुरातन्यः सरण्यः संतींद्रं प्रति यातुं । तथा सहस्रसंख्याका हरितवर्णा अश्वाश्च संति चमूषदस्तवेति ॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अंतरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वंति हर्म्यस्य सक्षणिं याचंते सुम्नं पवमानमक्षितं ॥३॥
समुद्रियाः । अप्सरसः । मनीषिणं । आसीनाः । अंतः । अभि । सोमं । अक्षरन् ।
ताः । ईं । हिन्वंति । हर्म्यस्य । सक्षणिं । याचंते । सुम्नं । पवमानं । अक्षितं ॥३॥

समुद्रियाः । समुद्रसाधनत्वात्समुद्रमंतरिक्षं । तत्संबंधिन्योऽप्सरसः कलशमंतर्यज्ञमध्य आसीनाः पात्रेषु वर्तमाना वसतीवर्यो मनीषिणं मेधाविनं सोममभ्यक्षरन् । अभिषूयमाणं सोममभिक्षरंति । ता ईमेना

एवैमेनं हर्म्यस्य हर्म्यवत्सुखकरस्य यागगृहस्य सचणिं सेचनशीलं हिन्वंति । वर्धयंति । पोषयंति । त एते स्तोतारो वा पवमानं सोमममितमचीणं सुम्नं सुखं याचंते । प्रार्थयंते । तत्रायं भावः । काश्चनाप्सरसः सोमं राजानं मनीषिणं कामयमाना देवानपि परित्यज्य स्वर्गादागत्य राज्ञः समीपे स्थित्वा तस्य रसानाददते । स्वरसेन वर्धयंति तं सुखं च याचंत इति ॥

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवं ॥४॥

गोऽजित् । नः । सोमः । रथऽजित् । हिरण्यऽजित् । स्वःऽजित् । अप्ऽजित् । पवते । सहस्रऽजित् ।
यं । देवासः । चक्रिरे । पीतये । मदं । स्वादिष्ठं । द्रप्सं । अरुणं । मयःऽभुवं ॥४॥

नोऽस्माकं गोजिन्नवां जेता तथा रथजिद्रथस्य जेता हिरण्यजिद्धिरण्यस्य जेता तथा स्वर्जित्स्वर्गस्य सुखस्य जेताब्जिदपां जेता सहस्रजित्सहस्रसंख्याकस्य धनस्य जेता सोमः पवते । पूयते । यं देवासो देवाश्चक्रिरे कृतवंतः । किमर्थं । पीतये पानाय । कीदृशं सोमं । मदं मदकरं स्वादिष्ठं स्वादुतमं द्रप्सं रसात्मकमरुणमरुणवर्णं मयोभुवं सुखस्य भावयितारं ॥

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमंतिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥५॥

एतानि । सोम । पवमानः । अस्मऽयुः । सत्यानि । कृण्वन् । द्रविणानि । अर्षसि ।
जहि । शत्रुं । अंतिके । दूरके । च । यः । उर्वीं । गव्यूतिं । अभयं । च । नः । कृधि ॥५॥

हे सोम एतानि पूर्वमंत्रोक्तानि गवादीनि द्रविणानि सत्यानि कृण्वन् कुर्वन् पवमानः पूयमानोऽर्षसि । पवसे । जहि च शत्रुं योऽस्मच्छत्रुरंतिके समीपे दूरकेऽत्यंतं दूरे देशे च वर्तते तं जहि । तथोर्वीं गव्यूतिं विस्तीर्णं मार्गमभयं च नोऽस्माकं कृधि । कुरु ॥ ॥३॥

अचोदस इति पंचर्चं द्वादशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । अचोदस इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

अचोदसो नो धन्वंत्विंदवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशंत सनिषंत नो धियः ॥१॥

अचोदसः । नः । धन्वंतु । इंदवः । प्र । सुवानासः । बृहत्ऽदिवेषु । हरयः ।
वि । च । नशन् । नः । इषः । अरातयः । अर्यः । नशंत । सनिषंत । नः । धियः ॥१॥

अचोदसोऽचोदना अनन्यप्रेरिता इंदवः सोमा नोऽस्माकं प्र धन्वंतु । प्रगच्छंतु । धन्वतिर्गतिकर्मा । कुत्र । बृहद्दिवेषु प्रभूतदीप्तिषु यागेषु निमित्तेषु । अथवा बृहद्दिवकुलजेषु मध्ये । न इति संबंधः । कीदृशा इंदवः । सुवानासः सूयमाना हरयो हरितवर्णाः । किंच नोऽस्मभ्यं ये चेषोऽन्नस्यारातयोऽदातारः संति ते च वि नशन् । विनश्यंतु । तथार्योऽरयोऽपि नशंत । विनश्यंतु । सनिषंत संभजंतु च नो धियोऽस्मदीयानि कर्माणि देवा अस्मत्प्रियभूता वा ॥

प्र णो धन्वंत्विंदवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥२॥

प्र । नः । धन्वंतु । इंदवः । मदऽच्युतः । धना । वा । येभिः । अर्वतः । जुनीमसि ।
तिरः । मर्तस्य । कस्य । चित् । परिऽह्वृतिं । वयं । धनानि । विश्वधा । भरेमहि ॥२॥

प्र णो धन्वंतु प्रधन्वंतु प्रगच्छंतु नोऽस्माकमिंदवः सोमा मदच्युतो मदस्राविणः । वाथवा । किंचेत्यर्थः । धना धनान्यपि प्र धन्वंतु । येभिर्यैः सोमैरर्वतो बलवतः शत्रोः समीपं जुनीमसि जुनीमः प्राप्नुमः । कस्य चित् कस्यापि मर्तस्य मनुष्यस्य प्रबलस्य परिह्वृतिं परितो बाधां तिरस्तिरस्कुर्वंतो वयं धनानि गवादिरूपाणि विश्वधा सर्वदा भरेमहि । बिभृयाम ॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३॥
उत । स्वस्याः । अरात्याः । अरिः । हि । सः । उत । अन्यस्याः । अरात्याः । वृकः । हि । सः ।
धन्वन् । न । तृष्णा । सं । अरीत । तान् । अभि । सोम । जहि । पवमान । दुःऽआध्यः ॥३॥

उतापि च स सोमः स्वस्या अरात्याः स्वीयस्य शत्रोररिरभिगंता हननाय । उतापि च स सोमोऽन्यस्या अस्मदीयाया अरात्या अस्मच्छत्रोर्वृको हि हिंसकः खलु ॥ अरातिशब्दः स्त्रीलिंगोऽप्यस्ति ॥ अथ प्रत्यक्षस्तुतः । धन्वन्न तृष्णा । धन्व निरुदको देशः । तस्मिन्स्थितस्य तृष्णेव सा यथा तं समरीत प्राप्नोति तद्वत्तानुभयविधाञ्छत्रूञ्जहि ॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४॥
दिवि । ते । नाभा । परमः । यः । आऽददे । पृथिव्याः । ते । रुरुहुः । सानवि । क्षिपः ।
अद्रयः । त्वा । बप्सति । गोः । अधि । त्वचि । अप्ऽसु । त्वा । हस्तैः । दुदुहुः । मनीषिणः ॥४॥

हे सोम ते तव स परम उत्तमोंऽशो दिवि दिवो नाभा नाभौ द्युलोकस्य नाभिस्थानीये देशे । अथवा नाभौ वृष्ट्यादेर्बंधके दिवि द्युलोके । वर्तते य आददे आदत्ते हविर्देवतारूपः सन् । ते तव द्युलोकस्थांशस्यावयवाः पृथिव्याः सानवि समुच्छ्रिते देशे पर्वतादिप्रदेशे क्षिपः क्षिप्ताः संतो रुरुहुः । रोहंति । त्वा त्वां सोमांशभूतमद्रयो ग्रावाणो बप्सति । भक्षयंति । बप्सतिरत्तिकर्मा । कुत्र । गोरधि त्वचि । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । आनडुहेऽधिषवणचर्मणीत्यर्थः । यद्यपीदानींतनाः कृष्णाजिनेऽभिषुण्वंति न गोचर्मणि तथापि तस्मिन्सोमो मीयते क्रयार्थं । तथा च सति यस्मिन् मिमीते तस्याधिषवणचर्मेति सूत्रान्मानसाधनस्यैव गोचर्मणोऽधिषवणचर्मत्वाभिधानाददविरोधः । त्वा त्वां तथाप्सु वसतीवरीषु दुदुहुः । दुहंति । अभिराप्लाव्य दुहंतीत्यर्थः । यद्वा । अप्सूदकेषु रसेषु निमित्तेषु दुदुहुः । कैः साधनैः । हस्तैः । हस्तो हंतेरिति निरुक्तं ।१.७.। के । मनीषिणो मेधाविनोऽध्वर्य्वादयः ॥

एवा त इंदो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुंजंति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५॥
एव । ते । इंदो इति । सुऽभ्वं । सुऽपेशसं । रसं । तुंजंति । प्रथमाः । अभिऽश्रियः ।
निदंऽनिदं । पवमान । नि । तारिषः । आविः । ते । शुष्मः । भवतु । प्रियः । मदः ॥५॥

पूर्वत्राद्रयस्त्वां बप्सतीत्युक्तं । तदेवोच्यते । हे इंदो सोम एवैवमिदानींक्रियमाणप्रकारेण ते तव सुभ्वं

शोभनभवनं सुपेशसं। पेश इति रूपनाम। सुरूपं रसं प्रथमाः प्रथममेव। यद्वा। प्रथम इति मुख्यनाम प्रथमा मुख्याः। ग्रावाणोऽध्वर्यवो वाभिश्रियोऽभिश्रयंतः संतस्तुंजंति। प्रेरयंति। हे पवमान निदं निदमस्मन्निंदकं सर्वमपि शत्रुं नि तारिषः। विनाशय। ते तव शुष्मो बलकरः प्रियः प्रियभूतो मदो मदकरो रस आविर्भवतु ॥ ॥४॥

सोमस्य धारेति पंचर्चं त्रयोदशं सूक्तं भारद्वाजस्य वसुनाम्न आर्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं। तथा चानुक्रांतं। सोमस्य वसुर्भारद्वाज इति ॥ गतो विनियोगः ॥

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥१॥
सोमस्य। धारा। पवते। नृऽचक्षसः। ऋतेन। देवान्। हवते। दिवः। परि।
बृहस्पतेः। रवथेन। वि। दिद्युते। समुद्रासः। न। सवनानि। विव्यचुः ॥१॥

सोमस्याभिषूयमाणस्य धारा पवते। स्यंदते। कीदृशस्य सोमस्य। नृचक्षसो नृणां यजमानानां द्रष्टुः। स चर्तेन यज्ञेन देवान्सोमभाज इंद्रादीन्हवते। कुत्र। दिवस्परि द्युलोकस्योपरि वर्तमानान्। बृहस्पतेर्मंत्रपालकस्य स्तोतू रवथेन शब्देन स्तोत्रेण वि दिद्युते। विद्योतते। समुद्रासो न समुद्रा इव पृथिवीं सवनानि यज्ञसंबंधीनि विव्यचुः। व्याप्नुवंति ॥

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इंद्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२॥
यं। त्वा। वाजिन्। अघ्न्याः। अभि। अनूषत। अयःऽहतं। योनिं। आ। रोहसि। द्युऽमान्।
मघोनां। आयुः। प्रऽतिरन्। महि। श्रवः। इंद्राय। सोम। पवसे। वृषा। मदः ॥२॥

हे वाजिन्नन्नवन् सोम यं त्वा त्वामघ्न्या अहननीया गावोऽभ्यनूषत अभिष्टुवंति। आशिरार्थं स्थिताः शब्दायंत इत्यर्थः। स त्वमयोहतं। अय इति हिरण्यनाम। तेन तद्वान्पाणिर्लक्ष्यते। हिरण्मयेन पाणिना हतं संस्कृतं योनिं स्थानमा रोहसि। द्युमान्दीप्तः सन्। अभि योनिमयोहतं। ऋ० ९.१.२.। इति ह्युक्तं। किंच हे सोम मघोनां हविष्मतां यजमानानामायुरायुष्यं महि महच्छ्रवोऽन्नं यशो वा प्रतिरन्वर्धयन्निंद्रायेंद्रार्थं पवसे। पूयसे। वृषा वर्षको मदो मदकरश्च त्वं ॥

ऐंद्रस्य कुक्षा पवते मदिंतम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमंगलः।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यंदते वृषा ॥३॥
आ। इंद्रस्य। कुक्षा। पवते। मदिन्ऽतमः। ऊर्जं। वसानः। श्रवसे। सुऽमंगलः।
प्रत्यङ्। सः। विश्वा। भुवना। अभि। पप्रथे। क्रीळन्। हरिः। अत्यः। स्यंदते। वृषा ॥३॥

अयं सोम इंद्रस्य कुक्षा कुक्षावा पवते। आसिच्यते। किमर्थं। श्रवसे तस्यान्नाय यष्टुर्वान्नसिद्ध्यर्थं। सोमो विशेष्यते। मदिंतमो मादयितृतम ऊर्जं वसानो बलकरं रसमाच्छादयन्। अपो वसानः। ऋ० ९.७८.१.। इति ह्युक्तं। सुमंगलः शोभनमंगलप्रदः। स सोमः प्रत्यङ् विश्वा भुवना सर्वाणि भूतजातान्यभि पप्रथे। अभिप्रथयति। दिव्युदितः सन् क्रीळन् वेद्यां स क्रीडमानो हरिर्हरितवर्णोऽत्योऽतनकुशलो वृषा वर्षकः स्यंदते रसरूपेण ॥

प्र । नः । धन्वंतु । इंदवः । मदऽच्युतः । धना । वा । येभिः । अर्वतः । जुनीमसि ।
तिरः । मर्तस्य । कस्य । चित् । परिऽह्वृतिं । वयं । धनानि । विश्वधा । भरेमहि ॥२॥

प्र णो धन्वंतु प्रधन्वंतु प्रगच्छंतु णोऽस्माकमिंदवः सोमा मदच्युतो मदस्राविणः । वाथवा । किंचेत्यर्थः । धना धनान्यपि प्र धन्वंतु । येभिर्यैः सोमैरर्वतो बलवतः शत्रोः समीपं जुनीमसि जुनीमः प्राप्नुमः । कस्य चित् कस्यापि मर्तस्य मनुष्यस्य प्रबलस्य परिह्वृतिं परितो बाधां तिरस्तिरस्कुर्वंतो वयं धनानि गवादिरूपाणि विश्वधा सर्वदा भरेमहि । बिभृयाम ॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३॥
उत । स्वस्याः । अरात्याः । अरिः । हि । सः । उत । अन्यस्याः । अरात्याः । वृकः । हि । सः ।
धन्वन् । न । तृष्णा । सं । अरीत । तान् । अभि । सोम । जहि । पवमान । दुःऽआध्यः ॥३॥

उतापि च स सोमः स्वस्या अरात्याः स्वीयस्य शत्रोररिरभिगंता हननाय । उतापि च स सोमोऽन्यस्या अस्मदीयाया अरात्या अस्मच्छत्रोर्वृको हि हिंसकः खलु ॥ अरातिशब्दः स्त्रीलिंगोऽप्यस्ति ॥ अथ प्रत्यक्षस्तुतः । धन्वन्न तृष्णा । धन्व निरुदको देशः । तस्मिन्स्थितस्य तृष्णेव सा यथा तं समरीत प्राप्नोति तद्वत्तानुभयविधाञ्शत्रूञ्जहि ॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४॥
दिवि । ते । नाभा । परमः । यः । आऽददे । पृथिव्याः । ते । रुरुहुः । सानवि । क्षिपः ।
अद्रयः । त्वा । बप्सति । गोः । अधि । त्वचि । अप्ऽसु । त्वा । हस्तैः । दुदुहुः । मनीषिणः ॥४॥

हे सोम ते तव स परम उत्तमोऽंशो दिवि दिवो नाभा नाभौ द्युलोकस्य नाभिस्थानीये देशे । अथवा नाभौ वृष्ट्यादेर्बंधके दिवि द्युलोके । वर्तते य आददे आदत्ते हविर्देवतारूपः सन् । ते तव द्युलोकस्थांशस्यावयवाः पृथिव्याः सानवि समुच्छ्रिते देशे पर्वतादिप्रदेशे क्षिपः क्षिप्ताः संतो रुरुहुः । रोहंति । त्वा त्वां सोमांशभूतमद्रयो ग्रावाणो बप्सति । भक्षयंति । बप्सतिरत्तिकर्मा । कुत्र । गोरधि त्वचि । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी । आनडुहेऽधिषवणचर्मणीत्यर्थः । यद्यपीदानींतनाः कृष्णाजिनेऽभिषुण्वंति न गोचर्मणि तथापि तस्मिन्सोमो मीयते क्रयार्थं । तथा च सति यस्मिन् मिमीते तस्याधिषवणचर्मेति सूत्रान्मानसाधनस्यैव गोचर्मणोऽधिषवणचर्मत्वाभिधानादविरोधः । त्वा त्वां तथाप्सु वसतीवरीषु दुदुहुः । दुहंति । अभिराप्लाव्य दुहंतीत्यर्थः । यद्वा । अप्सूदकेषु रसेषु निमित्तेषु दुदुहुः । कैः साधनैः । हस्तैः । हस्तो हंतेरिति निरुक्तं । १. ७. । के । मनीषिणो मेधाविनोऽध्वर्य्वादयः ॥

एवा त इंदो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुंजंति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५॥
एव । ते । इंदो इति । सुऽभ्वं । सुऽपेशसं । रसं । तुंजंति । प्रथमाः । अभिऽश्रियः ।
निदंऽनिदं । पवमान । नि । तारिषः । आविः । ते । शुष्मः । भवतु । प्रियः । मदः ॥५॥

पूर्वत्राद्रयस्त्वां बप्सतीत्युक्तं । तदेवोच्यते । हे इंदो सोम एवैवमिदानींक्रियमाणप्रकारेण ते तव सुभ्वं

वर्षकस्य। अथापि च देवानां सोमसजुषामुभयस्योभयविधं जन्मनो जातं विद्वाञ्जानन्नसिष्यदत्कलशान्। किं तदुभयं जन्मेति उच्यते। यद्देवजातममुतो द्युलोकादितस्मास्माद्भूलोकाच्चाश्नोति व्याप्नोति यज्ञं। तस्योभयस्य जातं विद्वानिति संबंधः॥

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विंदो भव मघवा राधसो महः।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः॥३॥
आ। नः। सोम। पवमानः। किर। वसु। इंदो इति। भव। मघऽवा। राधसः। महः।
शिक्ष। वयःऽधः। वसवे। सु। चेतुना। मा। नः। गयं। आरे। अस्मत्। परा। सिचः॥३॥

आ किर सर्वतो विक्षिप नोऽस्मभ्यं हे सोम पवमानः पूयमानस्त्वं। किं। वसु वासकं धनं गवादिरूपं। किंचेंदो दीप्त हे सोम मघवा धनवांस्त्वं महो महतो राधसो धनस्य भव दातेति शेषः। तथा हे वयोधो ऽन्नस्य धातः सोम वसवे वासकाय परिचरते मह्यं चेतुना प्रकृष्टेन प्रज्ञानेन सु सुखं कल्याणं शिक्ष। देहि। नोऽस्मभ्यं प्रदेयं गयं धनमस्मदारेऽस्मत्तो दूरं मा परा सिचः। मा प्रेरय॥

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छंतु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती॥४॥
आ। नः। पूषा। पवमानः। सुऽरातयः। मित्रः। गच्छंतु। वरुणः। सऽजोषसः।
बृहस्पतिः। मरुतः। वायुः। अश्विना। त्वष्टा। सविता। सुऽयमा। सरस्वती॥४॥

सुरातयः सुदानाः सजोषसः संगताः पूषादयो देवा आ गच्छंतु नोऽस्मान् अस्माकं यज्ञं वा। तथा सुयमा। यम्यते नियम्यत इति यमो विग्रहः। सुविग्रहा सरस्वती चागच्छतु॥

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्व१ंतरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषंत॥५॥
उभे इति। द्यावापृथिवी इति। विश्वमिन्वे इति विश्वंऽइन्वे। अर्यमा। देवः। अदितिः।
विऽधाता।
भगः। नृऽशंसः। उरु। अंतरिक्षं। विश्वे। देवाः। पवमानं। जुषंत॥५॥

विश्वमिन्वे। इन्वतिर्व्याप्तिकर्मा। सर्वव्यापिन्यावुभे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अर्यमादयस्त्रयश्च भगश्च नृशंसो नृभिः शंसनीय उर्वंतरिक्षं च विश्वे देवाश्च पवमानं पूयमानं सोमं जुषंत। सेवंते॥ ॥६॥

असावीति पंचर्चं पंचदशं सूक्तं। ऋष्याद्याः पूर्ववत्। अस्यानुक्रमणिका। असावीति त्रिष्टुबंते इति। अनेन द्विवचनेन प्रकृतयोः प्र सोमस्येत्यादिकयोर्द्वयोरपि त्रिष्टुबंतता प्रतिपादिता॥ गतो विनियोगः॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवंतमासदं॥१॥
असावि। सोमः। अरुषः। वृषा। हरिः। राजाऽइव। दस्मः। अभि। गाः। अचिक्रदत्।
पुनानः। वारं। परि। एति। अव्ययं। श्येनः। न। योनिं। घृतऽवंतं। आऽसदं॥१॥

सोमोऽसावि । अभिषुतोऽभूत् । कीदृशः सोमः । अरुष आरोचमानो वृषा वर्षको हरिर्हरितवर्णः । स च राजेव दस्मो दर्शनीयः सन् गा उदकान्यभिलक्ष्याचिक्रदत् । शब्दं करोति रसनिर्मोकसमये । पश्चात्पुनानः पूयमानोऽव्ययमविमयं वारं वालं दशापवित्रं पर्येति । ततः श्येनो न श्येन इव योनिं स्वकीयं स्थानं घृतवंतमुदकवंतमासदमासदनाय पवत इति शेषः ॥

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजं ॥२॥
कविः । वेधस्या । परि । एषि । माहिनं । अत्यः । न । मृष्टः । अभि । वाजं । अर्षसि ।
अपऽसेधन् । दुःऽइता । सोम । मृळय । घृतं । वसानः । परि । यासि । निःऽनिजं ॥२॥

हे सोम कविः क्रांतदर्शी सन् वेधस्या यागविधानेच्छया माहिनं मंहनीयं पवित्रं पर्येषि । परिगच्छसि । पश्चान्मृष्टः प्रक्षालितोऽत्यो नाश्व इव वाजं संग्राममभ्यर्षसि । हे सोम दुरितास्माकं दुरितान्यपसेधन् परिहरन् मृळय । सुखय । घृतमुदकं वसान आच्छादयन् परि यासि । अभिगच्छसि । किं । निर्णिजं निर्णेजकं पवित्रं ॥

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥३॥
पर्जन्यः । पिता । महिषस्य । पर्णिनः । नाभा । पृथिव्याः । गिरिषु । क्षयं । दधे ।
स्वसारः । आपः । अभि । गाः । उत । असरन् । सं । ग्रावऽभिः । नसते । वीते । अध्वरे ॥३॥

यस्य महिषस्य महतः पर्णिनः पर्णवतः पतनवतो वा सोमस्य पर्जन्यः पिता जनकः स सोमः पृथिव्या नाभा नाभौ नाभिस्थानीये हविर्धाने गिरिषु गिरिसंबंधिग्रावसु क्षयं निवासं दधे । धारयत्यभिषवसमये । उतापि च स्वसारोऽंगुलय आपो वसतीवर्यो गा आशिरार्थाः स्तुतयो वाभ्यसरन् । अभिसरंति । सं नसते संगच्छते च ग्रावभिः साकं । कुत्र । वीते कांतेऽध्वरे यज्ञे ॥

जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अंतर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिंद्यो वृजने सोम जागृहि ॥४॥
जायाऽइव । पत्यौ । अधि । शेवं । मंहसे । पज्रायाः । गर्भ । शृणुहि । ब्रवीमि । ते ।
अंतः । वाणीषु । प्र । चर । सु । जीवसे । अनिंद्यः । वृजने । सोम । जागृहि ॥४॥

जायेव पत्यौ जाया यथा स्वभार्या भर्तरि सुखं प्रयच्छति तद्वच्छेव शेवं ॥ द्वितीयाया अभावाभावश्छांदसः ॥ सुखं मंहसे । प्रयच्छसि यजमाने । हे पज्राया गर्भ सोम शृणुहि शृणु स्तुतीर्यास्ते तुभ्यं ब्रवीमि । पजिर्गतिकर्मा । पज्रा पृथिवीत्याहुः । अपि वा माध्यमिका वाक् पज्रा । भूमावोषधिरूपेण जातत्वाद्गर्भत्वं । माध्यमिकाया वाचोऽपि वृष्टिसाधनत्वात्तत्पुत्रत्वं । स त्वं वाणीषु वाक्षु स्तुतिष्वंतर्मध्ये सु सुष्ठु प्र चर जीवसेऽस्माकं जीवनाय । हे सोम अनिंद्यः स्तुत्यस्त्वं वृजनेऽस्माकं शत्रुबले जागृहि । प्रबुद्धो भव ॥

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिंदो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचंते ॥५॥
यथा । पूर्वेभ्यः । शतऽसाः । अमृध्रः । सहस्रऽसाः । परिऽअयाः । वाजं । इंदो इति ।
एव । पवस्व । सुविताय । नव्यसे । तव । व्रतं । अनु । आपः । सचंते ॥५॥

हे इंदो सोम यथा पूर्वेभ्यो महर्षिभ्यः स्तोतृभ्यः शतसाः शतसंख्याकस्य धनस्य दाता तथा सहस्रसाश्च सन् पर्ययाः परिगच्छेः एवैवमिदानीमपि नव्यसे नवतराय सुवितायाभ्युदयाय पवस्व । चर । तव व्रतं कर्मान्वापो वसतीवर्यः सचंते । अतः पवस्व ॥ ॥ ७ ॥

पवित्रं त इति पंचर्चं षोडशं सूक्तमांगिरसस्य पवित्रस्यार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । पवित्रं ते पवित्र इति ॥ अभिप्लव आद्ये ऋचौ वक्तव्ये । सूत्रितं च । पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पत इति द्वे वि यत्पवित्रं धिषणा अतन्वत । आ॰ ४. ६. । इति ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहंतस्तत्समाशत ॥ १ ॥
पवित्रं । ते । विऽततं । ब्रह्मणः । पते । प्रऽभुः । गात्राणि । परि । एषि । विश्वतः ।
अतप्तऽतनूः । न । तत् । आमः । अश्नुते । शृतासः । इत् । वहंतः । तत् । सं । आशत ॥ १ ॥

हे ब्रह्मणस्पते मंत्रस्य स्वामिन् सोम ते पवित्रं शोधकमंगं विततं । सर्वत्र विस्तृतं । स प्रभुः प्रभविता त्वं गात्राणि पातुरंगानि पर्येषि । परिगच्छसि । विश्वतः सर्वतः । तव तत्पवित्रमतप्ततनूः पयोव्रतादिनासंतप्तगात्र आमोऽपरिपक्वो नाश्नुते । न व्याप्नोति । शृतास इच्छृता एव परिपक्वा एव वहंतो यागं निर्वहंतस्तत्पवित्रं समाशत । व्याप्नुवंति ॥

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचंतो अस्य तंतवो व्यस्थिरन् ।
अवंत्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठंति चेतसा ॥ २ ॥
तपोः । पवित्रं । विऽततं । दिवः । पदे । शोचंतः । अस्य । तंतवः । वि । अस्थिरन् ।
अवंति । अस्य । पवितारं । आशवः । दिवः । पृष्ठं । अधि । तिष्ठंति । चेतसा ॥ २ ॥

तपोः शत्रूणां तापकस्य सोमस्य पवित्रं शोधकमंगं तेजो वा दिवस्पदे द्युलोकस्योच्छ्रिते स्थाने विततं । विस्तृतं । तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत् । तै॰ ब्रा॰ ३. २. १. १. । इति ब्राह्मणं । अस्य तंतवोंऽशवः शोचंतो दीप्यमाना व्यस्थिरन् । विविधं तिष्ठंति । पृथिव्यां हविर्धाने वा । अस्य सोमस्याशवः शीघ्रगामिनो रसा अवंति । रक्षंति । कं । पवितारं पावयितारं । यजमानमवंति रक्षंति होमद्वारा पश्चाद्धुता दिवो द्युलोकस्य पृष्ठं पृष्ठभागमुन्नतदेशं चेतसा बुद्ध्या देवगमनेच्छावत्याधि तिष्ठंति । आश्रयंते ॥

अभिप्लवेऽरूरुचदितिषावपनीया । सूत्रितं च । ईळे द्यावापृथिवी इति प्रागुत्तमाया अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय इत्यावपेत । आ॰ ४. ६. । इति ॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥
अरूरुचत् । उषसः । पृश्निः । अग्रियः । उक्षा । बिभर्ति । भुवनानि । वाजऽयुः ।
मायाऽविनः । ममिरे । अस्य । मायया । नृऽचक्षसः । पितरः । गर्भं । आ । दधुः ॥ ३ ॥

उषसः संबंधी पृश्निरादित्यः । पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुत एनं वर्ण इति निरुक्तं । २. १४. । अग्रियो मुख्यः सोऽयं सोमोऽरूरुचत् । रोचयति । स उक्षा जलस्य सेक्ता बिभर्ति पुष्णात्युदकेन भुवनानि भूतजातानि वाजयुस्तेषामन्नमिच्छन् । मायाविनो । माया प्रज्ञा । प्रज्ञावंतोऽस्य सोमस्य मायया प्रज्ञया ममिरे । निर्मांति । सोमस्यैकैकांशपानेन जातबला अग्न्यादयः स्वस्वव्यापारेण जगत्सृजंतीत्यर्थः । तथास्य मायया

नृचक्षसो नृणां द्रष्टारः पालका देवा अंगिरसः पितरो वा गर्भमा दधुः । धारयंति । ओषधीषु वात्र सूर्यात्मा सोमः सूयते सूर्यरश्म्यनुगमाधीनवर्धनाच्चंद्रस्य । अयमुषसः पृश्निः सविताऽचक्षत् । रोचयति सर्वं रोचते वा । शिष्टं समानं । तत्संबंधिनो नृचक्षसो नृणां द्रष्टारः पितरो जगद्रक्षका रश्मयो गर्भमा दधुर्वृष्ट्यर्थं ॥

अभिष्टवे खरमवेक्षमाणो गंधर्व इत्येत्येतां पठेत् । सूत्रितं च । गंधर्व इत्था पदमस्य रक्षतीति खरमवेक्ष्य । आ० ४.७. । इति ॥

गं॒ध॒र्व इ॒त्था प॒दम॑स्य रक्षति॒ पाति॑ दे॒वानां॒ जनि॑मा॒न्यद्भु॑तः ।
गृ॒भ्णाति॑ रि॒पुं नि॒धया॑ नि॒धाप॑तिः सु॒कृत्त॑मा॒ मधु॑नो भ॒क्षमा॑शत ॥४॥
गं॒ध॒र्वः । इ॒त्था । प॒दं । अ॒स्य॒ । र॒क्ष॒ति॒ । पाति॑ । दे॒वानां॑ । जनि॑मानि । अद्भु॑तः ।
गृ॒भ्णाति॑ । रि॒पुं । नि॒ऽधया॑ । नि॒धाऽप॑तिः । सु॒कृत्ऽत॑माः । मधु॑नः । भ॒क्षं । आ॒श॒त॒ ॥४॥

गंधर्व उदकानां स्तुतीनां वा धारक आदित्योऽस्य सोमस्य पदं स्थानं द्युसंबंधीत्था सत्यं रक्षति । सोऽयं सोमो देवानां जनिमानि जन्मानि । देवानित्यर्थः । पाति । रक्षति । अद्भुतो महान् । किंचायं रिपुमस्मद्वैरिणं निधया । निधा पाश्या । पाशसमूहेन गृभ्णाति । गृह्णाति । निधापतिः पशुसमूहस्वामी । तस्यास्य मधुनो मधुररसस्य भक्षं सुकृत्तमा अतिशयेन सुकृतकर्तार एवाशत । प्राप्नुवंति ॥

अंतिमे प्रवर्ग्ये परिधानीयायाः पूर्वं हविर्हविष्म इत्येषावपनीया । सूत्रितं च । उत्तमे प्रागुत्तमाया हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यमित्यावपेत । आ० ४.७. । इति ॥

ह॒विर्ह॑विष्मो॒ महि॒ सद्म॒ दैव्यं॒ नभो॒ वसा॑नः॒ परि॑ यास्यध्व॒रं ।
राजा॑ प॒वित्र॑रथो॒ वाज॒मारु॑हः स॒हस्र॑भृष्टिर्जयसि॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥५॥
ह॒विः । ह॒वि॒ष्मः॒ । महि॑ । सद्म॑ । दैव्यं॑ । नभः॑ । वसा॑नः । परि॑ । या॒सि॒ । अ॒ध्व॒रं ।
राजा॑ । प॒वित्र॑ऽरथः । वाजं॑ । आ । अ॒रु॒हः॒ । स॒हस्र॑ऽभृष्टिः । ज॒य॒सि॒ । श्रवः॑ । बृ॒हत् ॥५॥

हे हविष्मः । हविरित्युदकनाम । उदकवन् सोम हविर्भूतं नभः । उदकनामैतत् । उदकरसमित्यर्थः । वसान आच्छादयन् महि महद्दैव्यं सद्म यागगृहं परि यासि । परिगच्छसि । अध्वरं निर्वोढुं । किंच हे सोम राजा पवित्ररथश्च वाजं संग्राममारुहः । आरोहसि । यद्वा । तत्र तत्र संग्रामवाचकेन शब्देन यज्ञव्यवहारदर्शनादत्र वाजो यज्ञाख्यसंग्रामः । तमारुहः । यथा कश्चिद्राजा रथमारुह्य स्वस्थानं प्रविशति तद्वदिति भावः । किंच सहस्रभृष्टिर्बहुभ्रंशः । अपरिमितगमन इत्यर्थः । अथवा भृष्टिरायुधं । असंख्यातायुधः सन् । बृहच्छ्रवो महदन्नं जयस्यस्माकं ॥ ॥ ८ ॥

पवस्व देवमादन इति पंचर्चं सप्तदशं सूक्तं वाचः पुत्रस्य प्रजापतेरार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । पवस्व वाच्यः प्रजापतिरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

पव॑स्व देव॒माद॑नो॒ विच॑र्षणिर॒प्सा इंद्रा॑य॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑ ।
कृ॒धी नो॑ अ॒द्य वरि॑वः स्वस्ति॒मदु॑रुक्षि॒तौ गृ॑णीहि॒ दैव्यं॒ जनं॑ ॥१॥
पव॑स्व । दे॒व॒ऽमाद॑नः । विऽच॑र्षणिः । अ॒प्साः । इंद्रा॑य । वरु॑णाय । वा॒यवे॑ ।
कृ॒धि । नः॒ । अ॒द्य । वरि॑वः । स्व॒स्ति॒ऽमत् । उ॒रु॒ऽक्षि॒तौ । गृ॒णी॒हि॒ । दैव्यं॑ । जनं॑ ॥१॥

हे सोम देवमादनो देवानां मादयिता विचर्षणिर्विद्रष्टाप्सा अपां दाता त्वं पवस्व । क्षर । कस्मै । इंद्राय

वरुणाय वायवे च। नोऽस्माकं वरिवो धनं स्वस्तिमत्। स्वस्तीत्यविनाशनाम। तद्वद्धनं कृधि। कुरु। उरुक्षितौ विस्तीर्णायां भूमौ यज्ञसंबंधिन्यां दैव्यं जनं देवसंबंधिनं संघं। जनशब्दः संघवाची। तं गृणीहि। गृणातिः शब्दकर्मा। शब्दय। यथा त्वदीयाभिषवशब्दं श्रुत्वा देवा आगच्छंति तथा गृणीहीत्यर्थः। अथवा दैव्यं जनमित्यृषिः स्वात्मानमाह। देवसंबंधिनं जनं मां गृणीहि। साधु संभक्तेति शब्दय॥

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इंदुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः॥२॥

आ। यः। तस्थौ। भुवनानि। अमर्त्यः। विश्वानि। सोमः। परि। तानि। अर्षति।
कृण्वन्। संऽचृतं। विऽचृतं। अभिष्टये। इंदुः। सिसक्ति। उषसं। न। सूर्यः॥२॥

योऽमर्त्यो देवः सोमो भुवनानि लोकाना तस्थौ आस्थितवान् तानि विश्वानि सर्वाणि भुवनानि पर्यर्षति परितो गच्छति। परितो रक्षतीत्यर्थः। सोऽयमिंदुर्यज्ञं यजमानं वा संचृतं देवैः फलैर्वा संबद्धं कृण्वन् कुर्वन् विचृतमसुरादिभिर्दुःखैर्वा विमुक्तं कृण्वन्नभितो यागाय सिषक्ति। सेवते यज्ञं। उषसं न सूर्यः सूर्य उषसमिव यथाभिष्टयेऽभितो गमनाय प्राणिनां संचृतं प्रकाशैः संयुक्तं विचृतं तमोभिर्विमुक्तं च लोकं कुर्वन्नुषसं सेवते तद्वत्॥

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुत इंद्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनं॥३॥

आ। यः। गोभिः। सृज्यते। ओषधीषु। आ। देवानां। सुम्ने। इषयन्। उपऽवसुः।
आ। विऽद्युता। पवते। धारया। सुतः। इंद्रं। सोमः। मादयन्। दैव्यं। जनं॥३॥

यः सोमो गोभी रश्मिभिरा सृज्यत ओषधीषु। यं सोमं स्थापयंतीत्यर्थः। किमर्थं। देवानां सुम्ने सुखे निमित्ते सति। कीदृशोऽयं। इषयन् देवान्प्राप्तुमिच्छन्॥ इष गतौ॥ धनमिच्छन्वा। तथोपावसुः शत्रुभ्यः सकाशात्प्राप्तधनः। स सोमो विद्युता विद्योतमानया धारया आ पवते सुतः सन्। किं कुर्वन्। दैव्यं देवस्वामिनमिंद्रं मादयन्॥

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधं।
इंदुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेंद्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति॥४॥

एषः। स्यः। सोमः। पवते। सहस्रऽजित्। हिन्वानः। वाचं। इषिरां। उषःऽबुधं।
इंदुः। समुद्रं। उत्। इयर्ति। वायुऽभिः। आ। इंद्रस्य। हार्दि। कलशेषु। सीदति॥४॥

एष स्य स सोमः पवते। पूयते। कीदृश एषः। सहस्रजित् सहस्रस्य जेता। किं कुर्वन्। वाचमृत्विजां स्तुतिरूपां वाचं हिन्वानः प्रेरयन्। कीदृशीं वाचं। इषिरां गमनशीलां स्तुत्यं प्रति गंत्रीमुषर्बुधमुषसि प्रबुद्धां। सोऽयमिंदुः सोमः समुद्रं समुद्रियं रसमुदियर्ति उन्नमयति वायुभिर्गंतृभिरध्वर्य्वादिभिः वायुभिरेव वा प्रेर्यमाणः सन्। तथेंद्रस्य हार्दि। हार्दं प्रियं। तद्धार्दींद्रस्य प्रियवद्यथा भवति तथा कलशेषु द्रोणकलशप्रभृतिष्वा सीदति॥

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणंति मतिभिः स्वर्विदं।
धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः॥५॥

अभि। त्यं। गावः। पयसा। पयःऽवृधं। सोमं। श्रीणंति। मतिऽभिः। स्वःऽविदं।
धनंऽजयः। पवते। कृत्व्यः। रसः। विप्रः। कविः। काव्येन। स्वःऽचनाः ॥५॥

त्यं तं पयोवृधं पयसो वर्धकं सोमं गावः पयसा स्वकीयेन क्षीरेण श्रीणंति। श्रयणं कुर्वंति। यो मतिभिः स्तुतिभिः सर्वं प्रयच्छति तं स्वर्विदं सोमं श्रीणंति। स धनंजयः शत्रुधनानां जेता सोमः काव्येन कर्मणा पवते। पूयते। कीदृशः सः। कृत्व्यः कर्मण्यो रसो रसरूपो विप्रो मेधावी कविः क्रांतप्रज्ञः स्वर्चनाः सर्वान्नः। चन इत्यन्ननाम॥ ॥९॥

इंद्रायेति द्वादशर्चमष्टादशं सूक्तं भृगुगोत्रस्य वेनस्यार्षं पवमानसोमदेवताकं। एकादशीद्वादश्यौ त्रिष्टुभौ शिष्टा जगत्यः। तथा चानुक्रांतं। इंद्राय द्वादश वेनो भार्गवो द्वित्रिष्टुबंतमिति॥ गतो विनियोगः॥

इंद्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वंत इह संत्विंदवः ॥१॥
इंद्राय। सोम। सुऽसुतः। परि। स्रव। अप। अमीवा। भवतु। रक्षसा। सह।
मा। ते। रसस्य। मत्सत। द्वयाविनः। द्रविणस्वंतः। इह। संतु। इंदवः ॥१॥

हे सोम त्वं सुषुतः सुष्ठभिषुतः सन्निंद्रार्थं परि स्रव। परितः स्रव। गच्छ। रसं मुंच। अमीवा रोगो रक्षसा सहाप भवतु। अपगतो वियुक्तो भवतु। ते तव रसस्य स्वांशं रसं पीत्वा मा मत्सत। मा माद्यंतु। के। द्वयाविनः। द्वयं सत्यानृतं। तेन युक्ताः। पापिन इत्यर्थः। किंचेंदवस्ते रसा इहास्मिन्यज्ञे द्रविणस्वंतो धनवंतः संतु। भवंतु॥

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भंदनायतः पिबेंद्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥
अस्मान्। सऽमर्ये। पवमान। चोदय। दक्षः। देवानां। असि। हि। प्रियः। मदः।
जहि। शत्रून्। अभि। आ। भंदनाऽयतः। पिब। इंद्र। सोमं। अव। नः। मृधः। जहि ॥२॥

हे पवमान सोम अस्मान्त्समर्ये संग्रामे चोदय। प्रेरय। दक्षो ह्यसि। समर्थः खलु भवसि देवानां मध्ये। यद्वा। देवानां प्रीणनाय दक्षोऽसि। यद्वा। दक्षस्त्वं देवानां प्रियः प्रियकरो मदो मादयितासि हि। जहि च शत्रूनस्माकं। अभ्यागच्छ चास्मान्प्रति भंदनायतः। भंदनाः स्तुतयः। भंदतेः स्तुतिकर्मणः। ता इच्छतः। पिब चेंद्र सोमं अव जहि च नोऽस्माकं मृधः संग्रामात्॥

अदब्ध इंदो पवसे मदिंतम आत्मेंद्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।
अभि स्वरंति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥३॥
अदब्धः। इंदो इति। पवसे। मदिन्ऽतमः। आत्मा। इंद्रस्य। भवसि। धासिः। उत्ऽतमः।
अभि। स्वरंति। बहवः। मनीषिणः। राजानं। अस्य। भुवनस्य। निंसते ॥३॥

हे इंदो क्लिद्यमान सोम अदब्धोऽहिंसितो मदिंतमो मादयितृतमस्त्वं पवसे। पूयसे। आत्मा स्वयमेवोत्तमस्त्वमिंद्रस्य धासिरन्नं भवसि। अस्य भुवनस्य राजानं सोमं बहवो मनीषिणः स्तोतारोऽभि स्वरंति। अभिष्टुवंति। निंसते। गच्छंति च॥

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इंद्रायेंदुः पवते काम्यं मधु ।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥
सहस्रऽनीथः । शतऽधारः । अद्भुतः । इंद्राय । इंदुः । पवते । काम्यं । मधु ।
जयन् । क्षेत्रं । अभि । अर्ष । जयन् । अपः । उरुं । नः । गातुं । कृणु । सोम । मीढ्वः ॥४॥

सहस्रनीथो बहुप्रकारनयनः शतधारोऽपरिमितधारोपेतोऽद्भुत आश्चर्यकरो महानिंदुरिंद्राय काम्यं मधु पवते । किंच क्षेत्रमस्मभ्यमपश्च जयन्नभ्यर्ष । अभिगच्छ पवित्रं । हे सोम मीढ्वः सेक्तः गातुं मार्गं नोऽस्माकमुरुं विस्तीर्णं कृणु । कुरु ॥

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिंद्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥
कनिक्रदत् । कलशे । गोभिः । अज्यसे । वि । अव्ययं । समया । वारं । अर्षसि ।
मर्मृज्यमानः । अत्यः । न । सानसिः । इंद्रस्य । सोम । जठरे । सं । अक्षरः ॥५॥

हे सोम कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् कलशे वर्तमानो गोभिः पयोभिरज्यसे । सिक्तो भवसि । अव्ययमविमयं वारं वालं दशापवित्रं समया तत्समीपे व्यर्षसि । विविधं गच्छसि । मर्मृज्यमानः शोध्यमानोऽत्यो नाश्व इव सानसिः संभजनशीलस्त्वं हे सोम इंद्रस्य जठरे समक्षरः । सम्यक् चरसि ॥

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिंद्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥
स्वादुः । पवस्व । दिव्याय । जन्मने । स्वादुः । इंद्राय । सुहवीतुऽनाम्ने ।
स्वादुः । मित्राय । वरुणाय । वायवे । बृहस्पतये । मधुऽमान् । अदाभ्यः ॥६॥

हे सोम स्वादुस्त्वं दिव्याय जन्मने देवगणाय पवस्व । तथा सुहवीतुनाम्ने शोभनाह्वाननामधेयायेंद्राय स्वादुस्त्वं पवस्व । मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये च पवस्व मधुमान्मधुररसोऽदाभ्योऽन्यैरहिंस्यस्त्वं ॥ ॥१०॥

अत्यं मृजंति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षंति सुष्टुतिमेंद्रं विशंति मदिरास इंदवः ॥७॥
अत्यं । मृजंति । कलशे । दश । क्षिपः । प्र । विप्राणां । मतयः । वाचः । ईरते ।
पवमानाः । अभि । अर्षंति । सुऽस्तुतिं । आ । इंद्रं । विशंति । मदिरासः । इंदवः ॥७॥

अत्यमतनवंतमश्वस्थानीयं वा सोमं कलशे दश क्षिपो दशांगुलयोऽध्वर्युसंबंधिन्यो मृजंति । शोधयंति । तथा विप्राणां मध्ये मतयः स्तोतारो वाचः स्तुतीरीरते । प्रेरयंति । पवमानाः सोमा अभ्यर्षंति अभिगच्छंति सुष्टुतिं शोभनस्तुतिं । इंद्रं मदिरासो मदकरा इंदवः सोमा आ विशंति । प्रविशंति ॥

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेंदो जयेम त्वया धनंधनं ॥८॥

पवमानः । अभि । अर्ष । सुऽवीर्यं । उर्वीं । गव्यूतिं । महि । शर्म । सऽप्रथः ।
माकिः । नः । अस्य । परिऽसूतिः । ईशत । इंदो इति । जयेम । त्वया । धनंऽधनं ॥८॥

हे सोम पवमानः पूयमानस्त्वं सुवीर्यमुर्वीं महतीं गव्यूतिं गोमार्गं च महि महत् सप्रथः सर्वतः पृथु शर्म गृहं सुखं वाभ्यर्ष । अभिगमय । नोऽस्माकमस्य कर्मणः परिषूतिर्हिंसायाः परिप्रेरको द्वेषी माकिरीशत । मेश्वरो भवतु । हे इंदो सोम त्वया साधनेन धनं धनं सर्वमपि धनं जयेम ॥

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥९॥
अधि । द्यां । अस्थात् । वृषभः । विऽचक्षणः । अरूरुचत् । वि । दिवः । रोचना । कविः ।
राजा । पवित्रं । अति । एति । रोरुवत् । दिवः । पीयूषं । दुहते । नृऽचक्षसः ॥९॥

अध्यस्थाद्द्यां द्युलोकं वृषभो वर्षिता विचक्षणो विद्रष्टायं सोमः । तथा स्थित्वा दिवो द्युलोकसंबंधीनि रोचना रोचमानानि नक्षत्रादीनि व्यरूरुचत् । विविधं रोचयति । कविः क्रांतप्रज्ञः सन्राजा सोमः पवित्रं दशापवित्रमत्येति । अतिक्रम्य गच्छति । रोरुवच्छब्दं कुर्वन् । दिवो द्युलोकस्य पीयूषं सारं रसं नृचक्षसो नृणां द्रष्टारः सोमा दुहते । स्रवंति । स्वकीयं रसमांतरिक्ष्यमुदकं वा दुहंतीत्यर्थः ॥

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहंत्युक्षणं गिरिष्ठां ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिंधोरूर्मा मधुमंतं पवित्र आ ॥१०॥
दिवः । नाके । मधुऽजिह्वाः । असश्चतः । वेनाः । दुहंति । उक्षणं । गिरिऽस्थां ।
अप्ऽसु । द्रप्सं । ववृधानं । समुद्रे । आ । सिंधोः । ऊर्मा । मधुऽमंतं । पवित्रे । आ ॥१०॥

दिवो द्योतमानस्य यज्ञस्य संबंधिनि नाके दुःखरहिते हविर्धानाख्ये स्थाने मधुजिह्वा मधुरवाचोऽसश्चतोऽसंसक्ताः । पृथक्पृथगित्यर्थः । यद्वा चिरमकृत्वा शीघ्रमभिषुण्वंतो वेना एतन्नामका महर्षयो दुहंति । अभिषुण्वंति । यद्वा । द्युलोक एव वेनाः कांता देवा दुहंति । तं सोममुक्षणं सेक्तारं गिरिष्ठां गिरावुन्नते देशे वर्तमानमप्सूदकेषु वसतीवरीष्वंतर्ववृधानं वर्धमानं द्रप्सं रसरूपं समुद्रे समुद्रवत्प्रवृद्धे द्रोणकलशे सिंधोरुदकस्योर्मावूर्मौ पुर आ सिंचंतीति शेषः । तदर्थं मधुमंतं माधुर्योपेतं रसं पवित्रे दशापवित्र आ सिंचंतीति शेषः ॥

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपंत पूर्वीः ।
शिशुं रिहंति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थां ॥११॥
नाके । सुऽपर्णं । उपपप्तिऽवांसं । गिरः । वेनानां । अकृपंत । पूर्वीः ।
शिशुं । रिहंति । मतयः । पनिप्नतं । हिरण्ययं । शकुनं । क्षामणि । स्थां ॥११॥

नाके द्युलोके वर्तमानं पश्चादुत्पतंतं पतयंतं सोमं वेनानामस्माकं संबंधिन्यः पूर्वीर्बह्व्यो गिरः स्तुतय उपाकृपंत । उपकल्पंते । अभिष्टुवंतीत्यर्थः । तं शिशुं शिशुवत्संस्कर्तव्यं सोमं मतयः स्तुतयो रिहंति । लिहंति । संस्पृशंति । प्राप्नुवंतीत्यर्थः । कीदृशं शिशुं । पनिप्नतं शब्दायंतं ॥ पनतेर्यङ्लुगंताच्छतर्यभ्यासस्य निगागम उपधालोपश्च ॥ हिरण्ययं हिरण्मयं शकुनं पक्षिणं क्षामणि क्षमायां स्थां हविर्धाने स्थां वर्तमानं ॥

ऊर्ध्वो गंधर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥

ऊर्ध्वः । गंधर्वः । अधि । नाके । अस्थात् । विश्वा । रूपा । प्रतिऽचक्षाणः । अस्य ।
भानुः । शुक्रेण । शोचिषा । वि । अद्यौत् । प्र । अरूरुचत् । रोदसी इति । मातरा ।
शुचिः ॥१२॥

ऊर्ध्व उन्नतो गंधर्वो रश्मीनां धारकः सोमो नाक आदित्येऽध्यस्थात् । अधितिष्ठति । किं कुर्वन् । अस्यादित्यस्य विश्वा विश्वानि रूपाणि प्रतिचक्षाणः प्रतिपश्यन् । भानुरादित्यः सोमाधिष्ठितः सञ्छुक्रेण दीप्तेन शोचिषा तेजसा व्यद्यौत् । विद्योतते । न केवलं स्वयमेव अपि तु मातरा निर्मात्र्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यौ प्रारूरुचत् । प्ररोचयति । शुचिर्दीप्तः सूर्यः ॥ ॥११॥ ॥४॥

अथ पंचमे चानुवाक एकादश सूक्तानि । तत्र प्र त इत्यष्टाचत्वारिंशदृचं प्रथमं सूक्तं । प्रथमदशर्चस्याकृष्टा इति माषा इति च द्विनामान ऋषिगणा द्रष्टारः । द्वितीयस्य दशर्चस्य सिकता इति नीवावरी इति द्विनामान ऋषिगणाः । तृतीयस्य दशर्चस्य पृश्नय इत्यजा इति च नामद्वयोपेता ऋषिगणाः । अदृष्टार्थमेषां द्विनामत्वमवगंतव्यं । चतुर्थस्य दशर्चस्याकृष्टा माषा इत्यादिद्विनामानस्त्रयो गणा द्रष्टारः । एवं चत्वारिंशन्नताः । अथ पंचानां भौमोऽत्रिर्ऋषिः । ततस्तिसृणां गृत्समदः । जगती छंदः । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रांतं । प्र तेऽष्टाचत्वारिंशदृषिगणा दशर्चा आकृष्टा माषाः प्रथमे सिकता निवावरी द्वितीये पृश्नयोऽजास्तृतीये त्रयश्चतुर्थेऽत्रिः पंचांत्यास्तिस्रो गृत्समद इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षंति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमंत इंदवो मदिंतमासः परि कोशमासते ॥१॥

प्र । ते । आशवः । पवमान । धीऽजवः । मदाः । अर्षंति । रघुजाःऽइव । त्मना ।
दिव्याः । सुऽपर्णाः । मधुऽमंतः । इंदवः । मदिन्ऽतमासः । परि । कोशं । आसते ॥१॥

हे पवमान पूयमान सोम ते तवाशवो व्याप्ता धीजवो मनोवेगा मदा मदकरा रसा अर्षंति । गच्छंति । त्मनात्मनैव । अनायासेनेत्यर्थः । क इव । रघुजा इव । रघुः शीघ्रगा वडवा । तत्र जाता रघुजाः । त इव निर्गतास्ते दिव्या दिवि भवाः । अंतरिक्षे दशापवित्रे धार्यमाणा इत्यर्थः । सुपर्णाः सुपतना मधुमंतो माधुर्योपेता मदिंतमासोऽतिशयेन मादयितृतमा इंदवो दीप्ता रसाः कोशं द्रोणकलशं पर्यासते । पर्युपविशंति ॥

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिंद्रमिंदवो मधुमंत ऊर्मयः ॥२॥

प्र । ते । मदासः । मदिरासः । आशवः । असृक्षत । रथ्यासः । यथा । पृथक् ।
धेनुः । न । वत्सं । पयसा । अभि । वज्रिणं । इंद्रं । इंदवः । मधुऽमंतः । ऊर्मयः ॥२॥

प्रासृक्षत प्रसृज्यंते ते तव मदिरासो मदकरा आशवो व्याप्ता मदासो मदा रसाः । क इव । रथ्यासो रथ्या अश्वाः ते यथा तथा पृथक् प्रसृज्यंते । ते मधुमंतो माधुर्योपेता ऊर्मयः प्रवृद्धरसा इंदवः सोमा धेनुः पयसा वत्समिव स्वरसेन वज्रिणमिंद्रमभिगच्छंति ॥

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरं ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इंद्रियाय धायसे ॥३॥

अत्यः। न। हियानः। अभि। वाजं। अर्ष। स्वःऽवित्। कोशं। दिवः। अद्रिऽमातरं।
वृषा। पवित्रे। अधि। सानौ। अव्यये। सोमः। पुनानः। इंद्रियाय। धायसे ॥३॥

अत्यो नाश्व इव हियानः प्रेर्यमाणो वाजं संग्राममभ्यर्ष। अभिगच्छ। तथा स्वर्वित् सर्ववित् कोशं द्रोणकलशं दिवो द्युलोकादद्रिमातरं। अद्रिर्मेघः। तेन तज्जन्यमुदकं लक्ष्यते। तस्य निर्मातारमभ्यर्ष। अथ प्रत्यक्षकृतः। वृषा वर्षकः सोमोऽव्ययेऽविमयेऽधि सानौ। अधीति सप्तम्यर्थानुवादी। समुच्छ्रिते तस्मिन् पुनानः पूयमानो भवति। किमर्थं। धायसे धारकायेंद्रियाय तदर्थं ॥

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि।
प्रांतर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजंत्यृषिषाण वेधसः ॥४॥
प्र। ते। आश्विनीः। पवमान। धीऽजुवः। दिव्याः। असृग्रन्। पयसा। धरीमणि।
प्र। अंतः। ऋषयः। स्थाविरीः। असृक्षत। ये। त्वा। मृजंति। ऋषिऽसान। वेधसः ॥४॥

हे पवमान सोम ते तवाश्विनीर्व्याप्ताः॥ अशू व्याप्तावित्यस्मादौणादिको विनिः। ततोऽण्। व्यत्ययेनाद्युदात्तः॥ धीजुवो मनोवेगा दिव्या दिवि भवा दिवः पतंत्यो धाराः पयसा युक्ता धरीमणि धारके द्रोणकलशे प्रासृग्रन्। गच्छंति। ये वेधसो विधातार ऋषयो हे सोमर्षिषाणर्षिभिः संभक्त त्वा त्वां मृजंति अभिषुण्वंति त ऋषयः स्थाविरीः स्थविरा धारा अंतर्मध्ये पात्रस्यांतः प्रासृक्षत। प्रसृजंति ॥

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यंति केतवः।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५॥
विश्वा। धामानि। विश्वऽचक्षः। ऋभ्वसः। प्रऽभोः। ते। सतः। परि। यंति। केतवः।
विऽआनशिः। पवसे। सोम। धर्मऽभिः। पतिः। विश्वस्य। भुवनस्य। राजसि ॥५॥

हे विश्वचक्षः सर्वस्य द्रष्टः सोम प्रभोः परिवृढस्य सतस्ते तवर्भ्वसः। ऋभ्वा इति महन्नाम। महांतो केतवो रश्मयो विश्वा सर्वाणि धामानि तेजःस्थानानि देवशरीराणि परि यंति। परिगच्छंति। प्रकाशयंतीत्यर्थः। हे सोम व्यानशिर्व्यापनशीलस्त्वं धर्मभिर्धारकै रसनिस्यंदैः पवसे। पूयसे। विश्वस्य भुवनस्य च पतिः स्वामी त्वं राजसि। ईश्वरो भवसि॥ ॥१२॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यंति केतवः।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥६॥
उभयतः। पवमानस्य। रश्मयः। ध्रुवस्य। सतः। परि। यंति। केतवः।
यदि। पवित्रे। अधि। मृज्यते। हरिः। सत्ता। नि। योना। कलशेषु। सीदति ॥६॥

पवमानस्य पूयमानस्य ध्रुवस्य स्वयमविचलितस्य सतो विद्यमानस्य सोमस्य केतवः प्रज्ञापका रश्मय उभयत इतश्चामुतश्च परि यंति। परिगच्छंति। अभिषवसमय एवं भवति। यदि यदा पवित्रे दशापवित्रे हरिर्हरितवर्णोऽयमधि मृज्यते तदानीं सत्ता सदनशीलोऽयं योनौ स्वीये स्थाने कलशेषु द्रोणकलशादिषु नि षीदति ॥

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतं ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७॥
यज्ञस्य । केतुः । पवते । सुऽअध्वरः । सोमः । देवानां । उप । याति । निःऽकृतं ।
सहस्रऽधारः । परि । कोशं । अर्षति । वृषा । पवित्रं । अति । एति । रोरुवत् ॥७॥

यज्ञस्य केतुः प्रज्ञापकः स्वध्वरः शोभनयागः सोमः पवते । पूयते । अभिषूयते । तादृशः सोमो देवानां निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुप याति । उपगच्छति । तदर्थं सहस्रधारः कोशं द्रोणकलशं पर्यर्षति । ततो तदर्थं वृषा सेक्तायं रोरुवच्छब्दयन् पवित्रमतिक्रम्य गच्छत्यधोदेशं ॥

राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिंधुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥८॥
राजा । समुद्रं । नद्यः । वि । गाहते । अपां । ऊर्मिं । सचते । सिंधुषु । श्रितः ।
अधि । अस्थात् । सानु । पवमानः । अव्ययं । नाभा । पृथिव्याः । धरुणः । महः । दिवः ॥८॥

अयं सोमो राजा समुद्रमंतरिक्षं नद्यस्तद्वत्या अपश्च वि गाहते । विगाह्य चापामूर्मिं सचते । उदकपूरं स्रवति । सिंधुषूदकेषु ग्रहेषु वा श्रितः सन् । हूयमानः सन्नग्निमद्वारा सूर्यं प्राप्यांतरिक्षे मेघेषु वर्तत इत्यर्थः । अस्यैव वृष्टिसाधनत्वात् । यद्वा । लुप्तोपममेतत् । समुद्रं नद्य इव सिंधुषु वसतीवरीषु श्रित आश्रितः सन् समुद्रमभिषुतसोमरसाधारपात्रं वि गाहतेऽभिषवात्पूर्वं । पश्चात्पवमानः पूयमानोऽव्ययं सानु समुच्छ्रितं दशापवित्रमध्यस्थात् । अधितिष्ठति । कुत्र देशे । नाभा पृथिव्या नाभिस्थानीये यज्ञे । तत्संबंधिनि हविर्धान इत्यर्थः । यज्ञमाहुर्भुवनस्य नाभिमिति श्रुतेः । कीदृशः । महो दिवो द्युलोकस्य धरुणो धर्ता ॥

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद्द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इंद्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥९॥
दिवः । न । सानु । स्तनयन् । अचिक्रदत् । द्यौः । च । यस्य । पृथिवी । च । धर्मऽभिः ।
इंद्रस्य । सख्यं । पवते । विऽवेविदत् । सोमः । पुनानः । कलशेषु । सीदति ॥९॥

दिवो न सानु स्तनयन् द्युलोकस्य समुच्छ्रितं स्थानं शब्दयन्निवाचिक्रदत् । क्रंदते । यस्य सोमस्य धर्मभि-र्धारणैर्द्यौश्च पृथिवी च धृते स्यातां । वृष्टिप्रदानद्वारौषध्याद्युत्पादनेन देवानां हविर्भावेन चोभयधारकत्वं प्रसिद्धं । तादृशः सोमो महानुभावः सोमः पुनानः पूयमान इंद्रस्य सख्यं विवेविदत्पवते । पूयते पवित्रे । स पुनानः सोमः कलशेषु सीदति । निवसति ॥

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिंतमो मत्सर इंद्रियो रसः ॥१०॥
ज्योतिः । यज्ञस्य । पवते । मधु । प्रियं । पिता । देवानां । जनिता । विभुऽवसुः ।
दधाति । रत्नं । स्वधयोः । अपीच्यं । मदिन्ऽतमः । मत्सरः । इंद्रियः । रसः ॥१०॥

यज्ञस्य ज्योतिः प्रकाशकः सोमः प्रियं देवानां मधु मधुरं रसं पवते । क्षरति । यद्वा । ज्योतिर्यज्ञस्येत्येतदपि मधुविशेषणं । तथा सत्युक्तलक्षणं मधु पवते पूयत इत्यर्थः । सोमरसो विशेष्यते । पिता रक्षिता देवानां

जनितोत्पादयिता सर्वस्य विभूवसुः प्रभूतधनः । ईदृशः स स्वधयोर्द्यावापृथिव्योः । स्वधे पुरंधी इति द्यावा-पृथिवीनामसु पठितः । तयोरपीच्यमंतर्हितं रत्नं रमणीयं धनं दधाति । स्थापयति स्तोतृषु । पुनः स एव विशेष्यते । मदिंतमो मादयितृतमो मत्सरः सोम इंद्रिय इंद्रेण जुष्ट इंद्रस्य वर्धको वा रसो रसरूपः ॥ ॥१३॥

अभिक्रंदन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिंधुभिर्वृषा ॥११॥
अभिऽक्रंदन् । कलशं । वाजी । अर्षति । पतिः । दिवः । शतऽधारः । विऽचक्षणः ।
हरिः । मित्रस्य । सदनेषु । सीदति । मर्मृजानः । अविऽभिः । सिंधुऽभिः । वृषा ॥११॥

वाजी वेजनवान् गमनवानश्वसदृशो वा सोमोऽभिक्रंदञ्छब्दं कुर्वन् कलशमभ्यर्षति । गच्छति । कीदृशो वाजी । दिवः पतिर्द्युलोकस्य स्वामी शतधारः शतसंख्याकधारो विचक्षणो विद्रष्टा । हरिर्हरितवर्णो रसात्मकः सोमो मित्रस्य देवानां मित्रभूतस्य यज्ञस्य वा सदनेषु स्थानेषु सीदति पात्रेषु धृतः सन् । कीदृशो हरिः । सिंधुभिः स्यंदनसाधनैरविभिर्दशापवित्रच्छिद्रैर्मर्मृजानः शोध्यमानो वृषा वर्षकः ॥

अग्रे सिंधूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२॥
अग्रे । सिंधूनां । पवमानः । अर्षति । अग्रे । वाचः । अग्रियः । गोषु । गच्छति ।
अग्रे । वाजस्य । भजते । महाऽधनं । सुऽआयुधः । सोतृऽभिः । पूयते । वृषा ॥१२॥

यः सोमः पवमानः सिंधूनां स्यंदमानानामुदकानामग्रेऽर्षति गच्छति । तथाग्रियोऽग्रार्हः श्रेष्ठोऽग्रे वाचो माध्यमिकाया अग्रेऽर्षति । तथा गोषु रश्मिषु गच्छति । तथा वाजस्यान्नस्य बलस्य वा लाभाय महाधनं संग्रामं भजते । स स्वायुधो वृषा वर्षकः सोमः सोतृभिरभिषवकर्तृभिः पूयते ॥

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अंतरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इंद्र ते ॥१३॥
अयं । मतऽवान् । शकुनः । यथा । हितः । अव्ये । ससार । पवमानः । ऊर्मिणा ।
तव । क्रत्वा । रोदसी इति । अंतरा । कवे । शुचिः । धिया । पवते । सोमः । इंद्र । ते ॥१३॥

अयं सोमो मतवान् । मतं संमतं प्रियं स्तोत्रं । तद्वान् पवमानः पूयमानः सूयमानः शोध्यमानश्च सन् हितः प्रेरितः शकुनः पक्षी यथा शीघ्रं गच्छति तथाव्ये पवित्र ऊर्मिणा रसेन ससार । गच्छति । हे कवे क्रांतप्रज्ञ । अनूचान वा ये वा अनूचानास्ते कवयः । ऐ० ब्रा० २. ३८. । इति श्रुतेः । तादृश यजमान यद्वोक्तल-क्षणेंद्र ते तव क्रत्वा कर्मणा धिया प्रज्ञया च । यद्वा । विशेषणविशेष्यभावः । धिया धारकेण क्रत्वा कर्मणा । रोदसी अंतरा रोदस्योर्द्यावापृथिव्योरंतरा शुचिः सोमः पवते । पूयते ॥

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमंतरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४॥
द्रापिं । वसानः । यजतः । दिविऽस्पृशं । अंतरिक्षऽप्राः । भुवनेषु । अर्पितः ।
स्वः । जज्ञानः । नभसा । अभि । अक्रमीत् । प्रत्नं । अस्य । पितरं । आ । विवासति ॥१४॥

दिविस्पृशं देवस्प्रष्टारं द्रापिं कवचं तेजोरूपं वसान आच्छादयन् यजतो यष्टव्योऽंतरिक्षप्रा अंतरिक्षस्य पूरक उदकेन तादृशः सोमो भुवनेषूदकेष्वर्पितः स्वः सर्वं स्वेन पाययितव्यं देवसंघं स्वर्गं वा अज्ञानो जनयन्। अथवा। स्वरुदकं। तज्जनयन्। नभसोदकेनाभ्यक्रमीत्। अभिक्रामति। अस्योदकस्य पितरं पालकं प्रत्नं पुराणमिंद्रमा विवासति। परिचरति ॥

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥१५॥
सः। अस्य। विशे। महि। शर्म। यच्छति। यः। अस्य। धाम। प्रथमं। विऽआनशे।
पदं। यत्। अस्य। परमे। विऽओमनि। अतः। विश्वाः। अभि। सं। याति। संऽयतः ॥१५॥

स सोमोऽस्येंद्रस्य विशे प्रवेशनाय महि महच्छर्म सुखं यच्छति। यः सोमोऽस्येंद्रस्य धाम तेजोयुक्तं शरीरं प्रथममितरदेवप्राप्तेः पूर्वं व्यानशे प्राप्तवान्। यद्यस्यास्य सोमस्य परमे महत्युत्कृष्टे व्योमनि विशेषेण रक्षके द्युलोके वेद्यां वा पदं भवति। अतो यस्मात्सोमात्तृप्त इंद्रः सोमः स्वयं वा विश्वाः संयतः सर्वान् संयामानभि याति सम्यगभिगच्छति। स सोमो महि शर्म यच्छतीति संबंधः ॥ ॥१४॥

प्रो अयासीदिंदुरिंद्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरं।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१६॥
प्रो इति। अयासीत्। इंदुः। इंद्रस्य। निःऽकृतं। सखा। सख्युः। न। प्र। मिनाति। संऽगिरं।
मर्यःऽइव। युवतिऽभिः। सं। अर्षति। सोमः। कलशे। शतऽयाम्ना। पथा ॥१६॥

इंदुः सोम इंद्रस्य निष्कृतं स्थानमुदरं प्रो अयासीत्। प्रैव गच्छति। गत्वा च सखा सखिभूतः सोमः सख्युरिंद्रस्य संगिरं सम्यग्गिरणाधारभूतमुदरं न प्र मिनाति। न हिनस्ति। किंच मर्य इव युवतिभिर्मर्त्यो यथा युवतिभिः सह संगतो भवति तद्वदयमपि सोमो युवतिभिर्मिश्रणशीलाभिर्वसतीवरीभिरद्भिः सह समर्षति। संगच्छतेऽभिषवकाले। पश्चात्सोमः शतयाम्नानेकयानसाधनच्छिद्रोपेतेन पथा मार्गेण दशापवित्रसंबंधिनि कलशे द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः। यद्वा। एकमेव वाक्यं। यथा मर्यो युवतिभिः सह संगच्छते एवं कलशे शतयाम्ना पथा संगच्छतेऽद्भिः ॥

प्र वो धियो मंद्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७॥
प्र। वः। धियः। मंद्रऽयुवः। विपन्युवः। पनस्युवः। संऽवसनेषु। अक्रमुः।
सोमं। मनीषाः। अभि। अनूषत। स्तुभः। अभि। धेनवः। पयसा। ईं। अशिश्रयुः ॥१७॥

हे सोम वो युष्माकं धियो ध्यातारो मंद्रयुवो मदकरं शब्दं कामयमानाः पनस्युवः स्तुतिं कामयमाना विपन्युवः। स्तोतृनामैतत्। स्तोतारः संवसनेषु संवासयोग्येषु यागगृहेषु प्राक्रमुः। प्रक्रमंते। तदेवाह। सोमं मनीषा मनस ईश्वराः स्तुभः स्तोतारोऽभ्यनूषत। अभिष्टुवंति। धेनवोऽपि पयसा स्वीयेनेमेनं सोममभ्यशिश्रयुः। अभिश्रीणंति ॥

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिंदो पवस्व पवमानो अस्रिधं।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यं ॥१८॥

आ। नः। सोम। संऽयतं। पिप्युषीं। इषं। इंदो इति। पवस्व। पवमानः। अस्रिधं।
या। नः। दोहते। त्रिः। अहन्। असश्चुषी। क्षुऽमत्। वाजऽवत्। मधुऽमत्। सुऽवीर्यं ॥१८॥

हे इंदो दीप्त सोम पवमानस्त्वं नोऽस्माकं संयतं संगृहीतं पिप्युषीं प्रवृद्धमिषमन्नमस्रिधमक्षीणं पवस्व। प्रयच्छेत्यर्थः। या यादृशी नोऽस्माकमहन्नहन्यह्नस्त्रिस्त्रिषु सवनेष्वसश्चुष्यप्रतिबंधा दोहते क्षरति। किं। क्षुमच्छब्दोपेतं सर्वत्र श्रूयमाणं वाजवन्मधुमन्माधुर्योपेतं सुवीर्यं शोभनसामर्थ्यं पुत्रं दोहते। तामिषं पवस्वेति समन्वयः॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः।
क्राणा सिंधूनां कलशाँ अवीवशदिंद्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१९॥
वृषा। मतीनां। पवते। विऽचक्षणः। सोमः। अह्नः। प्रऽतरीता। उषसः। दिवः।
क्राणा। सिंधूनां। कलशान्। अवीवशत्। इंद्रस्य। हार्दि। आऽविशन्। मनी-
षिऽभिः ॥१९॥

अयं सोमः पवते। अभिषूयते। कीदृशः सोमः। मतीनां। मतयः स्तोतारः। तेषां वृषा वर्षकः कामानां विचक्षणो विद्रष्टा अह्न उषसो दिवो द्युलोकस्यादित्यस्य वा प्रतरीता प्रवर्धयिता। किंच सिंधूनां स्यंदमानानामुदकानां क्राणा कर्ता॥ करोतेः शानचि बहुलं छंदसीति विकरणस्य लुक्। सुः। सुपां सुलुगित्याकारः॥ कलशानवीवशत्। कामयते प्रवेष्टुं। किं कुर्वन्। इंद्रस्य हार्दि हृदयमाविशन् प्रविशन् मनीषिभिः स्तुत इति शेषः। यद्वा। व्यवहितमपि मनीषिभिरित्येतत्पवत इत्यनेन संबध्यते॥

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत्।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिंद्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥२०॥
मनीषिऽभिः। पवते। पूर्व्यः। कविः। नृऽभिः। यतः। परि। कोशान्। अचिक्रदत्।
त्रितस्य। नाम। जनयन्। मधु। क्षरत्। इंद्रस्य। वायोः। सख्याय। कर्तवे ॥२०॥

अयं सोमो मनीषिभिर्मेधाविभिरध्वर्य्वादिभिः पवते। पूयते। यद्वा। अयं मनीषिभिर्मनीषिणीभिर्धाराभिः पवते। क्षरति। कीदृशोऽयं। पूर्व्यः पुराणः कविर्मेधावी नृभिर्नेतृभिरध्वर्य्वादिभिर्यतो नियमितः सन् कोशान् कलशान्प्राप्तुं पर्यचिक्रदत्। परिक्रंदते। शब्दं करोति। त्रितस्य त्रिषु स्थानेषु विस्तृतस्येंद्रस्य संबंधि नाम नामकमुदकं जनयन्नुत्पादयन् मधु मधुरं रसं क्षरत्। क्षरति। किमर्थं। इंद्रस्य वायोश्च सख्याय कर्तवे सख्यं कर्तुं॥ ॥१५॥

अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिंधुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥२१॥
अयं। पुनानः। उषसः। वि। रोचयत्। अयं। सिंधुऽभ्यः। अभवत्। ऊं इति। लोकऽकृत्।
अयं। त्रिः। सप्त। दुदुहानः। आऽशिरं। सोमः। हृदे। पवते। चारु। मत्सरः ॥२१॥

अयं सोमः पुनानः पूयमान उषसो वि रोचयत्। विविधं रोचयति। अयं सिंधुभ्यः स्यंदमानाभ्योऽद्भ्यो वसतीवरीभ्योऽभवत्। समृद्धो भवति। उ इति पूरणः। कीदृशोऽयं। लोककृल्लोकानां कर्ता। वर्षकत्वाद्रेतोधारकत्वाच्चास्य लोककृत्त्वं। अयं सोमस्त्रिः सप्तैकविंशतिं गा ऋत्विक्मुखेनाशिरं दुदुहानो दुहानः। दोहस्य

प्रयोजकत्वात्कर्तृत्वोपचारः । मत्सरो मदकरत्वात् रमणीयं पवते । क्षरति । किमर्थं । हृदे हृदयाय हृदयगमनाय ॥

पव॑स्व सोम दि॒व्येषु॒ धाम॑सु सृजा॒न इं॑दो क॒लशे॑ प॒वित्र॒ आ ।
सीद॒न्निंद्र॑स्य ज॒ठरे॒ कनि॑क्रद॒न्नृभि॒र्यतः॒ सूर्य॒मारो॑हयो दि॒वि ॥२२॥
पव॑स्व । सो॒म॒ । दि॒व्येषु॑ । धाम॑ऽसु । सृ॒जा॒नः । इं॒दो॒ इति॑ । क॒लशे॑ । प॒वित्रे॑ । आ ।
सीद॑न् । इंद्र॑स्य । ज॒ठरे॑ । कनि॑क्रदत् । नृऽभिः॑ । य॒तः । सूर्य॑ं । आ । अ॒रो॒ह॒यः॒ । दि॒वि ॥२२॥

हे सोम दिव्येषु धामसु स्थानेषु । देवानां संबंधिषूदरेष्वित्यर्थः । तेषु पवस्व । क्षर । कीदृशः सन् । हे इंदो दीप्त सोम कलशे पवित्र आ दशापवित्रे च । आ इति चार्थे । सृजानः सृज्यमानः । अत्राग्निहोत्रं जुहोति यवागूं पचतीतिवदार्थिकः क्रमोऽवगंतव्यः । किंचेंद्रस्य जठरे सीदञ्जठरं गच्छन् कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिर्यतः परिगृहीतः । कृत इत्यर्थः । तथाभूतः सन् दिवि सूर्यमारोहयः । प्रादुर्भूतमकरोः ॥

अद्रि॑भिः सु॒तः पव॑से प॒वित्र॒ आँ इंद॒विंद्र॑स्य ज॒ठरे॑ष्वावि॒शन् ।
त्वं नृ॒चक्षा॑ अभवो विचक्षण॒ सोम॑ गो॒त्रमंगि॑रोभ्योऽवृणो॒रप॑ ॥२३॥
अद्रि॑ऽभिः । सु॒तः । प॒व॒से॒ । प॒वित्रे॑ । आ । इं॒दो॒ इति॑ । इंद्र॑स्य । ज॒ठरे॑षु । आ॒ऽवि॒शन् ।
त्वं । नृ॒ऽचक्षाः॑ । अ॒भ॒वः॒ । वि॒ऽच॒क्ष॒ण॒ । सोम॑ । गो॒त्रं । अंगि॑रःऽभ्यः । अ॒वृ॒णोः॒ । अप॑ ॥२३॥

हे इंदो सोम अद्रिभिर्ग्रावभिः सुतोऽभिषुतस्त्वं पवसे । क्षरसि । पूयसे वा । पवित्र आ दशापवित्रे । आ इति पूरणः । यद्वा । अभिषुतो भवसि पवसे चेति चार्थ आकारः । किं कुर्वन् । इंद्रस्य जठरेषु जठरप्रदेशेष्वाविशन् । जठरप्रवेशायेत्यर्थः । किंच हे विचक्षण विद्रष्टः सोम त्वं नृचक्षा अभवः । नृणां मनुष्याणामनुग्रहेण द्रष्टा भवसि । किंच हे सोम त्वमंगिरोभ्यो गोत्रं मेघमुदकं धारयितुं पणिभिरपहृतानां गवामावरकं पर्वतं वापावृणोः ॥

त्वां सोम॒ पव॑मानं स्वा॒ध्यो॒ऽनु॒ विप्रा॑सो अमद॒न्नव॒स्यवः॑ ।
त्वां सु॑प॒र्ण आभ॑रद्दि॒वस्परीं॑दो॒ विश्वा॑भिर्म॒तिभिः॒ परि॑ष्कृतं ॥२४॥
त्वां । सो॒म॒ । पव॑मानं । सु॒ऽआ॒ध्यः॑ । अनु॑ । विप्रा॑सः । अ॒म॒द॒न् । अ॒व॒स्यवः॑ ।
त्वां । सु॒ऽप॒र्णः । आ । अ॒भ॒र॒त् । दि॒वः । परि॑ । इं॒दो॒ इति॑ । विश्वा॑भिः । म॒तिऽभिः॑ ।
परि॑ऽकृतं ॥२४॥

हे सोम पवमानं त्वां स्वाध्यः सुमतयः सुकर्माणो वा विप्रासो विप्रा मेधाविनः स्तोतारोऽवस्यवो रक्षाकामा अन्वमदन् । अनुष्टुवंति । हे इंदो त्वां सुपर्णः श्येन आभरत् । आहरत् । दिवस्परि द्युलोकस्योपरि । द्युलोकादित्यर्थः । कीदृशं त्वां । विश्वाभिर्मतिभिः सर्वाभिः स्तुतिभिः परिष्कृतमलंकृतं ॥

अव्ये॑ पुना॒नं परि॒ वार॑ ऊ॒र्मिणा॒ हरिं॑ नवंते अ॒भि स॒प्त धे॒नवः॑ ।
अ॒पामु॒पस्थे॑ अ॒ध्या॒यवः॑ क॒विमृ॒तस्य॒ योना॑ महि॒षा अ॑हेषत ॥२५॥
अव्ये॑ । पु॒ना॒नं । परि॑ । वारे॑ । ऊ॒र्मिणा॑ । हरिं॑ । न॒वं॒ते॒ । अ॒भि । स॒प्त । धे॒नवः॑ ।
अ॒पां । उ॒पऽस्थे॑ । अधि॑ । आ॒यवः॑ । क॒विं । ऋ॒तस्य॑ । योना॑ । म॒हि॒षाः । अ॒हे॒ष॒त॒ ॥२५॥

अव्येऽविमये वारे वाले दशापवित्र ऊर्मिणा रसेन परि परितः पुनानं पवमानं हरिं हरितवर्णं सोममभि नवंते अभिगच्छंति सप्त धेनवः प्रीणयित्र्यः सप्त गायत्र्याद्याः सप्त गंगाद्या नद्यो वा। नवते चोदत इति गतिकर्मस्वयं पठितः। किंच कविं स्वामपामुपस्थेऽंतरिक्षस्योत्संग ऋतस्य योनौ। उदकनामैतत्। ऋतं योनिर्ऋतस्य योनिरिति तन्नामसु पाठात्। उदके महिषा महांत आयवो मनुष्या अध्यहेषत। अधिकं प्रेरयंति॥ ॥१६॥

इंदुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्सुपथानि यज्यवे।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६॥
इंदुः। पुनानः। अति। गाहते। मृधः। विश्वानि। कृण्वन्। सुऽपथानि। यज्यवे।
गाः। कृण्वानः। निःऽनिजं। हर्यतः। कविः। अत्यः। न। क्रीळन्। परि। वारं।
अर्षति ॥२६॥

अयमिंदुर्दीप्तः सोमः पुनानः पूयमानोऽति गाहते अतिक्रम्य गच्छति मृधः शत्रून्। किं कुर्वन्। विश्वानि गंतव्यानि सुवर्त्मानि वैदिकानि लौकिकानि च सुपथानि कृण्वन् कुर्वन्। कस्मै। यज्यवे यागकर्त्रे। यजमानाय शत्रून्परिहरन् मार्गान्सुपथान्कुर्वन् कलशं प्रविशतीत्यर्थः। किंच निर्णिजमात्मीयं रूपं गाः कृण्वानः। रसमया-न्कुर्वाण इत्यर्थः। हर्यतः कांतः॥ हर्य गतिकांत्योः। औणादिकोऽतच्॥ कविः क्रांतप्रज्ञः एवंभूतः सोमोऽत्यो नाश्व इव क्रीळन् वारं दशापवित्रं पर्यर्षति। परिगच्छति॥

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवंतेऽव ता उदन्युवः।
क्षिपो मृजंति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७॥
असश्चतः। शतऽधाराः। अभिऽश्रियः। हरिं। नवंते। अव। ताः। उदन्युवः।
क्षिपः। मृजंति। परि। गोभिः। आऽवृतं। तृतीये। पृष्ठे। अधि। रोचने। दिवः ॥२७॥

असश्चतः परस्परमसंगताः शतधारा अभिश्रियोऽभितः सोमं श्रयंत्यस्ताः प्रसिद्धाः सूर्यस्य रश्मयो हरिमव नवंते। गच्छंति। उदन्युव उदकेच्छावत्यः सत्यः। यद्वा। धाराशब्देनात्र सोमधारा अभिप्रेताः। असश्चतोऽसंबद्धा अभिश्रियोऽभितो गाः श्रयंत्यो गोभिः श्रितास्ताः प्रसिद्धा उदन्युव इंद्रसंबंधिवृष्टिकामा हरिमिंद्रमव नवंते। संगच्छंते। क्षिपोऽंगुलयोऽपि गोभिर्दीप्तिपक्षे गोभी रश्मिभिरावृतं सोमधारापक्षे गोभिः पर्यावृतं व्याप्तं सोमं मृजंति। अवशोधयंति। दिव आदित्याद्रोचने रोचमाने यमादित्यो रोचयति तस्मिंस्तृतीये चित्यपेक्षायां तृतीयभूते द्युलोकेऽधि वसंतं सोमं मृजंति॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिंदो प्रथमो धामधा असि ॥२८॥
तव। इमाः। प्रऽजाः। दिव्यस्य। रेतसः। त्वं। विश्वस्य। भुवनस्य। राजसि।
अथ। इदं। विश्वं। पवमान। ते। वशे। त्वं। इंदो इति। प्रथमः। धामऽधाः। असि ॥२८॥

तव दिव्यस्य रेतसः सकाशादिमाः प्रजा उत्पद्यमानाः प्राणिन उत्पन्नाः। सोमो वै रेतोधाः। तै० सं० २. १. १. ६.। इति श्रुतेः। त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि। ईश्वरो भवसि। अथापि चेदं विश्वं हे पवमान ते वशे त्वदधीनं वर्तते। हे इंदो प्रथमो मुख्यस्त्वं धामधा धाम्नो धर्तासि। भवसि॥

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पंच प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९॥
त्वं । समुद्रः । असि । विश्वऽवित् । कवे । तव । इमाः । पंच । प्रऽदिशः । विऽधर्मणि ।
त्वं । द्यां । च । पृथिवीं । च । अति । जभ्रिषे । तव । ज्योतींषि । पवमान । सूर्यः ॥२९॥

हे कवे क्रांतप्रज्ञ त्वं यस्मात्समुद्रो वर्षसाधनोऽपां अतो विश्वविदसि । यद्वा । समुद्रो द्रवात्मकोऽसि विश्वविद्यासि । किंच तव विधर्मणि विधारणे पंच प्रदिशः प्रकृष्टा दिशो भवंतीति शेषः । त्वं द्यां च दिवं च पृथिवीं चाति जभ्रिषे । बिभर्षि । हे पवमान सूर्यो देवस्तव ज्योतींष्याप्याययति ॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥
त्वं । पवित्रे । रजसः । विऽधर्मणि । देवेभ्यः । सोम । पवमान । पूयसे ।
त्वां । उशिजः । प्रथमाः । अगृभ्णत । तुभ्यं । इमा । विश्वा । भुवनानि । येमिरे ॥३०॥

हे सोम पवमान त्वं रजसो लोकस्य रसस्य वा विधर्मणि विधारके दशापवित्रे देवेभ्यो देवार्थं पूयसे । त्वामुशिजः कामयमाना ऋत्विजः प्रथमाः प्रतमा मुख्या अगृभ्णत । गृह्णंति । तुभ्य तुभ्यमिमेमानि विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि येमिरे । यच्छंत्यात्मानं ॥ ॥१७॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहंति मतयः पनिप्नतं ॥३१॥
प्र । रेभः । एति । अति । वारं । अव्ययं । वृषा । वनेषु । अव । चक्रदत् । हरिः ।
सं । धीतयः । वावशानाः । अनूषत । शिशुं । रिहंति । मतयः । पनिप्नतं ॥३१॥

रेभः शब्दयिता ॥ रेभृ शब्दे ॥ सोमो वारमव्ययमविमयं वालं प्रात्येति । प्रकर्षेणातिगच्छति । वृषा सेक्ता सोमो वनेषूदकेष्वव चक्रददवक्रंदन् हरिर्हरितवर्णः सोमः । समनूषत । संस्तुवंति । के । धीतयो ध्यातारो वावशाना यागं सोमं वा कामयमानाः । शिशुं शिशुवत्संस्कर्तव्यं सोमं मतयः स्तुतयो रिहंति । लिहंति । स्पृशंति । स्वविषयीकुर्वंतीत्यर्थः । कीदृशं । पनिप्नतं शब्दयंतं ॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तंतुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतं ॥३२॥
सः । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । परि । व्यत । तंतुं । तन्वानः । त्रिऽवृतं । यथा । विदे ।
नयन् । ऋतस्य । प्रऽशिषः । नवीयसीः । पतिः । जनीनां । उप । याति । निःऽकृतं ॥३२॥

स सोमः सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत । परिवेष्टयत्यात्मानं । किं कुर्वन् । त्रिवृतं सवनैर्देवैर्वा त्रिवृतं तंतुं यज्ञं तन्वानो विस्तारयन् यथा विदे जानाति । येन प्रकारेण संपूर्णमवगच्छति तथा तन्वानः । ऋतस्य सत्यभूतस्य यजमानस्य नवीयसीर्नवतराः प्रशिषः प्रशंसना अभिमतानि नयन् प्रापयन् । तस्मा एव जनीनां पतिः पालकः स्वामी निष्कृतं संस्कृतं पात्रमुप याति । गच्छति ॥

राजा सिंधूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३॥
राजा । सिंधूनां । पवते । पतिः । दिवः । ऋतस्य । याति । पथिऽभिः । कनिक्रदत् ।
सहस्रऽधारः । परि । सिच्यते । हरिः । पुनानः । वाचं । जनयन् । उपऽवसुः ॥३३॥

सिंधूनां नदीनामुदकानां राजेश्वरो दिवः पतिर्द्युलोकस्य स्वाम्यृतस्य यज्ञस्य पथिभिर्मार्गैः कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन्याति । सहस्रधारो बहुधारायुक्तः सोमो नृभिर्नेतृभिर्ऋत्विग्भिः परि षिच्यते पात्रेषु । पुनानः पूयमानो वाचं शब्दं जनयन्नुत्पादयन्नुपावसुरुपागच्छन्धनः । परि षिच्यत इति समन्वयः ॥

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥३४॥
पवमान । महि । अर्णः । वि । धावसि । सूरः । न । चित्रः । अव्ययानि । पव्यया ।
गभस्तिऽपूतः । नृऽभिः । अद्रिऽभिः । सुतः । महे । वाजाय । धन्याय । धन्वसि ॥३४॥

हे पवमान सोम मह्यर्णो बहूदकं । अर्ण इत्युदकनाम । रसं वा वि धावसि । गमयसि ॥ धावु गतिशुद्ध्योः ॥ किंच सूरो न चित्रः सूर्य इव चित्रश्चायनीयः पूज्यः सन्नव्ययान्यविमयानि पव्यया पात्राणि गच्छसि । किंच गभस्तिपूतो बाहुभिरभिशोधितो नृभिर्ऋत्विग्भिर्ग्रावभिश्च सुतोऽभिषुतो महे महते वाजाय संग्रामाय धन्याय धनेभ्यो हिताय धन्वसि । गच्छसि । धन्वतिर्गतिकर्मा ॥

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इंद्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टंभ उपमो विचक्षणः ॥३५॥
इषं । ऊर्जं । पवमान । अभि । अर्षसि । श्येनः । न । वंसु । कलशेषु । सीदसि ।
इंद्राय । मद्वा । मद्यः । मदः । सुतः । दिवः । विष्टंभः । उपऽमः । विऽचक्षणः ॥३५॥

हे पवमान पूयमान सोम इषमन्नमूर्जं बलं चाभ्यर्षसि । श्येनो न श्येन इव वंसु वननीयेषु कुलायेषु कलशेषु सीदसि । निषण्णो भवसि । अथ परोक्षकृतः । इंद्राय मद्वा मदकरो मद्यो मदहेतुर्मदो रसः सुतोऽभिषुतः । कीदृशः । दिवो द्युलोकस्योपम उपमीयमानो विष्टंभो विशेषेण स्तंभयिता । स्थूणा यथा गृहं तथा । विचक्षणो विद्रष्टा । स्थूणेव जनाँ उपमित् । ऋ० १. ५९. १. । इत्युक्तं ॥ ॥१८॥

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितं ।
अपां गंधर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६॥
सप्त । स्वसारः । अभि । मातरः । शिशुं । नवं । जज्ञानं । जेन्यं । विपःऽचितं ।
अपां । गंधर्वं । दिव्यं । नृऽचक्षसं । सोमं । विश्वस्य । भुवनस्य । राजसे ॥३६॥

सप्त सर्पणस्वभावाः सप्तसंख्याका वा मातरो मातृस्थानीया गंगायमुनाद्याः शिशुं शिशुस्थानीयमभि गच्छंतीति शेषः । स्वकीयैः पयोभिराच्छादयंतीति शेषः । कीदृशं शिशुं । नवं जज्ञानं जायमानं जेन्यं जयशीलं विपश्चितं विद्वांसं अपां जनकं तेषां मध्ये वर्तमानं वा गंधर्वमुदकस्य धातारं दिव्यं दिवि भवं नृचक्षसं नृणां द्रष्टारं सोमं । अभिगच्छंति किमर्थं । विश्वस्य भुवनस्य विराजसे विराजनार्थं ॥

ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इंदो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरंतु मधुमद्धृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठंतु कृष्टयः ॥३७॥
ईशानः । इमा । भुवनानि । वि । ईयसे । युजानः । इंदो इति । हरितः । सुऽपर्ण्यः ।
ताः । ते । क्षरंतु । मधुऽमत् । घृतं । पयः । तव । व्रते । सोम । तिष्ठंतु । कृष्टयः ॥३७॥

हे इंदो सोम ईशानः सर्वस्य स्वामी त्वमिमेमानि भुवनानि भूतजातानि वीयसे । गच्छसि ॥ वी गत्यादिषु ॥ किं कुर्वन् । हरितो हरितवर्णाः सुपर्ण्यः सुपतनास्त्वाश्वा रथे युजानो योजयन् । ताः सुपर्ण्यस्ते तव संबंधिन्यो मधुमन्माधुर्योपेतं घृतं दीप्तं पय उदकं क्षरंतु । हे सोम तव व्रते कर्मणि तिष्ठंतु कृष्टयो मनुष्याः सर्वे ॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥
त्वं । नृऽचक्षाः । असि । सोम । विश्वतः । पवमान । वृषभ । ताः । वि । धावसि ।
सः । नः । पवस्व । वसुऽमत् । हिरण्यऽवत् । वयं । स्याम । भुवनेषु । जीवसे ॥३८॥

हे सोम त्वं विश्वतः सर्वतः सर्वेषु भुवनेषु नृचक्षा नृणां द्रष्टासि । भवसि । हे पवमान वृषभापां वर्षक ता अपो वि धावसि । विविधं गच्छसि । स त्वं नोऽस्माकं पवस्व । क्षर । किं । वसुमद्वसुभिर्वसुभिर्वासकैर्गवादिद्रव्यैर्युक्तं तथा हिरण्यवद्वसुभिर्हिरण्यैर्युक्तं धनं । वयं च वसुभिर्हिरण्यैर्युक्ता भुवनेषु लोकेषु जीवसे जीवितुं प्रभवः स्याम । भवेम ॥

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इंदो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥३९॥
गोऽवित् । पवस्व । वसुऽवित् । हिरण्यऽवित् । रेतःऽधाः । इंदो इति । भुवनेषु । अर्पितः ।
त्वं । सुऽवीरः । असि । सोम । विश्वऽवित् । तं । त्वा । विप्राः । उप । गिरा । इमे । आसते ॥३९॥

हे सोम त्वं पवस्व । क्षर । कीदृशः । गोविद्गवां लंभकः वसुविद्धनस्य लंभकः हिरण्यविद्धिरण्यस्य लंभकः रेतोधाः । रेत उदकं । तस्य धातौषधीनां । यद्वा । रेतः प्रजननसामर्थ्यं । तस्य धारयिता । भुवनेषूदकेष्वर्पितः । हे इंदो सोम त्वं सुवीरः सुवीर्योऽसि । भवसि । विश्ववित्सर्वस्य वेत्ता । तं त्वा त्वामिमे विप्रा गिरा स्तुत्योपासते ॥

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४०॥
उत् । मध्वः । ऊर्मिः । वननाः । अतिस्थिपत् । अपः । वसानः । महिषः । वि । गाहते ।
राजा । पवित्रऽरथः । वाजं । आ । अरुहत् । सहस्रऽभृष्टिः । जयति । श्रवः । बृहत् ॥४०॥

मध्वो मधुरस्योर्मी रसो वनना वननीया वाच उदतिष्ठिपत् । उत्थापयति । सोमाभिषवकाले स्तुतिवाचः प्रवृत्तेः । अपो वसान आच्छादयन् महिषो महान् वि गाहते । प्रविशति कलशं । राजा सोमः पवित्ररथः । दशापवित्रमेव रथो यस्य स तथोक्तः । तादृशः सोमो वाजं संग्राममारुहत् । आरोहति । सहस्रभृष्टिर्बहुभ्रंशोऽपरिमितगमनो बृहच्छ्रवो महदन्नं जयत्यस्मदर्थं ॥ ॥१९॥

स भंदना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इंदविंद्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१॥

सः। भंदनाः। उत्। इयर्ति। प्रजाऽवतीः। विश्वऽआयुः। विश्वाः। सुऽभराः। अहःऽदिवि।
ब्रह्म। प्रजाऽवत्। रयिं। अश्वऽपस्त्यं। पीतः। इंदो इति। इंद्रं। अस्मभ्यं। याचतात् ॥४१॥

स सोमो विश्वायुः सर्वस्य गंता सोमः प्रजावतीः प्रजारूपफलदात्रीः सुभराः सुष्ठु ह्रियमाणा विश्वाः सर्वा भंदनाः स्तुतीरुदियर्ति। उत्कृष्टं प्रेरयति। कस्मिन्काले उच्यते। अहर्दिव्यहोरात्रयोश्च। अथ प्रत्यक्षकृतः। ब्रह्म परिवृढं कर्म प्रजावत् प्रजाभिर्युक्तं। प्रजाफलकमित्यर्थः। यद्वा। अन्नं तच्च प्रजावत् प्रजाद्युपेतं। तथा रयिं धनं। कीदृशं। अश्वपस्त्यं व्याप्तगृहं। तदुभयं हे इंदो दीप्त सोम पीत इंद्रेण पीतस्त्वं तमेवेंद्रमस्मभ्यं याचतात्। याचस्व ॥

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नंतरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२॥

सः। अग्रे। अह्नां। हरिः। हर्यतः। मदः। प्र। चेतसा। चेतयते। अनु। द्युऽभिः।
द्वा। जना। यातयन्। अंतः। ईयते। नराशंसं। च। दैव्यं। च। धर्तरि ॥४२॥

स सोमोऽग्रे सर्वेषां संमुखं चेतसा प्राणिनां चेतनेन सहाह्नां द्युभिर्दीप्तिभिरनु प्र चेतयते। अनुप्रज्ञापयते। यद्वा। अह्नामग्रेऽग्रभागे। प्रातरित्यर्थः। स्तोतृणां चेतसा प्रज्ञानेन द्युभिर्दीप्ताभिः स्तुतिभिश्चानु प्र चेतयते। कीदृशः सः। हरिर्हरितवर्णो हर्यतः कांतो मदो मदकरः। किंच द्वा जना द्वौ जनौ स्तोतारं यष्टारं च यातयन् प्रापयन् स्वविहितेन कर्मणा। लौकिकवैदिकौ द्वौ जनौ द्रष्टव्यौ। एवं कुर्वन्नंतर्द्यावापृथिव्योर्मध्य ईयते। गच्छति ॥ ईङ् गतौ ॥ किं कुर्वन्। नराशंसं नरैः शंसनीयं। मानुषमित्यर्थः। दैव्यं च दिवि भवमुभयविधं धनं धर्तरि धारके यजमाने प्रेरयन्निति शेषः ॥

अंजते व्यंजते समंजते क्रतुं रिहंति मधुनाभ्यंजते ।
सिंधोरुच्छ्वासे पतयंतमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥

अंजते। वि। अंजते। सं। अंजते। क्रतुं। रिहंति। मधुना। अभि। अंजते।
सिंधोः। उत्ऽश्वासे। पतयंतं। उक्षणं। हिरण्यऽपावाः। पशुं। आसु। गृभ्णते ॥४३॥

सोममृत्विजोऽंजते गोभिः। तथा व्यंजते। विविधमंजंति। समंजते। सम्यगंजंति। स्तुत्यर्थत्वादपुनरुक्तिः। तथा क्रतुं बलकर्तारं रिहंति। लिहंति। आस्वादयंति देवाः। तथा पुनर्मधुना गव्येनाभ्यंजते। तमेव सोमं सिंधोरुदकस्य रसस्याधारभूत उच्छ्वास उच्छ्रिते देशे पतयंतं गच्छंतं ॥ पत्लृ गतावित्यस्मात्स्वार्थे णिचि वृद्ध्यभावश्छांदसः ॥ उक्षणं सेक्तारं हिरण्यपावा हिरण्येन पुनंतः पशुं द्रष्टारं। पशुः पश्यतेरिति निरुक्तं। ३.१६.। आसु वसतीवरीषु गृभ्णते। गृह्णंति ॥

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यंधो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४॥

विपःऽचिते। पवमानाय। गायत। मही। न। धारा। अति। अंधः। अर्षति।
अहिः। न। जूर्णां। अति। सर्पति। त्वचं। अत्यः। न। क्रीळन्। असरत्। वृषा। हरिः ॥४४॥

हे ऋत्विजः विपश्चिते मेधाविने पवमानाय पूयमानाय गायत । स्तुतिं कुरुत । स च विपश्चित्सोमो महीन धारा महती वर्षधारेवांधोऽन्नं रसात्मकमत्यर्षति । अहिर्नाहिरिव जूर्णां जीर्णां त्वचमति सर्पति । अतिमुंचति । अभिषवादिकर्मणा त्वचं मुंचतीत्यर्थः । तद्वदतिसर्पति धारा दशापवित्रात् । अत्यो नाश्व इव क्रीळन्नसरत् । सरति । गच्छति द्रोणकलशं । वृषा वर्षकः कामानां हरिर्हरितवर्णो रसः ॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥४५॥
अग्रेऽगः । राजा । अप्यः । तविष्यते । विऽमानः । अह्नां । भुवनेषु । अर्पितः ।
हरिः । घृतऽस्नुः । सुऽदृशीकः । अर्णवः । ज्योतिःऽरथः । पवते । राये । ओक्यः ॥४५॥

अग्रेगोऽग्रे गंता राजा राजमानोऽप्योऽप्सु संस्कृतः सोमस्तविष्यते । स्तूयते । योऽह्नां दिनानां विमानो निर्माता चंद्रकलाह्रासवृद्ध्यधीनत्वादहर्व्यवहारस्य । भुवनेषूदकेषु वसतीवरीसंबंधिष्वर्पितः स्थापितः स राजा तविष्यते । किंच हरिर्हरितवर्णो घृतस्नुः प्रस्रुतोदकः सुदृशीकः शोभनदर्शनोऽर्णव उदकवान् । अर्ण इत्युदकनाम । ज्योतीरथो ज्योतिर्मयरथो राये धनस्य प्रापयिता । ओक्यः । ओक इति निवासनाम । तस्य हितः ॥ ॥२०॥

असर्जि स्कंभो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहंति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥४६॥
असर्जि । स्कंभः । दिवः । उत्ऽयतः । मदः । परि । त्रिऽधातुः । भुवनानि । अर्षति ।
अंशुं । रिहंति । मतयः । पनिप्नतं । गिरा । यदि । निःऽनिजं । ऋग्मिणः । ययुः ॥४६॥

दिवो द्युलोकस्य स्कंभः स्कंभयिता धारक उद्यतः सोमोऽसर्जि । सृज्यते । अभिषूयत इत्यर्थः । किंच त्रिधातुः । द्रोणकलशाधावनीयपूतभृदाख्यास्त्रयो धातवो यस्य स तथोक्तः । तादृशो भुवनान्युदकान्यर्षति । गच्छति । अंशुं सोमं पनिप्नतं शब्दायमानं मतयः पूजका रिहंति । लिहंति । आस्वादयंति । कदा । यदि निर्णिजं निर्णिक्तं । यद्वा । निर्णिगिति रूपनाम । रूपवंतमित्यर्थः । तमृग्मिणः स्तोतारो गिरा स्तुत्या ययुः गच्छंति तदा ॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यंति रंहयः ।
यद्गोभिरिंदो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥
प्र । ते । धाराः । अति । अण्वानि । मेष्यः । पुनानस्य । संऽयतः । यंति । रंहयः ।
यत् । गोभिः । इंदो इति । चम्वोः । संऽअज्यसे । आ । सुवानः । सोम । कलशेषु । सीदसि ॥४७॥

पुनानस्य पूयमानस्य संयतः संगृह्यमाणा रंहयो रंहणस्वभावा धारा मेष्योऽण्वान्यणूनि लोमान्यति यंति । अतिक्रम्य गच्छंति । हे इंदो सोम यद्यदा गोभिरुदकैश्चम्वोरधिषवणफलकयोरुपरि समज्यसे तदानीं हे सोम सुवानः सूयमानस्त्वं कलशेष्वा सीदसि ॥

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियं ।
जहि विश्वान्रक्षस इंदो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥

पवस्व । सोम । क्रतुऽवित् । नः । उक्थ्यः । अव्यः । वारे । परि । धाव । मधु । प्रियं ।
जहि । विश्वान् । रक्षसः । इंदो इति । अचिणः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥४८॥

हे सोम नोऽस्माकं क्रतुवित् कर्मज्ञः । स्तुतिज्ञ इत्यर्थः । उक्थ्यः स्तुत्यः । यतः स्तुत्यः अतः क्रतुविदित्यभिप्रायः । ईदृशस्त्वं नोऽस्माकं यागाय पवस्व । स्रव रसं । अव्यो वारे दशापवित्रे प्रियं मधु परि धाव । परिचर । हे इंदो दीप्त सोम अचिणो भक्षकान्विश्वान्रक्षसो जहि । सुवीराः सुपुत्रा वयं विदथे यज्ञे बृहन्महज्जनं वदेम । उच्चारयेम । याचेमेत्यर्थः । यद्वा । प्रभूतं स्तोत्रं वदेम ॥ ॥२१॥

प्र तु द्रवेति नवर्चं द्वितीयं सूक्तं काव्यस्योशनस आर्षं । अनादेशपरिभाषया त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्र तु नवोशना इति । आगतमूर्ध्वं प्रागुशनसः । अनु० ऋ० ९. ६७. । इति वचनाज्जगत्यधिकारो निवृत्तः ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयंतोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयंति ॥१॥
प्र । तु । द्रव । परि । कोशं । नि । सीद । नृऽभिः । पुनानः । अभि । वाजं । अर्ष ।
अश्वं । न । त्वा । वाजिनं । मर्जयंतः । अच्छ । बर्हिः । रशनाभिः । नयंति ॥१॥

हे सोम तु क्षिप्रं प्र द्रव । प्रगच्छ । गत्वा च कोशं द्रोणकलशं परि नि षीद । निषण्णो भव । नृभिर्नेतृभिः पुनानः पूयमानो वाजमन्नं यजमानार्थमुद्दिश्याभ्यर्ष । अभिगच्छ । वाजिनं बलवंतमश्वं नाश्वमिव तं यथा मार्जयंति तद्वद्वाजिनं त्वां मार्जयंतः शोधयंतो बर्हिर्यज्ञमच्छ प्रति रशनाभी रशनावदायताभिरंगुलीभिर्नयंत्यध्वर्युप्रमुखाः ॥

स्वायुधः पवते देव इंदुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टंभो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२॥
सुऽआयुधः । पवते । देवः । इंदुः । अशस्तिऽहा । वृजनं । रक्षमाणः ।
पिता । देवानां । जनिता । सुऽदक्षः । विष्टंभः । दिवः । धरुणः । पृथिव्याः ॥२॥

स्वायुधः शोभनायुध इंदुः सोमो देवः पवते । स च देवोऽशस्तिहा रक्षोहा वृजनमुपद्रवं रक्षमाणः पिता पालको देवानां तथा जनितोत्पादकः सुदक्षः सुबलो दिवो विष्टंभो विशेषेण स्तंभयिता पृथिव्याश्च धरुणो धारकः । एवंमहानुभावः पवते ॥

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनां ॥३॥
ऋषिः । विप्रः । पुरःऽएता । जनानां । ऋभुः । धीरः । उशना । काव्येन ।
सः । चित् । विवेद । निऽहितं । यत् । आसां । अपीच्यं । गुह्यं । नाम । गोनां ॥३॥

ऋषिरतींद्रियद्रष्टा विप्रो मेधावी पुरएता पुरतो गंता जनानां मनुष्याणामृभुरुरु भासमानो धीरो धीमानुशनैतन्नामर्षिर्यः स चित् स एव काव्येन कवित्वेन स्तोत्रेण विवेद । लभते । किं । यदासां गोनां गवामपीच्यं । अंतर्हितनामैतत् । अंतर्हितं गुह्यं गोपनीयं नाम नामकमुदकं पयोलक्षणं ॥

एष स्य ते मधुमाँ इंद्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४॥

एषः । स्यः । ते । मधुऽमान् । इंद्र । सोमः । वृषा । वृष्णे । परि । पवित्रे । अक्षारिति ।
सहस्रऽसाः । शतऽसाः । भूरिऽदावा । शश्वत्ऽतमं । बर्हिः । आ । वाजी । अस्थात् ॥४॥

हे इंद्र वृष्णे वर्षकाय ते तुभ्यमेष स्य स सोमो मधुमान् माधुर्योपेतो वृषा वर्षकः पवित्रे पर्यक्षाः । परिक्षरति ॥ क्षरतेर्लुङि रूपं ॥ स एव सहस्रसाः सहस्रसंख्याकधनस्य दाता शतसाः शतसंख्याकस्य दाता भूरिदावा ततोऽपि भूरेर्दाता वाजी बलवाञ्शश्वत्तमं नित्यं बर्हिर्यज्ञमास्थात् । आतिष्ठति ॥

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५॥

एते । सोमाः । अभि । गव्या । सहस्रा । महे । वाजाय । अमृताय । श्रवांसि ।
पवित्रेभिः । पवमानाः । असृग्रन् । श्रवस्यवः । न । पृतनाजः । अत्याः ॥५॥

एते सोमा गव्या गव्यानि सहस्रा सहस्राणि श्रवांस्यन्नान्याशिरलक्षणानि लक्षीकृत्य पवित्रेभिः पवित्रच्छिद्रैः पवमानाः पूयमाना महे महते वाजायान्नायामृतायामृतत्वायाभ्यसृग्रन् । सृज्यंते । किमिच्छवः । श्रवस्यवोऽन्नेच्छवः पृतनाजः सेनाजेतारोऽत्या नाश्वा इव ॥ ॥२२॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुंजानो अभि वाजमर्ष ॥६॥

परि । हि । स्म । पुरुऽहूतः । जनानां । विश्वा । असरत् । भोजना । पूयमानः ।
अथ । आ । भर । श्येनऽभृत । प्रयांसि । रयिं । तुंजानः । अभि । वाजं । अर्ष ॥६॥

अयं पर्यसरत् परिसरति जनानामर्थाय विश्वा सर्वाणि भोजना भोजनान्यन्नानि धनानि वा । कीदृशः । पुरुहूतो बहुभिराहूतः पूयमानः शोध्यमानः । अथ प्रत्यक्षकृतः । अथेदानीं हे श्येनभृत श्येनेनाहृत सोम त्वं प्रयांस्यन्नान्या भर । आहर । रयिं धनं तुंजानो ददानो वाजमन्नं रसमभ्यर्ष । अभिगच्छ ॥

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृंगे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

एषः । सुवानः । परि । सोमः । पवित्रे । सर्गः । न । सृष्टः । अदधावत् । अर्वा ।
तिग्मे इति । शिशानः । महिषः । न । शृंगे इति । गाः । गव्यन् । अभि । शूरः । न ।
सत्वा ॥७॥

एष सुवानः सूयमानोऽर्वारणकुशलः सोमः सर्गो न सृष्टो विसृष्टोऽश्व इव पवित्रे पर्यदधावत् । परिधावति । किंच तिग्मे तीक्ष्णे शृंगे शिशानस्तीक्ष्णीकुर्वन् महिषो न महान् महिषाख्यो मृग इव । तथान्यदृष्टांतः । गा गव्यन् प्रभूता गा इच्छञ्छूरो न शूर इव । एतौ महिषशूरौ यथा प्रतिबुद्धौ शीघ्रं धावतः तद्वत् सत्वा सदनशीलोऽयं गच्छतीति शेषः ॥

एषा ययौ परमादंतरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयंत्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इंद्र धारा ॥८॥
एषा । आ । ययौ । परमात् । अंतः । अद्रेः । कूऽचित् । सतीः । ऊर्वे । गाः । विवेद ।
दिवः । न । विऽद्युत् । स्तनयंती । अभ्रैः । सोमस्य । ते । पवते । इंद्र । धारा ॥८॥

एषा सोमधारा परमादुच्छ्रितात्स्थानादायौ जगाम पात्रं स्वयंप्राप्तव्यं देशं वा । किंचाद्रेः पणीनां निवासस्थानस्य पर्वतस्यांतः कूचित् क्वचित् कुत्रचिद्गूढ ऊर्वे देशे सतीर्वर्तमानाः पणिभिरपहृता गा विवेद । लब्धवती । यत्र पणयो गा अपहृत्य स्थापितवंतः स देश ऊर्वः । ऊर्वं गव्यं महि गृणानः । ऋ॰ ६. १७. १. । इति हि मंत्रांतरं । दिवो न विद्युद्दिवः सकाशाद्विद्युदिव स्तनयंती शब्दयंती । विद्युद्विशेष्यते । अभ्रैः प्रेरितेति शेषः । सा यथा शब्दं करोति तद्वच्छब्दं कुर्वती । सोमस्य संबंधिनी सेयं धारा हे इंद्र ते त्वदर्थं त्वत्पानाय पवते । पूयते । क्षरति वा ॥

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिंद्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९॥
उत । स्म । राशिं । परि । यासि । गोनां । इंद्रेण । सोम । सऽरथं । पुनानः ।
पूर्वीः । इषः । बृहतीः । जीरदानो इति जीरऽदानो । शिक्ष । शचीऽवः । तव ।
ताः । उपऽस्तुत् ॥९॥

उत स्मापि च खलु हे सोम पुनानः पूयमानो गोनां गवां राशिं समूहं पणिभिरपहृतं परि यासि । परिगच्छसि । कथंभूतः सन् उच्यते । इंद्रेण सह सरथमेकमेव रथमास्थाय । हे जीरदानो क्षिप्रदान सोम उपस्तुदुपस्तूयमानस्त्वं पूर्वीर्बह्वीर्बृहतीर्महतीरिष उक्तलक्षणान्यन्नानि शिक्ष । देहि । हे शचीवोऽन्नवन् ता इषस्तव स्वभूता इति शेषः ॥ ॥२३॥

अयं सोम इत्यष्टर्चं तृतीयं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । अयं सोमोऽष्टावित्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

अयं सोम इंद्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इंदुं मदाय युज्याय सोमं ॥१॥
अयं । सोमः । इंद्र । तुभ्यं । सुन्वे । तुभ्यं । पवते । त्वं । अस्य । पाहि ।
त्वं । ह । यं । चकृषे । त्वं । ववृषे । इंदुं । मदाय । युज्याय । सोमं ॥१॥

हे इंद्र अयं सोमस्तुभ्यं त्वदर्थं सुन्वे । सूयते ॥ सुनोतेः कर्मणि लटि लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः ॥ तुभ्यं त्वदर्थमेव पवते । पूयते । त्वं चास्यास्य पाहि । पिब । त्वं ह यमिंदुं सोमं चकृषे करोषि । त्वं च यं ववृषे वृतवानसि । किमर्थं । मदाय युज्याय सहायाय । सोम इंद्राय बलकरत्वात्सहाय इति प्रसिद्धं । यमेवं करोषि त्वं तं पाहीति समन्वयः ॥

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवंत ॥२॥
सः । ईं । रथः । न । भुरिषाट् । अयोजि । महः । पुरूणि । सातये । वसूनि ।
आत् । ईं । विश्वा । नहुष्याणि । जाता । स्वःऽसाता । वने । ऊर्ध्वा । नवंत ॥२॥

स ईं सोऽयं सोमो भुरिषाड्भुरिभारस्य सोढा रथो न रथ इव भुरिषाट् प्रभूतस्य भारस्य सोढायोजि। युज्यते। कीदृशः सः। महो महान्। किमर्थमयोजि। पुरूणि बहूनि वसूनि धनानि सातयेऽस्मभ्यं दातुं। आदीं योगानंतरं विश्वा विश्वानि सर्वाणि नहुष्याणि। नहुषो मनुष्याः। तेषां संबंधीनि जाता जातान्यस्य-द्विरोधादूर्ध्वोन्मुखानि वने वननीये स्वर्षाता स्वर्षातौ। संग्रामनामैतत्। स्वर्गलाभयुक्ते संग्रामे नवंत। गच्छंतु। नवतिर्गतिकर्मा। यद्वा। सोमं संग्रामे युद्धार्थिनः संगच्छंति॥

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम॥३॥
वायुः। न। यः। नियुत्वान्। इष्टऽयामा। नासत्याऽइव। हवे। आ। शंऽभविष्ठः।
विश्वऽवारः। द्रविणोदाःऽइव। त्मन्। पूषाऽइव। धीऽजवनः। असि। सोम॥३॥

यः सोमो नियुत्वान्। नियुतो वायोरश्वाः। तद्वान् वायुर्न वायुरिवेष्टयामेष्टगमनः। नासत्येवाश्विनाविव हवमाह्वानमाकर्ण्य सर्वतः शंभविष्ठः सुखस्य भावयितृतमः। द्रविणोदा इव धनदातेव त्मन्नात्मनि विश्ववारो विश्वैर्वरणीयो भवति तद्वद्विश्ववारोऽसि। पूषेव पोषकः सवितेव धीजवनो मनोवेगोऽसि। यद्वा। कर्मणां प्रवर्तयितासि हे सोम॥

इंद्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हंता वृत्राणामसि सोम पूर्भित्।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हंता विश्वस्यासि सोम दस्योः॥४॥
इंद्रः। न। यः। महा। कर्माणि। चक्रिः। हंता। वृत्राणां। असि। सोम। पूःऽभित्।
पैद्वः। न। हि। त्वं। अहिऽनाम्नां। हंता। विश्वस्य। असि। सोम। दस्योः॥४॥

इंद्रो नेंद्र इव यस्त्वं महा महांति कर्माणि चक्रिः ताच्छील्येन करोषि स त्वं हे सोम वृत्राणां शत्रूणां हंतासि। भवसि। तथा पूर्भित् पुरां भेत्तासि। किंच पैद्वो नाश्व इव खल्वहिनाम्नां हंता भवसि। आगत्य हंतीत्यहिः। तन्नामकानामित्यर्थः। न केवलं तेषामेव अपि तु विश्वस्यापि सर्वस्यापि दस्योरुपक्षपयितुः शत्रोर्हंतासि॥

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिं॥५॥
अग्निः। न। यः। वने। आ। सृज्यमानः। वृथा। पाजांसि। कृणुते। नदीषु।
जनः। न। युध्वा। महतः। उपब्दिः। इयर्ति। सोमः। पवमानः। ऊर्मिं॥५॥

अग्निर्नाग्निरिव यः सोमो वनेऽरण्य आ सृज्यमानः वनसंबंध्यग्निर्यथा बलानि कुरुते एवं यः सोमो वृथानायासेन नदीष्वांतरिक्षाणि पाजांसि कृणुते कुरुते। किंच युध्वा युद्धस्य कर्ता जनो न शूरो मनुष्य इव महतः शत्रोरुपब्दिः। वाङ्नामैतत्। शब्दयिता सन् पवमानः पूयमानः सोम ऊर्मिं प्रवृद्धं रसमियर्ति। प्रेरयति॥

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः।
वृथा समुद्रं सिंधवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन्॥६॥

एते । सोमाः । अति । वारांणि । अव्यां । दिव्याः । न । कोशांसः । अभ्रऽवर्षाः ।
वृथां । समुद्रं । सिंधवः । न । नीचीः । सुतासः । अभि । कलशान् । असृग्रन् ॥ ६ ॥

एते पूयमानाः सोमा अव्याविमयानि वाराणि वालान्यति गच्छंतीति शेषः । तत्र दृष्टांतः । दिव्या न कोशासो दिवि भवाः कोशा आप इव । ता विशेष्यंते । अभ्रवर्षा अभ्रैर्वृष्यमाणाः । किंच वृथानायासेन समुद्रं सिंधवो न नद्य इव नीचीर्नीचीनागाः सुतासोऽभिषुताः सोमाः कलशानभ्यसृग्रन् । अभिगच्छंति ॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ७ ॥
शुष्मी । शर्धः । न । मारुतं । पवस्व । अनभिऽशस्ता । दिव्या । यथा । विट् ।
आपः । न । मक्षु । सुऽमतिः । भव । नः । सहस्रऽअप्साः । पृतनाषाट् । न । यज्ञः ॥ ७ ॥

हे सोम शुष्मी । शुष्मं बलं शोषणात् । बलवांस्त्वं मारुतं शर्धो न मरुतां बलमिव पवस्व । तत्र दृष्टांतमेव स्पष्टयति । यथा दिव्या विट् प्रजानभिशस्ता । अभिशासो निंदा । अनिंदिता पवते । मरुतो वै देवानां विशः । तै॰ सं॰ २. २. ५. ७. । इति हि ब्राह्मणं । किंचापो नोदकानीव मक्षु क्षिप्रं पवमानस्त्वं सुमतिर्भव नोऽस्माकं । किंच सहस्राप्साः । अप्स इति रूपनाम । बहुरूपस्त्वं पृतनाषाट् पृतनानामभिभवितेंद्र इव यज्ञो यष्टव्यो भवसीति ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥
राज्ञः । नु । ते । वरुणस्य । व्रतानि । बृहत् । गभीरं । तव । सोम । धाम ।
शुचिः । त्वं । असि । प्रियः । न । मित्रः । दक्षाय्यः । अर्यमाऽइव । असि । सोम ॥ ८ ॥

हे सोम वरुणस्य वारकस्य ते तव व्रतानि कर्माणि नु क्षिप्रं करोमीति शेषः । हे सोम तव धाम तेजःस्थानं बृहन्महद्गभीरं च । प्रियो मित्र इव त्वं शुचिर्दीप्तः शुद्धो वासि । अर्यमेवार्यमा देव इव त्वं दक्षाय्योऽसि ॥ ॥ २४ ॥

प्रो स्य वह्निरिति सप्तर्चं चतुर्थं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । प्रो स्य सप्तेत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥
प्रो इति । स्यः । वह्निः । पथ्याभिः । अस्यान् । दिवः । न । वृष्टिः । पवमानः । अक्षारिति ।
सहस्रऽधारः । असदत् । नि । अस्मे इति । मातुः । उपऽस्थे । वने । आ । च । सोमः ॥ १ ॥

प्र ऊ इति निपातद्वयसमुदाय एको निपातितः । प्रो अस्यान् प्रस्यंदते स्य स वह्निर्वोढा पथ्याभिर्यज्ञमार्गैः । दिवो न वृष्टिर्दिवः सकाशाद्वृष्टिरिव पवमानः सन्नक्षाः । व्याप्नोषि । सोऽयं सोमः सहस्रधारो बहुधारः सन्नस्मे अस्मासु न्यसदत् । निषीदति ॥

राजा सिंधूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठां ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जां ॥ २ ॥

राजा । सिंधूनां । अवसिष्ट । वासः । ऋतस्य । नावं । आ । अरुहत् । रजिष्ठां ।
अप्ऽसु । द्रप्सः । ववृधे । श्येनऽजूतः । दुहे । ईं । पिता । दुहे । ईं । पितुः । जां ॥२॥

अयं राजा सोमः सिंधूनामुदकानां क्षीरादिस्यंदिनीनां गवां वा वासो वसनस्थानीयं क्षीराख्यं श्रयण-द्रव्यमवसिष्ट । आच्छादयति । तथा कृत्वा रजिष्ठामृजुतरामृतस्य यज्ञस्य नावमारुहत् । आरोहति । स द्रप्सः सोमरसः श्येनजूतः श्येनेनापहृतो रसोऽप्सु वसतीवरीषु ववृधे । वर्धते । ईं तमिमं पितुः पालकात्पितृस्थानी-याद्युलोकाज्जां जातमपत्यं सोममोमयं पिता पालको लोको दुहे । दोग्धि रसं । तथाध्वर्युरपि दुहे । दोग्धि । अथवा । उक्तलक्षणमेतं सोमं पिता पालकः स्वामी यजमानो दोग्धि फलं तथा दुहेऽध्वर्युरपि रसं दुहे । यद्वा । दुह ईमिति पुनरुक्तिरादरार्थं ॥

सिंहं नसंत मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिं ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥
सिंहं । नसंत । मध्वः । अयासं । हरिं । अरुषं । दिवः । अस्य । पतिं ।
शूरः । युत्ऽसु । प्रथमः । पृच्छते । गाः । अस्य । चक्षसा । परि । पाति । उक्षा ॥३॥

सिंहं शत्रूणां हिंसकं सिंहसदृशं मध्व उदकस्यायासं प्रेरकं हरिं हरितवर्णमस्य दिवो द्युलोकस्य पतिं पालकं सोमं नसंत । व्याप्नुवंति यजमानाः । युत्सु संग्रामेषु शूरः प्रथमो देवानां मध्ये मुख्यः सोमो गाः पणिभिरपहृताः पृच्छते मार्गज्ञान् । पणीन् हत्वा गा लब्धुं गोमार्गं पृच्छतीत्यर्थः । किंचास्य चक्षसा सामर्थ्ये-नोक्षा सेक्ता देवेंद्रः परि पाति विश्वं ॥

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युंजंत्युरुचक्र ऋष्वं ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयंति सनाभयो वाजिनमूर्जयंति ॥४॥
मधुऽपृष्ठं । घोरं । अयासं । अश्वं । रथे । युंजंति । उरुऽचक्रे । ऋष्वं ।
स्वसारः । ईं । जामयः । मर्जयंति । सऽनाभयः । वाजिनं । ऊर्जयंति ॥४॥

मधुपृष्ठं मधुरपृष्ठभागं घोरं भयानकमयासं गंतारमृष्वं दर्शनीयमुक्तलक्षणाश्वस्थानीयं व्याप्तं सोममुरुचक्रे प्रभूतचक्रे रथे यथाश्वं रथे युंजंति रथिकाः तद्वत् प्रभूतचरणे रथे रंहणस्य साधने यज्ञाख्ये रथे युंजंति । योजयंत्यध्वर्य्वादयः । किंचेमेनं सोमं स्वसारः स्वयंसारिण्यः परस्परं स्वसृभूता वा जामयो बंधुभूता अंगुलयः । एकहस्तनिष्पन्नत्वात् स्वसृत्वं जामित्वं च । एवंभूता मार्जयंति । शोधयंति । तदेवाह । सनाभयः समानबंधना वाजिनं बलवंतं सोममूर्जयंति । बलिनं कुर्वंति ॥

चतस्र ईं घृतदुहः सचंते समाने अंतर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षंति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षंति पूर्वीः ॥५॥
चतस्रः । ईं । घृतऽदुहः । सचंते । समाने । अंतः । धरुणे । निऽसत्ताः ।
ताः । ईं । अर्षंति । नमसा । पुनानाः । ताः । ईं । विश्वतः । परि । संति । पूर्वीः ॥५॥

चतस्रो घृतदुहो घृतदोग्ध्र्यो गाव ईमेनं सोमं सचंते । सेवंते । कीदृश्यस्ताः । समान एकस्मिन्धरुणे सर्वेषां धारकेऽंतरिक्षे निषत्ता निषण्णाः । ता घृतदुह ईमेनमर्षंति प्राप्नुवंति नमसान्नेन पुनानाः पूयमानाः सत्यः । ताः पूर्वीर्बह्व्यः प्रभूता गावो विश्वतः सर्वतः परि षंति । परिभवंति ॥

विष्टंभो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इंद्रियाय ॥६॥
विष्टंभः । दिवः । धरुणः । पृथिव्याः । विश्वाः । उत । क्षितयः । हस्ते । अस्य ।
असत् । ते । उत्सः । गृणते । नियुत्वान् । मध्वः । अंशुः । पवते । इंद्रियाय ॥६॥

अयं सोमो दिवो द्युलोकस्य विष्टंभभूतः । यथा गृहस्य स्तंभस्तद्वत् । तथा पृथिव्या धरुणो धारकः । उतापि च विश्वाः सर्वाः क्षितयः प्रजा अस्य सोमस्य हस्ते भवंति । उत्सः । उत्सरंत्यस्मात्कामा इत्युत्सः सोमः । स गृणते स्तुवते ते तुभ्यं नियुत्वानश्ववानसत् । भवतु । स सोमो मध्वो मधु ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ मधुररसोऽंशुः सोमः । अंशुः शमष्टमात्रो भवतीति यास्कः । नि० २. ५. । इंद्रियाय पवते । पूयते । अभिषूयते ॥

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिंद्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चंद्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७॥
वन्वन् । अवातः । अभि । देवऽवीतिं । इंद्राय । सोम । वृत्रऽहा । पवस्व ।
शग्धि । महः । पुरुऽचंद्रस्य । रायः । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥७॥ ॥२५॥

प्र हिन्वान इति षडृचं पंचमं सूक्तं मैत्रावरुणेर्वसिष्ठस्यार्षं त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रांतं । प्र हिन्वानः षड्वसिष्ठ इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इंद्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१॥
प्र । हिन्वानः । जनिता । रोदस्योः । रथः । न । वाजं । सनिष्यन् । अयासीत् ।
इंद्रं । गच्छन् । आयुधा । संऽशिशानः । विश्वा । वसु । हस्तयोः । आऽदधानः ॥१॥

हिन्वानः प्रेर्यमाणोऽध्वर्य्वादिभिर्जनितोत्पादयिता रोदस्योर्द्यावापृथिव्योः । तयोर्जनयितृत्वं वृष्टिप्रदानहविष्प्रापणाभ्यां । तादृक्सोमो वाजमन्नं सनिष्यन्दास्यन् प्रायासीत् । प्रयच्छति । इंद्रं गच्छन्प्राप्नुवन्नायुधायुधानि संशिशानः सम्यक् तीक्ष्णीकुर्वन्निंद्रसाहाय्यगमनार्थं तीक्ष्णायुधः सन् विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि हस्तयोरादधानोऽस्मभ्यं दानाय । एवं कुर्वन् प्रायासीत् ॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामांगूषाणामवावशंत वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिंधून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥२॥
अभि । त्रिऽपृष्ठं । वृषणं । वयःऽधां । आंगूषाणां । अवावशंत । वाणीः ।
वना । वसानः । वरुणः । न । सिंधून् । वि । रत्नऽधाः । दयते । वार्याणि ॥२॥

त्रिपृष्ठं । त्रीणि पृष्ठानि स्तोत्राणि द्रोणकलशादिस्थानानि वा सवनानि वा यस्य स तथोक्तः । तं वृषणं वर्षकं वयोधामन्नस्य दातारं सोममांगूषाणामाघोषवतां स्तोतॄणां वाणीर्वाचोऽभ्यवावशंत । शब्दयंते । वना वनान्युदकानि वसान आच्छादयन् वरुणो न वरुण इव सिंधूनाच्छादयति तद्वत् । रत्नधा रत्नानां दाता सोमो वार्याणि धनानि दयते । प्रयच्छति स्तोतृभ्यः ॥

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥३॥
शूरऽग्रामः । सर्वऽवीरः । सहावान् । जेता । पवस्व । सनिता । धनानि ।
तिग्मऽआयुधः । क्षिप्रऽधन्वा । समत्ऽसु । अषाळ्हः । सह्वान् । पृतनासु । शत्रून् ॥३॥

हे सोम पवस्व त्वं । कीदृशस्त्वं । शूरग्रामः । शूराणां ग्रामः संघो यस्य सः । सर्ववीरः । सर्वे वीरा यस्य स तथोक्तः । सहावान् सहनवान् जेता जयशीलः सनिता संभक्ता धनानि तिग्मायुधस्तीक्ष्णप्रहरणसाधनः क्षिप्रधन्वा क्षिप्रसहनशीलधन्वा समत्सु संग्रामेष्वषाळ्होऽसोढः साह्वानभिभवन् । कुत्र । पृतनासु शत्रुसेनासु । कान् । शत्रून् ॥

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥
उरुऽगव्यूतिः । अभयानि । कृण्वन् । समीचीने इति संऽईचीने । आ । पवस्व ।
पुरंधी इति पुरंऽधी ।
अपः । सिसासन् । उषसः । स्वः । गाः । सं । चिक्रदः । महः । अस्मभ्यं । वाजान् ॥४॥

हे सोम उरुगव्यूतिर्विस्तीर्णमार्गस्त्वमभयानि स्तोतृभ्यः कृण्वन् कुर्वन् पुरंधी । इदं द्यावापृथिव्योर्नाम । ते समीचीने संगते कुर्वन्ना पवस्व । आक्षर । अप उषसः स्वरादित्यं गा रश्मींश्च सिषासन् पुष्ट्यर्थं संभक्तुमिच्छन् सं चिक्रदः । संक्रंदसे । महो महतो महांति वाजानन्नान्यस्मभ्यं दातुमिति शेषः ॥

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सींद्रमिंदो पवमान विष्णुं ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिंद्रमिंदो मदाय ॥५॥
मत्सि । सोम । वरुणं । मत्सि । मित्रं । मत्सि । इंद्रं । इंदो इति । पवमान । विष्णुं ।
मत्सि । शर्धः । मारुतं । मत्सि । देवान् । मत्सि । महां । इंद्रं । इंदो इति । मदाय ॥५॥

हे पवमान पूयमानेंदो सोम त्वं वरुणादीन् मत्सि तर्पय तेषां मदाय । इंद्रस्य प्राधान्याद्विरभिधानं ॥

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इंदो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
एव । राजाऽइव । क्रतुऽमान् । अमेन । विश्वा । घनिघ्नत् । दुःऽइता । पवस्व ।
इंदो इति । सुऽउक्ताय । वचसे । वयः । धाः । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

अनया स्तुतिमुपसंहरन् फलमाशास्ते । हे सोम एवैवं स्तुत इति शेषः । क्रतुमांस्त्वं राजेवामेन बलेन विश्वा सर्वाणि दुरिता दुरितानि घनिघ्नद्विनाशयन् पवस्व । हे इंदो दीप्त सोम सूक्ताय शोभनमुदिताय वचसेऽस्माकं स्तोत्राय तद्वचो विमृश्यार्थवदवगत्य वयो धाः । अन्नं धेहि । अन्नलाभस्य स्तुतिनिमित्तकत्वात्तस्य स्तुतिवचसः प्राधान्येनोक्तिः । शिष्टं सिद्धं ॥ ॥२६॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥
तृतीयं श्रुतितत्त्वज्ञः सप्तमस्याष्टकस्य सः। व्याख्याय सायणामात्यश्चतुर्थं व्याचिकीर्षति ॥

तत्रासर्जीति षडृचं षष्ठं सूक्तं मारीचस्य कश्यपस्यार्षं त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताकं। असर्जि कश्यप इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजंति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

असर्जि। वक्वा। रथ्ये। यथा। आजौ। धिया। मनोता। प्रथमः। मनीषी।
दश। स्वसारः। अधि। सानौ। अव्ये। अजंति। वह्निं। सदनानि। अच्छ ॥१॥

वक्वा शब्दायमानः ॥ वच परिभाषणे। वनिप् ॥ एतादृशः पवमानः सोम आजौ। अजंति कर्मार्थमृत्विज इत्याजिर्यज्ञः। तस्मिन्धिया कर्मणा स्तोत्रेण वा साकमसर्जि। सृज्यते पात्रेष्विति। तत्र दृष्टांतः। रथ्ये यथा रथार्हे आजौ। संग्रामनामैतत् अजंति प्रक्षिपंत्यायुधान्यत्रेति। तस्मिन्नश्वो यथा धियांगुल्या सृज्यते तद्वत्। कीदृशः। मनोता यस्मिन्देवानां मनांस्योतानि प्रोतानि सः। तथा च ब्राह्मणं। तस्मिन् हि तेषां मनांस्योतानि। ऐ॰ ब्रा॰ २. १०.। इति। प्रथमः सर्वेषां देवानां मुख्यः मनीषी। मनस ईषा मनीषा स्तुतिः। तद्वान्। दश स्वसारो दशसंख्याका अंगुलयः सदनानि यज्ञगृहाण्यच्छाभिमुखीकृत्य वह्निं वोढारं सोमं सानौ समुच्छ्रिते। अधिः सप्तम्यर्थानुवादकः। अव्येऽविभवेऽविवालेन कृते पवित्रेऽजंति। प्रेरयंति ॥ अज गतिक्षेपणयोः ॥

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिंदुः।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२॥

वीती। जनस्य। दिव्यस्य। कव्यैः। अधि। सुवानः। नहुष्येभिः। इंदुः।
प्र। यः। नृऽभिः। अमृतः। मर्त्येभिः। मर्मृजानः। अविऽभिः। गोभिः। अत्ऽभिः ॥२॥

कव्यैः साधुभिः स्तोतृभिर्नहुष्येभिर्मनुष्यैः सुवानोऽभिषूयमाण इंदुः सोमो दिव्यस्य दिवि भवस्य जनस्य देवगणस्य वीती ॥ सुपां सुलुगिति चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ सोमभक्षणार्थं यज्ञमधिगच्छति। किंचामृतो मरणधर्मरहितो यः सोमो नृभिः कर्मनेतृभिर्मर्त्येभिर्मर्त्यैरविभिरविमयैः पवित्रैः तथा गोभिरानडुहैरधिषवण-चर्मभिः यद्वा गोविकारैः क्षीरादिभिः अद्भिर्वसतीवर्यादिभिरुदकैश्च मर्मृजानो भृशं शोध्यमानः सन् यज्ञं प्रति गच्छति। उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३॥

वृषा। वृष्णे। रोरुवत्। अंशुः। अस्मै। पवमानः। रुशत्। ईर्ते। पयः। गोः।
सहस्रं। ऋक्वा। पथिऽभिः। वचःऽवित्। अध्वस्मऽभिः। सूरः। अण्वं। वि। याति ॥३॥

वृषा कामानां वर्षको वृषेवाचरन्वा रोरुवद्भृशं शब्दायमानोऽंशुः सोमः पवमानः पूयमानः सन्नस्मै वृष्णे वर्षकायेंद्राय तदर्थं रुशत् ॥ रोचतेरिदं रूपं ॥ आरोचमानं श्वेतं गोः पय आश्रयणद्रव्यमीर्ते। गच्छति ॥ ईर गतौ। आदादिकः ॥ किंच ऋक्वा ॥ छंदसीवनिपाविति मत्वर्थीयो वनिप् ॥ स्तोत्रवान् अत एव वचोवित् स्तुतीनां ज्ञाता सूरः सुवीर्यः सर्वेषामग्निष्टोमादिकर्मणि प्रेरकः सोमोऽध्वस्मभिर्ध्वंसनवर्जितैर्हिंसारहितैः सहस्रं पथिभिर्बहुभिर्मार्गैरण्वं सूक्ष्मच्छिद्रं पवित्रं वि याति। अतीत्य द्रोणकलशं गच्छति ॥

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इंद ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अंति दूरादुपनायमेषां ॥४॥
रुज । दृळ्हा । चित् । रक्षसः । सदांसि । पुनानः । इंदो इति । ऊर्णुहि । वि । वाजान् ।
वृश्च । उपरिष्टात् । तुजता । वधेन । ये । अंति । दूरात् । उपऽनायं । एषां ॥४॥

हे सोम दृळ्हा चिद्दृढान्यपि परैरगंतव्यत्वेन रक्षसो राक्षसस्य सदांसि स्थानानि पुराणि रुज । विनाशय ॥ रुजो भंगे तौदादिकः ॥ किंच हे इंदो पवमानः पुनानः पवित्रादिभिः पूयमानस्त्वं वाजांस्तस्याम्नानि तस्य बलानि वोर्णुहि । आच्छादय । आहरेत्यर्थः । तथा ये राक्षसा उपरिष्टादूर्ध्वदेशादागच्छंति ये वांत्यंतिके समीप आगच्छंति ये च दूराद्दूरदेशाद्वागच्छंति तेषां राक्षसानामुपनायमुपनेतारं स्वामिनं तुजता । तुजतिहिंसाकर्मा । हिंसकेन वधेन हननसाधनेनायुधेन त्वं वृश्च । छिंधि ॥ ओव्रश्चू छेदने तौदादिकः ॥

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहंतस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥
सः । प्रत्नऽवत् । नव्यसे । विश्वऽवार । सुऽउक्ताय । पथः । कृणुहि । प्राचः ।
ये । दुःऽसहासः । वनुषा । बृहंतः । तान् । ते । अश्याम । पुरुऽकृत् । पुरुक्षो इति पुरुऽक्षो ॥५॥

हे विश्ववार विश्वैः सर्वैर्वरणीय हे सोम स तादृशस्त्वं प्रत्नवत् पुराण इव स्थितस्त्वं नव्यसे नवीयसे नवतराय ॥ नवशब्दादीयसुनीकारलोपश्छांदसः ॥ तस्मै सूक्ताय शोभनस्तुतिकाय मह्यं पथो मार्गान् प्राचः प्राचीनान् कृणुहि । कुरु । सर्वत्र गमनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ कृवि हिंसाकरणयोः । धिन्विकृण्व्योरच्चेत्युप्रत्ययः ॥ हे पुरुकृद्बहुकर्मन् हे पुरुक्षो ॥ टुक्षु शब्दे । मितद्र्वादित्वाड्डुप्रत्ययः । पा० ३. २. १८०. १.॥ बहुविधं शब्दायमान हे सोम दुःसहासो रक्षोभिः सोढुमशक्याः अत एव वनुषा । वनतिर्हिंसार्थः । हिंसया युक्ता बृहंतो महांतो ये त्वदीया अंशाः संति तांस्ते तव स्वभूतानंशान्वयं यज्ञेऽश्याम । प्राप्नुयाम ॥

एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६॥
एव । पुनानः । अपः । स्वः । गाः । अस्मभ्यं । तोका । तनयानि । भूरि ।
शं । नः । क्षेत्रं । उरु । ज्योतींषि । सोम । ज्योक् । नः । सूर्यं । दृशये । रिरीहि ॥६॥

हे सोम एवैवं पुनानः पूयमानः पवित्रादिभिरस्मभ्यं रिरीहि । प्रापय । प्रयच्छ । किं तत् । अपः । अप इत्यंतरिक्षनाम । आप्नोति सर्वमपि । अंतरिक्षं स्वः स्वर्गं द्युलोकं गाः । सर्वैर्गम्यतेऽत्रेति गावः पृथिव्यः । ताः पृथिवीश्च भूरि ॥ सुपां सुलुगिति द्वितीयाया लुक् ॥ बहूंस्तोका पुत्रांस्तनयानि । तन्वंति कुलमिति तनयाः पौत्राः । तांश्च तथा नोऽस्मभ्यं क्षेत्रं शं सुखकरं कुरु । हे सोम ज्योतींषि नक्षत्राण्युरूण्यंतरिक्षे विस्तीर्णानि कुरु । तथा नोऽस्मभ्यं सूर्यमादित्यं ज्योक् । चिरनामैतत् । चिरकालं दृशये द्रष्टुं कुरु ॥ ॥१॥

परि सुवान इति षडृचं सप्तमं सूक्तं मारीचस्य कश्यपस्यार्षं त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताकं । परि सुवान इत्यनुक्रांतं ॥ गतो विनियोगः ॥

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिंद्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥१॥

परि। सुवानः। हरिः। अंशुः। पवित्रे। रथः। न। सर्जि। सनये। हियानः।
आपत्। श्लोकं। इंद्रियं। पूयमानः। प्रति। देवान्। अजुषत। प्रयःऽभिः ॥१॥

सुवानोऽभिषूयमाणो हियान ऋत्विग्भिः प्रेर्यमाणो हरिर्हरितवर्णोंऽशुः सोमः पवित्रेऽविवालेन कृते दशापवित्रे परि सर्जि। परिसृज्यते। किमर्थं। सनये धनलाभाय देवानां संभजनाय वा। तत्र दृष्टांतः। रथो न रथो यथा युद्धे शत्रुवधार्थं शत्रुधनहरणार्थं वा सृज्यते तद्वत्। किंच पूयमानः पवित्रेण सोऽयं सोम इंद्रियमिंद्रलिंगमिंद्रस्य पर्याप्तं वा श्लोकं स्तोत्रमापत्। आप्नोति ॥ आपॢ व्याप्तौ। लृदित्वादङागमः ॥ तथा स सोमः प्रयोभिः प्रीणयितृभिर्हवीरूपैरन्नैर्देवान्प्रत्यजुषत। प्रतिसेवते ॥ जुषी प्रीतिसेवनयोः ॥

अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ।
सीदन्होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२॥

अच्छ। नृऽचक्षाः। असरत्। पवित्रे। नाम। दधानः। कविः। अस्य। योनौ।
सीदन्। होताऽइव। सदने। चमूषु। उप। ईं। अग्मन्। ऋषयः। सप्त। विप्राः ॥२॥

नृचक्षा नृणां द्रष्टा कविः क्रांतप्रज्ञः सोमो नाम वसतीवर्याख्यमुदकं दधानो धारयन्नस्यैतादृशस्यात्मनो योनौ स्थाने पवित्रेऽच्छासरत्। अभितः सरति। ततः सदने। सीदंत्यत्रेति सदनो यज्ञः। तस्मिन् होतेव होता यथा देवान् स्तोतुमुपविशति तद्वद्देवानागंतुमुपविशन् सोमश्चमूषु। चमंति चम्वो ग्रहादयः। तेष्वभिसरति। अनंतरं सप्तसंख्याका विप्रा मेधाविनः भरद्वाजः कश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ इत्येत ऋषय ईमेनं सोममुपाग्मन्। स्तोत्रैरुपगच्छंति ॥

प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यं।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रंतानु जनान्यतते पंच धीरः ॥३॥

प्र। सुऽमेधाः। गातुऽवित्। विश्वऽदेवः। सोमः। पुनानः। सदः। एति। नित्यं।
भुवत्। विश्वेषु। काव्येषु। रंता। अनु। जनान्। यतते। पंच। धीरः ॥३॥

सुमेधाः ॥ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः। पा० ५. ४. १२२.। इत्यसिच्समासांतः ॥ शोभनप्रज्ञो गातुविन्मार्गस्य वेत्ता। यद्वा। गातवः स्तोतारः। तेषां धनस्य लंभयिता। विश्वदेवः सर्वदेवोपगतः। यद्वा। देवो देवनं दीप्तिः। व्यापकदीप्तियुक्तः। एतादृशः सोमः पुनानः पूयमानः सन्नित्यमविनश्वरं सदः स्थानं द्रोणकलशं प्रैति। प्रगच्छति। ततो विश्वेषु सर्वेषु काव्येषु कविकर्मसु स्तोत्रेषु रंता भुवत्। रमणशीलो भवति ॥ रमेस्ताच्छीलिकस्तृन् ॥ तथा धीरः प्राज्ञः सोऽयं पंच जनान्निषादपंचमांश्चतुरो वर्णाननु यतते। अनुगंतुं प्रयत्नं करोति। अनुगच्छतीति यावत् ॥

तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजंति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥४॥

तव। त्ये। सोम। पवमान। निण्ये। विश्वे। देवाः। त्रयः। एकादशासः।
दश। स्वधाभिः। अधि। सानौ। अव्ये। मृजंति। त्वा। नद्यः। सप्त। यह्वीः ॥४॥

हे पवमान पूयमान हे सोम तव स्वभूतास्त्ये ते प्रसिद्धास्त्रय एकादशासः ॥ पूरणार्थे डट्प्रत्ययः ॥ त्रयस्त्रिंशत्संख्याका विश्वे सर्वे देवा निण्ये। अंतर्हितनामैतत्। अंतर्हिते स्थाने द्युलोके वर्तंते। तादृशं त्वां दशसंख्याका

अंगुलयोऽधि सानावधिकं समुच्छ्रितेऽव्येऽविमये पवित्रे स्वधाभिरुदकैर्मृजंति । शोधयंति । किंच यह्वीः ॥ वा छंदसीति पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ यह्व्यो महत्यः सप्तसंख्याका गंगाद्या नद्यस्त्वा त्वां मृजंति । वसतीवर्याख्यैरेकधनाख्यैश्च स्वीयैरुदकैस्त्वां मार्जयंतीत्यर्थः ॥

तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसंत ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकं ॥५॥
तत् । नु । सत्यं । पवमानस्य । अस्तु । यत्र । विश्वे । कारवः । संऽनसंत ।
ज्योतिः । यत् । अह्ने । अकृणोत् । ऊं इति । लोकं । प्र । आवत् । मनुं । दस्यवे । करः ।
अभीकं ॥५॥

सत्यं सत्यभूतं तत्प्रसिद्धस्य पवमानस्य सोमस्य स्थानं नु चिप्रमस्माकमस्तु । यत्र यस्मिन् स्थाने विश्वे सर्वे कारवः स्तोतारः संनसंत स्तोतुं संगच्छंते तत् स्थानमस्तु । अस्य सोमस्य यज्ज्योतिरह्ने दिवसाय लोकमालोकं प्रकाशमकृणोत् करोति । उ इत्यवधारणे । तज्ज्योतिर्मनुमेतन्नामानं राजर्षिं प्रावत् । प्रकर्षेणारचत् । तथा सोमः स्वीयं तेजो दस्यवे सर्वस्योपचपयित्रेऽसुरायाभीकमभिगमनशीलं कः । अकार्षीत् ॥ करोतेर्लुङि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक् ॥

परि सद्मेव पशुमांति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥६॥
परि । सद्मऽइव । पशुऽमंति । होता । राजा । न । सत्यः । संऽइतीः । इयानः ।
सोमः । पुनानः । कलशान् । अयासीत् । सीदन् । मृगः । न । महिषः । वनेषु ॥६॥

होता देवानामाह्वातर्त्विक् पशुमंति पशुमतः सद्मेव यजमानगृहाण्यर्थोपगच्छति किंच राजा न यथा राजा सत्यः सत्यकर्मा सन् समितीः । संग्रामनामैतत् सम्यक् प्राप्यते योद्धृभिरत्रेति । तान्संग्रामानियानो गच्छन् भवति तथा पुनानः सोमो वनेषु वननीयेषु वसतीवर्याख्येषूदकेषु सीदन् मृगो न महिषो महिषाख्यो मृग इवोदकेषु तिष्ठन् कलशान् द्रोणाभिधानानयासीत् । परियाति । यद्वा । महिषो महान्पूज्यो वा सोमः कलशान्परिगच्छतीति ॥ ॥३॥

साकमुच इति पंचर्चमष्टमं सूक्तं । गौतमस्य नोधस आर्षं । पूर्ववच्छंदोदेवते । तथा चानुक्रम्यते । साकमुचः पंच नोधा इति ॥ गतो विनियोगः ॥

साकमुक्षो मर्जयंत स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥
साकंऽउक्षः । मर्जयंत । स्वसारः । दश । धीरस्य । धीतयः । धनुत्रीः ।
हरिः । परि । अद्रवत् । जाः । सूर्यस्य । द्रोणं । ननक्षे । अत्यः । न । वाजी ॥१॥

साकमुचः सह युगपत्सिंचंत्यः ॥ उच सेचने । क्विपि रूपं ॥ तादृश्यः स्वसारः कर्मकरणार्थमितस्ततः सुष्ठु गच्छंत्योऽंगुलयो मर्जयंत । सोमं शोधयंति ॥ मृजू शौचालंकारयोः ॥ तथा दश दशसंख्याका धीतयः । अंगुलिनामैतत् । अंगुलयो धीरस्य समर्थस्य प्राज्ञस्य वा देवैर्ध्यातव्यस्य काम्यमानस्य वा सोमस्य धनुत्रीः प्रेरयित्र्यो भवंति । ततो हरिर्हरितवर्णः सोमः सूर्यस्य जाः प्रादुर्भूता जाया दिशस्ताः पर्यद्रवत् । परितो

गच्छति । सूर्यतेजसा द्याविर्भवंतीति दिशां तस्य जातं । अत्योऽतनशीलो वाजी नाश्व इव स्थितः सोमो द्रोणं कलशं नशते । व्याप्नोति । नशतिर्व्याप्तिकर्मा ॥

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥
सं । मातृऽभिः । न । शिशुः । वावशानः । वृषा । दधन्वे । पुरुऽवारः । अत्ऽभिः ।
मर्यः । न । योषां । अभि । निःऽकृतं । यन् । सं । गच्छते । कलशे । उस्रियाभिः ॥२॥

वावशानो देवान्कामयमानो वृषा कामानां वर्षकः अत एव पुरुवारो बहुभिर्वरणीयः सोमोऽद्भिर्मातृभूताभिर्वसतीवरीभिः सं दधन्वे । संधार्यते । तत्र दृष्टांतः । मातृभिर्न शिशुः कामयमानः पुत्रो यथा मातृभिः पयःप्रदानेन संधार्यते ॥ धविर्गत्यर्थः । कर्मणि लिटि रूपं ॥ मर्यो न मनुष्यो यथा योषां युवतिमभिगच्छति तद्वन्निष्कृतं संस्कृतं स्वस्थानमभि यन्नभिगच्छन् कलशे द्रोणाभिधान उस्रियाभिरद्भिर्गोविकारैः क्षीरादिभिर्वा सं गच्छते ॥ गमेरकर्मकात् समो गम्यृच्छीत्यात्मनेपदं ॥

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इंदुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणंति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥
उत । प्र । पिप्ये । ऊधः । अघ्न्यायाः । इंदुः । धाराभिः । सचते । सुऽमेधाः ।
मूर्धानं । गावः । पयसा । चमूषु । अभि । श्रीणंति । वसुऽभिः । न । निक्तैः ॥३॥

उतापि चाघ्न्यायाः । अघ्न्येति गोनाम । अहंतव्याया गोरूधः पयःस्थानं सोमः प्र पिप्ये । ओषध्यादिषु सोमः प्रविश्य प्रकर्षेणाप्याययति ॥ प्यायतेर्लिटि लिड्यङोश्चेति पीभावः ॥ सुमेधाः शोभनप्रज्ञः सोऽयमिंदुः सोमो धाराभिः सचते । समवैति । संगच्छते । ततो गावश्चमूषु । चमंति भक्षयंत्यत्र सोममिति चम्वो ग्रहादयः । तेषु स्थितं मूर्धानं समुच्छ्रितमिमं सोमं पयसा श्वेतेनाभि श्रीणंति । अभित आच्छादयंति । तत्र दृष्टांतः । निक्तैः प्रक्षालितैर्वसुभिर्न वस्त्रैर्यथाच्छादयंति तद्वत् ॥

स नो देवेभिः पवमान रदेंदो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्य१गा दावने वसूनां ॥४॥
सः । नः । देवेभिः । पवमान । रद । इंदो इति । रयिं । अश्विनं । वावशानः ।
रथिरायतां । उशती । पुरंऽधिः । अस्मद्र्यक् । आ । दावने । वसूनां ॥४॥

हे पवमान पूयमान सोम स तादृशस्त्वं नोऽस्मभ्यं देवेभिर्देवैः सह रद । प्रयच्छ । किं तत् उच्यते । हे इंदो पात्रेषु क्षरन् सोम वावशानः कामयमानः सन्नश्विनमश्ववंतं रयिं धनं प्रयच्छेति । किंच रथिरायतां । रथो येषामस्तीति रथिराः ॥ मेधारथाभ्यामितीरच्प्रत्ययः ॥ तद्वदाचरतस्तानिच्छतो वा पुरुषानुशती कामयमाना पुरंधिस्त्वदीया बहुविधा धीर्वसूनां धनानां दावने दानायास्मद्र्यगस्मदभिमुख्यागच्छतु । यद्वा । रथिरायतामिति धनानां विशेषणं । बलवतां धनानामिति ॥ अस्मद्र्यक् । विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यंचतावप्रत्यये । पा० ६. ३. ९२. । इत्यद्र्यादेशः । अद्रिसध्र्योरंतोदात्तत्वनिपातनादुदात्तस्वरितयोर्यण इति स्वरितः ॥

नू नो रयिमुप मास्व नृवंतं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चंद्रं ।
प्र वंदितुरिंदो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥

नु। नः। रयिं। उप। मास्व। नृऽवंतं। पुनानः। वाताप्यं। विश्वऽचंद्रं।
प्र। वंदितुः। इंदो इति। तारि। आयुः। प्रातः। मक्षु। धियाऽवसुः। जगम्यात् ॥५॥

हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्मभ्यं नु क्षिप्रं नृवंतं मनुष्यैर्युक्तं ॥ छांदसं मतुपो वत्वं ॥ तादृशं रयिं धनमुप मास्व। उपनिर्मिमीष्व। उपकुर्वित्यर्थः। किंच विश्वचंद्रं सर्वेषामाह्लादकं वाताप्यं। उदकनामैतत्। उदकं च कुरु। तथा हे इंदो सोम वंदितुस्तव स्तोतुरायुर्जीवनं प्र तारि। त्वया वर्धितमस्तु। सोऽयं सोमो धियावसुर्बुद्ध्या कर्मणा वा प्राप्तधनः प्रातःकाले वा सवने वा मक्षु शीघ्रमस्मदीयं यज्ञं प्रति जगम्यात्। आगच्छेत्॥ गमेर्लिङि बहुलं छंदसीति शपः श्लुः॥ ॥३॥

अधि यदिति पंचर्चं नवमं सूक्तं। आंगिरसस्य कण्वस्यार्षं। तथानुक्रम्यते। अधि यत्कण्व इति। पूर्ववच्छंदोदेवते॥ गतो विनियोगः॥

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धंते धियः सूर्ये न विशः।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥१॥
अधि। यत्। अस्मिन्। वाजिनिऽइव। शुभः। स्पर्धंते। धियः। सूर्यें। न। विशः।
अपः। वृणानः। पवते। कविऽयन्। व्रजं। न। पशुऽवर्धनाय। मन्म ॥१॥

यद्यदास्मिन्सोमे वाजिनीव शुभोऽश्वे यथा वस्त्रप्रभृत्यलंकारा भवंति। यदा वास्मिन्सोमे सूर्ये न यथा सूर्ये विशो रश्मय उदिता भवंति। तदा धियोऽंगुलयोऽधि स्पर्धंते। अहं पुरस्ताच्छोधयाम्यहं पुरः शोधयामीत्यहमहमिकयोपतिष्ठंति। ततोऽयं सोमोऽपो वसतीवरीर्वृणान आच्छादयन् पवते। पात्रेषु क्षरति। कलशानधिगच्छति। कीदृशः। कवीयन् कविरिवाचरन्। यद्वा। कवयः स्तोतारः। तानिच्छन्। तत्र दृष्टांतः। व्रजं न मन्म मननीयं गवां गोष्ठं पशुवर्धनाय पशूनां वर्धनाय गोपालः परिगच्छति। तथा देवानां प्रीणनाय पात्राणि प्रति पवत इति॥

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथंत।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायंतीरभि वावश्र इंदुं ॥२॥
द्विता। विऽऊर्ण्वन्। अमृतस्य। धाम। स्वःऽविदे। भुवनानि। प्रथंत।
धियः। पिन्वानाः। स्वसरे। न। गावः। ऋतऽयंतीः। अभि। वावश्रे। इंदुं ॥२॥

अमृतस्योदकस्य धाम धारकं स्थानमंतरिक्षं सोमो द्विता द्विधा व्यूर्ण्वन्नुभयतः स्वतेजसाच्छादयन् मध्येन गच्छति। ततः स्वर्विदे सर्वज्ञाय तस्मै सोमाय भुवनानि प्रथंत। विस्तीर्णानि भवंति। तस्य रश्मीनां संचरणार्थं प्रथंत इत्यर्थः। अथ पिन्वानाः प्रीणयित्र्यो धियः स्तुतिलक्षणवाच ऋतायंतीर्यज्ञमिच्छंत्यः सत्यस्तमिममिंदुं सोममभिलक्ष्य स्वसरे यागाहनि वावश्रे। शब्दायंते। यद्वा। सोमं कामयंते। तत्र दृष्टांतः। गावो न यथा पिन्वमानाः पयः क्षरंत्यो गावः स्वसरे। सुष्ठ्वस्यंते प्रेर्यंते गावोऽत्रेति स्वसरो गोष्ठं। तस्मिन्वत्साभिलक्ष्य शब्दं कुर्वंति तद्वत्॥

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥३॥
परि। यत्। कविः। काव्या। भरते। शूरः। न। रथः। भुवनानि। विश्वा।
देवेषु। यशः। मर्ताय। भूषन्। दक्षाय। रायः। पुरुऽभूषु। नव्यः ॥३॥

कविः क्रांतप्रज्ञः सोमः काव्या काव्यानि कवेः कर्माणि स्तोत्राणि यद्यदा परि भरते परितो बिभर्ति। परिगच्छतीति यावत्। कथमिव। शूरो न यथा शूरः शत्रूणां बाधको रथस्तदीयो विश्वा भुवनानि संग्रामिकाणि भूतानि परियाति तद्वत्। तदानीं देवेषु स्थितं यशो व्यापकं धनं मर्ताय मनुष्याय स्तोत्रे भूषन्॥ भवतेरंतर्भावितण्यर्थात्सनि रूपं॥ भावयितुमिच्छन् सोमो राय आत्मना दत्तस्य धनस्य दवाय वृद्ध्यर्थं पुरुभूषु बहुषु यज्ञभवनेषु नव्यः स्तोतव्यो भवति॥ णु स्तुतौ। अचो यत्॥

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवंति सत्या समिथा मितद्रौ॥४॥
श्रिये। जातः। श्रिये। आ। निः। इयाय। श्रियं। वयः। जरितृऽभ्यः। दधाति।
श्रियं। वसानाः। अमृतऽत्वं। आयन्। भवंति। सत्या। संऽइथा। मितऽद्रौ॥४॥

स सोमः श्रिये जातः संपदर्थं प्रादुर्भूतो भवति। तदेवाह। श्रिये श्र्यर्थमेवा निरियाय। संमुख्य आभिमुख्येन निर्गच्छति। निर्गतश्च स सोमो जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः श्रियं वयोऽन्नं जीवनं वा दधाति। विदधाति। प्रयच्छति। तेन दत्तां श्रियं वसाना आच्छादयंतः स्तोतारोऽमृतत्वं देवत्वममरणं वायन्। प्राप्नुवन्। तस्मिन्मितद्रौ मितगमने सोमे समिथा। युद्धनामैतत् सम्यक् प्राप्यतेऽत्रेति॥ समोणः। उ० २. ११.। इत्येतेः सम्पूर्वस्य थकप्रत्ययः॥ तानि युद्धानि सत्या सत्यानि यथार्थानि भवंति न तु वितथानि। तेन सोमेन पराजितानि भवंतीत्यर्थः॥

इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान्।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून्॥५॥
इषं। ऊर्जं। अभि। अर्ष। अश्वं। गां। उरु। ज्योतिः। कृणुहि। मत्सि। देवान्।
विश्वानि। हि। सुऽसहा। तानि। तुभ्यं। पवमान। बाधसे। सोम। शत्रून्॥५॥

हे सोम इषमन्नमूर्जमन्नरसं चास्मभ्यमभ्यर्ष। अभिगमय। किंचाश्वं वाहनं गां पयःप्रदानेन यज्ञस्य साधनभूतां गां च। तथोरु महज्ज्योतिः सूर्याख्यं कृणुहि। जगदालोकनार्थं कुरु। किंच देवानिंद्रादीन् मत्सि। सोमेन तर्पय॥ मदेर्लेटि बहुलं छंदसीति विकरणस्य लुक्। वाक्यभेदादनिघातः॥ अपि च हे सोम तुभ्यं विश्वानि सर्वाणि रक्षांसि सुषहा सुसहान्यनायासेनैवाभिभवितुं शक्यानि भवंति। हिरवधारणे। अत एव हे पवमान पूयमान हे सोम सर्वाञ्छत्रून्बाधसे। जहि॥ ॥४॥

कनिक्रंतीति पंचर्चं दशमं सूक्तं कण्वपुत्रस्य प्रस्कण्वस्यार्षं। तथानुक्रम्यते। कनिक्रंति प्रस्कण्व इति। पूर्ववच्छंदोदेवते॥ गतो विनियोगः॥

कनिक्रंति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः॥१॥
कनिक्रंति। हरिः। आ। सृज्यमानः। सीदन्। वनस्य। जठरे। पुनानः।
नृऽभिः। यतः। कृणुते। निःऽनिजं। गाः। अतः। मतीः। जनयत। स्वधाभिः॥१॥

सृज्यमान आ समंताद्विसृज्यमानोऽभिषूयमाणो हरिर्हरितवर्णः सोमः कनिक्रंति। पुनःपुनः शब्दायते॥ क्रंदतेर्यङ्लुकि तिपीडभावे दाधर्ति दर्धर्तीत्यादिना निपातनादभ्यासस्य निगागमः। अभ्यस्तस्वरः॥ तथा पुनानः पूयमानो वनस्य वननीयस्य द्रोणकलशस्य जठरे सीदन्नुपविशञ्छब्दायते। किंच नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋ-

त्रिभिर्यतः संयतः सोमो गा गोविकारान् क्षीरादीन्याच्छादयन्निर्णिजमात्मनो रूपं कृणुते । यद्वादिषु करोति । अतोऽस्मै सोमाय मतीर्मननीयाः स्तुतीः स्वधाभिर्हविर्भिः सह जनयत । स्तोतारोऽजनयन् ॥ अस्यांतादेशाभावश्छांदसः ॥ यद्वा । हे स्तोतारः अस्मै सोमाय स्तुतीर्जनयत । उत्पादयत । कुरुतेति यावत् ॥

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावं ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२॥
हरिः । सृजानः । पथ्यां । ऋतस्य । इयर्ति । वाचं । अरिताऽइव । नावं ।
देवः । देवानां । गुह्यानि । नाम । आविः । कृणोति । बर्हिषि । प्रऽवाचे ॥२॥

सृजानः सृज्यमानो हरिर्हरितवर्णः सोम ऋतस्य सत्यभूतस्य पथ्यां पथि भवां वाचं दैवीमियर्ति । प्रेरयति । तत्र दृष्टांतः । अरितेव जनांस्तीरं प्रापयन्नाविको नावं यथा प्रेरयति तद्वत् ॥ ऋ गतौ जौहोत्यादिकः । अर्तिपिपर्त्योरित्यभ्यासस्येत्वं ॥ ततो देवो दीप्यमानः सोमो देवानामिंद्रादीनां गुह्यान्यंतर्हितानि नाम नामानि शरीराणि प्रवाचे प्रकर्षेण वाचयित्रे स्तोत्रे बर्हिषि यज्ञ आविष्कृणोति । स्तोतुमाविष्करोति ॥

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यंतीरुप च यंति सं चा च विशंत्युशतीरुशंतं ॥३॥
अपांऽइव । इत् । ऊर्मयः । तर्तुराणाः । प्र । मनीषाः । ईरते । सोमं । अच्छ ।
नमस्यंतीः । उप । च । यंति । सं । च । आ । च । विशंति । उशतीः । उशंतं ॥३॥

अपामिव यथोदकानामूर्मयस्त्वरंते । इदिति पूरणः । तद्वत्तर्तुराणाः कर्मणि देवान्स्तोतुं त्वरमाणाः ॥ तुर त्वरणे जौहोत्यादिकः । यङ्लुगंतस्य शानचि रूपं । अभ्यासस्यावर्णश्च रेफादेशश्छांदसः । अभ्यस्तस्वरः ॥ तादृशा ऋत्विजो मनीषा मनस ईशित्रीः स्तुतीः सोममच्छ सोमं प्रति प्रेरते । प्रेरयंति । नमस्यंतीर्नमस्यंत्यः सोमं पूजयंत्यः सत्यस्तमुप यंति चोपगच्छंति तमेव सं यंति च ॥ चवायोगे प्रथमेति न निघातः ॥ तत उशतीः कामयमानाः स्तुतय उशंतं कामयमानं सोममा विशंति च ॥

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहंत्युक्षणं गिरिष्ठां ।
तं वावशानं मतयः सचंते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४॥
तं । मर्मृजानं । महिषं । न । सानौ । अंशुं । दुहंति । उक्षणं । गिरिऽस्थां ।
तं । वावशानं । मतयः । सचंते । त्रितः । बिभर्ति । वरुणं । समुद्रे ॥४॥

मर्मृजानं यष्टृभिः परिचर्यमाणं महिषं न महिषाख्यं मृगमिव सानौ समुच्छ्रिते देशे वर्तमानमुक्षणं कामानां सेक्तारं गिरिष्ठामभिषवार्थं ग्रावसु निष्ठितं तं तादृशं प्रसिद्धमंशुं सोमं दुहंति । ऋत्विजो दुहते । ग्रावाणो वत्सा ऋत्विजो दुहंति । तै० सं० ६. २. ११. ४. । इति तैत्तिरीयब्राह्मणं । तं तादृशं वावशानं कामयमानं सोमं मतयो मंतव्याः स्तुतयः सचंते । समवयंति । सेवंत इति यावत् । ततस्त्रितस्त्रिषु स्थानेषु वर्तमान इंद्रो वरुणं शत्रूणां निवारकमेनं सोमं समुद्रेऽंतरिक्षे बिभर्ति । शत्रुवधार्थं धारयति । यद्वा । त्रितस्त्रिषु स्थानेषु द्रोणाधवनीयपूतभृदाख्येषु कलशेषु ततो विततः सोमः शत्रूणां निवारकमिंद्रं द्युलोके बिभर्ति । पोषयति ॥

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इंदो वि ष्या मनीषां ।
इंद्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥

इष्यन् । वाचं । उपवक्ताऽइंव । होतुः । पुनानः । इंदो इति । वि । स्य । मनीषां ।
इंद्रः । च । यत् । क्षयंथः । सौभंगाय । सुऽवीर्यस्य । पतंयः । स्याम ॥५॥

हे इंदो सोम वाचं स्तुतिमिष्यन् प्रेरयन् होतुरुपवक्तेव यथाध्वर्युः प्रतिगरं कुर्वन् प्रोत्साहयति तद्वत्स्तोतॄणां शंसनाय प्रोत्साहं कुर्वन् पुनानः पूयमानस्त्वं मनीषां बुद्धिं वि ष्य । विमुंच । किंतु बुद्धिं धनप्रदानाभिमुखीं कुरु । किंच यद्यदेंद्रश्च त्वं सह यज्ञे क्षयथः निवसथः तदा स्तोतारो वयं सौभगाय सौभाग्याय स्याम । किंच सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतस्य धनस्य पतयः स्वामिनः स्याम । भवेम ॥ ॥५॥

प्र सेनानीरिति चतुर्विंशत्यृचमेकादशं सूक्तं दिवोदासपुत्रस्य प्रतर्दनाख्यस्य राजर्षेरिदं त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । प्र सेनानीश्चतुर्विंशतिर्दैवोदासिः प्रतर्दन इति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निंद्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥
प्र । सेनाऽनीः । शूरः । अग्रे । रथानां । गव्यन् । एति । हर्षते । अस्य । सेना ।
भद्रान् । कृण्वन् । इंद्रऽहवान् । सखिऽभ्यः । आ । सोमः । वस्त्रा । रभसानि । दत्ते ॥१॥

सेनानीः सेनानामग्र उपनेता शूरः शत्रूणां बाधकः सोमो गव्यञ्छत्रूणां गा इच्छन् । यद्वा । यजमानानां पश्वादिकमिच्छन् । रथानामग्रे रथानां पुरतः प्रैति । प्रकर्षेण संग्रामं गच्छति । अस्य सोमस्य सेना च हर्षते । हृष्यति ॥ वाक्यभेदादनिघातः ॥ किंच सखिभ्यः समानख्यानेभ्यो यजमानेभ्य इंद्रहवांस्तैः क्रतानींद्रस्याह्वानानि भद्रान्कल्याणानि यथार्थानि कृण्वन् कुर्वन् । आहूतो हींद्रः सोमं पीत्वा कामान्प्रयच्छतीति रभसानींद्रस्य वेगेनागमने निमित्तानि वस्त्राण्याच्छादकानि पयःप्रभृतीन्याश्रयणान्या दत्ते । आगृह्णाति ॥

समस्य हरिं हरयो मृजंत्यश्वहयैरनिंशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिंद्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२॥
सं । अस्य । हरिं । हरयः । मृजंति । अश्वऽहयैः । अनिंऽशितं । नमःऽभिः ।
आ । तिष्ठति । रथं । इंद्रस्य । सखा । विद्वान् । एन । सुऽमतिं । याति । अच्छ ॥२॥

हरयः हरंत्यभिषुण्वंति सोममित्यृत्विजोऽंगुलयो वा हरिं हरितवर्णमस्य सोमस्य कारणमंशुं सं मृजंति । सम्यगभिषुण्वंति । ततः सोमो नमोभिर्नामयितृभिरश्वहयैर्व्याप्तैरप्यनिशितमसंस्कृतमयुक्तमननुगतं रथं रमणसाधनमात्मीयं दशापवित्रमा तिष्ठति । आसीदति । अनंतरमिंद्रस्य सखा सखिभूतो विद्वान् प्राज्ञः सोम एनैतेन रथेन पवित्रेण सुमतिं शोभनस्तुतिकं स्तोतारमच्छ याति । अभिगच्छति । तस्मिन्काले तेन क्रियमाणां स्तुतिमभिगच्छतीत्यर्थः ॥

स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इंद्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥३॥
सः । नः । देव । देवऽताते । पवस्व । महे । सोम । प्सरसे । इंद्रऽपानः ।
कृण्वन् । अपः । वर्षयन् । द्यां । उत । इमां । उरोः । आ । नः । वरिवस्य । पुनानः ॥३॥

हे देव द्योतमान हे सोम स तादृश इंद्रपान इंद्रेण पातव्यस्त्वं नोऽस्माकं स्वभूते देवताते देवैस्तते वितते यज्ञे महे महते प्सरसे भक्षणायेंद्रस्य पानाय पवस्व । ग्रहादिषु क्षर । किंचाप उदकानि कृण्वन् कुर्वन् उतापि

च द्यामिमां द्यावापृथिव्यौ वर्षयन्। भूमिं पर्जन्यरूपेण तर्पयति द्युलोकमग्निरूपेणेति । भूमिं पर्जन्या जिन्वंति दिवं जिन्वंत्यग्नयः । ऋ० १. १६४. ५१.। इति श्रवणात् । उरोर्विस्तीर्णादंतरिक्षादागच्छंस्त्वं पुनानः पूयमानः सन्नोऽस्मान्वरिवस्य। धनादिप्रदानेन परिचरेति ॥

अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशंति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥४॥
अजीतये। अहतये। पवस्व। स्वस्तये। सर्वऽतातये। बृहते।
तत्। उशंति। विश्वे। इमे। सखायः। तत्। अहं। वश्मि। पवमान। सोम ॥४॥

हे सोम अजीतये यथा वयं शत्रुभिरजिता भवेम तथा तेषामजयाय अहतये यथा तैरहताः स्याम तस्मै च अत एव स्वस्तयेऽविनाशाय किंच बृहते सर्वतातये सर्वैरिंद्रादिभिर्देवैः स्तूयमानाय यज्ञाय एतदर्थं पवस्व । अस्मदभिमुखमागच्छ । पविर्गतिकर्मा । विश्वे सर्व इमे मदीयाः सखायः स्तोतारस्तत्त्वदीयं रक्षणमुशंति । कामयंते । हे पवमान सोम तद्रक्षणमहमपि वश्मि । कामये ॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेंद्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥
सोमः। पवते। जनिता। मतीनां। जनिता। दिवः। जनिता। पृथिव्याः।
जनिता। अग्नेः। जनिता। सूर्यस्य। जनिता। इंद्रस्य। जनिता। उत। विष्णोः ॥५॥

सोमोऽभिषूयमाणः पवते । पात्रेषु क्षरति । कीदृशः । मतीनां बुद्धीनां यद्वा मननीयानां स्तुतीनां जनिता जनयिता ॥ जनिता मंत्रे । पा० ६. ४. ५३. । इति निपातनाण्णिलोपः ॥ किंच दिवो द्युलोकस्य जनिता प्रादुर्भावयिता तथा पृथिव्या जनयिता अग्नेर्जनयिता प्रकाशयिता सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य जनिता इंद्रस्य जनिता पानेन मदस्य जनयिता उतापि च विष्णोर्व्यापकस्य जनिता जनयिता । एतत्सर्वं सोमेऽभिषूयमाणे भवतीति। सोमो हि देवानाप्याययतीति ॥ ॥६॥

देवसुवां हविःषु सोमस्य वनस्पतेर्ब्रह्मा देवानामिति याज्या । सूत्र्यते च । त्वं च सोम नो वशो ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनां । आ० ४. ११. । इति ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणां ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥
ब्रह्मा। देवानां। पदऽवीः। कवीनां। ऋषिः। विप्राणां। महिषः। मृगाणां।
श्येनः। गृध्राणां। स्वऽधितिः। वनानां। सोमः। पवित्रं। अति। एति। रेभन् ॥६॥

सोम एवंरूपो भवति । देवानां स्तोत्रकारिणामृत्विजां ब्रह्मा ब्रह्माख्यर्त्विक्स्थानीयो भवति । यद्वा । देवानां द्योतमानानामिंद्रादीनां ब्रह्मा राजा भवति । तथा कवीनां क्रांतप्रज्ञानां पदवीः । स्खलंति पदानि साधुत्वेन यो योजयति स पदवीः ॥ वी गत्यादिष्वित्येतस्मात्क्विपि रूपं ॥ तथा विप्राणां मेधाविनां मध्य ऋषिर्भवति । यः परोक्षं पश्यति स ऋषिः ऋषिर्दर्शनात् । नि० २. ११. । इति । मृगाणां महिषो भवति । महिषाख्यो बलवान्राजा भवति । तथा गृध्राणां पक्षिविशेषाणां श्येनः शंसनीयः पक्षिराजो भवति । वनानां । वनतिर्हिंसाकर्मा । हिंसकानां छेदकानां मध्ये स्वधितिरेतन्नामकश्छेदकोऽसि । एवंप्रभावः सोमो रेभञ्शब्दायमानः सन् पवित्रमूर्णास्तुकेन कृतमत्येति । अतिगच्छति ॥

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिंधुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अंतः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥
प्र । अवीविपत् । वाचः । ऊर्मिं । न । सिंधुः । गिरः । सोमः । पवमानः । मनीषाः ।
अंतरिति । पश्यन् । वृजना । इमा । अवराणि । आ । तिष्ठति । वृषभः । गोषु । जानन् ॥७॥

पवमानः सोमो मनीषा मनस ईशिता हृदयंगमा गिरः स्तुतीः प्रावीविपत् । प्रकर्षेण वेपयति । प्रेरयति । कथमिव । सिंधुः स्यंदमाना नदीव वाचः शब्दस्योर्मिं न संघं यथा प्रेरयति तद्वत् । किंच वृषभः कामानामुदकानां वा वर्षकः सोमोऽंतरंतर्हितं वस्तुजातं पश्यन्नवराणि दुर्बलैर्वारयितुमशक्यानीमा वृजनेमानि बलान्या तिष्ठति । आसीदति । किं कुर्वन् । गोषु जानन् गवां जानानः सन् परबलानि प्रविशति ॥

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इंद्रायेंदो पवमानो मनीष्यंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८॥
सः । मत्सरः । पृत्ऽसु । वन्वन् । अवातः । सहस्रऽरेताः । अभि । वाजं । अर्ष ।
इंद्राय । इंदो इति । पवमानः । मनीषी । अंशोः । ऊर्मिं । ईरय । गाः । इषण्यन् ॥८॥

मत्सरो मदकरः पृत्सु संग्रामेषु वन्वञ्छत्रून् हिंसन् अत एवावातोऽन्यैर्गंतुमशक्यः सहस्ररेताः सहस्रोदकधारोपेतः स सोमो वाजं शत्रूणां बलमभ्यर्ष । अभिगच्छ । हे इंदो सोम पवमानः पूयमानो मनीषी प्राज्ञस्त्वं गा इषण्यञ्छब्दान्प्रेरयन् । यद्वा । यजमानानां यज्ञसाधनभूता गाः प्रेरयन् । इंद्रायेंद्रार्थमंशोरभिषूयमाणस्य सोमस्योर्मिं संघमीरय । प्रेरय ॥

परि प्रियः कलशे देववात इंद्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इंदुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥
परि । प्रियः । कलशे । देवऽवातः । इंद्राय । सोमः । रण्यः । मदाय ।
सहस्रऽधारः । शतऽवाजः । इंदुः । वाजी । न । सप्तिः । समना । जिगाति ॥९॥

प्रियः प्रीणयिता अत एव देववातो देवैरभिगतो रण्यो रमणीयः सोम इंद्रायेंद्रस्य मदाय मदार्थं कलशे द्रोणाभिधाने परि जिगाति । परिगच्छति । कीदृशः । सहस्रधारो बहुविधधारोपेतः शतवाजो बहुबल इंदुः पात्रेषु चरन् । तत्र दृष्टांतः । वाजी न यथा वाजी बलवान् सप्तिरश्वः समना । संग्रामनामैतत् ॥ सम इति अवैक्लव्ये ॥ समंति धृष्टा भवंति योद्धारोऽत्रेति । तस्मिन्संग्रामे यथाश्वो जिगाति गच्छति तद्वत् ॥

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥
सः । पूर्व्यः । वसुऽवित् । जायमानः । मृजानः । अप्ऽसु । दुदुहानः । अद्रौ ।
अभिशस्तिऽपाः । भुवनस्य । राजा । विदत् । गातुं । ब्रह्मणे । पूयमानः ॥१०॥

पूर्व्यः पुराणो यद्वा पूर्वैः कृतोऽभिषुतो वसुविद्धनानां लंभको जायमानोऽप्सु वसतीवर्याख्येषूदकेषु मृजानो मृज्यमानोऽद्रावभिषवग्रावणि दुदुहानो दुह्यमानोऽभिशस्तिपाः । अभितः शस्तिर्हिंसा येषां ते

ऽभिगृणतः गृत्तवः। तेभ्यः परिरक्षको भुवनस्य भूतजातस्य राजा स्वामी एवंविधः स तादृशः सोमो भ्रमणे कर्मार्थं पूयमानः सन् गातुं मार्गं समीचीनं विदत्। यजमानेभ्यः प्रयच्छति ॥ ॥७॥

महापितृयज्ञे पितरः सोमवंत इत्यस्य द्वितीयानुवाक्या त्वया हि नः पितर इत्येषा। सूत्रितं च। पितरो ऽग्निष्वात्ता यम उदीरतामवर उत्परासस्त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे। आ॰ २.१९.। इति॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥
त्वया। हि। नः। पितरः। सोम। पूर्वे। कर्माणि। चक्रुः। पवमान। धीराः।
वन्वन्। अवातः। परिऽधीन्। अप। ऊर्णु। वीरेभिः। अश्वैः। मघऽवा। भव। नः ॥११॥

हे पवमान पूयमान सोम धीराः कर्मणि कुशलाः प्राज्ञा नोऽस्माकं पितरः पूर्वे पुरातना अंगिरसस्त्वया। हिरवधारणे। त्वया सहायेनैव कर्माण्यग्निष्टोमादीनि चक्रुः। कृतवंतः। किंच वन्वन् स्तोतॄन्संभजन्। यद्वा। वनतिर्हिंसार्थः। शत्रून्हिंसन्। अवातस्तैरभिगतस्त्वं परिधीन्। परिधीयत एभिः सर्वमिति परिधयो राक्षसाः। तानपोर्णु। अपोर्णुहि। अपच्छादय। जहीति यावत् ॥ ऊर्णोतेर्लोटि छांदसो हेर्लुक् ॥ एतादृशस्त्वं नो ऽस्माकं पुत्रादियुक्तं धनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान्।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इंद्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥
यथा। अपवथाः। मनवे। वयःऽधाः। अमित्रऽहा। वरिवःऽवित्। हविष्मान्।
एव। पवस्व। द्रविणं। दधानः। इंद्रे। सं। तिष्ठ। जनय। आयुधानि ॥१२॥

हे सोम यथा पुरा त्वं मनवे राज्ञे वयोधा अन्नस्य धाता तथामित्रहा शत्रूणां हंता वरिवोविद्धनस्य लंभयिता हविष्मान् पुरोडाशादियुक्तः सन्नपवथाः तस्मै धनादिकं प्रदातुं यथागच्छः एवमस्मभ्यमपि द्रविणं धनं दधानः प्रयच्छन् पवस्व। अस्मदभिमुखमागच्छ। किंचास्माभिर्दीयमानस्त्वमिंद्रे सं तिष्ठ। सम्यक् तिष्ठ। अपि चायुधानि त्वदीयानि जनय। तस्मै प्रकाशय ॥ वाक्यभेदादनिघातः ॥

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवाँति सीद मदिंतमो मत्सर इंद्रपानः ॥१३॥
पवस्व। सोम। मधुऽमान्। ऋतऽवा। अपः। वसानः। अधि। सानौ। अव्ये।
अव। द्रोणानि। घृतऽवंति। सीद। मदिन्ऽतमः। मत्सरः। इंद्रऽपानः ॥१३॥

हे सोम मधुमान्मदकररसोपेत ऋतावा यज्ञवान् ॥ छंदसीवनिपाविति वनिप्मत्वर्थीयः ॥ तादृशस्त्वमपो वसतीवरीरेकधनाश्च वसान आच्छादयन्नध्यधिकं सानौ समुच्छ्रितेऽव्येऽविभवे पवित्रे पवस्व। क्षर। ततो मदिंतमोऽतिशयेन मदकर इंद्रपान इंद्रेण पातव्यो मत्सरो मादयिता सोमो घृतवंत्युदकवंतो द्रोणानि द्रोणकलशानव सीद। अवतिष्ठस्व ॥

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ।
सं सिंधुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥१४॥

वृष्टिं। दिवः। शतऽधारः। पवस्व। सहस्रऽसाः। वाजऽयुः। देवऽवीतौ।
सं। सिंधुऽभिः। कलशे। वावशानः। सं। उस्रियाभिः। प्रऽतिरन्। नः। आयुः ॥१४॥

हे सोम शतधारो बज्रधारोपेतस्त्वं दिवोऽंतरिक्षादादित्याद्वा वृष्टिं पवस्व। कुरु। यद्वा। शतधारो बह्वात्मीयधारोपेतस्त्वं दिवो द्योतमानात्पवित्राद्वृष्टिमविच्छिन्नधारां पवस्व। पात्रेषु कुरु। कीदृशः। देववीतौ। देवानां वीतिर्हविर्भक्षणं यस्मिन् स देववीतिर्यज्ञः। तस्मिन्सहस्रसा यजमानानां सहस्रस्य धनस्य दाता वाजयुस्तेषामन्नं कामयमानस्त्वं सिंधुभिः स्यंदमानाभिर्वसतीवरीभिः कलशे द्रोणाभिधाने संगच्छस्व। तथा त्वं नोऽस्माकमायुर्जीवनं प्रतिरन्वर्धयन्नुस्रियाभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिश्च कलशे संगच्छस्व ॥

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥
एषः। स्यः। सोमः। मतिऽभिः। पुनानः। अत्यः। न। वाजी। तरति। इत्। अरातीः।
पयः। न। दुग्धं। अदितेः। इषिरं। उरुऽइव। गातुः। सुऽयमः। न। वोळ्हा ॥१५॥

एष एतादृशः स्य स सोमो मतिभिर्मननसाधनैः स्तोत्रैः पुनानः पूयमानो भवति। यः सोमोऽत्यो गातनशीलो वाज्यश्व इव संग्रामेऽरातीररातीञ्छत्रूंस्तरति। इदवधारणे। तरत्येव हिनस्त्येव ॥ यद्वृत्तयोगादनिघातः ॥ किंचादितेः। गोनामैतत्। अदीनाया गोरिषिरमन्वेषणीयं दुग्धं पयो न क्षीरं यथा पूतं भवति एवं सोमः परिशुद्धः। अपि चोर्विव ॥ सुपां सुलुगिति सोर्लुक् ॥ उर्वविस्तीर्णो गातुर्मार्ग इव सर्वैः समाश्रयणीयस्तथा वोळ्हा वोढाश्वः सुयमः सुष्ठु नियंतुं शक्यो यथा भवति तद्वदयं सोमः स्तोतृभिर्नियंतव्यो भवति ॥ ॥८॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥
सुऽआयुधः। सोतृऽभिः। पूयमानः। अभि। अर्ष। गुह्यं। चारु। नाम।
अभि। वाजं। सप्तिःऽइव। श्रवस्या। अभि। वायुं। अभि। गाः। देव। सोम ॥१६॥

स्वायुधः शोभनायुधोपेतः। यद्वा। यस्य स्फ्यकपालादीनि दशायुधानि संति। तद्वान्। सोतृभिरभिषवकृद्भिः पूयमानस्त्वं गुह्यं गुहायां निहितं चारु कमनीयं नाम त्वदीयं रसात्मकं शरीरं स्तुतिभिः सहाभ्यर्ष। कलशादीन्यभिगमय। किंच सप्तिरिवाश्व इव वर्तमानस्त्वं श्रवस्या ॥ सुपां सुलुगिति सप्तम्या आजादेशः ॥ अस्मदीयायामन्नेच्छायां वाजमन्नमस्मभ्यमभिगमय। अपि च हे देव स्तोतव्य हे सोम वायुं प्राणं जीवनमभिगमय। गाः पशूंश्चास्मभ्यमभिगमय ॥

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजंति शुंभंति वह्निं मरुतो गणेन।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥
शिशुं। जज्ञानं। हर्यतं। मृजंति। शुंभंति। वह्निं। मरुतः। गणेन।
कविः। गीःऽभिः। काव्येन। कविः। सन्। सोमः। पवित्रं। अति। एति। रेभन् ॥१७॥

शिशुमिदानीमुत्पन्नत्वाच्छिशुवच्छिष्टं। यद्वा। पापानि तनूकुर्वंतं विनाशयंतं। जज्ञानं प्रादुर्भूतं अत एव हर्यतं ॥ हर्य गतिकांत्योः। भृमृदृशीत्यादिनातच् ॥ सर्वैः काम्यमानं सोमं मृजंति। मरुतः शोधयंति। किंच वह्निं वोढारं सोमं गणेनात्मीयेन सप्तसंख्याकेन गणेन शुंभंति। अलंकुर्वंति। ततः कविः क्रांतप्रज्ञः सोमः

काव्येन कविकर्मणेव कविः शब्दोपेतः सन्नेभऋशब्दायमानो गीर्भिः स्तुतिभिः सह पवित्रमत्येति । अतीत्य गच्छति ॥

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनां ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥
ऋषिऽमनाः । यः । ऋषिऽकृत् । स्वःऽसाः । सहस्रऽनीथः । पदऽवीः । कवीनां ।
तृतीयं । धाम । महिषः । सिसासन् । सोमः । विऽराजं । अनु । राजति । स्तुप् ॥१८॥

ऋषिमनाः सर्वदर्शनशीलमनस्कः अत एवर्षिकृत् सर्वस्य दर्शनकर्ता प्रकाशनस्य कर्ता स्वर्षाः सर्वस्य सूर्यस्य वा संभक्ता सहस्रणीथः । नीथा स्तुतिः । बहुविधस्तुतिकः कवीनां क्रांतप्रज्ञानां मध्ये पदवीः स्खलतां पदानां साधुत्वेन संयोजयिता यः सोमो विद्यते स महिषो महान् पूज्यो वा सोमस्तृतीयं धाम द्युलोकं सिषासन् संभक्तुमिच्छन् स्तुप् स्तूयमानः सन्विराजं विशेषेण राजंतं दीप्यमानमिंद्रमनु राजति । प्रकाशयति ॥

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविंदुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥
चमूऽसत् । श्येनः । शकुनः । विऽभृत्वा । गोऽविंदुः । द्रप्सः । आयुधानि । बिभ्रत् ।
अपां । ऊर्मिं । सचमानः । समुद्रं । तुरीयं । धाम । महिषः । विवक्ति ॥१९॥

चमूषत् । चमंति भक्षयंत्यत्रेति चम्वश्चमसाः । तेषु सीदन् । यद्वा । चम्वावधिषवणफलके । तयोर्वर्तमानः । श्येनः शंसनीयः शकुनः शक्तः सामर्थ्यकारी विभृत्वा ॥ हरतेरातो मनिन्नित्यादिना क्वनिप् ॥ पात्रेषु विहरणशीलः गोविंदुर्यजमानानां गवां लंभकः ॥ विंदुरिच्छुः । पा० ३. २. १६९. । इत्युप्रत्ययांतत्वेन निपातितः ॥ द्रप्सो द्रवणशीलः आयुधानि स्फ्यकपालादीनि बिभ्रद्धारयन् अपामुदकानामूर्मिं प्रेरकं समुद्रं । अंतरिक्षनामैतत् । अंतरिक्षलोकं सचमानः सेवमानः महिषो महान् य एवंविधः सोमः स सोमस्तुरीयं चतुर्थं धाम चांद्रमसं स्थानं विवक्ति । सेवते । सूर्यलोकस्योपरि चंद्रमसो लोको विद्यत इति यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वित्यादिभिश्चंद्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वित्यंतैर्मंत्रैर्ज्ञायते । तै० सं० ३. ४. ५. १. ॥

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानां ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोऽरा विवेश ॥२०॥
मर्यः । न । शुभ्रः । तन्वं । मृजानः । अत्यः । न । सृत्वा । सनये । धनानां ।
वृषाऽइव । यूथा । परि । कोशं । अर्षन् । कनिक्रदत् । चम्वोः । आ । विवेश ॥२०॥

शुभ्रो दीप्यमानोऽलंकृतो मर्यो न मनुष्य इव तन्वमात्मीयं शरीरं मृजानो वसतीवरीभिः शोधयन् किंच धनानां सनये संभजनाय लाभायात्यो नाततनशीलोऽश्व इव सृत्वा सरणशीलः अपि च वृषेव वृषा यथा यूथानि प्रतिगच्छञ्छब्दं करोति तद्वत् कोशमधिषवणचर्मणा कृतं पात्रं पर्यर्षन् प्रतिगच्छन् सोमः कनिक्रदत् पुनःपुनः शब्दं कुर्वंश्चम्वोरधिषवणफलकयोरा विवेश । आविशति ॥ कनिक्रदत् । क्रदेर्यङ्लुकि दाधर्ति दर्धर्तीत्यादिना निपातनादभ्यासस्य निगागमः । तस्य शतर्यभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वं ॥ ॥९॥

पवस्वेंदो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोऽरा विश पूयमान इंद्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१॥

पवस्व । इंदो इति । पवमानः । महःऽभिः । कनिक्रदत् । परि । वाराणि । अर्ष ।
क्रीळन् । चम्वोः । आ । विश । पूयमानः । इंद्रं । ते । रसः । मदिरः । ममत्तु ॥२१॥

हे इंदो सोम महोभिः पूजकैर्ऋत्विग्भिः पवमानः पूयमानस्त्वं पवस्व । क्षर । ततः कनिक्रदद्भृशं शब्दं कुर्वन् वाराण्यविर्वालानि पवित्राणि पर्यर्ष । परिगच्छ । किंच पूयमानस्त्वं चम्वोरधिषवणफलकयोः क्रीळन् संक्रीडमानः सन्ना विश । पात्राणि प्रविश । अनंतरं मदिरो मदकरस्त्वदीयो रस इंद्रं ममत्तु । मोदयतु ॥ माद्यतेर्बहुलं छंदसीति श्लुः ॥

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रंदन्नेत्यभि सख्युर्न जामिं ॥२२॥

प्र । अस्य । धाराः । बृहतीः । असृग्रन् । अक्तः । गोभिः । कलशान् । आ । विवेश ।
साम । कृण्वन् । सामन्यः । विपःऽचित् । क्रंदन् । एति । अभि । सख्युः । न । जामिं ॥२२॥

अस्य सोमस्य बृहतीर्बृहत्यो महत्यो धाराः प्रासृग्रन् । प्रसृज्यंते ॥ सृजेः कर्मार्थे लङि व्यत्ययेन झेरन्नादेशः । बहुलं छंदसीति रुडागमः ॥ ततः सोऽयं सोमो गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिरक्तः सन् कलशान्द्रोणाभिधानाना विवेश । आविशति । साम सामानि कृण्वन् कुर्वन् सोमः सामन्यः सामगानकुशलः । सुष्ठु शब्दायमान इत्यर्थः । विपश्चित् सर्वं जानानः सोमः क्रंदन् देवानाह्वयन्नभ्येति । ग्रहादीनि त्वरयाभिगच्छति । तत्र दृष्टांतः । सख्युर्न सख्युर्जामिं जायां यथेतरो लंपटो वेगेनाभिगच्छति तद्वत् ॥

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इंदुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

अपऽघ्नन् । एषि । पवमान । शत्रून् । प्रियां । न । जारः । अभिऽगीतः । इंदुः ।
सीदन् । वनेषु । शकुनः । न । पत्वा । सोमः । पुनानः । कलशेषु । सत्ता ॥२३॥

हे पवमान पूयमान सोम अभिगीतः स्तोतृभिरभिष्टुत इंदुः पात्रेषु क्षरंस्त्वं शत्रूनपघ्नन्नपहिंसन्नेषि । आगच्छसि । कथमिव । जारः प्रियां न प्रियतमामसतीं स्त्रीमन्यान्बाधमानः सन्यथाभिगच्छति तद्वत् । पत्वा पतनशीलः शकुनो न यथा शकुनो वनेषु वृक्षेषु सीदन्भवति तद्वत् पतनशीलः । पुनानः पूयमानः सोमः कलशेषु सत्ता सदनशीलो निषण्णो भवति ॥ सदेस्तात्च्छीलिकस्तृन् । एकाच इतीट्प्रतिषेधः ॥

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यंति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनां ॥२४॥

आ । ते । रुचः । पवमानस्य । सोम । योषाऽइव । यंति । सुऽदुघाः । सुऽधाराः ।
हरिः । आऽनीतः । पुरुऽवारः । अप्ऽसु । अचिक्रदत् । कलशे । देवऽयूनां ॥२४॥

हे सोम पवमानस्य पूयमानस्य ते तव स्वभूता योषेव स्त्री यथा पुत्राणां पयो दोग्धि तद्वद्यजमानानां धनादिकस्य सुष्ठु दोग्ध्यः सुधाराः शोभनधारोपेता रुचो दीप्तय आ यंति । पात्रादीन्यागच्छंति । किंच हरिर्हरितवर्ण आनीत ऋत्विग्भिः पुरुवारो बहुधा वरणीयः सोमोऽप्सु वसतीवरीषु देवयूनां देवानिच्छतां यजमानानां स्वभूते कलशे द्रोणाख्ये चाचिक्रदत् । पुनःपुनः क्रंदति । शब्दायते ॥ ॥१०॥ ॥५॥

षष्ठेऽनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्रास्य प्रेषेत्यष्टापंचाशदृचं प्रथमं सूक्तं त्रैष्टुभं पवमानसोमदेवताकं । तत्रायस्य

तृचस्य मैत्रावरुणो वसिष्ठ ऋषिः। द्वितीयस्येंद्रप्रमतिर्नाम। तृतीयस्य वृषगणः। चतुर्थस्य मन्युः। पंचमस्योपमन्युः। षष्ठस्य व्याघ्रपात्। सप्तमस्य शक्तिः। अष्टमस्य कर्णश्रुत्। नवमस्य मृळीकः। दशमस्य वसुक्रः। एते सर्वे वसिष्ठगोत्राः। एवं त्रिंशदृचो गताः। अथ चतुर्दशानामृचां शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः। शिष्टानामांगिरसः कुत्सः। तथानुक्रम्यते। अस्य प्रेषाष्टापंचाशदाद्यं तृचं वसिष्ठोऽपश्यदुत्तरान्नव पृथग्वसिष्ठा इंद्रप्रमतिर्वृषगणो मन्युरुपमन्युर्व्याघ्रपाच्छक्तिः कर्णश्रुन्मृळीको वसुक्र इति चतुर्दश पराशरोऽत्याः कुत्स इति॥ गतो विनियोगः॥

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसं।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमांति होता ॥१॥
अस्य। प्रेषा। हेमना। पूयमानः। देवः। देवेभिः। सं। अपृक्त। रसं।
सुतः। पवित्रं। परि। एति। रेभन्। मिताऽइव। सद्म। पशुऽमंति। होता ॥१॥

अस्य सोमस्य प्रेषा॥ प्रेषतिर्गत्यर्थः। क्विपि रूपं। साविकाच इति विभक्तेरुदात्तत्वं॥ प्रेषा प्रेरकेण हेमना हिरण्येन पूयमानः। हिरण्यपाणिरभिषुणोतीति हिरण्यसंबंधः। तादृशो देवो दीप्यमानांशू रसमात्मीयं देवेभिर्देवैः सह समपृक्त। संपर्चयति। संयोजयति॥ पृची संपर्के॥ ततः सुतोऽभिषुतः सोमो रेभन्शब्दायमानः सन् पवित्रमूर्णास्तुकेन निर्मितं पर्येति। परिगच्छति। कथमिव। होता देवानामाह्वातर्त्विक्मितेव निर्मितान् पशुमंति बहुपशून् सद्म सदनानि यज्ञगृहाण्यथा पर्येति तद्वत्॥

भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन्।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥
भद्रा। वस्त्रा। समन्या। वसानः। महान्। कविः। निऽवचनानि। शंसन्।
आ। वच्यस्व। चम्वोः। पूयमानः। विऽचक्षणः। जागृविः। देवऽवीतौ ॥२॥

भद्रा भद्राणि कल्याणानि समन्या। समनमिति संग्रामनाम॥ तत्र साधुरिति यत्॥ संग्रामयोग्यानि वस्त्रा वस्त्राण्याच्छादकानि तेजांसि वसान आच्छादयन् महान्कविः क्रांतदर्शी अत एव निवचनानि नितरां वक्तव्यान्यृत्विक्कृतानि स्तोत्राणि शंसन् विचक्षणो विशेषेण सर्वस्य द्रष्टा जागृविर्जागरणशीलः सोमस्त्वं देववीतौ। देवानां वीतिर्भक्षणं यस्मिन् स देववीतिर्यज्ञः। तस्मिंश्चम्वोरधिषवणफलकयोरा वच्यस्व। पात्राण्या विश॥ वचिर्गत्यर्थः। व्यत्ययेन श्यन्॥ पूयमानः सन्॥

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥
सं। ऊं इति। प्रियः। मृज्यते। सानौ। अव्ये। यशःऽतरः। यशसां। क्षैतः। अस्मे इति।
अभि। स्वर। धन्व। पूयमानः। यूयं। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः ॥३॥

यशसां यशस्विनां मध्ये यशस्तरोऽतिशयेन यशस्वी क्षैतः क्षितौ भवः प्रियः प्रीणयिता सोमः सानौ समुच्छ्रितेऽव्येऽविमये पवित्रेऽस्मे अस्मदर्थं सं मृज्यते। ऋत्विग्भिः परिपूयते। उ अवधारणे। पूयमानस्त्वं धन्वांतरिक्षेऽभि स्वर। अभितः शब्दय। यूयं॥ पूजायां बहुवचनं॥ हे सोम त्वं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणतमैः पालनैः सदा सर्वदा पात। रक्षत। पालयत॥

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥४॥
प्र । गायत । अभि । अर्चाम । देवान् । सोमं । हिनोत । महते । धनाय ।
स्वादुः । पवाते । अति । वारं । अव्यं । आ । सीदाति । कलशं । देवऽयुः । नः ॥४॥

हे स्तोतारः प्र गायत । सोमं प्रकर्षेणाभिष्टुत । तथा देवानभ्यर्चाम । अभ्यर्चत ॥ पुरुषव्यत्ययः ॥ यद्वा । वयं देवानभिष्टुमः यूयं सोमं स्तुतेति । किंच महते महत्प्रभूतं धनाय धनं प्राप्तुं सोमं हिनोत । अभिषवार्थं प्रेरयत ॥ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन इति धनशब्दस्य चतुर्थी ॥ ततः स्वादुः स्वादुकरः सोमोऽव्यमविभवं वारं वालं पवित्रमति पवाते । अतीत्य पवते । किंच देवयुर्देवान्कामयमानो नोऽस्मदीयः सोमः कलशं पात्रमा सीदाति । आसीदति । प्रविशति ॥ उभयत्र लेट्यडागमः ॥

इंदुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निंद्रं महते सौभगाय ॥५॥
इंदुः । देवानां । उप । सख्यं । आऽयन् । सहस्रऽधारः । पवते । मदाय ।
नृऽभिः । स्तवानः । अनु । धाम । पूर्वं । अगन् । इंद्रं । महते । सौभगाय ॥५॥

देवानामिंद्रादीनां सख्यं सखिभावमुपायन्नुपगच्छन् सहस्रधारो बहुविधधार इंदुः सोमो मदाय देवानां मदार्थं पवते । कलशादिषु चरति । नृभिः कर्मनेतृभिः स्तवानः स्तूयमानः सोमः पूर्वं पुरातनं धाम द्युलोकमनुगच्छति । तदेवाह । महते प्रभूताय सौभगाय सौभाग्यायेंद्रमगन् । गच्छति । सोम इंद्रेण पीते सति यजमानानां महत्सौभाग्यं भवति खलु ॥ अगन् । गमेर्लुङि मंत्रे घसेति च्लेर्लुक् । मो नो धातोरिति नत्वं ॥ ॥११॥

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इंद्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
स्तोत्रे । राये । हरिः । अर्ष । पुनानः । इंद्रं । मदः । गच्छतु । ते । भराय ।
देवैः । याहि । सऽरथं । राधः । अच्छ । यूयं । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

हे सोम हरिर्हरितवर्णः पुनानः पूयमानस्त्वं स्तोत्रेऽस्माभिः क्रियमाणे सति राये धनार्थमर्ष । आगच्छ । ततस्ते त्वदीयो मदो मदकरो रसो भराय ॥ भृ भर्त्सने ॥ भर्त्सयंति शत्रूनत्र योद्धार इति भरः संग्रामः । तदर्थमिंद्रं गच्छतु । किंच सरथं देवैः समानं रथमास्थाय राधोऽच्छास्माकं धनार्थं याहि । आगच्छ । यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः सदा पात । त्वं रक्ष ॥

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबंधुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥७॥
प्र । काव्यं । उशनाऽइव । ब्रुवाणः । देवः । देवानां । जनिम । विवक्ति ।
महिऽव्रतः । शुचिऽबंधुः । पावकः । पदा । वराहः । अभि । एति । रेभन् ॥७॥

उशनेवैतन्नामक ऋषिरिव काव्यं कविकर्म स्तोत्रं ब्रुवाण उच्चारयन् देवः स्तोतायमृषिर्वृषगणो नाम

देवानामिंद्रादीनां जनिम जन्मानि प्र विवक्ति । प्रकर्षेण ब्रवीति ॥ वच परिभाषणे । व्यत्ययेन विकरणस्य श्लुः । बहुलं छंदसीत्यभ्यासस्येत्वं ॥ महिव्रतः प्रभूतकर्मा शुचिबंधुः । बध्नंति शत्रूनिति बंधूनि तेजांसि बलानि वा । दीप्ततेजस्कः पावकः पापानां शोधको वराहः । वरं च तदहश्च वराहः ॥ राजाहःसखिभ्यष्टजिति टच्समासांतः ॥ तस्मिन्नहन्यभिषूयमाणत्वेन तद्वान् ॥ अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् ॥ तादृशः सोमो रेभञ्छब्दं कुर्वन्पदा पदानि स्थानानि पात्राण्यभ्येति । अभिगच्छति । यद्वा । यथा कश्चन वराहः पदा पादेन भूमिं विक्रममाणः शब्दं करोति तद्वत् ॥

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आंगूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदंति वाणं ॥८॥
प्र । हंसासः । तृपलं । मन्युं । अच्छ । अमात् । अस्तं । वृषऽगणाः । अयासुः ।
आंगूष्यं । पवमानं । सखायः । दुःऽमर्षं । साकं । प्र । वदंति । वाणं ॥८॥

हंसासः शत्रुभिर्हन्यमाना हंसा इव चरंतो वा वृषगणा एतन्नामका ऋषयोऽमाच्छत्रूणां बलात्त्रासिताः संतस्तृपलं । तृपलशब्दः क्षिप्रवाची । तदुक्तं यास्केन । तृपलप्रभर्मा क्षिप्रप्रहारीति । नि॰ ५. १२. । क्षिप्रप्रहारिणं मन्युं शत्रूनभिमन्यमानं सोममच्छाभिलक्ष्यास्तं यज्ञगृहं प्रायासुः । प्रायासिषुः । प्रगच्छंति । ततः सखायः स्तुत्यस्तोतृत्वलक्षणेन संबंधेन सखिभूताः स्तोतार आंगूष्यं सर्वैरभिगंतव्यं । यद्वा ॥ घोशब्दस्य पृषोदरादित्वाद्गू इत्यादेशः । आङ अनुनासिकश्छांदसः ॥ स्तोत्रार्हं दुर्मर्षं शत्रुभिर्दुर्धरं दुःसहं एवंविधं सोमं पवमानमुद्दिश्य वाणं वाद्यविशेषं साकं सहैव प्र वदंति । प्रवादयंति । तदुपलक्षितं गानं कुर्वंतीत्यर्थः ॥

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळंतं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृंगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥९॥
सः । रंहते । उरुऽगायस्य । जूतिं । वृथा । क्रीळंतं । मिमते । न । गावः ।
परीणसं । कृणुते । तिग्मऽशृंगः । दिवा । हरिः । ददृशे । नक्तं । ऋज्रः ॥९॥

स सोमो रंहते । अतिशीघ्रं गच्छतीत्यर्थः । उरुगायस्य बहुभिः स्तुत्यस्यात्मनो जूतिं गतिमनुसरन् । तं वृथानायासेन क्रीळंतं विहरंतं गच्छंतं सोमं गावोऽन्ये गंतारो न मिमते । न परिच्छिंदंति । तमनुगंतुं न शक्नुवंतीत्यर्थः । किंच तिग्मशृंगः । शृणंति हिंसंति तमांसीति शृंगाणि तेजांसि । तीक्ष्णतेजस्कः परीणसं । बहुनामैतत् । बहुविधं तेजः कृणुते । करोति । अंतरिक्षे वर्तमानो यः सोमो दिवाहनि हरिर्हरितवर्णो ददृशे दृश्यते । न प्रकाशत इत्यर्थः । नक्तं रात्रौ त्वृज्र ऋजुगामी विस्पष्टः प्रकाशयुक्तो दृश्यते ॥ दृशेः कर्मणि लिटि रूपं ॥

इंदुर्वाजी पवते गोन्योघा इंद्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हंति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥
इंदुः । वाजी । पवते । गोऽन्योघाः । इंद्रे । सोमः । सहः । इन्वन् । मदाय ।
हंति । रक्षः । बाधते । परि । अरातीः । वरिवः । कृण्वन् । वृजनस्य । राजा ॥१०॥

इंदुः क्षरणशीलो वाजी बलवान् गोन्योघा गमनशीलनीचीनाग्ररससंघात इंद्रे सहो बलकररसमिन्वन् प्रेरयन् सोमो मदाय तस्य मदार्थं पवते । क्षरति । किंच रक्षो रक्षःकुलं हंति । हिनस्ति । किंचारातीररातीञ्शत्रून्परि बाधते । परितः संहरति । कीदृशः । वरिवो वरणीयं धनं कृण्वन् स्तोतृणां कुर्वन् वृजनस्य बलस्य राजेशिता सोम इति ॥ ॥१२॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इंदुरिंद्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११॥
अध । धारया । मध्वा । पृचानः । तिरः । रोम । पवते । अद्रिऽदुग्धः ।
इंदुः । इंद्रस्य । सख्यं । जुषाणः । देवः । देवस्य । मत्सरः । मदाय ॥११॥

अधाथानंतरमद्रिदुग्धो ग्रावभिर्दुग्धोऽभिषुतः सोमो मध्वा मदकारिण्या धारया पृचानो देवान् संपर्चयन् संयोजयन् रोमाविरोमभिः कृतं पवित्रं तिरस्तिरस्कृत्य व्यवधायकं कृत्वा पवते। कलशेषु चरति। किंचेंद्रस्य सख्यं सखिभावं कर्म वा जुषाणः सेवमानो देवो द्योतमानो मत्सरो मदकर इंदुः सोमो देवस्येंद्रस्य मदाय मदार्थं पवते। चरति ॥

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्स्वेन रसेन पृंचन् ।
इंदुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥
अभि । प्रियाणि । पवते । पुनानः । देवः । देवान् । स्वेन । रसेन । पृंचन् ।
इंदुः । धर्माणि । ऋतुऽथा । वसानः । दश । क्षिपः । अव्यत । सानौ । अव्ये ॥१२॥

प्रियाणि प्रीणयितॄणि धर्माणि धारकाणि तेजांस्यृतुथा काले वसान आच्छादयन्निंदुः सोमः पुनानः पूयमानः सन्नभि पवते। कलशानभिलक्ष्य चरति। कीदृशः। देवः संक्रीडनशीलः स्वेनात्मीयेन रसेन देवानिंद्रादीन्पृंचन् संपर्चयन् संयोजयन्। तमिमं दश दशसंख्याकाः क्षिपः। अंगुलिनामैतत्। कर्मार्थं प्रेर्यंत इति। तत्संख्याका अंगुलयः सानौ समुच्छ्रितेऽव्येऽविभवे पवित्रेऽव्यत। गमयंति। यद्वा। तत्र पवित्रे पूयमानं सोममव्यत। गच्छंति ॥ वी गत्यादिषु। लङि व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्यां ।
इंद्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमां ॥१३॥
वृषा । शोणः । अभिऽकनिक्रदत् । गाः । नदयन् । एति । पृथिवीं । उत । द्यां ।
इंद्रस्यऽइव । वग्नुः । आ । शृण्वे । आजौ । प्रऽचेतयन् । अर्षति । वाचं । आ । इमां ॥१३॥

शोणः शोणवर्णो वृषा कश्चिद्वृषभो गाः पशूनभिकनिक्रदत्। अभिलक्ष्य शब्दं करोति। एवं गाः स्तुतीर्विश्रयणार्थं पयसो दोग्ध्रीर्धेनूर्वाभिकनिक्रददभिशब्दायमानः। तदेवाह। नदयञ्छब्दमुत्पादयन् सोमः पृथिवीमुतापि च द्यां एतौ लोकावेति। गच्छति। किंच वग्नुः। वाङ्नामैतत्। तस्य वाक् शब्द आजौ संग्राम इंद्रस्येव इंद्रस्य शब्द इवा शृण्वे। सर्वैः श्रूयते। ततः प्रचेतयन्नात्मानं सर्वेषां प्रज्ञापयन्निमां वाचमर्षति। समंतान्नमयति। उच्चैः शब्दायत इत्यर्थः ॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमंतमंशुं ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निंद्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥
रसाय्यः । पयसा । पिन्वमानः । ईरयन् । एषि । मधुऽमंतं । अंशुं ।
पवमानः । संऽतनिं । एषि । कृण्वन् । इंद्राय । सोम । परिऽसिच्यमानः ॥१४॥

हे सोम रसाय्यः ॥ रसेरौणादिक आय्यप्रत्ययः ॥ आस्वाद्यः पयसा पिन्वमानः क्षरंस्त्वमीरयञ्छब्दं

प्रेरयन् मधुमंतं माधुर्योपेतमंशुं रसभावमेषि । प्राप्नोषि । अंशुः शमष्टमात्रो भवतीति यास्कः । नि॰ २. ५. । अनेन सोमरसोऽभिधीयते । किंच हे सोम परिषिच्यमानोऽद्भिः परिषिक्तस्त्वं पवमानः पवित्रे पूयमानः सन् संतनिं ॥ तनु विस्तारे । इप्रत्ययः ॥ संततां धारां कृण्वन् कुर्वन्निंद्रायेंद्रार्थमेषि । गच्छसि ॥

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशंतं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥
एव । पवस्व । मदिरः । मदाय । उदऽग्राभस्य । नमयन् । वधऽस्नैः ।
परि । वर्णं । भरमाणः । रुशंतं । गव्युः । नः । अर्ष । परि । सोम । सिक्तः ॥१५॥

हे सोम मदिरो मदकरस्त्वमुदग्राभस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानसंज्ञा । पा॰ १.४.३२.१. । चतुर्थ्यर्थे बहुलं । पा॰ २. ३. ६२. । इति षष्ठी ॥ उदग्राभमुदकग्राहिणं मेघं वधस्नैर्हननसाधनैरायुधैर्नमयन् वृष्ट्यर्थं प्रह्वीकुर्वन् मदाय मदार्थमेव पवस्व । एवं पात्रेषु चर । किंच रुशंतमारोचमानं श्वेतं वर्णं परि भरमाणः परितो बिभ्रत् सिक्तः पवित्रे सिच्यमानस्त्वं गव्युर्नोऽस्माकं गा इच्छन् पर्यर्ष । परिगच्छ ॥ ॥१३॥

जुष्ट्वी न इंदो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥
जुष्ट्वी । नः । इंदो इति । सुऽपथा । सुऽगानि । उरौ । पवस्व । वरिवांसि । कृण्वन् ।
घनाऽइव । विष्वक् । दुःऽइतानि । विऽघ्नन् । अधि । स्नुना । धन्व । सानौ । अव्ये ॥१६॥

हे इंदो दीप्त पवमान जुष्ट्वी ॥ स्नात्व्यादयश्चेति निपातितः ॥ स्तुतिभिः प्रीतो भूत्वा नोऽस्माकं सुपथानि वैदिकमार्गान् तथा वरिवांसि वरणीयानि धनानि सुगा सुगमनानि सुप्राप्तव्यानि कृण्वन्कुर्वन्नुरौ विस्तीर्णे द्रोणकलशे पवस्व । चर । किंच घनेव घनीभूतेन लोहमयेनायुधेनेव विष्वक् सर्वतो दुरितानि दुष्प्राप्तव्यानि रक्षांसि विघ्नन् हिंसन् सानौ समुच्छ्रितेऽव्येऽविमये स्नुना स्रवता धारासंघेनाधि धन्व । अधिगच्छ । धविर्गत्यर्थः ॥

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुं ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बंधूँरिमाँ अवराँ इंदो वायून् ॥१७॥
वृष्टिं । नः । अर्ष । दिव्यां । जिगत्नुं । इळाऽवतीं । शंऽगयीं । जीरऽदानुं ।
स्तुकाऽइव । वीता । धन्व । विऽचिन्वन् । बंधून् । इमान् । अवरान् । इंदो इति ।
वायून् ॥१७॥

हे सोम नोऽस्माकं वृष्टिमर्ष । गमय । कीदृशीं । दिव्यां दिवि भवां जिगत्नुं गमनशीलामिळावतीमन्नवतीं शंगयीं सुखस्य निवासभूतां जीरदानुं क्षिप्रदानोपेतां । किंच हे इंदो त्वं स्तुकेव वीता कांतानि । स्तुकशब्दोऽपत्यवचनः । अपत्यानि यथा विचिनोषि तद्वद्बंधून् स्तुत्यस्तोतृत्वेन बंधुभूतानवरानवरदेशे स्थितान्पार्थिवान्वायूंस्त्वामभिगच्छत इमानस्मान्विचिन्वन्धनादिप्रदानार्थं गवेषमाणः सन् धन्व । गच्छ ॥

ग्रंथिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥

ग्रंथिं । न । वि । स्य । ग्रथितं । पुनानः । ऋजुं । च । गातुं । वृजिनं । च । सोम ।
अत्यः । न । क्रदः । हरिः । आ । सृजानः । मर्यः । देव । धन्व । पस्त्यऽवान् ॥१८॥

पुनानः पूयमानस्त्वं ग्रथितं पापैर्बद्धं मां वि ष्य । मुंच । पापेभ्यो विश्लेषय । कथमिव । ग्रंथिं न यथा कश्चिद्ग्रंथिं विश्लेषयति ॥ षो अंतकर्मणीत्यस्य लोटि रूपं ॥ किंच हे सोम त्वमृजुमवक्रं गातुं मार्गं च वृजिनं बलं च मह्यं देहि । हरिर्हरितवर्णस्त्वमा सृजानः पात्रेष्वासृज्यमानः सन्नत्यो नातनशीलोऽश्व इव क्रदः । क्रंदसि । शब्दायसे । किंच हे देव मर्यो मनुष्यहितो मारको हिंसको वा शत्रूणां पस्त्यवान् । पस्त्यं गृहं । तद्वांस्त्वं धन्व । मामभिगच्छ कलशान्वा ॥

जुष्टो मदाय देवतात इंदो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९॥
जुष्टः । मदाय । देवऽताते । इंदो इति । परि । स्नुना । धन्व । सानौ । अव्ये ।
सहस्रऽधारः । सुरभिः । अदब्धः । परि । स्रव । वाजऽसातौ । नृऽसह्ये ॥१९॥

हे इंदो मदाय जुष्टः पर्याप्तस्त्वं देवताते देवैस्तते यज्ञे सानौ समुच्छ्रितेऽव्येऽविभवे पवित्रे स्नुना स्रवणशीलेन धारासंघेन सह परि धन्व । परिगच्छ । सहस्रधारो बहुधारोपेतः सुरभिः सुगंधिस्त्वमदब्धो न कैश्चिद्धिंसितः सन् वाजसातावन्नलाभनिमित्ते नृसह्ये नृभिः सोढव्ये युद्धे परि स्रव । परितो गच्छ ॥

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वंति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२०॥
अरश्मानः । ये । अरथाः । अयुक्ताः । अत्यासः । न । ससृजानासः । आजौ ।
एते । शुक्रासः । धन्वंति । सोमाः । देवासः । तान् । उप । यात । पिबध्यै ॥२०॥

अरश्मानो रश्मिवर्जिताः । रज्जुरहिता इति यावत् । अरथा रथवर्जिता अयुक्ताः कुत्रापि न नियुक्ताः । अबद्धा इत्यर्थः । एतादृशा य आजौ युद्धे ससृजानासः सृज्यमाना अत्यासो नाश्वा यथा त्वरया लक्ष्यं गच्छंति तद्वदाजौ । अजंति कर्मकरणार्थमृत्विजोऽत्रेत्याजिर्यज्ञः । तस्मिन्सृज्यमानाः शुक्रा दीप्यमाना एते सोमा धन्वंति । क्षिप्रं कलशानभिगच्छंति । अथ प्रत्यक्षः । हे देवासो देवाः तानागच्छतः सोमान्पिबध्यै पानायोप यात । उपगच्छत ॥ ॥१४॥

एवा न इंदो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहंतं रयिं ददातु वीरवंतमुग्रं ॥२१॥
एव । नः । इंदो इति । अभि । देवऽवीतिं । परि । स्रव । नभः । अर्णः । चमूषु ।
सोमः । अस्मभ्यं । काम्यं । बृहंतं । रयिं । ददातु । वीरऽवंतं । उग्रं ॥२१॥

हे इंदो सोम नोऽस्मदीयमेव देववीतिं । देवानां वीतिर्भक्षणं गमनं वा यस्मिन् स देववीतिर्यज्ञः । तमभिलक्ष्य नभो नभसो द्युलोकादर्ण उदकं । अनेन पवित्रान्निर्गतः सोमरसोऽभिधीयते । तं रसं चमूषु चमसेषु परि स्रव । परितः क्षर । ततः सोमः काम्यं काम्यमानं बृहंतं प्रवृद्धं वीरवंतं पुत्रयुक्तमुग्रमुद्गूर्णबलं रयिं धनमस्मभ्यं ददातु । प्रयच्छतु ॥

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इंदुं ॥२२॥
तक्षत् । यदि । मनसः । वेनतः । वाक् । ज्येष्ठस्य । वा । धर्मणि । क्षोः । अनीके ।
आत् । ईं । आयन् । वरं । आ । वावशानाः । जुष्टं । पतिं । कलशे । गावः । इंदुं ॥२२॥

वेनतः । वेनो वेनतेः कांतिकर्मण इति यास्कः । नि॰ १०. ३८. । कामयमानस्य मनसः । मन्यतेः स्तुतिकर्मणः । स्तोतुर्वाक् स्तुतिलक्षणा यद्येनं तक्षत् संस्करोति । वाशब्द उपमार्थे । यथा धर्मणि ॥ निमित्तात्कर्मसंयोगे । पा॰ २. ३. ३६. ६. । इति सप्तमी ॥ धारकं योगक्षेमविषयं कर्मोद्दिश्य क्षोः शब्दायमानस्यानीके मुखे तत्र स्थितस्य जानपदिकस्य वाग्ज्येष्ठस्य । द्वितीयार्थे षष्ठी । प्रशस्यतमं राजानं यथा स्तौति तथा स्तोतुर्वाक् सोमं स्तौतीत्यर्थः । आदनंतरमेव वरं वरणीयं जुष्टं देवानां मदाय पर्याप्तं पतिं सर्वस्य पालकं कलशे स्थितमिंदुमीमेनं सोमं वावशानाः कामयमाना गाव आयन् । पयसा स्वीयेन मिश्रयितुमागच्छंति ॥

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३॥
प्र । दानुऽदः । दिव्यः । दानुऽपिन्वः । ऋतं । ऋताय । पवते । सुऽमेधाः ।
धर्मा । भुवत् । वृजन्यस्य । राजा । प्र । रश्मिऽभिः । दशऽभिः । भारि । भूम ॥२३॥

दिव्यो दिवि भवो दानुदो दातृभ्यो धनादीनां दाता । तदेवाह । दानुपिन्वः ॥ पिवि सेचने । कर्मण्यण् । पा॰ ३. २. १. । इत्यण् ॥ दातृभ्यः कामानां क्षारयिता सुमेधाः शोभनप्रज्ञः सोम ऋताय सत्यभूतायेंद्रायर्तं सत्यभूतमात्मीयं रसं पवते । प्रकर्षेण क्षरति । राजा दीप्यमानः सोमो वृजन्यस्य साधुबलस्य धर्मा धारयिता भुवत् । भवति । किंच दशभिरेतत्संख्याकाभी रश्मिभिः कर्मकरणार्थमश्नुवानाभिरंगुलिभिर्भूम प्रभूतं प्र भारि । प्रधार्यते ॥ चिणि रूपं ॥

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानां ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विंदुः ॥२४॥
पवित्रेभिः । पवमानः । नृऽचक्षाः । राजा । देवानां । उत । मर्त्यानां ।
द्विता । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां । ऋतं । भरत् । सुऽभृतं । चारु । इंदुः ॥२४॥

पवित्रेभिः पवित्रैः पवमानः पूयमानो नृचक्षा नृणां फलाफलयोर्द्रष्टा तथा देवानामिंद्रादीनामुतापि च मर्त्यानां मनुष्याणां एवमुभयेषां जनानां राजा रयिपतिर्धनस्य पतिः न स्वल्पस्य पतिः किंतु रयीणां बहूनां धनानां स्वामी । वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बाहुल्यं च विवक्ष्यते । ईदृशः सोमो द्विता द्विधा देवेष्वपि च मनुष्येषु भुवत् । भवति । सोऽयमिंदुः सोमः सुभृतं संभृतं चारु कल्याणमृतमुदकं भरत् । बिभर्ति ॥

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेंद्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥
अर्वान्ऽइव । श्रवसे । सातिं । अच्छ । इंद्रस्य । वायोः । अभि । वीतिं । अर्ष ।
सः । नः । सहस्रा । बृहतीः । इषः । दाः । भव । सोम । द्रविणःऽवित् । पुनानः ॥२५॥

हे सोम अन्नार्थं युद्धेऽर्वानिवाश्वो यथा गच्छति तद्वत्त्वं श्रवसेऽस्माकमन्नार्थं तथा सातिमच्छ धनलाभं

प्रतींद्रस्य वायोश्च वीतिं पानमभ्यर्ष। अभिगच्छ। ऐंद्रवायवग्रहे हींद्रवायू सह सोमं पिबत इत्यत्र सहोपादानं। स त्वं सहस्रा सहस्राणि बहुविधानि बृहतीर्बृंहितानि प्रवृद्धानीषोऽन्नानि नोऽस्मभ्यं दाः। प्रयच्छ। हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वं नोऽस्मभ्यं द्रविणोविद्धनस्य लंभयिता भव ॥ द्रविणशब्दात्सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायां सुग्वक्तव्यः। का० ७. १. ५१. ३.। इति सुगागमः ॥ ॥ १५ ॥

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वंतु सोमाः।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मंद्रतमाः ॥ २६ ॥
देवऽअव्यः। नः। परिऽसिच्यमानाः। क्षयं। सुऽवीरं। धन्वंतु। सोमाः।
आऽयज्यवः। सुऽमतिं। विश्वऽवाराः। होतारः। न। दिविऽयजः। मंद्रऽतमाः ॥ २६ ॥

देवाव्यः ॥ अवतेस्तर्पणार्थस्य अवितॄस्तृतंत्रिभ्य ईरितीप्रत्ययः। उदात्तस्वरितयोर्यण इति जसः स्वरितत्वं ॥ देवानां तर्पयितारः परिषिच्यमानाः परितः पात्रेषु सिच्यमानाः सोमा नोऽस्माकं सुवीरं शोभनपुत्रं क्षयं गृहं धन्वंतु। प्रेरयंतु। कीदृशाः। होतारो न होतारो यथा देवानिंद्रादीन्स्तुवंति एवं दिवियजो दिवि द्युलोके स्थितानिंद्रादीन्देवान्यजंतः ॥ दिङ्शब्दे तत्पुरुषे छति बहुलमिति सप्तम्या अलुक् ॥ मंद्रतमा अत्यंतं मदकराः ॥

एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥
एव। देव। देवऽताते। पवस्व। महे। सोम। प्सरसे। देवऽपानः।
महः। चित्। हि। स्मसि। हिताः। सऽमर्ये। कृधि। सुस्थाने इति सुऽस्थाने। रोदसी इति। पुनानः ॥ २७ ॥

हे देव द्योतमान स्तोतव्य वा हे सोम देवपानो देवैः पातव्यस्त्वं देवताते देवैस्तते वितते यज्ञे महे महते प्सरसे भक्षणाय देवानां पानायैवैवं पवस्व। चर। ततो वयं हितास्त्वया प्रेरिताः संतः समर्ये मरणधर्मसहिते संग्रामे महश्चिन्महतो बलाधिकानपि शत्रून् स्मसि हि। अभिभवेम खलु। किंच पुनानः पूयमानस्त्वं रोदसी द्यावापृथिव्यौ सुस्थाने अस्माकं शोभनावासस्थाने सत्यौ कृधि। कुरु ॥

अश्वो न क्रंदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान्।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इंदो ॥ २८ ॥
अश्वः। न। क्रदः। वृषऽभिः। युजानः। सिंहः। न। भीमः। मनसः। जवीयान्।
अर्वाचीनैः। पथिऽभिः। ये। रजिष्ठाः। आ। पवस्व। सौमनसं। नः। इंदो इति ॥ २८ ॥

हे सोम वृषभिर्वर्षित्विग्भिः सोममभिषुण्वद्भिर्युजानो योज्यमानस्त्वमश्वो नाश्व इव क्रदः। क्रंदसि। शब्दायसे। कीदृशः। सिंहो न सिंह इव भीमः शत्रूणां भयंकरः तथा मनसोऽपि जवीयान् वेगवत्तरः। अर्वाचीनैरभिमुखैः पथिभिर्मार्गैर्ये मार्गा रजिष्ठा अत्यंतमृजवो भवंति॥ विभाषर्जोश्छंदसीत्युकारस्य रादेशः॥ हे इंदो दीप्यमान सोम तैर्मार्गैर्नोऽस्माकं सौमनसं सौमनस्यमा पवस्व। आप्रापय॥

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजंति।
इंदो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २९ ॥

शतं। धाराः। देवऽजाताः। असृग्रन्। सहस्रं। एनाः। कवयः। मृजंति।
इंदो इति। सनित्रं। दिवः। आ। पवस्व। पुरःऽएता। असि। महतः। धनस्य ॥२९॥

हे सोम देवजाता देवार्थं प्रादुर्भूताः शतं शतसंख्याकास्त्वदीया धारा असृग्रन्। सृज्यंते। ततः कवयः क्रांतदर्शिन ऋत्विजः सहस्रं बहुविधा एनास्त्वदीया धारा मृजंति। अलंकुर्वंति। यद्वा। सहस्रमनेकधा मृजंति। शोधयंति। हे इंदो सनित्रं भजनसाधनं धनं दिवो द्युलोकादस्माकं पुत्रादीनां चा पवस्व। आप्रापय। कुतोऽस्य धनमिति चेत् तत्राह। महतः प्रभूतस्य धनस्य पुरएता पुरतो गंतासि। भवसि। तस्माद्देहीति ॥

दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिं ॥३०॥
दिवः। न। सर्गाः। अससृग्रं। अह्नां। राजा। न। मित्रं। प्र। मिनाति। धीरः।
पितुः। न। पुत्रः। क्रतुऽभिः। यतानः। आ। पवस्व। विशे। अस्यै। अजीतिं ॥३०॥

दिवो न यथा दिवो द्योतमानस्यादित्यस्याह्नां संबंधिनः सर्गा रश्मयोऽसृग्रं विसृज्यंते तद्वत्सोमस्य सर्गाः। सृज्यंत इति सर्गा धाराः। विसृज्यंते ॥ सृजेर्व्यत्ययेन कर्मार्थे लङि बहुलं छंदसीति शस्य स्रुः। झेरमादेशश्छांदसः ॥ धीरः प्राज्ञो राजायं सोमो मित्रं सखायं न प्र मिनाति। न हिनस्ति। क्रतुभिः कर्मभिर्यतानो यतमानः पुत्रः पितुर्न पितुर्यथापराभवं करोति तद्वत् कर्मभिर्यतमानस्त्वमस्यै विशे प्रजाया अजीतिमपराभवमा पवस्व। आप्रापय। यथा न पराजिता भवंति तथा कुर्वित्यर्थः ॥ ॥१६॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥३१॥
प्र। ते। धाराः। मधुऽमतीः। असृग्रन्। वारान्। यत्। पूतः। अतिऽएषि। अव्यान्।
पवमान। पवसे। धाम। गोनां। जज्ञानः। सूर्यं। अपिन्वः। अर्कैः ॥३१॥

ते तव स्वभूता मधुमतीर्मधुमत्यो धाराः प्रासृग्रन् तदा प्रसृज्यंते यद्यदा पूतो वसतीवरीभिस्त्वमव्यान्-विभवान्वारान्वालान्पवित्राण्यत्येषि। अतीत्य गच्छसि। किंच हे पवमान धाम धारकं गोनां गवां पयो लक्षीकृत्य पवसे। ततो जज्ञानो जायमानस्त्वमर्कैरर्चनीयैः स्वतेजोभिः सूर्यमादित्यमपिन्वः। पूरयसि ॥

कनिक्रददनु पंथामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इंद्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनां ॥३२॥
कनिक्रदत्। अनु। पंथां। ऋतस्य। शुक्रः। वि। भासि। अमृतस्य। धाम।
सः। इंद्राय। पवसे। मत्सरऽवान्। हिन्वानः। वाचं। मतिऽभिः। कवीनां ॥३२॥

अभिषूयमाणः स सोम ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य पंथानं मार्गमभि कनिक्रदत्। पुनःपुनः शब्दायते। अथ प्रत्यक्षः। अमृतस्यामरणधर्मस्य धाम स्थानभूतः। मरणरहित इत्यर्थः। तादृशः शुक्रः शुक्लवर्णस्त्वं वि भासि। विशेषेण राजसि। मत्सरवान् मदकररसयुक्तः स त्वमिंद्रायेंद्रार्थं पवसे। क्षरसि। कीदृशः। कवीनां स्तोतृणां मतिभिः सह वाचं शब्दं हिन्वानः प्रेरयन् पवसे ॥

दि॒व्यः सु॑प॒र्णोऽव॑ च॒क्षि सो॒म॒ पिन्व॒न्धाराः॒ कर्म॑णा दे॒ववी॑तौ ।
एंदो॑ विश क॒लशं॑ सोम॒धानं॒ क्रंद॑न्निहि॒ सूर्य॒स्योप॑ र॒श्मिं ॥३३॥
दि॒व्यः । सु॒ऽप॒र्णः । अव॑ । च॒क्षि॒ । सो॒म॒ । पिन्व॑न् । धाराः॑ । कर्म॑णा । दे॒वऽवी॑तौ ।
आ । इं॒दो॒ इति॑ । वि॒श॒ । क॒लशं॑ । सो॒म॒ऽधानं॑ । क्रंद॑न् । इ॒हि॒ । सूर्य॑स्य । उप॑ । र॒श्मिं ॥३३॥

हे सोम दिव्यो दिवि भवः सुपर्णः सुपतनस्त्वमव चक्षि । अवख्यात्पश्य ॥ चष्टेर्लेटि सिपि व्यत्ययेन परस्मैपदं ॥ किं कुर्वन् । देववीतौ देवानां हविर्भक्षणस्थाने यज्ञे कर्मणा धाराः पिन्वन् क्षरन् । किंच हे इंदो सोमधानं कलशमा विश । क्रंदन्छब्दायमानस्त्वं सूर्यस्य प्रेरकस्यादित्यस्य रश्मिं कांतिमुपेहि । उपगच्छ ॥

ति॒स्रो वाच॑ ईरयति॒ प्र वह्नि॑र्ऋ॒तस्य॑ धी॒तिं ब्रह्म॑णो मनी॒षां ।
गावो॑ यंति॒ गोप॑तिं पृ॒च्छमा॑नाः॒ सोमं॑ यंति म॒तयो॑ वावशा॒नाः ॥३४॥
ति॒स्रः । वाचः॑ । ई॒र॒य॒ति॒ । प्र । वह्निः॑ । ऋ॒तस्य॑ । धी॒तिं । ब्रह्म॑णः । म॒नी॒षां ।
गावः॑ । यं॒ति॒ । गोऽप॑तिं । पृ॒च्छमा॑नाः । सोमं॑ । यं॒ति॒ । म॒तयः॑ । वा॒व॒शा॒नाः ॥३४॥

वह्निर्वोढा यजमानस्तिस्रो वाच ऋग्यजुःसामात्मिकाः स्तुतीः प्रेरयति । तथर्तस्य यज्ञस्य धीतिं धारयित्रीं ब्रह्मणः परिवृढस्य सोमस्य मनीषां मनस ईशित्रीं कल्याणीं वाचं च प्रेरयति । किंच गोपतिं वृषभं यथा गावोऽभिगच्छंति तद्वन्नवां स्वामिनं सोमं गावः पृच्छमानाः पृच्छंत्यः सत्यो यंति । स्वपयसा मिश्रयितुमभिगच्छंति । तथा वावशानाः कामयमाना मतयः स्तोतारः सोमं यंति । स्तोतुमभिगच्छंति ॥

सोमं॒ गावो॑ धे॒नवो॑ वावशा॒नाः सोमं॒ विप्रा॑ म॒तिभिः॑ पृ॒च्छमा॑नाः ।
सोमः॑ सु॒तः पू॑यते अ॒ज्यमा॑नः॒ सोमे॑ अ॒र्कास्त्रि॒ष्टुभः॒ सं न॑वंते ॥३५॥
सोमं॑ । गावः॑ । धे॒नवः॑ । वा॒व॒शा॒नाः । सोमं॑ । विप्राः॑ । म॒तिऽभिः॑ । पृ॒च्छमा॑नाः ।
सोमः॑ । सु॒तः । पू॒य॒ते॒ । अ॒ज्यमा॑नः । सोमे॑ । अ॒र्काः । त्रि॒ऽस्तुभः॑ । सं । न॒वं॒ते॒ ॥३५॥

धेनवः प्रीणयित्र्यो गावः सोमं वावशानाः कामयमाना भवंति । विप्रा मेधाविनः स्तोतारो मतिभिः पृच्छमानाः पृच्छंतो भवंति । अज्यमानो गोभिः सिच्यमानः सुतोऽभिषुतः सोम ऋत्विग्भिः परिपूयते । तथा त्रिष्टुभस्त्रिष्टुब्रूपा अर्का अस्माभिः क्रियमाणा एते मंत्राः सोमे सं नवंते । संगच्छंते ॥ ॥१७॥

ए॒वा नः॑ सोम परिषि॒च्यमा॑न॒ आ प॑वस्व पूयमा॑नः स्व॒स्ति ।
इंद्र॒मा वि॑श बृह॒ता रवे॑ण व॒र्धया॒ वाचं॑ ज॒नया॒ पुरं॑धिं ॥३६॥
ए॒व । नः॒ । सो॒म॒ । परि॒ऽसि॒च्यमा॑नः । आ । प॒व॒स्व॒ । पू॒यमा॑नः । स्व॒स्ति ।
इंद्रं॑ । आ । वि॒श॒ । बृ॒ह॒ता । रवे॑ण । व॒र्धय॑ । वाचं॑ । ज॒नय॑ । पुरं॑ऽधिं ॥३६॥

हे सोम परिषिच्यमानः परितः पात्रेषु सिच्यमानः पूयमानस्त्वं नोऽस्माकमेव स्वस्त्यविनाशमा पवस्व । आप्रापय । किंच बृहता महता रवेण शब्देन सहेंद्रमा विश । प्रविश । तथा वाचं स्तुतिलक्षणां वर्धय । किंच पुरंधिं बहुधि प्रज्ञानं जनय । अस्मभ्यमुत्पादय ॥ वाक्यभेदादनिघातः ॥

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपंति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥
आ । जागृविः । विप्रः । ऋता । मतीनां । सोमः । पुनानः । असदत् । चमूषु ।
सपंति । यं । मिथुनासः । निऽकामाः । अध्वर्यवः । रथिरासः । सुऽहस्ताः ॥३७॥

जागृविर्जागरणशील ऋता ॥ सुपां सुलुगिति षष्ठ्या आकारः ॥ ऋतानां सत्यानां मतीनां स्तुतीनां विप्रो ज्ञाता स सोमः पुनानः पूयमानः संश्चमूषु चमसेष्वासदत् । आसीदति । मिथुनासः परस्परं संगता निकामा नितरां कामयमाना रथिरासो यज्ञस्य नेतारः सुहस्ताः कल्याणपाणयोऽध्वर्यवः पवित्रे यं सोमं सपंति स्पृशंति ॥ षप समवाये । सपतिः स्पृशतिकर्मेति नैरुक्ताः । नि॰ ५. १६. ॥

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८॥
सः । पुनानः । उप । सूरे । न । धाता । आ । उभे इति । अप्राः । रोदसी इति । वि ।
सः । आवरित्यावः ।
प्रिया । चित् । यस्य । प्रियसासः । ऊती । सः । तु । धनं । कारिणे । न । प्र । यंसत् ॥३८॥

पुनानः पूयमानः स सोम इंद्र उपगच्छति । तत्र दृष्टांतः । सूरे न यथा सूर्ये धाता संवत्सर उपगच्छति । संवत्सरो वै धाता संवत्सरेणैवास्मै प्रजाः प्रजनयतीत्याम्नानात् । तै॰ ब्रा॰ १. ७. २. १. । किंचोभे रोदसी द्यावापृथिव्यावाप्राः । स्वमहिम्नापूरयति । तथा स सोमो व्यावः । स्वतेजसा तमांसि विवृणोति ॥ वृणोतेर्मंत्रे घसेति च्लेर्लुक् । छंदस्यपि दृश्यत इत्याडागमः । पूर्वपदादिति स इत्यस्य सांहितिकं षत्वं ॥ प्रिया ॥ षष्ठ्या आकारः ॥ प्रियस्य यस्य सोमस्य यद्वा प्रियाणि प्रयच्छतो यस्य सोमस्य प्रियसासोऽत्यंतं प्रियतमा धारा ऊत्यूत्यै रक्षणाय भवंति । स तु चिप्रमस्मभ्यं धनं प्र यंसत् । प्रयच्छतु ॥ यच्छतेर्लेटि सिप्यडागमः ॥ तत्र दृष्टांतः । कारिणे न भृतकाय भृतिं यथा प्रयच्छंति तद्वत् ॥

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९॥
सः । वर्धिता । वर्धनः । पूयमानः । सोमः । मीढ्वान् । अभि । नः । ज्योतिषा । आवीत् ।
येन । नः । पूर्वे । पितरः । पदऽज्ञाः । स्वःऽविदः । अभि । गाः । अद्रिं । उष्णन् ॥३९॥

वर्धिता देवानां स्वकलाप्रदानेन वर्धयिता वर्धनः स्वयं वर्धमानः पवित्रेण पूयमानो मीढ्वान् कामानां सेक्ता स सोमो नोऽस्माञ्ज्योतिषा स्वतेजसाभ्यावीत् । अभिरक्षतु । येन सोमेन पदज्ञाः पणिभिरपहृतानां गवां पदानि जानंतः स्वर्विदः सर्वज्ञाः सूर्यं जानंतो वा नोऽस्माकं पूर्वे चिरंतनाः पितरोऽंगिरसो गाः पशूनभिलक्ष्याद्रिमुष्णञ्छिलोच्चयमुष्णन् । सोमतेजसांधकारावृतं शिलोच्चयं गत्वा पशूनाहरन्नित्यर्थः ॥ उषिरिह मुष्णातिसमानकर्मा । यद्वा । मुष्णातेर्लङि वर्णलोपः ॥

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इंदुः ॥४०॥

अक्रान् । समुद्रः । प्रथमे । विऽधर्मन् । जनयन् । प्रऽजाः । भुवनस्य । राजा ।
वृषा । पवित्रे । अधि । सानौ । अव्ये । बृहत् । सोमः । ववृधे । सुवानः । इंदुः ॥४०॥

समुद्रो यस्मादापः संद्रवंति स समुद्रोऽपां वर्षको राजा सोमः प्रथमे विस्तृते भुवनस्योदकस्य विधर्मन् विधारकेंऽतरिक्षे प्रजा जनयन्नुत्पादयन्नक्रान् । सर्वमतिक्रामति ॥ क्रमतेर्लुङि तिपीडभावे वृद्धौ च हतायां सिच्लोपे मकारस्य मो नो धातोरिति नकारे रूपं ॥ वृषा कामानां वर्षिता सुवानोऽभिषूयमाण इंदुर्दीप्तः स सोमोऽध्यधिकं सानौ समुच्छ्रितेऽव्येऽविमये पवित्रे बृहत्प्रभूतं ववृधे । वर्धते ॥ ॥१८॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिंद्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिंदुः ॥४१॥
महत् । तत् । सोमः । महिषः । चकार । अपां । यत् । गर्भः । अवृणीत । देवान् ।
अदधात् । इंद्रे । पवमानः । ओजः । अजनयत् । सूर्ये । ज्योतिः । इंदुः ॥४१॥

महिषो महान्पूज्यो वा सोमो महत्प्रभूतं तत्कर्म चकार । अकरोत् । किं तत् । अपां गर्भ उदकानां गर्भभूतो जनयितृत्वाज्जन्यत्वाच्च स सोमो देवानवृणीत समभजतेति यत्तत्कृतवानिति । किंच पवमानः पूयमानः सोम ओजः सोमपानेन जन्यं बलमिंद्रेऽदधात् । व्यदधात् । तथेंदुः सोमः सूर्ये ज्योतिस्तेजोऽजनयत् ॥

मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥४२॥
मत्सि । वायुं । इष्टये । राधसे । च । मत्सि । मित्रावरुणा । पूयमानः ।
मत्सि । शर्धः । मारुतं । मत्सि । देवान् । मत्सि । द्यावापृथिवी इति । देव । सोम ॥४२॥

हे सोम त्वं वायुं मत्सि । मादय । किमर्थं । इष्टयेऽस्माकमेषणायान्नाय राधसे धनाय च । तथा पूयमानः पवित्रेण त्वं मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च मत्सि । तर्पयसि । किंच मारुतं मरुतां स्वभूतं शर्धो बलं च मत्सि । तथा देवानिंद्रादीन्मत्सि । हर्षयसि । हे देव स्तोतव्य हे सोम द्यावापृथिव्यौ च मत्सि । मादय । एतान्हर्षयुक्तान्कृत्वास्मभ्यं धनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हंतापामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिंद्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३॥
ऋजुः । पवस्व । वृजिनस्य । हंता । अप । अमीवां । बाधमानः । मृधः । च ।
अभिऽश्रीणन् । पयः । पयसा । अभि । गोनां । इंद्रस्य । त्वं । तव । वयं । सखायः ॥४३॥

हे सोम ऋजुरृजुगमनः सन् पवस्व । क्षर । किं कुर्वन् । वृजिनस्योपद्रवस्य हंता । अमीवां रोगरूपं राक्षसमप बाधमानः । तथास्मदीयान्मृधो हिंसकाञ्शत्रूंश्च बाधमानः सन् पवस्व । ततः पय आत्मीयं रसं गोनां गवां पयसा क्षीरेणाभिश्रीणन्नभिसंयोजयन् पात्राण्यभि गच्छसि । अपि च त्वमिंद्रस्य सखासि हे सोम तव वयं सखायः स्तुत्यस्तोतृत्वयष्टृयष्टव्यत्वलक्षणेन सखिभूताः स्मः ॥

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेंद्राय पवमान इंदो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४॥

मध्वः । सूदं । पवस्व । वस्वः । उत्सं । वीरं । च । नः । आ । पवस्व । भगं । च ।
स्वदस्व । इंद्राय । पवमानः । इंदो इति । रयिं । च । नः । आ । पवस्व । समुद्रात् ॥४४॥

हे सोम मध्वो माधुर्यस्य सूदं क्षारयितारं घनीभूतं वा वस्वो वसुनो धनस्योत्समुत्स्यंदकं रसं पवस्व। किंच नोऽस्मभ्यं वीरं पुत्रमा पवस्व । आप्रापय । तथा भगं भजनीयं धनं च देहि । हे इंदो पवमानः पूयमानः सन्निंद्राय स्वदस्व । रुचितो भव । ततस्त्वं नोऽस्मभ्यं समुद्रादंतरिक्षाद्रयिं धनं पुत्रं वा । राति ददाति वीरमिति रयिर्गौर्वा । तां वा पवस्व । देहि ॥

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिंधुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिंदुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५॥
सोमः । सुतः । धारया । अत्यः । न । हित्वा । सिंधुः । न । निम्नं । अभि । वाजी । अक्षारिति ।
आ । योनिं । वन्यं । असदत् । पुनानः । सं । इंदुः । गोभिः । असरत् । सं । अत्ऽभिः ॥४५॥

सुतोऽभिषुतः सोमो धारया स्वीययात्यो ऽतनशीलोऽश्व इव हित्वा गत्वा ॥ हिनोतेः क्त्वनिपि रूपं ॥ किंच वाजी बलवान् सोमः सिंधुर्न यथा सिंधुः स्यंदमाना नदी निम्नं प्रदेशमभिगच्छति तद्वन्निम्नमधरभाविनं कलशमभ्यक्षाः । अभिक्षरति । ततः पुनानः पूयमानः सोमो वन्यं वृक्षभवं योनिं योनिस्थानं कलशमासदत् । आसीदति । सोऽयमिंदुः सोमो गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिः श्रयणैः समसरत् । संसरति । तथाद्भिर्वसतीवरीभिश्च संगच्छते ॥ ॥१९॥

एष स्य ते पवत इंद्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६॥
एषः । स्यः । ते । पवते । इंद्र । सोमः । चमूषु । धीरः । उशते । तवस्वान् ।
स्वःऽचक्षाः । रथिरः । सत्यऽशुष्मः । कामः । न । यः । देवऽयतां । असर्जि ॥४६॥

हे इंद्र उशते कामयमानाय ते तुभ्यं त्वदर्थं धीरः प्राज्ञस्तवस्वान्वेगवान् स्य स एष सोमश्चमूषु चमसेषु पवते। चरति। स्वर्चक्षाः सर्वदर्शनो रथिरो रथवान् सत्यशुष्मो यथार्थबलो यः सोमो देवयतां देवानिच्छतां यजमानानां कामो न कामद इवासर्जि। असृज्यत। अदीयतेत्यर्थः ॥

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥४७॥
एषः । प्रत्नेन । वयसा । पुनानः । तिरः । वर्पांसि । दुहितुः । दधानः ।
वसानः । शर्म । त्रिऽवरूथं । अप्ऽसु । होताऽइव । याति । समनेषु । रेभन् ॥४७॥

प्रत्नेन पूर्वकालीनेन वयसान्नेन पुनानः पूयमानः । अन्नात्मिकया धारया क्षरन्नित्यर्थः । तादृशो दुहितुः सर्वस्य दोग्ध्र्याः पृथिव्या वर्पांसि । वर्प इति रूपनाम वृणोति शरीरमिति । रूपाणि तिरो दधानः स्वतेजसा तिरस्कुर्वन्नाच्छादयन् तथा त्रिवरूथं त्रिभूमिकोपेतं । यद्वा । त्रयः शीतातपवर्षाः । तेषां निवारकं । शर्म यज्ञगृहं वसान आच्छादयन्नप्सु वसतीवरीषु स्थित एष सोमो होतेव यथा होता स्तुतिध्वनिं कुर्वन्यज्ञेषु याति तद्वद्रेभञ्छब्दायमानः सन् समनेषु । समंति कर्माणि धृष्टाः प्रगल्भा यंत्यत्रेति समना यज्ञाः । तेषु याति । गच्छति ॥

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८॥
नु । नः । त्वं । रथिरः । देव । सोम । परि । स्रव । चम्वोः । पूयमानः ।
अप्ऽसु । स्वादिष्ठः । मधुऽमान् । ऋतऽवा । देवः । न । यः । सविता । सत्यऽमन्मा ॥४८॥

हे देव काम्यमान हे सोम रथिरो रथवांस्त्वं नोऽस्माकं स्वभूते यज्ञे चम्वोरधिषवणफलकयोः पूयमानः सन्नप्सु वसतीवरीषु नु क्षिप्रं परि स्रव । परितः चर । स्वादिष्ठः स्वादुतमः अत एव मधुमान्माधुर्ययुक्त ऋतावा यज्ञवान्सविता सर्वस्य प्रेरको यस्त्वं देवो न देव इव सत्यमन्मा सत्यस्तुतिको भवसि स त्वं परिस्रवेति ॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं ॥४९॥
अभि । वायुं । वीती । अर्ष । गृणानः । अभि । मित्रावरुणा । पूयमानः ।
अभि । नरं । धीऽजवनं । रथेऽस्थां । अभि । इंद्रं । वृषणं । वज्रऽबाहुं ॥४९॥

हे सोम गृणानः स्तूयमानस्त्वं वीती ॥ सुपां सुलुगिति चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ वीत्यै पानाय वायुमभ्यर्ष । अभिगच्छ । तथा पवित्रेण पूयमानस्त्वं मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च पानायाभिगच्छ । किंच नरं सर्वस्य नेतारं धीजवनं बुद्ध्या समं वेगं कुर्वाणं रथेष्ठां रथेस्थां रथे तिष्ठंतं । अनेनाश्विनावभिधीयेते । एकवचनं प्रत्येकविवक्षया समुदायविवक्षया वा । एतादृशावश्विनौ चाभिगच्छ । तथा वृषणं कामानां वर्षकं वज्रबाहुं वज्रयुक्तबाहुमिंद्रं च त्वं पानायाभिगच्छ ॥

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चंद्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥५०॥
अभि । वस्त्रा । सुऽवसनानि । अर्ष । अभि । धेनूः । सुऽदुघाः । पूयमानः ।
अभि । चंद्रा । भर्तवे । नः । हिरण्या । अभि । अश्वान् । रथिनः । देव । सोम ॥५०॥

हे सोम त्वमस्माकं सुवसनानि सुपरिधानानि वस्त्रा वस्त्राण्यभ्यर्ष । अभिगमय । यद्वा । सुवसनानि शोभनवस्त्रसहितानि वस्त्राच्छादकानि धनान्यभिगमय । किंच पूयमानः पवित्रेण त्वं सुदुघाः सुष्ठु पयसो दोग्ध्रीर्धेनूर्नवप्रसूतिका गा अभिप्रापय । अपि च चंद्रा चंद्राण्याह्लादकानि हिरण्या हिरण्यानि भर्तवे भरणाय पोषणाय नोऽस्माकमभिगमय । तथा हे देव स्तोतव्य हे सोम रथिनो रथवतोऽश्वानस्माकमभिप्रापय ॥ ॥२०॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१॥
अभि । नः । अर्ष । दिव्या । वसूनि । अभि । विश्वा । पार्थिवा । पूयमानः ।
अभि । येन । द्रविणं । अश्नवाम । अभि । आर्षेयं । जमदग्निऽवत् । नः ॥५१॥

हे सोम पवित्रेण पूयमानस्त्वं दिव्या दिव्यानि दिवि भवानि वसूनि धनानि नोऽस्माकमभ्यर्ष । अभिगमय । तथा पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि विश्वा सर्वाणि धनान्यभिगमय । तथा येन त्वदीयेन सामर्थ्येन

द्रविणं धनं वयमभ्यश्नवाम अभिव्याप्नुयाम तत्सामर्थ्यमभिगमय । किंचार्षेयमार्षाणामृषिपुत्राणां योग्यं धनं जमदग्निवज्जमदग्नेर्यथा त्वं प्रापयः एवं नोऽस्माकमप्यभ्यर्ष । यद्वा । आर्षेयमार्षाणां योग्यं मंत्रं जमदग्नेः स्वभूतं मंत्रं यथा स्वादुतममकार्षीः एवमस्माकं तादृशं मंत्रं स्वादुतमं कुर्विति कुत्सो नामर्षिः प्रार्थयते ॥

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इंदो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥५२॥
अया । पवा । पवस्व । एना । वसूनि । माँश्चत्वे । इंदो इति । सरसि । प्र । धन्व ।
ब्रध्नः । चित् । अत्र । वातः । न । जूतः । पुरुऽमेधः । चित् । तकवे । नरं । दात् ॥५२॥

हे सोम अयानया पवा पवमानया धारया सहैनैनानि वसूनि धनानि पवस्व । क्षर ॥ पवा । पूङ् पवने । अन्येभ्योऽपि दृश्यंत इति विचप्रत्ययः । आर्धधातुकलक्षणो गुणः । साविकाच इति तृतीयाया उदात्तत्वं ॥ तथा हे इंदो त्वं माँश्चत्वे मन्यमानानां चातके सरस्युदके वसतीवर्याख्ये प्र धन्व । प्रगच्छ । ततोऽत्रास्मिन्सोमे पूयमाने सति ब्रध्नश्चित् सर्वेषां प्रज्ञापको मूलभूतो वादित्योऽपि वातो न वात इव जूतो वेगितः सन् किंच पुरुमेधश्चिद्बहुविधयज्ञ इंद्रश्चिदिंद्रोऽपि तकवे ॥ तकतिर्गतिकर्मसु पठितः । अस्मादौणादिक उन्प्रत्ययः ॥ सोममभिगच्छते स्तुतिभिर्मह्यं नरं कर्मनेतारं पुत्रं दात् । प्रयच्छतु । हे सोम त्वया तर्पितौ संताविंद्रादित्यौ मह्यं पुत्रं प्रयच्छतामित्यर्थः ॥

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥५३॥
उत । नः । एना । पवया । पवस्व । अधि । श्रुते । श्रवाय्यस्य । तीर्थे ।
षष्टिं । सहस्रा । नैगुतः । वसूनि । वृक्षं । न । पक्वं । धूनवत् । रणाय ॥५३॥

हे सोम उतापि च श्रवाय्यस्य सर्वैः श्रवणीयस्य सोमस्य तव श्रुते प्रसिद्धे । यद्वा । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । श्रुतस्य शब्दस्य तीर्थे स्थाने नोऽस्माकं स्वभूते यज्ञ एनानया पवया पूयमानया धारयाध्यधिकं पवस्व । क्षर । नैगुतः । नीचीनं गवंते शब्दायंत इति निगुतः शत्रवः । तेषां हंतृत्वेन संबंधी सोऽयं सोमः षष्टिं सहस्रा षष्टिसंख्याकानि सहस्राणि वसूनि धनानि रणाय शत्रूणां जयार्थं धूनवत् । अस्माकमकंपयत् । प्रायच्छदिति यावत् । कथमिव । वृक्षं न पक्वं पक्वफलं वृक्षं यथा कंपयति फलार्थी तद्वत् ॥

महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥५४॥
महि । इमे इति । अस्य । वृषनाम । शूषे इति । माँश्चत्वे । वा । पृशने । वा । वधत्रे इति ।
अस्वापयत् । निऽगुतः । स्नेहयत् । च । अप । अमित्रान् । अप । अचितः । अच । इतः ॥५४॥

महि महती प्रभृते वृषनाम ॥ सुपां सुलुगिति सुपो लुक् ॥ वृषनामनी वर्षणनमने । शराणां वर्षणं शत्रूणां नमनं । इमे एते द्वे कर्मणी अस्य सोमस्य शूषे सुखकरे भवतः । ये च कर्मणी माँश्चत्वे । अश्वनामैतत् मक्षु चरतीति । अश्वैः क्रियमाणे युद्धे । तत्साध्यत्वाद्युद्धमिह गृह्यते । वापि वा पृशने स्पर्शनसाध्ये बाहुयुद्धे वधत्रे शत्रूणां हिंसनशीले भवतः । सोऽयं निगुतो नीचैः शब्दायमानाञ्शत्रूनस्वापयत् । ताभ्यामसूषुपत् । अवधीदित्यर्थः । किंच स्नेहयत् प्राद्रवयत्संग्रामाच्छत्रून् । अथ प्रत्यक्षकृतः । हे सोम स त्वममित्राञ्शत्रूनपाच । अपगमय । तथाचितोऽमित्रयजनमकुर्वतो नास्तिकांश्चेतोऽस्मत्सकाशादपाच । अपगमय । अचतिर्गतिकर्मा ॥

सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इंदो ॥५५॥
सं । त्री । पवित्रा । विऽततानि । एषि । अनु । एकं । धावसि । पूयमानः ।
असि । भगः । असि । दात्रस्य । दाता । असि । मघऽवा । मघवत्ऽभ्यः । इंदो इति ॥५५॥

हे सोम विततानि विस्तृतानि त्री त्रीणि पवित्राण्यग्निवायुसूर्यात्मकानि पवित्राणि समेषि । सम्यक् प्राप्नोषि । किंच पूयमानस्त्वमेकमविवालक्षणं पवित्रमनु धावसि । अनुगच्छसि । किंच त्वं भगो भजनीयोऽसि । तथा दात्रस्य देयस्य धनस्य दातासि । कथमस्य धनदत्वमिति चेत् तदुच्यते । हे इंदो सोम मघवद्भ्योऽन्येभ्योऽपि त्वं मघवासि । अतिशयेन धनवान्भवसि ॥ ॥२१॥

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विंदुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥५६॥
एषः । विश्वऽवित् । पवते । मनीषी । सोमः । विश्वस्य । भुवनस्य । राजा ।
द्रप्सान् । ईरयन् । विदथेषु । इंदुः । वि । वारं । अव्यं । समया । अति । याति ॥५६॥

विश्ववित् सर्वस्य वेत्ता अत एव मनीषी मेधावी विश्वस्य भुवनस्य सर्वस्य लोकस्य राजा स्वाम्येष सोमः पवते । चरति । एतदेव विवृणोति । विदथेषु । विदंति जानंत्यत्र देवानिति यद्वा विंदंति लभंत इति विदथा यज्ञाः । तेषु द्रप्सान्रसकणानीरयन् प्रेरयन्निंदुः सोमोऽव्यमविभवं वारं वालं पवित्रं समयोभयतो व्यति याति । व्यतीत्य गच्छति ॥

इंदुं रिहंति महिषा अदब्धाः पदे रेभंति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वंति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समंजते रूपमपां रसेन ॥५७॥
इंदुं । रिहंति । महिषाः । अदब्धाः । पदे । रेभंति । कवयः । न । गृध्राः ।
हिन्वंति । धीराः । दशऽभिः । क्षिपाभिः । सं । अंजते । रूपं । अपां । रसेन ॥५७॥

महिषा महांतः पूज्या वा अत एवादब्धाः कैश्चिदप्यहिंसिता देवा इंदुं सोमं रिहंति । लिहंति । आस्वादयंति । किंच देवाः सोममुशंतः संतः पदे तस्यास्य सोमस्य धारास्थाने रेभंति । शब्दायंते । तत्र दृष्टांतः । कवयो न गृध्राः । धनमभिकांक्षमाणाः कवयः स्तोतारो यथा स्तुवंतः शब्दायंते तद्वत् । धीराः कर्मणि कुशला ऋत्विजो दशभिरेतत्संख्याकाभिः क्षिपाभिरंगुलीभिस्तमिमं सोमं हिन्वंति । अभिषवार्थं प्रेरयंति । अपि च रूपं सोमस्य रूपमंशुमपां वसतीवर्याख्यानां रसेन समंजते । सम्यक् सेवयंति ॥

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहंतामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥५८॥
त्वया । वयं । पवमानेन । सोम । भरे । कृतं । वि । चिनुयाम । शश्वत् ।
तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥५८॥

हे सोम पवमानेन पवित्रेण पूयमानेन त्वया सहायेन भरे । संग्रामनाम । संग्रामे शश्वद्बहु कृतं कर्तव्यं वयं वि चिनुयाम । विशेषेण कुर्याम । यस्मात्तव साहाय्येन कर्माणि कुर्मः तत्तस्मान्नोऽस्मान् मित्रो वरुणो

ऽदितिरेतन्नामकाः सिंधुरेतदभिधाना च पृथिव्युतापि च द्यौः एते मित्रादयो नोऽस्माकमस्मदीयं तां । पूजयंतु धनादिदानेन ॥ ॥२२॥

अभि न इति द्वादशर्चं द्वितीयं सूक्तं । वृषागिरो राज्ञः पुत्रोऽंबरीषो भरद्वाजपुत्र ऋजिश्वोभौ सहितावस्यर्षी । इदमुत्तराणि च त्रीण्यानुष्टुभानि । अत्र लेकादशी बृहती । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रम्यते । अभि नो द्वादशांबरीष ऋजिश्वा चानुष्टुभं ह बृहत्युपांत्येति ॥ गतो विनियोगः ॥

अभि नो॑ वाज॒सात॑मं र॒यिम॑र्ष पुरु॒स्पृहं॑ । इंदो॒ स॒हस्र॑भर्णसं तुविद्यु॒म्नं वि॑भ्वा॒सहं॑ ॥१॥

अ॒भि । नः॒ । वा॒ज॒ऽसात॑मं । र॒यिं । अ॒र्ष॒ । पु॒रु॒ऽस्पृहं॑ । इंदो॒ इति॑ । स॒हस्र॑ऽभर्णसं ।
तु॒वि॒ऽद्यु॒म्नं । वि॒भ्व॒ऽसहं॑ ॥१॥

हे इंदो दीप्त वाजसातममत्यंतं बलप्रदमन्नप्रदं वा रयिं धनं पुत्रं वा नोऽस्माकमभ्यर्ष । अभिगमय । कीदृशं । पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं सहस्रभर्णसं बहुविधभरणं । अनेकपोषणयुक्तमित्यर्थः । तुविद्युम्नं । द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति यास्कः । नि॰ ५. ५. । बह्वन्नं बहुयशोयुक्तं वा विभ्वसहं । विभ्व इति महन्नाम । महतोऽभिभवितारं ॥

परि॒ ष्य सु॑वा॒नो अ॒व्ययं॒ रथे॒ न वर्मा॑व्यत ।
इंदु॑र॒भि द्रुणा॑ हि॒तो हि॑या॒नो धारा॑भिरक्षाः ॥२॥
परि॑ । स्यः । सु॒वा॒नः । अ॒व्यय॑ं । रथे॑ । न । वर्म॑ । अ॒व्य॒त॒ ।
इंदुः॑ । अ॒भि । द्रुणा॑ । हि॒तः । हि॒या॒नः । धारा॑भिः । अ॒क्षा॒रिति॑ ॥२॥

सुवानः सूयमानः स्य स सोमोऽव्ययमविमयं पवित्रं परि पवते । तत्र दृष्टांतः । रथे न यथा रथे स्थितः पुरुषो वर्म कवचमव्यत परिव्ययति ॥ व्ययतेर्लुङि वर्णलोपश्छांदसः ॥ अभि हितोऽभितः प्रेरितः यद्वा स्तोतृभिरभिष्टुतः स इंदुः सोमो द्रुणा द्रुममयेन द्रोणकलशेन हियानः ॥ हि गतौ वृद्धौ च ॥ तेन पूर्यमाणः सन् धाराभिरक्षाः । क्षरति ॥ क्षरतेर्लुङि रूपं ॥

परि॒ ष्य सु॑वा॒नो अ॑क्षा॒ इंदु॒रव्ये॒ मद॑च्युतः ।
धारा॒ य ऊ॒र्ध्वो अ॑ध्व॒रे भ्रा॒जा नैति॑ गव्य॒युः ॥३॥
परि॑ । स्यः । सु॒वा॒नः । अ॒क्षा॒रिति॑ । इंदुः॑ । अव्ये॑ । मद॑ऽच्यु॒तः ।
धारा॑ । यः । ऊ॒र्ध्वः । अ॒ध्व॒रे । भ्रा॒जा । न । एति॑ । ग॒व्य॒ऽयुः ॥३॥

सुवानः सूयमानः स्य स इंदुः सोमो मदच्युतो मदार्थं देवैः प्रेरितः सन्नव्येऽविमये पवित्रे पर्यक्षाः । परितः क्षरति । अध्वर ऊर्ध्वः समुच्छ्रितः सर्वेषां मुख्यो यः सोमो गव्ययुर्गोकामः यद्वा क्षीरादिकं कामयमानः सन् धारा धारया सहैति गच्छति । भ्राजा न भ्राजमानया दीप्त्या यथांतरिक्षे गच्छति तद्वत् ॥

स हि त्वं दे॑व॒ शश्व॑ते॒ वसु॒ मर्ता॑य दा॒शुषे॑ ।
इंदो॑ सह॒स्रिणं॑ र॒यिं श॒तात्मा॑नं विवाससि ॥४॥
सः । हि । त्वं । दे॒व॒ । शश्व॑ते । वसु॑ । मर्ता॑य । दा॒शुषे॑ ।
इंदो॒ इति॑ । स॒ह॒स्रिणं॑ । र॒यिं । श॒त॒ऽआ॑त्मानं । वि॒वा॒स॒सि॒ ॥४॥

हे देव सोम स त्वं शश्वते पुत्रादिमत्त्वेन बहवे मर्त्याय मनुष्याय दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय वसु धनं मह्यं च विवाससि। प्रेरयसि। एकवाक्यतापत्ते हि तिङंतस्य हियोगादनिघातः स्यात् ॥

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५॥
वयं। ते। अस्य। वृत्रऽहन्। वसो इति। वस्वः। पुरुऽस्पृहः।
नि। नेदिष्ठऽतमाः। इषः। स्याम। सुम्नस्य। अध्रिगो इत्यध्रिऽगो ॥५॥

हे वृत्रहञ्शत्रूणां हंतः सोम अस्यैतादृशस्य ते तव स्वभूता वयं स्मः। ततो हे वसो वासयितः पुरुस्पृहो बहुभिः स्पृहणीयस्य वस्वो वसुनो धनस्य त्वया दीयमानस्य वयं नि नितरां नेदिष्ठतमा अत्यंतमंतिकतमाः स्याम। तथेषोऽन्नस्य किंच हे अध्रिगो अधृतगमन सोम सुम्नस्य सुखस्य वयमंतिकतमाः स्याम। भवेम ॥

द्विर्यं पंच स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतं। प्रियमिंद्रस्य काम्यं प्रस्नापयंत्यूर्मिणं ॥६॥
द्विः। यं। पंच। स्वऽयशसं। स्वसारः। अद्रिऽसंहतं। प्रियं। इंद्रस्य। काम्यं।
प्रऽस्नापयंति। ऊर्मिणं ॥६॥

द्विः पंच दशसंख्याकाः स्वसारः कर्मकरणार्थमितस्ततो गच्छंत्योऽंगुलयः स्वयशसं स्वभूतयशस्कमद्रिसंहतं ग्रावभिरभिषुतमिंद्रस्य प्रियं काम्यं सर्वैः काम्यमानमूर्मिणं धाराभिस्तद्वंतं यं सोमं प्रस्नापयंति वसतीवरीभिः प्रकर्षेण सेचयंति यजमानाः तं पुनंतीत्युत्तरत्र संबंधः ॥ ॥२३॥

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनंति वारेण। यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७॥
परि। त्यं। हर्यतं। हरिं। बभ्रुं। पुनंति। वारेण। यः। देवान्। विश्वान्। इत्।
परि। मदेन। सह। गच्छति ॥७॥

हर्यतं सर्वैः स्पृहणीयं हरिं हरितवर्णं बभ्रुं बभ्रुवर्णं च त्यं तं सोमं वारेण वालेन पवित्रेण परि पुनंति। परिशोधयंति। यः सोमो विश्वान् सर्वानिंद्रादीन्देवानिद्देवानेव मदेन मादकेन रसेन सह परि गच्छति ॥

अस्य वो ह्यवसा पांतो दक्षसाधनं। यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्व१र्ण हर्यतः ॥८॥
अस्य। वः। हि। अवसा। पांतः। दक्षऽसाधनं। यः। सूरिषु। श्रवः। बृहत्। दधे।
स्वः। न। हर्यतः ॥८॥

वः ॥ छांदसो वसादेशः ॥ हिरवधारणे। वो यूयमस्य सोमस्यावसा रक्षणेन दक्षसाधनं बलस्य साधनं रसं पांतः पिबंतो भवथ। स्वर्णादित्य इव हर्यतः सर्वैः काम्यमानो योऽयं सोमः सूरिषु स्तोत्राणि प्रेरयत्सु स्तोतृषु बृहन्महत्प्रभूतं श्रवोऽन्नं दधे विदधे। स्थापयतीति यावत् ॥

स वां यज्ञेषु मानवी इंदुर्जनिष्ट रोदसी। देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणिं ॥९॥
सः। वां। यज्ञेषु। मानवी इति। इंदुः। जनिष्ट। रोदसी इति। देवः। देवी इति।
गिरिऽस्थाः। अस्रेधन्। तं। तुविऽस्वनिं ॥९॥

हे मानवी मानव्यौ मनोः स्वभूते हे देवी द्योतमाने हे रोदसी द्यावापृथिव्यौ वां युवयोर्यज्ञेषु स इंदुः

सोमो जनिष्ट। अजनि। अंतरिक्षे देवः स्वतेजसा सर्वं प्रकाशयन् पृथिव्यां गिरिष्ठा ग्रावसु तिष्ठन्। तं जातं सोमं तुविष्वणि बहुस्वन उपरे यज्ञे वासेधन्। ऋत्विजो ग्रावभिरघ्नन्। अभ्यषुण्वन्निति यावत्॥

इंद्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे। नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे॥१०॥

इंद्राय। सोम। पातवे। वृत्रऽघ्ने। परि। सिच्यसे। नरे। च। दक्षिणाऽवते। देवाय। सदनऽसदे॥१०॥

हे सोम वृत्रघ्ने वृत्रस्य हंत्र इंद्राय। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। इंद्रस्य पातवे पानार्थं परि षिच्यसे। परितः पात्रेषु सिच्यसे। वसतीवरीभिर्वा। किंच दक्षिणावत ऋत्विग्भ्यो दक्षिणादानेन तद्वते देवाय देवार्थं हवींषि दातुं सदनसदे यज्ञगृहे सीदते नरे मनुष्याय यजमानाय तस्मै फलप्रदानार्थं परि षिच्यसे॥

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन्।
अपप्रोथंतः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः॥११॥

ते। प्रत्नासः। विऽउष्टिषु। सोमाः। पवित्रे। अक्षरन्।
अपऽप्रोथंतः। सनुतः। हुरःऽचितः। प्रातरिति। तान्। अप्रऽचेतसः॥११॥

व्युष्टिषूषसां व्युच्छनेषु प्रकाशनेषु प्रत्नासः प्रत्नास्ते सोमाः पवित्रेऽक्षरन्। क्षरंति। ये सोमाः सनुतरंतर्हिताक्षप्रचेतसः प्रज्ञानरहितान् ह्रुरश्चितः। स्तेननामैतत् कौटिल्येन चिन्वंतीति। तान्मायाविनः स्तेनान्प्रातः प्रातःकाल एवापप्रोथंतः। अपप्रोथनं चापप्रेरणं। अपप्रेरयंतः शब्देन निराकुर्वंतो भवंति। ते क्षरंतीति समन्वयः॥

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः। अश्याम वाजगंध्यं सनेम वाजपस्त्यं॥१२॥

तं। सखायः। पुरःऽरुचं। यूयं। वयं। च। सूरयः। अश्याम। वाजऽगंध्यं। सनेम। वाजऽपस्त्यं॥१२॥

हे सखायः स्तोतारः सूरयः प्राज्ञा यूयं वयं च यजमानाः पुरोरुचं पुरतो रोचमानं वाजगंध्यं बलकरसाधुगंधोपेतं सोममश्याम। अश्नीयाम। पिबेम। किंच वाजपस्त्यमन्नयुक्तगृहसहितं यद्वा बलकरं सोमं सनेम। संभजेमहि। सोमेन बलान्नगृहादीनि भवंतीत्यर्थः॥ ॥२४॥

आ हर्यतायेत्यष्टर्चं तृतीयं सूक्तं। कश्यपगोत्रौ रेभसूनू एतत्संज्ञौ द्वावृषी। आद्या बृहती सप्तानुष्टुभः। पवमानसोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। आ हर्यतायाष्टौ रेभसूनू काश्यपौ बृहत्याद्येति॥ गतो विनियोगः॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वंति पौंस्यं।
शुक्रां वयंत्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः॥१॥

आ। हर्यताय। धृष्णवे। धनुः। तन्वंति। पौंस्यं।
शुक्रां। वयंति। असुराय। निःऽनिजं। विपां। अग्रे। महीयुवः॥१॥

हर्यताय सर्वैः स्पृहणीयाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणशीलाय सोमाय पौंस्यं पुंस्त्वस्याभिव्यंजकं धनुरा तन्वंति। धनुषि ज्यां कुर्वंतीति। सोमस्य धाराविसर्गार्थं वितायमानं पवित्रमभिधीयते। तदेव विवृणोति। महीयुवः पूजाकामा ऋत्विजो विपां मेधाविनां देवानामग्रे पुरस्ताच्छुक्रां शुक्लवर्णां निर्णिजं यया सोमो निर्णिज्यते तामसुराय बलवते वयंति। वितन्वंति। दशापवित्रं विस्तारयंतीत्यर्थः। वयतिर्गतिकर्मा॥

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वंति यातवे ॥२॥
अध । क्षपा । परिऽकृतः । वाजान् । अभि । प्र । गाहते ।
यदि । विवस्वतः । धियः । हरिं । हिन्वंति । यातवे ॥२॥

क्षपा ॥ सुपां सुलुगिति पंचम्या आकारः ॥ क्षपाया रात्रेरधानंतरं प्रातःकाले परिष्कृतः ॥ भूषणार्थे संपर्युपेभ्य इति करोतेः सुडागमः ॥ अद्भिरलंकृतः । यद्वा । क्षपयित्र्यां सेनायामलंकृतः । सोमो वाजानन्नानि बलानि वाभिलक्ष्य प्र गाहते । प्रगच्छति । विवस्वतः परिचरणवतो यजमानस्य धियः कर्मसाधनभूता अंगुलयो हरिं हरितवर्णमेतमंशुं यातवे पात्राण्यभिगमनाय यदि हिन्वंति प्रेरयंति तर्हि सवनानि गच्छतीति ॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इंद्रपातमः । यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥
तं । अस्य । मर्जयामसि । मदः । यः । इंद्रऽपातमः । यं । गावः । आसऽभिः । दधुः ।
पुरा । नूनं । च । सूरयः ॥३॥

अस्य सोमस्य तं रसं मर्जयामसि । मर्जयामः । शोधयामः । अलंकुर्मो वा । यो मदो मदकरो रस इंद्रपातम इंद्रेणात्यंतं पातव्यो भवति । किंच गावो गंतारः सूरयः स्तोतारः पुरा च नूनमिदानीं च यं सोमरसमासभिरास्यैर्दधुः धारयंति । पिबंतीति यावत् । यद्वा । गावो धेनवो यं सोमं तृणादिष्ववस्थितमासभिरास्यैर्दधुः धारयंति तृणरूपेण भक्षयंति ॥

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपंत धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥४॥
तं । गाथया । पुराण्या । पुनानं । अभि । अनूषत ।
उतो इति । कृपंत । धीतयः । देवानां । नाम । बिभ्रतीः ॥४॥

पुनानं पूयमानं तं सोमं पुराण्या पुरा कृतया गाथया स्तुत्याभ्यनूषत । स्तोतारोऽभिष्टुवंति ॥ नू स्तवने । लुङि रूपं ॥ उतो अपि च नाम कर्मार्थं नमनं बिभ्रतीर्बिभ्राणा धीतयोऽंगुलयो देवानां सोमरूपहविष्प्रदानाय कृपंत । कल्पयंति । समर्था भवंति ॥ कृपू सामर्थ्ये ॥

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनंति धर्णसिं । दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥५॥
तं । उक्षमाणं । अव्यये । वारे । पुनंति । धर्णसिं । दूतं । न । पूर्वऽचित्तये । आ ।
शासते । मनीषिणः ॥५॥

उक्षमाणमद्भिः सिच्यमानं धर्णसिं सर्वस्य धारकं सोममव्ययेऽविमये वारे वाले पवित्रे पुनंति । शोधयंति । ततो मनीषिणो मेधाविनो यजमानास्तमिमं सोमं दूतं न दूतमिव पूर्वचित्तये देवानां पूर्वमेव प्रज्ञापनाया शासते । प्रार्थयंते ॥ ॥२५॥

स पुनानो मदिंतमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥

सः। पुनानः। मदिन्ऽतमः। सोमः। चमूषु। सीदति।
पशौ। न। रेतः। आऽदधत्। पतिः। वचस्यते। धियः ॥ ६ ॥

मदिंतमोऽत्यंतं मादयिता स सोमः पुनानः पूयमानः संश्चमूषु चमसेषु सीदति। ततः पशौ न यथा पशौ कश्चिद्वृषभो रेत आदधाति तद्वच्चमसादिषु रेतः स्वीयं रसमादधदादधानो धियः कर्मणः पतिः पालयितायं सोमो वचस्यते। अभिष्टूयते ॥

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः। विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥
सः। मृज्यते। सुकर्मऽभिः। देवः। देवेभ्यः। सुतः। विदे। यत्। आसु। संऽददिः।
महीः। अपः। वि। गाहते ॥ ७ ॥

देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिषुतो देवो द्योतमानः स्तोतव्यो वा स सोमः सुकर्मभिर्ऋत्विग्भिर्मृज्यते। परिपूयते। यद्यदायं सोम आसु प्रजासु संददिः सम्यग्धनदानशील इति विदे ज्ञायते तदानीं महीर्महतीरपो वसतीवरीर्वि गाहते। विशेषेणाभिगच्छति। यदा सोममभिषुण्वंति तदा तेभ्यो धनं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

सुत इंदो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे। इंद्राय मत्सरिंतमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥
सुतः। इंदो इति। पवित्रे। आ। नृऽभिः। यतः। वि। नीयसे। इंद्राय। मत्सरिन्ऽतमः।
चमूषु। आ। नि। सीदसि ॥ ८ ॥

हे इंदो सुतोऽभिषुतो यत आयतः सर्वतो विस्तृतस्त्वं नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिः पवित्रे वि नीयसे। विशेषेण नीयमानो भवसि। ततो मत्सरिंतमोऽतिशयेन मादयिता त्वमिंद्रायेंद्रार्थं चमूषु चमसेष्वा नि षीदसि ॥ ॥ २६ ॥

अभी नवंत इति नवर्चं चतुर्थं सूक्तं। पूर्ववदृषिदेवते। सर्वा अनुष्टुभः। तथा चानुक्रम्यते। अभी नवंते नवेति ॥ गतो विनियोगः ॥

अभी नवंते अद्रुहः प्रियमिंद्रस्य काम्यं। वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहंति मातरः ॥ १ ॥
अभि। नवंते। अद्रुहः। प्रियं। इंद्रस्य। काम्यं। वत्सं। न। पूर्वे। आयुनि। जातं।
रिहंति। मातरः ॥ १ ॥

यथा मातरो गावः पूर्वे प्रथम आयुनि वयसि जातं वत्सं रिहंति लिहंति तथाद्रुहोऽद्रोहा वसतीवर्याख्या आप इंद्रस्य प्रियं काम्यं सर्वैः काम्यमानं सोममभि नवंते। अभिगच्छंति ॥

पुनान इंदवा भर सोम द्विबर्हसं रयिं। त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥
पुनानः। इंदो इति। आ। भर। सोम। द्विऽबर्हसं। रयिं। त्वं। वसूनि। पुष्यसि।
विश्वानि। दाशुषः। गृहे ॥ २ ॥

हे इंदो दीप्यमान हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वं द्विबर्हसं द्वयोः स्थानयोः परिवृंहणशीलं रयिं धनमस्मभ्यमा भर। आहर। देहि। त्वं हि दाशुषो हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहे स्थित्वा विश्वानि सर्वाणि वसूनि धनानि पुष्यसि। पोषयसि ॥

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३॥
त्वं । धियं । मनःऽयुजं । सृज । वृष्टिं । न । तन्यतुः ।
त्वं । वसूनि । पार्थिवा । दिव्या । च । सोम । पुष्यसि ॥३॥

हे सोम त्वं मनोयुजं मनसा युज्यमानां मनोवेगां धियं ध्यातव्यां धारां सृज । पात्रेषु विसृज । तत्र दृष्टांतः । वृष्टिं न तन्यतुः ॥ तनु विस्तारे । ऋतन्यंजीत्यादिना यतुच्प्रत्ययः ॥ तनोति विस्तारयतीति तन्यतुर्मेघः । यथा मेघो वृष्टिं सृजति तद्वत् । ततो हे सोम त्वं पार्थिवा पृथिव्यां भवानि वसूनि धनानि तथा दिव्यानि दिवि भवानि धनानि च पुष्यसि । अस्मभ्यं पोषयसि । प्रयच्छसीत्यर्थः ॥

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४॥
परि । ते । जिग्युषः । यथा । धारा । सुतस्य । धावति ।
रंहमाणा । वि । अव्ययं । वारं । वाजीऽइव । सानसिः ॥४॥

सुतस्य ते त्वदीया सानसिः संभजनशीला यद्वा स्तोतृभिः संभजनीया रंहमाणा वेगं कुर्वाणा धाराव्ययमविमयं वारं वालं पवित्रं वि परि धावति । विशेषेण परितो गच्छति । तत्र दृष्टांतः । जिग्युषः शत्रूणां जेतुर्वीरस्य वाजीवाश्वो यथा युद्धं परितो धावति तद्वत् ॥ जयतेः क्वसौ सन्लिटोर्जेरिति कुत्वं । यथेति पूरकः ॥

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया। इंद्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५॥
क्रत्वे । दक्षाय । नः । कवे । पवस्व । सोम । धारया । इंद्राय । पातवे । सुतः । मित्राय ।
वरुणाय । च ॥५॥

हे कवे क्रांतदर्शन हे सोम नोऽस्मभ्यं क्रत्वे प्रज्ञानाय दक्षाय बलाय च त्वं धारया पवस्व । क्षर । कीदृशः । इंद्राय पातवे पानार्थं तथा मित्राय वरुणाय च सुतोऽभिषुतः खलु ॥ ॥२७॥

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः। इंद्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥
पवस्व । वाजऽसातमः । पवित्रे । धारया । सुतः । इंद्राय । सोम । विष्णवे । देवेभ्यः ।
मधुमत्ऽतमः ॥६॥

हे सोम वाजसातमोऽतिशयेनान्नस्य दाता सुतोऽभिषुतस्त्वं पवित्रे धारया सह पवस्व । क्षर । ततो हे सोम त्वमिंद्राय विष्णवे चान्येभ्यो मित्रादिभ्यो देवेभ्यश्च मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्योपेतो भव ॥

त्वां रिहंति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः। वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥७॥
त्वां । रिहंति । मातरः । हरिं । पवित्रे । अद्रुहः । वत्सं । जातं । न । धेनवः । पवमान ।
विऽधर्मणि ॥७॥

हे पवमान सोम विधर्मणि विविधं हविषां धारके यज्ञेऽद्रुहो द्रोहवर्जिता मातरो मातृभूता वसतीवर्यो हरिं हरितवर्णं त्वां पवित्रे स्थितं रिहंति । लिहंति । आस्वादयंति । कथमिव । यथा धेनवो जातं वत्सं लिहंति तथा ॥

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८॥
पवमान । महि । श्रवः । चित्रेभिः । यासि । रश्मिऽभिः ।
शर्धन् । तमांसि । जिघ्नसे । विश्वानि । दाशुषः । गृहे ॥८॥

हे पवमान महि महच्छ्रवः श्रवणीयमंतरिक्षं चित्रेभिश्चित्रैर्नानाविधैश्चायनीयैर्वा रश्मिभिः परि यासि। परिगच्छसि । तथा शर्धन् वेगं कुर्वंस्त्वं दाशुषो हविर्दत्तवतो यजमानस्य गृहे स्थित्वा विश्वानि सर्वाणि तमांसि तमोरूपाणि रक्षांसि जिघ्नसे । हंसि । एवं द्यावापृथिव्योर्वर्तस इत्यर्थः ॥

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुंचथाः पवमान महित्वना ॥९॥
त्वं । द्यां । च । महिऽव्रत । पृथिवीं । च । अति । जभ्रिषे ।
प्रति । द्रापिं । अमुंचथाः । पवमान । महिऽत्वना ॥९॥

हे महिव्रत महाकर्मन् बहुविधकर्मन् सोम त्वं द्यां द्युलोकं च पृथिवीं चाति जभ्रिषे । अत्यंतं बिभर्षि ॥ डुभृञ् धारणपोषणयोः । तस्य च्छांदसे लिटि सर्वविधीनां छंदसि विकल्पितत्वादिडागमः ॥ अंतरिक्षे सोमात्मनेति पृथिव्यां लतारूपेणेत्येवं लोकद्वयवर्तित्वं । हे पवमान क्षरन् सोम त्वं महित्वना महत्त्वेन युक्तः सन् द्रापिं कवचं प्रत्यमुंचथाः । प्रतिमुंचसि । संवृणोषि ॥ ॥२८॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् । पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण
विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् । निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थमहेश्वरं ॥
विज्ञातवेदगांभीर्यस्तुर्यं व्याख्याय सप्तमे । सायणार्यस्ततोऽध्यायं पंचमं व्याचिकीर्षति ॥

तत्र पुरोजिती व इति षोडशर्चमनुवाकापेक्षया पंचमं सूक्तं । आद्यस्य तृचस्य श्यावाश्वपुत्रोऽंधीगुर्नामर्षिः । द्वितीयस्य नहुषस्य राज्ञः पुत्रो ययातिर्नाम । तृतीयस्य मनोः पुत्रो नहुषो नाम राजर्षिः । चतुर्थस्य संवरणाख्यस्य राज्ञः पुत्रो मनुः । एवं द्वादश गताः । शिष्टस्य चतुर्ऋचस्य वाचः पुत्रो वैश्वामित्रो वा प्रजापतिर्ऋषिः । द्वितीयातृतीये गायत्र्यौ शिष्टाश्चतुर्दशानुष्टुभः । तथा चानुक्रम्यते । पुरोजिती षोळश श्यावाश्विरंधीगुर्ययातिर्नाहुषो नहुषो मानवो मनुः सांवरण इति तृचाः शेषे प्रजापतिरपाद्ये गायत्र्याविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

पुरोजिती वो अंधसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यं ॥१॥
पुरःऽजिती । वः । अंधसः । सुताय । मादयित्नवे ।
अप । श्वानं । श्नथिष्टन । सखायः । दीर्घऽजिह्व्यं ॥१॥

हे सखायः सखिभूताः समानख्याना वा हे स्तोतारः वो यूयं पुरोजिती ॥ षष्ठ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ पुरःस्थितजयस्यांधसोऽदनीयस्य सोमस्य स्वभूताय सुतायाभिषुताय मादयित्नवेऽत्यंतं मदकराय रसाय दीर्घजिह्व्यं। दीर्घा जिह्वा यस्य सः ॥ दीर्घजिह्वी च च्छंदसि। पा० ४. १. ५९.। इति ङीषंतत्वेन निपातितः ॥ तादृशं श्वानमप श्नथिष्टन। अपश्नथयत। अपबाधध्वं। यथा श्वा राक्षसा वा सुतं सोमं न लिहंति तथा कुरुतेत्यर्थः ॥

पवित्रेष्ट्यां द्वितीयस्याज्यभागस्य यो धारयेत्येषानुवाक्या। सूत्रितं च। पावकवंतावाज्यभागावग्नी रक्षांसि सेधति यो धारया पावकया। आ० २. १२.। इति ॥

यो धार॑या पाव॒कया॑ परिप्र॒स्यंद॑ते सु॒तः। इंदु॒रश्वो॒ न कृत्व्यः॑ ॥२॥

यः। धार॑या। पा॒व॒कया॑। प॒रि॒ऽप्र॒स्यंद॑ते। सु॒तः। इंदुः॑। अश्वः॑। न। कृत्व्यः॑ ॥२॥

सुतोऽभिषुतः कृत्व्यः। कृत्वीति कर्मनाम। कर्मणि साधुर्य इंदुः सोमः पावकया पापानां शोधकया धारया परिप्रस्यंदते परितः प्रक्षरति। कथमिव। अश्वो नाश्वो यथा वेगेन प्रगच्छति तद्वत् ॥

तं दु॒रोष॑म॒भी नरः॒ सोमं॑ वि॒श्वाच्या॑ धि॒या। य॒ज्ञं हि॑न्वं॒त्यद्रि॑भिः ॥३॥

तं। दु॒रोषं॑। अ॒भि। नरः॑। सोमं॑। वि॒श्वाच्या॑। धि॒या। य॒ज्ञं। हि॒न्वं॒ति॒। अद्रि॑ऽभिः ॥३॥

नरः कर्मनेतार ऋत्विजो दुरोषं ॥ रोषतेर्हिंसार्थस्य रेफलोपे दीर्घाभाव ओषतेर्दाहार्थस्य वा खलि रूपमिति संदेहादनवग्रहः ॥ तं दुर्दहं दुर्वधं वा यज्ञं यष्टव्यं तं सोमं विश्वाच्या सर्वान्कामानंचित्र्या धिया बुद्ध्याद्रिभिर्ग्रावभिरभि हिन्वंति। अभिप्रेरयंति। अभिषुण्वंतीति यावत् ॥

पृष्ठ्यस्य षष्ठेऽहनि ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे सुतास इति तिस्रः। सूत्रितं च। दधिक्राव्णोऽकारिषमित्यनुष्टुप् सुतासो मधुमत्तमा इति च तिस्रः। आ० ८. ३.। इति ॥

सु॒तासो॒ मधु॑मत्तमाः॒ सोमा॒ इंद्रा॑य मं॒दिनः॑।
प॒वित्र॑वंतो अक्षरन्दे॒वान्ग॑च्छंतु वो॒ मदाः॑ ॥४॥

सु॒तासः॑। मधु॑मत्ऽतमाः। सोमाः॑। इंद्रा॑य। मं॒दिनः॑।
प॒वित्र॑ऽवंतः। अ॒क्ष॒र॒न्। दे॒वान्। ग॒च्छं॒तु। वः॒। मदाः॑ ॥४॥

मधुमत्तमा अतिशयेन माधुर्योपेताः अत एव मंदिनो मदकराः सुतासोऽभिषुताः सोमाः पवित्रवंतः पवित्रे वर्तमानाः संत इंद्रायेंद्रार्थमक्षरन्। पात्रेषु चरंति। अथ प्रत्यक्षकृतः। वो युष्माकं मदा मदहेतवो रसा देवानिंद्रादीन्गच्छंतु ॥

इंदु॒रिंद्रा॑य पवत॒ इति॑ दे॒वासो॑ अब्रुवन्।
वा॒चस्पति॑र्मखस्यते॒ विश्व॒स्येशा॑न॒ ओज॑सा ॥५॥

इंदुः॑। इंद्रा॑य। प॒व॒ते॒। इति॑। दे॒वासः॑। अ॒ब्रु॒व॒न्।
वा॒चः। पतिः॑। म॒ख॒स्य॒ते॒। विश्व॑स्य। ईशा॑नः। ओज॑सा ॥५॥

इंदुः सोम इंद्रायेंद्रार्थं पवते कलशे क्षरतीति देवासः स्तुतिकारिणः स्तोतारोऽब्रुवन्। वदंति। यदा स्तोतार एवं वदंति तदानीं वाचः स्तुतेः पतिः पालयिता। यद्वा। शब्दस्य स्वाम्यत्यंतं शब्दायमान इत्यर्थः। तादृशः सोमो मखस्यते। स्तुतिभिः पूजामिच्छति ॥ लालसायां सुगागमः ॥ कीदृशः। ओजसा बलेन विश्वस्य सर्वस्येशानः प्रभुः ॥ ॥१॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमः पती रयीणां सखेंद्रस्य दिवेदिवे॥६॥
सहस्रऽधारः। पवते। समुद्रः। वाचंऽईङ्खयः। सोमः। पतिः। रयीणां। सखा। इंद्रस्य। दिवेऽदिवे॥६॥

सहस्रधारो बहुविधधारोपेतः सोमः पवते। क्षरति। कीदृशः। समुद्रः। यस्मात्समुद्द्रवंति रसाः। सरःस्थानीयः वाचमीङ्खयः॥ ईखतेर्ण्यंतस्य सुप्युपपदे खच्प्रत्ययः॥ स्तुतीनां प्रेरयिता रयीणां धनानां पतिः प्रभुः। यद्वा। रयीणां हविषो दातॄणां यजमानानां पतिः पालयिता। दिवेदिवे प्रत्यहमिंद्रस्य सखा मित्रभूतः सोमः पवते॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे॥७॥
अयं। पूषा। रयिः। भगः। सोमः। पुनानः। अर्षति।
पतिः। विश्वस्य। भूमनः। वि। अख्यत्। रोदसी इति। उभे इति॥७॥

पूषा पोषकः सर्वेषां भगो भजनीयो रयिर्धनहेतुरयं सोमः पुनानः पवित्रेण पूयमानः सन्नर्षति। कलशमभिगच्छति। तथा विश्वस्य सर्वस्य भूमनो भूतजातस्य पतिः पालयिता सोम उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ व्यख्यत्। स्वतेजसा प्रकाशयति। अनेन लोकद्वयवर्तित्वं सूचितं॥

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इंदवः॥८॥
सं। ऊं इति। प्रियाः। अनूषत। गावः। मदाय। घृष्वयः।
सोमासः। कृण्वते। पथः। पवमानासः। इंदवः॥८॥

प्रियाः प्रियतमा घृष्वयोऽत्यंतं दीप्ताः। यद्वा। अहं प्रथमतः स्तौमि अहं पुरस्तात्स्तौमीति परस्परं स्पर्धमानाः। गावः स्तुतिलक्षणा वाचः सोमस्य मदार्थं समनूषत। संस्तुवंति। उः प्रसिद्धौ। यद्वा। गावो धेनवः सोमस्य मदाय शब्दायंते। ततः पवमानासः पूयमाना इंदवो दीप्ताः सोमासः सोमाः पथो मार्गान्कृण्वते। क्षरणार्थं कुर्वंति॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यं। यः पंच चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे॥९॥
यः। ओजिष्ठः। तं। आ। भर। पवमान। श्रवाय्यं। यः। पंच। चर्षणीः। अभि। रयिं। येन। वनामहे॥९॥

हे पवमान पूयमान सोम ओजिष्ठ ओजस्वितमो यस्त्वदीयो रसोऽस्ति तं श्रवाय्यं श्रवणीयं रसमा भर। अस्मभ्यमाहर। किंच यो रसः पंच चर्षणीः पंच जनान्निषादपंचमांश्चतुरो वर्णानभि तिष्ठति। अपि च येन रसेन वयं रयिं धनं च वनामहे संभजामहे। यद्वा। येन त्वां रयिं याचामहे तमा भर॥

सोमाः पवंत इंदवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥१०॥

सोमाः । पवंते । इंदवः । अस्मभ्यं । गातुवित्ऽतमाः ।
मित्राः । सुवानाः । अरेपसः । सुऽआध्यः । स्वःऽविदः ॥१०॥

गातुवित्तमा अतिशयेन मार्गस्य लंभका इंदवो दीप्ताः सोमाः पवंतेऽस्मभ्यमस्मदर्थं क्षरंत्यागच्छंति वा । कीदृशाः । मित्रा देवानां सखिभूताः सुवाना अभिषूयमाणा अरेपसः पापरहिताः अत एव स्वाध्यः शोभनध्यानाः स्वर्विदः सर्वज्ञाः सर्वप्रापका वा ॥ ॥२॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥११॥
सुस्वानासः । वि । अद्रिऽभिः । चितानाः । गोः । अधि । त्वचि ।
इषं । अस्मभ्यं । अभितः । सं । अस्वरन् । वसुऽविदः ॥११॥

गोरनडुहोऽधि त्वच्यधिषवणचर्मणि चिताना ज्ञायमाना अद्रिभिर्ग्रावभिर्विविधं सुष्वाणासः सूयमाना वसुविदो वसुनो लंभका एते सोमा अस्मभ्यमिषमन्नमभितः समस्वरन् । सम्यक् शब्दयंति । प्रयच्छंतीति यावत् ॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२॥
एते । पूताः । विपःऽचितः । सोमासः । दधिऽआशिरः ।
सूर्यासः । न । दर्शतासः । जिगत्नवः । ध्रुवाः । घृते ॥१२॥

पूताः पवित्रेण परिपूता विपश्चितो मेधाविनो दध्याशिरो दध्यामिश्रणा घृते वसतीवर्याख्य उदके जिगत्नवो गमनशीला ध्रुवास्तत्र स्थैर्येण वर्तमाना एते सोमासः सोमाः सूर्यासो न सूर्या इव दर्शतासः पात्रेषु सर्वैर्दर्शनीया भवंति ॥

प्र सुन्वानस्यांधसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१३॥
प्र । सुन्वानस्य । अंधसः । मर्तः । न । वृत । तत् । वचः ।
अप । श्वानं । अराधसं । हत । मखं । न । भृगवः ॥१३॥

सुन्वानस्याभिषूयमाणस्यांधसोऽदनीयस्य सोमस्य तत् प्रसिद्धं वचो वचनं घोषं मर्तो मारकः कर्मविघ्नकारी श्वा न प्र वृत । न भजतां । न शृणोत्विति यावत् । तथा हे स्तोतारः अराधसं संसाधककर्मरहितं तं श्वानमप हत । तत्र दृष्टांतः । मखं न यथा पुरापराद्धं मखमेतन्नामानं भृगवोऽपहतवंतः तथाप हतेत्यर्थः ॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदं ॥१४॥
आ । जामिः । अत्के । अव्यत । भुजे । न । पुत्रः । ओण्योः ।
सरत् । जारः । न । योषणां । वरः । न । योनिं । आऽसदं ॥१४॥

आमिर्बंधुभूतो देवानां सोमोऽत्क आच्छादके पवित्र आव्यत। आवृणोति। संबद्धो भवति। तत्र दृष्टांतः। भुजे न यथौण्यो रक्षकयोर्मातापित्रोर्भुजे पुत्र आवृणोति तद्वत्। ततः सोऽयं सोमो योनिं स्वस्थानभूतं कलशमासदमासत्तुं सरत्। सरति। तत्र दृष्टांतद्वयं। जारो न यथा जारो योषणामसतीं स्त्रियं प्राप्तुं सरति। यथा वा वरः कन्यां प्राप्तुं गच्छति तद्वत्॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तंभ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदं ॥१५॥
सः। वीरः। दक्षऽसाधनः। वि। यः। तस्तंभ। रोदसी इति।
हरिः। पवित्रे। अव्यत। वेधाः। न। योनिं। आऽसदं ॥१५॥

दक्षसाधनो बलसाधनः स सोमो वीरः समर्थो भवति। यः सोमो रोदसी द्यावापृथिव्यौ वि तस्तंभ स्वतेजसा व्यस्तभ्नात्। आच्छादयतीत्यर्थः। किंच हरिर्हरितवर्णः सोमो वेधा न विधाता यजमानो यथा स्वगृहमासीदति तद्वद्योनिं स्वस्थानं कलशमासदमासत्तुं पवित्रेऽव्यत। आवृणोति। संबद्धो भवति॥

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिंद्रस्याभ्येति निष्कृतं ॥१६॥
अव्यः। वारेभिः। पवते। सोमः। गव्ये। अधि। त्वचि।
कनिक्रदत्। वृषा। हरिः। इंद्रस्य। अभि। एति। निःऽकृतं ॥१६॥

अयं सोमोऽव्योऽवेर्वारेभिर्वालैः पवित्रैः तेभ्यः पवते। कलशं प्रति चरति। किंच गव्य आनडुहेऽधि त्वचि चर्मणि कनिक्रदच्छब्दायमानो वृषा कामानां वर्षको हरिर्हरितवर्णः सोम इंद्रस्य स्वभूतं निष्कृतं संस्कृतं स्थानमभ्येति। अभिगच्छति॥ ॥३॥

कृण्वा शिशुरित्यष्टर्चं षष्ठं सूक्तं। आप्त्यस्य त्रितस्यार्षं। इदमुत्तराणि चत्वारि सूक्तान्यौष्णिहानि। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रम्यते। कृण्वाष्टौ त्रित औष्णिहं वा इति॥ गतो विनियोगः॥

कृण्वा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिं। विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥
कृण्वा। शिशुः। महीनां। हिन्वन्। ऋतस्य। दीधितिं। विश्वा। परि। प्रिया।
भुवत्। अध। द्विता ॥१॥

कृण्वा॥ करोतेः शानचि बहुलं छंदसीति विकरणस्य लुक्। सुपां सुलुगिति सुप आकारादेशः॥ यज्ञं कुर्वाणो महीनां महतीनां मंहनीयानां वापां शिशुः पुत्रस्थानीयः सोम ऋतस्य यज्ञस्य दीधितिं प्रकाशकं धारकं वा स्वीयं रसं हिन्वन् प्रेरयन्विश्वा सर्वाणि प्रिया प्रियाणि हवींषि परि भुवत्। परिभवति। व्याप्नोति। अधापि च द्विता द्विधा भवति। दिवि च पृथिव्यां च वर्तत इत्यर्थः॥

उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद्गुहा पदं। यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियं ॥२॥
उप। त्रितस्य। पाष्योः। अभक्त। यत्। गुहा। पदं। यज्ञस्य। सप्त। धामऽभिः।
अध। प्रियं ॥२॥

त्रितस्य मम यज्ञे गुहा गुहायां हविर्धाने वर्तमानयोः पाष्योः पाषाणवद्दृढयोरधिषवणफलकयोः पदं

स्थानं सोमो यद्यदोपाभक्त समभजत अथानंतरं यज्ञस्य धामभिर्धारकैः सप्त सप्तभिश्छंदोभिर्गायत्र्यादिभिः प्रियं प्रीणयितारं सोममभिष्टुवंत्यृत्विजः । अपि वा । सप्त सर्पणशीलैर्वसतीवर्यादिभिरुदकैः सोममभिषुण्वंति ॥

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिं । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥
त्रीणि । त्रितस्य । धारया । पृष्ठेषु । आ । ईरय । रयिं । मिमीते । अस्य । योजना ।
वि । सुऽक्रतुः ॥३॥

हे सोम त्रितस्य मम यज्ञस्य स्वभूतानि त्रीणि सवनानि धारयात्मीयया विधारय । किंच पृष्ठेषु सामसु रयिं दातारमिंद्रमेरय । आगमय । सुक्रतुः सुप्रज्ञः स्तोतास्येंद्रस्य योजना योजनानि योजनकारीणि स्तोत्राणि वि मिमीते । करोति । यस्मादेवं तस्मादिंद्रं सामसु प्रेरयेत्यर्थः ॥

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥४॥
जज्ञानं । सप्त । मातरः । वेधां । अशासत । श्रिये । अयं । ध्रुवः । रयीणां । चिकेत । यत् ॥४॥

जज्ञानं प्रादुर्भूतं वेधां कर्मणो विधातारं सोमं सप्त सप्तसंख्याका मातरो गंगाद्या नद्यः सप्त छंदांसि वा श्रिये यजमानानामैश्वर्यार्थमशासत । अनुशासंति । अनुशासनं कुर्वंति ॥ शास्तेर्लङि व्यत्ययेनात्मनेपदं ॥ यद्यस्माद्ध्रुवोऽयं सोमो रयीणां धनानि चिकेत जानाति तस्मादस्यानुशासने कृते यजमानानां धनादिसमृद्धिर्भवति ॥

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवंति रंतयो जुषंत यत् ॥५॥
अस्य । व्रते । सऽजोषसः । विश्वे । देवासः । अद्रुहः । स्पार्हाः । भवंति । रंतयः । जुषंत । यत् ॥५॥

अद्रुहो द्रोहवर्जिता विश्वे सर्वे देवासो देवा अस्य सोमस्य व्रते कर्मणि सजोषसः संगताः संतः स्पार्हाः स्पृहणीया भवंति । रंतयो रमणशीला देवाः सुतमेनं सोमं यद्यदि जुषंत सेवंते तर्हि स्पृहणीया भवंति ॥ ॥४॥

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहं ॥६॥
यं । ईमिति । गर्भं । ऋतऽवृधः । दृशे । चारुं । अजीजनन् । कविं । मंहिष्ठं । अध्वरे ।
पुरुऽस्पृहं ॥६॥

ऋतावृधो यज्ञस्य वर्धयित्र्यो वसतीवर्याख्या आपो गर्भं गर्भस्थानीयमीमेनं यं सोममध्वरे यज्ञे दृशे दर्शनायाजीजनन् उदपादयन् । कीदृशं । चारुं सर्वेषां कल्याणरूपं कविं क्रांतप्रज्ञं मंहिष्ठं पूज्यतमं दातृतमं वा अत एव पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं सोमं देवाः सेवंत इति पूर्वेण समन्वयः ॥

समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदंजते ॥७॥
समीचीने इति संऽईचीने । अभि । त्मना । यह्वी इति । ऋतस्य । मातरा । तन्वानाः ।
यज्ञं । आनुषक् । यत् । अंजते ॥७॥

स सोमः समीचीने परस्परं संगते यह्वी महत्यावृतस्य यज्ञस्य मातरा निर्मात्र्यौ द्यावापृथिव्यौ त्मनात्मना स्वयमेव तदाभिगच्छति । यद्यदा यज्ञं तन्वाना अध्वर्यव आनुषगनुषक्तं वसतीवरीभिरंजते सोमं मिश्रयंति तदा स्वयमभिगच्छति ॥

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः। हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥८॥
क्रत्वा। शुक्रेभिः। अक्षऽभिः। ऋणोः। अप। व्रजं। दिवः। हिन्वन्। ऋतस्य। दीधितिं।
प्र। अध्वरे ॥८॥

हे सोम त्वं क्रत्वा कर्मणा ज्ञानेन वा शुक्रेभिः शुक्रैर्दीप्यमानैरक्षभिरक्षैरिंद्रियैरिवाशुवानैः स्वतेजोभिर्व्रजमंधकारसमूहं दिवोऽंतरिक्षादपर्णोः। अपगमय। विनाशय ॥ ऋणु गतौ तानादिकः ॥ किं कुर्वन्। अध्वरे हिंसारहिते यज्ञ ऋतस्य यज्ञस्य दीधितिं धारकं स्वीयं रसं प्र हिन्वन् प्रेरयन्। अनेन लोकद्वयवर्तित्वमभिहितं ॥ ॥५॥

प्र पुनानायेति षडृचं सप्तमं सूक्तमाप्त्यस्य त्रितस्यार्षं। पूर्ववच्छंदोदेवते। तथा चानुक्रम्यते। प्र पुनानाय षड् त्रित आप्त्य इति ॥ गतो विनियोगः ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतं। भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥१॥
प्र। पुनानाय। वेधसे। सोमाय। वचः। उत्ऽयतं। भृतिं। न। भर। मतिऽभिः।
जुजोषते ॥१॥

त्रितो नामर्षिः स्वात्मानं प्रत्याह। पुनानाय पवित्रेण पूयमानाय वेधसे कर्मणो विधात्रे मतिभिः स्तुतिभिर्जुजोषते प्रीयमाणाय यद्वा मतिभिः स्तोतृभिः सह जुजोषते प्रीणयित्रे सोमायोद्यतमुद्युक्तं वचः प्र भर। प्रकर्षेण संपादय। अभिष्टुहीत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः। भृतिं न यथा भृतका भृतिं संपादयंति तद्वत् ॥

परि वाराण्यव्यया गोभिरंजानो अर्षति। त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥२॥
परि। वाराणि। अव्यया। गोभिः। अंजानः। अर्षति। त्री। सधऽस्था। पुनानः।
कृणुते। हरिः ॥२॥

गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिरंजानोऽज्यमानः सोमोऽव्ययाविमयानि वाराणि वालानि पवित्राणि पर्यर्षति। परिगच्छति। अपि च हरिर्हरितवर्णः सोमः पुनानः पूयमानः संस्त्री त्रीणि सधस्था। सह तिष्ठंत्यत्रेति सधस्थं स्थानं। द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदात्मकानि त्रीणि स्थानानि कृणुते। करोति ॥

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति। अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥३॥
परि। कोशं। मधुऽश्चुतं। अव्यये। वारे। अर्षति। अभि। वाणीः। ऋषीणां।
सप्त। नूषत ॥३॥

स सोमोऽव्ययेऽविमये वारे वाले पवित्रे मधुश्चुतं मधुररसस्य च्यावयितारं द्रोणकलशं प्रत्यात्मीयं रसं पर्यर्षति। गमयति। तमिमं सोममृषीणां सप्त वाणीश्छंदांस्यभि नूषत। अभिष्टुवंति ॥ नू स्तवने कुटादिः ॥

परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः। सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥४॥
परि। नेता। मतीनां। विश्वऽदेवः। अदाभ्यः। सोमः। पुनानः। चम्वोः। विशत्।
हरिः ॥४॥

हरिर्हरितवर्णः स सोमः पुनानः पूयमानः संश्चम्वोरधिषवणफलकयोः परि विशत्। परिविशति।

कीदृशः । मतीनां स्तुतीनां नेता यद्वा मतीनां स्तोतॄणां स्वकर्मण्युपनेता विश्वदेवः सर्वदेवः । सोमेऽभिषूयमाणे सतींद्रादयः सर्वे देवाः सोमं प्रत्यागच्छंति खलु । तस्मात्सर्वदेवोपेतः अत एवादाभ्योऽहिंसितः कैश्चिदपि ॥

परि दैवीरनु स्वधा इंद्रेण याहि सरथं । पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥५॥

परि । दैवीः । अनु । स्वधाः । इंद्रेण । याहि । सऽरथं । पुनानः । वाघत् । वाघत्ऽभिः । अमर्त्यः ॥५॥

हे सोम त्वमिंद्रेण सरथं समानं रथमारुह्य दैवीर्देवानां संबंधीनि स्वधा बलान्यनु देवसेनाः परि याहि । परिगच्छ । कीदृशः । पुनानः पूयमानो वाघद्भिः । वाघत इत्यृत्विङ्नाम । हविषां प्रेरकैर्ऋत्विग्भिर्वाघद्वूह्यमानोऽमर्त्यो मनुष्यधर्मरहितः । यद्वा । वाघद्भिर्ऋत्विग्भिः पुनानः पूयमानो वाघत् स्तोतॄणां यष्टॄणां धनादीनि प्रापयन् परिगच्छ ॥

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥६॥

परि । सप्तिः । न । वाजऽयुः । देवः । देवेभ्यः । सुतः । विऽआनशिः । पवमानः । वि । धावति ॥६॥

सप्तिर्नाश्व इव वाजयुर्युद्धमिच्छन्देवो दीप्यमानो देवेभ्यो देवार्थं सुतोऽभिषुतो व्यानशिः पात्रेषु व्यापी पवमानः पवित्रेण पूयमानः एतादृशः सोमः परि धावति । परितः पात्राण्यभिगच्छति ॥ व्यानशिः । अशू व्याप्तौ । आदृगमहनेत्यत्रोत्सर्गश्छंदसि सदादिभ्यो दर्शनादिति किप्रत्ययः । अश्नोतेश्चेति नुडागमः ॥ ॥६॥ ॥६॥

सप्तमेऽनुवाक एकादश सूक्तानि । तत्र सखाय इति षडृचं प्रथमं सूक्तं । काण्वौ पर्वतनारदावृषी । अथवा कश्यपस्य पुत्र्यौ शिखंडिन्याख्ये द्वे अप्सरसावस्य सूक्तस्य द्रष्ट्र्यौ । पूर्ववच्छंदोदेवते । तथा चानुक्रम्यते । सखायः पर्वतनारदौ काश्यप्यौ द्वे शिखंडिन्यौ वाप्सरसाविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१॥

सखायः । आ । नि । सीदत । पुनानाय । प्र । गायत । शिशुं । न । यज्ञैः । परि । भूषत । श्रिये ॥१॥

हे सखायः सखिभूताः स्तोतार ऋत्विजः आ नि षीदत । स्तोतुमुपविशत । अथ पुनानाय पूयमानाय सोमाय प्र गायत । प्रकर्षेण गायत । तमभिष्टुत । ततोऽभिषुतं सोमं यज्ञैर्यजनीयैर्हविर्भिर्मिश्रणैश्च श्रिये शोभनार्थं परि भूषत । परितोऽलंकुरुत । तत्र दृष्टांतः । शिशुं न यथा शिशुं बालं पुत्रं पितर आभरणैरलंकुर्वंति तद्वत् ॥

प्रवर्ग्येऽभिष्टवे समी वत्समित्येका । सूत्रितं च । समी वत्सं न मातृभिः सं वत्स इव मातृभिः । आ० ४. ७. । इति ॥

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनं । देवाव्यं मदमभि द्विशवसं ॥२॥

सं । ईं इति । वत्सं । न । मातृऽभिः । सृजत । गयऽसाधनं । देवऽअव्यं । मदं । अभि । द्विऽशवसं ॥२॥

हे ऋत्विजः गयसाधनं गृहस्य साधनममीमेनं सोमं मातृभिर्मातृभूताभिर्वसतीवरीभिः सं सृजत । संमिश्रयत । कथमिव । वत्सं न यथा वत्सं मातृभिर्गोभिः संयोजयंति तद्वत् । कीदृशं । देवाव्यं देवानां रक्षकं मदं मदनहेतुं द्विशवसं द्विगुणवेगमतिशयितबलं वा । यद्वा । द्वयोर्लोकयोस्तत्र स्थिता देवमनुष्या इत्यर्थः । तेषां हविर्धनप्रदानेन वर्धयितारं । तं सोममभि सं सृजत ॥

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥३॥

पुनात । दक्षऽसाधनं । यथा । शर्धाय । वीतये । यथा । मित्राय । वरुणाय । शंऽतमः ॥३॥

दक्षसाधनं बलस्य साधनं धनादिवृद्धेर्वा साधकं सोमं पुनात । पवित्रेण पुनीत ॥ पूञ् पवने क्र्यादिः । तस्माल्लोटि तप्तनप्तनथनाश्चेति तस्य तबादेशः । पित्त्वाद्दीत्वाभावः ॥ असौ सोमः शर्धाय वेगार्थं वीतये देवानां पानार्थं यथा भवति यथा वा मित्राय वरुणाय च शंतमोऽतिशयेन सुखं करोति तथा पुनीतेत्यर्थः ॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥४॥

अस्मभ्यं । त्वा । वसुऽविदं । अभि । वाणीः । अनूषत । गोभिः । ते । वर्णं । अभि । वासयामसि ॥४॥

हे सोम वसुविदं धनस्य दातारं त्वा त्वामस्मभ्यं धनादिप्रदानार्थं वाणीरस्मदीया वाचोऽभ्यनूषत । अभिष्टुवंति ॥ णू स्तवने ॥ वयं ते तव वर्णमावरकं रसं गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिरभि वासयामसि । अभिवासयामः । अभित आच्छादयामः ॥

स नो मदानां पत इंदो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५॥

सः । नः । मदानां । पते । इंदो इति । देवऽप्सराः । असि । सखाऽइव । सख्ये । गातुवित्ऽतमः । भव ॥५॥

नोऽस्मदादीनां मदानां मदकानां पते स्वामिन् हे इंदो सोम स त्वं देवप्सरा असि । प्सर इति रूपनाम । दीप्तरूपो भवसि । स त्वं सखेव यथा सखा सुहृत् सख्ये मित्राय सत्यं मार्गं ज्ञापयति तद्वदस्माकमपि गातुवित्तमोऽत्यंतं मार्गस्य लंभको भव । ज्ञापको भव ॥

सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणं । अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥६॥

सनेमि । कृधि । अस्मत् । आ । रक्षसं । कं । चित् । अत्रिणं । अप । अदेवं । द्वयुं । अंहः । युयोधि । नः ॥६॥

हे सोम अस्मदस्मासु सनेमि । पुराणनामैतत् । पुराणं सख्यं कृधि । कुरु । आ अपि चात्रिणमदनशीलं कं चिद्रक्षसमपयुध्यस्व । कीदृशं । अदेवमदेवनशीलं द्वयुं द्वयवंतं सत्यानृतयुक्तं बाह्याभ्यंतरमायायुक्तं वा । किंच नोऽस्माकमंहः पापं चाप युयोधि । संप्रहर ॥ युध्यतेर्बहुलं छंदसीति शपः श्लुः । वा छंदसीति हेर्ङित्त्वाभावाद्गुणः । धलोपश्छांदसः । यौतेर्वा श्लौ पूर्ववद्रूपं ॥ ॥७॥

तं व इति षडृचं द्वितीयं सूक्तं । पर्वतनारदयोरार्षं । अन्यत्पूर्ववत् । तं व इत्यनुक्रांतं ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयंत गूर्तिभिः ॥१॥
तं । वः । सखायः । मदाय । पुनानं । अभि । गायत । शिशुं । न । यज्ञैः । स्वदयंत । गूर्तिऽभिः ॥१॥

हे सखाय ऋत्विजः वो यूयं मदाय देवानां मदार्थं पुनानं पूयमानं तं सोममभि गायत । अभिष्टुत । तमिमं सोमं शिशुं न शिशुमिवालंकारैः क्षीरादिभिश्च यथा स्वादूकुर्वंति तद्वद्यज्ञैर्हविर्भिर्मिश्रणैर्गूर्तिभिः स्तुतिभिश्च स्वदयंत । स्वादूकुर्वंति ॥

प्रवर्ग्येऽभिष्टवे सं वत्स इव मातृभिरित्येका । सूत्रं च समी वत्समित्यनया सहोक्तं ॥

सं वत्स इव मातृभिरिंदुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२॥
सं । वत्सःऽइव । मातृऽभिः । इंदुः । हिन्वानः । अज्यते । देवऽअवीः । मदः । मतिऽभिः । परिऽकृतः ॥२॥

हिन्वानः प्रेर्यमाण इंदुः सोमो वसतीवरीभिः समज्यते । सम्यक् सिक्तो भवति । तत्र दृष्टांतः । वत्स इव वत्सो यथा मातृभिर्गोभिः समक्तो भवति तद्वत् । कीदृशः । देवावीर्देवानां रक्षको मदो मदकरो मतिभिः स्तुतिभिः परिष्कृतोऽलंकृतः ॥ भूषणार्थे संपर्युपेभ्य इति सुडागमः । परिनिविभ्यः । पा० ८. ३. ७०. । इति सुटः षत्वं ॥

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥३॥
अयं । दक्षाय । साधनः । अयं । शर्धाय । वीतये । अयं । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमः । सुतः ॥३॥

अयं सोमो दक्षाय बलाय वर्धनाय वा साधनः साधयिता भवति । तथायं सोमः शर्धाय वेगार्थं वीतये देवानां भक्षणार्थं च भवति । सुतोऽभिषुतोऽयं सोमो देवेभ्य इंद्रादिभ्यो मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्ययुक्तो भवति । अत्यंतं मदकरो भवतीति वा ॥

गोमन्न इंदो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरं ॥४॥
गोऽमत् । नः । इंदो इति । अश्वऽवत् । सुतः । सुऽदक्ष । धन्व । शुचिं । ते । वर्णं । अधि । गोषु । दीधरं ॥४॥

हे सुदक्ष सुबल हे इंदो सोम सुतोऽभिषुतस्त्वं नोऽस्माकं गोमद्बहुसाधनगोयुक्तमश्ववदश्वयुक्तं धनं धन्व । गमय ॥ धविर्गत्यर्थो भूवादिः ॥ ततोऽहं शुचिं पूतं दीप्यमानं वा ते तव वर्णं रसं गोषु गव्येषु क्षीरादिष्वधि दीधरं । अधिधारयामि । मिश्रयामि ॥

स नो हरीणां पत इंदो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥५॥
सः । नः । हरीणां । पते । इंदो इति । देवप्सरःऽतमः । सखाऽइव । सख्ये । नर्यः । रुचे । भव ॥५॥

हे हरीणां पते नोऽस्मदीयानां हरितवर्णानां पशूनां स्वामिन् हे इंदो सोम देवप्सरस्तमोऽतिशयेन

दीप्तरूपोपेतः स त्वं नर्यः कर्मनेतृभ्य ऋत्विग्भ्यो हितः स त्वं नोऽस्माकं रुचे भव। दीप्तिकरो भव। किमिव। सखेव यथा सखा सख्ये मित्राय दीप्तिकरो भवति तद्वत् ॥

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणं। साह्वाँ इंदो परि बाधो अप द्वयुं ॥६॥

सनेमि। त्वं। अस्मत्। आ। अदेवं। कं। चित्। अत्रिणं। सह्वान्। इंदो इति। परि। बाधः। अप। द्वयुं ॥६॥

हे सोम त्वं सनेमि पुराणं सख्यमस्मदस्मासु कुरु। आ अपि चादेवमदेवनशीलं कं चिदप्यत्रिणमदनशीलं राक्षसमस्मदस्मत्तोऽपगमय। किंच हे इंदो साह्वाञ्छत्रूनभिभवन् बाधो बाधमानान्परि जहि। तथा द्वयुं द्वयवंतं सत्यानृतयुक्तं बाह्याभ्यंतरमायाद्वयोपेतं वा राक्षसमस्मत्तोऽपगमय ॥ ॥८॥

इंद्रमच्छेति चतुर्दशर्चं तृतीयं सूक्तमौष्णिहं पवमानसोमदेवताकं। प्रथमस्य तृचस्य चक्षुराख्यपुत्रोऽग्निर्ऋषिः। द्वितीयस्य मनुपुत्रश्चक्षुर्नामा। अप्सुनाम्नः पुत्रो मनुस्तृतीयस्य। एवं नवर्चो गताः। शिष्टानामपि पंचानां चाक्षुषोऽग्निः। तथा चानुक्रम्यते। इंद्रमच्छ षळूनाग्निश्चाक्षुषश्चक्षुर्मानवो मनुराप्सव इति तृचाः पंचाग्निरिति ॥ गतो विनियोगः ॥

इंद्रमच्छ सुता इमे वृषणं यंतु हरयः। श्रुष्टी जातास इंदवः स्वर्विदः ॥१॥

इंद्रं। अच्छ। सुताः। इमे। वृषणं। यंतु। हरयः। श्रुष्टी। जातासः। इंदवः। स्वःऽविदः ॥१॥

श्रुष्टी। श्रुष्टीति क्षिप्रनाम। क्षिप्रं जातासो जाता इंदवः पात्रेषु क्षरंतः स्वर्विदः सर्वज्ञा हरयो हरितवर्णाः सुता अभिषुता इमे सोमा वृषणं कामानां सेक्तारमिंद्रमच्छ यंतु। अभिगच्छंतु ॥

अयं भराय सानसिरिंद्राय पवते सुतः। सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

अयं। भराय। सानसिः। इंद्राय। पवते। सुतः। सोमः। जैत्रस्य। चेतति। यथा। विदे ॥२॥

भराय संग्रामाय तदर्थं सानसिर्भजनीयः सुतोऽभिषुतोऽयं सोम इंद्रायेंद्रार्थं पवते। ग्रहादिषु क्षरति। ततः सोमो जैत्रस्य ॥ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानसंज्ञा चतुर्थ्यर्थे बहुलमिति षष्ठी ॥ जयशीलमिंद्रं चेतति। जानाति। यथेंद्रो विदे लोकैर्ज्ञायते तथा जानाति ॥

अस्येदिंद्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिं। वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

अस्य। इत्। इंद्रः। मदेषु। आ। ग्राभं। गृभ्णीत। सानसिं। वज्रं। च। वृषणं। भरत्। सं। अप्सुऽजित् ॥३॥

आ अनंतरमिंद्रोऽस्येदस्य सोमस्यैव मदेषु संजातेषु सानसिं सर्वैः संभजनीयं ग्राभं ग्राहं ग्रहीतव्यं धनुर्गृभ्णीत। गृह्णाति ॥ हृग्रहोर्भ इति भत्वं ॥ किंचाप्सुजिदुदकार्थं वृत्रस्य जेता। यद्वा। आप इत्यंतरिक्षनाम। अंतरिक्षेऽहिनामकस्य जेता। इंद्रो वृषणं वर्षितारं वज्रं च सं भरत्। संबिभर्तु ॥ बिभर्तेर्लेट्यडागमः ॥

प्र धन्वा सोम जागृविरिंद्रायेंदो परि स्रव। द्युमंतं शुष्ममा भरा स्वर्विदं ॥४॥

प्र। धन्व। सोम। जागृविः। इंद्राय। इंदो इति। परि। स्रव। द्युऽमंतं। शुष्मं। आ। भर। स्वःऽविदं ॥४॥

हे सोम जागृविर्जागरणशीलस्त्वं प्र धन्व । प्रचर । हे इंदो सोम इंद्राय परि स्रव । परितः पात्रेषु चर । किंच द्युमंतं दीप्तियुक्तं स्वर्विदं सर्वस्य लंभकं शुष्मं शत्रूणां शोषकं बलमा भर । आहर ॥

इंद्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः । सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥५॥

इंद्राय । वृषणं । मदं । पवस्व । विश्वऽदर्शतः । सहस्रऽयामा । पथिऽकृत् ।
विऽचक्षणः ॥५॥

हे सोम त्वं वृषणं वर्षितारं मदं मदहेतुं रसमिंद्रायेंद्रार्थं पवस्व । चर । कीदृशः । विश्वदर्शतः सर्वैर्दर्शनीयः सहस्रयामा बहुमार्गः पथिकृद्यजमानानां सन्मार्गकरणशीलो विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा ॥ ॥९॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥६॥

अस्मभ्यं । गातुवित्ऽतमः । देवेभ्यः । मधुमत्ऽतमः । सहस्रं । याहि । पथिऽभिः ।
कनिक्रदत् ॥६॥

हे सोम अस्मभ्यं गातुवित्तमोऽत्यंतं मार्गस्य लंभकः तथा देवेभ्यश्च मधुमत्तमोऽत्यंतं स्वादुकारी त्वं कनिक्रदच्छब्दं कुर्वन् सहस्रं पथिभिर्बहुभिर्मार्गैर्याहि । कलशमागच्छ ॥

पवस्व देववीतय इंदो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्सोम नः सदः ॥७॥

पवस्व । देवऽवीतये । इंदो इति । धाराभिः । ओजसा । आ । कलशं । मधुऽमान् ।
सोम । नः । सदः ॥७॥

हे इंदो सोम देववीतये देवानां भक्षणायौजसा बलेन धाराभिरात्मीयाभिः पवस्व । चर । हे सोम मधुमान्मदकररसवांस्त्वं नोऽस्मदीयं कलशं द्रोणाभिधानमा सदः ॥ सदेर्लुङि रूपं ॥ आसीद ॥

तव द्रप्सा उदप्रुत इंद्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥८॥

तव । द्रप्साः । उदऽप्रुतः । इंद्रं । मदाय । ववृधुः । त्वां । देवासः । अमृताय । कं ।
पपुः ॥८॥

उदप्रुतो वसतीवर्याख्यमुदकं प्रति गच्छंतः । यद्वा । उदकस्य निर्गमयितारः । तव स्वभूता द्रप्सा द्रुतगामिनो रसा मदाय मदार्थमिंद्रं वावृधुः । वर्धयंति । ततो देवासो देवा इंद्रादयः कं सुखकरं त्वाममृतायामरणार्थं पपुः । पिबंति ॥

आ नः सुतास इंदवः पुनाना धावता रयिं । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥९॥

आ । नः । सुतासः । इंदवः । पुनानाः । धावत । रयिं । वृष्टिऽद्यावः । रीतिऽआपः ।
स्वःऽविदः ॥९॥

हे सुतासोऽभिषूयमाणा हे इंदवो दीप्ताः पात्रेषु चरंतो वा हे रीत्यापः यैः पृथिवीं प्रति स्रवणशीला आपः कृताः तादृशा हे सोमाः पुनानाः पूयमाना यूयं नोऽस्मभ्यं रयिमा धावत । आगमयत । कीदृशाः । वृष्टिद्यावो वृष्टिमभि द्यौर्यैः क्रियते वृष्ट्यभिमुखद्युलोकवंतः स्वर्विदः सर्वस्य लंभकाः ॥

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति। अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥

सोमः। पुनानः। ऊर्मिणा। अव्यः। वारं। वि। धावति। अग्रे। वाचः। पवमानः।
कनिक्रदत् ॥१०॥

पुनानः पूयमानः सोम ऊर्मिणा स्वीयया धारयाव्योऽवेर्वारं वालं पवित्रं वि धावति। विविधं गच्छति। कीदृशः सोमः। पवमानः पूतो वाचः स्तोत्रस्याग्रे कनिक्रदत् पुनःपुनः शब्दं कुर्वन्वि धावति॥ ॥१०॥

धीभिर्हिन्वंति वाजिनं वने क्रीळंतमत्यविं। अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥११॥

धीभिः। हिन्वंति। वाजिनं। वने। क्रीळंतं। अतिऽअविं। अभि। त्रिऽपृष्ठं। मतयः।
सं। अस्वरन् ॥११॥

वाजिनं बलवंतं वने वननीये वसतीवर्याख्य उदके क्रीळंतं संक्रीडमानमत्यविं। अविशब्देन तद्रोमकृतं पवित्रमभिधीयते। अतिक्रांतपवित्रं सोममृत्विजो धीभिः स्तुतिभिर्हिन्वंति। वर्धयंति। यद्वा। धीभिः॥ वर्णलोपश्छांदसः॥ धीतिभिरंगुलीभिर्हिन्वंति। प्रेरयंति॥ हि गतौ वृद्धौ च स्वादिः॥ किंच त्रिपृष्ठं। त्रीणि पवित्राणि द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदाख्यानि पात्राणि स्पृशतीति त्रीणि सवनानि वा स्पृशतीति स तथोक्तः। तं सोमं मतयः स्तुतयोऽभि समस्वरन्। अभितः संस्तुवंति॥

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः। पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥१२॥

असर्जि। कलशान्। अभि। मीळ्हे। सप्तिः। न। वाजऽयुः। पुनानः। वाचं। जनयन्।
असिस्यदत् ॥१२॥

वाजयुर्यजमानानामन्नमिच्छन् स सोमः कलशानभिलक्ष्य कलशेष्वसर्जि। सृज्यते। तत्र दृष्टांतः। सप्तिर्न यथाश्वो मीळ्हे। संग्रामनामैतत्। संग्रामे सृज्यते तद्वत्। ततः पुनानः पूयमानः सोमो वाचं शब्दं जनयन्नुत्पादयन्नसिष्यदत्। पात्रेषु स्यंदते॥

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या। अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३॥

पवते। हर्यतः। हरिः। अति। ह्वरांसि। रंह्या। अभिऽअर्षन्। स्तोतृऽभ्यः।
वीरऽवत्। यशः ॥१३॥

हर्यतः स्पृहणीयो हरिर्हरितवर्णः सोमो रंह्या॥ तृतीयाया आकारः॥ साधुवेगेन ह्वरांसि कुटिलान्यनृजूनि पवित्राण्यति पवते। अतीत्य गच्छति। किं कुर्वन्। स्तोतृभ्यो वीरवत् पुत्रयुक्तं यशोऽभ्यर्षन्नभिगमयन् पवते॥

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत। रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४॥

अया। पवस्व। देवऽयुः। मधोः। धाराः। असृक्षत। रेभन्। पवित्रं। परि। एषि।
विश्वतः ॥१४॥

हे सोम देवयुर्देवान्कामयमानस्त्वमयानया धारया पवस्व। चर। ततो मधोर्मदकरस्य तव धारा आत्मीया असृक्षत। सृज्यंते। अनंतरं रेभञ्छब्दायमानः पवित्रं विश्वतः पर्येषि। सर्वतः परिगच्छसि॥ ॥११॥

परीत इति षड्विंशत्यृचं चतुर्थं सूक्तं। त्वं सोमासि। अ॰ ९. ६७.। इत्यनुक्ता भरद्वाजकश्यपाद्याः सप्तर्षयः। आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती। अयमेकः प्रगाथः। परि सुवान इत्येषा तृतीयैकविंशत्यक्षरा भुरिग्विराड् द्विपदा। नृभिर्येमान इति षोडशी विंशत्यक्षरा द्विपदा विराट्। चतुर्थ्यादिद्वौ प्रगाथौ। दशम्यादित्रयः सप्तदश्यादिपंच प्रगाथाः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रम्यते। परीतः षड्विंशतिः सप्तर्षयः प्रागाथं तृतीयाषोळश्यौ द्विपदे अष्टम्याद्ये बृहत्याविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

परीतो षिंचता सुतं सोमो य उ॑त्तमं हविः।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१ंतरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥
परि। इतः। सिंचत। सुतं। सोमः। यः। उत्ऽतमं। हविः।
दधन्वान्। यः। नर्यः। अपऽसु। अंतः। आ। सुसाव। सोमं। अद्रिऽभिः ॥१॥

हे ऋत्विजः सुतमभिषुतं सोममित अस्मात्कर्मण ऊर्ध्वं अथवास्मात्प्रदेशादूर्ध्वं परि षिंचत वसतीवरीभिः॥ इतो षिंचतेत्यत्र संहितायां छंदसीति रोत्वं। आदेशप्रत्यययोरिति षत्वं॥ यः सोमो देवानामुत्तमं प्रशस्यं हविर्भवति आ अपि च नर्यो मनुष्यहितो यश्च सोमोऽप्सु वसतीवरीष्वंतरिचे वांतर्दधन्वान्गच्छन्भवति तं सोममद्रिभिर्ग्रावभिरध्वर्युः सुषाव। अभिषुतं चकार। तं परि षिंचतेति समन्वयः॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अंधसा श्रीणंतो गोभिरुत्तरं ॥२॥
नूनं। पुनानः। अविऽभिः। परि। स्रव। अदब्धः। सुरभिंऽतरः।
सुते। चित्। त्वा। अपऽसु। मदामः। अंधसा। श्रीणंतः। गोभिः। उत्ऽतरं ॥२॥

हे सोम अदब्धः केश्चिदप्यहिंसितः सुरभिंतरोऽत्यंतं सुगंधिस्त्वं नूनमिदानीं पुनानः पूयमानः सन्नविभिरविवालकृतैः पवित्रैस्तेभ्यः परि स्रव। परितः क्षर। सुते चिदभिषुते सत्यंधसा सक्तुलक्षणेनान्नेन गोभिर्गोविकारैः क्षीरैः क्षीरादिभिः श्रीणंतो मिश्रयंतो वयमुत्तरमुन्नततरमप्सु वसतीवरीषु संस्थितं त्वां मदामः। मंदामहे। स्तुमः॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिंदुर्विचक्षणः ॥३॥
परि। सुवानः। चक्षसे। देवऽमादनः। क्रतुः। इंदुः। विऽचक्षणः ॥३॥

सुवानोऽभिषूयमाणः सोमश्चक्षसे सर्वेषां दर्शनाय परि स्रवति। कीदृशः। देवमादनो देवानां तर्पयिता क्रतुः कर्ता इंदुः पात्रेषु क्षरणशीलो दीप्तो वा विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥४॥
पुनानः। सोम। धारया। अपः। वसानः। अर्षसि।
आ। रत्नऽधाः। योनिं। ऋतस्य। सीदसि। उत्सः। देव। हिरण्ययः ॥४॥

हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वमप उदकानि वसतीवर्याख्यानि वसान आच्छादयन् धारयार्षसि। पवित्रं गच्छसि। ततो रत्नधा रत्नानां दाता त्वमृतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमा सीदसि। हे देव द्योतमान

सोम उतः प्रस्यंदनशीलस्त्वं हिरण्ययो हिरण्मयो हिरण्यस्योत्पत्तिस्थानं खलु । यद्वा । देवानां हितरमणीयो भवसि ॥

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५॥
दुहानः । ऊधः । दिव्यं । मधु । प्रियं । प्रत्नं । सधऽस्थं । आ । असदत् ।
आऽपृच्छ्यं । धरुणं । वाजी । अर्षति । नृऽभिः । धूतः । विऽचक्षणः ॥५॥

मधु मदकरं प्रियं प्रीणनकारि दिव्यं दिवि भवमूधः सोमवल्लीलक्षणं दुहानः सोमः प्रत्नं पुरातनं सधस्थं । सह तिष्ठंत्यत्रेति सधस्थं स्थानं । अंतरिक्षमासदत् । आसीदति ॥ सदेर्लुङि रूपं ॥ तत आपृच्छ्यं कर्मण्याप्रष्टव्यं धरुणं कर्मणो धारयितारं यजमानं वाज्यन्नवान्सोमोऽर्षति । तस्मा अन्नं दातुमभिगच्छति । कीदृशः । नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिर्धूतोऽद्राभ्यग्रहे परिशोधितः । तैरेनं चतुराधूनोति पंचकृत्वः सप्तकृत्वो वेत्यापस्तंबेन सूत्रितं । विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा ॥ ॥१२॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥६॥
पुनानः । सोम । जागृविः । अव्यः । वारे । परि । प्रियः ।
त्वं । विप्रः । अभवः । अंगिरःऽतमः । मध्वा । यज्ञं । मिमिक्ष । नः ॥६॥

हे सोम जागृविर्जागरणशीलः प्रियः प्रीणयिता त्वं पुनानः पूयमानः सन्नव्योऽवेर्वारे वाले पवित्रे परि चरसि । किंच विप्रो मेधावी त्वमंगिरस्तमोऽगिरसां वरिष्ठः पितॄणां नेताभवः । भवसि । स त्वं नोऽस्मदीयं यज्ञं मध्वा मधुनात्मीयेन रसेन मिमिक्ष । सिंच ॥ मिहेः सेचनार्थस्य सनि रूपं ॥

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥७॥
सोमः । मीढ्वान् । पवते । गातुवित्ऽतमः । ऋषिः । विप्रः । विऽचक्षणः ।
त्वं । कविः । अभवः । देवऽवीतमः । आ । सूर्यं । रोहयः । दिवि ॥७॥

मीढ्वान् कामानां सेक्ता सोमः पवते । चरति । कीदृशः । गातुवित्तमोऽत्यंतं मार्गस्य लंभक ऋषिः सर्वस्य प्रदर्शको विप्रो मेधावी विचक्षणो विद्रष्टा । किंच कविः क्रांतप्रज्ञस्त्वं देववीतमोऽत्यंतं देवकामोऽभवः । भवसि । अपि च दिवि द्युलोके सूर्यमा रोहयः । प्रादुर्भावयसि ॥

सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनां ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मंद्रया याति धारया ॥८॥
सोमः । ऊं इति । सुवानः । सोतृऽभिः । अधि । स्नुऽभिः । अवीनां ।
अश्वयाऽइव । हरिता । याति । धारया । मंद्रया । याति । धारया ॥८॥

सोतृभिरभिषवकर्तृभिर्ऋत्विग्भिः सुवानोऽभिषूयमाणः सोमोऽवीनां स्नुभिः ॥ मांसपृत्स्नूनामुपसंख्यानं । पा॰ ६. १. ६३. १. । इति सानुशब्दस्य स्नुभावः ॥ समुच्छ्रितैर्वालैः पवित्रैरधि याति । अधिकं गच्छति । उ

परीत इति षड्विंशत्यृचं चतुर्थं सूक्तं। त्वं सोमासि। ऋ० ९. ६७.। इत्यत्रोक्ता भरद्वाजकश्यपाद्याः सप्तर्षयः। आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती। अयमेकः प्रगाथः। परि सुवान इत्येषा तृतीयैकविंशत्यक्षरा भुरिग्विराड् द्विपदा। नृभिर्येमान इति षोडशी विंशत्यक्षरा द्विपदा विराट्। चतुर्थ्यादिद्वौ प्रगाथौ। दशम्यादित्रयः सप्तदश्यादिपंच प्रगाथाः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रम्यते। परीतः षड्विंशतिः सप्तर्षयः प्रागाथं तृतीयाषोळश्यौ द्विपदे अष्टम्याद्ये बृहत्याविति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

परीतो षिंचता सुतं सोमो य उ॑त्तमं हविः।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वं१तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥
परि। इतः। सिंचत। सुतं। सोमः। यः। उत्ऽतमं। हविः।
दधन्वान्। यः। नर्यः। अप्ऽसु। अंतः। आ। सुसाव। सोमं। अद्रिऽभिः ॥१॥

हे ऋत्विजः सुतमभिषुतं सोममित अस्मात्कर्मण ऊर्ध्वं अथवास्मात्प्रदेशादूर्ध्वं परि षिंचत वसतीवरीभिः ॥ इतो षिंचतेत्यत्र संहितायां छंदसीति रोरुत्वं। आदेशप्रत्यययोरिति षत्वं ॥ यः सोमो देवानामुत्तमं प्रशस्यं हविर्भवति आ अपि च नर्यो मनुष्यहितो यश्च सोमोऽप्सु वसतीवरीष्वंतरिक्षे वांतर्दधन्वान्गच्छन्भवति तं सोममद्रिभिर्ग्रावभिरध्वर्युः सुषाव। अभिषुतं चकार। तं परि षिंचतेति समन्वयः ॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः।
सुते चित्वाप्सु मदामो अंधसा श्रीणंतो गोभिरुत्तरं ॥२॥
नूनं। पुनानः। अविऽभिः। परि। स्रव। अदब्धः। सुरभिंऽतरः।
सुते। चित्। त्वा। अप्ऽसु। मदामः। अंधसा। श्रीणंतः। गोभिः। उत्ऽतरं ॥२॥

हे सोम अदब्धः कैश्चिदप्यहिंसितः सुरभिंतरोऽत्यंतं सुगंधिस्त्वं नूनमिदानीं पुनानः पूयमानः सन्नविभिरविवालकृतैः पवित्रैस्तेभ्यः परि स्रव। परितः क्षर। सुते चिदभिषुते सत्यंधसा सक्तुलक्षणेनान्नेन गोभिर्गोविकारैः क्षीरैः क्षीरादिभिः श्रीणंतो मिश्रयंतो वयमुत्तरमुन्नततरमप्सु वसतीवरीषु संस्थितं त्वां मदामः। मंदामहे। स्तुमः ॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिंदुर्विचक्षणः ॥३॥
परि। सुवानः। चक्षसे। देवऽमादनः। क्रतुः। इंदुः। विऽचक्षणः ॥३॥

सुवानोऽभिषूयमाणः सोमश्चक्षसे सर्वेषां दर्शनाय परि स्रवति। कीदृशः। देवमादनो देवानां तर्पयिता क्रतुः कर्ता इंदुः पात्रेषु क्षरणशीलो दीप्तो वा विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा ॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥४॥
पुनानः। सोम। धारया। अपः। वसानः। अर्षसि।
आ। रत्नऽधाः। योनिं। ऋतस्य। सीदसि। उत्सः। देव। हिरण्ययः ॥४॥

हे सोम पुनानः पूयमानस्त्वमप उदकानि वसतीवर्याख्यानि वसान आच्छादयन् धारयार्षसि। पवित्रं गच्छसि। ततो रत्नधा रत्नानां दाता त्वमृतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानमा सीदसि। हे देव द्योतमान

हे सोम देववीतये देवानां पानाय तदर्थमर्णसा वसतीवर्याख्येनोदकेन प्र पिप्ये। प्रप्यायसे। तत्र दृष्टांतः। सिंधुर्न यथा सिंधुरुदकेन प्रपिप्ये प्रप्यायते तद्वत्॥ प्यायतेर्लिटि लिड्यङोश्चेति पीभावः॥ ततः स त्वं मदिरो न मदकरः सुरादिरिव जागृविर्जागरणशीलः। यद्वा। नः संप्रत्यर्थे। इदानीं मदकरो जागरणशीलस्त्वं। अंशोर्लताखंडस्य पयसा रसेन मधुश्चुतं रसस्य क्षारयितारं कोशं द्रोणकलशमच्छाभिगच्छसि॥

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।
तमीं हिन्वंत्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः॥१३॥
आ। हर्यतः। अर्जुने। अत्के। अव्यत। प्रियः। सूनुः। न। मर्ज्यः।
तं। ईं। हिन्वंति। अपसः। यथा। रथं। नदीषु। आ। गभस्त्योः॥१३॥

हर्यतः स्पृहणीयः प्रियः प्रीणयिता सूनुर्न सूनुरिव मर्ज्यो मार्जनीयः सोमोऽर्जुनेऽर्जुनवर्णेऽत्के रूपे पवित्र आव्यत। आवृणोति। तमीमेनं सोममंगुलयो नदीषु नदमानासु वसतीवरीषु गभस्त्योर्बाह्वोराभिमुख्येन हिन्वंति। प्रेरयंति। तत्र दृष्टांतः। अपसो यथा वेगवंतो जना रथं संग्रामेषु प्रेरयंति तद्वत्॥

अभि सोमास आयवः पवंते मद्यं मदं।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः॥१४॥
अभि। सोमासः। आयवः। पवंते। मद्यं। मदं।
समुद्रस्य। अधि। विष्टपि। मनीषिणः। मत्सरासः। स्वः॒ऽविदः॥१४॥

आयवो गमनशीलाः सोमासः सोमा मद्यं मदकरं मदमात्मीयं रसमभि पवंते। अभितो निर्गमयंति। कुत्रेति उच्यते। समुद्रस्यांतरिक्षस्याधि विष्टप्यधिकं समुच्छ्रिते पवित्रे। यद्वा। समुद्रस्य। समुद्रवंत्यस्माद्रसाः। तस्य कलशस्याध्युपरि विष्टपि स्थाने पवित्रे निर्गमयंति। कीदृशाः। मनीषिणो मनस ईशितारो मत्सरासो मदकराः स्वर्विदः सर्वस्य लंभकाः॥

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत्॥१५॥
तरत्। समुद्रं। पवमानः। ऊर्मिणा। राजा। देवः। ऋतं। बृहत्।
अर्षत्। मित्रस्य। वरुणस्य। धर्मणा। प्र। हिन्वानः। ऋतं। बृहत्॥१५॥

पवमानः पूयमानो देवो द्योतमानो बृहदत्यंतमृतं सत्यभूतो राजा सोमः समुद्रमंतरिक्षं कलशं वोर्मिणा धारया तरत्। तरति। हिन्वानः प्रेर्यमाण ऋतं बृहदत्यंतं सत्यभूतः स सोमो मित्रस्य वरुणस्य मित्रावरुणयोर्धर्मणा धारणार्थं प्रार्षत्। प्रगच्छति॥ ॥१४॥

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः॥१६॥
नृऽभिः। येमानः। हर्यतः। विऽचक्षणः। राजा। देवः। समुद्रियः॥१६॥

नृभिः कर्मनेतृभिर्येमानो नियम्यमानो हर्यतः स्पृहणीयो विचक्षणो विद्रष्टा देवो दीप्यमानः समुद्रियोऽतरिक्षे भवो राजा सोम इंद्रार्थं पवत इत्युत्तरेण संबंधः॥ समुद्राभ्राद्घ इति भवार्थे घप्रत्ययः॥

इंद्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजंत्यायवः ॥१७॥
इंद्राय । पवते । मदः । सोमः । मरुत्वते । सुतः ।
सहस्रऽधारः । अति । अव्यं । अर्षति । तं । ईमिति । मृजंति । आयवः ॥१७॥

मदो मादकः सुतोऽभिषुतः सोमो मरुत्वते मरुद्भिस्तद्वत इंद्रायेंद्रार्थं पवते । चरति । ततः सहस्रधारो बहुधारोपेतः सोमोऽव्यमविमयं पवित्रमत्यर्षति । अतिगच्छति । तमिमं सोममायवो मनुष्या ऋत्विजो मृजंति । शोधयंति ॥

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८॥
पुनानः । चमू इति । जनयन् । मतिं । कविः । सोमः । देवेषु । रण्यति ।
अपः । वसानः । परि । गोभिः । उत्ऽतरः । सीदन् । वनेषु । अव्यत ॥१८॥

चमू ॥ सप्तम्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ चम्वोरधिषवणफलकयोः पुनानः पूयमानोऽभिषूयमाणो मतिं स्तुतिं जनयन्नुत्पादयन् कविः क्रांतप्रज्ञः एतादृशः सोमो देवेष्विंद्रादिषु रण्यति । किंचापो वसतीवरीर्वसान आच्छादयन् वनेषु काष्ठेषु पात्रेषु सीदन् सोमो गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिः पर्यव्यत । परिव्रीयते । आच्छाद्यते ॥

तवाहं सोम रारण सख्य इंदो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरंति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥१९॥
तव । अहं । सोम । ररण । सख्ये । इंदो इति । दिवेऽदिवे ।
पुरूणि । बभ्रो इति । नि । चरंति । मां । अव । परिऽधीन् । अति । तान् । इहि ॥१९॥

हे इंदो हे सोम तव सख्ये सखिकर्मण्यहं दिवेदिवेऽन्वहं रारण ॥ रणिर्लिट्युत्तमे णलि रूपं ॥ हे बभ्रो बभ्रुवर्ण सोम पुरूणि बहूनि रक्षांसि मां तव सख्ये स्थितं न्यव चरंति । नीचीनं चरंति । बाधंते । ये मां बाधंते तान्परिधीन्नाशकांस्त्वमतीहि । अतीत्य गच्छ । जहीति यावत् ॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपंतमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२०॥
उत । अहं । नक्तं । उत । सोम । ते । दिवा । सख्याय । बभ्रो इति । ऊधनि ।
घृणा । तपंतं । अति । सूर्यं । परः । शकुनाःऽइव । पप्तिम ॥२०॥

हे बभ्रो बभ्रुवर्ण हे सोम उतापि च नक्तमुतापि च दिवाहोरात्रयोः सख्याय सख्यार्थं तवोधनि समीपेऽहं रम इति शेषः । ते वयं घृणा दीप्त्या तपंतं ज्वलंतं परः परमस्थानस्थितं सूर्यं तदात्मकं त्वामति पप्तिम । तत्र स्थितं त्वां प्राप्तुमतिपेतिम । कथमिव । शकुना इव यथा सुपर्णादयः पक्षिणः सूर्यमतिगच्छंति तद्वत् ॥ पत्लृ गतौ । अस्माच्छांदसे लिटि तनिपत्योश्छंदसीत्युपधालोपः ॥ ॥१५॥

ग्रावस्तोत्रेऽभिरूपकरणे सोमे मृज्यमान एकस्तृचः। तत्र मृज्यमान इत्येषा तृतीया। सूचितं च। मृज्यमानः सुहस्त्या दशभिर्विवस्वतः। आ० ५. १२. । इति ॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि।
रयिं पिशंगं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१॥
मृज्यमानः। सुऽहस्त्य। समुद्रे। वाचं। इन्वसि।
रयिं। पिशंगं। बहुलं। पुरुऽस्पृहं। पवमान। अभि। अर्षसि ॥२१॥

हे सुहस्त्य। हस्ते भवा हस्त्या अंगुलयः। शोभनांगुलिक सोम मृज्यमानः शोध्यमानस्त्वं समुद्रेऽंतरिक्षे कलशे वा वाचं शब्दमिन्वसि। प्रेरयसि। किंच हे पवमान पूयमान सोम पिशंगं हिरण्यैः पिशंगवर्णं बहुलं प्रभूतं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं रयिं धनमभ्यर्षसि। स्तोतॄणामभिक्षरसि। प्रयच्छसि ॥

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरंजानो अर्षसि ॥२२॥
मृजानः। वारे। पवमानः। अव्यये। वृषा। अव। चक्रदः। वने।
देवानां। सोम। पवमान। निःऽकृतं। गोभिः। अंजानः। अर्षसि ॥२२॥

हे सोम वृषा वर्षिता त्वं मृजानो वसतीवरीभिर्मृज्यमानोऽलंक्रियमाणोऽव्ययेऽविमये वारे वाले पवित्रे पवमानः पूयमानः सन् वने वननीय उदके काष्ठे कलशे वाव चक्रदः। अवक्रंदसि। शब्दायसे। ततो हे सोम हे पवमान त्वं गोभिर्गव्यैः क्षीरादिभिरंजानोऽज्यमानः सन्निष्कृतं संस्कृतं देवानां स्थानमर्षसि। गच्छसि ॥

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥२३॥
पवस्व। वाजऽसातये। अभि। विश्वानि। काव्या।
त्वं। समुद्रं। प्रथमः। वि। धारयः। देवेभ्यः। सोम। मत्सरः ॥२३॥

हे सोम विश्वानि सर्वाणि काव्या कविकर्माणि स्तोत्राण्यभिलक्ष्य वाजसातयेऽन्नलाभाय पवस्व। क्षर। हे सोम देवेभ्यो देवानां मत्सरो मदकरः प्रथमः सर्वदेवानां मुख्यस्त्वं समुद्रमंतरिक्षं कलशं वा वि धारयः। विशेषेण धारयसि ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वंति धीतिभिः ॥२४॥
सः। तु। पवस्व। परि। पार्थिवं। रजः। दिव्या। च। सोम। धर्मऽभिः।
त्वां। विप्रासः। मतिऽभिः। विऽचक्षण। शुभ्रं। हिन्वंति। धीतिऽभिः ॥२४॥

हे सोम तादृशस्त्वं पार्थिवं रजो लोकं प्रति दिव्यानि च रजांसि प्रति धर्मभिर्धारकैः सह तु क्षिप्रं परि पवस्व। परितः क्षर। हे विचक्षण विद्रष्टः सोम विप्रासो विप्रा मेधाविनो मतिभिः स्तुतिभिर्धीतिभिरंगुली-भिश्च शुभ्रं श्वेतवर्णं त्वां हिन्वंति। प्रेरयंति ॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वंतो मत्सरा इंद्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५॥
पवमानाः । असृक्षत । पवित्रं । अति । धारया ।
मरुत्वंतः । मत्सराः । इंद्रियाः । हयाः । मेधां । अभि । प्रयांसि । च ॥२५॥

पवमानाः पूयमानाः सोमा धारयात्मीयया पवित्रमतीत्यासृक्षत । सृज्यंते । कीदृशाः । मरुत्वंतो मरुद्भिर्युक्ता मत्सरा मदकरा इंद्रिया इंद्रजुष्टाः । मेधां स्तुतिं प्रयांस्यन्नानि चाभिलक्ष्य स्तोतृभ्य उभयं कर्तुं वा हया गंतार एते सृज्यंते ॥

अपो वसानः परि कोशमर्षतींदुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मंदना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजं ॥२६॥
अपः । वसानः । परि । कोशं । अर्षति । इंदुः । हियानः । सोतृऽभिः ।
जनयन् । ज्योतिः । मंदनाः । अवीवशत् । गाः । कृण्वानः । न । निःऽनिजं ॥२६॥

अपो वसतीवरीर्वसान आच्छादयन् सोतृभिरभिषुण्वद्भिर्हियानः प्रेर्यमाण इंदुः सोमः कोशं कलशं पर्यर्षति । प्रति गच्छति । किंच ज्योतिर्दीप्तिं जनयन्नुत्पादयन् गा गव्यानि चीरादीनि निर्णिजमात्मनो रूपं कृण्वानः कुर्वन् मिश्रयन् सोऽयं सोमः । नः संप्रत्यर्थे । इदानीं मंदनाः स्तुतीरवीवशत् । कामयते ॥ वश कांतौ । लुङि चङि रूपं ॥ ॥१६॥

पवस्वेति षोडशर्चं पंचमं सूक्तं । आद्यतृचस्य गौरिवीतिर्नाम शक्तिपुत्र ऋषिः । तृतीयायाः शक्तिर्नाम वासिष्ठः । ततः पंचानां तृचानामूरुर्नामांगिरस ऋजिश्वा नाम भारद्वाज ऊर्ध्वसद्मा नामांगिरसः कृतयशा नाम कश्चित् सोऽप्यांगिरस ऋणंचयो नाम राजर्षिरित्येते क्रमेणर्षयः । एवं त्रयोदश गताः । ततस्तिसृणां वासिष्ठः शक्तिः । प्रथमातृतीयाद्या अयुजः ककुभः । द्वितीयाचतुर्थ्याद्या युजः सतोबृहत्यः । स सुन्वे यो वसूनामित्येषा तु यवमध्या गायत्री । पवमानः सोमो देवता । तथा चानुक्रम्यते । पवस्व षोळश गौरिवीतिस्तृचं शक्तिरेकामूरुर्ऋजिश्वोर्ध्वसद्मा कृतयशा ऋणंचय इत्यृषयो तृचास्तिस्रः शक्तिः काकुभाः प्रगाथाः स सुन्वे गायत्री यवमध्येति ॥ गतो विनियोगः ॥

पवस्व मधुमत्तम इंद्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥
पवस्व । मधुमत्ऽतमः । इंद्राय । सोम । क्रतुवित्ऽतमः । मदः । महि । द्युक्षऽतमः ।
मदः ॥१॥

हे सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्योपेतस्त्वमिंद्रायेंद्रार्थं मदो मदकरः सन् पवस्व । चर । कीदृशः । क्रतुवित्तमोऽत्यंतं प्रज्ञायाः कर्मणो वा लंभको महि महान् मंहनीयो वा द्युक्षतमोऽत्यंतं दीप्तो मदो मदहेतुः ॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥
यस्य । ते । पीत्वा । वृषभः । वृषऽयते । अस्य । पीता । स्वःऽविदः ।
सः । सुऽप्रकेतः । अभि । अक्रमीत् । इषः । अच्छ । वाजं । न । एतशः ॥२॥

वृषभः कामानां वर्षक इंद्रो यस्य ते त्वां पीत्वा वृषायते वृषभवदाचरति। किंच स्वर्दृशः सर्वस्य दर्शकस्यास्य ते तव पीता पाने सति सुप्रकेतः सुप्रज्ञः स इंद्र इषः शत्रूणामन्नान्यभ्यक्रमीत्। अभिक्रामति। तत्र दृष्टांतः। वाजं नैतशः। एतश इत्यश्वनाम। यथाश्वो वाजं संग्राममभिगच्छति तद्वत्॥

त्वं ह्यं१ग दैव्या पर्वमान जनिमानि द्युमत्तमः। अमृतत्वाय घोषयः ॥३॥

त्वं। हि। अंग। दैव्या। पर्वमान। जनिमानि। द्युमत्ऽतमः। अमृतऽत्वाय। घोषयः॥३॥

हे पवमान पूयमान सोम द्युमत्तमोऽतिशयेन दीप्तिमांस्त्वं हि त्वमेव दैव्या देवसंबंधीनि जनिमानि जन्मानि। देवानित्यर्थः। तानभिलक्ष्यामृतत्वाय तेषाममरणायांग क्षिप्रं घोषयः। शब्दायसे॥ घुषिर् विशब्दने। ण्यंतस्य लेटि रूपं। हियोगादनिघातः॥

येना नवंग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४॥

येन। नवऽग्वः। दध्यङ्। अपऽऊर्णुते। येन। विप्रासः। आपिरे।
देवानां। सुम्ने। अमृतस्य। चारुणः। येन। श्रवांसि। आनशुः ॥४॥

नवग्वो नवनीयगतिः यद्वा नवभिर्मासैः सत्रस्यानुष्ठाता दध्यङ्ङेतन्नामकोऽंगिरा येन सोमेन पणिभिरपहृतानां गवां द्वारमपोर्णुते अपाच्छादयति विवृतमकार्षीत् विप्रासस्तन्मुखाः सर्वे मेधाविनोऽंगिरसो येन च सोमेनापिरे एतैरपहृता गा आप्नुवन् किंच देवानामिंद्रादीनां सुम्ने सुखे यज्ञेन संजाते सति चारुणः कल्याणस्यामृतस्योदकस्य संबंधीनि श्रवांस्यन्नानि येन च सोमेन यजमाना आनशुः आप्नुवन् अलभंत स त्वं देवानाममृतत्वाय शब्दायस इति पूर्वेण समन्वयः॥

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिंतमः। क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥५॥

एषः। स्यः। धारया। सुतः। अव्यः। वारेभिः। पवते। मदिन्ऽतमः। क्रीळन्।
ऊर्मिः। अपांऽइव ॥५॥

स्य स एष सुतोऽभिषुतः सोमोऽव्योऽवेर्वारेभिर्वालैस्तेभ्यः पवित्रेभ्यो धारयात्मीयया पवते। कलशमभिलक्ष्य चरति। कीदृशः। मदिंतमो मादयितृतमोऽपामिवोदकानामूर्मिः संघात इव क्रीळन्नितस्ततः संक्रीडमानः पवते॥ ॥१७॥

य उस्रिया अप्या अंतरश्मनो निर्गा अकृंतदोजसा।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥६॥

यः। उस्रियाः। अप्याः। अंतः। अश्मनः। निः। गाः। अकृंतत्। ओजसा।
अभि। व्रजं। तत्निषे। गव्यं। अश्व्यं। वर्मीऽइव। धृष्णो इति। आ। रुज ॥६॥

यः सोम उस्रिया उत्सरणशीला अप्याः॥ अप इत्यंतरिक्षनाम। तस्मान्नवे छंदसीति यत्॥ अंतरिक्षस्था अहिप्रभृतिभिरसुरैरपहृत्य निहिता गा अपोऽश्मनः। मेघनामैतत्। मेघादंतरोजसा बलेन निरकृंतत् निरच्छिनत्। अंतरिक्षाद्वृष्टिमकार्षीदित्यर्थः। स त्वमसुरैरपहृतं गव्यं गोसंबंधिनमश्व्यमश्वेषु भवं व्रजं समूहमभि तत्निषे। अभितो व्याप्नोषि॥ तनु विस्तारे। छांदसे लिटि तनिपत्योश्छंदसीत्युपधालोपः॥ किंच हे धृष्णो शत्रुधर्षणशील सोम स त्वं वर्मीव कवचीव शूर आ रुज। असुराना जहि॥

आ सोता परि षिंचताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरं। वनक्रक्षमुदप्रुतं ॥७॥
आ। सोत। परि। सिंचत। अश्वं। न। स्तोमं। अप्ऽतुरं। रजःऽतुरं। वनऽक्रक्षं।
उदऽप्रुतं ॥७॥

हे ऋत्विजः आ सोत। सोममभिषुणुत॥ षुञ् अभिषवे। लोटि छांदसो विकरणस्य लुक्। तप्तनप्तनथनाश्चेति तस्य तबादेशः॥ किंच परि षिंचत। परितस्तं वसतीवर्यादिभिः सिंचत। कीदृशं। अश्वं नाश्वमिव वेगिनं स्तोमं स्तोतव्यमप्तुरमंतरिक्षस्थितानामुदकानां प्रेरकं रजस्तुरं तेजसां च प्रेरकं। वनक्रक्षमुदकानामर्षकं। यद्वा। काष्ठेषु पात्रेषु विप्रकीर्णं। उदप्रुतमुदके गच्छंतं प्लवमानं सोममभिषुणुताभिषिंचत च॥

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥८॥
सहस्रऽधारं। वृषभं। पयःऽवृधं। प्रियं। देवाय। जन्मने।
ऋतेन। यः। ऋतऽजातः। विऽववृधे। राजा। देवः। ऋतं। बृहत् ॥८॥

सहस्रधारं बह्वधारोपेतं वृषभं कामानां वर्षकं पयोवृधमुदकानां वर्धकं प्रियं प्रीणयितारं तं सोमं देवाय देवसंबंधिने जन्मने देवेभ्यस्तदर्थमभिषुणुत। ऋतजात उदकाज्जातो यो राजा सोम ऋतेन वसतीवर्याख्येनोदकेन विववृधे विशेषेण वर्धते। कीदृशः। देवो द्योतमानः स्तोतव्यो वा ऋतं सत्यभूतः सन् बृहन्महान्। तमासुनुतेति पूर्वेण समन्वयः॥

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः। वि कोशं मध्यमं युव ॥९॥
अभि। द्युम्नं। बृहत्। यशः। इषः। पते। दिदीहि। देव। देवऽयुः। वि। कोशं।
मध्यमं। युव ॥९॥

हे इषस्पतेऽन्नस्य पते हे देव स्तोतव्य सोम देवयुर्देवकामस्त्वं द्युम्नं द्योतमानं बृहत्प्रभूतं यशोऽन्नमस्मभ्यमभि दिदीहि। आभिमुख्येन प्रकाशय। प्रयच्छेत्यर्थः॥ आमंत्रितस्याविद्यमानवत्त्वेन पादादित्वादनिघातः॥ किंच मध्यममंतरिक्षस्थितं कोशं मेघं वि युव। वृष्ट्यर्थं विगमय। विश्लेषय॥

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥
आ। वच्यस्व। सुऽदक्ष। चम्वोः। सुतः। विशां। वह्निः। न। विश्पतिः।
वृष्टिं। दिवः। पवस्व। रीतिं। अपां। जिन्व। गोऽइष्टये। धियः ॥१०॥

हे सुदक्ष सुबल सोम चम्वोरधिषवणफलकयोः सुतोऽभिषुतस्त्वं विशां प्रजानां वह्निर्न वोढा विश्पती राजेव सर्वासां प्रजानां वोढा त्वमा वच्यस्व। आगच्छ। कलशमापवस्व॥ वचेर्गत्यर्थस्य व्यत्ययेन श्यनि रूपं॥ किंच त्वं वृष्टिं वृष्यमाणामपामुदकानां रीतिं गतिं दिवो द्युलोकात्पवस्व। कुरु। ततो गविष्टये गामात्मन इच्छते यजमानाय धियः कर्माणि जिन्व। आपूरय॥ ॥१८॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः। विश्वा वसूनि बिभ्रतं ॥११॥
एतं। ऊं इति। त्यं। मदऽच्युतं। सहस्रऽधारं। वृषभं। दिवः। दुहुः। विश्वा।
वसूनि। बिभ्रतं ॥११॥

दिवः देवाग्कामयमाना ऋत्विज एतं त्यं तमिमं सोममेव दुक्षः। दुदुक्षः। दुहंति। ग्रावाणो वत्सा ऋत्विजो दुहंतीति तैत्तिरीयकब्राह्मणं। तै० सं० ६. २. ११. ४.। कीदृशं सोमं। मदच्युतं मदस्य प्रेरकं सहस्रधारं बहुधारं वृषभं कामानां वर्षकं विश्वा सर्वाणि वसूनि धनानि बिभ्रतं धारयंतं सोमं दुहंति ॥

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥
वृषा। वि। जज्ञे। जनयन्। अमर्त्यः। प्रऽतपन्। ज्योतिषा। तमः।
सः। सुऽस्तुतः। कविऽभिः। निःऽनिजं। दधे। त्रिऽधातु। अस्य। दंससा ॥१२॥

वृषा कामानां वर्षकोऽमर्त्यो मनुष्यधर्मरहितः सोमो वि जज्ञे। विजायते। किं कुर्वन्। जनयञ्छब्दं ज्योतिर्वोत्पादयन् ज्योतिषा स्वीयेन तमः प्रतपन् प्रज्वलयन् विनाशयन् प्रादुर्भवति। ततः कविभिर्मेधाविभिः स्तोतृभिः सुष्टुतः स सोमो निर्णिजं निर्णेजनहेतुं मिश्रणं गव्यं दधे। धारयति। अथ त्रिधातु त्रिषु सवनेषु देवानां पोषकं। यद्वा। त्रयः सोमधारका द्रोणकलशादयो यस्मिन्। तद्यज्ञार्थं कर्मास्य सोमस्य दंससा कर्मणा ध्रियते खलु ॥

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानां। सोमो यः सुक्षितीनां ॥१३॥
सः। सुन्वे। यः। वसूनां। यः। रायां। आऽनेता। यः। इळानां। सोमः। यः।
सुऽक्षितीनां ॥१३॥

स सोमः सुन्वे। अभिसुषुव ऋत्विग्भिः। यः सोमो वसूनां धनानामानेता यश्च रायां। रांति प्रयच्छंति क्षीरादिकमिति रायो गावः। तेषामानेता यश्चेळानामन्नानां च यश्च सोमः सुक्षितीनां सुनिवासानां शोभनमनुष्ययुक्तानां गृहाणामानेता विद्यते सोऽभिषुतोऽभूदिति ॥

यस्य न इंद्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः।
आ येन मित्रावरुणा करामह एंद्रमवसे महे ॥१४॥
यस्य। नः। इंद्रः। पिबात्। यस्य। मरुतः। यस्य। वा। अर्यमणा। भगः।
आ। येन। मित्रावरुणा। करामहे। आ। इंद्रं। अवसे। महे ॥१४॥

नोऽस्मदीयं यस्य यं सोममिंद्रः पिबात् पिबति ॥ पा पाने लेट्यडागमः ॥ यं च सोमं मरुतः पिबंति वापि चार्यमणैतन्नामकेन देवेन सह भगो देवो यं सोमं पिबति येन सोमेन मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वयमा करामहे अभिमुखीकुर्महे तथा महे महतेऽवसे रक्षणाय येन च सोमेनेंद्रमभिमुखीकुर्महे स सोमोऽभिषूयते ॥

इंद्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिंतमः। पवस्व मधुमत्तमः ॥१५॥
इंद्राय। सोम। पातवे। नृऽभिः। यतः। सुऽआयुधः। मदिन्ऽतमः। पवस्व।
मधुमत्ऽतमः ॥१५॥

हे सोम मधुमत्तमोऽतिशयेन माधुर्योपेतस्त्वमिंद्राय पातवे पानार्थं पवस्व। कलशे क्षर। कीदृशः। नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिर्यतः संयतः स्वायुधः शोभनस्फ्यकपालाद्यायुधोपेतो मदिंतमो मादयितृतमः ॥

इंद्र॑स्य॒ हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श समु॒द्रमि॑व॒ सिंध॑वः ।
जुष्टो॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑ दि॒वो वि॑ष्ट॒म्भ उ॑त्त॒मः ॥१९॥
इंद्र॑स्य । हार्दि॑ । सो॒म॒ऽधान॑म् । आ । वि॒श॒ । स॒मु॒द्रम्ऽइ॑व । सिंध॑वः ।
जुष्टः॑ । मि॒त्राय॑ । वरु॑णाय । वा॒यवे॑ । दि॒वः । वि॒ष्ट॒म्भः । उ॒त्ऽत॒मः ॥१९॥

हे सोम त्वमिंद्रस्य हार्दि हृदयंगमं हृदयभूतं वा सोमधानं। सोमो निधीयतेऽस्मिन्निति सोमधानः कलशः। तमा विश। प्रविश। तत्र दृष्टांतः। समुद्रमिव यथा समुद्रं सिंधवो नद्यः प्रविशंति तद्वत्। कीदृशस्त्वं। मित्राय वरुणाय वायवे च तेभ्यो जुष्टो दिवो द्युलोकस्य विष्टंभो विष्टंभयिता स्थापयितोत्तमः सर्वेषामुत्कृष्टतमस्त्वं कलशमा विश ॥ ॥१९॥

परि प्रेति द्वाविंशत्यृचं द्वैपदं षष्ठं सूक्तं। यज्ञे सदस्यवस्थितहोत्रीयादिधिष्ण्योपेता अग्नयो नामेश्वरपुत्रा ऋषयः। विंशतिका द्विपदा विराजः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। परि प्र द्व्यधिकाग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा द्वैपदमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

परि॒ प्र ध॒न्वेंद्रा॑य सोम स्वा॒दुर्मि॒त्राय॑ पू॒ष्णे भगा॑य ॥१॥
परि॑ । प्र । ध॒न्व॒ । इंद्रा॑य । सो॒म॒ । स्वा॒दुः । मि॒त्राय॑ । पू॒ष्णे । भगा॑य ॥१॥

हे सोम स्वादुः स्वादुरसस्त्वमिंद्राय मित्राय पूष्णे भगायैतेभ्यो देवेभ्यः परि प्र धन्व। परितः पात्रेषु प्रचर ॥

इंद्र॑स्ते सोम सु॒तस्य॑ पेयाः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य॒ विश्वे॒ च दे॒वाः ॥२॥
इंद्रः॑ । ते॒ । सो॒म॒ । सु॒तस्य॑ । पे॒याः॒ । क्रत्वे॑ । दक्षा॑य । विश्वे॑ । च॒ । दे॒वाः ॥२॥

हे सोम सुतस्याभिषुतस्य ते तव स्वं भागमिंद्रः पेयाः। पेयात्। पिबतु ॥ पातेराशीर्लिङि रूपं। पुरुषव्यत्ययः ॥ किमर्थं। क्रत्वे क्रतवे प्रज्ञानाय दक्षाय बलाय च। किंचामी विश्वे सर्वे देवाश्च त्वदीयमंशं पिबंतु ॥

ए॒वामृता॑य म॒हे क्षया॑य॒ स शु॒क्रो अ॑र्ष दि॒व्यः पी॒यूषः॑ ॥३॥
ए॒व । अ॒मृता॑य । म॒हे । क्षया॑य । सः । शु॒क्रः । अ॒र्ष॒ । दि॒व्यः । पी॒यूषः॑ ॥३॥

हे सोम शुक्रो दीप्तो दिव्यो दिवि भवः पीयूषो देवैः पातव्यः स त्वममृतायामरणाय महे महते क्षयाय निवासाय चैवार्ष। एवं पवस्व। चर ॥

पव॑स्व सोम म॒हान्त्स॑मु॒द्रः पि॒ता दे॒वानां॒ विश्वा॒भि धाम॑ ॥४॥
पव॑स्व । सो॒म॒ । म॒हान् । स॒मु॒द्रः । पि॒ता । दे॒वाना॑म् । विश्वा॑ । अ॒भि । धाम॑ ॥४॥

हे सोम महान् देवेभ्यो दीयमानत्वेन महत्त्वयुक्तः समुद्रः समुंदनः। यस्मात्समुद्द्रवंति रसास्तादृशः। पिता सर्वेषां पालयिता त्वं देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि धाम धामानि शरीराण्यभिलक्ष्य पवस्व ॥

शु॒क्रः प॑वस्व दे॒वेभ्यः॑ सोम दि॒वे पृ॑थि॒व्यै शं च॑ प्र॒जायै॑ ॥५॥
शु॒क्रः । प॒व॒स्व॒ । दे॒वेभ्यः॑ । सो॒म॒ । दि॒वे । पृ॒थि॒व्यै । शम् । च॒ । प्र॒ऽजायै॑ ॥५॥

हे सोम शुक्रो दीप्तस्त्वं देवेभ्यो देवार्थं पवस्व। चर। किंच दिवे पृथिव्यै च द्यावापृथिवीभ्यां च ततः प्रजायै प्रजाभ्यश्च शं सुखं च कुरु ॥

दि॒वो ध॒र्तासि॑ शु॒क्रः पी॒यूषः॑ स॒त्ये विध॑र्मन्वा॒जी प॑वस्व ॥६॥

दि॒वः । ध॒र्ता । अ॒सि॒ । शु॒क्रः । पी॒यूषः॑ । स॒त्ये । वि॒ऽध॑र्मन् । वा॒जी । प॒व॒स्व॒ ॥६॥

हे सोम शुक्रो दीप्तः पीयूषः पातव्यस्त्वं दिवो द्युलोकस्य धर्ता धारकोऽसि। वाजी बलवान् स त्वं सत्ये सत्यभूते विधर्मन् विधर्मणि । विविधकर्माण ऋत्विजो यस्मिन् । यद्वा । विविधसोमादिहविषां धारके । अस्मिन्यज्ञे पवस्व । क्षर ॥

पव॑स्व सोम द्यु॒म्नी सु॑धा॒रो म॒हामवी॑ना॒मनु॑ पू॒र्व्यः ॥७॥

पव॑स्व । सो॒म॒ । द्यु॒म्नी । सु॒ऽधा॒रः । म॒हां । अवी॑नां । अनु॑ । पू॒र्व्यः ॥७॥

हे सोम द्युम्नी । द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति यास्कः । अन्नवान् यशस्वी वा सुधारः शोभनधारायुक्तः पूर्व्यः पुरातनस्त्वं महां महतामवीनां रोम्णां रोमभ्यः सकाशादनुक्रमेण पवस्व । क्षर ॥

नृभि॒र्येमा॒नो ज॑ज्ञा॒नः पू॒तः क्षर॒द्विश्वा॑नि म॒न्द्रः स्व॒र्वित् ॥८॥

नृऽभिः॑ । ये॒मा॒नः । ज॒ज्ञा॒नः । पू॒तः । क्षर॑त् । विश्वा॑नि । म॒न्द्रः । स्वः॒ऽवित् ॥८॥

नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिर्येमानो नियम्यमानो जज्ञानो जायमानः पूतः पवित्रेण शोधितो मंद्रो मोदमानः स्वर्वित्सर्वज्ञः एतादृशः सोमो विश्वानि सर्वाणि धनान्यस्मभ्यं क्षरत् । क्षरतु । ददातु ॥

इन्दुः॑ पुना॒नः प्र॒जामु॑रा॒णः कर॒द्विश्वा॑नि॒ द्रवि॑णानि नः ॥९॥

इन्दुः॑ । पु॒ना॒नः । प्र॒ऽजां । उ॒रा॒णः । कर॑त् । विश्वा॑नि । द्रवि॑णानि । नः॒ ॥९॥

पुनानः पूयमान उराणः । उराण उरु कुर्वाणः । नि० ६. १७. । इति यास्कः । देवान् बहु कुर्वाण इंदुः सोमो नोऽस्माकं प्रजामपत्यादिकां विश्वानि व्याप्तानि द्रविणानि धनानि च करत् । करोतु ॥ करोतेर्लङि रूपं ॥

पव॑स्व सोम॒ क्रत्वे॒ दक्षा॒याश्वो॒ न नि॒क्तो वा॒जी धना॑य ॥१०॥

पव॑स्व । सो॒म॒ । क्रत्वे॑ । दक्षा॑य । अश्वः॑ । न । नि॒क्तः । वा॒जी । धना॑य ॥१०॥

हे सोम अश्वो नाश्व इव निक्तो वसतीवरीभिरद्भिर्निक्तो वाजी वेगवांस्त्वं क्रत्वे क्रतवे प्रज्ञानाय दक्षाय बलाय धनाय धनार्थं च पवस्व । क्षर ॥ ॥२०॥

तं ते॑ सो॒तारो॒ रसं॒ मदा॑य पु॒नन्ति॒ सोमं॑ म॒हे द्यु॒म्नाय॑ ॥११॥

तं । ते॒ । सो॒तारः॑ । रसं॑ । मदा॑य । पु॒नन्ति॑ । सोमं॑ । म॒हे । द्यु॒म्नाय॑ ॥११॥

सोतारोऽभिषोतार ऋत्विजो हे सोम ते तव स्वभूतं रसं मदाय मदार्थं पुनंति । तदेवोच्यते । महे महते द्युम्नाय । द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा । अन्नाय यशसे वा सोमं पुनंति । शोधयंति । यद्वा । सोममभिषूयमाणं तं रसं पुनंतीत्येकवाक्यतया योजनीयं ॥

शिशुं॑ जज्ञा॒नं हरिं॑ मृजन्ति प॒वित्रे॒ सोमं॑ दे॒वेभ्य॒ इन्दुं॑ ॥१२॥

शिशुं॑ । ज॒ज्ञा॒नं । हरिं॑ । मृ॒ज॒न्ति॒ । प॒वित्रे॑ । सोमं॑ । दे॒वेभ्यः॑ । इन्दुं॑ ॥१२॥

शिशुमपां पुत्रभूतं जज्ञानं जायमानं हरिं हरितवर्णमिंदुं दीप्तं सोमं देवेभ्यो देवार्थं पवित्रे मृजंति । ऋत्विजो मार्जयंति ॥

इंदुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३॥

इंदुः । पविष्ट । चारुः । मदाय । अपां । उपऽस्थे । कविः । भगाय ॥१३॥

चारुः कल्याणरूपः कविः क्रांतप्रज्ञ इंदुरपामुदकानामुपस्थ उपस्थानेऽंतरिक्षे पवित्रे वा मदाय मदार्थं भगाय भजनीयधनार्थं च पविष्ट । पवते ॥

बिभर्ति चार्विंद्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४॥

बिभर्ति । चारु । इंद्रस्य । नाम । येन । विश्वानि । वृत्रा । जघान ॥१४॥

स सोमश्चारु कल्याणमिंद्रस्य नाम शरीरं बिभर्ति । धारयति । पोषयति । येन शरीरेणेंद्रो विश्वानि सर्वाणि वृत्राणि पापरूपाणि रक्षांसि जघान हतवान् ॥

पिबंत्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥

पिबंति । अस्य । विश्वे । देवासः । गोभिः । श्रीतस्य । नृऽभिः । सुतस्य ॥१५॥

विश्वे सर्वे देवासो देवा गोभिर्गोविकारैः श्रीतस्य मिश्रितं नृभिः कर्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिः सुतस्याभिषुतमस्यामुं सोमं पिबंति । द्वितीयार्थे षष्ठ्यः ॥

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यं ॥१६॥

प्र । सुवानः । अक्षारिति । सहस्रऽधारः । तिरः । पवित्रं । वि । वारं । अव्यं ॥१६॥

सुवानोऽभिषूयमाणः अत एव सहस्रधारो बहुधारायुक्तः सोमोऽव्यमविभवं वारं वालं पवित्रं तिरो व्यवधायकं कुर्वन् प्राक्षाः । विविधं प्रक्षरति ॥ क्षरतेर्लुङि रूपं ॥

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

सः । वाजी । अक्षारिति । सहस्रऽरेताः । अत्ऽभिः । मृजानः । गोभिः । श्रीणानः ॥१७॥

वाजी वेगवान्बलवान्वा स सोमोऽक्षाः । क्षरति । कीदृशः । सहस्ररेता बहुरेतस्को बहूदकोऽद्भिर्वसतीवरीभिर्मृजानो मृज्यमानो गोभिर्गोविकारैः क्षीरादिभिः श्रीणानः श्रीयमाणः ॥

प्र सोम याहींद्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८॥

प्र । सोम । याहि । इंद्रस्य । कुक्षा । नृऽभिः । येमानः । अद्रिऽभिः । सुतः ॥१८॥

हे सोम नृभिर्ऋत्विग्भिर्येमानो नियम्यमानोऽद्रिभिर्ग्रावभिः सुतोऽभिषुतस्त्वमिंद्रस्य कुक्षा ॥ सप्तम्या डादेशः ॥ कुक्षावुदरभूते कलशे वा प्र याहि । प्रकर्षेण गच्छ ॥

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिंद्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९॥

असर्जि । वाजी । तिरः । पवित्रं । इंद्राय । सोमः । सहस्रऽधारः ॥१९॥

वाजी बलवान्वेगवान्वा पवित्रं तिरस्कुर्वन् सहस्रधारो बहुधारः सोम इंद्रायेंद्रार्थमसर्जि । सृज्यते ॥

अंजंत्येनं मध्वो रसेनेंद्राय वृष्ण इंदुं मदाय ॥२०॥

अंजंति । एनं । मध्वः । रसेन । इंद्राय । वृष्णे । इंदुं । मदाय ॥२०॥

वृष्णे कामानां वर्षित्र इंद्रायेंद्रस्य मदाय मदार्थं मध्वो मधुनो रसेन गव्येनैनमिंदुं सोममृत्विजोऽंजंति। संयोजयंति ॥

देवेभ्यंस्त्वा वृथा पाजंसेऽपो वसानं हरिं मृजंति ॥२१॥

देवेभ्यंः। त्वा। वृथा। पाजंसे। अपः। वसानं। हरिं। मृजंति ॥२१॥

हे सोम अप उदकानि वसानमाच्छादयंतं हरिं हरितवर्णं त्वा त्वां वृथानायासेनर्त्विजो मृजंति। शोधयंति। किमर्थं। देवेभ्यो देवानां पानार्थं पाजसे तेषां बलार्थं ॥

इंदुरिंद्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२॥

इंदुः। इंद्राय। तोशते। नि। तोशते। श्रीणन्। उग्रः। रिणन्। अपः ॥२२॥

इंदुः सोम इंद्रायेंद्रार्थं तोशते। हन्यते। अभिषूयते। नि तोशते। नितरामभिषूयते। तोशतिर्वधकर्मा। कीदृशः। श्रीणन् प्रेरयन् सोमोऽभिषूयते ॥ ॥२१॥

पर्यू ष्विति द्वादशर्चं सप्तमं सूक्तं। त्र्यरुणत्रसदस्यू राजर्षी अस्य सूक्तस्य द्रष्टारौ। आदितस्तिस्रः पिपीलिकमध्या अनुष्टुभो द्वादशकाष्टकद्वादशकवत्यः। ततः षडूर्ध्वबृहत्यो द्वादशकत्रयवत्यः। अथ दशम्याद्यास्तिस्रो विराजः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। पर्यू षु द्वादश त्र्यरुणत्रसदस्यू तिस्रोऽनुष्टुभः पिपीलिकमध्याः षळूर्ध्वबृहत्यस्तिस्रश्च विराज इति ॥ गतो विनियोगः ॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।

द्विषस्तरध्यां ऋणया नं ईयसे ॥१॥

परि। ऊं इति। सु। प्र। धन्व। वाजऽसातये। परि। वृत्राणि। सक्षणिः।

द्विषः। तरध्यै। ऋणऽयाः। नः। ईयसे ॥१॥

हे सोम सु सुष्ठु वाजसातयेऽस्मभ्यमन्नदानायैव परि प्र धन्व। परितः प्रगच्छ। यद्वा। वाजसातयेऽन्नलाभाय संग्रामं प्रगच्छ। किंच सक्षणिः सहनशीलस्त्वं वृत्राणि शत्रून्परि गच्छ। तदेवोच्यते। नोऽस्माकमृणया ऋणानां यापयिता त्वं द्विषः शत्रूंस्तरध्यै तरीतुं हंतुमीयसे। परिगच्छसि ॥

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये।

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२॥

अनुं। हि। त्वा। सुतं। सोम। मदामसि। महे। समर्यऽराज्ये।

वाजान्। अभि। पवमान। प्र। गाहसे ॥२॥

हे सोम सुतमभिषुतं त्वा त्वां वयमनु मदामसि हि। अनुमदामः। अनुक्रमेणाभिष्टुमः खलु। हे पवमान सोम स त्वं महे महति समर्यराज्ये महत्समनुष्यं त्वदीयं राज्यमनुपालयितुं वाजाञ्शत्रुबलान्यभिलक्ष्य प्र गाहसे। प्रगच्छसि ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।

गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥३॥

अजीजनः । हि । पवमान । सूर्यं । विऽधारे । शक्मना । पयः ।
गोऽजीरया । रंहमाणः । पुरंऽध्या ॥ ३ ॥

हे पवमान सोम त्वं पयः पयस उदकस्य विधारे विधारकेऽंतरिक्षे शक्मना समर्थेन बलेन सूर्यमजीजनो हि । उत्पादितवानभवसि खलु । कीदृशः । गोजीरया स्तोतृभ्यो गवां प्रेरकेण । स्तोतृणां प्रेरितपशुकेनेत्यर्थः । तादृशेन पुरंध्या बहुविधप्रज्ञानेन युक्तो रंहमाणो वेगं कुर्वाणस्त्वं सूर्यमजीजनः ॥

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

अजीजनः । अमृत । मर्त्येषु । आ । ऋतस्य । धर्मन् । अमृतस्य । चारुणः ।
सदा । असरः । वाजं । अच्छ । सनिस्यदत् ॥ ४ ॥

हे अमृत मरणधर्मरहित सोम त्वमृतस्य सत्यभूतस्य चारुणः कल्याणस्यामृतस्योदकस्य धर्मन्धारकेऽंतरिक्षे सूर्यमजीजनः । किमर्थं । मर्त्येष्वा मनुष्येष्वभिमुखीभवनाय । किंच सनिष्यदत् संभजन् स त्वं वाजमच्छ संग्राममभिलक्ष्य सदासरः । सरसि । गच्छसि ॥

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितं ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

अभिऽअभि । हि । श्रवसा । ततर्दिथ । उत्सं । न । कं । चित् । जनऽपानं । अक्षितं ।
शर्याभिः । न । भरमाणः । गभस्त्योः ॥ ५ ॥

हे सोम त्वं श्रवसान्नेन हेतुनाभ्यभि ततर्दिथ हि । पवित्रमभितृणवानसि । छिन्नवानसि । तत्र दृष्टांतद्वयं । उत्सं न यथा कश्चिज्जनपानं । अस्मिञ्जना उदकं पिबंति । तमक्षितमक्षीणं कं चित् कंचनोत्समुत्सरणशीलं वाप्यादिकमभितृणत्ति । अथवा कश्चिद्गभस्त्योर्बाह्वोः शर्याभिरंगुलीभिर्भरमाण उदकं संभरन् कंचिदभितृणत्ति तद्वत् ॥

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥

आत् । ईं । के । चित् । पश्यमानासः । आप्यं । वसुऽरुचः । दिव्याः । अभि । अनूषत ।
वारं । न । देवः । सविता । वि । ऊर्णुते ॥ ६ ॥

आदनंतरं पश्यमानास एनं पश्यंतो दिव्या दिवि भवा वसुरुचो नाम के चिदाप्यं बंधुं साधुमीमेनं सोमममभ्यनूषत । अभ्यस्तुवन् । कस्मादनंतरमिति उच्यते । देवो द्योतमानः सविता सर्वस्य प्रेरकः सूर्यो वारमावरकमंधकारं न व्यूर्णुते । नापगमयति । तदेनमस्तुवन् । सूर्योदयात्प्रागेव हि सोमं स्तुवंति खलु ॥ ॥ २२ ॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥

त्वे इति । सोम । प्रथमाः । वृक्तऽबर्हिषः । महे । वाजाय । श्रवसे । धियं । दधुः ।
सः । त्वं । नः । वीर । वीर्याय । चोदय ॥ ७ ॥

हे सोम प्रथमाः पुरातनाः । यद्वा । यष्टृत्वेन सर्वेषां जनानां मुख्याः । वृक्तबर्हिषः । वृक्तं छिन्नं बर्हिर्यैर्यज्ञार्थमिति वृक्तबर्हिषो यजमानाः । महे महते वाजाय बलाय श्रवसेऽन्नाय च धियं बुद्धिं त्वे त्वयि दधुः । निहितवंतः । तस्मात् हे वीर समर्थ सोम स तादृशस्त्वं नोऽस्मानपि संग्रामे वीर्याय सामर्थ्याय चोदय । प्रेरय । यद्वा । वीर्याय वीरे पुत्रे भवाय सुखायास्मान्प्रेरय ॥

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इंद्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥८॥

दिवः । पीयूषं । पूर्व्यं । यत् । उक्थ्यं । महः । गाहात् । दिवः । आ । निः । अधुक्षत ।
इंद्रं । अभि । जायमानं । सं । अस्वरन् ॥८॥

दिवो द्युलोकात् तत्र स्थितैर्देवैः पीयूषं पातव्यं पूर्व्यं प्रत्नं यत्सोमरूपमन्नमुक्थ्यं प्रशस्यमस्ति तं सोमं महो महतो गाहाद्गहनाद्दिवो द्युलोकान्निरधुक्षत । आभिमुख्येन निर्दुहंति । ततो दुग्धमिंद्रमभिलक्ष्य जायमानं तं सोमं समस्वरन् । स्तोतारः संस्तुवंति ॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥९॥

अध । यत् । इमे इति । पवमान । रोदसी इति । इमा । च । विश्वा । भुवना । अभि । मज्मना ।
यूथे । न । निःऽस्थाः । वृषभः । वि । तिष्ठसे ॥९॥

हे पवमान सोम अधानंतरं यद्यथेमे रोदसी द्यावापृथिव्याविमेमानि विश्वा विश्वानि भुवना भूतजातानि च मज्मना बलेनाभि तिष्ठसि स त्वं तथा कुर्वन् भुवनेषु वि तिष्ठसे । तत्र दृष्टांतः । यूथे न यथा कश्चिद्वृषभो गवां यूथे वृंदे निष्ठा निःष्ठितो वर्तते तद्वद्यूथस्थानीयेषु भूतजातेषु निःष्ठितो भवसि ॥

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इंदुः ॥१०॥

सोमः । पुनानः । अव्यये । वारे । शिशुः । न । क्रीळन् । पवमानः । अक्षारिति ।
सहस्रऽधारः । शतऽवाजः । इंदुः ॥१०॥

पुनानः पूयमानः पवमानः पूतः सोमोऽव्ययेऽविमये वारे वाले पवित्रे शिशुर्न शिशुरिव क्रीळन्नितस्ततः संक्रीडमानः सन्नक्षाः । क्षरति । कीदृशः । सहस्रधारो बहुधारायुक्तः शतवाजो बहुबल इंदुर्दीप्तः ॥

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेंद्रायेंदुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥११॥

एषः । पुनानः । मधुऽमान् । ऋतऽवा । इंद्राय । इंदुः । पवते । स्वादुः । ऊर्मिः ।
वाजऽसनिः । वरिवःऽवित् । वयःऽधाः ॥११॥

पुनानः पूयमानो मधुमान् माधुर्योपेत ऋतवर्तवान् यज्ञवानिंदुः चरणशीलः स्वादुः स्वादुकर

ऊर्मिरेष रसधारासंघ इंद्रायेंद्रार्थं पवते । क्षरति । कीदृशः । वाजसनिरन्नस्य दाता वरिवोविदनस्य लंभको वयोधा आयुषो दाता ॥

स प॑वस्व॒ सह॑मानः पृत॒न्यून्त्सेध॒न्रक्षां॒स्यप॑ दु॒र्गहा॑णि ।
स्वा॒यु॒धः सा॑स॒ह्वान्त्सो॑म॒ शत्रू॑न् ॥१२॥

सः । प॒व॒स्व॒ । सह॑मानः । पृ॒त॒न्यून् । सेध॑न् । रक्षां॑सि । अप॑ । दुः॒ऽगहा॑नि ।
सु॒ऽआ॒यु॒धः । स॒स॒ह्वान् । सो॒म॒ । शत्रू॑न् ॥१२॥

हे सोम स तादृशस्त्वं पवस्व । किं कुर्वन् । पृतन्यून् ॥ कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोप इति क्यचि परतोऽकारलोपः ॥ संग्रामकामाञ्शत्रून् सहमानोऽभिभवन् तथा दुर्गहाणि केश्चिदपि दुर्गमाणि रक्षांस्यप सेधन्नपगमयन् हिंसन् । किंच स्वायुधः शोभनायुधः सञ्शत्रून्सासह्वानभिभवन्नभितपन् पवस्व ॥ ॥२३॥

अया रुचेति तृचमष्टमं सूक्तं परुच्छेपपुत्रस्यानानताख्यस्यार्षमत्यष्टिच्छंदस्कं । पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । अया रुचा तृचमनानतः पारुच्छेपिरात्यष्टमिति ॥ गतो विनियोगः ॥

अ॒या रु॒चा हरि॑ण्या पुना॒नो विश्वा॒ द्वेषां॑सि तरति स्व॒युग्व॑भिः॒ सूरो॒ न स्व॒युग्व॑भिः ।
धारा॑ सु॒तस्य॑ रोचते पुना॒नो अ॑रु॒षो हरिः॑ ।
विश्वा॒ यद्रू॒पा प॑रि॒यात्यृक्व॑भिः स॒प्तास्ये॑भि॒र्ऋक्व॑भिः ॥१॥

अ॒या । रु॒चा । हरि॑ण्या । पु॒ना॒नः । विश्वा॑ । द्वेषां॑सि । त॒र॒ति॒ । स्व॒युग्व॑ऽभिः । सूरः॑ ।
न । स्व॒युग्व॑ऽभिः ।
धारा॑ । सु॒तस्य॑ । रो॒च॒ते॒ । पु॒ना॒नः । अ॒रु॒षः । हरिः॑ ।
विश्वा॑ । यत् । रू॒पा । प॒रि॒ऽयाति॑ । ऋक्व॑ऽभिः । स॒प्तऽआ॑स्येभिः । ऋक्व॑ऽभिः ॥१॥

पुनानः पूयमानः सोमो हरिण्या हरितवर्णयायानया रुचा रोचमानया धारया विश्वा सर्वाणि द्वेषांसि द्वेष्टॄणि रक्षांसि तरति । विनाशयति । तत्र दृष्टांतः । सूरो न यथा सूर्यः स्वयुग्वभिः स्वयं युक्तै रश्मिभिस्तमांसि हिनस्ति तद्वत् । स्वयुग्वभिरिति द्विरुक्तिरादरार्था । यद्वा । धारया युक्तः सोमः स्वीयैर्युक्तैस्तेजोभी रक्षांसि तरति । तस्य सुतस्याभिषुतस्य सोमस्य धारा रोचते । दीप्यते । पुनानः पूयमानो हरिर्हरितवर्णः सोमोऽरुष आरोचमानो भवति । यद्यः सोमः सप्तास्येभी रसहरणशीलास्यैर्ऋक्वभिः स्तुतिमद्भिर्ऋक्वभिस्तेजोभिर्विश्वा विश्वानि व्याप्तानि रूपा रूपाणि नक्षत्राणि परियाति गच्छति व्याप्नोति ॥

त्वं त्यत्प॑णी॒नां वि॑दो॒ वसु॒ सं मा॒तृभि॑र्मर्जयसि॒ स्व आ दम॑ ऋ॒तस्य॑ धी॒तिभि॒र्दमे॑ ।
प॒रा॒वतो॒ न साम॒ तद्यत्रा॒ रण॑न्ति धी॒तयः॑ ।
त्रि॒धातु॑भि॒ररु॑षीभि॒र्वयो॑ दधे॒ रोच॑मानो॒ वयो॑ दधे ॥२॥

त्वं । त्यत् । प॒णी॒नां । वि॒दः॒ । वसु॑ । सं । मा॒तृऽभिः॑ । म॒र्ज॒य॒सि॒ । स्वे । आ । दमे॑ ।
ऋ॒तस्य॑ । धी॒तिऽभिः॑ । दमे॑ ।
प॒रा॒ऽवतः॑ । न । साम॑ । तत् । यत्र॑ । रण॑न्ति । धी॒तयः॑ ।
त्रि॒धातु॑ऽभिः । अरु॑षीभिः । वयः॑ । द॒धे॒ । रोच॑मानः । वयः॑ । द॒धे॒ ॥२॥

हे सोम त्वं त्यत्पणीनां वसु पणिभिरपहृतं गवात्मकं धनं विदः। अलभथाः। आ अपि पर्वतस्य यज्ञस्य धीतिभिर्धात्रीभिर्मातृभिर्वसतीवरीभिः स्व आत्मीये दमे गृहभूते दमे यज्ञे सं मर्जयसि। सम्यक् शुद्धो भवसि। परावतो न दूरस्थाद्देशाद्यथा साम सामध्वनिः श्रूयते तथा तव तत्सामध्वनिः सर्वैः श्रूयते। असौ सोमाभिषवाभिप्रायेणोक्तः। यत्र यस्मिञ्शब्दे धीतयः कर्मणो धर्तारो यजमाना रणंति रमंते। रोचमानः सोमस्त्रिधातुभिस्त्रयाणां लोकानां धारयित्रीभिर्मातृभिर्वसतीवरीभिरप्सुभिरारोचमानाभिर्दीप्तिभिर्वयोऽन्नं दधे। स्तोतृभ्यः प्रयच्छति। पुनर्वयो दध इत्यादरार्थं॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येंद्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३॥
पूर्वां। अनु। प्रऽदिशं। याति। चेकितत्। सं। रश्मिऽभिः। यतते। दर्शतः। रथः। दैव्यः। दर्शतः। रथः।
अग्मन्। उक्थानि। पौंस्या। इंद्रं। जैत्राय। हर्षयन्।
वज्रः। च। यत्। भवथः। अनपऽच्युता। समत्ऽसु। अनपऽच्युता ॥३॥

चेकितज्जानानः सोमः पूर्वां प्राचीं प्रदिशं प्रकृष्टां दिशमनु याति। अनुगच्छति। किंच दर्शतः सर्वैर्दर्शनीयो दैव्यो देवेषु भवस्तव रथः सूर्यरश्मिभिः सं यतते। संगच्छते। पुनर्दर्शतो रथ इत्यादरार्थं। ततः पौंस्या पुंस्त्वावगमान्युक्थानि स्तोत्राण्यग्मन्। इंद्रं गच्छंति। तथा जैत्राय जयार्थं तानि स्तोत्राणींद्रं हर्षयन्। हर्षयंति। तथा तस्य वज्रश्च तमिंद्रं गच्छति। यद्यदा समत्सु संग्रामेष्वनपच्युतानपच्युतौ शत्रुभिरपराजितौ सोम त्वं चेंद्रश्च युवां सह भवथः तदा स्तोत्रागमनादीनि भवंति। पुनरनपच्युतेत्यादरार्थं॥ ॥२४॥

नानानमिति चतुर्ऋचं नवमं सूक्तमांगिरसस्य शिशुनाम्न आर्षं। पंचपदा पंक्तिश्छंदः। पवमानः सोमो देवता। तथा चानुक्रांतं। नानानं चतुष्कं शिशुः पांक्तं हीति॥ गतो विनियोगः॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानां।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वंतमिच्छतींद्रायेंदो परि स्रव ॥१॥
नानानं। वै। ऊं इति। नः। धियः। वि। व्रतानि। जनानां।
तक्षा। रिष्टं। रुतं। भिषक्। ब्रह्मा। सुन्वंतं। इच्छति। इंद्राय। इंदो इति। परि। स्रव ॥१॥

ऋषिरेतदादिभिस्त्रिभिः सूक्तैरपरिस्रवतः सोमस्याजामित्वाय मनसो विनोदनं कुर्वन्नाह। हे सोम नोऽस्माकं धियः कर्माणि नानानं नानाजातीयकानि बहूनि भवंति। वैशब्दः प्रसिद्ध्यर्थद्योतनार्थः। उ इति पूरणः। तथान्येषामपि जनानां व्रतानि कर्माणि विविधानि भवंति। तथा त्वष्टा रिष्टं दारुतक्षणमिच्छति। तथा भिषग्वैद्यश्चिकित्सको रुतं रोगमिच्छति। ब्रह्मा ब्राह्मणः सुन्वंतं सोमाभिषवं कुर्वंतं यजमानमिच्छति। तथाहं त्वत्परिस्रवणमिच्छामि। तस्माद्धे इंदो सोमेंद्रायेंद्रार्थं परि स्रव। परितः क्षर॥

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानां।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवंतमिच्छतींद्रायेंदो परि स्रव ॥२॥

जरतीभिः । ओषधीभिः । पर्णेभिः । शकुनानां ।
कार्मारः । अश्मऽभिः । द्युऽभिः । हिरण्यऽवंतं । इच्छति । इंद्राय । इंदो इति ।
परि । स्रव ॥२॥

जरतीभिर्जीर्णाभिरोषधीभिरिषवः क्रियंते तथा शकुनानां पर्णेभिरिषूणां पत्रभूतैः पर्णैश्च क्रियंते तथा द्युभिर्दीप्ताभिरिषूणां तेजनार्थाभिरश्मभिः शिलाभिश्च क्रियंते । एतैः कार्मारोऽयस्कारो हिरण्यवंतमाढ्यं पुरुषमिच्छति । तथाहं त्वत्परिस्रवणमिच्छामि । तस्मादिंदो इंद्राय परि स्रव ॥

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेंद्रायेंदो परि स्रव ॥३॥
कारुः । अहं । ततः । भिषक् । उपलऽप्रक्षिणी । नना ।
नानाऽधियः । वसुऽयवः । अनु । गाःऽइव । तस्थिम । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥३॥

ऋषिः प्रवृत्तसोमयागः सन् दशापवित्रात्सोमे चरति प्रतिबंधकपापापनुत्तये पुरश्चरितानुकीर्तनपुरःसरमध्येषणां चकार । तावदहं कारुः स्तोमानां कर्तास्मि । तत इति संताननाम । तन्यतेऽस्मादिति ततः पिता । तन्यतेऽसाविति वा ततः पुत्रः । भिषग्भेषजकृत् । यज्ञस्य ब्रह्मेत्यर्थः । सर्वं त्रय्या विद्यया भिषज्यतीति श्रुतेः । तथोपलप्रक्षिणी । उपलेषु वालुकासु प्रक्षिणोति यवान्हिनस्ति भृज्जतीति । यद्वा । दृषदादिषूपलेषु भृष्टान्यवान्हिनस्ति चूर्णयतीति । अथवा धानासक्तुकरंभादीनां कारिका वा । असौ नना माता दुहिता वा । नमनक्रियायोग्यत्वात् । माता खल्वपत्यं प्रति स्तनपानादिना नमनशीला भवति । दुहिता वा शुश्रूषार्थं । एवं सर्वेषां परिचरणेन नानाधियो नानाकर्माणो वसूयवो धनकामा वयमनु तस्थिम । लोकमन्वास्थिताः स्मः । तत्र दृष्टांतः । गा इव ॥ छांदसो जसः शसादेशः ॥ गावो यथा गोष्ठमनुतिष्ठंति स्वपयःप्रदानेन परिचरंति वा एवं वयमपि परिचरामः । एतज्ज्ञात्वा हे इंदो सोम इंद्राय परि स्रव । दशापवित्रात्क्षर । एवमेषाध्येषणा सत्कारपूर्विका व्यापारणा । अत्र निरुक्तं । उपलप्रक्षिणीत्युपलेषु प्रक्षिणात्युपलप्रक्षेपिणी वा । कारुरहमस्मि कर्ता स्तोमानां ततो भिषक् तत इति संताननाम पितुर्वा पुत्रस्य वा । उपलप्रक्षिणी सक्तुकारिका नना नमतेर्माता वा दुहिता वा । नानाधियो नानाकर्माणो वसूयवो वसुकामा अन्वास्थिताः स्मो गाव इव लोकं । नि॰ ६. ५. । इति ॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमंत्रिणः ।
शेपो रोमण्वंतौ भेदौ वारिन्मंडूक इच्छतींद्रायेंदो परि स्रव ॥४॥
अश्वः । वोळ्हा । सुऽखं । रथं । हसनां । उपऽमंत्रिणः ।
शेपः । रोमण्ऽवंतौ । भेदौ । वाः । इत् । मंडूकः । इच्छति । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥४॥

वोळ्हा लक्ष्यं देशं प्रापयन्नश्वः सुखं कल्याणं रथमिच्छति । उपमंत्रिण उपमंत्रवंतो नर्मसचिवा हसनामुपहसनां वाचमिच्छंति । तथा शेपः । शेपो वैतस इति पुंस्प्रजननस्येति यास्कः । नि॰ ३. २१. । यथा शेपो रोमण्वंतौ भेदाविच्छति । मंडूको वारित् । इदवधारणे । उदकमेवेच्छति । तथाहं त्वत्परिस्रवणमिच्छामि । तस्मादिंद्रायेंदो परि स्रवेति ॥ ॥२५॥

शर्यणावतीत्येकादशर्चं दशमं सूक्तं मारीचस्य कश्यपस्यार्षं । पूर्वत्र हीत्युक्तत्वादिदमुत्तरं च पांक्तं । पवमानसोमदेवताकं । तथा चानुक्रम्यते । शर्यणावत्येकादश कश्यप इति ॥ गतो विनियोगः ॥

शर्यणावति सोममिंद्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिंद्रायेंदो परि स्रव ॥१॥
शर्यणाऽवति । सोमं । इंद्रः । पिबतु । वृत्रऽहा ।
बलं । दधानः । आत्मनि । करिष्यन् । वीर्यं । महत् । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥१॥

शर्यणावति । शर्यणावन्नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरः । तत्र स्थितं सोमं वृत्रहेंद्रः पिबतु । कीदृशः । आत्मनि बलं दधानो बलं निदधानः अत एव महद्वीर्यं करिष्यञ्शत्रून्प्रति । तस्मादिंद्रायेंदो परि स्रव ॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इंद्रायेंदो परि स्रव ॥२॥
आ । पवस्व । दिशां । पते । आर्जीकात् । सोम । मीढ्वः ।
ऋतऽवाकेन । सत्येन । श्रद्धया । तपसा । सुतः । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥२॥

हे दिशां पते प्राच्यादीनां दिशां प्रकाशकत्वेन स्वामिन् हे मीढ्वः कामानां सेक्तर्हे सोम आर्जीकात् । ऋजीकानामदूरभव आर्जीको जनपदः । तस्मादा पवस्व । अस्मदभिमुखं प्रत्यागच्छ । यद्वा । आर्जीकादृजोरकुटिलात्पविचात्क्षर । कीदृशः । ऋतवाकेनर्तस्य वचनेन सत्येन । सत्यर्तयोरल्पो भेदो द्रष्टव्यः । श्रद्धया तपसा युक्तैर्दीक्षितैः सुतोऽभिषुतस्त्वं पवस्व ॥

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गंधर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिंद्रायेंदो परि स्रव ॥३॥
पर्जन्यऽवृद्धं । महिषं । तं । सूर्यस्य । दुहिता । आ । अभरत् ।
तं । गंधर्वाः । प्रति । अगृभ्णन् । तं । सोमे । रसं । आ । अदधुः । इंद्राय । इंदो इति ।
परि । स्रव ॥३॥

सूर्यस्य दुहिता । श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहितेति वाजसनेयकं । शत॰ १२. ७. ३. ११. । सा पर्जन्यवृद्धं पर्जन्यवत्समर्थं । यद्वा । पर्जन्येन तत्कार्यत्वेनोदकेन प्रवृद्धं । महिषं महांतं पूज्यं वा तं सोममाभरत् । आहरत् । द्युलोकादाहृतवती । तमाह्रियमाणं सोमं गंधर्वा विश्वावसुप्रभृतयः प्रत्यगृभ्णन् । प्रत्यगृह्णन् । प्रतिगृहीतवंतः ॥ हृग्रहोर्भः ॥ ततो गंधर्वाः प्रतिगृहीतं रसं सोमे प्रत्यक्षमादधुः ॥ दधातेर्लङि ॥ तस्मात्परि स्रव ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इंद्रायेंदो परि स्रव ॥४॥
ऋतं । वदन् । ऋतऽद्युम्न । सत्यं । वदन् । सत्यऽकर्मन् ।
श्रद्धां । वदन् । सोम । राजन् । धात्रा । सोम । परिऽकृतः । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥४॥

हे ऋतद्युम्नर्तेन द्योतमान सत्ययशस्क वा सत्यकर्मन्यथार्थकर्मन् हे सोमाभिषूयमाण राजन् सर्वेषां यज्ञनिष्पादकत्वेन स्वामिन् हे सोम ऋतं यज्ञं वदन् सत्यं वदन्नुच्चारयञ्श्रद्धां यजमानानामात्मनोपेक्षितां वदन् धात्रा कर्मणां धारकेण देवानां पोषकेण वा यजमानेन परिष्कृतोऽलंकृतस्त्वमिंद्राय परि स्रव ॥ संपर्युपेभ्य इति भूषणार्थे करोतेः सुट् ॥

सत्यमुंग्रस्य बृहतः सं स्रवंति संस्रवाः ।
सं यंति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इंद्रायेंदो परि स्रव ॥५॥
सत्यंऽउग्रस्य । बृहतः । सं । स्रवंति । संऽस्रवाः ।
सं । यंति । रसिनः । रसाः । पुनानः । ब्रह्मणा । हरे । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥५॥

सत्यमुग्रस्य संग्रामे सत्येन शत्रूणामुद्गारयितुः । यद्वा । उद्गूर्णसत्यस्य । यद्वा । यथार्थभूतमुद्गूर्णं बलं यस्य तस्य ॥ पृषोदरादित्वाद्रूपसिद्धिः ॥ बृहतो महतः सोमस्य तव संस्रवाः सम्यक्स्रवणशीला धाराः सं स्रवंति । सम्यग्गच्छंति । किंच रसिनो रसवतस्तव स्वभूता रसाः सं यंति । संगच्छंते । तस्माद्धे हरे हरितवर्ण सोम ब्रह्मणा ब्राह्मणेन मंत्रेण वा पुनानः पूयमानः स त्वमिंद्रार्थं परि स्रव ॥ ॥२६॥

यत्रं ब्रह्मा पंवमान छंदस्यां३ वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमें महीयते सोमेंनानंदं जनयन्निंद्रायेंदो परि स्रव ॥६॥
यत्रं । ब्रह्मा । पवमान । छंदस्यां । वाचं । वदन् ।
ग्राव्णा । सोमें । महीयते । सोमेंन । आऽनंदं । जनयन् । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥६॥

हे पवमान पूयमान सोम त्वदर्थं छंदस्यां सप्तच्छंदोभिः छतां तेषु भवां वाचं स्तुतिं वदन्नुच्चारयन् सोमे सोमाभिषवार्थं ग्राव्णाभिषवं कुर्वता युक्तस्तेनाभिषुतेन सोमेन देवानामानंदं संतोषं जनयन्नुत्पादयन्ब्रह्मा ब्राह्मणो यत्र यस्मिन्देशे महीयते देवैः पूज्यते तत्र हे सोम त्वं परि स्रव ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितं ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इंद्रायेंदो परि स्रव ॥७॥
यत्रं । ज्योतिः । अजस्रं । यस्मिंन् । लोके । स्वः । हितं ।
तस्मिंन् । मां । धेहि । पवमान । अमृते । लोके । अक्षिते । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥७॥

हे पवमान यत्र यस्मिँल्लोके ज्योतिः सर्वं तेजोऽजस्रं सर्वदाविनश्वरं वर्तते । यस्मिंश्च लोके स्वरादित्याख्यं ज्योतिर्हितं निहितमस्ति । तस्मिन्नमृते मरणधर्मरहिते अत एवाक्षितेऽक्षीणे लोके मां सोमाभिषवं कुर्वंतं धेहि । निधेहि । तस्मान्मामुत्तमलोकं प्रापयितुं त्वमिंद्राय परि स्रव ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परि स्रव ॥८॥
यत्रं । राजा । वैवस्वतः । यत्रं । अवऽरोधनं । दिवः ।
यत्रं । अमूः । यह्वतीः । आपः । तत्रं । मां । अमृतं । कृधि । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥८॥

यत्र यस्मिँल्लोके वैवस्वतो विवस्वत्पुत्रो राजा भवति । यत्र च लोके दिव आदित्यस्यावरोधनं भूतानां प्रवेशनं । किंच यत्र लोके यह्वतीर्महत्योऽमूरिमा गंगाद्या आपस्तिष्ठंति । तत्र तादृशे लोके माममृतं मरणधर्मरहितं कृधि । कुरु । मम देवत्वं प्रापयेत्यर्थः । ततः कारणात्परि स्रव ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मंतस्तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परि स्रव ॥९॥
यत्र । अनुऽकामं । चरणं । त्रिऽनाके । त्रिऽदिवे । दिवः ।
लोकाः । यत्र । ज्योतिष्मंतः । तत्र । मां । अमृतं । कृधि । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥९॥

यत्र त्रिदिवे तृतीयस्यां दिवि द्युलोके त्रिनाके । तत्राधरमध्यमोत्तमभावेन त्रीणि स्थानानि संति । तत्र तृतीये नाक उत्तमे स्थाने दिव आदित्यस्यानुकामं कामानुगुणं चरणमस्ति । किंच यत्र यस्मिँल्लोके लोका ज्योतिष्मंतो ज्योतिर्युक्तास्तिष्ठंति । तत्र तादृशे लोके माममृतं कृधि । यथा ममोत्तमलोको भवति तथा त्वमिंद्राय परि स्रव ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपं ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परि स्रव ॥१०॥
यत्र । कामाः । निऽकामाः । च । यत्र । ब्रध्नस्य । विष्टपं ।
स्वधा । च । यत्र । तृप्तिः । च । तत्र । मां । अमृतं । कृधि । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥१०॥

यत्र यस्मिँल्लोके कामाः काम्यमाना देवा निकामा नितरामवश्यं प्रार्थ्यमाना इंद्रादयश्च विद्यंते । - - - यद्वा । सूर्येण विना कर्माणि न घटंत इति सर्वेषां कर्मणां मूलभूतस्यादित्यस्य विष्टपं सहस्थानं यत्र विद्यते तत्र लोके । स्वधान्नं स्वधाकारेण वा दत्तमन्नं तृप्तिस्तर्पणं हर्षणं हर्षश्च यत्र विद्यते तत्र लोके माममृतं कृधि ॥

यत्रानंदाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परि स्रव ॥११॥
यत्र । आऽनंदाः । च । मोदाः । च । मुदः । प्रऽमुदः । आसते ।
कामस्य । यत्र । आप्ताः । कामाः । तत्र । मां । अमृतं । कृधि । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥११॥

यत्र यस्मिँल्लोक आनंदादय आसते । तेषामल्पो भेदो द्रष्टव्यः । यत्र च लोके कामस्य काम्यमानस्य देवस्य सर्वे कामा आप्ताः प्राप्ता भवंति तत्र माममृतं कृधि । एतत्तु त्वया विना न घटत इति हे सोम त्वं परि स्रव ॥ ॥२७॥

य इंदोरिति चतुर्ऋचमेकादशं सूक्तं । ऋष्याद्याः पूर्ववत् । तथा चानुक्रम्यते । य इंदोश्चतुष्कमिति ॥ गतः सूक्तविनियोगः ॥

य इंदोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इंद्रायेंदो परि स्रव ॥१॥
यः । इंदोः । पवमानस्य । अनु । धामानि । अक्रमीत् ।
तं । आहुः । सुऽप्रजाः । इति । यः । ते । सोम । अविधत् । मनः । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥१॥

पवमानस्य पूयमानस्येंदोः सोमस्य धामानि स्थानानि द्रोणकलशादीनि यद्वा धामानि तेजांसि यो ब्राह्मणोऽन्वक्रमीत् अनुक्रामति अनुगच्छति तं जनं सुप्रजाः शोभनप्रजननः कल्याणपुत्रादिप्रजायुक्त इत्याहुः ॥ नित्यमसिच् प्रजामेधयोरित्यसिच् समासांतः ॥ यः सोममभिषुणोति स पुत्रादियुक्तो भवतीत्यर्थः । किंच हे सोम यो मनुष्यस्ते त्वदर्थं मनोऽविधत् करोति । यद्वा । ते त्वदीयं मनोऽविधत् परिचरति । विधतिः परिचरणकर्मा । तमपि कल्याणजननमित्याहुः । तस्मात्त्वं परि स्रव ॥

ऋषे मंत्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिंद्रायेंदो परि स्रव ॥२॥
ऋषे । मंत्रऽकृतां । स्तोमैः । कश्यप । उत्ऽवर्धयन् । गिरः ।
सोमं । नमस्य । राजानं । यः । जज्ञे । वीरुधां । पतिः । इंद्राय । इंदो इति । परि । स्रव ॥२॥

ऋषिः स्वात्मानं प्रत्याह । हे ऋषे सूक्तद्रष्टर्हे कश्यपात्मन् त्वं मंत्रकृतामृषीणां स्तोमैः स्तोत्रैर्गिरः स्तुतिरूपा वाच उद्वर्धयन्नुपर्युपरि वर्धयन्राजानं सर्वेषां स्वामिनं तं सोमं नमस्य । पूजय ॥ नमसः पूजायां नमोवरिव इति क्यच् ॥ यः सोमो वीरुधां वनस्पतीनां पतिः पालको जज्ञे जातः तं नमस्य । हे सोम यथात्मना सुतो भवसि तथा परि स्रव ॥

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इंद्रायेंदो परि स्रव ॥३॥
सप्त । दिशः । नानाऽसूर्याः । सप्त । होतारः । ऋत्विजः ।
देवाः । आदित्याः । ये । सप्त । तेभिः । सोम । अभि । रक्ष । नः । इंद्राय । इंदो इति ।
परि । स्रव ॥३॥

सप्त दिशः । सोमो यस्यां दिशि वर्तते तद्व्यतिरिक्ताः सप्त भवंति । ता नानासूर्या नानाविधैः सूर्यैरधिष्ठिता ऋतवो भवंति । नानालिंगत्वादृतूनां नानासूर्यत्वमित्याम्नानात् । यद्वा । नानासूर्या इति दिग्विशेषणं । तथा होतारो वषट्कर्तारो होत्रादयः सप्तर्त्विजो भवंति । किंच सप्तादित्या अदितेः पुत्रा धात्रादयो मार्तंडवर्जिता ये सप्त देवाः संति । एतत्त्वष्टौ पुत्रासो अदितेः । ऋ॰ १०. ७२. ८. । इत्यत्र प्रपंचयिष्यते । हे सोम तेभिस्तैर्दिगादिभिः सर्वैर्नोऽस्मानभि रक्ष । एतत्तु त्वया विना न घटत इति तस्मादिंद्रायेंदो परि स्रव ॥

उपाकरणोत्सर्जनयोर्मंडलाद्यंतहोमे यत्ते राजन्नित्येषा । सूचितं च । यत्ते राजञ्छृतं हविरिति द्वृचाः समानी व आकूतिरित्येका । आ॰ गृ॰ ३. ५. ७. । इति ॥

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिंद्रायेंदो परि स्रव ॥४॥
यत् । ते । राजन् । शृतं । हविः । तेन । सोम । अभि । रक्ष । नः ।
अरातिऽवा । मा । नः । तारीत् । मो इति । च । नः । किं । चन । आममत् । इंद्राय ।
इंदो इति । परि । स्रव ॥४॥

हे राजन् सर्वेषां कर्मसाधनत्वेन स्वामिन् हे सोम ते त्वदर्थं शृतं पक्वं यद्धविरस्ति ॥ शृतं पाके । पा॰

६. १. २७.। इति निष्ठायां निपातितः ॥ तेन हविषा नोऽस्मानभि रक्ष। अभिपालय। तस्मात्त्वदभिरक्षितानस्मानरातीवारातिवाञ्छत्रुर्नोऽस्मान्मा तारीत्। मा वधीत्। किंच नोऽस्माकं किं चन किंचिदपि धनादिकं शत्रुर्मो आममत्। मा हिंसीत्। यदेतदेतैः सूक्तैरुक्तं तद्यथास्माकं भवति तथा हे इंदो इंद्राय परि स्रव। एवं स्वादिष्ठयेत्यादिभिरेतदंतैः सूक्तैर्बहुविधं सोममाहात्म्यमभ्यधायि। तस्मादैहिकामुष्मिकफलसिद्धये सोमयागः करणीय इत्युक्तं भवति ॥ ॥२८॥

॥ इति सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे दाशतय्या नवमे मंडले सप्तमोऽनुवाकः समाप्तं च नवमं मंडलं ॥